





THE  
VEDIC  
LITERATURE

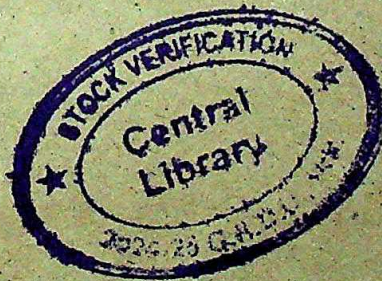
OF  
THE  
VEDIC  
PERIOD







07.8084













रा

ध

हिन्  
प्रेम के  
है। जम  
हिन्दी न  
होना अ  
है। न  
जससे  
हिन्  
समझता  
अनुवाद  
है। बा  
उसका प

‘हि  
तर रहा  
है। सुख  
की योग्य  
पाठों के  
करा देना  
‘हि  
पाठों के  
नहीं है।  
का सम्पा  
इन्हीं दो  
महात्माजी  
यह सभी  
अंगरेजी  
जनता उ  
महात्माजी  
का जन्म  
वाली है



प्रमाणित प्रतः	
पुस्तक सं०.....	आगत सं०.....
लि०.....	
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.	

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का १)  
एक प्रति का १)



078081

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ६ ]

[ अंक १

सुप्रसन्न-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, श्रावण सुदि ११, संवत् १९८

गुरुवार, १२ अगस्त, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

धारेगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## नवजीवन-प्रेमियों को

हिन्दी-नवजीवन आज छठे वर्ष में प्रवेश करता है। मित्रों के प्रेम के वश हो कर यह पत्र नुकसान होते हुए भी निकल रहा है। जमना लालजी ने जो कुछ लिखा है मैंने पढ़ लिया है। यदि हिन्दी नवजीवन से किसी को सहायता मिलती है तो उसका प्रगट होना आवश्यक है, परन्तु नैसे ही उसका स्वाश्रय होना आवश्यक है। नवजीवन प्रेमी से मेरी प्रार्थना है कि वे ऐसी चेष्टा करें जिससे नवजीवन को मित्रों का सहायता पर निर्भर न रहना पड़े।

हिन्दी नवजीवन में भाषा की दृष्टियाँ थीं। वह अब दूर हुई समझता हूँ। दो उत्तर हिन्द के हिन्दी-प्रेमी नवजीवन के लिए अनुवाद करते हैं। इसलिए अब भाषा दोष का भय कम हुआ है। बाकी रहा है नवजीवन-प्रेमी का कर्तव्य, इस वर्ष में वे उसका पालन करेंगे ?

मोहनदास गांधी

## आवश्यक वक्तव्य

‘हिन्दी नवजीवन’ इस अंक के साथ ही नवीन वर्ष में पदार्पण कर रहा है। उप-सम्पादक जी ने मुझे लेख लिखने को लिखा है। मुझमें हिन्दी-नवजीवन जैसे पत्र में लिख कर उपदेश करने की योग्यता नहीं है परन्तु ‘नवजीवन’ के सम्बन्ध में कुछ बातें पाठकों के सामने रख कर उसकी परिस्थिति से उन्हें परिचित करा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

‘हिन्दी-नवजीवन’ आज कई वर्षों से हिन्दी भाषा भाषी पाठकों की जो सेवा कर रहा है, वह सहृदय पाठकों से छिपी नहीं है। इस पत्र के जन्म के पहले महात्माजी द्वारा दो पत्रों का सम्पादन हो रहा था—‘यंग इन्डिया’ और ‘नवजीवन’। इन्हीं दो पत्रों में पूज्य महात्माजी के विचार प्रकाशित होते हैं। महात्माजी के विचार मानव जाति के लिए कितने हितकर हैं यह सभी विचारवान सज्जन जानते हैं। उक्त पत्रों की भाषा अंगरेजी और गुजराती होने के कारण हिन्दी भाषा जानने वाली जनता उनके विचारों से लाभ नहीं उठा सकती थी। उन तक महात्माजी के विचार पहुँचाने के उद्देश्य से ही ‘हिन्दी-नवजीवन’ का जन्म हुआ है। भारतवर्ष की अधिकांश जनता हिन्दी जानने वाली है अतः उनके हित की दृष्टि से ही कुछ मित्रों ने पूज्य

महात्मा जी से साग्रह अनुरोध कर के ‘हिन्दी-नवजीवन’ को जन्म दिया।

तबसे आज तक अविचलित रूप से यह आप लोगों की सेवा कर रहा है। विचारवान पाठक स्वयं जानते हैं कि जीवन को उन्नत मार्ग पर ले जाने तथा जीवन की जटिल प्रश्रियों को सुलझाने में यह उनका कितना सहायक होता है। नित्य प्रति की साधारण बातों में उलझने उपस्थित होने पर तथा सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कार्यों में किर्तित्व विमूढ़ हो जाने पर एक भवे हित चाहने वाले बुद्धिमान मित्र की भांति यह उन्हें प्रशस्त मार्ग दिखला कर उनके जीवन को उच्च तथा आदर्श बनाता है। महात्माजी की समझाने की शैली इतनी सरल और सुगम्य होती है कि गहन से गहन विषय भी साधारण बुद्धि वाले स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सब की समझ में भली प्रकार आ जाते हैं। उनके हृदय पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ता है। अनेक विचारवान पुरुषों ने इसके लेखों के निरन्तर मनन से अपने जीवन को सुधारा है और दूसरों के लिए आदर्श उपस्थित किया है। जिन सज्जनों ने इसमें प्रकाशित विचारों का अपने जीवन में व्यवहार किया है वे इसकी उपयोगिता को भली भांति समझते हैं। धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक विषयों पर महात्मा जी के विचार कितने उदार स्पष्ट और निर्भीक होते हैं यह सभी जानते हैं। अब पाठक ही स्वयं विचारें कि इस पत्र का स्थायी होना कितना आवश्यक है।

अब तक यह पत्र किसी तरह घाटे से प्रकाशित हो कर आपकी सेवा करता रहा। विज्ञापनों द्वारा घाटे को पूरा करने के महात्माजी पूरे विरोधी हैं। उनका मत है कि जो पत्र स्वावलम्बी नहीं उसे एकदम बन्द कर देना ही अच्छा है। पर कुछ मित्रों के अनुरोध से ही यह पत्र अब तक चल रहा है। इसके स्थायी होने का एक मात्र साधन यही है कि यह स्वावलम्बी बन जाय और स्वावलम्बी होने का मार्ग यथेष्ट ग्राहक बनाना है। इसके लिए एक बार पहले भी मैंने सहृदय पाठकों से निवेदन किया था और उन्होंने उद्योग कर के कुछ ग्राहक बढ़ाये भी थे परन्तु इस समय विशेष उद्योग की आवश्यकता है। प्रत्येक ग्राहक को इसके लिए उद्योग करना चाहिये परन्तु उन सज्जनों की जिम्मेवारी विशेष है जिन्होंने इसकी उपयोगिता से



लाम उठाया है। उन्हें इसके लिए पूरा उद्योग करना चाहिये। मुझे विश्वास है कि यदि हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी भाई इसकी उपयोगिता समझ सकें तो वे ग्राहक बन कर इसे अवश्य अपनावेंगे और इसके स्वाध्याय से अपने जीवन को सुधारेंगे।

जमनालाल बजाज

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा

भाग २

अध्याय १४

मुकदमे की तैयारी

प्रिटोरिया में मैंने जो वर्ष बिताया वह मेरे जीवन में अमूल्य था। सार्वजनिक काम करने की अपनी शक्ति का कुछ परिवर्ण मुझे वहाँ मिला और यह सेवा करना भी मैंने वहीं सीखा। मेरी धार्मिक भावना वहाँ धीरे-धीरे तीव्र होने लगी। यह भी कहा जा सकता है कि खरी वकालत भी मैंने वहीं सीखी। नया वकील पुराने वकील के पास रह कर जो कुछ सीखता है, वह भी मैंने वहीं सीखा। यह विश्वास कि अब मैं वकालत के लिए अयोग्य नहीं हूँ, मुझे वहीं हुआ। वकालत की चाबी भी मुझे वहीं मिली।

दादा अबदुल्ला का मुकदमा कुछ छोटा नहीं था। ४० चालीस हजार पौंड, अथवा ६ लाख रुपये का दावा था। वह व्यापार के संबंध का था, इसलिए हिसाबकिताब की गड़बड़ी उसमें बहुत थी। दावे का कुछ अंश प्रामिसरी नोटों पर था और कुछ अंश प्रामिसरी नोट देने के बाड़े पर था। जवाब यह दिया जाता कि धोखे से कागज लिखवा तो लिया गया था पर उसका पूरा रुपया न चुक सका था। इसमें हकीकत और कानून की पेचीदगी बहुत थी। हिसाब का झंझट भी लम्बा था।

दोनों पक्षों ने सभी सालिसिटरी और वकीलों को नियत कर रखा था। इस लिए मुझे दोनों के काम का अनुभव प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिल गया। वकील के लिए मुद्दे के मुकदमे के कागज तैयार कर देने और हकीकत की खोज करने का सारा भार मेरे ऊपर था। मुझे यह भी देखने को मिलता था कि उसमें से सोलिसिटर कितनी चीजें रखता है और उनमें से भी बैरिस्टर कितनी का उपयोग करता है। मैं समझ गया कि इस मुकदमे में मेरी प्रहणशक्ति और मुकदमे के काम की बातों को सुव्यवस्थित रूप में एकत्रित करने की शक्ति का पूरा पता लग जायगा।

अपने मुकदमे में मैं पूरा मन लगाता था। उसमें मैं तन्मय हो गया। आगे पीछे के सभी कागज पढ़ बाले। मुझ में सुवकिल का अपार विश्वास था। उसकी होशियारी की भी कोई इन्तहा न थी। इस से मेरा काम बहुत सीधा हो गया। मैंने हिसाब किताब की बारीकी को खूब समझ लिया। मुकदमे के संबंध के कितने कागज गुजराती में थे। उनका अंग्रेजी उल्था भी मुझे ही करना पड़ता था। इससे उल्था करने का अभ्यास भी बढ़ा।

मैं काम खूब करता था। ऊपर जो मैं लिख गया हूँ, उस धार्मिक चर्चा और सार्वजनिक काम में मेरा मन बहुत लगता था। परन्तु उनमें समय देने के समय, मैं उन्हें गैण ही समझता था। मुकदमे की तैयारी को मैं अपना पहला फर्ज समझता था। उसके संबंध में कुछ कानून पढ़ना होता तो मैं पहले वही खतम कर लेता था। नतीजा यह हुआ कि मुकदमे की हकीकत के ऊपर मेरा इतना अधिकार हो गया कि जितना मुद्दे मुद्दालेह

को कभी नहीं होता क्योंकि मेरे पास तो दोनों के ही कागज पत्र मौजूद थे।

मुझे स्वर्गीय मिस्टर पिंकट के शब्द याद आये। उनका समय दक्षिण अफ्रिका के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर स्व० मि० लेनड ने भी किंग्सटन पर किया था। मि० पिंकट का कहना था — “कानून का पौना बल कागज के ज्ञान में रहता है।” एक मुकदमे सम्बन्ध में मैं जानता था कि न्याय मेरे सुवकिल की तरफ परन्तु कानून विरुद्ध पक्ष में। मैं निराश हो कर मि० लेनड की मदद लेने दौड़ा। उन्हें कागजों के बल पर मुकदमा मजबूत मालूम हुआ। उन्होंने कहा “गांधी, मैंने एक बात सीखी है वह यह कि यदि आपका कागजों के ऊपर पूरा अधिकार होगा तो फिर कानून का सहारा आपके पास आप ही दौड़ा आवेगा। इस मुकदमे की हकीकत आप अच्छी तरह समझ लीजिये।” ऐसा कह कर के उन्होंने हकीकत को अच्छी तरह समझ लेने बाद फिर मिलने को कहा। कागज फिर से पढ़ने पर मैंने देखा कि हकीकत कुछ और ही है। मुझे दक्षिण अफ्रिका के एक पुराने मुकदमे की बड़ी अच्छी नजीर मिल गयी। मैं खुशी से फ़लाह मि० लेनड के पास पहुँचा। वह खुश हो कर बोले “जाओ यह मुकदमा हम लोगों को जीतना ही चाहिए। किस जज इजलास में मुकदमा जाता है—इसका जरा ध्यान रखना होगा।

दादा अबदुल्ला के मुकदमे में जब मैं काम करता था तब मैं हकीकत का महत्व इतनी अच्छी तरह से न जान सका था। हकीकत है सत्य बात। सत्य को अगर पकड़े रहो तो फिर कानून आपकी तुम्हारी सहायता को आ जुटेगा।

मैंने अन्त में देख लिया कि मेरे सुवकिल का मुकदमा मजबूत है। अब कानून की मदद उसे पहुँचानी चाहिए।

मुकदमा लड़ने वाले दोनों पक्ष सगे सम्बन्धी थे। और पंजाब के रहने वाले थे। मैंने देखा कि मुकदमा लड़ते-लड़ते ये दोनों ही तबाह हो जावेंगे। कब तक मुकदमा समाप्त हो यह कोई नहीं कह सकता था। जब तक कचहरी में मुकदमा है, तब तक जहाँ तक चाहो उसे बढ़ा सकते हो। बढ़ाने दोनों में से किसी पक्ष का लाभ न था। इसलिए दोनों चाहते थे कि मुकदमा खतम हो जाय।

तैयब सेठ से मैं मिला। मैंने उन्हें आपस में ही मिल कर पंचायत से झगडा निपटा लेने की सलाह दी। मैंने उनसे कहा अपने वकील से भी सलाह कर लीजिये। दोनों का जिनमें विश्वास हो ऐसे पंच चुने जायें तो झटपट निपटारा हो जायगा। वकील की फीस का खर्च भी इतना बढ़ता जाता था कि उनके बड़े व्यापारी भी चौपट हो जाते। दोनों इस चिंता से लड़ते कि शान्त हो कर कोई भी दूसरा काम नहीं कर सकते थे। इस बीच मैं वर तो बढ़ता ही जाता था। मुझे वकालत पेशा बुरा मालूम होने लगा। वकील के तौर पर तो दोनों पक्षों के वकीलों का काम था अपने पक्ष की जीत के लिए कानून बारीकियाँ ढूँढना। इस मुकदमे में मैंने यह बात पहले जानी कि जीतने वाले को मुकदमे का सारा खर्च कभी नहीं मिल सकता। कानून से एक फीस जायज थी तो वकील मुकदमे से दूसरी ही लेता था, यह बात मुझे असह्य मालूम हुआ मुझे तो प्रतीत हुआ कि हमारा धर्म था दोनों पक्षों में मिल कर देना, दो सगे सम्बन्धियों को मिला देना। मैंने समझा कर देने के लिए हाडमोड बिहिनत को। तैयब सेठ मान गये आखिर पंच नियत किये गये। वहीं मुकदमा चला और अबदुल्ला की जीत हुई।



१९२६

ही कागज

नका समर्थ

ने भी कि

— “कानू

मुकदमे

की तरफ

मि० लेन

हमा मजबू

तत्सीखी

हार होगा

विभाग।

“ए

लेने

मेने दे

के एक पुरा

से फूला फू

“जाओ

किस जज

ना होगा।

ता था त

जान स

कडे रहो

मुकदमा

दिए।

और ए

लडते ल

समाप्त हो

में मुकद

बढाने

ए दोनों

मिल क

नसे कहा

जनमें वि

गा। वकी

उनके

से लडते

सकते थे

वकालत

दोनों

ए कानून

पडले प

कभी न

हील मुव

लडम हु

में मि

मने सम

मान गये

और

परन्तु मेरे सन्तोष के लिए इतना ही काफी न था।

यदि पंचों के ठहराव के अनुसार उसी समय पूरा रुखा चुकाना पड़े तो तैयब हाजी खां मुहम्मद इतना रुखा एक-एक दे नहीं सकते थे। दक्षिण अफ्रिका में रहने वाले पोरबन्दर के मेमन व्यापारियों का एक घराऊ अलिखित कायदा था कि वे मर जाते परन्तु दिवाला न निकालते। तैयब सेठ ३७ सैंतीस हजार पाउण्ड एक-एक न दे सकते थे। उनको एक दमड़ी भी कम नहीं देनी थी और दिवाला भी नहीं निकालना था। इसलिए उनके लिए केवल एक ही रास्ता बच गया था; दादा अबदुल्ला उन्हें पूरा समय देते। दादा अबदुल्ला ने उदारता दिखायी और खूब लम्बा समय दिया। पंच नियत कराने में मुझे जितनी मिहत्तन करनी पड़ी उससे कहीं अधिक मिहत्तन लम्बा समय दिलवाने में पड़ी। दोनों पक्ष राजी हो गये। दोनों की प्रतिष्ठा बड़ी। मेरे सन्तोष का पार न रहा। मैंने सड़ी और खरी वकालत सीखी। मनुष्य के भीतर से उसके अच्छे गुणों को उभाड़ना सीखा, मनुष्य के हृदय में प्रवेश करना सीखा। मैंने देखा कि वकील का कर्तव्य दोनों पक्षों में पड़े हुए अन्तर को पूरा करना है। इस शिक्षा ने मेरे मन में ऐसी जड़ पकड़ ली कि अपनी वीस वर्ष की वकालत का मेरा मुख्य काम था दफ्तर में बैठे बैठे ही सैकड़ों मुकदमों का समझौता करा देना। इसमें मेरी कुछ घटी नहीं हुई। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि मैंने रुपया भी खोया। खैर आत्मा को तो नहीं ही खोया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## अनीति की राह पर

(७)

आजीवन ब्रह्मचर्य के अध्याय के बाद, कई अध्यायों में लेखक ने विवाहित जीवन के कर्तव्य और विवाह की अखण्डता पर विचार किया है। वे यद्यपि अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं परन्तु जन-साधारण लिए वह शक्य नहीं है इसलिए वैसे लोगों के लिए वह केवल आवश्यक ही नहीं बल्कि कर्तव्य के बराबर है। उन्होंने दिखलाया है कि विवाह के कर्तव्यों और उद्देश्यों को ठीक २ समझ लेने पर, सन्तति-निरोध के समर्थन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। इस नैतिक असंयम का कारण हमारी उलटी नैतिक शिक्षा है। विवाह का मजाक उचानेवाले लेखकों के तर्कों का जवाब दे कर, लेखक कहते हैं:—

पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम विवाह है। विवाह केवल आपसका एक ठीका भर ही नहीं है परन्तु यह एक धार्मिक संस्कार है। धर्म संबंध है। यह कहना भूल है कि विवाह के नाम से सभी प्रकार के असंयम क्षम्य हैं। असंयम से विवाह के अचली उद्देश्य को धक्का पहुंचता है। सन्तानोत्पत्ति के सिवाय, और सभी प्रकार की कामवासना की वृत्ति, सबे प्रेम के लिए बाधक है और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है। सन्त फ्रांसिस का कहना है कि कड़ी दवायें खाना हमेशा खतरनाक ही होता है। यदि कुछ भी गड़बड़ी हुई तो हानि होना संभव है। कामवासना की दवा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी दवा है परन्तु कड़ी है और इसलिए बहुत संभाल कर यदि इसका व्यवहार न किया जाय तो खतरनाक है।

इसके बाद लेखक विवाह संबंध स्थापित करने वा तोड़ने में वा सीधे सीधे, तज्जनित कर्तव्यों की पूर्वा न कर के असंयत जीवन बिताने में व्यक्तिगत स्वाधीनता का विरोध करते हैं और एक पत्नीव्रत पर ही जोर देते हैं:—

“यह गलत है कि विवाह करने वा स्वार्थमय ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का हमें पूरा अधिकार है। और इससे भी कम अधिकार विवाहित स्त्री पुरुष को, परस्पर राजीनामे से विवाह संयोग तोड़ने का है। उनकी स्वतंत्रता एक दूसरे को चुन लेने भर में होती है। और वे चुनते हैं यह ठीक २ समझ कर कि एक दूसरे के साथ विवाह के कर्तव्यों का वे ठीक २ पालन कर सकेंगे। फिर एक बार जब यह संस्कार हो गया, तब उसका प्रभाव इन दो मनुष्यों के बाहर समाज पर बहुत दूर तक पड़ने लगता है। भले ही आज उसे हम न समझ सकें परन्तु जो समझते हैं वे हमारे आज के सामाजिक दुःखों की जड़ को पहचानते हैं। उन्हें इससे सन्तोष नहीं होगा कि जब सभी संस्थाओं का विकास होता है तो इस विवाह संस्था में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। वे तो देखते हैं कि आज जब परस्पर के केवल राजीनामे से ही तलाक देने के अधिकार मांगे जाते हैं तो समय पाकर हमारे होनेवाले कष्टों से ही एक पत्नीव्रत की महिमा का हमें ज्ञान होगा।

“विवाह की अखण्डता का नियम अकारण शोभा के लिए ही नहीं है। व्यक्ति के और समष्टि के सामाजिक जीवन की बड़ी नाजुक बातों से इसका संबंध है। जो लोग विकासवादी हैं उन्हें सोचना चाहिए कि जाति की यह अनिश्चित उन्नति आखिर किस रास्ते से होगी? उत्तर-दायित्व के भाव की वृद्धि, व्यक्ति का स्वेच्छा से लिया हुआ संयम, सन्तोष और उदारता की वृद्धि, स्वार्थ का नियमन, क्षणिक क्षोभों के विरुद्ध भावुकता का जीवन-मनुष्य के आन्तरिक जीवन की इन बातों को हम भूल नहीं सकते। सभी प्रकार की आर्थिक वा सामाजिक उन्नति में इनका खयाल रखना ही होगा नहीं तो उन उन्नतियों का कोई मूल्य नहीं गिना जा सकता। इस लिए सामाजिक और नैतिक दोनों दृष्टियों से यदि हम भिन्न २ प्रकार के काम-संबंध पर दृष्टि डालते हैं तो हमें इस बात का विचार करना ही पड़ेगा कि हमारे सारे सामाजिक जीवन की शक्ति को बढाने के लिए कौन सी संस्था सब से अच्छी है वा दूसरे शब्दों में मनुष्य के आन्तरिक जीवन के—स्वार्थ-त्याग और बलिदान की वृद्धि तथा चञ्चलता इत्यादि के नाश के लिए कौन सा जीवन सब से अच्छा होगा। इन प्रश्नों पर विचार करने पर कहना ही पड़ेगा कि इसके सामाजिक और शिक्षा संबंधी महत्व के कारण एक पत्नीव्रत से अच्छा जीवन दूसरा नहीं है। पारिवारिक जीवन में ही इन सब मनुष्योचित गुणों का विकास होता है और अपनी अखण्डता के कारण दिन पर दिन इस संबंध की गंभीरता भी बढती ही जाती है। यों भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नीव्रत ही है।”

इसके बाद लेखक औगस्ट कौम्टे के विचार लिखते हैं कि हमारे ऊपर समाज का नियंत्रण परमावश्यक है नहीं तो धीरे २ हमारा जीवन किसी काम का नहीं रह जायगा। कामवासना की वृत्ति ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।

बाष्पटर दूले लिखते हैं कि “विवाहित जीवन के सुखों में इस भूल से बहुत बाधा पडती है कि कामप्रवृत्ति की पूर्ति परमावश्यक है। ठीक इसके उलटे मनुष्य की प्रकृति ही है इन प्रवृत्तियों का दमन करना। छोटा बच्चा अपनी शारीरिक प्रवृत्तियों का दमन करना सीखता है तो बड़े लोगों को मन की प्रवृत्तियों के दमन का अभ्यास करना पडता है। हम लोग जो प्रायः स्वभाव वा प्रवृत्ति के नाम से पुकारते हैं, वह हमारी कमजोरी है। जिस में वह शक्ति है, वह पुरुष उचित अवसर पर उस शक्ति का प्रयोग कर सकता है।”

(जं० दं०)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

पुष्पार, श्रावण सुदि ११, संवत् १९८३

## राष्ट्रीय पाठशालायें

एक अनुभवो देश सेवक लिखते हैं:—

“जहां सब आदर्श और भावना नष्ट हो गयी हो, राष्ट्रीय पाठशाला केवल नाम भर रह गया हो, राष्ट्रीय शिक्षा संबंधी महासभा की एक भी शर्त का पालन न होता हो, उस पाठशाला को या तो बदल जाना चाहिए, या बंद हो जाना चाहिए। परन्तु जहां के शिक्षक प्रयत्नवान् हो, विद्यार्थी भी कम या अधिक अनुकूल हों, केवल उनके माता पिताओं का ही कुछ विरोध हो, किसी का खादी के संबंध में, किसी का अस्पृश्यता संबंधी या किसी का व्यायाम संबंधी तो किसी का संगीत संबंधी — और उस वजह से पाठशाला में एक भी राष्ट्रीय भाव का हम प्रवेश न करा सकें, तो भी राष्ट्रीय भावना के लिये और भविष्य में जब असहयोग फिर उरुज पर आवे तब उस पाठशाला का कुछ उपयोग हो सके इस ख्याल से यदि हम उस पाठशाला को चलाते रहें तो क्या ठीक न होगा? हमारी तरफ लोगों का कुछ ऐसा विश्वास है कि यदि किसी को सांप ने काटा हो और ऐसा मादूम होता हो कि आदमी मर गया, तौमी तीन दिनों तक लाश को जलाते नहीं हैं, बल्कि रखे रहते हैं। चूनाचि यदि कहीं कोई उस्ताद आ गया तो वह शायद सांप का जहर उतार सके और आदमी फिर से जी उठे। लेकिन यदि शरीर ही जला दिया तो फिर उस्ताद आ कर ही क्या करेगा?”

ऊपर की दलील का विचार करने के पहले सांप के काटने की उपमा पर विचार करना आवश्यक है। मुकाबिला दे कर बहस करना हमेशा खतरनाक होता है, क्योंकि दो वस्तुओं में पूरी समानता शायद ही कहीं होती है। यदि मुकाबिले के आवश्यक अंगों में कुछ कमी रह जाती है तो मुकाबिला व्यर्थ हो जाता है, और इस सादृश्य के ऊपर जो मनुष्य निर्भर रहता है उसे धोखा खाना पड़ता है। सर्वदृश के उदाहरण में फिर से जीव के आ जाने की आशा रखी जाती है, जीव गया ही है ऐसा किसी वैद्य का निश्चित अभिप्राय नहीं होता है। और शरीर को जलाने के बाद जहर उतारने का कोई सवाल ही नहीं रह जाता है। इसलिए कई बार शरीर को दो चार दिन रखना ठीक समझा जाता है, क्योंकि जलाया हुआ शरीर तो हम पुनः सजीवन कर ही नहीं सकते। अब इसरी ओर देखिये। नामधारी राष्ट्रीय पाठशालाओं में जिनके संबंध में मैंने कहा है कि या तो उनका सुधार करना चाहिए वा उन्हें बंद ही कर देना चाहिए, ऊपर की बतलायी हुई तीनों में से एक भी स्थिति मौजूद नहीं है। इसलिए ऐसी पाठशाला में कोई राष्ट्रीयता ला भी नहीं सकता। जिसको वैद्य ने ही देख माल कर मृत्यु का प्रमाणपत्र दे दिया हो, और जो मनुष्य की कृति होने के कारण फिर से उत्पन्न की जा सकती हो, ऐसी शाला का तो मैं नाश ही इष्ट समझता हूं। ऐसी शाला को कायम रखने से हम में असत्य बढ़ता है, राष्ट्रीय शिक्षा के नाम पर जमा किये हुए धन का, इस शाला के लिए व्यय करना, राष्ट्रीय शालाओं के लिए दान देनेवालों के साथ द्रोह है, और इन नाम मात्र की राष्ट्रीय पाठशालाओं के बदनाम होने से शुद्ध राष्ट्रीय

शाला का भी बदनाम होता है, रुपया इकट्ठा करनेवालों की भी साख चली जाती है और राष्ट्रीय पाठशालाओं के लिए धन मिलना बंद हो जाता है। इन सब अनिष्ट परिणामों को आने देने के बदले शुद्ध राष्ट्रीय शाला को, फिर वह चाहे कितनी ही छोटी हो, निभाने और उस पर पूरे तौर पर ध्यान देने में ही—सत्य, शोभा और व्यावहारिकता है। किसी तरह से बालू से साट सूट कर बनायी हुई ईंट से कुछ काम नहीं बन सकता। और ज्यों ज्यों ऐसी ईंटें बढ़ती जाती हैं त्यों त्यों नुकसान ही होता है। फज्र बोझा बढ़ता जाता है और इस प्रकार केवल नाम मात्र की राष्ट्रीय पाठशालाओं की संख्या केवल बोझा बन जाती है और नुकसान करती है। अहसयोग की लहर आने पर यदि एक भी शुद्ध राष्ट्रीय पाठशाला होगी तो उस एक में से अनेक उत्पन्न करना आसान है, परन्तु नाम मात्र की अनेक राष्ट्रीय पाठशालाओं से कुछ अच्छे परिणाम की आशा करना आकाश-कुसुम के समान है। बल्कि ऐसे मौके पर तो ऐसी शालाओं का प्रथम नाश ही करना आवश्यक हो जायगा।

इससे जहां मा-बाप प्रतिकूल हों या शिक्षक ही प्रतिकूल हों, वहां तो राष्ट्रीय शाला बंद ही हो जानी चाहिए। जहां मा-बाप राष्ट्रीय भावनावाले हों, और शाला के लिए धन दे दे कर अपनी भावना को सिद्ध करते हों, जहां के शिक्षकवर्ग राष्ट्रीय भावना से भरपूर हो कर खूब प्रयत्न करते हों, वहां विद्यार्थियों के सिधिल होने से हमें कुछ छोड़ना पड़े यह बात मैं समझ सकता हूं। वहां हम अपनी पाठशाला को अवश्य चलावें। किसी दिन विद्यार्थियों के ऊपर भी असर पड़ेगा ऐसी आशा हम रख सकते हैं। परन्तु ऐसी राष्ट्रीय पाठशाला तो इस समय मेरे देखने में कहीं नहीं आती है।

मेरा तो ऐसा अनुभव है कि जहां कहीं राष्ट्रीय तत्त्व के पालन का अभाव नजर आता है वहां शिक्षक का दोष होता है। ऊपर के पत्र में जो नमूना दिखाया गया है वह ऐसी पाठशाला का है जिस के शिक्षक उस्तादी, विद्यार्थी उदासीन और उनके अभिभावक प्रतिकूल हैं। जहां के लोग अपने लडकों को कातना सिखलाना न चाहें, खादी पहनाने का विरोध करें, यदि अछूत लडके भरती किये जायें तो अपने लडकों को हटा लेने की धमकी दें, वहां शिक्षकों को अपना काम करते जाने में केवल अपना स्वामिमान और प्रजा के समय की हानि करते हुए के सिवाय में और कुछ नहीं देख सकता हूं। और जो हम माबाप की इच्छा के विरुद्ध पाठशाला चलाये जायें, तो जो दोष हम पादरियों को देते आये हैं, वही दोष हमें भी लगता है। माबाप की मरजी के विरुद्ध बालकों को शिक्षा देने और कुटुम्ब में खटपट पैदा करने का हमें कुछ अधिकार नहीं है। जिसकी उमर सोलह वर्ष से अधिक की है, जो अपना हित-अहित समझ सकता है, जिसमें दुख सहने की शक्ति आ गयी है, वैसे विद्यार्थी को हमारे रक्षण की जरूरत नहीं है। वह स्वावलम्बी हो गया है। इनके लिए जहां सचमुच जरूरत हो, आप अवश्य पाठशाला खोलिये और चलाइये, परन्तु ऐसे विद्यार्थी सारे हिन्दुस्तान में हैं ही कहां? हैं तो कितने हैं? और ऐसी पाठशाला ही कहीं है जिसके विद्यार्थियों का मुकाबला हम विवेकपूर्ण, मर्यादाशील परन्तु सहनशील, निर्भय और भक्त प्रवृत्ति के साथ कर सकें? ऐसे विद्यार्थी जिस दिन बहुत संख्या में पैदा हो जावेंगे, उस दिन हिन्दुस्तान में नयी चेतना आ जायगी, और फिर यह सवाल पूछने को नहीं रहेगा कि स्वराज कहां है।



ऐसे विद्यार्थी उत्पन्न करने के लिए, यदि थोड़े ही विद्यार्थी हों तो वही सही परन्तु शुद्ध राष्ट्रीय पाठशाला को ही उत्तेजन देना उचित है। जहाँ, अपने लड़कों को भेजने में माया मानों मिहरबानी करते हों ऐसा वे दिखलावें, विद्यार्थी कहते हों, और यह धमकी देते हों कि तुम सहायता न दोगे तो हम इसे सरकार के साथ मिला लेंगे, वहाँ उसे आप राष्ट्रीय पाठशाला न समझें। और यदि नाम-मात्र को ही पाठशाला चलती हो तो उसे बन्द कर दीजिये। असहयोग का धर्म समझा दिया गया है। उसकी कीमत भी जानी हुई है। उसके खतरों से भी प्रजा अज्ञान नहीं है। इसलिए असहयोगी पाठशालाओं का मार्ग सीधा हो गया है। हम अपने मन में सुतलक न थोखा खाँ और उबार और भाटे को, बढ़ती और घटती को एक समान समझ कर अपना काम थ्रदा के साथ करते जाँय तो अन्त में श्रेय ही है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### विद्यालयों में कताई

वनारस म्युनिसिपल स्कूलों में कताई का काम किस प्रकार चल रहा है—इसका निम्नलिखित विवरण बड़ी रुचि के साथ पढा जायगा:—

विद्यालयों की संख्या	३४
शिक्षकों " "	१७५
विद्यार्थियों " "	४,०००

उक्त १७५ शिक्षकों में से सभी ने कातना और धुनना सीख लिया है।

उन विद्यार्थियों की संख्या जिन्होंने कातना और धुनना सीख लिया है—५७८ है।

प्रत्येक पाठशाला में चरखों की संख्या (औसतन)	१०
आजकल जो सूत औसतन प्रतिमास काता जाता है	३० सेर
सूतका अंक (औसतन)	१० नं.
उस सूत से बुने गये कपड़े की लम्बाई	१,००० गज
शुरू ही से सूत की कुल तैयारी	४ मन

सन् १९२४ ई० में उक्त पाठशालाओं में कताई जारी की गयी थी।

अब तो जो खर्च हुआ है वह इस प्रकार है।

कपास	७४७)
खर्च	१५००)
खर्चों की मरम्मत	५०)
फुटकर खर्च	६३) प्रतिमास
अन्य आवश्यक खर्च	४०) प्रतिमास
निरीक्षण	३९) प्रतिमास

कताई का शिक्षण शुरू करने के समय से आजतक का काता हुआ सूत बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता है। जहाँ की स्कूल के लिये १० चरखे हैं वहाँ यह आशा नहीं की जा सकती कि बहुत सा सूत उतरेगा। उसका कारण यह है कि उनकी संख्या इतनी छोटी है कि पाठशाला के सब बालक प्रतिदिन उनका उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए मैं तो म्युनिसिपैलिटी से सिफारिश करना चाहता हूँ कि वह उन स्कूलों में तकली का प्रवेश करावे। यदि ऐसा किया जायगा तो परिणाम यह होगा कि खर्च को बिना विशेष रूप से बढ़ाते हुए तिथुना सूत तैयार होने लगेगा। किसी प्रकार की मरम्मत की जरूरत न रहेगी और हर प्रकार का खर्च बच जायगा। विद्यालय के विद्यार्थियों का प्रत्येक क्षण काम में आ

जायगा और उतनी ही बढ़ती आमदनी में समझिये। वनारस म्युनिसिपैलिटी ने कताई को म्युं स्कूलों में दाखिल करने काम सब से पहले शुरू किया है।

अनुभव से यह बात सिद्ध हुई है कि जहाँ तक विद्यालयों का सम्बन्ध है तहाँ तक तकली का उपयोग परम रुचिकर है और मैं आशा करता हूँ कि यह म्युनिसिपैलिटी बिना संकोच के यह सुधार कर लेगी।

(यं० इ००)

मोहनदास करमचंद गांधी

### दलित मनुष्य जाति

मनुष्यों में केवल अस्पृश्यों ही ऐसे नहीं हैं जिन पर अत्याचार होता है। हिन्दू समाज में अल्पवयस्का विधवा पर भी कुछ कम अत्याचार नहीं होता है। बंगाल से एक सज्जन लिखते हैं:

“मुसलमानों में विधवा विवाह की कोई मनाहट नहीं है बल्कि पुरुषों की चार स्त्रियों तक से विवाह करने का अधिकार है। सब पूछो तो अधिकांश मुसलमानों को अनेक पत्नियाँ होती हैं। इस प्रकार एक भी मुसलमान पुरुष अविवाहित नहीं रह जाता है। तो यह क्या सच नहीं है कि जहाँ विधवा विवाह की कुछ रोक नहीं है, पुरुषों से स्त्रियों की संख्या वहाँ अधिक होती है? वा दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जिस समाज में विधवा विवाह प्रचलित है उसमें क्या बहुपत्नीत्व का भी अधिकार देना ही चाहिए? हिन्दुओं में विधवा-विवाह का यदि प्रचार हो जाय तो नवयुवती विधवायें क्या युवकों को लुभा कर उनसे विवाह न कर लेंगी और फिर कुमारियों के लिए वर ढूँढना कठिन क्या बरन् असम्भव ही नहीं हो जायगा? तो फिर आज जो पाप विधवायें करती हैं, वा जिनका दोष उन्हें लगाया जाता है वे ही पाप क्या वे कुमारियाँ भी नहीं करेंगी, अगर हम ने हिन्दुओं को एकाधिक विवाह करने का अधिकार नहीं दिया? मैं जान-बूझ कर प्रेम की, पुण्यमय गृहस्थ जीवन की, पतिव्रत धर्म की वा ऐसी और बातों की याद दिलाना नहीं चाहता, जिनका विचार विधवा-विवाह का समर्थन करते समय करना होगा।”

विधवाओं का विवाह रोकने के उत्साह में पत्र-लेखक ने कितनी बातों की उपेक्षा कर दी है। मुसलमानों को एकाधिक पत्नी रखने का अधिकार है सही, परन्तु अधिकांश मुसलमानों को एक ही पत्नी है। मालूम होता है कि पत्र-लेखक को शायद इसका पता नहीं है कि दुर्भाग्यवशतः हिन्दुओं में बहुपत्नीत्व की मनाहट नहीं है। ऊँची से ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं ने अनेक स्त्रियों से विवाह किया है। बहुत राजाओं ने तो न मालूम कितने विवाह किये हैं। पत्र-लेखक यह बात भी भूलते हैं कि केवल ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं में ही विधवा-विवाह मना है। सब से नीची श्रेणी के बहुसंख्यक लोगो में, विधवायें आम तौर पर पुनर्विवाह करती हैं और कभी उससे कोई बुरा परिणाम नहीं हुआ है। यद्यपि उन्हें एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने की पूरी स्वतंत्रता है परन्तु साधारणतः वे एक समय में एक ही सहचरी से सन्तुष्ट रहते हैं।

इस विचार से कि विधवायें सभी युवकों पर कब्जा कर लेंगी और कुमारियों के लिए वर नहीं मिलेंगे, पत्र लेखक में विवेक के अत्यन्त अभाव का पता लगता है। नवयुवती लड़कियों की पवित्रता के विषय में इतनी चिन्ता से लेखक के ही रोगी दिमाग का परिचय मिलता है। पुनर्विवाह करने वाली थोड़ी विधवायें, कभी भी बहुत कुमारियों को अविवाहित नहीं छोड़ देंगी। खैर, यदि कभी यह



समस्या उपस्थित भी होगी तो इसका कारण आज का बाल्यविवाह ही होगा। इसकी समुचित दवा तो बाल्यविवाह की रोक ही कही जा सकती है।

कम उमर की विधवा के विषय में प्रेम, गृहस्थ जीवन की पत्नी आदि बातों का नाम न लेना ही अच्छा होगा।

परन्तु पत्र-लेखक ने मेरा मतलब बिल्कुल ही नहीं समझा है। मैंने सभी विधवाओं के विवाह का समर्थन कभी नहीं किया है। सर गंगाराम के दृष्टे हुए अंक, जिनका इस पत्र में सारांश दिया गया था, १५ वर्ष से कम उमर की विधवाओं के हैं। ये गरीब दुखिया पतिव्रत धर्म को क्या जानें? प्रेम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। सच्ची बात तो यह कहना होगी कि उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं था। विवाह को यदि सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है, इसके द्वारा एक नये जीवन में प्रवेश कराना है तो, जिन का विवाह होता है उन लड़कियों को खूब उन्नति करने देना चाहिए। जीवन भर के लिए साथी को चुनने में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिए और वे जो काम करने जा रही हैं, उसका फलाफल भी उन्हें समझना चाहिए। ईश्वर के दरबार में और मनुष्य के सामने हम पाप करते हैं अगर हम सबों के संयोग को विवाह का नाम देते और उस नामधारी पति के मर जाने पर उस बालिका के लिए आजीवन वैधव्य का दण्ड देते हैं।

मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न है। मनुष्य जाति को, हिन्दू धर्म की वह एक भेंट है। रमाबाई राणडे, ऐसी ही भेंट थीं परन्तु बालविधवाओं का अस्तित्व हिन्दू धर्म के ऊपर एक कलंक है, जिसके लिए एक रमाबाई कुछ प्रायश्चित स्वरूप नहीं हो सकती।

(यं० इ०)

भोहनदास करमचंद गांधी

## सत्याग्रहाश्रम में कताई की परीक्षा

पाठकों को याद होगा कि कुछ दिन हुए, अ० भा० चर्खा संघ के कुछ सदस्यों के सूत की परीक्षा के फल इस पत्र में प्रकाशित हुए थे। फल का कम, सूत की अच्छाई पर निर्भर था और मजबूती और सूत की परीक्षा पर सूत की अच्छाई। उसके बाद से, सत्याग्रहाश्रम में रहनेवालों के रोज के काते हुए सूत की नियमित रूप से परीक्षा की जाती रही है और सप्ताह के अन्त में फलों का मिलान किया गया है। १० हफ्ते पहले यह परीक्षा शुरू हुई थी। कताई की उन्नति का क्रम मनोरंजक और शिक्षाप्रद है।

प्रति सप्ताह के अंक देने के पहले मैं पाठकों को परीक्षा की विधि समझा देना चाहता हूँ। मैं यह कबूल करता हूँ कि मिलों में वा इंडियन कौटन कमिटी की प्रयोगशाला में जिस रीति से परीक्षा की जाती है उस से हमारी रीति में अन्तर है। उस प्रयोगशाला में और मिलों में यह निश्चय कर लिया गया है कि विश्वप्रणीय परीक्षा के लिए कम से कम तौल का सूत लेना चाहिए। वे १२० गज की एक आंटी, जिसमें ४४ फीट के अस्सी फटे हों, लेते हैं। उसका नाम 'ली' है। खास अंक के सूत के लिए वे ऐसा कुछ मान निश्चित कर लेते हैं कि कम से कम इतना बोझ देने पर यह ली टूट जायगी। वे केवल एक धागे की अलग परीक्षा के भी यंत्र रखते हैं जिस से उस अकेले धागे की ताकत का पता चलता है। हमारी परीक्षा विधि में यह अन्तर है कि हर एक परीक्षा के समय हम सैकड़ों गज सूत

बँरपाद नहीं कर सकते इस लिए हम कम से कम भार पर ली तोड़ने की रीति से काम नहीं लेते। ६०० फेरे की (८०० गज) आंटी में से हम १००, १०० फेरे की ६ लच्छियाँ बनाते हैं और उन में से ४, ४ गज की ६ आंटियाँ जहाँ तहाँ से चुन लेते हैं। ये आंटियाँ ६, ६ तागे की होती हैं। अब इन ६ तागों की खिंचाव की ताकत का हम माप निकालते हैं। मिलों के यंत्र के माफिक ही हमारा यह यंत्र बनाया गया है। तब इन ६ परीक्षाओं की औसत निकाली जाती है। फिर हम, अलग २ अंक के सूतों की खिंचाव की ताकत का, मिलवालों का माप भी रखते हैं। उससे हम चर्खे के और मिल के सूत का मिलान करते हैं। यह कहने की कुछ जरूरत नहीं है कि जिस प्रकार हम अपने सूतों की परीक्षा करते हैं, ठीक उसी प्रकार मिल के सूतों की भी और हमारे परीक्षा फलों पर किसी को एतराज नहीं हो सकता। २० अंक के ४ गज की ऐसी लच्छो के टूटने के लिए प्रमाण माप है ८० तोला। इसको सौ सैकड़े परीक्षा कहते हैं। यह कोई बात नहीं है कि सभी मिल ऐसा ही सूत तैयार करते हैं परन्तु यह माना हुआ प्रमाण माप है। अब अहमदाबाद की तीन मिलों के २० अंक के सूत की परीक्षा का फल सुनिये। कैलिको मिल का सूत सैकड़े ९०.९, शाहपुर मिल का सैकड़े ८५.५३ और कमशियल मिल का सैकड़े ६९.२९ मजबूत उतरा। मिलों का २० अंक का सूत इसी लिए परीक्षा के लिए लिया गया था कि आश्रम में भी ज्यादातर २० अंक का ही सूत तैयार होता है।

अब हमारे अपने सूतों की भी हालत सुनिये। पहले सप्ताह में १०० से भी अधिक नमूनों की जांच हुई और हमने देखा कि केवल ३ आदमियों के सूत सैकड़े ७० से अधिक, १२ के सैकड़े ६० से और १९ के सैकड़े ५० से ऊपर मजबूत निकले। सैकड़े ५० से भी जो कम बोझ संभाल सकते थे, वैसे सूत बुनने के नाकाबिल समझ कर छांट दिये गये। इसका अर्थ यह है कि पहले सप्ताह में पता लगा कि किसी का भी सूत प्रमाण माप तक नहीं पहुँचा और उनमें से सैकड़े ६० से भी अधिक का सूत काम चलाने लायक भी नहीं निकला। मैं यह कहना तो भूल ही गया था कि हमने केवल सूत की ताकत की ही जांच नहीं की परन्तु उसकी समानता की भी जांच की। ऊपर कहे हुए तीनों मिलों का सूत सैकड़े ९० समान पाया गया।

तीसरे सप्ताह का यह परीक्षा फल है:—

सैकड़े ७० से अधिक मजबूती और सैकड़े ९०	समानता	२
„ ६०	„	७५
„ ५०	„	७५
		२९

सब कातनेवाले ८५ ४०

चौथा सप्ताह

सैकड़े ८० से अधिक मजबूती, सैकड़े ९७	समानता	१
„ ७०	„	८२
„ ६०	„	८५
„ ५०	„	८५
		३८

सब कातनेवाले १०४, ६४

सातवां सप्ताह

सैकड़े १०० से अधिक मजबूती, सैकड़े ९६	समानता	१
„ ९०	„	९१
„ ८०	„	८०
		१२



१९ अगस्त, १९२६

हिन्दी-नवजीवन

"	७०	"	"	८०	"	२२
"	६०	"	"	८५	"	२८
"	५०	"	"	८०	"	२०
सब कातने वाले ९९						८५

## नवां सप्ताह

सैकड़े ११० से अधिक मजबूती, सैकड़े ७०	समानता	१
" १०० " " ८९	"	१
" ९० " " ८५	"	४
" ८० " " "	"	१७
" ७० " " "	"	२९
" ६० " " "	"	३०
" ५० " " "	"	२२
सब कातने वाले १११		१०४

## दसवां सप्ताह

सैकड़े १०० से अधिक मजबूती, सैकड़े ८५	समानता	४
" ९० " " ८५	"	६
" ८० " " ९०	"	२२
" ७० " " ८५	"	२५
" ६० " " ८०	"	१०
" ५० " " ७५	"	५
सब कातने वाले ७३		७२

दसवें सप्ताह के अन्त में केवल एक आदमी का सूत कम से कम जांच पर भी नहीं उतरा। उस सप्ताह में कम सूतों की जांच हुई। जिन का साधारण दर्जे से बहुत अच्छे सूत होने लगा था, उन्हें छोड़ दिया गया।

इन फलों से बहुत ही अच्छी उन्नति का पता चलता है। दस सप्ताह के अन्त में हम देखते हैं कि ४ कातनेवाले तो मिल के अच्छे सूत से भी अच्छा कातते हैं और ६ मिल के अच्छे सूत के ऐसे अच्छे, और मिल की औसत जांच में उतरने लायक सूत तो किन्ने आदमी कातते हैं। सूत के और अधिक बराबर होने में अभी बहुत कुछ बाकी है। यह काम कई महीनों तक निरंतर और ध्यानपूर्वक अभ्यास करने से ही हो सकता है।

कताई के हर केन्द्र में यदि सूत की जांच हुआ करे और कम से कम इतना अच्छा तो सूत होना ही चाहिए इस पर जोर दिया जाय तो हम बहुत शीघ्र ही पहले से अच्छी खादी बनती देखेंगे। चर्खासिंध के सदस्यों को वा हमारे स्वेच्छा से कातनेवालों को ठीक तरह से लच्छी लगा कर के चर्खासिंध के पास अपना सूत भेज कर उसकी जांच करानी और फिर उसमें क्या दोष है और कहाँ सुधार की जरूरत है, इसकी जांच करानी चाहिए। यदि स्वेच्छा से कातनेवाले अच्छा सूत तैयार करें तो उसका प्रभाव, सूत कात कर बेचनेवालों पर अवश्य ही पड़ेगा। अभी आजकल अखिल भारतवर्षीय चर्खासिंध अपने पास आनेवाले सूत में से कुछ चुने हुए नमूनों की जांच करता है और कातनेवालों को उनके सूत के गुणदोष के विषय में सविस्तर सलाह लिख भेजता है। चर्खासिंध के प्रयोग विभाग में इस परीक्षा के यंत्र मिल सकते हैं और बड़े २ खादी डिपो को अभी तक एक दर्जन से अधिक यंत्र दिये भी जा चुके हैं।

(यं० इ०)

म० दे०

## 'ऋद्धिसिद्धि की जननी' गायमाता

(३)

धात्र्यः सर्वस्य लोकस्य गावो मातेव सर्वथा।

काशीखण्डे।

[मि. हेन अब गाय के चारे के बारे में विचार करते हैं। वा० गो० देशाई]

पहलेपहल गाभिन होनेवाली गाय का प्रथम प्रसव

गाय के व्याने के दो तीन महीने पहले से उसे राह पर लाना शुरू कर देना चाहिए। अगर उसने बन्धे में आना और दूसरी गायों के साथ खड़ा रहना सीखा होगा तो उसके व्या जाने पर उससे आसानी से काम लिया जा सकेगा।

व्यानेवाली गाय के थनों के ऊपर हाथ फेरने से गाय को व्याने के बाद दूध दुहना नया नया नहीं लगता है।

उसके गाभिन होने का दिन नोट कर रखना चाहिए ताकि यह मालूम हो सके कि बच्चा कब पैदा होगा। याददास्त के ऊपर भरोसा न रखना चाहिए।

तंदुरुस्त गाय गाभिन होने के २८० या २९० दिनों बाद व्याती है।

ऐसी गाय के लिए अच्छी घासवाली जमीन या बाड़े का थोड़ा सा हिस्सा तैयार रखना चाहिए।

पहलेपहल व्यायी हुई गाय को दुहते समय और उससे काम लेते वक्त बहुत शान्ति और धीरज रखना चाहिए। व्याने के बाद पहले अठवारे में उसे अच्छी तरह रखने से वह नम्र, और खुश-मिजाज निकलती है और अगर उसे दुःख पहुंचाया जायगा तो उसमें कुटेव पड़ जायगी जो कि मरणपर्यंत न छूटेगी।

## गाय के साथ न्याय वर्तों

गाय को अच्छा और काफी चारा देना चाहिए और उसकी खूब सेवा करनी चाहिए।

व्याने के दो तीन माह पहले गाय का दूध बंद हो जाता है। उसके दूध छुड़ाने के वक्त उसे पूरा पूरा दुह लेना चाहिए। अगर उसके थनों में दूध आता ही रहे तो उसे पहले एक बेला फिर एक दिन और फिर दो दिनों तक दुहना बन्द रखे — लेकिन जब दुहे तब पूरा २ दुहे।

जब तक थनों में से खाली पानी न निकलने लगे तब तक यह कम जारी रखना चाहिए। जब वह इस प्रकार पूरी तौर पर बिमुक्त जायगी तब उसे खुबार न आवेगा। अगर गाय बिमुक्त ही नहीं तो ठीक उसके व्याने के समय तक उसे दुहते रहना चाहिए।

गाय जब दुबारा गाभिन हो तब उसे व्याने के डेढ़ माह से अधिक पहले बिमुक्त देना न चाहिए। अगर पहली बार जल्दी बिमुक्त दी जावेगी तो फिर बाद भी वह और भी जल्दी २ बिमुक्त दी जावेगी और इस प्रकार दूध की उपज कम होती जावेगी।

गाय को व्याने के दिनों में तंदुरुस्त हालत में होना चाहिए। व्याने के समय गाय का हृष्टपुष्ट होना ही ठीक है। व्याने के बाद स्वस्थ गाय अपनी चरबा के कारण दूध और मखन की भरमार कर देगी।

व्याने के बाद थोड़े दिनों तक कम कम चारा देना चाहिए। गेहूं के आटे की चपरी, दले हुए जौ और थोड़ी बहुत खली देना चाहिए।

हाल की व्याई गाय को गुनगुना पानी देना चाहिए।



चौबीस घंटे के अन्दर अगर अँवाल न पड़े तो गाय को किसी पशुवेद्य को दिखाना चाहिए।

गाय से बछड़े को अलग कर देने के बाद उसे तुरन्त कुछ दिनों के लिए एक बड़े घासवाले आंगन में अकेली रखना चाहिए।

### गाय का चारा

किसी दूसरे के पास से मोल लेने की बनिस्वत खुद ही शुरू से चारा उगावे तो सस्ता पड़ता है।

ऐसा चारा न खरीदना चाहिए कि जिसकी खरीद में दूध मक्खन की बिक्री का सब पैसा खप जाय। अपने बाड़े में उगी हुई घास को ही बर्तना चाहिए।

गर्मी के दिनों में गायको गोचर में चराना चाहिए। गोचर को अच्छा बनाना चाहिए।

जाड़ों में साइलेज\* सूखी घास देना चाहिए। इन दोनों चीजों के बिना गाय ठीक तरह से पाली नहीं जा सकती।

बाजार से चारा लेने में जो पैसे बाले जायें उनमें से कुछ अगर खेत या गोचर को सुधारने में लगाये जायें तो उसके किए अच्छा चारा पैदा हो सकता है। इस से फायदा यह होगा कि बाजार का चारा न लेना पड़ेगा।

खुद की उगायी हुई घास का बेच देना और बाजार से चारा मोल ला कर गाय को खिलाना शायद ठीक कहा जा सकता है लेकिन लगभग सभी चारा बाजार से मोल लेनेवाला मुनाफे में नहीं रहता।

### गाय को क्या खिलायें

गाय को चारा कितना दिया जावे इसका निर्णय ग्वाले ही को करना चाहिए। प्रथम तो उगाया हुआ चारा काम में लाना चाहिए और जितना कम हो उतना बाजार से लाना चाहिए। और उसे भी सस्ते से सस्ते मोल का लेना चाहिए। वसंत ऋतु या गर्मी के दिनों में और शरद ऋतु के शुरू में गोचर में ही उत्पन्न चारे के समान कोई भी चारा नहीं होता। अनेक गोचरों में जितनी घास उगनी चाहिए उसकी आधी भी नहीं उपजती। खाद दे कर और नया बीज बो कर गोचर को सुधारना चाहिए।

नये गोचर में गाय को चराने और चारा बाजार से लेने की बनिस्वत तो गोचर को ही सुधारने में थोड़े दाम खर्च कर देना ज्यादा ठीक होगा।

देश में अनेक स्थानों पर किसान अगर खेती में कम जमीन लगा कर अधिक भाग गोचर के लिए रक्खें तो उन्हें लाभ होगा। अगर वह ६० एकड़ की जमीन ले कर उसकी ठीक देखभाल न रक्खें तो उसमें ३० ही एकड़ भूमि के बराबर फसल पैदा होगी। इसलिए बाकी बची हुई जमीन में घास उगाया जाय तो चरने में सुविधा होती है और उसको भी लाभ पहुँचता है।

### चर आने के बाद चारा

अगर गोचर अच्छा होगा तो उसमें से जितना चारा चाहिए उतना मिल जायगा।

चारे के साथ अगर अनाज दिया है तो करीब २ अनाज की कीमत के बराबर का दूध बढ़ जायगा। परन्तु बहुत से ग्वाले रोज डेढ़ से पाँच सेर तक नाज चारे के अलावा देते हैं। इस प्रकार ढेर खूब पुष्ट रहते हैं और वर्षा ऋतु समाप्त हो जाने बाद कुछ अधिक दूध देते हैं।

\* साइलेज उस चारे को कहते हैं जो कि जमीन के नीचे किसान लोग गाड़ कर रख छोड़ते हैं।

### गर्मी के दिनों में

मूखे प्रदेश में अथवा उस मुल्क में जहाँ गोचर जल्द सूख जाते हैं वहाँ साइलो\* बड़े काम की चीज है। इसी तरह जाड़े में भी। जैसे गाय के बिना गोकुल नहीं हो सकता वैसे ही साइलो बिना गोशाला नहीं बन सकती।

कई एक ग्वाले गर्मियों में मटर, ज्वार, बाजरा या ऐसी अन्य कई वस्तु गाय के चारे के लिए उगाते हैं, परन्तु यह तो मेहनत का काम है। गर्मी के दिनों में चारा साइलेज के रूप में दिया जाय तो अधिक सस्ता पड़ेगा।

### जाड़े का चारा

जाड़े में साइलेज और सूखी घास देना चाहिए। मकई की अच्छी साइलेज और घास मिलाने से गाय का सम्पूर्ण भोजन बन जाता है।

मकई न उगे तो बाजरा देना चाहिए।

### चारा एक ही भिकदार में देना चाहिए

गाय को दिन में १५ से २५ सेर तक साइलेज और अगर इसके अतिरिक्त और खा सके तो जाड़े में और भी अधिक देना चाहिए।

घास और साइलेज जितनी चाहिए उतनी अच्छी न हो तो प्रतिदिन डेढ़ सेर दूध पीछे या अठ्ठाईया में आध सेर मक्खन पीछे प्रतिदिन आध सेर नाज देना चाहिए। अगर घास या साइलेज पूरे भाग में दिया जायगा तो नाज कम दिया जा सकता है।

साइलेज के साथ मकई का सत्तू, खली या बिनौला मिला कर अगर दिया जाय तो काफी है। मकई के बदले जौ या ओट भी दिया जा सकता है।

घास अगर अच्छी हो तो खली या बिनौला कुछ कम देना चाहिए। घटिया हो तो अधिक।

साइलेज में अगर नाज न हो तो मकई या जौ का सत्तू अधिक देना चाहिए।

खली खा कर जितना दूध गाय दे सकती है उतना देती है या नहीं और उसी के अनुसार उसे खली मिलती है या नहीं यह बात अगर जाननी हो तो खली या चारे को बढ़ाना और दूध तौलते जाना चाहिए। यह देखना चाहिए कि खली बढ़ाने से दूध अधिक देती है या नहीं और दूध बढ़ने पर खली बराबर दी जाती है या नहीं।

नमक उसके पास ऐसे स्थान पर रखना चाहिए कि जिस वक्त गाय का मन हो उस वक्त उसे चाट सके। चारे के साथ बहुत नमक न देना चाहिए। अगर गाय अलग से नमक ले सके तो अधिक उत्तम है।

गाय का चारा खुद ही तैयार करना चाहिए। जब हम उसका चारा घर में तैयार कर सकें तब बाजार से ला कर देना मूर्खता है।

(नवजीवन)

वालजी गोविन्दजी देशाई

\* साइले = साइलेज की खली।

### आश्रम भजनावलि

पाँचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्डर मिलते हैं, दर्ज कर लिए जाते हैं। आर्डर भेजनेवालों को, जब तक छठी आवृत्ति प्रकाशित न हो तब तक, धैर्य रखना होगा। छठी आवृत्ति तैयार हो रही है।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



# आंख खोलने वाले अंक

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का " २)  
एक प्रति का " १)

## हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक २

मुद्रक—प्रकाशक

अहमदाबाद, भाद्रपद वदि ४, संवत् १९८३

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

स्वामी आनंद

गुरुवार, २६ अगस्त, १९२६ ई०

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

### बालविवाह का शाप

मिसेज माररीरेट ई० कजिन्स ने मेरे पास एक दुर्घटना का समाचार भेजा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह दुर्घटना अभी हाल में बाल-विवाह के कारण मद्रास में हुई है। इस विवाह में 'वर' २६ वर्ष का तथा कन्या १३ वर्ष की थी। ये पति-पत्नी मुश्किल से १३ दिन ही साथ रह पाये होंगे कि लड़की जल कर मर गई। ज्यूरी ने यह फैसला दिया है कि पति कहलाने वाले उस पुरुष के असहनीय और निर्दय बलात्कार के कारण उसने आत्म-हत्या की थी। लड़की के मरने के समय दिये हुये बयान से मालूम होता है कि उस "पति" ने ही उसके कपड़ों में आग लगाई थी। कामातुर लोगों को विवेक और दया नहीं होती।

परन्तु हमें यहाँ इस बात से सरोकार नहीं कि वह कैसे मरी। किन्तु इन बातों से तो कोई इंकार नहीं कर सकता है कि

(१) उसका विवाह १३ वर्ष की आयु में किया गया था।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं, क्योंकि उसने पति की कामचेष्टा का विरोध किया था।

(३) उस पति ने उसके साथ जबरदस्ती ज़रूर की।

और (४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं है।

किसी पाशविक प्रथा की, धर्म से पुष्टि करना धर्म नहीं, अधर्म है। स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य अरे पड़े हैं। इन विरोधों से तो इत्मीनान के काबिल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को, जो प्रचलित और सर्वमान्य नीति के और खामस कर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत हैं, शेषक समझ कर छोड़ देना चाहिए। एक ही पुरुष, एक ही समय में आत्म-संयम का उपदेश देनेवाला और पशु-वृत्ति को उत्तेजित करनेवाला वाक्य नहीं लिख सकता। जिसे आत्म-संयम से कुछ भी सरोकार न हो और पाप में डूबा पड़ा हो, वही यह कह सकता है कि कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व ही उसका

विवाह न करने में पाप लगता है। मानना तो यह चाहिए कि रजस्वला होने के बाद भी कई सालों तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का ह्याल भी नहीं किया जा सकता। रजस्वला होने के साथ ही लड़की सन्तति उत्पन्न करने के योग्य इसीमांति नहीं हो जाती जैसे कि मुर्छों के भभराते ही कोई लड़का सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं हो जाता है।

बाल-विवाद की यह प्रथा, नैतिक और शारीरिक, दोनों ही प्रकार से हानिकारक है। यह हमारी नीति की जड़ काटती है और हम में शारीरिक निर्बलता लाती है। ऐसी प्रथाओं को रहने दे कर हम स्वराज और ईश्वर से दूर जाते हैं। जिस आदमी को नाजुक उमर की लड़की के बारे में कुछ चिंता नहीं है, उसे ईश्वर की भी कोई पर्वाह न होगी। अधिकचरे पुरुषों में न तो स्वराज के लिए लड़ने की और न उसे पाने पर कायम रखने की ही ताकत होती है। स्वराज की लड़ाई का अर्थ केवल राजनीति न जागृति ही नहीं है, बल्कि सभी प्रकार की — सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति। सहवास की स्वीकृति देने की उमर को कानून से बढाने की कोशिश की जा रही है। कुछ अल्पसंख्यक लोगों के होश दुरुस्त करने के लिए यह ठीक हो सकता है। परन्तु कानून से कोई ऐसी सामाजिक कुप्रथा रोकी नहीं जा सकती है। इसे रोकने वाला तो केवल जाग्रत लोकमत ही है। ऐसे विषयों में कानून बनाने का मैं विरोध नहीं करता, परन्तु कानून से अधिक जोर मैं लोकमत तैयार करने पर अवश्य देता हूँ। मद्रास की ऐसी दुर्घटना होना असम्भव होजाता, यदि वहाँ बाल-विवाह के विरुद्ध लोकमत जीता जागता होता। मद्रास के इस मामले में वह युवक कोई अनपढ़ सज्जन नहीं है, वरन् पढ़ा लिखा बुद्धिमान टाइपिस्ट है। यदि लोकमत, नाजुक उमर की लड़कियों के विवाह या पति-सहवास का विरोधी होता तो उसके लिए उस लड़की से विवाह करना वा सहवास करना असम्भव हो जाता। साधारणतः १० वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह कभी होना ही नहीं चाहिए।

( य० इ० )

मोहनदास करमचन्द गांधी



## अनीति की राह पर

(८)

अच्छा, इस लेख-माला को अब समाप्त करना चाहिये । व्यूरो ने माल्थस के सिद्धान्तों की जिस प्रकार समीक्षा की है वह सब जानना हमारे लिए आवश्यक नहीं है ।

“चूँकि इस समय मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ रही है, इसलिए यदि यह अभीष्ट है कि समस्त मनुष्य-जाति समूल नष्ट न हो जाय तो संतति-निरोध आवश्यक है,”—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर के माल्थस ने अपने जमाने के लोगों को चकित कर दिया था । खैर, माल्थस ने तो इन्द्रिय-संयम ही सिखलाया था पर आजकल का नया माल्थसी सिद्धान्त तो संयम की शिक्षा न दे कर पशुवृत्ति की वृत्ति के दुष्परिणामों से बचने के लिये यंत्रों और ओपधियों का व्यवहार सिखलाता है । नैतिक रीति से—अर्थात् इन्द्रिय संयम के द्वारा—संतति-निरोध का समर्थन मो० व्यूरो बहुत खुशी से करते हैं, परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं, वह दवाओं या यंत्रों की सहायता से संतति-निरोध का निषेध एवं घोर विरोध करते हैं । इसके बाद लेखक ने श्रमजीवियों की दशा तथा उनकी जन्म-संख्या की जांच की है । और अन्त में, व्यक्तिगत स्वाधीनता के और मनुष्यता के भी नाम पर फैली हुई अनीतियों को रोकने के उपायों पर विचार करते हुए पुस्तक समाप्त की है । लोकमत का नेतृत्व और नियमन करने के लिए वे संगठित रूप से काम करने की सलाह देते हैं और इस विषय में कायदे कानून की सहायता का भी वे समर्थन करते हैं । परन्तु वे धार्मिक वृत्ति की जागृति पर ही अन्तिम भरोसा रखते हैं । एक तो यों ही अनीति को मामूली उपायों से नहीं रोका जा सकता है, परन्तु तब तो बिल्कुल ही न रोका जा सकेगा जब कि अनीति को ही धर्मनीति का पद दिया जाने लगे और नीति को दुर्बलता, अंध-विश्वास वा अनीति कहा जाय । उदाहरणार्थ संतति-निरोध के बहुत से समर्थक ब्रह्मचर्य को अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी बतलाते हैं । ऐसी रक्षा में निरंकुश पापाचार को रोकने में केवल एक धर्म की ही सहायता कारगर होगी । यहाँ धर्म का संकीर्ण अर्थ न लेना चाहिए । व्यक्ति हो अथवा समाज—उस पर सच्चे धर्म का जितना गहरा प्रभाव पड़ता है, उतना किसी दूसरी वस्तु का नहीं । धार्मिक जागृति का अर्थ क्रान्ति, परिवर्तन अथवा पुनर्जन्म है । व्यूरो की सम्मति में फ्रांस जिस पथ पर चला जा रहा है, उस नीति के प्रलय से उसे कोई ऐसी ही महाशक्ति बचा सकती है — दूसरी चीज नहीं ।

×                      ×                      ×

अच्छा, अब हम लेखक तथा उनकी पुस्तक को यहीं छोड़ दें । फ्रांस और हिन्दुस्तान की हालत एक ही सी नहीं है । हमारी समस्या कुछ और ही है । गर्भनिरोधक साधनों का यहाँ घर घर प्रचार नहीं है । शिक्षित लोगों में भी इन वस्तुओं का व्यवहार शायद ही होता हो । मेरी समझ में उनका प्रचार हिन्दु-स्तान में करने का एक भी उचित कारण नहीं है । मध्यम श्रेणी वालों को क्या बहुसंख्यता की भी कोई शिकायत है ? कुछ शक्तियों के उदाहरण दिखला देने से ही यह सिद्ध न होगा कि मध्यम श्रेणी वालों में जन्म-संख्या अधिक है । जहाँ तक मैंने देखा है तहाँ तक विधवाओं और बाल पत्नियों के लिए ही यहाँ इन वस्तुओं के उपयोग का समर्थन किया जाता है । इसलिए एक ओर तो हम नाजायज औलाद की पैदाइश से बचना चाहते

हैं—परन्तु गुप्त व्यभिचार से नहीं—दूसरी ओर हमें नाजुक बालिका के गर्भवती हो जाने का डर है, न कि उसके साथ बलात्कार किये जाने का ।

अब रहें वे रोगग्रस्त निर्बल और निर्वीर्य नवयुवक जो अपनी या पराधीन स्त्री के प्रति कामासक्त रहते हैं और इसे पाप मानते हुए भी इसके परिणामों से दूर भागना चाहते हैं । मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि असंख्य भारतीयों के इस महासागर में हृष्टपुष्ट और वीर्यवान् स्त्री पुरुष ऐसे विरले ही मिलेंगे जो विषयवृत्ति भी चाहें और बच्चों का बोझ उठाने से घबड़ावें भी । इसके समर्थकों को एक ऐसी बात के समर्थन का प्रयत्न न करना चाहिए जिसका प्रचार यदि सार्वजनिक हो जाय तो इस देश के युवकों का सर्वनाश निश्चित है । अत्यन्त कृत्रिम शिक्षापद्धति ने जाति के युवकों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपहरण कर लिया है । हम लोगों का जन्म प्रायः बचपन के व्याहे माता-पिता से ही हुआ है । स्वास्थ्य और सफाई के नियमों की उपेक्षा करने से हमारा शरीर धुन गया है । उत्तेजक मगालों से भरी हुई हमारी गलत और अपूर्ण खुराक ने हमारी पाचनशक्ति को नष्ट कर डाला है । हमें गर्भनिरोधक साधनों की शिक्षा और पाशविक प्रवृत्ति की वृत्ति के निमित्त सहायता की जरूरत नहीं है । परन्तु हम को कामवासना के संयम — आजीवन ब्रह्मचर्य — की शिक्षा की निरंतर आवश्यकता है । इस बात की शिक्षा हमें, उपदेश और उदाहरण दोनों के द्वारा, दी जाने की जरूरत है कि यदि हमें शरीर और दिमाग को कमजोर न रखना हो तो ब्रह्मचर्य सवंधा शक्य और परमावश्यक है । हम से पुकार पुकार कर यह कहे जाने की जरूरत है कि यदि हमारी जाति बौनों की जाति बनना नहीं चाहती तो हम को अपनी शक्ति का संचय करना होगा और अपनी पानी में बही जाती हुई बचीबचाई थोड़ी सी शक्ति को बढाना होगा । बाल विधवाओं को यह बतलाना होगा कि गुप्त रूप से पाप मत किया करो किन्तु साहस कर के बाहर आओ और खुल कर अपना वही अधिकार तुम भी मांगो जो नवयुवक विधुरों को पुनर्विवाह करने का प्राप्त है । हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है कि जिसमें बाल्य-विवाह असम्भव हो जाय । हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता हमारे शान से शुरू किये गये कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव—इत्यादि इन सब के मूल में मुख्यतः हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है । मुझे उम्मेद है कि नवयुवक इस भ्रम में न पड़ जावेंगे कि जब तक वे सन्तानोत्पत्ति से बचे रहें तब तक के भोगविलास से उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती — उस से निर्बलता नहीं आती । सब पुछो तो प्रजनन को रोकने के लिए कृत्रिम उपायों से युक्त विषयभोग उसकी जिम्मेवारी को समझ कर किये हुए संभोग की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति हर सकता है । यदि हमारा मन यह मान ले कि विषय संभोग आवश्यक, निर्दोष और पारहित है तो फिर हम उसको निरंतर वृत्त करते रहना चाहेंगे और हमारे लिए उसका दमन असंभव हो जायगा । किन्तु यदि हम अपने मन को ऐसा समझा सकें कि उसमें पड़ना हानिकारक है, पापमय एवं अनावश्यक है और उसको काबू में रखा जा सकता है, तो हमको मालूम होगा कि आत्मसंयम सर्वथा शक्य है ।

नवीन सत्य के और मनुष्यों की स्वाधीनता के मेस में उन्नत पश्चिम स्पष्टन्दता की जो मदिरा भेज रहा है, उससे हमें बचना ही होगा; परन्तु इसके विपरीत — यदि हम अपने पूर्वजों के ज्ञान को खो बैठें तो हम पश्चिम की उस शान्त और



क बालिका  
बलात्कार

नो अपनी  
गानते हुए  
कहने का  
में हृष्टपुष्ट  
वृत्ति भी  
समर्थकों  
चाहिए  
युवकों  
जाति  
रण कर  
ता-पिता  
उपेक्षा  
भरी  
क्ति को  
और  
जहरत  
म —  
। इस  
रा, दी  
कमजोर  
। हम  
हमारी  
अपनी  
ती हुई  
ओं को  
किन्तु  
धिकार  
प्राप्त  
बाल्य-  
विवरल  
ये गये  
सब  
मुझे  
तक  
उन्हें  
सब  
युक्त  
ग की  
मान  
तो  
लिए  
ग की  
ममय  
तो  
में  
हमें  
र्वजों  
और

गंभीर शक्ति को सुनें जो कभी २ वहाँ के बुद्धिमान पुरुषों के गंभीर अनुभव से हमारे पास छन छन कर आया करती है।

चार्ली एन्ड्रयूज ने मेरे पास जनन और प्रजनन पर मि० विलियम लौफ्टस हेयर का एक अच्छा सा लेख भेजा है जो कि मार्च सन् १९२६ के "ओपुनकोर्ट" नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था। यह सुतर्कवद्ध वैज्ञानिक लेख है। उसमें उन्होंने दिखलाया है कि सभी प्राणियों के शरीरों में दो क्रियाएँ बराबर चालू रहती हैं। "शरीर को बनाने के लिए आन्तरिक जनन और प्रजा-वृद्धि के लिए बाह्य प्रजनन।" इनका नाम वे क्रमशः जनन और प्रजनन रखते हैं। "जनन (आन्तरिक जनन) व्यक्ति के जीवन का आधार है और इस लिए आवश्यक तथा मुख्य काम है। प्रजनन का काम, शरीर-कोषों के आधिक्य से होता है और इसलिए वह गौण है। इसलिए जीवन का नियम यह है कि, पहले जनन के लिए शरीर-कोषों की पूरी भर्ती हो ले, तब प्रजनन हो। यदि शरीर-कोषों की कमी रही तो पहले जनन का काम होगा, प्रजनन का बन्द रहेगा। इस प्रकार हम प्रजनन की बन्दी की जड़ का पता पा जाते हैं तथा ब्रह्मचर्य और तपस्या के मूल तक पहुँच पाते हैं। आन्तरिक जनन की क्रिया के रुकने का परिणाम मृत्यु ही है और कुछ नहीं। और इस प्रकार हम मृत्यु का भी कारण जान जाते हैं।" शरीर के प्रजनन का वर्णन करते हुए वे कहते हैं — "सभ्य मनुष्यों में प्रजनन की आवश्यकता से कहीं ज्यादा वीर्य नष्ट किया जाता है और इससे आन्तरिक जनन का काम रुकता है—जिसके फल-स्वरूप रोग, मृत्यु और अन्य तरह के दुःख और क्लेश आते हैं।"

जिसे हिन्दू-दर्शन का जरा भी ज्ञान होगा उसे मि० हेयर के लेख का निम्नलिखित अवतरण समझने में कुछ भी कठिनाई न होगी:—"प्रजनन क्रिया कुछ यन्त्र के काम की सी नहीं है। प्रारम्भिक काल में कोषों के विभजन से प्रजनन का जैसा सजीव कार्य होता था, वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात् वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम विलकुल निर्जीव कल की भाँति होता है। हाँ, यह सच है कि ये मूलीभूत बातें हमारी वर्तमान जागृति से इतनी दूर जा पड़ी हैं कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के आधीन नहीं मालूम होतीं; परन्तु एक क्षण के बाद ही हमें मालूम पड़ जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीर वाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओं का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है—और उसका काम भी यही है—उसी प्रकार शरीर के क्रमशः संगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनो-वैज्ञानिकों ने उसका नाम असंकल्प रक्खा है। यह हमारे नित्य नैमित्तिक विचारों से दूर होते हुए भी, हमारा ही अंग विशेष है। यह अपने काम में इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चेतन्य कभी २ सुसावस्था में पड़ जाता है, परन्तु यह सोता एक क्षण के लिए भी नहीं। हमारे असंकल्प और अविनश्वर अंश की शरीर-मुख के लिए किये गये विषय भोग से होने वाली प्रायः अपूर्व हानि का अन्दाजा कौन लगा सकता है? प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-संभोग पुरुष के लिए प्राणघातक है और प्रभूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही।"

इस लिए लेखक का कथन है कि "बहुत संयमी या सम्पूर्ण ब्रह्मचारियों के लिए तो पुरुषत्व, सजीवता और रोगहीनता साधारण

बातें हैं।"

"प्रजनन अथवा साधारण आमोद के लिए ही, शरीर कोषों को जनन—पथ से हटाने से, शरीर की कमी पूरी होने में बाधा पहुँचती है और धीरे २ (परन्तु अन्त में अवश्य) शरीर को हानि पहुँचती है। इन्हीं कुछ शारीरिक बातों के आधार पर मनुष्य की व्यक्तिगत संभोग-नीति निर्भर है, जिससे हमें यदि उसके दमन की नहीं तो संयम की शिक्षा तो मिलती ही है—या किसी प्रकार कुछ न कुछ संयम के मूल कारण का पता तो जरूर ही चलता है।" इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है कि लेखक, दवा या यंत्रों की सहायता से गर्भनिरोध करने के विरोधी है। उनका कहना है, "इससे आत्मसंयम का कोई हेतु रद्द नहीं जाता है और विवाहित स्त्री पुरुषों के लिए जब तक बुढ़ापे की अशक्तता या इच्छा की कमी न आ जाय तब तक वीर्यनाश करते जाना संभव हो जाता है। इसके अतिरिक्त विवाहित जीवन के बाहर भी इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। इस से उच्छृङ्खल और अनुत्पादक वगमिचार का द्वार खुल जाता है। यह बात आधुनिक समाज-शास्त्र और राजनीति की दृष्टि में खतरे से भरी हुई है। परन्तु यहाँ इन पर पूरा विचार करने की जरूरत नहीं है। इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि गर्भनिरोधक साधनों से विवाह-बंधन के भीतर अथवा उसके बाहर अनुचित एवं अत्यधिक संभोग के लिए सुविधा हो जाती है और यदि उपर्युक्त शरीर-शास्त्र-सम्बन्धी मेरी दलील ठीक है तो इस से व्यक्ति और समष्टि दोनों की हानि निश्चित है।"

व्युरो जिस वाक्य से अपनी पुस्तक समाप्त करते हैं, उसे प्रत्येक हिन्दुस्तानी नवयुवक को अपने हृदयपटल पर अङ्कित कर लेना चाहिए—"भविष्य संयमी लोगों के ही हाथ है।"

( यं० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी

### म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खें

लखनऊ म्युनिसिपल बोर्ड के स्कूलों में १०८ लड़कियाँ और ४१ लड़के चर्खा चलाते हैं। लड़कियों की शालाओं में ९१ और लड़कों के स्कूलों में १५ चर्खें हैं। प्रति मास लड़कियाँ २७ तोला और लड़के ४ तोला सूत कातते हैं। म्युनिसिपैलिटी को फी चर्खा, १) रुपया महीना खर्च करना पड़ता है। शिक्षा विभाग के निरीक्षक का विचार है कि इतना काम, यद्यपि कुछ विशेष तो नहीं है, परन्तु शुरू २ के लिए काफी संतोषजनक है। इसे संतोष-जनक इसी अर्थ में कह सकते हैं कि कुछ नहीं से तो अच्छा ही है। परन्तु मेरी समझ में तो इतना कम सूत तैयार होता है कि सुन कर हँसी आती है और फी चर्खें पर बेहिसाब खर्च होता है। शुरू २ में जो कुछ लगा दिया, उससे अधिक खर्च हो तो सच पूछो तो, वह नहीं ही होना चाहिए। सूत कैसा होता है—इसके विषय में कुछ नहीं लिखा है। मैं जो बात पहले बार २ कह आया हूँ, वही फिर भी कहनी होगी—स्कूलों के लिए केवल तकली ही एक वस्तु है और इसका प्रवेश तभी होना चाहिए जब शिक्षकों ने धुनकना और कातना सीख लिया हो। स्कूलों में कताई के काम को तब तक कभी सफलता नहीं मिल सकती जब तक शिक्षक इसका राष्ट्रीय महत्व न समझ लें, वहीमें उन्हें आनन्द मिले और अपने उत्साह से उसे विद्यार्थियों के लिए भी मनोरंजक बना दें।

( यं० इ० )

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद वदि ४, संवत् १९८३

## आंख खोलने वाले अंक

अ० मा० चर्खासंघ के 'अ' श्रेणी के सदस्यों की संख्या के अंक नीचे दिये जा रहे हैं। पाठकों का ध्यान, इन की ओर अवश्य ही आकर्षित होगा—चर्खासंघ के सदस्यों का तो विशेष कर के।

प्रान्त	दर्ज सदस्य	वाकायदा सदस्य	प्रतिशत
अजमेर	१७	७	४१
आन्ध्र	४५५	१०९	२४
आसाम	१५५	२	१
बिहार	२२७	६१	२७
बंगाल	५४९	१७८	३३
बिरार	१८	१४	७८
बर्मा	६	५	८३
मध्यप्रान्त हिन्दी	४७	२६	५५
मध्यप्रान्त मराठी	६७	४७	७०
बम्बई	८०	४४	५५
दिल्ली	२१	६	२९
गुजरात	४६७	२८२	६०
कर्नाटक	१७६	६१	३५
केरल	६१	२१	३४
महाराष्ट्र	२३७	८९	३८
पंजाब	६८	२३	३४
सिंध	४४	२०	४५
तामिलनाडु	५०१	१६०	३२
संयुक्तप्रान्त	१५०	६१	४१
उत्कल	३३	१५	४५
	३,३७९	१,२३१	३६

१३७९ सदस्यों ने नाम लिखवाया था। उनमें १२३१ भाई, अर्थात् फी सैकडे ३६ सदस्य अभी तक बराबर अपना सूत देते आये हैं। आसाम से केवल एक कटा भाईयों ने ही सूत दिया। आसाम का स्थान सभी में बहुत नीचे है। दूसरा नम्बर आन्ध्र का है। यहाँ से ती सैकडे केवल २४ लोगों ने सूत भेजा है। फी सैकडे २३ की संख्या का कर बर्मा ने अव्वल नम्बर पाया है। लेकिन शुरू में बर्मा के केवल ६ ही सदस्य थे, इसलिए इसमें कुछ प्राथम्य की बात नहीं है। ये अंक बताते हैं कि लोगों की नेयमितता पसंद नहीं है, वे देश के लिए निरन्तर काम करना ही चाहते। अनवरत त्याग के भाव की कमी है। अब किसी को हठ कल्पना न कर लेनी चाहिए कि यदि चंदे में पैसा लिया जाय तो स्थिति कुछ विशेष अच्छी होगी। ऐसा सार्वजनिक कार्यकर्ता बन होगा जिसे चंदे के उगाहने का कटु अनुभव न मिला हो? इस समय के कांग्रेस के पुराने मंत्रियों की बिकायत भी मुझे याद है, जब महासमिति का चंदा रुपये के रूप में लिया जाता था। अनेक कार्यकर्ताओं में असावधानी सहज ही पायी जाती है। बात यह कि सार्वजनिक कार्य को हम केवल फुरसत का दिलबहालाव या लोगों पर की हुई मेहरबानी समझते हैं, उसे अपना प्राथमिक धर्म नहीं मानते। तो भी जिसे स्वस्थ सामाजिक और राजनीतिक जीवन की इच्छा है, उसकी दृष्टि में, अपनी या परिवार की भाँसे, सार्वजनिक कार्य का महत्व कुछ कम नहीं है। क्या

हमारे प्राचीन पंच यज्ञों का नाम फिर से, अपने लिए, परिवार, ग्राम, जाति और मानवजाति के लिए यज्ञ रखना अनुचित होगा? सच्चा जीवन तो वही है जिस में, इन भिन्न २ यज्ञों में सुसम्बन्ध हो, कोई पारस्परिक विरोध न हो। सूत का चंदा तो जाति के लिए सब से हलका त्याग कहा जायगा। मानवजाति के हित का इससे कुछ विरोध नहीं होता—ग्राम, परिवार या व्यक्ति के हित का तो निश्चय ही नहीं।

इसलिए मुझे इन अंकों के अध्ययन से जो शिक्षा मिलती है वह निराशा की नहीं है। चंदे के रूप या चंदे ही, अथवा इसे देने के तरीके को बदलने की जरूरत नहीं है। खादी-आन्दोलन का मैं ज्यों ज्यों अभ्यास करता जाता हूँ त्यों त्यों मेरी यह प्रतीति बढती जाती है कि कम से कम प्रतिदिन आधे घण्टे की कताई का आग्रह रखना और चंदे का आज का स्वरूप और परिमाण कायम रखना उचित एवं आवश्यक है। यदि ये १२३१ सदस्य भी लगातार और बिना शोरीगुल के अपना सूत निरन्तर देते रहें, तो उनकी यह तालीम उनके निजी जीवन में क्रान्ति पैदा कर देगी और जब महापरीक्षा का समय आवेगा—और वह आज या कल कभी न कभी तो अवश्य आवेगा ही—तब वे राष्ट्रीय सेवा के लिए उपयुक्त पाये जावेंगे।

इन नियमित सूतकारों में ही आज हमारे सब से अधिक कार्यकर्ता हैं। जो अंक मैं ईकट्टे करता आ रहा हूँ और मिलने के साथ ही प्रकाशित भी करता आ रहा हूँ, वे सभी पक्षपात-शून्य विचारशील सज्जनों की आंखें खोल देंगे और उन्हें उनसे मात्स्य हो जायगा कि गरीब दुखियों की बढती हुई विपत्ति को तुरत दूर करने वाली दवा तथा हमारे सभ्य शिक्षित सज्जनों के (जो थोड़े ही हैं) तथा असंख्य मरभुखों के बीच सच्चा संबंध स्थापित कराने का एक यही साधन है।

खादी के जवर्दस्त समर्थन में बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने उचित ही कहा है कि—

“लोग पूछ सकते हैं कि खादी के लिए अधिक दाम हम क्यों दें? इस मरे हुए व्यवसाय को पुनर्जीवित करने से हमें लाभ ही क्या है? ये सवाल केवल उन्हीं सज्जनों को सूझ सकते हैं जिन्हें इस देश के लोगों की पीस डालनेवाली गरिबी का पता नहीं है। हमारे खून को सुखानेवाली इस गुरवत के सामने, अनुभव-शून्य अर्थशास्त्र को कौन पूछेगा? मैं केवल एक ही अंक दूंगा। यह हिसाब है तो मोटा, किन्तु महज इसी कारण कुछ कम विश्वसनीय नहीं है। सन् १९२२ में हम लोगों ने गरीबों को, कातने और बुनने की मजदूरी स्वरूप २६०००) हजार से कम रुपये नहीं दिये थे। १९२५ में हम ने ४६०००) हजार रुपये दिये जिस में से २८०००) हजार तो केवल सूतकारों को दिये गये और इन कातनेवालों को, सूत न कातने पर अन्यरूप से एक पैसा भी न मिल सकता था। यह हिसाब इस प्रान्त (बिहार प्रान्त) की कांग्रेस कमिटी के आधीन संस्थाओं का है। इस हिसाब में 'गांधी कुटीर' का हिसाब शामिल नहीं है और गांधी कुटीर का काम अभी हाल तक कांग्रेस खदर भंडार के काम से कहीं बड़ा चड़ा था। मैं बहुत गंभीरता के साथ पूछता हूँ कि, इस प्रान्त में दूसरी ऐसी कौन सी संस्था है जिसके द्वारा ऐसे गरीबों को साल में १ लाख से भी अधिक रुपये मिलते हों, जो दूसरी तरह से कुछ भी न कमा सकते थे और वह भी दान स्वरूप नहीं—बल्कि मिहनत की कमाई में। सचमुच खदर का व्यवसाय मरे हुए को जिलानेवाला है। इसके पुनर्जीवन से असंख्य भुखंडों को भोजन मिलेगा। इसके लिए जो देते हैं, जो लेते हैं, दोनों ही धन्य हैं क्योंकि यह कोरा दान ही नहीं है



पानेवाले में यह स्वाभिमान भरता है और साथ ही साथ देनेवाले को भी नम्र बनाता है।

जो बात बिहार की है वही और प्रान्तों की भी समझिये।

अ० भा० चर्खासिंघ सारे भारतवर्ष में १८ लाख रुपये से अधिक का कारोबार कर रहा है। उसका अधिकांश ऐसे गरीबों के ही घर में जाता है जो इसके बिना चेकार ही बने रहते।

संशयालुचित पुरुष ये अंक पढ़ें। यदि उन्हें धन का इससे अच्छा उपयोग और बेरोजगार गरीबों के लिए इससे अच्छा रोजगार सोच सकें तो वे बतावें। यदि नहीं, तो क्या उनका यह धर्म नहीं है कि इस बढ़ते हुए बड़े आन्दोलन की, जो उतना ही आर्थिक भी है, जितना राजनीतिक, सहायता करें? इसका नैतिक और आर्थिक लाभ तो तात्कालिक और प्रत्यक्ष होता है और इसका राजनीतिक लाभ (अवश्य ही देर से) दूर पर पड़ता है किन्तु वह भी इन्हीं दोनों पर निर्भर है, इनसे अलग नहीं। जिनका सूत बाकी है वे सज्जन चेत जायें। यदि वे न जगे और उन्होंने अपना सूत भेजा नहीं तो साल के आखिर में वे अपना नाम कटा हुआ देखेंगे। कानूनी कर्ज की बनिस्वत इस धर्म ऋण का दावा कहीं बढ़ कर है और हमारा यह चर्खा संघ का चंदा राष्ट्र के प्रति धर्म ऋण ही है।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### ‘ऋद्धिसिद्धि की जननी’ गायमाता

(०)

गोशाला सुदृढा यस्य शुचि गौमयवर्जिता।

तस्य वाहा विवर्धन्ते पोषणैरपि वर्जिताः॥

शक्त्यमूत्रविलिप्ता वाहा यत्र दिने दिने।

निःसरन्ति गवां स्थानात् तत्र किं पोषणादिभिः॥

पञ्च पञ्चायता शाला गवां वृद्धिकरी मता।

पाराशर—ऋषि सबग्रह

(जिसकी गोशाला स्वच्छ, पक्के फर्श की और गोबर से रहित होती है, उसके गोरू चारे के बिना भी बढ़ते हैं। जहां पर डोर गोबर और मूत में लथपथ रहते हैं, वहां पर चारा पानी बिचारा क्या कर सकता है?)

गोपालकै गवां गोष्ठे धूमं यस्तु न कारयेत्।

मक्षिकालीन नरकै मक्षिकाभिः स भक्ष्यते॥

देवीपुराण।

(जो ग्वाला अपनी गोशाला में धुआं नहीं देता है उसे मक्खियों से भरे हुए नरक में मक्खियां नोच २ कर खाती हैं।)

[अब मि. हेन यह बतलाते हैं कि गोशाला कैसी होनी चाहिए।

वा० गो० देशाई]

गोशाला कैसी हो?

चाहे वह बड़ी खर्चीली न हो लेकिन (१) आरामदेह, (२) उजेली, (३) स्वच्छ, (४) सुविधापूर्ण, (५) और हवादार अवश्य होनी चाहिए।

(१) गाय को अगर आराम न मिलेगा तो वह बहुत दूध देगी।

(२) दीवार में अगर बड़ी २ खिड़कियां होंगी तो बाहर का उजेली पूरा २ भीतर आ सकेगा।

(३) लडोरी ऐसे स्थान पर होनी चाहिए कि गाय गोबर में न ठिठने पावे और गोशाला भी सहज में साफ की तथा रखी जा सके।

मकान की बनावट ऐसी न होनी चाहिए कि कहीं पर कूड़ा करकट के बिना बुहारे ही छूट जाने की सम्भावना रहे। फर्श ऐसा हो कि उस पर गाय फिसल न जाय। उसके खड़े होने के स्थान पर टरा रख देना या मिट्टी ढाल कर उस पर घास बिछा देना चाहिए।

(४) इस कारण कि गाय को चारा ढालने और गोशाला सुधारने में बहुत देर न लगे ऐसा करना चाहिए कि मिसौरा या साइलो इत्यादि बहुत दूर न रहें। अगर पशु बहुत से हों तो कूड़ा बाहर करने और चारा लाने के लिए एक छोटी गाड़ी रखनी चाहिए।

अगर गायें बहुत हों तो उनकी दो पंक्तियों में रखना चाहिए। अनेक लोग तो कहते हैं कि गायों को दुपछी बांधी (यानी लडोरी बाहर की तरफ रहे) तो ठीक है ताकि सब का गोबर पानी एक साथ समेटा जा सके। और कोई २ यह भी कहते हैं कि गायों को समझूई बांधना चाहिए (यानी उनके मुँह आमने सामने रहें) ताकि उन्हें चारा ढालने में सुभीता हो।

(५) अगर सर्दी बहुत न हो तो खिड़की खुली रखनी चाहिए जिसमें हवा की आमदरफ्त पूरी तौर पर हो सके। हवा की व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि जिससे ठंड के दिनों में गोशाला में भभक रहे।

खराब हवा अगर भर गयी हो तो उसे बाहर निकालने तथा वहां ताजा हवा लाने की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके कई तरीके हैं।

अगर खिड़की ऊपर से ढाछ बनी हुई हो तो हवा ठीक आये जायेगी।

अगर दालान में हवा की आमदरफ्त ठीक न होगी तो जैसे मनुष्य को क्षय हो जाता है उसी तरह गाय बैल को भी हो जायगा। जाड़ों में अगर उन्हें सर्दी लगेगी और गर्मियों में रोग पैदा करने वाले जन्तु उत्पन्न होंगे तो डोर शरीर से सुखी न रहेंगे और दूध भी खराब मिलेगा।

गोशाला उपयुक्त स्थान में होनी चाहिए

गोशाला की तरफ से चारो ओर ढाल होना चाहिए ताकि पानी सीधा निकल जाय। ढाल की वजह से जमीन भी आसानी से सूख जायगी और गोशाला सुगमता से स्वच्छ भी रखी जा सकेगी।

गोशाला कितनी बड़ी होनी चाहिए

उसमें इतनी सुविधा अवश्य होनी चाहिए कि सब गाय बछड़े उसमें बांधे जा सकें। और पठोर गाय को सिखाने के लिए अच्छा सा एक लम्बा चौड़ा स्थान रखना चाहिए।

घास उतनी ही भरनी चाहिए जितनी मौसम भर को काफी हो। चारे के बारे में भी यही बात लागू है।

मिसौरा कितना बड़ा हो?

प्रत्येक गाय को दिन में २० सेर के हिसाब से छः मास के लिए चारा इकट्ठा करने को कितना चारा रख लेना चाहिए यह बात निम्न-लिखित अंकों से प्रकट होगी:—

गाय की संख्या	साइलो का व्यास	साइलो की ऊंचाई	भरत
	फुट	फुट	टन
६	९	२०	२२
९	१०	२४	३४
१३	१०	३०	४७
१५	१२	२६	५५
२०	१२	३२	७४
२५	१२	३८	९४
३०	१४	३४	१०९
३५	१४	३८	१२८
४०	१६	३४	१४३
४५	१६	२८	१६७
५०	१६	४०	१८०

कभी कभी गोशाला को जन्तुरहित (डिसइन्फेक्ट) कर देना चाहिए। हर आठवें दिन उसे अच्छी तरह से सुधारना चाहिए। (नवजीवन)

वालजी गोविन्दजी देशाई

\* साइलो=चारा भरने की खत्ती या मिसौरा



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १५

ईसाइयों के साथ जिस सम्बन्ध का मैं ऊपर जिक्र कर आया हूँ, अब उस पर विचार करना चाहिए।

मेरे भविष्य के बारे में मिस्टर बेकर की चिन्ता बढनी ही जाती थी। वे मुझे वेलिंग्टन कन्वेंशन (Wellington Convention) में ले गये। प्रोटेस्टेंट (Protestant) ईसाइयों में कुछ वर्षों से धर्मजागृति यानी आत्मशुद्धि के निमित्त विशेष प्रयत्न किया जा रहा था। इसे हम ईसाई धर्म की पुन-प्रतिष्ठा अथवा पुनरुद्धार कह सकते हैं। वेलिंग्टन का सम्मेलन इसी किस्म का था। उस सम्मेलन के सभापति वहाँ के प्रख्यात धर्मनिष्ठ पादरी रेवरेण्ड एण्ड्रयू गेरे थे। मिस्टर बेकर को यह आशा थी कि इस सम्मेलन में प्रकट होती हुई जागृति, उसमें शामिल होनेवालों का धार्मिक उत्साह तथा उनका निखालिसपन—ये सब मेरे ऊपर इतनी गहरी छाप डालेंगे कि मैं ईसाई हुए बिना रह ही न सकूँगा।

लेकिन मिस्टर बेकर को अन्तिम भरोसा तो अपनी प्रार्थना के बल पर था। ईश्वर-प्रार्थना में उनकी बड़ी ही श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि सबेरे अन्तःकरण से की हुई प्रार्थना को ईश्वर सुनता ही है। उनकी समझ में प्रार्थना के ही बल पर मुलर (एक महात्मा भाविक ईसाई) ऐसे मनुष्य अपना व्यवहार चलाते थे। मिस्टर बेकर मुझे उनके दृष्टान्त दिया करते थे। प्रार्थना के इस गुणगान को मैंने तटस्थ हो कर सुना। मैंने उनसे कहा कि ईसाई मत स्वीकार कर लेने का अर्न्तनाद भीतर से जब मेरे मन में उठेगा तब मेरे ईसाई हो जाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती। अन्तर्नाद के वश होना तो मैं इस बातचीत के कई वर्ष पूर्व ही सीख चुका था। उसके वश हो कर चलने में मुझे आनन्द आता था और उसके विरुद्ध जाना कठिन लगता था।

हम लोग वेलिंग्टन गये। मिस्टर बेकर को अपने संग एक साथी को रखना कठिन पड़ा। उनको अनेक बार मेरी खातिर अनुविधा उठानी पड़ती थी। रास्ते में हम लोग एक जगह उतरना चाहते थे, क्योंकि मिस्टर बेकर का मंथ रविवार को मुसाफिरी न किया करता था और रविवार बीच में आ पड़ा था। परन्तु उस स्टेशन के होटल के मालिक ने मुझे, बड़ी झकझक के बाद दाखिल हो जाने पर भी, भोजन के कमरे में भोजन कराने से इन्कार किया। लेकिन मिस्टर बेकर यों ही उसे छोड़ देनेवाले पुरुष न थे। उस होटल में मेरे ठहरने के हक पर वे बटे रहे। लेकिन मुझे उनको कठिनाइयाँ सूझ गयीं। वेलिंग्टन में भी मैं उनके साथ ही उतरा और वहाँ मैं उनके उन कठिनाइयों को ढँकने का प्रयत्न करने पर भी उन्हें समझ गया।

उस सम्मेलन में भविक ईसाइयों का जमघट लगा। उनकी श्रद्धा से मुझे हर्ष हुआ। मिस्टर गेरे की मुलाकात की। मैंने देखा कि मेरे हित के लिए बहुत लोग प्रार्थना कर रहे थे। उनके कई भजन मुझे बहुत सरस लगे।

सम्मेलन तीन दिनों तक हुआ। उसमें शामिल होनेवालों की धार्मिकता मेरी समझ में आ गयी और मैं उसकी कदर भी कर सका। परन्तु मुझे अपने मत (धर्म) में फेरफार करने का कोई कारण न दिखाई दिया। यह बात मेरी समझ में न आयी कि मैं ईसाई कहलाकर ही मोक्ष पा सकता हूँ, या स्वर्ग जा सकता हूँ। यह बात जिस समय मैंने अच्छे ईसाई मित्रों से

कही, उस समय उस बात से उन लोगों को आघात पहुँचा, लेकिन मैं लाचार था।

मेरी उलझनें भी भारी थीं। “ईसामसीह ही ईश्वर के एक मात्र पुत्र हैं—जो लोग उनको मानेंगे वे ही तैरेंगे” यह बात मेरे दिमाग में न घुसती थी। अगर ईश्वर के पुत्र होना सम्भव है तो हम लोग सभी उसके पुत्र हैं; यदि ईसा (जीसस) ईश्वर के समान हैं तो मनुष्यमात्र ईश्वर तुल्य हो सकते हैं—ईश्वर हो सकते हैं। ‘उनकी मृत्यु से और उनके रक्त से सारे संसार के पाप धुल जाते हैं’—यह बात ज्यों की त्यों मान लेने के लिए बुद्ध तैयार ही न थी। हाँ, रूपक के ढंग से चाहे उसमें सत्य भले ही हो।

ईसाइयों के मतानुसार मनुष्य के ही आत्मा है, अन्य जीवों के नहीं। उनके शरीरपात के साथ ही साथ उनका सर्वथा नाश हो जाता है। मेरा निश्चय इसके विरुद्ध था। मैं ईसा को त्यागी महात्मा, या देवी शिक्षक के तौर पर मान सकता था, लेकिन उनको अद्वितीय पुरुष समझ कर उन्हें स्वीकार न कर सकता था। जीसस की मृत्यु से जगत को बड़ा भारी उदाहरण तो मिला है, परन्तु यह मैं नहीं मान सकता कि उनकी मृत्यु में कोई गुण चमत्कारी प्रभाव था। ईसाइयों के पवित्र जीवन में मुझे कोई ऐसी बात न मिली जो अन्य धर्मावलम्बियों में न हो। उनमें होने वाले परिवर्तन मैंने अन्य लोगों में भी देखे हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से ईसाई मत में मैंने कोई अलौकिकता नहीं देखी। त्याग की दृष्टि से हिन्दुओं का त्याग मेरी दृष्टि में कुछ अधिक बढ जाता था। ईसाई धर्म को मैं संपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्म के रूप में स्वीकार न कर सका।

अपने इस हृदयमंथन का जिक्र मैंने उन आगन्तुक ईसाई मित्रों से किया। वे मुझे संतोषप्रद उत्तर न दे सके।

परन्तु जिस प्रकार मैं ईसाई मत को स्वीकार न कर सका, उसी प्रकार हिन्दू धर्म की सम्पूर्णता वा सर्वोपरिता के बारे में भी मैं उस समय कुछ निश्चय न कर सका। हिन्दूधर्म के अनुयायियों की वृष्टियाँ मेरी नजर के सामने उतराया करती थीं। अस्पृश्यता यदि हिन्दू धर्म का अंग माना भी सकता हो तो वह गलित एवं निरर्थक अंग है। अनेक संप्रदाय तथा अनेक जातियों की हस्ती को मैं समझ न सका। क्या वेद ही ईश्वर के बनाये हुए हैं? यदि वे हैं तो बाइबिल और कुरान क्यों नहीं?

जिस प्रकार मेरे ईसाई मित्र मेरे ऊपर प्रभाव डालने का प्रयत्न कर रहे थे उसी प्रकार मुसलमान मित्र भी उसमें प्रयत्नशील थे। अन्दुल्ला सेठ मुझे इस्लाम का अध्ययन करने के लिए लालच दिखा रहे थे और उसकी खूबियों की चर्चा तो वे बराबर किया करते थे।

मैंने इन कठिनाइयों का हाल रायचंद्र भाई से कहा। हिन्दुस्तान के अन्य धर्मशास्त्रियों के साथ भी मैंने पत्रव्यवहार किया। उनका जवाब भी मिला। रायचंद्रजी के पत्र से मुझे कुछ शांति हुई। उन्होंने मुझे धैर्य रखने और हिन्दू-धर्म का गहरा अध्ययन करने का उपदेश दिया। उनके लिखे हुए एक वाक्य का भावार्थ यह था:—पक्षपात रहित हो कर विचार करने से मुझे प्रतीत हुआ है कि हिन्दूधर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार तथा उसमें जो आत्मा की निरीक्षा और दया के भाव हैं, वे दूसरे धर्म में न मिलेंगे।

मैंने सेल के द्वारा अंग्रेजी में किया हुआ कुरान का अनुवाद खरीदा और उसे बाँचना भी आरम्भ कर दिया। इस्लाम धर्म-विषयक अन्य पुस्तकें भी प्राप्त कर लीं।



मैंने अब विलायत के ईसाई मित्रों से पत्रव्यवहार करना प्रारम्भ किया। इस पत्रव्यवहार के बीच में एडवर्ड मेटलैंड नामक एक व्यक्ति से मेरी जान पहिचान हुई। उनके साथ भी खतोंकितावत शुरू हो गयी। उन्होंने किंगफर्ड के साथ मिल कर "परफेक्ट वे" (उत्तम मार्ग) नामक पुस्तक लिखी थी। उन्होंने उसकी एक प्रति मेरे पास, पढ़ने के लिए भेजी। उसमें प्रचलित ईसाई धर्म का खण्डन था। उन्होंने सज्जन ने "बाइबिल का नवीन अर्थ" नामक पुस्तक भी मेरे पास प्रेषित की। ये पुस्तकें मुझे पसंद आयीं। उनमें मुझे हिन्दू मत की पुष्टि दिखायी दी। टालस्टाय कृत "ईश्वर तुम्हारे हृदय में है" नामक पुस्तक से तो मैं दंग रह गया। उसकी छाप मेरे ऊपर बहुत गहरी पड़ी।

मि० कोट्स की दो हुई सब पुस्तकें इस पुस्तक की विचार-शैली की स्वतंत्रता, नीति की प्रौढता और सत्यता के सामने रखी जान पड़ीं। मेरा अनुशीलन ईसाइयों की इच्छा की प्रतिकूल दिशा में होने लगा। एडवर्ड मेटलैंड के साथ मेरा पत्रव्यवहार खासा बढ गया। और कवि (रायचंद्रजी) के साथ तो ठेठ अखीर तक बना रहा। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें मेरे पास भेजीं। मैंने उन्हें बांच डाला। उन पुस्तकों में "पंचीकरण", "मणिरत्नमाला," योगवशिष्ट का "सुसुख प्रकरण", हरिभद्र सूरि का "षडदर्शन समुच्चय" नामक पुस्तकें भी थीं।

यद्यपि मैं ईसाइयों की आशा के प्रतिकूल मार्ग पर चला गया, तथापि उनके संबन्ध के फलस्वरूप धर्म-जिज्ञासा की जो जागृति मेरे मन में उत्पन्न हुई, उसके लिए मैं उनका सदा का ऋणी हूँ। इस सम्बन्ध की याद मुझे बराबर बनी रहेगी। यह मनोहर और पवित्र सम्बन्ध आगे चल कर बढ़ता ही गया—

बढा नहीं।

सफल प्रयोग

'नवजीवन' (गुजराती) के गताङ्क में वेडछी खादी आश्रम की रिपोर्ट छपी थी। वह रिपोर्ट ऐसे अंकों से भरी हुई है जिन से खादी के बडे से बडे अविश्वासी पुरुष को भी इस बात का विश्वास हो जायगा कि हिन्दुस्तान के गांवों के आर्थिक जीवन में खादी का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। आश्रम के संचालक भाई चुनीलाल मेहता ने यह रिपोर्ट लिखी है। आप, बालबच्चों के साथ, बारदोलीतालुके के कालीपरज जाति के केन्द्र वेडछी में बस गये हैं। भाई चुनीलाल और उनकी पत्नी, दोनों ही खादी तैयार करने में निपुण हैं। स्थानीय कार्यकर्ताओं की सहायता से अपने कार्यक्षेत्र के ६५ गांवों में दोनों वर्ष भर में, ३, ४ बार घूम आये हैं।

पहले साल का उनका काम था लोगों से केवल खादी खरीदने को कहना और उनको चर्खा चलाना सिखलाना। इस साल, जहां कहीं चर्खा था, वे वहां २ गये और चर्खों को दुरुस्त किया, लोगों को अपने हाथ से कपास ओटना और रुई धुनना सिखलाया और बतलाया कि आगे के लिए काफी कपास जमा कर रखो। कुछ लोगों ने कहा कि हम इतने दिनों में इतना सूत कात लेंगे। इन्होंने उनका नाम लिख लिया और फिर उतने दिनों बाद उनके घर जाने पर देखा कि प्रायः सभी जगह सूत तैयार रखा हुआ था।

उनके पास एक मैजिक लैंटर्न भी थी। उसे २१ गांवों में दिखलाया गया और कोई ३१०० लोगों ने उन व्याख्यानों को सुना। इन व्याख्यानों का विषय यह था कि चरखा हमारा आर्थिक अंग है और नशाखोरी की बढती को रोकने का साधन है। कितने एक शराब पीने वालों ने इन भाषणों से लाभ उठाया और

अब जिन घरों में चर्खे का प्रवेश हो गया है वे घर शराब के दण्ड में मुक्त हैं। शराब के बंद हो जाने से तरह २ की फजूल खर्चियों में भी कमी हुई है जिससे महाजन और कलवार के पंजे से लोगों को छुटकारा मिला है।

पहले साल केवल ११० कातने वाले थे और उन्होंने बुनने के लिए केवल २५० सेर सूत दिया था। इस वर्ष कातने वालों की संख्या ५०४ रही और उन्होंने १३६८ सेर सूत का कपडा बुनवाया। १३६८ सेर सूत का अर्थ होता है ६९०५ वर्ग गज कपडा या १ गज चौडे २० गज लम्बे ३४५ थान और ऊपर से ५ गज कपडा और। इस साल आश्रम से ८२ चर्खें, ११३ तकूप, १४ ओटे, २५ बडी और १४ छोटी धुनकियां और ३ करघे बिके।

इस रिपोर्ट में उन लोगों का विशेष रूप से जिक्र किया गया है जिनके पास अपनी खेती है और उसके काम में लगे रहने पर भी समय निकाल कर जिन्होंने साल में १० सेर से ऊपर कासा है। उनके नाम और उनके विषय में कुछ मनोरंजक ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

नाम	गांव	सूत (अध सेरों कुटुंब में यानी पाउन्ड में)	कितने खेत आदमी हैं जोतते हैं
सोमाभाई (१)	वेडछी	५७ १/२	१३ ३४
कोलियाभाई (२)	वेदचित	४२	५ १४
वलभाभाई (३)	वेदा	३९	२ ०
छगदाभाई	शठवाव	३४	१० १४
उकलाभाई	सुराली	३४	८ १४
कल्याणभाई (४)	सुग्रामपारा	३३ १/२	५० ११२
गोमजीभाई	वेडछी	३३ १/२	९ ९
रुपलाभाई	"	३१ १/२	८ २७
मंगाभाई	मसीवादादा	३० १/२	८ १४
हरजी	मकांजर	२८ १/२	१० २३
नरसिंह	मवरिया	२६	१५ ३४
मोथा	ददरिया	२४	१० १५
ऊका	खरवां	२३ १/२	५ २३
ढेडका	वेदा	२३	८ १२
किकाभाई	जसंगपारा	२२ १/२	१० ४०
गोगलभाई	मवरिया	२१ १/२	८ २०
वजीरिया	ददरिया	२० १/२	७ १२
रणछोड	वेडछी	२० १/२	६ १६
सुखाभाई	ददरिया	२० १/२	८ १३
जगाभाई	अंबव	२० १/२	७ ६
कंसीभाई	उमरकिरी	२० १/२	७ ९
हरजीभाई	मसीदहा	२०	१० २०
ठाकुरभाई	उखलदा	२०	७ १२
ढेडिया	सुराली	२३ १/२	८ १४

२४ कुटुंब १५ गांव ६७० २५६

इन नामों के नाम और उनका बगैरा बगैरह यह दिखलाने के लिए दिये गये हैं इन में से सभी के सभी काफी बडा खेत स्वयं जोतते हैं और तौभा सूत कातने का समय निकाल ही लेते हैं ऐसे उत्साही लोग कम से कम १५ गांवों में फैले हुए हैं।

रिपोर्ट में इन सूतकारों के विषय में कुछ और मनोरंजक तफसीलें दी हुई हैं। न. (१) को अपना खेत खुद जोतना पड़ता है। उसके कुटुंब में १३ आदमी हैं (जिनमें केवल ३ ही स्थाने



और काम करने लायक हैं) और उन सब का उसी को पालन करना पड़ता है और १५, १६ ठोरी की सेवा भी और तब भी उसके घर में १ धुनकी, १ ओटा और ५ चरखे हैं। इनसे उसने अपने घर भर के लिए काफी कपड़े तैयार कर के ऊपर से ९) नौ रुपये की खादी बेंच भी ली है।

न. (२) के पास इतना बड़ा खेत है कि वह सब को जोत बो नहीं पाता है, इसलिए उसने आधा बँटाई पर दे दिया है। अब अपने खेत जोत वो कर के उसने अपने घर भर के काम लायक कपड़े के लिए सूत कात लिया और ऊपर से २०) की खादी और बेंच ली।

न. (३) के पास अपनी जमीन बिल्कुल नहीं है तौभी उसे किसानों से अधिक काम रहता है, क्योंकि उसकी बसर होती है खेत में मजदूरी करने पर। पति पत्नी ने अपने खर्च के लिए काफी सूत कात कर के फालतू खादी बेंच दी है।

न. (४) बहुत बड़ा गृहस्थ है। उसके घर में ५० प्राणी हैं और वह ११२ एकड़ खेत जोतता है। दूसरों को तो चरखे से आमदनी का एक नया सीगा निकला था, उसके लिए शायद यह बात लागू न होगी। परन्तु इसमें वह जीजान से जुट गया है। वह कातता तो है ही, पर अपना सूत आप ही चुन भी लेता है। उसके घर में १३ चरखे, १ ओटा, १ धुनकी और १ करघा है। हाल ही में उसने बहुत से चरखे खरीदे हैं। उसका १६३ सेर सूत, पिछले साल के एक या दो चरखों पर का ही काता हुआ है।

रिपोर्ट में कालीपरज के ६२ साल की उमर के एक बूढ़े कार्यकर्ता का भी जिक्र आया है। इसने अपनी सारी जमीन अपने लड़के लड़कियों में बांट दी है और अपने लिए केवल काम चलाने लायक ही रखी है। ये सज्जन, चुनीलाल भाई और उनके दल के साथ गांव गांव में जाते हैं। इतना होने पर भी उन्होंने १० पा० सूत कातने का समय बचा ही लिया। उसमें से वे अपने खर्च का कपड़ा रख कर के, बाकी में से थोड़ा २, नये कातने-वालों को उनका उत्साह बढ़ाने के लिए भेंट स्वरूप दे दिया करते हैं।

आश्रम से सीख कर अभी तक कालीपरज जाति के ११ बुननेवाले तैयार हुए हैं। उनको पूरी उम्मीद है कि इस बढते हुए सूत का कपड़ा तैयार करने के लिए अभी और सीखनेवाले तैयार होंगे।

अभी सब मिला कर आश्रम में १४ कपड़े हैं, जिनके लिए लोगों ने ही अपने २ घरों में जगह दे रखी है और अभी तर्क झोंपड़ी बनाने की जरूरत नहीं पड़ी है। एक महाजन है जो पहले कार्यकर्ताओं से घबराता था। उसने अब उन्हीं कार्यकर्ताओं के लिए एक घर दिया है और अपने दो घर में दो करघों के लिए जगह दी है। आश्रम के साथ एक पुस्तकालय है। 'सस्तुं साहित्य' वर्षक कार्यालय की सहायता से इस पुस्तकालय ने श्री भगवद्गीता की ३०० प्रतियां, इस जाति के पढ़े लिखे लोगों में बांटी हैं।

अब चर्खे से इस जाति को क्या २ लाभ हुए हैं, उसका सारांश रिपोर्ट में यों दिया गया है:—

(१) उनको फुरसत के समय का उपयोग करने और आमदनी के बढ़ाने में चर्खे ने सहायता पहुँचायी है।

(२) बेकारी और शराबखोरी को एक साथ ही रोक दिया है।

(३) किसानतापारी, सफाई और अव्यवसाय के भाव फैलाये हैं।

(४) इस जाति में आत्मसम्मान का भाव भरा है और उन्हें इस लायक बनाया है कि वे सरकारी अफसर से और महाजन से निर्भीक हो कर बातचीत कर सकें।

(यं० इ०)

म० दे०

## टिप्पणियां

### मालवीयजी और बंगाल सरकार

बंगाल की सरकार ने अपने कदम पीछे हटाने तथा पंडित मालवीय जी और डा. मुंजे के खिलाफ कार्रवाई रोक देने का जो साहस दिखाया है, उसके लिए वह अपने को खुशी से बधाई दे ले, लेकिन अच्छा होता यदि इस कार्रवाई को रोकने में सरकार कुछ शोभा दरसाती। बंगाल सरकार के स्थायी वकील ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है वह मेरी समझ में बहुत अपमानपूर्ण है। सरकार की ओर से न तो कोई खेद प्रकट किया गया है और न उन महान् देशभक्तों से क्षमा मांगी गयी है—उल्टे यह बात परदे की ओर में इशारतन शायी की गयी है कि संभवतः मालवीय जी के कलकत्ते में होने तथा उन दंगों में कुछ संबन्ध जरूर था। हाँ, सरकारी वकील को यह बात मनना पड़ी है कि पंडितजी के व्याख्यान में—जिसको पढ़ कर वह मनाही का हुजूम निकाला गया था—कोई दूसरी जाति को दुःख पहुँचाने वाली या फसाद करानेवाली बात न थी। निस्सन्देह यह उस नोटिस के निकालने वाले अफसर का कर्तव्य था कि वे उस माध्यम को पूरे तौर पर पहले देख लेते और तब १४४ धारा लगाने की दरखास्त करते—विशेष कर उस समय जब कि वह हुजूम पंडितजी और डाक्टर मुंजे ऐसे प्रख्यात नेताओं के ऊपर जारी किया जाने वाला था। यदि किसी व्यक्ति विशेष ने उस जल्दबाजी से काम लिया होता जो कि इस मामले में बंगाल-सरकार ने दिखायी है तो उस व्यक्ति पर हर्जाने का दावा ठोंक दिया जा सकता था। यदि लोकमत सुसंगठित और मजबूत होता तो जनत ऐसी लापरवाही और जल्दबाजी दिखाने वाली सरकार से जवाब की तलबी कर सकती थी।

इस कार्रवाई को देख कर भी क्या कोई कहेगा कि ऐसे शिकायतों का सुना जाना कोई बड़ी बात है कि निर्दोष व्यक्तियों के विरुद्ध प्रायः बिना सोचे समझे, जल्दबाजी के साथ और यहां तक कि बैरभाव से वह कार्रवाई की जाती है, जिसका हक सरकार के किसी खास मौके पर काम में लाने के लिये उन कायदों की वजा से मिला हुआ है, जिसको गढ़ने में उनका ही अधिकश भाग है।

### बिहार की खादी-प्रदर्शिनियां

बिहार में खादी-प्रदर्शिनियों की उन्नति होती ही जा रही है और उनकी ओर लोगों का अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट होता जा रहा है। जुलाई महीने के आरंभ में बेतिया में एक प्रदर्शिनी हुई। इसे, राज के मैनेजर मिस्टर प्रायर ने खोला था। सहायक मैनेजर मिस्टर वाइल्ड और एस. डी. ओ. भी प्रदर्शिनी खोलने के समय उपस्थित थे। मिस्टर प्रायर की समझ में 'किसी अंग्रेज ने खादी की कमी इकीर चीज नहीं समझा था परन्तु इसे घर व्यवसाय के तौर पर चलाना चाहिए।' (१३०४॥) की बिक्री हुई। दूसरी प्रदर्शिनी मोतीहारी में हुई। इसका उद्घाटन-संस्कार पादरी जे. जेड. हॉल साहब ने किया था। खादी का समर्थन करने के लिए, उनके पाँच तीन कारण थे—(१) घराऊ व्यवसाय की सहायता, (२) खेती में भावना और प्रेम को स्थान है, और (३) खेती से गरीबों को अन्न मिलता है। मोतीहारी में खादी की बिक्री ११६२॥ हुई। तीसरी प्रदर्शिनी (दरभंगा में) लहेरियासराय में हुई—यहां पर उद्घाटन संस्कार बा. राजेन्द्रप्रसाद ने किया। यहाँ बिक्री १४४५॥ तक पहुँची। इस महीने में चौथी और अन्तिम प्रदर्शिनी देवघर, वैद्यनाथधाम में हुई। सेठ जमनालाल बजाज ने इसको खोला था। यहां १३५९॥ की बिक्री हुई।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी



# बाइबिल पढ़ने का गुनाह

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

## हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ३ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनन्द

अहमदाबाद, भाद्रपद वदि ११, संवत् १९८३

गुरुवार, २ सितम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

### टिप्पणियां

#### विधवाविवाह

एक पत्र-प्रेषक ठीक ही पूछते हैं कि हिन्दू विधवाओं के सम्बन्ध में सर गंगाराम के दिये हुये अंकों का तात्पर्य क्या सभी हिन्दू विधवाओं से है—या केवल उनसे जो चलन के कारण पुनर्विवाह नहीं कर सकती हैं? मैंने सर गंगाराम से इस प्रश्न का उत्तर माँगा लिया है और उनका कहना है कि 'मेरे दिये हुए अंक केवल उन्हीं श्रेणियों में परिमित नहीं हैं, बल्कि उन अंकों में समस्त हिन्दू जाति की विधवायें आ जाती हैं।'

सर गंगाराम ने यह भी लिखा है कि "केवल एक श्रेणी की विधवाओं के अंक देना तो बेकार होता। हम सब को यह बात मालूम है कि मुसलमानों और ईसाइयों में विधवा का पुनर्विवाह हो सकता है। तिस पर भी इन जातियों में ऐसी अनेक विधवायें हैं जो कि आगे या पीछे विवाह करेंगी ही।

मैं तो केवल हिन्दू विधवाओं से पुनर्विवाह न करने की रुकावट को उठाना चाहता हूँ। मैं प्रत्येक विधवा को पुनर्विवाह करने के लिए मजबूर करना नहीं चाहता।"

निस्पन्देह ये विचार अच्छे हैं। लेकिन हिन्दुओं में केवल वे ही उपजातियाँ इस बन्धन में हैं, जिनमें पुनर्विवाह वर्जित है। इन उपजातियों को छोड़ कर शेष सभी हिन्दुओं में विधवायें करीब करीब उतनी ही आजाद के साथ विवाह करती हैं जितनी कि ईसाइयों और मुसलमानों में। हाँ, इन्साफ की रू से यह कहना मुनासब होगा कि सभी ईसाई या मुसलमान विधवायें पुनर्विवाह "आगे या पीछे" नहीं कर लिया करती हैं। इनमें ऐसी बहुत सी विधवायें हैं जो अपनी स्वेच्छा से अविवाहिता ही रहती हैं। यह बात तो ज़रूर है कि जिन जातियों में पुनर्विवाह मना है उनके अतिरिक्त अन्य जातियों में भी इस बात की ओर झुकाव रहा करता है कि वे "उच्च" कहलाने वाली जातियों की देखादेखी अपनी जाति की विधवाओं को अविवाहित ही रखें। लेकिन जब तक हमें और अंक नहीं मिलते हैं, तब तक यह बिल्कुल ठीक २ बतलाना मुश्किल है कि

विधवाओं को पुनर्विवाह से रोकने की प्रथा ने कदां तक नुकसान पहुँचाया है। आशा है कि सर गंगाराम की संस्था और अन्य संस्थाएँ जिन्होंने इस विषय को अपना बना रखा है, ज़रूरी आंकड़े इकट्ठा कर के उन्हें छपवायेंगे। इस बात का ठीक २ पता लगा लेना अवश्य शक्य है कि 'उच्च' जातियों में कदां कि पुनर्विवाह वर्जित है, २० वर्ष से नीची उम्र की विधवायें कितनी हैं। उक्त पत्र लिखने वाले को जिन्होंने कि शायद पुनर्विवाह के विरुद्ध प्रचलित बन्धन को न्यायसंगत ठहराने की इच्छा से प्रेरित हो कर मुझे पत्र लिखा है, तथा ऐसे ही विचार रखने वाले अन्य व्यक्तियों को उन युगियों को न भूल जाना चाहिए जो कि युवती विधवाओं को पुनर्विवाह न करने देने के कारण उतरन होती हैं। यदि एक भी बाल-विधवा अविवाहित हो तो इस अन्याय का मिटना ही ज़रूरी है।

#### वीरोचिन्म त्याग

त्रावनकोर से एक सज्जन ने एक उदात्त स्वार्थत्याग के आँखों देखी घटना का वृत्तान्त मेरा है—

"थोड़े दिन हुये कि तस्सर (ट्रावनकोर) में एक हाथी बिगड़ गया। पीलवान ने उसे कच्चे में लाने का प्रयत्न किया, लेकिन निष्फल ही। उस मत्त हाथी ने पीलवान को गिरा दिया और स्वयं भाग खड़ा हुआ। पीलवान, यद्यपि अत्यन्त घायल हो गया था, लेकिन मरा नहीं। शेरतली के अस्पताल में वह पहुँचाया गया। नारायण नैयर (पीलवान) के खूब लोहू वह रहा था। सर्जन ने कहा कि अगर इसे जिलाना मंजूर है, तो किसी जिंदा आदमी का गोشت चाहिये, ताकि वह नारायण नैयर के घाव में टाँक दिया जा सके। यह बात सारे गांव भर में बिजुली की तरह दौड़ गई। भला अपने बदन से काट कर गोشت कौन दे देता? पनवल्ली में एक ऐसा व्यक्ति था—उसका नाम कन्नाड कृष्ण ऐयर था। उसका जीवन असहयोग के दिनों से पलट गया है। वह खादी वाला है। वह लपकता हुआ अस्पताल पहुँचा और अपना मांस देने को तैयार हो गया। सर्जन ने बड़े धन्यवाद के साथ जितना गोشت चाहिये था, उतना गोشت उसके चूतड़ों से काट लिया। इसलिये उसे खूद उस अस्पताल में



एक माह से ऊपर रहना पड़ा। कन्नाड कृष्ण ऐयर के इस उच्च स्वाध्याय के कारण नारायण नगर का जीवन बच गया।”

य कन्नाड कृष्ण ऐयर को इस शरीरकाना कार्य के लिये मुबारकवाद देता है। वह महाभारत काल के उन वीरों की याद दिलाने है जो मानवजाति की सेवा के निमित्त अपनी जानों को खतरे में डालने से बिल्कुल संकोच न किया करते थे।

### राष्ट्रीय पाठशालाएँ

राष्ट्रीय शालाओं के विषय में ‘हिन्दी-नवजीवन’ के गतांक में मैंने जो लेख लिखा था, उसके बारे में कुछ गलतफहमी फँसी हुई सी लगती है। बम्बई के ‘राष्ट्रीय विनय मन्दिर’ के आचार्य लिखते हैं—

आपके एक लेख का तो ‘अब सभी राष्ट्रीय पाठशालाओं को बन्द कर देना चाहिए,’—यह आशय समझ कर विनय मन्दिर के एक सहायक दानी महोदय ने मुझसे कहा है कि “मुझे अब कुछ दान वान देना नहीं है।” जिस वाक्य का ऐसा अनर्थ है वह यह है—

“जहाँ मा बाप राष्ट्रीय भावना वाले हों, और शाला के लिए धन दे कर वे अपनी भावना को सिद्ध करते हों, जहाँ का शिक्षकवर्ग राष्ट्रीय भावना से भरपूर हो और खूब प्रयत्न करता हो, वहाँ विद्यार्थियों के शिथिल होने से कुछ छोड़ना पड़े—यह बात में समझ सकता हूँ; पर वहाँ हम अपनी पाठशाला को चलावें अवश्य। हम ऐसी आशा रख सकते हैं कि विद्यार्थियों के ऊपर भी असर पड़ेगा। परन्तु ऐसी राष्ट्रीय शाला तो इस समय मेरे देखने में कहीं नहीं आती है।”

ऊपर के अंश के अन्तिम वाक्य का अनर्थ हुआ है: उसका अर्थ यह लगाया गया है कि मेरी सम्मति में एक भी राष्ट्रीय पाठशाला चलाने लायक नहीं है। जब कि इसी फिकरे में, किस प्रकार की राष्ट्रीय पाठशालाओं को बन्द कर देना चाहिए, इस आशय का वाक्य इसका पहला फिकरा ही है।

“जहाँ मा बाप प्रतिकूल हों या शिक्षक ती प्रतिकूल हों, वहाँ तो राष्ट्रीय शाला बन्द ही हो जानी चाहिए।”

बम्बई के ‘विनय मन्दिर’ और इसी भाँति कितने ही अन्य विनय मन्दिरों के विषय में भी हम जानते ही हैं कि माँ बाप और शिक्षक राष्ट्रीय भावना के अनुकूल हैं, महाश्वभा की परिभाषा के अनुसार ही राष्ट्रीय शाला को चलाने की उनकी इच्छा है। ऐसी शाला बन्द करने योग्य नहीं है। उम लेख में तो यह दिखलाया गया था कि जहाँ विद्यार्थी हठपूर्वक खादी न पहनें, वहाँ उनके खातिर ही विद्यालय को चलाते रहने में कुछ दोष नहीं है। परन्तु उस फिकरे को खत्म करते हुए मैंने लिखा था कि—“परन्तु ऐसी राष्ट्रीय पाठशाला तो मेरे देखने में कहीं नहीं आती है।” इसका अर्थ यह है कि जहाँ माँ बाप और शिक्षक अनुकूल एवं प्रयत्नशील हों और केवल विद्यार्थी ही हठपूर्वक, खादी इत्यादि की शर्तों का पालन न करते हों अगर ऐसी कोई राष्ट्रीय पाठशाला किसी के ध्यान में हो, तो मैं अवश्य ही उसका नाम गाँव जानने का इच्छुक हूँ। बम्बई के ‘विनय-मन्दिर’ के विषय में तो मुझे ऐसा याद पड़ता है कि वहाँ के विद्यार्थी भी राष्ट्रीय भावना के अनुकूल हैं। वे खादी पहनते और चर्खा भी चलाते हैं। ऐसी राष्ट्रीय पाठशाला बन्द करने के लिये नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि दानी सज्जन ऐसी शालाओं की मदद करने से हाथ न सिकोड़ेंगे।

### खून निचोड़ना

दक्षिण अफ्रिका के एक पत्र में लिखा है:

“खून निचोड़ने या मध्य मजदूरों को भर्ती करने की नीति सभी सरकारी विभागों में खूब बढ़नी जा रही है। पीटर मरिस्बर्ग आर लेडो स्मिथ में, रेडने-विभाग के सरकारी हिन्दुस्तानियों को या तो दरबन बदली करा लेने या नौकरी छोड़ देने का नोटिस दिया गया है। कुछ लोगों को तो केवल १३ दिनों का ही नोटिस मिला है। यह पल्लू उन लोगों के साथ हो रहा है जिन्होंने एक स्थान पर रह कर २५, ३० वर्षों तक नौकरी की है। अपनी जिन्दगी का सब से अच्छा भाग खरा दिया है। इन गरीब अनपढ़ आदिमियों के लिए दूसरी जगह की बदली का अर्थ है बिल्कुल नयी दुनिया में जाना। और मुझे पता लगता है कि इन में से बहुत से आदिम नौकरी छोड़ कर फिर हिन्दुस्तान लौटे जा रहे हैं।”

नौकरी न छोड़ना हो तो दरबन जाओ—यह कोई पसन्दगी देना न हुआ क्योंकि जो दरबन जाते हैं, वे भी फिर उसी फेर में पड़ जावेंगे (जब मध्य मजदूरों को भर्ती करने का काम दरबन तक पहुँच जायगा)। इन नोटिसों से तो कुछ दुःख नहीं होता परन्तु दुःख की बात तो यह है जब कि दक्षिण अफ्रिका में एशियायियों की स्थिति पर विचार करने के लिए एक समिति बैठने जा रही है तब भी एशियायियों को निकाल बाहर करने की हठधर्मी वेशर्मी के साथ की जा रही है। किन्तु अभी इस ठहरे रहें और आने वाले सात अफ्रिकन डेप्युटेशन के लिए वातावरण तैयार करें और यह आशा रखें कि सब अच्छा ही होगा।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी

### प्राण-शक्ति का संचय

नाजुक समस्याओं पर प्रकट रूप में विचार करने के लिए, पाठकगण मुझे क्षमा करें। केवल खानगी में ही इन पर बातचीत करने में मुझे लुशी होती। परन्तु जिस साहित्य का मुझे अध्ययन करना पड़ा है और महाशय व्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण समाज के लिए इस परम महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट रूप से विचार का आवश्यक हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं—

“आप महाशय व्यूरो की पुस्तक की अपनी समालोचना में लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है कि ब्रह्मचर्य-पालन वा दीर्घकाल के संयम से किसी को कुछ हानि पहुँची हो। खैर, मुझे अपने लिए तो तीन सप्ताह से अधिक दिनों तक संयम रखना हानिकारक ही मालूम होता है। इतने समय के बाद, प्रायः, मेरे शरीर में भारीपन का तथा चित्त और श्वेत में बैदनी का अनुभव होने लगता है जिससे मन भी चिड़चिड़ा सा हो जाता है। आगम तभी मिलता है जब संयोग द्वारा या प्रकृति की कृपा होने से यों ही कुछ वीर्य-पात हो लेता है। दूसरे दिन सुबह शरीर वा मन की कमजोरी का अनुभव करने के बदले में शान्त और हलका हो जाता हूँ और अपने काम में अधिक उत्साह में लगता हूँ।

“मेरे एक मित्र को तो संयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ। उनकी उमर कोई ३२ साल की होगी। वे बड़े ही कठोर शाकाहारी और धर्मिष्ठ पुरुष हैं। शरीर और मन से, वे प्रत्येक दुष्ट आदत से मुक्त हैं। किन्तु तो भी, दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न-दोष में बहुत वीर्य-पात हो जाया करता था जिस के बाद उन्हें बहुत कमजोरी और उत्साह-हीनता होती थी। उसी समय उन्होंने



विवाह किया। पेट के दर्द भी एक बीमारी उन्हें उसी समय हो गयी। एक आयुर्वेदिक वैद्य की सलाह से उन्होंने विवाह कर लिया, और अब वे बिल्कुल अच्छे हैं।

“ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता का, जिस पर हमारे सभी शास्त्र एकमत हैं, मैं बुद्धि से तो कायल हूँ, किन्तु जिन अनुभवों का मैंने ऊपर वर्णन किया है उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-ग्रन्थियों से जो वीर्य निकलता है उसे शरीर में ही पचा लेने की हम में ताकत नहीं है। इसलिए वह जहर सा बन जाता है। अतएव, मैं आप से सविनय अनुरोध करता हूँ कि मेरे ऐसे लोगों के लाभ के लिए, जिन्हें ब्रह्मचर्य और आत्म-संयम के महत्व के विषय में कुछ संदेह नहीं है, य. इ. में हठयोग वा प्राणायाम के कुछ साधन बतलाइये, जिन के सहारे हम अपने शरीर में इस प्राणशक्ति को पचा सकें।”

इन भाइयों के अनुभव असाधारण नहीं हैं, बल्कि बहुतों के ऐसे ही अनुभवों के नमूने मात्र हैं। ऐसे उदाहरण मैं जानता हूँ जब कि अपूर्ण आधार के बल पर साधारण नियम निकालने में जलदबाजी की गयी है। उस प्राणशक्ति को शरीर में ही बचा रखने और फिर पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास से आती है। ऐसा तो होना भी चाहिए, क्योंकि किसी भी दूसरे काम से शरीर और मन को इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती है। दवायें और यंत्र, शरीर को साधारणतया अच्छी दशा में रख सकते हैं, माना, किन्तु उन से चित्त इतना निर्बल हो जाता है कि वह मनोविकारों का विरोध नहीं कर सकता और ये मनोविकार जानी दुश्मन के समान हर किसी को घेरे रहते हैं।

हम काम तो वैसे करते हैं जिन से लाभ तो दूर, उल्टे हानि ही होनी चाहिए, परन्तु साधारण संयम से ही बहुत लाभ की आशा बारंबार किया करते हैं। हमारी साधारण जीवन-पद्धति विकारों को संतोष देने लायक बनायी जाती है; हमारा भोजन, साहित्य, मनोरंजन, काम का समय, ये सभी कुछ हमारे पार्श्विक विकारों को ही उत्तेजना देने और संतुष्ट करने के लिए निश्चित किये जाते हैं। हम में से अधिकांश की इच्छा विवाह करने, लड़के पैदा करने, भले ही थोड़े संयत रूप में हो, किन्तु साधारणतः सुख भोगने की ही होती है। और अखीर तक कमोवेश ऐसा होता ही रहेगा।

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये हैं वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं जिन्होंने मानवजाति की सेवा में, या यों कहो कि भगवान् की ही सेवा में, जीवन लगा देना चाहा है। वे वसुधा-कुटुम्ब की ओर निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग २ बांटना नहीं चाहते। यह तो ठीक ही है कि ऐसे मनुष्यों के लिए उस प्रकार रहना संभव नहीं है कि जिस जीवन से खास किसी व्यक्ति विशेष की ही उत्पत्ति संभव हो। जो भगवन् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेगे, उन पुरुषों को जीवन की विलाइयों को छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर संयम में ही सुख का अनुभव करना होगा। दुनिया में वे भले ही रहें, परन्तु वे दुनियावी नहीं हो सकते। उनका भोजन, धंधा, काम करने का समय, मनोरंजन, साहित्य, जीवन का उद्देश्य आदि सर्व साधारण से अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब इस पर विचार करना चाहिए कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने संपूर्ण-ब्रह्मचर्य पालन को क्या अपना श्रेय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढाँचे में ढाला भी था। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया था, तो फिर यह समझने में कुछ कठि-

नाई नहीं होगी कि वीर्य-पात से पहले आदमी को आराम थोड़ा मिलता था और दूसरे को निबलता क्यों होती थी। उस दूसरे आदमी के लिए तो विवाह ही दवा थी। अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में केवल विवाह-सुख का ही विचार भरा हो तो उस स्थिति में अधिकांश मनुष्यों के लिए विवाह ही प्राकृत दवा और दृष्ट है। जो विचार दबाये न जाने पर भी अमूर्त ही छोड़ दिया जाता है उसकी शक्ति, वैसे ही विचार की अपेक्षा जिसको हम मूर्त कर लेते हैं, यानी जिसका अमल कर लेते हैं, कहीं अधिक होती है। जब उस क्रिया का हम यथोचित संयम कर लेते हैं तो, उसका प्रभाव विचार पर भी फिर पड़ता है और विचार का संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया, वह कैदी सा बन जाता है और काबू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का संयम ही माध्यम होता है।

मेरे लिए, एक अखबार लेख में, उन लोगों के लाभ के लिए, जो नियमित संयत जीवन बिताना चाहते हैं, ग्योरेवार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हें तो मैं, कई वर्ष हुए इसी उद्देश्य से लिखे हुए अपने ग्रंथ “आरोग्यविज्ञान” को पढ़ने की सलाह दूंगा। नये अनुभवों के अनुसार, इसे कहीं २ दुहराने की जरूरत है सही, किन्तु इसमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसे मैं लौटागा चाहूँ। हाँ, साधारण नियम यहाँ भले ही दिये जा सकते हैं।

(१) खाने में हमेशा संयम से काम ना। थोड़ी मीठी भूल रहते ही चौंके से हमेशा उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालों से बचे हुए और घी तेल से भरे हुए शाकाहार से अवश्य बचना चाहिए। जब पूरा दूध मिला हो तो स्नेह (घी, तेल, आदि चिकने पदार्थ) अलग से खाना बिल्कुल अनावश्यक है। जब प्राण शक्ति का थोड़ा ही नाश होता हो तो अलग भोजन भी काफी होता है।

(३) शुद्ध काम में हमेशा मन और शरीर को लगावे रहना।

(४) सवेरे सो जाना और सवेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सब से बड़ी बात तो यह है कि संयत जीवन बिताने में ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जब इस परम तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तब से ईश्वर के ऊपर यह असोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वे स्वयं ही अपने इस यंत्र को (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध और चाल रखेंगे। गीता में कहा है—

“विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनाः।

रसवर्जं रसोपस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥”

यह अक्षरशः सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-संयम में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे इसका खेद है कि इस विषय में मेरे निजी अनुभव, कुछ ऐसे नहीं हैं जो कि लिखने लायक हों। जहाँ तक मुझे माध्यम है, इस विषय पर इस जमाने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नहीं। परन्तु यह विषय अध्ययन करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अग्रिम पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई दृष्टगोपी मिल जाय उसी को गुरु मान लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिए कि संयत और धार्मिक जीवन में ही अभीष्ट संयम के पाठन की काफी शक्ति है।

(३० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुजरात, भाद्रपद वदि ११, संवत् १९८३

## बाइबिल पढ़ने का गुनाह

कई पत्र-प्रेषकों ने अपने २ पत्रों में मुझे इस बात का जवाब तलब किया है कि मैं गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थियों को बाइबिल क्यों पढ़ाता हूँ। इनमें से एक ने मुझे लिखा है:—

“क्या आप कृपा कर के बतलायेंगे कि आप गुजरात महा-विद्यालय के विद्यार्थियों को इंग्लिश क्यों पढ़ाते हैं? क्या हमारे साहित्य में कुछ भी उपयोगी बातें नहीं हैं? क्या आपकी निगाह में गीता इंग्लिश से कम है? आप यह बात बराबर कहा करते हैं कि मैं पक्का सनातनी हिन्दू हूँ। अब क्या आप छिपे हुए ईसाई नहीं निकले? आप यह भले ही कहें कि कोई भी व्यक्ति बाइबिल पढ़ने मात्र से ईसाई नहीं बन जाता है। परन्तु क्या लड़कों को बाइबिल पढ़ाना उनको ईसाई बनाने का एक तरीका नहीं है? क्या उन पर बाइबिल पढ़ कर असर हुए बिना रह सकता है? क्या ऐसा करने में उनके ईसाई बन जाने की सम्भावना नहीं है? बाइबिल में ऐसी कौन सी खास बात है कि जो हमारे धर्म-ग्रंथों में नहीं है? मुझे पूर्ण आशा है कि आप सन्तोपजनक उत्तर देंगे और बाइबिल के सामने नेदों को तरजीब देंगे।”

मुझे मय है कि अपने इस पत्र-प्रेषक का कहना मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे अपनी या दूसरों की इच्छा की अपेक्षा उस बात को अधिक मान देना चाहिये जिसे विद्यार्थियों को मुझसे माँगने का अधिकार है। जब उन्होंने प्रति सप्ताह एक घंटा पढ़ाने के लिये मुझे आमंत्रित किया, तब मैंने उनके सामने तीन बातें रखीं—चाहे गीता पढ़ लें, चाहे मुलसीकृत रामायण, और चाहे वे अपने प्रश्नों के उत्तर पूछ लिया करें। बोट लेने पर अधिक लोगों ने ‘न्यू टेस्टमन्ट’ और प्रश्नोत्तर पसन्द किया। मेरी राय में उन विद्यार्थियों को उस पसन्दगी के करने का हक था। उनको बाइबिल पढ़ने या दूसरों से सुनने का पूरा अधिकार है। मैंने गीता या रामायण सुनाने का प्रस्ताव उनके सामने रखा था, क्योंकि मैं ये दोनों चीजें आज-कल आश्रमवासियों को पढ़ा रहा हूँ और इसलिए गुजरात महा-विद्यालय में इन दोनों में से कोई भी ग्रंथ पढ़ाने में मुझे कम से कम तैयारी वा मेहनत करनी पड़ती। परन्तु उन विद्यार्थियों ने शायद यह सोचा कि गीता और रामायण दूसरों से पढ़ लेंगे, लेकिन न्यू टेस्टमन्ट के अर्थ को इन्हीं से समझ लें, क्योंकि वे जानते थे कि मैंने उस ग्रंथ का अच्छा खासा अध्ययन कर लिया है।

मेरा विश्वास है कि प्रत्येक सुशिक्षित स्त्री या पुरुष का यह फर्ज है कि वह संसार भर के धर्म-ग्रंथों को सहायुभूति के साथ पढ़ ले। यदि हम दूसरों के धर्मों की उतनी ही इज्जत करना चाहते हैं, जितनी कि हम चाहते हैं कि वे हमारे धर्म की करें, तब संसार के सभी मतों का प्रेम-भाव के साथ अध्ययन कर लेना एक पवित्र कर्तव्य हो जाता है। हमको इस बात से डरने की जरूरत नहीं है कि दूसरे मजहब हमारे सयाने बालों पर अपना असर डाल देंगे।

संसार में जो कुछ भी स्वच्छ है उसका अध्ययन बिना भेद-साध के करने में बालकों को उत्साहित करने के द्वारा हम जीवन के प्रति उनके भावों को उदार बनाते हैं। हाँ, डर का मौका

तब है जब कि नवयुवकों को वह अपने ही मजहब की किताबें छिपे छिपे या खुलसखुल्ला अपने दीन में मिला लेने की नियत से सुनावें। उस सूरत में उनके दिल में अपने मजहब के पक्ष में तअसुब जरूर होगा। और मेरी बात तो यह रही कि मैं बाइबिल या कुरान या किसी दूसरे धर्म-ग्रन्थ का अध्ययन करना या उसके प्रति श्रद्धा रखना अपने पक्षे सनातनी हिन्दू होने के साथ संगत मानता हूँ।

जो मनुष्य संकुचित विचारों वाला तथा धर्मान्ध है और जो किसी बुरी बात को महेज इसलिये अच्छी ठहराता है कि वह प्राचीन-काल से चली आ रही है या उसका समर्थन किसी संस्कृत पुस्तक में किया गया है, वह डरगिज सनातनी हिन्दू नहीं है। मैं पक्का सनातनी हिन्दू होने का दावा इसलिये करता हूँ कि यद्यपि मैं उन बातों को, जो मेरी नैतिक भावना के प्रति-कूल होती हैं, नहीं मानता हूँ तथापि मुझे हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में आत्मा की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने का सामान मिल जाता है। दूसरे धर्मों का मैंने आदरपूर्वक अध्ययन कर लिया है, इसके माने यह नहीं है कि हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के प्रति मेरी श्रद्धा कम हो गयी है या विश्वास घट गया है। अलबत्ता, उन्होंने मेरे हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के समझने में बड़ा भाग लिया है। उन्होंने जीवन के प्रति मेरी दृष्टि विचार कर दी है। उनकी सहायता से मैं हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के गूढ़ भाग को कहीं २ अधिक अच्छी तरह समझ सका हूँ।

मेरे गुप्त रूप से ईसाई होने का इल्जाम कोई नया नहीं है। वह अपकीर्ति के रूप में है और अभिवादन के रूप में भी। अपकीर्ति इसलिए कि कुछ लोग ऐसे हैं जो समझते हैं कि मैं गुप्त रीति से कुछ हो भी सकता हूँ—यानी वह हो सकता हूँ जिसके प्रकट रूप से होने में मैं भय खाता हूँ। जिस धर्म ईसाई या अन्य कोई मजहब की सत्यता मेरी समझ में आ जाय या जिस धर्म की आवश्यकता मुझे प्रतीत हो जाय उसी क्षण उसको अंगीकार करने में बाधा डाल सकने वाली कोई भी वस्तु संसार में नहीं है। जहाँ भय का अस्तित्व है, वहाँ धर्म नहीं है। और यह अभिवादन सम्मान-सूचक इसलिए है कि ईसाई मत की खूबियों को समझने की मेरी क्षमता को लोग (वे मन से ही सही) कुचल करते हैं। हाँ, एक बात मैं कुचल करता हूँ। यदि बाइबिल या कुरान को अपने मन के अनुसार समझ कर मैं अपने को ईसाई या मुसलमान कह सकता हूँ तो मुझे अपने को ईसाई या मुसलमान कहने में जरा भी संकोच न होगा। क्योंकि उस हालत में ‘हिन्दू’, ‘ईसाई’, और ‘मुसलमान’ ये सब शब्द पर्याय ही हो जायेंगे। मेरा यह विश्वास तो है ही कि परलोक में न कोई हिन्दू, न ईसाई और न मुसलमान है। वहाँ सब लोग केवल अपने कृत्यों के अनुसार ही जांचे जाते हैं न कि पेशों या नाम के। जबतक हम इस स्थूल संसार में रहते हैं, तबतक हमारे ये नाम इत्यादि रहेंगे ही। इसलिए मुझे यह पसन्द है कि जहाँ तक मेरे पूर्वजों वा मत मेरी उन्नति को नहीं रोकता और जहाँ तक वह मुझे अन्यत्र से अच्छी २ चीजें अंगीभूत करने में रुकावट नहीं डालता, तहाँ तक मैं अपने पूर्वजों के ही धर्म को मानता रहा। पत्र-प्रेषकों ने जिस बड़ी नाजुकमिजाजी का परिचय दिया है उससे यही प्रकट होता है कि इस अमागे देश में असहिष्णुता की लहर कितनी जोर से बह रही है। मेरी सलाह है कि जो उससे अपना दामन बचा सके वे अवश्य बचावें।

( यं० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १६

खबर नहीं इस जग में पल की  
समझ रे मन! को जानै कल की ?

मुकदमा पूरा हो चुका था, इसलिए प्रिटोरिया में रहने का मेरा कोई प्रयोजन न रहा। मैं डरबन गया। वहाँ मैं हिन्दुस्तान वापिस आने की तैयारी करने लगा। अब्दुल्ला सेठ मेरा मानपान किये बिना मुझे चले आने देनेवाले व्यक्ति न थे। उन्होंने सिडनहम में अपनी मित्रमण्डली के साथ भोजन करने को मुझे निर्मन्त्रित किया। उस दावत में कार्यक्रम सारे दिन का था।

मेरे पास बहुत से समाचार पत्र पड़े हुए थे — मैं उनको पढ़ने लगा। बांचते बांचते एक छोटे से फिकरे पर मेरी निगाह पड़ी, जिसका शीर्षक था “इंडियन फ्रैवाइज” यानी “हिन्दुस्तानी मताधिकार”। उस फिकरे का मतलब था नेटाल की धारासभा के लिए सदस्यों को चुनने के उस हक को जो कि हिन्दुस्तानियों को हासिल था, छीनलेना। इसी से सम्बन्ध रखनेवाले कानून पर धारासभा में विचार किया जा रहा था। मैं उस कानून से अनभिज्ञ था। उस जलसे मैं आये हुए किसी भी आदमी को हिन्दुस्तानियों के मताधिकार छीन लेने से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव के पेश होने का बिल्कुल इल्म न था।

मैंने अब्दुल्ला सेठ से इस बाबत में दरयाफ्त किया। उन्होंने उत्तर दिया कि इसके विषय में हम भला क्या जानें? हमको तो उन्हीं बातों की खबर लगती है जिनका असर हमारे व्यापार पर पड़ता है। देखो न, ‘ओरेंज फ्री स्टेट’ से हमारे व्यापार की जड़ ही जाती रही है। मैंने उस मामले में बहुत दौड़भूप की, परन्तु मेरा कुछ बस न चला। हम अखबार तो पढ़ते हैं लेकिन महेज भावताव जानने के लिए। कायदे वानून की बात हम क्या समझें? हमारे आँख कान हमारे गोरे वकीलों को ही समझिये।

इसके विषय में मैंने सेठ अब्दुल्ला से पूछा — ये जो यहाँ के पैदा हुए और यहाँ के पढ़े लिखे इतने एक हमारे नौजवान हिन्दुस्तानी यहाँ रहते हैं वे क्या कुछ मदद नहीं करते हैं?

अब्दुल्ला सेठ ने अफसोस जाहिर करते हुए कहा, “अरे भाई, उनसे भला क्या मिल सकता है? वे बेचारे इस मामले को क्या समझें वृक्ष? वे हमारे पास फटकते तक नहीं हैं और सच पूछो तो हम भी उनको नहीं पहचानते। वे सब हैं ईसाई। इसलिए वे पादरियों के चंगुल में हैं और गोरे पादरी हैं सो सरकार के कच्चे में रहे।”

मेरी आँखें खुल गयीं। मैंने सोचा कि इन लोगों को जरूर अपनाना चाहिए। क्या ईसाई धर्म का अर्थ यही है? वे ईसाई हो गये तो क्या देश के न रहे? क्या परदेशी बन गये?

लेकिन मुझे तो हिन्दुस्तान लौटना था, इसलिए इन उपर्युक्त विचारों को मैंने प्रकट न किया। मैंने अब्दुल्ला सेठ से पूछा:— “लेकिन अगर यह कानून ज्यों का त्यों पास हो जायगा तो आप की कठिनाइयाँ बढ जावेंगी। हिन्दुस्तानियों की हस्ती गिटाने की यह तो शुरुआत है। इसमें तो स्वाभिमान की हानि दिखाई देती है।”

“देती होगी। अब मैं आप से इस “करें चाइज” (अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्द वहाँ के बसे हुए हिन्दुस्तानियों ने इसी प्रकार तोड़मरोड़ कर अपनी बोलचाल में दाखिल कर लिये थे। अगर

आप उनसे “मताधिकार” कहें तो उसे कोई न समझेगा।) के बारे में कुछ कहता हूँ। हम तो उसे जरा भी नहीं समझते हैं कि यह क्या बला है। यह तो आप जानते ही हैं कि हमारे बड़े वकील मि० एस्कंब हैं; ये बड़े लड़ने वाले हैं। उनके और यहाँ की मोदी के इंजिनियर के बीच खूब लड़ाई चल रही है। धारासभा में मि० एस्कंब के जाने में यह अगढ़ा बाधा स्वरूप था — उन्होंने हम को हमारी स्थिति बतलाई; उन्हीं की सूचना से हमने अपना नाम भी मताधिकार-सूची में लिखवा लिया और हमने अपने सब वोट मि० एस्कंब को दे दिये। अब आप समझ सकेंगे कि इस मताधिकार की कीमत जो आप लगाते हैं, सो हमने क्यों नहीं लगायी थी। परन्तु अब जो आप कहते हैं वह मेरी समझ में आ सकता है। अच्छा, तब आप की क्या राय है?”

हमारे दूसरे मेहमान लोग इस बात को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उनमें से एक ने मुझ से कहा — मैं आप से सन कहता हूँ कि अगर आप इस स्टीमर से न जावें और अगर एकआध महीने तक रुकें तो जैसे आप बतावें जैसे हम लड सकते हैं।

उनमें से दूसरे लोग बोल उठे — हाँ, ठीक है। (सेठ की तरफ देख कर) “अब्दुल्ला सेठ, आप गांधी भाई को रोक लें न।”

अब्दुल्ला सेठ पूरे उस्ताद थे — बोले: इनको अधिक रोकने का अधिकार मुझे नहीं है, या जितना मुझे है उतना ही आपको भी है। लेकिन आप का कहना बजा है। हम सब मिल कर इनको रोकने की कोशिश क्यों न करें? लेकिन ये उधरे बैरिस्टर, इनकी फीस — ?

मुझे दुःख हुआ। मैं बोला “इसमें मेरी फीस की कोई बात ही नहीं है। सार्वजनिक सेवा में फीस कैसी? यदि मैं रुकूंगा तो एक सेवक की हैसियत से। इन सब भाइयों को मैं अच्छी तरह नहीं पहचानता हूँ। लेकिन अगर आप लोगों का विश्वास हो कि आप सब मिल कर मिन्नत करेंगे, तो मैं एक महीने के लिए रुक जाने के लिए तैयार हूँ। हाँ, आपको मुझे तो कुछ देने की दरकार नहीं है, लेकिन ऐसे काम बिना कौड़ी तो होते नहीं हैं। कहीं तार करना पड़े — कुछ छपवाना पड़े, कहीं जाना आना पड़े — उसका रेलभाड़ा लगे, कमी स्थानीय वकील की सलाह लेना पड़े और मुझे यहाँ के कानून मालूम नहीं है, इसलिए कानून की किताबें देखनी पड़ें — और ऐसे ही अन्य काम एक आदमी से अकेले तो हो नहीं सकते हैं। ऐसे कामों में अनेक आदमियों का सहयोग चाहिए।”

यह सुन कर बहुत से लोग एक साथ बोल पड़े “खुदा की मेहर है, सपना तो इकड़ा हो ही जायगा, आदमी भी तैयार समाझिये। आप रहना भी तो कुबूल करें। हम को इतना ही चाहिए।”

जो खानपान का जलधा था वह अब कार्यकारिणी सभा के रूप में परिणत हो गया। दावत खत्म हो चुकने पर मैंने चलने की बात कही। मैंने अपने सन में लडत का खाका खींच लिया; कितने लोगों को मताधिकार प्राप्त है इत्यादि बातें भी जान ली। मैंने एक महीने उधर जाने का निश्चय भी कर लिया।

इस प्रकार ईश्वर ने दक्षिण अफ्रिका में मेरे स्थायी रूप से रहने की नींव डाली और स्वाभिमान की लडत का बीजारोपण किया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ा



## हिन्दू-मुसलिम ऐक्य दल

हाल ही में जेम्स मुहम्मद जहुदीन मकई ने, बंगलोर की नारी-शारदा-समिति में एक भाषण दिया था। एक भाई ने उनके मनोरंजक भाषण की एक प्रति मेरे पास भेजने की कृपा की है। मैं उसका कुछ अंश नीचे देता हूँ:—

“हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य के लिए की हुई सेवा के समान पवित्र दूसरी समाज-सेवा नहीं है, क्योंकि इससे केवल भारतमाता को ही लाभ नहीं पहुँचता है, बल्कि मानवजाति को भी। भारतवर्ष को इन दो बड़ी २ कौमों में अनेक्य और घृणा के बीज बोने से बच कर दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता।

“यदि हिन्दुओं और मुसलमानों के ईश्वर अलग २ होते तो इन नीचे गिरानेवाले अपमान-जनक दंगों की बात समझ में भी आती, परन्तु ईश्वर अलग २ तो हैं नहीं। दोनों उसी एक ईश्वर की पूजा करते हैं और तौ भी उसी ईश्वर के नाम से, मसजिदों के आगे बाजा बजाने की सी तुच्छ बात को लेकर अपना कर्तव्य भूल जाने और एक दूसरे को मार, डारने को तैयार हो जाते हैं।

“किसी पहुँचे हुए सूफी फकीर ने गा कर ईश्वर से कहा है— ‘हिन्दुओं ने कोशिश की और तुम्हें मूर्ति में पाया। पारसी, पवित्र अग्नि के सामने तुम्हारा ही गुणानुवाद करता है। नास्तिक ने भी तुम्हें प्रकृति में देखा है। कोई भी तुम्हारी हस्ती से इंकार अब तक नहीं कर सका है। इसलिए, हिन्दू और मुसलमान आज जिस प्रकार लड़ रहे हैं, यह पागलपन नहीं तो मूर्खता जरूर है। यह जान लेना ही होगा कि इस्लाम, संलामत और तरकी का पैगाम लेकर आया था, लड़ाई का डंका बजाता हुआ नहीं। खुदा के सभी पैगम्बरों और नबियों को यह जानता है। यह अकेला ही मजहब है जिसने “खुदा की रब्बानियत और इन्सान की अखबत” के उमूलों को अमली शकल दी है और सारी इन्सानियत को मदेनजर रखा है और सब किसी को एक ही जिस्म के अलग २ अजो समझा है और बतलाया है कि किसी दूर के अजों को भी तकलीफ पहुँचने से सारे जिस्म को बेचैनी हो जाती है। संसार के किसी भी हिस्से में कोई भी मुसलमान इन पाक उमूलों के खिलाफ यदि कोई काम करे तो इससे हर एक सच्चे मुसलमान को शर्मिन्दा होना चाहिए और वह शर्मिन्दा होता ही है।

“पवित्र हिन्दूशास्त्र भी इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं और हिन्दू-धर्म, उनके अभ्यास और पालन की आज्ञा देता है। हिन्दुओं और मुसलमानों को चाहिए कि वे संगठित होवें, किन्तु आत्मरक्षा के लिए नहीं—यह बहुत ही तुच्छ आदर्श है जो गिरते गिरते, आक्रमण, असहनशीलता और उकसाने का रूप धारण कर लेता है—किन्तु उनके अपने ही सहधर्मियों के, दूसरे धर्मवालों पर आक्रमण तथा अत्याचार करके, अपने २ धर्मों के उच्च सिद्धान्तों की अवहेलना को रोकने के लिए। वस, आज से हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य का पवित्र दल बन जाय और उसके सदस्य हिन्दू और मुसलमान स्त्री पुरुष बनें, जिस में गडबडी के पहले रक्षण के प्रकट होते ही मुसलमान अपने कुटुम्ब और मसजिदों की चिन्ता न करें, बल्कि अपने सहधर्मियों के हाथों अपनी जान देकर भी, हिन्दुओं के घरों और मन्दिरों की हिफाजत की पिक करें और हिन्दू भी मुसलमानों के घरों और मसजिदों की रक्षा के लिए ठीक यही करें। हर एक हिन्दुस्तानी माता को यह देखना चाहिए कि उसके बच्चे, इस पवित्र काम के लिए

अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। सभानेत्री महोदया को इसका विश्वास था कि यह कठिन समस्या हल हो सकेगी और इन नामधारी नेताओं और साम्प्रदायिक हित के रक्षकों का पेशा बन्द हो जायगा।”

ये भाव सराहनीय हैं, परन्तु इन महानुभावा महिला के बताये हुए दल के बनाने लायक वातावरण तो आज नहीं कहीं दिखाई देता है।

( अ० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी

## मजबूरी क्यों?

एक पत्र-प्रेषक अपने सूत के फुस्सेपन को वाजिब ठहराते हुये लिखते हैं—“हम को बाजार से रही रुई अच्छी रुई के भाव खरीदनी पड़ती है”

इसमें मजबूरी की कौन सी बात है? निस्सन्देह, यदि अच्छी कपास अमुक स्थान पर नहीं मिल सकती है तो उस स्थान से मँगवाना चाहिये जहाँ पर वह होती है।

बंगाल विद्रोह और उड़ीसा वर्धा से अच्छी रुई मँगवाते हैं; मैचैस्टर, हिन्दुस्तान, उमंडा, मिन्न, और अमरीका से मँगवाता है। तो फिर पत्र-लेखक महाशय अपने निकटवर्ती जिले या सूने से क्यों नहीं मंगा सकते हैं? अ० भा० च० संघ के सदस्यों को खराब सूत कातने का कोई कारण नहीं है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि ‘जो काम किया जाने योग्य है, वह भली भाँति धिया जाना चाहिये।’ केवल चरखा चलाने में ही खादी के प्रति प्रेम की इतिश्री नहीं होती है; कातना तो कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में अथवा उसके अर्थशास्त्र में पहला कदम है।

## आत्मसंयम का महत्व

अ० इ० में श्रुत एस० के० जैन नामक एक सज्जन ने निम्न-लिखित पत्र भेजा है।

“अनीति की राह पर” शीर्षक लेख के अन्तिम अध्याय में आप लिखते हैं:—“प्रजनन को रोकने के लिए कृत्रिम उपायों से युक्त विषयभोग उसकी जिम्मेवारी को समझ कर किये हुए संभोग की अपेक्षा, कहीं अधिक शक्ति हर सकता है।”

आप यह उम्मीद भी रखते हैं कि नवयुवक इस भ्रम में न पड़ जावेंगे कि जब तक वे सन्तानोत्पत्ति से बचे रहें, तब तक के भोग-विलास से उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती—निर्बलता नहीं आती।

इस विचार के समर्थन में हम मि० हर्बर्ट वारेन की, जैन धर्म पर लिखित किताब से, यह प्रमाण पेश कर सकते हैं:—

“श्वास-विज्ञान से हमें मालूम होता है कि प्रत्येक काम में हमें श्वास की शक्ति का व्यवहार करना पड़ता है। शक्ति का माप, श्वास की गिनती से होता है—हमारा स्थूल साधारण श्वास नहीं, किन्तु सूक्ष्म श्वास।

“जैन दर्शन के मतानुसार, यदि समाधि में चार, तो शुभ विचारों में छ, मौन में दस, बोलने में बारह, सोने में सोलह, धूमने में बाईस और विषय संभोग में छत्तीस सूक्ष्म श्वास खर्च होते हैं।

“जैन दर्शन के मतानुसार (और दर्शनों का भी यही मत है) वीर्य को शक्ति में परिवर्तन किया जा सकता है, जिसका आध्यात्मिक उपयोग भी हो सकता है। वस्तुतः, इससे बलवती इच्छा-शक्ति मिलती है।



“जैन-धर्म की एक विशेष शिक्षा और है, जो किसी दूसरे दर्शन में नहीं है। वह यह कि, प्रत्येक संयोग के अनुसार पर नो लाख बहुत ही सूक्ष्म, मनुष्य के आकार के, पांच ज्ञानेन्द्रियों वाले, परन्तु मन के बिना, जन्तु नष्ट होते हैं।

विषय-भोग एक ऐसी मोहक शक्ति है जिसके अन्वकार में हम सम्पन्न मिथ्य और सत्कर्तव्य को बिल्कुल भूल जाते हैं। बुद्धि और चित्त उस समय नहीं रहते।

“जैन दर्शन का यह भी मत है कि अतिशय कामी पुरुष के विचारों, योजनाओं और मनोरथों को सफलता नहीं मिलती।”

(श० ६०)

मो० क० गांधी

## पशुवध

उसके कारण और उपाय

(९)

अब बंबई के दोरों की दुर्दशा देखिये।

सर हेरोल्ड मेन ने बंबई के अस्तवलों का जो दृष्टिपूर्ण वर्णन किया है, उसे हम देख चुके हैं। हम यह भी जान गये कि इंग्लैण्ड और यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) की अपेक्षा, बंबई में, १०, १२ गुना मँडंगा दूध मिलता है। इतना मँडंगा होने पर भी दूध होता कैसा है? १४०० नमूनों की जांच कर के डाक्टर जोशी ने देखा कि उनमें ८० फी सेंकडे में पानी मिला हुआ था और ९० फी सेंकडे में गंदगी के कारण कीटाणु भरे हुए थे। अब यह दूध भी फी आइमी रोजाना ३ अघोल में कुछ ही ज्यादा (१ अघोल २३ तोले के बराबर होता है) पड़ता है। वही दूध इंग्लैण्ड में १० और यूनाइटेड स्टेट्स में २० अघोल पड़ता है। सन् १९१५ में बंबई में दूध की रोजाना खपत थी ३,००,००० सेर और १९२२ में वह घट कर रह गयी २,२९,९७० सेर। परिणाम यह होता है कि बंबई में पैदा होनेवाले बच्चों में से आधे तो साल भर के भीतर ही मर जाते हैं और साधारण मरण-संख्या भी ऊँची ही रहती है।

मद्रास और कलकत्ते में गोरों पर अत्याचार होता है। बछड़े मार डाले जाते हैं। यही दशा बंबई में भी है। डा० जोशी लिखते हैं:

“बड़े शहरों में विषुकी गायों की कल होती है। इसलिए देश में अच्छे दूध देनेवाले दोरों की एक बड़ी संख्या घटजाती है। बंबई में बहुत गायें भैंसों विषुकती हैं। इन्हें या तो कसाई के हाथ बेच डालते या गांवों में चरने भेज देते हैं। बंबई के प्रधान पशु-निरीक्षक का कहना है कि बंबई की विषुकी गाय भैंसों में से फी सेंकडे ७५ कल हो जाती है और केवल सेंकडे पीछे २५ ही गांवों में जाती है। सन् १९१४-१५ में बाँदरा में ४४,१७७ गायों और ८,५७४ भैंसों की कल हुई। इनमें से ३००० गायें और भैंस तो सभी की सभी, बंबई के ही तबेलों में से आयी हुई थीं। उतने ही समय में कुला में ५००० भैंसों कल हुई। इस गिनती से, बंबई में जितनी भैंस हैं, उनमें से सेंकडे पीछे ४० से ४५ तक कसाईखाने को जाती हैं। इसीलिए देश में दुधार गोरों की इतनी कमी रहती है।”

सन् १९१२ में सरकार ने बंबई इलाके के दोरों की दशा के विषय में मि० लुएट की लिखी हुई किताब प्रकाशित की थी। उसमें वे कहते हैं:

“सूत की भैंस, जब लगती है तब बंबई का ग्वाला उसे लाता है और विषुक जाने पर कसाई के हाथ बेच देता है।

मुख्यतः चर्बी और चमड़े के लालन से ही गाय कल होती है। मांस को सुखा कर ब्रह्मदेश को भेजते हैं।”

पूना के कृषि विद्यालय के प्रोफेसर नाइट और होन ने बंबई में “दूध का भंडा” शीर्षक विषय पर १९१३ में एक लेख लिखा था। नाइट में दोरों को रखने से क्या सुझाव होता है, इस बात को वे इस प्रकार दिखलाते हैं:

“मूल्यवान् खाद रथ्य बरबाद होती है। गोरु को हरियारी (हरा चारा) मिलती नहीं है, और जो कुछ मिलती भी है वह भी दूर से आती है इसलिए वह चारा न तो ताजा और न हितकारी ही होता है। हरियाली का भोजन मिल नहीं सकता, इसलिए जानवर को सूखे घास और खूा अनाज देते हैं। इससे उसकी तबीयत बिगड़-जानी है। इसके अलावा, बहुत देर तक एक जगह पर ही बंधे रहने और घास वा मिट्टी रखे बिना ही पत्थर पर बैठे जाने के कारण कोई जानवर शरीर से सुखी नहीं रह सकता। खिलाने का खर्च इतना अधिक होता है कि विषुकी गाय भैंसों वा छोटे २ बछड़ों को रखा नहीं जा सकता और उन सब के कसाई के घर चले जाने से दोर की उत्तम औलाद भी बरबाद हो जाती है।”

इसी लेख के अन्त में, वे लेखक कहते हैं:

“बंबई और कलकत्ते ऐसे बड़े शहरों में भैंस को बेच कर ग्वाला, तुरत की व्याथी हुई गाय को लाता है। बछड़े को भूखा रख कर या किसी और तरह से वह उसे मार डालता है। जब तक गाय के खिलाने का खर्च निकलने लायक दूध होता रहता है, तब तक वह उसे दुहता है और बाद में कसाई के हाथ बेच देता है। इस प्रकार दुधार गोरु की संतति का भी असमय में ही अन्त हो जाता है। देशावर से बंबई में दोर लाने में बहुत खर्च पड़ता है। इस खर्च को निभाने के लिए जो अच्छी से अच्छी गाय मिल सकें, उसे ही रखने में इन लोगों को नफा है। इस समय अच्छी से अच्छी गाय भैंस की संख्या बहुत घट गयी है, यहाँ तक कि अन्तिम दश वर्षों के भीतर इनका भाव तिगुना बढ़ गया है।”

इन लेखकों ने यह भी बतलाया है कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए।

“बंबई ऐसे शहरों में, सार्वजनिक उपयोग के दोरों का रखना कानूनन बंद कर दिया जाय। उसके बाद दूधवाले को इतनी दूर जाना पड़े, जहाँ हरा चारा मिले सके, और वह इतना सस्ता हो कि विषुकी गाय और बछड़ों को भी पाला जा सके। घर घर दूध पहुँचाने के लिए इन लोगों को सहयोग पद्धति स्वीकार करनी पड़े। इतना होने से — दूध के नियंत्रण का काम सरल हो जाय, दूध उत्पन्न करने और पहुँचाने का खर्च कम पड़े, दोर का खर्च भी कम लगे, दूध स्वच्छ मिले और देखरेख का काम सहज हो जाय — ये सब बातें हो सकती हैं।”

बड़े शहरों में दूध पहुँचाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी। इसकी रिपोर्ट सन् १९१५ में छपी। उसका थोड़ा सा अंश नीचे दिया जाता है:

“बंबई में एक साथ ही २०,००० तक भैंसें रहती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्यतः गुजरात, काठियावाड़ से बंबई में वर्ष में ३०,००० भैंसे लायी जाती हैं। इन ३०,००० में से साधारणतः ३००० तो निरक्षरी होती हैं। परन्तु साक्षर होता है कि वस्तुतः इसकी अपेक्षा बहुत बड़ी संख्या कसाईघर में जाती है। १९१४-१५ में बंबई के तबेलों से कुल ११,५००



भैंस कलखाने को गयीं। इस से मालूम होता है कि बम्बई में प्रायः हर साल १०,००० उपयोगी भैंसे मारी जाती है।

“शहर के ग्वालों को भैंस का दूध चाहिए। पंढवे को पालने में कुछ लाभ नहीं है, इसलिए उन्हें पंढवे न चाहिए। अतएव सेवा की कमी से उसे वे मर जाने देते हैं। कभी कभी उसे जीते ही कसाईखाने में पहुंचा आते हैं। इस प्रकार देश की उत्तम भैंसों के पंढवे, बड़ी संख्या में नष्ट हो जाते हैं।”

नडियाद की ‘इण्डियन डेरी सप्लाइ कम्पनी’ के मि० रीड्स कहते हैं:

“डोरों की निकासी, बच्चों के कल और नाश के कारण ऊँची जाति के डोरों का सत्यानाश होता जाता है। इस देश में बछड़े को माँ के पास ही दूध पीने देने की रीति है, इस लिये दुधार डोर के साथ २ सप्ताह बछड़ा भी जाता है। बारह वर्ष पहले अच्छी सिन्धी गाय ८० रुपये में मिलती थी। परदेश मेजने के कारण उनकी इतनी कमी हो गयी है, कि आज १८०) देने पर भी वसी अच्छी गाय नहीं मिलती। उस समय दिल्ली की अच्छी भैंस १२०) में आती थी और आज २००) में मिलती है। इस जाति की भैंस की भी घटती होती जा रही है, क्योंकि यह कलकत्ते बम्बई आदि स्थानों को मेजी जाती है और वहां दूध सूख जाने पर कसाई के हाथ जाती है।

“यदि डोरों का नाश रोकना है तो दुधार पशु को कल बंद करना चाहिए और बिसुकी गाय भैंस को गांवों में पहुंचाने के लिए रेल का भाड़ा बहुत कम रखना चाहिए।”

गुजरात की तथा दिल्ली की भैंस का मिलान करते हुए मि. स्मिथ लिखते हैं:—

“गुजराती भैंस बम्बई के ग्वाले के एक काम में नहीं आती। वह काम यह है कि कसाई के हाथ बेचते समय उससे दिल्ली की भैंस के बराबर तफा नहीं होता है। इन लोगों को तो ऐसा पशु चाहिए कि जो ठीक २ दूध देवे; और, बिसुकने पर कसाई के हाथ दे डालना तो है ही, इसलिए शरीर से भी भारी होवे। गुजराती भैंस की बनिस्वत दिल्ली की भैंस बहुत अधिक मांस वाली होती है।

“ऐसा सुनने में आता है कि गुजराती भैंस की नस्ल नेस्त-नबूद होती जा रही है। एक समय की प्रख्यात घांहीवाल गाय जिस प्रकार नाबूद हो गयी, उसी प्रकार यह गुजराती भैंस भी न हो जाय, इसका सरकार खयाल रखेगी—ऐसी हमें आशा है।”

सन् १९१९ में हाफ्टर मैन ने बम्बई में दुधार गायों के तबेलों पर एक रिपोर्ट लिखी थी। उसी वे लिखते हैं:—

“बम्बई ऐसे शहर में बिसुकने पर गाय कल हो जाती है। अब ऐसे अच्छे डोर यदि इतनी संख्या में उत्पन्न भी होते जाते तो भी पूरा दूध न मिलने की चिंता न होती। परन्तु जितनी खपत है, उतने पशु उत्पन्न नहीं होते। इसलिए अच्छे पशु का मिलना बहुत कठिन होता जाता है, और दाम भी महंगा होता जाता है, इसलिए दूध का भाव तो बढ़ ही चढ़ेगा।”

सन् १९२० में सर पुष्पोत्तमदास ठाकुरदास ने बम्बई की धाराबमा में इस आशय का एक प्रस्ताव पास कराया था कि देश के डोरों की खोज कर के उनकी कल और उनके निकास के ऊपर नियन्त्रण करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए सरकार एक समिति नियुक्त करे। इस प्रस्ताव को सभा में उपस्थित करते समय उन्होंने कहा था:—

“बम्बई के कार्पोरेशन को इस सम्बन्ध में मैने पत्र लिखा था और म्युनिसिपल-कमिश्नरी की रिपोर्ट से बतलाया था कि बम्बई शहर में, हर साल १०,००० उपयोगी भैंसों की कल होती है। इसे रोकना सरकार का काम है या प्रजा का, इस झगड़े में पड़ने की हमें कोई जरूरत नहीं है। परन्तु यदि प्रजा आगे आ कर इस कल को न रोके, तो सरकार को ही ऐसी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए कि जिससे ये दुधार पशु कलखाने न जाने पावें और बिसुके जानवरों के लिए ग्वाले को को दूसरा प्रबन्ध करना ही पड़े।”

सन् १९२४ में मि० कोठावाला ने लिखा था:—

“१९२१ में बांधरा में ११,५३६ भैंसे कल हुईं। फुल में भी लगभग इतनी ही भैंसे कल हुईं। ये सब बम्बई तबेलों में से ही आयी थीं। इनमें बहुत सी तो केवल दूसरी-तीसरी ब्यान की ही थीं। और अपनी जवानी में ही मारी गयीं।

हमारे अन्तिम गवाह, बम्बई के म्युनिसिपल कमिश्नर मि. वलेटन हैं। इन्होंने सन् १९२४ की १५ वीं दिसम्बर के कार्पोरेशन को इस आशय का पत्र लिखा था कि:—

“आज बम्बई में दूध महंगा मिलता है और अविध्य भय है कि, इससे भी महंगा मिलेगा। इसका एक ही कारण यह है कि डोरों को शहर के ही बच में रखा जाता है। दूध को महंगो के दो कारण हैं:—(१) डोर को खिलाने बहुत खर्च लगता है, (२) डोर की मूल कीमत बहुत प्यारी गयी है।

डोर को कृत्रिम दशा में रखते हैं, इसलिए उससे पूरा दूध लेने के लिये उसे महंगा खाना देना पड़ता है। यदि वे स्वाभाविक दशा में रखे जायें, तो ऐसा महंगा खाना कभी न देना पड़े। इसके अलावा जहां चारा उपजता है वहां से बहुत दूर शहर लाना पड़ता है। इतनी दूर से चारा लाने में खर्च लगता है। बम्बई जैसे शहर में चारा इकट्ठा कर रखने में भी काफी खर्च पड़ता है। उससे खाने का खर्च बढ़ जाता है।

“इसकी अपेक्षा भी अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि डोर की मूल कीमत बहुत घट गयी है। प्रचलित चाल के अनुसार, बिसुक जाने के बाद गाय को कसाई के हाथ बेचने के सिवा ग्वाले के पास कोई चारा रह नहीं जाता। कसाई से उसे जो दाम मिलता है, उसमें और मूल कीमत में बहुत अन्तर होता है। इसलिए उसे यह घटी दूध के दामों में से ही पूरी करनी पड़ती है। डोर यदि अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहे, और फिर दूध दुहने पर पूरा आयु भोग कर मरे तो इस आफत से बच सकते हैं। अभी बम्बई में आने वाले अन्य पशुओं की कीमत तो बहुत बढ़ गयी है, परन्तु बिसुकी गाय का भैंस की कीमत उसी हिसाब से नहीं बढ़ी है। दूध की महंगाई यह एक विशेष कारण है। यदि शहर में से तबेले बिलकुल न दिये जायें तो दूध के भाव के और भी चढ़ते जाने खतरा लगा ही रहेगा।

“यह तो बम्बई की बात हुई। किन्तु बम्बई में आने वाले उपयोगी पशु के असमय में ही कल हो जाने से सारे देश का स्वाभाविक धन निरन्तर घटता ही जाता है। यदि शहर तबेला न हो, तो शागद ही किसी उपयोगी पशु की कल हो सके।”

(नवजीवन)

वालजी गोविन्दजी देसाई



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ४ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, भाद्रपद सुदि २, संवत् १९८३

गुरुवार, ९ सितम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

सारांगपुर सरकीगिरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १७

ठहर गया

सन् १८९३ में नैटाल में हिन्दुस्तानी कौम के अग्रगण्य नेता सेठ हाजी मुहम्मद हाजी दादा गिने जाते थे। सांपत्तिक स्थिति में सब से बढ कर तो सेठ अबदुल्ला हाजी आदम थे, लेकिन सार्वजनिक कामों में वे और अन्य लोग सेठ हाजी मुहम्मद को ही प्रथम स्थान देते थे। इसलिये अबदुल्ला सेठ के मकान पर जो सभा हुई और जिसमें 'फ्रेन्चाइज बिल' के विरोध करने का प्रस्ताव पास किया गया, उस सभा के सभापति सेठ हाजी मुहम्मद ही बनाये गये थे। स्वयंसेवकों के नाम लिखे गये। इस सभा में नैटाल में पैदा हुए हिन्दुस्तानियों— ईसाई जवानों— को भी बुलाया गया था। मि० पाल (बरबन कोर्ट के दुभासिया) और मि० सुभान गाबफ्रे के, जो कि मिशन स्कूल के हेडमास्टर थे, हाजिर रहने के कारण उनके प्रभाव से ही ईसाई जवानों की तादाद इस सभा में अच्छी थी। इन सब लोगों ने अपने २ नाम स्वयंसेवकों में लिखवा दिये। व्यापारी लोग तो थे ही। उनमें जानने लायक सज्जन ये थे:— सेठ दाउद मुहम्मद, मुहम्मद करीम कमरुद्दीन, सेठ आदमजी मिर्जाखान, ए० कोलन्दावेल पीले, सी० लछोराम, रंगस्वामी पडियाचि, आमद जीवा इत्यादि। और पारसी सुस्तमजी तो मौजूद थे ही। कलकत्ता लोगों में से पारसी भाणिकजी, जोश नरसीराम, वगैरह 'दादा अबदुल्ला कम्पनी' आदि बड़ी बड़ी कोठियों में नौकर थे। इन सब को सार्वजनिक कार्य में अपने शरीक होने से बड़ा आश्चर्य हुआ। इस तरह, सार्वजनिक कार्य में शामिल होने के लिये निमन्त्रित किये जाने का उनका यह पहला ही अनुभव था। आयी हुई विपत्ति के सामने ऊंच नीच, बड़े छोटे, मालिक नौकर, हिन्दू मुसलमान, पारसी, ईसाई, गुजराती, मराठी, सिंधी इत्यादि का सब मेद भुला दिया गया। सब के सब मादरे-हिन्द के बच्चे और सेवक बन गये।

बिल दूसरी दफा सुनाया जा चुका था या सुनाया जाने वाला था। उस प्रसंग पर दिये गये भाषणों में आक्षेप किया गया था कि 'चूँकि इतने सख्त कानून का जरा भी विरोध हिन्दुस्तानी लोगों ने नहीं किया, और चूँकि वे उसके बारे में लापरवाह रहे,

इसलिए वे मताधिकार के लिए नालायक सिद्ध हो चुके हैं।'

मैंने सारी परिस्थिति सभा को समझा दी। पढ़ते तो, यह त किया गया कि धारासभा के प्रमुख को उस बिल पर अधिक विचार स्थगित रखने के लिए एक तार दे दिया जाय। फिर, उसी भाव का एक तार मुख्य सचिव सर जान रौबिनसन को भी दिया गया, और वैसे ही एक तार दादा अबदुल्ला के मित्र की हैसियत से मि० एसकोम्ब को भी दिया गया। प्रमुख ने जवाब में यह तार दिया कि बिल पर दो दिनों तक बहस मौकूफ रखी जायगी। वे सब राजी हो गये। धारासभा को मेजने के लिये अर्जी तैयार की गयी। उसकी तीन प्रतियां मेजनी थीं। अखबारों के लिए भी एक प्रति तैयार करनी थी। अर्जी पर, जितने हो सकें उतने, दस्तखत करवाने थे। यह सब काम एक ही रात में कर लेना था। वे शिक्षित स्वयंसेवक और दूसरे लोग भी करीब करीब सारी रात जागते रहे। उन लोगों में एक सुन्दर अक्षर लिखने वाले थे, जिनका नाम मि० आर्थर था। वे वृद्ध थे। उन्होंने खूबसूरत हरफों में उस अर्जी की एक नकल की। अन्य भाइयों ने और नकलें तैयार कीं। एक भाई पढ़ता जाता था और चार पांच लिखते जाते थे। इस तरह पांच प्रतियां एक साथ ही तैयार हो गयीं। व्यापारी स्वयंसेवक लोग अपनी अपनी गाड़ियों में बैठकर या तो अपने ही खर्च से किराये की गाड़ी कर के दस्तखत कराने के लिए निकल पड़े।

अर्जी मेज दी गई। वह समाचारपत्रों में प्रकाशित हुई और उसपर अनुकूल टीका भी हुई। धारासभा पर भी उसका अच्छा असर पड़ा। उसकी चर्चा भी खूब हुई। बिल का पक्ष लेने वालों ने अर्जी में दी हुई दलीलों का जवाब दिया; वे सब उनकी दृष्टि में लचर थीं। बिल तो पास हो ही गया। यह सब जानते थे कि आखिर नतीजा तो यही होगा। लेकिन इस आन्दोलन से कौम में एक नया जीवन अवश्य आ गया। सब समझ गये कि हम एक कौम हैं और न सिर्फ व्यापारिक हकों के लिए, बल्कि कौमी हकों के लिए भी, लड़ना हमारा धर्म है। इस समय लार्ड रिपन उपनिवेशों के प्रधान थे। उनके पास एक जबर्दस्त अर्जी मेजने का इरादा किया गया। इसमें बहुत से दस्तखत लेने थे। वह एक दिन का काम तो था नहीं। उसके लिए भी स्वयंसेवक चुने गये और सब के सब कार्य के लिए कटिबद्ध हो गये।



मैंने अर्जी तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया। जो साहित्य हाथ में आया, वह सब पढ़ लिया। हिन्दुस्तान में भी हमें एक किस्म का फ्रेन्चाइज प्राप्त है और यहाँ भी होना चाहिए—इस प्रकार की संवैधानिक दलील को, तथा हिन्दुस्तानियों को मताधिकार देने में कोई हानि नहीं है, क्योंकि उनकी तादाद यहाँ बहुत कम है—इस प्रकार की भी व्यावहारिक दलील को मैंने उस अर्जी का केन्द्र बनाया था।

अर्जी में दस हजार दस्तखत कराये गये। इतने दस्तखत कराने में १५ दिन लगे। नैटाल ऐसे प्रान्त में घूम फिर कर इतने दस्तखत इतने अल्प समय में कराना कोई हँसी खेल न था। सब कार्यकर्ता ऐसे कार्य से अपरिचित थे। और इस कारण कि बिना समझे किसी से दस्तखत न कराने का निश्चय किया जा चुका था, खुमसून लायक स्वयंसेवक ही उस कार्य के लिए मेज़ने पड़े थे। नैटाल के गाँव घर दूर पर बसे हुए थे। ऐसे कार्य को बड़ी सावधानी से ही कोई शीघ्रता से कर सकता था। और ऐसा ही हुआ भी। सब भाइयों ने उत्साह के साथ अपना कार्य किया, लेकिन सेठ दाउद मुहम्मद, पारसी हस्तमजी, आदमजी मियाँखान और आमद जीवा की मूर्तियाँ मेरी आँखों के सामने आज भी नाच रही हैं। वे लोग बहुत से दस्तखत करवा लाये। दाउद सेठ अपनी गाड़ी में बैठे हुए दिन भर फिरते रहे। किसी ने अपना जेब खर्च तक न मांगा।

दादा अबदुल्ला का मकान मानो धर्मशाला या सार्वजनिक कार्यालय बन गया था। शिक्षित सहायक तो मेरे साथ रहते ही थे। उन सब का तथा अन्य कार्यकर्ताओं का भोजन दादा अबदुल्ला के घर पर ही हुआ करता था। इस तरह से, सब लोग काफी खर्च कर रहे थे।

अर्जी मेज दी गई। उसकी एक हजार प्रतियाँ छपवायी थीं। उस अर्जी के जरिये से हिन्दुस्तान के लोगों को नैटाल की परिस्थिति का परिचय पहलेपहल हुआ। जिन जिन नेताओं और अखबारों को मैं जानना था, उन २ के पास भी एक एक प्रति मेज दी गयी।

'टाइम्स ऑफ इन्डिया' ने अपने एक अग्रलेख में हिन्दुस्तानियों की माँग का अच्छा अनुमोदन किया। एक एक प्रति विलायत के सभी दलों के नेताओं और समाचार पत्रों को मेजी गयी। वहाँ 'लंडन टाइम्स' ने उसका समर्थन किया। उस बात से बिल के नामांज हो जाने की कुछ आशा हुई।

अब तो मेरे लिये नैटाल छोड़ना असंभव हो गया। लोगों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया और नैटाल में ही स्थायी रूप से ठहर जाने का मुझसे अतिशय आग्रह किया। मैंने अपनी कठिनाइयाँ उन्हें बतला दी। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि सार्वजनिक फंड में से खर्च न लूँगा। मुझे अलग मकान रखने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। और 'मकान भी अच्छा तथा अच्छे मुहल्ले में होना चाहिये'—यह भी उस समय मेरा ख्याल था। मेरा यह ख्याल भी था कि कौम की इज्जत बढ़ाने के लिए अन्य बैरिस्टर्स के तौर पर ही मुझे रहना चाहिए। मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि ऐसा घर २०० पौंड सालाना से कम में मैं न चला सकूँगा। मैंने निश्चय कर लिया कि मेरा ठहरना तभी सम्भव है जब उतनी रकम तक का कानून-सम्बन्धी काम देने का मुझे इम्तीनान दिला दिया जाय। और मैंने अपना यह निश्चय उन लोगों से प्रकट किया।

मेरे साथियों ने मुझ से कहा कि बेहतर होगा कि आप—सार्वजनिक कार्य के लिये ही सही—इतनी तन्ख्वाह लेते रहें और

यह रकम इकट्ठी करना हमारे लिए आसान बात है। वकालत के काम में जो कुछ मिल जाय करे वह तो आपका है ही।

मैं बोला :—

“मुझसे इस तरह तन्ख्वाह नहीं ली जा सकती है। जो सार्वजनिक कार्य मैं करूँगा, उसकी कीमत भी तो मैं इतनी नहीं समझता हूँ। उसमें मुझे कोई बैरिस्टरी तो करनी नहीं पड़ेगी। मुझे तो आप ही लोगों से काम लेना है। क्या उसके लिए मैं कोई तन्ख्वाह ले सकता हूँ? एक दूसरी बात और है; सार्वजनिक कार्य के लिए मुझे आप लोगों से चंदा माँगना होगा। अगर मैं सार्वजनिक फंड में से अपने लिए भी तन्ख्वाह लूँ, तो मैं किस मुँह से आप से बड़ी बड़ी रकमें ले सकूँगा? और अन्त में हमारी नाव अटक जायगी। अपनी कौम से तो मैं ३०० पौंड से भी अधिक खर्च करवाने की उम्मीद रखता हूँ।”

“लेकिन हमने आप को अच्छी तरह से पहिचान लिया है। आप अपने लिये पैसा लेने वाले थोड़े ही हैं! और जब हम आप को रोकना चाहते हैं, तब आप के रहने का खर्च भी तो हमें ही देना चाहिये।

“यह तो आप का स्नेह और तात्कालिक उत्साह बोल रहा है। हम कैसे मान लें कि यह उत्साह और स्नेह हमेशा के लिए कायम रहेगा? मुझे तो कभी २ आप को कठोर वचन भी कहना पड़ेगा। देव जाने, उस मौके पर भी मुझ पर आपका यह स्नेह कायम रह सकेगा या नहीं, लेकिन मुख्य बात तो यह है कि सार्वजनिक कार्य के लिये तन्ख्वाह लेना मैं मुनासिब नहीं समझता। मेरे लिए तो यही काफी है कि आप सब लोग अपना वकालती काम मुझे देते रहें। आप के लिये शायद इतना भी करना मुश्किल हो। मैं गोरा बैरिस्टर तो हूँ नहीं। फिर मैं क्योंकर कह सकता हूँ कि अदालत मेरी सुनेगी ही? मुझे यह भी नहीं मालूम है कि मैं वकालत अच्छी तरह से कर भी सकूँगा। इसलिए मुझे पहले से ही मेहनताना दे रखने में आप के लिए खतरा है। तौ भी, आप का मुझे फीस देना मेरी सार्वजनिक सेवा के बदले में ही होगा न?”

इस बातचीत का फल यह हुआ कि प्रायः बीस व्यापारियों ने एक साल के लिए मुझे वर्षासन नियत कर दिया। इसके अतिरिक्त दादा अबदुल्ला मुझे बिदा करते समय जो भेंट देने वाले थे, उसके बजाय उन्होंने मुझे आवश्यक फर्निचर (कुर्सी मेज इत्यादि) खरीद दिया और मैं नैटाल में ठहर गया।

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## अनीति की राह पर

मेरे पास अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं में इस आशय के अनेक पत्र आये हैं कि मैं 'अनीति की राह पर' वाली लेख-माला को हिन्दी, गुजराती और अंगरेजी—तीनों भाषाओं में पुस्तकाकार प्रकाशित करूँ। मुझे मालूम है कि १०-१२ चिट्ठियों से तो सिर्फ़ उन दसो बारहो आदमियों की ही माँग जाहिर हो सकती हो, न कि समाज भर की। नयी २ पुस्तकें प्रकाशित करने का यह समुचित अवसर नहीं है। लेकिन एक मित्र ने हाथ बढ़ाया है और सारे नुकसान के ओढ़ने की हमारी उन्होंने भरी है। इसलिए, वह लेख-माला पुस्तकाकार में शीघ्र प्रकाशित होगी। यदि वे पत्र-प्रेषक, जिन्होंने इन पुस्तिकाओं की छपाई इत्यादि के लिए कुछ देने कहा है, अब तक अपनी वह इच्छा कायम रखे हुए हैं, तो वे कृपा कर के अपने २ चंदा मेज दें। यदि प्रतियाँ चाहनेवाले अपने नाम पहले ही से 'यंग इंडिया कार्यालय' को सूचित कर देंगे तो प्रबन्धक को यह नियत करने में आसानी हो जायगी कि कितनी प्रतियाँ छपाई जायँ। मो० क० गांधी



## टिप्पणियाँ

## विद्यार्थियों की दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी जिम्मेदारी का पूरा ख्याल है, लिखती है :—

“जब तक हमारे बच्चे वीर्य की रक्षा करना नहीं सीखते, तब तक हिन्दुस्तान को जैसे आदमियों की जहरत है, वैसे कभी नहीं मिल सकते। हिन्दुस्तान में कोई १६ वर्षों तक, लड़कों के स्कूलों का भार मुझ पर रहा है। यह देख कर मुझे क्लेश आती है कि हमारे बहुत से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लड़के स्कूल की पढाई शुरू तो करते हैं जोश ताकत और उम्मीदों से भर कर, लेकिन खत्म करते हैं शरीर से निकम्मे बन कर। गिन कर सैकड़ों बार मैंने देखा है कि, इसके कारण का पता ठेठ—वीर्यनाश, अप्राकृतिक कर्म या बालविवाह में ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लड़कों के नाम हैं। ये अप्राकृतिक कर्म के दोषी हैं और इनमें से एक भी १३ साल से अधिक का नहीं है। शिक्षक और माता-पिता, ऐसी हालत का होना गलत मानेंगे लेकिन अगर सही तरीकों से काम लिया जाय तो इस व्याधि का पता तुरत ही लग जायगा और करीब २ हमेशा ही लड़के अपना गुनाह कुबूल कर लेंगे। इनमें से अधिक लड़के कहते हैं कि यह ऐब उन्होंने स्थाने आदमियों से,—कभी कभी अपने संबंधियों से ही—सीखा है।”

यह कोई ख्याली तसवीर नहीं है। यह वह सचार्थ है, जिसे जाननेवाले स्कूलों के कितने एक मास्टर दवा जाते हैं। मैं इसे पहले से जानता था। आज से कोई आठ साल हुए, दिल्ली के किसी स्कूल-मास्टर ने मेरी तवज्जोह इस ओर दिलई थी। इसके इलाज के बारे में अब तक खानगी मैं ही मैं बातें करता आया हूँ और खप रहा हूँ। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान भर में ही परिमित नहीं है। मगर बाल-विवाह के पाप के कारण हम पर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पड़ता है। इस बहुत ही नाजुक और मुश्किल सवाल की आम चर्चा करनी जरूरी हो गयी है, क्योंकि अब से कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दता से स्त्री-पुरुष के संबंध की बातों पर विचार करना गैर मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचारपत्रों में भी इस पर बहस होते देखते हैं।

संभोग को देह और दिमाग की तन्दुरुस्ती के लिए फायदे-मन्द नैतिक और जरूरी, स्वाभाविक, समझने की प्रथा ने इस पाप की वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषों के गर्भ-निरोधक साधनों के स्वच्छन्द व्यवहार के समर्थन ने इस कामवासना के कीड़ों की वृद्धि के लिये समुचित वातावरण पैदा कर दिया है। कम-सिन लड़कों के नाजुक और संग्राहक दिमाग ऐसे नतायज बहुत जल्द निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छायें अच्छी और उचित हैं। इस मारक पाप के प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी, बलिह पाप के बराबर, उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते हैं। मेरी समझ में, सामाजिक वातावरण को पूरा २ शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह को और कुछ नहीं रोक सकता, विषय-भोग के खयालों से भरे हुए वातावरण का अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देश के विद्यार्थियों के मन पर बिना पड़े रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवन की परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घर की रचना, कितने एक सांजजिक-रिवाजों सब का एक ही असर होता है, वह है कामवासना की वृद्धि। छोटे लड़कों के लिए, जिन्हें अपनी इस पाशविक प्रवृत्ति का पता लग गया है, इसके जोर को रोकना

गैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाजों से काम नहीं चलने का। यदि नयी पीढ़ी के प्रति वे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहते हैं तो बड़ों को पहले अपने से ही यह सुधार शुरू करना होगा।

## सरासर गलत

आज, एक को छोड़ कर, दुनिया के सभी अखबार अगर बंद हो जायें तो इससे दुनिया को कुछ नुकसान नहीं पहुंचेगा। शायद उसे तो इससे सन्तोष ही होगा। अखबारों में प्रायः सभी बातों के बजाय कहानियाँ ही छपती हैं। सुलह की खातिर अगर व एक पत्र भी, जिसे एक मित्र ‘विचार पत्र’ कहते हैं, बन्द हो जाय तो भी मुझे सन्तोष ही होगा। ये विचार मेरे मन में “अमेरिका के मैसेन्जर” नामक पत्र में मेरी किसी बातचीत की रिपोर्ट छपी देख कर उठ रहे हैं। अमेरिका की दर्शन सभा का यह मुख-पत्र है। किसी दर्शन-सभा का पत्र भी सत्य के बदले गप का ही प्रचार क्यों करे—यह बात मेरी समझ के बाहर है।

मैं इस “बातचीत” का कुछ भी खयाल न करता, अगर थियासोफी-विषयक मेरे विचारों को इसमें तोबा भरवा दिया गया होता।

इसलिए ऐसी गप्पों को तो मुझे छोड़ ही देना चाहिए कि “मैं पुराने ढर्रे के कपड़े पर सूत कातता था” वा “मेरी कोठर के बाहर आम के पेड़ हैं” या इससे भी बुरी गप जो कि यह है कि “अमेरिका की अथवा अन्य बड़ी जातियों की सहायभूति से ही हम भारतवासियों को आत्मत्याग करने की, नैतिक शक्ति मिलती है।”

थियासोफी-संबंधी गप के लिए मुझे जरा जल्दी करनी चाहिए और बातों के साथ साथ मेरे मुंह से यह भी कहलाया गया है कि “थियासोफिकल सोसाइटी में मेरी श्रद्धा नहीं है, मैं उसका सदस्य तो अब भी हूँ, मगर उसके साथ सहायभूति नहीं रखता।” जो कुछ कि मैं कह सकता था, यह ठीक उसके उल्टा है। थियासोफिकल सोसाइटी का न मैं कभी सदस्य रहा हूँ और न अब हूँ, किन्तु उसके “वसुधैव कुटुम्बकम्” और तज्जन्य सहिष्णुता के सन्देश से सहायभूति बराबर रखता आया हूँ। थियासोफिस्ट मित्रों से मैंने बहुत लाभ उठाया है। थियासोफिस्टों में मेरे मित्र भी अनेक हैं। श्रीमती चैवेट्सकी, डाक्टर वेवेन्ट या कर्नल औलकौट के विषय में टीका करनेवाले चाहे जो कुछ कहें, परन्तु मनुष्यता के प्रति उनकी सेवा का मूल्य हमेशा ही ऊंचा लगाया जायगा। मेरे इस सभा के सदस्य बनने में जो बाधा रही है, उसका ठीक २ पता कुछ २ इस बातचीत से लगता है। वह है इसका गुप्त विभाग—इसकी गूढ़ता। मुझे यह बात कभी ज्ञची नहीं। मैं तो सर्व साधारण में से ही एक आदमी होना चाहता हूँ। किसी प्रकार का गुप्त मेद रखना, समानता के भाव को बाधा पहुँचाता है। खैर, मैं इतना तो मानता हूँ कि किसी भी बात के दो पक्ष संभव हैं। धर्म में कुछ गुप्त मेद रखने के सिद्धान्त के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म तो इस दोष से निश्चय ही मुक्त नहीं है। किन्तु मेरे लिए भी उसे स्वीकार करना कुछ आवश्यक नहीं है।

अपने मिलने वालों से यह अनुरोध मैंने बार बार किया है और फिर भी दुहराता हूँ कि अगर उन्हें मुझ से मिलना और हमारी बातचीत को छापना ही हो तो, वे यदि, छापने के लिए जो कुछ लिखा हो, उस सब को, संशोधन तथा मिथान के लिए मेरे पास पहले ही भेज दें तो मुझ पर उनकी यह अनुग्रह भी होगी और सत्य की सेवा भी हो सकेगी।

(५० ई०)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद सुदि २, संवत् १९८३

## अकर्म में कर्म

यदि जरा भी मुमकिन होता, या मेरी राय में ऐसा करना उचित होता तो मुझे डा० सैयद महमूद तथा अन्य मित्रों के द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक अपील की बात मान लेने में सब से अधिक प्रसन्नता होती। उस अपील में दस्तखत करने वालों का यह सोचना भूल है कि मैं किनाराकशी कर बैठा हूँ। मैंने तो एक साल के वास्ते उन साप्ताहिक कामों के लिये अहमदाबाद से बाहर जाना बन्द किया है जिनमें मेरे बिना काम चल सकता है, और वह साल तो अब खत्म होने पर आया। इतना किनारा कशी की वजहों से मैंने साल के शुरू में ही पूरे तौर पर बयान कर दी थी। उस वक्त मेरी सेहत और आश्रम की ज़रूरत ने यह लाजिमी कर दिया था कि मैं तकलीफ़देह सफ़र और मशक़त तलब मुआमलात से कुछ फ़ुरसत लूँ। यदि मैंने काउंसिल के बानों में दखल नहीं दिया, तो वह इसलिये कि कदाचित् मेरी सचि उस ओर नहीं है। और काउंसिलों के द्वारा हमको स्वराज मिल सकता है—मेरी ऐसी श्रद्धा है ही नहीं। मैंने हिन्दू-मुसलिम झगड़ों में हाथ डालना इसलिये बन्द कर दिया कि मेरा पक्का यक़ीन है कि ऐसे मौके पर हाथ डालने से नुस्सान ही पहुँच सकता है। अब रहे अस्पृश्यता, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ, और चरखा। इन तीनों के लिये मैं जितना कर सकता हूँ उतना कर ही रहा हूँ।

इसलिए मैं उन मित्रों से यह कहने का साहस करता हूँ कि जो उन्हें मेरा अकर्म प्रतीत हो रहा है, वह वास्तव में एकाम्र कर्म है। इन मित्रों की निराशा मुझे किसी भी रूप में पसंद नहीं है। ये हिन्दू-मुसलमान के झगड़े किसी अगम्य रीति से स्वराज के लिये लड़त ही हैं। उन दोनों में से हर एक फ़रीक़ स्वराज्य की आभार से आगाह है। इन दोनों में से हर एक की यह कोशिश है कि वह स्वराज के आने के समय तक तैयार और लायक निकले। हिन्दू सोचते हैं कि हम मुसलमानों की बनिस्बत जिस्मानी ताक़त में कमज़ोर हैं और मुसलमान ख़याल करते हैं कि हम शिक्षा और भौतिक ऐश्वर्य में कम हैं। वे दोनों वही कर रहे हैं जो कि आज तक कमज़ोर लोगों ने किया है। यह लड़ाई चहे जितनी अशुभ क्यों न हो, पनपने की निशानी है। यह अंग्रेज़ों के 'वॉर्स आफ़ दी रोज़ेज़' की तरह घरेलू लड़ाई है। उससे एक बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र तैयार होगा। ख़ुरेजी से एक दोस्त दवाघन १९२० में बनाई गयी थी, लेकिन हम उसे ज़ब्त न कर सके। लेकिन लाचारी और ग़ैर मर्दानगी से तो ख़ुरेजी अच्छी ही है।

यहां तक कि मोतीलालजी तथा लालाजी के बीच में जो भड़ा द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है, वह भी उसी लड़त का एक खंड है। हिन्दुस्तान की आजादी के दुस्मनों को इन तफ़रक़ात पर फूले न समाने दो। इसके बहुत क़ल्ल कि उनका यह खुशियाँ मनाना ख़तरा हो, ये देशभक्त फिर एक ही झंडे के नीचे कम करते हुए दिखाई देंगे। ये दोनों घज़न देश के प्रेमी हैं। लालाजी को

जातीय दृष्टि से काम करने से बंद कर और कुछ चारा नहीं दिखाई देता। पंडितजी को इसकी बू तक से चिढ़ है। यह कौन कहेगा कि इनमें से फलां ठीक कह रहा है? दोनों प्रवृत्तियों प्रचलित वायुमंडल की प्रतध्वनि मात्र हैं। लालाजी, जो कि राजकीय क्षेत्र में उतरते ही स्वराज शब्द जिह्वा पर रखे हुए आये थे, आज उससे घृणा कैसे कर सकते हैं? उनका विचार जातीय दृष्टि रख कर ही स्वराज तक पहुंचने का है, क्योंकि उनकी धारणा है कि यह हमारे विकास में अनिवार्य श्रेणी है। पंडितजी का ख़याल यह है कि यह राष्ट्रीयता के रास्ते को बन्द करने वाली चीज़ है और इस कारण वे उस पर तबज़्जोह देना नहीं चाहते—ठीक इसी भांति जिव भांति कि मनोविचार पर प्रभाव डाल कर उपचार करनेवाले, यह देखते हुये कि निरोगता न कि रुग्णता जीवन का नियम है, रोग पर ध्यान नहीं देते। राष्ट्र का काम न तो सर अब्दुर रहीम और न इकीम साहेब अजमलख़ां के बिना चल सकता है।

सर अब्दुर रहीम जिन्होंने कि गोखले के साथ साथ, जब कि वे इसलिंग्टन कमीशन के सदस्य थे, गुरुतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देश के दुश्मन नहीं हैं। यदि उनका यह ख़याल है कि हिन्दुओं के साथ मुसलमानों का बराबरी ढ़ें पर स्पर्धा करने के बिना मुक्त तरक्की नहीं कर सकता, तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है? मुमकिन है कि वे ग़लत तरीके अख्तियार किये हुये हों, लेकिन वे आजादी के ख़्वाहां ज़रूर हैं। इसलिये जब कि मैं इन सब प्रकार के विचार वालों के लिये अग्ने मस्तिष्क में स्थान रखता हूँ, तब मेरे लिये तो केवल एक ही मार्ग खुला रह जाता है: मैं जातीय दृष्टि को एक ज़रूरी दर्जे की हैसियत से भी, नहीं मानता—या यों कह लूँ कि उस श्रेणी से हो जाने की क्षमता मुझमें नहीं है। इसलिये जब तक यह तूफ़ान साफ़ नहीं हो जाता और जब तक पुनर्निर्माण का काम फिर से प्रारम्भ नहीं हो जाता, तब तक मुझे ख़ामोश ही रहना चाहिये।

काउंसिल के अन्दर की जिदोजिहेद को भी महफूज़ फासले पर रह कर ही देख सकता हूँ। मैं, उनपर एतकाद रखते हुये जोशाना ढंग से काउंसिल के काम को करने वालों की इज़्जत की नज़र से देखता हूँ। भारत का शिक्षित सभाज ही भिन्न २ दलों में फूटा हुआ है। मैं इन दलों को एक जां लाने की अपनी अशक्ति को स्वीकार करता हूँ। उनका तर्ज अमल मेरा काम करने का ढंग नहीं है। मेरा तरीका धुर नीचे से चल कर शिखर तक पहुंचने का है। बाहर वालों को यह उबाने वाली धीमी चाल माज़ूम होती है। वे शिखर से पेंदी की ओर जा रहे हैं। और यह ढंग बहुत मुश्किल तथा उलझा हुआ है। वे करोड़ों आदमी, जिनकी ओर से उस अपील पर हस्ताक्षर करने वालों ने लिखने का दावा किया है, इस दल-बन्दी से बिल्कुल उदासीन हैं। और उनको उसमें कोई रस भी नहीं है।

उनके लिए तो चरखा ही सब कुछ है। एक कहावत है कि ईश्वर का चर्खा धीमे २ लेकिन पक्का चलता है। मैं ईश्वर के उन्हीं छोटे २ चरखों को चलाने में लगा हुआ हूँ। उन हस्ताक्षर-कर्ताओं तथा अन्य लोगों को, जो चाहें, यह बात ध्यान में रख लेनी चाहिये कि वे चर्खे अनवरत रूप से घूम रहे हैं। उन चर्कों की उपयोगिता दिन पर दिन और अधिक प्रत्यक्ष रूप से बढ़ती जा रही है। और जब यह तूफ़ान मिट जायगा, और जब उसके फ़र-



बारा नहीं है। यह प्रवृत्तियों के राजकीय आये थे, आतीय दृष्टि धारणा है डिटजी का करने वाली ही चाहते प्रभाव डाल कि रुग्णता का काम मलखा के य, जब कि लिखा था, ल है कि करने के कौन ठहरा किये हुये जब कि मस्तिष्क में खुला रह हैसियत से यह तूफान काम फिर ही रहना मी महुफूज काद रखते वालों को समाज ही एक जा नका तर्ज धुर नीचे को यह र से पेंदी या उलझा अपील पर इस दल- रस भी वत है कि र के उन्हीं सर-कर्ताओं रख लेनी चक्रों की बढती या उसके फर-

स्वरूप ये बल बंधियां एक हो जायंगी और हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण, अत्याचारी और दलित आपस में मिल जावेंगे तब वे देखेंगे कि कुछ शक्ति से काम करने वालों ने देश को तैयार कर दिया है—विलायती वस्त्र का वर मूलक या हिंसारमक बहिष्कार करने के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्यवर्धक, अहिंसारमक वैध बहिष्कार के लिये। कौम को अपने प्रत्येक नागरिक की कुछ न कुछ शक्ति का तो सुवृत्त देना ही चाहिए। और वह शक्ति विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करने की क्षमता है। अपील पर हस्ताक्षर करने वाले अपने को मेरे अनुयायी कहते हैं। मेरी उनसे सलाह है कि वे चरखे को अपना आगेवान बनावें। मैंने उस छोटे से चक्र की आगेवानी अब तक रखी है। और वह चरखा मेरे कानों में नित्य गरीब जनता के कष्टों का गीत सुनाया करता है। अच्छे के लिए हो या बुरे के लिए—मैंने अपना सर्वस्व चरखे पर लगा रखा है, क्योंकि मेरे लिए तो वह दरिद्र नारायण की मूर्ति है—दरिद्र और दलित के दरिद्र और दलित में दर्शन देने वाले नारायण की मूर्ति है।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### परिश्रम का गौरव

विश्वविद्यालयों के नवयुवक रंगतकों को अपनी पदवियों की फेरी करते हुए हम रोज ही देखा करते हैं। वे ऐसे आदमियों से अपनी सिफारिश कराते फिरते हैं, जिन्हें शिक्षा तो कुछ मिली नहीं है, किन्तु जो धनी बहुत हैं और १०० में ९० ढालों में तो विद्यालय की पदवियों से कहीं अधिक इज्जत अफसरों की निगाह में धनी की सिफारिश की ही ठहरती है। इससे क्या साबित होता है? यही न कि दिमागी तालीम से कहीं अधिक कीमत धन की लगायी जाती है? दिमाग की पूछ आजकल बहुत कम है। यह क्यों? क्योंकि दिमाग को धन पैदा करने में सफलता नहीं मिल सकी है। इस अवफलता का कारण है—ऐसे कामों की कमी जिनमें बुद्धि की जरूरत पड़े। मनुष्य-समाज में सब से अधिक कीमती और ताकतवर चीज दिमाग ही है। आज उसकी मांग न होने के कारण वह बेकार वस्तु बन गया है।

“किसान के धन उसके हाथ हैं। जमींदार की ताकत उसकी जमीन में है। जमीन का काम खेती है। हाथ की तालीम का नाम उद्योग है। मैं जानता हूं कि खेती को भी कुछ लोग उद्योग में ही गिनते हैं, परन्तु यदि हम इनके विशिष्ट तत्त्वों को देखें तो समझ में आवेगा कि कृषि और उद्योग अलग २ वस्तुएं हैं।

शारीरिक श्रम के उस विभाग को उद्योग कहना मुनासिब होगा जिसमें हाथों की तालीम के लिए बराबर मौका मिलता जाय और जिसमें हमारी आमदनी के क्रमशः बढते जाने की संभावना हो। खेत में काम करने वालों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। हल चलाने वाले, बीज छीटने वाले या खेत निराने वाले को अपने हाथों की शिक्षा के कारण कुछ अधिक मजदूरी नहीं मिल सकेगी। खेती के काम में अधिक आमदनी करने की निपुणता सीखने की गुंजाइश नहीं है। अब किसी बढई को ले लीजिये। वह छोटे २ मामूली बकस बनाने से शुरू करता है। अभ्यास के जरिये वही आदमी शरार की बोटलें रखने का बकस बनाना भी सीख सकता है। अब यह देखिये कि हाथ से काम करने की निपुणता में उन्नति होने के साथ ही साथ उसकी मजदूरी कितनी बढ गयी। आप विश्वास करें कि जिस आदमी ने दो सांपों वाला बकस बनाया है, जिनके फैंले हुए फणों से

बोटल की रक्षा होती है, उसे हमने मामूली बकस बनाने के लिए ही नौकर रखा था। शुरू में उसकी मजदूरी छः आने रोज थी और दो वर्षों में वही क्रमशः बढ कर रुपये रोज हो गयी और उसके बनाये हुये सामान की, बाजार की कीमत से, उसके मालिक को चार आने रोज का नफा भी हो जाता है। इससे दो साल के भीतर १३३) से ३६५) की वृद्धि देखने में आती है। लेकिन हमारी जन-संख्या के ९८ फी सदी लोग खेती का काम करते हैं। जमीन के रकबे की बढती होती नहीं। जनसंख्या की वृद्धि के साथ साथ मजदूरों की बढती होती जाती है। जिस जमीन से ३० साल पहले ५ आदमियों की परवरिश होती थी, उसी पर अब १२ से १५ आदमियों की बसर होती है। कुछ हालतों में इस ऊपरी बोझ को देशान्तर जा कर कम किया जाता है, किंतु लाचार हो कर प्राणशक्ति के कम प्रमाण से ही काम चला लेना पड़ता है।”

ऊपरोंक लेख श्रीयुत मधुसूदन दास के ‘विहार यंग मेन्स इन्स्टीट्यूट’ के सामने १९२४ में दिये गये भाषण का एक अंश है। इस भाषण को मैं अपने पास इतने दिनों से इसलिए रखे रहा कि जब समुचित अवसर मिलेगा तब इसके आवश्यक अंगों का मैं उपयोग करूंगा। व्याख्यान-दाता ने जो कुछ कहा है उसमें कोई नयी बात नहीं है। परन्तु इन बातों को असल कीमत इस में है कि मशहूर वकील होते हुए भी, अपने हाथों काम करने को वे न केवल नफरत की निगाह से नहीं देखते हैं बल्कि, स्वयं बड़ी उमर में हाथ की कारीगरी उन्होंने सीखी है और वह भी बतौर शौक के नहीं, बल्कि नवजवानों को मिहनत मशकत की कीमत समझाने और यह बतलाने के लिए कि अगर वे देश के व्यवसायों की ओर नजर नहीं फेरेंगे तो इस देश का भविष्य कुछ बहुत अच्छा नहीं होगा। श्रीयुत दास ने कटक में एक चम्म-शाला खुलवायी है। यह कारखाना, कितने ही नवयुवकों के लिए, जो उसके पहले महेज अनजान मजदूर थे, शिक्षा-केन्द्र बना हुआ है। मगर वह सब से बड़ा उद्योग जिस में करोड़ों की मेहनत दरकार है, सूत की कटाई ही है। जरूरत इस बात की है कि इस देश के किसानों की अत्यंत बड़ी जनसंख्या को होशियारी का एक और काम दिया जाय जिससे उनके हाथ और दिमाग दोनों की तालीम मिले। उनके लिए जो सब से अच्छी और सस्ती शिक्षा ढूँढ निकाली जा सकती है, वह यही है। सस्ती तो इसलिए कि इससे तुरत ही आमदनी भी होने लगती है। और यदि हमें भारतवर्ष में सार्वजनिक शिक्षा का प्रचार करना है तो प्राथमिक शिक्षा लिखाई, पढाई और हिदाय की न हो कर, सूत कातने और उसके संबंध के अन्य ज्ञान की होगी। और जब इसके जरिये दिमाग और आंखों की पूरी तालीम हो सकती है, तब कहीं बालक इन तीनों के सीखने के लिए तैयार होता है। मैं जानता हूं कि यह कुछ लोगों को तो असंभव, और कुछ को बिल्कुल अव्यावहारिक मालूम होगा। मगर जो ऐसा सोचते हैं, वे हमारे करोड़ों भाई बहनों की हालत नहीं जानते। उन्हें यह भी नहीं मालूम है कि हिन्दुस्तान के किसानों के करोड़ों बच्चों को शिक्षा देने के क्या मानी हैं। और यह शिक्षा तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक शिक्षित भारतवासी, जिन्होंने इस देश की राजनैतिक जागृति की है, परिश्रम के गौरव को समझ नहीं लेते और जब तक हर एक नौजवान चर्खा चलाने की कला को सीखना और गांवों में उसका पुनरुद्धार कराना अपना परम कर्तव्य नहीं समझ लेता है।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी



## बालविवाह के समर्थन में

‘यंग इन्डिया का एक पाठक’ लिखते हैं:

“२६ अगस्त सन् १९२६ के ‘यंग इन्डिया’ में ‘बालविवाह का शाप’ शीर्षक आप के लेख को पढ़ कर मुझे बड़ा ही दुःख पहुँचा। “कन्या के कदुमती होने के पूर्व लड़की का विवाह न करने में पाप लगता है—यह वे लोग ही कह सकते हैं जो कि आत्मसंयम से अनभिज्ञ हैं और जो पाप में डूबे पड़े हैं।”

“मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप अपने से मुबालिफ़ राय रखने वालों को औशर्य की दृष्टि से क्यों न देख सकें। कोई यह अवश्य कह सकता है कि बालविवाह के शास्त्र-विहित ठहराने में मनु ने सरासर भूल की थी। परन्तु मैं यह कहना अनुचित मानता हूँ कि जो लोग बालविवाह पर दृढ़ हैं, वे ‘पाप में डूबे पड़े’ हैं। यह कहना विवाद की शिष्टता की सीमा का उल्लंघन हो जाता है। वास्तव में मैंने पहले ही पहल बाल-विवाह के विरुद्ध ऐसी दलील सुनी है। न तो हिन्दू समाज-सुधारकों ने और न ईसाई पादरियों ने, जहाँ तक मुझे मालूम है, कभी ऐसा कहा है। इसलिए, जब मैंने इस दलील को महात्मा गांधी की लेखनी से आया हुआ पाया, (महात्मा गांधी जिन्हें कि मैं प्रतिद्वन्द्वी के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करने में सम्पूर्ण पुरुष मानता हूँ!) उस वक्त जो धक्का मुझे पहुँचा, उसको जरा कमाल कीजिये।

“आपने तो एक दो को नहीं, बल्कि प्रायः प्रत्येक हिन्दू शास्त्रकार को त्याग्य ठहराया है, क्योंकि, जहाँ तक मुझे मालूम है तहाँ तक प्रत्येक स्मृतिकार बालविवाह का आदेश देता है। और यह बात ठीक मानना—जैसा कि आप फरमाते हैं—कि बालविवाह का आदेश देनेवाले फिर से क्षेपक मात्र हैं—असम्भव ही है। बालविवाह की रूढ़ि किसी खास सूत्र या समाज विशेष में ही परिमित नहीं है, बल्कि भारतवर्ष भर में प्रचलित है और यह प्रथा रामायण के समय से चली आ रही है।

“मैं संक्षेप में यह बतलाने की चेष्टा करूँगा कि किन कारणों से हिन्दू शास्त्रकार ने बाल-विवाह पर जोर दिया होगा। उन्होंने इसे इष्ट समझा कि साधारणतया प्रत्येक बालिका विवाहिता होनी चाहिये। यह लड़कियों के सुख और शांति के ही लिये भाव नहीं है, बल्कि साधारण तौर पर समाज के लिये भी। यदि प्रत्येक लड़की को विवाहित हो कर रहना है, तो पति को पसन्द करने का काम लड़की के माता-पिता को, न कि लड़की को स्वयं—करना चाहिए। यदि यह काम लड़कियों पर ही छोड़ दिया जायगा तो नतीजा होगा कि बहुत सी लड़कियाँ विनव्याही ही रह जायँगी—इसलिए नहीं कि उन्हें शादी पसन्द नहीं, बल्कि इसलिए कि उन सब को अपनी २ पसन्द का पति मिलना बहुत कठिन बात है। और यह खतरनाक भी है, क्योंकि इससे फिर आगे चल कर संवनन तथा भ्रष्टाचार फैल सकते हैं और वे युवक जो कि ऊपर से अच्छे मालूम होते हैं, सम्भव है, कि भोली भाली लड़कियों के आचरण भ्रष्ट कर दें। और यदि वर दूबने का काम माता-पिता को करना है, तो लड़कियों की शादी कम उम्र में ही कर देनी होगी। जब वे सयानी हो जाती हैं, तब वे किसी के प्रेम-पाश में बँध जा सकती हैं और तब, यह सम्भव है कि, माता-पिता के द्वारा चुने हुए वर के साथ विवाह करना वे पसन्द न करें। जब लड़की का विवाह बचपन में कर दिया जाता है, तब वह अपने पति और पति के घर के साथ एकदिल हो जाती है। और तब पति के साथ उसका मेल

अधिक स्वाभाविक और अधिक परिपूर्ण हो जाता है। कभी सयानी लड़कियों के लिए, जिनके कि विचार और आदतें स्थिर हो जाती हैं, नये घर में पहुँच कर अपने को तदनु रूप बन लेना कठिन हो जाता है।

“बालविवाह के विरुद्ध खास दलील यह पेश की गई है कि उससे लड़की तथा उसकी सन्तान की तन्दुरुस्ती कमजोर हो जाती है। परन्तु यह दलील निम्न-लिखित कारणों से बहुत जबरदस्त नहीं है:—आजकल हिन्दुओं में लड़की के विवाह की उम्र कम-से-कम ऊँची होती जा रही है; लेकिन जाति कमजोर पड़ती जा रही है। ५० या १०० वर्ष पूर्व पुरुष और स्त्रियाँ आजकल की बनिस्बत साधारणतया अधिक हृष्ट, स्वस्थ और चिरायु हुआ करती थीं। परन्तु उन दिनों बालविवाह आजकल की अपेक्षा अधिक प्रचलित था। देर से व्याही जानेवाली शिक्षित कन्याओं की तन्दुरुस्ती उन लड़कियों की तन्दुरुस्ती की बनिस्बत, जिन्होंने कम ताली पायी है और जिनका विवाह छुटपन ही में कर दिया गया था, अधिक अच्छी नहीं होती है। इन हकीकतों से यह बहुत मुमकिन मालूम होता है कि बालविवाह से शारीरिक अवनति उतनी नहीं हो जाया करती, जितनी कि कुछ लोग समझते हैं।

“आपको योरोपीय तथा भारतीय दोनों प्रकार की सभ्यता का अच्छा ज्ञान है। आप यह जरूर बतला सकते हैं कि सभ्यताओं को देखते हुये हिन्दुस्तानी पत्नियाँ अधिक पातपरायण होती हैं या योरोपवाली, कि गरीब लोगों में हिन्दुस्तानी पति अपनी स्त्री के साथ रहमदिली का बर्ताव रखता है या योरोपीय, कि हिन्दुस्तानियों में क्लेशकारी विवाह कम होते हैं या योरोपियनों में और आया कि भारतीय समाज में विषय-सम्बन्धी आचार अधिक शुद्ध हैं कि योरोपीय में। यदि इन पहलुओं से योरोपीय विवाहों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों के विवाह अधिक सफल हैं तो बालविवाह को, जो कि हिन्दुस्तानी विवाहों का एक विशेषता है, बुरा न ठहराना चाहिए।

“मैं यह नहीं मान सकता कि हिन्दू शास्त्रकार बालविवाह का आदेश देते समय समाज के सार्वजनिक कल्याण के सिवा किसी विचार से प्रेरित हुये थे। मैं समझता हूँ कि बालविवाह हिन्दू समाज के उन लक्षणों में से एक है कि जिनके द्वारा अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी शुद्धता कायम रही है और जिन्होंने उसको छिन्न भिन्न होते से बचाया है। शायद आप इस सब को सच न मानेंगे, लेकिन हम यह आशा नहीं रख सकते कि आप अपनी उस धारणा को त्याग दें कि वे सब हिन्दू शास्त्रकार जिन्होंने कि कन्याओं के बालविवाह पर जोर दिया है, आत्मसंयम शून्य थे और ‘पाप में डूबे पड़े थे’।

आपने मद्रास वाले मुआमिले का जो हवाला दिया है, वह बड़ा विचित्र है। ज्यूरी का खयाल यह था कि उस लड़की आत्मघात कर लिया था, लेकिन उस लड़की ने यह बयान दिया कि उसके पति ने उसके कपड़ों में आग लगा दी थी। इन परस्पर विरुद्ध बातों को देखते हुये यह मानना बहुत मुश्किल है कि जिन बातों को आप निर्विवाद मानते हैं वे बातें सचमुच निर्विवाद हैं। १३ वर्ष से नीची उम्र वाली लाखों कन्याओं के विवाह हो चुके हैं, लेकिन पति की निर्दयतापूर्ण काम-चेष्टा के कारण की हुई आत्म-हत्या की एक भी नज्दी पहले सुनने में नहीं आई। संभवतः इस मामले में कोई खास बातें थीं, जिनको हम जान नहीं हैं और उस लड़की की सत्यता का मुख्य कारण बाल-विवाह नहीं था।”



१ सितम्बर, १९२६

हिन्दी-मञ्जीवन

कविगोर ने ठीक कहा है — उन घटनाओं के आघात को जो कि छुपे छुपे किसी की आत्मा को चोट पहुँचाती है, कम करने के निमित्त किसी मौजू फिलसफे के गढ़ से बहुत कम जाता है। 'यंग इंडिया' के ये देने में गाँठ से बहुत कम आगे बढ़ गये हैं। इन्होंने एक "पाठक" तो एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। इन्होंने एक मौजू फिलसफे को ही नहीं गड़ा है, बल्कि हकीकतों को भी भुला दिया है और गैर सुबूत वाले बयानात पर अपनी दलील उठा कर खड़ी कर दी है। अनुदारता वाले इल्जाम के बारे में मैं कुछ लिखना नहीं चाहता, यदि और किसी कारण से नहीं तो मेहज इसीलिये ही कि मैंने शास्त्रकारों पर दोषारोपण नहीं किया है, बल्कि मैंने तो उन लोगों पर बुराई थोपी है जो कि मातृत्व-भार न सम्हाल सकने वाली अवस्था में विवाह कर देने पर आप्रह करें। अनौदार्य का प्रश्न तो तब उठता है जब कि कोई अशुद्ध-भाव का नाहक इल्जाम किसी जीवित मनुष्य पर लगावे, न कि उसपर जिसका अस्तित्व ही न हो। परन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या इस पत्र-लेखक के पास कोई ऐसा प्रमाण है, जिसके बिना पर वह यह कह सकता है कि जिन स्मृतिकारों ने आत्मसंयम का उपदेश दिया था, उन्होंने ही उन्हीं स्मृतियों में बालिका-विवाह की आज्ञा दी थी? ऋषि-लोग दुराचारी नहीं थे और न शारीरिक विकास के मुख्य नियमों से अनभिज्ञ थे — क्या यह मान लेना अधिक उदार न होगा? लेकिन यदि बाल-विवाह (न कि कम उम्र का विवाह, क्योंकि यह तो २५ के पूर्व तक का किया हुआ सम्बन्ध भी हो सकता है) की आज्ञा देने वाले ग्रंथ भी प्रामाणिक पाये जायँ, तो हमको चाहिए कि हम प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान की दृष्टि से उनका त्याग कर दें। मैं लेखक के इस वाक्य की सचाई पर सन्देह प्रकट करता हूँ कि बाल-विवाह हिन्दू-समाज में सर्वत्र प्रचलित है। मुझे अवश्य दुःख होगा, अगर यह बात सच निकले कि लाखों बालिकायें विवाहिता हो जाती हैं यानी वे जब कि स्वयं बच्चियाँ ही हैं, पत्नियों की तरह रहने लगती हैं। यदि हिन्दू-समाज में लाखों कन्याओं के विवाह ११ वर्ष की अवस्था में हो जाया करते, तो हिन्दू लोग जाति की दृष्टि से कभी के नष्ट हो गये होते।

और न उससे यही बात सिद्ध होती है कि यदि माता-पिता अपनी कन्याओं के पति पसन्द करना जारी रखना चाहें, तो सगाई और विवाह जल्दी ही हो जाने चाहिए। और इसमें तो और भी कम सत्यता है कि यदि लड़कियों को अपनी पसन्दगी करनी है तो संवनन (courtship and flirtation) या भ्रष्टाचार का होना लाजिमी ही है। आखिर योरोप में भी तो संवनन सर्वत्र प्रचलित नहीं है और हजारों हिन्दू कन्याओं का विवाह १५ वर्ष के बाद होता भी है और उनके माता-पिता ही उनके लिये वर पसन्द करते हैं। मुसलमान माँ-बाप तो हमेशा अपनी सयानी लड़कियों के ख्वाबिन्द खुद ही पसन्द करते हैं। यह प्रचण्दगी स्वयं लड़की करे या उसके माता-पिता, — यह बिल्कुल दूसरी ही बात है और यह बात रिवाज के अख्तियार में है।

इस पत्र के लेखक ने इस बात के समर्थन में कोई सुबूत पेश नहीं किया कि सयानी उम्र में ब्याहो हुई कन्याओं की संतानें, बालिकावस्था में विवाहित स्त्रियों की औलादों से कम जोर होती हैं। भारतीय तथा योरोपीय दोनों समाजों के मेरे अनुभवों के होते हुये भी मैं उनके आचार की तुलना करना नहीं चाहता। बहस के लिए जरा देर को यदि मान भी लिया जाय कि योरोपीय समाज के आचार हिन्दू-समाज के आचार से

निकृष्ट हैं, तो क्या उससे यही स्वाभाविक अनुमान हो सकता है कि यह निकृष्टता सिनेबलुगियत के बाद शादी करने के कारण ही है?

अन्त में, मद्रास वाला मामला पत्र-प्रेषक को कुछ मदद नहीं पहुँचाता है, प्रत्युत उनका उसे प्रयोग करना तो उनका हकीकत को बालायताक रख कर जल्दबाजी के साथ किसी नतीजे पर पहुँच जाना जाहिर करता है। अगर वे मेरे इस लेख को फिर उठा कर देखेंगे तो उनको पता चलेगा कि मैं अपने नतायज पर साबितशुदा बातों से ही पहुँचा हूँ। मेरा निर्णय तो मृत्यु के कारण से जरा भी लगाव नहीं रखता। यह सिद्ध किया गया था कि:—

(१) लड़की कमसिन थी।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं।

(३) उसके पति ने कामेच्छा में जबर्दस्ती जरूर की।

और (४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं है।

लड़की ने यदि आत्मघात किया तो बुरा किया, लेकिन यदि उसे उसके 'पति' ने जला कर मार डाला — (चूँकि वह उसकी पशुवृत्ति की सन्तुष्ट न कर सकी) तो और भी बुरा हुआ। उस लड़की की वह उम्र तो खेलने और सीखने पढ़ने की थी, न कि पत्नी का बर्ताव करने की और अपने नाजुक कंधों पर गृहस्थी का भार उठाने की या 'स्वामी' की गुलामी करने की।

ये लेखक समाज में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। भारतमाता अपने उन लड़कों और लड़कियों से अधिक अच्छी बातों की आशा रखती है, जिन्होंने उदार शिक्षा पाई है और जिनसे राष्ट्र के लिए ही सोचने समझने तथा कार्य करने की आशा रखी जाती है। हममें बहुत सी बुराइयाँ मौजूद हैं: वे नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक — सब ही प्रकार की हैं। उनके लिए धैर्ययुक्त अध्ययन, सपरिश्रम अनुसंधान और सावधानी से काम करने की जरूरत है। बयान में सत्य और उसपर विचार करते समय स्वच्छ विचार की जरूरत तथा गांभीर्यपूर्ण और निष्पक्ष निर्णय भी दरकार है। और तब हम, यदि जरूरी हो तो, आपस में जमीन-आसमान का मतभेद रख सकते हैं। परन्तु यदि हम सचाई की गहराई तक पहुँचने की और फिर, चाहे जो हो जाय, उसपर ठटे रहने की कोशिश नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने २५ वर्षों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

(यं-१०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## पिंजाई अर्थात् रुई धुनना

शादी के एक कार्यकर्ता लिखते हैं, — 'कातने का अर्थ' शीर्षक लेख पढ़ कर कितने ही लोग धुनकी माँगावेंगे, किन्तु धुनना बिना जाने तो वह धुनना नाकाम ठहर जायगा और माँगने वाले के मन में हमेशा के लिए यह पंठ जायगा कि हम खुद रुई नहीं धुन सकते। यह ब्याल, पीछे से दूर करना कठिन होगा। इसलिए अगर दूर २ के गाँवों में भी धुनकी मेजना मुनासिब माझम हो, तो साथ ही साथ धुनने की रीति तथा और बातें समझा कर लिख दी जाय कर, तो अच्छा है।'

लेखक की यह बात बिल्कुल सही है। जब तक धुनने की कला पसन्न न ली हो और जब तक उस पर हाथ न बैठा लिया हो, तब तक मन माफिक रुई नहीं धुनी जा सकती और रुई अच्छी धुनी न होने से, इच्छानुकूल कताई भी नहीं हो सकती। धुनने की



कला को मैंने ५ वर्ष के अन्त में समझा। आज ५ मिनट में समझा सकता हूँ। सिखाने में १२ घण्टे रोज के हिसाब से पांच दिन लगेंगे। उससे जितने घण्टे कम काम कीजिये, उतने ही अधिक दिन लगेंगे। जो अभी पीजना सीख रहे हैं अथवा जो थोड़ा बहुत भला-बुरा धुन लेना जानते हैं, उनके ही लिए यह लेख उपयोगी होगा। नये सीखने वाले को तो सीखा हुआ ही ठीक सिखा सकता है। किसी अच्छे धुनिये को देख कर भी धुनना सीख सकते हैं सही, लेकिन उसके लिए लगन और धैर्य चाहिए।

धुनाई, कातने की कला का एक मुख्य अंग है। धुनने के मानी हैं रुई के रेशों को नोच २ कर अलग २ कर देना। यह काम हाथ की उंगलियों और धुनकी से, दो प्रकार से होता है। ४ तोले वजन का १५ गज लम्बा और १ गज चौड़ा मशहूर मलमल का थान भारतवर्ष में हाथ की उंगलियों की धुनाई से ही बनता था। इसके लिए देवकपास नामक रुई का उपयोग होता था। आज भी देवकपास रुई, बिनौले से हाथ से ही अलग की जाती है और उसे हाथ से ही नोच २ कर उसका लच्छा बनाया जाता है—जिसका १०० अंक से भी ऊपर का सूत अभी भी काता जाता है। रुई में से पिलई, कचरा या बिनौले के टुकड़े निकालना धुनकी का काम नहीं है। किंतु रुई धुनने के लिए रखने के पहले ही वे सब चीजें बोन २ कर निकाल देना जरूरी है। रुई में भरा हुआ कचरा निकालना मुश्किल काम है और खर्चीला भी है। यदि बहुत कचरा हो तो रुई को खूब नोचना पड़ेगा और नोचने से रुई के रेशों को नुकसान पहुँचे बिना रह नहीं सकता। इससे कचरा कुछ कम तो होगा मगर उसका काफी हिस्सा रुई में फैल ही जाता है। इस नोचने की क्रिया से बचने के लिए बिना कचरे की अच्छी कपास चुननी और चुनी हुई कपास को बहुत संभाल कर ओटना चाहिए।

इस देश में धुनने के साधन, जो अब तक देखने में आये हैं, वे नीचे दिये जाते हैं:—

तांत और कांकर वाला छत में टांगने का पीजन	उसमें लगाये गये तांत के तार
१. अजमेरी की बड़ी धुनकी	१२ से १४।
२. मुलतानी    "    "	"    "
३. सत्याग्रहआश्रम की    "	८ से १०
४. मझोली धुनकी	४ से ६
तांत से ही चलनेवाली किन्तु हाथ में उठायी जाने वाली	
५. बंगाल और बिहार की बड़ी धुनकी	८ से १०
६. स० आश्रम का बारडोली पीजन	३ से ४
७. गुजरात का रामेसरा कमठ	३
बिना कांकर की तांत वाली हाथ धुनकी	
८. आन्ध्र देश की धुनकी	२
९. तामिलनाड की    "	२
१०. मूँज की डोरीवाली बिहार बंगाल की धुनकी	

१ से ४ न० की धुनकी को छत में दो धनुहियाँ बांध कर, टांगा जाता है। अजमेरी धुनकी में, टांगने की जंजीर बैठाने की रीति जुदी होती है। इसका एक छोर तो पीजन की तख्ती के बीच में होता है और दूसरा उसके मूठ के ऊपर। तब, २ से ४ न० की पीजनों की जंजीर के दोनों छोर, पीजन के मूठ के

ऊपर से ही जाते हैं। अजमेरी ढब की पीजन की जंजीर का एक छोर तख्ती में ही होने से, पीजन आप ही झुका रहता है। हाथ का काम, उसे केवल नीचे दबाये रहना भर है, किन्तु २ से ४ न० तब के पीजनों में हाथों को ही दबाये और झुकाये रखने के दोनों काम करने पड़ते हैं। ५ से १० न० के पीजनों से हाथ से उठा कर ही काम लेते हैं। पीजन को उठाने के लिए कांकर की छोर से उसे उसके तीसरे भाग पर पकड़ा जाता है।

पिंजाई के लिए अधिक तांत छोड़ने के लिए, पीजन की एक तिहाई दूरी पर से पकड़ा जाता है। पीजन को एक तिहाई पर ही पकड़ने से वह समतोल (बराबर) रहे, इसलिए बड़े पीजन में तख्ती का भाग लगाया जाता है और कमठों (धनुष धुनकी) की कांकर वाली छोर मोटी होती है। १ से ७ न० की पीजनों में कांकर और आत्मा ही है। इन सभी पीजनों में तांत चढ़ाने और बांधने की रीति प्रायः एक सी ही होती है। न० ९ और १० के कमठों (धनुहियों) के दोनों सिरों पर ही तांत या डोरी बांधते हैं।

कांकर का काम है आत्मा को उसकी जगह पर बैठाये रहना और तांत का घिसना रोकना। कांकर कच्चे चमड़े का बनता है। आत्मा कांकर के टुकड़े से ही बनता है। कांकर तंग रहने से ही आत्मा ठीक काम दे सकता है। आत्मा की जाँच तांत की ढिलाई वा तंगी से सहज में की जा सकती है। तांत को चढ़ाने के बाद कांकर पर चोट करने से ढीली तांत से बोड़ी यानी खोखली आवाज निकलती है। गुल्लटे की मार से दूट जाने लायक तांत की झनक तीखी और धुनने लायक तांत की झनक मध्यम निकलती है। मध्यम झनक, बिना रुके हुए ही निकलती रहती है। झनक की आवाज जितनी अच्छी होगी, पीजन उतना ही अच्छा काम दे सकेगा, और उसे उठाने वाले हाथ को आराम रहेगा। कांकर और आत्मा के बिना, तांत की ढिलाई और तंगी की जाँच करने के लिए हाथ और कान को खूब अभ्यास कराना पड़ता है।

(अगले अंक में समाप्त)

(नवजावन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

## अनुकरणीय

चर्खासिंघ के मंत्री के पास सूत का चन्दा मेजते हुए श्रेष्ठ हरिमाल फाटक लिखते हैं:—

“आज मैं श्रीमती अन्नपूर्णा छोरे का २५००० गज सूत मेज रहा हूँ। वर्षाऋतु के चतुर्मास में, महाराष्ट्र की कितनी एक महिलायें कुछ व्रत लिया करती हैं। श्री अन्नपूर्णा बाई ने इस ऋतु में १ लाख गज सूत कात कर मेजने का निश्चय किया है। यह सूत उनके पहले महीने का हिस्सा है। मेरे मित्र सरदार पन्त शास्त्री, इनके पति हैं। ये दोनों पति-पत्नी, अ० भा० चर्खासिंघ के सदस्य हैं। साल भर का अपना पूरा चन्दा ये मेज चुके हैं। उनका कुटुम्ब व्यवसायी है। उनके बच्चे भी हैं और वे गरीब भी हैं और खास बात यह है कि उनकी आँखें भी खराब हैं। इसलिए, उनकी यह कोशिश का बिले—गौर जरूर है।”

यह कोशिश बेशक ऐसी ही है। स्वाति-प्रेम के बिना यह असंभव है और गरीबों की मुद्वन्त, ईश्वर का प्रेम, स्वदेश-प्रेम—ये वस्तुएं चर्खा-आन्दोलन का मूल में हैं।

(य० इ०)

मो० क० गांधी



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ५ ]

मुद्रक—प्रकाशक

अहमदाबाद, भाद्रपद सुदि ९, संवत् १९८३

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

स्वामी आनंद

गुरुवार, १६ सितम्बर, १९२६ ई०

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १८

रंगद्वेष

अदालत का चिह्न तराजू है जिसे एक निष्पक्षपात, अंधी — लेकिन कुशल — स्त्री साधे हुए है। दैव ने ही उसे अंधी बनाया है, ताकि वह किसी का मुँह देख कर नहीं, बल्कि सच्ची योग्यता के ही पक्ष में न्याय करे। इसके विपरीत नैटाल की अदालत में मुँहदेखा न्याय करवाने के लिए वहाँ की वकीलसभा मानो उतारू हो गयी थी। लेकिन इस मामले में अदालत ने वकीलों की मर्जी के मुआफिक काम न कर के इन्साफ ही बरता और इस प्रकार उस चिह्न की शोभा बढाई।

मुझे वकालत की सनद लेनी थी। मेरे पास बम्बई की हाईकोर्ट का प्रमाणपत्र मौजूद था। और विलायत का सर्टीफिकेट बम्बई की अदालत में दाखिल था। नैटाल की अदालत में दाखिल होने के लिये जो अर्जी देनी पड़ती थी उसके साथ २ सुचरित्र के दो प्रमाणपत्रों की भी जरूरत समझी जानी थी। मैंने सोचा कि अगर ये प्रमाणपत्र यहाँ के गोरो के होंगे, तो ठीक होगा। इसलिए मैंने उन प्रसिद्ध गोरे व्यापारियों से अच्छे चालचलन के दो प्रमाणपत्र ले लिये, जिनसे कि अबदुल्ला सेठ की मार्फत मेरी जान-पहिचान बढ गयी थी। और यह अर्जी किसी वकील की मार्फत दी जानी चाहिए थी। आमतौर पर इस तरह की अर्जी एटर्नी जनरल विला फीस पेश कर दिया करते थे। मि. एस्कंथ एटर्नी जनरल थे और हम जानते ही हैं कि ये ही अबदुल्ला सेठ के वकील भी थे। मैं उनसे मिला और उन्होंने खुशी के साथ मेरी अर्जी पेश करने की बात मंजूर कर ली। इतने ही बीच में एकाएक वकील-सभा की ओर से मुझे एक सूचनापत्र मिला। उस सूचनापत्र में मेरे दाखिल होने का विरोध किया गया था; और उसमें मेरे वकील की हैसियत से अदालत में दाखिल होने के खिलाफ यह दलील पेश की गयी थी कि मैंने अर्जी दाखिल करने के साथ २ असली प्रमाणपत्र नहीं भेजा था। लेकिन उस विरोध का खास मंशा तो दूसरा ही था। वह यह कि अदालत में वकीलों की दाखिल करने के कानून जब बनाये गये थे, तब यह किसी के ख़ास में भी न आया था कि कोई भी काला या पीला

आदमी वकालत के लिए दाखिले की अर्जी देगा। नैटाल गोरो के ही बल से बसाया गया था और इसलिए उसमें गोरो का ही प्राधान्य होना चाहिये। अगर कोई काला वकील दाखिल होगा तो धीरे धीरे कर के गोरो का प्राधान्य जाता रहेगा और उनकी रक्षा भी खतरे में हो जायगी!

इस विरोध की पैरवी करने के लिये वकील-सभा ने एक प्रख्यात वकील कर रक्खा था। और इस वकील का भी दादा अबदुल्ला के साथ सम्बन्ध था। इस वकील ने उनकी मार्फत मुझे बुलवाया और उसने मेरे साथ साफ साफ बातें कीं। उसने मेरा इतिहास पूछा। मैंने कह सुनाया। तब वे बोले:— मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। मुझे यह आशंका थी कि शायद आप यहीं के पैदा हुए कोई धूर्त हैं—और फिर आपके पास असली प्रमाणपत्र नहीं है। इससे मेरे शठ को मजबूती मिली है। यहाँ ऐसे लोग भी पड़े हैं जो कि दूसरों के प्रमाणपत्रों का उपयोग करते हैं। आपने गोरे लोगों के प्रमाणपत्र जो पेश किये हैं, उनका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वे आपको क्या जानें? उनकी आपके साथ जान-पहिचान ही कितनी?

मैं बीच में बोल उठा—“लेकिन यहाँ तो मेरे लिए सब ही नये हैं; अबदुल्ला सेठ ने भी मुझे पहलेपहल यहाँ ही जाना है।” वे कहने लगे कि हाँ—लेकिन आप तो कहते हैं कि अबदुल्ला सेठ आपके नगर के हैं और जहाँ से यह आये हैं वहाँ आपके बाप दीवान थे। इस वास्ते उनको आपके कुटुम्ब को तो जानना ही चाहिए न? अगर आप उनका सौगन्दनामा पेश करें तो मुझे फिर कुछ कहने के लिये न रद्द जाय। उस हालत में मैं वकील-सभा को लिख भेजूंगा कि मैं आपके दाखिले की मुखातिफत नहीं कर सकता हूँ।

मुझे गुस्सा आ गया। लेकिन उसे पी गया। मुझे लगा कि अगर कहीं मैंने अबदुल्ला सेठ का ही प्रमाणपत्र पेश किया होता तो उनका अपमान हुआ होता और गोरे की सनद को वे जरूर मांगते। और वकालत-सम्बन्धी मेरा योग्यता का मेरे जन्म के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है? चाहे मैं अधम, चाहे कंगाल मांसाप का लडका होऊँ, लेकिन यह बात मेरी व्याकृत मादम करने के लिये मेरे खिलाफ कैसे पढ सकती है? यद्यपि इस प्रकार के विचार मेरे दिल में उठे, लेकिन मैं उनको दाब कर बोला— वकील-सभा को इस तरह की हकीकत मांगने के हकों



को अस्वीकार करता हुआ भी, आप जैसा कि चाहते हैं, मैं अबदुल्ला सेठ से सौगन्दनामा लेने के लिए तैयार हूँ।

अबदुल्ला सेठ का सौगन्दनामा मैंने तैयार किया और उसे वकील के सुपुर्दे किया। उस वकील ने उस पर सन्तोष प्रकट किया, लेकिन वकील-सभा को उससे सन्तोष न हुआ। उस सभा ने तो मेरे दाखिले के खिलाफ अर्जी अदालत में पेश की। अदालत ने मि. एस्कॉट का उत्तर सुने बिना सभा का विरोध नामंजूर कर दिया। प्रधान न्यायाधीश ने कहा — इस दलील में कि अर्जीदार ने असल प्रमाणपत्र दाखिल नहीं किया है, गुंजाइश नहीं है। अगर सौगन्दनामा पेश करने वालों ने झूठी सौगन्ध खायी होगी तो उसपर झूठी सौगन्ध खाने का फौजदारी का मुकदमा चल सकता है और मिस्टर गांधी का नाम वकीलों की फेहरिस्त से खारिज कर दिया जायगा; अदालत के कानूनों में काले-गोरे का कोई भेद नहीं है। हमें मि० गांधी को वकालत करने से रोकने का अधिकार नहीं है। अर्जी मंजूर की जाती है। मि. गांधी अब आप शपथ ले लें।” मैं उठ खड़ा हुआ और मैंने रजिस्ट्रार के सामने खड़े हो कर शपथ ली। मेरे शपथ लेते ही प्रधान न्यायाधीश ने कहा “अब तुमको अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए। वकीलों को जैसी पोशाक पहिने का नियम यहाँ है, एक वकील की हैसियत से आपको भी उस नियम का पालन करना चाहिए। मैंने अपनी मर्यादा जान ली। जिस पगड़ी को पहिने रहने के लिये मैंने दरबान की कचहरी में आग्रह किया था, उसे मैंने यहाँ उतार लिया। उसे उतारने के विरुद्ध मेरे पास दलील तो थी ही। लेकिन मुझे तो इससे बड़ी लड़ाई लड़नी थी। पगड़ी न उतारने का दृढ़ करने में मेरी लड़ने की कला का खात्मा न होता। शायद वह निस्तेज हो जाती। अबदुल्ला सेठ को तथा मेरे अन्य मित्रों को मेरी यह नमी (या निर्वलता?) पसन्द न पड़ी — उनको ऐसा लगा कि मुझे वकील की हैसियत से भी पगड़ी पहिने रहने का आग्रह करना चाहिए था। मैंने उनको समझाने का प्रयत्न किया और ‘जैसा देस वैसा भेष’ वाली कहावत के रहस्य को भी बतलाया। “हिन्दुस्तान में गोरे अमलदारों या जज के सामने पगड़ी जब मजबूरन उतारनी पड़े तब तो বেশक विरोध करना चाहिए लेकिन नैटाल ऐसे विदेश में तथा अदालत में एक ओहदेदार की हैसियत से अदालत के रिवाज का इस प्रकार विरोध करना मुझे फबता नहीं है।” इस बात से और इस प्रकार की दलीलों से कुछ मित्र जग शान्त तो हुए, परन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता है कि मैं उनको यह बात संतोषजनक रीति से न समझा सका कि अमुक वस्तु को बदली हुई स्थिति में दूसरी दृष्टि से देखने के सिद्धान्त की उपयुक्तता इस संसद में लागू समझना चाहिए। लेकिन मेरे जीवन में आग्रह और अनाग्रह उदात्त साथ ही साथ चलते आये हैं। यह बात कि सत्याग्रह में यह अनिवार्य है मैंने बाद को अच्छी तरह अनुभव की। अपनी इस समाधान-श्रुति के कारण मुझे अपने जीवन में कई बार जान की जोखों और दोस्ती की दिलबिकनी उठानी पड़ी है। लेकिन सत्य ब्रह्म की भांति कठोर और कमल की तरह कोमल है।

दक्षिण अफ्रीका में वकील-सभा के उस विरोध से समाचार-पत्रों द्वारा मेरा ही फायदा हुआ। अनेक समाचार-पत्रों ने मेरे खिलाफ किये गये उस विरोध के खड़ा करने के सम्बन्ध में वकील-सभा के ऊपर ईर्ष्या का दोषारोपण किया। और इस प्रकार की टोका-टिप्पणी से मेरा काम बहुत कुछ सरल हो गया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## सत्याग्रह बनाम दुराग्रह

सत्याग्रह के अनेक रूप हैं। उनमें उपवास भी आ जाता है। एक सज्जन ने यह सवाल ठेका है कि

“किसी आदमी को दूसरे के पास से अपनी रकम वसूल करने है। पैसा पाने वाले असहयोगी हैं, इसलिए अदालत में नहीं जा सकते। देनदार धन के मद में न्याय करता नहीं। पंचों के पास जाने को भी राजी नहीं होता है। अब अगर देनदार उसके घर पर बैठ कर उपवास कर के धरना दे तो यह शुद्ध सत्याग्रह क्यों न गिना जायगा? इसमें उपवास करने वाला किसका नुकसान करता है? रामराज्य के समय से पैसा वसूल करने की यह प्रणाली चली आती है। परन्तु आप तो इसे दृष्टिपूर्वक और अविवेक में गिनते हैं! इसका पूरा खुलासा यदि आप करें, तो ठीक हो।”

ऊपर का यह पत्र लिखने वाले भाई का हेतु निर्मल है, यह मैं जानता हूँ। किन्तु सत्याग्रह का ऐसा अर्थ भूल से भरा हुआ है, इसमें भी मुझे कुछ शंका नहीं है। सत्याग्रह व्यक्तिगत स्वार्थ से लिए ठक हो ही नहीं सकता। उपवास कर के पैसा वसूल करने की आदत को हम बढ़ावा दें तो दुष्ट आदमी इस तरह क्यों न पैसा वसूलें? ऐसे लंघन करने वाले इस देश में बहुत लोग भरे पड़े हैं। अगर ऐसा कहो कि छोटे लंघन करने वालों की बात ले कर सच्चे लंघन करने वालों की शिक्षा देकर उचित नहीं होगा, तो यह दलील सही नहीं समझी जायगी। सच्चे लंघन और छोटे लंघन का निर्णय अभी कोई अपने आप ही कर लें, यह भी उचित नहीं है। जिसे हम न्याय समझें वह अन्याय भी क्यों नहीं हो सकता है? इसलिए सत्याग्रह के अर्थ का उपयोग परमार्थ में ही होता है। सत्याग्रही को स्वयं दुःख भोगने और धन की हानि सहने को तो तैयार ही रहना चाहिए। जब असहयोग शुरू हुआ था, उस समय लुच्चे लोग भले मानसों का धन दबा बैठेंगे—यह भय तो था ही। उस समय निर्णय हुआ था कि ऐसे जोखम उठाने में ही असहयोग की खूबी है।

किन्तु उपवास रूप सत्याग्रह विरोधियों के साथ हो नहीं सकता। इस शस्त्र का उपयोग केवल हिंसा के साथ ही और वह भी उसके हित के लिए ही हो सकता है। हिन्दुस्तान ऐसे देश में, जहाँ लोगों में दयाभाव भरा हुआ है, लंघन कर के पैसा वसूल करना तो अत्याचार हो है। ऐसे मनुष्यों को मैं जानता हूँ कि जो थक कर, केवल झूठा तर्क खा कर, पैसा दे देते हैं। इसलिए हिन्दुस्तान में तो सत्याग्रह धर्म को जानने वाले को बहुत चेत कर ही चलना होगा। पचास आदमी जिसे अपना सही केना मानते हों, वह उसे उपवास कर के ले लेवें, तो मैं इसे सत्याग्रह की जय नहीं गिनाऊँगा, मैं तो इसे दुराग्रह की ही जय मानूँगा। सत्य का आग्रह करते २ मर जाने में ही सत्याग्रह की जय है। जिसके लिए आग्रह करते हैं वह हो चाहे न हो, इसके विषय में सत्याग्रही निश्चिन्त रहता है और यह बेफकी, अपना केना पावना वसूल करने के लिए किये गये उपवास में ही नहीं सकती। इसलिए हर एक रीति से देखने पर, व्यक्तिगत लाभ के लिए किये गये लंघन में मैं तो अभिनय और अज्ञान का ही आभास पाता हूँ।

(नवजीवन)

मो० क० गांधी



## “मैं” और “मेरे” का भूत

दरभंगे में एक शान्ति सभा में श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय के बिये गये भाषण का संक्षेप रूप दिया जाता है। पाठकों को यह रुचिकर और लाभदायक होगा।

“सभी व्यावहारिक बातों के लिए प्रत्येक धर्म के कुछ न कुछ अनुयायी, उस धर्म की खातिर, उसके प्रमाण वाक्यों का पालन किया ही करते हैं। सभी बात तो यों है कि मान लो कि एक हिन्दू अपने धर्म के लिए लड़ता है; तो वह पहले तो इसलिए कि यह उसका धर्म और फिर दूसरे—यह हिन्दू धर्म है, इसलिए लड़ता है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि वह इस विश्वास के भ्रम में पड़ जाता है कि वह अपने लिए नहीं, बल्कि किसी ऊँचे ध्येय के लिए लड़ता है। “साम्प्रदायिक अहंकार” और “ममत्व” से जब विवेक छिटा जाता है तो धार्मिक प्रमाणों का कुछ प्रभाव पड़ने की आशा तब तक नहीं रहती, जब तक कि उस साम्प्रदायिक “अहं” और “मम” को पूरा सन्तोष नहीं हो जाता है। नाहें उचित हो या अनुचित—किंतु मेरे लड़के, मेरे पिता, मेरी लड़की, मेरे गुरु, मेरे धर्म, मेरे सब कुछ की मुझे रक्षा करनी ही होगी। नाहें कुछ भी हो, किंतु मुझे उनके लिए लड़ना ही होगा। अर्धचेतन मन के आधार में यही तर्क रहता है। पुत्र, पिता, पत्नी, पुत्री, गुरु या धर्म के गुणों पर जोर नहीं दिया जाता, किंतु वे मेरे हैं—इसलिए मुझे उनका समर्थन उनकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। ‘मैं’ और ‘मेरे’ के इस भाव का अगर ठीक २ पता लगाया जा सके, तो बहुत से झगड़ों का खुलासा हो जाय। साम्प्रदायिक भावना का पहला आधार इस बात पर है कि यह सम्प्रदाय, यह समाज मेरा है, मगर वह तो मेरे नहीं है, यह तुम्हारा है, वह उसका है। इसी से हम देखते हैं कि किसी खास साम्प्रदायिक धर्म की बात को ले कर उसके अनुयायी उसका उचित या अनुचित उपयोग, अपनी बात दूसरे धर्म वालों के विरुद्ध रखने के लिए करते हैं। जहाँ कोई धार्मिक बात नहीं मिली, वहाँ कोई दूसरी ही साम्प्रदायिक बात ले ली, जैसे राजनीतिक, आर्थिक, या शिक्षा-सम्बन्धी या कोई दूसरी ही। इसलिए इस सवाल की असली जड़, धर्म से अलग ही है। इस प्रकार धर्म, राजनीति, अर्थनीति, शिक्षा, कानून—सब के सब इसी ‘मैं’ और ‘मम’ के आधीन हो जाते हैं।

“साम्प्रदायिकता के विषय में यही असल सवाल है। आखिर, तब इस खयाल को हम किस प्रकार दूर कर सकेंगे कि यह धर्म मेरा धर्म है, मेरी राजनीति, मेरी साम्प्रदायिक राजनीति है, इत्यादि? धर्म के बारे में यह सवाल हल हो सकता है—अगर व्यक्ति यह समझने लगे कि इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करना, किन्तु मोटी २ मूलभूत नैतिक शिक्षाओं पर जैसे सत्य, अहिंसा, अस्तेय, इत्यादि। तब मैं और मेरे के भाव को किसी ऊँचे सिद्धान्त के सामने दबावा होगा, न कि इसके सामने उस का गुणगान और रक्षा कर सकता हूँ, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अहिंसा का भी कोई साम्प्रदायिक रूप है, सामाजिक अस्तेय भी है और ऐसी ही बातें हमें हमारे समाज के उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई हैं। बस, हर व्यक्ति को पहले तो किसी धर्म विशेष को अपना साम्प्रदायिक धर्म समझने का ख्याल छोड़ देना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब वह सर्वोच्च सत्य, अहिंसा, अस्तेय, इत्यादि त्रिनका जिक्र ऊपर हो चुका है, के आगे ‘मैं और मेरे’ के भाव को दबा देवे। तभी — उससे

पहले नहीं, वह सभी धर्मों को उनके गुणोपानुसार समझ सकेगा।”

अगर हम ‘मैं’ और ‘मेरे’ को धर्म, राजनीति, अर्थनीति, इत्यादि से दूर कर सकते, तो हमें तुल्य ही मुक्ति मिल जाती और पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतर आता।  
(२० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### विद्यार्थियों का धर्म

लाहोर से एक भाई बड़ी बढ़िया हिन्दी में एक कृष्णजनक पत्र लिखते हैं। मैं उसका सारांश ही नीचे देता हूँ—

“हिन्दू-मुसलिम झगड़े, और काउन्सिलों के चुनाव के कामों ने असहयोगी छात्रों का मन बाबांढोल कर दिया है। देश के लिए उन्होंने बहुत त्याग किया है। उसकी सेवा ही उनका मूल मन्त्र है। आज उनका कोई पथ-प्रदर्शक नहीं है। काउन्सिलों के नाम पर वे उछल नहीं सकते। हिन्दू-मुसलिम झगड़ों में भी वे पड़ना नहीं चाहते। इसलिए वे उद्देश्यहीन हो कर यों ही, बल्कि उससे भी बुरा जीवन बिता रहे हैं, क्या उनकी जीवन तरी को यों ही बढ़ने दिया जायगा? कृपा कर यह भी याद रखिये कि इस परिणाम के लिए अन्त में आप ही जिम्मेवार ठहरेंगे। यद्यपि नाम मात्र के लिए उन्होंने महासभा की ही आज्ञा मानी थी किंतु असल में उन्होंने आपके ही हुक्म की तामील की थी। अब क्या उन्हें रास्ता दिखाना आपका कर्तव्य नहीं है?”

आदमी नांद भले ही बता लेवे, लेकिन क्या बेमन घोड़े को भी वह खींच ले जा कर वहाँ खिला भी सकता है? मुझे इन भले नवयुवकों से सहानुभूति तो जरूर है, लेकिन उनकी इस अव्यवस्थितता के लिए मैं अपने को दोष नहीं दे सकता हूँ। यदि उन्होंने मेरी आवाज सुनी थी तो अब भी उसे सुनने से उन्हें रोकता कौन है? जिस किसी को सुनने की पर्वा होवे उसे मैं चर्खे का मन्त्र साधने को अनिश्चित स्वर में नहीं कहता। लेकिन दर असल बात तो यह है कि १९२० में उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी थी (और यह ठीक भी था) किंतु महासभा की। बल्कि उससे भी घड़ी बात यह होगी कि उन्होंने अपनी ही अन्तर्ध्वनि सुनी थी। कांग्रेस का हुक्म उसीका प्रतिच्छाया था। निषेधात्मक कार्यक्रम के लिए वे तैयार थे। कांग्रेस के कार्यक्रम का रचनात्मक भाग चर्खा, जो अभी भी कांग्रेस का हुक्म है, उनको कुछ जँवता हुआ सा नहीं मालूम होता है। अगर बात ऐसी ही है तो फिर कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक और हिस्सा बचा हुआ है—अछूतों की सेवा। यहाँ भी, स्वदेश-सेवा के लिए मरने वाले सभी विद्यार्थियों के लिए जरूरत से ज्यादा काम है। वे जान लेवें कि वे सभी, जो समाज की नैतिक दृष्टि ऊँचा करना चाहते हैं, वा जो बेकारी के रोग में ग्रस्त करोड़ों आदमियों को काम देते हैं, स्वराज के सच्चे बनाने वाले हैं। विशुद्ध राजनीतिक कार्य को भी वे सहज बना देंगे। इस रचनात्मक कार्य से विद्यार्थियों के अच्छे से अच्छे गुण प्रकट होंगे। स्नातकों और उपस्नातकों—सब के लिए यह उपयुक्त काम है।

लेकिन यह भी संभव है कि चर्खा वा अछूतोद्धार कोई भी उनके लिए जोश दिलाने वाले काम न हों। ऐसी हालत में उन्हें जान लेना चाहिए कि वैद्य की हैसियत से मैं बेकार हूँ। मेरे पास गिने गिनाये नुस्खे हैं। मैं तो मानता हूँ कि सभी बीमारियों की जब एक ही है और इसलिए उनका इलाज भी एक ही हो सकता है। मगर वैद्य को क्या उसके पास दवाओं की कमी के लिए दोष दिया जायगा और सोभी तब जब कि वह यही बात पुकार २ कर कह रहा हो?

जिन विद्यार्थियों के विषय में ये सज्जन लिखते हैं, उनमें तो अपने जीवन का रास्ता खोज निकालने लायक शक्ति होनी हो चाहिए। स्वावलम्बन का ही नाम स्वराज है। मो क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद सुदि ९, संवत् १९८३

## मनोवृत्तियों का प्रभाव

एक अंग्रेजी सज्जन लिखते हैं:

“यंग इंडिया” में संताननिग्रह पर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बड़ी दिलचस्पी से पढ़ता रहा हूँ। मेरी उम्मीद है कि आपने जे० ए० हबफोल्ड की “साइकालोजी ऑफ़ मारेल्स” नामक पुस्तक पढ़ ली है। मैं आप का ध्यान उस पुस्तक के निम्न-लिखित उद्धरण की ओर दिलाना चाहता हूँ:—

“विषयभोग स्वेच्छाचार उस हालत में कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधी मानी जाती हो और विषयभोग को निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब कि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिह्न माना जाय। विषयवासना का इस प्रकार व्यक्त होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुतः गाढा बनाना है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना संभोग करने से और दूसरी ओर संभोग के विचार को तुच्छ घुस मानने के भ्रम में पड़ कर उससे परहेज करने से अकस्मिक अशान्तपन पैदा होता है और प्रेम कम पड़ जाता है।” यानी उनकी समझ में संभोग करना सन्तानोत्पत्ति के कारणों के सिवा भी स्त्री-संग प्रेम बढ़ाने का धार्मिक गुण रखता है।

“अगर लेखक की यह बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि संतान पैदा करने की मंशा से किया हुआ संभोग ही उचित है—अन्यथा नहीं। मेरा तो निजी क़याल यह है कि लेखक की उपरोक्त बात सच है, क्योंकि महेज यह ही नहीं कि वह एक मानसशास्त्रवेत्ता है, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं कि जिसमें प्रेम को व्यवहार के द्वारा व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने की कोशिश करने से दाम्पत्य जीवन नीरस या नष्ट हो गया है।

अच्छा इसे लीजिये: एक युवक और एक युवती एक दूसरे के साथ प्रेम करते हैं और उनका यह करना सुन्दर तथा ईश्वरकृत व्यवस्था का एक अंग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चे को तालीम देने के लिए काफी पैसा नहीं है (और मैं समझता हूँ कि आप इस से सहमत हैं कि तालीम बगैरही की हैसियत न रखते हुए संतान पैदा करना पाप है), या यह समझ लीजिये कि संतान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक होगा या यह कि उसके अभी ही बहुत से बच्चे हैं।

आपके कथनानुसार तो इस दम्पति के आगे केवल दो ही रास्ते हैं: या तो वे विवाह कर के अलग २ रहें—लेकिन अगर ऐसा होगा तो हबफोल्ड की उपरोक्त दलील के मुताबिक उनके बीच मुहब्बत का खात्मा हो चलेगा—या वे अविवाहित रहें, लेकिन इस सूत में भी उनकी मोहब्बत जाती रहेगी। इसका कारण यह है कि प्रकृति बल के साथ मनुष्यकृत योजनाओं की अपहेलना किया करती है। हाँ, यह बेशक हो सकता है कि वे एक दूसरे से जुदा हो जावें, लेकिन इस अलाहदगी में भी उनके मन में विकार तो उठते ही रहेंगे। और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी बदल दें कि सब लोगों के लिये उतने ही बच्चे

पैदा करना मुमकिन हो जितने कि वे चाहें, तो भी समाज को अतिशय सन्तानोत्पत्ति का और हर एक औरत को हृद से ज्यादा सन्तान उत्पन्न करने का खतरा तो बना ही रहता है। इसकी वजह यह है कि मर्द अपने को बहुत ज्यादा रोके रहता हुआ भी साल में एक बच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो प्रशस्ति का समर्थन करना चाहिये या सन्तान-निग्रह का; क्योंकि वक्तूकवक्तूक किये हुए सम्भोग का नतीजा यह हो सकता है कि (जैसा कि कभी २ पादरियों में हुआ करता है) औरत, ईश्वर की भरजी के नाम पर मर्द के द्वारा पैदा किया हुआ, हर साल एक बच्चा जनन करने की वजह से मर जाय। जिसे आप आत्म-संयम कहते हैं, वह प्रकृति के काम में उतना ही विरोध है—बल्कि हकीकतन ज्यादा—जितना कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम साधन हैं। संभव है कि पुरुष लोग इस साधनों को मदद से विषय-भोग में अतिशयता करें, परन्तु उससे सन्तति की पैदाइश रुक जायगी और अन्त में उन्हींको दुःख भोगना होगा—अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत, जो लोग इन साधनों का उपयोग नहीं करते, वे भी अतिशयता के दोष से कदापि मुक्त नहीं हैं, और उनके दोष को वे ही नहीं, सन्तति भी जिनकी पैदाइश को वे नहीं रोक सकते हैं, भोगते हैं। इंग्लैंड में आजकल खानों के मालिकों और मजदूरों के बीच जो झगडा चल रहा है, उसमें खानों के मालिकों की विजय सम्भवतः है। इसका कारण यह है कि खदान वाले बहुत बड़ी तादाद में हैं। और सन्तानोत्पत्ति की निरंकुशता से बेचारे बच्चों का ही बिगाड नहीं होता, बल्कि समस्त मानव-जाति का।”

इस पत्र में मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को साँप समझ लेता है, तब उस विचार को लिए हुये वह पीला पड़ जाता है, या तो वह भागता है या उस कल्पित साँप को मार डालने की गरज से लाठो उठाता है। दूसरा आदमी किसी गैर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु-वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठंडा पड़ जाता है।

इसी तरह से उपरोक्त मामले में, जिसका कि पत्र-लेखक ने जिक्र किया है, माना जाय। जैसा कि संभोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम में पड़ कर उससे परहेज करने से प्रायः अशान्तपन उत्पन्न होता है और प्रेम में कमी आ जाती है: यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। लेकिन अगर संयम, प्रेमबंधन को अधिक दृढ़ बनाने के लिए रक्खा जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिए वीर्य को जमा करने के अभिप्राय से किया जाय तो वह अशान्तपन के स्थान पर शान्ति ही बढावेगा और प्रेमगाँठ को ढीला न कर के उल्टे उसे मजबूत बनावेगा। यह दूसरी मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। जो प्रेम पशुवृत्ति की तृप्ति पर आधारित है, वह आखिर स्वार्थपन ही है और थोड़े से भी दबाव से वह ठंडा पड़ सकता है। फिर, यदि पशुवृत्तियों की संभोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप न दिया जाय तो मनुष्यों में होनेवाला संभोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप क्यों दिया जाय? हम जो बीज जैसी है वैसी ही उसे क्यों न देखें? प्रतिजाति को कायम रखने के लिए यह एक ऐसी क्रिया है जिसकी ओर हम बलात्कारशः खींचे जाते हैं। हाँ, लेकिन मनुष्य अर्वादा स्वरूप है, क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतंत्र इच्छा दी है और इसके बल से वह जाति की उन्नति के लिए और पशुओं की अपेक्षा उच्चतर



१६ सितम्बर, १९२६

आदर्श की पूर्ति के लिए, जिसके लिए वह संसार में आया है, इन्द्रिय-भोग न करने की क्षमता रखता है। संस्कारवशात् ही हम यों मानते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के कारण के सिवाय भी स्त्री-प्रसंग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिए इष्ट है। बहुतों का अनुभव यह है कि भोग ही के कारण किया हुआ स्त्री-प्रसंग प्रेम को न तो बढ़ाता है और न उसको स्थिर करने के लिए या उसको शुद्ध करने के लिए आवश्यक है। अलवृत्ता, ऐसे भी उदाहरण अवश्य दिये जा सकते हैं कि जिनमें निग्रह से प्रेम उदाहरण अवश्य दिये जा सकते हैं कि जिनमें निग्रह से प्रेम और भी दृढ़ हो गया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं कि यह निग्रह पति और पत्नी के बीच आपस में आत्मिक उन्नति के लिए स्वेच्छा से किया जाना चाहिए। मानवसमाज तो लगातार बढ़ती जानेवाली चीज या आध्यात्मिक विकास है। यदि मानवसमज इस तरह ऊर्द्धगामी है, उसका आधार शारीरिक हजतों पर दिन ब दिन ज्यादा अंकुश रखने पर निर्भर होना चाहिए। इस प्रकार से विवाह को तो एक ऐसी धर्म-प्रथि समझना चाहिए जो कि पति और पत्नी दोनों पर अनुशासन करे और उन पर यह कैद लाजिमी कर दे कि वे सदा अपने ही बीच में इन्द्रियभोग करेंगे, सो भी केवल संतति-जनन की गरज से और उसी हालत में जब कि वे दोनों उस काम के लिए तैयार और इच्छुक हों। तब तो उक्त पत्र की दोनों बातों में संतति-जनन की इच्छा को छोड़ कर इन्द्रियभोग का और कोई प्रश्न उठता ही नहीं है।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी स्त्री-संग को आवश्यक बतलाता है, उसी प्रकार अगर हम भी प्रारम्भ करें, तो तर्क के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता है। परन्तु संसार के हर एक हिस्से में चन्द उत्तम पुरुषों के सम्पूर्ण संयम के दृष्टान्तों की मौजूदगी में उक्त सिद्धान्त को कोई जगह नहीं है। यह कहना कि ऐसा संयम अधिकांश मानव-समाज के लिये कठिन है, संयम की शक्यता और इष्टता के विरुद्ध कोई दलील नहीं हो सकता। सौ वर्ष हुए जो मनुष्य के लिये शक्य न था वह आज शक्य पाया गया है। और असीम उन्नति करने के निश्चित काल के चक्र में, जो हमारे सामने पड़ा है, १०० वर्ष की विसात ही क्या? अगर वैज्ञानिकों का अनुमान सत्य है तो कल ही तो हमको आदमी का चोला मिला है। उसकी मर्यादा को कौन जानता है? और किसमें हिम्मत है कि कोई उसकी मर्यादा को स्थिर कर सके? निस्सन्देह हम नित्य ही भला या बुरा करने की निस्सीम शक्ति को उसमें पाते रहते हैं। अगर संयम की शक्यता और इष्टता मान ली जायँ, तो हमको उसे करने के लायक होने के साधनों को ढूँढ निकालने की कोशिश करनी चाहिये। और, जैसा कि मैं अपने किसी पिछले लेख में लिख चुका हूँ, अगर हम संयम से रहना चाहते हों तो हमें जीवनक्रम बदलना आवश्यक है। लड्डू हाथ में रहे और पेट में भी चला जाय — यह कैसे हो सकता है? जननेन्द्रिय-संयम अगर हम करना चाहते हैं तो हमको अन्य इन्द्रियों का इत्यादि की लगाम ढोली कर दी जाय तो जननेन्द्रिय संगम असम्भव है। अशान्ति, हिस्टीरिया, सिडीपन भी जिसके लिये लोग ब्रह्मचर्य-प्रयत्न को दोषित ठहराते हैं, हकीकतन अन्त में अन्य इन्द्रियों के असंयम से पैदा हुये ही निकलेंगे। कोई भी पाप नहीं सकता। मैं शब्दों पर झगड़ना नहीं चाहता। अगर आत्म-संयम प्रकृति का उल्लंघन ठीक उसी तरह है, जिस तरह कि

गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम उपाय हैं, तो भले ऐसा कहा जाय। लेकिन मेरा ख्याल तब भी यही बना रहेगा कि पहला उल्लंघन कतैव्य है और इष्ट है, क्योंकि उसमें व्यक्ति की तथा समाज की उन्नति होती है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनों का पतन। ब्रह्मचर्य अतिशय संतति-संख्या नियमित करने के लिये एक ही सच्चा रास्ता है। और स्त्री-प्रसंग के बाद संतति-वृद्धि रोकने के कृत्रिम साधनों का परिणाम जातिहत्या ही है।

अन्त में, यदि खानों के मालिक गलत रास्ते पर होते हुये भी विजयी होंगे, तो इसलिए नहीं कि मजदूरों में संतति की संख्या बहुत बढ़ गई है, बल्कि इसलिए कि मजदूर लोगों ने सर्व इन्द्रियों के संयम का पाठ नहीं सीखा है। इन लोगों के बच्चे न पैदा होते तो उनको तरकी के लिए उत्साह ही न होता और तब वेतन-वृद्धि के पक्ष में कोई कारण उनके पास न होता। क्या उन्हें शराब पीने, जुआ खेलने या तमाखू पीने की जरूरत है? और क्या यह कोई माकूल जवाब हो जायगा कि खदानों के मालिक इन्हीं दोषों से लिप्त रहते हुये भी उनके ऊपर हावी हैं? अगर मजदूरलोग पूंजी पतियों से बेहतर होने का दावा नहीं करते तो उनको जगत की सहायुभूति मांगने का अधिकार ही क्या है? क्या इसलिए कि पूंजीपतियों की संख्या बढ़े और संपत्तिवाद का हाथ मजबूत हो? हम को प्रजावाद की दुहाई देने को यह आशा दे कर कहा जाता है कि जब वह संसार में स्थापित होगा, तब हम को अच्छे दिन देखने को मिलेंगे। इसलिए हमें लाजिम है कि हम उन्हीं बुराइयों की स्वयं न करें, जिनका दोषारोपण हम पूंजीपतियों तथा संपत्तिवाद पर करना पसन्द करते हैं। मुझे दुःख के साथ यह बात मालूम है कि आत्मसंयम आसानी से नहीं किया जा सकता। लेकिन उसकी धीमी गति से हमें घबराना न चाहिए। जल्दबाजी से कुछ हासिल नहीं होता। अधैर्य से जनसाधारण में या मजदूरों में अत्यधिक संतानोत्पत्ति की बुराई बन्द न हो जायगी। मजदूरों के सेवकों के सामने बड़ा भारी काम पड़ा है। उनको संयम का वह पाठ अपने जीवन-क्रम से निकाल न देना चाहिये जो कि मानव-जाति के अच्छे से अच्छे शिक्षकों ने अपने अमूल्य अनुभव से हमको पढ़ाया है।

जिन मौलिक सिद्धान्तों की विरासत उन्होंने हमें दी है, उनको आधुनिक प्रयोगशालाओं से कहीं अधिक संपन्न प्रयोगशाला में साक्षात्कार किया गया था। आत्म-संयम की शिक्षा उन सबों ने हमें दी है।

( यं० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी  
बिहार में एक और प्रदर्शनी

हजारीबाग से एक सज्जन वहाँ की खादी-प्रदर्शनी की निम्न-लिखित रिपोर्ट भेजते हैं—

“ १३ वीं बिहार खादी-प्रदर्शनी हजारीबाग में १४ से १६, अगस्त सन् १९२६ तक हुई। और उसका उद्घाटन लगभग २०० खास २ लोगों की उपस्थिति में बा. राजेन्द्रप्रसाद ने किया। बा. राजेन्द्रप्रसाद ने हजारीबाग के विद्यार्थियों को खादी की उन्नति पर दो व्याख्यान और दिये। हजारीबाग में प्रथम श्रेणी का एक कालेज है और वहाँ विद्यार्थियों की संख्या भी खासी रहती है। इस प्रदर्शनी में ३०१२ की बिक्री हुई। ग्राहकों की संख्या ६२० थी। दर्शक लोग लगभग ३००० की संख्या में उपस्थित थे और इनमें ३०० महिलायें थीं। इन महिलाओं ने खादी की खरीद में खूब प्रेम जाहिर किया। इस प्रदर्शनी में अन्य प्रदर्शिनियों की वनिस्वत बिक्री सब से ज्यादा हुई।

( यं० इ० ) मो० क० गांधी



## पिंजाई अथवा धुनाई

धुनकी से धुनने का प्रधान साधन है तांत । अच्छी तांत से रुई अच्छी धुनती है और वह तांत बहुत दिनों तक चली भी है । बिना दुर्गन्ध की, तार के समान चिकनी और जिसकी फेरी को छोड़ देने पर खुल न जाती हो—ऐसी तांत को अच्छी कहते हैं । तांत की कच्चाई और ऐब ढँकने के लिए, कारीगर उस पर तेल चुपड़ते हैं और उसे रंगते भी हैं । अधिकतर तांत ४० हाथ लम्बी होती है । अच्छी तांत के ४० हाथ के एक तार का दाम करीब दो आना लगता है । तांत के तारों का पना लगाने के लिए, तांत के एक टुकड़े का छोर काट कर पानी में भिगो दो । पानी में भिग जाने से तांत के तार अलग २ हो जायेंगे और गिने जा सकेंगे । पानी के स्पर्श से या गीली हवा के लगने से तांत में नमी आ जाती है और तब वह रुई धुन नहीं सकती । उल्टे, तांत के ऊपर रुई लिपट जाती है । रुई में अगर कुछ नमी होवे तो भी रुई तांत में सड़ जाती है । इसलिए तांत को और धुनने की रुई को, उनकी नमी सुखा देने के लिए, पहले ही सुखा लेते हैं । धुनते समय तांत घिसती भी है । इससे उसमें के कितने एक तार सड़ज में ही टूट जाते हैं । और उनकी ऐठन उधरती है । इसी प्रकार से धुनते समय तांत अचानक ही टूटती रहती है और तब भी उसकी ऐठन खुलती है । इन दोनों ही बातों के लिए, हमेशा धुनने के पहले तांत में पत्तों का रस मलते हैं । किसी भी लसदार तेलहन के झाड़ के हरे पत्ते को उस पर रगड़ देते हैं । इसके लिए, नीम और कपास के पत्ते अच्छे होते हैं । पत्ते रगड़ने के बाद, तांत को सूखने के लिए कुछ देर धूप में छोड़ देते हैं । तांत धूप में सूखती हो या घर में रक्खी हो, मगर इसका ख्याल रखना चाहिए कि कहीं तांत अथवा कांकर को कुत्ता या चूहा न चबा जाय । वर्षाकाल या चौमासे में तांत को गद्दी के नीचे या किसी बंद कोठरी में ऐसी जगह रखना चाहिए जहाँ गर्म हवा पहुँचती रहे । तांत का काम है धुनने के लिए रक्खी हुई रुई के गंज को चोट मारना; रुई को समान रूप से नोच लाना और चुची हुई रुई के रेशों को अलग २ करना और अलग २ किये हुए रेशों को सामने बिछी हुई चटाई पर समान रूप से लाकर फैला देना । तांत से रुई की गंज पर चोट करने के लिए हाथ की चुटकी और गुलैठा से काम लेना पड़ता है । बिहार के कमठे की मूज की डोरी और आन्ध्र के कमठे के दोतारी तांत में चुटकी से ही तांत को छोटते हैं । और दूसरे सभी कमठों और पीजनों की तांत को गुलैठे से ही छटकाते हैं । तांत जितनी मोटी हो उतना ही गुलैठा भी मोटा और भारी वजन का होता है । तांत जितनी पतली हो रुई के रेशे भी उतने ही अधिक छूटते हैं । रुई के रेशे जितने अलग २ होते हैं सूत भी उतना ही बारीक, समान, कसवाला और जल्दी से कतता है । गुलैठा चिकनी लकड़ी का बनता है । इसली के गार यानी भीतर की लकड़ी गुलैठे बनाने के काम में आती है । चिकनी लकड़ी के गुलैठे से तांत कम टूटती है । तांत पर जहाँ गुलैठा पड़ता है, वहाँ की तांत बहुत घिसती है । इस रगड़ को रोकने के लिए वहाँ पर जबतब मोम मलते हैं । पीजन को हाथ से जहाँ पकड़ा है, ठीक उसके सामने ही तांत में गुलैठा मारना और उसकी खिचान भी बिल्कुल सीधी ही पढ़नी चाहिए । ऐसा न हो कर अगर गुलैठा अगलबगल में पड़े या उसकी मार की खिचान सीधी न हो — ऊँचे नीचे पड़े तो पीजन को समतोल नहीं रखा जा सकेगा । बिना समतोल रखे पीजन ठीक काम देगा नहीं और धुननेवाले को शीघ्र ही थका देगा ।

पीजन और गुलैठा कितना तिर्छा रखना चाहिए, यह धुननेवाले को अपनी सुविधा का ख्याल कर के आप ही ठीक कर लेना चाहिए । धुननेवाला अगर पीजन के सामने उकड़ें बैठ कर धुनेगा तो तुरत ही थक जायगा मगर अगर वह बायाँ पैर बड़ा कर और दहिना मोड़ कर और पीजन को बायें बगल झुका कर बैठेगा तो बिना थके बहुत देर तक धुन सकेगा ।

यह मैं ऊपर कह आया हूँ कि पीजने के लिए रुई बिल्कुल साफ होनी चाहिए । धुनने के लिए चटाई पर रुई को ज्यों ज्यों कर के यों ही फैला नहीं देना चाहिए, बल्कि तांत के धुननेवाले भाग के बराबर लंबाई में गंज लगा कर रख देना चाहिए । ऊँचाई उसकी, जहाँ तक हाथ पहुँच सके उतनी रखनी चाहिए । जहाँ तक हो सके यह गाज चौरस ही लगानी । रुई रखने की चटाई सरकंदों की बनती है । चटाई बांधते समय, सरकंदों के बीच में थोड़ी जगह छोड़ दी जाती है । धुनते समय रुई में से झड़ती हुई कच्ची रुई इसी रास्ते छन जाती है ।

गंज के अगले भाग से धुनना शुरू नहीं करना चाहिए, किन्तु अपनी ओर के बाजू से ही । धुनते समय पीजन को तिरछा पकड़ना चाहिए और कमठे को आड़ा । धुनना शुरू करते समय तांत को रुई की गंज से जरा नीचे लेना और पतली तांत को एक इंच तथा मोटी को उसकी मुटाई के हिसाब से डेढ़ से दो इंच तक गंज से दूर रखना । पहली चोट दूर में रखी हुई केवल तांत के ऊपर ही मारना चाहिए । पहली चोट से छटकी हुई तांत अपनी शक्ति के अनुसार रुई को खींच लावेगी । फिर गंज से ऊँचा हाथ कर के दूसरी चोट मारने से पहली चोट से तांत में उठी हुई रुई छूट कर गंज के ऊपर जा पड़ेगी । इसी प्रकार दो दो बार चोट कर के तीन चार बार की निकली हुई रुई को गंज के एक किनारे खाली चटाई पर फैला देना । इस प्रकार मकड़ी के जाळे के समान अलग २ फैलाये हुए रेशों को पाल कहते हैं । जिस पोल के नीचे रखे हुए कागज पर की लिखावट पढ़ी जा सके उसे अच्छा पोल कहेंगे । तांत अपनी शक्ति के अनुसार पहली ही चोट में जितनी रुई खींच ले उससे अधिक रुई उठाने का प्रयत्न कभी नहीं करना । चुची हुई रुई के रेशों को आगे ले जाने में, तांत कहीं गंज में लग न जाय—इसका ख्याल रखना चाहिए । बहुत रुई धुन कर फेंक देने की लालच रखनेवाला या उतावली करने वाला न तो कभी अच्छी ही, न अधिक ही रुई धुन सकता है । इसलिए तांत को कभी भी जहाँ तहाँ से वे धुनी रुई में डुबाना नहीं और जहाँ तहाँ से वे हिसाब धुनना नहीं । फेले हुए पोल की तुरत ही तुरत पूनियाँ बना लेना चाहिए । पोल को पड़े रहने देने से या एक पोल के ऊपर दूसरा फैला देने से वह बिगड़ जाता है । इस बिगड़े हुए पोल को फिर से पीजने पर उसमें से रुई की बुंदिया गिरती हैं । धुनी रुई को आगे ले जाते समय बीच में अगर कच्ची रुई मिल जाती है, तौ भी उसे धुनने समय उसके धुने हुए भाग से बुंदिया गिरने लगती हैं । और यदि कच्चे को पूरा पीजे बिना छोड़ दिया जाय तो उतना पोल कच्चा रह जाता है । कच्चे या विशेष धुने हुए बुन्दकी वाले पोल से सूत के भी कस, समानता, और कताई की गति में बहुत कमी हो जाती है ।

पोल में से रुई लेकर छड़ से पूनी बनायी जाती है । पूनी बनाने के लिए पीड़ा, पटरा, चौरस पत्थर या थाली का उपयोग होता है । पूनी हथेली और पटरी से बनती है । पूनी के लिए पोल लेते समय इसका ख्याल रखना चाहिए कि किसी प्रकार पोल



जुब लुँध न जाय । पूनी बनाने का छड़, छूँ से लेकर ३ इंच मोटा, लोहे बाँस या सरकंडे का होना चाहिए । छड़ बिल्कुल चिकना होना चाहिए । पूनी के लिए पोल बराबर चौरस फैलाना । जैसे तैसे फैलाये हुए पोल की पूनी भी ऐसी ही वैसी ना बराबर होती है । अच्छे कातनेवाले का समय भी इनसे बहुत खराब होता है; या सूत ही बिगड़ता है । इतना पोल लेना कि छड़ निकाल लेने पर भी पूनी बिल्कुल सीधी खड़ी रहे । तैयार पूनी को एक समान सज कर रखना । फिर पाव भर या आध रतल पूनियाँ लेकर कागज में लपेट कर जोर से बांध देना । फिर कातने की जरूरत माफिक पूनी निकाल कर कातते रहना । कातने के लिए बाहर निकाली हुई पूनी को कुछ कुछ भीगे हुए कपड़े में लपेट कर रखना और कातने के लिए एक एक पूनी निकालना । पूनी को खुला या लुटा रखने से उसकी ऐंठन खुल जाती है । ऐसी बिगड़ी हुई पूनी सूत कातने के लिए नाकाम ठहरती है । और अगर कोई उससे काते भी तो उसका सूत मोटा, पतला और कमजोर होता है । ऐसे सूत से कपड़े के दाम के बराबर उसकी बुनाई की ही मजदूरी जुलाहा मांगता है ।

(नवजीवन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

## धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं :—

“सर्वजनिक काका (महाराष्ट्र के एक भूतपूर्व लेखक) की पुण्यतिथि मनाने के लिए पूना में एक सभा हुई थी । उसमें श्री बाळ काका कानिटकर ने कहा था कि “देशी मिलों के कपड़े पहनने से विलायती कपड़े ही पहनना अच्छा है ।” इस विचित्र वचन का आधार कहीं आप के हिन्द-स्वराज्य में से तो नहीं लिया गया है ? उसके १९ वें अध्याय में आपने लिखा है, “मुझे कहना चाहिए कि हमारी हिन्दुस्तान की मिलों से कपड़े लेने की बनिस्वत अभी मैचेंस्टर में पैसे मेज कर वहाँ के सड़े कपड़े पहनना ही अच्छा है, क्योंकि वहाँ का कपड़ा लेने से हमारा केवल पैसा ही जायगा और हिन्दुस्तान में ही मैचेंस्टर की स्थापना करने से हमारा पैसा रह तो यहीं जायगा, किन्तु वह पैसा हमारा खून चूस लेगा, क्योंकि वह हमारी नीति को हर लेगा । गरीब हिन्दुस्तान की मुक्ति संभव है, किन्तु पैसे वाले अनीतियुक्त हिन्दुस्तान की नहीं ।” यह बात कह कर आगे चलने पर आप ने इसे कुछ हलका कर दिया है और कहा है कि “मिलों को बंद करने को कहना तो जरा भारी बात है । अपने मिल-मालिकों का साहस न बढाने की विनय मैं कर सकता हूँ ।” किन्तु १९२१ में छपी हुई, इसकी हिन्दी आवृत्ति की प्रस्तावना में आप ने लिखा है, “केवल मिलों के विषय में मेरे विचार में इतना परिवर्तन हुआ है कि हिन्दुस्तान की अभी की स्थिति में मैचेंस्टर के कपड़े लेने की बनिस्वत, अगर देशी मिलों को उत्तेजन देना पड़े तो ऐसा कर के भी हमें अपने काम लायक कपड़ा अपने देश में ही पैदा कर लेना चाहिए ।” यह तो ऐतिहासिक विवेचन हुआ । इससे आपके सन् १९०८ और २१ के विचार क्या थे, यह मैंने देख लिया । किन्तु इस परिवर्तन के कारणों और आप के अभी के विचारों के ऊपर आप ही प्रकाश डाल सकते हैं । १९०८ की नीति की दलील, सन् २१ के बाद के असहयोग की परिस्थिति के कारण कुछ हलकी पड़ गयी क्या ? या स्वराज लेने के ध्येय के कारण और विदेशी कपड़े के बहिष्कार की दलील की सर्वोपरिता के कारण, उसका महत्व ही कुछ कम हो गया ?”

यह संभव है कि “हिन्द-स्वराज्य” में से यह वाक्य निकाला गया हो कि “देशी मिलों के कपड़े व्यवहार करने की अपेक्षा विलायती कपड़े पहनना अच्छा है ।” जिस संबंध में यह वाक्य लिखा गया था, उस संबंध में मेरे विचार जो सन् १९०८ में थे, वे आज भी हैं । उसमें दिया हुआ वर्णन केवल सिद्धान्त के आधार पर अवलंबित है । ऐसी परिस्थिति का भी पैदा होना संभव है जब कि इस विचार का अमल नहीं किया जा सकता, इसलिए हिन्दी आवृत्ति की प्रस्तावना में मैंने पाठकों को सावधान कर दिया है । और यह समुचित स्थान पर ही है । मिलों के जल में हम जितने फँस गये हैं, अगर उतने न फँसे होते और अगर यह प्रश्न होता कि नई मिल खोल कर स्वदेशी या विदेशी माल का व्यवहार किया जाय तो मैं विदेशी माल को ही पसन्द करता, क्योंकि दुनिया में मिलों की प्रवृत्त को बढाना चाहिए, यह बात मानने वाला मैं नहीं हूँ । मिलों के व्यवसाय के बिना भी कपड़ा बन सकता है; जैसा सुन्दर बनाना चाहो वैसा बन सकता है, जितना चाहिए उतना तैयार हो सकता है, और हम यह भी देख चुके हैं कि उसकी बनिस्वत समय भी इसमें बहुत नहीं जाता है । इससे मिल व्यवसाय में किसी प्रकार का परमार्थ है, या लोक-कल्याण है, ऐसा मुझे मालूम नहीं होता है ।

किन्तु सवाल तो उलटा और बिल्कुल दूसरा ही है । हमारे देश में मिलें बहुत हैं । इस समय मिलों को बंद करने की बात मालिकों को समझाना संभव नहीं है । विदेशी कपड़े का बहिष्कार इष्ट और आवश्यक है । यह हमारा धर्म है — हमारा अधिकार है । इस धर्म का पालन करने में, अपने पास सहज ही पड़े हुए साधनों का हमें उपयोग करना ही चाहिए । अगर ऐसा न करें तो हमारी बुद्धि में टोटा समझा जायगा ।

धर्म कोई ऐसी स्वतन्त्र वस्तु नहीं है कि परिस्थिति के बदलने से जिसमें परिवर्तन न हो । उत्तर ध्रुव में रहने वालों के लिए जो धर्म है, भूमध्यरेखा के पास रहने वाले भी अगर उसका पालन करें तो शायद उसे अधर्म में ही गिना जायगा । स्वतंत्र तो एक ही धर्म है और वह सत्य के नाम से जाना जाता हुआ ईश्वर में ही लीन हो जाता है । पराधीन और अत्यन्त परिमित शक्तिवाले मनुष्य का धर्म क्षण क्षण में बदला करता है । उसकी भूमिका वा आधार ए ही होता है — सत्य कहो या अहिंसा कहो । किन्तु जहाँ किसान अपना खेत छोड़े, बकस के ऐसी छोटी कोठरियों में मजदूरों के कई कुटुम्ब, नीति अनीति के मेद का विचार बिना किये ही रहें, जहाँ मजदूर बहुत कुटेव सीखें, वहाँ खुशियाँ मनाने की कोई बात तो है नहीं । धनिक लोगों की दृष्टि से विचार करने पर भी मिलों में हमें कोई ऐसी बात देखने को नहीं मिलती जो हमें ऊँचे ले जावे । धन इकठा करने या उसे कुछ हिस्सेदारों में ही बांट देने में किसी प्रकार का आदर्श तो नजर नहीं आता, किन्तु जैसे शरीर पर एक ही दृष्टिकोण से विचार करने पर यह बुरी वस्तु मालूम होती है, किन्तु अनिवार्य समझ कर उसका उपयोग करना ही पड़ता है उसी प्रकार मिलों इत्यादि को भी इस समय में अनिवार्य समझ कर हम बरदाश्त करें और उनसे अगर हम काम ले सकें तो बहिष्कार की खातिर ही लेवें । यदि उनका ऐसा कोई उपयोग न मिल सके और बहिष्कार के पथ में वे बाधा रूप बन जावें तो उनका नाश ही इष्ट और आवश्यक होगा ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



## शाहाबाद के स्कूलों में

शाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चर्खा समिति के मंत्री लिखते हैं:

“ गत २७ अगस्त को शाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के आधीनस्थ प्राथमिक स्कूलों के लड़कों ने बोर्ड के कार्यालय में सूत कातने का प्रदर्शन किया था। बोर्ड के करीब २ सभी मेम्बर और शहर के गरायमान्य सज्जन उपस्थित थे। २० लड़कों ने बाजी में भाग लिया था। चर्खा दंगल समाप्त हो जाने पर बक्सर के एच डिविजनल अफसर मौलवी इजहार हुसैन ने सूत की सिकदार और अच्छेपन के खगल से सफल लड़कों को इनाम बांटा। बोर्ड के मेम्बरों को लड़कों ने अपने हाथ के कते सूत के बनाये गये ४२ रुमाल भेंट किये। ”

प्रदर्शन के समय मंत्री ने एक रिपोर्ट पढ़ी, जिसमें से निम्नांकित अंश में यहाँ देता हूँ।

“ अगले कताई का प्रस्ताव सन् १९२४ की ३१ वीं अक्टूबर को पास हुआ था किन्तु उस समय कुछ काम नहीं हो सका था क्योंकि चालू लेखे में इसके खर्च के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सका। इसलिए समिति के अगले साल का लेखा बनने तक रुकना पड़ा। जब समिति को खास इसके लिए १०००) मिले तो उसने ये आठ प्राथमिक पाठशालायें:— (१) रामपुर सोनरिया, (२) उदबन्त नगर, (३) मोहनपुर, (४) जमीरा, (५) मदया, (६) कारीसाथ, (७) सलेमपुर और (८) घमार, सदर थाने में कताई शुरू करने के लिए चुनी। हर शाला में के एक २ शिक्षक तीन सप्ताह की विशेष शिक्षा के लिए भेजे गये। जब शिक्षकों की तालीम पूरी हुई तो हर स्कूल को ५ चर्खे, २ परेते और ४ पाउण्ड रुई नवम्बर मास में दी गयी। जहाँ कहीं शिक्षकों ने इसमें मन लगाया, हमें उस स्कूल में और चर्खे देने पड़े।

“ यहाँ यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि हमारे पास की कपास जब शीघ्र ही चुक गयी, जिसे कि हमने बोर्ड के मेम्बरों के दिये हुए ५५) में खरीदा था तो कपास के अभाव से कई महीनों तक कताई बंद रही—जब तक चौधरी करामत हुसैन साहेब और बाबू निर्मल कुमार जैन ने ३२ सेर रुई का दान नहीं दिया। तब से नियमित रूप से काम चलने लगा है। चौधरी करामत हुसैन साहेब को फिर से ११६) का दान, शिक्षकों और विद्यार्थियों को वजीफे और इनाम बांटने के वास्ते देने के लिए और समिति के मंत्री के साथ २ कुछ स्कूलों को जा कर देखने का कष्ट उठाने के लिए धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते।

“ अभी, हमें यह कहते हुए खुशी दीती है कि ५वीं से लेकर ९वीं जमाअत के, १० से १५ साल तक के, भिन्न २ जाति और समाज के २०० लड़के कातना सीख रहे हैं। १० से ४० अंक तक का कोई ३ सेर सूत साहबारी तैयार होता है। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि ४० अंक का सूत साधारणतः वारीक सूत गिना जाता है। इतने थोड़े अभ्यास से ही लड़के ऐसा अच्छा कात सके हैं !

“ सूत की पहली किश्त का जो कपड़ा बना, उसके ये ४२ रुमाल बने हैं और अभी बोर्ड के दफ्तर में आधा मन सूत रक्खा हुआ है।

“ जिले की कुछ चुनी हुई कन्या-पाठशालाओं में भी कताई शुरू की गयी है और ममुआ, सहराम तथा बक्तर के स्कूलों के सब डिविजनल इन्स्पेक्टरों के पास भी ८,८ चर्खे और १६,१६

सेर रुई भेजी गयी है किन्तु उनके यहाँ से कोई विवरण नहीं मिला है। इसलिए उनके विषय में हम कुछ निश्चित खबर नहीं दे सकते। समुचित देखभाल की कमी से कन्या-पाठशालाओं में काम कुछ कम होता है, किन्तु स्थानिक बोर्डों के सदस्य गण अगर कुल ध्यान देना शुरू करें तो बहुत उन्नति की आशा की जा सकती है।

“ २० और स्कूलों में कताई शुरू करने का समिति का विचार है। इसमें केवल एक ही कठिनाई होगी रुई की और वह भी शुरू में ही सब से अधिक, क्योंकि हम लोगों का यह अनुभव रहा है कि जिस किसी स्कूल में कुछ दिनों तक सफलता-पूर्वक कताई हो सकेगी वहाँ लड़कों के मातापिता आप ही रुई पहुँचाने को तैयार होंगे, ऐसी आशा है। जैसा कि कुछ जगह जहाँ सफलता मिली है वहाँ वे रुई देने को तैयार रहे हैं। ”

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों में चर्खे का प्रवेश कराने के लिए शाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को बधाई देना चाहिए, किन्तु इस प्रयोग को सफल कहने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। क्या कते हुए सभी सूत की समानता की जांच होती है? क्या वे लड़के लड़कियाँ अपने चर्खे की मरम्मत करना जानती हैं? कातनेवालों की संख्या के लिहाज से सूत की तैयारी काफी नहीं है। इस फुलाने की तरकीब से ही हमें सन्तोष कर लेने में खतरा है। चर्खे न रहने की अपेक्षा भी वह बुरा होगा।

( यं० ६० )

मोहनदास करमचंद गांधी

## आगामी कांग्रेस के सभापति

श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर के आगामी कांग्रेस के लिए सभापति चुने जाने की बात पहले से ही पक्की थी। कांग्रेस कमेटियाँ एक कट्टर स्वराजी को ही चुनने के लिए वाध्य थीं। श्रीनिवास आयंगर एक लड़ेये हैं और साथ ही साथ वे आदर्शवादी भी हैं। वे बेसब्रे हैं और उनका बेधब्री से भरा हुआ जोश उनको प्रायः बड़े गहरे में ले उतारता है, जहाँ कि मामूली आदमी की गम नहीं। वे किसी काम में बिना दुबारा सोचे ही कूद पड़ते हैं। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर उनका चुना जाना ऐसे संकट के अवसर पर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा। लेकिन श्री० आयंगर को अपने में तथा अपनी लढत में विश्वास है। यह बात सर्व विदित है कि अपने में विश्वास रखने वालों की ईश्वर सहायता करता है। हम आशा करें कि ईश्वर श्री० आयंगर की भी सहायता करेगा। श्री० आयंगर को उस तमाम मदद की दरकार है, जो कि कांग्रेसवाले उन्हें दे सकते हों। हम निष्क्रिय भक्ति की विद्या तो सीख ली है, लेकिन अब समय आ पहुँचा है, जब कि हम को सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए अगर कांग्रेसवाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावों का, जिनमें स्वीकृत किये जाने में उनका हाथ रहता है, पालन करेंगे तो श्री आयंगर का काम कठिन होते हुये भी आसान बन जायगा जिस संस्था को उन्नति करना है उसके सदस्यों को कम से कम इतना तो करना ही चाहिए। मैं श्री० आयंगर को उस बड़ी इज्जत के लिए मुबारकबाद देता हूँ, जो कि उनको मिली है। और उन असाधारण कठिनाइयों पर उनके साथ अपनी सहायता प्रदान करता हूँ, जो कि उनके सामने हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें उन कठिनाइयों पर विजय पाने की बुद्धि और बल दे।

( यं० ६० )

मो० क० गांधी



सत्याग्रह, सही और गलत

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ६ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आश्विन वदि २, संवत् १९८३  
शुक्रवार, २३ सितम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय १९

नैटल इंडियन कांग्रेस

वकालत का पेशा मेरे लिए गौण बात था और वह सदा गौण ही रहा। मैंने सोचा कि नैटाल में अपना रहना अगर सार्थक करना है तो मुझे सार्वजनिक काम में जुट जाना चाहिए। हिन्दुस्तानी मताधिकार प्रतिबन्ध (Restriction) के कानून के विरुद्ध महज अर्जी पेश कर के बठ जाने से ही कुछ नहीं हो सकता। उस बारे में कुछ न कुछ होते रहने पर ही उपनिवेशों के प्रधान पर असर पड़ सकेगा। इस बात के लिए यह जरूरी मालूम हुआ कि एक संस्था की स्थापना की जाय। इसलिए मैंने इसके बारे में अब्दुल्ला सेट से मशवरा किया। अन्य साथियों से भी मिला। और एक सार्वजनिक संस्था स्थापित करना निश्चित किया।

उसका नाम रखने में कुछ धर्म-संकट उपस्थित हुआ। इस संस्था को किसी दल का पक्ष तो लेना था नहीं और मैं यह जानता था कि महासभा (कांग्रेस) के नाम तक से कंजर्वेंटिव (अनुदार) दल को अनख था। लेकिन महासभा हिन्दुस्तान का प्राण थी—उसकी शक्ति बढ़नी आवश्यक थी। कांग्रेस नाम को छिपाने में अथवा उसका यह नाम रखने में संकोच दिखाने से नुजदिली जाहिर होती थी। इसलिए मैंने अपनी दलीलें उनके सामने पेश कीं और लोगों को यह सुझाया कि उस संस्था का नाम 'कांग्रेस' रखना चाहिए। इस प्रकार २२ मई सन् १९१४ ई० को नैटल इंडियन कांग्रेस का जन्म हुआ।

दादा अब्दुल्ला का स्थान लोगों से खचाखच भर गया था। लोगों ने संस्था का उत्साह के साथ स्वगत किया। उसका विधान तो सीधा सादा था मगर चन्दे की रकम भारी थी। कम से कम पांच शिलिंग माहवारी देने वाला ही उसका सदस्य हो सकता था। और धनी व्यापारियों से अधिक से अधिक जितना उनकी राजी से ले सके, उतना मांगा गया। अब्दुल्ला सेट से प्रति मास दो पौंड लिखवाया; दो अन्य सज्जनों ने भी दो २ पौंड चढ़ाये। मैंने अपने मन में विचार किया कि मुझे तो चन्दा लिखने में संकोच करना ही नहीं चाहिए। इसलिए मैंने प्रति मास एक पौंड चन्दा

लिखवाया। मेरे लिए ऐसा करना मानों औरों से एक पौंड चढ़वाने की गारन्टी करना था, लेकिन मैंने सोचा कि अगर मेरे मौजूदा खर्च को कायम ही रहना है, तो एक पौंड मेरे लिए बहुत नहीं होगा।

ईश्वर की कृपा से मेरी गाड़ी चल निकली। एक पौंड देने वालों का संख्या काफी हो गयी और दस शिलिंग वालों की उससे भी ज्यादा हुई। इसके अतिरिक्त बिना सदस्य हुए ही भेट स्वरूप अगर कोई कुछ देना चाहे तो उसे भी स्वीकार करने का तैयारी था।

अनुभव से यह मालूम हुआ कि कोई भी बिना मांगे अपना चन्दा देता न था। डरबन के बाहर बारबार जाना नामुमकिन था। 'आरम्भ श्रुता' का दोष प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगा। नौबत यहां तक पहुंची कि डरबन में भी कई बार जाने पर ही पैसा मिलता था। मैं संस्था का मन्त्री था। चन्दा वसूल करने का बोझ मेरे ही सिर पर था। आखिरकार मुझे अपने ताईद को भी इस काम में प्रायः दिन भर लगाये रखना पड़ा। वह भी आजिज आ गया। मैंने सोचा कि चन्दा मासिक के बजाय वार्षिक होना चाहिए और सो भी पेशगी। इसके लिए सभा की गयी। सब सदस्यों ने यह तजवीज पसन्द की और तैयार हुआ कि कम से कम तीन पौंड सालाना चन्दा लिया जाय। इससे वसूलयावी का काम हलका हो गया।

मैंने इसे शुरू में ही सीख लिया था कि सार्वजनिक काम कभी कर्ज काट कर न करना चाहिए। लोगों का विश्वास चाहे और बातों में भले ही कर लें, लेकिन रकम अदा करने के वादे पर विश्वास न करे। मैंने यह देख लिया था कि अपने वादे की रकम चुकाने के धर्म का लोग नियमित रूप से कहीं भी पालन नहीं करते। नैटल-निवासी हिन्दुस्तानी लोग भी इस एब से बरी न थे। इसलिए "नैटल इंडियन कांग्रेस" ने कर्ज ले कर काम कभी नहीं किया।

कांग्रेस के सदस्य बनाने में मेरे साथियों ने असीम उत्साह दिखाया—उनको उस काम में दिलचस्पी थी। उसमें अनुभव भी अमूल्य ही मिलता था। बहुत से लोग तो खुशी खुशी नाम लिखाते और तुरन्त चन्दा दे देते थे। दूर के गांवों से चन्दा आने में जरा कठिनाई होती थी। गांव वाले लोग यह न



समझने थे कि सार्वजनिक काम क्या होता है। कई जगह तो लोग हमें निमन्त्रण भेज कर बुलाते थे। वे लोग व्यापारियों के घर पर हमारे ठहरने का प्रबन्ध करते।

लेकिन इन यात्राओं में एक स्थान पर शुरू में ही हम को कठिनाई का सामना करना पड़ा। वहाँ से छः पौंड मिलने चाहिए थे। लेकिन वे व्यापारी तीन पौंड से आगे न बढ़ते थे। अगर उतना ही ले लिया जाता तो और लोग भी फिर ज्यादा न देते। हमारे ठहरने का इन्तजाम उन्हीं के यहाँ किया गया था। हम सब लोगों को भूख नंग रहने लगे थे। लेकिन जब तक चंदा वसूल न हो तब तक भोजन कैसे करते? हमने उनको आजिजी के साथ समझाया। न तो वे ही और न ही टस से मस होने वाले थे। गांव के दूसरे व्यापारियों ने भी उन्हें बहुत समझाया। सारी-रात इसी बकझक में बीती। मेरे बहुत से साथी तो झट्टा भी उठे। लेकिन विनय किसी ने न छोड़ा। पी फटने के समय कहीं जा कर वे भाई पसीजे और उन्होंने थोड़ा छः पौंड दे दिये। फिर हमने भोजन किया। यह घटना टोंगाट की है। उसका अपर उत्तरी किनारे पर ठेठ स्टेशन तक आर मुफ्फिल में ठेठ चालूम टाउन तक पडा। अब हमारा चंदा उगाहने का काम सरल हो गया।

लेकिन हम लोगों का मतलब महज रुपया इकट्ठा करना ही न था। जल्द से ज्यादा पैसा न रखने के तत्व को भी मैं समझ चुका था।

समाज ज्वरत के मुताबिक हर रुपये या हर माह हुआ करती थी। उसमें पिछली सभा की कार्रवाई पढी जाती और कई बातों पर आपस में मशवरा होता। थोड़े में बहस करने तथा मतलब की बात कहने की टेव तो लोगों को थी नहीं। लोग झड़े हो कर बोलने में शिश्नते थे। सभा के नियम उन्हें बनलाये गये, लोगों ने उन्हें माना भी। उन्होंने देव लिया कि इसके फायदे क्या हैं और जिन्हें कभी आम जलमों में बोलने का रफ्त न था, वे अब सार्वजनिक कामों में बोलने और उसके बादविवाद में भाग लेने लगे। मुझे यह भी मालूम था कि सार्वजनिक काम चलाने में बहुत सा रुपया फुटकर खर्च में उठ जाता है। शुरू में तो यह निश्चय किया था कि रसीद बही तक न रखेंगे। बरफर में एक साइक्लोस्टाइल रख छोड़ा था; उसीमें रसीदें छाप लेते थे। रिपोर्ट भी उसी पर छाप ली जाती थी। जब आमदनी ज्यादा हुई, मेम्बर बढ़े, और काम चल निकला तभी रसीदें बगैर छपवायी गईं। इस प्रकार की किरायतशारी हर एक संस्था में जरूरी है। लेकिन यह मैं जानता हूँ कि इसका पालन हमेशा नहीं किया जाता। इसलिए इस नन्हीं सी उगती हुई संस्था के आरम्भ-काल की छोटी २ बातें भी लिखना मैंने मुनासिब समझा। चंदा देने वाले रसीद की परवा नहीं करते थे। लेकिन मैं उन लोगों के पास आमदपूर्वक रसीद पहुँचवाता। इसलिए हिाब शुरू से ही कौडी कौडी साफ रहा। और मैं मानता हूँ कि आज भी नैटाल कांग्रेस के दफ्तर में सन् १८९४ के हिसाब के कागज मिलेंगे और उनमें आय-व्यय का पूरा २ ज्यौरा मौजूद होना चाहिए। किसी भी संस्था की नाक उसका साक और सही हिसाब है। अगर यह न हो तो उस संस्था में गन्दगी फैल जाती है और उसकी प्रतिष्ठा जाती-रहती है। स्वच्छ हिसाब के बिना शुद्ध सत्य की रक्षा असम्भव है। कांग्रेस का दूसरा अंग था उपनिवेशों में पैदा हुए और शिक्षित हिन्दुस्तानियों की सेवा करना। उसके लिए “कलोनियल बोर्ड इन्वियन ऐज्युकेशनल एसोसियेशन” की स्थापना की गयी।

इसके सभ्य ज्यादातर नवयुवक लोग ही थे। उनके लिए चंदा भी थोड़ा ही नियत था। इन सभ्यों के द्वारा उन लोगों की जरूरतें मालूम होनी थीं। इससे उनकी विचार-शक्ति बढ़ती थी, उनका व्यापारियों के साथ सम्बन्ध था, और उन्हें सेवा के लिए मौका भी मिलता था। यह संस्था बतौर वाद-विवाद सभा के थी। उसकी बैठकें नियमित रूप से हुआ करतीं; उनमें वे लोग भिन्न २ विषयों पर भाषण दिया करते तथा निबन्ध पढा करते। उसके अन्तर्गत एक छोटा सा पुस्तकालय भी स्थापित हुआ।

कांग्रेस का तीसरा अंग था उसका बाहरी हलचल। इसका काम दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेजों पर, इंग्लैंड पर तथा हिन्दुस्तान के भाइयों पर अपनी सुचची स्थिति प्रकट करना था। इस हेतु से मैंने दो पंचे लिखे। पहले पंचे का नाम था “दक्षिण अफ्रीका-निवासी प्रत्येक अंग्रेज के प्रति निवेदन” उसमें नैटाल-वासी हिन्दुस्तानियों की साधारण स्थिति का सप्रमाण दिग्दर्शन कराया गया था। दूसरी पुस्तक का नाम “हिन्दुस्तानी मताधिकार-एक अपील” था। इसमें हिन्दुस्तानी मताधिकार का इतिहास अक और प्रमाण सहित दिया गया था। ये दोनों विज्ञप्तियां बड़े परिश्रम और अध्ययन के बाद लिखी गयी थीं। उनका प्रचार भी चारों ओर किया गया था। फल भी उसका वैसा ही हुआ। उसके फल-स्वरूप दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी लोगों के हित-चिंतक उत्पन्न हुए, इंग्लैंड और हिन्दुस्तान में सब दलों की ओर से सहायता मिली, आगे के कार्य का रास्ता सूझा तथा निर्धारित हुआ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## टिप्पणियां

### सनातन प्रश्न

‘नवजीवन’ के एक सुमुशु पाठक, अपने प्रश्नों का उत्तर ‘नवजीवन’ के ही द्वारा मांगते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए मुझे कुछ संकोच होता है। ‘नवजीवन’ को ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का अधिकार है कि नहीं, इसमें मुझे शंका है। किन्तु ऐसे प्रश्न कुछ नये नहीं हैं। वे अनादि काल से चले आते हैं। किन्तु इस मित्र को निराश करना तो संभव है नहीं। इसलिए मैं उनके प्रश्नों का उत्तर देने की छिड़ई करता हूँ।

“परमेश्वर का ध्यान धरना चाहिए या नहीं?”

वेशक, परमेश्वर के रूप को बुद्ध के द्वारा जान कर हृदयंगम करने के लिए ध्यान धरना जरूरी है।

“अगर ध्यान धरना जरूरी है तो किस प्रकार?”

परमेश्वर निरंजन, निगाकार और ध्यान से भी परे है। अव्यक्त मार्ग देहधारियों के लिए दुःखमय है। इसलिए उन्हें समुग्न व्यक्त रूप का ध्यान धरना चाहिए। इस युग में और इस देश में तो वह दग्दिनागण के रूप में ही दिखायी देता है। इसलिए उसका ध्यान धरने का मार्ग दग्दिनों की सेवा करना है। दरिद्रों की सेवा अनेक रीति से हो सकती है। किन्तु भारतवर्ष के दारिद्र्य की जड़ आलस्य और बेकारी हैं। इस लिए उस आलस्य को दूर करने और उन्हें शुद्ध उद्यम देने के लिए हम चर्बा चलावें और उन्हें भी चर्बा चलाने की प्रेरणा करें। प्रत्येक श्वाप में इस नारायण का उच्चारण करिये और प्रत्येक चक्र में उस नारायण को संतुष्ट और हँसते हुए देखिये।

“ईश्वर का रूप कैसा है?”

इस प्रश्न का उत्तर ऊपर आ गया है, इसलिए अब देने की जरूरत नहीं रहती है। किन्तु फिर भी कहता हूँ कि अपना



स्वरूप वह आप ही जानता है या जो मनुष्य उसे जान भी सके है, वे समझा नहीं सकते। वह शब्दों से परे है। उसका परिचय देने लायक भाषा अभी बनी ही नहीं। इसी से, हमें ऐसा अनुकूल पड़ता है, उसे हम मत्स्य, बराह, नरसिंह और मनुष्य इत्यादि के रूप में पूजते हैं। ऐसा करने में हम सभी खांटे और सच्चे हैं। अपनी २ निगाह में सभी सच्चे, विरोधी की नजर में झूठे और परमात्मा की दृष्टि में सच्चे भी और झूठे भी।

### चर्खा और आत्मशुद्धि

वेडछी से एक कार्यकर्ता लिखते हैं:—

“वेडछी में अभी श्रावण वदि २ से ९ तक चर्खा सप्ताह मनाया गया। इन दिनों भजन के साथ २ एक चर्खा रातदिन चलता रहा। इस बीच सवा पांच सूर सूत कता जो साथ में भेजा जाता है। कृपा कर स्वीकार कीजियेगा।

मनुष्य को पशु बना देनेवाली शराब के छूट जाने और साथ ही उद्यम और रामनाम के प्रवेश होने से मनुष्य में कैसा परिवर्तन हो जाता है, यह यहाँ के चोधरा जाति के लोगों के उदाहरण से प्रत्यक्ष दिखायी देता है।

यहाँ के साहूकार जब तब बातचीत में कहा करते हैं कि ५,६ साल पहले वेडछी में रात को रहना मुश्किल हो गया था। उन दिनों दीया जल जाने के बाद से ही दरवाजे बंद कर, बाल बच्चों के साथ घर में ही बंद रहना पड़ता था क्योंकि शराब के नशे में, इन लोगों में किसी को होश नहीं रहता था।

आज इन्हीं भाइयों का सात दिन रात भजन के साथ २ अखंड चर्खा चलाना और पालकी में ठाकुरजी की मूर्ति को बैठा कर घर घर घुमाना और अखीर के दिन जो कोई मिले उससे मिल कर सात्विक सहभोजन करना कुछ ऐसा वैसा परिवर्तन न कहा जायगा।”

“जाकी रही भावना जैसी, हरिमूर्ति देखी तिन तैसी।” पेट के लिए जो पत्थर तोड़ता है उसको केवल उतना ही पसा मिलता है। शरीर के लिए फरहाद ने पत्थर तोड़ा और उसे शरीर मिली। चर्खे के लिए आप जैसी शक्ति लगाइयेगा वसा ही फल भी मिलेगा। ओंकार इत्यादि नामों में अगाध शक्ति तो है किन्तु वह मिली है उच्चतम भावना और उसे बलवती बनाने के लिए की गयी तपश्चर्या के द्वारा। वैसे ही चर्खे में भी अगर हम दीन दुखियों की सेवा जनशुद्धि और आत्मशुद्धि की भावना भरेंगे, उसे सिद्ध करने के लिए तपस्या करेंगे और अपना प्राण तक दे देंगे तो उसका फल मिलेगा ही और जरूर मिलेगा।

वेडछी में ऐसा ही कुछ हुआ है। शराब के रोक का काम इसी प्रकार चलता है। शराबी को अगर शराब छोड़ने को कहो तो वह समझेगा ही नहीं। उसके लिए तो यह अनजान बोली है। मगर हम अगर उसके पडांस में रह कर आग ही उद्यम कर के, उसे उद्यम का पदार्थपाठ सिखावें तो वह शराब छोड़ देगा। मालूम होता है कि वेडछी के शराबियों ने भी ऐसा ही किया है। ऐसे सभी गांवों में धैर्य और श्रद्धा से काम लिया जाय तो सफलता जरूर होगी।

परन्तु एक चेतावनी मैं सभी कार्यकर्ताओं को देता हूँ। अभी जो सुधार देखने में आता है, अगर उसका निरन्तर सिद्धन न होता रहे तो वह चार दिनों की चांदनी बन कर फिर गायब हो जा सकता है। लोगों में जो परिवर्तन हुआ है उसे चिरस्थायी करने के लिए, वहाँ रहने वाले कार्यकर्ताओं को आसन मार कर

एक जगह बैठ जाना होगा और फिर सचेत हो कर बिना रुके अपना काम करते जाना होगा।

(नवजीवन)

मो० क० गांधी

### जुलाई के अंक

जुलाई में खादी की उत्पत्ति और बिक्री के अंक नीचे दिये जाते हैं।

प्रान्त	उत्पत्ति	बिक्री
अजमेर	४,५२१)	२,०९९)
आन्ध्र	२८,७९३)	२८,७८३)
बम्बई	...	७८,३८३)
बर्मा	...	२,२४८)
दिल्ली	१,१४६)	१,१५१)
करनाटक	३,५६३)	३,८८३)
केरल	४७८)	१,५११)
उत्तर महाराष्ट्र	१,८६७)	७,३४२)
दक्षिण ,,	...	१६२)
मध्य ,,	...	२,७१५)
पंजाब	११,२५९)	४,१९८)
तामिलनाडु	५८,०७०)	५५,१००)
संयुक्तप्रान्त	८,७४७)	८,२७५)
उत्कल	२,३५५)	१,४६२)

कुल १,२०,७९९)

१,९७,३१२)

मो० क० गांधी

### यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) की नयी व्याख्या

एक मद्रासी भाई ने अपनी दादी से यह कथा सुनी थी।

“ब्रह्मा के एक लडकी पैदा हुई। उसकी, जन्म कुन्डली देखने पर उन्हें मालूम हुआ कि विवाह के बाद तुरत ही वह विधवा हो जायगी। किन्तु ब्रह्मा ने यह बात किसी से कही नहीं। समय पा कर योग्य वर से लडकी का ब्याह कर दिया। विवाह के थोड़े ही दिनों बाद उस लडकी का पति मर गया। उसने तब पिता ब्रह्मा के पास आकर अपने पति को जिला देने की प्रार्थना की। ब्रह्मा बड़े भारी धर्म संकट में पड़ गये। अगर वे अपनी लडकी के वर को जिला देते हैं तो फिर संसार की सभी विधवाओं के पतियों को जिलाना होगा और यह कैसे हो सकता था? और अगर अपनी लडकी पर दया कर के दूसरों का खयाल न करें तो पक्षपाती कहलावें। इसलिए दामाद को जिलाने के बदले लडकी को चर्खा दिया और कातना सिखलाया। उसने कातना शुरू किया। सूत कातना शुरू में बहुत मुश्किल लगा। तागा बार २ टूटता था और वह धैर्य के साथ उसे जोड़ती थी। चक्का भारी हो जाता और उसमें वह तेल लगाती। तक्का टेढ़ा हो जाता और वह उसे सीधा करती। सारी कट जाती और वह फिर से लगाती थी। ऐसा करते २ उसका हाथ बैठ गया। महीन, एक समान, मजबूत सूत निकलने लगा। चर्खे में उसका मन लग गया। उसका जीवन जो शून्य हो गया था अब मानों पूरा हो चला। पति के मरने का शोक वह भूल गयी। पति की स्मृति भी मानों उसके लिए सुखस्मृति हो गयी। इस प्रकार जिन्दगी बिता कर वह स्वर्ग लोग को गयी। उसके काते हुए सूत ने उसके लिए मुक्ति का द्वार खोल दिया था, इसलिए उस दिन से उसका नाम ब्रह्मसूत्र पड़ गया।”

(नवजीवन)

वा० दे०



## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन वदि २, संवत् १९८३

### सत्याग्रह, सही और गलत

अमेरिका तो बड़े पमाने पर अन्तर्जातीय झगडों का घर बना हुआ है। साहसी पुरुषों को उस भूमि में ऐसी सच्ची लगन बले ली पुरुष भी हैं जो सत्याग्रह के तरीके पर इस मुश्किल मसले को हल करना चाहते हैं। एक ऐसे ही अमेरिकन मित्र ने मेरे पास "बी इनकायरी" नाम का एक पर्चा भेजा है। उसमें सत्याग्रह के सिद्धान्त पर की गयी एक रोचक चर्चा दी गयी है। इसमें ऐसे उदाहरण दिये हुए हैं, जो संभवतः सत्याग्रह की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। मैं तीन नमूने चुन कर यहां देता हूं:—

"एक चीनी विद्यार्थी ने सरकारी विश्वविद्यालय के अपने अनुभव का वर्णन किया। उस विश्वविद्यालय से वह हाल में ही स्नातक हो कर निकलने वाला था। उसका वहां किसी ने प्रेमभाव से स्वागत नहीं किया, हां, कुछ लोगों ने अपनी हद से आगे बढ़ कर उससे मित्रता अवश्य की थी। एक ने तो उसे एक दिन के लिए अपने घर पर निमंत्रण तक दिया था। दूसरी ओर उसके बगल की कोठरी में रहने वाला सहपाठी तो खास कर उसके लिए दुःखदायी बन गया। उसके दरवाजे पर वह कभी अपने जूते फेंकता था और कभी कुछ और शैतानी किया करता था। इस चीनी ने एक दिन दूर से सुना कि वह अमेरिकन विद्यार्थी इस पर विगड रहा था कि उसे एक अमेरिकन अपनी मां और बहिन से परिचय कराने अपने घर तक ले गया था। इतना सुनते ही, उस चीनी ने निश्चय कर लिया कि मैं उसके निकट अपने को अवश्य आदरणीय सिद्ध करूंगा और वह भी अपने लिए नहीं बल्कि अपनी प्यारी मातृभूमि की खातिर।

"इसलिए उसने भी अपनी तरफ से जरूरत से ज्यादा कोशिश कर के उससे दोस्ती की। रोज सबेरे उसे देख कर यह मुस्करा कर नमस्कार करता था अगले शुरू में उसे इसका जवाब भी नहीं मिलता। किसी प्रकार के अपमान का उसने ख्याल तक न किया किन्तु अपने को पडोसी के लिए सुखकर और उपयोगी बनाने की कोशिश की। जब कभी वह जानता कि मेरे सहवासी के हाथ तंग हैं, वह उसे अपने साथ जब तब तमाशे देखने जाने को बुला लिया करता। धीरे २ पहर से अब उनका मेलजोल बढ़ने लगा और उन्हें पता चला कि कई बातों में उनका हित परस्पर मिला हुआ है। कुछ दिनों बाद उस अमेरिकन ने उस चीनी को अपने घर निमंत्रण भी दिया।

"इसके बाद उस चीनी ने कहा कि अब हम लोगों में गहरी मित्रता हो गयी है। उसके बाद से कितनी ही छुट्टियां मैंने उसके घर पर बितायी हैं। और विद्यापीठ छोड़ने पर मुझे यह बात याद रहेगी कि कम से कम मेरे एक मित्र को तो मेरी गैर हाजिर खलेगा।"

"एक रेल रोड यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन (क्रिश्चियन नवयुवकों की सभा) के मंत्री, एक दिन १२ डेन्सों (डेनमार्क निवासी) को सभाभवन में लाये। ये लोग रेल रोड पर काम करते थे। इन्हें सोने की कोई जगह न थी। अब अंग्रेजी भाषी लोग,

जातीय विरोध के भाव से प्रेरित हो कर इस पर ऐतराज करने लगे और नाराज हो जादिर करने लगे कि इन विदेशियों को यहां क्यों लाये इन आगन्तुकों में एक बढिया गवैया भी था। एक ओर जहां वे अमेरिकन अपने मंत्री से ऐतराज कइ ही रहे थे कि उसने अपना बाजा बजाना शुरू कर दिया। उसने बड़ा सुरीला गाना गाया। और उसका तुरत ही चमत्कार भी देखने में आया। उस अमेरिकन को चेहरे की शिकने उड़ गयीं और तनो हुईं और झुक गयीं, उनके मुंह की निन्दा गले में ही अटक कर रह गयी दिल पसीज गये और मुग्ध हो कर उस रात को देर तक वे उस विदेशी का बाजा सुनते रहे।

"कैलिफोर्निया में एक जगह जापानियों की बस्ती है। कल साल हुए, एक जीन्दार ने काफी जमान दूसरे जापानियों को हाथ बँवनी चाही। अब गोरे लोग इस बात पर झल्लये कि जापानियों की बाढ यहां आने लगेगी। सभायें होने लगीं। मुसलमानों पर लिख कर टांग दिया गया कि "जापानियों का यह कोई काम नहीं है।"

वहां के पुराने जापानी बाशिन्दों, जिनका गोरों के साथ मेलजोल था और उनके किसान मंडल के जो मेम्बर भी थे, उन्होंने गोरे से मिल कर सलाह मशविरा किया और अखीर में वे इस बात पर सहमत हुए कि जापानियों की संख्या का और बढ़ना अच्छा न होगा। अब वह लेख यों बदल दिया गया:—

"यहां और अधिक जापानियों की जरूरत नहीं है।"

"जिस आदमी ने यह बात कही, उनका यह भी कहना कि इससे उस समाज की एकत्रता में वृद्धि हुई और वहां के गोरे और जापानियों का सम्बन्ध भीठा बना। इसका पता नीचे उदाहरण से लगता है।"

"उस स्थान के जापानियों को जब पता चला कि अमेरिका में धर्म-संघ जैसे की तंगी में हैं तो खास अपने जापानी धर्म-संघ को चलाने के अलावा उसकी भी सहायता के लिए उन्होंने साल एक निश्चित रकम देने की इच्छा प्रकट की।"

अब पहला उदाहरण तो सहज ही सत्याग्रह की कोटि आ जाता है। दूसरे में जितना सत्याग्रह का भाव नहीं उतना समय सूचकता का। तीसरे उदाहरण को, अगर ठीक २ बयान किया गया हो, यदि कुछ लोग कायरता कहें तो स्वार्थपरता अवश्य कहना होगा। वहां के जापानी भाषा अपनी दुनियावी दौलत की हिफाजत के लिए, और दूसरे जापानियों के आने में रुकावट डालने पर राजी हो गये। बहुत सारे हैं कि यह नीति ठीक होती। हो सकता है कि एक यही उनके लिए उचित हो। किन्तु निःसन्देह यह सत्याग्रह नहीं जा सकता।

समाज के हित के लिए स्वेच्छा से ग्रहण किये गये का नाम सत्याग्रह है। इसलिए यह उत्कट क्रियाशाल और आन्तरिक शक्ति है। यह जब तब सत्याग्रही के दुनियावी का विरोधी बन जाती है। इसके कारण उसके भौतिक सर्व की भी नोंबत आ सकती है। इसकी जब आन्तरिक शक्ति है, निर्वलता में तो कभी नहीं। इसका प्रयोग भी जान कर ही हो सकता है। इसके लिए सत्याग्रही में शारीरिक कार करने की शक्ति का भी होना लाजिमी है। इसलिए, अन्तिम उदाहरण में जापानी लोगों का व्यवहार तब सत्याग्रह कहा जा सकता था जब अगर वे अपनी सारी दौलत को भी पीछे से आने वाले जापानियों के अधिकार को न अत्याचारियों को वे भयंकर कष्ट दे कर प्राण भी ले लेने



१३ सितम्बर, १९२६

किन्तु मन में बदला देने का भाव भी न ला कर उनका हृदय नर्म कर सकते थे। अपने आप बिना कोई कष्ट सहें हुए, उन्होंने अगर अपनी सम्पत्ति बचा रखी तो यह सत्य की विजय नहीं कही जा सकेगी। सत्याग्रह की भाषा में अमेरिकन धर्म-संघ को उसकी कठिनाई में उनको सहायता देना, रिश्वत कही जायेगी, न कि प्रेम का चिह्न या स्वतन्त्र भेट।

आत्मत्याग और अपनी प्रच्छन्न शक्तियों के ज्ञान के बहुत दिनों के अभ्यास से ही सत्याग्रह का भाव उदय होता है। इससे मनुष्य की सारी जीवन-दृष्टि ही बदल जाती है। इससे पहले की धारणाएं बदल जाती हैं, और उनके मूल्य का भी महत्व कुछ का कुछ हो जाता है। जब एक बार इस शक्ति को वेग मिल गया और यदि वह काफी तीव्र हुआ तो यह सारे संसार में व्याप्त हो जा सकती है। आत्मा का यह अधिक से अधिक प्रकटीकरण है इसलिए यह सर्वोत्तम शक्ति है। केवल इसका पूरा प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि सब किसी में जान-प्रयोग करने की एकसी शक्ति होवे। जैसे कि केवल बूझ कर आग्रह करने की एकसी शक्ति होवे। जैसे कि केवल एक ही सेनापति अपने अधीनस्थ लाखों सिपाहियों की ताकत का उपयोग आर प्रयोग करने के लिए काफी होता है और वे सिपाही यह नहीं जानते कि वह क्यों और किस लिए कौन सी आज्ञा दे रहा है, उसी प्रकार यदि सत्याग्रह की शक्ति केवल एक ही आदमी में होवे तो वह भी काफी है। केवल एक रामचन्द्र के बन्दर और भालू ही, दशशश रावण की अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना के छके छुटाने को काफी थे।

(यं० ६०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## खादी कर्मचारी मण्डल के विषय में

### चर्खा संघ की योजना

अखिल भारतीय चर्खा संघ की कार्य समिति की एक सभा हाल में ही हुई थी। उसमें खादी कर्मचारी मंडल की स्थापना करने के विषय में चर्चा हुई थी। संघ ने उसकी योजना का मसबदा बनाने के लिए एक समिति नियत की। उस योजना की खादी के कार्यकर्ताओं में प्रगति करने का सब से अच्छा और सस्ता साधन है उसे समाचार पत्रों में प्रकाशित कर देना। इसलिए उस योजना के मसविदे का अनुवाद नीचे दिया जाता है। मुझे आशा है कि खादी में रुचि रखनेवाले सभी कार्यकर्ता अपनी २ सविचार समिति जितनी जल्दी हो सके लिख भेजेंगे। मैं राष्ट्रीय विद्यालयों के शिक्षकों और विद्यार्थियों की सम्मति खास कर मांगता हूं। इस कर्मचारी मंडल की वृद्धि का अपार अवकाश है। जो, केवल निर्वाह व्यय पर ही सन्तोष कर के करोड़ों की सेवा करने के इच्छुक हैं, उन लोगों को यह योजना आकर्षक और सन्तोषजनक मालूम होगा। शिक्षकों और विद्यार्थियों की सलाह से समुचित योजना बनाने में कार्यवाहक मंडल की बड़ी मदद मिलेगी।

### खादी-कर्मचारी मंडल

अखिल भारत चर्खा-संघ के अधीन एक खादी-कर्मचारी मंडल स्थापित होगा।

आगे से कोई भी ऐसा आदमी इस मंडल में दाखिल न किया जायगा, जिसे चर्खा-संघ के शिक्षण विभाग से प्रमाणपत्र न मिला हो। इस विभाग का कार्यालय, हाल में सत्याग्रहधर्म, साबरमती में है।

### उमेदवारों की लियामत

जिनकी उमर १६ साल से कम हो, अपने प्रान्त की भाषा और अंकगणित का जिन्हें काफी ज्ञान न हो, जो अपनी स्वचरित्रता

का संतोषजनक प्रमाणपत्र न दे सकें और जिनका स्वास्थ्य ठीक न हो ऐसे सज्जनों को तालीम के लिए भर्ती नहीं किया जायगा।

### शिक्षा

शिक्षा का कम दो साल से कम का न होगा और उसमें नीचे लिखी बातें होंगी।

(अ) दुनाई तक, कपास की जो जो क्रियाएं की जाती हैं, जैसे कपास चुनना, ओटना, धुनना, सूत कातना और बुनना।

(आ) अहिन्दी प्रान्तों से आनेवाले उमेदवारों के लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा का ज्ञान।

(इ) बड़ी खाता लिखने का ज्ञान-देशी और अंग्रेजी दोनों।

इन बातों में निपुणता का प्रमाणपत्र मिल जाने पर उमेदवार को किसी प्रान्त में कहीं खादी-कार्यालय में व्यावहारिक ज्ञान पाने के लिए भेजा जायगा। वहां उसे एक मौसम याने कोई आठ महीनों तक रहना होगा। वहां के खादी डिपो के प्रधान का सन्तोषजनक प्रमाणपत्र मिल जाने पर, अगर शिक्षाकाल के भीतर ही उसका चरित्र वा स्वास्थ्य बिगड़ न गया होगा तो वह खादी-कर्मचारी मंडल में भर्ती कर लिया जायगा।

इस प्रकार भर्ती किये गये सज्जनों को, संघ जिस किसी केन्द्र में भेजे वहीं जाकर काम करना होगा।

उनका माहवारी वेतन होगा २०। चर्खा-संघ के खादी-कर्मचारी मंडल स्थापित कर देने के बाद से यह मंडल उनके वेतन में समय २ पर जो बढ़नी करना चाहेगा कर सकेगा।

मंडल में जाने के इच्छुक हर एक प्रार्थी को, भर्ती होते समय मंडल के बनाये हुए शत नामे पर हस्ताक्षर करना होगा।

### विविध

जो लोग मंडल में भर्ती होना नहीं चाहते वे भी शिक्षण विभाग में भर्ती किये जा सकेंगे। किन्तु मंडल के उमेदवारों को ही हमेशा तरजीह दी जायगी।

३ महीने-का भी एक अल्पकम होगा। यह उन लोगों के लिए होगा जो केवल सूत कातना और उसके संबंध के काम, कपास ओटना रुई धुनना और पूनियां बनाना सीखना चाहते होंगे।

हर एक उमेदवार को, जिसे तालीम के लिए भर्ती करने का निश्चय कर लिया गया है अपने घर तक का लौटती का किराया और ३) जमा करना होगा। अगर वह किसी भी कारण से हटा दिया गया तो उस समय उसके लौटती के खर्च के लिए उसी रुपये का उपयोग होगा।

### वजीफा

शिक्षण विभाग के व्यवस्थापक को जो पूरा सन्तोष दे सकेंगे कि वे अपने खाने पीने का खर्च नहीं बरदाश्त कर सकते उन उमेदवारों को रहने का स्थान और भोजन खर्च के लिए १२) का वजीफा दिया जायगा। जहां कहीं कि उमेदवारों के लिए शिक्षण विभाग ही भोजनालय चला सकेगा वहां उमेदवारों को नकद वजीफा कुछ भी नहीं मिलेगा।

### विशेष अधिकार

समय समय पर इस विधान में परिवर्तन और सुधार करने, उपनियम बनाने, सेवा की अवधि निश्चित करने और विधान में ही जिन बातों का खुलासा नहीं हो गया है, उन सब का फैसला करने का विशेष अधिकार चर्खा-संघ अपने लिए रख छोड़ता है। जो पहले से ही चर्खा-संघ की सेवा में हैं, उन सज्जनों के अधिकारों में इस योजना से कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा।

(यं० ६०)

मोहनदास करमचंद गांधी



## पशुबध

### उसके कारण और उपाय

(१०)

पशुबध के निवारण के उपायों पर अब तक हम फुट कर विचार करते आये हैं। अब उन्हें एकत्र कर के इस लेखमाला को समाप्त करना चाहिए। परन्तु उपाय के सवाल को छेड़ने के पहले हम जरा यह भी देख लें कि सरकार का हाथ, हमारे पशुधन के नाश में कितना है।

प्राचीन समय में और मुसलमानी राज्य में भी गोचर बहुत था और जंगलों में भी छुटे गोरू चर सकते थे। इसलिए डोर के पालने का खर्च करीब २ नहीं ही पड़ता था। किन्तु सरकार की गोचर पर कुदृष्टि पड़ी। पशुओं की हिमायत अब कौन करे? शायद कोई उनका पक्ष ले भी तो फिर उसकी सुनता ही कौन था? सरकार ने मालगुजारी की लालच में गोचर को जुतवा कर बन्दोबस्त करा दिया या कहीं कहीं पादरियों वगैरह को भी दे दिया।

डिग्बी साहब ने लिखा है:

“गुजरात में मुक्तिफौजवाले, खेती के लिए कुछ जमीन देख रहे थे। इँढते इँढते उनके काम लायक ५६० एकड़ जमीन उन्हें मिल गयी मगर उसका अधिकांश गोचर था, जिसमें अनादि काल से घास उगती चली आती थी। यदि इस खेत का टुकड़े २ कर दिया जाय या वह नष्ट हो जाय तो किसानों की बड़ी बस्ती को तकलीफ पहुँचती। किसानों ने फरियाद भी की परन्तु उनकी मिहनत बेकार गयी। पादरी आये तो थे लोगों को शाश्वत जीवन देने, किन्तु दिव्य वस्तुएं तो वे ले ही गये साथ ही साथ इस दुनिया की चीजों पर भी उन्होंने हाथ साफ किया। नतीजा यह हुआ कि उनकी (प्रजा की) मर्त्य लोक की यात्रा पूरी होने को लगी। सरकार ने भगीरथ प्रयत्न से हुल्लड का होना रोका। जिस आदमी ने मुझ से यह बात कही, उससे मैंने कहा कि “लोगों को आन्दोलन करना चाहिए था।” इसका उन्होंने जवाब दिया, “शायद; हाँ एक बार तो वे फसाद करने की तैयारी तक कर चुके थे।”

इस प्रकार गोचर दबा लिये जाने के कारण, गोचर के विषय में कोई भी देश हमसे पीछे नहीं है। यूनाइटेड स्टेट्स में १६ एकड़ जमीन पीछे १ एकड़, जर्मनी तथा जापान में ६ पीछे १, इंग्लैण्ड तथा न्यूजीलैण्ड में ३ के पीछे १ किन्तु हमारे देश में २७ एकड़ पर केवल १ एकड़ गोचर है। यूनाइटेड स्टेट्स में औसतन फी डोर १२ एकड़, न्यूजीलैण्ड में २, जापान में पौने सात, इंग्लैण्ड में साढ़े तीन एकड़ गोचर है, किन्तु हिन्दुस्तान में केवल .७८ (पौने एकड़ से कुछ अधिक) ही है। फिर डार की यहाँ इतना दुर्दशा हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? सर विलियम हंटर लिखते हैं:

“कुछ तो हवा तथा जमीन की प्रतिकूलता के कारण, कुछ गोचर की कमी और कुछ लापरवाही के कारण डोर को दशा यहाँ बहुत ही दुर्गति है। खेती बढ़ता है और गोचर घटता जाता है। बेचारे पशु के लिए दिन पर दिन मुश्किल दिन आते आते हैं।”

भारत सरकार के कृषि विषय के सलाहकार कहते हैं:

“पशु-पालन के लिए गोचर की बहुत आवश्यकता है। गोचर में नरने से डोर के पैर और मांस-पेशा मजबूत होते हैं

और शरीर का पूरा विकास होता है। बाड़े में बांध खाने देने से पशु छोटा, एंटे हुए परोवाला और दुबल होता बर्बा को भी अगर मा के साथ फिते रहने दिया जाय उसकी अच्छी सँभाल हो सकती है।”

कोई २ कहते हैं कि जब जन-संख्या बढ़ती है तो गेहूँ की जमीन भी जुतेगी ही। किन्तु नीचे के आँकड़ों से पता चलेगा कि खेती तो बढ़ी है जरूर, मगर साथ ही साथ औसत कम होती गयी है:

बंबई		वर्ष १९१०-११	१९१३-१४
जोती हुई जमीन (एकड़)	३,०७,४२,०००	३,०८,४५,०००	
फी एकड़ उपज (सेर)	५४०		
बंगाल		वर्ष १९०२-०४	१९०४-०५
जोती हुई जमीन (एकड़)	५,९३,१४,०००	६,१३,०४,०००	
कुल उपज (टन)	२,६३,७७,१९७	२,४६,७६,०००	
उत्तरपश्चिम सीमान्त प्रदेश		वर्ष १९०३-०४	१९०७-०८
जोती हुई जमीन (एकड़)	२४,६६,२२०	२६,५७,०००	
फी एकड़ उपज (सेर)	६५८		

सरकार की जंगल संबंधी नीति से जो नुकसान हुआ उसका वर्णन डिग्बी यों करते हैं:

“१८९८ में जंगल की उपज १२,३४,९१२ पाउण्ड जिसका आधा जंगलों की सँभाल में ही खर्च हो गया। दूसरा नाम की गोचर और ईंधन की जो हानि हुई उसका पता भगवान के जीवनकाल में पता चला। किसानों के पुराने अधिकारों का बदला यदि सरकारी कुकाने बैठे तो उसे बहुत धन देना पड़ेगा।”

सर विलियम हंटर कहते हैं:

“खेती के सुधार में पहली बाधा यह है कि डोर और जो है वे भी निर्बल हैं...

“दूसरी बाधा यह है कि खादर नहीं होता। यदि अधिक हों तो खादर भी अधिक होवे। और लकड़ी के लोभ में लोग गोचर की चिपड़ी जलाते हैं। इस स्थिति में खेती और अन्न उपजावे यह हो नहीं सकता। हाँ, जमीन का भले ही लूट सकते हैं।”

बाकी रही सही कमी सरकार के खेतीबारी और पशु विभाग ने, बैल की बोझा ढोने की शक्ति बढ़ाने पर खयाल कर, गाय की दूध देने की शक्ति का नाश कर के की जड़ खोद कर के पूरी कर दी। अब, इसलिए दूध के कोई गाय नो रखता नहीं। फलतः बैल के लिए गाय और के लिए भैंस रखनी पड़ती है। इसलिए एक काम के लिए जानवर रखने पड़ते हैं। आखिर, एक ओर इससे गाय का दूसरी ओर पाड़े का नाश होता है।

मि० विलियम स्मिथ कहते हैं:

“मैं हिन्दुस्तान में १६३ वर्ष मे हूँ। इस दूरगामी पंजाव, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, सिन्ध, बंबई तथा मद्रास प्रांत पशु-पालन के धंधे से मेरा नजदीकी सरोकार रहा है। यह विचारपूर्वक मत है कि मेरे आने के बाद से पशु यहाँ अवनति हुई है अथवा अधिक सँभल कर यों १६ वर्ष पहले जिस प्रकार के अच्छे गाय बैल मिलते थे, अब, वही दाम देने पर भी काफी नायदाद में नहीं मिलते



२३ सितम्बर, १९२६

“सरकारी कृषि विभाग के ऐसे सांडों की ही नमूना तैयार करने के कारण कि जिनके बच्चे बहुत दूध देने वाली गायें न हों, और उसके ऐसी शिक्षा बराबर देते रहने के कारण कि जो गायें उसका दुधार होती हैं उसका बछड़ा अच्छा बेल नहीं होता है, डोंगों से पता चला कि जितना नुकसान हुआ है, उतना और किसी कारण से नहीं, क्योंकि इससे तो सारे उद्योग को जड़ पर कुन्हाड़ा पड़ता है। “दूध और वहनशक्ति, दोनों का साथ-साथ विकास करना चाहिए। एक के बिना दूसरा असंभव है और दोनों में कभी-कभी विरोध पड़ नहीं सकता।”

चालजी गोविन्दजी देसाई

## कौटुम्बिक शाला

अगर विचार और प्रत्यक्ष जीवन के बीच मेल नहीं मिलता है तो विचार निर्जीव और जीवन विचारशून्य हो जाता है। मनुष्य घर में जीवन बिताता है और शाला में विचार करना सीखता है। इससे जीवन और विचार में मेल नहीं बैठता। इसका तो एक ही उपाय है और वह यह कि एक ओर से घर में शाला बैठानी चाहिए और दूसरी ओर से शाला में घर को जगह देनी चाहिए। समाजशास्त्र को शालीन कुटुम्बों का निर्माण करना चाहिए और शिक्षणशास्त्र को कौटुम्बिक शाला की स्थापना करनी चाहिए। इस लेख में हम को शालीन कुटुम्बों का विचार करना नहीं है। कौटुम्बिक शाला पर ही कुछ विचार करना है। छात्रालय अथवा शिक्षण की इमारत खड़ी करनेवाली शाला का ही दूसरा नाम कौटुम्बिक शाला है। इस प्रकार की कौटुम्बिक शाला के जीवनक्रम से सम्बन्ध रखनेवाली (अभ्यासक्रम की बात अलग रही) कुछ चर्चा इस लेख में करने का विचार है।

(१) ईश्वरनिष्ठा—यह संसार का सार है, इसलिए दिनचर्या में प्रत्येक दिवस दो बार सामुदायिक उपासना या प्रार्थना की जानी चाहिए। प्रार्थना का स्वरूप संत लोगों के वचनों का सहारा लेकर ईश्वर की याद करना है। उपासना में रोज का निश्चित किया हुआ कोई न कोई पठ तो होता ही है और वह पाठ ‘सर्वेषामविरोधेन’ के अनुसार होता है। एक प्रार्थना रात को सोने के पहले और दूसरी प्रभातकाल में उठने के बाद ही होनी चाहिए।

(२) आहार शुद्धि—आहार शुद्धि के साथ धनिक सम्बन्ध है। इसलिए सात्विक आहार करना चाहिए। गर्म मसाला, मिर्चा, तले हुए पदार्थ, शक्कर और अन्य निषिद्ध पदार्थों को न खाना चाहिए। दूध और दूध से बनेवाली सभी चीजों का मर्यादित उपयोग करना चाहिए।

(३) रसोइये से या खास मुकदर किये हुए आदमी से भोजन न बनवाना चाहिए। रसोई पकाने की शिक्षा शिक्षण का एक आवश्यक अंग है। सार्वजनिक काम करनेवालों को रसोई करने के ज्ञान की जरूरत है। सिपाही, यात्री, ब्रह्मचारी—सब के लिए यह ज्ञान आवश्यक है। यह स्वावलम्बन का एक अंग है।

(४) कौटुम्बिक शालाओं को पाखाने साफ करने का काम भी खुद ही करना चाहिए। अस्पृश्यता को दूर करने का यही मतलब नहीं है कि किसी व्यक्ति को केवल छूने में ही आनाकानी न की जाय बल्कि इसका अर्थ तो यह है कि किसी भी सामाजिक कार्य के करने में आनाकानी न की जाय। यह ख्याल तक दूर कर देना चाहिए कि पाखाना साफ करना सिर्फ भंगियों का ही काम है। इसके अनिश्चित इसमें स्वच्छता की सच्ची शिक्षा भी शामिल है। सार्वजनिक स्वच्छता किस प्रकार रखना चाहिए, उसका तो यह अभ्यास मात्र है।

(५) अस्पृश्य बालकों से ले कर सभी बालकों को पाठशाला में भर्ती होने का हक तो होना ही चाहिए। लेकिन कौटुम्बिक शाला में एक साथ भोजन करने में यह ख्याल भी न रखना चाहिए कि हम अछूतों के साथ एक पंगत में बैठ कर न खायेगे। इतना ख्याल रखना काफी है कि आहार शुद्ध है और स्वच्छता से किया जा रहा है।

(६) ऐसा नियम रखना चाहिए कि जिससे शौचादि स्नानान्त प्रातःकर्म सबेरे ही कर लिये जायें। प्रकृति के अनुसार अपवाद रक्खा जा सकता है, लेकिन अमूमन तौर पर स्नान ठंडे पानी से करना चाहिए।

(७) जिस प्रकार प्रातः कर्म तबके किये जायें, उसी प्रकार सोने के पूर्व ही स्नानान्त सायंकर्म जरूर कर लेना चाहिये। सोने के पहले वेद-शुद्धि आवश्यक है। इस सायंकर्म का गहरी नींद और ब्रह्मचर्य के साथ संबंध है। जहां पर खुली हवा आती हो ऐसे ही स्थान पर अलग-अलग सोने का नियम रखना चाहिए।

(८) पुस्तकों से मिले हुए शिक्षण की बनिस्बत उद्योग पर अधिक जोर देना चाहिए। हर रोज कम से कम तीन घंटे तो मेहनत का काम करना ही चाहिए। इसके बिना अभ्यास तेजस्वी नहीं हो सकता। “कर्मातिशेषण” अर्थात् काम करने से बचे हुए समय में वेदों को पढ़ना चाहिए—ऐसा श्रुति का वचन है।

(९) शरीर से तीन घंटे परिश्रम लेने के बाद और घर के कामकाज तथा निजी जरूरियात को खुद ही रफा करने के बाद दो बार व्यायाम करने का नियम रखना जरूरी नहीं है। तिसपर भी एक वक्त अपनी २ आवश्यकतानुसार खुली हवा में खेलना या फिरना चाहिए या कोई खास उपयोगी व्यायाम करना उचित है।

(१०) कातने के राष्ट्रीय धर्म की प्रार्थना की तरह ही जरूरी समझना चाहिए। इसके वास्ते उद्योग वाले तीन घंटों के अलावा अलग से वक्त निकाल कर कम से कम आधा घंटा तो रखना ही चाहिए। उस आधे घंटे में यदि तकली चलानो हो तो तकली ही सही। कातने का नित्य कर्म हर हालत में (खुदाइ सफर की ही हालत क्यों न हो) बिला नागे करना चाहिए और नियमित रूप से कातने के लिए तो तकली ही अच्छा साधन है। इसीलिए तकली से कातना जानना बहुत जरूरी है।

(११) कपड़ा तो खादी का ही पहिनना चाहिए। अन्य चीजें भी यथशक्य स्वदेशी ही काम में लानी चाहिए।

(१२) सेवा को छोड़ कर और किसी काम के लिये रात को अधिक न जगना चाहिए। रोगी मनुष्य की सेवा अपवाद के अन्दर आती है, लेकिन मनबदलाव करने या ज्ञान बढ़ाने के लिए भी रात का जागरन ठीक नहीं। ढाई पहर सोना काफी है।

(१३) रात के समय भोजन न करना चाहिए। इस नियम की आवश्यकता आरोग्य, व्यवस्था और अहिंसा—तीनों बातों के पालन के लिए आवश्यक है।

(१४) प्रचलित राष्ट्रकार्य के बारे में सम्पूर्ण जागृति रखते हुए भी पाठशाला का वातावरण उसमें विक्षिप्त न होने देना चाहिए। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने कौटुम्बिक शाला के जीवनक्रम के ये १४ नियम बतलाये हैं। इसमें पुस्तकीय तथा अद्यत्मिक शिक्षण का व्यास शामिल नहीं किया है। उसके बारे में तो अलग से ही लिखने की जरूरत होगी। राष्ट्रीय शिक्षण में रुचि रखनेवाले लोग इस नियमावली पर विचार कर के उस पर शंका आक्षेप या सलाह देंगे, तो उनकी कृपा होगी।

(नवजीवन)

विनोबा



## मेवाड का खादी समाचार

उपरमाल प्रदेश के बिजोलिया से भाई जेठालाल का मेजा हुआ वहाँ के गत दो महीनों के खादी के काम का व्यौरा नीचे दिया गया है।

इस प्रदेश का जो कुछ व्यौरा पहले छप चुका है, उससे हम जान ही चुके हैं कि यहाँ की कुल आबादी ११००० है। यदि फी आदमी १० गज कपड़े की जरूरत मान लें तो, ११ हजार फी बस्ती के लिए १ लाख १० हजार गज कपड़ा बनना चाहिए।

इस व्यौरे में भाई जेठालाल लिखते हैं कि यहाँ कुल ६५ कारघे चलने लगे हैं। एक कारघे पर औसतन १२०० गज कपड़ा साल में तैयार हो सकता है। इस हिसाब से ६५ कारघों पर ७८००० गज कपड़ा तैयार होगा। इसलिए अब बाकी ३०००० गज कपड़े के लिए, चाख कारघों के अलावा ३० हाथ कारघे और बढ़ाने होंगे।

खादी के कार्यकर्ताओं के लिए रँगाई और छपाई के काम सीखने की कितनी आवश्यकता है इसका भी इस रिपोर्ट से खूब खुलासा हो जाता है।

इस से यह भी पता चलता है कि मामूली तौर पर ४ से ६ नम्बर के सूत कातनेवाली जाति में १२ से १५ और एकाध तो ५१ नम्बर तक के कानवेवले मिल सके हैं। अनुकूल परिस्थिति और खादी कार्य के सच्चे ज्ञान का जहाँ मेल मिले वहाँ ऐसे शुभ परिणाम जरूर संभव हैं।

### लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

“गमियों में खादी प्रचार के लिए हमारी ओर से जो संयोग हुआ वह साधारणतः केवल किसानों में ही होता था। उसके बाद के दो महीनों में इस बात का पता लगाया गया कि हर व्यक्ति और हर घर पर हमारे काम का क्या असर पड़ा है और यदि नहीं पड़ा है तो क्यों नहीं, और इसका उपाय क्या है।

### ‘धाकड़’ जाति

इन लोगों ने अपनी जरूरत का लगभग अधिकांश कपड़ा घर के कटे सूत का ही बनवाया है और ऐसा मालूम होता है कि आगे भी बनवाते रहेंगे। साडी और साफे को छोड़ कर और सब कपड़ा प्रायः सब के घरों में ही तैयार हो जायगा ऐसा दीखता है। जहाँ पहले ३, ४ नम्बर का फुडियों वाला सूत कतता था, वहाँ अपने काम लायक घर घर अब ८, १० से १५ नंबर तक का सूत उमंग और निश्चय के साथ कत रहा है।

जिसके घर में कात सकने वाली स्त्रियाँ कई हैं किन्तु चखें कम हैं, वे अब नये चखें मँगा रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रदेश में ६० कारघों के चलते रहने पर भी बेबुना सूत बहुत पड़ा हुआ था। इस से बेबुन से दूसरे ५ और कारघे मँगाने पड़े। इतने से भी तैयार पड़े हुए और दिन दिन कतने काले सूत की बुनाने की लोगों की भूख मिटेगी कि नहीं, यह सवाल है।

### ‘बलाई’ लोग

धाकड़ों के लगभग सब गांवों में कोई ६०० बलाई बिखरे हुए हैं। धाकड़ों की बदौलत तो इन लोगों पर ठीक असर पड़ा ही था। फिर भी इस जाति की पंचायत बठा कर ज्यादा पक्का काम करने की नीयत से यह निश्चय रूढ़ किया गया कि सब कोई अपने ही घर के कटे सूत का कपड़ा बनवाया करें।

ऐसा मालूम होता है कि पिछले जमाने में ये लोग बुनने का काम करते होंगे। जब कि मोची के धंधे और खेती की मजदूरी की ओर उनका झुकाव हो चला था, उस निराशा के समय में भी कुछ लोगों ने बुनना जारी रखा था। इस तरफ इनके कोई चार कारघे चलते थे। पूर्वोक्त ६५ कारघों में १० कारघे तो इन्हीं लोगों में चलते हैं। दूसरे भी आपस में ही बुनना सीख और सिखा रहे हैं।

### ‘कगाड’ जाति

उपरमाल में इन लोगों की संख्या कोई २५० है। मुख्यतः चार गांवों में ही ये रहते हैं। वल्लभभाई और कन्हैयालाल जी के प्रयत्न से उनके भी एक गांव में संतोपजनक काम हुआ है।

### पुरुषों में चर्खा

यहाँ के लोगों में यह भ्रम फैला हुआ था कि चर्खा कातना केवल स्त्रियों का ही काम है। किन्तु लोगों को जबसे यह समझाया गया कि फुरसत मिलने पर स्त्री और पुरुष सभी कात सकते हैं तब से बाज बाज लोगों पर उसका असर होने लगा है और थोड़े दिनों से उन्होंने कातना शुरू भी कर दिया है। खादी के विषय में सब से पहले नम्बर का गांव ‘उमाजीका खेडा’ है, जहाँ भाई श्री माणिक्यलालजी रहते हैं। उन्होंने इसमें भी सब से पहले कदम बढ़ाया है। वहाँ के एक भाई ने १५, २० नम्बर का सूत आप कात कर अपने घर वालों का यह भ्रम दूर कर दिया कि हम से महीन सूत नहीं कत सकता और उन्हें भी महीन सूत कातना सिखलाया। एक ने तो ५१½ नम्बर तक का सूत काता है। और भी कोई १० आदमियों ने कातना सीख लिया है मगर ज्यादा चखें न होने से वे नये चखें बनवाने की फिक्र में हैं।

दूसरे इधर उधर के गांवों में भी फुरसत के समय जितना पार लगता है उतना कुछ लोग कात रहे हैं।

इन्हें देख कर दूसरे भी सीखेंगे ही।

पहले यहाँ रँगाई और छपाई का भाव इतना अधिक था कि घर के सूत का कपड़ा रँगवाना और छपाना मिल का या विलायती हा रँगा हुआ कपड़ा खरीदने से कहीं महंगा पड़ता था। अब जब वहाँ के रंगरेजों से बातचीत करने के बाद बाहरी रंगरेज बुला कर बसाने की तजवीज होने लगी और दूसरे लोगों को भी रंगसाजी सिखलाने का प्रयोग शुरू हुआ तब से रँगाई और छपाई का भाव बहुत गिर गया है। वह इस प्रकार है:

रँगाई का, किस्म	पहले का भाव	अब का भाव
चोड (लाल एकरंगा) १३½ गज	६०	६०
नीला ” ”	१॥)	॥)
हरा ” ”	”	१।०
साडी	॥) से ॥)	१)
” की किनारी पट्टी	से १।)	१)
‘सावली’ ओढनी (रँगई, छपाई)	॥)	१)
छोटी १३½ गज (छपाई)	२) से २॥)	१।)

इसका खूब असर पड़ा। अब लोगों को घर पर कपड़े बनाने का फायदा दिखलायी देने लगा और इस तरह खादी प्रचार में आगे बढ़नेवाला और लोगों को भडका देने वाला बहुत बड़ा विघ्न दूर हुआ।

(नवजीवन)

(असमाप्त)



# “प्रार्थना में विश्वास नहीं”

## हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ७ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आश्विन बदि ९, संवत् १९८३

गुरुवार, ३० सितम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

### सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २०

बालासुन्दरम्

“जिसकी जैसी भावना होता है, उसको वैसा ही मिलता है”—यह बात अपने बारे में लागू होती हुई मैंने कई बार देखी है। गरीबों की सेवा करने की प्रबल इच्छा के कारण उनके साथ मेरा तादात्म्य अनायास ही ईश्वर ने कर दिया है। हालांकि ‘नेटाल इंडियन कांग्रेस’ के उपनिवेशों में जन्मे हुये हिन्दुस्तानी तथा फलके लोग सदस्य बन गये थे तथापि उसमें नोची श्रेणी के लोग शामिल नहीं हुये थे जैसे मजदूर और गिरमिटिया लोग। कांग्रेस इनकी नहीं हुई थी। ये लोग उसके सदस्य बन कर और चन्दा अदा कर के उसे अपना नहीं सकते थे। उनमें कांग्रेस के प्रति भाव तो तब ही पैदा हो सकते थे, जब कांग्रेस उनकी सेवा करे। इस प्रकार का मौका अपने आप हाथ आया और उस समय आया जब कि मैं स्वयं या कांग्रेस शायद ही तैयार थी, क्योंकि मुझे वकालत शुरू किये हुये कोई चार मास हुए होंगे और कांग्रेस भी अभी कल ही की चीज थी। इनमें मैं एक मद्रासी फटा हुआ कपड़ा पहिने, साफा हाथ में लिए हुए, कांपता हुआ, जिसके मुँह से खून गिर रहा था और जिसके सामने वाले दो शीत दंठ हुए थे—रोता हुआ मेरे पास आ कर खड़ा हो गया। उसको उसके मालिक ने बड़ी बुरी तरह पीटा था। अरने मुहरिं, जो कि टैमिल भाषा जानता था, के द्वारा मैंने उसको कैफियत जान ली। बालासुन्दरम् वहाँ के एक प्रतिष्ठित गोरे के यहाँ नौकर था। मालिक को कुछ क्रोध चढ़ा था, वह अपने आपको भूल गया था और उसने बालासुन्दरम् को बहुत बुरी तरह पीटा था। और इसी के फल-स्वरूप उसके दो दाँत टूट गये थे। मैंने उसे डाक्टर के यहाँ भेज दिया। उस समय गोरे डाक्टर ही वहाँ मिलते थे। मुझे इस चोट के विषय के प्रमाण-पत्र को जरूरत थी। उसे पाने पर मैं बालासुन्दरम् को अवाक में ले गया। वहाँ मैंने उसका हलफनामा दाखिल किया। उसे बाँव कर मैजिस्ट्रेट उस गोरे से बहुत नाराज हुआ और उसने उसके नाम सम्मान जारी किया। मालिक को सजा कराने का मेरा प्रसन्न न था। मैं तो बालासुन्दरम्

को उसके पंजे से छुड़ाना चाहता था। मैंने गिरमिटिया लोगों से ताल्लुक रखने वाला कानून देख डाला। अगर साधारणतया कोई नौकर अपनी नौकरी छोड़ दे तो मालिक उसके ऊपर दीवानी मुकदमा चला सकता है; वह उसे फजदारी में नहीं ले जा सकता है। गिरमिट और सामान्य नौकरी में बड़ा अन्तर था, लेकिन मुख्य अन्तर तो यह था कि गिरमिटिया का मालिक की नौकरी छोड़ देना जुर्म गिना जा सकता है और उसको उसके लिए कारावास का दंड मिल सकता है। इसलिए सर विल्सन हंटर ने इस स्थिति को गुलामी से कुछ घटकर न समझा। गुलाम की तरह गिरमिटिया लोग भर्ती करने वाले को मिलकियत माने जाते हैं।

बालासुन्दरम् को छुड़ाने के सिर्फ दो ही रास्ते थे—या तो गिरमिटियों का अमलदार जो कि कानून के रू से उसका रक्षक था, उस गिरमिट को रद्द कर दे या उसे दूसरे मालिक को दे दे और या मालिक खुद उसे आजाद करने के लिए तैयार हो। मैं उसके मालिक से मिला और मैंने उनसे कहा—मैं आपको सजा कराना नहीं चाहता। इस आदमी पर बहुत मार पड़ी है—यह तो आप जानते ही हैं। अगर आप इस आदमी का गिरमिट किसी दूसरे के नाम कर सकें तो मुझे सन्तोष हो जाय। मालिक भी यही चाहता था। इसके बाद मैं रक्षक से मिला। उसने भी मेरी बात मान लेना स्वीकार किया; लेकिन उसने शर्त यह लगाई कि मुझे कोई नया मालिक ढूँढ लेना चाहिए। मुझे नया अंग्रेज मालिक ढूँढना था। हिन्दुस्तानी लोग गिरमिटिया न रखने पाते थे। मैं अभी तो थोड़े से ही अंग्रेजों को जानता-पहिचानता था। उनमें से एक से मिला। उसने मेरे ऊपर कृपा कर के बालासुन्दरम् को अपने यहाँ रख लेना मंजूर कर लिया। मैंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट की। तथा इस बात को नोट कर लिया कि मैजिस्ट्रेट ने मालिक को गुनहगार बतलाया और गिरमिट दूसरे मालिक के हवाले करना स्वीकार कर लिया।

बालासुन्दरम् के केस की बात गिरमिटिया लोगों में सर्वत्र फैल गई। और मैं उनका बन्धु बन गया। मुझे यह बात पसन्द पड़ी।

मेरे दफ्तर में गिरमिटिया लोगों की कतार आना शुरू हुई और उनका दुख-सुख जानने में मुझे बहुत सुविधा हुई।



बालमुन्दरम् के मामले की अनक सारे मन्त्रास प्रांत में फैल गयी। इस प्रांत के जिन २ जिलों से गिरमिटिया लोग गिरमिट में हस्ताक्षर कर के जाते थे वहां वहां इस केस की खबर गिरमिटिया लोगों ने ही पहुंचाई। केस इतना अधिक महत्वपूर्ण न था। लेकिन लोगों के लिए यह नयी बात थी कि उनकी स्वतंत्रता करने को सार्वजनिक रूप से काम करने वाला कोई निकल पड़ा है। इस बात से उनको सहारा मिला।

मैं ऊपर जिक्र कर आया हूं कि बालामुन्दरम् अपना फेंटा उतार कर उसे हाथ में लिए हुए मेरे पास आया था। इस बात में बहुत कशपा-रस भरा हुआ है — इसमें अपनी नामांश भी थी। मेरी पगड़ी उतारवाने की कैफियत तो हम देख ही चुके हैं। गिरमिटिया या किसी दूसरे अननवी हिन्दुस्तानी को उसके किसी गोरे के यहां भर्ती होते समय उस गोरे के सम्मानार्थ पगड़ी उतारनी पड़ती थी — खवाह वह टोपी हो, या साफा हो या चाहे बंधा हुआ फेंटा। उसके प्रति आदर दिखाने के लिए दोनों हाथों से सलाम करना ही काफी न था। बालामुन्दरम् ने सोचा कि गांधी के सामने भी उसी प्रकार जाना चाहिए। मेरे लिए यह इस प्रकार का पहला ही अनुभव था। मैं तो शरमा गया। मैंने बालामुन्दरम् से कहा कि अपना फेंटा बांध लो। उसने बड़े संकोच के साथ उसे लपेट लिया, लेकिन मैं देख सका कि उससे उसे खुशी अवश्य हुई। मैं इस पहेली को अभी तक नहीं बूझ सका कि दूसरों की बेइज्जती करने में लोग अपनी इज्जत कैसे समझते हैं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## मा बाप की जवाब देही

एक शिक्षक लिखते हैं:—

“आप ने नौजवानों के दोष के विषय में लिखा है लेकिन मुझे तो इसके लिए मा बाप ही जवाब देह मालूम होते हैं। बड़े लड़कों के मा बाप बच्चे पैदा किये चले जाते हैं। इसका क्या परिणाम होगा? ऐसे विवाह को व्यभिचार कहना क्या अनुचित होगा? माता के मर जाने पर एक बच्चा अपने बाप के ही साथ सोता था। पिताने फिर से विवाह किया और नयी बहू के साथ अपने रहने सहने का प्रबन्ध किया। इससे पहले के लड़के के मन में कौतूहल हुआ कि मेरे बाप मेरे साथ क्यों नहीं सोते? या जब मेरी मा जीती थी तो हम तीनों साथ सोते थे, अब हमें वे अपने साथ क्यों नहीं सुलाते? बालक का कौतूहल बढ़ता ही गया। कोठरी के दरवाजे की दरार से झांकने की इच्छा हुई। उसके बाद उसे जो दृश्य देखने को मिला, उसके मन पर उसका क्या असर पड़ेगा?

“ऐसा तो समाज में बराबर हुआ ही करता है और यह क्या कुछ मेरे समाज की उपज नहीं है। १३, १४ वर्ष के एक लड़के के मुँह से सुनी हुई, यह एक सच्ची बात है। छोटो उमर में ही जो लोग आत्मनाश के रास्ते चलने लगेंगे, वे स्वयं कैसे ले सकेंगे? या ले भी लिया तो फिर उसी रक्षा ही क्यों कर कर सकेंगे? छोटो उमर में, ब्रह्मचर्य का अर्थ समझना, बहुत आर मुश्किल मालूम होता है। इसलिए कई लड़कों को इकट्ठा कर ब्रह्मचर्य के ऊपर व्याख्यान देने की अपेक्षा, हर एक लड़के के मन में अलग-अलग प्रति विश्वास जमा कर, उनके सच्चे मित्र बन यही देखना कि वे छोटी उमर में सत्य की ओर ही चलते हैं, कहीं अन्धका मालूम होता है। बालकों के मन में घुरे

विचारों के लिए अवकाश ही न मिले, इसका क्या कोई उपाय है?

“अब बड़ी उमर के लोगों की बात लीजिए। जो समाज या जो जातियाँ, गैर जाति की औरत के हाथ का बनाया खाने के कारण जाति-बहिष्कृत करती है, वह, परस्त्री-संग करने वालों को क्यों नहीं बहिष्कृत करती? जो जाति राजनीतिक सभाओं में भी अछूतों के साथ बैठने के लिए दण्ड देती है, वही जाति-व्यभिचार करने के लिए भी दण्ड क्यों नहीं देती? मुझे तो इसका कारण यह मालूम होता है कि अगर हर एक जाति आत्म-शुद्धि करने बैठे तो, जाति का शरीर बहुत क्षीण हो जायगा। परन्तु आप को क्या मालूम होता है कि निर्बल शरीर में बलवान् आत्मा रह सकती है? बहुत जातियों में उनके मुखिया तक शराब और व्यभिचार के दोष में फँसे हुए हैं। उनका बहिष्कार करना, अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए, जो लोग दूसरों का बहिष्कार करने में आगे ही तैयार रहते हैं, इन लोगों के दोष के आगे वे ही आँख और कान मूढ़ लेते हैं। यह समाज कब सुधर सकेगा? जिस देश को राजनीतिक उन्नति करनी हो, अगर वह सामाजिक उन्नति पहले न कर लेवे तो राजनीतिक उन्नति तो उसके लिए आकाश-कुसुम के ही समान है।”

यह सभी कुबूल करेंगे कि इस लेख की कई बातें बिल्कुल सही हैं। यह कुछ समझाने की बात नहीं है कि अपने लड़कों के स्थाने हो जाने के बाद भी बच्चे पैदा करते रहने या उनकी मा के मर जाने पर दूसरा विवाह कर के बच्चे पैदा करने से बालकों को हानि पहुँचती है। अगर इतना संयम-पालन न कर सकें तो बालकों को दूसरी कोठरी में रखना चाहिए अथवा आप ही ऐसी कोठरी में रहना चाहिए जहाँ से बालक न तो कुछ सुन सकें और न देख सकें। इस में कुछ न कुछ सभ्यता का तो पालन अवश्य ही हो जायगा। लड़कपन की उमर निर्दोष रहनी चाहिए किन्तु उनके मा बाप ही, स्वयं विलासी बन कर बच्चों को भी दोषित बनाते हैं। अपनी संतान की नीति के लिए और उन्हें स्वतंत्र और स्वाश्रयी बनाने के लिए वाणप्रस्थाश्रम का लेना बहुत उपयोगी होना चाहिए।

शिक्षकों के लिए जो सूचना इन्होंने दी है, वह तो ठीक ही है। किन्तु जहाँ ४०, ५० लड़कों का एक वर्ग होवे, वहाँ उसका विषयों के साथ, अधरज्ञान देने का ही संबन्ध होता है। वहाँ शिक्षक भला, अध्यात्मिक संबंध जोड़ना भी चाहे तो क्यों कर जोड़ सकता है। किन्तु जहाँ ५, ७ शिक्षक, पाँच सात विषयों की शिक्षा देते हों, वहाँ कौन सा शिक्षक, बालकों की नीति का जवाब देह होगा?

और ऐसे शिक्षक ही कितने मिलते हैं जो बालकों को नीति के मार्ग में ले जाने और उनके विश्वास पात्र होने के अधिकारी हों। यहाँ तो सारी शिक्षा का ही सवाल उठता है, किन्तु उसकी चर्चा की यह जगह नहीं है।

मेडों की झुण्ड के समान बिना देखे बिना विचारे, समाज बढ़ता चला जाता है। और उसी को लोग प्रगति भी मानते हैं। ऐसी भयंकर स्थिति होने के कारण ही हमारा व्यक्तिगत मार्ग सरल है। जो लोग इसे जानते हैं, वे सभी अपने क्षेत्र में जितनी नीति का प्रचार कर सकें, करें। पहला प्रचार तो अपने आप वे ही शुरू करें। दूसरों के दोषों का मनन करते हुए हम अपने आप को बहुत भले जँचते हैं। अगर अपने दोषों पर विचार करें तो हम



क्या कोई

जो समाज

बनाया खाने

करने वालों

सभाओं में

वही जाति-

मुझे तो

जाति आत्म-

जायगा ।

मैं बलवान्

खिया तक

का बहिष्कार

जो लोग

उन लोगों के

समाज कब

, अगर वह

तो उसके

बिल्कुल

लड़कों के

नकी मा के

बालकों को

र सके तो

प ही ऐसी

सुन सके

का तो

दीर्घ रहनी

वर्षों को

और उन्हें

लेना बहुत

ठीक ही

वहाँ उसका

है । वहाँ

क्यों कर

विषयों की

नीति का

को नीति

अधिकारी

उसकी

रे, समाज

मानते हैं।

मार्ग सरल

तनी नीति

ते ही शुरू

आप को

रे तो हम

अपने आप को ही कुटिल और कामी मालूम होंगे । शहर के काजी बनने की बनिबत अपना ही काजी बनना कहीं अधिक फलप्रद होगा और इससे, अपने आप को और दूसरे को ठीक रास्ता मिलेगा । “ आप भले तो जग भला ” का एक अर्थ यह भी है । तुलसीदास ने संतपुरुष को पारसमणि की उपमा दी है । यह कुछ अनुचित बात नहीं है । हम सभी किसी को सन्त बनने की कोशिश करनी है । यह बात सरासर गलत है कि कुछ, अलौकिक पुरुष ही भगवान् का वर पाकर सन्त बन सकते हैं । यह तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । जीवन का रहस्य यही है ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## दक्षिण अफ्रीका को

वह बेचैन महात्मा एंड्रयूज और कभी इतना प्रफुल्लित नहीं होता जितना तब जब कि वह ईश्वर की खोज में या यों कह लो कि मानव-सेवा के लिए निकल कर घूमा करता है । अगर भ्रमजीवी लोग कष्ट में होते हैं तो वह उनकी सहायता को लखते हैं, अगर कहीं बाढ़-पीड़ित लोग उनकी मदद के भूखे होते हैं, तो वे उनके पास दौड़ जाते हैं — शरीर में ज्वर हो या न हो, इसकी उन्हें परवा नहीं । प्रवासी भारतवासी उन्हें हर वक्त अपनी मदद के लिए तत्पर पाते हैं और उन्हें विश्वासपात्र पथप्रदर्शक मानते हैं । उनकी तबीयत ठीक न थी । जब वे स्टोक्स की गिरिशाला गये थे, तब उनको एक तहरीले कीड़े ने काट खाया था । लेकिन वे वहाँ सेहत के लिए न ठहरे, क्योंकि शांति-निकेतन में उनकी आवश्यकता थी । दक्षिण अफ्रीका जाने के पूर्व वे साबरमती आये । वे अच्छे तो पहले से ही न थे, यहाँ आ कर उनकी तबीयत और भी बिगड़ गई । लेकिन वे दक्षिण अफ्रीका जाने से भला कैसे रुकते ? वे साबरमती आने पर सत्कारशील श्री अंबालाल साराभाई के यहाँ ठहरे थे । वहाँ दो चार रोज आराम करने पर उनको कुछ सेहत हुई । हालाँकि वे अब भी कमजोर हैं, तथापि वे दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हो गये हैं । जाने के पहले एक लेख लिख कर रख गये हैं । उनके लेखे यह प्रेमपूरित कार्य ईश्वर की खोज है । ईश्वर की आज्ञा के पालनार्थ ही वे वहाँ गये हैं । वे जानते हैं कि वहाँ जाने से शायद हाथ कुछ न आवे, लेकिन वे तो फलतः काम करना तथा उसके लिए मर मिटना जानते हैं न कि उसके बारे में चूँ तक करना । उनके लिए इतना काफी है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतवासी उनकी सहायता चाहते हैं और उन लोगों की लड़त न्यायपूर्ण है । वे इस पर विचार करने के लिए नहीं रुकते कि काम छोटा है या बड़ा । वे किसी काम को अगर वह सच्चा और न्यायपूर्ण है, छोटा नहीं मानते । और उनकी निगाह में कोई भी व्यक्ति अगर वह उनकी सेवा का भूखा है, तुच्छ नहीं । ब्राह्मण हो या भंगी, राव हो या रंक, पूँजीपति हो या भ्रमजीवी — अगर वह सत्य और न्याय के लिए लड़ रहा है — तो वे सब की एक समान सेवा करते हैं ।

उनका मित्राज नाजुक है । वे सदिच्छा रखने वाले मित्रों की नम्रतापूर्वक पेश की हुई इस दलील को झट मान लेते हैं कि जब कि दक्षिण अफ्रीका से आया हुआ डेप्यूटेशन हिन्दुस्तान में है तब उनको यहाँ ही रहना चाहिए और यह भी कि प्रवासी भारतवासियों को उनकी आवश्यकता राउण्डटैबिल कानफरेन्स के

इसने पूर्व न पड़ेगी । उन्होंने इस आलोचना का उत्तर अपने उद्युक्त लेख में लिखा है । डेप्यूटेशन को उनकी दरकार न थी । उसके पास काम पूरा है । और हकूत तो यह है कि डेप्यूटेशन को किसी प्रकार की सलाह-सूचना की जरूरत नहीं है । डेप्यूटेशन के सदस्य बाजस्ता गवाहियाँ लेने के लिए नहीं आये हैं । वे तो यों ही भास्त में चारों तरफ की राय बटोरने आये हैं, न कि किसी की तक्रोर या तहरीर को मदद से । यही कौन थोड़ा है कि डेप्यूटेशन वाले खुले दिल से आये हैं ? और हमको इसके विररीत मान बैठने का क्या हक है ? हमें उनके काम में दखल न देना चाहिए, चहे उनकी आत्मा उन्हें भले रोके । और आत्मा खुल कर तब ही काम करती है जब उसे कोई सलाह नहीं देता ।

हाँ तो, मि० एंड्रयूज की दक्षिण अफ्रीका में आवश्यकता है और वहाँ के प्रवासियों को एक मददगार की जरूरत है । रुटर के तार से मालूम हुआ है कि अफ्रीका वाले हिन्दुस्तानी उनकी बीमारी का हाल सुन कर बहुत घबड़ा गये थे । वे उनके एक मात्र सहारा नहीं तो मुख्य सहारा अवश्य हैं । उनको अपना केस तैयार कर लेना चाहिए । जितना समय अब कानफरेन्स तक शेष है उसे उसी तैयारी में ही लगाना चाहिए । और उनको मि० एंड्रयूज की जरूरत इसीलिए है ।

उनको कानफरेन्स पर असर डालने वाला वायुमण्डल जरूर तैयार करना चाहिए । वे ही गंगे लोगों और हिन्दुस्तानियों के बीच एक मात्र जीवन्त मंखला रूप हैं । अगर दक्षिण अफ्रीका का लोकमत भारतवासियों के बिल्कुल प्रतिकूल है, तो कानफरेन्स से कुछ हो नहीं सकता । दक्षिण अफ्रीका का लोकमत हमारे देश के लोकमत के समान नहीं है, क्योंकि उसके पछे शक्ति है उसके वोटों की वकत है; वहाँ के लोकमत को कार्यप्रणाली तक निर्धारित करने का अधिकार है । वह इंग्लैंड को चुनौती तक दे सकता है । मि० एंड्रयूज कुछ हद तक उस लोकमत को पैदा कर तथा अनुकूल बना सकते हैं । उनकी उपस्थिति ही नुफाचीनी मिटा सकती है और विरोध को शान्त कर सकती है । इस समय उनको निस्सन्देह दक्षिण अफ्रीका में ही होना चाहिए था ।

कानफरेन्स की कार्यवाई अफ्रीका में बसे हुए हिन्दुस्तानी लोगों के भविष्य पर ही असर डालने में समर्थ न होगी, बल्कि दूसरे उपनिवेशों के बारे में भी एशियाटिक पालिसी पर अदृश्य रूप से असर डालेगी । प्रवासी हिन्दुस्तानी आने को धोखे में न डालें । मि० एंड्रयूज का यह प्रभावशाली उद्योग उनकी लड़त के लिए अनिवार्य है । लेकिन अन्तिम सफलता तो उनके ही ऊपर निर्भर है । संसार में स्व-साहाय्य से बढ कर और कोई साहाय्य नहीं है । उन्हें चाहिए कि वे अपनी मांग बाजब रखें और उसपर अडे रहें । वे जो कुछ कहें एक हो कर कहें । जो कुछ करें एक हो कर करें । सत्य से रती भर भी न हटें । ‘कन्ट्रैक्ट’ में लिखे हुए अपने हिस्से को जरूर निबाहें, यानी सफाई और इमारत से तमल्लुक रखने वाले सभी कानूनों का पालन करते रहें और अपने उद्देश के हेतु सब एकजिह्व बन कर कष्ट झेलने के लिए तैयार रहें । बिना मुसीबत झेले मुक्ति नहीं मिलती ।

(य० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन बदि ९, संवत् १९८३

## “प्रार्थना में विश्वास नहीं”

किसी राष्ट्रीय संस्था के प्रधान के नाम एक विद्यार्थी ने एक पत्र लिखा है, जिसमें उसने उनसे वहाँ की प्रार्थना में न शामिल होने के लिए क्षमा मांगी है। वह पत्र नीचे दिया जाता है:

“प्रार्थना पर मेरा विश्वास नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरी धारणा है कि ईश्वर जैसी कोई वस्तु है ही नहीं कि जिसकी प्रार्थना हमको करनी चाहिए। मुझे कभी यह जरूरी नहीं मालूम होता कि मैं अपने लिए एक ईश्वर की कहना करूं। अगर मैं उसके अस्तित्व को मानने के क्षण में न पड़ूं तथा शांति और साफदिली से अपना काम करता जाऊं तो, मेरा बिगड़ता क्या है?

सामुदायिक प्रार्थना तो बिल्कुल ही व्यर्थ है। क्या इतने एक आदमी मामूली से मामूली चीज पर भी मानसिक एकाग्रता के साथ बैठ सकते हैं? यद्ये नहीं, तो छोटे छोटे और अबोध बच्चों से यह आशा कैसे रखी जाय कि वे अपने चंचल मन को हमारे महान् शास्त्रों के जटिल तत्व—मपलन् आत्मा, परमात्मा और मनुष्यमात्र की एकात्मता इत्यादि वाक्यों के गूढ़ भावों पर एकाग्रचित्त हों? इस महान् कार्य को अमुक नियत समय में तथा विशेष व्यक्ति की आज्ञा पाने पर ही करना पड़ता है। क्या उस कल्पित ईश्वर के प्रति प्रेम इस प्रकार की किसी यांत्रिक क्रिया के द्वारा बालकों के दिलों में पैठ सकता है? हर तरह के स्वभाव वाले लोगों से यह आशा रखना कि वह कल्पित ईश्वर के प्रति यों ही प्रेम रखें—इसके बराबर नायमझों की बात और क्या हो सकती है? इसलिए प्रार्थना जबरन न करायी जानी चाहिए। प्रार्थना वे करें जिनको उसमें रुचि हो और प्रार्थना में रुचि न रखनेवाले उसे न करें। बिना दृढ़ विश्वास के कोई काम करना अनीति—मूठ एवं पतन—कारी है।”

हम पहले इस अंतिम विचार को समीक्षा करते हैं: क्या नियमपालन की आवश्यकता की मजबूती समझने लगने के पहले उसमें बंधना अनीतिपूर्ण और पतनकारी है? स्कूट के पाठ्यक्रम की उपयोगिता को अच्छी तरह जाने बिना उस पाठ्यक्रम के अनुसार उसके अंतर्गत विषयों का अध्ययन करना क्या अनीतिपूर्ण और पतनकारी है? अगर कोई लड़का अपनी मातृभाषा सीखना व्यर्थ मानने लग पड़े, तो क्या उसे मातृभाषा पढ़ने से मुक्त कर देना चाहिये? क्या यह कहना ज्यादा ठीक न होगा कि लड़कों को इन बातों में पढ़ने की जरूरत नहीं कि मुझे फलां विषय पढ़ना चाहिये और फलां नियम पालन करना चाहिये। अगर इस बारे में उसके पास खुद की कोई पसंदगी थी भी तो जब वह किसी संस्था में प्रवेश होने के लिये गया, तब ही वह खत्म हो चुकी। अमुक संस्था में उसके भर्ती होने के अर्थ यह है कि वह उस संस्था के नियमों का पालन सदैव किया करेगा। वह चहे तो उस संस्था को छोड़ भले ही दे, लेकिन जब तक वह उसमें है तब तक यह बात उसके अस्तित्व के बाहर है कि मुझे क्या पढ़ना चाहिये और कैसे? यह काम तो शिक्षकों का है कि वे उस विषय को जो कि विद्यार्थियों को शुरू में पढ़ना और अरुणि उत्पन्न करनेवाला मालूम हो उसे रुचिकर और सुगम बना दें।

यह कहना कि मैं ईश्वर को नहीं मानता, बड़ा आसान है; क्योंकि ईश्वर के बारे में चाहे जो कुछ कहा जाय — उसको ईश्वर बिना सजा दिये कहने देता है। वह तो हमारी कृत्तियों को देखता है। ईश्वर के बनाये हुए किसी भी कानून के खिलाफ काम करने से वह काम करने वाला सजा जरूर पा है, लेकिन वह सजा सजा के लिए नहीं होती, बल्कि उसे सुधारने और उसे अवश्य ही सुधारने की सफत रखने वाला होती है। ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो नहीं सकता और न उसके सिद्ध होने की जरूरत ही है। ईश्वर तो है ही। अगर वह दीख नहीं पड़ता तो यह हमारा दुर्भाग्य है। उसे अनुभव करने का शक्ति का अभाव एक रोग है और उसे हम किसी न किसी दूर कर देंगे—स्वयं हम चाहें या न चाहें।

लेकिन विद्यार्थी तर्क करने में न पड़ें। जिस संस्था में पढ़ते हैं, अगर उस संस्था में सामुदायिक प्रार्थना करने का नियम है तो नियम-पालन के विचार से भी प्रार्थना में जरूर शामिल होना चाहिए। विद्यार्थी अपनी शिकायें अपने शिक्षकों के सामने आदरपूर्वक रख सकता है। जो बात उसे नहीं जैचनी, उसका विश्वास करने का जरूरत उसे नहीं है। अगर उसके चित्त में शुरुओं के प्रति आदर है, तो वह गुरु के बतलाये काम को उसकी उपयोगिता में दृढ़ विश्वास रखे बिना भी करेगा — अपने मार्ग या वेदंगेन से नहीं, बल्कि इस निश्चय के साथ उसे करना उसका कर्तव्य है और यह आशा रखे हुए कि आज उसकी समझ में नहीं आता, वह किसी न किसी दिन जरूर आ जायगा।

प्रार्थना करना याचना करना नहीं है, वह तो आत्मा का पुकार है — वह अपनी त्रुटियों को नित्य स्वीकार करना है हम में से बड़े से बड़े का मृत्यु रोग, वृद्धावस्था, दुर्घटना इत्यादि के सामने अपनी तुच्छता का भान हृदय में हुआ करता है। अपने मंस्वे लड़के भर में मिट्टी में मिलाये जा सकते हैं जब अचानक और पल भर में हमारी खुद हस्ती तक मिटाई जा सकती है, तब “हमारे मंस्वों” का मृत्यु ही क्या रहा? लेकिन अगर हम यह कह सकें कि “हम तो ईश्वर के निमित्त तथा उसकी रचना के अनुसार ही काम करते हैं”, तब हम अपने मेढ़ की भांति अवल मान सकते हैं। तब तो कुछ फवाद ही पड़ रहा जाता। उस हालत में नाशवान् कुछ भी नहीं है। तब दृश्य जगत ही नाशवान् मालूम होगा। तब लेकिन केवल मृत्यु और विनाश सब अमत् मालूम होते हैं, क्योंकि मृत्यु विनाश उस हालत में एक रूपान्तर मात्र है—उसी प्रकार प्रकृति एक शिल्पी अपने एक चित्र को इससे उत्तम बनाने के हेतु नष्ट कर देता है और जिस प्रकार एक घड़ी में अच्छी कमानी लगाने के अभिप्राय से रस्सी को फेंक देता है।

सामुदायिक प्रार्थना बड़ी बलवती वस्तु है। जो काम प्रायः अकेले नहीं करते, उसे हम सब के साथ करते हैं। हम को निश्चय की आवश्यकता नहीं। अगर वे मंज अनुशासन पालनार्थ ही सच्चे दिल से प्रार्थना में सम्मिलित हों, तो उन प्रफुल्लित का अनुभव होगा। लेकिन अनेक विद्यार्थी ऐसा अनुभव नहीं करते। वे तो प्रार्थना के समय, उल्टे, शरारत किया करते हैं। लेकिन तिसपर भी अप्रकट रूप से होने वाला फल नहीं सकता। वे क्या लड़के नहीं हैं जो अपने प्रारम्भ में प्रार्थना में मंज ठग करने के लिए ही प्रार्थना में शामिल थे लेकिन जो कि बाद को सामुदायिक प्रार्थना की विशिष्टता भटल विश्वास रखने वाले हो गये? यह बात सभी के अनुभव



३० सितम्बर, १९२६

हिन्दु-अभिमान

आई होगी कि जिनमें दृढ़ विश्वास नहीं होता, वे सामुदायिक प्रार्थना का सहारा लेते हैं। वे सब लोग जो कि गिरजघरों, मन्दिरों और मस्जिदों में इकट्ठा होते हैं, न तो कोरे टोकाबाज हैं और न पाखंडी ही। वे बाईमान लोग हैं। उनके लिए तो सामुदायिक प्रार्थना नित्य स्नान की भांति एक आवश्यक नित्य-कर्म है। प्रार्थना के स्थान महज वहम नहीं हैं, जिनको जल्दी से जल्दी मिटा देना चाहिए। वे आघात सहते रहने पर भी अब तक मौजूद हैं और अनन्त काल तक बने रहेंगे।

मोहनदास करमचंद गांधी

(यं० इ०)

### मिस्रकुमारी से मुलाकात

कोई तीन मास हुये मिस्र देश से कुमारी जकिया सुलेमान हिन्दुस्तान आई थीं। इनके पिता वहां एक बड़े जमींदार हैं। ये विलायत की शिक्षा पाई हुई हैं और शिक्षण के सम्बन्ध में फ्रांसेल को अपना गुरु मानती हैं। फ्रांसेल-शिक्षा-पद्धति के अनुसार कुमारी सुलेमान केरो शहर में डाई सौ बालिकाओं की एक पाठशाला किंगडन प्रणाली पर चला रही हैं। अनेक पाठशालाओं की निरीक्षिका और परीक्षिका भी हैं तथा वहां के नये शासकवर्ग में भी उनकी मेल मुलाकात खासी मालूम पड़ती है। मालूम होता है कि अपने पिता के रुतवे के कारण सरकार में उसकी पहुँच काफी है और सरकारी नौकर होने के कारण नई सरकार से सन्तुष्ट है। सत्याग्रह-भाषम में भी वे दो दिन ठहरीं। उनके साथ खूब बातचीत हुई। हालांकि एक दिन बनारसी साड़ी भी पहिन चुकी हैं, लेकिन आजकल आप योरोपियन डंग का पहिराव पहिनती हैं और बाल भी उसी डंग के कटवाती हैं। उनको "विलायती" शब्द से बड़ी चिढ़ है। वे कहती हैं कि "योरोपीय" भले कह लो लेकिन "विलायती" नहीं, क्योंकि इंग्लैंड की एक भी बात नकल करने योग्य नहीं और न इंग्लैंड ने हमारे देश पर कुछ प्रभाव ही डाला है—अलबत्ता फ्रांस का जरूर हुआ है। फ्रांस की संस्कृति की छाप हमारे मुल्क पर बहुत पड़ी है।

मिस्र देश और हिन्दुस्तान की स्थितियों में अन्तर बतलाते हुये आपने कहा—हमारी जन-संख्या केवल १ करोड़ ४० लाख है इस कारण आप लोगों की बनिस्बत हमें राष्ट्रीय कार्य करने की सुगमता अधिक है। और फिर हम सब लोगों का मजहब एक ठहरा और जात भी एक ही। हां, हमारे मुल्क के पुराने वाशन्दे जो कि आजतक ईसाई हैं और जो कि १० लाख मात्र हैं, शीर-रचना, शकल सूरत और पहिनावे उढावे में कुछ भिन्न मालूम होते हैं। लेकिन इनके तथा अपने बीच में हम लोगों ने व्यवहार घनिष्ठ रक्खा है रोटी बेटी का भी व्यवहार है। इसलिए किसी प्रकार की अबचन नहीं है। हिन्दुस्तान में यह बात नहीं है: यहाँ सरकार मेद नीति से काम चला सकती है। सन् १९१९ में हमारे देश का भाग्य खुला। तब के आजकल के मिस्र में जमीन आसमान का अंतर हो गया है पहले अपने हित अथवा देश के कल्याण का भान कम था—आज हमारी जागृति का पार नहीं है। और इस जागृति के पिता जगल्ल पाशा हैं और वे घर २ पुत्रते हैं। उनके त्याग की सोमा नहीं है। जब से हमारे यहाँ जागृति फैली है तब से हमारा मकसद एक ही रहा है यानी परदेशियों के चंगुल से अपने देश को किस प्रकार छुड़ाना चाहिए। व्यापारियों ने भी आपस में सलाह कर के अपना माल परदेशियों की बनिस्बत सत्ता बेच डाला। सरकारी मुद्रकों, बैंकों, तथा व्यापार में जहाँ २ विदेशियों का दौराया था वहाँ २ से उनको निकाला

जाने लगा। आज एक नौकर भी यह अभिमान के साथ रह सकता है कि मैंने अपना रुपया फलों देशी बैंक में जमा किया है।

इस जागृति में स्त्रियों का भाग कुछ ऐसा वैसा नहीं है। स्त्रियों के प्रति हमारे देश में बड़ा आदर है। सन् १९२२ ई० में कुछ विद्यार्थी किसी स्थान पर पहुँच कर मिस्र को स्वतंत्रता पुकारने लगे। इस पर लार्ड एट्टेनबी ने तोपें चलाईं। कोई पीछे न हटा। इस प्रकार एक दो दिन चलता रहा कि स्त्रियों की पलटन की पलटन उन तोपों के आसपास जाकर जमा हो गई। उस दिन से तोपों का चलना बंद हो गया। हमारे यहाँ अब पर्दा तो रहा ही नहीं है। पढी लिखी स्त्रियों की संख्या बड़ी है और महिलायें देश के काम में पूर्ण रूप से उत्साह दिखाती हैं। स्वतंत्रता की लड़त में स्त्रियों का भाग साधारण न था। हम लोग ज्यादातर काली साड़ी पहिनती हैं और वह वहीं की बनी हुई होती है। कपड़ा बनाने की एक मिल ने देशभर की सब स्त्रियों के लिए साड़ी बनाने का जिम्मा लिया है और मिस्र-महिलायें उसी मिल की साड़ियाँ अभिमान के साथ पहिनती हैं।

प्र० क्या आप के यहाँ मिलें हैं? क्या गृह-उद्योग का विचार आपने नहीं किया? आप के देश में तो अच्छी से अच्छी रुई पैदा होती है। मिस्र चाहे तो सारा कपड़ा तैयार कर सकता है परदेश से कपड़ा मँगवाने की जरूरत आप के मुल्क को तो न रहनी चाहिए।

उ० हां, हमारे यहाँ स्थिति ऐसी अवश्य है कि हम अपना सब कपड़ा तैयार कर सकें—खुद मेरे पिता रुई के एक बड़े काश्तकार हैं। हमारे यहाँ मिल का कपड़ा बहुत बनता है। हमने चर्खे करघे पर जोर नहीं दिया है—दिया ही नहीं जा सकता है क्योंकि किसानों को बक्त बचता ही नहीं है। हमारे यहाँ निठलपन या बेकारी नहीं है। हमारे किसानों को साल भर खेती के काम से फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि मिस्र के खेतों में कोई न कोई फसल खड़ी ही रहती है।

प्र० आपके यहाँ मिलें ज्यादातर किसकी हैं?

उ० सब मिस्र वालों की।

प्र० क्या उद्योग-युग की बलाओं का आपको डर नहीं है?

उ० नहीं। सब कपड़ा मिलें ही तैयार करती हैं। हमारे यहाँ सिर्फ इनी गिनी मिलें हैं। अगर उद्योग-युग से आपका मतलब मजदूरों की नैतिक अवस्था से है तो यह सच मानिये कि हमारे यहाँ मजदूरों की स्थिति बहुत ही अच्छी है।

प्र० क्या आपके यहाँ मिलों के लिए गाँवों से आदमी नहीं खिंचते हैं और इससे क्या खेती के काम में विघ्न नहीं पड़ता?

उ० नहीं। मिलों में मजदूरों को काने वाले तो शहर के निठले बेकार आदमी ही हैं; इसलिए मिलों के लिए उनको खेती छोड़ कर आने का कोई कारण नहीं है। हम बरसात के ऊपर निर्भर नहीं रहते, क्योंकि हमारे यहाँ नहरें हैं। इसलिए अकाल जैसी कोई चीज है ही नहीं। हमारा देश अन्य देशों की अपेक्षा अधिक समृद्ध है।

प्र० मान लीजिए कि आप बिन पर दिन ज्यादा रुई पैदा करते जायें, तो आपको अधिकाधिक कपड़ा बनाने का लोभ बढ़ेगा; यन्त्र-युग सहायता करेगा; फल-स्वरूप क्या आपके यहाँ भी उद्योग-युग का वह अन्धाधुन्धपन न होने लगेगा जो कि अन्य देशों में उद्योग-युग ने मचा रक्खा है?

उ० नहीं। हम लोग अपनी मर्यादा जानते हैं। हमारे यहाँ स्वराज है—सो तो आप भुला ही दे रहे हैं। अधिक कपास उगाने



का लोभ किस काम को होगा? हमारे यहाँ तो यह सख्त कानून है कि तिहाई हिस्से में अगर गेहूँ न बोया जाय तो अमुक दण्ड भोगना पड़ेगा।

लेकिन मेरी शंका यह है कि यह चित्र जितना सुन्दर खींचा गया है उतना सुन्दर नहीं है, क्योंकि एक सवाल के जवाब में इस बहिन ने बताया कि सन् १९१९ से सन् १९२३ तक हमको रुई के चीगुने दाम मिले और—आज भी भरपूर मिलते हैं, इसलिए रुई बेच कर परदेशी कपड़ा मोल लेने में हमें फायदा ही है। इसके अर्थ यह है कि मिस्र में परदेशी कपड़ा काफी जाता है और हिन्दुस्तान में हमारी जो स्थिति हुई है उससे बचने के लिए मिस्र को भी हिन्दुस्तान के उपाय अख्तियार करने होंगे। कुमारी जक्रिया ने कुबूल किया कि वहाँ के गरीब लोग जो छोट्ट इस्तेमाल करते हैं, वह आज तक परदेश से ही आती है और धनिक लोग विदेशी बख को मोहिनी से बचे नहीं हैं। दूसरी बात यह कि मिस्र की कलें तो सब परदेश से ही मँगवानी होगी। नीति तथा कला की दृष्टि से कातने और बुनने की प्रगति होनी चाहिए। यह सब उन्होंने कुबूल करते हुये कहा कि स्वतन्त्रता पाने के लिए उद्योग-स्थातंत्र्य की अपेक्षा अंग्रेज हुक्मामों और अंग्रेजी राजतन्त्र से मुक्त होने का प्रयत्न तथा शिक्षण—ये चीजें हमारे बड़े काम आई हैं। मिस्र देश में परदेशी अमलदार, उसके पुराने हुक्म आज एक भी नहीं हैं। स्वतन्त्रता की कुंजी एकता है—एकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं। हमारे यहाँ जो दल हैं, वे नाम मात्र के हैं। बाहर के लिए दलबन्दी बिल्कुल नहीं है। अन्य देशों के साथ व्यवहार करते समय तो हम सब एक हो जाते हैं। (जब लगभग पांच वर्ष हुए) जगुल्ल पाशा को बहुमत मिला था और जब वे प्रधान बन सकते थे तब उन्होंने अपूर्व दूरदर्शिता, निःस्वार्थ और कुशलता से काम के कर तथा उस विषय में इंग्लैंड में छिड़ी हुई चखचख को बन्द करने के निमित्त उदार दल वालों का ही प्रधान-मण्डल बनने दिया। और इसमें नेकनीयती के फल-स्वरूप आज लिबरल (उदार) दल का प्रधान बिना जगुल्ल की सलाह के एक कदम भी नहीं बढ़ता। सर ली स्ट्रेक के खून में अंग्रेज सरकार दो प्रधानों को दण्ड दिलाना चाहती थी लेकिन बड़ी जांच के बाद और बड़ी स्वतन्त्रता के साथ राज्य के द्वारा नियुक्त न्यायाधीश ने उन प्रधानों को निर्दोष ठहराया। मिस्र की आज की सरकार देश का कल्याण करने में पूरी २ निडरता से काम लेती है जगुल्ल की दूरदर्शिता का दूसरा उदाहरण लीजिये: जब वे मुख्य प्रधान थे तब उनके प्रधान-मण्डल में एक तिहाई हिस्सा ईसाइयों का था—हालांकि मिस्र में ईसाइयों की बनिस्वत मुसलमानों की आबादी १४ गुनी है। इसलिए ईसाई लोग जितने राजी रहते हैं उतने शायद अरब लोग न रहें। खास बात तो यह है कि संख्या में बढ कर होते हुए तथा इतनी नेकनीयती दिखलाते हुए भी कभी मुसलमानों ने ईसाइयों को दबाने की चेष्टा नहीं की। यह बात हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलमानों को नसीहत देने वाली तथा विचारणीय है। मिस्र में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। और वह इतनी लोक प्रिय बन गई है कि उसे जरूरत अमल में लाने की जरूरत नहीं है। प्राथमिक शिक्षा अर्बों के द्वारा दी जाती है। कालेजों में अंग्रेजी भाषा के द्वारा पढाई होती है। समाजों, मेलों, कचहरियों—सब जगहों में अरबी का प्रयोग होता है। परदेशी वकीलों तक को अरबी में ही काम करना पड़ता है। पाठ्य-पुस्तकें भी अरबी में तैयार की जा रही हैं।

जाते २ यह बात एकबार फिर कह गई कि घर में जितना लडो लेकिन गैर-कौम के सामने एक हो जाओ।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

हिन्दुस्तानी पाठ्य पुस्तकें

शिमला के समीप कोटगढ में आजकल मि० ग्रेग वहाँ पढ़ाई बालकों को मि० स्टॉक्स की गिरेशाला में शिक्षा दे रहे हैं। इन्हीं मि० ग्रेग का एक पत्र मेरे पास आया है। उसमें जो निम्न-लिखित अंश उद्धृत किया जाता है उससे पता चलेगा कि हिन्दुस्तानी बालकों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करना कितना कठिन है।

मेरा बहुत सा समय गणित और पदार्थ विज्ञान की पाठ्य पुस्तकें अपने विद्यार्थियों के अनुभव के अनुरूप बनाने में व्यतीत हो रहा है। सब की सब अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकें—और हिन्दुस्तानी भी—शहराती लडकों के लिए ही लिखी हुईं मालूम होती हैं। वे किताबें यह बात मान कर लिखी जाती हैं कि उनमें लिखित अनेक प्रकार की मशीनों और उनके द्वारा बने वाली चीजों का ज्ञान लडकों को पहले ही से होगा। लेकिन बेचरे देहाती बालकों की शायद मोटरगाड़ी, इंजिन, बिजली के लंप, पंप, नल इत्यादि यंत्रों तक कि बैलगाडियां तक—नहीं देखी होती हैं। इस कारण से पदार्थ विज्ञान और गणित में भी मान ली हुईं अनेक बातें, चित्र, परिभाषा के शब्द और उनकी रचना—ये सब चीजें बालकों के वास्ते मुश्किल बैठती हैं और उनमें उन बालकों को रस नहीं आता और वे उन्हें सीख भी नहीं सकते। इसलिए मैं धीरे २ हिन्दुस्तानी देहाती लडकों के लिए विज्ञान और गणित में पाठ्य पुस्तकें तैयार कर रहा हूँ। हिन्दुस्तान के बहुत से बालक गांवों में रहनेवाले होते हैं, इसलिए मैं समझता हूँ कि ये पुस्तकें लाभदायक सिद्ध होंगी।

लेकिन मि० ग्रेग के पत्र से कई बड़े २ प्रश्न पैदा होते हैं इंग्लैंड और जो अमेरिका ऐसे नगर-प्रधान परदेशजोवी और धनिक देशों में काम का है वह ग्राम-प्रधान दरिद्र और परदेशियों के चंगुल में फँसे हुए हिन्दुस्तान के लिए कैसे लाभदायी हो सकता है? अगर हिन्दुस्तान में पाठ्य पुस्तकें हों तो बहुत से देहाती बालकों के शिक्षण का साधन ही बन्द हो जाय क्योंकि इतनी पुस्तकें कहाँ से खरीद सकते हैं? यानी हिन्दुस्तान में पाठ्य पुस्तकें—खास कर नीची श्रेणियों में पढाई जानेवाली—प्रायः शिक्षकों के लिए होती हैं न कि विद्यार्थियों के लिए। परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अगर बालकों को प्राथमिक शिक्षण पुस्तकों द्वारा देने की अपेक्षा जबानी ही दिया जाय तो शायद वह ज्यादा फायदेमंद होगा। छोटी उम्र के लडकों के ऊपर बारहखंडी सीखने का बोझ डालना चाहिए। बच्चे को सामान्य ज्ञान मिलने के पहले ही पुस्तकों के द्वारा शिक्षण देना मानो उनसे उनकी शक्ति को छीनना है। क्या सात वर्ष के बच्चे को जब तक वह वांचना न सीख जाय तब तक रामायण पढ़ाने के लिए भी ठहरना चाहिए?

शिक्षण—संबन्धी सामाजिक, आर्थिक अथवा राजकीय—सभी बातों में हिन्दुस्तान के चंद लाख बच्चों के लिए, गौर कर के देखने से, जो परिणाम निकलता है वह गांवों में रहनेवाले करोड़ों को विचार करने से नहीं आता।

इसलिए यह स्पष्ट है कि मि० ग्रेग के इस प्रयत्न का महत्व पूर्ण परिणाम होगा।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी



## मेवाड का खादी समाचार

१

यहाँ के खादी-प्रचार की नीति सिर्फ यही थी कि जिस तरह हो सके किसी प्रकार लोगों को सारा काम समझा सिखा दिया जाय और उसकी सुविधा कर दी जाय। लेकिन नीचे की बातों का ख्याल कर के खादी पैदा करने की जिम्मेवारी खुद अपने ही सिर पर लेना उचित समझा गया।

१. यहाँ ३, ४ नंबर से बारीक सूत कातने का रिवाज न था। इस से हमने सोचा कि पैसा दे कर शहर में कताये बारीक सूत को देख कर किसान भी बारीक सूत कातना चाहेंगे (पर सुदैव से किसान देखते ही उमंग के साथ महीन सूत कातने लगे जिससे हमारी इस धारणा का कुछ उपयोग न हुआ।)

२. हमारा यह ख्याल था कि शुरू में अपनी जरूरत का कपड़ा किसान खुद तैयार न कर सकेंगे मगर उन्हें खादी की ओर खींचने की जरूरत तो है ही इसलिए हमें आप खादी तैयार कर के उन्हें देनी होगी। आगे चल कर हमें पता लगा कि किसानों को अपना कपड़ा बना लेने का अवकाश है और अगर वह अपना पैसा देना शुरू करें तो वे अपना कपड़ा आप बनाने में आलस्य करने लगेंगे। इस प्रकार हमारा यह विश्वास भी निर्मूल साबित हुआ। पर,

३. यहाँ बुनाई का भाव बहुत अधिक था। उसे अगर घटाना है तो जितने बुननेवाले हैं, उन्हें साल भर चलने लायक काफ़ी काम देना होगा। अब अगर किसान इतना सूत न कात सकें, तो एकाध साल हमें आप उतना सूत पैदा कर लेना चाहिए। इसलिए उत्पत्ति की जरूरत दिखायी दी। शुरू में स्थानिक बुनने वालों ने नहीं माना और बाहर से बुनने वाले मँगाने पड़े। उस समय तैयार सूत बहुत रहने के कारण सब किसी को काम दे सकने की हमें हिम्मत थी।

४. कोई क्षेत्र सम्पूर्ण तभी कहा जा सकता है जब खादी-प्रचार के साथ ही वहाँ हम खादी को पैदा करने का काम भी जितना ज्यादा फैला सकें फैलावें। इसलिए शुरू में तो यह हमी को कर दिखाना चाहिए।

जब ऐसा मालूम हुआ कि उत्पत्ति का काम स्थानिक आदमी के सिवाय दूसरा नहीं कर सकता है तब श्री सीताराम दास जी (साधु जी) के जिम्मे यह काम कर दिया गया।

उत्पत्ति का ठीक २ काम तो ता: २६-६-१९२६ से शुरू हुआ।

पीजवाने की अनुकूलता होती तो कातनेवालियाँ तो थीं ही। अच्छी धुनाई करनी पड़ेगी इस भय से स्थानीय धुनिये न आये। नया आदमी पीजाई सीख कर शुरू में बहुत धुन सकेगा नहीं। इससे ता: २९-६-२६ तक तो हम रोज केवल ५ सेर पूनी ही दे सकते थे। ता: ११-८-२६ तक १० सेर से अधिक पूनी नहीं दे सकते थे। ता: १५-८-२६ से १५ सेर रोज तक पूनी दी जाने लगी है। तैयार पूनी पड़ी नहीं रहती।

यहाँ कातनेवालों का २५ महीनों में ३ महीने 'अगता' (जिस दिन काम बन्द हो) रहता है। अगर ऐसा न हो और धुननेवाले काफ़ी हों तो दूना काम होवे। अब बनियों का भी अगता है।

अब तक हमारे सम्पर्क में १६२ कातने वालियाँ आयी हैं और ७२३ सेर सूत कता है (यहाँ का सेर ६४ रुपये भर का होता है।)

जुलाहों की कमी के कारण और जिन किसानों ने अपने लिए सूत काता है, उनका कपड़ा बुन कर जवदी दे देना जरूरी होने के कारण जैसे २ सूत कतता गया, वैसे ही वैसे बुना नहीं जा सका।

केवल १२० सेर सूत का ५०० गज कपड़ा और तैयार हुआ है, जिसकी बुनाई ३७० दिये गये हैं।

इसके अलावे ५० कातनेवालों ऐसी भी हैं जो कपास और रुई खरीद कर सूत बेंचती हैं। ऐसा सूत हर महीने यहाँ अन्दाजन ५ मन से अधिक तैयार होता होगा।

इसके सिवाय, एक धुनिया भाई भी अपनी धुनी हुई रुई का सूत आप ही कतवाते हैं। इस प्रकार का और कुछ दूसरे एक दो आदमियों का मिला कर हर महीने कोई १० मन सूत तैयार होता होगा।

(नवजीवन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

## माइसोर में कताई

माइसोर के औद्योगिक विभाग ने माइसोर में कताई पर एक रोचक लेख तैयार किया है। उसका सारांश मैं नीचे देता हूँ:—

“हाल में, हाथ कताई की ओर लोगों का ध्यान बहुत आकृष्ट हुआ है। कुछ लोग सच्चे दिल से विश्वास करते हैं कि इसके प्रचार से प्रजा के सुख में वृद्धि होगी। खैर, जहाँ तक हमें इससे मतलब है, हमें यह न भूलना चाहिए कि दीहातों में बेकारी के महीनों में लोगों की जरा सी आमदनी को बढ़ाने का यह एक जरिया है। शहर में रहनेवालों के लिए भी, जो अपने रस्मों रिवाज के कारण या अपनी अनोखी स्थिति के कारण घर के बाहर जाकर दूसरा कुछ काम नहीं कर सकते बेकारी के मसले को हल करने का यह सब से अच्छा तरीका है। जरूरत है तो सब इसी की कि इसे समुचित रीति से चलाया जावे और इसके कार्यकर्त्ता इसमें काफ़ी मन लगवें।

“माइसोर में बहुत जमाने से हाथ कताई का काम चलता आ रहा है। मामूली तौर पर लोग घर में सूत कातते और गाँव के बुनने वाले से ही उसका कपड़ा बुनवा लिया करते थे। बाहर से सस्ता सूत मिलने और सूत बुनवाने या बेंचने में कठिनाई पड़ने के कारण, चर्खा चलाना कम तो जरूर हो गया है किन्तु बिल्कुल बन्द कभी नहीं हुआ। अगर कपड़े के लिए नहीं तो यज्ञोपवीत और दीये की बत्ती के लिए तो जरूर ही अभी भी सूत काता जाता है। चर्खे के अलावा तकली की भी चलन है। तकली से केवल मोटा और भद्दा सूत ही नहीं काता जाता है बल्कि महीन और अच्छा सूत कातने के भी काम यह आती है और माइसोर, तुमकुर, कोलार और चितलबर्ग जिले के कुछ गाँवों में तकली पर ही उनका और रही रेशम का भी सूत काता जाता है।

“माइसोर के औद्योगिक विभाग ने भी इसके लिए कुछ काम किया है। अबतक क्या किया गया है और आगे किस रीति से चलने का विचार है, इसका यहाँ कुछ आभास दे देना अनुचित न होगा। अभी उस दिन बंगलोर के चर्खा-संघ के जरिये टिप्पू सुल्तान के राजमहल में चर्खा दंगल कराया गया था। ६८ कातने वालों ने भाग लिया था जिनमें १८ स्त्रियाँ थीं। उनमें दो तो पदनिशीन औरतें थीं। उसके साथ एक छोटी प्रार्थिनी भी की गयी, जिसे विविध प्रकार की रुइयाँ, पूनियाँ, सूत और उनके कपड़े और धुनने के यंत्र आदि दिखलाये गये। यह बात मजे में कही जा सकती है कि आजदिन केवल बंगलोर शहर में करीब ५०० चर्खे



चलाते हैं और माइसोर में भी कोई इतने ही होंगे। इन में १४६ तो सिपाही चलाते हैं। चामुंडा पहाड़ी पर के नीकर २५, शरीर रक्षक सेना के मराठों और मुसलमानों की पर्दानशीन औरतें ५०० और राजकीय तबैले के नौकर कोई २० चले चलाते होंगे।

“मुफ्तिसल में चर्खों की ठोक २ संख्या बतलाना कठिन है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि बहुत घरों में चर्खा चला करता है। इस विभाग द्वारा जिला और तालुका सभाओं के साथ २ चर्खा प्रदर्शिनियों और माइसोर जिला सभा के साथ चर्खा दंगल का भी प्रबन्ध कराया गया था। स्थानीय संस्थाओं के सभापतियों का भी प्रबन्ध कराया गया था। स्थानीय संस्थाओं के सभापतियों और सदस्यों ने इसपर ध्यान देना शुरू किया है और अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा लगा कर अच्छे चर्खे खरीद कर उन लोगों को देने का निश्चय किया है जो दाम दे कर नहीं खरीद सकते। वे जब कातना सीख लेंगे तो फिर छोटी २ हलकी किस्तों में उसका दाम चुका देंगे। इससे न तो बहुत अधिक धन की ही जरूरत पड़ेगी और न थोड़े से पैसे इकट्ठे करने के लिए दूर दूर पर बसे हुए बहुत लोगों के पास दौड़ना ही होगा।

“मगर तौभी अभी बहुत काम करने को बाकी है। इसमें तीन प्रकार की सब से बड़ी कठिनाइयाँ हैं। (१) जरूरत के माफिक चर्खे जुटाने की (२) काफी कच्चा माल (रई) मँगाने की (३) हाथ बतते सूत की बिक्री का प्रबन्ध करने की।

“पहली कठिनाई का तो बहुत कुछ हल इस प्रकार हो गया है कि थोड़ी सी स्थानीय संस्थाओं ने अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा इसमें लगाने का निश्चय किया है। आशा है कि और संस्थाएँ भी उनका अनुकरण करेंगी।

“दूसरी कठिनाई के बारे में यह तो साफ मालूम होता है कि हर एक कातने वाले के लिए रई धुनने और सूत बँचने की फिक्र रखना मुश्किल है। अगर वे बहुत दूर दूर पर छितराये हुए हों, तब तो कठिन है और भी बढ जाती है। इसका यह उपाय सुझाया जाता है कि ऐसा सभी सूत इकट्ठा करने और फिर किसी केन्द्र स्थान में मेज कर धुनवा लेने के लिए एक अलग ही संस्था का संगठन किया जावे। लाने, और ले जाने के बैकार खर्च का सवाल अगर छोड़ भी दें तो भी, इसके लिए इतनी बड़ी पूंजी चाहिए और काम इतना फैलाना होगा कि यह योजना तो साफ ही अत्यावहारिक मालूम होती है। इसका एक ही उपाय मालूम होता है। वह यह कि, स्थानीय चर्खा-समितियाँ या सहयोग समितियाँ खोली जायें और उनके काम हो (१) कपास मँगाना (२) कातने वालों को लागत दाम पर कपास देना (३) उनका काता हुआ सूत खरीद लेना (४) काफी सूत जमा हो जाने पर उसका कपड़ा बुनवा लेना (५) ऐसे तैयार कपड़े को बँच लेना। उसमें जो घटो हो, वह माफ कर दी जाया करे। अभी हल के लिए तो श्रीकृष्ण राजेन्द्र मिल माइसोर तथा यहाँ की और कई मुख्य मुख्य ओटा मिलों ने रुई के लिए ऐसी समितियों की इस विभाग के जरिये जो मॉग आवे, उसे पूरी करने का वचन दिया है। इसके अलावा औद्योगिक विभाग ने, ऐसे लोगों को भी रखने का निश्चय किया है जो नये सीखने वालों को कातना सिखलावें। कताई के साथ साथ हाथ-धुनाई का भी प्रचार करने की कोशिश की जा रही है। जबतक धुनने वालों की, हाथ-रुते सूत को धुनने की अनिच्छा दूर नहीं की जा पाती है, जबतक के लिए सरकारी धुनाई कारखाने में ही या जुने हुए धुनाई केन्द्रों में ही ऐसे सब सूत का कपड़ा बुनवा लिया जा सकता है। स्थानिक संस्थाओं के

सभापति और उपसभापति इसमें सहमत हुए हैं और इसके लिए वेसे संघ और समितियाँ खोलने का उन्होंने निश्चय कर लिया है। ऊपर के कहे हुए, साधारण प्रचार-कार्य के अलावा, अगर हर जिले में २, ३ गांव चुन लिये जायें और वहाँ बड़े पैमाने पर, कुछ ऐसे लोगों की सहायता से, जिनका इस काम में कुछ विशेष मन लगता हो या जो इसके लिए विशेष योग्य हों, काम शुरू किया जाय तो बहुत प्रगति हो सकती है। इस योजना के अनुसार काम करने से, जितना हाथ-काम सूत तैयार हुआ है, सभी का सभी साधारण कपड़े बुनने के काम आया है। किन्तु ऐसे प्रयोग किये गये हैं जिनसे मालूम होता है कि छापे जाने पर, उन्हीं कपड़ों का पर्दा, गर्दों, और रजाइयों इत्यादि के काम में भी समुचित उपयोग हो सकता है।”

हिन्दुस्तान में एक ही सार्वजनिक घराऊ धंधा है। उसी के पुनरुद्धार में उत्तेजन देने के लिए, माइसोर के अफसरों को मैं साधुवाद देता हूँ। अखिल भारत चर्खा-संघ के अनुभवों से लाभ उठाने की मैं उन्हें सलाह दूंगा। प्रयोग और जांच के द्वारा यह देखा गया है कि हाथ कताई के साथ २ हाथ ओटाई का काम भी उर-कामना रख है। उन जिलों में जहाँ कपास पैदा होती है, यह बहुत ही सहज है। जहाँ कपास की खेती होती तो नहीं है लेकिन उसे पैदा करना संभव है, वहाँ कपास की पैदाइश को उत्तेजन देना चाहिए। कल के द्वारा ओटी हुई और दबायी हुई कपास का सत्व निकल जाता है। हाथ की ओटी हुई रुई की बनिस्वत, उसका हाथ से धुनना कहीं मुश्किल है। हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में, कातनेवाले कपास ही लेते हैं। उन्हें अपनी रई आप ही धुन लेने को भी बतलाना चाहिए। धुनना और कातना, दोनों क्रियाएँ एक साथ करने से कातने वाले की आमदनी दूनी हो जाती है। हाथकते सूत की ताकत को बढ़ाने के लिए, रियासत को समय समय पर सूत की जांच करते और उस जांच का फल प्रकाशित करते रहना चाहिए। सच पूछो तो सारा का सारा काम शास्त्रीय रीति से होना चाहिए। इसके लिए माइसोर ऐसी रियासत अधिक अधिकारी, भला दूसरा कौन हो सकता है?

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

अ० भा० चर्खा-संघ

इस महीने के साथ २ अ० भा० चर्खा-संघ का पहला साल भी खतम होता है। जो लोग इस वर्ष में पिछड़े हुए हों, अगर वे बराबर सदस्य बने रहना चाहते हैं तो, उनको अपना बकाया सूत मेज देना चाहिए। जो लोग आगामी वर्ष सदस्य होना चाहते हैं उनको भी अपने हिस्से का सूत शीघ्र मेज देना चाहिए। यह बात जितनी बार कही जाय थोड़ी है कि सूत अच्छी ऐंठन-दार, एकसाँ और फुरका हुआ मेजना आवश्यक है। जो सूत अब तक आया है उसे जांचनेवालों ने बड़े लिहाज के साथ जांचा है। लेकिन यह लिहाज हमेशा नहीं चल सकता, क्योंकि यह काम और कातनेवाले दोनों के लिए खराब होगा। इसलिए कातनेवालों को अब से अपना रई सूत वापिस पाने पर तअज्जुब न होना चाहिए क्योंकि छोटे सिके — छोटे सिके ही क्यों, सब छोटी चीजें — नामंजूर हो कर लौटा दी जाती हैं और दी जानी चाहिए भी।

सदस्यों को ध्यान रखना चाहिए कि पांच वर्ष के बाद जब कि संगठन की दूसरी आवृत्ति का समय आवेगा, संघ के विशेष विचार पाने के लिए वह दिखाना आवश्यक होगा कि अगले सदस्य लगातार पाँचों वर्षों तक सदस्य रहा है या नहीं।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

अंक ८ ]

मुद्रक—प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आश्विन सुदि १, संवत् १९८३  
सुरवार, ७ अक्टूबर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २१

तीन पौंड का कर

बालासुन्दरम् के मामले ने मेरा सम्बन्ध गिरमिटिया हिन्दु-स्तानियों से जोड़ दिया। उन लोगों पर कर लगाने की हलचल से उनकी स्थिति का मुझे गहरा अध्ययन करना पड़ा। जिस सन् की यह बात है, उसी सन् १८९४ ई० में गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों पर प्रतिवर्ष २५ पौंड (३७५ रु०) का कर लगाये जाने का मसविदा नैटाल की सरकार ने तैयार किया। उसे पढ़ कर मैं तो चकित रह गया। उसे मैंने वहाँ की कांग्रेस के सामने पेश किया। कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि उस सम्बन्ध में जो जरूरी समझा जाने सो किया जावे। इस कर की कैफियत यह थी:

तकरीबन सन् १८९० ई० में जब कि वहाँ के नैटाल-निवासी गोरों ने देखा कि यहाँ ईश की अच्छी काश्तकारी होने की सम्भावना है, तब वे मजदूरों की तलाश में लगे। उन्होंने सोचा कि अगर मजदूर न मिलेंगे तो ईश उगाई नहीं जा सकती और इसलिए शक़र नहीं बनाई जा सकती। और नैटाल के हवशी लोग ईश की खेती में काम करने के योग्य न थे। इसलिए नैटाल-निवासी गोरों ने भारत-सरकार के साथ लिखा-पढी की, और हिन्दुस्तानी मजदूरों को नैटाल जाने देने की इजाजत भारत-सरकार से विलवा दी। नैटाल वालों ने मजदूरों को यह लालच भी दिखाया कि तुम लोगों के लिए सिर्फ पाँच वर्ष मजदूरी करना लाजिम होगा और उसके उपरान्त वहाँ पर स्वतन्त्र रूप से बस सकोगे। और वहाँ पहुँच कर जमीन खरीदने का अधिकार भी रहेगा। उस समय गोरों की संज्ञा यह थी कि हिन्दुस्तानी मजदूर अपने पाँच वर्ष पूरे कर के जमीन जोते बोएँगे और अपने उपम से नैटाल को लाभ पहुँचायेंगे।

हिन्दी मजदूरों से जितनी उम्मेद रखी जाती थी उन्होंने उससे कहीं अधिक लाभ पहुँचाया। तरकारी खूब जोई। हिन्दुस्तान की

कई सीठी भाजियाँ जोई। जो तरकारियाँ वहाँ पैदा होती ही थीं उनकी उपज सस्ती की। हिन्दुस्तान से भाजी मँगवा कर बेची। लेकिन उन लोगों ने वहाँ व्यापार करना भी शुरू कर दिया। घर बनवाने के लिए जमान खरीदी और उनमें से बहुत से मजदूर मजदूर न रह कर अच्छे खासे जमींदार और बरदार वाले हो गये। और इन लोगों के पीछे हिन्दुस्तान से कुछ स्वतन्त्र व्यापारी भी गये। उनमें सरकूम सेठ अबुबकर भासद अग्रगण्य थे। उन्होंने अपना काम खूब जमा लिया।

गोरे व्यापारी चौंके। जब उन्होंने शुरू में हिन्दुस्तानी मजदूरों को आने के लिए उत्पादित किया था, तब उनको हिन्दी मजदूरों की व्यापार-शक्ति का भान न था। बल्कि उनको काश्तकार की हैसियत से रहने देने में उस समय कोई आपत्ति न थी, लेकिन व्यापार में उनकी ऊपरा-चढ़ी गोरों से सहन न हुई।

हिन्दुस्तानियों के प्रति विरोध की जब यही थी।

इसमें दूसरी बातें भी आ मिलीं। हम लोगों का भिन्न रहन-सहन, हमारी सादगी, कम मुनाफा खाना, आरोग्य-सम्बन्धी नियमों की अनिवार्यता, घर के आंगन या चौक को साफ रखने में आलस्य उसकी मरम्मत करने में कंजूसी, हमारे तथा उनके धर्म में भिन्नता—ये सब बातें उस विरोध को बढ़ाने वाली सिद्ध हुईं।

इस विरोध-भाव का असर कानून द्वारा उस मताधिकार (जिसका जिक्र किसी पिछले प्रकरण में किया जा चुका है) को उठा केने तथा गिरमिटिया लोगों पर कर लगवाने के कर में दिखाई दिया। कानून के बाहर तो वे लोग हिन्दुस्तानियों के साथ बात बात में खुरखुन्द लगाये रहते थे।

उनकी पहली पहल सूचना यह थी कि जब गिरमिट की मीयाद पूरी होनेवाली हो, तब हिन्दुस्तानियों को नवरदस्ती इस हिसाब से वापिस भेज दिया जावे कि जिसमें हिन्दुस्तान पहुँचते २ उनकी मीयाद पूरी हो जावे। यह बात भारत-सरकार कबूल करनेवाली न थी। इसलिए यह दूसरी सूचना तैयार की गई।

१. मजदूरी का करार पूरा हो जाने पर गिरमिटियों को हिन्दुस्तान वापिस भेजे जाना चाहिए।







कम बैठना है क्योंकि इस हिसाब में धनी जमीन्दारों के बहुत बड़े २ भूमिखण्ड भी शामिल हैं। "इसलिए यह कुछ ताज्जुब की बात नहीं है कि एक बड़े सरकारी अफसर ने कहा था कि इस देश में आधे लोग तो यह जानते ही नहीं कि दो बार खाना क्या कहलाता है।"

"अकाल कमीशन ने, १८७७-७८ में ही, इस स्थिति की गम्भीरता यों जतलायी थी:—'हिन्दुस्तान के अकालों का इतना सर्वनाशी प्रभाव पड़ने का एक मुख्य कारण और अकाल-पीड़ितों को कुछ वास्तविक सहायता पहुँचाने में सब से बड़ी कठिनाइयों की भी जब यह बात है कि अधिकांश लोग कृषि पर ही निर्भर हैं और ऐसा कोई भी दूसरा धंधा नहीं है, जिससे काफी लोगों की गुज़र होती हो। नियमित वर्षा में कमी होने से, मिहन्त मजदूरी करने वाले सभी लोगों की न केवल ऐसी खाद्य सामग्री का ही मिलना, जिसे खरीदना उनकी शक्ति के भीतर हो बन्द हो जाता है, बल्कि, उसे खरीदने के लिए धन पैदा करने का उनका केवल एक ही रोजगार जो था, वह भी बन्द हो जाता है।' कमीशनरों ने इसकी पूरी दवा यह बतलायी कि 'कृषि के अलावा दूसरे ऐसे धंधे भी शुरू किये जायें जिन पर मौसम के फर्क पड़ने से कोई असर न पड़े।'"

लेखक ने यह भी दिखलाया है कि अधिकांश किसानों को साल में सिर्फ चार महीने ही काम रहता है। "कलक, सरकारी अफसर, वकील, डाक्टर, राजनीतिक नेता, शिक्षक और वे सभी लोग जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा मिली है, सब मिला कर भी, सारी आबादी के फी सदी १ के भी बराबर नहीं है।" मैं कह चुका हूँ कि लेखक के नतीजे निर्र्वि हैं। इस कमजोरी का मूल इस बात में है कि उन्होंने सभी प्रकार के संभावित धंधों को गिन लिया है। गिनती के लिए यह बहुत अच्छा है। लेकिन इस से समस्या का हल तो होता नहीं और उसे जल्द ही हल करना होगा। हम में से बहुत लोग और गांव के काश करनेवालों में से अधिकांश तो उद्योगों का एक प्रदर्शन देख कर ही घबरा जावेंगे। उनके लिए तो एक ही सार्वजनिक उद्योग चाहिए। अब इनमें से एक एक को जांच कर छोड़ते चले तो अन्त में इसी नतीजे पर हम लाचार हो कर पहुँचेंगे कि करोड़ों के लिए अगर कोई धंधा हो सकता है तो वह चर्खा चलाना ही है और दूसरा कुछ नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरे धंधों की कोई वकत नहीं या वे बेकार हैं। सच पूछो तो व्यक्तिगत दृष्टि से तो दूसरे ही धंधों में इस से अधिक आमदनी है। जैसे, पड़ोसाजी का धंधा बहुत ही रोचक और आमदनी वाला होगा। मगर आखिर इसमें कितने आदमी लग सकते हैं? गांव के करोड़ों आदमियों को इस से क्या लाभ होगा? मगर अगर वे ही गांव के आदमी, अपने घर फिर से बना सकें, अपने पूर्व-पुरुषों के ऐसा रहना शुरू कर सकें, अपने बेकार समय का उपयोग करना सीख जायें तो और सभी धंधे अपने आप ही जी बढेंगे। भूखे लोगों के आगे तरह तरह के कच्चे खाने रख कर यह उमेद करना बेकार है कि वे अपने मन की चीज आप पसन्द कर लेंगे। संभवतः, सब से अधिक सुभावनी चीज पर ही वे दौड़ पड़ेंगे और अन्त में जान से भी हाथ धी बँटेंगे। मुझे याद है कि भूखे लोगों में भोजन बाँटते समय अपनी जिन्दगी में एक बार में मरते २ बचा। मुझे पहिले अपने आप को और बाँटने के सामान को बंद कर लेना पड़ा और तब कहीं जा कर मैं बाँट सका। हम बहुत कम प्रगति जो कर पाते हैं, इसका कारण यह है कि लोगों के सामने

हम धंधों की एक बेतरतीब किशरित पेश कर देते हैं जब कि हमें यह जानना चाहिए था कि सब के लिए केवल एक ही धंधा संभव है। शायद सभी कोई उसे शुरू न करें। जिन्हें ताकत और इच्छा हो, वे बहुत खुरी से कोई दूसरा धंधा शुरू करें। किन्तु राष्ट्र की शक्ति तो केवल एक धंधा कटाई के लिए ही लगायी जा सकती है, जिसे सभी कर सकते हैं और उन में अधिकांश दूसरा कोई धंधा नहीं कर सकते। एक बार देश का ध्यान इस ओर खिंच जाने के बाद, खदर बनने की हमें फिक नहीं करनी पड़ेगी। खदर को सर्वप्रिय बनाने के लिए आज जिस शक्ति और धन का उपयोग होता है, उस दिन उसका उपयोग खदर को अच्छा बनाने और उसे अधिक तैयार करने में होगा। राष्ट्र का यह चालू आलस्य है, जिसके कारण खदर के लाभों को हम देख नहीं पाते और उसके लिए सारा राष्ट्र कुछ कर नहीं पाता है। इतना ही कहना काफ़ी नहीं है कि हाथकटाई भी एक धंधा है जिसको पुनर्जीवित करना होगा। यह कहना परमावश्यक है कि अगर हमें गांवों में गृह की पुनर्प्रेषणा करना है तो यही वह मुख्य धंधा है जिस पर सब को ध्यान देना होगा।

( अं० ६० )

मोहनदास करमचंद गांधी

जुलाई के अंक

जुलाई में खादी की उत्पत्ति और विक्री के और अंक नीचे दिये जाते हैं।

प्रान्त	उत्पत्ति	विक्री
बिहार	१९,९४४)	१९,०६०)
बंगाल	४७,०६५)	२४,९४७)
मध्यप्रान्त (हिन्दुस्तानी)	...	२४६)
गुजरात	६,४७०)	५,१३०)

(इसमें अमरेली के अंक शामिल नहीं हैं)

७३,४७९)

४१,३८३)

जुलाई के अंक जो पीछे

प्रकाशित हो चुके हैं १,२०,७९९)

१,९७,३११)

जुलाई कुल १,९४,२७८)

२,३८,६९४)

अगस्त के अंक

अगस्त के अंक नीचे दिये जाते हैं।

अजमेर	४४३)	३,१६३)
आन्ध्र	२०,४५५)	२६,९३३)
बिहार	२६,३३३)	१३,२९८)
बंगाल	३४,४४५)	२०,९४८)
बर्मा	...	१,७३३)
दिह्री	१,००७)	१०५)
गुजरात	९,३३७)	३,४५५)
करनाटक	४,४६१)	४,८९४)
केरल	१२६)	१,३३८)
वक्षिण महाराष्ट्र	...	१७६)
मध्य	...	२,५३४)
उत्तर	१,६०६)	६,१८९)
पंजाब	११,१२४)	५,७१६)
तामिलनाड	५७,१९७)	५९,८६६)
संयुक्तप्रान्त	६,०००)	७,०२४)
उत्तराल	१,१९७)	१,३३३)

कुल १,७८,११०)

१,९०,३२५)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन सुदि १, संवत् १९८३

## वही पुरानी दलील

एक सज्जन हम लोगों में फेली हुई बुद्धियों तथा उन कृषि सम्बन्धी सुधारों का, जिनको वे आवश्यक समझते हैं, जिक्र करते हुए लिखते हैं:

“मैं समझता हूँ कि अगर हम अपना कदम पीछे हटा कर यह कहने लगे कि आधुनिक सभ्यता एक रोग है, तो मेरी बतलाई हुई ये सब बातें नहीं की जा सकती हैं। हमको उस रोग का सामना हिम्मत के साथ करना है और उससे पैदा होने वाली खराबियों की जड़ काटने के उपाय ढूँढ निकालने हैं। हम तरकी के ऐसे मंजिल पर पहुँच चुके हैं कि जहाँ हम इस आधुनिक या घातानी सभ्यता से निकल नहीं सकते। इस बीसवीं शताब्दी में, जब कि यात्रा करना और माल बाहर भेजना सुगम हो गया है, कोई भी देश दूसरे देश से गैर-तल्लुक नहीं रह सकता। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक मामलों में हमारे समाज की जड़ें तक हिली जा रही हैं। मेरा ख्याल है कि इस हलचल में मुखतापूर्ण तथा दिखावटी ब्रह्म का नाश हो कर ठोस और विशिष्ट वस्तुओं को स्थान मिलेगा। हम अब अपनी बेलगाड़ियों या मिट्टी के चिरागों से और अधिक काल तक सन्तुष्ट नहीं रह सकते। रेड, जहाज, मोटर, मुक्कयन्त्र, जनसत्ता तथा प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के विचारों से अब छुटकारा नहीं। जिसे खबर थी कि पूर्व में जापान इतना बड़ा सशक्त राष्ट्र बन पाया? अगर वह उत्पादन की विधियों से दूर रहता तो वह भी वहाँ का बर्तन और दूसरों की सहायता का इच्छुक होगा कि आज चीन है — बना रहता। हमारा लक्ष्य भारत की दिन पर दिन अधिक होने वाली उन्नति होना चाहिए। यह किसी जादू के बल से नहीं हो सकता। हमारी आय का बढ़ना जरूरी है। हमारी राष्ट्रीय आय बहुत ही कम है। अंग्रेज अधिशाही का मत है कि शिष्ट और संस्कृत जीवन, की आदमी ६००) सालाना से कम आमदनी पर सम्मन नहीं है। तब फिर भारत कहाँ रहा? जब तक हम दूसरे मुल्कों की स्पर्धा के आगे टिक सकने वाले व्यवसाय नहीं खोलते, तब तक क्या राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ाना सम्भव है? संसार के साथ व्यापार करने में हमारे नाम कुछ रकम पावने के खाते में होनी चाहिए; तब ही और सिर्फ तब ही, हिन्दुस्तानी किसानों का ध्यान सफाई, शिक्षा, सभ्यता इत्यादि बातों की ओर खींचना चाहिए। भारतवर्ष अब तक इसलिए जीवित है कि अब तक वह बदली हुई परिस्थितियों के तदनुरूप अपने को बनाता आया है। वर्तमान परिस्थिति में पुतलीघरों और बहु-मात्रिक उत्पादन के बिना यह सम्भव नहीं है।”

यह तो हमारे रूप में वही पुरानी दलील है। पत्र-प्रेषक महोदय यह बात भूल जाते हैं कि हिन्दुस्तान को अमेरिका और इंग्लैंड की तरह बना देने के लिए यह जरूरी है कि उसके माल की खपत के लिए कोई अन्य जातियाँ और देश खोजे जायें। यह स्पष्ट है कि अब तक पश्चिमी राष्ट्रों ने योरोप के बाहर संसार के सभी देशों को खोखला करने के लिए बाँट रखा है और यह भी स्पष्ट है कि अब कोई तब तक जीवित रह पाएगा जो अपने माल को खपाने के लिए दूसरे देशों को खोखला करेगा।

होने को नहीं है। उन मुल्कों में जो कि पश्चिमी देशों के इस प्रकार शिकार बने हुए हैं, हिन्दुस्तान सब से मोटा बकरा है। निस्सन्देह पूर्व में जापान का भी इस छूट खसोट में भाग है। लेकिन बहि चीन और हिन्दुस्तान शिकार बनने से इन्कार कर दें तो उन छूट मचानेवाले राष्ट्रों का क्या हाल हो? अगर चीन और हिन्दुस्तान के, विलायती माल लेने से इन्कार करने के फल स्वरूप पाश्चात्य राष्ट्र और जापान को हाथ मलना पड़े, तब जरा सोचिये कि हिन्दुस्तान के पश्चिम की नकल करने का क्या उप-रिणाम होगा?

निस्सन्देह पश्चिमी देशों में उद्योगवाद और पर राष्ट्र-अपहरण की हद हो चुकी है। अगर ये रोगग्रस्त लोग अपने दोषों का इलाज करने में असमर्थ हैं, तो भला हम नौसिखिये किस प्रकार से उनको दूर कर सकेंगे? हकीकत यह है कि यह औद्योगिक सभ्यता इसलिए एक रोग है कि उसमें निरी बुराई है। हमको मनोहर २ शब्दों और वाक्यों से भ्रम में न पड़ जाना चाहिए। मुझे तार या जहाज से कोई विरोध नहीं है। वे अगर उद्योगवाद तथा उससे संबंध रखनेवाले समस्त कारखानों और धंधों के सहारे बिना, ठहर सकते हैं तो भले रहें। वे स्वयं लक्ष्य नहीं हैं। तार और जहाज की खातिर हमें इस छूट की वरदास्त न करनी चाहिए। वे मानवजाति के स्थायी कल्याण के लिए किसी भी प्रकार से अनिवार्य नहीं हैं। चूंकि हम आप और बिजली का उपयोग जान गये हैं, इसलिए हमको उन्हें समुचित अवसर पर, जब हम उद्योगवाद से बचना सीख जावेंगे, इन्हें माल करने के योग्य होना चाहिए। इसलिए हमारी चेष्टा यह होनी चाहिए कि उद्योगवाद किसी न किसी प्रकार नष्ट हो जाय। पत्र-प्रेषक ने दवाई, बिना उसे खुद जाने ही सुझाई है, क्योंकि वे स्वीकार करते हैं कि जब कि अन्य राष्ट्रों का नामोनिशा मिट गया, भारतवर्ष के तब तक जीवित रहने का कारण यह है कि वह परिस्थितियों के तदनुरूप अपने को बना लेता रहा है। परिस्थिति के अनुरूप अपने को बना लेना अनुकरण करना नहीं है। उसके तो अर्थ है खराब बातों को छोड़ कर अच्छी को अंगीभूत कर लेना। भारतवर्ष अन्य सभ्यताओं के आक्रमणों के झोंके इस कारण खहता आया है कि वह अपने विकास पर रुक है।

यह बात नहीं है कि उसने तन्दीलियाँ की ही नहीं — बल्कि जो तन्दीलियाँ की हैं, उन्होंने उसके विकास में सहायता ही पहुँचाई है। अपनी स्थिति को छोड़ कर उद्योगवाद को स्वीकार कर लेना मानों बर बड़े आपत्ति बुलाना है। आजकल जो आफत है वही कौन थोड़ी है? दरिद्रता विदा होनी ही चाहिए। लेकिन उसका इलाज उद्योगवाद नहीं है। बुराई बेलगाड़ी के उपयोग में नहीं है। वह है हमारे स्वार्थपन में और अपने पड़ोसी के प्रति उदारता के अभाव में। यदि हममें पड़ोसियों के प्रति प्रेम नहीं है, तो किसी भी प्रकार की तन्दिली — वह चाहे जसी क्रांतिकारी क्यों न हो — हमें लाभ नहीं पहुँचा सकती। और अगर हम अपने पड़ोसियों के प्रति, यानी भारत के निधनों के प्रति, प्रेमभाव रखते हैं, तो उनकी खातिर हम वही पहँचेंगे जो वे हमारे लिए तैयार करते हैं; उनकी खातिर हम पश्चिम के साथ उसके बहिष्कार कपड़े खरीदने तथा उन्हें गाँव २ पहुँचाने के रूप में नीतिप्रव व्यापार न करेंगे। अगर हम गम्भीरता एवं दृढ़तापूर्वक विचार करेंगे, तो देखेंगे कि और कोई तन्दिली करने के पहले सब से बड़ी तन्दिली विलायती कपड़े का बहिष्कार और उसके स्थान पर चले को स्थापित करना होगी। हमारा फर्ज है कि अगर

ने देश के  
सही स्थान  
मुझे पूरा  
से तो  
यानी  
को। संवि  
ही है। मे  
कि कोई  
कि न बह  
योग निधनों  
निधन लोग  
भी गरीबी  
सगलों को त  
बाहिए। ए  
गरीब — पूर्ण  
की संख्या ब  
भारतवर्ष  
है जिससे अ  
मानित के उ  
और धार्मिक  
उसकी आत्म  
नहीं कर स  
वह नहीं क  
बच सकता  
को रोकने  
(यं० इ०  
जलाल  
काय-संग्रह  
४०० अम्रीक  
जिस सन्देह  
कि मने इस  
आनन्द का  
जिस सुख  
हिन्दी अनु  
“उस  
मैंने  
उसने  
मैंने  
उसने  
मैंने  
उसने  
मैंने  
दिन तक  
उस  
बायो कि  
को ही त  
नहीं मां  
मैंने  
अर्ध चेह  
उस  
गवाही



७ अक्टूबर, १९२६

स्वास्थ्यवर्धक व्यवसाय को उसके  
पने देश के प्राचीन और  
सही स्थान पर बिठा दें।

मुझे पूँजी का डर नहीं: मुझे तो पूँजीवाद का भय है।  
से तो यही शिक्षा मिलती है कि संपत्ति को केन्द्रीभूत न  
यानी दूसरे और अधिक भयानक रूप में जानीय युद्ध से  
को। संपत्ति और धन में परस्पर विरोध होने की आवश्यकता  
ही है। मैं ऐसे काल का चित्र अपने मन में नहीं खींच सकता  
कि कोई भी आदमी दूसरे से अधिक धनी न होगा।  
कितने बड़े दिन कयास में जलूर ला सकता हूँ जब कि धनिक  
योग निधनों को छुट कर मालामाल होने से घृणा करेंगे और  
निधन लोग धनिकों को देख कर डार न करेंगे। आदर्श समाज  
में भी गरीबी अमीरी का फरक न मिट सकेगा लेकिन हम  
मगलों को तो बुरा अवश्य ही कर सकते हैं और हमें करना भी  
चाहिए। ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं जिनमें अमीर और  
गरीब — पूर्ण मित्रता के साथ रहते पाये गये हैं। ऐसे उदाहरणों  
की संख्या बढ़ाना ही हमारा कर्तव्य है।

भारतवर्ष का भविष्य पश्चिम के उस खूनी रास्ते पर नहीं  
है जिससे आज वह थका हुआ सा मालूम होता है किन्तु  
धार्मिक के उस अहिंसा पथ पर है जिसकी प्राप्ति केवल सादगी  
और धार्मिक जीवन से ही होती है। भारतवर्ष को इस समय  
उसकी आत्मा के नाश का खतरा है। उसे खो कर वह प्रेम  
नहीं कर सकता। इसलिए आलसी के समान निरुपाय हो कर  
वह नहीं कह सकता कि — “पश्चिम की इस बाढ़ से मैं नहीं  
बच सकता।” अपनी और संसार की भलाई के लिए उस बाढ़  
को रोकने योग्य शक्तिशाली तो उसे बनना ही होगा।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### भगवान् की खोज

जलालुद्दीन रूमी की कविताओं का अनुवाद मैं अभी एक नये  
काव्य-संग्रह में पढ़ रहा था। इसका मुझ पर ऐसा असर पड़ा है और  
२० अफ्रीका के जिस कठिन काम में मैं जा रहा हूँ उसके लिए  
जिस सन्देश की मुझे जरूरत थी, वह भी इससे इतना मिला है  
कि मैंने इसकी नकल करने और अपने पाठकों को भी इसे पढ़ने के  
आनन्द का हिस्सा देने का निश्चय कर लिया है। मुझे उम्मेद है कि  
जैसा मुझ पर इसका असर पड़ा है वैसा ही उनपर भी पड़ेगा।

हिन्दी अनुवाद यों है:—

“उसने पूछा — मेरे दर पर कौन खड़ा है ?

मैंने जवाब दिया — तेरा खाकसार गुलाम।

उसने पूछा — क्या चाहता है ?

मैं बोला — ऐ मेरे मालिक, तेरी बन्दगी को आया हूँ।

उसने पूछा — तू कब तक खड़ा रहेगा ?

मैंने कहा — जब तक तू मुझे अन्दर बुला नहीं लेता।

उसने पूछा — इसकी इबादत तू कब तक करता रहेगा ?

मैंने कहा — ओ मेरे आका, जमाने के चक्कर के अखीरी  
दिन तक।

उसकी सुदृढता का मैं दावी बना। मैंने सच्चे दिल से कसम  
खायी कि उसीकी सुदृढता के लिए मैंने दौलत व ताकत दोनों  
को ही तर्क किया था।

उसने पूछा — गवाह से काजी क्या उसके दावे के सुबूत  
नहीं मांगता ?

मैंने कहा — मालिक, ये आँसू ही मेरे गवाह और मेरा  
जुदे चेहरा ही मेरी गवाही है।

उसने पूछा — तेरी आँखें इधर उधर चलती हैं। उनकी  
गवाही क्या काबिल-यकीन होगी ?

मैं बोला — तेरे इन्साफ की कसम, वे पाक और बेऐब हैं।

उसने पूछा — तू मुझसे चाहता क्या है ?

मैंने कहा — इरहम तेरा साथ और तेरी दोस्ती।

उसने पूछा — तेरा साथी कौन था ?

मैंने कहा — ओ राजा, तेरा खयाल।

उसने पूछा — तुझे यहाँ बुलाया किसने ?

मैं बोला — तेरे जलसे की शुहरत ने।

मुझसे अब और अधिक कुछ न पूछो। अगर मैं उसकी और  
अधिक बातें सुनाऊँ तो तुम अपने बन्धन तोड़ निकल जाओगे।  
कोई भी दर या दीवार तुम्हें रोक नहीं सकेगी।”

मध्य एशिया का जलालुद्दीन रूमी, सन्त फ्रांसिस का सम-  
सामयिक था, जिनकी मृत्यु की सातसोवी वर्ष-गांठ, इटली में और  
दूसरे देशों में करीब २ उसी समय मनायी जायगी जब कि यह लेख  
प्रकाशित होगा। ईश्वर की करुणा और दया का अन्त नहीं है।  
उसकी दृष्टि में न कहीं पूर्व न कहीं पश्चिम, बल्कि सभी जगह  
मनुष्य-जाति का एक ही परिवार है, जिसमें हम सभी कोई हैं  
और हम सभी किसी को अपनी रोजाना रोजी मिलनी है। ईश्वर  
की खोज में मेरा हृदय रो रहा था, ठीक उसी समय, मेरे  
दैनिक भाग के रूप में यह सन्देश मुझे मिला। इसके अमूल्य  
भाव को अपने साथ मैं अपनी मुसाफिरी में लिये जा रहा हूँ।

हाल में मुझे कितने एक मित्रों ने २० अफ्रीका जाने को मना  
किया है। वे सब बड़ी बात कहते हैं जो शुरू में ही सही मालूम होती  
है कि तब तक २० अफ्रीका की यात्राएं बिल्कुल बेकार हैं, जब तक  
गली और कूचों में, रेलगाड़ियों में, हरदम हर प्रकार के सामाजिक  
व्यवहार में, हिन्दुस्तानियों को नीचा और प्रजा जाति का समझा  
जाता है। कड़वे और गूढ़ अनुभव से ये सब बातें मैं बखूबी  
जानता हूँ। तभी, यद्यपि एशियाटिक बिल वापिस नहीं लिया  
गया है, सिफे कुछ दिनों के लिए स्थगित किया गया है, मुझे  
आशा और विश्वास है, क्योंकि वहाँ भी भगवान् का ही राज्य  
है। वहाँ भी मनुष्यों के हृदयों में उसीकी ज्योति जगती है, और  
वह वहाँ भी अंग्रेजों और उच्च लोगों के हृदयों में प्रेम की  
आग को उसी प्रकार सुलगाता है जिस प्रकार हम लोगों के हृदयों  
में। निश्चय ही मुझे वहाँ, मेरा मालिक और बादशाह, मेरे  
दोस्त के रूप में मिलेगा —

“उसने पूछा — तुझे यहाँ बुलाया किसने ?

मैं बोला — तेरे जलसे की शुहरत ने।

मुझसे अब और कुछ न पूछो। अगर उसकी ओर बातें मैं तुम्हें  
बतलाऊँ तो तुम अपनी जजीर तोड़ बालोगे। किसी दर या दीवार  
के रोके तुम रुक न सकोगे।” (यं० इ०) सी० एफ० एण्ड्रयूज

### भूल संशोधन

२३ वीं सितम्बर के ‘नवजीवन’ में “सत्याग्रह” शीर्षक  
लेख में मैंने यह लिखा था कि वह पत्र जिसमें से मैंने उद्धरण  
दिये थे, मेरे पास एक अमेरिका-निवासी मित्र ने भेजा  
है। यह भूल थी। उसे मेरे पास भेजने वाले एक हिन्दुस्तानी  
ही हैं और वे आजकल हिन्दुस्तान में ही रहते हैं। उन्होंने  
मेरा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि उस समाचार-पत्र  
को मेरे पास भेजने वाले वे हैं न कि अमेरिका-निवासी मित्र।  
हां, उस पत्र को उनके पास उनके एक अमेरिका-निवासी मित्र  
ने भेजा था। मुझे अपनी इस अनजान भूल के लिए खेद है।  
मैंने उस समाचार-पत्र को ‘यंग इंडिया’ के कागजात में रख  
दिया था और यह भूल गया था कि उसके प्रेषक एक हिन्दुस्तानी  
मो० क० गांधी



## शाकाहार

पत्र-लेखक का जन्म एक ऐसे कुटुम्ब में हुआ है जहाँ मांसाहार खूब चलता है। मांस खाने के लिए माता-पिता के दबाव को सह लेने में वे अब तक सफल रहे हैं। किन्तु अब उनका कहना है कि—“एक पुस्तक में स्वामी विवेकानंद का मत इस विषय पर पढ़ कर मेरा विश्वास ढिग रहा है। स्वामी जी की सम्मति में अपनी इस वर्तमान स्थिति में हिन्दुस्तानियों के लिए मांसाहार परमावश्यक है और अपने मित्रों को वे स्वच्छन्दता से मांस खाने की सलाह देते हैं। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि—“अगर इस से उन्हें पाप भी लगे तो वह हमारे सिर गल दो। मैं उसे सह लूँगा।” मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया हूँ। मुझे समझ में नहीं आता कि मांस खाऊँ वा नहीं।”

दूसरे की प्रामाणिकता में इस प्रकार का अन्ध विश्वास, दिमाग की कमजोरी का चिह्न है। पत्र-लेखक को अगर इतना दृढ़ विश्वास है कि मांस खाना अनुचित है तो फिर सारे संसार की राय उसके विरुद्ध होने पर भी वे क्यों ढिगें? अपने विश्वास निश्चय करने में जलवाजी नहीं करनी चाहिए किन्तु एक बार निश्चय कर लेने के बाद, बड़ों से बड़ों के भी विरोध करने पर उसका समर्थन करना ही चाहिए।

स्वामी जी का लेख मैंने देखा नहीं है किन्तु मुझे भय है कि पत्र-लेखक ने उनका मत ठीक २ ही उतारा है। मेरी राय बखूबी जाहिर है। किसी भी देश में, किसी भी जलवायु में और किसी भी स्थिति में जिसमें मनुष्यों का रहना साधारणतः सम्भव होवे, मेरी समझ में हम लोगों के लिए मांसाहार आवश्यक नहीं है। मेरा विश्वास है कि हमारी नस्ल (मनुष्य-जाति) के लिए मांसाहार अनुपयुक्त है। अगर हम पशुओं से अपने को ऊँचा मानते हैं तो, फिर उनकी नकल करने में भूल करते हैं। यह बात अनुभव-सिद्ध है कि जिन्हें आत्म-संयम इष्ट हो, उनके लिए मांसाहार अनुपयुक्त है।

चरित्र-गठन और आत्म-संयम के लिए भोजन के महत्व का अनुमान करने में अति करना भी भूल है। इस बात को भूलना नहीं होगा कि इसके लिए भोजन एक मुख्य वस्तु है। मगर जिस प्रकार भोजन में किसी प्रकार का संयम न रखना और मनमाना खाना-पीना अनुचित है उसी प्रकार सभी धर्म-कर्म का सार भोजन में ही मान बैठना भी, जैसा कि प्रायः ही हिन्दुस्तान में हुआ करता है, गलत है। हिन्दू-धर्म के अमूल्य उपदेशों में शाकाहार भी एक है। इसे हलके मन से छोड़ना नहीं होगा। इसलिए इस भूल का संशोधन करना परमावश्यक है कि शाकाहार के कारण, दिमाग वा देह में हम कमजोर हो गये हैं या कर्मशीलता में आलसी या निराग्रही बन गये हैं। हिन्दू धर्म के बड़े से बड़े सुधारक अपने अपने जमाने के सब से बड़े कर्मठ पुरुष हुए हैं। जैसे शङ्कर या दयानन्द के जमाने का कौन पुरुष उनसे अधिक कर्मशीलता दिखा सका था।

लेकिन पत्र-लेखक भाई को मेरी बात को प्रमाणवाक्य नहीं मान लेना चाहिए। आहार कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका निश्चय धर्म को करना पड़े। इसका फैसला सभी किसी को अपने लिए आप ही कर लेना चाहिए। खास कर पश्चिम के देशों में, शाकाहार पर एक साहित्य ही तैयार हो गया है। उसे पढ़ने से हर एक सत्य-शोधक को लाभ ही होगा। कई एक प्रसिद्ध आकट्यों का इस साहित्य के तैयार करने में हाथ है। यहाँ हिन्दुस्तान में शाकाहार के लिए हमें उत्तेजन देने की कोई

आवश्यकता नहीं पड़ी है। यहाँ तो इसे सर्वोत्तम और आदर्श ही अब तक माना जाता रहा है। खैर, इन भाई के समान, दूसरे लोग भी जिनका मन इस विषय में डाँवाडोल होवे, पत्र के देशों में इस बढ़ते हुए आन्दोलन के साहित्य का मनन सकते हैं।

(यं० इ००)

मोहनदास करमचंद गांधी

## कातनेवालों की कठिनाइयाँ

एक कातनेवाले याज्ञिक लिखते हैं:—

“अगर हर एक कातनेवाले को उसके सूत की तुल्य विषय में सूचना मिला करे तो सूत में बहुत सुधार हो सकेगा। सूत की ऐठन के विषय में जो आँकड़े छपते हैं वे तो मेरी समझ में शायद आश्रम के ही कातनेवालों के हैं। मसलन् मेरा मिनती से तो १५ अंक का होता है, किन्तु परीक्षक की दृष्टि यह सूत नापास ठहरता है, यानी बुनने लायक नहीं है किन्तु मुझे इसकी खबर क्योंकि होगी कि मेरा सूत बहुत ऐंठा हुआ है इसमें ऐंठन की ही कमी है, या समान रूप से सब जगह ऐंठन नहीं पड़ी है? मैंने तकली पर सूत काता और फिर बारदोली नये, एकफुट लम्बे अटेन (परेता) पर उतारा। अब पानी का छींटा देने में, उसके एक एक तार न भीजें तो क्या करूँ? इन मुश्किलों का हल भी मैं किस की मार्फत कराऊँ इसके लिए हर एक कातनेवाले से, पत्र-व्यवहार द्वारा चर्चा-संघ स्थापित करे या अपने किसी मुखपत्र में इसकी चर्चा-क्रिया करे, तो मेरी समझ में शायद अच्छा होगा। मैं चाहता हूँ आगे कभी ‘नवजीवन’ में जब सूत के विषय में कुछ लिखा जाय तो इस की भी चर्चा की जाय।”

यह सवाल वाजिव है। चर्चा-संघ को खास अलग मासिक पत्र निकालने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु ‘नवजीवन’ और ‘यंग इंडिया’ के द्वारा, इन भाई की बतलायी हुई मुश्किल का उपाय हो सकता है। जिस किसी को सूत कातने में कोई मुश्किल लगती हो या किसी को कोई भी प्रश्न पूछना हो, अवश्य पत्र लिखें और उसका उत्तर ‘नवजीवन’ में दिया जायगा। दुःख तो यह है कि वे तकलीफ सह लेते हैं लेकिन लिखते नहीं। इसके कई कारण होते हैं। कभी तो आलस्य, कभी वेदरकारी या कभी इस बात की चिन्ता कि इससे मेरे ऊपर बोझ पड़ेगा। यज्ञार्थ कातने वाले को न तो आलस्य और वेदरकारी शोभती है। मेरे ऊपर तरस खाने का तो अर्थ है सुख पर और इस प्रवृत्ति पर अन्याय करना। जिस प्रश्न का हल नहीं कर सकता हूँ उसका हल दूसरों से कराने का प्रबन्ध नहीं ही हो सकता है। इसलिए जिस किसी को कोई मुश्किल हो वे निःसंकोच लिखें। बस, सिर्फ एक शर्त याद रखें। कागज स्याही से अच्छे ढरूप में लिखें।

जो कहना हो बहुत संक्षेप में ही लिखें, दलील इत्यादि लिखें। पोस्ट कार्ड या लिफाफे के ऊपर, ‘कताई के विषय में लिख दें तो हमें बड़ा सुभीता हो।’

अब ऊपर के पत्र में के एक सवाल का तो हम यहीं हल लेवें। छींटा मारने का अर्थ है हर एक तार को भिजा देना कस यानी मजबूती बढ़ाने के लिए यह क्रिया आवश्यक है इससे २० फी सदी तक मजबूती बढ़ते देखी गयी है। इसलिए पानी का छींटा दिये बिना, परेते पर सूत उतारना नहीं चाहिए इसके लिए सहज से सहज उपाय है, परेते को पानी में ५ मिनटों तक डुबा रखना और फिर हाथ से सभी सूत को पानी का



७ अक्टूबर, १९२६

और आदर से कराना ऐसा करने से हर एक तार के समान, धने के बड़े अगर वह केवल लकड़ी का ही हो तो बहुत दिनों ल होवे, पक चलाता है। सूत की डोरी हमेशा पानी में डुबाते रहने से का मनन होती है और सब जाती है। सूत को डुबाने के बाद उसे नही उतार कर १२ घन्टे चड़ाये ही रखने से हर एक तार नही उतार कर जाता है। डुबाते समय सूत जितना फैला सके सो पानी प्रवेश कर जाता है। डुबाने के बाद उसपर हाथ डुबा हो, उतना ही अच्छा है। डुबाने के बाद उसपर हाथ फेरने से वह जल्दी भीग जाता है।

मोहनदास करमचंद गांधी (नवजीवन)

तृतीकोरिन से  
श्रियुत के. नल्ल जिवन पिल्ले लिखते हैं:  
“ हम लोगों ने स्वदेश बात्यम् संघम् नाम का एक संघ  
खोला था। कोई दो साल तक संघ में हर शुक्रवार को भजन  
इत्यादि होते थे, या ऐसे ही कुछ काम किये जाते थे। अब,  
इस शहर की जनता से कुछ धन चन्दे में जमा किया गया  
जिस से संघ को स्थायी रूप मिला है। इसके कोई २० सदस्य  
हैं और उनमें बहुत लोग कातना जानते हैं। हमारे संघ में कोई  
२० वर्षें हैं। कुछ सदस्य अभी भी कातने का अभ्यास कर ही  
रहे हैं। हम लोग कुछ कातनेवालों से पैसे दे कर भी फतवाते  
हैं। इस संघ के सदस्यों का काता हुआ सूत १५ से ३० अंक तक  
का होता है। संघ का तैयार किया हुआ सभी सूत हमने पास  
के गांव में बुनने को दे दिया था। करीब ६० तौलियां बुनी  
गयीं। वे सभी की सभी, बहुत जल्द शहर में ही बिक गयीं।  
ऐसी तौलियों की मांग बहुत है। उस मांग को पूरी करने की  
कोशिश हम कर रहे हैं। संघ दिन पर दिन उन्नत होता चला  
जाता है। आप से- हम प्रार्थना करते हैं कि आप संघ को  
शुभाशीर्वाद दें। ”

अगर सदस्यगण अपने कर्तव्य का पालन न करें तो मेरे  
शुभाशीर्वाद से स्वदेश बाल्यम् संघम् को कुछ लाभ नहीं पहुँचेगा।  
पत्र की भाषा की अनिश्चितता से घबराहट होती है। किसी छोटी  
समिति के विषय में कुछ कहने में "करीब २" के क्या मानी हैं ?  
"अधिकांश कातते हैं" लिखने के बदले, ये भाई लिख सकते  
थे कि कितने आदमी कातते हैं, रोज वे कितने समय तक  
कातते हैं और किस अंक का कितना सूत तैयार होता है।  
"कोई २० चखें" क्यों लिखा ? "ठीक २ इतने चखें" क्यों  
नहीं लिखा ? "कुछ मजदूरी पर कातने वालियों" के बदले "इतनी  
कातने वालियाँ" क्यों नहीं लिखा ? कितनी मजदूरी दी गयी, यह  
क्यों नहीं लिखा ? क्या वे गरीब आदमी हैं ? "करीब ६०  
तौलियाँ" का क्या मतलब ? ६० तो एक गोल संख्या है।  
किसी व्यवहारवक्ष संस्था को व्यावहारिक खर्चों ही घेनी चाहिए।  
जो लोग खदर का काम करना चाहते हैं यानी भूखों और  
रस्मों की सेवा, उन्हें व्यवहार-कुशल बनना ही पड़ेगा। पूरे २  
२० आदमियों, या १३ आदमियों का भी संघ, खदर प्रचार के  
लिए बहुत अच्छा केन्द्र गिना जायगा, बशर्ते कि वे सभी २०  
या १३ आदमी, हेमान्दार, स्वार्थत्यागी, और मिहनती कार्यकर्ता  
हों। खदर का काम शौकों पर नहीं किया जा सकता है। यह  
काम उन भारम्भशरी के लिए नहीं है जो दो दिन चार दिन,  
या कुछ महीनों तक ही सही खूब खटेंगे किन्तु उसके बाद  
बिल्कुल बैठ जावेंगे। दृढ़ निश्चय और कठिन आग्रह का होना,  
यह महान् राष्ट्रीय काम में सफलता पाने के लिए परमावश्यक है।  
(पं. ६०)

को पानी का (यं० ६०) काम में सफलता पाने के लिए परमावश्यक है  
मो० क० गांधी

मो० क० गांधी

सन्तोष चाहिए

इस लेख में वाक्-गुहा की बहार देखिये । सोने के झरने में सोनेवाले धनिकों के ऊपर दो एक आक्षेपों को दृष्टा देने के अलावा, मैंने इसका और कहीं भी संक्षेप नहीं किया है:

“आप का १९ सितम्बर का लेख “विद्यार्थियों का कर्तव्य” मैंने पढ़ा है। अनिच्छुकों का नेतृत्व करने से आप इनकार करते हैं। आप तो छूट ही गये हैं किन्तु उन लोगों का क्या होगा जो देश के लिए कातते और मरते पचते हैं ? अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम ऐश्वर्य को अगर छोड़ दिया जाए, और ये तो मन के भाव हैं, कुछ काम तो हैं नहीं, तो कताई के सिवाय और कोई काम नहीं बचता है। मैं बराबर चर्खे में लगा रहा। खादी के काम को आप ज्यों ज्यों नियमित बनाते गये, मेरा भी कातना नियमित होता गया। मेरे नाम के आगे आप एक भी बकिऔता नहीं पाइयेगा। सूत-मताधिकार को मैं रामराज्य का सूचक समझता हूँ जिसके लिए लेनिन ने क्या न किया। आगे आनेवाले ५ वर्षों की मीयाद की याद से सूत कातना सुखदायक माहम होने लगता है।

“ इस बीच मैं आप की सेना को अकाल पीड़ितों के समान आश्रय देता हूँ। मैं किसी प्रकार आलस से जीवन बिताना पड़ता है। वह इससे घबराती है।

“ चर्खे के लिए वायुमण्डल तैयार करने के लिए कातने में ही सारा समय नहीं आता है। यह तो सही बात है कि सहायक उद्योग के रूप में यह अच्छी चीज है। शरीर के लिए काम और पेट के लिए रोटियाँ — ये जैसे और लोगों के स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं, अपरिवर्तनवादियों के लिए भी जैसे ही मगर सभी अराष्ट्रीय संस्थाओं को अस्पृश्य कहा जाता है, तब ये गरीब अपना पेट क्योंकर भरें? मेरे एक मित्र हैं। ये अपनी कौड़ी २ तक का आधा हिस्सा मुझे देते हैं। लेकिन मैं परजीवी तो हमेशा के लिए बन नहीं सकता। इस प्रकार अनुद्दिष्ट रूप से चलते हुए कभी तो मैं कपड़ा बुनना सीखता था और कभी जूते बनाना। अन्त में एक तालुका बोर्ड स्कूल में प्रधानाध्यापक की जगह मिलने पर मैं वहीं जा बैठा हूँ और इसी विचार से सन्तोष करता हूँ कि इस प्रकार काम करते हुए किसी दिन कबाडखाने में फँके हुए चर्खे की पुनर्प्रतिष्ठा कर सकूँगा। लेकिन इसके लिए समय दरकार है। १६ दिनों के प्रयोग में तकली की कताई खूब चल रही है। अगर्ने मैं उसी चक्की को चलाता हूँ जो धीरे २ मगर खूब चलती है लेकिन मेरे मन में शान्ति नहीं है। समता के आप प्रधान पुजारी हैं। मुझे निश्चय है कि आप की स्वराज की योजना में लोगों को काम और भोजन बिना सड़ना नहीं पड़ेगा। आप की शर्तों पर हम काम करते हैं और इसलिए हमें आप से सन्तोष देने को कहने का अधिकार है। ‘यंग इंडिया’ के पृष्ठों में इसके उत्तर की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ क्योंकि जीवन का भार क्षण क्षण में बढ़ता चला जाता है। ”

ऐसा मालूम होता है कि पत्र-लेखक को विनोद का अच्छा आन है और इसलिए मेरी ओर से संतोष की उन्हें कुछ अधिक जरूरत नहीं है। लेकिन उन दूसरे अपरिवर्तनवादियों की जानकारी के लिए, जो इन्हीं की ही स्थिति में हों, किन्तु इनके से वास्तविकता का जिन्हें सूक्ष्मज्ञान न हो, मैं यह कह सकता हूँ कि अगर मैं किसी तालुका बोर्ड में शिक्षक बनता तो, उसी स्थान पर अडे रह कर खदर का संदेश सुनाता, और उस पद की तभी छोड़ता जब मुझे कोई ऐसा काम मिल जाता जो अपरिवर्तनवादियों के लिए अधिक सुषापिक हो और वह भी उसी हालत में जब कि



मेरे नौकरी छोड़ने से मेरे मालिकों को कोई अशुविधा न होती। कोई भी ईमानदार कार्यकर्ता अपने मालिक को न तो मंझधार में ही छोड़ कर नया काम जा पकड़ेगा और न अपनी नौकरी को केवल एक बहाना भर ही समझेगा। खैर पत्र-लेखक, बुनना सीखने का अपना पाठ्यक्रम समाप्त कर ले सकते थे। किसी भी अच्छे नकशे बुननेवाले को १) रोज की आमदनी होती ही है। अगर वे होशियार जूता बनानेवाले भी हो जाते तभी उतना पैसा कर ले सकते थे। एक बार जिसने चर्खा आन्दोलन का भाव हृदयंगम कर लिया है, उसे तो फिर कभी त्रेकार बनने की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए। पत्र-लेखक ने क्या चर्खाशास्त्र में विद्वता प्राप्त कर ली है? क्या वे ओटना और बुनना जानते हैं? अगर जानते हैं तो धुनाई और ओटाई से वे ॥) से १) रोज तक कमा सकते हैं। मगर हाल में ही खादी-सेवक-संघ बनने जा रहा है। उस सेवा के लिए लियाकत पैदा करते समय भी, जो गरीब होने पर भी काम करने के इच्छुक हैं, अपनी गुजर कर सकते हैं। उन ईमानदार आदमियों के लिए इसमें उन्नति का अपार अवकाश है, जो देह से काम करने से घबराते नहीं और जिन्हें साधारण गुजर खर्च से ही सन्तोष है और धन या नाम की अमिलापा नहीं है।

(यं० इ०)

मोहनदास कामचंद गांधी

### पशुधन

उसके कारण और उपाय  
(११)

अन्तिम किन्तु सब से अधिक महत्व की बात यह विचार करने की है कि ऊपर की बतलायी हुई दुर्दशा से बचने का क्या उपाय है?

आवश्यक से परमावश्यक बात यह है कि, इस स्थिति का मुकाबिला जिसमें हम कर सकें, इसलिए हमारी गोशालाओं, जीव-दया मण्डलों इत्यादि का समयोपयुक्त पुनः संगठन कराया जाय। १०, ५ दोरों को पिजरापोल में दे देने या दो चार रोमी पशुओं की चिकित्सा कर के ही सन्तोष कर लेने से काम नहीं चलेगा। इसका कारण यह है कि आज हम जितने नाकाम दोरों को निकाल बाहर करते हैं, उन सभी को केवल सर्व-साधारण के दान पर ही पालना आज संभव नहीं है। अभी तो हमें धर्मादा संस्थाओं की आमदनी को बढ़ाने के दूसरे जरिये ढूंढने पड़ेंगे।

पहले तो अपनी जवानी के समय, पशु जो कुछ नका देवे, उसे इकट्ठा करना और उसीके बुढापे के लिए संवय कर रखना चाहिए। इस नफे का उस पशु के बुढापे में, बीमारी में और आकस्मिक प्रसंगों में उपयोग किया जाना चाहिए।

इसका अर्थ यह है कि हर एक गोशाला या पीजरापोल, जिस जगह पर वह होवे, वहाँ के सभी लोगों के लिए आवश्यकता-नुसार पूरा धी-दूध छुटाने का काम अपने सिर लेवे। अर्थात् आबादी के अनुसार से थोड़े या बहुत दुधार पशु गोशाला में रखे जायें। जितने पशु लगते हों, यानी दूध दे रहे हों, उन्हें तो शहर के निकट रखना चाहिए और बिमुकी या अशक दोर को किसी ऐसे गाँव में या स्थान पर रखना चाहिए जहाँ उसे पालने का खर्च करीब २ नहीं के ही बराबर पड़े।

पशु की औलाद के ऊपर ध्यान न देना भी इस खराबी का एक कारण है। इसलिए जिस गोशाला में अच्छा सॉड हो, उसे आसपास के लोगो को भी उसका उपयोग करने देना चाहिए। अमेरिका के उत्तम पशु को साल भर में २० से ३० हजार

रतल (५० तोला) दूध होता है और हमारे पशुओं को ५ से ७ हजार रतल ही। अगर पशुओं की औलाद हम ध्यान रखें, और उनकी सेवा सँभाल भी ठीक २ हो तो दूध की यह उपज, सहज में ही दुगनी, तिगनी बढ़ सकती है। दागी सॉड (धर्म सॉड) प्रायः ही अच्छे नहीं गोशालाएँ उन्हें भटकते देने के बदले आप के लेवें तो हो। जिस प्रकार ब्राह्मण को देने के लिए सड़ी सुपारी, विवाहन बाँटने को घुरी मगर सस्ती चीजें लायी जाती हैं, प्रकार जैसे तैसे किसी तरह के बछड़े को छोड़ कर कोप कमाना चाहते हैं। उन्हें समझाना चाहिए कि इसमें गुण किन्तु पाप होता है। वृषोत्सर्ग तो तब यही कहलावेगा मनुष्य जातिवन्त और अच्छा बछड़ा पसन्द करे और छोड़ते समय पंचायत में, उसके मरणपर्यन्त पालन-लायक भी सौंप देवे।

दूसरे, गोशाला या पीजरापोल में जो पशु मर जाय, पूरा उपयोग किया जाय। इस प्रकार हर एक मरे हुए पशु उपयोग से जो पैसा मिले उससे एक निम्न पशु को खरीद से बचाया जावे। दूसरे लोगों के जो पशु मरें, उन्हें लेने की कोशिश गोशाला को करनी चाहिए। हर एक में अगर कुशल चर्माकार रहें तो चर्मा की सँभाल हो किसी ऐसे मध्यस्थ चर्मालय में ही चर्मा कमाया जाय जूते बगैरह बनाये जायें, जिससे कल किये गये जानवर के का जूता पहन कर कल को उत्तेजना देने के घोर पाप बचें। इस प्रकार सींग और हाड के गृह-उद्योग भी चमारों में दाखिल करना होगा। कपड़ों की मिलों को दी जाय जिसमें वे कसाईखाने से चर्मा न खरीदें।

इस प्रकार अगर हमारी जीव-दया संस्थाओं और पीजरापोल का पुनरुद्धार न होवे और उनका कार्यक्रम समयोपयुक्त तो, जीव-दया या गोरक्षा, आकाश-कुसुम के समान हैं। (नवजीवन)

### अभिनन्दनीय

पाठकोपर सार्वजनिक जीव दया मंडल ने बंबई में दजें के ५५० दुधार पशुओं को ले कर दूध बेचने का धंधा करने का निश्चय किया है। इस प्रकार दूसरे जीव-दया मंडल रास्ता छुटाने के लिए वह साधुवाद का पात्र है। जैसा पहले दिखा आये हैं, बंबई और कलकत्ते, ऐसे शहरों में अच्छे से अच्छे पशुओं का बहुत बड़े पैमाने पर नाश किया रहा है। इसका सीधा कारण यह है कि वहाँ दूध का केवल उन्हीं लोगों के हाथ में है जो या तो बहुत फलदाई हैं या जो कम से कम समय में धनी हो जाना चाहते हैं लोग अपने पशुओं से अच्छा व्यवहार कर ही नहीं सकते यह होता है कि विमुक्त जाने के बाद, सिवाय कसाईखाने के, पशु और किसी काम का रह नहीं जाता। उनके बम्बई में आने पर तुरत ही मार डाले जाते हैं। दया मंडल हाथ में इस लज्जाजनक बात का स्पष्ट उपाय है, स्वयं दूध का शुरु करना और उसमें अधिक दया-धर्म दाखिल करना उमेद करना चाहिए कि, पशुओं की अच्छी नस्लों का चुनाव के, इस मंडलवाले धीरे २ अपनी पायों का दूध बढ़ा लेंगे ईमानदारी, होशियारी और किसानत शारी से आपना प्रबन्ध के यह दिखला देंगे कि उनकी जवानी की कमाई पर ही की परबर्तिश बुढापे में भी जी जा सकती है।



जीवदया ?

वार्षिक मूल्य ४)  
 कः मास का " २)  
 एक प्रति का " १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

अंक ९ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
 स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आश्विन सुदि ८, संवत् १९८३  
 गुरुवार, १४ अक्टूबर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
 सारंगपुर सरकीरा की बाड़ी

## शब्दों का अत्याचार

१० सितम्बर के 'हिन्दी-नवजीवन' में प्रकाशित, मेरे लेख "प्रार्थना में विश्वास नहीं," पर एक पत्र-लेखक लिखते हैं: "उपयुक्त शीर्षक के अपने लेख में न तो उस लड़के के प्रति और एक महान् विचारक के रूप में न अपने ही प्रति आप न्याय करते हैं। यह सच है कि उसके पत्र के सभी शब्द बहुत मुनासिब नहीं हैं, किन्तु उसके विचारों की स्पष्टता के विषय में तो कोई संदेह हो ही नहीं सकता। 'लड़का' शब्द का जो अर्थ आज समझा जाता है, उसके अनुसार यह स्पष्ट मालूम होता है कि वह लड़का नहीं है। मुझे यह सुन कर बहुत आश्चर्य होगा कि वह १० वर्ष से कम उम्र का है। अगर वह कमसिन भी हो भी उसका इतना मानसिक विकास हो चुका है कि उसे यह कह कर चुप नहीं कराया जा सकता कि — "बच्चों को इस नहीं करनी चाहिए"। पत्र-लेखक बुद्धि-वादी है और आप भ्रष्टा-वादी। ये दोनों भेद युग-प्राचीन हैं और इनका पड़ा भी उतना ही पुराना है। एक की मनोवृत्ति है — "मुझे शक्य कर दो और मैं विश्वास करने लगूंगा।" दूसरे की मनोवृत्ति है — "पहले विश्वास करो तो पीछे से आप ही कायल जाओगे।" पहला अगर बुद्धि को प्रमाण मानता है तो दूसरा असाध्य को — श्रद्धालु पुरुषों को। मालूम होता है कि आप को समझ में कम उम्र लोगों की नास्तिकता अत्यन्त-स्थायी होती है और जल्दी या देरी से, कभी न कभी विश्वास जरूर आ जाता ही है। आपके समर्थन में स्वामी विवेकानन्द का सिद्ध उदाहरण भी मिलता है। इसलिए आप लड़के को — "बच्चों को विश्वास न करने चाहिए" — प्रार्थना की एक घूंट जबरन पिलाना चाहते हैं। इसके लिए आप दो प्रकार के कारण बतलते हैं। पहला — अपनी पुच्छता, अशक्तता और ईश्वर कहे जाने वाले शक्ति करने के लिए प्रार्थना करना। यानी प्रार्थना एक अशक्तता है, इसलिए। दूसरा — जिन्हें शान्ति या संतोष नहीं मिलता, उन्हें शान्ति और संतोष देने में यह उपयोगी है। पहले मैं, दूसरे तर्क का ही खण्डन करूंगा। यहां मैं आपको, कमजोर आदमी के लिए सहारा के रूप में माना

गया है। जीवन-संग्राम की जाँचें, इतनी कड़ी हैं और मनुष्यों की बुद्धि का नाश कर देने की उनमें उतनी अधिक ताकत है कि बहुत लोगों को प्रार्थना और विश्वास की जरूरत पड़ सकती है। उन्हें इसका अधिकार है, और यह उन्हें मुबारक हो। लेकिन प्रत्येक युग में ऐसे कुछ सच्चे बुद्धिवादी थे, और हमेशा हैं — उनकी संख्या बेशक बहुत कम रही है — जिन्हें प्रार्थना या विश्वास की जरूरत का कभी अनुभव नहीं हुआ। इसके अलावा वैसे लोग भी तो हैं जो धर्म के प्रति लोहा भले ही न लें मगर, उससे उदासीन अवश्य हैं।

"चूँके सब किसी को अन्त में प्रार्थना की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती है, और जिन्हें इसकी जरूरत मालूम होती उन्हें इसे शुरू करने का पूरा अधिकार है और सच पूछो तो जरूरत पड़ने पर वे करते भी हैं, इसलिए उपयोगिता की दृष्टि से तो प्रार्थना में बलप्रयोग का समर्थन किया ही नहीं जा सकता। शारीरिक और मानसिक विकासके लिए अनिवार्य शारीरिक व्यायाम और शिक्षण आवश्यक हो सकते हैं किन्तु नैतिक उन्नति के लिए प्रार्थना और ईश्वर में विश्वास भी वैसे ही आवश्यक नहीं है। संसार के कुछ सब से बड़े नास्तिक सब से अधिक नीतिमान हुए हैं। मैं समझता हूं कि इनके लिए आप, मनुष्य की अपनी नम्रता स्वीकार करने के रूप में, प्रार्थना की सिफारिश करेंगे। यह आप का पड़ा ही तर्क है। इस नम्रता का नाम बहुत लिया जा चुका है। ज्ञान का सागर इतना बड़ा है कि बड़े से बड़े वैज्ञानिकों को भी अपना छोटापन स्वीकार करना पड़ा है। किन्तु सत्य के शोध में उन्होंने बहुत शौर्य दिखलाया है। प्रकृति के ऊपर जैसी बड़ी २ विजयें उन्होंने पायीं वैसे ही, बड़ा विश्वास भी उनको अपनी शक्ति में था। अगर ऐसी बात न होती तो आज तक हम या तो खाली उंगलियों से जमीन में कन्दमूल नोचते फिरते होते, या सच पूछो तो शायद दुनिया से हमारा अस्तित्व ही गायब हो गया रहता।

"हिम-युग में, जब शीत से लोग मर रहे थे, जिस ने पहले पहल आग का पता लगाया होगा, उस से आप की भेगी के लोगों ने व्यङ्ग्य से कहा होगा कि — "तुम्हारी योजनाओं से क्या लाभ है? ईश्वर की शक्ति और कोप के सामने उनकी क्या हकीकत?" उसके बाद से नम्र पुरुषों के लिए इस जीवन के बाद



स्वर्ग का राज्य दिया गया। इसका तो हमें पता नहीं कि वे उसे सबकुछ पावेंगे या नहीं, किन्तु इस संसार में तो उनके हिस्से गुलामी ही पड़ी है। अब प्रकृत विषय की ओर हम फिर। आप का दावा कि — “विश्वास करो। भ्रष्टा आने आप ही आ जायगी” — बिल्कुल सही है, भयंकर रूप से सही है। इस दुनिया की बहुत कुछ धर्मान्विता की जड़ इसी प्रकार की शिक्षा में मिली है। अगर आप कुछ लोगों को काफी बचपन में ही पकड़ पावें, उन्हें एक ही बात काफी दिनों तक बार बार बतलाते रहें तो आप उनका विश्वास किसी भी विषय में जमा सकते हैं। इसी प्रकार, आप का पके धर्मान्वित हिन्दू और मुसलमान तैयार किये जाते हैं। दोनों ही सम्प्रदायों में ऐसे थोड़े आदमी जरूर होंगे जो अपने ऊपर लादे गये विश्वास के जामे बाहर निकल पड़ेंगे। आपको क्या इसकी खबर है कि अगर हिन्दू और मुसलमान, अपने धर्म-शास्त्रों को परिपक्व बुद्धि होने के पहिले न पढ़ें तो वे उनके माने हुए सिद्धान्तों के ऐसे अन्ध विश्वासी न होंगे और उनके लिए झगड़ना छोड़ देंगे। हिन्दू-मुसलमान दोनों की दवा है लड़कों की शिक्षा में धर्म को दूर रखना किन्तु आप इसे पसंद नहीं करेंगे। आप की प्रकृति ही ऐसी नहीं है।

“आपने इस देश में, जहाँ साधारणतः लोग बहुत डरते हैं, साहस, कार्यशीलता और त्याग का अपूर्व उदाहरण दिखलाया है। इसके लिए हम लोगों के ऊपर आप का बहुत बड़ा ऋण है। किन्तु जब आंग के कामों की अंतिम आलोचना होने लगेगी तब कहना ही पड़ेगा कि आप के प्रभाव से, इस देश में मानसिक उन्नति को बहुत बड़ा आघात पहुँचा है।”

अगर २० वर्ष के किशोर को लड़का नहीं कहा जा सके तो फिर मैं लड़का शब्द का ‘प्रचलित’ अर्थ ही नहीं जानता। बचपन में मैं तो, उम्र का खयाल किये बिना ही, स्कूल में पढ़नेवाले सभी किसी को लड़का या लड़की ही बूँगा। मार, उस सन्देहलु विद्यार्थी को हम लड़का कहें या स्थाना आदमी, मेरा तर्क तो जैसा का तेसा ही रहता है। विद्यार्थी, एक सैनिक जैसा होता है (अंग सैनिक की उम्र ४० साल की हो सकती है) जो नियम सम्बन्धी बातों के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता, अगर उसने उसे स्वीकार कर लिया है, और उसके अधीन रहना पसन्द किया है। अगर सिपाही को, किसी आज्ञा का पाठन करने या न करने का अधिकार, अपनी स्वेच्छा से प्राप्त हो तो, वह अपनी सेना में नहीं रखा जा सकता। उसी प्रकार कोई भी विद्यार्थी चाहे वह कितना ही स्थाना और बुद्धिमान क्यों न हो किन्तु एक बार किसी स्कूल में जमी आप दाखिल हो जाता है सभी उसके नियमों के विरुद्ध चलने का अधिकार खो बैठता है। यहाँ उस विद्यार्थी की बुद्धि का कोई अनादर या अवगणना नहीं करता। संयमन के नीचे स्वेच्छा से आना ही बुद्धि के लिए एक सहायता स्वरूप है। किन्तु मेरे पत्र-लेखक, शब्दों के अत्याचार का भारी जुभा, खुशी से अपने कंधे पर सहते हैं। काम करनेवाले के हर एक काम में जो उसे पसन्द न पड़े, उन्हें बलात्कार की गंव मिश्री है। मगर बलात्कार भी तो कई प्रकार का होता है। स्वेच्छा से स्वीकृत बलात्कार का नाम हम आत्म-संयम रखते हैं। उसे हम छाती से लगा लेते हैं और उसीके नीचे हमारा विकास होता है। किन्तु हमारी इच्छा के विरुद्ध जो बलात्कार हमारे ऊपर लादा जाता है और वह भी इस भीयत से कि हमारा अपमान किया जाय और मनुष्य या जो कहे कि लड़के की हैसियत से हमारे मनुष्यत्व का हारण किया जाय, वह दूसरा बलात्कार ऐसा होता है जिसका प्राणपन से त्याग करना

चाहिए। सामाजिक संयम साधारणतः लाभदायक ही होते हैं किन्तु उनका हम त्याग कर के आप हानि उठाते हैं। रंग कर चलने को आज्ञाओं का पालन करना नामर्दी और कायरता है। उस से भी बुरा है उन विचारों के समुद्र के आगे झुटना जो दिन रात हमें घेरे रहते हैं और हमें अपना गुलाम बनाने को तैयार रहते हैं।

किन्तु पत्र लेखक को अभी एक और शब्द है जो आने बंधन में बाँधे हुए है। यह महाशब्द है ‘बुद्धिवाद’। हाँ, मुझे इसकी पूरी मात्रा मिली थी। अनुभव ने मुझे इसका नम्र बना दिया है कि मैं बुद्धि के ठीक २ हरी को समझ सकूँ। जिस प्रकार, गलत स्थान पर रखे जाने से कोई वस्तु गंदी गिनी जाने लगती है, उसी प्रकार, बेमौके प्रयोग करने से बुद्धि को भी पागलपन का जाता है। जिसका जहाँ तक अधिकार है, अगर उसका प्रयोग हम वहीं तक करें तो सब कुछ ठीक रहेगा।

बुद्धिवाद के समर्थक पुरुष प्रसंशनीय होते हैं। किन्तु बुद्धिवाद को तब भयंकर राक्षस का नाम देना चाहिए जब वह सर्वज्ञता का दावा करने लगे। बुद्धि को ही सर्वज्ञ मानना, उतना ही बुरी मूर्तिपूजा है जितनी ईंट पत्थर को ही ईश्वर मान कर पूजा करना।

प्रार्थना की उपयोगिता को किसने तर्क से निकाल कर जता है? अभ्यास के बाद ही इसकी उपयोगिता का पता चलता है संसार की गवाही यही है। जिस समय कार्डिनल न्यूनेन गाथा था कि — “मेरे लिए एक पग ही काफी है” — उन्होंने बुद्धि का त्याग नहीं कर दिया था किन्तु प्रार्थना को उस जंवा स्थान दिया था। शङ्कराचार्य तो तर्कों के राजा थे संसार के साहित्य में शायद ही ऐसी कोई वस्तु हो जो शङ्कर तर्कवाद से आगे बढ़ सके। किन्तु उन्होंने पहला स्थान प्रार्थना और भक्ति को ही दिया था।

पत्र-लेखक ने क्षणिक और क्षोभक घटनाओं को ले साधारण नियम बनाने में जल्दी की है। इस संसार में स वस्तुओं का दुर्भाग्य होने लगता है। मनुष्य की सभी वस्तु के लिए यह नियम लागू मान्य होता है। इतिहास में कई बड़े २ अत्याचारों के लिए धर्म के झगड़े ही उत्तर-दायी हैं या धर्म का दोष नहीं है किन्तु मनुष्य के भीतर की दुर्दमनीय प्रकृति का है। मनुष्य के पूर्वज पशुओं का गुण उसमें अभी शेष है।

मैं एक भी ऐसे बुद्धिवादी को नहीं जानता हूँ जिसने एक भी काम केवल विश्वास के वशोभूत हो कर न किया बल्कि सभी कामों का तर्क के द्वारा निश्चय कर के किया किन्तु हम सब उन कगोड़ों आदमियों को जानते हैं, जो अनियमित जीवन इसी कारण बिता पाते हैं कि हम सब के बचने के लिए, छष्टिर्ता में उनका अटल विश्वास है। वह विश्वास एक प्रार्थना है। वह लड़का, जिसके पत्र के आधार पर अपना लेख लिखा था, उस बड़े मनुष्य समुदाय में एक है उसे और उसीके समान दूसरे सत्य-शोधकों को अपने पथ पर करने के लिए लिखा गया था। पत्र-लेखक के समान बुद्धि की शान्ति को छूटने के लिए नहीं।

मगर वे तो उस झुकाव से ही झगड़ते हैं जो शिक्षक गुरु-जन बालकों को बचपन में देना चाहते हैं। मगर कठिनाई (अगर कठिन है तो) बचपन की उस उम्र के लिए कि जब असर डाला जा सकता है बराबर ही बनी रहेगी। धर्मविहीन शिक्षा भी बच्चों के मन की शिक्षा का ही है। पत्र-लेखक यह स्वीकार करने की अलमत्ता है कि



हैं कि मन और शरीर को तात्कीम दी जा सकती है और रास्ता खुला जा सकता है। आत्मा के लिए, जो शरीर और मन को बनाती है, उन्हें कुछ पूर्वा नहीं है। शागद उसके अस्तित्व में ही उन्हें कुछ शक्ति है। मगर उनके अविश्वास से उनका कुछ काम नहीं सरेगा। वे अपने तर्कों के परिणाम से बच नहीं सकते। क्योंकि कोई विश्वासी सज्जन क्यों पत्र-लेखक के ही क्षेत्र पर बहस करें कि जैसे दूसरे लोग क्यों के मन और शरीर पर असर डालना चाहते हैं वैसे ही, आत्मा पर भी असर डालना जरूरी है। सचो धार्मिक भावना के उदय होते ही, धार्मिक शिक्षा के दोष गायब हो जावेंगे। धार्मिक शिक्षा को छोड़ देना वंसा ही है कि जैसे, किसी किसान ने यह न जान कर कि खेत का कैसे उपयोग करना चाहिए, उसमें खा पात उग जाने दिया हो।

आलोच्य विषय से, महान् आविष्कारों का वर्णन, जैसा कि लेखक ने किया है, विलकुल अलग है। उन आविष्कारों की उपयोगिता या चमत्कारिता में कोई नहीं सन्देह करता है। मैं नहीं करता। बुद्धि के समुचित उपयोग के लिए वे ही साधारणतः समुचित क्षेत्र थे। किन्तु प्राचीन लोगों ने प्रायः और भक्ति की मूल भित्ति को अपने जीवन से दूर नहीं कर दिया था। श्रद्धा और विश्वास के बिना जो काम किया जाता है, वह उस बनावटी फूस के समान होता है जिसमें सुरास न हो। मैं बुद्धि को दाराने की नहीं कहता किन्तु हमारे बीच जिस वस्तु ने बुद्धि को ही पवित्र बनाया है, उसे स्वीकार करने को कहता हूँ।

(यं० ६०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### पाडे के पक्ष में

हम अपने को ईश्वर की परमप्रिय सृष्टि समझते हैं और जब विदेशी लोग हमें दार्शनिक कह कर हमारा मृदु तिरस्कार करते हैं तो हम इसे बहुत खुशी से मानते हैं। आध्यात्मिकता का पांड रक्ते हुए भी पशुओं के प्रति कृपा और दया दिखलाने में हम बहुत पीछे हैं। सचची बात तो यह है कि पशुओं को पकड़ पालने और उनका दूध ले लेने और उन से काम लेने का अधिकार मनुष्यों को कभी था ही नहीं। और उत्तम गोरक्षा तब तक असंभव है जब तक मनुष्य केवल फलाहारी नहीं बन जाता है, दूध और अन्न खाना छोड़ न देता है, या कम से कम दूध खाना, क्योंकि शायद अन्न केवल खेत कोड़ कर ही, पशुओं को सहायता के बिना भी उत्पन्न किया जा सकेगा। लेकिन यह आदर्श तो बहुत दूर है, जिसकी प्राप्ति की आशा किसी भी युग में नहीं की जा सकती। इस बीच में हम केवल यही देखने की कोशिश कर सकते हैं कि जिन जानवरों को हमने पालतू बना लिया है, उनके साथ जितना अच्छा व्यवहार संभव हो किया जाय। जिस किसी के मन में दया का भाव हो उसे, अंग्रेजी भारत में भिन्न २ जाति के गोरुओं की कुल संख्या पढ़ कर विचार करने का बहुत मसाला मिलेगा। सन् १९२२-२३ के

शेक ये है:

सौंड

बैल

गाय

बछड़े

भैंसा

भैंस

पाडे

५७,७९,०००

४,३६,२९,०००

३७१,८८,०००

३,००,४०,०००

५४,१२,०००

१,३५,३९,०००

१,००,१५,०००

कुल १४,१२,२०,०००

पाठक को पढ़ने निगाह में (१) बैल, भोंद और गायों के बीच, (२) महिष (भेगा) और महिषों (भेग) के बीच, संख्या का बड़ा भारी फर्क नजर आ जायगा। नियमनुसार, बछड़े और बछड़ियां बराबर संख्या में ही पैदा होती हैं। इसलिए इस फर्क का अर्थ यह होता है कि भूतों या किसी दूरी तरह हमने १,००,००,००० से अधिक गायों और ८०,००,००० से अधिक महिषों को मार डाला है। इन अंकों में इन तुरत ही भारतवर्ष की महान् समस्या के सामने पहुंच जाते हैं।

अगर हम समुचित वाहन और अच्छा भोजन दे कर, गायों का दूध बड़ा सफ और साथ उसके दूध में मक्खन का भी अनुगत बड़ा सकें तो गायों की रक्षा हो सकेगी। महिष का प्रश्न इस से अधिक कठिन है। सचची बात तो यह है कि भैंसे को हमें पलतू बनाना ही नहीं चाहिए था क्योंकि जिस प्रकार गाय के बछड़े, यानो बछ के लिए हम काप हूँड सकते हैं, और वह तो गाय से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है, वैसे ही हम भैंस के पाडे यानो महिष के लिए उतने आसानो से काप नहीं निकाल सकते। बहुत ही नम देशों को छोड़ कर, खेती के काम में और कहीं भी महिष का उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सुस्त होता है, बहुत पानी चढ़ता है और गर्मी नहीं बरदाश्त कर सकता। महिष की इस अनुरागेता के कारण ही, देवों के आगे उसका बलिदान करना समुचित समझ गया था। अगर यह उपयोगी होता तो कभी भी इसे बलि नहीं चढ़ाया जाता। कहावत चली आती है कि भैंसों के बैल के कोई दांत नहीं गिनता क्योंकि उसके दांत की गिनती से कुछ आता जाता नहीं है। जैन साहित्य हमें बतलाता है कि महावीर स्वामी के समय में राजगृह में एक कंसाई था जो ५०० महिष रोज कटल करता था। गौडल के एक आधुनिक जैन साधु, श्री खोदाजी महाराज, अपने एक चाखे (धर्म नीतिग्रन्थ) में श्राविकाओं के प्रति कहते हैं:

“पाडी बाछडियोने दूध पीवरावो पावाने बाछडाने वारी।”

बछड़ियों और पाडियों को दूध पिलावो और बछड़ों और पाडों को भूखों मरने दो।

जरूरत तो इसी बात की है कि लोगों की वह रुचि ही बढ़ जाय, जिससे गाय के दूध की अपेक्षा भैंस के दूध को लोग अधिक पसन्द करते हैं। मगर जब तक वह परिवर्तन नहीं होता है तब तक, पाडा ही, भैंस के दूध के प्रेमियों की दया का सब से बड़ा अधिकारी है। पाडे को दूध देने के पहले कुत्तों, चिड़ियों और रोगी पशुओं इत्यादि को दूध देने का वे विचार भी न करें। रावण के विषय में कहा जाता है कि उसके लिए यमराज भैंसे पर पानी लाइ कर लाता था। किसी यात्रा के वर्णन में हेमचन्द्र लिखते हैं कि लोगों के पाने के लिए भैंसे पानी ढोते थे। उनको देख कर मालूम होता था कि मानों श्याम मेघ आकाश से उतरे आ रहे हों।

महाकाया महस्वन्ना महिषास्तोत्रादिभिः।

महीप्राप्ता इवमोदा जनानां चिच्छिदुस्तृषम्॥

पुष्पचरेत् १-१-७०॥

भैंसे के उपयोग के लिए, पानी ढोने का काम सब से अधिक उद्युक्त है। अगर कोई दूसरा भी काम होवे तो दया-शील सज्जन उसका पता लगावें।

(यं० ६०)

दे० बा०



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन सुदि ८, संवत् १९८१

## जीवदया ?

अहमदाबाद "जीवदया-प्रचारिणी महासभा" की ओर से मेरे पास एक पत्र आया है। उसका आवश्यक अंश मैं नीचे देता हूँ:

"... सेठ जी ने अपनी मिल में ६० कुत्तों को जो गोली मारवा दी थी शहर में उसकी चर्चा हाल में खूब चल रही है। इससे कई एक दया-प्रेमी सज्जनों के दिलों को चोट पहुँची है। 'हिन्दू धर्म-शास्त्र' में किसी भी जीव को मारना निषिद्ध है। इसलिए मारने से पाप लगता है। अगर पगला कुत्ता मनुष्य को काटेगा तो उससे मनुष्य की हानि होगी ही और वह दूसरे कुत्तों को काटेगा तो पगले कुत्तों की संख्या बढ़ेगी। इस भय से अगर उन्हें मार दिया जाय तो हिन्दू धर्म-शास्त्र का उपर्युक्त सिद्धान्त जान कर भी आप क्या इसे वाजिब मानेंगे? इसमें मारने वाले या मरवाने वाले को पाप नहीं लगेगा क्या? आप क्या ऐसा कह सकते हैं?"

"हमारी सभा के (१ सज्जनों के) डेप्युटेशन ने ता. २४-९-२१ के रोज ... सेठ जी से मुलाकात की थी। उस समय बातचीत में उन्होंने आप कबूल किया कि "एक पगले कुत्ते ने दूसरे अच्छे कुत्तों को काट खाया। इससे आदमियों की सलामत के लिए मैंने यह काम करना (कुत्तों को मरवा डालना) उचित समझा।" इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि "जिस दिन यह कृत्य किया, उस दिन रात को मुझे नींद तक नहीं आयी। दूसरे दिन सबेरे महात्मा जी से मैं मिला और सारी हकीकत कह कर उनका अभिप्राय पूछा। महात्मा जी ने बतलाया कि 'इसके सिवाय और दूसरा हो क्या सकता था?' यह बात क्या सच है? यदि आपने भी यही जवाब दिया हो तो इसका अर्थ क्या समझा जाय?"

"हम आशा करते हैं कि आप इसका समुचित जवाब देकर होंगे कि जिसमें शहर में होती हुई यह चर्चा बन्द हो जाय, और हिन्दू-धर्म के ऊपर यह आघात करने में एक नापी व्यक्ति का उदाहरण उपस्थित होने से जीव-दया की प्रगति का अवरोध न होवे।"

"विशेष बाट यह है कि हमारे सुनने में आया है कि अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी में, कुत्तों को खरसी (बधिया) करने का प्रस्ताव आने वाला है। यह प्रस्ताव क्या उचित है? प्रकृति के बनाये हुए किसी भी प्राणी को इस प्रकार बधिया करने में धार्मिक दृष्टि से क्या कोई दोष नहीं है? हम आशा रखते हैं कि इस बाबत में भी आप सच्चा मार्ग यानी अपने विचार बतावेंगे।"

मिल-मालिक का नाम अहमदाबाद तो जानता ही है किन्तु 'हिन्दी-नवजीवन' अहमदाबाद के बाहर भी पढ़ा जाता है। इसलिए किसी सिद्धान्त की चर्चा करने में जहाँ तक हो सके नाम-ठाम न देने की अपनी रिवाज के अनुसार मिल मालिक का नाम छोड़ दिया है। जीव-दया सभा का उठाया हुआ यह प्रश्न कठिन है। जब यह घटना घटी तभी या उससे भी पहले, इसके तत्त्व की 'नवजीवन' में चर्चा करने का मैंने इरादा किया

था लेकिन पढ़े से बड़ विचार छोड़ दिया। उपस्थित पत्र के आने पर तो इसकी चर्चा करने की जवाबदारी और फर्ज मेरे ऊपर आ ही पड़े हैं।

मिल-मालिक के साथ मेरा मीठा-अगर कह सकें तो मित्रता का सम्बन्ध है। उन्होंने कुत्तों को मरवाने के बाद, मेरे पास आ कर अपना दुःख प्रकटित किया था और मेरा अभिप्राय पूछा था। उन्होंने मुझसे कहा — "जब सरकार, म्युनिसिपैलिटी और महाजन, कोई भी मेरा छुटकारा न कर सके तब जा कर मुझे यह काम करना पड़ा।" जो उत्तर देने का इस पत्र में उल्लेख किया गया है, मैंने वैसा ही उत्तर दिया था।

उसके बाद भी विचार करने पर मुझे अपना उत्तर उचित मालूम होता है।

पगले कुत्ते को मार डालने के सिवाय, हम अपूर्ण मनुष्यों के पास कोई उपाय ही नहीं है। खून करने पर उतारू मनुष्य को मारने का धर्म-संकट कितनी बार अनिवार्य हो जाता है।

अगर हम शहर में भटकने वाले कुत्तों को रखने का हठ करें तो उनको हथियार या तो खरसी करना पड़ेगा या मार डालना होगा। खरसी कुत्तों के लिए ही पीजरापोल रखना भी तीसरा उपाय है। लेकिन वह उपाय, उपाय कहने योग्य नहीं है। यों ही भटकते हुए सभी गायों भैसों के लिए भी जहाँ काफ़ी पीजरापोल नहीं है वहाँ कुत्तों के लिए अलग पीजरापोल खोलने का विचार तो मुझे भयंकर लगता है।

इस विषय में, हिन्दू-धर्म में दो मत सुनने में नहीं आते कि किसी भी जीव को मारने में पाप लगता है। मेरा अभिप्राय तो ऐसा है कि सभी धर्मों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सिद्धान्त को ढूँढ़ने में कोई मुश्किल नहीं होती है उसका केवल अमल करने में ही सभी मुश्किलें आ पड़ती हैं इसलिए सिद्धान्त तो इस विषय में सम्पूर्ण है। उनका अमल करने वाले हम मनुष्य अपूर्ण हैं। अपूर्ण के द्वारा पूर्ण का अमल होना अशक्य होने के कारण, प्रतिक्षण सिद्धान्त के उल्लंघन नयी मर्यादा ठीक करनी पड़ती है। इससे हिन्दू-शास्त्र में धर्म दिया गया है कि यज्ञार्थ की हुई हिंसा हिंसा नहीं होती। अपूर्ण सत्य है। हिंसा तो सभी समय हिंसा ही रहेगी और हिंसा मात्र पाप है। किन्तु जो हिंसा अनिवार्य हो पड़ती है उसे व्यवहार में शास्त्र पाप नहीं मानता। इसलिए यज्ञार्थ की गयी हिंसा व्यवहार-शास्त्र अनुमोदन करता है और उसे शुद्ध पुण्य-कर्म मानता है।

किन्तु अनिवार्य हिंसा की व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि वह तो देशकाल और पात्र के अनुसार बराबर बदलती रहती है। एक काल में जो क्षन्तव्य मानी जाती है, दूसरे काल में वही अक्षन्तव्य। जाड़े भर में, शरीर की रक्षा के लिए लकड़ या कोयला जलाने में होती हुई हिंसा, दुर्बल शरीर के भले ही अनिवार्य हो किन्तु भर गर्मी बिला-ज्वररत जलायी गयी आग स्पष्ट हिंसा है।

हमने जन्तुनाशक दवाओं का उपयोग कर के विपैले जन्तु का नाश करने का धर्म स्वीकार किया है। जन्तुनाशक दवा जाने दीजिए। बन्द कोठरी में जहरीली हवा होती है। उस जहरीले कीड़े होते हैं। उस कोठरी को खोल कर हवा उजाले को दाखिल कर के, हम जहरीले कीड़ों का नाश करते हैं। शुद्ध हवा, उत्तम प्रकार की जन्तुनाशक दवा है।

ऐसे बहुत उदाहरण पेश किये जा सकते हैं। जो नियम ऊपर के उदाहरणों में लागू पड़ता है, वही नियम पगले कुत्तों को मारने या खरसी करने में भी लागू होता है। पगले कुत्ते



का नाश करना तो छोटी से छोटी हिंसा है। जंगल में रहने वाले दया के सागर मुनि, पगले कुत्तों का नाश नहीं करते। उनके पास दूसरी ही रामबाण दवा है। वे अपने कृपाकटाक्ष से उनके पापलान का नाश कर देंगे। किन्तु वे गृहस्थाश्रमी कुत्तों के पागलान क्या करें, जिनके ऊपर शहर की रक्षा, और बालकों की रक्षा का धर्म पड़ा हुआ है, और जिनमें मुनि के आदर्श गुण तो नहीं हैं किन्तु कुत्तों को मारने की शक्ति है? अगर मारते हैं तो पाप करते हैं। नहीं मारते हैं तो महापाप करते हैं। वे कुत्तों को मारवाने का अल्प पाप कर के उसकी अपेक्षा महत् पाप से बचते हैं।

मैं अपने को अहिंसामय मानता हूँ। अहिंसा और सत्य मेरे दो प्राण हैं। मैं यह मानता हूँ कि उनके बिना मैं जी नहीं सकता। किन्तु अहिंसा की महान् शक्ति और मनुष्य की पामरता को मैं क्षण क्षण में अधिकाधिक स्पष्टता से देखता हूँ। दयानिधि बनवासी मुनिगण भी सम्पूर्ण हिंसामुक्त नहीं हो सकते। उनकी प्रत्येक श्वास, उनसे हिंसा कराती है। यह देह तो हिंसा का स्थान है। इसीलिए सर्वथा देह-मुक्ति में ही मोक्ष और परमानन्द रहता है। इसीसे मोक्ष के आनन्द को छोड़ कर और सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं।

ऐसा होने से हमें हिंसा के कितने ही कड़वे घंट पीने पड़ते हैं।

परन्तु यही तो आश्चर्य है, यही तो खेद की बात है कि इस अहिंसा-प्रधान भूमे में कुत्तों का सवाल भयंकर स्वरूप धारण कर सकता है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि अज्ञान के वश हो कर आज हम अहिंसा के नाम पर हिंसा कर रहे हैं। पगले कुत्तों या उन कुत्तों को, जिनके विषय में भय है कि पगले कुत्तों के संघर्ष में आवेंगे, मारने में पाप भले ही हो, लेकिन उनकी हस्ती के लिए सच्चे जवाबदेह तो हम हैं और हमारे महाजन हैं। महाजन लोगों को यों ही भटकते कुत्तों को न रहने देना चाहिए। ऐसे छूटे कुत्तों को खाना देना पाप है, पाप मानना चाहिए। इन लावारिस कुत्तों को मारने का अगर हम कानून बनावेंगे तो हजारों कुत्तों की जान बचा सकेंगे।

जीव-दया आत्मा का एक महान् गुण है। थोड़ी चींटियों या थोड़ी मछलियों या थोड़े कुत्तों को बचाने में उसकी समाप्ति नहीं है। उसमें पाप भी होता है। मेरे यहां चींटियों का उपद्रव होता है। उन चींटियों को सत् छीटनेवाले दानी पाप करेंगे। चींटो को तो ईश्वर कण देंगे। किन्तु संभव है कि वह सत् छीटनेवाला मेरा और मेरे कुटुम्ब का नाश कर दे। कोई जैन-संघ कुत्ते की पिंजरे में बन्द कर के मेरे खेत के पास छोड़ कर आप भले सुरक्षित बन सकता है किन्तु कुत्ते को बचाने का अर्थ होता है, मेरी जान को खतरे में डाल कर कुत्ते को मारने की अपेक्षा बहुत बड़े पाप को मोल लेना।

जीव-दया में विचार, विवेक, उदारता, अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञान की जरूरत है।

इस हिंसामय जगत् में अहिंसा रूपी तीखी तलवार की धार पर चलना सहज काम नहीं है। यह धन से नहीं बनता। क्रोध तो अहिंसा का वैरी है। अभिमान है, उसे खा जानेवाला राक्षस। इस धर्म के पालन में कितनी बार हिंसा को अहिंसा के नाम से पहचानना पड़ता है।

इस जगत् में जो वस्तु जैसी दिखलायी पड़ती है, उसका स्वरूप वैसा ही नहीं होता है और जिसका जैसा स्वरूप होता है, वह वस्तु वैसी ही दिखलायी नहीं पड़ती है। अथवा कोई करोड़ों

वर्षों की तपश्चर्या के बाद अन्त में देख सकता है — अनुभव कर सकता है। कह तो कोई न सका, कह सकता भी नहीं।

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २२

धर्म-निरीक्षण

जातीय सेवा में मैं जो ओतप्रोत हो गया था उसका कारण था, आत्म-दर्शन की मेरी अभिलाषा। यह समझ कर के कि ईश्वर की पहिचान सेवा से ही होगी, मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया था। मैं हिन्दुस्तान की ही सेवा करता था, इसका कारण यह था कि वह सेवा मुझे सहज ही प्राप्त थी और उसीका मुझमें इत्मी था। उस सेवा को हूँदने के लिए मुझे कहीं जाना न पड़ा था। मैं दक्षिण अफ्रीका गया तो था मुवाफिकी करने, काठियावाड़ की खटपट से बचने और अपनी आजीविका हूँदने के लिए मगर लग गया ईश्वर की खोज में, आत्म-दर्शन के प्रयत्न में। किस्तान भाइयों ने भी मेरी जिज्ञासा को बहुत तीव्र कर दिया था। वह जिज्ञासा किसी प्रकार शान्त हो सो बात न थी और अगर मैं उसे शान्त करना चाहता भी तो ईसाई भाई-बहन शान्त होने देने वाले न थे। क्योंकि हरबन में मि० स्पेन्सर बोल्टन ने जो दक्षिण अफ्रीका की मिशन के मुखिया थे, मुझे हूँद निकाला। उनके घर में मैं एक कुटुम्बी के समान हो गया था। प्रिटोरिया में हमारा उनका समागम हो चुका था। वही इस सम्बन्ध का मूल था। मि० बोल्टन का रंग-ढंग कुछ जुदे प्रकार का ही था। ऐसा मुझे याद नहीं आता है कि उन्होंने मुझसे कभी किस्तान होने को कहा हो। किन्तु अपने जीवन को ही मेरे सामने रख कर के उन्होंने मुझे अपनी प्रवृत्ति का दर्शन करने दिया। श्रीमती बोल्टन अति नम्र किन्तु तेजस्विनी महिला थीं।

मुझे इस दम्पति का रहन-सहन पसन्द पड़ता था। अपने बीव के मौलिक मेरों को भी हम दोनों जानते थे। केवल बातचीत से ही इस मेद को मिटाया जा सके, सो बात न थी। जहाँ जहाँ उदारता, सहिष्णुता, और सत्य है, वहाँ वहाँ मेह भी लाभदायक ही निकलते हैं। मुझे इस दम्पति की नम्रता, उद्यम और कार्यपरायणता प्रिय थी। इससे हमलोग समय समय पर मिला करते थे।

इस सम्बन्ध को मैंने जीता जागता रखा। धार्मिक वाचन के लिए प्रिटोरिया में मुझे जो फुरसत मिली थी, वह अब तो अशक्य थी। लेकिन जो कुछ समय बचता था, उसका उपयोग मैं धार्मिक पठन में ही करता था। रायचन्द भाई का असर मुझपर पड़ता ही रहता था। किसी मित्र ने मुझे, नर्मदाशंकर (एकगुजराती कवि) की “धर्मविचार” नामक पुस्तक मेजी। उसकी प्रस्तावना मेरे लिए सहायतास्वरूप हो गयी। नर्मदाशंकर के विलासी जीवन की कथा मैं सुन चुका था। प्रस्तावना में दिये गये उनके जीवन में हुए फेरफार के वर्णन की ओर मेरा मन आकृष्ट हुआ। इससे उनके ‘गीताजी’ के तरजुमे के प्रति मेरे मन में आदर पैदा हुआ। उसे मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया। मेक्समूलर की किताब “हिन्दुस्तान क्या सिखलाता है?” मैं बहुत मन लगा कर पढ़ गया। थिआसोफिकल सोसाइटी का प्रकाशित किया हुआ, उपनिषद् का भाषान्तर पढ़ा।



इससे हिन्दू-धर्म के प्रति मेरा आदर बढ़ा। उसकी खूबी मैं समझने लगा। किन्तु दूसरे धर्मों के प्रति आदरभाव मैं कभी न हुई। वाशिंगटन इवनिंग का लिखा हुआ, मुहम्मद का चरित्र और कार्लाइल की मुहम्मद स्तुति बाँची। पेंगम्बर के प्रति मेरे मन में मान बढ़ा।

“आधुनिक के वचन” नामक पुस्तक बाँची। इस प्रकार, मैंने भिन्न भिन्न धर्मों का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। आराम-निरीक्षण बढ़ा। चूँकि मुझ में यह दृढ़ ठेक थी कि जो पढ़ा और पसन्द कोना, उसका अमल जरूर करता था, इसलिए हिन्दू-धर्म के ग्रन्थों में बतलाये गये, प्राणायाम विषय की कई एक क्रियाओं को भी, जिन्हें मैं समझ सका, मैंने शुरू किया। किन्तु मेरा इसमें मेल न बैठता। उसमें मैं आगे न बढ़ सका। हिन्दुस्तान लौटने पर किसी शिक्षक के नीचे इसका अभ्यास करने का इरादा रखा। वह कभी पूरा न हो सका।

टारसटाय की पुस्तकें खूब पढ़ीं। उनकी “गेस्तेल्स इन प्रिफ” “व्हाट टु डू” (अब हम क्या करें?) इत्यादि पुस्तकों की मेरे ऊपर गहरी छाप पड़ी। मनुष्य को विश्व-प्रेम कहाँ तक ले जा सकता है, यह बात मैं अधिकाधिक समझने लगा।

इसी समय एक दूसरे क्रिस्तान परिवार के साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ा। उनकी इच्छा से वेस्लेयन गिरजा घर में मैं हर रविवार को जाया करता। प्रायः ही हर रविवार को संध्या समय, उनके ही या मेरा खाना भी होता था। वेस्लेयन गिरजे का मेरे ऊपर अच्छा असर न पड़ा। वहाँ जो व्याख्यान दिये जाते थे वे भी मुझे शूष्क लगे। प्रार्थना में शरीक होने वालों में मैंने अधिक भाव न देखा। ग्यारह बजे की यह मण्डली मुझे भक्तों को नहीं मालूम हुई किन्तु कुछ विनोद और कुछ रिवाज के वश हो कर आये हुए संसारी जीवों की मालूम हुई। किसी किसी समय इस सभा में अनिच्छा से मुझे नींद आने लगती थी। मैं शर्माता किन्तु अपने आसपास मैं कई लोगों को ऊँघते देख कर मेरी शर्म कुछ हलकी पड़ती थी। अपनी यह स्थिति मुझे न अच्छी। मैंने इस गिरजे में जाना बिल्कुल ही बन्द कर दिया।

जिस कुटुम्ब में मैं हर रविवार को जाता था, वहाँ से तो मानों मुझे छुट्टी ही मिल गयी। एड-स्वामिनी भोलीभाली किन्तु संकीर्ण मन की मालूम हुई। उसके साथ हर समय कुछ न कुछ धमँचर्चा होती ही रहती थी। उन दिनों घर पर मैं सर एडविन आर्नेल्ड का “लाइट ऑफ एशिया” पढ़ता था। मैंने जीसस और बुद्ध के जीवन की तुलना करते हुए कहा:

“जा गौतम की दया को देखिए। मनुष्य में से उतर कर वह दूसरे प्राणियों में गयी। ...उनके कंधों के ऊपर भेड़ के मेमने को खेलते हुए देख कर क्या तुम्हारा हृदय प्रेम से विहल नहीं हो जाता। प्राणि मात्र के प्रति इस प्रेम को मैं जीसस के जीवन में नहीं पाता हूँ।”

उस बहन को दुःख लगा। मैं इसे समझ गया। मैंने अपनी बात और आगे न बढ़यी। हम खाने के घर में गये। हमारे साथ उसका कोई पाँच वर्ष का लड़का भी था। मुझे बच्चा जरूर मिल गया तो और क्या चाहिए? उसके साथ दोस्ती तो मैंने कर ली ही थी। उसकी थाली में पड़े हुए मांस का पत्राक उठा कर, मैंने अपनी रिकाबी में शोभते हुए सेव की स्तुति शुरू की। उस निर्दोष बालक पर असर पड़ा और सेव की स्तुति में वह भी शरीक हुआ। किन्तु माता? वह धिचारी बबरायी।

मैं चैता। चुप हो गया और बात का रुख बदल दिया।

दूसरे सप्ताह में बहुत सावधान हो कर उनके यहाँ गया सड़ किन्तु मेरा पैर भारी लगता था। वहाँ अपना जाना बन्द कर देना न तो मुझे सूझा और न उचित मालूम हुआ। उस भली बहन ने मेरी मुश्किल को हल कर दिया। वह बोली, “मि० गांधी, आप युग न मानियेगा। मुझे तो आपको कहना चाहिए कि मेरे बच्चे के ऊपर आपका गहरा असर पड़े लगा है। अब वह रोज मांस खाने में आनाहानी किया करता है और आपकी बातें याद कर के फल माँगता है। मुझे यह भय न लगता है। मेरा लड़का अगर मांस छोड़ देवे तो, बीमार न पड़े तो निश्चय तो हो ही जायगा। मुझे इसका सहन क्योंकि होगा? आप जो कुछ चर्चा करें, वह सगाने लोगों के ही बीच शोभा देती है। बालकों के ऊपर तो उसका युग ही असर पड़ेगा।”

“मित्र ... मैं दुःखित हूँ। आपके मातृ-हृदय में जो जोड़ पहुँची है, उसे मैं समझ सकता हूँ। क्योंकि मुझे भी लड़के हैं। इस आपत्ति का अन्त सहज में ही हो सकता है। मेरी बातों का जितना असर बालक पर पड़ेगा, उससे कहीं अधिक असर यह देख कर पड़ेगा कि मैं क्या खाता हूँ और क्या न खाता हूँ। इसलिए अच्छी बात तो यह है कि अब से मैं आपके यहाँ आया ही न कहूँ। हमारी मित्रता में उससे कुछ भी खलल नहीं पड़ेगा।”

“आरका आभार मानती हूँ।” उस बहन ने उमंग से यह बात स्वीकार कर ली।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

#### जात्यभिमान

एक जर्मन भाई ने जो जाति-भेद को दूर करना चाहते हैं, यूरोप के गोरी द्वारा अबीसिनियन और रिफ लोगों के ऊपर किये जाते हुए अत्याचारों पर और जाति को उच्छता बचाये रखने के लिए अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में काले हवशियों के साथ रोज ही जो अन्याय किये जाते हैं,—उनपर एक लेख भेजा है। उस लेख में से मैं ये तीन उदाहरण चुन कर देता हूँ:

“पवित्र भूमि (ईसाइयों के तीर्थस्थान जेरुसलम) को कुछ क्रिस्तान पादरी जा रहे थे। दक्षिणी राज्यों से भी एक पादरी (काला) ने पत्र भेजा। उसके साथी गोरे पादरी उसे साथ आने देते न थे। उसका भाड़ा लौटाया गया और क्षति-पूर्ति की रकम चुकायी गयी और इस प्रकार जा कर कहीं उनका छुटकारा उस काले आदमी से हुआ।

“दक्षिण कैरोलिना (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) में एक गोरे ने एक मोटर गाड़ी चुरायी। उसे चार सप्ताह जेल की सजा मिली। उसी न्यायालय से वाइसिक्रिल जुगाने के लिए एक काले आदमी को ३ साल की कड़ी कैद की सजा मिली। गोरी बालिका पर बलात्कार करने के अपराध में डेलावेयर (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) के एक काले आदमी को फाँसी दी गयी थी। अलाबामा (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) में दो गोरी को एक काली बालिका पर बलात्कार करने के लिए २५, २५ डालर (कोई ७८ रुपये) का जुर्माना हुआ।”

अगर गोरा आदमी जाति के अभिमान का दोष करता है तो हम जन्म के अभिमान के पापी हैं। अज्ञा कहे जाने वाले लोगों के साथ हमारा बर्ताव, काले लोगों के प्रति गोरी के बर्ताव से अच्छा नहीं है। इन उदाहरणों को यहाँ देने का मतलब यह है कि पश्चिम की सांसारिक उन्नति से उनकी नीतिमत्ता में कुछ अन्तर नहीं पड़ा है। मगर किसी भी सभ्यता की अखीरी जाति यही है।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी



## प्रश्नोत्तर

महोदय।

हिन्दुओं में सामाजिक सुधार के विषय में आप के लेख में बहुत रुचि से पढ़ता आया हूँ। तथापि कुछ विषयों में आप के तर्क में ठीक २ समझ नहीं सका हूँ और मेरी समझ में आप के कुछ नतीजों के विषय में कुछ ऐसी सन्दिग्ध बातें हैं जिनका कुछ और खुलासा करना आवश्यक है। अगर 'यंग इन्डिया' में, मैं नीचे जो प्रश्न उठाता हूँ उनके विषय में आप अपने विचार दे सकें तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

## १. विधवाओं के संबंध में

आप विधवा-विवाह का बराबर समर्थन करते आये हैं किन्तु शायद उम्र की, कुछ खास सीमा के भीतर ही — शायद १५ वर्ष की। १९ अगस्त के 'हिन्दी-नवजीवन' में आप लिखते हैं कि — "मैंने सभी विधवाओं के विवाह का कभी भी समर्थन नहीं किया है। सर गंगाराम के हूँटे हुए अंक इस पत्र में जिनका केवल सारांश ही दिया गया था, १५ वर्ष से कम उम्र की विधवाओं के ही हैं।" इन पंक्तियों का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि १५ वर्ष तक की विधवाओं के पुनर्विवाह का आप समर्थन करते हैं। मगर, १५ वर्ष से जरा अधिक उम्र की, जैसे १६, १७, १८, २० या २२ वर्ष की विधवाओं के लिए आप क्या पसन्द करते हैं। आपकी निश्चित की हुई सीमा, अगर पुनर्विवाह के लिए एक जाँच मानी जाय तो ऊपर के दिये हुए उदाहरणों को श्रेष्ठ ही, पुनर्विवाह के अयोग्य कहना होगा, चाहे वह विधवा, अपनी हालत पर दुःखी ही क्यों न हो और उसके साथ अन्याय ही क्यों न किया जाता हो (जैसा मुझे दुःख के साथ देखना पड़ता है कि साराण हिन्दू गृहस्थ के घर में होता ही है।) कृपा कर के हमें साफ़ साफ़ बतला दीजिए कि इन बातों को जान कर भी क्या आप सचमुच ही उम्र की कैद का समर्थन करते हैं? यह तो बिल्कुल एक दूसरी ही बात होगी, अगर आप इस परिमित सुधार का इसलिए समर्थन करें कि जिसमें हिन्दू-समाज कम से कम उसे तो स्वीकार कर ले क्योंकि अधिकांश हिन्दू, "विधवा-पुनर्विवाह" के कट्टर विरोधी हैं। किन्तु मेरा तो विश्वास है कि, इस भय से कि आप को बदनामी होगी, या उस सुधार की बदनामी होगी, जिस से उसकी सफलता अनिश्चित हो जायगी, आप किसी भी अच्छी चीज के लिए सोमा निश्चित नहीं करते हैं।

मैं समझता हूँ कि विधवा-विवाह का समर्थन करते समय इस ओर सभी सुधारकों के मन में प्रायः केवल निर्दोष छोटी बालिका-विधवा का ध्यान रहा होगा, मगर उन्होंने विधवा के लिए उम्र की कोई कैद न रखी क्योंकि उस से कितनी ही योग्य विधवाओं के लिए भी सचमुच ही एक कठिनाई उठ खड़ी होती। मेरी समझ में उन्होंने यह उचित ही किया। ऐसी विधवाओं के विषय में आप के क्या विचार हैं? कृपा कर के इसका खुलासा अवश्य कर दें।

मुझे आशा है कि, इसका उत्तर देते समय उन लड़कियों की बात आर नहीं भूल जायेंगे जो बड़ी उम्र में, जैसे २०, २२ साल की उम्र में विवाह करती हैं, किन्तु विवाह के दूसरे ही दिन या १ महीने बाद विधवा हो जाती हैं। आर यह भी न भूलेंगे कि ऐसी घटनाएँ होती ही हैं। क्या ऐसी लड़कियों का पुनर्विवाह का अधिकार केवल इसी लिए नष्ट हो जायगा कि वे उम्र की कैद को पार कर गयी हैं और विवाह-संबंध की पवित्रता को धमका सकती हैं?

साथ ही साथ, अगर समाज के हित के लिए विधवाओं के लिए उम्र की कैद निश्चित करनी जरूरी हो तो विधुओं के पुनर्विवाह के लिए भी वैसी ही कैद निश्चित करना क्या आवश्यक नहीं है? केवल इसीलिए कि पुरुष जो से अधिक शक्तिशाली है, उसे ऐसे ही नियम न बनाने चाहिए जो हों तो अन्याय-सम्मत किन्तु उसके लिए सुविधा-जनक हों। इसके अलावा बूढ़ों के छोटी बच्चियों से विवाह करने की चाल भी, बाल-विवाह के ऐसी ही विधवाओं की संख्या को बढ़ाने वाली भयंकर कुप्रथा है। आप इसका क्यों नहीं समर्थन करते कि एक खास उम्र से अधिक के पुरुष, जैसे मान लीजिए कि ३० साल से अधिक उम्र के विधु, पुनर्विवाह न करने पावें? हाँ, अगर विधवाओं के लिए उम्र की कुछ कैद न हो तो फिर पुरुषों के लिए भी उम्र की कैद की कुछ जरूरत ही न पड़ेगी क्योंकि ऐसी हालत में बूढ़ा विधु, किसी बूढ़ी विधवा से विवाह कर सकता है और इस से समाज की कोई हानि न होगी।

## २. अस्पृश्यता

इस सत्यानाशी प्रथा के विरुद्ध आपने हमेशा बहुत जोरों से लिखा है। इसके साथ ही मगर मुझे जहाँ तक याद आता है, आपने यह भी लिखा है कि इस सुधार के साथ साथ, असवर्ण विवाह और सह-भोज भी कुछ आवश्यक नहीं है।

कृपा कर के आप यह स्पष्ट लिखें कि इस सुधार में यह भी शामिल है या नहीं कि किसी अछूत का बनाया हुआ या उसके हाथ का ही भोजन खाया जाय या कम से कम उसके निकट बैठ कर (अपनी ओर से कोशिश कर के नहीं किन्तु कम से कम संयोगवशतः ऐसा अवसर आ पड़ने पर हो सही) खाया जाय। अगर ये बातें शामिल नहीं हैं तो यह भी बतलाना होगा कि इन्हें क्यों न शामिल किया जाय। इस सुधार में इन्हें शामिल न करने का निश्चित लक्ष्यार्थ यह होगा कि शारीरिक स्वच्छता से जहाँ तक सम्बन्ध है, उन्हें हम नीच मानते हैं और जब तक वे गन्दे माने जाते हैं, तब तक सु-संस्कृत पुरुष भी अछूतपन के इस नाश को सुधार नहीं कह सकेंगे।

## ३. हिन्दू

आप आने को बराबर हिन्दू कहते आये हैं। मगर दूसरी ओर बाल-विवाह के और विधवा-विवाह या अस्पृश्यता के सम्बन्ध में हिन्दू पण्डितों या उनके शिष्यों की आज्ञाओं को मानने को आप तैयार नहीं हैं। २६ अगस्त के 'हिन्दी-नवजीवन' में आप लिखते हैं — "स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। एक ही पुरुष एक ही समय में आत्म-संयम के उपदेश देनेवाले और पशुवृत्त को उत्तेजित करनेवाले वाक्य नहीं लिख सकता।" मैं कहता हूँ कि हिन्दुओं के कई पुराणों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता को अस्वीकार करते हुए, मुझे यह नहीं समझ में आता कि आप अपने को "हिन्दू" (प्रचलित अर्थ के अनुसार) क्योंकर कह सकते हैं। प्रचलित अर्थ के अनुसार तो एक हिन्दू को कई एक पुराणों में बताया हुई, असंभव बातों और उन अनौचित्यों में जो व्यवहारवृद्धि के विरुद्ध हैं, दृढ़ विश्वास करना होगा। अगर आप यह समझते हैं कि किसी हिन्दू के लिए इन बातों में विश्वास रखना आवश्यक नहीं है तो आप अगर हिन्दू धर्म की व्याख्या कर दें और आप को हिन्दू क्यों समझा जाय, इसके कारण बतलावें तो सत्य की यह एक सेवा होगी।

आप यह तो कहियेगा नहीं कि जो कोई अपने को हिन्दू कहना चाहे, वह हिन्दू है, अर्थात् कि हिन्दू-धर्म के सिद्धान्तों और



शास्त्रीय आह्वाओं का वह पालन भी न करता हो। जैसे अगर मैं अपने को क्रिस्तान कहने लूँ और यह भी कहूँ कि किसी सच्चे क्रिस्तान के लिए बाइबिल में या यीशु-ख्रीस्त में ही विश्वास करने की जरूरत नहीं है तो मुझे पाखण्डी के सिवाय और क्या कहा जायगा ?

इसके अलावा जब आप हिन्दुओं के शास्त्र सम्बन्धी बातों से सहमत नहीं हैं (और इस शब्द के साथ कुछ अप्रिय संसर्ग हैं और यह शब्द हिन्दुओं के किसी शास्त्र में पाया भी नहीं जाता है) आपको यह भी समझाना होगा कि आप अपने को हिन्दू कहना क्यों पसन्द करते हैं और आर्य क्यों नहीं कहते, और यह आर्य शब्द स्वतन्त्र रूप से भी उसकी अपेक्षा अच्छा है। इसके अलावा आपकी शिक्षाएं और हिन्दू-शास्त्रों का आपका अर्थ आर्य-समाज से बहुत भेद जाते हैं।

यहां मुझे अब एक और नयी बात मिल गयी। आपने एक बार स्वामी दयानन्द और आर्य-समाज को "असहिष्णु" कहा था। मैं यह मानता हूँ कि संभवतः आपका विचार बहुत गलत न हो। मगर तभी यह लिखते समय आप ने शायद यह नहीं सोचा था कि प्रत्येक सुधारक को असहिष्णु होना ही पड़ता है और क्योंकि कोई सुधारक पूरा सहनशील बन जाता है, वह सुधारक ही नहीं रह जाता। असहिष्णुता अगर बुरी चीजों के प्रति हो तो वह दोष नहीं कही जायगी बल्कि वह तो गुण हो जाती है। अगर हिन्दू-धर्म को हम इस अर्थ में सहिष्णु गिनें कि वह दूसरे धर्मों की या अपने ही सदोष उपविभागों की आलोचना नहीं करता फिरता है तो मेरी समझ में इससे उसकी शोभा कुछ बड़ नहीं जाती किन्तु यह उसकी अपनी ही निर्वलता या कुछ निश्चिन्त सिद्धान्तों के कर्मरू में पालन के प्रति उदासीनता का लक्षण है। अन्यथा आपके अपने ही लेखों; "बाल-विवाह के समर्थन में" और "अस्पृश्यता रूपी रावण" से यह बात साफ झलकती है कि आप हिन्दुओं के प्रति असहनशील हो गये हैं या, उनमें से जिनका मत आप से नहीं मिलता कम से कम उन्होंने आपको असहनशील समझा है। दूसरी तरफ इन सुधारों के प्रति या स्वामी दयानन्द ने भी जब इन्हीं सुधारों का समर्थन किया था तो उनके प्रति भी हिन्दुओं के विरोध से उनकी असहिष्णुता का पता चलता है। अगर आप यह कहें कि स्वामी दयानन्द ने जिस कटु भाषा का प्रयोग हिन्दू पण्डितों या दूसरे धर्मों के विरुद्ध किया है, उसका दूसरे किसी ने नहीं किया है तो हकीकतों से आपका समर्थन न होगा। इस प्रकार आप ने भी (केवल राजनीतिक सुधारक हो कर) सरकार को शैतानी सरकार कहा है और इस प्रकार सरकारी अफसरों को अप्रत्यक्ष रूप से गाली दी है। यह बात बहुत साफ है कि स्वामी दयानन्द के दिल में भी किसी हिन्दू पण्डित से कुछ विरोध या झटुता न थी। खैर, मगर धर्म के नाम पर जिन पापों का वे प्रचार करते थे, स्वामी दयानन्द उन्हें सहन नहीं कर सकते थे, और उन कठोर नियमों का नाश करने पर तुले हुए होने के कारण उन्हें लोगों को यह बात साफ २ बतलानी पड़ी थी कि उनके नाम के धार्मिक नेता सचमुच में केवल धोखेबाज ही हैं। आप भी बहुत कुछ वे ही बातें सिखला रहे हैं किन्तु फर्क केवल इतना ही है कि इस दिशा में आप अपने लिए क्षेत्र अधिक अच्छा तैयार पाते हैं और आपको अपने तर्कों में उतनी कटुता काने की जरूरत नहीं पड़ती है। स्वामी दयानन्द की सहिष्णुता का पक्का प्रमाण है, उनकी मृत्यु की घटना। जिस आदमी ने (उनके रसोइयादार ने) उन्हें जहर खिलाया, उसके

प्रति भी उनके मन में कुछ क्रोध न था बल्कि उलटे उन्होंने उसे धन की सहायता दी जिसमें वह भाग सके और कानून की सजा से बच सके। क्या न्याय के नाम पर ऐसे आदमी को असहिष्णु कहा जा सकता है ?

भवदीय

"सहायक इन्जीनीयर"

मैं इस प्रश्नावलि को बहुत खुशी से छापता हूँ। योग्य आलोचक को अगर इस से सन्तोष न भी मिले तभी मैं लम्बा जवाब नहीं दे सकता।

१. मैंने जिस बात का समर्थन किया है वह यह है कि — जो मातापिता अपनी लड़कियों का कच्ची उम्र में विवाह कर देने का पाप करते हैं, अगर उनकी लड़कियां बालपन में ही विधवा हो जायें तो उनका विवाह कर के उन्हें अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। अगर परिपक्व उम्र में लड़कियां विधवा हो जायें तो पुनर्विवाह करने या विधवा रहने का निश्चय उन्हें आप ही करना चाहिए। अगर मुझ से पूछा जाय कि इस सम्बन्ध में क्या नियम होना चाहिए तो मैं कहूंगा कि जो नियम स्त्रियों के लिए हों, पुरुषों के लिए भी वही नियम लागू होने चाहिए। अगर ५० वर्ष का विधुर खुशी से पुनर्विवाह कर सकता है तो उसी उम्र की विधवा को भी वही अधिकार होना चाहिए। मगर, यह दूसरी ही बात है कि मेरी समझ में स्त्री और पुरुष दोनों ही इस अवस्था में पुनर्विवाह करने से पाप के भागो बनेंगे। हिन्दू धर्म में अगर यह सुधार हो कि किसी भी विधवा या विधुर को, जिसने स्थाने होने पर अपनी खुशी से विवाह किया था, पुनर्विवाह करने से पाप लगेगा तो मैं इसका हमेशा समर्थन करूंगा।

२. इस विषय में मैंने जो कुछ कहा है, उसका अर्थ यही है कि पंचम वर्ण न रहने पावे। इसलिए अछूतों को चौथे वर्ण में ही मिल जाना चाहिए। चार वर्णों के संगठन और उन में कृत्रिम ऊंचता नीचता को दूर करने का सवाल दूसरे ही प्रकार के सुधार में उठता है। सहमोज का अर्थ होता है एक ही थाली में खाना। मैं अगर विष्णु सुलेमान एंड इसमाइल कम्पनी का बनाया, एक विस्फुट खाता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उनके साथ सहमोज करता हूँ।

३. मैं अपने को सनातनी हिन्दू इसलिए कहता हूँ कि मैं वेदों, उपनिषदों और पुराणों और पवित्र सुधारकों के लेखों में विश्वास रखता हूँ। इस विश्वास के लिए मुझे हर एक वस्तु में जो शास्त्र के नाम से अभिहित हो आसवाक्य कह कर विश्वास करने की जरूरत नहीं है। नीति के मूल सिद्धान्तों का जिन से विरोध होता है, उन सभी बातों का मैं विरोध करता हूँ। मेरे लिए पण्डितों की सभी आह्वाओं या उनके अर्थ में विश्वास करना आवश्यक नहीं है। सब से बड़ी बात तो यह है कि मैं अपने को सनातनी हिन्दू तभी तक कहता हूँ कि जब तक साधारण हिन्दू-समाज मुझे ऐसा स्वीकार करता है। स्थूल रूप से वह आदमी हिन्दू है जो ईश्वर में विश्वास करता है, आत्मा को अविनश्वरता, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त और मोक्ष में विश्वास करता है और अपने दैनिक जीवन में सत्य और अहिंसा का अभ्यास करने का प्रयत्न करता है, और इसलिए अत्यन्त व्यापक अर्थ में गोरक्षा करता है, और वर्णाश्रम धर्म को समझता है और उस पर चलने का प्रयत्न करता है।

४. स्वामी दयानन्द-विषयक क्षण्ड में मुझे नहीं पड़ना चाहिए।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १० ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आश्विन सुदि १५, संवत् १९८३

गुरुवार, २१ अक्टूबर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २३

गृहस्थी

बम्बई और विलायत में मैं घर बना कर बैठ गया था। लेकिन नैटाल के घर और इन घरों में भेद था। नैटाल में बहुत सा खर्चा तो केवल प्रतिष्ठा के लिए मैंने बड़ा रक्खा था। मैंने मान रक्खा था कि नैटाल में एक हिन्दुस्तानी वैरिस्टर की तथा हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधि की हैसियत से मुझे अपना खर्चा काफी रखना चाहिए। इसलिए एक अच्छे मुठले में एक अच्छा सामकान ले रक्खा था। घर को आगस्ता भी खूब कर रक्खा था। खाना-पीना सादा था, लेकिन अंग्रेज मित्रों को दावत देनी रहती और उसी प्रकार हिन्दुस्तानी साधियों को भी निमन्त्रण दिया जाता। इस कारण से खर्च अपने आप बढ गया था।

नौकर न मिलने की तकलीफ तो सभी को मालूम होती है। किसी को नौकर की भाँति रखना तो मुझे आता ही न था।

मेरे घर में मेरा एक साथी था। एक रसोइया भी रक्खा था। वह कुटुम्बी की तरह हो गया था। दफ्तर में जो कलक थे, उनमें से भी जिसे रख सकता था, उसे भी घर में रख लिया था। मुझे लगता है कि यह प्रयोग मुझे खूब फला। लेकिन उससे मुझे संसार का कटु अनुभव भी हुआ।

वह साथी बहुत होशियार था और मेरी समझ में वफादार भी था। लेकिन मैं उसको पहचान न पाया। मैंने दफ्तर के एक बाबू को अपने घर में रक्खा ही था। उसकी इस साथी को बाह्र पैदा हुई। उसने ऐसा जाल रचा कि जिस से मैं उस बाबू पर शक करने लगूँ। यह बाबू बहुत स्वांत्र प्रकृति का था। उसने मेरा घर और दफ्तर दोनों छान दिये। मुझे इस से दुःख अन्याय हुआ हो तो ?

इतने में जिस रसोइया को मैंने रक्खा था उसे किसी कारण-वश कहीं और चला जाना पड़ा। उसको मैंने मित्र की शुश्रूषा के लिए ही रक्खा था। इसलिए उसके बदले मैंने दूसरे रसोइये को

लगा लिया। यह बात मुझे बाद को सूझी कि वह बड़ा चलता पुरजा था। लेकिन वह इतना उपयोगी हो गया—मानो वह मेरे भले के लिए ही आया था।

इस रसोइया को रखे हुये मुश्किल से दो तीन दिन हुये होंगे कि उसने मेरे घर में मेरे इल्म के बाहर कुछ गड़बड़ मामला चलता हुआ देव लिया और उसने मुझे उस से आगाह करने का निश्चय किया। लोगों में यह बात फैल चुकी थी कि मैं विश्वास-शील लेकिन प्रामाणिक मनुष्य हूँ। इस कारण इस रसोइया को मेरे ही घर में होनेवाली गन्दगी भयंकर प्रतीत हुई।

मैं दफ्तर से दोपहर को १ बजे के वक्त खाना खाने के लिए घर जाया करता था। बारह बजे के करीब यह रसोइया हाँफता हुआ मेरे पास आया और मुझ से बोला: अगर आप कुछ देखना चाहते हों तो घर जल्दी चलिये। मैंने कहा—इसका क्या मतलब है? बता तो सही कि काम क्या है? इस बेला मेरे घर पर जाने और देखने के लिए क्या है?

वह कहने लगा—अगर आप न आवेंगे तो पछतावगे; और ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

उसकी दृढ़ता ने मुझ पर असर किया। अपने क्लर्क को साथ ले कर मैं घर गया। रसोइया आगे हो लिया।

घर पहुँचने पर वह मुझे छत पर ले गया। जिस कोठरी में वह साथी रहता था, उसकी ओर हाथ उठा कर बोला: उस कोठरी को जरा खोल कर देखिये।

मैं अब समझ गया। मैंने कोठरी का दरवाजा खटखटाया। जवाब नदारद! मैंने जोर से सांकल पीटी। दीवार तक हिल उठी। दरवाजा खुला। देखा कि अन्दर एक बदचलन औरत मौजूद है।

मैंने उस से कहा—बहिन, तू यहाँ से बस चली जा। अब कभी इस घर में पैर न रखना। मैंने उस साथी से कहा: आज से तुम्हारा और मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मैं खूब ठगा गया और बेवकूफ बना। मेरे तुम्हारे ऊपर विश्वास करने का यह एवज मुनासिब नहीं!

साथी गर्वान्ध हो गया और उसने मुझे यह धमकी दी कि मैं तुम्हारी सब बातें खोल दूंगा।



मैंने कहा — मेरी ऐसी कोई बात है ही नहीं कि जिसके दुल जाने का मुझे भय हो। अगर मैंने कुछ भी ऐसी बात की हो तो उसे खुशी से जाहिर कर देना। लेकिन तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध आज से बन्द।

साथी आर भी बिगाड़ा। मैंने अपने दफ्तर के बाबू से जो नीचे आंगन में खड़ा था कहा — तुम जाओ, सुपरिन्टेण्डेंट से मेरा प्लाम देना और उनसे कहना कि मेरे एक साथी ने मुझे दगा दिया है। उसे मैं अपने घर में रखना नहीं चाहता। लेकिन वह घर से निकलने से इन्कार करता है। कृपा कर के मुझे मदद मेजिये।

पाप गरीब है। क्योंकि मैंने उपरोक्त बात क्लर्क से कही, क्योंकि वह साथी डीला पड़ा; उसने मुआफी मांगी। उसने सुपरिन्टेण्डेंट के पास आदमी न भेजने के लिए इस्तजा की और फौरन घर से बाहर होना कुबूल कर लिया: घर छोड़ भी दिया।

इस घटना ने मेरी जिन्दगी की ठीक सफाई कर दी। इस बात को तो मैं अब साफ़ २ समझ सका हूँ कि यह साथी मेरे लिए मोह रूप और अनिष्ट था। इस साथी को रखने में अच्छाई करने के हेतु मैंने घुरे साधनों का अनुसरण किया था। मैंने नीम के पेड़ से आम पाने की आशा रखी थी। उस साथी का चालचलन ठीक न होते हुए भी मैंने मान लिया था कि वह मेरे प्रति वफादार है। उसको सुधारने का प्रयत्न करने में मैं स्वयं लगभग कलंकित हो गया। मैंने अपने हितेच्छुओं की सलाह का अनादर किया था। मोह ने मुझे अन्धा बना दिया था।

अगर कहीं उपरोक्त प्रकार से दैवयोगेन् मेरी आँख न खुल गई होती—मुझे घर्य को खबर न पडा होती, तो सम्भव है कि ओ स्वार्पण मैं कर सका हूँ, उसे करने में शायद समर्थ न हो पाता। मेरी सेवा हमेशा अधूरी रहती, क्योंकि वह साथी मेरी प्रगति को अवश्य रोकता। उसके लिए मुझे बहुत सा समय देना पड़ता। मुझे अँधेरे में रखने और कुमार्ग पर ले जाने की शक्ति उसमें थी।

लेकिन जिसका राम रखवाला हो उसका बाल बाँका कोई कैसे कर सकता है? मेरा विश्वास छुट था, इसलिए मेरी भूलों के होते हुए भी मैं उबरा और मेरे प्राथमिक अनुभवों ने मुझे सावधान बना दिया।

कौन कह सकता है कि उस रसोइया को ईश्वर ने ही न भेजा हो? उसे रसोई पकाना नहीं आता था। इसलिए वह मेरे यहाँ टिक न सकता। लेकिन उसके आये बिना मेरी जागृति और कोई न कर सकता था। और मुझे बाद को मालूम हुआ कि वह औरत मेरे घर में पहले पहल ही आई हो — वो बात न थी। लेकिन इस रसोइया की जैसी हिम्मत और किसकी हो सकती थी? साथी के ऊपर मेरा अनहद विश्वास था — इसे सब लोग जानते थे। उतनी सेवा करते ही रसोइया घर से विदा हुआ।

चलते समय उसने कहा — मैं आपके घर में नहीं रह सकता हूँ, आप थोड़े बने रहे। यहाँ मेरा काम नहीं है।

मैंने आग्रह न किया।

यह बात मुझे अब मालूम हो सकी कि उस क्लर्क के ऊपर मेरी शंका पैदा कराने वाला यही साथी था। मैंने उसके साथ न्याय करने का बहुतेरा प्रयत्न किया। परन्तु मैं उसे कभी सम्पूर्ण सन्तोष न दे सका। यह बात मुझे सदा दुःख देती रही। फूटा

हुआ बर्ताना बिना किसी तरह क्यों न जोड़ा जाय, उसका फूटापन नहीं मिट सकता और न वह साबत ही कहलाया जा सकता है।

(नवजीवन)

मोहनदास क मंचंद गांधी

## सूत की जाँच करने की घराऊ रीति

होईवा स्कूज के मुख्याध्यापक पूछते हैं कि सूत की जाँच करने का कोई सहज घराऊ तरीका है या नहीं? यहाँ एक उपाय बतलाया जाता है:

जहाँ तहाँ से ४ गज सूत ले लो। उसकी दो फीट घेराव की, एक फुट लम्बी, आंटी बना लो। उसे किसी खूंटो में टाँग दो जिस से ऐंठन न खुल जाय। दूसरे छोर पर तुले हुए बोझ लादते जाओ। यह देखो कि कितना भार देने पर लच्छी टूट जाती है।

टूटी लच्छी को किसी बहुत नाजुक कांटे पर तौलो। कोई १०० रत्ती का एक तोला होता है। अगर यह सूत कोई १८ रत्ती हो तो सूत १ अंक का है। अगर सूत की तौल १८ रत्ती से कम हो तो उसकी तौल का १८ रत्ती जो गुणनफल होगा, सूत का अंक भी उतना ही होगा। जैसे मान लो कि सूत का वजन हुआ ३ रत्ती। अब १८ रत्ती, ३ रत्ती का ६ गुणा है, इसलिए, सूत का अंक हुआ ६। अगर बहुत अच्छा कांटा और छोटे २ बाँट न मिल सकें तो, लच्छियों की लम्बाई बड़ी हो सकती है, मगर सूत को नुकसानी का कुछ ज्यादा खयाल न हो तब (टूटे सूत का दीये की बत्तियाँ वगैरह बनाने में उपयोग हो सकता है।) लच्छी की सुविधाजनक लम्बाई २१ गज या इसका गुणन फल जैसे ४२, ६३, ८४ गज होती है। नीचे के आंकड़े याद कर लेने चाहिए।

७००० ग्रेन = १ पौंड या १ रत्तल = ३८ १/२ तोला

१८० ग्रेन = १ तोला

८४० गज सूत = १ आंटी

७००० ग्रेन ÷ आंटी का वजन (ग्रेन में) = सूत का अंक

या ३८ १/२ तोला ÷ " " (तोला में) = " "

गज × १०  
या तोला × २१६ = सूत का अंक

सूत का अंक निकल आया। अब ताकत निकालना है। उसका पता दूसरे कोष्ठक से लगेगा:

$\frac{३१५ \text{ तोला} \times \text{सूत की लम्बाई}}{\text{अंक}} = \text{सौ सैकड़े जाँच}$

सूत की समानता निकालना:

अपनी आंटी में से जहाँ तहाँ से ६ लच्छियाँ निकाल कर उनका अंक निकलो।

सब के अंकों को जोड़ कर ६ से भाग दे दो। भाज्य फल ही औसत का अंक होगा।

अब सब से ऊँचे और सब से नीचे के अंकों का अन्तर निकाल लो।

$\frac{\text{अंतर} \times १००}{\text{औसत अंक}} = \text{फी सदी नाबरावरी}$

अब १०० में से असमानता का सैकड़ा घटा दो। समानता का फी सैकड़ा मिल जायगा।

जैसे, ६ लच्छियों के अलग २ अंक हैं—१६, १८, १५, २०, २२ और १७। इनका जोड़ है १०८ और औसत अंक =  $\frac{१०८}{६} = १८$



जाय, उसका  
कहालाया जा  
वन्द-गांधी  
नीति  
न की जाँच  
यहां एक  
फीट घेराव  
टी में टांग  
हुए बोझ  
लच्छी दर  
लो। कोई  
कोई १८  
तोल १८  
रती जो  
योग। जैसे  
१८ रती,  
६। अगर  
तो, लच्छी  
गी का कुछ  
स्तियां वगैरह  
जनक लम्बाई  
गज होती

२। अक्टूबर, १९२६

हिन्दी-मन्त्रजीवन

७५

सब से नीचा अंक है १५ और ऊंचा २२। इनका अन्तर है ७।

इसलिए  $\frac{7 \times 100}{96} =$  करीब ३९ असमानता

इसलिए  $100 - 39 = 61$  समानता हुई।

मोहनदास करमचंद गांधी

(यं० इ०)

### स्कूलों में तकली

बोर्डेवा की राष्ट्रीय पाठशाला में तकली प्रगति पर, नीचे दी हुई व्यावहारिक रिपोर्ट, प्रायः पूरी पूरी देने के लिए मैं पाठकों से माफ़ी माँगता हूँ:

“बोर्डेवा की राष्ट्रीय पाठशाला में तकली की प्रगति पर मैंने आपके पास एक रिपोर्ट, कोई तीन महीने हुए, भेजी थी। वह २९ जुलाई के ‘यंग इन्डिया’ में छपी थी। बाद के काम की रिपोर्ट नीचे दी जाती है:

महीना कितने दिन कुल औसत कुल सूत औसत औसत काम हुआ उपस्थिति उपस्थिति (४ फीट का) सूत अंक प्रति दिन फी तार) फी लडका

जून	१८	४१३	२३	७४७९	१८	६
जुलाई	२३	५७६	२५	१३८४३	२४	७३
अगस्त	२०	४८१	२४	१२२९३	२५*	८३
सितम्बर	२०	४१९	२२१	९०९८	२२१.७	१०

\* अगस्त में फी लडका औसत सूत का खाना सूत के अंक का खयाल करते हुए कुछ अधिक मालूम होता है। इसका कारण यह है कि १ ली अगस्त, (लोकमान्य तिलक दिवस) को लडकों ने २००० तार से भी अधिक काता। अगर उसे घटा दें तो ६ ठे खाने का अंक २५ न होगा २२ $\frac{१}{२}$  होगा।

× सितम्बर में खाना ४, और खाना ६, दोनों में अचानक बहुत घटी हो गयी है। स्थाने और होशियार लडके अपने अपने घर वालों को कृषिकर्म में सहायता देने के कारण अनुरस्थित थे। इसलिए इन दोनों खानों में इतनी कमी आ गयी। मगर इसके अलावा, सूत की अच्छाई और अंक में बहुत उन्नति हुई है।

सूत कानने और लपेटने के लिए सब मिला कर केवल आधा घन्टा समय दिया जाता है।

इसपर टीका टिप्पणी की कुछ विशेष जरूरत नहीं है।

“कतारों की अभी तक सब से अधिक गति है—आधे घन्टे में १४ अंक का ५६ गज। सबसे ऊंचे अंक का सूत होता है २९ अंक का: आधे घन्टे में ३० गज। सूत लपेटने का समय हर हालत में शामिल है।

“शुद्ध खादी पहनने वाले ६ लडके बराबर नियमित रूप से चर्खा-संघ को अपना सूत भेजते आ रहे हैं। वैज्ञानिक रीति से हम ने सूत की जाँच नहीं कर पायी है। स्थानाय धुनने वाले कहते हैं कि सूत काफी अच्छा होता है। एक जुलाई को यह सूत दिया गया है। हमें आशा है कि १५ दिनों में वह धुन जायगा। सूत की ताकत की यह एक व्यावहारिक जाँच होगी। सूत की ताकत और समानता की जाँच करने के लिए क्या कोई दूसरा सहज तरीका है?

“५ सेर (८० तोले का सेर) और ६५ तोले पूनियों का ४ सेर ३० तोला सूत तैयार हुआ है। ४९ तोले पूनियाँ बची

हैं और सिर्फ ६६ तोले पूनियाँ खराब हुई हैं। इनमें अधिकतर, नये सीखने वालों के द्वारा पहले महीने में ही खराब हुई थी। अब नुकसान दिन पर दिन कम हो रहा है।

“तकली वर्ग का ९ जन (शुरू से ही) से ३० सितम्बर तक का हिसाब नीचे दिया जाता है:

सम्पत्ति	र. आ. पा.	कर्म	र. आ. पा.
सूत १ $\frac{३}{४}$ सेर (लडकों ने चर्खासंघ को जो भेजा था)		रई, १ $\frac{३}{४}$ सेर ॥) सेर	०-१०-०
१॥) सेर के हिसाब से	२-३-०	धुनाई, (=) सेर पूनियाँ, अच्छी	०-७-६
सूत (पास में) १ $\frac{३}{४}$ सेर, १॥) सेर के हिसाब से	२-४-०	३ सेर १) सेर के हिसाब से	०-८-०
१ $\frac{३}{४}$ सेर, १॥) सेर के हिसाब से	२-०-६	४ $\frac{३}{४}$ सेर १) सेर के हिसाब से	५-५-०
परते पर सूत ३० तोला १॥=)		जोड़ ६-१४-६	
सेर के हिसाब से	०-९-९	नफा या वर्ग की कमाई	०-१५-०
पूनियाँ (स्कूल के शिक्षकों को जो लौटा दी गयी थी) ३९ तोला	०-९-९	जोड़ ७-१३-६	
पूनियाँ बची हुई १० तोला	०-२-६		
जोड़	७-१३-६		

“सूत की अच्छाई के अनुसार उसका दाम कूता जाता है। यह काम स्थानीय खादी केन्द्र (मलपुर) के मैनेजर करते हैं। उनके दाम से उसका मेल रहता है। नीची श्रेणी की पूनियाँ, नये सीखने वालों के काम में लायी गयीं।

“एक महीने के बाद धुनाई का भी काम शुरू कर दिया जायगा। तब तक लडकों का खेती के काम से फुरसत भी मिल जायगी। उस समय वर्ग की कमाई बढ जायगी।

“लडकों ने अपनी तकलियाँ खुद खरीदी थीं। दो आना एक तकली का दाम पड़ता था। इसलिए उनका दाम ऊपर नहीं जोड़ा गया है। अपना २ फालका या परेता भी वे आप ही बना लेते हैं, जिसके लिए केवल बाँस का एक २ फीट लम्बा टुकड़ा और दो मोटी २ छंटियों की जरूरत पड़ती है। इसका घेरा ४ फीट का होता है। खर्च इसमें कुछ नहीं लगता।”

स्कूल में धुनाई शुरू करने में कुछ भी देर न करनी चाहिए। किसी भी लडके या लडकी को पक्का कातने वाला तब तक नहीं कहा जा सकता, जब तक उसे धुनना और पूनियाँ बनाना न आता हो। इसका तो कोई कारण ही नहीं है कि अब तक लडके धुनना नहीं सीख लेते, तब तक शिक्षक ही उनके लिए क्यों न धुन दें। राष्ट्रीय पाठशालाओं के शिक्षकगण अपने को मुशहरा पाने वाला महज साधारण नौकर ही न समझें: राष्ट्रीय कोष और लडकों की नसिक, मानसिक, तथा शारीरिक भलाई के लिए वे उत्तरदायी हैं।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आश्विन सुदि १५, संवत् १९८३

## जटिल प्रश्न

एक महिला, जिन्हें मेरी बुद्धिमत्ता और सनाई में कुछ विश्वास है, मुझ से चंद पेचोदा सवाल पूछती हैं। मुझे उनके उत्तर टाल जाने में खुश होनी, क्योंकि मुझे इस बात का भय है कि कहीं अपने स्वर्गों की चिन्ता करने वाले कुछ पति क्रुद्ध हो कर वादविवाद न छेड़ बैठें। लेकिन शायद ऐसे पति मुझ पर दया ही बनाये रहेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि मैं स्वयं भी इसी कोटि के पतियों में से हूँ और मैंने बीच बीच में कुछ खटाट के हो जाते हुये भी ४० वर्ष सुखी दाम्पत्य-जीवन में काटे हैं।

पहला प्रश्न मौजू और बड़े मोके का है। इन प्रश्नों की मूल भाषा मराठी है। मैंने उनका स्वतंत्र अनुवाद ही दिया है।

१. क्या किसी पुरुष या स्त्री को राम नाम के उच्चारण मात्र से, राष्ट्रीय सेवा में भाग लिये बिना ही, आत्म-दर्शन प्राप्त हो सकता है? मैंने यह प्रश्न इसलिए पूछा है कि मेरी कुछ बहिनें यह कहा करती हैं कि हम को गृहस्थी के कामकाज करने तथा यदा कदा दीनदुखियों के प्रति दया भाव दिखाने के अतिरिक्त और किसी काम की जरूरत नहीं है।

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियों को ही नहीं, बल्कि बहुतेरे पुरुषों को भी उलझन में डाल रक्खा है और मुझे भी इसने धर्मसंकट में डाला है। मुझे यह बात मालूम है कि कुछ लोग इस सिद्धान्त के माननेवाले हैं कि काम करने की कतई जरूरत नहीं है और परिश्रम मात्र व्यर्थ है। मैं इस ख्याल को बहुत अच्छा तो नहीं कह सकता। अलवत्ता अगर मुझे उसे स्वीकार करना ही हो, तो मैं उसके अपने ही अर्थ लगा कर स्वीकार कर सकता हूँ। मेरी नम्र सम्मति यह है कि मनुष्य के विकास के लिए परिश्रम करना अनिवार्य है। वह जरूरी है बिना इस बात के ख्याल के कि उसका फल क्या मिलेगा? रामनाम या कोई ऐसा ही पवित्र नाम जरूरी है — महेज लेने के लिए ही नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि के लिए, प्रयत्नों को सहारा पहुँचाने के लिए और ईश्वर से सीधे २ रहनुमाई पाने के लिए। इसलिए रामनाम-उच्चारण कभी परिश्रम के बदले काम नहीं दे सकता, वह तो परिश्रम को अधिक बल-युक्त बनाने और उसे उचित मार्ग पर ले चलने के लिए है। यदि परिश्रम मात्र व्यर्थ ही है तब फिर घर गृहस्थी की चिन्ता क्यों? और दीनदुखियों को यदा कदा सहायता किस लिये? इसी प्रयत्न में भी राष्ट्र-सेवा का अंकुर मौजूद है। और मेरे लेखे राष्ट्र-सेवा मानवजाति की सेवा है। यहाँ तक कि कुटुम्ब की निर्विघ्न भाव से की गई सेवा भी मानवजाति की सेवा है। इस प्रकार की कौटुम्बिक सेवा राष्ट्र-सेवा की ओर अवश्य ही ले जाती है। रामनाम से मनुष्य में निर्मोह और समता आती है और रामनाम अपत्तिकाल में उसे कभी धर्मच्युत नहीं होने देता। गरीब से गरीब लोगों की सेवा किये बिना या उनके हित में अपना हित माने बिना मोक्ष पाना मैं असम्भव मानता हूँ।

दूसरा प्रश्न यह है: हिन्दू-धर्म में पतिपरायणता और पति के प्रति पत्नी का सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ही सर्वोच्च आदर्श माना गया है — स्वाह पति एक राक्षस हो या साक्षात् प्रेम का अवतार यदि पत्नी के लिए यही सही रास्ता है, तो क्या वह

पति के विकट विरोध के होते हुए भी राष्ट्रीय सेवा का हाथ में ले सकती है? या उसका धर्म अपने पति की बतल हुई सीमा के अन्दर ही काम करना है?"

सीता को मैं आदर्श पत्नी और राम को आदर्श पति मानता हूँ। लेकिन सीता राम की गुलाम नहीं थीं और न राम सीता के। राम सीता का बहुत ज्यादा ख्याल रखते थे। जहाँ सच्चे प्रेम होता है, वहाँ इस प्रकार का प्रश्न, जैसा कि पूछा गया है, उठता ही नहीं है। और जहाँ सच्चे प्रेम का अभाव होता है, वहाँ बन्धन कभी रहा ही नहीं है। आजकल की हिन्दू गृहस्थी एक अनूठी पहेली है। पति और पत्नी (विवाहित हो जाने पर) एक दूसरे के बारे में बिल्कुल नहीं जानते! शास्त्राज्ञा, रिवाज, तथा विवाहित दम्पतियों का निष्कण्ठक जीवन — ये चीजें अधिकांश हिन्दू घरों में शान्ति बनाये रहनी हैं। लेकिन जब पत्नी पति के विचार साधारणतया प्रचलित विचारों से भिन्न होते हैं, तब खटपट का भय रहता है। पति की बात तो यह है कि वह अपने को निरंकुश समझता है। वह अपने को इस बन्धन से मुक्त मानता है कि उसे अपनी जीवन-सहचरी की सलाह लेनी चाहिए। वह अपनी भार्या को अपनी विलक्षण मानता है और जेवारी पत्नी जो कि पति के उसके सर्वस्व होने पर विश्वास करती है, प्रायः अपने पर जन्न कर लेती है। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति से उबरने का रास्ता है। मोरारजी ने मार्ग दिखा दिया है। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब कि उसका उद्देश्य अधिक उच्च हो, तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले और नम्रता के साथ परिणाम का सामना करे।

तीसरा प्रश्न यह है: — यदि किसी स्त्री का पति मांसाहार हो और वह स्त्री मांस-भक्षण युग समझती हो तो क्या वह अपने मन में जमी हुई बात कर सकती है? और क्या वह प्रेममय उपायों से अपने पति का मांसाहार या उसी तन्हा की कोई बुरी आदत छुड़ाने का प्रयत्न करे? या उस पत्नी का फल यह है कि अपने पति के लिए गोश्त पकावे और जो कि उससे भी बुरी बात है, क्या वह उसे पति के कहने पर स्वयं खाने के लिए वाध्य है? अगर आप कहें कि पत्नी अपने मन के अनुसार काम करे तो संयुक्त गृहस्थी उस सूरत में क्यों चल सकती है जब कि घर में एक तो मजबूर करे और दूसरा हुकूमशह हो?

इस प्रश्न का कुछ उत्तर दूसरे प्रश्न के उत्तर में आ गया है। पति के गुनाहों में पत्नी का साथी बनना लाजिमी नहीं है और जब पत्नी किसी बात को बुरा समझती है, तब उसमें सही रास्ते पर चलने की हिम्मत होना ही चाहिए। लेकिन यह विचारते हुए कि गृहिणी का काम तो घर का कामकाज सम्हालना और इसलिए खाना पकाना भी है — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पति का कर्तव्य कुटुम्ब के लिए धन कमाना है, उस पर मांस पकाना उस हालत में लाजिमी है जब कि दोनों पहले गोश्त खाते रहे हों। और अगर किसी शाकाहारी कुटुम्ब में पति मांसाहारी बन जाय और अपनी पत्नी को गोश्त पकाने के लिए मजबूर करने की कोशिश करे, तो पत्नी पर यह वाध्य नहीं है कि वह ऐसी चीज पकावे जो उसके कर्तव्य भाव के प्रतिकूल हो। घर में शान्ति असौष्ट्य वस्तु है। लेकिन यह स्वयं तो ध्येय नहीं हो सकती है। मेरे लिए तो विवाहित अवस्था भी संयम की ठीक वैसी ही सूरत है जैसी कि अन्य कोई। जीवन कर्तव्य है — उम्मीदवारी है। विवाहित जीवन का मंशा यह है कि पारस्परिक लाभ इस संसार में भी हो और बाद के लिए भी। वह मानव-



२१ अक्टूबर, १९२६

हिन्दी-मधुजीवन

५७

जाति की सेना के लिए भी है। जब एक फरीक आत्मसंयम के नियमों का उल्लंघन करता है, तब दूसरे का हक हा जाता है कि वह उस बंधन को तोड़ दे। यहाँ नैतिक उल्लंघन से तात्पर्य है, न कि शारीरिक। इसमें तलाक शामिल नहीं है।

पत्नी या पति भले अलग हों—लेकिन उस उद्देश की पूर्ति के लिए, जिसके निमित्त वे विवाहित हुए थे। हिन्दू-धर्म पति पत्नी में से प्रत्येक को एक दूसरे के बिल्कुल समान मानता है। इसमें शक नहीं कि रिवाज कुछ और ही पड़ गया है—सो भी न मालूम कब से। लेकिन इसी प्रकार और ईदें दंपति भी तो हिन्दू समाज में घुम आये हैं।

यह मैं जरूर जानता हूँ कि हिन्दू-धर्म प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष पाने के हेतु, केवल जिसके लिए ही उसने जन्म पाया है, वही जिस मार्ग का अनुसरण करने की पूरी स्वतन्त्रता देता है।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

### अहिंसा के लिए कसर कसो

न्यूयॉर्क (अमेरिका) के समाचार पत्र 'नेशन' से एक छिन्न एक कतरन मेजते हैं। उसमें यह लिखा है:

“कुछ दिन हुए, (मई १९२४ के अखीर या २५ के शुरू में) चीन देश में रहनेवाले २५ अमेरिकन पादरियों ने पेकिंग के अमेरिकन मंत्रों के पाप निम्न-लिखित विनय-पत्र भेजा था:

“निम्न-लिखित अमेरिकन पादरी, चीन देश में भ्रातृत्व और शान्ति धर्म के प्रचारक के रूप में रहते हैं। हमारा काम है स्त्रियों और पुरुषों को ईसा के उस नये जीवन में लाना जिससे बन्धुत्व का प्रचार होता है और युद्ध के अवसर ही जाते रहते हैं। इसलिए हम अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करते हैं कि किसी भी प्रकार का सैनिक दबाव, विशेष कर के कोई भी विदेशी सैनिक शक्ति का उपयोग, हमारे या हमारी सम्पत्ति के रक्षार्थ न किया जाय। अगर हम कुछ शासन-विरुद्ध पुरुषों के हाथ कैद हो जायँ या वे हमें मार ही डालें, तभी हमें छुड़ाने के लिए न तो सेनाएं भेजी जायँ, न रुपया ही चुकाया जाय, और न दण्डस्वरूप धन ही माँगा जाय। ऐसी स्थिति हमने इसलिए पसन्द की है कि हमारा विश्वास है कि सत्य और शान्ति की स्थापना का उपाय यही है कि हम सभी दशाओं में सभी व्यक्तियों के साथ प्रेमव्यवहार करें, चाहे वे हमें कष्ट ही क्यों न देते हों और हम उसका बदला न लें।” अमेरिकन मंत्री ने उत्तर दिया कि चीन देश में अमेरिकनों की रक्षा की आवश्यकता के लिहाज से यह विनय असंगत है, इसलिए जरूरी मौकों पर न तो उचित कार्रवाई करने में किसी के प्रति कुछ छूट करना संभव है, न की ही जायगी।

यह उन उदाहरणों में से है जब कि दो परस्पर विरोध भास की बातें भी एक ही साथ सही होती हैं। उन बहादुर पादरियों के लिए दूसरी स्थिति सम्भव ही न थी, मगर इन दिनों बहुत कम लोग उसे स्वीकार करते हैं। यह भी तो शायद चीन देश की ही बात है कि कोई ३० साल हुए, पादरियों के एक दल ने लार्ड सैलिस्बरी के यहाँ हाजिर हो कर उनसे प्रार्थना की थी कि अनिच्छुक चीनियों के पास हमें अपना सन्देश पहुँचाने के लिए आप हमें अंगरेजी सरकार की सेना की सहायता दजिए? तब उस स्वर्गीय सज्जन लार्ड को कहना पड़ा था कि अगर आप अंगरेजी सेना की संरक्षा चाहते हैं तो आपको अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध के नियमों को भी मानना होगा और अपने धर्म-प्रचारोत्साह को कुछ दबाना होगा। उन्होंने पादरियों को यह याद दिलाया कि प्राचीन काल के पादरी लोग दुनिया के किसी भी किनारे पर जाते मगर

सिवाय ईश्वर के और किसी से रक्षा की उम्मीद नहीं रखते थे और अपने को बराबर खतरे में डाले रहते थे। न्यूयॉर्क के 'नेशन' के दिये हुए उदाहरण में, ये पादरी, इस समाचार के अनुसार, पुरानी पद्धति पर लौट गये हैं। अमेरिकन सरकार की जब तक यही सूरत है, तब तक तो वह वही जवाब दे सकती है, जो उनका जवाब देना कहा जाता है। यह दूसरी ही बात है कि उस एक मात्र जवाब से वर्तमान पद्धति का दोष झलकता है। अमेरिकन सरकार की प्रतज्ञा, उसकी नैतिक ताकत पर निर्भर नहीं है। वह उसकी पशु-शक्ति पर निर्भर है। किन्तु अमेरिका के नाममात्र के मान और नाम की रक्षा के लिए, उसकी सारी सैनिक-शक्ति का संग्रह ही क्यों किया जाय? इससे अमेरिका की इज्जत में कौन सा बड़ा लग जायगा, अगर २५ अमेरिकन बिना बुलाये अपना सन्देश सुनाने चीन देश में जायँ और वहाँ मार डाले जायँ? उनके उद्देश्य के लिए शायद सबसे बेहतर बात यही होती। आप बीच में पड़ कर अमेरिकन सरकार तो कष्ट सहन के नियम की पूर्ति में बाधा ही डाल सकती है। किन्तु अमेरिका अगर आत्म-संयम करे तो उसका अर्थ होगा कि दृष्टि-कोण ही बिल्कुल बदल गया है। आज नागरिकता की रक्षा का अर्थ है, कौमी ति गारत की रक्षा—जिसका दूसरा नाम है लूट खसोट। उस लूट खसोट में यह बात पहले ही मान ली जाती है कि अनिच्छुक लोगों के ऊपर अपनी तिजारत लाने में हम समर्थ हैं। इसलिए एक अर्थ में कौमें, मानों लुटेरों का गरोह बन गयी है जब कि उन्हें स्त्री-पुरुषों की वह शान्त जमाअतें होना चाहिए था, जिनमें वे मनुष्य-जाति के साधारण हित के लिए एकत्रित हुए हों। इस दूसरी हालत में उनकी ताकत गोले बारूद के व्यवहार-नैपुण्य पर निर्भर नहीं करती, किन्तु ऊँची नीतिमत्ता पर। उन २५ पादरियों का काम, पुनःसंगठित समाज या पुनःसंगठित राष्ट्रों तक की धूमिल छाया है। मुझे यह नहीं मालूम कि उन्होंने जीवन के सभी अंगों में अपने सिद्धान्त का पालन किया था या नहीं। यह बतलाने की जरूरत मुझे बिल्कुल नहीं है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध भी उनकी रक्षा करने को अमेरिकन सरकार के धमकी देते रहने पर भी बदला लेने के सभी प्रयत्नों का वे जवाब दे सकते थे—बल्कि उन्हें विफल तक कर सकते थे। मगर इसका अर्थ होगा, अपनी हस्ती को बिल्कुल गायब कर देना। अगर किसी को ताकत की जंजीर तोड़नी हो तो वह उन्हीं तरीकों से हो सकेगा जो आज के केवल पशु-शक्ति के पुजारियों के तरीकों से बिल्कुल भिन्न हों। इसे भुलाया नहीं जा सकता कि आज के पशु-शक्ति के पूजन में भी एक तत्व है और उसका समर्थक उसका एक इतिहास भी है। अगर उन्हें अहिंसा में अटल विश्वास हो तो उसके पक्षपतियों के, जो बहुत छोटी संख्या में हैं, उससे डरने की कोई जगह नहीं है, किन्तु इस बात में किसी कारण विश्वास की कमी मालूम होती है कि पशु-शक्ति के बिना भी समाज का संगठन कायम रखा जा सकेगा। मगर अगर केवल एक आदमी सारे संसार का विरोध कर सकता है तो दो या दो से अधिक आदमी मिल कर क्यों न करें? मैं जानता हूँ कि इसका क्या जवाब दिया गया है। हम लोगों में जो क्रान्ति धीरे-२ हो रही है, उसकी शक्तियों का पता केवल समय ही बतावेगा। जहाँ काम शुरू हो गया है वहाँ फल का अन्दाजा लगाना व्यर्थ का प्रयास होगा। जिनमें विश्वास होगा वे उस प्रारम्भिक स्थिति में ही काम शुरू कर देंगे—जब कि कुछ दिखलाने लायक फल नहीं जतलाये जा सकते।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी



## बालपत्नियों के आंसू

“बंगाल की एक हिन्दू महिला” लिखती हैं: मैं नहीं जानती कि हिन्दू-समाज की बाल-पत्नियों के पक्ष में लिखने के लिए मैं आपको किस प्रकार धन्यवाद दूं। मद्रास वाली घटना अपने हँस को अकेली नहीं है। एक वर्ष हुआ कि वैसी ही एक घटना कलकत्ते में हुई थी। उस लड़की की अवस्था केवल दस वर्ष की थी। अपने पति के साथ दो रात रह कर उसने पति के पास जाने से कतई इन्कार कर दिया। लेकिन एक दिन उसकी माँ ने उसे अपने पति को पान दे आने के लिए मेजा। शायद उस बेचारी लड़की ने सोचा कि मैं पान देते ही लौट आऊंगी। लेकिन उसके आदमी ने पान ले कर दरवाजा बन्द कर लिया और वह कमरे के बाहर न आ सकी। थोड़ी ही देर में एक दर्दनाक रोने की आवाज सुनाई दी। लड़की की माँ कमरे की ओर दौड़ी। जब दरवाजा खोला गया, तब लड़की मरी हुई पायी गयी। उसके सिर में बड़ी सख्त चोट आई थी।

आदमी पर मुद्दमा चला और उसे फाँसी का दण्ड मिला। कौन जानता है कि हमारे समाज में ऐसे कितने मामले अप्रकाशित रूप से नहीं हुआ करते हैं। मैं खुर ऐसे मामले जानती हूँ कि जिनमें बाल-पत्नियों ने सयानी होने के पहले पति से दूर रहने की चेष्टा की है।

लेकिन उनका पक्ष कौन लेगा? हमारे समाज में स्त्रियाँ सदा अपना दुःख, मौन और नम्रता के साथ झेलती हैं; किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति उनमें नहीं रही है। और हमारे पुरुष लोग, जिनमें असीम शक्ति है, सदा अपने ही सुख की बातें सोचा करते हैं और दुखिया स्त्री के आराम का ह्याल नहीं करते।

मेरी एक सहेली १० वर्ष की अवस्था में ब्याही गई। वह अपने पति के पास जाना नहीं चाहती थी। इसलिए पति ने एक सयानी लड़की से अपना दूसरा विवाह कर लिया। वह अभागिनी बाला आज पूर्ण युवावस्था में है और अपने पिता के यहाँ रहती है।

मैंने एक महिला से सुना है कि गाँवों में, नीच जातियों में पति अपनी बालपत्नियों को इसलिए पीटा करते हैं कि वे उनसे दूर रहने की कोशिश करती हैं और वे रात के समय अपने पति के शयनागार में आसानी से पहुँचाने नहीं जा सकतीं।

जहाँ पितृत्व की कोई सुगई नहीं और उनको अपने कष्ट स्वयं प्रकट करने का कोई मौका नहीं, वहाँ राक्षसी प्रथाओं का समर्थन करना आसान है।”

चाहे उपरोक्त चित्र सच हो अथवा अत्युक्तिपूर्ण, बात ठीक है। मुझे इसके समर्थन में साक्षी या प्रमाण खोजने की जरूरत नहीं है। मैं एक चिकित्सक को जानता हूँ, उनकी डाक्टरी खूब चलती है। उनकी पहली स्त्री मर गई। उन्होंने एक ऐसी छोटी उम्र वाली कन्या के साथ शादी कर ली है जो कि उनकी छहवीं जन्मिनी है। वे दोनों पति पत्नी की भाँति रहते हैं। मैं एक दूसरी मित्राल भी जानता हूँ: इसमें एक ६० वर्ष के विधुर शिक्षण-इन्स्पेक्टर ने एक ९ वर्ष की कन्या से पाणिग्रहण किया। हालाँकि सब लोग इस बेहूदा हरकत को जानते थे और उसे ऐसा मानते भी थे, लेकिन वह अपने पद पर बना रहा और सरकार तथा जनता उसकी ऊंगरी इज्जत भी करती रही। ऐसी और भी कई घटनाएँ अपनी तथा अपने दोस्तों की याददास्त से बतलाई जा सकती हैं।

उपरोक्त महिला का यह कथन ठीक है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों में किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति शेष नहीं रह गई है।

इसमें शक नहीं कि पुरुष ही मुख्यतः समाज की ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेवर हैं। लेकिन क्या स्त्रियाँ सारा दंष्ट्र पुरुषों के माथे मढ़ कर अपनी आत्मा में निरर्लीन रह सकती हैं? क्या पढ़ी लिखी स्त्रियों का अपने समाज की ओर — तथा पुरुष समाज के प्रति भी, क्योंकि वे उनको जननी हैं — यह कर्तव्य नहीं है कि वे सुधार का काम अपने ऊपर उठा लें? वह शिक्षा जिसे वे पा रही हैं किस काम की कि अगर विवाह के उपरान्त वे अपने पतियों के हाथ में बंधनपुनलियाँ बन जायँ और कम उम्र में ही बच्चे पैदा करने लग पड़ें? वे अगर चाहें तो अपने खातिर वोट्स के लिए लड़ सकती हैं। उसमें न तो बहुत समय ही जाता है और न कुछ कष्ट ही होता है। वह उन्हें निर्दोष आनन्द का साधन प्रस्तुत करता है। लेकिन ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं जो बालपत्नियाँ और बालविधवाओं के बीच काम करें और जो तब तक न स्वयं चैन लें और न पुरुषों को लेने दें जब तक कि बालविवाह असंभव न हो जाय और जब तक प्रत्येक बालका में इनना साधन न आ जाय कि वह परिपक्व अवस्था में उसकी ही पसंदगी के वर के साथ विवाह करने के सिवा शेष दशाओं में विवाह करने से इंकार कर सकें?

( यं० इ० )

मोहनदास करमचंद गाँधी

भैंसे के विषय में

काका ने चुचुंसे से (अपने विश्रामस्थल से) और चीजों के साथ साथ कुछ मराठी दन्तकथा भी लिख भेजी थी, जिस से मेरे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि जब लोगों को भैंसा रखना भार मालूम पड़ने लगा तो, उसका नाश करने के लिए उसे बुरे २ नामों से पुकारने लगे। एक पुःानी मराठी कहावत है:

गाय गायत्री। भदिषी सवित्री।

बल ब्राह्मण। रेडा पापी ॥

‘गाय गायत्री है और भैंस सावित्री। बेल ब्राह्मण है और भैंसा पापी जीव।’

इसके अलावा एक और दन्तकथा प्रचलित है कि दक्षिण के गाँवों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी पहले जन्म में ब्राह्मण की लड़की थी। ब्राह्मण ने एक ऐसे आदमी को उसे विवाह दिया जो चारों वेदों में निष्णात था और सभी प्रकार से ब्राह्मण सा मालूम होता था। उस लड़की को पीछे चल कर पता चला कि उसका पति अंत्यज जाति का था। लड़कपन में किसी ब्राह्मण के दरवाजे पर झाड़ू देते २ उसने वेद-मन्त्र सुन सुन कर याद कर लिये थे। सुन्दर और बुद्धिमान होने के कारण उसने काल पा कर ब्राह्मणोचित सब कर्म और संस्कार इत्यादि भी सीख लिये। इस प्रकार कन्या के पिता को धोखा दे कर वह एक सच्चा और अच्छा ब्राह्मण बन गया। जब लड़की को इसका पता चला तब अपनी अपवित्रता का विचार कर उसका दिल टूट गया। वह सीधे अपने पिता के पास पहुँची और उन से पूछा कि अगर कोई मिट्टी का बरतन अपवित्र हो जाय तो उसे कैसे शुद्ध करना चाहिए? उसके सवाल का सही अर्थ न जान कर, पिता ने सीधा जवाब दिया कि मिट्टी का बरतन अशुद्ध होने पर केवल आग में जला कर ही शुद्ध बनाया जा सकता है। लड़की घर लौट आयी और चिता सजा कर उसी में जल मरी। अपने इस सत्य के प्रताप से वह लक्ष्मी हुई और अब घर घर पूजी जाती है। वह ब्राह्मण मरने पर भैंसा हुआ। इसीलिए हर साल लक्ष्मी की भैंसे की बलि चढ़ायी जाती है।

( यं० इ० ) दे० बा०



## खादी प्रदर्शिनिया

खादी प्रदर्शिनियों में बिहार मानों कमाल हासिल कर रहा है। नीचे जमशेदपुर को एक प्रदर्शिनो की, जो कि बिहार की १४ वीं प्रदर्शिनी है, बिल्कुल हाल में आई हुई रिपोर्ट दी जा रही है।

बिहार प्रान्तीय खादी विभाग की चौदहवीं प्रदर्शिनी जमशेदपुर के तिलक पुस्तकालय-हाल में हुई। वह १५ सितम्बर सन् १९२६ से २३ वीं सितम्बर तक खुली रही। मिस्टर सी. एफ. टेम्पल ने (वहाँ की 'टाटा आइरन एंड स्टील वर्क्स' के चीफ इंजिनियर और प्रबन्धक) ने उसका उद्घाटन प्रतिष्ठित और सब जगहों से आये हुए लोगों के सामने किया। जो लोग उपस्थित थे, उन में से खास खास के नाम ये हैं:

श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, मि० घोष, श्रीयुत और श्रीमती के० एस० पाण्डाले, श्रीयुत और श्रीमती बोस, रायबहादुर डाक्टर एस० चक्रवर्ती, मिस्टर और मिसेज जोन्स, रेवेरेण्ड ब्राउन और बाबू जोगेन्द्र नाथ डे।

उद्घाटन करते समय मिस्टर टेम्पल ने अपने भाषण में कहा कि खादी आन्दोलन के मुझे अच्छा लगने का खास कारण यह नहीं है कि उस से अमुक प्रकार की चीज तैयार होती है, बल्कि यह कि उसका मंशा उस बच्चे हुए कालतू समय का उपयोग करना है जो कि भारत में प्रत्येक किसान को रहा करता है। जमशेदपुर जैसे कारखानों वाले शहर में, जिनमें कि आदमियों के पास भरपूर काम रहता है, शायद चर्खा बहुत आगे न बड़े, हालांकि मेरा ख्याल है कि यहाँ भी चंद ऐसे लोग निकल आवेंगे जो कि अपना फुरत का वक्त चर्खा चलाने में बितावेंगे। आक्कल के भारतीय किसानों का सब से बड़ा दोष यह है कि जब फसल खूब तैयार होती है, तब वे फसल के बाकी महीनों में कुछ करना पसन्द नहीं करते और इस कारण उनकी आर्थिक उन्नति में बहुत बाधा पहुँचती है। अगर चर्खे से उनको अपने साधारण रहन सहन को बेहतर बनाने का जोश पैदा हो और वे अपना कालतू वक्त, जिसे कि वे अब निठलेपन में गुजारते हैं, किसी फायदेमन्द काम में लगा सकें तो खादी की चहल को कुछ श्रेय प्राप्त होगा। प्रदर्शिनी में आनेवाले दर्शकों की संख्या लगभग दस हजार थी। (इस संख्या में महिलायें भी शामिल हैं)। कुल बिक्री ४५४२।।१ की हुई और कुल खरीदार ११५० थे।

जो जोश इस प्रदर्शिनी से पैदा हुआ वह इतना आकर्षक था कि वहीं २० वीं और २१ वीं सितम्बर को दूसरी प्रदर्शिनी पादरी रेवेण्ड ब्राउन के द्वारा की गई। उसे मिसेज एलेकजेंडर ने, जो कि टाटा कंपनी के मुख्य प्रबन्धकर्ता की धर्मपत्नी हैं, खोला था। इसमें आनेवाले दर्शक मुख्यतया योरोपियन लोग थे।

कलकत्ते के खादी-प्रतिष्ठान ने भी अपनी चीजें मेजो थीं। श्रीयुत दुर्गा भट्टाचार्य ने लैन्टर्न-लेक्चर के द्वारा यह दिखलाया कि किन किन कारणों से हिन्दुस्तान का आर्थिक और शिक्षा-प्रबन्धी पतन हुआ और उसके उत्थान तथा पुनरुज्जीवन के उपाय क्या क्या हैं। शहर के भिन्न २ भागों में बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने जमशेदपुर की सबकों पर घूम घूम कर खादी बेची। यह प्रदर्शिनी ऐसे अवसर पर हुई थी जब कि टाटा कंपनी के कर्मचारी लगभग अपनी २ पूरी तनख्वाहें खर्च कर चुके थे। कई मित्रों के बार २ कहने पर यह निश्चय किया गया था कि

जमशेदपुर में अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में दूसरी प्रदर्शिनी फिर की जाय।

अहमदनगर में (महाराष्ट्र में) भी एक सफल प्रदर्शिनी की गई थी। यह ११ वीं से १९ वीं सितम्बर तक खुली रही। जो रिपोर्ट मेरे सामने है, उसमें लिखा है कि इस प्रदर्शिनी में सेठ जमनालाल बजाज, मि० बी० जी० हार्निमैन, श्री० खडलीकर, श्री० जमनादास मेहता, श्री० बी० बी० दास्ताने, मिस्टर सी० बी० वैद्य, श्री० शंकरराव लवाटे, श्री० वामनराव जोशी और डा० साठे भी थे। दर्शक लोग लगभग दस हजार की संख्या में आये थे और सभी श्रेणी के लोग उपस्थित थे। नगद बिक्री ४००० रु. की हुई।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## कांग्रेस प्रदर्शिनियां

पहले, प्रदर्शिनियां अ० भा० कांग्रेस का एक अंग बन गयी थीं। बाद को वे बन्द हो गईं। अहमदाबाद कांग्रेस के अवसर पर प्रदर्शिनो का होना फिर शुरू किया गया और तब से बराबर साल व साल तरकी पकड़ती जा रही हैं। इन प्रदर्शिनियों में खद्दर ही खास चीज रहा करती है। खद्दर के साथ २ उन सब हस्तकियाओं का भी प्रदर्शन होता है, जिनके द्वारा कपास खद्दर के रूप में परिवर्तित हो कर हमारे सामने आती है। इन प्रदर्शिनियों में केवल उन्हीं वस्तुओं को स्थान मिलता रहा है जो शुरू से आखिर तक हिन्दुस्तान में ही बनाई जाती हैं। इसलिए इन प्रदर्शिनियों के प्रबन्धकर्ताओं ने नाममात्र की स्वदेशी घड़ियों या हारमोनियमों को, जिनका प्रत्येक पुर्जा बाहर से भंग-वाया जाता है, प्रदर्शिनियों में शामिल नहीं होने दिया है। मिलों का तयार किया हुआ सूत और कपड़ा भी नहीं लिया है। इन प्रदर्शिनियों का मुद्दा तो यही है कि उन चीजों को प्रोत्साहन मिले जिनकी बेकदरी की गई है और जो प्रोत्साहन के पात्र हैं। शायद ही कोई मनुष्य ऐसी लकड़ियों के गठनों को प्रदर्शिनी में रखे, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जानता है और जो हर किसी के इस्तेमाल में आती हैं। लेकिन ऐसे काठ का प्रदर्शन हो सकता है जिन में कोई ऐसी बड़ी खासियत है जिसे लोगों के ध्यान में लाने की जरूरत है। मामूली लकड़ियों के गठनों को निकाल देते हैं — किसी द्वेष के कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि उनके रखने से देखनेवालों का ध्यान बिल्कुल सादी तथा ऐसी लकड़ी के बीच बँट जायगा, जिसे कि लोगों के सामने लाना चाहिए और जिसे मिटने न देना चाहिए। इसलिए जब एक पत्र-प्रेषक ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि आसाम कांग्रेस कमेटी ने ऐसी वस्तुएं प्रदर्शिनो में शामिल कर ली हैं जो कि पुतलीघरों के सूत से बनी हैं या मशीन-करघों से बुनी गई हैं, तब मुझे आश्चर्य हुआ। इस प्रकार की (यानी गोहाटी कांग्रेस में सम्मिलित की जानेवाली) चीजों में विलायती सूत या कपड़े तक को भी स्थान दिया गया था। मैंने वहाँ की स्वागतकारिणी कमेटी के नाम तार भेजा। पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि कमेटी ने फौरन जवाब में यह लिखा कि मिल के सूत की चीजें इत्यादि भूल से ले ली गई थीं और फौरन ही वे बाहर की जा रही हैं। मैं उक्त कमेटी के सदस्यों को उनके इस कुबूल करने तथा भूल को सुधारने में तत्परता दिखाने के लिए मुबारकबाद देता हूँ। मैं यहाँ यह भी बतला देना चाहता हूँ कि अन्य वस्तुओं का वर्णन भी इतना असंदिग्ध और अनिश्चित है कि उसके अन्तर्गत करीब २ हर एक चीज शामिल की जा सकती है।



यदि कांग्रेस प्रदर्शिनियों का अभीष्ट यह है कि लोगों की जानकारी बढ़े, वे शिक्षा पावें और झोपड़ों के धन्धों को प्रोत्साहन मिले तथा लोगों को यह मालूम हो कि खदर की शक्यता कितनी है, तो गत प्रदर्शिनियों की बांधी हुई मर्यादा का पालन कड़ाई के साथ करना चाहिए।

(पृ० ६०)

मो० क० गांधी

## अहिंसा

‘जीव-दया?’ शीर्षक लेख मैंने जब लिखा तभी मैं समझता था कि मैं एक बड़े भारी उपाधि मोल ले रहा हूँ, लेकिन वह अनिवार्य कार्य था।

अब मेरे पास रोष भरे पत्र आने शुरू हो गये हैं। तीन भाइयों ने तो मुझ से रात को ऐसे समय बैठ की जब कि बड़ी कठिनाई से मुझे शान्ति लेने का समय मिला था। उसे भंग कर, दया-धर्म का क्षण भर के लिए त्याग कर के, उन्होंने मुझे अहिंसा की चर्चा में फँसाया। जीव-दया के नाम पर वे मुझसे मिलने आये थे। उनसे मिलने से मैं इन्कार कैसे कर सकता था?

मैं उनसे मिला। उनमें से एक भाई मैंने मैने कोध, कटुता और साहस देखा। उनकी मेरे मन पर ऐसी छाप पड़ी कि मुझसे समाधान कराने के बदले मुझे वे शिक्षा देने आये थे। मुझे सुधारने का अधिकार सभी किसी को है, किन्तु सुधारकों को मेरी न्यूनता को तो समझ ही लेना चाहिए। इन भाइयों ने ऐसा नहीं किया था। इसमें उनका दोष नहीं था। अब तो यह दोष व्यापक बस्तु हो पड़ा है। यह अधोरता हिंसा का लक्षण है। इसलिए उनकी अधोरता मुझे खटकी।

वे जैन होने का दावा करते थे। जैन धर्म का मैंने कुछ अभ्यास किया है। जैन धर्म में अहिंसा को मैंने जुदे रूप में ही देखा है। इस भाई में मैंने उसका वक्र रूप देखा। कुछ जैनो को अहिंसा का इन्तारा नहीं मिला है। अहिंसा किसी एक धर्म का खास लक्षण नहीं है। धर्म-मात्र में अहिंसा है। उसका अमल सभी धर्मों में समान रूप से नहीं होता।

मुझे ऐसा नहीं लगा कि इस समय दूसरों की वनिस्वत जैन लोग ही अहिंसा का अधिक अमल करते हैं। जैनो के साथ मेरा परिचय तो इतना पुराना है कि बहुत लोग मुझे जैन ही जानते हैं। महावीर दया की — अहिंसा की — मूर्ति थे। मेरी इच्छा उनके भक्तों को भी वैसा ही देखने की है। वह इच्छा सफल नहीं होती है।

अहिंसा का एक आवश्यक अंग है तो नाना जीवों की रक्षा जरूर, मगर उसी में इस धर्म की समाप्ति नहीं होती, उस से तो वह शुरू ही होता है। किन्तु रक्षा का अर्थ केवल न मारना ही नहीं है। जीवों को कष्ट देना और जिन्हें मरना जरूर है, उनकी अनावश्यक उत्पत्ति में सीधा या अप्रत्यक्ष भाग लेना भी हिंसा ही है।

कुत्तों की वृद्धि अनावश्यक है। भटकते हुए कुत्ते समाज के लिए हानिकारक हैं और उनको संख्या बढ़ने में समाज की हस्ती को जोखिम है।

शहर में या गाँव में, कुत्ते को अगर सुख से रखना है तो एक भी बेमालिक का कुत्ता न दिखाई पड़ना चाहिए। जिस प्रकार केवल पालतू गाय भैंस ही देखने में आती हैं, उसी प्रकार केवल पालतू कुत्ते ही देखने में आने चाहिए। जीव-दया-मण्डलों को इस प्रश्न का धार्मिक निर्णय करना चाहिए।

बेमालिक कुत्तों को क्या पाला जा सकता है? अगर पाला न सके तो क्या पिंजरापोल बनावें? अगर दो में से एक भी उपाय सम्भव न हो, तो उन्हें मार डालने के सिवाय कोई दूसरा उपाय मैं नहीं देखता।

हम आँख मूंद कर, देख कर भी अनदेखी करें तो इसमें अहिंसा नहीं है, न विचार, न विवेक ही। जब जब कुत्तों का उपद्रव हो, तब तब मनुष्य के हाथों उन्हें मरना ही है। गृहस्थ-धर्म में मैं इसे अनिवार्य समझता हूँ। वे जब तक बौरा न जायें तब तक इसके लिए राह देखने में उन पर कुछ दया नहीं होती। अगर कुत्तों की सभा की जा सकती होती तो वे क्या विचार करते, इसकी कल्पना हम अपने साथ तुलना कर के कर सकते हैं। जैसे जैसे जीते रहना हम कभी पसन्द न करेंगे। हम में बहुत आदमी ऐसा काम करते हैं जिसे सद्गुण नहीं कहा जा सकता। चतुर मनुष्यों की सभा ऐसा ठहराव नहीं करेगा कि हम मनुष्य एक दूसरे के साथ पागल या बेमालिक कुत्ते के समान बरताव करें। जिस प्रकार कुत्तों के मालिक हम बने फिरते हैं, उसी प्रकार अगर कोई प्राणी हमारे ऊपर भी सरकारी करता हो तो उससे हम क्या आशा रखेंगे? हम क्या ऐसा न चाहेंगे कि हमें कुत्तों के ऐसा रखने के बदले अगर वह मार हा डालें तो अच्छा है? भटकते हुए कुत्ते को रोटी का एक टुकड़ा या जूठा दे कर कुत्ते का जाति से हम द्रोह करते हैं और अपने पड़ोसी से हिंसा करते हैं।

आप दुःख सह कर भी कुत्तों को जीने देने का धर्म है। किन्तु वह धर्म उस गृहस्थ के लिए नहीं है, जिसे जीने की इच्छा है, जो वंश-वृद्धि करता है और जिसके ऊपर संसार चलाने का भार है। गृहस्थाश्रमी तो थोड़े कुत्तों को ही जिलाने का मध्यम मार्ग पकड़ सकता है।

जिन प्राणियों को हम पाल रहे हैं, वे जंगली प्राणी थे। भैंस तो एक इसी देश में पाली जाती है। जंगली प्राणियों को पालने में पाप है, क्योंकि उससे मनुष्य अपना स्वार्थ-साधन करता है। गाय भैंस का हम जो पालन करते हैं, उसमें उनपर कुछ दया नहीं करते। अपने स्वार्थ के लिए ही उन्हें हम पालते हैं। इससे एक भी गाय या भैंस को छुड़ा नहीं घूमने देते। वही धर्म कुत्तों के लिए भी लागू है। इससे मेरा खास अभिप्राय यह है कि अगर हम शुद्ध जीव-दया धर्म का पालन करना चाहते हों तो, ऐसा कानून बनना चाहिए कि जिसका जो जा कुत्ता हो, वह उसे अपने कब्जे में रखे और जो कुत्ता अमुक समय के बाद लावारिष पाया जायगा, उसे मार डाला जायगा।

महानज लोग अगर सचमुच कुत्तों के ऊपर तरस खाते हों तो उन्हें कुत्तों पर कब्जा कर लेना चाहिए और जो कोई पालना चाहें तो उनमें कुत्ते बाँट देना चाहिए। गायों की तरह कुत्तों का भी संवय करना, मुझे तो अशक्य मालूम होता है।

परन्तु कुत्तों के सम्बन्ध का एक शास्त्र ही है। वह शास्त्र पश्चिम के लोगों ने तैयार किया है। कुत्तों का पालने की विद्या, उन्होंने ढूँढ़ है। उनके पास से वह शास्त्र सीख कर, उसका अगर कोई उपाय मिले तो उसे करना उचित है। यह काम धोरज, विवेक और उद्यम के बिना नहीं हो सकता।

इतना तो कुत्तों के विषय में हुआ। किन्तु अहिंसा धर्म विशाल क्षेत्र है। उसका विशेष विचार फिर कभी करूँगा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

अहिंसा

वर्ष ६

सुर

स्व

स्व

दक्षिण

लोगों को शेष था।

आने की काल तक अच्छी चल

की आवश्यक

वर्षों को ल

किया। स्व

यह भी स

भी हो स

लोकमत वि

करेगा। त

तक वह न

लेकिन

विश्व-मंड

पदों: आ

में से भी

के काम

करनेवाले

मन हरण

योग्य थे

थी ही।

को मंत्री-

काम उन्हें

कि यह

विवेक के

और सब



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

अहिंसा (२)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ११ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, कार्तिक वदि ८, संवत् १९८३

गुरुवार, २८ अक्टूबर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २४

स्वदेश-यात्रा

दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए मुझे तीन वर्ष बीत चुके थे। लोगों को मुझे पहिचाना शेष था और उनका मुझे भी पहिचानना शेष था। सन् १८९६ ई० में मैंने छः माह के लिए हिन्दुस्तान आने की छुट्टी माँगी। मैंने देखा कि मुझे दक्षिण अफ्रीका में बहुत काल तक रहना पड़ेगा। यह कहा जा सकता है मेरी वकालत अच्छी चलती थी। सार्वजनिक काम के लिए लोग मेरी उपस्थिति की आवश्यकता समझते थे। मुझे भी लगती थी। इसलिए बाल-बच्चों को ला कर मैंने दक्षिण अफ्रीका में सकुटुम्भ रहने का निश्चय किया। स्वदेश आना मुझे दुरुस्त मालूम हुआ। और साथ २ ही यह भी ख्याल किया कि मेरे देश आने से कुछ सार्वजनिक काम भी हो सकेगा। ऐसा मालूम हुआ कि देश में पहुँच कर वहाँ लोकमत शिक्षित करने से सवाल लोगों में अधिक दिलचस्पी पैदा करेगा। तीन पाउण्ड का कर तो मानो नसूट का रोग था—जब तक वह न मिटे, तब तक शान्ति होना असम्भव था।

लेकिन मैंने सोचा कि अगर मैं देश जाऊंगा तो कांग्रेस तथा शिक्षा-मंडल का काम कौन उठावेगा? दो पुरुषों के ऊपर दृष्टि पड़ी: आदमजी मियाखान और पारसी रस्तमजी। अब व्यापारियों में से भी कुछ लोग काम करने के लिए आगे बढे। लेकिन मंत्री के काम का भार उठा सकें—इस प्रकार नियमित रूप से काम करनेवाले तथा दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुए हिन्दुस्तानियों का मन हरण करनेवाले उक्त दो सज्जन प्रथम पंक्त में गिने जाने योग्य थे। मंत्री को अंग्रेजी के सामान्य ज्ञान की जरूरत तो थी ही। उपरोक्त दो सज्जनों में से मैंने मरहूम आदमजी मियाखान को मंत्री-पद देने की कांग्रेस से सकारिश की और उसने मंत्री का काम उन्हें देना स्वीकार भी कर लिया। अनुभव से मालूम हुआ कि यह चुनाव बहुत ठीक हुआ था। अपने माधुर्य, उदारता और विवेक के बल से सेठ आदमजी मियाखान ने सब को सन्तुष्ट किया और सब को यह विश्वास करा दिया कि मंत्री का काम निभाने के

लिए वकील वैरिस्टर की या डिप्टी पाये हुए बहुत अंग्रेजी जानने वाले आदमी की जरूरत नहीं है।

सन् १८९६ ई० के बीच मैं मैं 'पोंगोला' स्टीमर पर सवार हो कर यहाँ आने के लिए रवाना हुआ। इस स्टीमर को कलकत्ते ठहरना था।

स्टीमर में मुसाफिर बहुत ही कम थे। उनमें दो अंगरेज थे। उनके साथ मेरा खूब परिचय हो गया। उनमें से एक के साथ शतरंज खेलने में मैं नित्य एक घण्टा गुजारता था। उस जहाज के डाक्टर ने मुझे 'टैमिल शिक्षक' की एक प्रति दी। और मैंने टैमिल पढ़ना शुरू कर दिया।

मैं नैटाल में देखचुका था कि मुसलमानों के साथ अधिक निकट सम्बन्ध रखने के लिए मुझे उर्दू सीखना चाहिए। और मद्रासी हिन्दुस्तानियों के साथ भी संबंध घनिष्ठ करने को तैमिल भाषा सीखना चाहिए।

मेरे साथ उर्दू पढ़नेवाले उस अंग्रेज मित्र की प्रार्थना करने पर डेक पर खड़े हुए मुसाफिरों में से एक उर्दू का अच्छा मोलवी मिल गया। मेरा हिन्दी का अभ्यास ठीक ठीक चलने लगा। उस अंग्रेज अफसर की स्मरणशक्ति मेरी से तेज थी। उर्दू शब्दों के पढ़ने में मुझे कठिनाई पड़ती, लेकिन उसका यह हाल था कि एक बार शब्द सीख लेने के बाद वह कभी उसे न भूलता। मैं अधिक परिश्रम करने लगा, लेकिन उस अंग्रेज की बराबरी न कर पाया।

तैमिल भाषा का अभ्यास भी खूब करता रहा। यह भाषा पढ़ने में वहाँ कोई सहायता न मिल सकती थी। तैमिल सीखने के लिए जो पुस्तक मेरे पास थी, वह इस अच्छे ढंग से लिखी हुई थी कि जिसे पढ़ने में बाहरी मदद की कोई खास जरूरत न थी।

मेरी उम्मीद थी कि यह शुरू किया हुआ अभ्यास मैं स्वदेश पहुँचने के बाद जारी रख सकूँगा, लेकिन सो न बन सका। सन् १८९३ ई० के बाद मेरा पढ़ना लिखना तथा अभ्यास ज्यादातर जेल में ही हुआ। इन दोनों भाषाओं का ज्ञान मैंने बढ़ाया अवश्य—लेकिन जेल में: तामिल भाषा का दक्षिण अफ्रीका की जेलों में, तथा उर्दू का यरवदा में। तैमिल बोलना तो कभी न सीखा, लेकिन बाँचने की जो मदद ली थी, सो भी अभ्यास के अभाव के कारण जंग खाती जा रही है।



इस अभाव का दुःख मुझे अब तक साल रहा है। दक्षिण अफ्रीका के मद्रासी हिन्दुस्तानियों से जो प्रेम मुझ पर दर्शाया — उस प्रेम का स्मरण मुझे प्रतिकूल बना रहता है। उनकी भ्रष्टा, उनके उद्योग, उनमें से बहुतों के स्वार्थरहित त्याग की याद, जब कभी मैं किसी तैमिल या टेलगू को देखता हूँ, तब आये बिना नहीं रहनी। वे सब अधिकांश मैं निरक्षर थे। इन लोगों में जैसे निरक्षर पुरुष थे वैसी ही स्त्रियाँ। दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई ही निरक्षर लोगों की थी, उसमें लड़नेवाले लोग भी निरक्षर थे। वह लड़ाई गरीबों की थी और उसमें गरीब ही जूटे।

इन भोले तथा भले हिन्दुस्तानी भाइयों का चित्त चुराने में मुझे भाषा के कारण कोई रुकावट उत्पन्न नहीं हुई। उनकी दूटी फूटी हिन्दुस्तानी बोल आती थी। दूटी फूटी अंग्रेजी भी जानते थे — बस, हमारा काम चलता जाता था। लेकिन मैं तो उनके प्रेम के बदले के तौर पर तैमिल और टेलगू भाषायें सीखना चाहता था। तैमिल तो कुछ २ आ गई। लेकिन टेलगू सीखने का प्रयत्न हिन्दुस्तान में आ कर किया। पर, ककहरा जान लेने के बाद मैं आगे न बढ़ सका।

मैंने तैमिल और टेलगू की आशा छोड़ दी। अब तो शायद वह भाग्य से ही आ सकती है। इसलिए मैं इस प्रकार की आशा कि ये द्राविड भाषा-भाषी लोग हिन्दुस्तानी सीखेंगे, कर रहा हूँ। दक्षिण अफ्रीका के द्राविड मद्रासी तो जहर थोड़ी बहुत हिन्दी बोलते हैं। मुश्किल तो अंग्रेजी जाननेवालों की है। मानों अंग्रेजी का ज्ञान अपनी भाषाओं के सीखने में बाधा रूप होता है।

यह तो विषयान्तर हो गया। मुसाफिरी का हाल पूरा कहूँ, तो ठीक है।

‘गोआला’ के जहाज के अधिकारी (कप्तान) का परिचय देना शेष है। हम लोग आस में मित्र हो गये थे। यह भला कप्तान श्रीमथ ब्रदर सम्प्रदाय का था। जलयान-विद्याज्ञान के बलिष्ठत आध्यात्मिक विद्या की बात हम दोनों के बीच में अधिक हुई। उसने कहा कि नीति और धर्मश्रद्धा में फर्क है। उसकी दृष्टि में बाइबिल का शिक्षण जरा भी अगम्य बात न थी। बाइबिल की विशेषता उसकी सरलता में थी। उस मित्र का ख्याल था कि बालक, स्त्री, पुरुष इत्यादि के — जो कोई, ईसा मसीह तथा उसके बलिदान में विश्वास रखेगा उसके पाप धुल जायेंगे। इस प्लीमथ ब्रदर ने मेरे प्रिटोरिया वाले ब्रदर के परिचय को ताजा कर दिया। जिस धर्म में नीति की तावेदारी करनी पड़ती है — ऐसा धर्म उसके लिए नीरस था। इस मित्र के साथ इस धर्म-चर्चा के लिए मेरा निरामिष आहार उत्तरदायी था। मैं मांस क्यों न खाऊँ — गोमांस खाने में क्या दोष है — क्या ईश्वर ने पेड़ पत्तों की तरह पशुपक्षियों को भी मनुष्य के आनन्द के लिए नहीं सिरजा है? इस प्रकार की प्रश्नमाला आध्यात्मिक वार्तालाप शुरू किये बिना रहती ही नहीं।

हम लोग एक दूसरे को समझा न सके। मैं अपने इस विचार में दृढ़ था कि धर्म और नीति एक ही वस्तु की द्योतिका हैं। लेकिन उस कप्तान को अपने अभिप्राय की सच्चाई के विषय में जरा भी शंका न थी।

चौबीस दिनों के घीतने पर यह आनन्ददायक मुसाफिरी पूरी कर के हुगली का सौंदर्य निहारता हुआ मैं कलकत्ते उतरा। उसी दिन बंबई जाने के लिए टिकट कटायी।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## किसानों के लिए एक नियामत

कुछ मास हुए मद्रास के श्रीयुत रामचंद्रम् ने, जो कि कृषि-शिक्षा में स्नातक हैं, मुझे लिखा कि आश्रम के लाभ के लिए कूपकोस (well lift) का उपयोग कीजिये। उनका दावा था कि उससे खच्च तथा उन पशुओं के श्रम में, जिनका उपयोग आजकल मामूली तौर पर कुओं से पानी खींचने के लिए किया जाता है, खासी बचत होगी। इस ईजाद से मैं आकर्षित हुआ और मैंने श्री रामचंद्रम् को लिखा कि अगर आप स्वयं आ सकें और अपने तरीके को कामयाबी से जमा सकें, तो कोस खरीद लिया जायगा। उन्होंने बड़ी तत्परता दिखाई और उसके फलस्वरूप, एक मास से अधिक हुआ, कि आश्रम में उनकी नई विधि से काम लिया जा रहा है। आश्रम में जिस किसी को कृषिविद्या का जरा भी ज्ञान है, वह इस विधि से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट है। और पक्का इत्मीनान करने के लिए, मैंने उसे एक इंजीनियर के द्वारा सिखावाया। उसने भी यही कहा कि मेरी राय में यह ईजाद निहायत मुकम्मिल और बहुत ही पुरश्चल है। हमारे उत्तम आविष्कृती ने अपने आविष्कार के बारे में यह कहा है:

“मेरा पक्का विश्वास है कि इस देश की शुष्क धरती के लिए, जो कि भारतवर्ष में कुल कृषयोग्य भूमि की ८० फी सैकड़ा है, कुओं से पानी खींच कर आवपाशी करने को तेजों के साथ बढाना ही हमारी कृषि-सम्बन्धी समस्या का सच्चा ढल है। सूखी धरती से ३०) फी एकड़ से अधिक आमदनी नहीं होती, लेकिन कुएं से आवपाशी करने पर आमदनी फी एकड़ २००) से ले कर १०००) तक होती है और साथ ही साथ बहुत से कुटुम्बों को बारहों महीने काफी काम मिलता रहता है। इस में खास अहमचन यह आती है कि कीमती बैलों की एक जोड़ी इसके लिए आवश्यक है। बहुधा जुएं की वजह से उनकी गर्दनो में तकलीफ रह करती है, तन्दुरुस्ती बिल्कुल विगड जाती है और उनकी उपयोगिता कम हो जाती है।

इस कठिनाई को दूर करने की गरज से, लगभग १४ वर्ष हुए, मैंने अपने प्रयोग प्रारंभ किये, और अब अपनी इस छोटी सी चीज को, जो कि सत्याग्रह-आश्रम में अच्छी तरह चल रही है, बाजार के सामने रक्खा है। यह चीज मामूली कोस है जिसे कि चरख, मोट या कवालाई भी कहते हैं। इसमें खासियत यह है कि ढाढ़ सतह पर रगड कम होती है, क्योंकि इस ढाढ़ सतह पर लोहे की पटरियां बिछी रहती हैं, ताकि सहेज जानवर के बोझ से ही शक्ति उत्पादित हो जावे। जिस प्रकार कोई मनुष्य १ घंटे में पैदल केवल तीन ही मील चल सकता है, लेकिन पैरगाड़ी पर १२ मील फी घंटे की रफतार से जा सकता है, उसी प्रकार यह टोली मामूली तौर से किये हुए काम का चौगुना काम उतारने में मदद देती है। रगड में इस बचत की वजह से दो के बजाय एक ही जानवर से लगभग उतना ही पानी उतने ही समय में (जितना कि साधारणतया) खींचा जाता है। और खिंचावट में शक्ति जो व्यर्थ जाती है, सो भी बच जाती है। यही एक जानवर, खींचने की मेहनत से बच जाने के कारण फी घण्टा दुगना पानी खींचता है। इस प्रकार इस विधि से खींचे जानेवाले पानी की मिक्दार डोल की शकल या माप ही से नहीं निश्चित होती है और न लगाये हुए जानवरों की संख्या या श्रम से, बल्कि डोल के भीतरी घनफल और फी घंटे खींचे जानेवाले डोलों की संख्या के गुणनफल से।



विशेषज्ञों द्वारा सारे हिन्दुस्तान में यह बात जांची और अंकित की जा चुकी है कि अच्छे बैलों की एक जोड़ी, जिनका मूल्य ३००) से ४००) है, केवल १६०० गैलन पानी की घंटा २० फीट की गहराई से खींचते हैं। मैं अन्यत्र की भांति आश्रम में यह क्रिया दिखा रहा हूँ कि किस प्रकार एक बैसा (जिसे मैं यह क्रिया दिखा रहा हूँ कि २००० गैलन पानी की घंटे आश्रम ने ३१) रु. में खरीदा था) २००० गैलन पानी की घंटे खींचता है (६० डोल प्रत्येक ३२ गैलन के)। कुएं की गहराई ३४ फीट है। और पुराने तरीके से दो कीमती बैल १००० गैलन से कुछ ही ज्यादा पानी की घंटे खींच सकते हैं (३० डोल प्रत्येक ३५, ३५ गैलन के)। मैंने मद्रास कृषि और उद्योग-विभागों से २० से अधिक अफसरों को गत ११ वर्षों में अपना बहुत सा रुपया खर्च कर के यह प्रदर्शित कर के दिखाया है—और वे मान भी गये—लेकिन व्यर्थ ही। नागपुर में जब मैं इस कोस का प्रयोग दिखा रहा था, तब डाक्टर क्लाउस्टन ने उस यंत्र की सादगी, परम उपयोगिता और पशु-शक्ति से काम लेने में मनुष्यता—इन सब गुणों को माना और बहुत पसंद किया था।

गहराई के ह्याल से श्रीयुत रामचंद्रम् कहते हैं कि ३० फीट की गहराई के लिए उसकी लागत २३०) ही होगी और समुचित संगठन के द्वारा यह कोस हिन्दुस्तानी किसानों के लिए १५०) में भी तैयार हो सकता है। ५० फीट के लिए पूरे यंत्र की लागत २७५ रु० होती है। लेकिन श्रीयुत रामचंद्रम् कहते हैं कि यदि यह कोस लोकप्रिय हो जायगा तो मूल्य और कम किया जा सकता है। मैंने उन्हें यह भी सुझाया है कि यदि पेटेण्ट-स्वत्व छोड़ दिया जाय, या उसके जो हिस्से अमुक स्थान पर अपने ही यहाँ तैयार किये जा सकते हैं, वे या तो बना लिये या खरीद लिये आयें, तो मूल्य में और भी न्यूनता की जा सकती है। कोस के इस वर्तमान मूल्य में एक बैसे का मूल्य (फर्ज कर लो ३० रु०) जोड़ दो। तब कोस की समस्त लागत ३०५) से अधिक न होगी। दो बैल ३००) से ले कर ४००) तक में मिलेंगे। उन पर किये हुए माहवारी खर्च में अधिक से अधिक बचत की जा रही है। दो बैलों को पारुने में ५०) से ६०) रु० लगेंगे। लेकिन एक बैसा २०) से २५) रु० में पाला जा सकता है। सब से बड़ा लाभ, इस आविष्कार से, यह है कि पशुओं की मेहनत में बहुत बचत हो जाती है। और उससे भी बड़ा फायदा तो यह है कि बैसे काम में लाये जा सकते हैं—बैसे जो कि अधिकांश में अपनी अनुपयोगिता के कारण (अगर वे कल किये जाने से बच जाते हैं तो) यों ही भूखों मरने दिये जाते हैं।

इसलिए आश्चर्य की बात यह है कि इस आविष्कार ने सरकार का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पाया। श्रीयुत रामचंद्रम् उन अधिकारियों की उदासीनता के विरुद्ध सख्त शिकायतें रखते हैं, जिनके २ पास उन्होंने अपनी फर्याद पेश की है। लेकिन मैंने उनकी इन शिकायतों का खास जिक्र न करना ही अच्छा समझा है। जो लोग चाहें आश्रम आ कर इस कोस को सुबह के बक् चाल हालत में देख सकते हैं। चूँकि आजकल आश्रम को बहुत ज्यादा पानी की जरूरत नहीं है, इसलिए कोस दिन भर चाल नहीं रक्खा जाता। लेकिन ८ बजे से १० बजे तक तो हमेशा ही चला करेगा और स्वयं आविष्कर्ता की देखरेख में रहेगा, जो कि उसके विषय में समस्त बातें समझाया करेंगे। एक मित्र मुझे पूरा कृषि प्रदर्शनी के विषय में लिखते समय फर्माते हैं:

“मैं यहाँ कलों और औजारों के ढेर के ढेर देखता हूँ; इनमें से अधिकांश को हम कभी इस्तेमाल ही नहीं कर सकते। मुझे वह चीज तो यहाँ दिखाई ही नहीं देती जो कि भारतवर्ष में मनुष्य एवं पशु के लिए महा उपयोगी है—यानी ‘रामचन्द्रम् कोस’।”

मैं कृषि-विद्या के बारे में इतना अधिक तो नहीं जानता जितना कि उक्त मित्र अपने जोश को प्रमाणित करते हुए कहते हैं, लेकिन इतना कह सकने के लिए काफी जरूर जानता हूँ कि इस कोस की परीक्षा प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के द्वारा की जाने की जरूरत है, जो कि भारतवर्ष की कृषि-सम्बन्धी समस्याओं में दिलचस्पी रखता है।

(यं० इं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### चेतावनी

हाल में कुछ दिनों से अनेक नवयुवक बिना सूचित किये या बिना आज्ञा लिए ही सत्याग्रहाश्रम में कुछ समय के लिए ठहरने के वास्ते या आश्रमवासी बनने के लिए उम्मेदवार की हैसियत से दाखिल होने की गरज से आने लगे हैं। प्रबन्धकर्तागण की इच्छा उन सबके लिए जो आना चाहें, स्वाह वे मेहमान की हैसियत से आवें, स्वाह उपरोक्त रूप से उम्मेदवार की तरह से, स्थान देने की होते हुए भी, इतनी जगह ही नहीं कि उन सब को टिकाने की कोशिश तक करना मुमकिन हो। आश्रम बिल्कुल भर गया है और प्रबन्ध-विभाग की मजबूरन ऐसे मित्रों तक को जो पहले से ही इजाजत ले चुके थे और जो अपने ही खर्च पर रहना चाहते थे, फिलहाल न आने के लिए लिखना पड़ा है। नवयुवकों के लिए अनुचित है कि वे बिना इत्तला या इजाजत के आ जावें। गत पंद्रह दिनों में ऐसे चार युवक आए! और इससे भी अधिक दुःख की बात तो यह है कि वापिसी खर्चा तक अपने साथ नहीं लाये! सब से अन्त में एक एम. ए. महोदय पधारें, जिन्होंने कहा कि मैं आश्रम में बसने आया हूँ; लेकिन उन्होंने मार्ग में अपना निश्चय बदल दिया और सोचा कि यहाँ कुछ दिन रहेंगे और आश्रम के जीवन का अध्ययन करेंगे। वे अपने साथ कोई परिचय-पत्र नहीं लाये थे और उनकी टेंट में इतना पैसा भी न था कि वे वापिसी टिकट ले सकते। मुझे अपने हृदय में कड़ाई ला कर कहना पड़ा कि वे आश्रम में पहले से आज्ञा पाये बिना ठहर नहीं सकते। मैं नहीं समझ सकता कि सुशिक्षित नवयुवकों को जिन्दगी की मामूली तदजीब और मेजमानी के कायदे तक क्यों नहीं मालूम! मैं जानता हूँ कि आश्रम के बारे में कुछ बदशोहरत फैली हुई है। जो दर्शकगण बिना इत्तला आये हैं, उन्होंने मुझसे किसी वक्त कहा था कि हम समझते थे कि यह आश्रम ही सारे हिन्दुस्तान में एक ऐसी जगह है कि जहाँ लोग बिना इजाजत पहुँच जा सकते हैं और वे हार्दिक स्वागत भी पाते हैं। इस कारण से नवयुवकों को समझ लेना चाहिए कि आश्रम उनकी ऐसी आशाओं कभी पूरी नहीं कर सकता और यह आश्रम एक साधारण मानवी संस्था है जो कि अपने आदर्शों तक पहुँचने की चेष्टा कर रही है पर जो कि ऐसा करने में बार २ नाकामयाब होती है। आश्रम-वासियों के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि उन्होंने उन आदर्शों तक पहुँचने की भरसक चेष्टा की है, जिनको उन्होंने अपने सामने रक्खा है।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक वदि ८, संवत् १९८३

## अहिंसा

(२)

सेठ अम्बालाल के द्वारा कराये गये ६० कुतों के नाश को अनिवार्य समझने तथा उसे प्रकाशित करने में मैंने भूल भले ही की हो, लेकिन इस किस्से से अब तक तो मैं लाभ ही होता हुआ देख रहा हूँ। ऐसे प्राणियों के प्रति हमारा क्या धर्म है सो हम अब शायद अधिक स्पष्ट रूप से समझेंगे। अभी तक अयोग्य होते हुए भी, बिना समझे-बूझे दम्भ में और लोक-लाज बश काम चलता आया है — अब कुछ अधिक स्पष्टता हो जायगी।

लेकिन उसके होने के लिए पाठकों तथा मेरे बीच में कुछ सफाई हो जानी जरूरी है। मेरे नाम इस विषय में डेरों पत्र आये हैं; उनमें से कोई मीठा, कोई तीखा और कोई कड़ुआ है। उन पत्रों से मुझे प्रतीत होता है कि मित्र भी सेठ अम्बालाल के कार्य के विषय में मेरा अभिप्राय नहीं समझ सके हैं। मेरे नसीब से मेरे जीवन में हमेशा ऐसा ही होता चला आया है। दक्षिण आफ्रिका में, अविचारपूर्वक देखने से विरोधी मालूम होते हुए, लेकिन हकीकत में केवल सिद्धान्तानुसार किये हुए कार्य के हेतु, जो कि पीछे से सिद्धान्तानुसार सिद्ध हुआ, मेरे निर्दोष होते हुए भी, मुझे अपनी जिन्दगी की जोखिम तक उठानी पड़ी थी। बारडोली की 'हिमालय' वाली 'भूल' का स्मरण तो अभी ताजा ही है। बम्बई सरकार ने मेहरबानी कर के मुझे यरवडा में डालकर मेरा बहुत सा स्याही कागज बचा लिया। बारडोली में पास किये हुए प्रस्ताव मुझे आज भी भूल रूप नहीं मालूम हो रहे हैं। वरन् मैं इनको एक प्रौढ़ अहिंसा का तथा मूल्यवान् सेवा का कार्य मानता हूँ।

उसी प्रकार इस (कुते के) सम्बन्ध में भी जो मेरा अभिप्राय है उसके बारे में मुझे मालूम हो रहा है। मुझे लगता है कि अहिंसामय होने का दावा करते हुए भी इस अभिप्राय का समर्थन किया जा सकता है।

लेकिन शत्रु, मित्र एवं सुहृद—सब को धैर्य रखने की जरूरत है। शत्रु रूप से लिखने वालों ने मर्यादा त्याग दी है; उनके पत्रों में अनियम और रोष भरा हुआ है। उन्होंने मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न नहीं किया। उन्हें मेरा अभिप्राय असह्य लगा है। या तो वे मुझे सुधारक तथा शिक्षक मानते हैं और या वे मुझे शिक्षा देने की आशा रखते हैं। यदि वे मुझे शिक्षक मानते हों तो उनको विनय, शान्ति और श्रद्धा से पूछना चाहिए और जो मैं लिखूँ उसका उन्हें मनन करना चाहिए; जो वे मुझे शिक्षा देना चाहते हों तो मेरे ऊपर दया कर के, प्रेम तथा धीरज के साथ मीठे शब्दों में मुझे समझावें। अपनी संरक्षा में रहने वाले बालकों को मैं कोध से कुछ सिखा नहीं सकता, बल्कि उनके ऊपर प्रेम करता हूँ, उनका भ्रमन सहन करता हूँ, उनके साथ खेलता हूँ और उन्हें सिखाता हूँ। इसी सहनशीलता, इसी प्रेम, और इसी विनोद की

अशा मैं अपने कोधी शिक्षकों से करता हूँ। मैंने कुते के विषय प्रस्तुत किया हुआ अपना आशय शुभ भावना से तथा अपना समझ का दिया है। अगर उसमें कोई त्रुटि हो तो शिक्षा लोग मुझे धीरज के साथ और दलीलों से समझावें। अगर कोध दिखलायेंगे या अनेक प्रकार के अप्रस्तुत प्रश्न करेंगे उससे मैं कैसे समझने वाला हूँ?

एक भाई मुझ से कुअवसर पर मिलने के लिये आये। अतिशय उद्यमी रहता हूँ — यह बात वे जानते थे। मेरे उन्होंने संवाद किया, मुझे अपना कटु भाषण सुनाया। तथा अपने कोय मुझ पर ला रता। मैंने उन्हें विनोद में तथा विवेकपूर्ण जवाब दिया। उन्होंने उस वार्तालाप की एक पात्रका भी बना छपवाई है; उसकी एक प्रति मेरे पास पड़ी हुई है। उसमें उनकी मर्यादा नहीं है — फिर विनय कहाँ का? उन्होंने सम्वाद के छगवाने के लिए मुझ से नहीं पूछा और न बतलाया ही। इस प्रकार से वे मुझे किस प्रकार सिखा रहे हैं? जो सत्य को छोड़ता है, वह अहिंसा की जड़ काट रहा है।

लेकिन शत्रु-भाव से बर्ताव करने वाले भी मेरे ऊपर उपकार रहे हैं। वे मुझे अपना अंतःकरण खोजना सिखा रहे हैं। कोध की प्रतिक्रिया से मैं बच गया हूँ या नहीं—इस बात देखने का मुझे मौका मिलता है। और अगर मैं उनके कोध मूल खोजता हूँ, तो उनकी तह में प्रेम ही पाता हूँ। उन मुझ में अपनी समझ के अनुसार अहिंसा मान रखी है। अब उनको उलटा दिखाई देता है। इसीलिए वे कहते हैं। कारण यह है कि वे मुझे महात्मा मानते थे। वे, लेकिन उनको रुकने वाला मेरा प्रभाव पड़ना हुआ देख कर रहते थे। अब मैं उनको अल्पात्मा लगता हूँ। मेरे प्रभाव के कुप्रभाव जान कर दुःखी हाते हैं। उन्होंने कोध जीतना नहीं सीखा। इसी लिए वे इस दुःख को कोध में परिणत करते हैं।

इस कोध का मैं स्वागत करता हूँ; उसके पीछे जो भाव उसे मैं समझता हूँ। उनको समझाने का प्रयत्न करूँगा। प्रयत्न में सहायता करने के लिए मैं उनसे विनती करता हूँ। वे कोध को शान्त करें। उनके कोध को मैं समझ गया हूँ। सत्य का पुगरी तथा शोधक हूँ। जो मेरी भूल हुई होगी मैं देखूँगा और चूंक भूल को कुबूल करना मुझे प्रिय है, इसीलिए तुरन्त कुबूल कर के उसे सुधार लूँगा। शास्त्र का वचन है सत्यवादी एवं सत्याचरणी को भूलों से भी जगत को क्षति पहुँचती। सत्य की महिमा ऐसी है।

मित्रों और सुहृदों के लिए बस इतना ही कहूँगा:

मैंने आप के पत्र इकट्ठे कर लिए हैं। बहुतों को तो सामान्यतया व्यक्तिगत रूप से उत्तर दे रहा हूँ। लेकिन इस विषय में इतने लोगों के और इतने लम्बे लम्बे पत्र आये हैं कि उनका सविस्तार उत्तर देना अशक्य है। उनकी पहुँच तक दे सकने का अवकाश मेरे पास नहीं है।

इतने एक लेखक तो अपने पत्रों को 'नवजीवन' में प्रकाशित हुआ देखना चाहते हैं। इस बोझ से वे मुझे बरी कर दें उनकी की हुई दलीलों का उत्तर यथाशक्ति और यथामति देने का प्रयत्न अवश्य करूँगा। आप लोग इतने ही से सन्तोष मानें मैं इतना ही आप से माँग लेना चाहता हूँ।



पाठकगण इनकी लम्बी प्रस्तावना को आवश्यक समझ कर क्षमा करें। अब हम विषय के ऊपर आ जायें— फिल हाल तो मैं अपने पास पड़े हुए पत्रों के प्रश्नों पर विचार कर के ही सन्तोष मानूँगा।

एक भाई लिखते हैं:— आप कुत्ते को खाना देने के लिए मना करते हैं, लेकिन मैं उनको बुलाने तो नहीं जाता—वे तो खुद ब खुद आ जाते हैं और खड़े रहते हैं। उनको कैसे मार भगावें? जब बहुत से कुत्ते आ जायेंगे, तब ऐसा देखा जायगा। कुत्ते को खाना देने में दयाभाव की शिक्षा मिलती है और न देने से मनुष्य निष्ठुर बनता है। पाप में तो हम हूवे पड़े हैं, फिर इतना धर्म हम से क्यों नहीं किया जाता?”

इस प्रकार दयात्मक दिखाई देनेवाले विचारों के कारण ही हम लोग दयाधर्म के नाम पर हिंसा को अनजान में उत्तेजन देते रहते हैं। लेकिन जिस प्रकार लौकिक राजा के कानून में अपराधी अज्ञान के कारण दण्ड से बचता नहीं है, वही हाल अलौकिक राजा के नियमों का भी है।

हम जरा उक्त शंका करनेवाले के विचार की निरीक्षा करें। घर पर भिखारी के आने पर उसे रोटी देते हैं और समझते हैं कि हमने पुण्य किया इस प्रकार बहुत अंश में हम भिखारियों के सम्प्रदाय को बढ़ाते हैं, आलस को उत्तेजन देते हैं और इस कारण अधर्म की वृद्धि करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि सच्चे भिखारियों को मरने दिया जाय। जो अपंग या अपाहिज हैं, उनका पोषण करना समाज का धर्म है। लेकिन प्रत्येक मनुष्य यह काम अपने उत्तरदायित्व पर न करे, समाज के अधिकारी यानी महाजन लोग—स्वराज्य हो तो राजा—यह काम करता है। और दयालु सज्जन ऐसी संस्था को दान देते हैं। यदि महाजन पवित्र तथा ज्ञानवान् होगा तो उद्योग के साथ प्रत्येक व्यापारी भिखारी के बारे में पूछताछ कर के, अगर वह पात्र होगा तो उसे आश्रय देगा। ऐसा न होने से भिखारी के बढ़ाने चोर और लंपट पुरुष पैसा कमाते हैं और देश में भुक्खडपन घटने के बदके बढ़ता है।

जिस प्रकार भिखारी मनुष्य को खाना देने में पाप है, उसी प्रकार भटकते कुत्ते को भी दुष्टता डालने में पाप है— उस में कुत्ते के प्रति झूठी दया है। क्षुद्राण्डित कुत्ते को रटी का टुकड़ा देने में उस कुत्ते का अपमान है। बेघर का कुत्ता समाज की सभ्यता या दया चिह्न नहीं है; बल्कि समाज के अज्ञान तथा आलस्य का।

जानवर लोग अपने भाईबन्ध हैं। इनमें मैं सिंह, बाघ इत्यादि को भी गिनता हूँ। हम लोगों को सिंह, सर्प आदि के साथ रहना नहीं आता— यह हमारी शिक्षा की त्रुटि के कारण है। जब मनुष्य उनको अधिक अच्छी तरह पहिचानेगा, तब प्राणघातक जानों तक को पालना सीखेगा। आज तो विधर्मी अथवा विदेशी मनुष्य को भी अपना पसन्दाने नहीं सीखा है!

कुत्ता तो वफादार साथी है। कुत्ते और घोड़े की स्वामिभक्ति के दृष्टांत जितने चाहिए, उतने मिल सकते हैं। इसलिए जिध तरह अपने साथी को हम इधर उधर भटकते फिरने नहीं देते, बल्कि उसे आदरपूर्वक रखते हैं, वही बात कुत्ते के बारे में होनी चाहिए। भटकते फिरते कुत्तों के सम्प्रदाय को बड़ा कर हम कुत्ते के प्रति अपना कर्जा अदा नहीं करते।

लेकिन अगर दर २ मारे फिरते कुत्तों की हस्ती को हम पाप

समझते हैं और इसलिए उनको खाने को नहीं देते, तो हम कुत्तों की सेवा करते हैं और उनको सुखी रखते हैं।

इसलिए वे आदमी जो कुत्ते के प्रति भी दया-धर्म पालना चाहते हैं वे क्या करें? उन्हें कुत्तों इत्यादि का भाग अपनी आमदनी में से निकाल कर उस भाग का उपयोग जानवरों की संस्थाओं को दे देना चाहिए। अगर ऐसी संस्था शक्य न हो— और मेरा झ्याल तो यह है कि ऐसी संस्था शक्य होते हुए भी बहुत मुश्किल है— तो उन्हें एक या अधिक कुत्तों के पालने का प्रयत्न करना चाहिए। अगर यह भी न कर सकें, तो उन्हें कुत्तों का प्रश्न छोड़ दे कर अपने जीवदयाभाव का अमल अन्य प्राणियों के विषय में करना चाहिए।

“लेकिन आपने तो उन्हें मारने की बात कही है?” — इस प्रकार के प्रश्न अन्य पत्र-लेखक— कोई आवेश में और कोई प्रीति से— पूछते हैं। मैंने कुत्तों के मारने का कोई स्वतंत्र धर्म नहीं बतलाया है; मैंने तो आपद्धर्म ही बतलाया है। मैंने शर्त-वाला धर्म सुझाया है। अगर कुत्तों की रक्षा राजा न करे, महाजन भी न करे, जो वे खुद न पालें और कुत्तों से दुःख पावें और कुत्तों की भेंट चढ़ने के लिए तैयार न हों, तो कुत्तों को मार कर उन्हें तथा अपने को पीड़ा और भय से मुक्त करें। यह औषधि की पुडिया कड़वी है, लेकिन मेरा अंतरात्मा कहता है कि उसमें शुद्ध प्रेम और दया है।

कुत्तों की आज की स्थिति हिन्दुस्तान के दुबले पशुओं तथा मनुष्यों की जैसी है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह शोचनीय परिणाम हमारी अहिंसा धर्म की अनभिज्ञता के कारण— अहिंसा के अभाव के कारण, हुआ है। धर्म का फल पामरता, दरिद्रता, दुष्काल इत्यादि दृष्टिज नहीं है। अगर यह देश पुण्यभूमि हो तो जो आज हम दारिद्र्य-पांडित लोगों को अपने चारों ओर पाते हैं, सो नहीं हो सकता। उसमें से कई उतावले और अधीर लोगों ने इस आशय का धार निकाला है कि अहिंसाधर्म ही झूठा है। मैं जानता हूँ कि अहिंसाधर्म झूठा नहीं, बल्कि उसके पुजारी झूठे हैं।

अहिंसा क्षत्रिय का धर्म है। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। राम, कृष्ण आदि क्षत्रिय थे। वे सब, थोड़े या बहुत, अहिंसा के उपासक थे। हम उनके नाम पर भी अहिंसा का प्रवर्तन चाहते हैं। लेकिन इस समय तो अहिंसा का ठेका भीरु वैश्य वर्ग ने ले रक्खा है; इसलिए वह धर्म निस्तेज हो गया है। अहिंसा का दूसरा नाम है क्षमा की परिसीमा। लेकिन क्षमा तो वीर पुरुष का भूषण है। अभय के बिना अहिंसा नहीं हो सकती; हम लोग तो जीवदया तक नहीं जानते!

गाय को हम बचा नहीं सकते, कुत्ते पर लात मारते और लाठी बरसाते हैं, उनकी पसलियां तक दिखाई देती हैं— इनकी हम को शर्म नहीं है, लेकिन अगर कुत्ता मरे तो हमारे रोंगड़े खड़े होते हैं। पांच हजार कुत्ते भूखे तरसते फिरते रहें, जूठन और मैला खायें और मरने के बदले जियें— यह सब अच्छा या उनमें से पचास मरें और शेष सुरक्षित रहें सो अच्छा? लकड़ी मार कर कुत्तों को बाहर कर देना तो पाप है ही। लेकिन यह दुःख न देख सकनेवाला एक या अधिक कुत्तों को मार डालने में पुण्य करता है— यह बात मुमकिन हो सकती है।

जीव लेना हमेशा हिंसा नहीं है। या यों कह लीजिये कि अनेक अवसरों पर जीव न लेने में अधिक हिंसा है। इस बाक्य को आगे चल कर देखेंगा।

( नवजीवन )

मोहनदास करमचंद गांधी



## कताई से मृत्यु शैया पर सन्तोष

‘यंग इण्डिया’ में उस कहानी के दो अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें एक बौद्ध पत्नी ने अपनी मृत्यु-शैया पर पड़े हुए पति से श्रांतिमय बातों को तथा सब प्रकार की चिन्ताओं को मन से हटा कर शान्तिमय मृत्यु मरने को कहा था, क्योंकि उसने कहा कि मैं सूत कातना जानती हूँ और उसकी कमाई से खुद का तथा अपने बच्चों का पेट आपकी मृत्यु के बाद भर लूंगी।

एक अनुवाद तो सन् १९२१ में प्रकाशित हुआ था और एक इसी वर्ष। लेकिन या तो वे अपूर्ण थे या असत्यमय। उसके बाद मैंने पाली-भाषा के मूल ग्रंथ को देखा। यहाँ, खंड २६ वां अंगुत्तर निकाय (एक बौद्ध ग्रंथ), चक्कम पाता के (साराणीय संग्रह) पहले पैरे का तथा दूसरे के एक हिस्से का अनुवाद नीचे दिया जाता है। यद्यपि कोपनहेगन के फौबल नामक महाशय जो कि जातक के डेनिश सम्पादक हैं, गर्वपूर्वक लिखते हैं तथापि यह दुःख की बात है कि पाली-भाषा की सब किताबें लैटिन अक्षरों में छपी हुई हैं। फौबल यह लिखते हैं:

“मैंने ‘ओरियन्टल’ का अनुवाद लैटिन लिपि में करना जारी रखा है और अपनी सभी पाली पुस्तकों में जारी रखूँगा, क्योंकि मेरा यह पक्का विश्वास है कि लैटिन की पाँचों लिपियों का प्रयोग अब से साहित्यहीन भाषाओं के तथा अप्रकाशित साहित्यों के ही लिए न किया जाना आवश्यक है, बल्कि इसलिए भी कि वे किसी न किसी दिन, जब कि योरोप और अमेरिका की सभ्यतायें आपस में मिल कर सच्चा की तरह अन्य सभ्यताओं को आच्छादित कर लेंगी, अन्य लिपियों को स्थान-च्युत कर देंगी। मुझे आश्चर्य है कि पाली टेक्स्ट सोसायटी के बौद्ध संरक्षकगण क्योंकि उक्त सुस्थिति का ख्याल कर के खुश होते हैं।

एक गृहस्थ नकुलपिता बहुत सख्त बीमार तथा परम चिंतित थे। तब नकुल-माता (उनकी पत्नी) ने उनसे कहा: “आपको इस समय एक क्षण के लिए भी चिन्तामय विचारों में न पड़ना चाहिए। यह बड़े दुःख की बात है कि कोई व्यक्ति चिन्ताओं में पड़ा हुआ शरीर त्यागे और भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार की मृत्यु को हेय ठहराया है। शायद आपको यह भय है कि जब आप हम लोगों के मध्य न होंगे, तब मैं बच्चों का पेट न भर सकूँगी। लेकिन आपको ये चिन्तायें निराधार हैं क्योंकि मैं सूत कातने तथा सिर गूँघने में कुशल हूँ। (यह दूसरा वाक्य मैं ठीक २ नहीं समझ सका; अच्छा हो अगर कोई पाली के शाता इसपर कुछ प्रकाश डालें-वा०) और इसलिए आपकी मृत्यु के पश्चात् मुझे खुद तथा अपने बच्चों का पेट पालने में कोई भी कठिनाई न होगी। इसलिए आप अपने मस्तिष्क से सब चिन्तायें दूर कर दीजिए।” और फिर शायद आपका यह भी भय हो कि आपके देहान्त के बाद मैं कदाचित् पुनर्विवाह कर लूँगी। लेकिन आपको इस प्रकार के समस्त विचारों को दूर कर देना चाहिए—यह देखते हुए कि विवाहित होते हुए तथा गृहस्थ रहते हुए भी गत १६ वर्षों से हम दोनों का जीवन पवित्र रहा है। कृपा कर के आप अपना चिन्ता सम्पूर्ण रीति से शान्त कीजिए।”

वालजी गोविंदजी देशाई

## उपवास के विषय में

एक ‘प्रेसीसेनिस्ट’ (सत्यभक्त) लिखते हैं:

मैं आपके साप्ताहिक का बड़ी प्रशंसा से पढ़ने तथा संग्रह करने वाला होते हुए भी आपका ध्यान ३० वीं सितम्बर के ‘यंग इण्डिया’ में प्रकाशित निम्न-लिखित सिद्धान्त की ओर दिलाता हूँ:

“उपवास सिर्फ अपने निकटतम और प्यारे से प्यारे जनो के विरोध में ही किया जा सकता है—सो भी उसके ही लाभ के लिए।

लेकिन आपके पिछले लेखों से यह प्रतीत होता है कि उक्त सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अपवाद भी है। उपवास या जेल में मिले दुर्व्यवहार के विरोध में अनशन-व्रत भी (जैसे मान लो कि भोजन अपमानजनक ढँग से दिया जाय) भी सच्चा सत्याग्रह है। क्या अच्छा होता अगर आप उस प्रश्न-कर्ता के प्रश्न के उत्तर में ‘सत्याग्रह सही और गलत’ शीर्षक लिखते समय ऊपर दिये हुए दृष्टान्त को भी मद्देनजर रखते।”

यदि यह उपरोक्त परिस्थिति जिसका जिक्र ‘प्रेसीसेनिस्ट’ महोदय ने किया है, अपवाद स्वरूप होता तो मैं अनेक अपवाद दे सकता था। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति प्रायश्चित्त स्वरूप या आत्म-शुद्धि के लिए उपवास करता है, या स्वास्थ्य-लाभ के लिए व्रत कर बालता है; लेकिन पहली सूत्र में मैंने सत्याग्रह उपवास की सीमायें बता दी हैं; यानी जब कोई किसी पर उपवास करने के द्वारा प्रभाव डालने की चेष्टा करे। यह नाम-मात्र का अपवाद कोई समानता नहीं रखता। जेल वाला अनशन-व्रत तो अनुभव की हुई मान-दानि का विरोध रूप है।

“सत्याग्रह सही और गलत” शीर्षक लेख में तो उपवास की उस चुराई पर जोर दिया गया है कि जो किसी व्यक्ति के विरुद्ध वह रकम अदा कराने को किया जाय, जिसे उपवास करने वाला व्यक्ति अपना हक मानता है, लेकिन जिसे उसका विपक्षी उसका हक नहीं समझता।

## कर-विभाग में घूसखोरी

एक सज्जन ने जो कि हाल ही में दक्षिण अफ्रीका से लौटे हैं, मुझसे पूछा कि जो घूसखोरी कर-विभाग में नित्य प्रति हुआ करती है क्या उसे बन्द करना सम्भव नहीं है? उन्होंने मुझसे कहा कि असबाब में कोई ऐसी चीज के न होते हुए भी जिस पर कर लगाया जा सके, उन्हें अपना सामान वक्त से छुड़ाने के लिए रिश्वत देनी पड़ी। मैंने उनसे पूछा कि क्या आप इस मामले के लिए काफी वक्त देने और तकलीफ उठाने के लिए तैयार हैं? उन्होंने कहा मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है, और उन घूसखोरियों के अस्तित्व को प्रमाणित करती है जो कि कर विभाग में ही नहीं, बल्कि रेलवे में भी मौजूद है। यह सच है कि अगर वे उस प्रकार की शिकायत रफा कराना चाहते हैं तो उन्हें क्षणिक अनुविधाओं को सहन करना चाहिए। लेकिन उक्त विभागों के अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि जहाँ तक मनुष्य के लिए शक्य हो, तहाँ तक वे इस प्रकार की घूसखोरियों को बन्द कर दें और वे गरीब आदमियों को सहन करने पड़ता है अगर कुछ सार्वजनिक सेवा करने के इच्छुक नवयुवक इस प्रकार की रिश्वतें दे दें और बाद की रिश्वत लेने वालों के अफसरों को रिपोर्ट कर दें, तो कोई खराब बात न होगी। ऐसी कुछ घटनायें इस कुप्रथा को कम कर देंगी। निरसन्देह



इस बुगई को जड़ से मिटाने का एक मात्र जरिया यह है कि जनता ऐसी हो जो विचलित न हो सके। जब तक ऐसे लोग बने रहेंगे जो कि कर चुकाने से चोरी से बचना चाहेंगे, तब तक उन मुद्दमों में ऐसे कर्मचारी भी रहेंगे, जो इसका एवज चाहेंगे।

### सम्पादक मित्रों के प्रति

समाचारपत्रों के लिए लेख लिखने के वास्ते भारत के अन्दर तथा बाहर से मेरे नाम पत्र नित्य ही आया करते हैं। नौबत यहां तक आ गई है कि या तो मैं "यंग इंडिया" और "नवजीवन" का सम्पादन छोड़ दूं या उन समाचारपत्रों के लिए लिखने से विनयपूर्वक इन्कार कर दूं। चूंकि 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' को मैं तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक उनके ग्राहक काफी हैं और जब तक मुझ में ताकत है, इसलिए अन्य पत्रों के लिए न लिखने के लिए मुझे लाचार होना पड़ा है। हकीकत यह है कि चाहे जिस किसी विषय पर, जब चाहूं तब, लिखने की योग्यता मुझ में नहीं है। मेरा क्षेत्र बहुत ही परिमित है, और फिर जिन २ विषयों की जानकारी मैं रखता हूं उन उन पर भी मैं सदा मौलिक बातें नहीं लिख सकता। और न मुझ में अपने लेखों की उपयोगिता के बारे में कुछ मिथ्या-भ्यास ही है। बरअक्स इसके, मुझे मालूम है कि बहुधा लिखित अथवा कथित शब्द की अपेक्षा अलिखित शब्द अधिक सच्चा और जोरदार होता है। हमारे काम बोलें न कि हम स्वयं। अगर मैं दिन पर दिन बढ़ते जाते हुये क्षणजीवी साहित्य को जो कि बड़ा नागवार सा हो पड़ा है, रोकने या नियंत्रित करने के लिए कुछ नहीं कर सकता तो मुझे उसकी वृद्धि में सहायक तो बनना ही न चाहिए।

### अहिंसा-सम्बन्धी कुछ उलझनें

जब कि अहमदाबाद की मिलों के कुछ मालिकों को कुत्तों ने काट खाया था और जिस समय कि मिल में काम करनेवालों के काटे जाने का दर क्षण भय था, तब किसी शिलमालिक ने कुछ कुत्तों को मरवा डाला। उस से वहां की प्रभावशालिनी जैन-समाज के कुछ लोग विगड गये। उन लोगों में मेरे अनेक मित्र हैं। बहुत से तो मुझे अहिंसा के मामलों में अकाट्य मानते हैं, इसलिए मुझे मजबूरन और मेरी अनिच्छा रहते हुए भी इस विवाद में पड़ना पड़ा है। चूंकि मामला सिर्फ अहमदाबाद के पुत्रातीमापी लोगों के ही बीच का नहीं रह गया है, इसलिए मैं "यंग इंडिया" के पाठकों के समक्ष उस लेखमाला का अनुवाद रखना चाहता हूं जो कि मैं अहिंसा पर लिख रहा हूं और जिस में यथासम्भव अहिंसा का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जावेगा। मुझे इस का निश्चय है कि 'यंग इंडिया' के बहुतेरे पाठक जो कि अहिंसा के सिद्धान्त और विकास में दिलचस्पी रखते हैं, इस लेखमाला के अनुवाद का स्वागत करेंगे।

### खादी-सम्बन्धी आंकड़े

मैं समझता हूं कि खादी के कार्यकर्ता लोग उन आंकड़ों को ध्यानपूर्वक पढ़ते रहे हैं जिन्हें मैं समय समय पर प्रकाशित करता आया हूं। वे कीमती चीज हैं और उनसे हम को खादी की उत्पत्ति तथा शक्यता इतनी अच्छी तरह प्रकट होती है, जितनी कि और किसी चीज से नहीं हो सकती। मैं अवश्य आशा करता हूं कि जिन्होंने अभी तक खादी-सम्बन्धी आंकड़े नहीं मेजे हैं उसी से जल्दी मेजने की कृपा करेंगे।

### हिंदू और हिन्दुत्व

एक पत्र-प्रेषक, जो कि 'यंग इंडिया' के परिश्रमशील तथा धैर्यवान पाठक हैं, लिखते हैं:

एक 'सहायक एजिक्व्यूटिव इंजीनियर' के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आप ने १४ वीं अक्टूबर के 'यंग इंडिया' में लिखा है "हिन्दू वह है, जो ईश्वर में विश्वास करता है, आत्मा की अनिश्चरता, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त और मोक्ष में विश्वास करता है और अपने दैनिक जीवन में सत्य और अहिंसा का अभ्यास करने का प्रयत्न करता है, और इसलिए अत्यन्त व्यापक अर्थ में गोरक्षा करता है, और वर्णाश्रम धर्म को समझता है और उसपर चलने का प्रयत्न करता है इत्यादि।"

इसे पढ़ने पर मेरी इच्छा होती है कि आप के समक्ष आप का ही एक पुराना लेख (२ वर्ष पूर्व लिखित) रखूं। आप ने २४ अप्रैल सन् १९२४ के 'यंग इंडिया' में १३६ वे सफहे पर लिखा था:—यदि मुझ से हिन्दू धर्म की परिभाषा पूछी जाय तो मेहज इतना कहूंगा कि अहिंसात्मक जरियों से सत्य की खोज करने के अर्थ हैं। मानो कोई ईश्वर में विश्वास न करे और तब भी अपने को हिन्दू कहे। हिन्दुत्व सत्य के लिए घोर परिश्रम का नाम है।

इन उद्धरणों में मोटे अक्षर मेरे ही हैं।

मुझे आश्चर्य होता है कि पत्र-प्रेषक दोनों बयानात में फर्क नहीं देखते! पहली बात के अन्तर्गत जो आ जाय वे हिन्दू कहे जा सकते हैं। ईश्वर के अस्तित्व को मानने से इंकार करना हिन्दू धर्म का गुण नहीं है। करोड़ों हिन्दू ईश्वर में विश्वास रखते हैं, इसलिए कोई यह कह बैठे — कि "हिन्दू वह है जो ईश्वर में विश्वास रखता हो"— इत्यादि। "लेकिन कोई पुरुष ईश्वर में विश्वास न रखता हुआ भी अपने को हिन्दू कह सकता है।" दूसरी हालत में मैंने सर्वांगपूर्ण परिभाषा दे दी है; पहली में सामान्य रूप से मामूली दृष्टान्त मात्र दिया है। इसलिए मुझे दोनों स्थितियों में कोई विरोध प्रतीत नहीं होता।

### समवेदना

"हिन्दू" के भूतपूर्व सम्पादक श्री एस० रंगास्वामी आयंगर की मृत्यु हो गई है। उनके कुटुम्ब तथा 'हिन्दू' के कर्मचारियों के साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमें भी आदरपूर्वक शरीक होता हूं। इनकी मृत्यु श्री० कस्तूरी रंगा आयंगर की मृत्यु के कुछ ही बाद होने से सम्पादक संसार को भारी क्षति हुई है।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी

### जातक में तकली

बौद्ध जातक नं. ५४६ में एक कहानी लिखी हुई है, जिससे प्रकट होता है कि जब वह लिखी गई थी, तब इतनी बढिया कपास इस देश में पैदा होती थी कि वह बिना धुने, यों ही, काती जा सकती थी। यह भी स्पष्ट है कि तकली के द्वारा सूत निकाला जाता था, क्योंकि लो को खेत रखाते वक्त कातते हुए दिखलाया गया है।

कावेल और रुज नामक अंग्रेजों ने एक किस्से का अनुवाद पाली से अंग्रेजी में किया है: वह नीचे दिया जाता है:

एक स्त्री थी। वह नित्य कपास के खेत रखाया करती थी। एक दिन की बात है कि उसने कुछ उत्तम कपड़े ली और उस से



कुछ बढिया सूत तैयार किया। उसने उसका गुल्ला बना कर उसे अपनी गोद में रख लिया। घर जाते वक्त उसने सोचा कि आज मैं महर्षि के जलाशय में स्नान करूँगी। अतएव उसने उस गुल्ले को अपनी जेब में रख कर वह नदी के किनारे गई। एक दूसरी औरत ने यह देख लिया। उसके मन में उत्कट इच्छा पैदा हुई कि उसे ले लें। उसे उसने यह कहते हुए ले लिया:

सूत का यह एक मनोहर गोला है। क्या इसे तुम ही ने तैयार किया है? तब उसने उसे चोरी से खिसका लिया और उस गोले को अपनी गोदी में रख कर (मानो वह उसको और बारीकी से देखना चाहती हो) वह चल दी। उस ऋषि ने उस चोर स्त्री से पूछा — जब तुम ने उस गोले को तैयार किया था, तब तैयार करते वक्त तुमने सूत लपेटना किस चीज पर शुरू किया था? उसने उत्तर दिया — “एक बिनोले पर”। तब उस ऋषि ने दूसरी स्त्री से पूछा “और तुमने क्या रक्खा था?” “एक टिम्बास का बीज”। जब आसपास खड़े हुए जनसमूह ने दोनों के उत्तर सुन लिये, तब उस ऋषि ने उस गुल्ले को खोल डाला। दूसरी स्त्री की कही हुई बात ठीक निकली। तब ऋषि ने उस चोर स्त्री को अपना कुसूर मानने के लिए मजबूर किया। लोगों की भीड़ इस पर बहुत खुश हुई और उस निर्णय के ढंग पर हर्ष-ध्वनि करने लगे।

( सं० इ० )

दे० बा०

## खादीधारी जैन आचार्य

जैन धर्म के समग्र इतिहास में भगवान् हेमचन्द्र आचार्य जैसे सर्वज्ञ स्वतंत्र विद्वान् बहुत नहीं हुए। हेमचन्द्र धंधुका में कार्तिक सुद पूर्णिमा संवत् ११४५ वि० के दिन बालचन्द्र “वसंतविलास” में जिसका वर्णन इस प्रकार किया है, पैदा हुए थे।

श्रीमोहनमोहसुपर्वेशो वंशावतंसो जगतीतदस्य।

संवत् ११५० (या ११५४) में सन्यास लिया। संवत् ११६६ में अर्थात् जब वे २१ वर्ष ही के थे, सूरि की शरण गये और संवत् १२२९ में ८४ वर्ष की अवस्था में अनहिलवाड़ा पाटन में स्वर्गवासी हुये।

“शरवेदेश्वरे वर्षे कार्तिके पूर्णिमानिशि।

जन्माभवत्प्रभो ०७५म<sup>१</sup>वाणशमी<sup>१२</sup> व्रतं तथा ॥ ८४८ ॥

रम<sup>१</sup>पट्केश्वरे<sup>११</sup> सूरिप्रतिष्ठा समजायत।

०८२<sup>१</sup>द्वयवौ<sup>१२</sup> वर्षेऽवसानमभवत् प्रभोः ॥ ८४९ ॥

चन्द्रप्रभसूरिः प्रभावकचरिते हेमप्रबन्धे।

विद्या का ऐसा शायद ही कोई विभाग होगा जिसके विषय में इन्होंने ग्रंथ-रचना न की हो। संस्कृत, प्राकृत व्याकरण सम्बन्धी सिद्धमिश्रशब्दानुशासन; शब्दकोष से संबंध रखनेवाले अभिधान-चिन्तामणि, अनेकार्थकोश, देशानाममाला, नीतिशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाला अर्थज्ञोति, अलंकार शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाला काव्यानुशासन, पिंगल शास्त्र का छन्दोनुशासन, योग परत्व का योगशास्त्र, दर्शन का प्रमाण मीमांसा इत्यादि इत्यादि इनकी रची हुई अनेक पुस्तकें हैं। तदुपरांत जैन शास्त्र में गिनाये हुये ६३ महा-पुरुषों के विषय में त्रिपष्ठिशलाकापुरुषचरित्र नामक लम्बा संस्कृत काव्य लिखा और एक अन्य ‘द्वयाश्रय’ काव्य में गुजरात के राजाओं के इतिहास के साथ २ व्याकरण के नियम बनाये। उसके उदाहरण भी दिये हैं।

इस प्रकार हेमचन्द्र की विद्वत्ता अगाध थी; उसी प्रकार उनकी दया भी अपार थी। रत्नमन्दिरगणि ने इनकी उपदेश-तरंगिणी में लिखा है कि आचार्य एक समय पर शाकम्भरी (सामर अजमेर से आगे) पधारे। वहाँ धनजी नामक एक निर्धन श्रावक ने गुरु को अपनी स्त्री के द्वारा काता हुए मोटे सूत से बना कोरा खादी का वस्त्र दिया।

हेमसूरयशकदा शाकम्भर्या पादमवदधुस्तत्र निर्धनश्रेष्ठिधनाकेन स्वप्रावरणार्थमार्याकृतितथूलसूत्रनिष्पन्नकोरकखासरं विहारितम्।

गुरु पाटण वापिस आये। यानी महाराजा कुमारपाल आदि ७२ राजा तथा कुबेरदत्त आदि १८००० बनिये अपनी समृद्धि के समते सामने आ कर क्या देखते हैं कि गुरुजी वही मोटी खुर-खुदरी खादी ओढ़े हुए हैं।

पत्तनप्रवेशे श्रीकुमारपालादि७२नृपश्रेष्ठिछाडाकुबेरदत्तादि१८सहस्रव्यवहारिवर्गं स्वस्वकृद्गुहा संमुखागते स एव खासरकल्पलप्यहाविश्रीगुरुभिः प्राप्तः।

कुमारपाल बोले: — आप मेरे गुरु हैं, आप इस प्रकार का वस्त्र ओढ़ें — यह बात मेरे लिए हूब भरने की है।

भगवत्पादा मदीया गुरवः। एवंविधे कल्पे प्रावृतेऽस्माकं त्रपा स्यात्।

आचार्य ने उत्तर दिया: — तुम्हारे राज्य में तुम्हारे सहस्रों लोग ऐसी ही कंगाल दशा में बड़े कष्ट से अपना निर्वाह कर रहे हैं — इस बात से तुम्हें शर्म नहीं लगती? हम साधुओं को क्या? हमारे तो ऐसा वस्त्र भी कहाँ से आवे? हम तो फटा-पुराना, घिसा-छीजा कपड़ा पहनने वाले हैं। अन्य पुरुषों के ऊपर भरोसा तो रखते ही नहीं, वरन् अपने शरीर की स्थिति के बारे में हमें चिन्ता नहीं और भौरे की भाँति एक भी फूल को नाचे बिना अनेक फूलों पर गूँज गूँज कर पेट भरते हैं, उसी प्रकार हम घर घर भिक्षा मांग कर परोपकारार्थ ही देह को लगाते हैं।

त्वयि राज्यं कुर्वति तव साधमिका ईदृशा दारिद्र्योपद्रुताः कष्टेन निर्वाहं कुर्वाणाः सन्ति। तत्र भवतां कस्मान्न त्रपा स्यात्। अस्माकं तु सामान्यवेपे गुरुतैव सर्वज्ञोक्ताचारत्वात्। यतः

त्यक्तसज्जो जीर्णवासा मलकिलकलेवरः॥

भजन् माधुरकी श्रुतिं मुनिचर्या सदा श्रयेत् ॥

इसके बाद श्रावकों के संकट-निवारण में राजा प्रति वर्ष एक कोटि मोहर देने लगा।

तदनु संजातसंघवात्सल्येन भगवत्प्राप्तिकोद्वारेण सहस्रहाटकपिण्य मया कर्तव्यमित्यभिप्रायं जग्राह। एवमेकस्मिन् वर्षे साधमिकेभ्यः कोटि दीनारदानम्। एवं चतुर्दशवर्षेषु चतुर्दशकोटयः सुवर्णस्य दत्ताः।

हेमचन्द्र के काल में अर्थात् ८०० वर्ष पूर्व तो आज के देखते हुए हम अपने यहाँ रामराज भागते थे। तौमी हरिद की उच्च पंक्ति में रखने से कहीं भ्रष्ट न हो जाय — इस घर के मारे आचार्य ने खादी धारण की। तो फिर उसकी अपेक्षा खादी पहनने की कौन जाने कितनी गुनी आवश्यकता है। कारण कि विदेशी अथवा मिल का वस्त्र पहनने में तेहरा पाए है; अथवा तो गरीब लोग काम तथा अन्न के अभाव से भूखों मरते हैं दूसरे, साहूकार को अपनी लेकिन हराम की कमाई से केवल हानि ही होती है और तीसरे यह कि मशीनों पर काम करने वाले आदमियों की शारीरिक एवं आध्यात्मिक अव्यवस्था होती है।

( नवजीवन )

वालजी गोविंदजी देसाई



अहिंसा (३)

वार्षिक ५) ५)  
 ४: माघ का २)  
 एक प्रति का १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १२

मुद्रक-प्रकाशक

अहमदाबाद, कार्तिक वदि १४, संवत् १९८३

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

स्वामी आनन्द

गुरुवार, ४ नवम्बर १९२६ ई०

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## एक मात्र गृह-उद्योग चर्खा

१

चर्खा आन्दोलन का ठीक २ अर्थ समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि उसका अर्थ क्या नहीं है। उदाहरणार्थ — हाथ-कटाई का यह अर्थ नहीं है कि — इससे कभी ऐसी उमेद भी नहीं की गयी थी — कभी भी यह किसी मौजूदा उद्योग से प्रतिस्पर्धा कर उसे हटावे। एक भी हथपुष्ट पुरुष को अपने दूधरे, इससे अधिक आमदनी वाले धंधे से हटाने का इसका उद्देश्य नहीं है। इसलिए हाथ-कटाई की आमदनी का दूसरे धंधों की आमदनी से मिश्रण करना या आर्थिक दृष्टि से इसका मूल्य निश्चित करने के लिए नफा और मिहनत पर नजर दौड़ाने में भूल ही होगी। एक शब्द में, चर्खे से देश धनी होगा अवश्य किन्तु अगर कोई व्यक्ति चर्खा चला कर धनाढ्य बनने को आशा रखे तो वह धोखा खावेगा। इसका एक मात्र दावा है कि केवल एक यही भारतवर्ष की महा-समस्या का तुरत, व्यावहारिक और स्थायी समाधान कर सकता है। भारतवर्ष की वह महासमस्या है, उसकी आबादी के एक बहुत बड़े अंश का कृषि के अलावा कोई सहायक धंधा न रहने के कारण ६ महीनों तक लाचर बेकार रहना और इस कारण भूखों मरना। अगर ये दो बातें न होती — बेकारी और भूखों मरना — तो चर्खे से इतनी कम आमदनी है कि हिन्दुस्तान के राष्ट्रिय जीवन में इसका कोई स्थान न होता। इसलिए चर्खे के आर्थिक महत्व का ठीक २ अनुमान करने के लिए हिन्दुस्तानी जनता की प्रायः अविश्वसनीय दरिद्रता का और उसे दूर करने के उपायों का पता लगाने के लिए, उसके कारणों का भी, विशेष विचार करना पड़ेगा।

हिन्दुस्तान के सभी स्वदेशी उद्योगों का एक एक कर के नष्ट होते जाना और उनके बदले 'नये' उद्योगों का पैदा न होना; देश की आबादी के एक बहुत बड़े अंश का और कोई धंधा न होने के कारण खेती पर ही दिन दिन अधिकाधिक निर्भर होते जाना; मजदूरों की जाति का खराब होते जाना; तुरत तुरत

अकालों का पड़ते जाना जिनके विषय में डिग्री साहेब कहते हैं कि, "पहले जहां तीन तीन साल तक सूखा पड़ते रहने पर कहीं जा कर अकाल पड़ता था, वहां एक साल पानी न पड़ने से ही अकाल पड़ जाता है;" किसानों की दरिद्रता का अधिकाधिक बढ़ते जाना, जिस से अपने चौआ चौआ बैठे हुए खेतों में न तो वह कोई उन्नति ही कर सकता है और न वे खेत ही इस काबिल हैं कि उनमें खेती के नये औजारों से काम लिया जा सके या उन्नत तरीकों से खेती ही की जा सके; जहां कपास पैदा होती है वहां किसानों का कपास खरीदनेवाले दलालों के पजे में पड़े रहना जिससे वे किसानों से कपास की ही खेती करवाते हैं और खाद्य पदार्थ मंहंगे होते जाते हैं; — इन सब तथा और कई कारणों ने मिल कर दरिद्रता और बेकारी की आज महासमस्या उत्पन्न की है। शहरों और गांवों के विचित्रवत्ता वनियों ने गांवों में लंकाशायर (इंग्लैण्ड) के बने कपड़ों का कूरा लगा कर के — और गांवों के प्राण-दायी उद्योग अब हैं नहीं — और यूरोप की नकल पर अपने घर उद्योगों को नष्ट कर के हमने जो मिलें खड़ी की हैं, उन्होंने इस समस्या का सुलझाना और भी कठिन कर दिया है क्योंकि इसके साथ उन्होंने सम्पत्ति के वेहेसाब नाबराबर बँटवारे का — घनी गरीब में बहुत बड़े फर्क का — नया पेचीला सवाल उलझा दिया है।

१९ वीं सदी के पहले चरण के यानी सौ वर्ष पहले के डाक्टर बुबानन और मौन्टगोमरी मार्टिन के उत्तर भारत के वर्णन प्राप्य हैं जिनमें उन्होंने कहा है कि शहर और गांव सम्पत्ति की भरपूर से हरे भरे थे; अपने आप ही वह विशाल संस्था गांवों और शहरों में चलती थी जिस से करोड़ों सूत कातनेवाले, लाखों जुड़ाहे और हजारों रंगरेज, धोबी, बढई और दूसरे छोटे २ कारीगर, सभी जिलों में सालों साल काम में लगे रहते थे; इससे करोड़ों रुपये पैदा होते और समान रूप से बिहार, बंगाल, संयुक्तप्रान्त और माइसोर में बँटते थे। उस जमाने की हालत और अब की दुर्दशा का अन्तर देखने के लिए अगर सरकार की गवाही की जरूरत हो तो मर्डमशुमारी की रिपोर्टों में काफी मसाला



## हिन्दी-नवजीवन

९०

मिलेगा। भिन्न २ प्रान्तों में एक किसान का औसत खेत देखिये:

प्रान्त	औसत खेत (एकड़ों में)	प्रान्त	औसत खेत (एकड़ों में)
आंध्रप्रदेश	२.९६	मध्यप्रान्त और बरार	८.४८
बंगाल	३.१२	मद्रास	४.९१
बिहार और उड़ीसा	३.०९	उ० प० सीमाप्रान्त	११.२२
बंबई	१२.१५	पंजाब	९.१८
बर्मा	५.६५	संयुक्तप्रान्त	२.५१

(देखो मधुमशुमारी की रिपोर्ट १९२१-भाग १)

इन्हीं दरिद्र खेतों पर, हमारे ७२ फी सदी किसानों की बसर होती हुई समझी जाती है। मधुम शुमारी की रिपोर्ट का कहना है कि इन खेतों का न तो आप ही पूरा उपयोग होता है और न ये किसान का ही पूरा समय ले पाते हैं। बंगाल के मधुमशुमारी के कमिश्नर मिस्टर टौमसन कहते हैं: “बंगाल में अबल खेतिहारी की संख्या है १ करोड़ १० लख। इसका अर्थ हुआ फी किसान सवा दो एकड़ से भी कम खेत। किसानों की गरीबी का पता इन अंकों से ही लगता है। अब सवा दो एकड़ से भी कम खेत की आबादी में एक आदमी को साल में कुछ ही दिनों का काम रहता है। जब किसान खेत जोतता है तब, और जब फसल काटता है तब कुछ दिनों के लिए उसे काफी काम रहता है। मगर साल में अधिक दिन उसे या तो काम रहता ही नहीं या नाम मात्र को थोड़ा सा काम रहता है।” इन्हीं लेखक का कहना है कि गहूँ पैदा करने वाले संसार के सभी बड़े २ देशों में फी किसान खेत का औसत इससे कहीं अधिक पड़ता है। संयुक्त प्रान्त के सेन्सस कमिश्नर मि० एबी का कहना है कि “इस प्रान्त में खेती का काम, कुछ थोड़े दिनों के लिए बड़ी मिहनत का होता है और साल के और दिनों में प्रायः बिल्कुल बेकारी ही रहती है। ये बेकारी के दिन आलस्य में कटते हैं।” मध्यप्रान्त के कमिश्नर मि० हफ्टन कहते हैं कि “बरसात के अखीर में होने वाली खरीफ फसल ही यहां की मुख्य फसल है। यह फसल खतम हो जाने पर दूसरी बरसात शुरू होने तक किसानों को कोई काम नहीं रहता।” ‘पंजाब की संपत्ति और मलाई’ नाम की किताब में मि० कैलवर्ट लिखते हैं कि “पंजाब में एक किसान का औसत काम साल में १५० दिनों के काम से अधिक नहीं होता।” जब यह हालत एक ऐसे प्रान्त की है जहां के किसानों का औसत खेत अपेक्षाकृत काफी बड़ा है (९.१८ एकड़), और जहां सिंचाई के सुख का संकट हिन्दुस्तान में दोयम है, तब दूसरे प्रान्तों की हालत का अन्दाजा सहज में ही लगाया जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये सब सरकारी अफसर इस बात में एक मत हैं कि किसानों की खरी आबादी साल में कम से कम ६ महीने तो जरूर ही बेकार रहती है। एक दो अफसरों ने तो इसी को किसानों की गरीबी का काम कारण बताया है। प्रीत साहब के ‘सरल इन्डस्ट्रीज ऑफ इंग्लैंड’ के अनुसार जब “लंदन शहर में जहां फी किसान औसत खेत २१ एकड़ है, यह समझा जाता है कि अगर किसानों को जमीनों के बिनों में और घुरे मौसिमों में पुराने जमाने के ऐसा कुछ आमदनी का काम करने को मिल सकता तो बड़ी न्यायमय समझी जाती” और इटाली में जहां उस देश

का अपना ही कपास का एक मुख्य व्यवसाय है, “प्रायः हर एक जिले के किसानों की स्त्रियां जहां रेशम होता है, सूत कातने में बराबर लगी रहती हैं,” तब हिन्दुस्तान ऐसे विशाल देश में, खेती से सम्बद्ध किसी सहायक घराऊ उद्योग की परमावश्यकता को बतलाने के लिए तर्कों की जरूरत न पड़ेगी।

मगर वह सहायक घराऊ धन्धा कौन सा होना चाहिए, इस विषय में बहुत तर्क वितर्क होता है — हमेशे से होता चला आया है मगर विशेष कर के चर्खा आन्दोलन आरम्भ होने के बाद से ही। यह बात, हमें आशा है कि चर्खे के विरोधी भी मान लेंगे। हम उमेद करते हैं कि वे इसे कबूल करेंगे कि चर्खा-आन्दोलन ने ही उन्हें इस प्रश्न पर विचार करने को प्रवृत्त किया। एक बार वे इस बात को मान लें और तब हम बहुत नम्रता से उन्हें कहेंगे कि फोर्ड मोटरकार के ऐसा चर्खा भी कोई नया आविष्कार नहीं है। यह तो वैसा ही है जैसे भूला भटकता लड़का बहुत दिनों पर अपनी मा का पता लगावे। आलोचक को यहां यह न भूलना चाहिए कि मनुष्यों का एक बड़ा विशाल समूह, जो संसार भर में सब से अधिक अपरिवर्तनशील है, और जो हजार कोस लम्बे और पौन हजार कोस चौड़े महादेश में बसा हुआ है, लड़का माना जाता है और वह कारीगरी जिससे उसकी परवरिश होती थी उसकी मा मानी जाती है।

एक बार यह बात समझ लेने पर फिर कोई गम्भीरता के साथ किसी दूसरे धन्धे के दावे पेश नहीं करेगा। धन्धे बहुत हैं और गली २ मारे फिरते हैं। पशु-पालन की क्यों न आज-माइश की जाय? मगर हिन्दुस्तान तो डेनमार्क है नहीं जिसके हाथों इंग्लैंड के मक्खन का करीब २ आधा व्यापार है। सन् १९०० में डेनमार्क को इंग्लैंड से १२ करोड़ रुपये मक्खन के लिए और ४३ करोड़ सूअर के गोश्त के लिए मिले थे। गो-पालन के साथ सूअर का पालन आवश्यक है। मगर हिन्दुस्तान को तो एक और बड़ा हिन्दुस्तान अपना मक्खन बेंचने के लिए मिल नहीं सकता। और फिर हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों को सूअर की तिजारत करने को कहेगा भी कौन? तीतर और मधुमक्खो पालने के धन्धे बड़े अनोखे हैं और उनमें कितनी कठिनाइयां भी हैं। उन्हें अगर इस अनोखेपन के कारण न छोड़ें तो भी इस कारण तो छोट ही देना पड़ेगा कि शब्द की विक्री के लिए नया देश कहाँ मिलेगा? हिन्दुस्तान आज अपनी कृषि को भी उन्नत नहीं कर सकता और फी किसान १ एकड़ की औसत खेती की भी नहीं बड़ा सकता क्योंकि यह तो आयरलैंड जैसा स्वतन्त्र देश है नहीं। उसका कृषि-विभाग आश्वर्यजनक रूप से उन्नत है। वह कृषि-विद्यालय खोलता है, और सभी जिला-बोर्डों को उसके जरिये कृषि के विशेषज्ञ विद्वानों की सलाह मिलती रहती है। यह भी कोई भाई न सुझावेंगे कि यह विशाल जन-समूह मोझे या टोकरीयां या बेंत के सामान बुनने का काम कर सकता है। इनकी न तो हमेशे स्थायी रूप से बिक्री हो सकती है और न माँग ही पैदा की जा सकती है। लेकिन सूत के साथ यह बात नहीं है। अभी भी बंगाल और मद्रास के कुछ दिशों में सूतहाट की चाल चली आती है। अज्ञात विनोद के साथ बंगाल के एक सिविलियन सुझाते हैं कि बंगाल के जूट पैदा करने वाले क्षेत्रों में एक जूट-मिल क्यों न खोली जाय। शायद उन्हें इसपर आश्वय हो रहा है कि उनके दूसरे सिविलियन भाइयों ने कपड़े की और अधिक मिलें



खोलनी क्यों न सुझायी है? वे भूल जाते हैं कि जूट मिलें डाई लाख से अधिक मजदूरों को काम नहीं देती और जूट पैदा करने वाले किसानों को गरीब बना कर थोड़े से पूंजीपतियों और बिचबिचवानों का ही घर भरती हैं। ७० साल से इस देश में कपड़े की मिलें चल रही हैं और अब तक, उनमें ५० करोड़ रुपया लगा देने के बाद हमारे मिलमालिक आज अपने ३ लाख ७० हजार मजदूरों के परिवार के १५ लाख आदमियों और सुदृग्ध कर्कों और अफसरों को अन्न-वस्त्र देने का दावा करते हैं। (देखो टैरिफ बोर्ड के सामने बम्बई के मिल-मालिकों का बयान।)

मगर यह उग्र पेश किया जाता है कि चर्खें से बहुत थोड़ी आमदनी होती है और इसलिए सूत कातने में समय लगाना, समय की बरबादी है। यहां यह भुला दिया जाता है कि मुख्य धंधे के रूप में चर्खों की कमी भी सिफारिश न की गयी है। यह तो उन लोगों के लिए है जो अगर कातें नहीं तो अपना समय आलस्य में बितावेंगे। दो आने रोज या एक ही आना रोज यानी २४) रुपया साल की आमदनी बहुत कम है या नहीं इसका विचार तो वे लोग कर सकते हैं जिन्होंने अपनी आंखों से जनसमूह की खून सुखानेवाली गरीबी को देखा है। हिन्दुस्तानियों की औसत आमदनी का विचार करने का यह स्थान नहीं है। भारतीय आर्थिक जाँच समिति ने कम से कम १५ विशेषज्ञों के समय समय पर किये गये अनुमानों का उदाहरण दिया है। पहले पहल तभी से जब से दादाभाई नौरोजी ने इस माया मृग की खोज प्रारंभ की, कितनों ने इसके पीछे स्तिर खपाया है मगर अभी तक यह नहीं माना जाता है कि कोई भी अब तक सही अनुमान कर सका। मगर अगर हम उस अनुमान को भी सही मान लें जो दर असल हकीकत से बहुत दूर जा पड़ता हुआ माछम होता है यानी मि० फिन्डले शिरास का फी आदमी ११६) रुपया सालाना आमदनी का अनुमान तभी यह धोचने की बात है कि ११६) में २४) की बढ़ती क्या थोड़ी समझी जायगी?

हाथकताई में निम्नलिखित विशेषताएं हैं जो हिन्दुस्तान की मौजूदा आर्थिक दृष्टि को दूर करने में उसे मुख्य पद दे देती हैं।

१. इसे तुरत ही व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है, क्योंकि (क) इसे शुरू करने के लिए पूंजी या कीमती औजारों की कुछ भी जरूरत नहीं पड़ती। इसके लिए यंत्र और कच्चा माल दोनों ही सस्ते में हर स्थान पर मिल सकते हैं।

(ख) इसके लिए उससे अधिक निपुणता या बुद्धि की जरूरत नहीं है, जितनी कि दुःख की मारी, अज्ञान हिन्दुस्तानी जनता को है।

(ग) इसके लिए इनकी कम शारीरिक मिदगत की जरूरत पड़ती है कि छोटे लड़के और बूढ़े भी सूत कात कर परिवार की आमदनी बढ़ा सकते हैं।

(घ) इसके लिए फिर नये सिरे से क्षेत्र तैयार करने की जरूरत नहीं है क्योंकि अभी भी लोगों में हाथकताई की प्रथा प्रचलित है।

२. यह सार्वजनिक और स्थायी है क्योंकि खाद्य पदार्थों के सिवाय, सूत ही एक वस्तु है जिसकी माँग अपरिमित और हमेशा बढ़ती रह सकती है और कातनेवाले के दरवाजे पर ही यह बात की बात में बराबर बिक सकता है जिस से गरीब किसान को रोज थोड़ा नागा ४ पैसे की आमदनी हो सकती है।

३. इस पर बरसात की कमी वेशी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए अकाल के दिनों में भी यह जारी रखा जा सकता है।

४. लोगों की धार्मिक या सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध यह नहीं है।

५. जैसा कि हम दूसरे अध्याय में देखेंगे, अकाल से जूटने का यह सब से सहज और अच्छा तरीका है।

६. आर्थिक कठिनाई में परिवार के एक एक आदमी को दूर दूर पर अलग अलग जा कर मजदूरी करनी पड़ती है जिससे कुटुम्ब की एकता में बाधा पहुँचती है लेकिन चर्खा तो घर बैठे ही सब को रोजगार और रोजी दोनों देता है।

७. हिन्दुस्तान की नष्टप्राय पुँचायतों के पुनः संगठन की कुछ आशा केवल एक इसीसे की जा सकती है।

८. यह किसान का जितना बड़ा सहायक है। जुलाई का भी उतना ही बड़ा सहारा है, क्योंकि केवल एक इसी से हाथ-बुनाई के धंधे को स्थायित्व और स्थायी आकार मिल सकता है। आज हाथबुनाई के धंधे से, पौन करोड़ से कोई एक करोड़ आदमियों की गुजर होती है और हिन्दुस्तान के कपड़ों का एक तिहाई अंश पैदा होता है।

९. इसके पुनरुद्धार से कितने दूसरे सहायक और समान धंधे जी उठेंगे और इस प्रकार गाँवों का, जो आज नष्टप्राय हो रहे हैं, उससे उद्धार होगा।

१०. हिन्दुस्तान के करोड़ों वाशिनदों में, केवल एक इसीके जरिये धन का समान वँटवारा सम्भव है।

११. बेकारी की समस्या का हल—वह भी किसानों की आधी बेकारी नहीं; बल्कि शिक्षित युवकों की, जो आज काम की फिक्र में यों ही मरे २ फिरते हैं, बेकारी का हल केवल एक इसी वस्तु से हो सकता है। यह काम ही इतना विशाल है कि इसके संगठन और संचालन के लिए देश की सारी बुद्धि के संयोजन की जरूरत है।

अब तक इसने क्या कर पाया है और इससे क्या उम्मीदें रखी जा सकती हैं, इनका विचार किसी दूसरे ही अध्याय में करना होगा।

### अन्त्यजों का पूजाधिकार

नीमच छावनी से एक भाई प्रश्न करते हैं:

“(१) अछूत, जिनको उच्च वर्ण के हिन्दू अतिशय भी कहते हैं, विष्णु भगवान् का मन्दिर बनाने, विष्णु की मूर्ति की पूजा करने और मूर्ति को विमान में बिठा कर सरे बाजार निकालने के अधिकारी हैं या नहीं?”

(२) क्या अतिशय पूजित विष्णु की मूर्ति के वस्त्र करने से वैष्णव नरकगामी होते हैं?”

ऐसे प्रश्न अब तक पूछने पड़ते हैं यही दुःख की बात है। मेरा हठ विश्वास है कि अन्त्यज भाइयों को विष्णु भगवान् की मूर्ति बाजार में निकालने का और विमान में बिठाने का पूरा अधिकार है, जितना अन्य जातियों को है। इसी तरह जो वैष्णव अतिशय पूजित मूर्ति की पूजा करता है या दर्शन करता है, वह पाप नहीं परन्तु पुण्य करता है। जो वैष्णव जान-बूझ कर ऐसी मूर्ति की पूजा से करेगा वह वैष्णव धर्म की निंदा करता है।

मो० क० गोधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक वदि, १४, संवत् १९८३

## अहिंसा

(३)

आइये। इसका विचार से पता लगावें कि जीव लेना धर्म हो सकता है या नहीं।

अगर किसी तरह इस देह को हम केवल खड़ा भी रखें तो भी हमें जीव तो लेना ही पड़ेगा; जैसे भोजन के लिए अन्न, फल, वनस्पति आदि और जन्तुनाशक पदार्थों द्वारा मच्छरों आदि का जीव लेना होगा और हम यह भी मानते हैं कि ऐसा करने में अधर्म नहीं है।

यह तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हुआ। परमार्थ के लिए हम हिंसक प्राणियों का नाश करते हैं या दूसरों के द्वारा करवाते हैं। सिंहादि जब गांवों में ऊपर होते हैं तब उनका नाश करना समाज अपना धर्म समझता है।

ऐसा भी होता है कि मनुष्यबध तक को धर्म समझा जाय। पागलपन में या नशे में एक आदमी नंगी तलवार ले कर जो कोई नजर आवे उसे काटता चला जाता है। उसे जिन्दा पकड़ केने की शक्ति किसी में नहीं है। उसे जो आदमी मार सकेगा वह परोपकारी गिना जायगा। अहिंसा की दृष्टि से उसे मारने का धर्म सभी किसी को प्राप्त है। हाँ, एक प्रसंग इसमें से हम बाढ़ कर सकते हैं। जो मुनि उसके नशे को उतार सकें, वे उसे न मारें। किन्तु हम तो यहाँ तक संपूर्णता को पहुँचे हुए मुनियों के धर्म का सवाल नहीं छेड़ते-परन्तु हमें समाज के धर्म और समाज में रहनेवाले रागद्वेषादियुक्त व्यक्तियों के धर्म का विचार करना है।

ऊपर के दृष्टान्त के विषय में मतभेद भले ही हो। अगर यह दृष्टान्त अपूर्ण अर्थात् तो दूसरे पूर्ण दृष्टान्त की कल्पना हम कर ले सकते हैं। किन्तु किसी भी अवस्था में जीव न लेने का एकांगी धर्म सिद्ध नहीं हो सकता।

सच्ची बात तो यह है कि अहिंसा का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि 'जीव न मारो'। क्रोध अधवा स्वार्थ के वश हो कर किसी व्यक्ति का अनिष्ट करने के इरादे से उसे दुःख देने या उसके देह का नाश करने का नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है।

वैद्य कबूची दवा देता है। वह दुःख देता है किन्तु हिंसा नहीं करता। कबूची दवा देनी ही चाहिए और अगर न दे तभी वह अहिंसा धर्म के पालन में चूकता है। शस्त्रवेद्य (जर्ह) अगर दुःख देने के भय से रखा हुआ हाथ नहीं काटता है तो वह हिंसा करता है। अपनी रक्षा में रहनेवाले बालक के ऊपर (जो हम से रक्षा की आशा रखता है) चढ़ आये हुए खनी को (अगर दूसरी तरह से उसका उपद्रव न रोका जा सके तो) जो मारता नहीं वह पुण्य नहीं करता, पाप करता है, वह अहिंसा-धर्म का पालन नहीं करता किन्तु मोहवश हो कर अहिंसा के नाम में हिंसा करता है। सामाजिक अहिंसा-धर्म ऐसा होता है।

अब हम अहिंसा के मूल की खोज करें। उसके मूल में निःस्वार्थता है। निःस्वार्थता का अर्थ है देहाभिमान का सर्वथा

अभाव। देहाभिमान यानी देहाध्यास को ले कर मनुष्य को छोटे मोटे अनेक देहों का नाश करते हुए किसी ऋषिमुनि ने देखा मनुष्य के गूढ़ अज्ञान को देख कर ऋषि का दिल कांप उठा। उन्होंने देखा कि देह के आवरण से मनुष्य अपने में ही रहनेवाले अमर आत्मा को भूल जाता है और आत्मा के मंगलसाधन के बदले अपने क्षणिक देह का काम साधता है। इस प्रकार ऋषि ने सर्वस्व के सम्पूर्ण त्याग की आवश्यकता देखी। उन्होंने देखा कि मनुष्य अगर आत्मा यानी सत्य का दर्शन करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र समुचित मार्ग है देह का त्याग कर देना। इसका अर्थ हुआ दूसरे जीवों को अभय-दान देना। यह अहिंसा का मार्ग है।

ऐसा विचार करने से दूसरे जीवों का नाश करने में पाप नहीं मालूम होता किन्तु पाप है अपनी देह पर सुगंध होने में, क्षणिक देह के लिए दूसरे जीवों का नाश करने में। इससे आहारादि के कारण मनुष्य जो जीव-नाश करता है, उसमें देहाध्यास है और इसलिए हिंसा है। परन्तु उसे अनिवार्य समझ कर मनुष्य निबाहता है। किन्तु दुःख से पीड़ित प्राणी की देह का नाश, उसकी शान्ति के लिए किया जाय तो हिंसा दोष में नहीं गिना जायगा। या अपने रक्षण में रहनेवाले की रक्षा के लिए किया गया अनिवार्य बध हिंसा दोष में नहीं गिना जायगा।

इस विचारधेरा को बहुत कुछ दुरुपयोग होना संभव है। उसका कारण विचारदोष नहीं है किन्तु देह के प्रति मोह के कारण अपने आप को धोखा देने के लिए जो कोई बहाना मिल सके उसका प्रयत्न उपयोग कर लेने की हमारी आदत ही उसका कारण है। किन्तु इस दुरुपयोग के भय से सत्य हकीकत को छिपाने से अहिंसा मार्ग को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

इस चित्र में से अहिंसा का जो सार निकलता है, वह यह है:

(१) इस जगत में कोई भी देहधारी, कुछ अंश में हिंसा किये बिना अपनी देह को टिकाये नहीं रह सकता।

(२) सभी कोई (क) अपनी देह की रक्षा के लिए (ख) अपने रक्षणीय की रक्षा के लिए (ग) कभी २ उन्हीं जीवों को शान्ति देने के लिए — अनेक जीवों का बध करते हैं।

(३) अहिंसा की व्याख्या के अनुसार क और ख में थोड़ी बहुत हिंसा तो भरी हुई है ही। ग में हिंसदोष विलकुल नहीं है। इस से वैसा बध सर्वांश में अहिंसक है। वैसे ही क और ख का भी हिंसक होना अनिवार्य है।

(४) इसलिए क और ख में समायी हुई हिंसा, ऊर्ध्वगामी अहिंसावादी मनुष्य कम से कम प्रमाण में, जब उससे छुटकारा न मिल सके तभी और खूब समझ वृद्ध कर — दूसरे सब उपाय कर चुकने के बाद ही करेगा।

मेरा बतलाया हुआ कुत्तों का बध चौथे प्रकार की हिंसा है। इससे वह जब अनिवार्य हो, उसके बिना चलता ही न हो तब पुरते विचार के बाद ही किया जा सकता है। किन्तु इस विषय में मुझे शंका नहीं है कि जब वह अनिवार्य हो जाय तब उसे न करने में ही विशेष दोष है। इससे कुत्तों इत्यादि को मारना व्यापक धर्म तो नहीं हो सकता मगर खास स्थिति में खास समय खास आदमी के लिए आवश्यक हो सकता है।

अब इतना विचार करने के बाद कितने पत्र आये हैं, उनके प्रश्नों का सिलसिलेवार उत्तर देने का प्रयत्न करता हूँ। कई एक भाई अपने पत्रों का व्यक्तिगत उत्तर मांगते हैं और वह न मिलने पर अपने विचार समाचार-पत्रों में छपा देने की धमकी देते



को छोटे  
ने देखा  
प उठा।  
रहनेवाले  
लगाधन के  
र कृपि ने  
देखा कि  
ता है तो  
कर देना।  
यह अहिंसा  
में पाप  
होने में,  
में। इससे  
उसमें देहा-  
समझ कर  
ही देह का  
प में नहीं  
हा के लिए  
यगा।  
संभव है।  
ते मोह के  
हाना मिल  
ही उसका  
हकीकत को  
।  
गा है, वह  
श में हिंसा  
लिए (ख)  
जीवों को  
है।  
थोड़ी बहुत  
नहीं है।  
और ख का  
उध्वगामी  
से छुटकारा  
दूसरे सब  
की हिंसा  
ही न हो  
किन्तु इस  
जाय तब  
दि को मारना  
ति में खास  
।  
हैं, उनके  
। कई एक  
वह न मिलने  
धमकी रहे

हैं। व्यक्तिगत जवाब देना मेरी शक्ति के बाहर है। जिनको जवाब देना है, वह यही, इस पत्र में ही दिया जा सकता है। जिन्हें दूसरे पत्रों में इसकी चर्चा करनी हो, उन्हें रोकने का मुझे जरा भी अधिकार नहीं है, इच्छा भी नहीं है। पत्र-लेखकों को मैं याद दिला देता हूँ कि धर्म-चर्चा में धमकी या अधीरता को कोई स्थान नहीं है।

एक भाई लिखते हैं कि “५७ वर्ष की उम्र में आपको कुत्तों को मरवाने का धर्म कहां से सूझा? अगर पहले ही सूझा था तो अब तक मुँह में दही जमाये हुए क्यों थे?”

मनुष्य को जब सत्य सूझता है तभी उसे बतलाता है। वृद्धावस्था में सूझा तौभी क्या? प्रसंग उपस्थित होने पर तो उसे जागिर करना ही पड़ता है।

मर्यादित रूप से प्राणियों के मारने का धर्म तो मैं बहुत साल से स्वीकार किये हुए हूँ। प्रसंग पड़ने पर मैंने उसका अमल भी किया है। गांवों में अनजान भटकता हुआ कुत्ता अगर भागे नहीं तो उसे मारने का धर्म तो माना ही हुआ है। कारण यह है कि गांवों में लोगों ने अपने कुत्ते पाल रखे हैं। वे कुत्ते दूसरे कुत्तों को मगाते हैं और वे अगर न आगे तो उन्हें मार डालते हैं। ऐसे रखवाली के कुत्ते तो गांववाले जान-बूझ कर पालते हैं। ये गांव के कुत्ते केवल दूसरे कुत्तों को मारते ही नहीं हैं किन्तु चोरों इत्यादि पर भी हमला करते हैं। कुत्तों का उपद्रव तो सिर्फ शहरों में ही चलता है। वेमालिक कुत्तों को न रहने देना ही इसका एक मात्र उपाय है। इसमें कुत्तों का कम से कम नाश होता है और शहर वालों की रक्षा होती है।

एक दूसरे पत्र-लेखक लिखते हैं कि “अहिंसा जैसी वस्तु की चर्चा दलील से कर के आप कौन सा धर्म सिखाना चाहते हैं?”

इस उलाहने में भी कुछ रहस्य है। मुझे तो किसी को कुछ सिखलाना न था। किन्तु अहिंसा-धर्म का पालने वाला होने के कारण, प्रसंग आने पर मुझे अपने विचार प्रकट करने ही पड़े। मैंने ऐसा अनुभव अनेक बार किया है कि धर्म की चर्चा में न्याय-शास्त्र और दलील का स्थान है तो मगर बहुत छोटा था।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

चर्खे का अर्थ-शास्त्र

एक मित्र की प्रेरणा से मैंने ‘आर्थिक दृष्टि से खादी’ विषय पर संक्षिप्त लेख तैयार कराये थे। लेख बहुत बढ गये और उनमें मिहनत भी बहुत लगी। मगर अभीष्ट मतलब के लिए वे बहुत बडे हो गये। इसलिए उनका नये ढाँचे में संक्षेप करना पडा। करीब २ वे नये सिरे से फिर लिखे गये। इस प्रकार इन लेखों के लिए दो मित्रों ने परिश्रम किया है। सुगोष्ठ और संयुक्त स्वरूप में ‘खदर के अर्थ-शास्त्र’ वे बतलाते हैं और उनका असर और सज्जनों पर भी पड़ेगा अगर उन्हें एक मित्र के पास भेजने के अलावा प्रकाशित भी कर दिया जाय। इसलिए कई हिस्सों में कर के इन पृष्ठों में उन्हें दिया जा रहा है। पहले हिस्सा इसी सप्ताह में आ रहा है। सम्भवतः इस पत्र के पाठकों को उनमें कोई नयी बात नहीं मिलेगी। किन्तु कुछतर तर्कों को वे संयुक्त अध्यायों में, छोटे में ही, इकट्ठा किया हुआ पावेंगे।

(५०-६०)

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २५

हिन्दुस्तान में

कलकत्ते से बम्बई जाते हुए प्रयाग रास्ते में पड़ता था और वहां रेल पौन घंटा रुकती थी। इस दरम्यान मैं मैने शहर का एक चक्कर लगा आना चाहा। मुझे किसी केमिस्ट (दवाई की दूकानवाला) की दूकान से एक दवा भी लेनी थी। मेरे वहां पहुँचने पर केमिस्ट ऊँघता हुआ बाहर निकला, और उसने दवा देने में बहुत वक्त लिया। दवा ले कर मेरे स्टेशन पहुँचते ही मैंने गाड़ी को छूटते हुए देखा। उस भले स्टेशन मास्टर ने गाड़ी को एक मिनट रोक लिया था, लेकिन मुझे वापिस आते हुए न देख कर मेरा सामान उतार लेने की परवाह की।

मैं कैलर के होटल में उतरा और यहीं से मैंने अपना काम शुरू करने का निश्चय किया। इसी शहर के ‘पायनियर’ पत्र की ख्याति मैं सुन चुका था। प्रजा की आकांक्षाओं के उसके विरोध को मैं जानता था। मुझे ऐसा याद पड़ता है कि उस समय मि० चेन्ननी (जुनियर) उसके अधिपति थे। मुझे तो प्रत्येक पक्ष से मिल कर सब की मदद लेनी थी। इसलिए मि० चेन्ननी से मुलाकात करने के लिए मैंने चिट्ठी लिखी। मैंने उस चिट्ठी द्वारा उनको यह भी सूचित किया कि मैं यहां देन छूट जाने के कारण रह गया हूँ और दूसरे दिन प्रयाग से चल दूंगा। उन्होंने मुझे तुरन्त मिल जाने के लिए लिखा। मैं मिलने को राजी हो गया। उन्होंने मेरी बात ध्यान से सुनी। वे बोले कि अगर आप कुछ भी लिखेंगे तो मैं तुरन्त अपने पत्र में उस पर कुछ अवश्य लिखूंगा। इतना कह कर फिर बोले “लेकिन आप की दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की सब माँगें मैं स्वीकार कर ही लूंगा — सो मैं आप से नहीं कह सकता। वहां के रहनेवाले यूरोपियनों की दृष्टि भी तो हम को समझना और देखना चाहिए।”

मैंने उत्तर दिया — आप इस मामले को समझ लें और उसकी चर्चा करते रहें — मेरे वास्ते इतना काफी है। मैं शुद्ध न्याय के सिवा और कुछ नहीं माँगता और न उसकी इच्छा ही रखता हूँ।

दिन के बाकी हिस्से को मैंने भव्य त्रिवेणी जी के दर्शन तथा अपने पास पड़े हुए काम पर विचार करने में बिताया।

इस आकस्मिक मुलाकात ने नैटाल में मेरे ऊपर किये जानेवाले आक्रमण की नींव डाली।

मैं बम्बई विना रुके, सीधा राजकोट गया और मैंने वहां पहुँच कर एक चौपतिया लिखने की तैयारी की। इसके लिखने तथा छपवाने में करीब २ एक महीना लग गया। उसके ऊपर का पन्ना हरा था; इसलिए आगे चल कर वह हरी चौपतिया के नाम से प्रसिद्ध हो गई। उसमें दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति के चित्र को मैंने जान बूझ नरम रक्खा था। नैटाल के दो पर्वों में (जिनका जिक्र मैं किसी गत प्रकरण में कर चुका हूँ) मैंने जो भाषा इस्तेमाल की थी, उसकी बनिबत इस विहति में खास कर के जरा मुलायम लिखी। क्योंकि मैं जानता ही था कि छोटा दुःख भी दूर से देखने में बड़ा माझम होता है।

इस हरी चौपतिया की दस हजार प्रतियाँ छपवायीं और वे समस्त हिन्दुस्तान के समाचारपत्रों तथा सभी पक्षों के परिचित लोगों के पास भेजी गयीं। सब से पहले ‘पायनियर’ पत्र ने

मो० क० गांधी



उसके ऊपर अपना लेख लिखा। उसका सारांश विलायत गया फिर उस सारांश का सारांश लंडन से रूटर द्वारा नैटाल मेजा गया। यह तार सिर्फ तीन सतहों का था। नैटालनिवासी हिन्दु-स्तानियों के ऊपर क्या बीत रही थी—इस पर जो कुछ मैंने चित्रित किया था वही एक छोटे आकार में इस तार में था। लेकिन वह मेरे शब्दों में न था। उसका असर क्या हुआ—सो कुछ आगे चल कर देखेंगे। धीरे धीरे इस प्रश्न पर सभी मुख्य मुख्य समाचारपत्रों ने बड़ी २ टिप्पणियाँ लिखीं।

इस पुस्तिका को डाक द्वारा बाहर भेजने के लिए तैयार करने में यह कठिनाई थी कि उस काम को पैसे से कराना तो खर्च की बात थी। मैंने इस खर्च को बचाने की एक तरकीब सोच निकाली। मुहल्ले के सब बालकों को इकट्ठा कर के उन से हर रोज सबेरे दो तीन घंटा, जितना दे सकें उतना, देने के लिए कहा। बालकों ने उतनी सेवा करना खुशी से कुबूल कर लिया। मैंने अपनी ओर से उन्हें अपने पास इकट्ठे किये हुए इस्तेमाल में आ चुके टिकट तथा आशीर्वाद देने को कहा। उन बालकों ने बड़ी आसानी से हमारा यह काम कर दिया। बालकों से स्वयं-सेवकों की हैसियत से सेवा लेने का यह पहला ही मौका था। इन बालकों में से दो आज मेरे साथी हैं।

इसी अर्थ में बम्बई में प्लेग फैला। चारों ओर घबराहट छा रही थी। राजकोट में भी उसके फैलने का डर था। मैंने सोचा कि मुझे आरोग्य-विभाग में काम करना आता ही है। इस बीमारी को दूर करने में सहायक होने के लिए मैंने अपनी सेवा राजकोट राज्य को समर्पित की। स्टेट की ओर से कमेटी बनी और उस कमेटी में मुझे दाखिल किया गया। मैंने शौच-स्थानों की स्वच्छता पर जोर दिया और कमेटी ने मुहल्ले मुहल्ले जा कर पायखानों को निरीक्षण करने का निश्चय किया। गरीब लोगों ने अपने पायखानों की जाँच करने देने में तनिक भी आनाकानी न की; इतना ही नहीं—बल्कि जिन २ सुधारों के करने को उनसे कहा गया सो सो उन्होंने किये भी। लेकिन जब हम स्टेट के अफसरों के घरों को देखने के लिए निकले, तब हमको पायखाने देखने तक की परवानगी बहुत सी जगहों में न मिली—सुधारों की बात ही दूर रही। हम लोगों के सामान्य अनुभव में यह आया कि धनी लोगों के घरों के जाहजूर ज्यादा गंदे थे। उनमें अंधेरा, बदबू, और वेदद गंदगी रहती। आबदस्त लेने की बैठक पर कीड़े बदबूदाते! हालत ऐसी थी मानों जीते जी कोई नर्क में प्रवेश करे। हमने जो सुधार उनसे करने को कहे, वे बिल्कुल सादे थे। जैसे:—संढासों में जो मैला जमीन पर गिरा करता था, सो उसके बदले किसी गमले या बाल्टी में पड़ने देना चाहिए। ऐसा करना चाहिए कि पानी भी जमीन में सूखने के बदले कुंडी में चला जाया करे। बैठक और मंगी के आने के रास्ते के बीच में जो दीवार रखी जाती थी, उसे तुड़वा डालनी चाहिए ताकि मंगी पूरी संढास को साफ कर सके और संढास में जगह भी खूब निकल आवे, जिससे उसके अन्दर हवा और उजेला आ सके। इन सुधारों को दाखिल करने में अमीर लोगों ने बहुत मेहनत उठायी और पूरे तौर पर वह कभी न हुआ।

कमेटीवालों को मंगियों की बस्ती में भी जाना तो था ही। कमेटी के सदस्यों में से केवल एक ही मेरे साथ वहाँ चलने को तैयार हुआ। वहाँ जाना और फिर संढासों का मुलाहिजा करना। लेकिन मुझे तो उन लोगों की बस्ती देख कर आनन्द के साथ २ आश्चर्य ही हुआ। अछूतों के बाड़े की यह मुलाकात मेरे

जीवन की पहली मुलाकात थी। उन भाई बहिनों ने मुझे कर आश्चर्य माना। मैंने उनसे उनकी संढासें देखने की इजाजत माँगी। वे बोले:

“हमारे यहाँ संढासें कैसी? हमारी संढासें तो जंगल के संढासों तो आप बड़े आदमियों के लिए हैं।

मैंने पूछा: “अच्छा तो क्या अपना घर हम को देखने दोगे?”

“आइये भाई साहब” देख लीजिए। जहाँ आप की मरजी तहाँ जाइये, हमारा घर कोई घर थोड़ा है।”

मैं अन्दर गया और घर तथा आँगन की सफाई कर खुश हो गया। घर के अन्दर सब जगह लिपी हुई देखी आँगन बुरा हुआ तथा जो थोड़े से बर्तन थे वह मँजे चिलकते हुए थे।

उनके यहाँ बीमारी होने का डर मुझे न रहा।

एक संढास के बारे में लिखे बिना नहीं रह सकता। तो हर एक घर में होती ही है। उसमें पानी डुलकाया जाता और पेशाब तक की जाती है। इस सबब से घर की शायद कोई कोठरी बिना बदबू की रहती है। लेकिन मैंने एक घर सोने की कोठरी में मोरी और संढास दोनों देखी और तथा मैला—सब कुछ—एक नाली से हो कर नीचे आता इस कोठरी में खड़ा होना तक मुश्किल था। उसमें घरवाले सो सकते थे—इसे तो पाठकगण ही विचार देखें।

कमेटी के सदस्यों ने हवेली (देवालय) का मुलाहिजा भी किया उस हवेली के मुखियाजी के साथ गांधी-कुटुम्ब का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मुखियाजी हवेली देख लेने देने तथा यथासंभव दाखिल करने के लिए राजी हो गये। उन्होंने खुद वह जिसका हाल मैं नीचे लिखता हूँ, कभी देखा न था। हवेली जो जूठन और फूलपत्ती होती वह पीछे की दीवार के फेंक दी जाती और वह स्थान कौओं और चीलों का अड़ा पड़ा था। संढास तो गंदी थी ही। मुखियाजी ने कितना किया, सो मैं न देख सका। हवेली की गंदगी को देख कर दुःख तो हुआ ही। हवेली को, जिसे हम पवित्र स्थान मानते वहाँ तो आरोग्य-सम्बन्धी नियमों के भले प्रकार से पालन आशा रखी जा सकती है। स्मृतिकारों ने बाह्यांतर शौच बहुत ज्यादा जोर दिया है—यह बात उस समय भी मेरे से बाहर न थी।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद

इंग्लैण्ड से

ब्रिस्टल से एक महिला लिखती है:

“इस पत्र के साथ—१ पौंड चर्खों के लिए मेजती अच्छा होता यदि यह रकम १०० पौंड की होती। मेरा वि है कि आप को यह नहीं मालूम कि आप इंग्लैण्ड में रहने उन आत्माओं से कितनी सहायता पा रहे हैं जो यह समझ रहे हैं कि आपके सर कितना बोझ है। वे आपको सहायता कोषिश भी करती हैं। मैं उनकी शुभ भावनाएं भी आपको रही हूँ।”

इस प्रकार के पत्रों की खासियत दान स्वरूप रूपों की संख्या में नहीं होती बल्कि उस असली बात में जो कि चर्खों में छिपी पड़ी है: यानी चर्खों का एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा नाशकारिणी स्पर्धा के बदले जो कि मनुष्य को हवान बनाये डाले दे रहा है, एक



४ नवम्बर, १९२६

सहाय से काम करने के उत्तम भाव को दाखिल किया जाता है। जिससे व्यक्ति के उत्थान के साथ साथ सारी मानव-जाति का उत्थान हो सकता है। यह आन्दोलन सकल उसी हालत में हो सकता है जोता है। यह आन्दोलन सकल उसी हालत में हो सकता है जोता है। यह आन्दोलन सकल उसी हालत में हो सकता है जोता है।

मो० क० गांधी

## शुद्धता के वास्ते

मेरे लिए अब यह सम्भव नहीं रहा कि मैं उन ढेर की ढेर विद्विगों को अप्रकाशित रख सकूँ जो कि चुनाव के सम्बन्ध में—और प्रसंगवशात् कांग्रेसवालों के कौंसिलों के सदस्य बनने के लिए—मेरे नाम चली आ रही हैं। धारासभा के सदस्य होने के लिए—मेरे नाम चली आ रही हैं। धारासभा के सदस्य होने के लिए—मेरे नाम चली आ रही हैं।

“जब मैंने इस काम में हाथ डाला, तब मुझे बिल्कुल भान न था कि मैं किस लिए उसमें पड़ा हूँ। मेरे कारकुनिदे छल करते हैं; वे लोग मेरे इतने गुण बखानते हैं जिन्हें कि मैं अपने में नहीं पाता। मेरे प्रतिद्वन्द्वी मुझे उन अवगुणों की खान समझते हैं, जिनसे मैं दूषित नहीं रहा। इसलिए यदि मैं चुन लिया गया, तो वह चुनाव हुआ सदस्य अपने गुण दोषों के सहित मैं न होऊँगा, बल्कि कोई दूसरा ही अजनबी राष्ट्र, जिसके गुणदोष वोट देनेवालों के दिमागों में पैठा दिये जायँ। यदि मैं अपने सब सहायकों को विदा कर दूँ, तो, मेरा ख्याल है, कि ऐसा करने में मैं-वोटदाताओं के प्रति, अपने अथवा अपनी पार्टी के प्रति न्याय न करूँगा। मैं साफ और खुली लड़ाई चाहता हूँ। व्यक्तिगत हैसियत से अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विरुद्ध मेरे दिल में कुछ भी द्वेष नहीं है। मैं उनके खिलाफ खड़ा हुआ हूँ—इसका कारण यह है कि उनकी नीति मेरी नीति के सोलहों आन विरुद्ध है; और इसलिए यह स्वाभाविक है कि मैं चुनाव जाना चाहता हूँ। क्या आप इस उलझन से बाहर होने का कोई मार्ग बता सकते हैं? या आप महज यही कह देंगे कि कौंसिल-प्रवेश गलत रास्ता है और इसलिए आप को बैठ जाना चाहिए? आप चाहें तो ऐसा ही कह दें, लेकिन उस से मुझे पूर्ण सन्तोष न होगा। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आया आप कोई ऐसा उपाय हूँ निकाल सकते हैं जिस से मैं अपनी उक्त कठिनाइयों से बच सकूँ या नहीं? मैं यह जरूर कहता हूँ कि अच्छा होता यदि मैं इस संकट में न पड़ता। लेकिन अब यह बात हाथ से इस मामले को—जिस हालत में वह है—निपटें और परिस्थिति के अनुसार जो कुछ बन पड़े करूँ।”

दूसरे सज्जन लिखते हैं: “क्या आप सदा की भांति उन चाल-बाजियों को रोक नहीं सकते जो कि कांग्रेस के—आपके भी—नाम पर चली जा रही हैं? क्योंकि हालांकि आप एक किनारे हैं, किन्तु आपका नाम कांग्रेस वालों तथा अन्य लोगों द्वारा काम में न लाया जाना हो—सो बात नहीं है। आप कहेंगे कि इन चाल-बाजियों को रोकने की शक्ति मुझमें नहीं है और वे तो उस समय की जारी थीं, जिस समय कि मैं कांग्रेस की नीति को निर्धारित एवं संचालित कर रहा था। ऐसा होना सम्भव है। लेकिन तब पर भी आपके द्वारा संचालन होना बन्द तो नहीं

हुआ है। अब, जब यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ये चालबाजियाँ की ही जा रही हैं, आप मौन कैसे रह सकते हैं? आप चाहें तो मैं प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ।

“मेरे प्रान्त को ही ले लीजिए: वे पार्टियाँ जो कि कांग्रेस का बसना वोरिया बन्ववाना चाहती हैं (मैं और कोई शब्दप्रयोग करने में असमर्थ हूँ) कांग्रेस के नाम को पतित कर रही हैं। उसके साथ साथ खहर का नाम भी बदनाम किया जा रहा है—यहां तक कि दोनों ही महा अप्रिय लगने लगते हैं। आदमी जहां तहां से वटोर लिये जाते हैं, उनके नाम चन्दा जमा कर दिया जाता है, और कांग्रेस की शर्त को लकीर के फकीर बन कर पूरा करने के लिए उन इकट्ठे किये हुए आदमियों को खहर के अंगौले लपेटने के वास्ते दे दिये जाते हैं। कम से कम आप इस पतनकारी कार्य के विरुद्ध तो अपनी आवाज उठा ही सकते हैं। यदि वे खहर में विश्वास नहीं रखते या अगर उनको ऐसे मेम्बर नहीं मिलते जो ईमानदारी के साथ खहर पहनें, या कांग्रेस का चन्दा सहर्ष देने वाले मेम्बर नहीं मिलते, तो इन कठपुतलों को लिवा लाने, उनके नाम रजिस्टर में फक्त एक मौके के लिए चढवाने तथा उनसे वोट दिलाने से क्या फायदा? सब जानते हैं कि वे उसके बाद से सम्भवतः कांग्रेस मन्त्र से गायब हो जाते हैं या कम से कम तब तक सूरत नहीं दिखाते जब तक दूसरे वर्ष के चुनाव का समय न आ जावे। क्या इन आदमियों अथवा उनके प्रतिनिधियों की मदद से हमको स्वराज मिल जायगा? चाहे आप किनारे हो जायँ, चाहे न हो जायँ—हम लोग इतनी आशा तो आपसे करते ही हैं कि आप इन हरकतों के खिलाफ अपनी कलम जरूर उठावें।”

तीसरे सज्जन लिखते हैं: “क्या आपको मालूम है कि कांग्रेस के मेम्बर बनाने के लिए मेरे प्रान्त में शर्ष दिलाने वाली हरकतें की जा रही हैं? एक चरित्र-ग्रष्ट पुरुष ने कुछ बदचलन औरतों को इकट्ठा कर लिया है (कम से कम एक को मैं खुद जानता हूँ) और उनसे या उससे कांग्रेस का मेम्बर बनाने का काम ले रहा है। वह घर घर जाती है, लोगों की बुरी से बुरी प्रवृत्तियों को उभाड़ती और मेम्बर बना लाती है। क्या यह न्याययुक्त है? क्या यह नीतिसंगत है? जब कि मेम्बर इन तरीकों से बनाये जायँ, तब कांग्रेस का मूल्य क्या रहा?”

“कुछ दिन हुए मैंने आप को एक पत्र लिखा था। उसमें मैंने आप से पूछा था कि गैरपेशेवर नाटक मंडलियों के लिए वेद्यों को पात्रियों की तरह नौकर रखना जायज है या नहीं? तब आप ने लिखा था—“हरगिज नहीं”। क्या आप इस प्रकार की खियों द्वारा कांग्रेस सदस्य बनाये जाने को उचित ठहराने के लिए तैयार हैं? यदि नहीं तो क्या आप इस बात को सरे आम कहेंगे?”

एक चौथे सज्जन समाचार-पत्रों में से कतरन काट कर भेजते हैं जिनसे यह जाहिर होता है कि उम्मेदवार लोग तथा उनके समर्थक साम्प्रदायिक भावों को उभारते हैं। हिन्दू-मुसलमान की फूट तो है ही—लेकिन अब तो लोग प्रान्तीय पक्षपात तथा जातीय द्वेष को भी साधन बनाने लगे हैं; यानी वोट देनेवालों से यह कहा जाता है कि अपने ही प्रान्त-निवासी, स्वजातिवाले या अपने ही पेशेवालों को वोट दो—बिना इसके ख्याल के कि वे सचमुच काबिल हैं या नहीं। इससे उन्हें कोई मतलब नहीं कि ‘क’ ‘ख’ से योग्यता, उद्योग, देशभक्ति तथा सुनागरिकता के लक्षणों में कहीं बढ़ कर है। वोटों से



फकत यह देखने को कहा जाता है कि उम्मेदवार तुम्हारी जाति या प्रान्त का है या नहीं।

एक पाँचवें सज्जन कुछ कतारें मेजते हैं, जिनमें ऐसे भाषण छपे हुए हैं जो कि मैं यहाँ उद्धृत नहीं कर सकता और जो कि प्रकाशित किये जाने के संबंधा अयोग्य हैं।

एक छठे सज्जन लिखते हैं कि "रुपये देने यानी रिश्वत का बाजार गर्म है। वे आदमी जिनकी बड़ी वकत न थी, आज लम्बी लांबी तनख्वाहें फटकार रहे हैं — सिर्फ इसलिए कि वे समाजों में बोल सकते हैं और इसलिए कि वे अपने जिले में कुछ प्रभाव रखनेवाले माने जाते हैं। उनको निज की कोई राय नहीं। उनमें से कुछ तो यहाँ तक बेशर्म हैं कि यह कह देते हैं कि हम तो एजेण्ट हैं और हम किसी भी नीति का ढोल पीटने को राजी हैं — उसी प्रकार जिध प्रकार कि कोई वकील रुपये के लिए किसी भी मुकद्दमे की पैरवी करने को, (मुकद्दमे की नीतिसंगतता के विचार को बालायताक रखते हुए) तैयार हो जाता है।"

मुझसे यह कहा गया है कि ये सब बातें, किसी राष्ट्र के निद्रावस्था से जागने के काल में, अनिवार्य हैं। इसमें शक नहीं कि इस बात में कुछ सच्चाई अवश्य है। जब लोग कौंसिलों इत्यादि के चुनाव के प्रति बिल्कुल सहानुभूति न रखते थे और जब कि चंद आदमी ही चुनाव कराने तथा संस्थाओं के चलाने में दिलचस्पी लेते थे, तब गंदगियाँ नीचे ही दबी रह गयीं। अब चूँकि लोगों का बड़ा मजमूअ इन सार्वजनिक मामलों में हिस्सा ले रहा है, वे गंदगियाँ अब सतह पर आ रही हैं। दुर्भाग्य से, यदि मेरे सब पत्र-प्रेषक ठीक ही बात कह रहे हैं, तो पैसों में रह जाने के लिए कोई खगाबी छूट नहीं गई है — बल्कि खुद जिम्मा भर में फल गई है। मैं आशा करता हूँ कि स्थिति ऐसी खराब नहीं है, — शरीर गंदगियों से बरी है और उपर्युक्त पाँचों सूरतें सामान्यतया नहीं, बल्कि चंद लोगों पर ही लागू हैं।

मैं जानता नहीं। मैं अखबारों में नहीं पढ़ा करता हूँ। और न और किसी तरीके से ही जानता रहता हूँ कि मुल्क में क्या हो रहा है। और इसी वजह से मैं, अब तक, अपने नाम आयी हुई डेरों चिट्ठियों को नहीं पढ़ता रहा हूँ; लेकिन इनमें से कुछ पत्र-प्रेषकों को मैं जानता हूँ। सभी पत्र-प्रेषकों ने अपने नाम और पते पत्र के साथ लिख मेजे हैं और कुछ तो मुझे दीगर अहवाल से बाकिफ करने को तैयार हैं। उनमें से बहुतों ने, या कुछ ने, अपने २ पत्रों के साथ अपनी बातों के समर्थन में अखबारों की कतारें भी भेजी हैं। इस बातों के हाते हुए मुझे लगा कि मैं इन सब चिट्ठियों का सारांश तक न देने में अन्याय करूँगा। मैंने उन पत्रों के तत्व के अनुसार उनको पी लिया है और समस्त हिन्दुस्तान के चुनाव-सम्बन्धी कार्यकर्ताओं के गम्भीर मनन के निमित्त यहाँ लिखता हूँ — वे कार्यकर्ता चाहे जिस पार्टी के क्यों न हों। मैं अपने सब कांग्रेस कार्यकर्ताओं का ध्यान खास तौर से उनपर किये गये आक्षेपों की ओर दिलाता हूँ: उन्हें अवश्य याद रखना चाहिए कि कांग्रेस की 'कीड' अब भी पूर्ववत् है। उस 'कीड' के अनुसार उनका कर्तव्य है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए वे शान्तिमय तथा न्याययुक्त जरियों से काम लें। कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार उनके लिए लाजिमी है कि वे सभी कांग्रेस अधिवेशनों पर शुद्ध खादी का पूर्णतया इस्तेमाल करें। इसलिए कांग्रेस कार्यकर्तागण कांग्रेस के प्रस्तावों या उसकी 'कीड' को सत्यानाश न करें। और चूक

दीगर लोगों के लिए कोई प्रतिज्ञा या प्रस्ताव ध्यान दिलाने नहीं है, इसलिए अच्छा होता कि वे यह समझ लेते कि सार्वजनिक जीवन में शुद्धता के बिना स्वराज असम्भवित है।  
(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद गांधी

## बछड़ों को बधिया करना

हम लोगों के जीवन में एक विचित्र विरोध देखने में आता है, जो बहुत कर के देश में ढोरों की मैजदा बुरी हालत के लिए उत्तरदायी है। लोग ऐसा मानते हैं कि अपनी गायों को बछड़ों को बधिया (खेसी) करने में पाप लगता है मगर तो वे उन्हें पेशेवर पशु-पालकों के हाथ से बधिया बरध (बेल) खरीदते या अपने खेतों में जोतने में कोई उज्र नहीं होता। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि कोई मांसाहारी कहे कि चूँके मैं खुर जानवर नहीं मारा और मांस मैं बाजार से खरीद कर खाता हूँ, इसलिए जानवर मारने का मुझे कोई पाप नहीं लगता। जानवर इसलिए मारे जाते हैं कि मांस, चमड़ा वगैरह की माँग है। अगर यह माँग बन्द हो जाय तो जानवरों का मारा जान भी रुक जायगा। इसलिए जानवरों के मारने के पाप का सब अधिक हिस्सा, मांस खानेवालों और चमड़ा व्यवहार करनेवालों को ही मिलेगा। उसी प्रकार पेशेवर पशुपालक, बछड़ों को इसी बधिया करते हैं कि बधिया बरधों की माँग है और अगर माँग न रहे तो बधिया करना भी बन्द हो जायगा। इसलिए बधिया करने का पाप, बधिया बरध खरीदनेवालों को ही विशेष लगेगा — हाँ, वे भले ही अपने को भुला लें कि उन्हें पाप से कुछ मतलब नहीं है।

इसलिए एक सीधा खरा आदमी तो दो में से एक रा पसन्द कर लेगा। अगर वह समझता है कि बधिया करना पाप है और उसे इस पाप से सम्पर्क न रखना चाहिए तो वह अपने खेत पर बिना बधिया किये हुए बरध यानी साँडों से ही काम लेगा। अगर वह यह समझता है कि बधिया करना पाप तो मगर आवश्यक है तो उसे अपने घर पर ही बछड़ों को बधिया करने में कुछ उज्र नहीं होगा। गाय की आज ऐसी दुर्दशा का कारण बहुत हद तक किसानों का यह और ऐसे दूसरे ही हैं। किसान अपने खेतों पर बधिया बरध जोतेंगे मगर गेया (घर की-गाय के बच्चे) बछड़ों को बधिया न करेंगे। यह होता है कि अपने घर पर सस्ते बेल तैयार करने के बाहर से उन्हें आग के मोल बेल खरीदने पड़ते हैं। इससे उन्हें गायें रखना छेड़ दिया है। कुछ हिस्सों में तो यहाँ तक पहुँच गयी है कि गांव में चूँके सभी कोई रखते हैं, इसलिए अगर एक आदमी गाय रखता है तो उसे चराने से इनकार करता है क्योंकि भैंस की वनिस्वत की सेवा कठिन होती है।

किन्तु, कोई बधिया बरध रखे या बेबधिया, मगर घर पर ही गाय रख कर उसे उन्हें पैदा कर लेना चाहिए। अगर वह गाय नहीं रखता है तो दूध के लिए उसे भैंस रखनी है और बहुत दाम दे कर बेल मोल लेने पड़ते हैं। इससे तो दुगना लगता ही है, पाप भी दुगना लगता है। यह साफ है कि अगर कोई आदमी अपने घर पर गाय रखता है तो हर चौथे सल एक जोड़ी बेल, कौड़ी के मोल मिल जाते हैं। दूसरी तरफ अगर वह भैंस रखता है तो उसे उसके दूर करने का पाप तो लगता ही है, गाय न पालने का पाप भी लगता है। क्योंकि आज जो गाय के पक्ष में नहीं है वह उसके विपक्ष में है।  
(यं. इं.)



अहिंसा (४)

वार्षिक मूल्य ८)  
 छः मास का " २)  
 एक प्रति का " १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १३ ]

मुद्रक-प्रकाशक

अहमदाबाद, कार्तिक सुदि ६, संवत् १९८३

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

स्वामी आनंद

गुरुवार, ११ नवम्बर, १९२६ ई०

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २६

राजनिष्ठा और शुश्रूषा

छद्म राजनिष्ठा जिसनी मैंने अपने में अनुभव की है, उतनी शायद ही दुसरे में होगी। मुझे समझ पड़ता है कि इस राजनिष्ठा के मूल में सत्य के ऊपर मेरा स्वाभाविक प्रेम ही था। राजनिष्ठा अथवा किसी दूसरी वस्तु का डोंग मुझमें कभी भी न बन पड़ा। नैटल में जब मैं किन्हीं सभाओं में जाता, तब देखता कि 'गाड सेव दि किंग' नामक अंग्रेजी गीत तो गाया ही जाता। मुझे लगा कि मुझे भी उस गीत को गाना चाहिए। ब्रिटिश (अंग्रेजी) राजनीति में दोष उस समय भी मैं देखता था, लेकिन तब तो मैं वद नीति कुछ मिला कर ठीक मालूम होती थी। मेरा उस वक्त यह ख्याल था कि अंग्रेजी राज्य का तथा अंग्रेज हुकूमतों का सब सब बातों को देखते हुए प्रजा का पोषक है।

दक्षिण अफ्रीका में उलटी ही नीति देखी — वहां तो मैं रंग-द्वेष देखा। मेरा ख्याल था कि यह द्वेष क्षणिक एवं स्थानिक ही है — इसलिए राजनिष्ठा में मैं अंग्रेजों से स्पर्धा करने का प्रयास करने लगता। मैंने मराठा के साथ उस "गाड सेव दि किंग" (ईश्वर! राजा को सही सलामत रख) वाले गाने को सीखा। जब वद सभा में गाया जाना, तब मैं भी उसमें शरीक होता और उसे गाता। और जिन २ मौकों पर, आठम्बर-दिखाने में भाग लिया करता। मेरी यह राजनिष्ठा मेरे जीवन में कभी भी कम न हुई। उससे लाभ उठाने का विचार तक नहीं आया। इसे मैंने वकादारी का ऋण समझ कर अदा किया है।

जब मैं हिन्दुस्तान लौटा, उस समय 'डायमंड जुबिली' मनाने की तैयारियां शुरू हुई थीं। राजघोड़ में एक समिति स्थापित की गयी, उसमें शामिल होने के लिए मैं आमन्त्रित किया गया।

मैंने उस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। शामिल होने पर मुझे उसमें दम्भ की गन्ध आई। मैंने देखा कि उसमें बहुत कुछ दिखावे के लिए किया जा रहा है। यह देख कर मुझे दुःख हुआ। मेरे सामने यह सवाल उपस्थित हुआ कि ऐसी हालत में समिति में रहना चाहिए कि नहीं। अन्त में मैंने अपने कर्तव्य का पालन करने तथा उसी में सन्तोष मानने का निश्चय किया। एक प्रस्ताव दरख्त लगाने की बात भी थी। उसमें भी मैंने दगा देखा। महज, साहब लोगों को खुश करने के लिए वृक्षारोपण का उत्सव किया जाने वाला था। मैंने लोगों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वृक्षारोपण का उत्सव करना कोई फर्क नहीं है, यह तो बतौर सिंकारिश के है। अगर पेड़ों को बोया जाय, तो दिल लगा कर, नहीं तो कतई नहीं। मुझे कुछ २ याद आता है कि जब मैं लोगों से ऐसी बातें कहता, तब वे मेरी हँसी उड़ाते। मुझे इतना याद है कि मैंने अपने हिस्से के पौधे तो ठीक ठीक बो दिये और वे उग आये।

'गाड सेव दि किंग' शीर्षक गीत को मैं अपने कुटुम्ब के बालकों को सिखाया करता। ऐसा याद पड़ता है कि ट्रैनिंग कालेज के विद्यार्थियों को भी सिखाया; लेकिन इसी मौके पर सिखाया या सप्तम् एबवर्ड के राज्याभिषेक के अवसर पर — सो मुझे याद नहीं रहा। कुछ दिनों बाद यह गीत गाना मुझे खटका। ज्यों ज्यों अहिंसा के बारे में मेरे विचार प्रबल होते गये, त्यों त्यों मैं अपने वचन तथा विचारों पर ज्यादा चौकसी रखने लगा। उस गीत की दो पंक्तियां यह भी हैं

शत्रुओं का नाश हो सम्राट के।

विकल हों पड़ें उनके हे पिता।

ये पंक्तियां गाने में मुझे खटकीं। मैंने अपने मित्र डाक्टर बूथ को यह बात बतलाई। उन्होंने भी कुबूल किया कि इन सतरों को गाना अहिंसक मनुष्य को शोभा नहीं देता। मैंने कहा, "शत्रु कहलाने वाले दगा ही करते हैं, यह क्यों कर मान लिया जाय? जिसे शत्रु मान लिया, वह खोटा ही है — यह हम कैसे कह सकते हैं? ईश्वर से तो न्याय के लिए ही प्रार्थना कर सकते हैं।" डाक्टर बूथ ने मेरी इस दलील को माना। और उन्होंने



अपने समाज में गाये जाने के लिए एक नया ही गीत तैयार किया। वृष महाशय का परिचय जरा आगे चल कर दूंगा।

जिब प्रकार राज-भक्ति का गुण मुझमें स्वाभाविक था, उसी प्रकार सेवा शुभ्रवा का भी। यह कहा जा सकता है कि 'रोगी लोगों की, चाहे वे सम्बन्धी हों या गैर, सेवा करने का मुझे शौक था। राजकोट में मेरा दक्षिण अफ्रीका काम चल रहा था, इसी दरम्यान में मैं बम्बई देख आया था। मुख्य २ शहरों में सभाएं करा कर लोकमत तैयार करवाने का इरादा था। इसी सम्बन्ध में मैं बम्बई गया। पहले पहले जस्टिस रानाडे से मिला। उन्होंने मेरी बात गौर के साथ सुनी और मुझे उन्होंने सर फीरोजशाह मेहता से मिलने की सलाह दी। उसके बाद मैं जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी से मिला। उन्होंने भी मेरी बात सुन कर उन्हीं से मिलने की सलाह दी। जस्टिस तैयबजी ने कहा कि जस्टिस रानाडे और मैं तो आपके साथ बहुत दौड़भूप न कर सके। हम लोगों की स्थिति तो आप जानते ही हैं। हम लोग राजनैतिक मामलों में आम तरीके पर भाग नहीं ले सकते, लेकिन हमारा दिल तो आपके साथ है ही। सच्चे नेता तो सर फीरोजशाह हैं। मुझको सर फीरोजशाह से तो मिलना था ही, लेकिन इन दो बुजुर्गों से फीरोजशाह की सलाह के बमूजिव चलने की बात सुन कर मुझे सर फीरोजशाह के, प्रजा के ऊपर प्रभाव का विशेष भान हुआ।

सर फीरोजशाह से मिला। मैं उनके द्वारा आश्चर्यान्वित होने के लिए तो तैयार हो ही रहा था। उनके नाम के विशेषण भी सुन रखे थे। "बम्बई का शेर"—'बम्बई के नेता के बादशाह' से मुझे मिलना था। इस 'बादशाह' ने मुझे भयभीत न किया; जिस प्रकार बुजुर्ग लोग स्याने लडके से मिलते हैं, उसी प्रकार वे मुझ से मिले। मुझे उनके चेम्बर (खास कमरे) में उनसे मिलने को कहा गया। उनके पास उनका अनुयायी-मण्डल तो जमा ही हुआ था। बाबा थे, कामा भी थे। इन सब के साथ मेरा परिचय कराया गया। बाबा का नाम मैं सुन ही चुका था। वे तो फीरोजशाह के दाहिने हाथ समझे जाते थे। बोरचन्द गांधी ने मुझे उनका परिचय देते हुए कहा था कि ये आँकड़ों के शास्त्री हैं। बाबा ने मुझसे कहा— "गांधी, आपसे बाद को मिलूंगा।" इस सब काम के होने में कोई दो मिनट लगे होंगे। सर फीरोजशाह ने मेरी बात सुन ली। मैंने उनसे कहा कि मैं जस्टिस रानाडे और जस्टिस तैयबजी से मिल चुका हूँ। उन्होंने कहा: गांधी, तुम्हारे लिए मुझे सार्वजनिक सभा करनी पड़ेगी; तुमको मदद देनी ही चाहिए। अपने मुंशी की तरफ मुखातिब हो कर उन्होंने उससे सभा का दिवस निश्चित करने को कहा। दिन मुकर्रर कर देने पर मुझे बिदा किया। उन्होंने फरमाया कि सभा से एक दिन पहले मुझ से मिल लेना। मैं निभय हो कर मन ही मन खुश होता हुआ अपने घर आया।

बम्बई की इस मुलाकात के मौके पर मैं अपने बहिनोई से जो माँदे थे, तथा जो बम्बई में रहते थे, मिलने के लिए गया। उनकी स्थिति दीन थी। उनकी दवादारु अकेली बहिन न कर सकती थी; बीमारी भी सख्त थी। मैंने उन दोनों को राजकोट ले जाने के लिए बहिनोई से कहा। वे राजी हो गये। मैं उन दोनों को साथ ले कर राजकोट गया। बीमारी इतनी बढ गई कि जिबका ख्याल न किया था। बहिनोई को अपने कमरे में ठहराया। मैं उनके पास उनकी तीमारदारी के लिए सारा दिन रहता, रात को भी जागना पड़ता। उनकी सेवा शुभ्रवा करते २ मैं दक्षिण अफ्रीका का काम भी कर रहा था। बहिनोई का

स्वर्गवास हो गया। लेकिन उनके अखीरी दिनों में उनकी सेवा करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ—इस बात से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।

शुभ्रवा करने के मेरे इस शौक ने आगे चल कर विद्यालय रूप धारण किया—यहां तक कि उसे करने में मैं अपना धन्धा छोड़ देता, अपनी धर्म-पत्नी तथा घर भर को अटका लेता। इस वृत्ति को मैंने शौक के रूप में समझा है, क्योंकि मैं यह देख सका हूँ कि यह गुण जिस समय आनन्ददायक हो पड़ता है, उसी समय निभ सकता है। अगर जैसे तैसे कर के या दिखाव करने वाले मनुष्य को कुचल डालती है और ऐसा होने से आदमी मुरझा जाता है। जिस सेवा के करने में आनन्द न मिले, वह सेवक को फलती नहीं, और न जिसकी सेवा की जाय उसे ही भाती है। और जिस सेवा में आनन्द मिलता है, उस सेवा के आगे ऐशो आराम अथवा धनोपार्जन इत्यादि तुच्छ मालूम होते हैं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## कर्षा बनाम चर्खा

यह बात अब साधारणतः मानी हुई सी मालूम होती है कि चूँके हिन्दुस्तान की आबादी के तैकडे ७१ लोगों को बसा खेती पर होती है, और वे लोग साल में कम से कम चार महीने आलस्य में बिताते हैं, इसलिए हिन्दुस्तान को किसी सहायक धन्धे की जरूरत है। और उस धन्धे को अगर सार्वजनिक होना है तो वह सिर्फ हाथ-कताई ही हो सकता है। मगर कुछ लोग कहते हैं कि हाथ-बुनाई का धन्धा हाथ-कताई से अच्छा है क्योंकि उसमें आमदनी अधिक होती है और इसलिए लोग उसे अधिक पसन्द करेंगे भी।

आइये; अब हम इस दलील की जाँच कुछ विस्तार से करें यह कहा जाता है कि हाथ-बुनाई से आठ आने रोज की आमदनी होती है मगर चर्खा चला कर तो आदमी दो ही आने पैदा कर सकता है। इसलिए अगर कोई सिर्फ दो घन्टे काम करे तो बुनाई के जरिये उसे दो आने मिलेंगे और चर्खा चलाने से केवल एक पैसा। इसके बाद यह कहा जाता है कि १ पैसे की आमदनी कुछ ऐसी बड़ी चीज नहीं है कि कोई उसपर आकृष्ट होवे और अगर लोगों को बुनने को कहा जा सकता तो उस हालत में उसके बदले उन्हें चर्खा चलाने को कहना गलत होता। करघे के हिमायती, इसके बाद और भी कहते हैं कि हिन्दुस्तान की जरूरत के लिए मिल का जितना सूत चाहिए उतना मिलने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अखीर में वे कहते हैं कि करघे को जिसे अब तक मिलों से प्रतियोगिता करने में सफल मिलती रही है, उसी करघे को जिन्दा रखने के लिए उसका समर्थन जोरों से करना चाहिए। करघे के कुछ हिमायती तो यहां तक कहते हैं कि हाथ-कताई यानी चर्खा आन्दोलन हानिकारक भी है क्योंकि हाथ-बुनाई के सम्भवित उद्योग और से लोगों का ध्यान हटा कर यह उन्हें एक ऐसा धन्धे का समर्थन करने के गलत रास्ते में ले जाता है जो अपनी आन्तरिक कमजोरियों के कारण ही मर गया है।

अब इस भयावने मालूम पड़नेवाले तर्क की हम जाँच करें पहली बात तो यह है कि सहायक धन्धे के रूप में हाथबुनाई का धन्धा व्यावहारिक योजना नहीं है क्योंकि इसे सीखना नहीं है; यह किसी भी जमाने में हिन्दुस्तान में सार्वजनिक था; इसके लिए कई आदमियों की जरूरत पड़ती है, और



कर विशाल  
पना धन्वा  
लेता। इस  
यह देख  
है, उसी  
या दिखा  
वह शुष्पा  
से आदमी  
मिळे, वह  
उसे ही  
सेवा के  
होते हैं।  
गान्धी

होती है कि  
को बस  
से कम चा  
किसी सहायक  
पार्वत्रिक होना  
गर कुछ लोग  
से अच्छा है  
ए लांग उसे  
तार से कर  
ने रोज कां  
दो ही आने  
हो घन्टे का  
ए चर्खा चलाने  
कि १ पैकेट  
कोई उद्योग

कहा जा सकता है कि कहना गलत है। कहते हैं कि सूत चाँदनी में वे कहते हैं करने में सफल के लिए मैं कुछ हिमायत खर्चा आन्दोलन वेत उद्योग ऐसा धन्य अपनी आन्तरिक म जाँच करें। प में हाथपुन सीखना सार्वत्रिक न और

कभी फुरसत के समय में यह नहीं किया जा सकता। यह तो स्वतंत्र धंधे के रूप में ही रहा है, और साधारणतः ऐसा ही रह सकता है और अधिकांश लोगों के लिए तो जूते सीना या लोहारी के ऐसा एक मात्र धंधा हो सकता है। इसके अलावा जिस मानी में हाथकटाई हिन्दुस्तान में घर घर फैल सकता है, उसी मानी में तो यह कभी नहीं। हिन्दुस्तान को ४६६१० लाख गज कपड़ा सालाना की जरूरत है। एक जुलाहा औसतन एक घंटे में तीन गज मोटी खादी बुनता है। इसलिए सभी बिलायती और देशी मिलों का कपड़ा अगर हम दूर कर सकते तो भी दो घंटे रोजाना काम करनेवाले अधिक से अधिक १० लाख बुननेवालों की जरूरत होगी। अगर यह कहा जाय कि इतने जुलाहों के बदले, जुलाहों के उतने ही परिवारों को काम मिलेगा तो फिर दो घंटे की दो आने की आमदनी कई आदमियों में बँट जायगी और इस प्रकार एक आदमी की रोजाना आमदनी में काफी कमी जायगी। अब हम जरा चर्खों की शक्यता पर भी विचार करें। हम यह जानते हैं कि एक समय हिन्दुस्तान के घर घर यह एक मात्र सहायक धंधा था। करोड़ों को अभी भी की हुनर याद है, और लाखों घरों में अब भी चर्खा है। इसलिए हाथकटाई का तुरत ही और वेदद प्रचार किया जा सकता। और चूँके यह भी जाना गया है कि १० कातनेवाले १ आदमी के काम लायक काफी सूत दे सकते हैं, इसलिए १० लाख आदमियों के कारण १ करोड़ कातनेवाले अपनी आमदनी बढ़ा सकते और उनके लिए यह बढ़ती कोई कम न होगी। मैंने ४० लाख आदमी, सालाना आमदनी का बहुत बड़ा औसत सही लिया है। उसमें उन्हें १० रुपये सालाना की बढ़ती होगी और वे इसका स्वागत अवश्य करेंगे। बुनाई के विरुद्ध, मैं को किसी भी समय बन्द कर सकते हैं और इसलिए जब कितनी फुरसत मिले, उतने में ही कुछ काम कर ले सकते। चर्खा चलाना सहज में ही बहुत शीघ्र सीखा जा सकता है। चर्खा चलानेवाला शुरू शुरू से ही कुछ न कुछ सूत निकालने जाता है।

और मिल के सूत का भरोसा करना भी गलत है। हाथ-  
बुनाई, और मिल की बुनाई, सहायक धन्धे नहीं हैं। दोनों  
परस्पर विरोधी हैं। सभी यन्त्रों के समान, मिल की प्रवृत्ति  
भी हाथ के काम को बन्द करने की ही है। इसलिए हाथ-बुनाई  
को बड़े पैमाने पर सहायक धन्धा बनाना है तो उसे मिलों पर  
ही बिल्कुल निर्भर करना पड़ेगा और मिलें, सूत के दाम में  
बुनाई से जितना पैसा खींच सकेंगी खींच कर जनमते ही इस  
उद्योग का गला घोट देने की कोशिश करेंगी।  
उपर दूसरी भरो

हाथ-बुनाई और हाथ-कताई परस्पर सावित की जा सकती है। यह बात खादी केन्द्रों के अनुभव से सहज पास ऐसे मित्रों के पत्र पड़े हुए हैं जो यह लिखते हैं कि सूत की कमी से उन्हें जुलाहों को खाली हाथ लौट देना पड़ रहा है। यह बात अधिक लोग नहीं जानते कि मिल के सूत बुनने वाले जुलाहों की बहुत बड़ी संख्या साहुकारों के पंजे में है और अब तक मिल के सूत का भरोसा वे करते रहेंगे उनकी बड़ी संख्या तक अपने साथी किसान से ही सूत लेना चाहिए।

अब हर एक नये करघे का मानी है १५  
हर एक नये चूखें के लिए साठे

तीन रुपये से अधिक की जरूरत नहीं है। खादी प्रतिष्ठान के चर्खों का काम सिर्फ दो ही रुपये है। और कुछ न हो सके तो घर की बनी तकली तो बिना खर्च के ही तैयार हो सकती है।

इस प्रकार एक मात्र चर्खा ही आधार मालूम पड़ता है, जिस पर सन्तोषजनक रूप से गाँवों का संगठन हो सकता है। यही वह मध्यबिन्दु है, केवल जिस एक वस्तु के चारों ओर ग्रामों का पुनः संगठन सम्भव है।

मगर यह कहा जाता है कि गरीब दीहातियों के लिए भी फी दो घन्टे एक पैसे की आमदनी आकर्षक नहीं होगी। पहली बात तो यह है कि चर्खा उन लोगों के लिए नहीं है, और उन्हें चर्खा चलाने को कोई कहता भी नहीं, जिन्हें अधिक आमदनी का कोई रोजगार हो। नहीं तो फिर इसका क्या मतलब कि आज हजारों औरतें अपना सूत जमा कर के उसके दो पैसे लेने और कच्ची कपास लेने के लिए कोसों दौड़ती हैं ? उन्हें अगर कोई चर्खा चलाने को कहे तो वे उसे कभी न करेंगी। इसके लिए उन्हें न तो समय मिलेगा, और न उनमें इसकी योग्यता ही होगी। शहर के रहने वालों को जनता की खून चूसने वाली गरीबी का कुछ पता नहीं है। उनके बारे में हम यन्त्रों की बात नहीं चला सकते। मैन्चेस्टर की कलों ने उनकी सूखी रोटी का नमक छीन लिया है, और चर्खा वही नमक था, जिसका स्थान उसके ऐसी या उससे किसी अच्छी चीज ने पूरा न किया। अतएव इन लोगों का एकमात्र आश्रय चर्खा ही है।

यहाँ मैं कृषि की उन्नति के सम्बन्ध की इससे अधिक साहसिक किन्तु गूलर के फूल जैसी योजनाओं की जाँच नहीं करता । मुझे इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उनके लिए काफी जगह है । मगर यह तो समय और शिक्षा की बात है । धर हमारी दिन दूनी रात चौगुनी बढने वाली गरीबी की तो तुरत ही दवा होनी चाहिए और यह सिर्फ एक चर्खे से ही सम्भव है । ऐसी उन्नतियों की संभावना को चर्खा न दूर करता है । न उनकी उपेक्षा ही करता है । यह उनकी भूमिका है । जहाँ जहाँ यह गया, गांव वालों के जीवनों पर इसके तरह तरह के असर पड़े । यह शहराती लोगों को दीहातियों और उनकी दीहातों के साथ जीवन्त सम्पर्क रखने की शक्ति देता है ।

अब आलोचक यह पूछते हैं कि “अगर आप केवल कातने ही को कहते हैं तो फिर सब लोगों ने इसे अब तक शुरू क्यों न कर दिया।” यह सवाल सर्वथा समुचित है। इसका जवाब बहुत सहज है। चर्खों का मन्त्र हमें उन लोगों को सुनाना है जिनमें कोई आशा, काम करने की कोई उत्कण्ठा बिलकुल न बची है और जिन्हें अगर छोड़ दिया जाय तो जो भूखों रहेंगे, और मरेंगे मगर काम कर के जीयेंगे नहीं। पहले यह हालत न थी किन्तु बहुत दिनों की लापरवाही ने आलस्य को इन आदमियों में आदत के तौर पर दाखिल कर दिया है। इस आलस्य को दूर करने का एक ही उपाय है और वह यह कि उनके सामने चरित्रवान् परिश्रमी पुरुषों का उदाहरण रहे और उनसे उनका जीवन्त सम्पर्क रहे। दूसरी बड़ी कठिनाई है, खादी के लिए तैयार बाजार का अभाव। मैं कबूल करता हूँ कि हाल में वह मिल के कपड़ों से इसमें बाजी नहीं ले सकती। मैं किसी ऐसी मारक प्रतियोगिता में पड़ना भी नहीं चाहता। जिसके पास पूंजी है, वह बाजार पर कब्जा करने के लिए अपना मज्जमल भी मिट्टी के मोल बेच सकता है। लेकिन वह व्यापारी जिसकी पूंजी केवल मिहनत ही भर है, ऐसा करने की हिम्मत नहीं कर सकता। क्या, उस बहुत ही छुट्टर मगर बनावदी गुलाम में और



( अं० ५० )

मोहनदास करमचंद गांधी

गुरुवार, कार्तिक सुदि ६, संवत् १९८३

(४)

यह प्रश्न इसलिए उठता है कि मेरा आशय समझा नहीं गया है। पागल कुत्तों तक को, महज मारने की खातिर, मार डालने की बात तो मैंने लिखी नहीं है, तो फिर भदकते कुत्ते की बात

दसरा प्रश्न यह है:

समय (माह और सन् )	अहमदाबाद शहर के रोगियों की संख्या	अन्य शहरों के रोगियों की संख्या
१९२५ जनवरी से दिसम्बर	१०४	९२३
१९२६ जनवरी से सितम्बर	२९५	६९५



११ नवम्बर, १९२६

ये अंक प्रत्येक समाज-हितेच्छु के लिए चौकानेवाले हैं—दयाधर्मी के लिए विशेष कर के। मैं जानता हूँ कि जितने को कुत्ते काटते हैं उतने सब पागल नहीं हो जाते और बहुत से लोग पागल सिद्ध होने से ही दहशत खा कर अस्पताल दौड़े जाते हैं। इस दहशत से उनको छुड़ाने का केवल एक उपाय है—और वह यह कि भटकते हुए कुत्तों का अस्तित्व न रहे। जब ४० वर्ष के पहले बिलायत में भटकते कुत्तों की बाबत हलचल उठी थी, उस समय मैं वहीं था। वहाँ भटकते हुए कुत्ते कहाँ से आये? लेकिन पाले हुए कुत्तों के लिए वहाँ कानून बना हुआ है कि जिस कुत्ते के गले में पट्टा मय मालिक के नाम व पते के न होगा और जिस कुत्ते के मुँह में जालीदार मुमती (थूथन की पट्टी) न बँधी होगी वह मार डाला जायगा। यह कानून केवल दयाभाव से बनाया गया था। उसके परिणाम स्वरूप दूसरे ही दिन से लंदन में कुत्ते मय पड़े इत्यादि के दिखाई पड़ने लगे। थोड़े ही कुत्तों को मारने की जरूरत पड़ी होगी। अगर किन्हीं का ख्याल यह हो कि पश्चिम के लोग जीवदया जानते ही नहीं तो वे अज्ञानरूप में पड़े हुए हैं। जीवदया का आदर्श वहाँ नीचा है, लेकिन जो आदर्श है उसका अमल वे लोग हम लोगों की बनिश्चत अधिक करते हैं। हम लोग तो आदर्श की उच्चता से ही संतोष पा जाते और उसके अमल के समय मंद या आलसी रहते हैं। हम लोग तामसिक वृत्ति में पड़े हुए दिखाई देते हैं। देखिये हम लोगों के लावारिस मनुष्यों, ढोरो तथा अन्य प्राणियों को। यह धर्म नहीं बल्कि अधर्म की निशानी है।

तीसरा प्रश्न यह है:

आप व्यक्तिगत और सामुदायिक धर्म की व्याख्या अलग २ करते हैं—सो तो मैं समझता हूँ। लेकिन व्यक्तिगत धर्म की भाँति ही सामुदायिक धर्म की भी व्याख्या करने में क्या बुराई है? आदर्श तो सब के लिए सर्वश्रेष्ठ ही होना चाहिए न? न बन पड़े या बन सकना मुमकिन न हो—तो बात दूसरी है। और यह तो व्यक्तिगत धर्म के लिए भी इसी प्रकार लागू है। आपने ही कहा है कि क्रूर पशु को भी अपने प्राण को खतरे में डाल कर बचाने की मेरी भावना है। लेकिन जब ऐसी स्थिति पैदा हो, उस समय मैं क्या करूँगा—सो नहीं कह सकता। यही दृष्टान्त सामुदायिक धर्म के अनुरूप किया जाय, तो दोनों धर्मों की व्याख्या पृथक् पृथक् करने की जरूरत ही फिर कहाँ रह जाती है?”

व्यक्तिगत और सामुदायिक धर्म की व्याख्या को मैंने जुदा माना ही नहीं है। धर्म के सिद्धान्त की व्याख्या एक ही होती है। लेकिन उस पर चलने की मर्यादा व्यक्ति के और उसी प्रकार समाज के लिए मैंने अलग ही मानी है। वास्तविक रीति से तो जमक की मर्यादा प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होती है। जब आर्हिवा धर्म-संबंधी उसकी व्याख्या एक ही होती है, सामुदायिक धर्म की मर्यादा सबों की औसत मिला कर होती है। यानी वहाँ समुदाय का एक भाग दूधहारी हो और दूसरा फलाहारी, वहाँ सामुदायिक मर्यादा दूध-फलाहारी की मानी जानी चाहिए जिसमें दोनों अपनी मर्यादा में रह कर चलें।

इतने प्रश्नों के अनन्तर लेखक दो जैन सिद्धान्तों का निरूपण इस प्रकार करते हैं:

“जैन सिद्धान्त की रचना ‘स्याद्वाद’ है, यानी दूसरे शब्दों में, उसे अनेकान्त भी कहते हैं। इसके समर्थन में एक जैन गीतार्थ के वचन नीचे लिखे अनुसार हैं।

‘वचनसापेक्ष व्यवहार साचो कद्यो,  
वचन निरपेक्ष व्यवहार झटो।’

“ये वचन खुद बता दे रहे हैं कि संयोग के आधीन कोई काम अमुक स्थान पर हिंसा होती है और अन्य अवसर पर अहिंसा। मनुष्य को विवेकपूर्वक देख भाल कर निर्णय करना चाहिए। जैन शासन की दो शाखाएँ हैं—साधु और श्रावक। इनके धर्म की व्याख्या नीचे लिखे अनुसार मानी गई है:

“साधु—सर्वथा अहिंसक। अपने आप को बचाने के हेतु, खाँये भी नहीं और खाने के वास्ते खाना पकावेंगे भी नहीं। और सबक पर कदम भी न बढ़ावेंगे। और अगर ऐसा करें भी तो परोपकार करने के हेतु से, लेकिन जितने दोषों से बन सके उतने दोषों से मुक्त रह कर। इन दोषों की संख्या ४२ मानी गई है। साधु को जैन दर्शन में निर्ग्रन्थ कहा है—त्यागी और सर्वथा त्यागी बतलाया है।”

मेरा ख्याल है कि आज इस व्याख्या और इस कल्पना के मुताबिक एक भी साधु नहीं हैं। (अगर हो तो मैं अपनी अल्पशक्ति के कारण उसे जानता नहीं हूँ।)

“श्रावक निरपराधी है। जिसकी उसे जरूरत न हो और जिसमें उसका स्वार्थ न हो ऐसे किसी भी जीव के प्राण वह नहीं लेता।

“श्रावक संसारी है। शास्त्रकारों का मत है कि इस हेतु वह अधिक दयाधर्म का पालन कर ही नहीं सकता। और उस से दया की मात्रा सोलह आने में—साधु की सोलह, श्रावक की आनाभर—इस प्रकार निर्धारित की गयी है। अगर श्रावक इससे अधिक पाले तो उसे साधुवृत्ति में उन्नति करता हुआ मानना चाहिए। लेकिन श्रावक दशा में इससे अधिक पालना अशक्य ही है।”

इस निरूपण से मैं अपरिचित न था। मैंने तो यह लिखा ही है कि यहाँ बिये हुए जैन सिद्धान्तों का मैं विरोधी नहीं हूँ। अगर उपर्युक्त निरूपण जैनों को मान्य हो तो मेरा मतलब उसी में से निकाला जा सकता है। लेकिन यह सिद्धान्त जैनों को चाहे मान्य हो अथवा न हो, मेरी अल्पमति कहती है कि मेरे बतलाये हुए आशय का प्रतिपादन स्वतंत्र रीति से हो सकता है और हुआ भी है।

(नवजीवन)

मोहनदास कर्मचंद गांधी

## एक मात्र गृह-उद्योग चर्खा

२

इस अध्याय में हम इस बात का विचार करेंगे कि चर्खे के पक्ष में किये गये दावों का गत ५, ७ वर्षों का अनुभव कहाँ तक समर्थन करता है। इसके लिए तो चर्खा आन्दोलन के प्रारंभ से—सन् १९२० से—अब तक का उसका इतिहास लिखना पड़ेगा किन्तु हम ऐसा नहीं करेंगे। मुख्य २ मोटी बातें इन शीर्षकों में आ जाती हैं:

१. संगठन;

२. काम;

३. व्यक्तियों को और अकाल पीड़ितों को चर्खे से क्या लाभ पहुँचा है।

१. संगठन—शुरू में जहाँ तहाँ छिटफुट लोग खादी का काम करते थे। अब उसके बड़े हमारे पास एक नियमित संस्था है, जिसकी शाखाएँ सभी प्रान्तों में हैं। इसकी पूंजी लगभग १५ लाख रुपयों की है। यह संस्था लहने वसूल करती और



खादी संस्थाओं को कर्ज देती है। सभी प्रकार के लाभदायक अंकों को इकट्ठा कर के उन्हें और हर महीने हर प्रान्त में खादी की तैयारी और बिक्री के भी अंक यह प्रकाशित करती है। इसके जरिये चर्खे, पीजन और हाथओटे को उन्नत करने के प्रयोग किये जाते हैं। उनका प्रचार करने का भी प्रयत्न किया जाता है। स्वेच्छा से कातनेवाले सज्जन इसे सूत का चन्दा देते हैं और यह सूत की शुद्ध जाँच करती है और जहाँ तक हो सकता है भिन्न-२ खादी-केन्द्रों को उनके सूत और कपड़े के सुधार के विषय में सलाह देती है। इसके द्वारा कार्यकर्ताओं को कपास चुनने से ले कर कपड़ा बुनने, रँगने और बाजार में बिक्री के लिए तैयार करने तक सभी क्रियाओं की शिक्षा दी जाती है। इन सब के अलावा यह एक खादी-सेवक-संघ भी स्थापित कर रही है।

२. कार्य—अखिल भारतवर्षीय चर्खा-संघ के ठोस कार्य को हम कई शीर्षकों में बाँट सकते हैं:

(१) खादी की तैयारी और बिक्री। फेरी और प्रदर्शिनियों इत्यादि के जरिये बिक्री बढ़ाना।

(२) सूत और कपड़े की उन्नति करना।

(३) खादी के लागत खर्च और दाम में कमी करना।

(१) खादी की तैयारी के अंक तो हम उन्हीं संस्थाओं के दे सकते हैं, जो चर्खा-संघ के अधीन हैं। चर्खा आन्दोलन से बाहर—स्वतंत्र रूप से, पुरातन काल से आसाम, राजपूताना, पंजाब और आन्ध्र देश में बननेवाली खादी के अंक इनमें शामिल नहीं हैं।

सन् १९२४-२५ में, १९२३-२४ की अपेक्षा दुगुनी खादी तैयार हुई यानी १९,०३,०३४ रुपये की खादी तैयार हुई थी जब कि सन् १९२३-२४ में केवल ९,४९,३४८ रुपये की ही। अब बिक्री के भी अंक अलग २ देने की जरूरत नहीं है क्योंकि उनका पता तैयारी के अंकों से ही लग जायगा। जितनी खादी तैयार हुई वह सब की सब बिकती गयी। १९,०३,०३४ रु० की खादी का अर्थ है ३८,०६,०६८ गज कपड़ा। (एक गज का औसत दाम रखा गया है आठ आने।) अब इतने गज का मतलब है १५,२२,४२७ पाउन्ड (३९ तोला=१ पाउन्ड) सूत। शुरू में हाथकता सूत काफी अच्छा न होता था इसलिए अगर एक जुगहा रोजाना ५ गज कपड़ा तैयार करता हो और वह अगर साल में ३०० दिन काम करे तो ३८ लाख गज कपड़े के मानी होते हैं कि जुगहों के २५३३ परिवार को साल भर काम मिलता रहा। अब अगर एक कातने वाले का तीन घण्टे रोज कातने में और एक घण्टा धुनने और ओटने में समय देने पर साल भर का औसत सूत २५ पाउन्ड मान लिया जाय तो १५,२२,४२७ पाउन्ड सूत कातने के लिए ६०,८९७ कातने वालों की जरूरत पड़ेगी। हमारे करोड़ों के हिसाब से जिनके लिए हमें काम करना है, यह संख्या कुछ भी नहीं है किन्तु यह भी याद रखना चाहिए कि यह केवल ५ वर्षों या यों कहो कि दो साल के व्यवस्थित काम का फल है।

ये अंक सन् १९२४-२५ के हैं। बालू साल में पिछले साल की अपेक्षा गजब की तरकी हुई है, ऐसा कि तीन प्रधान केन्द्रों के आँकड़ों से पता लगेगा।

## तामिलनाड (मद्रास)

	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६
रु०	रु०	रु०	रु०
तैयारी	१,८४,०००	१,९६,०००	४,१०,०००
बिक्री	१,४१,०००	२,१५,०००	३,४०,०००

## खादी प्रतिष्ठान

	६ मास जुलाई से दिसम्बर	४ मास जनवरी से अप्रिल	६ मास जुलाई से दिसम्बर	४ मास जनवरी से अप्रिल
रु०	रु०	रु०	रु०	रु०
तैयारी	३०,०००	३०,०००	१,८०,०००	९०,०००
बिक्री	६७,६७१	४०,०००	१,०८,६०९	९०,०००

## अभय आश्रम, कोमिला

	१९२४	१९२५
रु०	रु०	रु०
तैयारी	२१,०१३	८०,०००
बिक्री	२१,८२२	७४,६२०

## पंजाब

	१९२४-२५	१९२५-२६
रु०	रु०	रु०
तैयारी	२३,६३४	५१,४३७
बिक्री	२९,५५१	४५,०६०

‘यंग इन्डिया’ में खादी के और तकसील के अंक जो हर दूसरे हफ्ते छपते आये हैं, वे चर्खे की खूबी बखूबी जाहिर करते हैं। अब हम अगर केवल मुख्य २ केन्द्रों की ही बात लें तो खादी प्रतिष्ठान बंगाल, नियमित रूप से १०,००० कातनेवालों और ७५० जुगहों को रोजी देता है और कोडियों गांवों की सेवा करता है। टिरुचेनगुड (मद्रास) के आश्रम से २२४१ कातनेवालों और कोई १५० जुगहों को काम मिलता है। वह ११५ गांवों की सेवा करता है। काठियावाड़ के खादी केन्द्र के अधीन २३१३ कातनेवाले और १२० जुगहे हैं और उस से १२१ गांवों की सहायता होती है। अभय आश्रम, कोमिला १०००० कातनेवालों और १५० जुगहों का रोजगार जुटाता है और २० हलके के गांवों की सेवा करता है। विहार और आन्ध्र के अंक हस्तगत नहीं हैं किन्तु वहाँ के अंकों का कुल अनुमान इसी पर से लगाया जा सकता है कि चर्खा-संघ की विहार शाखा और मलखाचक के गांधी कुटीर से केवल कातनेवालों को कोई ६०,००० रुपये एक साल में दिये गये। गुंटूर जिले के (आन्ध्र देश) केवल ओंगोल तालुके में, १९२५ साल में ९९०० कातनेवाले थे जिन्होंने अपनी फुरसत में सूत कात कर औसतन दो आना की आदमी रोज पैदा किया।

(२) सूत और कपड़े में उन्नति और (३) कपड़े के लागत खर्च और दाम में कमी का विचार साथ साथ किया जा सकता है।

पाँच साल पहले ऊँचे अंक का महीन सूत एक नायाब बात था, मगर अब केवल आन्ध्र ही नहीं बल्कि विहार और बंगाल भी महीन सूत तैयार करते हैं। साधारण सूत का अंक प्रायः सभी जगह एक समान होता जा रहा है। केवल एक गुजरात को छोड़ कर सभी जगह १५-२० अंक का सूत तैयार



होता है। यह बात नहीं है कि हम सूत की उन्नति में हद कर चुके हैं किन्तु बुरे सूत को अब दो दिनों का ही मेहमान समझना चाहिए जैसा कि हमें सत्याग्रह आश्रम में १० सप्ताह के सूत की परीक्षा के प्रयोग से पता चलता है। सत्याग्रह आश्रम में पहले सप्ताह में १०० कातने वालों में केवल ३६ आदमी ही काम चलाने लायक सूत याने ५० फी सदी जाँच का सूत कात सके थे। उनमें केवल ३ आदमियों का ही सूत ७० सैकड़े जाँच से अधिक अच्छा निकला। चौथे सप्ताह में ६४ कातने वालों का सूत सैकड़े ५० जाँच से अच्छा, २३ का ६० और २ का ७० और १ का सैकड़े ८० से भी अधिक अच्छा निकला। नवें सप्ताह में १११ कातने वालों में १०४ ने सैकड़े ५० से अच्छा, ३० ने ६०, २९ ने ७०, १७ ने ८०, ४ ने ९० और २ ने १०० फी सदी जाँच से भी अच्छा सूत काता। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि वैसा ही २० अंक का सूत कैलिको मिल्स (अहमदाबाद) का ९० फी सदी शाहपुर मिल्स (अहमदाबाद) का ८५ फी सदी और कमर्शियल मिल्स (अहमदाबाद) का ६९ फी सदी जाँच में उतरा था।

यह कोई इक्का दुक्का जगहों की ही बात नहीं है। अब प्रायः सभी खादी केन्द्रों में आने वाले सूत की जाँच की जाती है और ऐसा निश्चय कर लिया गया है कि एक निश्चित जाँच से नीचे उतरने वाले सूत लिए ही न जायँ।

अब कीमत पर आइये। खादी-शास्त्र का मूल मन्त्र है एक केन्द्र का काम गाँव गाँव में बाँट देना और खादी की भिन्न २ क्रियाएँ एक ही आदमी से कराने का प्रयत्न करना। बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन में ठीक इसके उल्टा होता है यानी जहाँ तक सभी बातें केन्द्रीभूत हो सकें, करना और श्रम का विभाग करना। जैसे गुजरात में ओटने, धुनने और कातने की तीनों क्रियाएँ तीन आदमी अलग २ करते हैं। वहाँ पर फी पाउन्ड सूत की कीमत पड़ी नौ आने साठे चार पाई। तिरुपुर में कातने वाला ही अपनी रुई धुन भी लेता है इसलिए वहाँ पर फी पाउन्ड केवल छ आने साठे दस पाई लगे और बंगाल में जहाँ ओटने और धुनने की दोनों क्रियाएँ कातने वाला ही कर लेता है, यह कीमत घट कर साठे पाँच आने पर आ गयी।

राम घटाने के प्रयत्न में, शायद एक गुजरात को छोड़ कर, और सभी प्रान्तों को बड़ी सफलता मिली है। तामिलनाडु, आन्ध्र और पंजाब में, सन् १९२० में खादी की जो कीमत थी, अब उससे आधी है। खर्च भी अब आधा ही पड़ता है। सन् १९२२ की अपेक्षा भी, अब पौना लगता है। बंगाल में खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रम, कोमिला, दोनों ने ही दाम घटाने में कमाल किया है। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि जहाँ दाम का आधा हो जाना लिखा गया है, वहाँ दाम का आधे से भी बहुत कम होना समझना चाहिए क्योंकि ५ साल पहले जैसा कपड़ा होता था, अब उससे कम से कम दुगना अच्छा तो जरूर होता है। हाँ, यह भी हम मानते हैं कि दाम घटने का एक कारण यह भी है कि गत दो वर्षों में कपास का भी दाम कम हुआ है।

एक बात यह भी याद रखनी चाहिए कि खादी का पैका काम सभी कहना चाहिए जब कातनेवाला अपनी रुई आप ओट और धुन लेने के अलावा, आप ही कपास भी जमा कर रखे। काठियावाड़ में ऐसा किया गया और उसमें सफलता भी खूब मिली। वहाँ के कातनेवालों को इस प्रकार साल भर अच्छी रुई

मिलती रही। बहुत रुई जुकसान होने से बची और सूत भी उनका अच्छा हुआ। इस समय कपास की सारी फसल विचबिच-वानों या मिलों के दलालों के हाथ है। वे फसल की हीर तो खरीद ले जाते हैं और छोड़ते हैं खराब माल। हाथ कटे सूत की खराबी का एक यह भी कारण है। जब कातनेवाला किसान, अपना फायदा समझने लगेगा, और उसके समझने में ज्यादा देर हो नहीं सकती, तो वह अपनी कपास अपने आप ही जमा कर रखेगा और बिक्री के लिए नहीं बल्कि अपने कपड़े के लिए आप कातेगा।

३. चर्खे से व्यक्तियों को और अकाल पीड़ितों को क्या लाभ पहुँचा है?

(क) व्यक्तियों को — चर्खे पर अभी हम आर्थिक दृष्टि से विचार कर रहे हैं। इसलिए, कुछ लोगों के नैतिक जीवन में इसने क्या क्या परिवर्तन ला दिये हैं, इस पर विचार करने का यह अवसर नहीं है। चर्खे की प्रगति से लोगों में नशाखोरी बंद हुई है और वे कर्जदारों के पंजे से छूटे हैं। इन बातों का जितना आर्थिक महत्व है, उतना ही नैतिक भी। ये शुभ परिणाम हुए तो सभी जगह, मगर गुजरात के कुछ हिस्सों में व्यापक रूप से। २६ अगस्त के 'हिन्दी नवजीवन' में 'सफल-प्रयोग' शीर्षक लेख में दिखलाया गया था कि सूरत जिले की कालीपरज जाति में चर्खे का ऐसा सुधारक प्रभाव पड़ा है कि २६ किसान परिवार, जिनको ९ एकड़ से ले कर ३४ एकड़ तक की खेती है, साल भर खेती के काम में लगे रहने पर भी, २० से ६० पाउन्ड तक सूत साल के भीतर कात सके थे। ऐसे उदाहरणों से चर्खे की शक्ति का कुछ पता चलता है।

(ख) अकाल पीड़ितों में — अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए, कब और कैसे चर्खे का चलन-चला, इसे संक्षेप में बतलाना कठिन है। कुछ लोग कह सकते हैं कि जब चर्खे का घर घर प्रचार था तब भी अकाल पड़ते थे। हाँ, पड़ते तो थे जरूर, मगर सन् १८६४ के बाद से जिस प्रकार बार बार पड़े हैं, उस प्रकार तो कभी नहीं। सन् १७७७ के अकाल को अकाल के बदले काल या दैवी प्रकोप ही कहना चाहिए। किन्तु उसके बाद कई साल तक फिर किसी ने अकाल का नाम भी नहीं सुना। तब से एक के बाद दूसरे, न मालूम कितने कमीशन बैठायें गये मगर सब ने यही कहा कि सरकार के लिए अकाल पीड़ितों की सहायता देना कठिन है। अब जहाँ अकाल कभी नहीं पड़ता, वहाँवाले सहायता लेते सड़काते हैं और जहाँ बराबर अकाल पड़ा करता है वहाँवाले सहायता के लिए हाथ फैलाये रहते हैं। कुटुम्ब के एक एक आदमी अलग जा पड़ते हैं। वे, निराधार और पराधीन हो जाते हैं और समूह के समूह भुख्ख देश भर में फैल जाते हैं। सर एडवर्ड कैथर्ड ने बतलाया है कि "ग्राम संगठनों को कायम रखने से ही समाज सुसंगठित रह सकेगा और प्राण की रक्षा हो सकेगी।" अब घर-घर चर्खा ले जा कर, अकालपीड़ितों को घर बैठे रोजी देने से बड़कर ग्राम संगठन की रक्षा का और दूसरा कौन उपाय हो सकता है? एक यही काम ऐसा है जिसे बच्चे, बूढ़े, लखड़े, लंगड़े, रोगी, औरत, मर्द सब के सब, दिन रात बिना सिहनत के कर सकते हैं।

आचार्य राय ने पश्चिम बंगाल के बाढ़ और अकाल क्षेत्रों में पहले पहल सन् १९२३-२४ में धान कुटने आदि कई काम करा कर सहायता देने के प्रयत्न किये। जब इन सब से कुछ भी



काम न सारा तो उन्होंने चर्खा चलाया और वह खूब चल निकला। तलौरा, चम्पापुर, तिलकपुर और दुर्गापुर के चार केन्द्रों में ओठने, धुनने और कातने की मजदूरी में ३८००० रुपये दिये गये थे। मगर यह तो कुछ भी नहीं है। सच्ची सफलता तो इस बात में है कि उन स्थानों में चर्खे ने घर कर लिया है और अब वहाँ के बाशिन्दों की थोड़ी सी आमदनी में कुछ बढ़ती हुई है और इससे वे आगे के लिए फल की खराबी और बाढ़ों का पहले से ज्यादा अच्छी तरह से सामना कर सकते हैं।

मगर चर्खे से क्या क्या हो सकता है, इसका विचार कर के पहले, इसके रास्ते में जो बहुत बड़ी बाधा कही जाती है उसीका विचार करना होगा।

(यं० ६०)

(अगले अंक में समाप्त)

## लकीर के फकीर

एक सज्जन आवे पूर्वक लिखते हैं: "मुझे भय है कि आपके १० सितम्बर वाले 'हिन्दी-नवजीवन' में 'ईश्वर-प्रार्थना' और खास कर सामुदायिक प्रार्थना के—जोरों के समर्थन में कुछ शुद्धि है। लेख के अन्त में गिरजाघरों मन्दिरों और मसजिदों का उल्लेख करते हुए आप कहते हैं कि "प्रार्थना के स्थान महज बहम नहीं हैं, जिनको जल्दी से जल्दी मिटा देना चाहिए। वे आघात सहते रहने पर भी अब तक मौजूद हैं और अनन्त काल तक बने रहेंगे।" उक्त वाक्य को पढ़ने पर मैंने अपने मन में पूछा:—आक्रमण, किसके द्वारा? निस्सन्देह नास्तिकों ठेठेवाजों या धूर्तों के द्वारा इतने हमले नहीं किये गये जितने कि आस्तिकों में से पारस्परिक विरोधी सम्प्रदायों के द्वारा एक दूसरे के आराधनालयों पर किये पाये गये हैं। वास्तव में यदि कुल नहीं तो अधिकांश में, वे हमले जिनका आवजिक करते हैं, 'खुदा परस्त' धर्मांधों ने अपने परमेश्वर के नाम में और शान के लिए किये हैं। अगर मैं यहाँ इस बात के प्रमाण में मिसालें देने की धृष्टता करूँ तो वह आप के संसार के इतिहास-ज्ञान की तोहीन करनी होगी।

"मेरे मन में इसरा प्रश्न यह उठा:—क्या यह सच है—बिल्कुल ठीक है कि—ये आराधना के स्थान सब आक्रमणों के लोके सह चुके हैं? उत्तर फिर वही मिलता है—कदापि नहीं। काशी (बनारस) का गंगाघाट देखिये—जहाँ कि सदियों से, यहाँ तक की बुद्ध के भी पहले से, विश्वनाथ जी का मन्दिर चला आता था; लेकिन अब उसके स्थान पर उसी अप्रतिष्ठित किये हुए मन्दिर के ईंट घुने से बनी हुई—सो भी किसकी आज्ञा से—एक "जिन्दा पीर," "सुलतान औलिया" यानी बड़े परहेज के साथ रहने वाले औरंगजेब के हुकम से—मसजिद उस "पवित्र-नगर" के बीचोंबीच खड़ी हुई है। और "नास्तिक" अंग्रेजों की करतूत से नहीं—बल्कि इन्सलुद तथा बहावियों जैसे बड़े आस्तिकों की करतूत से—इज्जत में (सुलतानों की "पवित्र भूमि" में) ईश्वराधना के अनेक स्थान अभी हाल में प्रष्ट किये तथा जमीन से मिला दिये गये हैं, जिनके ऊपर कि हिन्दुस्तानी मुसलमान आज घड़ों आँसू बहा रहे हैं और जिनकी मरम्मत इज्जत के तमाम मुसलमान बादशाहों में से केवल एक निजाम (हैदराबाद) ने अपने रुपये के बल से करने की निष्कल चेष्टा की है।

"क्या, महात्मा जी, आपके तर्जुन इकीकतों के कुछ भी प्राप्ति नहीं है?"

विलासक इन वाक्यात के मानी मेरे तर्जुन बहुत कुछ हैं। उनसे निस्सन्देह मनुष्य की क्रूरता ज़रूर प्रगट होती है। लेकिन उनसे हम पाक बनते हैं। वे हमको चेतावनी देते हैं कि असहिष्णु मत बने। वे हमको असहिष्णु के प्रति भी सहिष्णु बनाते हैं। वे पुरुष की नितान्त अल्पता जतलाते हैं और इस प्रकार उसे, अगर वह खुशी से प्रार्थना नहीं किया करता,—ईश्वर-प्रार्थना करने के लिए मजबूर करते हैं। क्योंकि क्या इतिहास इस बात का साक्षी नहीं है कि ईश्वर के सामने घमंडी का सिर बार बार नीचा हुआ है?—उसके पैर खून के आँसुओं से धुले हैं और उसने ईश्वर के चरणों के नीचे पड़ कर धूल बन जाने की प्रार्थना की है? यथार्थ में लकीर का फकीर बनने से नाश और भाव ग्रहण करने से जीवन होता है। पत्र-प्रेषक को जो कि 'यंग इन्डिया' के विला नागे और मेहनत से पढ़ने वालों में से हैं, अब तक जान लेना चाहिए था कि, मेरे लिए, आराधना के स्थान महज ईंट चूना नहीं हैं। वे तो केवल, सत्य की परछाईं हैं। प्रत्येक बरबाद किये गये मन्दिर, मसजिद या गिरजाघर के बदले सैकड़ों बन गये हैं।

प्रार्थना की आवश्यकता के बारे में दलील करते वक यह बिल्कुल बेमौका बात है कि नाम मात्र के आस्तिकों ने अपने एतकाद (विश्वास) को नाश कर दिया है और यह कि अपनी पवित्रता के लिए अनेक प्रख्यात स्थान जमीन से मिटा दिये गये हैं। मेरी समझ से इतना काफी है—मेरी दलील के वास्ते तो काफी है ही—अगर मैं यह साबित कर सकूँ कि संसार में ऐसे लोग हो गये हैं, और आजकल भी हैं, जिनके लिए ईश्वरप्रार्थना जीवन के निमित्त रोटी की मानिन्द आवश्यक है। मैं अपने पत्र-लेखक महोदय से सिफारिश करता हूँ कि वे मस्जिदों, मंदिरों इत्यादि में बिना किसी के द्वारा देखे गये, तथा बिना किसी विचारों को पहले से सोचे हुये जायँ। वहाँ उनको पता चलेगा—जैसा कि मुझे चला है—कि उनमें कुछ न कुछ ऐसी बात ज़रूर है जो दिल पर छाप डालती है और जो कायापलट कर देती है—उन लोगों की जो कि उनमें दिखाव के लिए या शर्म अथवा डर के भारे नहीं, बल्कि केवल उपासना के लिए जाते हैं। इसकी व्याख्या करना असंभव है। खैर, कुछ भी हो, यह बात तो है ही कि स्वच्छ मन वाले लोग वर्तमान तीर्थस्थानों में (जो कि गलतियों, मूढज्ञान और भ्रष्टाचार तक के केन्द्र हो पाते हैं।) जा कर पूजा के प्रताप से वहाँ से अधिक शुद्ध हो कर लौटते हैं। इसीलिए मगवद्गीता में यह महत्वपूर्ण आश्वासन दिया हुआ है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्

अर्थात् "मैं मनुष्यों के उपासना-भाव के अनुधार ही, जिससे कि वे मेरी पूजा करते हैं, उनको एवज चुकाता हूँ।"

पत्र-प्रेषक ने जो कुछ लिखा है, वह निस्सन्देह हमारी वर्तमान त्रुटियाँ अवश्य जतलाता है और हमें चाहिए कि हम जल्द से जल्द उनको दूर कर दें। यह बात धर्मों या मजहबों की शुद्धि के लिए तथा दृष्टि को बृहत् या विशाल बनाने के लिए अपील है। उससे भी अच्छा विश्वमान है और क्या मैं यह कह दूँ कि उस सुधार तक के लिए, जिसे हम लोग चाहते हैं, प्रार्थना ज़रूरी है ताकि आत्मशुद्धि और अधिक मात्रा में प्राप्त की जा सके। क्योंकि प्रार्थना के बिना, मनुष्य मात्र का सामान्य शुद्धिकरण, आपस की सहिष्णुता तथा पारस्परिक सम्भाव संभव नहीं है।

(यं० ६०)

मोहनदास करमचंद गांधी



अहिंसा (५)

वार्षिक ५  
 रु: मास का २  
 एक प्रति का १

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १४

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, कार्तिक सुदि १३, संवत् १९८३

गुरुवार, १८ नवम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## एक मात्र गृह-उद्योग चर्खा

३

मिल के कपड़े क्या अधिक हैं ?

अभी तक हमने केवल उसी काम का विचार किया है जो अब तक हो चुका है। उसी काम से इसकी भविष्यत शक्यता का पता चल जाता है। यद्यपि यह भी कहा जाता है कि मिलों की प्रतियोगिता का हमने विचार नहीं किया है। यह कहना क्या समुचित होगा कि मिल के बने और घर के बने कपड़े में भी कोई प्रतियोगिता है? दो मिलों के बीच प्रतियोगिता चल सकती है, जैसे देशी या विदेशी मिलों या भाफ के बल से चलने वाली और बिजली से चलने वाली मिलों के बीच प्रतियोगिता संभव है किन्तु उन दो चीजों में भला कैसे प्रतियोगिता हो सकती है या होनी हो क्यों चाहिए, जिनमें एक तो जीवनदायी उद्योग है, और दूसरा, इसी ही चीज? हमें जरा और अधिक खुलासा करना चाहिए। आज की सबसे बड़ी समस्या है हमारे करोड़ों किसानों को आर्थिक दुरवस्था का सुधार — यानी उनकी आजीविका का दूर होना। यही हमारी सबसे बड़ी जरूरत है। हम लोग पिछले अघ्यायों में देख चुके हैं कि चर्खा ही क्या एकमात्र धंधा है, जिससे उनकी दुर्दशा दूर हो सकेंगी और उन्हें रोजी मिल सकेगी। हम यह भी देख चुके हैं कि मिलों के रोजगार में ५० करोड़ रुपये लगा देने के बाद भी मिलमालिक अब तक केवल १५ लाख आदमियों यानी पौने चार लाख मजदूरों के कुटुम्बियों को अन्न खाने के कविल हुए हैं। ये मजदूर अधिकांश में खेतों पर से ही खिंच कर आते हैं। अब अगर यह मान भी लिया जाय कि हिन्दुस्तान की जरूरत मुवाफिक पूरा कपड़ा तैयार करने योग्य मिलों के रोजगार की उन्नति हो गयी तो उस समय भी क्या मुझे मरने वाले करोड़ों के जनसंघ की हालत जिन्हें एक सहायक चीज की जरूरत है, कुछ भी सुधरेगी? हमारे यहां आज ४६६१० लाख गज (१७८९० गज देशी मिलों का, १७६९० लाख गज विलायती और ११०३० लाख गज हाथकते) कपड़े की खपत है। अब ४६६१० लाख गज कपड़े के लिए १०६५० पाउन्ड या रतल (एक रतल = ४० तोले) सूत

चाहिए। अब सन् १९२२-२३ में हिन्दुस्तान की २३९ मिलों ने साढ़े ७२ लाख तकुवे चला कर ७०५० लाख रतल सूत काता। इसके लिए उन्हें साढ़े तीन लाख मजदूर लगाने पड़े। अब ११६५० लाख रतल सूत के लिए उन्हें १ करोड़ १० लाख तकुवे चाहिए। इतने सूत का कपड़ा बुनने के लिए २,१५,६५५ कर्घे चाहिए। अब इन १ करोड़ १० लाख तकुवों और २,१५,६६६ कर्घों को चलाने के लिए मोटे हिसाब से ६ लाख आदमी चाहिए। इस प्रकार हमारा मिल व्यवसाय ६ लाख मजदूरों के कुटुम्बियों को मिला कर, अधिक से अधिक २५ लाख आदमियों को रोजी दे सकता है। और फिर इन आदमियों से प्रायः देश को कुछ नफा भी नहीं होता। इसलिए मिल व्यवसाय अधिक से अधिक बंदी कर सकता है कि इन लोगों को खेतों से छुड़ा देंगे। एक आदमी को भी सहायक धंधा देना उसकी शक्ति के बाहर है। इस प्रकार चर्खा और मिलों में कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इनका मिलान किया ही नहीं जा सकता।

अब हम यह देखें कि हमारी घरू मिलें यानी चर्खा क्या कर सकता है। उतना ही कपड़ा तैयार करने के लिए, उसी हिसाब से उतना ही यानी ११६५० लाख पाउन्ड सूत चाहिए। अब एक आदमी अगर साल में २५ पाउन्ड सूत काते तो कम से कम ४ करोड़ ६६ लाख आदमियों को चर्खा चलाना होगा। यानी कम से कम इन ४ करोड़ ६६ लाख कातनेवालों की आमदनी में तो इससे बढ़ती हो सकेगी। अब इनमें, धुनियों, ओटनेवालों, रंगरेजों, बढइयों, लोहारों, पड़े लिखे संगठन कर्त्ताओं और कम से कम ३१ लाख जुलाहों को जोड़ लें तो फिर हिन्दुस्तान के किसानों की आबादी में से १० साल से कम उम्र के ६ करोड़ बच्चों की संख्या घटा लेने पर उनकी सारी आबादी की आधी संख्या के बराबर यह संख्या हो जाती है।

इसके अलावा, मिलों में जहां ४०,५० करोड़ की पूंजी और लगानी पड़ेगी, इसके लिए कुछ भी नहीं यानी बहुत थोड़ा, यही, जहां कपास नहीं पैदा होती वहां उसे खरीद कर जमा कर रखने और संगठन कार्य में लगे हुए लोगों के वेतन के लिए थोड़ी पूंजी चाहिए। कारण इसका स्पष्ट है। देश में अभी लाखों चर्खे बेकार



१०६

पड़े हुए हैं, जिन्हें केवल झाड़ पोंछ लेने भर की जरूरत है। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में कर्षों की पूरी संख्या नहीं दी गयी है। मगर तब भी, बंगई, मध्यप्रान्त, माइसूर, और संयुक्त प्रान्त के कर्षों की संख्या छोड़ कर, और प्रान्तों में १९,२९,०६६ गिनाये गये हैं। इसलिए जितने कर्षों की हमें जरूरत है, यानी कम से कम ३१ लाख कर्षों से अधिक कर्षों हमारे पास अगर न हो सकें तो, न ही मगर सारे हिन्दुस्तान में कम से कम ३१ लाख तो जरूर ही होंगे।

हम दूसरे अध्याय में देख चुके हैं कि जहां तक खादी को व्यवहार करनेवालों से मतलब है, उनकी सहाय्यता या समर्थन इस जीवन देनेवाले व्यवसाय के लिए प्राप्त की जा सकी है तथा उनकी बढ़ती हुई मांग पूरी की जा सकी है और साथ ही साथ कपड़े के सस्तेपन और अच्छाई में भी उन्नति हो सकी है। यह व्यवसाय हमारे लिए जीवन देनेवाला है क्योंकि इसके अर्थशास्त्र का आधार है मनुष्यों का जीवन। एक लेखक का कहना है कि जातियों के लिए ऐसा अर्थशास्त्र चाहिए जो उन्हें जिन्दा रखे। यहां चलो हमें एक ऐसा व्यवसाय मिलता है जो राष्ट्र को जिन्दा रखेगा और केवल जिन्दा ही नहीं बल्कि एक राष्ट्र के समान जिन्दा रखेगा जो सच्ची सम्पत्ति पैदा कर उसे समान रूप से बाँटता हो, और वह भी झूठी सम्पत्ति नहीं है, उस पैसे के समान नहीं है जो दो कौड़ी की लालच से शत्रुओं को घर बुला तमाशा दिखा कर उनसे तमाशे के इनाम में मिला हो यानी नाश का जो सूत्रपात करता हो।

क्या, राज्य से या सरकारसे ऐसी उमेद करना कि वह उस प्राणरक्षक व्यवसाय का समर्थन करेगी अनुचित है? सरकार के लिए, ऐसी संस्था की सहायता करना, जिस पर राष्ट्र का जीवन निर्भर हो, जैसे डाक विभाग, उचित से क्या कुछ अधिक कहा जायगा? कुछ देशों में म्युनिसिपैलिटी के बाजार हकों की रक्षा करने की चाल है। फिर केवल खादी की ही बिक्री के लिए सहायता देकर यह सरकार, अपने पहले जमाने के भफसरों के, जिन्होंने देश के इस एकमात्र प्राणरक्षक व्यवसाय का गला घोट्टा था, पाप का प्रायश्चित्त भर कर सकेगी।

मगर हम मान लें कि सरकार खादी के प्रति अपनी उदासीन दृष्टि ही रखे रहेगी, और इस घरू धंधे को नाममात्र के स्वतंत्र व्यापार का ही सामना करना पड़े और गाहक को खादी और मिल के कपड़ेमें से एक चुनलेना पड़े, तो उस दशा में मिल के कपड़े से खादी को कहां तक बाजी लेनी पड़ेगी। अब हम देखें कि १ पाउन्ड कपड़ा तैयार करने में मिल को कितना और घर पर तैयार करने वाले को कितना खर्च पड़ेगा। (मिल का हिसाब १९२४-२५ का और हाथ बुनाई का १९२२-२३ का है।)

१ पाउन्ड मिल के कपड़े का  
लागत खर्च

१ पाउन्ड खादी का  
लागत खर्च

	पाई	रु. आ. पा.
कोयला	१०.०९	धुनाई ०-१-०
गोदाम	१४.४६	कताई ०-३-०
मजदूरी	३९.६९	बुनाई ०-७-६
दफतर और जाँच	३.४१	माल की खराबी ०-०-६
बीमा	१.६७	
म्युनिसिपल और		
दूसरे कर	१.५७	
सूद	५.९६	

कपड़े पर कमीशन ४.९०  
एजेन्ट का कमीशन ०.८३  
इनकम टैक्स वगैरह १.९४

८३.९२

सात आने ०-७-०

अन्तर ५ आने

फी गज अन्तर २ आने

उपर के हिसाब से हम देखते हैं कि अगर हमें हमें गोदाम, कमीशन, बीमा, टैक्स वगैरह के रूप में चार आने बचा लेते हैं किन्तु मजदूरी में छ आने की घटी सहते हैं। प्रकार ग्राहक को जो केवल ग्राहक ही है, यानी जो खुद बुनता नहीं है किन्तु खरीद कर ही खादी पहनता है, फी दो आने की घटी लगती है। मगर जब कभी वह खुद धुनना और कातना शुरू करता है तो वह उछे बचा लेता है फिर खादी का और मिल के कपड़े का दाम करीब २ बराबर पड़ता है। खादी के अर्थशास्त्र की एक अखीरी स्थिति तब है जब कातनेवाला अपनी कपास न सिर्फ धुन और कात ही है बल्कि जमा भी कर रखता है, जैसा कि वह पहले जमाने किया करता था और गत दो वर्षों में कई किसानों ने किया भी अगर हम हिन्दुस्तान की आबाद खेती का केवल कपास के से मिलान करें तो करीब १ करोड़ किसान कपास में लगे हुए होंगे। अब अगर ये अपनी कपास आप ही जमा कर रखें हमारा उद्देश्य है तो, उन्हें न केवल बुनाई की मजदूरी कपड़ा मिलेगा बल्कि उससे भी बहुत कम पर क्योंकि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने, मिलों में पहुँचने पर बांधने और खोलने के खर्च और दलालों का नफा चुकाना पड़ेगा, नहीं, इससे भी सस्ता कहना होगा। किसान के लिए फसल पूरी कपास चुनने के पहले जब तब, घर के काम के लिए चुनी दो चार सेर कपास का कोई मूल्य नहीं होता और इसलिए बिल्कुल बुनाई की मजदूरी कपड़ा मिल सकेगा, कई उदाहरणों में हम यही बात पाते हैं।

इनके अलावा, इस व्यवसाय की उन्नति होने से बातें उपस्थित हो जायेंगी जिनका प्रभाव चर्खे के अर्थशास्त्र पड़ेगा ही।

१. मिल के कपड़े का लागत खर्च जरूर ही घटता रहेगा क्योंकि वह व्यवसाय परमार्थ के लिए तो है नहीं; वह तो तिजारत के सिद्धान्त पर है। जैसे उदाहरणार्थ साल में १९१४ की बनिस्बत लागत खर्च दुगुना पड़ता और कुछ न होवे तौभी इसलिए कि मिलमालिक गत ३ अपनी घटी पूरी करनी चाहेंगे, मिल के कपड़ों का दाम और भी बढ़ सकता है। मगर इधर जुलाहे की घटी नहीं, जो कुछ अनहोनी बात नहीं है, तो बढ़ तो नहीं। इसके लिए तबपत्री (मद्रास) का उदाहरण ले वहां बुनाई की मजदूरी में इस प्रकार कमी हुई है:

पहले की मजदूरी	अब की
१६ अंक सूत की बुनाई ०-५-०	०-३-०
१२ " " ०-३-०	०-२-०
१० " " ०-०-०	०-१-०

२. दूसरी बात है, कपास में उन्नति। विदेशों में कपास वाले व्यापारियों के दलाल अच्छा से अच्छा माल तो लेते



सूत कर विलायत भेज देते हैं और बुरा सामान छोड़ देते हैं। जब किसान अपनी कपास खुद रखने लगेंगे तो वे अच्छी कपास भी जरूर रखेंगे ही।

२. तीसरी बात है सूत के ऊपर कातने वाले का अधिकार यानी कातनेवाला सूत का अंक बढ़ता जा सकता है और कच्चे माल का खर्च कम करता जा सकता है।

४. हाथ से कातने वाला या चर्खा चलाने वाला साधारण वेव कपास से ही ४० से ५० अंक तक का अच्छा सूत कात सकता है मगर ऊंचे अंक का सूत कातने के लिए मिलों को विदेशी कपास का आसरा लेना पड़ेगा।

५. हाथ से बुननेवाला जुलाहा हर ताने पर नया ही नकशा बुन सकता है क्योंकि उसका ताना तो १० से ३० गज तक का ही होता है, मगर मिलवाले हर बार हुक्म बमूजिब नया ताना नहीं कर सकते क्योंकि उनका ताना ५०० गज का होता है।

६. हाथ से बुननेवाला तरह तरह की अँचरी वा किनारी बुन सकता है मगर मिलों को यह सुविधा नहीं है।

हाथ कर्षों की बातें करते समय इस शंका का भी समाधान करना पड़ेगा कि— 'आप कर्षों पर भरोसा न करें उनको तो मिल के ही सूतों का पसन्द करना पड़ेगा और करेंगे।' हाँ, यह बात बेशक सच है कि आज अधिकांश कर्षे मिल के सूत पर ही निर्भर हैं क्योंकि हम अभी ऐसा अच्छा सूत तैयार नहीं कर सकते हैं जिसकी ओर सहज में ही जुलाहा आकृष्ट होये। किन्तु मार्शल साहेब के समान बहस करना, जैसा कि मर्दुमशुबारी के एक अकसर ने किया है कि कपास की पैदाइश तो केवल कलों के लिए ही है, पहले बपाने के हिन्दुस्तान के कपडे की तिजारत के इतिहास को अज्ञान प्रगट करना है। हमें अभी ठाँके के जैसा सूत कातना बाकी है जिस के विषय में सरकार के सन् १८६४ के विशेष कमीशन का कहना है कि हाथ का सूत सभी प्रकार से बारीकी और अच्छेपन में मिल के सूत से अच्छा है। मगर जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में देखा है, इस और उन्नति होती रही और इसलिये और अब भी हो रही है।

मगर चाहे कुछ भी हो, अगर चर्खा न चले तो कर्षे बेकार रहेंगे ही और जुलाहे भूखे मरेंगे ही। सन् १९२३ में ११,०३० अँगुल गज कपडा १९,३८,०८२ कर्षों पर तैयार हुआ। इन कर्षों का काम हो सका या दो आने गज के हिसाब से जुलाहों को महीने से भी कम की आमदनी हुई है। अब अगर उन्हें मिल के थोड़े सूत पर भरोसा करके हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना पड़ता तो वे मजे में औसतन ४ गज कपडा रोजाना तैयार कर सकते थे और अपनी आमदनी भी सहज में ही १५) किन्तु मनोरंजक बात तो यह है कि कर्षे पर का बुनने वाला दिन पर दिन चर्खा चलाने वाले के ही दरवाजे का मिखारी बना रहा है। क्योंकि मिल भी तो उसी के समान कपडे का बुनने और यह बात उसे मालूम भी खूब है। वह उसे बुनना तो सूत दे नहीं सकती। वंबई के मिलमालिकों की सभा ने १५ सितम्बर १९२५ को सर चार्ल्स इन्स को पत्र में लिखा था कि "लड़ाई के जमाने में, तबूके नहीं बडे किन्तु कर्षों हर साल ५००० तक की बढ़ती हुई है। फल इसका यह हुआ कि वह व्यवसाय जो इस सदी के शुरू में अधिकतर केवल

सूत कातने का ही था अब बहुत अंशों में बुनने वाला हो गया है।" यह सिद्ध करने के लिए बहुत दलीलों की जरूरत नहीं है कि किसी भी प्रकार का व्यवसाय जो उसके प्रतिपक्षी दूसरे व्यापारी पर निर्भर रहता है, उसकी दया पर ही चल सकता है। कर्षों का ज्यों ज्यों सर्वत्र प्रचार बढ़ता जायगा, कर्षों और मिलों की यह प्रतियोगिता भी दिन दिन अधिकाधिक कड़ी होती जायगी और जो सब लोग सूत का यथेष्ट प्रबन्ध किये बिना ही कर्षों का प्रचार करना चाहते हैं, इस बात से सावधान हो जायें। संभवतः वे जुलाहे का सर्वनाश कर देंगे और जेईमानी का दोष उन पर लगाया जा सकेगा। कर्षों में चर्खे का अस्तित्व माना ही हुआ है। दोनों साथ ही जीयें या मरेंगे। नये धर्मशास्त्र में हर घर में एक चर्खा और हर गांव में एक कर्षा रखना आवश्यक होना चाहिए।

खैर अभी जब तक पूरा परिवर्तन हो न लेता है, तबतक प्रचार के रूप में बहुत कुछ शिक्षा देनी पड़ेगी। जनता में हमें पवित्र और शुद्ध उद्देश्य जागृत करने हैं, उनमें यह भाव पैदा करना है कि अपने देश के भाई बहनों के हाथ के सूत का कपडा कभी महंगा नहीं कहा जा सकता। जब तक मिलें, सिन्धी वेव के शब्दों में, "देश से, उसकी पूंजी खर्च कर यानी मजदूरों का स्वास्थ्य बुद्धि और चरित्र नष्ट कर" सस्ते कपडे तैयार करती हैं, तब तक देशभक्त भाइयों को, अपनी इच्छाओं पर लगाम लगा कर, और खादी के लिए अधिक दाम देकर, देशप्रेम का कर चुकाते ही रहना होगा।

समाप्त

(यं० इं०)

### चर्खा-संघ के सदस्य

नये साल के लिए चर्खा संघ का चंदा आ रहा है जरूर। मगर उस तेजी से नहीं जिससे उसे भाना चाहिए था। यह उमेद की जाती है कि इस साल के सदस्य अपने सूत की मजबूती, समानता, और बारीकी को बढ़ाने पर विशेष रूप से ध्यान देंगे। उनकी कोशिश एक विशेष अंक के सूत कातने की होनी चाहिए, जिसमें उसका कोई अच्छा थान बुना जा सके। यह त्याग का सूत, मजदूरी पर काते गये सूत की अपेक्षा अवश्य ही बहुत अच्छा होना चाहिए।

किन्तु एक भाई लिखते हैं :

"आप सूत में उन्नति करने को लिखते हैं। आप सूत की परीक्षा के यंत्रों की भी बात लिखते हैं। तब क्या यह आवश्यक नहीं है कि कातने वाले सदस्य को उसके सूत के दोष बतला-दिये जायें, जिसमें वह उन्हें दूर कर सके।"

यहां जितना सूत आता है, सबकी जाँच करने की कोशिश चर्खा संघ करता है किन्तु रोज कुछ गिने गिनाये सूतों की ही जाँच हो सकती है। जब कमी सूत की जाँच की जाती है कातने वाले को उसके परीक्षा-फल की खबर दे दी जाती है। मगर जो लोग जल्दी से उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें मैं जाँच करने के यंत्र घर पर ही बना लेने को कहूँगा। इसमें न तो कुछ खर्च है न कोई तरहुद। उस घर परीक्षा-यंत्र की चर्चा इस पत्र में हो चुकी है। अगर सदस्य यह बात याद रखें तो बड़ा अच्छा है कि चर्खा संघ गरीबों का संघ है और केन्द्रीय कार्यालय में वह बहुत धन खर्च नहीं कर सकता।

(यं० इं०)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुल्वार, कार्तिक सुदि १३, संवत् १९८३

## अहिंसा

(५)

एक मित्र ने कई प्रश्न उठाये हैं और लंबा लेख लिख कर उन्होंने अपनी अनेक शंकाएं बतायी हैं। उन्होंने शुद्धभाव से शंकाएं उपस्थित की हैं। 'नवजीवन' के, इस लेखमाला वाले अंक अपनी टिप्पणियों के साथ उन्होंने भेजे हैं। मेरा खयाल है कि उनका लेख मैं के अनेक प्रश्नों का खुलासा तो अवतक हो ही गया होगा। तौभी आवश्यकतानुसार उन के प्रश्नों का उत्तर यहीं देता हूं।

मुझे मालूम होता है कि इस विषय में मैं तटस्थता से विचार कर रहा हूं। हिंसा का पक्षपात मुझ को हो ही नहीं सकता और न अपने मत का ही। मुझे पक्षपात सत्य का ही है और मैं अहिंसा मार्ग से सत्य का शोधन करता हूं। मैं ने अनुभव किया है कि दूसरे मार्ग से सत्यका पता नहीं लग सकता। सत्य है या नहीं, अहिंसा परमधर्म है या नहीं—मेरे निकट ये वादग्रस्त विषय नहीं हैं। इस विषय में अपने मन में शंका का होना भी मैं संभव नहीं मानता। किन्तु उसका पालन क्योंकि हो, यह प्रश्न मेरे पास हमेशा खड़ा रहता है। प्रतिक्षण नवीनताएं नजर आती हैं। उसके पालन में मूल होना भी मैं संभव मानता हूं। उन भूलों से बचने के लिए मैं बहुत जाग्रत रहता हूं। तौभी शौंके खा जाना संभव है। इसलिए मित्रों का अगर विरुद्ध अभिप्राय मुझे मान्य न हो तो वे मुझे एकपक्षी न गिनें किन्तु नासमझ जान कर क्षमा करें और धैर्य रखें।

१ पागलपन का रोग निमित्तमात्र है।

२ उस रोग के निवारण का प्रयत्न सरकार करे या म्युनिसिपैलिटी करे, किन्तु यह प्रश्न एक ही दृष्टि से हल हो सकेगा। अगर महाजन में सचमुच ही अहिंसा हो तो वह भी इसका इलाज खोजे। कुत्तों को न मारने का धर्म सरकार स्वीकार करेगी नहीं। म्युनिसिपैलिटी में भी कई सम्प्रदाय के सदस्य होते हैं, इसलिए वह भी अहिंसक उपाय की खोज न करेगी।

३ अहिंसक उपाय खोज निकालने का भार महाजन के ऊपर ही होगा। महाजन को निर्दोष या निरुपाय मानने में भूल है।

४ इस चर्चा के संबंध में मैं रोगी कुत्ते में और खूनी आदमी में कोई फर्क नहीं देखता। खूनीपना भी एक रोग ही है। खूनो अपनेको पहले भूल जाता है, तब खून करता है। दोनों ही दया के पात्र हैं। मगर अगर दोनों ही दूसरे का कष्ट दें और ऐसा करने से रोकने में उन्हें देहभक्त भी करना पड़े तो बैसा करके उन्हें रोकना धर्म हो जाता है। यह धर्म अहिंसक के लिए भी ठीक है।

५ घर घर कुत्ता माला ही जाय, मेरे कहने का ऐसा आशय ही नहीं है। अगर कुत्ता रहे तो वह पालतू ही रहे। पालतू कुत्ते का रोग न होता है, ऐसा कुछ बात नहीं है। किन्तु उसके लिए, उसका पालक जवाबदेह होगा।

६ शहर के कुत्ते तो आज कुछ गरीब निर्दोष तो हैं नहीं। कभी ये भी नहीं। पालतू कुत्ते बैसा अमूमन होते हैं। उनका

बैसा बनाने के लिए ही तो यह चर्चा चल रही है।

७ मैंने ऐसी बात नहीं बतलाई है कि जहां कहीं कुत्ते भटकते हुए कुत्ते को देखा कि उसे मार डाला। किन्तु मैंने तो ऐसा कायदा बनाना सुझाया है। इस कानून में कुत्ते की रक्षा तो समायी हुई है ही। क्योंकि उससे दयालु मनुष्य या तो कुत्तों को पाऊंगे या दूसरा कोई उपाय हूँ निकालेंगे। और इस कानून से कुत्तों का भटकना भी गायब हो जायगा। भिक्षारी को भिक्षा न देने में भिक्षारी को मारने का नाम निशान नहीं है, उसे स्वाश्रयी बनाना है, मनुष्य बनाना है। कुत्तों को मारने का धर्म तो मेरे पिछले लेखों में बतलाया हुई मर्यादा में ही हो सकता है। यह कहने से कि कुत्तों को मारने में पाप मेरे कथन का विलकुल खंडन नहीं होता क्योंकि मैंने उस विरुद्ध अभिप्राय दिया ही नहीं है।

इसकी चर्चा निरर्थक है कि अम्बालाल सेठ ने क्या किया और जो किया सो ठीक किया या नहीं अथवा मैं ने जो किया है वह ठीक है या नहीं। हमारे पास उस किस्से की कोई हकीकत भी नहीं है। उससे उत्तरन हुई, अहिंसा की पहली ही चर्चा करने योग्य है और उसके हल होने में अम्बालाल सेठ का सवाल उठाना मैं एक बाधा समझता हूं।

८. सवाल तो इतना ही है कि अमुक संयोगों में और कोई चारा न हो तब अहिंसा की दृष्टि से कुत्तों को मारना धर्म हो सकता है या नहीं। मैं मानता हूं कि हो सकता है और यह मैं अब भी मानता हूं कि इस में दो मत नहीं सकते। किन्तु सन्तोष का विषय यही है कि ऐसे हमेशा नहीं उपस्थित होते।

९. किन्तु मैं एक मतभिन्नता देख रहा हूं। शंकाओं के लिए, यह लेख मैं लिख रहा हूं, उनके और दूसरे लेखों में हर प्रसंग में देह के आत्यन्तिक नाश के लिए मारा हुआ है। जैसे कि पगले कुत्ते को बन्द कर और मारने की सूचना है; मेरा दया धर्म, मेरे लिए यह अशक्य बना डालता है। मैं कुत्ते को या मनुष्य को तब नहीं देख सकता। दुःख से तडफडाते मनुष्य को मैं मारता हूं क्योंकि उसके लिए मेरे पास आशाजनक इलाज है। तबपते कुत्ते को मैं मारूंगा क्योंकि उसके लिए मेरे पास आशाजनक इलाज नहीं है। मेरा लडका पागल हो जाय और उस को मेरे लिए मेरे पास कोई आशाजनक इलाज न हो और दुःख से तडफडाते हो तो उसके देह का अन्त लाना मैं धर्म समझता हूं। देव के ऊपर आधार रखने के धर्म की मर्यादा है। उपाय चुकने के बाद हम देवाधीन होते हैं। तडफडाते बाकल लिए अनेक इलाजों में अखीरी इलाज, उसकी देह का करना भी है।

परन्तु इस चर्चा को मैं हाल में बढ़ाना नहीं चाहता। दृष्टि में, मैं जो अपनी या अहिंसा धर्मी की पामरता मानता हूं वह इस चर्चा में बाधास्प है। इसलिए मतभेद को सहने की विनती करता हूं।

इतना तो एक विवेकी मित्र के प्रश्नों के विषय में अब एक कोधी मित्र के पक्ष लीजिए:—

“हमें तो लगता है कि आप पश्चात्य देश के पवन में दिन रहे हुए हैं, उसके साहित्य का आपने अभ्यास भी किया है और उसके संस्कार आपके हृदय पर पड़े हैं, इसी से, आप उसकी दया की विनता कर, और प्राणियों का जीव लेना



गिनते हैं। बहुत शान्ति से विचार कर के अपनी भूल कबूल कर जगत के सम्मुख माफी मांगिये। जगत में महापुरुष गिने जाने वाले आदमी का यही कर्तव्य है। चाहिए तो ऐसा कि आप हजार बरसों से चाल कर, तब अपनी जो दृष्टि हो वह कहें किन्तु आपने तो इस चर्चा को बहुत जोर देकर अपना नाम नीचा किया है।”

इसी प्रकार के पत्रों में से मैंने यह हलका वाक्य उतारा है। बिना विचार के मैंने उतावली नहीं की है। जो मनुष्य अपना मत निश्चित करने में अपने बढप्पन का विचार करता है, वह सत्य का निर्णय नहीं करता, उसके सामने तो उसका बढप्पन ही खड़ा रहता है, और सत्य के दर्शन में वह विवर्तमान होता है।

पश्चिम की सभी बातें त्याज्य हैं, यह मैं नहीं मानता। पश्चिम के सुधारों की निन्दा मैंने कड़े शब्दों में की है। मेरा मन अब भी उनकी निन्दा करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पश्चिम का सभी कुछ त्याज्य है। पश्चिम के पास से मैंने बहुत कुछ सीखा है और मैं उसका ऋणी हूँ। पश्चिमी देशों के निवास और उसके साहित्य का अगर मेरे ऊपर कोई असर न पड़ा हो तो यह मैं अपना दुर्भाग्य समझूँगा। किन्तु यह मैं नहीं मानता कि कुत्तों के विषय में मेरा मत, पश्चिम की शिक्षा के प्रभाव से बना है। अगर हम कई सम्प्रदायों को वाद कर दें, तो पश्चिम यह सिखलाता है कि मनुष्य की भलाई के लिए समुचित प्राणियों को मारने में दोष नहीं है। इसलिए पश्चिम में जीते प्राणियों को चीरने काटने (vivisection) को भी उत्तेजना दी जाती है। वहाँ स्वाद के लिए भी अनेक प्राणियों के मारने में पाप नहीं गिना जाता। मेरे मन में पद पद पर मर्यादा बँधी हुई है। शाकाहार को मैं हिंसा गिनता हूँ। यह शिक्षा तो पश्चिम की नहीं गिनी जा सकती।

सिद्धान्तों या उनके अमल का विचार करते हुए, हमारे लिए नाशान दलीलों या मिथ्यारोपणों को स्थान देना संभव नहीं है। मेरे अभिप्राय की तुलना स्वतंत्र रीति से होनी चाहिए। इससे क्या मतलब कि वह पश्चिम से आया है या पूर्व से? विचार ने योग्य बात तो यह है कि उसकी जड़ सत्य पर है या असत्य पर, उसके मूल में हिंसा है या अहिंसा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य और हिंसा, उसकी जड़ हैं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## दक्षिण अफ्रीका की स्थिति

बरबन पहुँचने पर मि० ऐन्ड्रयूज ने एक पत्र भेजा है। उसके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं:

“मैं यहाँ फिर पहुँच गया यह अच्छा ही हुआ। रास्ते में मुझे तकलीफ हुई लेकिन मुझे खुशी है कि मैं चला ही आया और अधिक रुका नहीं। दक्षिण अफ्रीका के डेलीगेशन के पहुँचने के पहले यहाँ कितनी ही बातें ठीक करनी हैं और इसमें मेरा सारा समय लग जायगा।

“आज मेरा शायद सभी जगह से अधिक स्वागत हुआ और उस स्वागत की तसवीर देखने को रात का बायसकोप घर भर गया था। मैं सोराबजी के साथ उनके नये मकान पर ठहरा हूँ। ११० फीट स्ट्रीट वाला पुराना मकान गिरा दिया गया है और जमीन गोरी को बँच दी गयी है।

“दिन भर फुसत विलकुल न रहती थी और जैसी कि मुझे उम्मेद थी, समय निकालता विलकुल ही असंभव है। हिन्दुस्तानी सुदृष्टों में चैचक का बड़ा ही जबरदस्त प्रकोप हुआ था और हर एक रोगी हिन्दुस्तानी ही था। मौतें इतनी अधिक होती थीं कि

हर चार रोगी में एक रोगियों मर जाता था। बहुत ही बुरे तरह की चैचक थी। अखबारों में बड़े बुरे खत छपा करते थे जिनमें हिन्दुस्तानियों को गंदी आदतों के लिए गालियाँ दी जाती थीं। जोहान्सबर्ग में आपने जो किया था, सिर्फ एक बड़ी काम हम भी कर सकते थे। मैंने पहले अपने आप टीका ले लिया (और बिना इसके मैं कुछ कर नहीं सकता था) और अब डाक्टर का हुक्म लेकर अलग रखे हुए हिन्दुस्तानी रोगियों के पास रोज जाता हूँ और जहाँ तक हो सके उन्हें शान्त करने की कोशिश करता हूँ। इसके बाद हम लोगों ने मिल कर एक हिन्दुस्तानी स्वास्थ्य सभा कायम की और डाक्टर के हुक्म मुताबिक काम करने का निश्चय किया। डाक्टर ने काम शुरू करा भी दिया है। ज्योंही यह बात प्रकट हुई, अखबारों का स्वर ही बदल गया और जहाँ पहले हमें गाली दी जाती थी, वहाँ हमारी तारीफ होती है। खैर सब मिला कर यह अच्छा ही हो रहा है।

“यहाँ की स्थिति समझने और उसे काबू में लाने के लिए अब तक मुझे काफी समय मिल चुका है। बेशक, अगर हम इन कई हफ्तों में सर्वोत्तम लोकमत अपने पक्ष में कर सकें तो, हमारे पक्ष में कई अच्छे २ अखबार भी हो जायेंगे और अपने पक्ष में वायुमंडल पहले से ही तैयार कर के हम कान्फरेन्स को भी अच्छी सहायता पहुँचा सकेंगे। यहाँ, इन लोगों को कान्फरेन्स के समय धूमधाम करने से रोकना कठिन हो रहा है क्योंकि इनकी समझ में उसका उन पर असर पड़ता। मैं उन्हें समझाता रहा हूँ कि किसी अच्छे ठोस काम का, जैसे, गंदे मुद्दों के कुछ मैल की सफाई का उनपर, सभी भावणों और प्रदर्शनों से कहीं अधिक असर पड़ेगा।

“मगर तौभी मैं यह तो कभी नहीं चाहूँगा कि इसके ठीक उलटा वे उदासीन, निष्कर्म और आलसी बन जायें। अभी जरूरत है इस जोश और शक्ति के समुचित रास्ते में ले जाने की। मैंने हमारी सहानुभूति रखने वाले अच्छे से अच्छे यूरोपियनों से बातें की हैं। वे सभी कहते हैं कि परसाल की हड़ताल और प्रार्थना दिवसका असाधारण असर पड़ा था और किसी का वे बुरे भी न लगे। उनका मात्तम हुआ कि हिन्दुस्तानी लोग सही काम, अपने तरीके पर अच्छे तौर पर कर रहे थे।”

फील्ड स्ट्रीट के मकान का जिक्र मुझे पुरानी से पुरानी बातों की याद दिलाता है। हिन्दुस्तानियों की सबसे पुरानी मिलकियतों में से यह थी। द० अफ्रीका में सबसे पहले जा बसनेवाले हिन्दुस्तानियों में से एक सज्जन हाजी अबूबकर अहमद ने बहुत लम्बे पट्टे पर यह जमीन ली थी। स्व० पारसी रुस्तमजी के किराये में यह जमीन थी और मरने के समय तक उन्हीं के कब्जे में रही। इसे एक आदमी की खास जायदाद कहने के बदले सार्वजनिक स्थान कहना ही अच्छा होगा। हिन्दुस्तानियों की अधिकांश अनियमित सभाएँ यहीं हुईं। यहीं पर सबसे महत्वपूर्ण निश्चय किये गये थे। गोखले ने अपने दिन का समय अधिकतर यहीं पर बिताया था। ऐन्ड्रयूज ने यहीं पर काम किया। यह गरीब और धनी दोनों का ही आश्रय था। यह एक सच्ची धर्मशाला बन गया था। कबाला बीतने पर, बरबन नगर सभा ने नया पट्टा लिखना इनकार किया और जमीन के नीलाम का विज्ञापन दे दिया जिसमें हिन्दुस्तानी बोली न बोल सकते थे। बरबन काउन्सिल को यह मात्तम था कि हिन्दुस्तानियों के लिए वह पाक जगह थी, मगर इससे उसका यूरोपियनों के हाथ में जाना रुक न सका। इसी लिए ऐन्ड्रयूजने इसका जिक्र किया है और आश्चर्य का चिह्न दिया है।



उनका इस समय वहां रहना, संचयन ही ईश्वर की कृपा है। दुर्भाग्य से चेन्नई के इस प्रकोप से सहज ही यूरोपियनों और हिन्दुस्तानियों, सबसे भगदड़ मच जाती। गोरे तो शायद बड़े कष्टदायक उपाय काम में लाते हिन्दुस्तानी भय से निष्कर्म हो जाते। मि० ऐन्ड्रयूजने जल्दी करके उसे रोक लिया है जो संभवतः एक बड़ी भयंकर दुर्घटना हो जाती।

उस धार्मिक पुष्प की उपस्थिति से संभवतः पल्ला हिन्दुस्तानियों के पक्ष में झुकेगा। हां, अगर्भ कि कान्फरेन्स से कुछ अधिक की उम्मेद नहीं की जा सकती है किन्तु तौभी इस पेचीली समस्या के शान्ति और न्याययुक्त हल के लिए वे उपयुक्त वायुमंडल तैयार कर रहे हैं। सर मुहम्मद हबीबुल्ला के डेपुटेशन के कंधे पर जवाबदारी का बहुत धबा बोझा है। उनके पक्ष में सारा लोकमत है। हम इससे भले की ही उम्मेद करें।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### प्रवासी भारतवासी

“कलकत्ते में लगभग २००० प्रवासी भारतवासी आजकल फीजी, टिनीबाद, सुरीनाम और ब्रिटिश गायना से लौटकर आये हुए हैं। लेकिन यह देखकर कि उनके विरादरी वाले उन्हें शामिल करने को तैयार नहीं हैं वे अपनी २ जगहों को वापिस जाना चाहते हैं। वे कहते हैं, “हिन्दुस्तान में नहीं और चहे जहां रहेंगे” फिलहाल वे कलकत्ते में जैसे तैसे गुजारा कर रहे हैं। उनकी बड़ी छीछालेदर है। न वे “घर” के हैं न और “घाट” के यानी वे न तो उपनिवेशों की संस्कृति में प्रवेश पाते हैं और न उनमें भारतीय संस्कृति ही रह गयी है। उनमें से अधिकांश लोग उपनिवेशों में ही पैदा हुए थे। वहां उनके पैसा था, घर था, पर यहां वे हम लोगों की बोली तक नहीं जानते। यह स्पष्ट है कि सरकार को चाहिए कि वह उनको यथोचित उपनिवेश में भेज दे।” मैंने यह सलाह गत नवीं सितंबर “के यंग इंडिया” में दी थी। चौथी नवंबर के “यंग इंडिया” में मैंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदीका एक पत्र प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने लिखा है कि “भारतवासी लोग फीजी की संन् १८७९ ई० से भेजे जाने लगे हैं। वे हमारी बोली अभी भूले नहीं हैं। लेकिन वेस्टइंडीज (अमरीका के पास) की बात दूसरी है। वे, यानी शुरूशुरू में जाकर बसने वालों के नातीपोते हिन्दुस्तानी भाषायें प्रायः बिल्कुल नहीं जानते। इसलिए उनकी बोली हिन्दुस्तान में फिरसे आ बसने में जरा भी मदद नहीं देती।

“मुझे पूर्ण रूपसे निश्चय है कि फीजी से लौटे हुए लोगों को ब्रिटिश गायना भेजने से उन्हें पुनः निराशा होगी।

“मैं आपको संन् १९२० की याद दिलाता हूँ जब कि आपने ५०० मजदूरों को प्रयोग के तौर पर ब्रिटिश गायना भेजने की अनुमति देने की भूल की थी। आपने मि० पोलक इत्यादि के द्वारा चिताये जाने पर उस भूल को स्वीकार भी किया था। आप इस बार कलकत्तेवालों को ब्रिटिश गायना भिजवाने की सम्मति दे कर फिर भूल कर रहे हैं। ब्रिटिश गायना की आवोहवा खराब दलदल-मय है और फीजी की अत्युत्तम। और फिर वहां आजकल अभावभाव है, इसलिए उनका वहां जाना बेकारों की संख्या बढ़ाना है। इस लिये मैं उनके ब्रिटिश गायना भेजे जाने के कतई खिलाफ हूँ। बिना पूरी पक्की जाँच कराये योंही ऐसे प्रयोग करने का हमें क्या हक है जो कि, अगर असफल हो, तो बहुत सी जानें ले बैठे। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उन सब मामलों पर पुनर्विचार करेंगे?”

उक्त पत्र मेरे पास कुछ दिन हुए आया था। मेरे बारे में कही हुई ‘भूत स्वीकृति’ को मैं पक्के तौर पर जानना चाहता था। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक कतरन भेजी है जिसमें प्रयोग स्वरूप आदमियों को बाहर भेजने के विषय में कई वर्ष हुए मेरी किसी के साथ की हुई बातचीत दी हुई है। मेरी समझ में उसमें और इस वक्त की राय में कोई सम्बन्ध नहीं। मेरी उस वक्त की राय तो केवल उन्हीं से तअल्लुक रखती जो आज कलकत्ते में बुरी हालत में रहते हैं? जो अपने गांवों को न तो जाते हैं और न जाना ही चाहते हैं और जिनके वास्ते उस वर्तमान हालत को छोड़ कर अन्य कोई भी हालत शायद बेहतर होगी। मेरी सम्मति में, ये अगर चाहें तो ब्रिटिश गायना जा सकते हैं। ऐसा करने में उनका बहुत हर्ज भी न होगा। उनका जाना औरों के जाने के लिए श्री गणेश भी न समझना चाहिए। जो उपाय मैंने बतलाया है वह खास जरूरत का है और जो कि शुरू में चंद सौ लोगों से ही तअल्लुक रखता है। ध्यान रहे कि मेरा बतलाया हुआ यह उपाय (फीजी से लौटे हुए भारतीयों को ब्रिटिश गायना भेजना) उसी वक्त के लिए है जब कि अन्य दूसरे सब उपाय निष्फल हो जायें, कोई और चारा न रहे और सो भी भेजने के पहले उन लोगों की राय ले लेना परमावश्यक है। इसलिए मुझे खेद है कि मैं अपने दिये हुए मत पर विचार नहीं कर सकता। निस्सन्देह इस झगड़े को हमेशा के लिए मिटा देने वाली दवा तो यह है कि भारतवासियों को बाहर भेजने के मामले की पूरे तौर पर जाँच तथा उसपर विचार किया जाय।

### आदर्शों का दुरुपयोग

बालविधवाओं के पुनर्विवाह पर मेरे पास आये हुए एक पत्र में से मैं निम्न-लिखित अंश उद्धृत करता हूँ:—

“२३ वीं सितंबर के ‘यंग इंडिया’ में आगरे के ‘बी’ महोदय के पत्र के उत्तर में अपने कहा है कि बालविधवाओं के माता-पिताओं को चाहिए कि वे उनका पुनर्विवाह कर दें। यह बात उन लोगों के बारे में कैसे सम्भव है जो कि कन्यादान करते हैं यानी जो शास्त्रोक्तविधि से अपनी कन्याओं का विवाह करते हैं? निश्चय ही यह उन मातापिताओं के लिए असम्भव है जिन्होंने अपनी पुत्री पर अपने सम्पूर्ण हक संजीदगी के साथ और धार्मिक रीति से दामाद को सौंप दिये हैं, कि वे उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दें। अगर वे चाहें तो स्वयं पुनर्विवाह कर सकती हैं, लेकिन चूंकि वह अपने मातापिताओं द्वारा दामादको दान स्वरूप दी गयी थी इसलिए उनका पुनर्विवाह करने का हक संसार में किसी को भी प्राप्त नहीं है। और इसी वजह से उस बालविधवा को भी अपना पुनर्विवाह करने का कोई हक नहीं है। इसलिए अपने पतिसे उसकी मृत्यु के समय स्पष्ट आज्ञा पाये बिना अगर वह अपना पुनर्विवाह करती है तो वह अपने परलोकवासी पति के साथ विश्वास-घात करती है। और उसे धोखा देती है। अतएव तर्क की दृष्टि से ऐसी विधवा के लिये पुनर्विवाह करना अशक्य है चाहे वह बालिका हो, चाहे युवती और चाहे वृद्ध जिसका कि विवाह ‘कन्यादान’ प्रथा के अनुसार किया गया है। जो कन्यादान प्रणाली अधिकांश सनातनी हिन्दुओं के यहां प्रचलित है। और जिसने अपने पति की मृत्यु के पूर्व उसकी सम्मति प्राप्त न करली हो। लेकिन कोई सच्चा सनातनी हिन्दू पति ऐसी इजाजत देने का स्थाल तक नहीं सहन कर सकता। वह अपनी परनी से सती होने की अगर वह हो सकती है तो—भले ही रजापंदी दे दे, नहीं तो कम से कम वह तो यही परन्द करेगा कि मेरी बी



१८ नवम्बर, १९२६

अपने शेष जीवन को मेरी वितना मैं अधवा यों कहो कि ईश्वारावना में बितावे। ऐसा करने में उसकी एक मात्र इच्छा या धार्मिक भाव यही होगा कि हिन्दू समाज के विवाह और विधवा के (जो कि एक दूसरे के पूरक हैं न कि परस्पर में स्वतंत्र) उच्च आदर्शों की रक्षा हो।”

मैं इस प्रकार की दलील को उच्चादर्श का दुरुपयोग मानता हूँ। इसमें शक नहीं कि पत्रलेखक का मंशा अच्छा है, लेकिन ब्रिजों की पवित्रता के बारे में उनकी अतिशय चिन्ता ने उन्हें मौलिक न्याय का विस्मरण करा दिया है। छोटे २ बच्चों के विवाह में कन्यादान के क्या मानी हैं? क्या किसी पिता को अपने बच्चों के ऊपर अहितयारे मिलकियत प्राप्त है? वह उनका संरक्षक मात्र है, न कि स्वामी। और जब वह अपनी कन्या की स्वतंत्रता को गैर के हवाले करने की तद्वोर करता है तब वह उस संरक्षण के स्वत्व को खो देता है। और फिर उस बच्चे को कोई दान कैसे दिया जा सकता है जो कि उस दान बच्चे को कोई दान कैसे दिया जा सकता है जो कि उस दान को प्राप्त करने के सर्वथा अयोग्य है? जहां ग्रहण शक्ति का अभाव हो, वहां दान हो कैसे सकता है? निस्सन्देह कन्यादान एक रहस्यमय धार्मिक प्रथा है जो कि आध्यात्मिक महत्व रखता है। ऐसे शब्दों का विलकुल शाब्दिक अर्थ में ही प्रयोग करना आपा और धर्म का दुरुपयोग करना है। अगर उन शब्दों के अर्थ लगाने में उदारता से काम नहीं लिया जाता तो पुराणों की विचित्रता का भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है—जैसे पृथ्वी चपटी थाली के मानिंद है जिसे कि सहस्र फन वाले शेषनागजी साथे हुए हैं और नारायण क्षीर सागर में उन्हीं शेषनाग की शैया पर आनंद से शयन कर रहे हैं।

जिस मातापिता ने अपनी नन्हीं बच्चों को प्यार के कारण किसी बूढ़े को या किसी १६, १७ वर्ष के बालक को व्याह दिया है, कम से कम उस माता-पिता का कर्तव्य यह है कि वे अपनी उस बच्चे का व्याह उसके विधवा होने पर कर के, पाप से मुक्त हो जैसा कि मैं किसी पिछले अंक में अपनी टिप्पणी में कह चुका हूँ। ऐसी शादियां शुरू से ही रद्द माननी चाहिए।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी

### टिप्पणियां

क्या यह हृद दर्ज का शक है?

“मेरा शुरू से ही यह भय था कि शाही कृषि कमीशन कृषि सम्बंधी अपने बताये औजारों को बेचने के लिए अंग्रेजों की व्यापारिक प्रगति मात्र है। उस संदेह की पुष्टि इंग्लैंड की समाजों की रिपोर्ट से हो रही है।

यह उद्धरण एक ऐसे सज्जन के पत्र से है जो कि प्रत्येक शब्द सोच विचार कर लिखते हैं, जिनमें बोरज नहीं है, और जो आजकल राजनीति में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। मैंने उक्त अंग्रेज इसलिए यहां दिया है कि मेरी भी यही चिन्ता है। सम्भव है कि यह संदेह मेरे ही अविश्वास की प्रतिध्वनि हो, और सम्भव है कि उक्त कमीशनका काम हिन्दुस्तान के लोगों की कृषि-सम्बंधी हालत का बखूबी परताल करना हो। अगर मेरा यह संदेह और भय विलकुल निराधार साबित हों तो मुझे खुशी होगी। लेकिन जबतक वह मौजूद है और जबतक उसे दूसरे लोग भी उसे मानते हैं तब तक उसे मन में न रख कर जाहिर कर देना ही अच्छा है।

अभी कल की ही बात है कि मैंने ‘यंग इंडिया’ में पूना प्रदर्शनी देख आये हुए एक सज्जन के पत्र में से कुछ अंश

प्रकाशित किया था। वे उस प्रदर्शनी के बारे में अच्छे ख्यालात मन में रख कर वहां गये थे। लेकिन वे यह कहे बिना न रह सके कि उस प्रदर्शनी में मुख्य आकर्षक बात उन प्रत्येक प्रकार के कृषि-सम्बंधी औजारों का होना थी जिन्हें कि हमारे किसान कभी काम में न लावेंगे। हाँ, उन्होंने तो यहां तक कहा कि प्रदर्शनी में रखी गई कुछ कलें तो बिल्कुल कूड़ा थीं।—वे जानते थे कि उन मशीनों का प्रयोग काफी बड़े पैमाने पर चीजें बनाने के लिए होता है। उनका ख्याल हुआ कि बहुत सी चीजें बिना जांच और इन्तिहान के ही प्रदर्शनी में रख ली गयी थीं। किसी प्रदर्शनी में, अगर उसे शिक्षाप्रद एवं लाभदायक होना है, तो बिना देखो परखी चीजें न रखी जानी चाहिए। भोले भाले लोग वहां जाने पर उन मशीनों की बड़ी बड़ी तारीफें कर मोटे २ अक्षरों में आकर्षक शीर्षकों को देखकर उन्हें स्वभावतः खरीद लेंगे और उन्हें बेकार पाने पर पछतायेंगे।

बुद्धिमत्ता और न्याय की बात तो यह होगी कि लोग अपना निर्णय कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के पूर्व न प्रकट करें और सब तरफ की बातें सुनने और समझने को तैयार रहे।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी

### जातक में तकली

वौद्ध जातक, सं ५४६ (महा उम्मग जातक) में एक कथा है जिससे पता चलता है कि जब वह कथा लिखी गयी, उस समय इस देश में ऐसी कपास होती थी जो बिना धुने हुए ऐसी ही काती जा सकती थी और यह भी स्पष्ट है कि वह तकली पर ही काती गयी थी क्योंकि उसमें वर्णित स्त्री का ऐसा वर्णन दिया गया है कि वह कातते कातते खेत की भी रखवाली करती थी।

उस कथा का अनुवाद यहां दिया जाता है:

“एक स्त्री कपास के खेत की रखवाली किया करती थी। एक दिन खेत देखते देखते उसने थोड़ी सी साफ कपास ली और उसका थोड़ा अच्छा सूत कात कर उसका एक गोला बनाया और अपनी गोद में डाल दिया। घर जाते समय उसके मन में ऐसा विचार आया कि, “चलो महामुनि के तालाब में स्नान करती चलूँ।” इस लिए सूत का गोला अपने कपड़े पर रख कर वह पानी में नहाने लगी। एक दूसरी स्त्री ने उस गोले को देखा। उसे ले लेने की इच्छा उसके मन में हुई। उसने गोले को हाथ में उठा लिया और पूछा कि—“क्या ही अच्छा गोला है। क्या तुम्हींने इसे बनाया था?” ऐसा कहते हुए उसने उंगली चटकायी और मानों और ध्यान से देखने के लिए, गोले को हाथ में ले लिया और चलती बनी। मुनि के पास यह झगडा पहुँचा। (यह सब कथा यहां फिर उसी प्रकार विस्तारसे कहनी पड़ेगी।) मुनि ने उस औरत से पूछा—“जब तुमने गोला बनाया था तो उसके भीतर तुमने क्या रखा था?” उसने कहा—“कपास का एक बीज।” दूसरी से पूछने पर उसने कहा—“तेमरु का एक बीया।” जब सब किसीने यह बात सुन ली तो मुनिवर ने गोले को उधारा और उसके भीतर से तेमरु का बीज निकला। चोर से उन्होंने उसका दोष कबूलवाया उपस्थित जन समूह ने जय-ध्वनि की।”

### आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्द्धर मिलते हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आर्द्धर मेजनेवाले सज्जन अभी से शिकायतें भजना शुरू न करें। छठी आवृत्ति तैयार हो रही है।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २७

बंबई में सभा

बहनों के देहान्त के दूसरे ही दिन बंबई की सभा के लिए मुझे बर्हा जाना था। सार्वजनिक सभा में भाषण करने के लिए जितना विचार करना चाहिए वसा समय मुझे नहीं मिला था। जागरण से भी मुझे थकावट लगी हुई थी। मेरा गला भी बैठ गया था। ऐसा विचार करता हुआ कि जैसे जैसे भगवान् बेड़ा पार लगवेंगे ही, मैं बंबई गया। भाषण-लिख लेने का विचार तो मुझे स्वप्न में भी नहीं आया था।

हुकूम बभूजिब, मैं सभा से एक दिन पहले, शाम को ५ बजे सर फोरोजशाह के दफ्तर में हाजिर हुआ।

उन्होंने पूछा—‘गांधी, तुम्हारा भाषण तैयार है क्या?’

मैंने डरते डरते जवाब दिया—‘नहीं साहब, मैंने तो जशानी ही बोलने का विचार रखा है।’

‘बंबई में यह नही चल सकता। यहाँ की रिपोर्टिंग खराब है। अगर इस सभा से हम कुछ लाभ उठाना चाहते हैं तो तुम्हारा भाषण लिखा हुआ होना चाहिए और वह रातों रात छपा लेना चाहिए। रातों रात ही तुम भाषण लिख सकोगे न?’

मैं धराराया। किन्तु लिखने की कोशिश करना स्वीकार किया।

‘तब तुम्हारे पास भाषण लेने के लिए मुंशी कब जावे?’ बंबई का सिंह बोला।

‘आज रात, ग्यारह बजे’ मैंने जवाब दिया। सर फोरोजशाह ने मुंशी की उसी समय, मुझ से भाषण ले कर छपा लेने का हुकूम दिया। दूसरे दिन सभा में मैं गया। भाषण लिखने को कहने में कितनी बुद्धिमानी भरी हुई थी, यह भी मैं देख सका। फामजी काबसजी इन्स्टीट्यूट में सभा थी। मैंने सुना था कि सर फोरोजशाह जिस सभा में बोलने वाले हों, उसमें तिल रखने की भी जगह नहीं मिलती। इसमें मुख्य कर विद्यार्थीवर्ग भाग लेते थे।

ऐसी सभा का यह मेरा पहला ही अनुभव था। मैं जानता था कि मेरा स्वर कोई सुन नहीं सकता। धरधराते हुए मैंने भाषण पढ़ना शुरू किया। सर फोरोजशाह मुझे उत्तेजन देते जाते थे। यों कहते जाते थे कि ‘जरा और जोर से।’ मुझे तो लगता था कि इससे मेरी आवाज और भी धीमी पड़ती जाती थी।

मेरे पुराने मित्र केशवराव देशपांडे मेरी रक्षा को दौड़े। उनके हाथ में मैंने भाषण दे दिया। उनकी आवाज तो ठीक थी किन्तु दर्शकगण सुनें तब तो? ‘वाच्चा’, ‘वाच्चा’ के शोर से सभा-भवन गूँज रहा था। ‘वाच्चा’ उठे। देशपांडे के पास से उन्होंने भाषण ले लिया और मेरा काम समाप्त हो गया। सभा तुरंत ही शान्त हो गयी और अथ से इति तक सब ने भाषण सुना। जहाँ चाहिए, वहाँ रिवाज के अनुसार ‘शेम’ ‘शेम’ (शर्म शर्म) की पुकार और तालियाँ भी होती ही थीं। मैं सन्तुष्ट हुआ।

सर फोरोजशाह को भाषण पसन्द आया। मुझे तो गंगा नहाने जैसा खतोष हुआ।

इस सभा के परिणाम से देशपांडे और वैसे ही एक पारसी मित्र पसीजे। आज तो वे पारसी मित्र एक बड़े ओहदे पर हैं, इस लिए उनका नाम प्रकट करते डरता हूँ। उनके इरादे को जब खुरशेद जी ने पलटाय़ा और उसे पलटवाने का कारण एक दूसरी पारसी बहिन थी। अब वे विवाह करें या दक्षिण अफ्रीका जावें? विवाह करना ही उन्हें अधिक उचित जान पड़ा। किन्तु

इन मित्र के बदले पारसी हस्तमजीने प्रायश्चित्त किया और पारसी बहिन के बदले दूसरी पारसी बहिन स्वयंसेविका का काम कर, खादी के पीछे बैराग्य लेकर प्रायश्चित्त कर रही हैं? इस लिए इस दम्पति को मैंने माफी दी है। देशपांडे को विवाह करने का लोभ नहीं था किन्तु वे न जा सके। उसका प्रायश्चित्त वे स्वयं अभी भी कर रहे हैं। घूमते फिरते एक बार जंजीवार गया था। वहाँ किसी तैयबजीने भी आने की आशा दी किन्तु दक्षिण अफ्रीका में आता कौन था? उसके न आने के गुनाह के बदले अन्वस तैयब जो घूम रहे हैं। पर दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए बारिस्टरों को भी मेरा ललचाना बेकार गया।

यही मुझे पेस्तनजी पादशाह याद आते हैं। उनके साथ विलायत से ही मेरा प्रेम-संबंध था। पेस्तनजी से लंदन के किसी शकाहारी होटल में मेरा परिचय हुआ था। उनके भाई वरजोरजी की यह तारीफ कि वे अजब दीवाने से हैं सुनी थी मगर कभी मिला न था। किन्तु मित्र-मंडली कहती थी कि पूरा सनकी है। घोड़े पर तर्स खाकर ट्राम पर नहीं चढ़ता। स्मरणशक्ति तो किसी शतावधानी के समान थी, किन्तु कोई डिग्री नहीं लेता था। मिजाज का ऐसा स्वतंत्र कि किसी के तावे न रहे। पारसी होकर भी अन्नाहारी था। पेस्तनजी वैसे न गिने जाते थे किन्तु उनकी होशियारी मशहूर थी। उनकी यह प्रसिद्धि विलायत में भी थी। किन्तु हमारे बीच इस संबंध का भूल तो उनका अन्नाहार था। उनकी विद्वत्ता को पाना मेरी शक्ति के बाहर था।

बंबई में पेस्तनजी ने दफ्तर खोल रक्खा था। वे प्रोथोनेटरी थे। जिस समय मैं उनसे मिला, वे वृद्ध गुजराती शब्दकोष के काम में लगे हुए थे। द० अफ्रीका के काम में मदद ढाँगने में मैं ने एक मित्र को भी छोड़ा न था। पेस्तनजी पादशाह ने तो लेकिन मुझे भी द० अफ्रीका न जाने की सलाह दी! ‘मुझ से तुम्हारी मदद तो क्या हो सकेगी, मगर तुम्हारा द० अफ्रीका लौट जाना मुझे पसन्द नहीं पड़ता है। अपने देश में ही क्या कुछ कम काम है? देखो न, अपनी भाषा की ही क्या कुछ कम सेवा करनी है? मुझे विज्ञान विषय के शब्दों के अर्थ निकालने हैं। यह तो केवल एक ही क्षेत्र हुआ देश की गरीबी का विचार करो। द० अफ्रीका में हमारे आदमियों की कष्ट हैं, किन्तु उसमें तुम्हारे जैसे पुरुष की शक्ति का खर्च किया जाना मैं नहीं सहन कर सकता। हम यहाँ अगर अपने हाथ में राज्य सत्ता ले लेवें तो वहाँ की मदद तो अपने भाई ही होती रहेगी। तुम्हें तो मैं नहीं समझा सकता किन्तु तुम्हारे साथ, तुम्हारे ही जैसे दूसरे सेवकों को मेजने में तो मैं मदद कर ही नहीं सकता।’ वह बात मुझे न भायी किन्तु पेस्तनजी पादशाह के लिए मेरे मन में मान बढ गया। उनका देशप्रेम और भाषाप्रेम देख कर मैं मुग्ध हो गया। हमारे मध्य की प्रेम की गाँठ, इस प्रसंग से और भी अधिक मजबूत हो गयी। उनका दृष्टि-विन्दु मैं पूरा पूरा समझ सका। किन्तु द० अफ्रीका का काम छोड़ने के बदले, मुझे उनकी दृष्टि से भी ऐसा लगा उसमें मुझे लगे रहना ही चाहिए। देशप्रेमी से जहाँ तक सके, एक भी अंग को यों ही न छोड़ देना चाहिए और मेरे लिए तो गीता का श्लोक तैयार ही था:

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

दूसरे के विशिष्ट धर्म की अपेक्षा अपना गुणरहित धर्म अच्छा है। स्वधर्म में मरना भी अच्छा, परधर्म मय उपजानेवाला है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



अहिंसा (६)

वार्षिक पृष्ठ ४)  
 छः मास का " १)  
 एक प्रति का " १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १५

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, कार्तिक वदि ६, संवत् १९८३

गुरुवार, ५ नवम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## प्रार्थना का एक दिन

सी. एक. एन्ड्रयूज ने मेरे पास निम्न लिखित तार भेजा है :  
 "कार्य समिति ने आगामी १९ दिसम्बर को कानफरेन्स शुरू होने के दिन प्रार्थना दिवस मुक़रर किया है। इसमें पादरी लोग सहयोग करते हैं। अच्छे से अच्छे गोरों से सलाह करने पर मालूम होता है कि शायद लोग इसे खूब पसन्द करेंगे। सरोजिनी देवी को खबर दे देना।"

वे बहुत ही अधिक धार्मिक पुरुष हैं, और इसलिए प्रार्थना में उन्हें धन्दा है। प्रार्थना ही उनकी राजनीति का नियमन करती है, उधमें रंग भरती है और उसे ऊँचे बढ़ाती है। उनके लिए प्रार्थना खोखी दलील नहीं है। उनके लिए प्रार्थना का अर्थ है, परमेश्वर के साथ संबंध स्थापित करना और अपने हर एक बड़े और छोटे काम में उनकी सहायता माँगना। परमात्मा के नाम पर किया गया कोई काम छोटा नहीं गिना जा सकता। ऐसे समर्पित हो जाने पर सभी बड़े और छोटे काम, एक समान बन जाते हैं। भगवान् की सेवा में जो भंगी झाड़ू लगाता है वह, और अपने को, केवल रक्षक भर मान कर जो राजा भगवान् के दिये दानों को बाँटता है, एक समान पुण्य करते हैं। हम अपूर्ण जीवों के समान नहीं, वहाँ तो उसके दरबार में काम के बदले उसका उद्देश्य ही उसके महत्व का निश्चय कराता है। हम लोग काम से उद्देश्य का भन्दाभा लगाते हैं। परमात्मा काम और उसके उद्देश्य दोनों को जानता है और उद्देश्य की कसौटी पर काम को जाँचता है।

यूँके एन्ड्रयूज के उद्देश्य पवित्र से पवित्र हैं, इसलिए उनका विश्वास है कि उन्हें ईश्वर अवश्य सफलता देंगे। उन्हें ऐसा विश्वास रखने के सभी कारण प्राप्त हैं। जहाँ अब तक दूसरे कितने ही अज्ञात सेवाओं का पता किसी को नहीं है। जिन सेवाओं को जनता देखने पाती है, वे ही कुछ सब से बड़ी या कमतर नहीं हैं; जैसे आज किसको इसका पता है कि लार्ड राबिन्स के कितने लाभदायक हुक्मों को निकलवाने में एन्ड्रयूज का हाथ था। सच ही, उनके दाहिने हाथ का काम कहीं बाँधे हाथ को भी मालूम नहीं होता।

इस भले आदमी ने दक्षिण अफ्रीका के मुआमिले में तन मन लगा दिया है। उन्हें इस काम में पहले पहल स्व० गोखले ने लगाया था। वे इसके विषय में गूढ़ विचार करते हैं और हृदय से प्रार्थना करते हैं। इस तार के लिए जिसे मैं प्रकाशित कर रहा हूँ, उन्होंने मुझे पहले से ही पत्र लिख कर तैयार करा रखा था। उनके संसर्गसे हिन्दुस्तानियों में भी प्रार्थना में विश्वास का भाव छूत के रोग के समान फैल गया है। मैं उन सभी लोगों को जानता हूँ और मुझे यह बतलाना ही होगा कि उनमें बहुतों ने उनकी सलाह को एक रस्म के तौर पर, या उनको खुश करने के लिए या उससे राजनीतिक लाभ उठाने के लिए माना है। मगर मैं यह भी जानता हूँ कि उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने सबेरे दिक से उनकी बात स्वीकार की है। इन थोड़े लोगों की सच्ची श्रद्धा से ही बहुत लोगों की अश्रद्धा या उदासीनता का जवाब हो जायगा।

अपनी दृष्टि—विन्दु के अनुसार, दक्षिण अफ्रीका के डच लोग धार्मिक हैं। दक्षिण अफ्रीका में, अकाल के दिनों में या जब सारी फसल खा जानेवाली टिड्डियाँ पहुँचती हैं उन दिनों में प्रार्थना और ईश विनय के लिए सरकार की ओर से दिन निश्चित किये जाते हैं। अब इसपर कुछ आश्चर्य न होगा कि एन्ड्रयूज को एक ऐसे काम के लिए जिसका स्थान उनका दिमाग नहीं बल्कि दिल है वहाँ के अच्छे से अच्छे गोरों की सहायता माँगती होती है। मगर वे थोड़े में सन्तोष करनेवाले नहीं हैं। वे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की सार्वजनिक संस्थाओं की सहायता माँगते हैं। वे हमसे प्रस्ताव करने को नहीं कहते, पैसों के लिए हाथ नहीं पसारते, वे हमारे दिल पिघलाना चाहते हैं। अगर हम इसपर राजी हों तो वे चाहते हैं कि हम भगवान् का मरोखा करें, भगवान् से सहायता माँगें।

एन्ड्रयूज हिन्दुस्तानी बन गये हैं क्योंकि वे अंगरेज हैं। वे हम पर शासन करना चाहते हैं किन्तु ताकत से नहीं, प्रेम से। और प्रेम हमेशा अपने प्रिय के साथ एकात्म्य करता है। उनका विश्वास है कि दक्षिण अफ्रीका में युरोपियनों की दयालुता की प्रतिष्ठा बतारे में है। दक्षिण अफ्रीका में लोगों ने इतने कष्ट सहे हैं कि उनका



विश्वास है कि एशिया-वासियों और सभी रंगीन लोगों के और गोरों के बीच के संबंध का भविष्य बहुत कुछ, इसी कानफ्रेन्स पर निर्भर है, और इसे कराने का श्रेय अधिकांश में उन्हीं को है। इन समाजों के लिए वे भगवान का आशीर्वाद चाहते हैं और उसे मँगने में हमारा भी सहयोग। अब फिर कोई यह न पूछे कि प्रार्थना क्या है और ईश्वर क्या हैं और कहाँ हैं? प्रार्थना और ईश्वर में विश्वास, ये केवल श्रद्धा की ही बातें हैं। अब जिन लोगों में वह श्रद्धा हो, वे इस अंग्रेज भारतीय की प्रार्थना पर कान देवें।

हम जब अपनी असमर्थता को खूब समझ लेते हैं और सब कुछ छोड़ कर ईश्वर पर भरोसा करते हैं तो, उसी भवना का फल प्रार्थना है। अपनी असमर्थता को हम जरूर जानते हैं। अपनी रवानगी के समय, राइट आनरेबल मि० श्री निवास शास्त्री ने उस आन्दोलन के विषय में कहा है जिसका वे समर्थन करने जा रहे हैं कि "यह सुभाषिता असाध्य सा है"। इसलिए अगर हमें ईश्वर में विश्वास हो तो हम १९ दिसम्बर को प्रार्थना करें। अगर चाहें तो सभी हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, पारसी, यहूदी और दूसरे लोग इस प्रार्थना में शरीक हो सकते हैं। उसको चाहे हम हजारों नामों से पुकारें किन्तु वह परमात्मा एक ही है और हम सब के लिए एक ही समान है।

( अं० ६० )

मोहनदास करमचंद गांधी

### अनोखे विचार

"(१) ठीक उसी प्रकार से, जैसे हम लोगों के ऐसे लोग, आपके निकट जाने और छूने में डरते हैं क्योंकि आप साधारण आश्रमियों से ऊंचे पर हैं, अपवित्रता से रहने और खाने-पाने अछूत भी साधारणतः ऊंची जातिवालों को, जिनसे यह उमेद की जाती है कि अछूतों की अपेक्षा वे अधिक शुद्ध जीवन बिताते होंगे, उनके स्वयं आगे बढ़ने पर भी छूना या उनके निकट जाना पसन्द नहीं करते। अब इस स्थिति में आप क्या यह नहीं सोचते कि, आपके अछूतपने के विरुद्ध प्रचार करने से, अछूतों की कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि होने के बदले, जो एक जन्म हो नहीं सकती, ऊंची जातिवाले दूसरे लोगों की और भी अवनति होगी क्योंकि उन लोगों में आपके जैसा ऊंचा चरित्र, अच्छे सिद्धान्त और पक्का धर्मज्ञान नहीं है?"

"(२) लोगों को अवैतनिक राष्ट्रीय सेवा करने को कहने के पहले, क्या यह उचित नहीं है कि उन्हें, पौष्टिक और सात्विक आहार, पर ही, जिसमें दो आने रोन से अधिक न लगे, सन्तोष करने की तालीम दी जाय, क्योंकि जब वे दरअसल कार्यक्षेत्र में पहुँच जायेंगे तब उन्हें इससे कई प्रकार की सहायता मिलेगी, मसलन उनमें से अधिमान और तामसिक भोजन पर निर्भर दूसरे दुर्गुण दूर हो जायेंगे और इससे एक लाभ यह भी होगा कि जैसे पुराने जमानेमें होता था, वैसे ही अब भी, भिन्न २ जातियों और सम्प्रदायों को एक दूसरे की सहायता करने की शिक्षा मिलेगी क्योंकि आजकल के ये जाति-भेद बहुत करके भोजन और ताकत पर ही निर्भर हैं?"

"(३) रजोपरान्त (स्याने होने के बाद) विवाह की रिवाज शुरू करने के पहले, क्या यह सिखलाना उचित न होगा कि सात्विक भोजन और योगाभ्यास पर जोर दिया जाय क्योंकि हमारे अधिकांश देशवासियों का भोजन, और रहन सहन ऐसा होता है जो समय से बहुत पहले ही, उनमें कामेच्छा जागृत कर देता है और जिन समाजों में रजोपरान्त विवाह प्रचलित है, उनमें स्त्रियों को इस कारण अनुचित काम करने की इच्छा उत्पन्न होती है?"

"(४) आपका क्या यह विश्वास नहीं है कि पुराने जमाने के हमारे ऋषिगण योग और अहिंसा के अभ्यास से सहज ही बहुत बड़े २ काम कर लेते थे और आप भी क्या अधिक प्रभावोत्पादक काम नहीं कर सकते अगर आप ठीक २ उन्नीस बत्ताये हुए रास्ते पर चलें क्योंकि ऐसा माछम होता है कि हमारे अधिकांश जीवित देशवासियों की अपेक्षा आप ही उनका अनुकरण करने को अधिक तैयार रहे हैं?"

"(५) आप क्या अपने कुछ सहकर्मियों को गांवों में लौट जाने, और सिर्फ वहीं की उपज पर बसर करने को राजी न कर सकते क्योंकि इससे गांववाले भी उपदेश से अच्छा उदाहरण पा कर अपनी सड़ी हुई स्थिति सुधार सकेंगे?"

किसी बोर्ड हाईस्कूल के शिक्षकों का यह संयुक्त लेख है इस लिए यह लेख, बहुतों के विचार का नमूना है और फेंक देने लायक नहीं है। मगर केवल इसी खूबी के कारण इसे मैं नहीं छापता। अस्पृश्यता और दूसरे सामाजिक और धार्मिक सुधारों के विरुद्ध प्रगति पढ़े लिखों के भी कितने भेदे और अनोखे विचार, जादिर हो रहे हैं। भेदे अन्धविश्वासों का शिक्षकों ने जो समर्थन किया है, उन्हीं माछम होता है कि विश्वास होने से ही किस प्रकार दलीलों का जाया करती हैं और इसलिए किसी बड़े हलचल में दलीलों का कैसा छोटा स्थान होता है। यहां तो सिर्फ सुधार के उदाहरण का ही असर पड़ता है। और जब वह उदाहरण गलत फर्मी, निन्दा और दण्ड के सामने भी यहां तक कि मृत्यु के सामने भी टिका रह जाता है तब उस सुधार का प्रचार होता है। अस्पृश्यता और दूसरी चीजों के साथ भी यही होगी। लेकिन इन शिक्षकों की दलीलों का भी हम कुछ तक विचार करें।

पहली बात में तो उन्होंने बहुत ही वैमोके उपमा डूँडो मुझे इसका पता नहीं कि लोग मुझे छूते या मेरे पास आते हैं। इसके उल्टे जब कभी मैं द्वारे पर निकलता हूँ, तो मेरी की सीढ़ की मेरी बहुत अधिक खातिरदारी और मुझे छूने की जिद से मैं घबरा जाता हूँ। मुझे वे स्नान करते समय भी छूने न छोड़ेंगे। दूसरे अगर हमारे अछूत देशवासी, ऊंची जातिवालों को छूने से डरते हैं तो इसका कारण उनको कुछ अधिक छूने नहीं है बल्कि यह है कि उन्हें उन लोगों को न छूने की शिक्षा दी गयी है और उन्हें माछम है कि छूने की कोशिश से गाली खानी पड़ेगी या उससे भी बुरा सख्क संभव है।

तीसरे, चरित्र के संबंध में अछूतों की निम्नता, अछूतों की मान ली गयी है। अगर सारे समाज को लेकर देखा जाय सच्चाई, शुद्धता, और दूसरे सार्वजनिक या खानगी गुणों में, दूसरों के ऐसा पूरा २ दिखलाने का उन्हें सुयोग मिला है किसी से पीछे न होंगे।

ऐसी बहस करके कि इन सामगरी ऊंची जातिवालों बराबर पहुँचने के लिए इन लोगों को कई जन्म लेने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का दुषयोग किया जाता है। गीता सिखलाती है कि इसी जन्म में किसी विद्वान् पंडित के समान एक अछूत को भी सुक्ति के बराबर ही साधन प्राप्त हैं। ऊंची जातिवाले अगर सचमुच में ही ऊंचे हैं तो उन्हें अछूतों से डरने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि ऐसा होने से ऊंची जातिवालों का तो कुछ बिगड़ेगा नहीं और अछूतों को उनके से बड़ा लाभ पहुँचेगा, और विशेष कर उस हाकत में अछूतों से सेवा का भाव लेकर मिले, न कि साथ साथ में गुण और दुर्गुण का दोनों में परस्पर आदान प्रदान



बलता है। किसी शराबखाने में भी जाने से मैं अपवित्र नहीं हो जाता हूँ अगर मैं सुधारक बनकर इस नीयत से जाता हूँ कि शराबी की बुरी आदत उससे छुड़ाऊँ, मगर अगर मैं एक दोस्त का सिर्फ साथ देने के लिए, और वहाँ के प्रलोभनों से बचने के लिए पहले से बिना कुछ सोचे विचारे जाऊँ तो जरूर ही अपवित्र हो जाऊँगा।

शिक्षकों की चारित्र्य पर, आहार के प्रभाव की दलील भी ऐसी ही अनोखी है। चूँकि मैं खुद भोजन सुधारक हूँ, इस लिए बहुत मित्र, भोजन के सुधार और उसे जहाँ तक सादा हो सके बनाने के उत्साह में मुझे आधा पगल सा समझते हैं। मगर मैं जानता हूँ कि ये शिक्षक भोजन पर और चारित्र्य के ऊपर उसके प्रभाव पर बेहिजाब जोर दे रहे हैं। और अगर तब तक सब सार्वजनिक काम बन्द रखे जायँ जब तक ऐसे कार्यकर्ता नहीं मिलते जो सभी प्रकार का बीठा खट्टा न खायँ और एक अपरिवर्तनीय नियम के अनुसार चलें तो कोई सार्वजनिक काम ही नहीं होगा। कार्यकर्ताओं को सादे, कम दाम के, और अनुतेजक आहार के लाभ ही बतलाये जा सकते हैं। मगर जब तक यह सुधार हो नहीं लेता तब तक के लिए सब सार्वजनिक काम बन्द रखने का साहस किसे हो सकता है? उस बुरी आदत से, जिसके कारण हम धर्म और चारित्र्य की जाँच आहार पर करते हैं, सच्चे धार्मिक भाव के उद्देश्य में बड़ी बाधा पहुँचती है। ये लोग उस्ताद लोग उस विवाह सुधार को, जिसे बहुत दिन पहले ही शुरू हो जाना चाहिए था, तब तक बन्द रखेंगे जब तक लोग उनके मन मुआफिक सार्विक आहार शुरू न करें। इस शब्द 'सार्विक आहार' का चाहे जो कुछ अर्थ होवे, मगर इसमें कुछ शक नहीं कि आत्मसंयम और आहार में बड़ा महत्वपूर्ण संबंध है। इसके साथ इस बात के भी अनेकों उदाहरण मिलते हैं जब साधारण भोजन करने वालों ने भी आत्मसंयम की आदत रखी है। जो लोग आत्मसंयम के अभ्यासी हैं वे स्वयं, अपने लिए, आहार-संयम की सीमा निश्चित कर लेवें। इसलिए और दूसरे सुधारों के लिए आहार सुधार को परमावश्यक शर्त बनाना गलत होगा।

बालविवाह की कठोर चाल को हटाने के सम्बन्ध में ये शिक्षक याद रखें कि ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें सादा से सादा आहार करने पर भी अपनी वासनाओं का दमन करना बहुत कठिन होता है। सब करने और कहने के बाद भी तो मन मन ही है। स्वर्ग को भी नरक और नरक को भी वह स्वर्ग बना सकता है। इसके अलावा, ब्रिजों की शुद्धता के विषय में इस अपवित्र चिन्ता की जरूरत ही क्या है? पुरुषों की सुचरित्रता के लिए ब्रिजों की चिन्ता की बात तो कभी सुनी नहीं गयी। तब पुरुष ही क्यों ब्रिजों की पवित्रता का ठेका लेने का दुसाहस करें? बाहर से तो पवित्रता लादी नहीं जा सकती। यह तो आन्तरिक विकास की बात है। और इसलिए हर आदमी की अपनी व्यक्तिगत चेष्टा पर निर्भर है।

योग और अहिंसा के अभ्यास के सम्बन्ध में, इन शिक्षकों के दिरे हुए, इन गुणों के अभ्यासियों के दावे का मैं समर्थन नहीं कर सकता। उनमें जो सब से बड़े हुए हैं, वे लोग भी, प्रकृति के से बड़े ही जकड़े हुए हैं जैसे हम सब लोग। स्वयं परमात्मा ने भी अपने ही नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार आप बचा नहीं रखा है और किसी ऐसे परिवर्तन की जरूरत भी नहीं है। वह सर्व शक्तिमान है, सर्वज्ञ है। वह एक साथ ही, बिना किसी मिहनत

के भूत भविष्य और वर्तमान काल को जानता है। इसलिए उसे न कुछ फिर से विचार करना है, न दुश्मना है, न बदलना है, न सुधारना है।

अहिंसक योगाभ्यासी लोगों को बेशक कुछ शक्तियाँ आ जाती हैं। मगर वे सब प्राकृतिक नियमों के भीतर ही। मैं कोई योगाभ्यास नहीं करता क्योंकि पहले तो मुझे उसके बिना भी आन्तरिक शान्ति प्राप्त है (हाँ, शायद मेरा अपनी वर्तमान स्थिति पर ही सन्तोष करना गलत होवे) और दूसरे मुझे वैसा कोई आदमी नहीं मिला जिस पर मैं पूरा २ विश्वास कर सकूँ और वह मुझे समुचित योगाभ्यास सिखला सके।

गाँवों के सम्बन्ध में—मेरे कई सहकारी गाँवों में अभी काम कर रहे हैं। मगर मैं कबूल करता हूँ कि यह मुश्किल काम है। मैं मानता हूँ कि सिर्फ इस लिए कि उनकी ऐसी इच्छा है, सब किसी के लिए गाँवों में जा बसना संभव नहीं है।

(यं० इ००)

मोहनदास करमचंद गांधी

### विधवाएं और विधुर

एक भाई लिखते हैं:

“गत १४ अक्टूबर के ‘हिन्दी नवजीवन’ में प्रकाशित ‘प्रश्नोत्तर शीर्षक लेख’ मैंने ध्यान से पढ़ा है। पत्र-लेखक को उत्तर देते समय आपने लिखा है, “हिन्दू धर्म में अगर यह सुधार हो कि किसी विधवा या विधुर को, जिसने स्थाने होने पर अपनी खुशी से विवाह किया था, पुनर्विवाह करने से पाप लगेगा तो मैं इसका कभी भी समर्थन नहीं करूँगा।”

“मेरी समझ में हिन्दू धर्मशास्त्र में कोई ऐसा परिवर्तन करने का फल बहुत ही बुरा होगा और सारे समाज की नीति पर इसका प्रभाव पड़ेगा। जैसे मान लीजिए कि किसी मर्द या औरत ने स्थाने होने पर विवाह किया। दुर्भाग्य से कुछ दिन विवाहित जीवन बिताने के बाद उसकी स्त्री या पति की मृत्यु हो गयी। अब आप क्या उन्हें केवल इसी लिए पुनर्विवाह न करने देगे कि उनका विवाह, जवानी में हो चुका है, अर्थात् कि उनके मन में विवाह-सुख के भोगने की जबर्दस्त इच्छा बाकी ही क्यों न हो। अगर हिन्दू धर्मशास्त्र में ऐसा कोई सुधार हो जाय तो वह मर्द या औरत अपनी अपूर्त इच्छा की पूर्ति के लिए कोई अनैति युक्त रास्ता ढूँढ निकालेंगे और समाज में अनैति फैल जायगी।”

प्रश्नकर्ता को मेरा जवाब, पुरुष के इस अधिकार का विरोध था कि वही नियम कानून बना सकता है। अपनी स्वाधीनता में वह कतर व्यर्थ होने नहीं देगा। इसलिए, मेरे जवाब में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि जो बात पुरुष के लिए लाभदायक समझी जाती है, स्त्री के लिए भी वह वैसी ही होनी चाहिए और इस कारण, किसी विधुर पुरुष को पुनर्विवाह करने का जो अधिकार है, विधवा स्त्री को भी वही मिलना चाहिए। इसके अलावा अंग्रेजी सरकार के नियमों के ऐसे हिन्दू धर्मशास्त्र के नियम भी, कुछ न बदलनेवाले तो हैं नहीं। पाऊँ देखेंगे कि मैंने जानबूझ कर ‘कसूर के बदले पाप’ शब्द का व्यवहार किया है। ‘कसूर’ के लिए आदमी के चलाये, राज्यशासन से सजा मिलती है किन्तु पाप का फल या तो भगवान् या अपनी अन्तरात्मा ही देती है। मेरा यह सब विचार है कि अगर हिन्दू समाज इतने ऊँचे चढ़ जाय जो कि मेरा उद्देश्य है तो इससे हिन्दू समाज को और मनुष्यजाति को बहुत लाभ पहुँचेगा।

(यं० इ००)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, कार्तिक वदि ६, संवत् १९८३

## अहिंसा

(६)

एक भाई के पत्र का अवतरण संक्षेप में देने के लिए, उसे अपनी भाषा में देता हूँ और उनके प्रश्न का जवाब नीचे देता हूँ।

“जीवमात्र तब २ कर मरते हैं। नरक में पड़ा हुआ भी जीने की इच्छा करता है। कुत्ते को भी मरना पसन्द नहीं पड़ता। इसलिए जो आदमी उसे मारता है, उसे दुर्गति देने में सहायक होता है।”

एक मनुष्य दूसरे को मार कर, उसे दुर्गति कैसे दे सकता है, यह बात मेरी समझ के बाहर है। मनुष्य अपने ही बंधन और मोक्ष का कारण होता है, दूसरे के नहीं। अहिंसा धर्म का पालन अपने ही मोक्ष के लिए होता है।

“जो मनुष्य अपने सुख के लिए हिंसा करता है वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।”

यह निर्विवाद है। कुत्तों का बध मैंने जहाँ बतलाया है, वहाँ, कुत्तों का भ्रम प्रचलित है। उसमें मनुष्य का सुख समाया हुआ है, किन्तु वह गौण है। जो केवल अपने सुख के लिए ही बध करता है वह तो केवल हिंसा ही करता है।

“अगर आप ऐसा मानें कि जीव का नाश तो होता ही नहीं, नाश तो देह का ही होता है तो फिर आज ही या दो दिन के बाद, उसका नाश हो जाय तो उसमें हानि ही क्या है? यह ठीक है किन्तु इससे, दूसरे का जीव लेने का कुछ इजारा मनुष्य को मिल नहीं जाता।”

इस के विषय में मुझे कुछ शंका ही नहीं है। जैसे आहारादि के लिए अनिवार्य समझ कर हिंसा करते हैं, वैसे ही, ऐसी हिंसा भी हम अनिवार्य समझ कर करते हैं। देह के नाशवन्त होने से मनुष्य को दूसरे का प्राण लेने का इजारा नहीं मिल जाता किन्तु आवश्यक प्रसंग आने पर उसका नाश करने से रकना भी, उस देह के प्रतिक्षण होते हुए नाश को भूल जाने के समान है। सड़े हुए हाथ को काटने में देह का नाश होते हुए भी हम उसे काट फेंकते ही हैं।

“किन्तु अगर उस प्राणी के सुख का विचार कर के उसे मारिए तो यह भी मोह है। सुख दुःख जैसी कोई वस्तु जगत में है ही नहीं। दूसरे का दुःख से तबपना आप देख नहीं सकते तो इससे आपका अज्ञान प्रकट होता है। दूसरे के सुख दुःख का जिस पर असर नहीं होता वह भ्रम्य आत्मा है और इसलिए किसी के प्रति वह हिंसा भी नहीं करता।”

इस प्रश्न की जड़ में जो दलील है, उसमें मैं अनजाने मिथ्यात्व को समाया हुआ देखता हूँ। दूसरे के सुख दुःख का जहाँ असर नहीं है, वहाँ दया नहीं है, जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म नहीं है, अहिंसा नहीं है। दूसरे का सुख दूँवने में ही तो अहिंसा का शोध हुआ। मनुष्य ने जब अपने को दूसरे में देखा और दूसरे को अपने में देखा, तभी उसने दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होना सीखा। इस से उसने अपने ऐहिक सुख के त्याग में आरम्भिक सुख का अनुभव किया और इसीसे वह अपने लिए गुरुवर जगत की हिंसा करने से अटक।

“संसार का दुःख मिटाने का प्रयत्न करना संसारी दृष्टि है। इसलिए उस दृष्टि में ही हिंसा है। इसलिए पीछे से उसमें से अहिंसा का प्रतिपादन क्यों कर हो सकता है?”

यह वाक्य इसके लिखनेवाले के लिए या किसी के लिए शोभाप्रद सा नहीं जान पड़ता। हम सब संसार का दुःख मिटाने का सतत प्रयत्न करते हैं। भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी मिटाने में हम बहुत समय लगाते हैं। किन्तु जो केवल अपनी ही भूख मिटा कर रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ता, वह स्वेच्छाचारी गिना जाता है। जो दूसरों की भिटा कर तब अपनी भिटाने के लिए थोड़ा प्रयत्न करता है, वह वीतरागी गिना जाता है।

एक दूसरे भाई लिखते हैं:

“मालूम होता है कि आप रायचंद भाई का लिखा हुआ पढ़ गये। आपने उनसे पूछा कि मुझे अगर साँप काटने आवे तो क्या करूँगा? उन्होंने कहा तुम अपनी जान दे देना मगर साँप को मारना नहीं। अब कुत्तों के विषय में मालूम होता है कि आप दूसरा ही न्याय निकाला है।”

मैंने दूसरा न्याय नहीं निकाला है। अपने लिए किसी को भी मारने का समर्थन मैंने नहीं किया है। मेरा ऐसा प्रयत्न है कि मुझे अगर साँप काटने आवे या कोई दूसरा प्राणी मारने आवे तो उसे मार कर जीने की इच्छा न करूँ और देह को जाने देने की शक्ति ईश्वर मुझे दें। हमारी चर्चा में समाजदृष्टि है और दुःख से तबफटाते प्राणियों के प्रति अपनी दृष्टि है। अगर रायचंदभाई से यह प्रश्न पूछा होता कि दुःख से तबफटाते साँप के लिए मैं क्या करूँ, जिसके लिए मेरे पास कोई इलाज नहीं है, या मेरी संरक्षकता में रहने वाले किसी व्यक्ति को काटने आता और उसे रोकने की शक्ति मुझमें न होती तो रक्षित रक्षा के लिए मुझे साँप को मारना चाहिए या नहीं, तो रायचंदभाई क्या जवाब देते, हम में से कोई ठीक २ नहीं कह सकता। अभिप्राय के विषय में मुझे कुछ शंका नहीं है।

एक तीसरे भाई लिखते हैं:

“आपके लेख पर मुझे बहुत श्रद्धा है किन्तु आपके वर्तमान लेखों से शंका पैदा होती है। श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य के मत आपका मत विरुद्ध नजर आ रहा है। आज-तक आपके मत आचार्य के मत से मिलते हुए जान पड़ते थे।

वे कहते हैं—

रक्षा भवति बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन।

इति मत्वा कर्तव्यं न हिंसनं हिंस सत्त्वानाम् ॥

“इस एकही जीव के मारने से बहुत से जीवों की रक्षा होती है” ऐसा मान कर हिंसक जीवों की भी हिंसा न कर चाहिए।

बहुसत्त्वघातिनोऽमी जीवन्त उपार्जयन्ति गुरुपापम्।

इत्यनुकम्पां कृत्वा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंसाः ॥

“बहुत जीवों के घाती ये जीव जीते रहेंगे तो अधिक उपार्जन करेंगे।” इस प्रकार की दया करके हिंसक जीवों को मारना चाहिए।

बहुदुःखासंज्ञयिताः प्रयान्ति स्वचिरेण दुःखविच्छित्तिम्।

इति वासनाकृपाणीमादाय न दुःखिनोऽपि हन्तव्याः ॥

“अनेक दुःखों से पीड़ित जीवों के दुःखों का क्षीप्र ही नाश हो जायगा” इस प्रकार की वासना-विचार-रूपी तलवार को लेकर दुःखी जीव को भी नहीं मारना चाहिए।

इसमें और आपके अबके विचारों में भेद दिखायी पड़ता है। इसका अधिक स्पष्टीकरण ‘पुरुषार्थ सिन्धुयाय’ नामक पुस्तक में है। उसे देख लेने के बाद आप अपना अभिप्राय बतकाने।



मुझे श्री रेवाशंकर भाई ने दक्षिण अफ्रीका में 'पुरुषार्थ सिद्धधुपाय' मेजा था। तभी मैं उसे पढ़ गया। मेरे विचार अब किसी के आधार पर नहीं हैं। जो जहाँ से अच्छा लगा वहाँ अब किसी के आधार पर नहीं लिया था लेकिन अब तो मेरे जीवन के से वह विचार शुरू में लिए गए हैं और उन्हें बतलाने में ही मुझे अपने आप से अंश हो गये हैं और उन्हें बतलाने में ही मुझे अपने आप को बतलाना पड़ता है। अहिंसाधर्म की ऐसी सूक्ष्म चर्चा से कोई तात्कालिक लाभ होगा, ऐसा मैं नहीं मानता। लेकिन इस समय उसके विषय में, मेरी दृष्टि में, इतना अज्ञान फैला हुआ है कि मैं मानता हूँ कि अगर किसी भय के कारण या मोह के वश होकर अपने विचार में दबा रक्खू तो दोष में पड़ूंगा। इसी से लाचार होकर यह लेखमाला लिख रहा हूँ।

उपर जो श्लोक दिये गये हैं उनमें और मेरे विचार में, मेरी मति के अनुसार कोई भेद नहीं है। किन्तु कदाचित् अगर यह सिद्ध हो जाय कि उनमें भेद है तब भी मुझे मेरा अभिप्राय ही अहिंसाधर्म के अधिक अनुकूल मालूम होता है।

उपर के श्लोकों का आशय मैं ऐसा समझता हूँ कि उसमें वर्णित भावना का विचार करके मनुष्य को बध्न न करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। ऐसा बध्न अनिवार्य और इस कारण स्वाभाविक होना चाहिए। भावना का विचार करने में इरादा और आरंभ आते हैं, और दूसरे, आरंभ हिंसात्मक हैं। मुमुक्षु के लिए सहज-प्राप्त धर्म—गीता में जिसे निष्काम कर्म कहा गया है—का पालन कर्तव्य है। उसे जगत् के मोक्ष का विचार करना नहीं है किन्तु अपने मोक्षमार्ग में आनेवाली सेवा को करते जाना है। मैले पानी का गढा मुझे भर देना चाहिए किन्तु मेरे लिए यह स्वाभाविक होने से मैं भरता हूँ। भरते समय यह अभिमान नहीं रखता कि, ऐसा करने से मैं जगत् की सेवा कर रहा हूँ। मुझे यह भी नहीं मालूम होता कि आचार्य का ऐसा मत रहा हो कि मुझे इसका ज्ञान ही न होवे कि ऐसा करने से, गढा भर देने से कीड़े मोंगे और उससे समाज की सेवा होगी। आचार्य के इन वचनों में, निरभिमान, नम्रता, अल्पारंभ इत्यादि का आग्रह रहा है।—मालूम होता है कि यह बतलाने के लिए ही ये श्लोक रचे गये हैं कि जब ऐसा प्रसंग उपस्थित हो कि बध्न किये बिना चले ही नहीं तो उस समय कैसी मानसिक स्थिति होनी चाहिए।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २८

पूना में

सर फीरोजशाह ने मेरा मार्ग सरल कर दिया था। बम्बई से मैं पूने गया। मुझे यह खबर थी कि पूना में दो पक्ष हैं। मुझे तो सभी की मदद लेनी थी। मैं लोकमान्य से मिला। उन्होंने मुझ से कहा:—

सब पक्षों की मदद लेने का आप का विचार बिल्कुल दुर्लभ है। आप के प्रश्न के बारे में मतभेद हो ही नहीं सकता। लेकिन सभा के लिए तटस्थ प्रमुख चाहिए। आप प्रोफेसर भंडारकर से मिलें। वे आजकल किसी आन्दोलन में भाग नहीं लेते। लेकिन यदि इस काम के लिए बाहर निकलें। उनसे मिल लेने पर मुझे परिणाम बतावेगा। मैं आप की पूरी मदद करना चाहता हूँ। आप प्रोफेसर गोखले से तो मिलेंगे ही। जब मेरे पास आना हो तब आइयेगा।

लोकमान्य का मुझे यह दर्शन पहला ही था। उनकी लोकप्रियता का कारण मैं तुरंत समझ सका।

यहाँ से मैं गोखले के पास गया। वे फरगुसन कालेज में थे। उन्होंने मुझे बड़े प्रेम के साथ भेटा और अपना कर लिया। उनसे भी मेरा पहला परिचय था—ऐसा लगा मानों हम इससे पहले एक दूसरे से न मिले थे। सर फीरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे लगे, लोकमान्य समुद्र जैसे और गोखले गंगा जैसे। गंगा में तो आदमी स्नान कर सकता है। हिमालय चढ़ना कठिन होता है, समुद्र में डूबने का भय रहता है लेकिन गंगा को गोदी में तो खेल सकते हैं। उसमें डूबी लहरें लहरें लहरें हैं। गोखले ने मेरी जाँच बड़ी बारीकी से की जैसे किसी स्कूल में दाखिल होने के वक्त बच्चों की जाँच की जाती है। उन्होंने बतलाया कि किससे और किस प्रकार मिलें। उन्होंने मेरा भाषण देखना चाहा। मुझे कालेज की व्यवस्था बतलाई। उन्होंने मुझसे कहा कि जब मिलना हो तब फिर मिलना। डा० भण्डारकर का जवाब सुनने को कह कर मुझे विदा किया। राज्य-प्रकरण के क्षेत्र में जो स्थान गोखले अपने जीवन-काल में मेरे हृदय में रखते थे और जो स्थान अपने देहान्त के बाद भी लिये हुए हैं, वह अन्य कोई नहीं प्राप्त कर सका है।

जिस प्रकार बेटे से बाप मिलता है, उसी प्रकार रामकृष्ण भण्डारकर मुझसे प्रेम से मिले। जब मैं उनसे मिलने गया था तब दो-पहर था। ऐसे समय मैं अपना काम कर रहा था—यह बात ही उस उद्यमी शास्त्रज्ञ को सुझाई और तटस्थ प्रमुख बनने के लिए मेरे अनुरोध को सुन कर सहज में ही-बोल उठे—'घट्टा इट', 'घट्टा इट' (यही ठीक है, यही ठीक है)।

बातचीत हो चुकने पर वे बोले:—किसी से चाहे पूछ देखना, वह तुमसे फौरन कहेगा कि मैं आजकल राजनीतिक कामों में भाग नहीं लेता हूँ, लेकिन आप की बात को मैं नामंजूर नहीं कर सकता। आप का केस इतना मजबूत है और आप का उद्यम इतना स्तुत्य है कि आप की सभा में आने के लिए मुझसे 'ना' नहीं कहते बनती। श्रीमान् तिलक और श्री. गोखले से आप मिलें—सो आपने अच्छा किया। उनसे कहना कि मैं खुशी से दोनों तरफ से की गई सभा का सभापति होऊंगा। वक्त के बारे में पूछने की जरूरत नहीं है, जो समय दोनों पक्षों को अनुकूल होगा, वह समय मुझे भी अनुकूल होगा।" इतनी बातें कह कर उन्होंने मुझे धन्यवाद तथा आशीर्वाद दिया और विदा किया।

बिना दौड़ धूप के, बिना आढम्बर के, एक सादे मकान में पूना के इन विद्वान और उनके त्यागी मंडल ने सभा कर के मुझे सम्पूर्ण प्रोत्साहन के साथ विदा किया।

मैं वहाँ से मद्रास गया। मद्रास तो दीवाना बन गया। वहाँ सभा की गयी। बालासुन्दरम् के मामले का प्रभाव उस सभा पर बहुत गहरा पड़ा। मेरा भाषण मेरे लेखे तूलदार था। लेकिन लोगों ने उसका शब्द शब्द ध्यान से सुना। सभा के बरखास्त होने के पहले उस हरी चौपतिया की लूट मच गयी। मद्रास में संशोधन इत्यादि के बाद उसकी दस हजार प्रतियाँ और छपायीं। उनका बहुत सा भाग तो तुरत बँट गया। लेकिन मैंने देखा कि दस हजार की जरूरत न थी। उत्साह के कारण मैंने अधिक अंदाजा लगा दिया था। मेरी वक्तृता का असर तो अंग्रेजी बोलने वालों पर ही पड़ा था। केवल ऐसे लोगों के लिए अकेले मद्रास में दस हजार प्रतियों की आवश्यकता नहीं हो सकती।

यहाँ पर मुझे भारी से भारी मदद स्वर्गीय जी० परमेश्वरन् पिरले से मिली। वे 'मद्रास स्टैंडर्ड' पत्र के अधिपति थे। वे मुझे अपने दफ्तर में बार बार बुलाते और मेरे काम में मार्ग दिखाते। 'हिन्दू' नामक पत्र के जी० सुब्रह्मण्यम् से भी मैं सिद्धांत



उन्होंने तथा दा० सुब्रह्मण्यम् ने भी पूरी हमदर्दी (सहानुभूति) दिखायी, लेकिन जी० परमेश्वरन् पिल्ले ने तो मेरे इस काम के बास्ते अपने समाचार पत्र का उपयोग भी, जब करना हुआ, करने दिया और मैंने किया भी। मुझे खयाल आता है कि समा 'पाच्याप्पा हाल' में की गई और उसमें दा० सुब्रह्मण्यम् समापति थे।

मद्रास में अनेक लोगों में मैंने प्रेम तथा उत्साह इतना अधिक अनुभव किया कि यद्यपि वहाँ सब के साथ खास तौर पर अंग्रेजी में ही बोलना था, तथापि मुझे घर ही जैसा लगा। ऐसे कौन बंधन हैं, जिनकी प्रेम नहीं तोड़ सकता ?

(नवजीवन)

## मोहनदास करमचंद गांधी तिप्पणियां

### खादी की बिक्री

अभी जब तक खादी का यथेष्ट प्रचार हो नहीं लेता तब तक खादी की उत्पत्ति की अपेक्षा अगर अधिक न हो तो, उसके बराबर तो जरूर ही उसकी बिक्री को मदद देना पड़ेगा। अब तक उत्पत्ति के साथ साथ उसी प्रकार बिक्री भी न होती गयी है। बिक्री के लिए सबसे सुसंगठित प्रान्त बेशक बंगाल ही है। आचार्य राय और उनके सहायक सतीश चन्द्र दास गुप्त द्वारा स्थापित खादी प्रतिष्ठान का चलाया हुआ ढंग बंगाल के और दूसरे सभी खादी कार्यालय भी चलाये जाते हैं। स्थानीय जरूरतों के अनुसार भी, कपड़ा बनाने में बंगाल ने काफी सफलता पायी है। यह सही अर्थशास्त्र है। इस रीति से कार्यकर्तागण खादी खरीदनेवाले मध्य वर्ग के और खादी बनानेवाले दरिद्र लोगों के साथ, सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए हैं। फल इसका यह हुआ है कि कपड़े में उन्नति हुई है, अब पहले से अधिक भिन्न २ प्रकार के कपड़े मिलते हैं, उनके नमूनों में और खरीदार की दृष्टि से दाम में बहुत उन्नति हुई है। खादी के बढ़ते हुए प्रस्तेपन के विषय में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि साधारणतः खादी का दाम घटने का अर्थ यह नहीं हुआ है कि जुलाहों, धुनियों और कातनेवालों की मजदूरी में भी उसी प्रकार कमी हो जाय किन्तु यह सब इस वयोग का ज्ञान बढ़ने तथा प्रबन्ध-कुशलता के कारण हुआ है।

सुसंगठित रूप से खादी-बिक्री की सबसे ताजा रिपोर्ट आयी है सिलहट से। वहाँ सिलहट के निकट कुलौरा में श्रीयुत धीरेन्द्र नाथ दास गुप्त एक छोटा सा खादी कार्यालय चला रहे हैं। वे लिखते हैं कि केवल दशहरे की छुटियों भर में उन्होंने सिके २६००) ६० से भी अधिक की खादी बेची।

बेशक, बंगाल के समान और दूसरे प्रान्तों में भी खादी-कार्य में खूब उन्नति हुई है, किन्तु बंगाल के जैसा और कहीं बिक्री के लिए नियमानुकूल प्रबन्ध नहीं किया गया है। बंगाल के बिल्कुल पास पहुँचने की कोशिश बिहार कर रहा है। मगर सभी प्रान्तों में कार्यकर्ताओं को बिक्री बढ़ाने के उपाय सोचने चाहिए। श्रीयुत मरुवा और दूसरे पुराने अनुभवशीलों के अनुभव एकत्र करना चाहिए, और निम्न २ प्रान्तों के लिए उपयुक्त थोड़ी २ बदलती हुई योजनाएं तैयार करनी और काम में लानी चाहिए। फेरी और चलता फिरता प्रदर्शन अब यहाँ रहेगा ही। इन सब योजनाओं में यह मय तो है ही कि अगर छोटी से छोटी बातों पर भी ध्यान न दिया गया तो वे ऐसी अथवावहारिक हो जायँगी कि सारी पूँजी निरीक्षण और सुप्रबन्ध में ही गायब हो जायगी। हिन्दुस्तान के निम्न २ हिस्सों में ऐसे खादी भंडार हैं जिन्हें इस

दृष्टि से बंद ही कर देना चाहिए। जिस खादी भंडार का सालाना खर्च ५००) ६० हो और साल में बिक्री भी इतनी ही हो, वह तो बन्द ही कर देने लायक है। या तो वहाँ हद दर्जे की बन्द-इन्तजामी है या वहाँवाले खादी का काम ही नहीं जानते।

खद्दर किसे कहते हैं ?

एक मित्र दरयापत करते हैं कि आया 'लीडर' समाचार-पत्र में प्रकाशित हुई खद्दर की निम्न-लिखित परिभाषा ठीक है या नहीं :

“उन लोगों को जो कि शुद्ध खद्दर यानी अपने ही हाथों से काते गये सूत से खुद के बनाये हुए कपड़े नहीं पहनते हैं, अपने को कांग्रेसमैन कहने का कोई हक नहीं है और न उनको कांग्रेसमैन मानना ही चाहिए।”

खद्दर की ठीक ठीक परिभाषा तो कांग्रेस के प्रस्तावों में दी हुई है। लेकिन उन लोगों के सुभीते के लिए जिन्हें कांग्रेस के प्रस्ताव देखने का अवकाश नहीं है, मैं कह देना चाहता हूँ कि कांग्रेस का संशा यह कभी नहीं रहा है कि कांग्रेसमैन जिस खद्दर को इस्तेमाल करें, वह उन्हीं के द्वारा बुना गया हो। बल्कि हकीकत तो यह है कि उस खद्दर के सूत के उन्हीं के द्वारा कते होने की भी जरूरत नहीं है। कताई-सम्बन्धी परीक्षा खद्दर पहनने से बिल्कुल भिन्न है और वह केवल इच्छा की बात है। लेकिन खद्दर का पहनना तो लाजिमी है—हाँ बात सिर्फ इतनी है कि वह खद्दर हाथ कता और बुना हो। इस बात से कोई गरज नहीं कि वह किसके द्वारा काता और बुना गया है। यह जरूरी नहीं होना चाहिए कि जो सूत किसी कांग्रेसमैन ने काता हो, उसकी मदद उस खद्दर के तैयार करने में ली ही जाय। मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि इतने दिन हो जाने पर भी खद्दर के मानी समझाने की जरूरत पड़े।

अलबत्ता यह सवाल बेशक मौजूद होगा कि कितने कांग्रेसमैन इस प्रकार का शुद्ध खद्दर (जैसा कि कांग्रेस के प्रस्ताव में वर्णित है न कि जैसा उपरोक्त उद्धृत वाक्य में कहा गया है) पहनते हैं।

### खद्दर और सरकारी नौकर

एक पत्र-प्रेषक लिखते हैं :

“कई सरकारी नौकर, हमारे फेरीवालों के पहुँचने पर हाथकूटे और हाथबुने खद्दर खरीदने के नाम कांप उठते हैं। उनका खयाल है कि उन्हें खद्दर न खरीदना चाहिए और इसका सरकार देशी उद्योग धंधों की उन्नति पर बहुत जोर दे रही है। आप क्या कह सकते हैं कि मद्रास सरकार के नौकरों को खद्दर खरीदने में सरकार का कोई भय या मनाहट तो नहीं है ?”

अगर इस सवाल का जवाब मैं दे सकता तो मुझे बड़ी खुशी होती मगर मुझे ताकत नहीं है। खैर, यह बात मेरी समझ के बाहर है कि कोई भी सरकार हाथकूटे और हाथबुने कपड़े का व्यवहार मना करे। यह समझने की बात है कि एक खास तबकी की पोशाक पहनने पर जोर दिया जाय, मगर किस कपड़े का वह पोशाक हो, इसके विषय में हुक्म निकालने की बात तो अलग के बाहर है। यह देख कर कष्ट होता है कि ऐसे सरकारी नौकर हैं जो कार्पनिक भय से चबराया करते हैं। मैंने कितने सरकारी अफसरों को बिना किसी रोक टोक के खद्दर पहनते देखा है। अगर मैं मद्रास सरकार का नौकर होता तो जरूर बेउज्र खद्दर पहनता अगर इसके विरुद्ध उस सरकार की खुलासा आवाज न होती और तब नौकरी से इस्तीफा दे देता।



२५ नवम्बर, १९२६

का सालाना  
की हो, वह  
दर्ज की बद-  
नते।

समाचार-पत्र  
पाठ ठीक है

पने ही हाथों  
ही पहनते हैं,  
और न उनको

स्तावों में ही  
हैं कांग्रेस के  
चाहता हूँ कि  
न जिस खरा  
बलिक हकीकत  
आर कते होने  
हर पहनने से  
लेकिन खरा  
कि वह खरा  
नहीं कि वह  
री नहीं होना  
हो, उसको  
मुझे इस बात  
भी खबर है

कितने कांग्रेस  
के प्रस्ताव  
हा गया है।

पहुँचने पर  
ते हैं। उनको  
इधर बसा  
दे रही है।  
हरी को बत  
है?"

हो वही ह  
री समझ  
बुने कपड़े  
क खास त  
कस कपड़े  
गत तो अ  
सरकारी नौकर  
कतने सरकारी  
ते देखा है  
ने उज्ज  
आशा न हो

यह टिप्पणी लिख चुकने के बाद श्रीयुत श्री. पी. रंगम चेटी के पास मद्रास सरकार के भेजे हुए एक पत्र को नकल मिली है। वह पत्र है—“वर्खासिंह के प्रबन्धक को सूचना दी जाती है कि उनके पत्र में लिखे हुए भय या खयाल (खादी खरीदने से सरकार की नाराजगी के) का उसके नौकरों में होना मानने का कोई कारण नहीं है।” मैं दोनों पक्षों को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि अगर कोई सरकारी नौकर भय से खादी न खरीदते हों तो वे अब अपना भय और विलायती कपड़ा छोड़ देंगे।

### रामचन्द्रन् कोश

मेरे तथा श्री रामचन्द्रन्-दोनों के पास ढेरों पत्र इस कोश के सम्बन्ध में आये हैं। इन पत्रों के लिखनेवालों में से कुछ तो कोश तुरत भेज देने की फरमाइश करते हैं और कुछ उस के विषय में चंद वाजिब सवाल पूछते हैं। श्री रामचन्द्रन् मेरे पास सब पत्र छोड़ गये हैं। कोश पेटेण्ट कराया हुआ है। आविष्कर्ता के पास कोई कोश भेजने को तैयार नहीं है—तैयार करवाने हैं। उनके पास इतना रुपया नहीं कि वे बहुत सी मॉडलों को फुर्ती से पूरा कर सकें। इसलिए कोशों के जल्दी जल्दी बनवाने के लिए मैं सुविधायें कर रहा हूँ। आविष्कर्ता अपने निजी काम को समझाने मद्रास गये हैं, ताकि वे लौटकर कोश के निर्माण तथा उसके चालू करने की देख रेख करने में अपना पूरा वक्त दे सकें। अतएव, मैं-पत्र प्रेषकों से अनुरोध करता हूँ कि वे कुछ धीरज रखें और जब तक माल की तैयारी का आवश्यक प्रबंधन हो जाय, तब तक प्रतीक्षा करें। तभी माल बाहर भेजा जा सकता है। कोशिश इस बात की की जा रही है कि इसका तैयार किया जाना राष्ट्रीयता के भाव से होने लगे और उसका मूल्य कम से कम हो जाय। इसके लिए पत्र-प्रेषक गण मुझे क्षमा करें कि मैं उनके पत्रों के उत्तर अलग अलग नहीं दे सकता; मैं उनके द्वारा प्रस्तुत किये प्रश्नों में से कुछ के उत्तर नीचे देता हूँ।

अगर बन सका, (कोशिश की जा रही है) तो उस कोश का चित्र छाप दिया जायगा।

उसके हिस्से जरा भी पेचदार नहीं हैं। इसके प्रतिकूल, बिल्कुल ही सारे हैं। निस्सन्देह वह इस ढंग से बनाया गया है कि गावों की जरूरियात रफा कर दे।

शहरों से थोड़ी रेल (लोहेकी पतली पटरी) गराडी और तर की रस्सियाँ मँगवानी पड़ेंगी।

कोश को कई बरस चलना चाहिए। शायद डोल और रस्सी को कुछ जल्दी जल्दी बदलना पड़े।

जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ, गांवों के मामूली छुहार उसकी दृष्ट फूट की मरम्मत कर सकेंगे।

किसी होशियार मिस्त्री के ही द्वारा उसे जमवाना चाहिए।

बज्र, डाल, इत्यादि का चौकस बैठना जरूरी है। गराडी की ठीक स्थान पर लगाना चाहिए। लेकिन मेरा खयाल है कि मामूली बुद्धि वाले व्यापारी को, सब सामान दिये जाने पर, कोश फिट करना जल्दी और आसानी से सिखाया जा सकता है। मिस्त्री को राह खर्च बँसा देना पड़ेगा। इन सब बातों पर विचार किया जा रहा है।

सब से बड़का कम खर्चीला तरीका यह है कि भारी भैसे से काम लिया जाय—जितना ही वजनी जानवर होगा, उतना ही अधिक पानी बिना श्रम के वह खींच सकेगा।

खाली टोली डोल के वजन से अपने आप वापिस चली जाती है। डोल का वजन साधारणतया ४० रतल है। और टोली का

१०० (टोली—वह पटरा जो रेल पर रहता है और जिसपर जानवर खड़ा किया जाता है)।

यह कोश चाहे जितने गहरे कुएँ के वास्ते काम में लाया जा सकता है यहाँ तक कि ६२ हाथ तक की गहराई के कुएँ तक में भी यानी जहाँ मामूली मोट चल सकता है वहाँ यह भी काम दे सकता है।

(गं० इ००)

मो० क० गांधी

### उपनिवेशों में पैदा हुए हिन्दुस्तानी

दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों की तरफ से मेरे पास एक पत्र आया है, जिसमें उन्होंने “उन्हें बिल्कुल भूल जाने के लिये” मेरी खबर ली है। वे लिखते हैं कि हमारी केवल यही इच्छा है कि आपका कम से कम एक संदेश हम पा जायँ। मुझे इत्मीनान है कि आप हमारी यह अन्तिम प्रार्थना अव्वीकार न कर देंगे।

जो प्रेम इस फिटकार में छिपा हुआ है उस की मैं कद्र करता हूँ क्योंकि मुझे उपनिवेशों में पैदा हुए हिन्दुस्तानियों से एक मजबूत गांठ बांधी हुई है। लेकिन ऐसा कोई खास संदेश न था जो उनके पास भेजा जाता। मेरे अधिकांश संदेश तो उन तीनों साप्ताहिक पत्रों द्वारा ही दिये जाते हैं जिन्हें मैं सम्पादित कर रहा हूँ। ‘यंग इंडिया’ और गुजराती तथा हिन्दी ‘नवजीवन’ में तो दक्षिण अफ्रीका में बस जानेवाले भारतवासियों तथा उन प्रवासियों की सन्तानों के लिये संदेश भरे ही रहते हैं। हालाँकि मेरे नाम आयी हुई चिट्ठी पत्रियों के जवाब में स्वयं लिखवाता हूँ, तो भी परिस्थिति के प्रभाव के कारण मुझे मजबूर हो कर यह करना पड़ा है कि उतनी ही निजी चिट्ठियों के जवाब वूँ जितनी के दे सकता हूँ—और अपने तीनों साप्ताहिक पत्रों को अपने पत्र व्यवहार का जरिया बना लूँ क्योंकि ये पत्र, जैसा कि एक मित्र ने एक बार ठीकही कहा था, समाचार पत्र नहीं बल्कि मेरे विचार पत्र हैं। उनको मि. ऐंड्यूज के द्वारा भी मेरे संदेश मिल चुके हैं लेकिन ये मित्र (जिन्होंने भूल जाने की शिकायत की है) चाहते हैं कि मैं राइट आनरेबल श्री निवास शास्त्री की मार्फत विशेष संदेश भेजूँ मैं समझता हूँ कि इस दरखास्त के क्या मानी हैं। इन भाइयों के इस पत्र से मुझे उन दिनों की याद हो आयी जब कि दक्षिण अफ्रीका में गोखले थे। प्रवासी भारतवासी लोग गोखले के साथ मेरे सम्बन्ध को जानते थे और उनका मुझसे यह आशा करना बजाँ और वाजिब है कि अपने विचारों और भावों को उन तक पहुँचाने के लिए श्री निवास शास्त्री का उपयोग करूँ। निस्सन्देह उपनिवेशों में पैदा हुए हिन्दुस्तानी तथा दक्षिण अफ्रीका के अन्य मित्र गण श्री निवास शास्त्री से जी भर कर इच्छा पूर्ति कर लेंगे।

मैं ये पंक्तिया उनसे मिलने के पूर्व लिख रहा हूँ। हम लोग दक्षिण अफ्रीका के पूरे सवाल पर विचार कर लेंगे—सिर्फ इसी पहलू से नहीं कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार क्या क्या कर सकती है और क्या क्या नहीं बल्कि इस पहलू से भी कि भारतवासी (उपनिवेशों में पैदा हुए हिन्दुस्तानियों को शामिल करते हुए) क्या कर और क्या नहीं कर सकते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानियों से एक बात मैं आम तरीके पर कह देना चाहता हूँ। वे अपनी इस प्रवृत्ति से सावधान हो जायँ कि हम तो अधिन्दुस्तानियों से वे जुदा हैं जो आर मद्दज बस गये हैं और चूंकि हमारी पैदाइश यही की है इसलिए हमको खास हकूक मिलने चाहिये। वे याद रखें कि वे, बावजूद इसके कि वे दक्षिण अफ्रीका में पैदा हुए हैं, हिन्दुस्तानी हैं और



हर सूरत से हिन्दुस्तानी रहेंगे। इस लिए उनका कर्ज है कि वे अपने आप को महज आकर बसे हुए हिन्दुस्तानियों के साथ पूरे तौर से मिला दें और जहां तक मुमकिन हो हर तरीके से उनके साथ काम करें। ऐसा करने से वे अपनी तथा अपने देशकी सेवा करेंगे। उन्हें उस काम की याद रखना चाहिए जो कि उन्होंने बन् १८९९ ई. में बोर युद्ध में स्ट्रेचर बेयरर्स कोर (घायलों को ढोनेकी टोली) में बड़ी बहादुरी के साथ किया था। तथा बन् १९०५ से १९१४ ई. तक सत्याग्रह आन्दोलन के दिनों में किया था। उस समय उनके इस मेद की या विशेष स्वत्व भांगने की भनक तक न थी। अगर वे इस मौके को हाथ से न जाने देंगे तो उनके सामने उज्ज्वल भविष्य है। अगर वे हिन्दुस्तान के सर्वोत्कृष्ट गुणों का परिचय देंगे और पाश्चात्य सभ्यता की से जितने कि वे सम्पर्क में आवें सबसे अच्छी बातों को अपने में ले लेंगे—जिस प्रकार की वहां के उत्कृष्ट अग्रज और दूसरे लोग कर रहे हैं—तो वे हिन्दुस्तान और दक्षिण अफ्रीका के बीच जीती जागती ग्यंखला हो जायेंगे।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### प्राचीन समय में सांड की महिमा

मि० हेडन कृत "ऋद्धि सिद्धि की जन्मी गाय माता" नाम की पुस्तक में से दिये अवतरणों से यह मालूम होता है कि पश्चिम के देशों में पशु के उत्पादन का कितना खयाल रखा जाता है। प्राचीन समय में हमारे देश में भी लोग वैसी ही सँभाल रखते थे और अच्छे पशु की पैदाइश अच्छे सांड पर निर्भर है, इसलिए, महाजन लोगों का अच्छा सांड समर्पण करना, भारी पुण्य का काम गिना जाता था।

वृषोत्सर्गद्वे नान्यत्पुण्यमस्ति महीतले।

और समाज सेवा के लिए वृषोत्सर्ग के ऐसा पितृतर्पण या पितृ-स्मारक दूसरा कुछ नहीं मानते थे।

जले प्रक्षिप्य लाङ्गलं तोयं यद्धरते वृषः।

दशवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः॥

कृके समुद्रता यावच्छृङ्गे तिष्ठति मृत्तिका।

मक्ष्यभोज्यमयैः शैलैः पितरस्तेन तर्पिताः॥

सहस्रतरुपात्रेण कनकैः यथाविधि।

तृप्तिस्तु या पितृणां वै सा वृषेण समोच्यते॥

पशुओं का अच्छा बुरा होना, सांड के गुणदोष पर निर्भर है और सांड की कीमत न केवल सारे गोल की आधी ही, बल्कि आधी से भी अधिक समझनी चाहिए। इसलिए वृषोत्सर्ग के लिए कैसे सांड को चुनना और कैसे को त्याग्य गिनना चाहिए, इस विषय पर सविस्तर नियम बनाये गये हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र के तीसरे कांड की नवीं कंडिका का छठ्ठा सूत्र इस प्रकार है:

एकवर्णं द्विवर्णं वा यो वा यूथं छादयति यं वा यूथं छादयेद् रोहितो वैवस्यात्सर्वाज्ञेदरेतो जीववत्सायाः पयस्विन्याः पुत्रो यूथे न रूपस्वित्तमः स्यात्तमलङ्कृत्य.....उत्सृजेत्।

"सांड एक वा दो रंग का होवे। लाल रंग का हो तो उत्तम। सारे गोल में सब से शरीर से बड़ा चड़ा होवे।

मुखपुच्छपादेषु सर्वशुक्रो नीलो लोहितो वा लोहित एव वा स्यात्। एवंकारेण लोहितस्यैक वर्णद्विवर्णाभ्यां प्राज्ञस्त्यमुच्यते। इत्येवं वर्णं छादयति स्वपरिमाणेनाधः करोति।

"सर्वाङ्गं संसर्पणं होवे। जेपे और वंसा ही अधिक अङ्गों बाध्य भी न होवे।

सर्वैरङ्गैः समन्वितो न पुनर्हीनाङ्गोऽधिकङ्गो वा।

"जिसका सारा परीवार जीता हो और जो बहुत दुपार हो ऐसी गाय को बछड़ा हो।

जीवाः प्राणवन्तो वत्साः प्रसूति रंस्याः सा जीववत्सा तस्याः गोः पुत्रः पयो बहु क्षीरं वियते यस्याः सा पयस्विनी तस्याः बहुक्षीरायाः।

"और सारे गोल में सबसे अधिक रूपवान् हो।"

यूथे वर्णविषये रूपमस्यास्तीति रूपस्वी, अतिशयेन रूपस्वी रूपस्वित्तमः।

ऊपर के सूत्र की हरिहर विरचित टीका में हमारे जानने लायक विशेष बात दी हुई है। सांड कैसा होना चाहिए—इस विषय में उन्होंने नीचे के श्लोक दिये हैं।

उन्नतस्कंधककुद ऋजुलाङ्गलभूषणः।

महाकटितटस्कंधो वैदूर्यमणिलोचनः॥

सांड का कंधा, और डील (ककुत्) ऊंचे और विशाल हो, जांच बड़ी, पूंछ सीधी, और आँखें वैदूर्यमणि के समान हों।

प्रवालगर्भशृंगामः सुदीर्घऋजुवालधिः।

नवाष्टशसङ्ख्यैस्तु तीक्ष्णाम्रैर्दशनैः शुभैः॥

सींग की नोक मूंगे के जैसी हो, पूंछ लंबी और सीधी, दांत तेज हों और गिनती में आठ नौ या दश हों।

पृथुकर्णो महास्कंधः सूक्ष्मरोमा च यो भवेत्।

कान लम्बे और रोंए होने हों।

भूमौ कर्षति लाङ्गलं पुनश्च स्थूलवालधिः॥

पूँछ जमीन तक पहुँचती हो और उस के ऊपर घने बाल हों।

नील सांड को विशेष रूप से अच्छा गिनते थे। इस के लक्षण ये हैं।

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।

लाक्षारससर्वणं तं नीलमिति निर्दिशेत्॥

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः।

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स वृषो नील उच्यते॥

नील सांड रंग का लाल होता है और उस पैर, सुँह, और पूंछ उजली होती हैं।

इसी से वृषोत्सर्ग को नीलोत्सर्ग या नीलोद्वाह भी कहते हैं। सांड तीन वर्षका अच्छा होता है। उपादेश्य वृष जिहायना कैसे कैसे सांडों को त्याग्य गिनते हैं, उसका पता नीचे के श्लोकों से चलता है।

कुष्णतालोष्ठदशना रुक्षशृङ्गशफाश्च ये।

अशक्तदन्ता ह्रस्वाश्च व्याघ्रभस्मनिभाश्च ये

ध्वाङ्गशृङ्गसर्वणाश्च तथा मूषकसंनिभाः।

कुब्जाः काणाश्च खजाक्षाः केकराक्षास्तथैव च॥

अत्यन्तश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा।

नैते वृषाः प्रसोक्तव्या गृहे धार्याः कथंचन॥

जिसके ताल, ओठ और दांत काले हों, सींग रुखड़ी, दांत निर्बल, और कद टिंगना हो और जो काना या कुब्जा हो, सांड नहीं छोड़ने चाहिए।

आज हमें कैसे सांड चाहिए, इसका ज्ञान तो हमें पश्चिम के देशों से ही लेना होगा। इस लेख का तात्पर्य केवल यह दिखला देना है कि हमारे पूर्वज इस विषय पर कितना अधिक ध्यान देते थे।

चालजी गोविंदजी देशाई



अहिंसा (७)

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका २)  
एक प्रति का १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, मार्गशीर्ष वदि १२, संवत् १९८३  
गुरुवार, २ दिनम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग २

अध्याय २९

“जल्दी लौटो”

मद्रास से कलकत्ता पहुँचा। कलकत्ते में मेरी कठिनाइयों का कोई पार न रहा। वहाँ “ग्रेट ईस्टर्न” होटल में उतरा। मैं वहाँ किसी को पहिचानता न था। उस होटल में “डेली टेलीग्राफ” नामक पत्र के प्रतिनिधि एलथार्प से मुलाकात हुई। वे बंगाल क्लब में रहते थे। उन्होंने मुझे वहाँ निमंत्रित किया। उन्हें यह मालूम न था कि उस क्लब के दीवानखाने में किसी हिन्दुस्तानी के जाने की मुमानियत थी। यह बात उनको बाद को मालूम हुई। इस कारण वे मुझे अपने कमरे में ले गये। हिन्दुस्तानियों के प्रति स्थानिक अंग्रेजों की इस चिढ़ पर उन्हें खेद हुआ। उन्होंने मुझसे मुझे दीवानखाने में न ले जा सकने के कारण मुआफी माँगी।

‘बंगाल के देव’ से तो मिलना ही था—सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी से मिला। जिस समय मैं उनसे मिला उस समय उन्हें और मिलने वाले भी घेरे हुए थे। उन्होंने कहा:—मुझे भय है कि आप के काम में लोग रस न लेंगे। आप तो देखते ही हैं कि यहाँ ही कुछ कम विद्यमान हैं नहीं हैं। तौ भी, आप से जो हो सके वह तो आपको करना ही चाहिए। इस काम में आप को महाराजाओं की सहायता चाहिए होगी। ‘ब्रिटिश-इंडिया-ऐसोसियेशन’ के प्रतिनिधियों से मिलियेगा। राजा सर प्यारे मोहन सुकर्मी तथा महाराजा टैगोर से भी मिलियेगा। ये दोनों सज्जन मे इन लोगों से मिला। वहाँ मेरी हाल न गली। दोनों ने कहा: “कलकत्ते में सार्वजनिक सभा करना आसान नहीं है। लेकिन सभा करने का दारोमदार सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के ऊपर है।” मेरी कठिनाइयों बढ़ती ही जाती थीं। मैं “अमृत बाजार त्रिका” के कार्यालय में गया। वहाँ भी जो गृहस्थ मुझे मिले उन्होंने मान रक्खा या कि मैं कोई मँगता या भिखारी हूँगा। “बंगवासी” ने तो हद ही कर दी। मुझे एक घंटे तक तो बिल्कुल ही रक्खा। दूसरों के साथ तो अधिपति महोदय बातें

करते जाते और वे लोग चलते जाते, लेकिन वे मेरी तरफ तो आँख भी न उठाते। एक घंटा प्रतीक्षा कर चुकने पर मैंने अपना सवाल छोड़ा। तब वे बोले—“आप देखते नहीं कि मुझे कितना काम है? आप के जैसे तो हमारे पास अनेक लोग चले आया करते हैं। आप जाइए सो ही ठीक है; मुझे आप की बात सुननी नहीं है।” मुझे घड़ी भर के लिए दुःख तो जरूर हुआ; लेकिन अधिपति का दृष्टिबिन्दु मेरी समझ में आ गया। “बंगवासी” पत्र की ख्याति तो सुन चुका था। उसके अधिपति के पास लोग आते जाते थे सो भी देख रहा था। वे सब थे उनकी जान पहिचान वाले। उनका बंगवासी पत्र मैटर से भरपूर रहता था। दक्षिण अफ्रीका का तो उस समय लोग नाम तक मुश्किल से जानते थे। नये आदमी अपनी रामकहानी सुना कर चले जाते और उनका दुःख उनके लिए एक बड़ा भारी प्रश्न हो जाता। लेकिन समाचार पत्र के संपादकों के पास तो थोकबंद दुखिया ही रहते हैं। वेचारे उन सब के लिए क्या करें? और फिर दुखिया के देखे तो संपादक बहुत बड़ा होता है। लेकिन संपादक जानता है कि मेरी सत्ता तो मेरे कमरे की देहलीज के भीतर ही रहती है।

मैं हारा नहीं। अन्य अधिपतियों से मिलना जारी रक्खा। दस्तूर के मुताबिक अंग्रेजों से भी मिला। “स्टेट्समैन” और “इंग्लिशमैन” दोनों हमारे प्रश्न का महत्व जानते थे। उनसे लम्बी मुलाकातें कीं। मिस्टर सैण्डर्स ने मुझे अपनाया। उनके दफ्तर का दरवाजा तथा उनका पत्र मेरे लिए खुले थे। उन्होंने मुझे अपने मुख्य लेख में घटाने बढ़ाने तक की परवानगी दी। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हम दोनों में स्नेह पैदा हो गया। उन्होंने मुझे यथा सम्भव सहायता करने का वचन दिया। उन्होंने कहा कि आपके दक्षिण अफ्रीका पहुँच जाने के बाद भी पत्र लिखा फरूंगा और जो कुछ बन पड़ेगा करता रहूँगा। मैंने देखा कि उन्होंने अपने इस वचन का अक्षरशः पालन किया और अपनी तबीयत खराब होने तक उन्होंने मेरे साथ पत्रव्यवहार जारी रक्खा। मेरे जीवन में इस प्रकार के अनायास भीठे सम्बन्ध संख्याबद्ध रूप में स्थापित हुए हैं। मि० सैण्डर्स को मुझ में जो बात पसन्द आयी वह निरतिशयता एवं सत्यपरायणता थी। उन्होंने मेरी



जाँव करने में कसर न रखती । उस जाँव में उन्होंने देखा कि दक्षिण अफ्रीका के गोरी के पक्ष को निष्पक्षपात रूप से पेश करने में तथा उसकी कदर करने में मैंने कोई छुट्टि न रखी थी ।

मेरा अनुभव मुझे बतलता है कि विरोधी पक्ष के साथ न्याय कर के हम अपने साथ न्याय कराना आसान बनाते हैं ।

इस प्रकार की आकस्मिक सहायता मिलने के कारण मैं कलकत्ते में भी सार्वजनिक सभा कावाने की आशा रखने लगा । उसी बीच में दरबन से तार आया कि पार्लियामेण्ट की बैठक जनवरी में होगी “जल्दी लौटो” ।

इसलिए एक पत्र समाचार पत्रों में प्रकाशित कराकर तुरत चल देने की आवश्यकता जतलाकर मैं कलकत्ते से रवाना हुआ और पहली स्टीमर से ही वापिस जाने की तैयारी के वस्ते दादा अब्दुल्ला के बंधेवाले एजेंट को तार किया । दादा अब्दुल्ला ने हाऊ में ही ‘कूलेड’ नाम का जहाज खरीद लिया था इसलिए उन्होंने मुझे तथा मेरे कुटुम्ब को बिना किराये ले जाने का आग्रह किया । मैंने इसे धन्यवाद सहित स्वीकार कर लिया और मैं डिसंबर के शुरू में ‘कूलेड’ नामक जहाज में अपनी धर्मपत्नी, दो बेटों तथा अपने स्वर्गवासी बहिचोई के एकलौते पुत्र को लेकर दक्षिण अफ्रीका के लिए दूसरी बार रवाना हुआ । इसी स्टीमर के साथ दूसरी स्टीमर “नादरी” भी दरबन के लिए रवाना हुआ । उसके एजेंट दादा अब्दुल्ला थे । दोनों स्टीमरों में कुल मिलाकर कोई ८०० हिन्दुस्तानी होंगे । उनमें से आधे लोग तो ट्रांसवाल जाने वाले थे ।

( नवजीवन )

मोहनदास करमचंद गांधी

[ दूसरा भाग खतम हुआ ]

## गोरक्षा

एक सज्जन लिखते हैं:—

“जैसा कि अधिकांश हिन्दू स्वभावतः मरसूस करते हैं कि गोरक्षा हर हालत में की जानी चाहिए, मैं भी ऐसा ही खयाल करता हूँ । मैंने प्रायः प्रायः के दो उत्तरी जिलों के अकाल पीड़ित स्थानों में भरी जवानी में भूखों मरती गायों की दुर्दशा देखी थी जो कि चमड़े के मुसलमान व्यापारियों के हाथ छुड़ की छुड़ उन स्थानों में बेच डाली जा रही थी ।

“मालूम होता है कि केवल हिन्दुओं के शास्त्रों में ही अपने माननेवालों पर गोरक्षा का फर्ज बतलाया है । मैं इसके तत्व को समझने की कोशिश करता आया हूँ । अगर गोरक्षा आवश्यक है महान् स्वार्थ के ही खयाल से यानी जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक लगातार फयदेमंद होने की वजह से, तो गोरक्षा का भाव विश्व भर में फैल जाना चाहिए था, न कि हिन्दुओं में ही परिमित रहता क्योंकि मनुष्य जाति प्रकृति से ही स्वार्थिनी है । अगर इस के प्रतिकूल गाय की रक्षा करना उसकी दीनता और आपत्तिरहित स्वभाव के कारण जरूरी है, तो दूसरे भी जानवर हैं, जैसे कि भैंस और शिरन जो कि मनुष्य के द्वारा रक्षित किये जाने के उतने ही हकदार हैं । तब फिर गाय में खास गुण कौन सा है जो कि सिर्फ हिन्दुओं को ही मुकीद है या जिसे सिर्फ हिन्दू ही जानते हैं और जो कि अन्य पालतू जानवरों में नहीं है । अगर हिन्दू लोग जिनसे कि शाकाहारी और दूसरे हिन्दू बाहर नहीं हैं, भैंसों, बकरों और भेड़ों इत्यादि को मारने के हकदार हैं (आहार करने या बलिदान के लिए) तब हमको क्या हक है कि हम मुसलमानों के आहार या बलिदान के निमित्त गौओं के कत्ल करने से चिढ़ें ? क्या उसी हालत में जब कि इस हिन्दू लोग स्वयं पशुधर्म—स्वाहा आहार चाहे बलि के लिए

करना छोड़ दें तो गाय को न मारने की हमारी अपील (मुसलमानों के प्रति) ज्यादा मुनासिब और जोरदार न होगी ?”

पत्र-प्रेषक महोदय ने जो दलील पेश की है उसके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है । लेकिन मनुष्य कोरे तर्क से शासित नहीं होता है । वह अनेक शक्तियों से संचालित होनेवाला जीव है । इसलिए उस पर बहुत सी बातें अपना प्रभाव डालती हैं और अमुक काम के करने या न करने में बहुत से विचार उस पर अपना असर डालते हैं । अंतक (तर्क) के रू से तो अगर कोई हिन्दू गाय की रक्षा करता है, तो उसे अन्य पशुओं की भी रक्षा करना चाहिए लेकिन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम उसकी गोरक्षा पर एनराज महज इस बिना पर नहीं कर सकते कि वह अन्य पशुओं को नहीं बचाता है । इस लिए सिर्फ यही सवाल विचार करने के लिए रद्द जाता है कि आया वह गोरक्षा करने में उचित करता है या अनुचित और अहिंसा में विश्वास रखने वाला तो गोरक्षा करने में उस हालत में तो गलत रास्ते पर है ही नहीं जब कि पशुओं को न मारना अमूमन तौर पर फर्ज मान लिया जाय और इस वस्ते पर एक धर्माहिंद हिन्दू प्रत्येक मनुष्य ऐसा करता है ।

पशुओं को न मारने का फर्ज साधारणतया और इसलिए अभी रक्षा करना एक निर्विवाद बात मान लेनी चाहिए । तब यह हिन्दू धर्म के लिये सराहनीय बात हो जायगी कि उसने गोरक्षा को कर्तव्य समझ कर उठा लिया है । गौ तो उसका एक चिह्न स्वरूप है और उससे आशा की जानी है कि वह कम से कम गोरक्षा तो करेगा ही । लेकिन, जैसा कि मैं आगे पिछले लेखों में बतला चुका हूँ कि वह इस प्रारम्भिक कर्तव्य-पालन से भी च्युत हो रहा है ।

गोरक्षा करने के लिए प्रेरणा करनेवाला भाव निःस्वार्थमय नहीं है, हालांकि इस में कोई शक नहीं कि स्वार्थ—भाव उसी आ जल्दर जाता है अगर वह निःस्वार्थमय होता तो गाय, पूर्ण लाभ देना बंद करते ही, मार डाली जाती जैसा कि अन्य देशों में होता है । भारतवर्ष में सब लोग—कम से कम हिन्दू—गाय को न मारेंगे चाहे वह उनपर भारी बोझा स्वरूप ही क्यों न हो । लूली लैंगडी और अनुपयोगी गायों को पालने के निमित्त अगणित गोशालाएं जो कि दयार्थिचित्त पुरुषों ने स्थापित की हैं, उस प्रयत्न को डंके की चोट जाहिर कर रही हैं जो कि किये जा रहे हैं । यद्यपि आज उद्देश की महत्ता दो देखते हुए ऐसी संस्थाएं कम हैं तथापि उस सङ्कति के पीछे जो भाव छिपा है उसका मूल्य तो ऊंचा ही बना है । अतएव गोरक्षा का रहस्य मेरे लिये महान् है । उससे पशु—जगत बड़ा तक कि जीवित रहने का स्वतंत्र संबंध रखता है—तुरत ही मनुष्य के धरातल के बाहर आ जाता है ।

लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, हिन्दूधर्म का यह अंग नहीं है कि गोरक्षा में विश्वास न रखने वालों के द्वारा गोबर जवरहस्ती रोक जाय । अहिंसा धर्म का पालन जहां तक मनुष्य के लिए संभव है, कर के ही हिन्दू लोग मुसलमानों तथा शेष जगत को अपने विचारों के अनुकूल बना सकेंगे । उनको इस महान् सिद्धान्त पर स्वयं चलने पर भरोसा रखना चाहिए और उसकी जोरदार अपील बाहरी संसार से करनी चाहिए । इस सिद्धान्त के पालन करने वाले बाहर के लोगों को शक्तिशाल से बदल नहीं सकते, हाँ, अलवत्ता अपने जीवन के प्रभाव से जरूर कर सकते हैं । हम अहिंसा की अद्वितीय शक्ति को जब कि वह पूर्ण हासिल काम में लायी जावे, समझते ही नहीं ।

( अं० ६० )

मोहनदास करमचंद गांधी



## निर्वलता में

( मैं जनरल स्मट्स के द्वारा एमिली हाब हाउस पर दिये गये उस महान् भाषण को यहां देने के लिए कोई क्षमा प्रार्थना नहीं करता जो कि उन्होंने उस महिला का मृतक संस्कार करते समय ब्लोमफोनटेन में दिया था । उस भाषण से यह स्पष्ट था कि एक चरित्रवान् व्यक्ति क्या कर सकता है और एक स्त्री-जिसे भूल से अबला कहते हैं—क्या कर सकती है और सच्ची देशभक्ति के क्या अर्थ हैं ।

मो० क० गांधी )

उस अवसर पर जनरल स्मट्स ने कहा था—

“ लोग आज दक्षिण अफ्रीका के कोने कोने से, एमिली हाब हाउस के प्रति प्रेम और आदर का अंतिम प्रदर्शन करने आये हैं । यह उनकी स्पष्ट इच्छा थी कि उसका मृतक शरीर इसी भूमि में दफन किया जाय । वे इस भूमि का एक अंग बन गयी थी । यहीं उनके जीवन की सर्वोत्तम सेवा अर्पित की गयी थी । वह सदा के लिये इस देश के लोगों के साथ एकरूप हो गयी थीं । हमारे इतिहास के महत्वपूर्ण अवसरों पर हम लोग एक साथ थे और मृत्यु में भी हम पृथक् न होंगे वल्कि सदा के लिए अभिन्न । मिश्र हाब हाउस सन् १९०१ ई० के काली घटा के दिनों में हमारे मध्य आयी थीं । उन्होंने दश वर्ष बाद हम लोगों को हमेशा के लिए छोड़ दिया । उस समय उनका शरीर कृपया और ऐसे रोग से पीड़ित था जिसे वे कभी आराम न हो पाईं । उन महत्वपूर्ण दश वर्षों में उन्होंने अपना सर्वस्व हमें दे दिया था । उन्होंने अपना स्वास्थ्य हमें भेंट कर दिया था और अपनी आत्मा भी अर्पित कर दी थी लेकिन उनका काम तथा उनका त्याग व्यर्थ नहीं गये । उनके कार्य ने स्थायी प्रभाव पैदा किया है । उनका नाम हमारे इतिहास में सदा अंकित रहेगा ।

“ आज हमारे लिए यह जरूरी नहीं है कि हम उन शोकजनक घटनाओं का जिक्र करें जिनके फल स्वरूप वे पहले पड़ल पधारीं । पचीस वर्ष के बाद हम लोगों को जिन्होंने उन घटनाओं में किसी न किसी रूप में भाग लिया था वे घटनाएँ ज्यों की त्यों याद हैं ।

जो कुछ हो मगर युद्ध आखिर एक भयंकर वस्तु है और गत १२ वर्षों में हमने युद्ध को उसके बुरे से बुरे रूप में देखा है । हम पृथ्वी पर योरोपीय सभ्यता की पुरानी मातृभूमियों की ईसाई जातियों के मध्य नरक को ताण्डव करते देख चुके हैं । गत महायुद्ध के समय जो क्रेश और यातनायें उठानी पड़ी थीं उनके सामने, २५ वर्ष का हमारा दक्षिण-अफ्रीका-युद्ध कहीं छोटा और कम भयंकर दीख पड़ता है । क्या आज हम एंग्लोबोअर संग्राम की घटनाओं को अधिक विशाल दृष्टि से तथा वास्तविक रूप में देख सकते हैं ?

“ दक्षिण अफ्रीकावाले हमारे मुड़ीभर गोरों की निगाह में मनुष्यों के प्राण सदा बहुमूल्य रहे हैं और कंसेंट्रेशन ऐरिया में की दुःखद एवं निवारणीय शिशुमृत्यु से हम लोगों को बहुत धक्का पहुँचा । सैनिक अफसरों के द्वारा गलत रास्ता अख्तियार किया गया था और उसका फल वह हुआ जिसका कि क्या खयाल न किया गया था और न जिसके करने का मंशा तक न था । लेकिन इस मूल से लोगों के जीवन में एक समूची संतति के नष्ट हो जाने का खतरा था ।

“ यह वही समय था जब कि एमिली हाब हाउस के दर्शन हुए । हम लोग संसार में अकेले थे—मित्रहीन थे । संसार के सबसे बड़े साम्राज्य के विरुद्ध हम एक छोटे से राष्ट्र—खड़े थे । और तब एक छोटा हाथ—एक स्त्री का हाथ—उस घोर संकट के समय जब कि हमारी जाति का सत्यानाश प्रतीत हो रहा था आगे बढ़ा । वह फरिश्तों की तरह देवदूत की भांति दृष्टि गोचर

होई और आधे गोमह है कि वे एक अंग्रेज महिला थीं । यह बात उस आपत्तिकाल के तथा दक्षिण अफ्रीका के मावी इतिहास के लिए ईश्वरीय थी कि यह महान् कार्य एक अंग्रेज महिला द्वारा किया जाय । वे अपनी जातिवाले लोगों से उस समय भी कह सकी थीं जब कि युद्ध और देशभक्ति का जोश बड़ा चढ़ा था । उन्होंने कहा और ब्रिटिश सरकार ने उसे सुना ।

“ अब मुझे दो शब्द और कह कर समाप्त करने दो । मेरा खयाल है कि यह शब्द एमिली हाब हाउस के विरों और आदर्शों को प्रकट करेंगे क्योंकि मैं उनको जानता था । उनके जीवन की दो बड़ी बड़ी बातें मुझे अब तक याद हैं । पहली बात उस शक्ति और गंभीर प्रभाव के बारे में है जो कि स्त्रियाँ संसार के सुआमियों में रखती हैं । एमिली हाब हाउस का जीवन उस शक्ति का ज्वलंत उदाहरण है । वह ए० भारी संग्राम था जिसमें लाखों आदमी लगे हुए थे और जिसमें पृथ्वी का सबसे बड़ा साम्राज्य अपनी सारी शक्ति से जुटा था । उसमें एक अपरिवर्तित स्त्री कहीं से आती है और समुचित मार्ग का अनुसरण करती है और इसके फल स्वरूप दक्षिण अफ्रीका का इतिहास सदा के लिए बदल जाता है । दक्षिण अफ्रीका के भविष्य के लिए एंग्लोबोअर युद्ध का महत्व तथा गर्ज इय अंग्रेज महिला के द्वारा सदा के लिए बदल गया और वह परस्पर में घनिष्ठ संबंध रखने वाली जातियों के बीच समझौता का महान् चिह्न बन जाती हैं जिनके मध्य कभी वैमनस्य होना ही न चाहिए था ।

“ मेरा दूसरा खयाल मुझे, एक दूसरी अंग्रेज महिला के शब्दों की याद दिलाता है, जो महायुद्ध के अवसर पर बोले गये थे । मेरा मतलब एडिथ कैवेल के शब्दों से था जिन्होंने जापूम के रूा में गोली मोरे जाने के पहले मरते समय कहा था कि ‘ देशभक्ति ही यथेष्ट नहीं है । ’ उस महासमर में मुझे वही सबसे अधिक सच्चे शब्द मालूम होते हैं, कुछ हद तक राष्ट्रपति विलसन के भी भाषण से अच्छे मालूम होते हैं जिसे स्तम्भित हो कर खून से लथपथ संसार ने सुना । इसमें गम्भीरतम अर्थ भरा था और उस अनुलनीय महाविपत्ति का संदेश था । संसार के भावी के लिए देशभक्ति ही यथेष्ट नहीं है । यह आज महान सुन्दर और शुद्ध होने पर भी यथेष्ट नहीं है और अगर केवल एक देशभक्ति पर ही, हमारा आगे का कर्तव्य निश्चित किया जाता रहा तो, संसार निश्चय ही उसी प्रकार विनष्ट हो जायगा जैसे महासमर में वह करीब २ हो ही चुका था ।

“ खास कर हम बोअर लोगों को इस शिक्षा पर और भी अधिक ध्यान देना चाहिए । हमारी अल्प संख्यक जाति को बहुत कष्ट सहना पड़ा है और इस लिए हम देश भक्ति को सब गुणों से बड़ा मानने को तैयार हो जाता है । एमिली हाब हाउस को हम न भूलें । उसके नस नस में अंग्रेज महिला का गुण भरा हुआ था । उसे अपनी जाति, उसके महा संदेश और इतिहास पर अभिमान था । मगर उसके लिए देशभक्ति ही काफी न थी । जब उसके देश ने नान्ति के ऊँचे नियम वे विरुद्ध काम शुरू किया तब उसने यह नहीं कहा कि, ‘ उचित करे या अनुचित, मगर मेरे देश को मुझे सहायता करनी ही होगी । ’ उसने अपनी सारी शक्ति से हमारी सहायता की और ऐसा कर के हमारी ही अमर सेवा न की किन्तु अपने इंग्लैंड और सारे संसार की भी सेवा की । जीवन की ऊँची और बड़े चोखों के प्रति अपनी इस भक्ति के लिए उन्हें बहुत क सहना पड़ा । ”

( यं० इ० )

मोहनदास क मंचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष वदि १२, संवत् १९८३

## अहिंसा

(७)

पत्र तो अभी थोक के थोक चले ही आते हैं किन्तु एक भी नयी इलीक या नया विचार दिखाई पड़ने के बदले उनमें बड़ी पुराने बवाल पुछे जाते हैं और वे ही इलीकें दी जाती हैं इसलिए जो लोग इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं उनसे मेरी विनती है कि इस लेख माला को वे फिर से पढ़ जायें। ऐसी सलाह देते हुए मुझे कोई संकोच नहीं होता क्योंकि उनमें मैंने उतावली में निश्चित किये गये विचार नहीं दिये हैं किन्तु बहुत साल के अनुभव दिये हैं। उनमें मैंने कोई नया सिद्धान्त उपस्थित नहीं किया है किन्तु पुराने सिद्धान्तों को ही मूर्तिमन्त करने का प्रयत्न किया है। वे मूर्ति मन्त हुए हों या न हों किन्तु चूँके उसमें मेरे प्रामाणिक विचार हैं और मेरे पास से अहिंसा के गूढ़ प्रश्न का निर्णय कराने की आशा कितने एक भाई, बहन रखते हैं इसलिए मैं उनसे यह लेखमाला फिर से बाँच लेने की सिफारिश करूँगा। कई एक लेखक मेरे अधूरे वाक्य की ही लिख कर उससे घबरा कर कैफियत माँगने लगते हैं।

एक भाई कहते हैं कि 'आप तो कुत्ता जाति की जब खोदना चाहते हैं।' मैंने तो ऐसा कहीं नहीं कहा है। मैं तो इस जाति की रक्षा के लिए ही कहता हूँ। मैंने तो इतना ही कहा है कि ऐसा प्रसंग उपस्थित होने पर ऐसे कुत्ते को मारा जा सकता है। इतना ही कहने में दोष हो तो यह दूसरी ही बात है मगर बलीकें तो सब इस मर्यादित बंध के कथन के ऊपर ही रचनी चाहिएँ।

कितने एक भाई मेरे पहले के उन बच्चों को लिख कर जो उन्हें तब पछन्द पड़ते थे मेरे हाल के विचारों में पहले के विचारों से विरोध बताते हैं। मैं ऐसा विरोध नहीं देखता। अहिंसा का पक्षपाती बैसा मैं पहले था बैसा आज भी हूँ।

पुष्प-पंखड़ी जिस से दूखे

जिनवर की है वहाँ मनाही

यह अब भी पहले की भक्ति से गा सकता हूँ किन्तु पहले जैसे वनस्पतियों फलों और फलों का उपयोग किया करता था वैसे ही अब भी करता हूँ किन्तु उस उपयोग के पीछे यह भाव छिपा हुआ है कि वैसा उपयोग जितना कम हो सके उतना कम करूँ और वेदाध्याय को क्षीण करता रहूँ।

मगर कोई कहते हैं कि, 'फूल और कुत्ते में मिलान ही क्या!' यह आक्षेप मैं सहन कर रहा हूँ। ऐसे मिलान का प्रसंग उपस्थित हो सकता है। स्वच्छन्द विहरने के लिए मिलान किया हो तो वह अधोगति को पहुँचावेगा और धर्म समझने या समझाने के लिए किया हो तो वह शोभा पा सकता है। मेरे मिलान का हेतु निर्मल है इस लिए मैं सुरक्षित हूँ।

अहिंसा—धर्मियों की पामरता मुझे दुःखदायी हो पड़ी है। अहिंसा अयोग्यता नहीं है। अहिंसा में शक्ति का अभाव नहीं। अहिंसा प्रचंड शक्ति है। उसका पूरा तेज हम न देख सकते न माप सकते हैं। हम में से किसी किसी को ही उसकी झाँकी भर मिलजाती है।

अहिंसा है जाग्रत आत्मा का गुण विशेष। वह दूसरे गुणों के मूल में रही हुई है। इसलिए ईश्वर, विवेक, वैराग्य, तपश्चर्या, समता, ज्ञान के बिना उसका पालन असम्भवित है। उसमें कायरता से नहीं चलता। जिन्हें अहिंसा समझनी है उन्हें हिंसा में समायी हुई अहिंसा को समझना ही होगा।

इस वाक्य का अनर्थ भले ही हुआ करे। ईश्वर के नामका अनर्थ कहां नहीं हुआ? उसके नाममें हम क्या राक्षस को नहीं पूजते? उसके नाम पर थोड़ा पाप, थोड़ा खून हुआ है? इससे क्या ईश्वर के नाम को बढ़ा लगेगा? इससे क्या ईश्वर के नाम को हम खून के नीचे छिपा लेंगे?

कर्ममात्र सदोष है क्योंकि उसमें हिंसा समायी हुई है तौभी कर्म के क्षय के लिए कर्म ही करते हैं। देह मात्र पाप है तौभी देह को तीर्थक्षेत्र बना कर देह मुक्ति की तैयारी करते हैं। वैसे ही हिंसा को भी समझना चाहिए।

पर यह हिंसा हो कैसी? यह स्वाभाविक हो, कम से कम हो, इसके पीछे केवल कठणा हो, इसके पीछे विवेक हो, मर्यादा हो, इसके विषयमें तटस्थता हो, यह सहजप्राप्त धर्म हो।

इस विचारसारिणी से चलने पर दिनदिन हिंसा कम होती जायगी। इससे जिस हिंसा का उद्देश अहिंसा का क्षेत्र बढ़ाना हो, जो हिंसा अनिवार्य हो पड़े, जो ऐसी हो जिसके लिए परिणाम का विचार किये बिना प्रयत्न किया जा सके, वह हिंसा क्षन्तव्य है, कर्तव्य भी हो सकती है। इसलिए यह कहना सरासर अनुचित नहीं है कि हिंसा में अहिंसा हो सकती है। इतना कहने के बाद, आश्रम में इस प्रश्न का किस प्रकार हल होता था रहा है यह समझा कर इस लेखमाला को समाप्त करता हूँ।

आश्रम में कुत्तों का प्रश्न उनके जन्म से ही खड़ा रहा है। महाजन की प्रवृत्ति से उनका उपद्रव बढ गया है। यह उपद्रव बहुत कष्ट से सहन किया जाता है। पगले कुत्तों का बंध आश्रम में होता है। ऐसा अवसर दश वर्ष में दो या तीन बार आया होगा दूसरा कोई कुत्ता नहीं मारा गया। उनको जहाँ तहाँ खाना देना बंद किया है। इस नियम का अगर पूरा पालन हो तो मैं देखता हूँ कि कुत्ते और वैसे ही हम सब भी सुखी होंगे किन्तु उसका पालन पूरापूरा हो नहीं सकता। हर एक आश्रमवासी उसे समझ नहीं सका है और समझने के बाद भी सभी कोई नियम के पालन में पूरे सचेत नहीं हैं। खैर, आश्रम में रहने वाले मजूर भला इस नियम का पालन क्योंकर करें?

लाचार कई एक कुत्तों को पालना पड़ता है। ऐसी दो कुत्तियों और उनके बच्चों का पालन इस समय हो रहा है। बच्चों के लिए, जिसमें खूब गर्मी मिले ऐसी पेटी वा टोकरी रखनी पड़ी है। उनको दूध दिया जाता है। मा के लिए खाद्य भोजन बनता है।

दूसरी ओर महाजन से भटकते हुए कुत्तों को ले जाने की विनती की है। उनको यह स्वीकार भी हुई है। किन्तु महाजन की गाड़ी अभी आयी नहीं है।

वैसे ही कुत्तों के प्रति भी धर्म समझाया है। मगर इस विषय में सब को थोड़ा बहुत अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार करने की छूट है। मारने का धर्म मेरे पाससे कोई ग्रहण न करें, मारने की इजाजत ले सकते हैं। इसे मैंने मर्यादा दे कर समझाया है। सभी अपनी अपनी गरज के अनुसार समझ कर उसका पालन करते हैं और करेंगे। मेरा अभिप्राय स्पष्ट न समझा हो तो उसे समझाने के लिए आश्रम के आचार का उल्लेख किया है जो इस अभिप्राय के अनुसार है।







इस हालत में अमदनी बहुत बढ जाती है।  
जैसे के फैलाव में सबसे बड़ी कठिनाइयाँ यह पडती हैं कि  
(१) बारीक कपडे की फैशन चल निकली है, (२) मिल के  
और विशेष कर के विदेश के कपडों की बनिस्सत खादी का  
लागत खर्च अधिक होता है। अगर दूसरी कठिनाई दूर की जा  
सके तो गरीब लोग तुरत ही अपने इस घर उद्योग की सहायता  
करने पर आमादा हो जायेंगे और फिर इसके लिए बेहिसाब बिक्री का  
हरबाजा खुल जायगा। इस लिए इस उद्योग को मिल के सूत  
और कपडे के विरुद्ध रक्षा की जरूरत है। अभी यह संरक्षण  
धनिकों की देशभक्ति के नाम पर मिलता है। सरकार की ओर  
से भी धन दे कर यह संरक्षण किया जा सकता है जिसमें अधिक  
माल तैयार हो सके और दाम घटे। उदाहरणार्थ जैसे, तामिल  
नाड की ८ लाख की खादी की उत्पत्ति अगर दस गुने बढा दी  
जाय, और यह सर्वथा संभव है, तो इसके लिए २० लाख  
रुपयों की सालाना सहायता दरकार होगी। अगर यह संरक्षण कुछ  
साल तक जारी रहे तो, साल दर साल विदेशी माल की खपत  
के बदले घर के माल के व्यवहार से गरीबों के पास इतना धन  
जमा होता जायगा कि वे पीछे अधिक दाम दे कर भी खरीदने के  
काबिल हो जायेंगे। और यह सहायता ही अनावश्यक हो जायगी।

मगर हाल में, यहाँ की जैसी सरकार है, यह उमेद नहीं की  
जा सकती कि यह सहायता मिल सकेगी। इसलिए अब यह भार  
धनिकों के ऊपर है कि वे दान देवें जिसमें गरीब लोग बेरोजगारी  
से बचें। उस बेरोजगारी का जवाब आर्थिक सिद्धान्तों से नहीं  
दिया जा सकता जिसका तुरत हल होना परमावश्यक है। अगर  
सरकार यह खर्च बरदास्त करने को तैयार नहीं है तो अब हर  
एक समाज का जिसे पक्की नींव पर जीना मंजूर है यह कर्तव्य है  
कि यह खर्च अपनी खुशी से बरदास्त करे।

सरकार की ओर से पूँजी के लिए कर्ज देकर, उत्पत्ति और  
बिक्री के लिए सुयोग पैदा कर, रेलवे भाडा में कमी कर, और  
तुंगी और दूसरे करों के बारे में विशेष व्यवहार कर के, सहायता  
तुरत दी जा सकती है और दी जानी चाहिए।

अपने सब विभागों में बर्तियों, अस्पतालों वगैरह के लिए सब  
जरूरी कपडा हाथकता और हाथबुना ही खरीद कर और अपने  
अफसरो को ऐसीही कपडों के घर का बुना कपडा पहनने का  
उदाहरण उपस्थित करने में प्रोत्साहन दे कर सरकार सहायता कर  
सकती है।

एक सहायक धंधा लुटाने के अलावा जिसमें गरीब किसानों का  
थोडा बहुत धन बच और बढ सकेगा एक और काम किया जा  
सकता है। अगर शराब के ऊपर पैसा फेंकने के अवसर और  
प्रलोभन दूर कर दिये जायें तो हमारे किसान अब की अपेक्षा कम  
गरीब होंगे। अगर और कुछ नहीं किया जा सकता तो कम से  
कम इतना तो जरूर ही किया जा सकता है, और वह है मध्यवर्ग  
और उच्चवर्ग के लोगों से एक निवेदन जिन्होंने गरीबों की शराब-  
खोरी पर राष्ट्रीय आय व्यय का हिस्सा निर्भर बना रखा है।  
यहाँ साधारण रीति से शराबबन्दी पर मैं जोर नहीं दे रहा हूँ।  
शराब के बिल्कुल रोक का विरोध या स्थगित करने की बात कई  
कारणों से और देशों में संभव है किन्तु उस देश में जहाँ बहुत  
अधिक लोग गरीब हैं और जहाँ लोगों को लाचार बेरोजगार रहना  
पडता है, शराब खतरेनाक वस्तु है यहाँ तक कि जहर है, जिससे  
प्रजा की बचाना, सरकार का धर्म है।

किसान जियो को कारखानों में काम देने का मैं विरोध करता  
हूँ। हम उनके लिए ऐसा धंधा ढूँढ सकते हैं और हमें ढूँढना चाहिए,

जिसके लिए उन्हें दूर तक अपने कुटुम्बवालों से दूर न  
पडे। दीहातों के पास ओटा मिलें या दूसरी मिलें खोल  
दीहातों की बेरोजगारी की समस्या को हल करने के नाम  
हम इस लिए चौंक उठते हैं कि ऐसे कारखानों से वहाँ की  
के चारित्र्य पर पडनेवाले प्रभाव का हमें अनुभव है।

(यं. इं.)

च० राजगोपालाचारी

## टिप्पणियाँ

भटकते कुत्ते बनाम गाँव के कुत्ते

एक मित्र लिखते हैं:—आप भटकते कुत्तों को मार  
की सलाह देते हैं। क्या आप उनमें परमोपयोगी ग्रामीण  
को भी शामिल करते हैं ?

हरगिज नहीं। मैं इस बात को 'नवजीवन' के किसी  
अंक में पूर्ण रूप से स्पष्ट कर चुका हूँ कि गाँवों के कुत्ते  
से सस्ते और सबसे ज्यादा फायदेमंद पुलिस हैं जो गाँवों को  
और बाहरी कुत्तों तथा दिन में अन्य जानवरों से रक्षित रखते

लेकिन मैंने भटकते कुत्तों तक का अधातु नाश नहीं  
है। उनको मारने के पहले अन्य बहुत सी तरकीबें काम में  
लेनी चाहिए। मैंने जिस बात पर जोर दिया है वह यह है  
म्युनिसिपैलिटियों के लिये ऐसा कानून बन जाय जिसके  
अन्तर्गत बिना मालिक के कुत्तों को मार डालने का अधिकार  
हो जाय। सादी सी कानूनबन्दी से कुत्ते निर्दय अवहेना  
जायेंगे और महाजन सचेत रहने लगेंगे। इसका तात्पर्य  
पूर्ण और विवेक रहित दानशीलता को रोकना है। उस दान  
से जिसके कारण कुत्ते और वे मनुष्य भी जो भीख माँगते  
हैं—पलते हैं, उन भिखारियों तथा उस समाज को नुकसान  
है, जो इस प्रकार की मिथ्या दानशीलता को बढावा देता

(यं० इं०)

मो० क०

## गौरक्षा और जैन

जैनो के उपासक दशांगसूत्र में चौबीसवें और अन्तिम  
महावीर स्वामी के दश मुख्य उपासकों अथवा श्रावकों का  
दिया हुआ है। इसमें प्रधानतः तो उनका आध्यात्मिक  
ही है। तौनी हरेक के पास कितनी कोटि धन और कितने  
थे यह भी बतलाया गया है। दश हजार गाय को एक  
गोकुल समझते थे। इसी हिसाब से राजगृही के महाश्वर  
वारणसी के चूलनीपिता के पास आठ आठ गोकुल  
अस्सी हजार गायें थीं। चम्पा के कामदेव, वारणसी के  
कामपिल्य के कुण्डकौलिक तथा आलम्भिया के चूलशतक  
छह गोकुल अथवा ६०, ६० हजार गायें थीं। बालिक  
आनन्द, श्रावस्ती के नन्दिनीपिता तथा शालिनीपिता के  
गोकुल अर्थात् चालीस चालीस हजार गायें थीं और  
के शकडाल को एक गोकुल अथवा दश हजार गायें थीं।  
की श्री रेवती के दहेज में आठ गोकुल याने अस्सी हजार गायें  
आनन्द श्रावक ने महावीर स्वामी के पास जब श्रावक  
तब उसके परिग्रह परिमाण में उसका गोधन चार  
चालीस हजार गायों का माना गया था।

आज के श्रावक श्राविका इन महाजनों का  
यथाशक्ति अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो।  
धन के लोभ में अनाज रई इत्यादि जीवन की आवश्यक  
अपने हाथ में करने की कोशिश करते हैं। पशुओं के  
आदमी के ऊपर उपकार करने के लिए वे डोर को



१ दिसम्बर, १९२४

हैं करें तो अनाज, तई को अपने हाथ करने के पाप का कुछ प्रायश्चित्त हो जाय। एक वर्षई में ही अगर दयाधर्मी लोग बीस हजार दुधार पशु रखें तो इसके फलस्वरूप हर साल दश हजार से जातिवन्त तथा जवान ढोर बच जायें। पञ्चूषण के दिन (जैनों के पर्व) ढीलेपन के साथ दश पांच जीव छुड़ाने जाना वैसा ही है जैसे सिर काट कर बाल की रक्षा करना। शोभा तो इसमें है ही नहीं। इससे केवल कसाई को ही उत्तेजना मिलती है और हमारे हिस्से अधर्म और आत्मवचना आती है। सच्ची रीति से ढोर के सारे बाजार पर कब्जा कर कसाई का धन्धा ही खोद फेंकना चाहिए। निर्दय ग्वाला ढोर को बरबाद कर कर के कसाई को लोपाही करता है और पीछे से हम उसे छुड़ाने की बेकार कोशिश करते हैं। यह तो खाद के ढेर पर दिया जलाने की सी बात हुई। इस तरह इस दूषित चाल का किसी समय अन्त ही न होगा। इससे तो अच्छा है कि ढोर को एक बार हाथ में लेकर उसके बाद निश्चिन्त होकर बैठ जायें। पैवंद लगाने से पार न लगेगा। काम तो यों करना जिससे फिर करने को कुछ रहे ही नहीं।

दे० वा०

(नवजीवन)

विहार में खादी

अभी विहार प्रान्त से सूचना मिली है कि वहां खादी का दाम सैकड़े १२३ घटा दिया गया है। इस प्रकार ५) रुपये जोड़ी दाम की होती अब ४ रुपये ६ आने में ही मिलती है। कपड़े का स्टॉक भी बहुत काफी है और सभी प्रकार के कपड़े मिल सकते हैं।

### गलत बयानी.

'उन्नीसवीं सदी और उसके बाद' नामक बिलायती समाचार पत्र में मेरे विषय में एक लेख निकला था। उसे एक मित्र ने मेरे पास भेजा था। मैंने उसे देख लिया मगर उसमें इतने अधिक गलत बयान थे कि मैंने उसे पूरा पढ़ना बेकार समझा और उसमें दी हुई गलत खबरों का विरोध करने की भी मुझे इच्छा न हुई। जो लोग उसपर विश्वास करते हैं उनपर मेरे विरोध का कुछ असर पड़ेगा नहीं। मगर अब वकालत के एक विद्यार्थी जिन्हें इस आरोपों में कोई विश्वास नहीं है, किन्तु उनसे चोट बहुत पहुँची है, वे खास बातों के विषय में लिखने को कहते हैं।

वे आरोप हैं :

"गांधी के अधीन किसी स्कूल में ऊँची जाति के किसी आदमी ने अपने लड़के को छोटी जातिवालों के साथ पढ़ाने से इनकार किया और शिक्षक ने भी नीची जाति के लड़के को पढ़ाना इनकार किया। गांधी के पास यह झण्डा पहुँचा और उसने ऊँची जातिवालों की ही बात कायम रखली। उसके यह कहने से कि अगर उसकी चलनी तो वह अछूतों की सहायता करता, उसे माफ नहीं किया जा सकता।"

चौदपुर के कुलियों के सम्बन्ध में यह है :

"उस समय के अखबारों में छाया था कि गांधी इस समय गांधी में चंदा वसूल करने में लगे हुए हैं और ठीक इसी तत्कालीन में ... .. इत्यादि।"

ये दोनों बातें गलत हैं। जिन्हें अछूतों के बीच मेरा काम मालूम है, वे जानते हैं कि दोस्ती और सार्वजनिक कामों के लिए चन्दे खोने का खतरा मैंने इस लिए उठाया है कि राष्ट्रीय आंदोलन में अछूतों के लिए कोई फर्क उठाने का मैंने विरोध किया है। चौदपुर की घटना के सम्बन्ध की बात आधी सच्ची है। जब मद्रास शुरू हुआ तब मैं वहां नहीं गया किन्तु लेखिका का बतलाया

हुआ कारण तो सरासर झूठ है। मैं सर्वव्यापी नहीं हूँ। मेरे लिए एक सीमित ही कार्यक्षेत्र है। जो काम मेरे सामने आ जाता है उसमें लग जाता हूँ। मैं वहीं जाता हूँ जहां मेरी जरूरत होती है और मैं अपने को कुछ करने के योग्य समझता हूँ। जैसे आजकल जहां २ हिन्दू-मुसलिम झगड़े होते हैं वहां २ मैं दौड़ा नहीं जाता और इसका कारण यह नहीं है कि मैं जाना नहीं चाहता या काम में बर्बाद रहता हूँ बल्कि इस कारण कि मैं अपने को असमर्थ समझता हूँ। उस समय मैं जो काम कर रहा था, उससे और मेरे चौदपुर न जाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर वहां जाना मुझे जरूरी मालूम होता तो हर हालत में मैं वहां जाता ही।

कानून के ये विद्यार्थी और दूसरे लोग जिनका मुझपर अनुराग है, वे मेरे विषय में गलत खबरें देख कर घबरायें नहीं। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के भाग्य में तो यह बड़ा ही रहता है। गलत खबरों से मेरी प्रतिष्ठा में कुछ बढ़ा न लगेगा। अगर मैं अनुचित काम करूं तो वह जरूर घटेगी ही। फिर किसी भी प्रकार से जोड़ जाड़ कर उसे बचाया नहीं जा सकेगा। मगर आज मेरा तरकस खाली है अगर्ने कि एक जर्मन मित्र कहते हैं कि किसी जर्मन पत्र में मुझपर एक बायसकोप कम्पनी खड़ी करने का दोष लगाया गया है। उस अनजान लेखक को पता नहीं कि दयालु मित्रों का दबाव पड़ते रहने पर भी आज तक मैं कभी बायसकोप का तमाशा देखने ही नहीं गया और ईश्वर का दिया हुआ समय नष्ट करने या इसपर खुशियां मनाने से इनकार करता हूँ। कहा जाता है कि इसका शिक्षा सम्बन्धी महत्व है। शायद होगा। मगर इसका बुरा असर तो मुझे रोज ही खलता है। इसलिए शिक्षा के लिए मैं दूसरा ही दरवाजा ढूँढता हूँ।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### तामिल नाड में खादीकार्य

[ तामिल नाड में गत एक वर्ष में किये गये खादीकार्य की सावधानी से लिखी हुई यह रिपोर्ट सचि से पढी जायगी। इससे प्रत्येक विभाग की धीमी किन्तु निश्चिन्त उन्नति का पता चलता है। खादी की बिक्री के भाव में सैकड़े २५ की कमी होना बहुत अच्छा लाभ है किन्तु यह कमी कुछ हद तक कपास के दाम में कमी के कारण हुई है। कपड़े में काफी उन्नति हुई है। बिक्री की एक खूबी यह है कि जितनी खादी तैयार होती है उसका तीन चौथाई हिस्सा वहीं का वहीं बिक जाता है। शुरु २ में यह बात नहीं थी। इस समुचित उन्नति का मुख्य कारण कपड़े की फेरी ही है। इस रिपोर्ट में सरकार के उस अज्ञान से भरे हुए और असाधारण प्रस्ताव की ओर भी ध्यान खींचा गया है जिस के द्वारा उन स्कूलों में चर्खा चलाने की मनाही की जाती है जहां कपड़ा न बुना जाता है और इस प्रकार सूत कातना प्रायः असंभव ही कर दिया जाता है। इस प्रस्ताव के लिखने वाले के अज्ञान का मुकाबिला उस नामी अर्थशास्त्री से किया जा सकता है जो यह सोचते हैं कि उन्होंने हाथकताई को मटियामेट कर दिया मगर दर अचल तब तक वे हाथकताई को हाथ बुनाई ही समझते आ रहे थे।

मो० क० गांधी ]

संगठन

इस समय मद्रास प्रान्त के १३ तामिल जिलों में ६४ खादी कार्यालय हैं। इन में २५ तो अखिल भारत चर्खा संघ के अधीन हैं और बाकी दूसरे लोगों के जिन में कुछ तो चर्खासंघ या दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं के दिये हुए कर्ज की पूँजी पर और कुछ अपनी खास पूँजी पर चलते हैं। इनमें १० केन्द्र तो इस साल



के शुरू में खोले गये थे। उनमें दो उत्पादन और आठ बिक्री के केन्द्र हैं।

गत वर्ष की अपेक्षा अधिक कपड़ा तैयार हुआ है। तीन वर्षों के अंक दिये जाते हैं:

वर्ष	कामेस (६०)	सहायता प्राप्त और दूसरे (६०)	मीजान (६० में)
१९२३-२४	२,९०,१४८	१,८२,२१६	४,७२,३६४
१९२४-२५	३,९६,९६२	३,०८,८२६	७,०५,७८८
१९२५-२६	२,७३,५४८	५,७१,७७१	८,४५,३१९

पहले दो साल के हिसाब में कुछ अंक दोनों ओर दुहरा दिये गये हैं। यह भूल तीसरे साल दुरुस्त कर ली गयी है। दूसरे, दाम में बराबर कमी होते जाने के कारण, इन अंकों को गत खर्च के रूप में समझना चाहिए। इसके अलावा, रँगई, छाई बगैरह का खर्च इसमें बिलकुल शामिल नहीं है। पिछले साल के मीजान के ऊपर इस साल सिर्फ कोई डेढ़ लाख की बढ़ती हुई है। साल के शुरू में बहुत अधिक माल तैयार हुआ लेकिन पीछे जनवरी में फसल अच्छी होने से कातनेवालों की संख्या घटने लगी और सूत के अकाल से कितने एक जुलाहों को काम बन्द कर देना पड़ा। फिर एक बार काम बंद हो जाने पर शुरू करने में कुछ न कुछ कठिनाई होती ही है और जाकर अब कहीं फिर से वे लोग काम शुरू कर रहे हैं।

चर्खासिंध के अधीन केन्द्रों की उत्पत्ति के घटने के कई कारण हुए। कुछ तो कपड़ा देनेवाले ठेकेदारों के कम काम करने के का है और कुछ इसलिए कि कपड़ा बहुत जमा हो जाने से, उत्पत्ति को छोड़ कर बिक्री पर ही अधिक ध्यान देना पड़ा। बिक्री का प्रबन्ध अब ठीक हो गया है और अगले साल चर्खासिंध की खास कोशिश रहेगी अपनी उत्पत्ति को दुगुनी कर लेने की।

पिछले साल २० से अधिक अंक के सूत का महीन कपड़ा बिक्री ३८,८२६) रुपये का बना था और इस साल बना है ५४,९६१) रुपयों का।

### दाम में कमी

इस साल के भीतर खादी का भाव बहुत घटा है। गत मार्च मास में कपास का दाम घटने से तुरत ही खादी का भी भाव पड़ा। सन् १९२२ से १९२६ तक हर साल में दर की कमी का हिसाब दिया जाता है। ५० इंच चौड़े १ गज कपड़े का दाम १९२२ में १३ आने, १९२३ में १२ आने, १९२४ में सवा ग्यारह आने, १९२५ में साढ़े दश आने और १९२६ में पौने दश आने रहा।

तीन साल में खादी के भाव में सैकड़ों २५ की कमी हुई है। कपास की दर घटने और प्रबन्ध अच्छा होना-दोनों कारणों से ऐसा हुआ है।

### कपड़े में उन्नति

दाम में कमी होने के साथ २ कपड़े में भी बहुत उन्नति हुई है। तिरुपुर के व्यापारियों के सहयोग से कपड़ा अब एक सा तैयार होने लगा है। तिरुपुर के कितने व्यापारी, इस समय अच्छा सूत चुन कर, उसका खास तौर पर अच्छा कपड़ा तैयार कराते हैं। यह घना बुना जाता है और अधिक दाम पर बिकता है।

### अमानत पर कर्ज

दूसरे व्यापारियों को कठिनाई के समय पर कपड़ा और सूत अमानत में रख कर कर्ज दे कर सहायता दी गयी। इस साल में १८,७५९) रुपये कर्ज में दिये गये। एक कर्ज को छोड़ कर और

सब वसूल हो गये हैं। कुछ व्यापारियों का अधिक कपड़ा खरीद कर भी उन्हें सहायता दी गयी।

### बिक्री

इस साल बिक्री में स्पष्ट वृद्धि हुई है। सन् १९२४-२५ और १९२५-२६ के अंक नीचे दिये जाते हैं।

संस्थाएं	१९२४-२५ (रुपये)	१९२५-२६ (रुपये)
कामेस थोक बिक्री	१,८९,१०६-३-०	१,१७,५२९-१५-०
,, फुटकर ,,	२,२०,६५२-१५-१०	२,५१,२२८-३-११
दूसरी थोक ,,	२,११,७५०-१-१	२,६८,७२०-११-०
दूसरी फुटकर बिक्री	१,१५,८४६-१५-२	१,४१,१४९-१३-०

मीजान ७,३७,३५६-३-१ ८,७७,६१८-११-०

चर्खासिंध और दूसरे जाँचे हुए व्यापारियों की भी फुटकर बिक्री में बहुत उन्नति हुई है। तामिल नाड के हर एक बिक्री केन्द्र में अब चर्खासिंध की खादी की दूकान है ही। चूँकि कितने दूकानें साल के अखीर में ही खोली गयी हैं, इसलिए उनसे अभी पूरा २ फायदा नहीं उठाया जा सका है। चर्खासिंध के बखालों की थोक बिक्री कम होने का मुख्य कारण यही है कि उससे बहुत सी शाखाएं खुल गयी हैं। स्थानीय बिक्री दिनोदिन अधिकाधिक बढ़ती जाती है। दूसरे व्यापारियों की थोक बिक्री बढ़ने का कारण है, बंबई और प्रवासियों की माँग।

तामिल नाड में और उसके बाहर दूसरे प्रान्तों में भी प्रवासी तामिल भाइयों के हाथ खादी की बिक्री के अंकों से पता चलता है कि प्रान्त के बाहर की बिक्री सब मिला कर २६ प्रतिशत से कम ही पड़ती। इसका अर्थ यह हुआ कि तीन चाँथाई खादी की यहीं खप जाती है।

### फेरी

खादी की फेरी से बिक्री खूब बढ़ी है। इस साल सब मिल कर ५०,८८२) रुपयों की खादी फेरी के द्वारा बिक्री जिसमें २९,१०६) की शहरों में और बाकी दीहातों में। इसके साथ पिछले साल की २०,८८०) की फेरी की बिक्री के अंक गणना की उन्नति का पता देते हैं।

### प्रचार और निरीक्षण

पहले की बनिश्चत इस साल अधिक ध्यानपूर्वक और उचित समय पर, चर्खासिंध के और दूसरे प्रमाणपत्र प्राप्त दूकानों पर निरीक्षण हुआ। प्रमाणपत्र देने के पहले सभी केन्द्रों की जाँच कर ली गयी। कपड़े में अवन्नति होने के भय से, सैकड़ों कमी की जाँच की गयी और उसके फल लिख लिये गये। कई केन्द्रों में तकसीलदार रिपोर्टें ली गयीं और कातनेवालों तथा जुलाहों की संख्या, उनकी सामाजिक स्थिति, और उनकी आजीविकाप्राप्ति के इस उद्योग का भाग, इत्यादि बातों के विषय में सूचनाएं इकट्ठी की गयीं। निरीक्षकों को शाखा कार्यालयों में जाकर काम में सहायता भी देनी पड़ती है। इस साल प्रचार के लिए केवल दो दौरे हुए। नये केन्द्र खोलने में उनसे सहायता मिली।

(यं० इं०)

(असमाप्त)

### आश्रम भजनावलि

पाँचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्द्धर भिक्त हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आर्द्धर भोजनेवाले सज्जन अभी से शिवायतें भोजना शुरू न करें। छठी आवृत्ति तैयार हो रही है।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



९ दिसम्बर, १९२६

# कृद्धिमिद्धि की जननी' गायमाता

(६)

कितनी सामान्य बातों की 'चर्चा' कर के भि० हने विषय दे० वा०]

गायों का कसरत चाहिए। अगर अधिक गायों को हर वक्त बंधी न रखना चाहिए।

उसे कुछ समय बाड़े में छोड़े फिरने देना चाहिए।

दोखियार बाड़े, दुदने और खाना देने के समय और सब समय गायों को शायदाार बाड़े में छोड़ा बाड़ा या गोशाला, अगर शायदाार, गर्म और

योजना अच्छी मिली जायगी। अच्छी कटु में गाय धूँ में ले जाता जाहिए।

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

(१) दूध तौलना, जितने दूधे दुई एक एक गाय का दूध रोख तौल कर लिख लेना चाहिए।

कितने लोग हमने में एक बार दूध तौलने हैं और उसीके ऊपर से परता बैठते हैं। किलकुल ही न तौलने की आदत तो यह ठीक है किन्तु रोज रोज गाय कितना दूध देती है, यह जानने के बराबर विश्वासपात्र नहीं है।

(२) महीने में कमसे कम एक बार नवजात टेस्टर से देख लेना चाहिए कि दूध के समुचित किताब है।

(३) हर एक गाय का चारा खाया तौलना और हर एक गाय कितना खाती है, इसका हिसाब रखना चाहिए। खाना रोज रोज तौलने की जरूरत नहीं है किन्तु जब जब बाल जाय तौल लेना और लिख लेना चाहिए। इससे दूध के पैमाने में लाजबंदी हो सकती है और किस भोजन में कहां

[ अंक १७ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, मार्गशीर्ष सुदि ४, संवत् १९८३

गुरुवार, ९ दिसम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १

तूफान की भनक

बाल बच्चों को साथ ले कर समुद्र—यात्रा करने का मेरा यह पहला ही मौका था। मैंने यह बात अनेक बार लिखी है कि भारतवर्ष में विवाह बचपन में ही हो जाने तथा मध्यम श्रेणी के लोगों में अधिकतर पुरुष के साक्षर और स्त्री के निरक्षर होने के कारण पति पत्नी के जीवन में अन्तर रहा करता है और इसलिए पति को पत्नी का शिक्षक होना पड़ता है। मुझे अपनी धर्मपत्नी और अपने बच्चों की पोशाक, रहन सहन तथा बोलचाल की ताकीद रखनी पड़ती थी। मुझे उनको रीतिरिस्म सिखाना बाकी था। बहुत से स्मरणों पर तो मुझे अब तक हँसी आती है। हिन्दू पति अपने को अपनी स्त्री का ईश्वर समझता है। इसलिए पत्नी को जिस तरह वह नचाता है, उस प्रकार उसे नाचना पड़ता है। जिस समय के बारे में मैं यह लिख रहा हूँ उस समय मेरी

कारण यह थी कि नई रोशनी का मनुष्य समझा जाने के लिए मुझे अपना बाह्याचार यथासंभव योरोपियनों से मिलता जुलता रखना चाहिए। ऐसा करने से ही धाक जमती है और धाक के बिना देश-सेवा नहीं हो सकती। यह खयाल भी मेरा उस समय था। इसलिए अपनी पत्नी तथा अपने लड़कों की पोशाक मैंने ही पहन की। बालकों को काठियावाड़ी बनियों की तरह रखूँ तो अच्छा लगे? पारसी लोग सब से अधिक सुधरे लोगों में से एक होते हैं। उस कारण जहां अंग्रेजी पोशाक का अनुकरण करना ठीक न लगा, वहां पारसी पहिनावा इस्तेमाल किया। जैसी साड़ियाँ पारसी पुरुष पहनते हैं, वैसी ही मैंने अपनी स्त्री के लिए लीं। और बच्चों के लिए पारसी कोट पतलून लिया। और बूट मोजा तो तो मैंने वही तो तक पसन्द न पड़ी। जूते काटते, मोजे गंधाते और पैर सहेते! इन अवयवों का जवाब मेरे पास मौजूद था। इसलिए पत्नी एवं पुत्रों ने लाचारी दर्जे इस नयी पोशाक को पहना कर देना। और उसनी ही लाचारी के साथ तथा उससे भी अधिक जो योग्यता की बलिष्ठत आशा का बल तो बढ कर था ही।

यह रही बदल जिस प्रकार दुखदायी था उसी प्रकार टेव पड जाने के बाद उनका त्याग भी सुखकर हुआ। लेकिन आज मुझे प्रतीत होता है कि हमें समस्त 'सुधारों' को तिलांजलि दे कर हलके हो जाना चाहिए।

उसी स्टीमर में मेरे अन्य कई रिश्तेदार और जान पहिचान वाले थे। मैं उनके तथा डेकवाले अन्य मुसाफिरों के भी संस्पर्ग में खूब आता था। इसलिए मेरे मुवकिल (और उसी प्रकार मेरे मित्र) का वह जहाज मुझे घर के मुआफिक लगता था। और मैं हर जगह आजादी से फिर सकता था।

स्टीमर बिना अन्यत्र रुके, नैटाल पहुँचने की थी—इसलिए सफर सिर्फ १८ दिनों का ही था। हमारे नैटाल पहुँचने के तीन चार दिन रह गये थे जब कि समुद्र में भारी तूफान उठा—मानों वह भावी तूफान की चेतावनी था। इस दक्षिण के प्रदेश में दिसंबर का महीना गर्मी तथा बर्सात का होता है और इस कारण दक्षिण सागर में इन दिनों छोटा मोटा तूफान उठा ही करता है। यह तूफान इतना प्रचंड था और इतने समय तक चला कि मुसाफिर लोग घबडा गये।

यह दृश्य भय था। दुःख के समय सब एक हो गये। भेद भूल गये। ईश्वर का ध्यान हृदय से करने लगे। मुसलमान और हिन्दू—सभी एक साथ हो परमेश्वर का स्मरण करने लगे। किसी किसी ने मानताएं मानीं। जहाज के कप्तान ने भी सब मुसाफिरों से मिलकर और सबों को आश्वासन देकर कहा कि हालांकि यह तूफान सचमुच भारी है, लेकिन मैंने इससे भी भयंकर तूफान देखे हैं। अगर स्टीमर मजबूत हो तो एकाएक वह दूब नहीं जाती। कप्तान ने मुसाफिरों को इस प्रकार बहुतेरा समझाया, लेकिन उनको तसल्ली न होती थी। उस स्टीमर में लोगों के मुँह से इस प्रकार की बातें सुनाई देतीं कि अभी कहीं न कहीं से जहाज में छेद हो जायगा और वह नष्ट हो जायगा, जहाज के झोंके खाने से ऐसा लगता कि वह अभी उलट जायगा। डेक के ऊपर तो कोई खड़ा कैसे रह सकता था? "जैसे ईश्वर रक्खेगा वैसे रहेंगे", इस उद्गार के सिवा कोई दूसरी बात सुनने में न आती।

मुझे याद है कि इस प्रकार चिंता में चौबीस घंटे बीते होंगे। अन्त में बादल फटे और सूर्यनारायण ने दर्शन दिये। कप्तान बोला कि अब तूफान चला गया।



के शुरू में खोले गये थे। उनमें दो उत्पादन और आठ विक्री के केन्द्र हैं।

गत वर्ष की अपेक्षा अधिक कपड़ा तैयार हुआ है। तीन वर्षों के अंक दिये जाते हैं:

वर्ष	कमिष (रु०)	सहायता प्राप्त और दूसरे (रु०)	मीजान (रु० में)
१९२३-२४	२,९०,१४८	१,८२,२१६	४,७२,३६४
१९२४-२५	३,९६,९६२	३,०८,८२६	७,०५,७८८
१९२५-२६	३,७३,५४८	५,७१,७७१	८,४५,३१९

पहले दो साल के हिसाब में कुछ अंक दोनों ओर उधरा

कसान की कड़ी हुई बातें लोगों की समझाती थीं। यह सही बात थी।

हम लोग अठारहवीं या उन्नीसवीं दिसम्बर की डरपन पहुँचे

नादरी जहाज ने भी वहाँ उसी दिन लगेर डाली।

असली चीनी का अनुभव तो अभी होना बाकी था।

स्वतंत्रता का मूल्य

अमेरिका के स्वतंत्रता—संग्राम में सेनापति, वाशिंगटन के

सैनिकों के नामों का उल्लेख है।

कोई भी जो बने उनके देश का और बिना युद्ध के बहादुर

सिपाही ऐसे अवसरों पर चले जाते हैं मगर जो ऐसे अवसरों पर

जहाँ देश के समस्त लोगों और पुरुषों के प्रेम और धन्यवाद

जहाँ समस्त देश के जनसंख्या भी तरक ही है। उसे जीतना

असंभव है किन्तु सारा देश के लिए जीतना ही कठिन

काम है। जो जीतना ही जीतना है, उसकी कोशिश भी उसी की होती है।

जिन्हीं से मिलने के कारण ही स्वतंत्र अधिक मूल्यवान् बनती

है। अतः स्वतंत्रता जैसी स्वर्गीय वस्तु का भी मूल्य अधिक न

होना तो उसके अर्थार्थ की ही दृष्टि होगी।

जहाँ जहाँ स्वतंत्रता के अन्तर्गत विचारों के प्रति जो कोय करना चा-

हिए उस प्रकार के एक अवसर पर एक बार हुआ था। उस अवसर के

एक क्षण में प्रसन्न हो, जिसके कारण की एक कानून थी, अपनी गोद

में एक बच्चा ही संभाल लड़े। जो के कर, जहाँ तक खलासा

जहाँ तक स्वतंत्रता का सम्बन्ध है, उसमें स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो स्वतंत्रता का मतलब तो

सब बसूल हो गये हैं। कुछ व्यापारियों का अधिक कपड़ा

कर भी उन्हें सहायता दी गयी।

विक्री

इस साल विक्री में स्पष्ट वृद्धि हुई है। सन् १९२४-२५

और १९२५-२६ के अंक नीचे दिये जाते हैं।

संस्थाएं १९२४-२५ (रुपये) १९२५-२६ (रुपये)

कांफ्रेंस थोक विक्री १,८९,१०६-३-० १,९७,५२९-१५-०

कुटकर २,२०,६५२-१५-१० २,५१,२२८-३-१०

दूसरी थोक २,११,७५०-१-१ २,६८,७२०-११-०

दुसरी कुटकर विक्री १,१५,८४६-१५-२ १,४१,१४९-१३-०

मी जो दिल तबप नहीं रठता वह मुर्दा है; ऐसे अवसर पर

कि ये भी सहायता से ही बहुत काम निकल सकता था और

को भी सहायता से ही बहुत काम निकल सकता था और

देगा। दुःख में जो हँसता है, तकलीफ में जो धैर्य रखता है

और कठिन परिस्थितियों में जो बलवत्ता है, उसका प्रयोजन कर

है। पीछे हटना, छोटे दिलवालों का काम है। मगर जिसका

मजबूत है, जिसकी अन्तरात्मा उसके कर्मों का समर्थन करती

वह मरते दम तक अपने सिद्धान्तों पर ही चलेगा।

ऐसे अवसर आते हैं जहाँ सबके में सारी शक्त का

नहीं हो सकता। यह वैसी ही बात है। ऐसे अवसरों

होते हैं जो सामान्य की निपटि को पूरा पूरा नहीं देखते

इसी पर धननिर्मा लेते हैं कि अगर शत्रु जीत भी गया तो

देशी विगाहों जो त्याग नहीं कर सकते उससे दया की

रिश्तों के दर्जे का पागलपन वेतकरी है। और जहाँ

ही हर असल उद्देश्य होता है वह जहाँ सारी शक्ति का

चाल ही मीनती जायगी और सिंगार की दृष्टि और जो

करता, दोनों ही बराबर खतरनाक हैं। दोनों से हमें बचना

बिना ही।

यहाँ यह बात ध्यान देने लायक है कि शक्ति के विचारों

और युद्ध के सैनिकों, दोनों ही के कर्तव्य एक ही शक्ति का

आशा का जाना है। और जो स्वतंत्रता के अन्तर्गत

महासभा के प्रतिनिधियों के अनुमति से हुए अवसरों के

(जिन्होंने विचार, शब्द और कार्य में सर्वदा शान्ति रखने का

लिया था) करीब करीब अक्षेपः सुनाया जो स्वतंत्रता का

यह मौज भी होता है। अतः स्वतंत्रता की ही मूल्य का मतलब

तो चाहे तुम शारीरिक शक्ति से हमें जीतो या कि स्वातंत्र्य का मतलब

आप कष्ट सहकर, किन्तु मूल्य उसका हीवा मारी नहीं हो

परिस्थितियों में भी सहस और दौड़ता की अग्रत अधिक

तो कम से कम उसी तो जहाँ ही अधिकारी की भी अवसर

है जितनी तलवार पकड़ने वाले की। कि चाहे हम विचारों

या अधिपति के किन्तु स्वतंत्रता के लिए हमें खूब कष्ट

को तिलजिले देना ही पड़ेगा। विचारों की दृष्टि करी

नहीं। कि प्रताप जो स्वतंत्रता सम्पत्ति उसके स्थिर

बने गया। पहली दृष्टि स्वाधीनता सम्पत्ति उसकी दृष्टि

अपनी शरीर नष्ट करने की दृष्टि स्वाधीनता सम्पत्ति उसकी दृष्टि

कितने ही एक गाने गाने की स्वतंत्रता के लिए निराले

टीमस पेन बतलाती है कि ऐसी कितनी दृष्टि है।

मौहनदास करमचंद गांधी

(५० ई०)







# हिन्दी-नवजीवन

गुस्वार, मार्गशीर्ष सुदी ४, संवत् १९८३

## सर्वभूतहिताय

यंग इन्डिया के एक नियमित पाठक नीचे का पत्र लिखते हैं :—

“एक साल गुस्वानी, एक अखबार की कतरन भेजता हूँ।  
आस स्थितियों में प्राण लेने के आपके विचार का, जिसका  
प्रतिपादन आपने ‘अहिंसा’ शीर्षक लेख माला में, विशेष कर  
तीसरे लेख में किया है, इससे समर्थन होता है।

टाइम्स ऑफ इन्डिया का विशेष

लिटलटन (कोलोरेडो, अमेरिका) १३ नवम्बर, (१९२५),  
हेरोल्ड ब्लेजर नाम के मुफस्सिल के एक डाक्टर ने अपनी लडकी  
को झोरोकोर्म देकर मार डाला था क्योंकि उसने समझा कि उसका  
अपना अन्तकाल भी नजदीक ही है और उसके मरजाने बाद उस  
लडकी की देखभाल करने वाला कोई न रह जायगा। इसके  
लिए उस पर मुकदमा चला पर वह बेदाग छोड़ दिया गया  
क्योंकि १४ घण्टे के मशविरे के बाद भी जब ज्यूरी लोग एक  
मत न हो सके तो मुद्दे को ही मुकदमा खारिज करने को  
कहना पड़ा। डाक्टर ब्लेजर के वकील मिस्टर होरी ने कहा कि  
“उस लडकी को डाक्टर ब्लेजर ने ३२ साल तक पाला था।

अन्त में उसे दूसरों के ऊपर बोझ न बनने देकर उन्होंने उचित  
ही और नीतियुक्त काम किया। वह लडकी अशक्त, अधिकांगी  
बिना हाथ पैर की, बोलने या सोचने की शक्ति से हीन थी  
और उसे भोजन भी पचा पचाया ही देना पड़ता था। उसे  
आराम न थी।”

ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस कापी राइट-

“परसाल इसी समय मैंने एक और खबर पढ़ी थी कि एक  
अभिनेत्री ने अपने प्रेमिक को उसी की अनुचित प्रार्थना पर गोली  
मार दी क्योंकि वह किसी ऐसी बीमारी से बहुत दर्द से परीक्षान  
था, जिसके छूटने की आशा न थी। उस अभिनेत्री पर मनुष्य  
हत्या का मुकदमा चला किन्तु वह इस लिए छोड़ दी गयी कि  
जूरियों ने सोचा कि ऐसी परिस्थिति में उसने कोई कसूर नहीं  
किया। ऐसे फैसले को न्याय्य करार करने के लिए फ्रान्स में  
कोई कानून तो नहीं मालूम होता है किन्तु मैंने पढ़ा है कि  
बेनमार्क में सचमुच ही ऐसा कानून बना है जिसके अनुसार कुछ  
अधिकार प्राप्त लोग ऐसी हालतों में मनुष्यों को सुख की मौत  
पार उतारने में कोई कसूर नहीं करते। मैं उम्मेद करता हूँ  
कि यह सुभाषिता आपके लिए, और ‘यंग इन्डिया’ के दूसरे  
पढ़ने वालों के लिए मनोरंजक होगा”

मैं इस चिन्ता को छापता हूँ क्योंकि अपनी स्थिति समझने में  
सुखे इससे मदद मिलती है। इस पत्र-लेखक को मैं जानता  
हूँ कि ‘यंग इन्डिया’ के ये बड़े ही सावधान पाठक हैं। अगर  
ये मेरी बातों को इतना गलत समझते हैं जो इनके पत्रसे स्पष्ट  
है तो इसका पता कौन जाने कि जब तब यं. इ. पढ़ने वालों में से  
कितने ऐसी भूत करते होंगे? हमारे दिलों की स्वाभाविक  
कबाई के कारण, हम बल-प्रयोग का एक भी मौका हाथ से जाने  
देना नहीं चाहते, और कई गठकों ने मेरा ध्यान इस ओर खींचा  
था कि इस कारण गलत फहमी पैदा होने का भय है। आदमी  
तो इतना ही कर सकता है—उसे बहुत अधिक सावधान रहना

चाहिए, जब वह नाजुक सवाल को ले रहा हो; किन्तु बयानों  
बड़े से बड़े दुरुपयोग के भय से भी परम सत्यों की खली और  
सच्ची चर्चा रोकनी नहीं जा सकती। अपने आप तो मैं, विनीत चर्चा  
स्पष्टीकरण और विचार विनिमय से ही सीख सकता हूँ। ऊपर  
पत्र तो एक उदाहरण मात्र है। इस चर्चा ने पत्र-लेखक और  
मेरे बीच उसी सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में सच्चा मतभेद ऊपर  
दिखाया है।

मेरा मत है कि डाक्टर ब्लेजर भले ही छोटे मगर मेरी  
जाँच के अनुसार अपनी लडकी की जान लेने में उन्होंने भूल की  
उनके निकट रहनेवालों के दयाभाव में विश्वास की कमी इसके  
प्रकट होती है। यह मान लेने का कोई कारण न था कि दूसरे  
उस लडकी की देखभाल न करते। मेरी मानी हुई परिस्थिति  
में कुत्तों का सुभाषिता, उससे बिलकुल ही अलग है, जिसने  
डाक्टर ब्लेजर ने अपने को पाया। मैं यह भी मानने को तैयार  
नहीं हूँ कि जड़मूर्खों को आत्मा होती ही नहीं। मेरा विश्वास  
है कि नीची श्रेणी के प्राणियों को भी आत्मा होती है।

इससे भी अधिक वजनदार दूसरी कठिनाई है, जिसे एक  
दूसरे पाठक पेश करते हैं। उसे संक्षेप में यों समझाया जा  
सकता है:

“आपने जो स्थिति पसन्द की है, मैं उसे समझता हूँ  
यही एक मात्र सही स्थिति है। मगर आपका तर्क क्या उपयोग-  
गितावाद के अधिकांश लोगों के अधिक लाभ के सिद्धान्त का  
हम ग्रहण नहीं कर लेता? अगर आपकी यही स्थिति हो तो  
फिर आपके इस अहिंसा सिद्धान्त और उपयोगितावाद में जो  
अधिकांश के अधिक सुख के लिए प्राण लेने में हिचकेंगी नहीं  
और अहिंसा की जो हमी नहीं भरता, अन्तर ही क्या  
जाता है?”

पहले तो बाह्य कर्म दोनों के एक हो सकते हैं किन्तु तो  
जिस आन्तरिक प्रेरणा से वे किये गये हैं उसके अनुसार उन  
और दूसरे गूढ़ार्थों में अन्तर होगा; जैसे पशुधर्म में मनुष्य तक  
और वह भी जहाँ तक संभव हो, अहिंसा समाप्त हो जाती  
और वहाँ मनुष्य जाति के माने गये लाभ के लिए पशुओं को  
जिन्दा चीरने फाड़ने में, या उपयोगितावाद के उसी सिद्धान्त  
नाम पर युद्ध के सामान इकट्ठे करने में कोई हिचक नहीं होती  
दूसरी ओर अहिंसावादी, उपयोगितावादी के साथ साथ कभी  
प्राण ले लेवे किन्तु जीते प्राणियों को चीरने फाड़ने में या युद्ध  
की अनन्त तैयारियों में सहायता देने के बखले वह मर जाना  
अधिक पसन्द करेगा।

बात तो यह है कि अहिंसावादी उपयोगिता-वाद का समर्थन  
नहीं कर सकता। वह तो ‘सर्वभूतहिताय’ यानी सब  
अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श के  
प्राप्ति में मर जायगा। इस प्रकार वह इस लिए मरना चाहेगा  
जिसमें दूसरे जी सकें। दूसरों के साथ साथ वह अपनी  
भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम सुख के अन्त  
अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इस  
अहिंसावादी और उपयोगितावादी, अपने रास्ते पर कई  
मिलेंगे किन्तु अन्त में ऐसा अवसर भी आवेगा जब उन्हें  
२ रास्ते पकड़ने होंगे और किसी किसी दशा में एक दूसरे  
विरोध भी करना पड़ेगा। अयुक्तियुक्त न बनने के लिए, उप-  
गितावादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता। अहिंसावादी  
मिट जाने को हमेशे तैयार होगा। सर्वभूतहितादी जब कभी ऊँचे  
मारता है तो अपनी निर्व्यक्तता के कारण या तो बिरुद्ध ही



१९२६

१९२६  
 नु बयानों के लिए ही। इस बात से कि यह निश्चय करना कि कुत्ते का काम किसमें है, बहुत ही खतरेनाक है, और इस लिए ऐसा करनेवाला भयानक भूल कर सकता है, काम को करने की प्रेरणा से कोई मतलब नहीं है। सर्वभूतहितवादी की हिंसा का क्षेत्र बहुत संकुचित होगा। उपयोगितावादी के लिए कोई सीमा नहीं है। अहिंसा सिद्धान्त के अनुसार विचार करने पर यूरोपीय महासमर का अतिरिक्त मालूम होता है। उपयोगितावाद के अनुसार प्रत्येक पक्ष ने उपयोगिता के अपने विचार के अनुसार अपना पक्ष न्याय्य सिद्ध कर दिया है। उपयोगितावाद के सहारे जलियानवाला बाग काण्ड को भी उसके करने वालों ने न्याय्य सिद्ध कर दिखाया। ठीक इसी तर्क से अराजक भी अपनी हत्याओं का समर्थन करते हैं। किन्तु सर्वभूतहितवाद के सिद्धांत की हसीटी पर इनमें से किसी भी काम को समुचित नहीं सिद्ध किया जा सकता।

मोहनदास करमचंद गांधी

(यं० इ०)

## टिप्पणियां

असंगतता

मेरी मुषाफरी शुरू हो गयी। अगर मुझे उसे जारी रखना है तो उसके साथ मेरे दुःख भी शुरू होते हैं। लोगों की भीड़ दूरान के लिए आती है। उनकी चमकीली आंखों और हँसमुख चेहरों में प्रेम की सच्ची झलक होती है। किन्तु जो बात मैं उनके कानों में निरन्तर बोलता रहा हूँ, उसके विषय में वे कुछ भी नहीं करते। जलगांव में गत ४ तारीख को लड़कों और लड़कियों ने मुझे अपने हाथ के कटे सूत की सुन्दर लच्छियां भेंट की किन्तु उनमें कुछ आदरणीय अपवादों को छोड़कर बाकी सबकी देहों पर मिल का ही कपड़ा पड़ा था। अगर वे लड़के लड़कियां अपने सूत कातने का कारण जानती हों, तो मुझे अश्चर्य होगा। लड़कियां, म्युनिसिपल स्कूल की छात्राएँ थीं। उन्हें कातना शुरू किये सिर्फ चार ही महीने हुए थे।

## अच्छा काम

वहाँ के काम की जो रिपोर्ट मेरे पास है, उससे पता चलता है कि म्युनिसिपैलिटी के कुछ स्कूलों में कातना शुरू करने का काम पूर्ण खानदेश जिला खादी बोर्ड को दिया गया था। अगर इस उदाहरण की नकल दूसरी म्युनिसिपैलिटियां करें और अपने यहां के खादी बोर्डों को, जिन्हें उमेद की जाती है कि उनके पास इस विषय के जानने वाले होंगे, यह काम दे दें, तो क्या ही व्यावहारिक काम होवे। इस स्कूल में तकली और चर्खा दोनों ही चलते हैं। एक एक लड़की का अलग अलग देखने पर सबसे अधिक ७१८८ गज सूत एक लड़की ने काता है। ऊँचा से ऊँचा २२ हुआ है। फी घन्टे अधिक से अधिक ३६५ गज सूत पर और १२० गज तकली पर काता जा सका है। रिपोर्ट है:

“जैसी श्रेणी की लड़कियों को तकली कातना इतना आ गया है कि उनमें से १५ ने चर्खे पर भी कातना सीखा है और कुल्लत के समय वे कातती हैं। उनके उदाहरण से तीसरी श्रेणी की भी कुछ लड़कियों ने चर्खा चलाना सीखा है। तीसरी श्रेणी की लड़कियां भी चर्खा चला रही हैं और अपनी खुशी से कातनेवाली ऐसी लड़कियों की संख्या बढ़ रही है। कुछ के साथ तो सूत कातना एक प्रकार का मन बहलाव या खेल हो गया है क्योंकि वे लड़कियों के विषय में भी कातने आया करती हैं। १२ लड़कियां

अपनी पूनियां आप बना लेती हैं और दो नें तो धुनना सीखना भी शुरू कर दिया है।”

अब ऐसी आशा करनी चाहिए कि कुछ ही दिनों में हर लड़की अपनी रई आप धुन लेगी और पूनियां बना लेगी और शिक्षक लोग उन्हें खहर पहिने को कहेंगे। इसके लिए सब से अच्छा तरीका है लड़कियों को सूत कातने का कारण पूरा समझा देना और उनकी जरूरतों के लायक वाजिब कीमत का खहर जिसमें मिल सके उसकी पूरी सुविधा कर देना। शिक्षकों को लड़कियों के माता-पिताओं से भी सम्बन्ध जोड़ना चाहिए और इस काम में उनका पूरा पूरा सहयोग प्राप्त करना चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि ये सब काम तभी हो सकते हैं जब करने वाले उसमें जीजान से लग जायें। इस प्रकार काम करने का पता हमें अहमदाबाद की मजूर-शालाओं की असाधारण सफलता से लगता है। अगर सभी कताई शिक्षक अपने अपने लिए सूत की परीक्षा का एक घर यंत्र बना लें तो उन्हें बड़ा लाभ होगा। उस यंत्र का वर्णन इन पृष्ठों में किया जा चुका है। सूत में अगर ताकत न होवे तो अधिक गति से क्या? केवल धागा काटना ही काफी नहीं है। जरूरत वैसा तागा निकालने की है जिसका ताना बनाया जा सके।

## मुद्राशास्त्र

पिछले कई सालों से मैंने मित्रों के इस आग्रह को कि मैं मुद्राशास्त्र का अध्ययन करूं नहीं माना। यह इसलिए नहीं कि यह प्रश्न जनता के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों में से नहीं है, बल्कि इसलिए कि मेरी शक्ति से अधिक काम मेरे सिर पर पड़ा हुआ है, और मैं किसी विषय में तब तक कुछ लिखता या बोलता नहीं हूँ जब तक कि अपने मन मुआफिक उसका ज्ञान प्राप्त न कर लूं और, इस शास्त्र के विषय में मैं कुछ जानता नहीं। उस आग्रह का अब और अधिक विरोध मैं नहीं कर सकता। मित्रों का आग्रह है कि इसके अध्ययन का प्रचार करने में मैं सहायता दूं और जनता को इस महत्वपूर्ण प्रश्न के शिक्षा देने में अपने प्रभाव को काम में लाऊँ। मुझे भी उनका सा उत्साह नहीं है। मुझे इसमें शक है कि जन-समूह को मुद्राशास्त्र के अत्यन्त पेचीले और उलझे हुए सवालाल समझाये जा सकते हैं। मगर मैं उनके इस महत्वपूर्ण बयान को भुला नहीं सकता कि सरकार की अगर चालू मुद्रानीति चलती रही तो इसका अर्थ होता है, हिन्दुस्तान के मूक करोड़ों के ऊपर एक प्रकार का खर्च पड़ता जायगा, जिसे बरदाश्त करने की शक्ति उनमें नहीं है। इसलिए मैंने इस प्रश्न को मनन करने का वचन दिया है, और ‘यंग इन्डिया’ के दरवाजे, इसकी चर्चा के लिए खोल दिये हैं और जहां तक हो सकेगा, अपनी खास राय भी उन पर दिया करूंगा। उसी वचन की पूर्ति मैं प्रोफेसर पी. ए. वाडिया का लिखा हुआ एक लेख अन्यत्र प्रकाशित कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि यह लेख, एक लेखमाला का पहला लेख होगा। रायल कमीशन की रिपोर्ट का प्रथम वाचन मैंने अभी समाप्त किया है। यह मैं मानता हूँ कि इसे भी मैं उसी प्रकार नहीं समझता जैसे चर्खे के अर्थशास्त्र पर लिखे गये लेख को मैं समझता। मैं किसी वैसे गुरु की खोज में हूँ, जो मेरे लिए, मुद्राशास्त्र की भाषा भी वैसे ही जीवन्त बना देगा जैसी कि चर्खे की है। तभी, और उसके पहले नहीं, मैं इस प्रश्न पर अपनी खास राय दे सकूंगा। इस बीच मैं, अपनी फुरसत का सब समय इसके अध्ययन के लिए देने का वचन देता हूँ।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी



सुषर्ण का आधार

सुषण सुखा की योजना

(१) हिन्दुस्तान की सोने की अधिक माँग का प्रभाव

(२) मँग की अजिश्चितता

इसकी इच्छा यद् मेरा की जाती है कि सोने के  
 से उत्पन्न कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ जायेंगी अगर  
 धन्दाज से अधिक माँग, किसी अज्ञात कारण से उत्पन्न, हो  
 लोगों को जसे ही पता चलेगा कि रुपये का मुख्य चयनेवाला  
 वे उसे लोचाने लगेंगे। यह बात अकारण है। जकरत इतने  
 कि रुपये का अधिक ढाला जाना बंद कर दिया  
 उसे कायम विनिमय साधन माना जाय। तब लोगों को  
 की सोने से बढ़ने की विशेष चाह भी न होगी  
 बाजार में मजबूत सोना मिल सकेगा। कमीशन ने इसका  
 भी किया है कि हिन्दुस्तान गरीब देश है और



1810 1811 1812 1813 1814 1815 1816 1817 1818 1819 1820 1821 1822 1823 1824 1825 1826 1827 1828 1829 1830 1831 1832 1833 1834 1835 1836 1837 1838 1839 1840 1841 1842 1843 1844 1845 1846 1847 1848 1849 1850 1851 1852 1853 1854 1855 1856 1857 1858 1859 1860 1861 1862 1863 1864 1865 1866 1867 1868 1869 1870 1871 1872 1873 1874 1875 1876 1877 1878 1879 1880 1881 1882 1883 1884 1885 1886 1887 1888 1889 1890 1891 1892 1893 1894 1895 1896 1897 1898 1899 1900 1901 1902 1903 1904 1905 1906 1907 1908 1909 1910 1911 1912 1913 1914 1915 1916 1917 1918 1919 1920 1921 1922 1923 1924 1925 1926 1927 1928 1929 1930 1931 1932 1933 1934 1935 1936 1937 1938 1939 1940 1941 1942 1943 1944 1945 1946 1947 1948 1949 1950 1951 1952 1953 1954 1955 1956 1957 1958 1959 1960 1961 1962 1963 1964 1965 1966 1967 1968 1969 1970 1971 1972 1973 1974 1975 1976 1977 1978 1979 1980 1981 1982 1983 1984 1985 1986 1987 1988 1989 1990 1991 1992 1993 1994 1995 1996 1997 1998 1999 2000 2001 2002 2003 2004 2005 2006 2007 2008 2009 2010 2011 2012 2013 2014 2015 2016 2017 2018 2019 2020 2021 2022 2023 2024 2025 2026 2027 2028 2029 2030 2031 2032 2033 2034 2035 2036 2037 2038 2039 2040 2041 2042 2043 2044 2045 2046 2047 2048 2049 2050 2051 2052 2053 2054 2055 2056 2057 2058 2059 2060 2061 2062 2063 2064 2065 2066 2067 2068 2069 2070 2071 2072 2073 2074 2075 2076 2077 2078 2079 2080 2081 2082 2083 2084 2085 2086 2087 2088 2089 2090 2091 2092 2093 2094 2095 2096 2097 2098 2099 2100 2101 2102 2103 2104 2105 2106 2107 2108 2109 2110 2111 2112 2113 2114 2115 2116 2117 2118 2119 2120 2121 2122 2123 2124 2125 2126 2127 2128 2129 2130 2131 2132 2133 2134 2135 2136 2137 2138 2139 2140 2141 2142 2143 2144 2145 2146 2147 2148 2149 2150 2151 2152 2153 2154 2155 2156 2157 2158 2159 2160 2161 2162 2163 2164 2165 2166 2167 2168 2169 2170 2171 2172 2173 2174 2175 2176 2177 2178 2179 2180 2181 2182 2183 2184 2185 2186 2187 2188 2189 2190 2191 2192 2193 2194 2195 2196 2197 2198 2199 2200 2201 2202 2203 2204 2205 2206 2207 2208 2209 2210 2211 2212 2213 2214 2215 2216 2217 2218 2219 2220 2221 2222 2223 2224 2225 2226 2227 2228 2229 2230 2231 2232 2233 2234 2235 2236 2237 2238 2239 2240 2241 2242 2243 2244 2245 2246 2247 2248 2249 2250 2251 2252 2253 2254 2255 2256 2257 2258 2259 2260 2261 2262 2263 2264 2265 2266 2267 2268 2269 2270 2271 2272 2273 2274 2275 2276 2277 2278 2279 2280 2281 2282 2283 2284 2285 2286 2287 2288 2289 2290 2291 2292 2293 2294 2295 2296 2297 2298 2299 2300 2301 2302 2303 2304 2305 2306 2307 2308 2309 2310 2311 2312 2313 2314 2315 2316 2317 2318 2319 2320 2321 2322 2323 2324 2325 2326 2327 2328 2329 2330 2331 2332 2333 2334 2335 2336 2337 2338 2339 2340 2341 2342 2343 2344 2345 2346 2347 2348 2349 2350 2351 2352 2353 2354 2355 2356 2357 2358 2359 2360 2361 2362 2363 2364 2365 2366 2367 2368 2369 2370 2371 2372 2373 2374 2375 2376 2377 2378 2379 2380 2381 2382 2383 2384 2385 2386 2387 2388 2389 2390 2391 2392 2393 2394 2395 2396 2397 2398 2399 2400 2401 2402 2403 2404 2405 2406 2407 2408 2409 2410 2411 2412 2413 2414 2415 2416 2417 2418 2419 2420 2421 2422 2423 2424 2425 2426 2427 2428 2429 2430 2431 2432 2433 2434 2435 2436 2437 2438 2439 2440 2441 2442 2443 2444 2445 2446 2447 2448 2449 2450 2451 2452 2453 2454 2455 2456 2457 2458 2459 2460 2461 2462 2463 2464 2465 2466 2467 2468 2469 2470 2471 2472 2473 2474 2475 2476 2477 2478 2479 2480 2481 2482 2483 2484 2485 2486 2487 2488 2489 2490 2491 2492 2493 2494 2495 2496 2497 2498 2499 2500 2501 2502 2503 2504 2505 2506 2507 2508 2509 2510 2511 2512 2513 2514 2515 2516 2517 2518 2519 2520 2521 2522 2523 2524 2525 2526 2527 2528 2529 2530 2531 2532 2533 2534 2535 2536 2537 2538 2539 2540 2541 2542 2543 2544 2545 2546 2547 2548 2549 2550 2551 2552 2553 2554 2555 2556 2557 2558 2559 2560 2561 2562 2563 2564 2565 2566 2567 2568 2569 2570 2571 2572 2573 2574 2575 2576 2577 2578 2579 2580 2581 2582 2583 2584 2585 2586 2587 2588 2589 2590 2591 2592 2593 2594 2595 2596 2597 2598 2599 2600 2601 2602 2603 2604 2605 2606 2607 2608 2609 2610 2611 2612 2613 2614 2615 2616 2617 2618 2619 2620 2621 2622 2623 2624 2625 2626 2627 2628

[illegible]



सभ्यता

श्रीयुत महादेव देशाई ने अहमदाबाद में युवक समाज के अवसर पर "तकली" पर जो भाषण दिया था, वह भाषण केवल भाषण की भाँति ही न दिया गया था, बल्कि युवकवर्ग का ध्यान तकली की ओर आकर्षित करने के लिए। लेकिन उसे सुनना बहुत से युवकों को बड़ा गुज़रा और उन लोगों ने गहबह मचाना शुरू किया। मैं कई-बार लिख चुका हूँ कि इस प्रकार का शोर गुल करना भारत-वर्ष की सभ्यता को शोभा नहीं देता। इस देश में तो यही होना उचित है कि जिसे किसी का भाषण अच्छा न लगे, वह उसपर ध्यान न दे और अगर वीभत्स लगे तो उठ कर चल दे। लेकिन बब्रूता को जल्द समाप्त कराने के हेतु से बलात्कार न करे। गुल-गप्पाबा करना बलात्कार ही है। हममें असहिष्णुता का बढता हमारी प्रगति को रोकनेवाली वस्तु है। यह मान लेने का कोई कारण नहीं है कि अगर हमको भाषण पसन्द न हो तो बह रही ही होगी। संगत में अनेक वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो आरम्भ में कड़वी लगती हैं लेकिन उनका परिणाम मीठा निकलता है।

जिस समाज का युवकवर्ग मर्यादा, विवेक, नम्रता और सहिष्णुता छोड़ देता है उस समाज का नाश हो जाता है। समाज के जीवन की डोर तो युवकवर्ग के ही हाथ होती है। उनकी जिम्मेवारी वृद्धवर्ग की अपेक्षा अधिक है क्योंकि वृद्ध लोग तो जितना दे सकते थे, या देना चाहते थे सो वे दे गुजरे। युवकवर्ग तो आज नया तैयार कर रहा है, दे रहा है।

ये युवक लोग शोरगुल कर के अपनी जिम्मेवारी को निःशङ्क न  
सके। इसमें महादेव देशाई की इज्जत नहीं गयी बल्कि हल्ला मचाने  
वालों की गयी। लेकिन उनकी लाज का जाना देश की लाज जाने  
के तुल्य है। देश की आबरू देशवासियों से कहीं बाहर नहीं है।

तकली के प्रति अनख दिखाना चीटी के ऊपर कटक लेजाने के समान है। इस बात को कि तकली मनुष्य के प्राचीन तम इतिहासों में से एक है पुरानी पुस्तकों में से उद्धरण ले लेकर 'सर्वजीवन' में सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा चुका है। तकली गरीब लोगों का धर्म है—उनका सहारा है। जिस प्रकार हल अन्न का साधन है, उसी प्रकार तकली वस्त्र का। तकली से ही बड़ी बड़ी मिलें पैदा हो सकी हैं। सूत कातने वाली मिलें क्या हैं ? तकली मिलें हैं। जिस प्रकार कोई पृथक् पृथक् घरों के पानी के स्रोतों को बन्द करके सब नलियों को अपने यहाँ इकट्ठा काले और दूसरों को पानी के बारे में पराधीन कर छोड़े उसी प्रकार स्पिनिंग (कातने वाली) मिल भिन्न भिन्न तकलियों को एकत्रित करके स्वतंत्र कातने वालों को पराधीन बना डालती है। इस प्रकार तकली स्वतंत्रता का चिह्न है—और मिल परतंत्रता का। ऐसी पोषक वस्तु का तिरस्कार कैसा ? इस छोटी सी वस्तु की शक्ति समझना हमारा धर्म है। और जो हमें उसकी शक्ति का भान करावे, वह धन्यवाद का तथा कृतज्ञता का पात्र है।

जिस प्रकार हल का त्याग करने से हम भूखी मरते हैं उसी प्रकार तकली का त्याग करने से हम वल्लहीन हो जाते हैं। मुद्दीभर मनुष्यों को कपड़ा पहिने को मिल जाता है—इस बात से कोई यह न समझे कि वह करोड़ों को मिलता है। इतिहास यह साबित करता है कि, हमारे लाखों माई बहित नंगे फिरते और भूखी मरते हैं।

तकली में दोहरी शक्ति है—तन ढँकने की और अंग पोषण की । क्योंकि कातने की क्रिया तो हमें वज़ देती है और उससे बना हुआ पैसा हमें अन्न पाने में सहायता देता है इसी लिए मने बर्के और तकली को अनसूझनी की मिसाल दी है ।

तकली हमारा आलस्य दूर करती है, शरीर ढाँकती है और हमें भोजन देती है। ऐसे यंत्र का तिरस्कार कैसा ?

और फिर तकली हमें गरीब लोगों के साथ मिलाती है और उनके दुःख का हमको हिस्सेदार बनाती है।

ऋषियों ने एक आध्यात्मिका के द्वारा हमको तिनके की शक्ति का भान कराया है। हवा उसे उड़ा न सकी न आग उसे जला सकी। एक तिनके को भले ही कोई तुच्छ मान कर न गिने लेकिन अगर संख्याबद्ध तिनके न हों तो हमें अन्नपानी कुछ भी नहीं मिल सकता। जो शक्ति घास के एक तिनके में छुपी हुई है, वही तकली में भी। जो लोग तकली की हँसी उड़ाते हैं उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे यक्ष और देवताओं का संवाद पढ़ जायें। तकलीको तुच्छ मानने वाले गरीबोंको तुच्छ मानते हैं। गरीब को तुच्छ समझनेवाले अपने पैर काटते हैं। जिस वृक्ष की ढाली पर वे बैठे हैं उसीकी जड़ उखाड़ते हैं। गरीबों की ही बदौलत तवंगर का अस्तित्व है। अगर गरीब लोग न हों तो तवंगर का स्थान कहाँ है ?

युवकवर्ग । तुम चाहे जिस स्कूल में पढ़ते हो, चाहे जिस कालेज में शिक्षा पाते हो, चाहे असहयोगी हो अथवा सहयोगी, तुम चाहे सभाओं में गुलगपडे में भाग लेनेवाले हो चाहे उच्च शोरगुल के दुःखी प्रेक्षक, तुम प्राचीन सभ्यता न छोड़ना, विवेक न छोड़ना, गरीब-प्रेम न छोड़ना । जिस प्रकार तलवार नाश का चिह्न है उसी प्रकार तकली पोषण का एक महान् चिह्न है । जिसने शोरगुल रूपी तलवार चलायी उसने ठीक नहीं किया । तकली का त्याग—उसकी अवगणना—तुम्हारे करने की नहीं ।

जो लोग सूत कातने का यज्ञ नहीं करते और जो इस यज्ञ की प्रसादी रूप खादी नहीं पहनते वे गरीब को और गरीबनिवास को नहीं पहचानते यह मेरा दृढ़ विश्वास है—तुम्हारा भी यही हो।

( नवजीवन )

पोद्दनदास कश्मरुंद गांधी

## गुजरात की गायें

अकबर बादशाह को दयार्थ का बोध करानेवाले महार  
गुजराती जैन साधु हीरविजयसूरि के चरित्र को लेकर, देवविम  
गणी ने 'हीरसौभाग्यम्' नाम का संस्कृत महाकाव्य रचा है।  
इसके प्रथम सर्ग में गुर्जर देश का वर्णन आता है। उस में से  
नीचे का श्लोक उतारा जाता है :

कुत्रापि दम्प्यैरनुगम्यमानाः सरिद्धरायाः सखितां दधानाः ।  
यद्गोचरे द्रोणदुवाश्वरन्ति मूर्ताः समाह्वा इव मण्डलस्य ॥ ६२ ॥  
जिझ देश में, जिनके पीछे बड़े २ बछड़े फिरते हैं, अपने  
इश्वतवर्ण के कारण जो गंगा जी के समान दिखलायी पड़ती हैं  
जो एक द्रोण (३२ पक्का वा ६४ कच्चा सेर) दूध देती हैं, ऐसी  
गायें, जहां गुजरात की कीर्ति के अवतार के समा चरती हैं ।  
गावः कश्चिद् भान्ति सुधामुधाकृतपयः स्वन्नस्यः प्रविभाव्य वत्सान् ।  
यदीर्ष्यया निष्ठितनाकाभाग्यैरिवावतीर्णा भुवि देवगावः ॥ ६३ ॥

जिस देश की इर्ष्या करने के कारण, मानों कामधेनुएं क्यों हीर  
स्वर्ग से उतर आयी हों वैसी और दलहों को देख कर जिसके सामने  
अमृत भी तुच्छ है ऐसा दूध देनेवाली गायें कहीं शोभा पा रही हैं।  
ब्रह्माण्डमण्डोपरिभित्तिभागप्रोत्तानयानोदभवदत्तिसाजः ।

सात चरन्त्यः किमुपेत्य धात्र्यां स्वर्धेनको यत्र विभान्ति गावः ।  
 मानो ब्रह्माण्ड के गोले की ऊगरी छत पर पैर ऊंचे  
 सिर नीचा कर चल कर थकी हुई कामधेनुएं ही क्यों न पुखी  
 पर उतर आकर मुखपूर्वक चरती हों, ऐसी गायें जिस देश में हैं  
 ऐसी गायें अगर फिर देखने को मिलें, इसके लिए कोशिश  
 जाय तो क्या ही अच्छा हो ? (नवजीवन) दे० बा०

जाय तो क्या ही अच्छा हो ? ( नवजीवन )



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक १८ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी धानंद

अहमदाबाद, मार्गशीर्ष सुदि १२, संवत् १९८३

गुरुवार, १६ दिसम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

घारंगपुर सरकीरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय २

तूफान

दोनों स्टीमरों ने लगभग १० वीं दिसम्बर को लंगर डाला। दक्षिण अफ्रीका के बन्दरगाहों में मुसाफिरों के आरोग्य की पूरी जांच होती है। अगर रास्ते में किसी मुसाफिर को छुनैली बीमारी हो जाय तो उस स्टीमर को सूतक में (क्वारेन्टाइन) में रखा जाता है। जब हम बम्बई से चले थे उस समय वहाँ प्लेग फैल रही थी, इसलिए हमें सूतक में रखे जाने का डर तो था ही। बन्दरगाहों में पहुँचने के बाद स्टीमर पर पीला झण्डा ताना जाता है। आरोग्य-जाँच के बाद जब डाक्टर छुट्टी देता है तब वह झण्डा हटाया जाता है। और तत्पश्चात् मुसाफिर लोगों के नाते रिश्तेदारों को स्टीमर के ऊपर आने दिया जाता है।

इसके अनुसार हमारे जहाज पर भी अब पीला झण्डा फहरा रहा था। डाक्टर आये, जाँच कर चुकने पर स्टीमर को पाँच दिन क्वारेन्टाइन में रखने को कहा क्योंकि उनकी धारणा थी कि प्लेग के जन्तु २३ दिन तक दिखायी देते हैं। और इसलिए बम्बई से रवाना होने से २३ दिनों तक स्टीमर को सूतक में रखने का निश्चय किया था।

लेकिन इस सूतक-सम्बन्धी आज्ञा का हेतु केवल आरोग्य न था; दरबन में गोरे नागरिक हम लोगों को वापिस भेज देने का आन्दोलन कर रहे थे। यह आन्दोलन भी इस आज्ञा का फलभूत था।

दादा अब्दुल्ला की तरफ से दरबन की इस हलचल के समाचार हमको मिला करते थे। गोरे लोग तड़ापड़ी के साथ बड़ी २ बन्दे काटच भी दिखाते थे। वह उनसे कहते थे कि अगर तुम इन दोनों स्टीमरों को वापिस ले जाओ तो हम तुम्हें हर्जाना भरने को तैयार हैं। दादा अब्दुल्ला किसी की धमकी से डरनेवाले न थे। इस मौके पर वहाँ सेठ अब्दुल करीम हाजी आमद इस कम्पनी के प्रबन्धकता थे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि चाहे जो नुकसान पड़े लेकिन इन स्टीमरों को बन्दरगाह में लावेंगे और मुसाफिरों

को उतारेंगे। वे मेरे पास हमेशे ज्योंरे समेत विड़ियां लिखते थे। खुश विस्मयी से इस वक्त मग़हूम मनसुखलाल हीरालाल नाजिर मुझसे मिलने के लिए दरबन आ पहुँचे थे। वे सचेत और बहादुर थे। उन्होंने हिन्दुस्तानियों को नेक सलाह दी। उन के वकील मिस्टर लाटन भी वैसे ही बहादुर थे। उन्होंने तो गोरों के काम की बड़ी निन्दा की और इस मौके पर जो सलाह हिन्दुस्तानियों को उन्होंने दी, वह एक सच्चे मित्र की हैसियत से, न कि पैसा लेकर सलाह देने वाले वकीलों की तरह।

इस प्रकार दरबन में दृढ़ युद्ध खड़ा हो गया। एक तरफ तो मुझ भर गरीब हिन्दुस्तानी और उनके इने गिने अंग्रेज मित्र थे। दूसरी तरफ धनबल, बाहुबल, अक्षरबल, और संख्याबल में सम्पन्न अंगरेज लोग। इस बलवान प्रतिपक्षी को सत्ताबल भी प्राप्त था। क्योंकि नैटाल की सरकार ने उन लोगों की मदद खूबमखूबा तौर पर की। मिस्टर हैरी ऐम्कंब ने जो प्रधान मंडल में थे और जो उसके कर्ताधर्ता भी थे, इस मंडल की बैठक में खूबमखूबा तौर पर भाग लिया था।

इसलिए हमारा वह पाँच दिनों का सूतक आरोग्य-सम्बन्धी नियमों के अधीन न था। उसका हेतु यह था कि किसी न किसी तरह एजेंट अथवा मुसाफिरों पर दबाव डाल कर हम लोगों को वापिस भेजा जाय। एजेंट के लिए तो धमकी थी ही। अब हमको भी धमकी दी गयी। वह यह थी कि अगर तुम लौट नहीं जाओगे तो तुम लोग समुद्र में डुबो दिये जाओगे और अगर वापिस चले गये तो शायद तुमको वापिस भेजा भी मिल जाय। मैं उन मुसाफिरों के बीच खूब फिरा। उनको धीरज दिया। 'नादरो' के मुसाफिरों को भी धैर्य का संदेश भेजा। मुसाफिर लोग शान्त रहे और उन्होंने हिम्मत रक्खी।

मुसाफिरों के विनोदार्थ स्टीमर में खेल तमाशे का प्रबन्ध किया गया। बड़ा दिन आया। कप्तान ने उस अवसर पर पहले दर्जे के मुसाफिरों की दावत की। मुसाफिरों में खास तौर पर तो मैं तथा मेरा कुटुम्ब ही था। भोजन के उपरान्त भाषण तो होते ही हैं। मैंने पाठशाला सुधारों पर भाषण दिया। मुझे माझूम था कि ऐसे मौकों पर गम्भीर भाषण नहीं दिये जाते। लेकिन मुझसे अन्य किसी प्रकार का भाषण न बन पड़ सकता था।



उस मनोरञ्जन में मैं शरीक तो जरूर होता था, लेकिन मेरा दिल तो हरबन में खल रहे आन्दोलन में ही पड़ा रहता।

इसका कारण यह था कि उस आक्रमण का केन्द्र तो मैं ही था। मुझ पर दो देशरोपण थे: एक तो यह कि मैंने हिन्दुस्तान में नैटाल निवासी गोरों की बेजा बुराई की थी और दूसरे यह कि मैं नैटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहता था। और इसी खातिर 'नादरी' और 'कूरलैड' में मैं खास नैटाल में बसाने के लिये हिन्दुस्तानियों को भर लाया था।

मुझे अपने उत्तर दायित्व का भान था। मेरे कारण दादा अबुल्ला को बड़ी क्षति पहुँची थी, मुसाफिरों की जान भी जोखों में थी और अपने कुटुम्ब को साथ ले आ कर मैंने उनको भी दुःख में ला डकेला था।

तिस पर भी मैं बिल्कुल निर्दोष था। मैंने किसीको नैटाल चलने के लिए रलचाया न था। 'नादरी' के मुसाफिरों को मैं पहचानता तक न था। 'कूरलैड' में भी अपने दो तीन सम्प्रदायों को छोड़ कर मैं उन सैकड़ों मुसाफिरों का नाम ठिकाना तक न जानता था। मैंने हिन्दुस्तान में नैटाल के अंग्रेजों के बारे में ऐसी एक भी बात न कही थी, जिसे मैं नैटाल में पहले न कह चुका होऊँ। और जो कुछ मैंने कहा था उसके लिए मेरे पास काफी सबूत भी था।

इस लिए उस सभ्यता पर मुझे खेद हुआ, नैटाल के अंग्रेज जिससे पैदा हुए थे और जिसके वे प्रतिनिधि तथा हिमायती थे। मैं उसीका विचार किया करता था और इस लिए उसीके सम्बन्ध में अपने विचार मैंने इस छोटी सी सभा में पेश किये और श्रोतागण ने उन्हें सुन लिया। जिस भाव में मैंने उन विचारों को व्यक्त किया था उसी भाव में कप्तान इरयावि ने उन्हें लिया। उसके फल स्वरूप सन लोगों ने अपने जीवन में कुछ फेरफार किया या नहीं—सो मैं नहीं जानता। हाँ, लेकिन इस भाषण के उपरान्त कप्तान तथा अन्य अमलदारों के बीच सुधारों की बात बहुत बातचीत होती रही। मैंने पाश्चात्य सभ्यता को प्रधानतः हिंसक रूप और पूर्वीय को अहिंसक रूप बतलाया। स्वावलम्बीयता ने मेरे 'सद्धान्तों' को मुझीपर कसा। ज्यादातर कप्तान ने ही पूछा:—

"गोरे लोग जिस प्रकार की धमकी दे रहे हैं, अगर उसी प्रकार की क्षति वे आपको पहुँचावें तो आप अपने अहिंसा-सिद्धान्तों का अमल किस प्रकार करेंगे?"

मैंने उत्तर दिया—मेरी आशा है कि उनको भी मुआफ कर देने तथा उन पर मामला न चलाने की हिम्मत और बुद्धि ईश्वर मुझे देगा। आज भी मुझे उन पर रोष नहीं है। उनके अज्ञान तथा उनकी संकुचित दृष्टि पर मुझे खेद होता है। वे जो कह और कर रहे हैं सो योग्य है। मैं मानता हूँ कि वे उसे अपने शुद्ध भाव से ही मानते हैं। इसलिए मुझे रोष करने का कोई कारण नहीं है। प्रसन्नता मुस्कुराये; मेरा कपन शायद उन्होंने माना न हो।

मेरे दिन इस प्रकार से बीते। सूतक बन्द करने की अवधि ठेठ अखीर तक निश्चित न थी। इस विभाग के सफर से पूछने पर वह कहता—“यह बात मेरी सत्ता के बाहर है। जिस वक्त सरकार आज्ञा देगी उसी समय मैं मुसाफिरों को उतरने दूँगा।”

अन्त में मेरे तथा मुसाफिरों के नाम अख्दीमेटम (अखीरी चेतावनी) आया। उसके द्वारा दोनों को जान जोखिम की

धमकी दी गयी थी। दोनों ने नैटाल के हन्दरगाह में के अपने हक को जनाते हुए लिखा कि चाहे जो कुछ विचार जाय नैटाल में उतरने उतारने के अगने हक पर हम दब रहे हैं। अखिरश २३ वें दिन यानी १२ जनवरी सन् १८९६ स्टीमर को छुटी मिली और मुसाफिरों को उतरने का हक निकल गया।

(नघजीवन)

मोहनदास करमचन्द गांधी

## पंजाब में खादी

[खर्चा—संघ की पंजाबशाखा की भेजी हुई रिपोर्ट का सारांश नीचे दिया जाता है। मूल में दिये गये किन्ने व्यौरें संक्षेप रूप में छेड़ दिये गये हैं। मूल में मैं पाता हूँ कि ४२ केन्द्रों खादी का काम हो रहा है। पाठक इसका अर्थ मूर्तिमान करने की कोशिश करें। इसका अर्थ है उन गावों के मित्रों पेशा लोगों से जीवन्त सम्बन्ध रखना और उनकी मिहनत बढ़ाकर उनमें धन बाँटना। बिना सोचे विचारे कोई यों भी कह सकते हैं कि 'ऐसा ही तो बनिये भी करते हैं।' मगर उस बतिये में जो उनके जिये आप मालामाल होना चाहता है और देशभक्त में जो उनसे काम करके पैसा लेने को कहता है बड़ा अन्तर है। जब खेद की जड़ पकें तौर पर जम जाय तब उसका आवर्षण रोके रकनेवाला न होगा। इसके कारण उनके घरों से जो अपने घर की एकता को तोड़े बिना मिहनत करने को तैयार हैं दगिद्रता का भूत भाग जायगा। पंजाब काम की खबी यह है कि वहाँ का काम करीब २ स्वावलम्बी गया है। वहाँ प्रायः न बसूल होने लायक एक भी लहना न है। सूत के बढे दो आना बुनाई के और लेकर कपड़ा बदल वहाँ की एक विशेषता है और इससे बहुत अधिक लाभ हो संभव है। मैं समझता हूँ कि यह बात केवल पंजाब ऐसी जगह के लिए ही संभव है, जहाँ जैसी कि रिपोर्ट कहती है, बहुत आदमी तक रुहर पहनते आये हैं। लाला कि शनचन्द भाटिया को स्वावलम्बी ही गव होता है कि उन्हें अपने ही यहाँ, कम काम पर चादर छप लेने में सफलता मिली है। उन्होंने खादी प्रतिष्ठान का भी न मँगाया है और उसकी नकल उतारने में उन्हें सफलता मिली है और जगहों के ऐसे पंजाब में भी धनियों के खदर पर ध्यान न देने का ही रोना है। जितनी जल्दी रुहर तैयार होता है, वह बि नहीं सकता। देश के लिए सभी किसी के मरने की जरूरत नहीं है। उसके लिए तब तक क्या हम खदर न पहिनें जब तक मैंचेष्टर या जापान के कल के बने ताजे से ताजे कपड़े के साम दाम और रूप में मुकाबिला न कर सके? अगर खदर के बि हम एक भी पैसा अधिक न ले सकें या अपने कपड़ों की पसन्द में कुछ भी संयम न कर सकें तो हमारे स्वदेश-प्रेम की कीमत क्या? पंजाब को कपास है और कातने बुनने और व्यापार लिए बुद्धि और शक्ति है। तब क्या उसे इतनी देश-भक्ति न होगी कि जैसे खदर तैयार होता जाय वैसा ही बिकता भी जाय। यह बात तो होनी ही नहीं चाहिए कि मुझे या जमुनालाल जी या किसी दूसरे को ही खदर के लिए पैसा जमा करने या बँचने में लिए वहाँ जाना पड़े।

इस साल के भीतर इस विभाग ने अपने काम में उन्नति की है। बड़े पैमाने पर विचबिबवनों के बिना आर सीधे खादी तैयार करने का काम शुरू किया गया है। इस खच इससे निकल सका है। प्रधान कार्यालय लाहौर से डा. आदमपुर में लाया गया है। यह केन्द्र खादी की उत्पत्ति के लिए हाल में



१६ दिसम्बर, १९२६

कोला गया है। पहले जहाँ ६ से ८ अंक तक के सूत का कपड़ा बनाया जाता था, अब १६ अंक तक के सूत का कपड़ा बनाया जा सका है। दाम भी बहुत घटाया गया है। उत्पत्ति और बिक्री के पिछले साल और इस साल के अंक दिये जाते हैं—

उत्पत्ति	बिक्री	उत्पत्ति	बिक्री
१९२४-२५	१९२५-२६	१९२४-२५	१९२५-२६
(५,५०६) रु.	(५,७४) रु.	(१,०४,६८८) रु.	(९३,४६८) रु.

इन अंकों से मालूम होगा कि पिछले साल की अपेक्षा इस साल उत्पत्ति में सेकड़े ६० और बिक्री में ११ फीसदी की बढ़ती हुई है। समाचार पत्रों के जरिये भी प्रचार होता रहा। इस विभाग की ओर से साल में ५४ लेख निकले। शहरों में काफी जोर का प्रचार न हो सका और इस कारण बिक्री में उतनी वृद्धि नहीं मिली। एप्रिल के महीने में, जिसे गांधी मास करार कर दिया गया था, १२ जगहों पर फेरों के द्वारा खादी बँचने की कोशिश की गयी और १४०००) रु० की बिक्री।

### उत्पत्ति केन्द्र

१. प्रान्त भर के सबसे अच्छे उत्पत्ति केन्द्रों में बटाला एक है। इसे लाला हंसराज दीनानाथ चलाते हैं। इसके लिए उन्होंने १००००) रु० की पूँजी आगू लगायी है और ५०००) रु० के अन्दर इस विभाग की ओर से कर्ज दिये गये हैं। शर्त यह है कि ५०००) रु० की खादी वे बराबर अपने पास तैयार रखें। उनके अधीन ६० जुलाहे हैं और २५००) रु० की खादी हर महीने तैयार करते हैं। यहाँ का कपड़ा अच्छा धुला होता है इसलिए उसको माँग खूब रहती है। सूत और कपड़े में उन्नति भी खूब हुई है। पहले जहाँ, २८ इंच के चौड़े धान में ५०० सूतों का ताना बनता था अब १२०० तक सूत लगते हैं। दाम भी सेकड़े ४॥ घटा है। इस केन्द्र की उत्पत्ति और बिक्री के अंक नीचे दिये जाते हैं:

उत्पत्ति	बिक्री	उत्पत्ति	बिक्री
१९२४-२५	१९२५-२६	१९२४-२५	१९२५-२६
(२५,५१३) रु.	(१६,६८२) रु.	(३२,४६८) रु.	(१९,३२५) रु.

२. आदमपुर: अब इस केन्द्र का सारा प्रबन्ध चर्खा-संघ के हाथ में हो है। इस साल ३६,५४३) रु. की खादी बनी जो खादी विभाग के बिक्री विभाग को दी गयी।

३. घुरियल: यह केन्द्र ठाकुर गोकुलप्रिंह के अधीन है। इन्होंने पर्याप्त आश्रम, सावरमती में शिक्षा पायी थी। इस साल यहाँ १५,४०१) रु. की खादी बनी और ९९१) रु. का नफा हुआ।

४. दरियावा: इस क्षेत्र में काफी कपास न होने से बुनने को बड़े का काफी सूत नहीं मिलता। तामी लोग खादी पहनते हैं। इस लिए कातने वालों को कराव दी जाती है और सूत के बदले में काम भी। जुलाहों को चर्खे चलाने और शुद्ध खादी बुनने को कहा हुवा गयी और २३५४) की कपास बँचा गयी।

५. जेग: यह केन्द्र स्वतंत्र रूप से चलता है। पिछले साल यहाँ सेकड़े ५,६०९) की खादी तैयार हुई थी, इस साल १३,२१२) रु. की बनी और बिक्री भी ३,९५२) रु. से बढ़ कर ११,६११) रु. की हुई। कपड़े का दाम भी घटा है और उत्पत्ति के जैसा नहीं।

	१९२४-२५	१९२५-२६
(रुपयों में)	(रुपयों में)	(रुपयों में)
लाहोर	२१,९४९	१९,२३६
मुलतान	५,१५३	६,३९७
लायलपुर	३,८८४	५,५७६
डेरागाजीखा	२,७५५	५,६१२
डेराइसमायल खाँ	१,५३१	४,०३४
रावलपिण्डी	९८३	२,६३४

पाठक देखेंगे कि एक लाहोर को छोड़ कर सभी जगह बिक्री बढ़ गयी है। आगे साल प्रचार कार्य अधिक करने का विचार है। आशा है कि बिक्री आगे साल और भी बढ़ेगी।

### एजेन्सी और फेरी

इस विभाग की प्रान्त में कई एजेन्सियाँ हैं। उनके जरिये १२,५९४ की खादी बिक्री।

### हाथकते सूत से खादी का बदलौवल

अगस्त में ललक मसाह में इस विभाग ने हाथ कते सूत से खदर बदलना शुरू किया। पीछे पता लगा कि कई जगहों पर काफी सूत तैयार पड़ा हुआ था किन्तु बुनवाने की सुविधा न होने से उसका न कुछ उपयोग ही होता था और न लोगों को सूत अच्छा कातने की उत्तेजना ही मिलती थी। यह हालत देख कर इस विभाग ने दो आने की गज बुनाई और दूसरे खर्च के लिए लेकर, सूत के बदले खादी देना शुरू किया। ढाई महीने में ६००० पाउन्ड से अधिक वजन का सूत बदला जा सका है। हाल में इस काम के लिए दो केन्द्र, एक मोन्टगोमरी में और दूसरा मियांचुन्ती में खोले गये हैं। ये केन्द्र स्वावलम्बी हैं।

### चर्खा-संघ के सदस्य

इस साल 'अ' श्रेणी के ७० और 'ब' के ७ सदस्य बने। इनमें २२ खादी-सेवा संघ में भी हैं।

### विद्यालयों में खादी

किसी भी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने अपने स्कूलों में कताई नहीं शुरू की है। मुलतान कैम्प के गुरुकुल ने और आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजराणवाला ने अपने छात्रों को खादी का पहनावा शुरू करा दिया है। आत्मानन्द जैन गुरुकुल के विद्यार्थी रोज आधा घन्टा तकली भी चलाते हैं।

### कताई का रिवाज

हमेशे से चली आती हुई कताई, इस प्रान्त में बिलकुल लुप्त नहीं हुई है। मोटे दिवाब से कहा जा सकता है कि गांवों में सेकड़े ६० आदमी अभी अपने हाथ के कते सूत का ही कपड़ा पहनते हैं। इस विषय में विवेचनाय अंक इकट्ठे करने के लिए कुछ याग्य व्यक्तियों को भेज कर गांवों के अंक इकट्ठे कराने का विचार हो रहा है। लाहोर के ऐसे बड़े शहरों में खादी को लोक-प्रिय बनाने की जबरदस्त कोशिश की जायगी। इन सब कामों के खर्च के लिए, यहाँ स्थानीय चंदा इकट्ठा किया जायगा।

### साधारण स्थिति

इस साल में काफी उन्नति हुई है और ऐसा मालूम होता है कि अगर काफी पूँजी मिल सके तो २५०००) तक की खादी हर महीने तैयार करायी जा सकती है और गांवों में सूत से बदल कर खपायो जा सकती है। अगर रुपया न मिल सका तो महात्मा गांधी और सेठ जमुनाल बजाज से कुछ समय इस प्रान्त में भी दौरे के लिए देने की प्रार्थना की जायगी, जिसमें यहाँ की स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। (यं० इ०)



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, मार्गशीर्ष सुदि १२, संवत् १९८३

## द० अफ्रीका की स्थिति

प्रिटोरिया से मि० एन्ड्रयूज तार देते हैं:

“इच धर्मालयों ने १९ दिसम्बर के प्रार्थना विषय को स्वीकार किया है। हरजौग साहेब १७ तारीख को डेलीगेशन से मिलेंगे। पहली बैठक २०वीं को है।”

इस मुश्किल मामले के न्याययुक्त हल के लिए उपयुक्त वायु-मंडल तैयार करने में, इच लोगों के संशोधित धर्मालयों को स्वीकृति एक बड़ी बात है। द० अफ्रीका में इच धर्मालय, सबसे अधिक न बदलने वाली संस्था हैं। हिन्दुस्तानियों के सवाल, या द० अफ्रीका में जिसे रंग का सवाल कहते हैं, उसके विषय में शायद ही उनका मत संकीर्ण न रहा हो। जेनरल हरजौग की प्रतिनिधियों से १७ ता. को होनेवाली बैठक का पहला अर्थ है, इस कान्फरेन्स का और उसमें जिन सवालों को चर्चा होगी, उनका बहुत बड़ा महत्व स्वीकार करना।

मुझे उम्मेद है कि इस एक-दृष्टि अंगरेज को इस सद्भाव काम में हिन्दुस्तानी जनता १९ ता. को पूरे दिल से मदद देगी। कोई बिना विचारे कह सकता है कि प्रार्थना करने में कुछ लगता तो है नहीं, और प्रेषवाले छाप देंगे कि इस उद्देश्य की सहायता के लिए फर्ला फर्ला जगह पर प्रार्थना की गयी। मगर सचमुच में मि० एन्ड्रयूज ने हमें सबसे कठिन काम करने को कहा है। अपना धन कोई खुशी से या नाखुशी से या दिखावे के लिए भी दे सकता है। किसी भी बात से हम जबानी सहमति प्रस्तुत कर सकते हैं। मगर अनिच्छापूर्वक या दिखावे के लिए हार्दिक सहयोग हो नहीं सकता। और मि० एन्ड्रयूज हम से हार्दिक सहयोग माँगते हैं। क्योंकि हरय की जबरदस्त इच्छा के अलावा, प्रार्थना और है ही क्या? हम अपने भाव-जबान से प्रकट कर सकते हैं, अपने खास कमरे में या सर्व साधारण के आगे भी प्रकट कर सकते हैं, मगर सच्चा भाव होने के लिए उसे हमारे हृदय के भीतर से निकलना चाहिए। इस लिए जिनसे हो सके, यानी जिन्हें हिन्दुस्तानियों के आन्दोलन में विश्वास है और ईश्वर में विश्वास है, और इस लिए प्रार्थना में विश्वास है, १९ तारीख को द० अफ्रीका के हिन्दुस्तानी बाशिन्दों से हृदय का मेल करने के लिए कुछ समय निकालें और कान्फरेन्स का कठिनाइयों के लिए ईश्वर का आशीर्वाद माँगें।

अगर आज भी हिन्दुस्तान में कोई है जो यह नहीं जानता हो कि द० अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों का आन्दोलन किस लिए है तो वह जान लेवे कि द० अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की हस्ती को ही खतरा है। खास कर के एशियाटिक विल जो पारलियामेंट की पिछली बैठक में स्थापित कर दिया गया था, और इस कान्फरेन्स का जो विचारणय विषय होगा, उसे इस प्रकार बनाया गया है कि वह एक भी स्वायत्त हिन्दुस्तानी का द० अफ्रीका में रहना असंभव कर देगा। द० अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की कानूनी स्थिति का जिन्हें पता नहीं है, वे जान लें कि, उनकी प्रायः कोई राजनीतिक स्थिति है ही नहीं। बस तौहर होने के सिवाय, ओरेंजिया में और तरद वे रह ही

नहीं सकते। कई जगहों में वे जमीन के मालिक नहीं बन सकते। सारे द० अफ्रीका में, तिनारत के अधिकार बहुत कम कर दिए गये हैं और हिन्दुस्तानियों के साथ तिनारत के अधिकार सम्बन्धी नियमों के पालन की कड़ाई दिन पर दिन बढ़ती जाती है। उन विरुद्ध खड़ी की गयी सामाजिक बाधाओं और उनके कारण पैदा वाली मुसाफिरी की स्वाधीनता की कठिनाइयों इत्यादि की बात बिलकुल नहीं कहता। अभी जैसी स्थिति है वही काफी घुरी है। एशियाटिक विल अगर पास हो गया तो रद्दी सही बात भी पूरी कर देगा। बहुत बड़ी कठिनाइयों के बाद तो यह कान्फरेन्स हिन्दुस्तानी बाशिन्दों को केवल न्याय भर दिखाने के लिए कागज पर जा सकी है। और इस काम के लिए १९ ता० को भावान् कृपा के लिए प्रार्थना करने को एन्ड्रयूज कहते हैं। जिन लोगों को विश्वास होवे, वे नम्रता से अपना हार्दिक सहयोग दें।

(यं० इ०)

## शराबखोरी का हक

बंगाल सरकार ने एक सूचना निकाली है जिसमें अपराधकारी सम्बन्धी नीति के विषय में शराब खोरी कतई करने को वह अपना ध्येय मानने से इनकार करती है। जब भारत सरकार के होममेम्बर ने एसेम्बली की बहस में साफ साफ कह दिया कि सरकार ऐसी नीति के विरुद्ध है, प्रान्तीय सरकारें बारी बारी से, शराबखोरी के किसी भी प्रकार के सार्वजनिक दस्तक्षेप का विरोध करती आयी हैं।

सारे संसार में भड़ोवाले (शराबखाना वाले) भी सोते रहे हैं। शराब बंदी के आन्दोलन का संसार भर में फैलते देख कर हिन्दुस्तान में वे पहले से ही सजग रहना चाहते हैं। शराबबंदी की विरोधी सभाओं के नाम पर हमारे धर्मप्रणों से उतारे ले ले कर, पर्चा के जरिये झूठ का प्रचार किया रहा है। ऊपर से निर्दोष दिखायी पड़ने वाली खबरों और तर्कों के जरिये, जो वैसे अखबारों में निकलते हैं जो अगर भड़ोवा के ही न हुए, जैसे कि कई पत्र हैं तो, उनसे पैसा तो बचा पाते हैं, बहुत बुरा प्रचार किया जाता है। अभी उस दिन रायदास तार मेला था कि किसी प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी सज्जन ने कैमरा में कहा था कि जब तक हिन्दुस्तान में खजूर के पेड़ शराबबंदी हो नहीं सकती। इसके बाद, खानगी तौर पर करने पर पता चला कि अमेरिका के शराबबंदी के कानून की पूर्ति विषय में चर्चा का यह एक अंश मात्र था और इस एक अंश का अर्थ, उस पूरे चर्चा के बिलकुल उलटा है। सज्जन ने लौटने पर बंबई में ‘कानिक्ल’ और पत्रों के प्रतिनिधियों से स्पष्ट कहा कि “मैं शराबबंदी के पक्ष में हूँ।” उन्होंने कहा कि उनका खयाल है कि अमेरिका में शराबबंदी सफल हुई है। मगर तौभी इससे शराब बिलकुल बंद न हो सकी है क्योंकि धनी लोग अधिक पैसा लेकर चोरी से लाया गया शराब पी सकते हैं और गरीब लोग नहीं कर सकते इस लिए, पहले जो रुपया, शराब में नष्ट होता था, अब उसीका उपयोग उनके बाल बच्चों के आराम के लिए होता है। उन्होंने प्रतिनिधियों को विश्वास दिलाया कि अमेरिका ने शराब बंदी के लाभ जब देख लिये तो फिर से वह शराब बनने को नहीं है।

हिन्दुस्तान ने अगर जल्दी कुछ न किया तो संभवतः शराबबंदी के विरोधियों की शक्ति हमारे रोकें रुकनेवाली न रहेगी। शराब से लाभ उठानेवाले हमारे विरुद्ध संगठित होकर अपनी ताकत



कम कर दिया। मसलन मद्रास में शराब से बहुत लाभ उठनेवाली एक कम्पनी एक लोकप्रिय समाचार पत्र का पायः मालिक ही है और दूसरे पत्रों को भी विज्ञापन के रूप में बड़ी भेंटें देता है। काउन्सिल और मन्त्रिमंडल में भी उसके आदमी हैं। हम स्थानपूर्वक जाँच करें तो और जगहों में भी यही हालत दिखायी देगी। इस समय सारे संसार में शराब के विरुद्ध बहुत बड़ी लहर चल रही है। अगर उससे काम लेने में हम चूक जायें तो फिर हिन्दुस्तान में भी, जहाँ सारा लोकमत हमारे ही पक्ष में है, हमें यह लड़ाई आज से कहीं कठिनतर मालूम होगी।

बंगाल सरकार ने शराबखोरी को कतई बन्दी के विरुद्ध गंभीरता के साथ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त बैर दलाल के पेश किया है। यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त की धजियाँ उड़ायी जा चुकी हैं। हमने अपने परिवार के लिए और प्रायः सारे समाज के लिए हानिकारक काम करने का हक कोरी कसबा भर है जो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के उन पुराने सिद्धान्तों से पैदा हुई है, जिन्हें उन्नतिशील जातियों ने कब से त्याग दिया है। हिन्दुस्तान में जहाँ व्यक्ति के नामवारी हकों को बराबर ही, समाज के हित के सामने छोड़ा पड़ा है। इस सिद्धान्त का निश्चय ही स्थान नहीं है। सचमुच में इन सब गड़बड़ की जड़ यह है कि हमारे गेरे शासन समझ नहीं सकते कि उनके और हिन्दुस्तानी समाज में शराब के स्थान में क्या अन्तर है। हममें से सबसे नीच आदमी की दृष्टि में भी शराब या ब्रन्डी, या विस्की वगैरह पीना जैसी अनुचित बात बुरी चीज है, वही उनमें नहीं। सरकार की दया से हम लोगों में भी शराब पीने वाले हैं—ऐसा कोई भी बड़ा गांव नहीं है, जहाँ शराब की एक लाइसेंस-प्राप्त दुकान न हो और सरकार का आग्रह है कि विक्री के लिए कमसे कम इतना शराब रहना ही चाहिए। अगर यहाँ तो सभी जातियों में शराब पीना अनुचित गिना जाता है। औरतें घर पर पीने देंगी नहीं। जो कोई पीता है वह मित्रों से छिप कर घर से दूर जा कर पीने की कोशिश करता है। यही वह बड़ा भारी फक है जिसे दूसरे प्रकार से बचन से लालित पालित यूरोपियन समझ नहीं सकते। शराबखोरी के हक पर कोई भी बात चलते ही, किसी हिन्दुस्तानी समाज में वेहद हँसी उड़ेगी मगर यूरोपियनों की सभा में उसी पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जायगा।

लाइसेंस देने के बोर्ड और प्रत्येक स्थान अपनी खुशी से शराब बन्द करने या चकने देने की अधिकारी सभाओं इत्यादि की बातों से शराब से लाभ उठानेवाली शक्तियों को हमारे देश में भी उसी प्रकार जैसा कि उन्होंने पश्चिमी देशों में कर लिया है, संगठन करने और अपनी ताकत बढ़ाने की उत्तेजना मिलेगी और इसके अवसर हाथ आयेंगे। इस परामर्शक बात में हम जितनी देर करते हैं। हमें अधिकाधिक कठिन होवे तभी हिन्दुस्तान वैसा नहीं कर सकता। हमारी गरीबी बहुत बड़ी है। लोगों की हालत सुधारने के लिए जितने ज़रूरी काम किये जा सकते हैं, शराब की लालच उनके आगे नहीं है। अब तक लाइसेंस देनेवाले का धोखा माव है। इसका एक ही उपाय है, शराब को कतई बन्द कर देना। बहुत बड़े पैमाने पर शराब का काम शुरू करने के बदले में लाइसेंस देने के अधिकार को तो उसके बदले इस से कम में नहीं चल

सकता है कि किसी मान्य एक निश्चित क्षेत्र में ही, जैसे तीन जिलों का एक इलाका बना कर वहाँ शराब बिल्कुल बंद किया जाय और दूसरे क्षेत्रों में भी सालों साल यह नियम बहाया जाय। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि औरतों और बच्चों को भी मिला कर, सारी प्रजा सरकार को वैसे कायदों की पूर्ति में सहायता देगी जिनसे शराब खोरी बिल्कुल बंद हो जावे। इसीसे सुधारों की व्यावहारिकता सिद्ध हो सकेगी।

( यं. इं. )

चक्रवर्ती राजगोपालाचार

## टिप्पणियाँ

## राजनीति ?

काठियावाड़ राजकीय परिषद् के सभापतित्व के लिए श्रीयुक्त अमृतलाल ठक्कर के चुनाव पर गांधीजी ने 'नवजीवन' में ये विचार प्रकट किये हैं :

अमृतलाल ठक्कर ने अपने को ढेब भंगियों में गोर कर दिया। इतने से ही संतुष्ट न हो कर भीलों के भी वे सेवक और मित्र बने। ऐसा आदमी राजकीय परिषद् में क्या करेगा ? उनके चुननेवालों के तो मन में यह सवाल न उठा किन्तु अमृतलाल ठक्कर को खटका। अपना नाम आने देने के लिए उलाहना देते हुए उन्होंने मेरे पास इस आशय का पत्र भेज दिया।

“आप तो जानते ही हैं कि मेरा काम है इस समय ढेब, भंगी, भील, कोली, इत्यादि के साथ। मुझ से और राजनीति से क्यों कर बनेगी ? आप ही यह सलाह देते हैं कि एक काम में तन्मय होनेवाले को दूसरे में पड़ने का लोभ नहीं रखना चाहिए। अब आप ही क्यों मुझे अपने स्थान से हटाकर दूसरी जगह ले जाने को तैयार हैं ?”

यह प्रश्न उनके मन में उठा, इससे उनके मन की शुभ दशा प्रकट होती है किन्तु उन्हें भी खबर तो है ही कि राजकीय परिषद् आज कल केवल अन्त्यजों की सेवा का ही धंधा कर रही है। कौन कहता है कि खादी में नह सेवा नहीं आजाती ? इतना ही नहीं किन्तु अन्त्यजों के लिए सीधे सीधे भी परिषद् ने कम काम न किया, कम पैसा खर्च न किया। इस लिए परिषद् का क्षेत्र अभी बड़ी है जो वस्तु अमृतलाल ठक्कर को प्रिय है। काठियावाड़ में खादी कार्य के अधिष्ठाता अमृतलाल ठक्कर ही हैं। यह मुझे मालूम नहीं कि इस समय खादी के प्रति उनका वही प्रेम, वही श्रद्धा है या नहीं। परिषद् के आगे वे इसका खुलासा सहज ही कर सकेंगे।

अब रही राजनीति। मेरी दृष्टि में आज ऐसे रचनात्मक कार्य के बाहर, परिषद् के लिए दूसरी राजनीति हो ही नहीं सकती। मैंने समस्त भारतवर्ष के लिए इसीको समझा है। आज जिसे राजनीति समझते हैं, उसे छोड़ कर भारतवर्ष अगर रचनात्मक कार्य में तन्मय होकर ठक्कर की निष्ठा से कार्य करे तो स्वराज्य हस्तामलक सा हो पड़ेगा और जो बात मैं भारतवर्ष के लिए लागू बतलाता हूँ, वह काठियावाड़ के लिए सहज ही लागू होगा। इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि काठियावाड़ के बाहर कोई राजनीतिक काम होवे ही नहीं। जिनसे केवल राजनीतिक काम ही हो सकता है, जिन्हें रचनात्मक कार्य रूखा लगता है, वे तो राजनीति में पड़ेंगे ही। उनका काम अगर हमें न जँचे तो हम उनका साथ छोड़ कर उन्हें अपने रास्ते चले जाने देंगे और जब वे देखेंगे कि उनके पीछे कोई नहीं है तो उन्हें अपने रास्ते की योग्यता के विषय में शक होगी और वे पीछे फिरेंगे। काठियावाड़ ने यही सुवर्णमार्ग पकड़ा है। मुझे उमेद है कि परिषद् यह लीक न छोड़ेगी। ऐसी एक भी बात मैं नहीं जानता कि जिसके कारण



परिवर्त को वह मार्ग छोड़ना चाहिए। अगर हम भले होंगे, अगर हम जाग्रत होंगे, अगर हम निर्भय होंगे, अगर हम एक होंगे—तो राजा भी सहज में ही भला, जाग्रत, प्रेमी और स्थित का मित्र हो रहेगा। यह ईश्वरीय नियम है। यह केवल एक कहावत भर ही नहीं है कि 'आप भले तो जग भला' किन्तु यह सत्य है। इस प्रजा युग में 'ऐसे राजा वैसी प्रजा' से कहीं बड़ कर अधिक सब है 'जैसी प्रजा वैसा राजा'। इसीसे राजनीति यह है कि नीचे से ऊपर तक सब के साथ सब का संबंध और एकता हो। रचनात्मक कार्य वह है जिसमें सभी को एक दूसरे के परस्पर-संबंध की आवश्यकता हो, वैसी एकता होवे। राज्यकारियों को खादी अपनी मोनता से जितनी अधिक अपनी ओर मिला लेती है, नम्रता से अपनी बात जितनी सुनाती है, लंबे भाषणों या डेखों का उतना अंतर पड़ नहीं सकता किन्तु खादी का भाषण तो जो जानता है वही सुनता है। उस मधुर मधुन को सुनने के लिए तब्र का और एकाग्रता चाहिए। अस्पृश्यता निवारण यानी आत्मशुद्ध यानी गरीबों के साथ हार्दिक ऐक्य की शक्ति के सामने काउन्सिलों (घारा सभाओं) के भाषण मुझे निर्जीव लगते हैं।

किन्तु ये तो मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। उनकी प्रेस में काठियावाड़ियों और श्री अमृतलाल ठाकर का कत्ता है। उनमें से उन्हें जो हचे वे स्वीकार करें और दूसरों का त्याग करें।

(नवजीवन)

माहनदास करमचंद गांधी

### उन्नतिशील भारत

समुद्रपार के व्यापार के मंत्री मिस्टर ए. एम. सैमुएल के लिंकन चेम्बर ऑफ कोमर्स (व्यापार मंडल) के सम्मुख दिये गये भाषण की रिपोर्ट का कुछ अंश दिया जात है :-

“हमारा सबसे अच्छा प्रादुर्भाव है हिन्दुस्तान। वह हर साल हमसे ९,००,००,००० पाउण्ड यानी कोई सवा आठ लाखों का माल, अधिकांश में अच्छे प्रकार का, जिसमें अंगरेजों की काफी मिहनत लगी होती है, खरीदता है। इस लिए हिन्दुस्तान से निर्यातकी किसी भी प्रकार की वृद्धि अभिनेदनयोग होगी, क्योंकि मजदूरों का अधिक काम देकर हम वर्तमान सरकार की प्रधान नीति का पालन कर रहे होंगे। वह नीति है बेकारी की संख्या घटाना। हिन्दुस्तान ने हमसे बहुत अधिक लेहे और इसका की चीजें, और रेवेनू सामान खरीदा है। वह उन्नति शील है और उसके पास बाहर की चीजें खरीदने का बड़ी रकम है। वह केवल माल की अपने लायक दर का रास्ता देख रहा था। उसकी साख बहुत बड़ी हुई है, केवल एक इंग्लैण्ड की साख उससे अधिक है। लिंकन जिले की कई कमितियों की हिन्दुस्तान में काफी धामान से भरी पूरी दकानें और कारखाने हैं। किन्तु हिन्दुस्तान में उसी स्थान पर योग्य और शिक्षित प्रतिनिधियों की मांग है। बहुत पेनाले कल-पुर्जों की बिक्री के लिए शिक्षित होशियार सलाहकारों की सहायता की जरूरत पड़ने है। वाले को हमेशा कलपुर्जों के जानकार एक सलाहकार की सहायता की जरूरत है। इस लिए हिन्दुस्तान के खरीदने वाले इन्जीनियरों से सम्पर्क रखने के लिए ऐसे जानकार ब्रिटिश प्रतिनिधियों की जरूरत है जो बिक्री के लिए या बिक्री हुई कलों के विषय में सलाह दे सकें। तौमी हिन्दुस्तान में बाहर से आयी हुई कलों में से सैकड़ ८० दमने ही और अधिकांश ब्रिटिश कम्पनियों के खास अपने प्रतिनिधि हिन्दुस्तान में हैं मगर वक्ता को तौमी ऐसे खरीदनेवालों से मुकाबिला हुआ ही जिन्हें इसकी शिकायत थी कि उन्हें ब्रिटिश होशियार

यह भी थी कि हम काफी सामान, और अधिकपुर्जे नहीं रखते। “कृषि सम्बन्धी औजारों की हिन्दुस्तान में बिक्री के संकेत में वक्ता का मालूम था कि ब्रिटिश कारखानेवालों ने इस बाजार में विकास के लिए तरद्दु और खर्च बठये हैं। किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली है। खैर, भारत सरकार हिन्दुस्तान किसानों को सहायता देने की कोशिश कर रही है, और इससे एक सबसे अच्छा उपाय है किसानों के हाथ में अच्छे औजार देना। हिन्दुस्तान में कृषि समितियां सहयोग समितियां इस लिए खोली जा रही हैं जिसमें लोग अजकल के औजारों को व्यवहार और मरम्मत करना सखे और उन्हें खरीदने में सहायता मिले।

इस में कोई सन्देह नहीं है कि मिस्टर सैमुएल का सवा विश्वास है कि हम उन्नतिशील हैं और अगर हम वे सब कलें—कृषि संबंधी और दूसरे प्रकार की जो इंग्लैण्ड तैयार करके खरीदें और वहां के विशेषज्ञों से काम लें तो इससे हमारी उन्नति ही होगी। अगर वही बातें हम लोगों को सत्य से कितनी जान पड़ती हैं ! हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान उन्नतिशील नहीं है। वह दिन दिन गरीब बनता जा रहा है। हममें से जो लोग यही जानते हैं कि इंग्लैण्ड या किसी भी दूसरे देश से अधिक धन कलें पैमाने और चतुर विशेषज्ञ बुलाने से गरीबी का मसला हल न होगा। गांधी ने कई साल हुए कहा था—“अगर प्रकाश बाहर से माल पैमाने से हमारा अपना बाढ ढकती है। अधिकारिक गुलाम बनते जाते हैं। हमें जरूरत है अपने हाथ पैरों से काम करने की शक्ति को, और अपनी हुनर को बढने के लिए जिसमें अपनी जरूरतों के लायक अपने पैर हम आप बना सकें पश्चिम की बिना सोचे बिचारे नकल करने का फल होगा, उस प्रकार की उत्तेजनाओं और योग्यताओं पर पानी फेरना, जिससे सुखपूर्वक जीवन बिगाने की ताकत भी जाती रहती है। मिस्टर सैमुएल के भाषण के समान अपणों से ही राजा ऐमाकलचल कमीशन जैसे कमीशन के उद्देश के सम्बन्ध में वैसी सन्देह पैदा होते हैं, जैसा कि इन पृष्ठों में कहा जा चुका है।

(गं० दं०)

खो० क० गांधी

### ‘ऋद्धिसिद्धि की जननी’ गायमाता

(७)

दुग्ध दोहादिविज्ञानं घृतान्तं तु कला स्यूता ।  
[अब दूध को साफ रखने की विधि मि० हेन बतला रहे हैं।]

#### दूध को स्वच्छ रखने

जब से गाय के थन में से निकले, तभी से दूध को स्वच्छ रखना चाहिए नहीं तो अच्छे दूध और मखन की आशा दुराशा है।

दूध के बिगड़ने का प्रधान कारण गर्ई है।

दूध में उसके पडने के कई तरीके हैं।

(१) गाय के पछले पैर और जाँघ में अगर लिपटा हो तो वहां दूध क्योंकि साफ रहे ? उसमें गोबर स्वाद और वास आता है। गोबर दूध में पड जाता है और में घुल जाता है, फिर जहां तक हो दूध को छानते रहिए गोबर का स्वाद उसमें से जाता नहीं।

दूध को छान कर तिनके, गोबर के बड़े टुकड़े भले निकाल डालें किन्तु ताजे गोबर का सैकड़ा ८५ हिस्सा दूध ही मिल जाता है और छान कर नहीं निकाला जा सकता।



यह सोचना भ्रम है कि दूध में मैला थोड़ा अगर पड़ गया तो उसे छान लेने बाद कोई हर्ज नहीं है।

अगर कहीं से गोबर, घास या ऐसा कुछ पड़ जाय और उसे छान कर निकाल डालें। तो भी फिर उसे पीना क्या कोई हर्ज होगा ?

(२) गोशाला का मैदान अगर स्वच्छ न हो और इस कारण गाय के पैर, धन वगैरह गोबर से भर जायें तभी स्वच्छ दूध नहीं मिलता, और गोशाला भीतर से चाहे जितनी स्वच्छ हो अगर यह सब नाकाम हो जाता है।

(३) गोशाला अगर एक अंधेरी कोठरी जैसी, न जाने कबक, जाली धूल और कीड़ों से भरी हुई हो तो, वहां का दूध बिगड़ेगा।

(४) दुहने वाले के कपड़े या हाथ स्वच्छ न हों तभी दूध बिगड़ता है, और मैदान गोशाला तथा गाय को साफ रखने की सभी मिहनत बेकार जाती है। दूध दुहते समय पड़ने के लिए कपड़ों का अलहदा जोड़ा रखना चाहिए। और कुछ भी न छूने तो पड़ने हुए कपड़ों को ही अच्छी तरह सेंभाल के पहले धो देना चाहिए और तब दुहने बैठना चाहिए। दुहने के पहले तो धोने ही चाहिए।

### नियमित समय पर ही गाय को दुहो

दुहने के लिए कोई समय निश्चय करके उसे ही पकड़े रहना चाहिए। आज सवेरे और कल डेढ़ से यों दुहने से गाय ठीक दूध नहीं देती। दुहने के समयों में बराबर अन्तर रखना चाहिए।

### दूध स्वच्छ रखो

दुहते समय दूध में उँगली नहीं डालना। कहीं बिल्ली इधर उधर न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए।

दुहते समय खर उलटना पलटना नहीं चाहिए, नहीं तो दूध में धूल भर जाती है और धूल के कण दूध में पड़ते हैं। गोबर साफ करते हों तभी या गोशाला साफ करने के बाद ही दूध दुहना नहीं चाहिए।

दूध रखने का मकान, स्वच्छ, हवा और प्रकाशवाला, और दुग्धरहित होना चाहिए।

### गाय कोई चीज खावे तभी दूध बिगड़ेगा

कहलु, प्याज, कोबी या कोई भी चीज गाय ने खायी हो तो दूध में दुग्ध आवेगा। इनमें कहलु सबसे गंदा गुजरा। कोबी अगर बहुत न खायी हो तो कुछ हर्ज नहीं।

दूध के बर्तन अच्छे किस्म के और साफ होने चाहिए। बरत या छेद वाले या फटे हुए बर्तन दूध के लिए काम नहीं लायें चाहिए क्योंकि ऐसी जगहों में दूध भर जाता है, और उसमें कराड़ों कीड़े पैदा होकर सारे दूध को बिगड़ देते हैं।

अगर कहीं कैचा खाला हो तो उसे कलई करा के चौरस बना देना चाहिए। बर्तन का मुँह खुला हुआ न रहना चाहिए। दूध का बर्तन बराबर धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए।

दूध का बर्तन बराबर धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए। उसके बाद गर्म पानी से धोना चाहिए।

हर एक बर्तन अन्दर से और बाहर से धोना चाहिए।

बर्तन को धूप में रखना चाहिए क्योंकि सूर्य आरी शुद्धि करता है।

बर्तन साफ करने का कपड़ा बराबर धोना और धूप में सुखाना चाहिए।

### स्वच्छ गाय, स्वच्छ गोशाला, स्वच्छ दूध

मैदान स्वच्छ रखो। इससे गाय का शरीर स्वच्छ रहेगा। गोशाला भी प्रकाशवाली और स्वच्छ रखो और उसकी रचना ऐसी हो जिसमें उसे धो डाला जा सके।

गाय की जाँघ, बगल और धन पर के बाल काट डालो।

पिछले पैर, धन, तथा बगल बराबर पोंछते रहना।

धन पर मल हों वे तो उसे धोकर पोंछ देना चाहिए। दुहने के पहले हमेशा धन के ऊपर भीगा कपड़ा फेरना चाहिए।

हर एक स्तन में से जो दूध पहले निकलता है, उसमें कीड़े होते हैं। उसे छोड़ देना चाहिए।

धूल या गंद जिसमें न गिरने पावे इसके लिए दुहने के लिए छोटे मुँह का बर्तन रखना चाहिए।

दूध तोलने के बाद तुरत ही उसे दूधशाला में ले जाओ।

दूध शाला अच्छी होनी चाहिए।

दूध रखने का स्थान अगर अच्छा न हो तो दूध भी अच्छा न रहेगा।

दूधशाला विशाल, प्रकाशवाली, धोयी जा सके ऐसी वस्तु की बनी हुई, पानी का जहां खूब प्रवन्ध हो सके, मैले पानी के निकासवाली, गोशाला से अलग अगर दूर नहीं, खादर वगैरह से दूर, गोशाला से ऊँची जमीन पर, जाड़े में जो गर्म रखी जा सके ऐसी और ऐसी दिशा में जहां गोशाला से दुग्ध न जाय होनी चाहिए।

बड़े दुग्धालय में बर्तन साफ करने के साधन दूधशाला में ही रखे जायें तो बहुत अच्छा।

दूधशाला न हो तो, दूध को स्वच्छ, प्रकाशवाली, हवादार, दुग्धरहित जगह में रखना चाहिए।

### दुहने की कल

ऐसा कई ग्वालों का खयाल है कि हर रोज अगर बीस या उससे अधिक गायों को दुहना न हो तो कल की कोई जरूरत नहीं है।

कल को बराबर साफ करना चाहिए क्योंकि जैसे दूध मैले हाथ से बिगड़ता है वैसे ही मैले कल से भी।

कल अगर साफ रहे तो हाथ के दुहे दूध की बनिबत कल का दुहा दूध बहुत अच्छा रहता है क्योंकि कल के कारण गर्द या धूल के कण दूध में घुसने नहीं पाते।

कल में ठंडा पानी भरने से वह साफ नहीं होगा। गर्म पानी, सोडा और किसी कृमिनाशक दवा का उपयोग करना चाहिए।

(नवजीवन)

दे० बा०

### आश्रम भजनावलि

पाँचवीं आश्रुति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्षर मिलते हैं, दण्ड कर लिये जाते हैं। आर्षर भेजनेवाले सज्जन अभी से शिकायतें भेजना शुरू न करें। छठीं आश्रुति तैयार हो रही है।

वस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



## तामिल नाड में खादीकार्य

( गत २ दिसम्बर से आगे )

प्रकाशन कार्य

तामिल पाक्षिक पत्र 'कुडिन्तूल' छपता है। उसमें खादी के विषय में सभी आवश्यक सूचनाएँ और दूसरे प्रान्तों के भी खादी के आंकड़े छपते हैं।

श्रीयुत बालाजीराव, जिन के प्रयत्नों से आचार्य राय के 'देशी रंग' का तामिल अनुवाद छपा जा सका था, इसी विषय पर श्री वंशीधर जैन की किताब का अनुवाद कर रहे हैं। 'तकली शिक्षक' का तामिल अनुवाद छप रहा है।

छपाई और रँगाई

तिरुपुर बखालय में रँगाई और छपाई का एक विभाग खोल दिया गया है। वहाँ कपड़े रँगने और छापने के अलावा, खादी रँगने के लिए देशी मसालों की प्रयोग-परीक्षा भी की जाती है।

चर्खा संघ के सदस्य

यह अफसोस की बात है कि खादी बनाने और छपाने में सभी प्रान्तों में आगे रह कर भी स्वेच्छा से सूत देने वालों की संख्या में यह प्रान्त बंगाल से पीछे पड़ा है। 'अ' श्रेणी के सदस्य जो हर महीने १००० गज सूत देते हैं ५०३ थे। इनके अलावा इस श्रेणी में ५ लड़के भी थे। २ सितम्बर तक इनमें से ११६ स्थानों और पाँचों लड़कों ने अपना पूरा चन्दा दिया था। 'ब' श्रेणी के ६३ सदस्य थे जो २००० गज साल में देते हैं। चर्खा संघ के जरिये कांग्रेस के ९३ सदस्य बने।

ये आंकड़े बरामद हैं किन्तु सदस्यों को अपना चन्दा समय पर देने की कोशिश करनी चाहिए।

स्थानिक संस्थाएँ और म्युनिसिपैलिटियाँ

तामिल नाड खादी बोर्ड ने लड़कों और लड़कियों के स्कूलों में कताई शुरू कराने के लिए स्थानिक संस्थाओं से प्रार्थना की। कुछ संस्थाओं ने न सिर्फ कताई सिखाने के लिए ही बल्कि अपने मातहतों को भी खादी की ही वर्दियाँ देने की कोशिश की। प्राथमिक शालाओं में कताई का काम बराबर ही रुकता पड़ता आया। सलेम म्युनिसिपैलिटी ने सब से पहले शुरू किया और १-२१-२२ में १५) ६० महीने पर एक चर्खा शिक्षक रखवा। दूसरे साल वह पद ही इटा दिया गया। तिरुपुर म्युनिसिपैलिटी इस साल अप्रिल में सभी प्राथमिक शालाओं में चर्खा चलाना आवश्यक बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया है।

इस साल ९ फरवरी को मद्रास कॉर्पोरेशन ने अपने मातहतों से खादी पहिने और अपने स्कूलों में सूत कातने की सिफारिश की। टिस्सेहोर म्युनिसिपैलिटी ने मार्च महीने में एक बुनाई शिक्षक रखवा है और लड़कों को वहाँ कातना सिखलाया जाता है। बंगलोर म्युनिसिपैलिटी से उसके नौकरों को खादी की वर्दियाँ दी जाती हैं। आशा की जाती है कि बंगलोर म्युनिसिपैलिटी खादी पर से जुगी भी हटा लेगी। जिन जिन से प्रार्थना की गयी उन सब में एक ट्यूटीकोरिन म्युनिसिपैलिटी ही ऐसी है जिसकी समझ में कताई और खादी उसके क्षेत्र के बाहर हैं। तालुक बोर्डों में, कताई शुरू करने में कोयम्बाटोर तालुक बोर्ड को कुछ अधिक सकलता मिली है। कोयम्बाटोर तालुक की छह कन्या पाठशालाओं में कताई आवश्यक कर दी गयी है। लड़कियों का काता ९ पाउन्ड सूत इस कार्यालय में भेजा गया था। उसकी जाँच करने से मालूम होता है कि इस बात में इस बोर्ड को खूब सकलता मिली है। थिरुविगारै बोर्ड ने आगे कि अपने स्कूलों में कताई

शुरू करने का निश्चय कर लिया है, किन्तु वह खर्च के अभी सरकार का मुँद जोड़ रहा है। कुलीटलाई तालुक बोर्ड यह अजब बात कही है कि किसी भी प्रकार की कताई शुरू करने के लिए उसके पास धन ही नहीं है।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस प्रान्त की स्थानिक संस्थाओं ने अभी तक खादी को कुछ विशेष महायता नहीं दी है किन्तु इसके लिए सब हिल से प्रयत्न किया है और उनके इस प्रयत्न में कितनी कठिनाइयाँ भी हैं। पहली कठिनाई है, मद्रास सरकार का बराबर खादी को अनुत्तेजना देने का प्रयत्न करते जाना। उस दिन ११ अक्टूबर के हुक्मनामे में कहा गया है कि सूत उन्हीं स्कूलों में काता जाय जहाँ बुनाई का भी प्रबन्ध हो। तब तक हम लोग बुनाई को इतना भूल नहीं गये हैं उसके लिए इतनी चिन्ता करनी पड़े। इसके उल्टे कताई प्रचार तो सारे देश में करना ही पड़ेगा। बुनाई के उल्टे, कताई का काम गरमियों के लिए रोजी देनेवाला और धनिकों के देश-प्रेम का परिचायक है। हाथ का कता सूत चाहे जितना आराम वरदा और काफी ऐंठनवाला हो तो, वह यों ही नहीं रह सकता। वह जरूर बुना जायगा। इस लिए सरकार यह हुक्म किसी आर्थिक सिद्धान्त पर निर्भर नहीं है किन्तु सरकार के विरोध का ही पता चन्दा है। स्कूलों में बुनाई करने में बहुत खर्च पड़ता है। इधर खर्च में बहुत कम तकली में तो कुछ भी नहीं है। थोड़ी आमदनी के स्कूलों के लिए कताई शुरू करने में यह बहुत बड़ी कठिनाई है। आशा है कि सरकार इस आगजा को उठा कर लड़कों को इस राष्ट्रीय में भाग लेने देगी।

स्थानिक संस्थाओं के लिए दूसरी कठिनाई पड़ती है, कताई का बराबर न मिलने जाना। एगोड के केन्द्रीय खादी कार्यालय कुछ हद तक इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न किया है। केवल एक केन्द्र से सारे प्रान्त के स्कूलों और स्वेच्छा से बुनने वालों को पूनियाँ पहुँचाना संभव नहीं है। इस समस्या का हल है, हर एक कातनेवाले का अपना धुनिया और पूनी वाला बन जाना। इस प्रान्त में अभी बाँस की छोटी धुनकी है। उससे धुनना सहज है और छोटे लड़के भी उसे बुन सकते हैं।

तीसरी कठिनाई है आर्थिक कठिनाई। इधर यह गलत फैला हुआ है कि हाथ कताई के लिए कीमती यंत्रों की जरूरत है। छोटे तामिल चर्खों को कोई भी बढई, दो तीन लक्ष खर्च में बना सकता है। जो स्कूल इतना खर्च भी नहीं कर सकता वह तकली शुरू करे और सब पूछो तो बातों में स्कूलों के लिए चर्खों से अच्छी चीज तकली तकली के विषय में और बगैरेवार बातें तामिल की 'शिशिक' से जानी जा सकती हैं।

अन्त में उन म्युनिसिपैलिटियों को हम एक बात और देना चाहते हैं जो अपने मातहतों को खादी की वर्दियाँ चाहती हैं। उनके साधारण नियमितठोकेदारों से खादी लेने में यह कि खादी के विषय में पूरे जानकारी न होने के कारण वे भूल से नकली खादी देवें और इस प्रकार जिस चीज को वे देने के लिए म्युनिसिपैलिटियाँ उत्सुक हैं, उसी को खरीदें। इसलिये खादी के 'टेन्डर' केवल उन्हीं व्यापारियों को स्वीकार करने चाहिए जिन को चर्खा-संघ ने प्रमाण पत्र दिया हो।

( ५०-६० )

( समाप्त )



# खादी-सेवक मंडल

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

## हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक १९ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, पौष वदि ४, संवत् १९८३

गुरुवार, २३ दिसम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाडी

### विद्यार्थी और खादी

वर्षा में श्रीयुत राजगोपालाचारी जी की उपस्थिति से नागपुर के विद्यार्थियों ने लाभ उठाया। खद्दर और उसके उद्देश्य पर उनसे दो बार दिल खोल कर बातें सुनीं। पहला भाषण था 'बेकारी की समस्या' पर और नागपुर के तिलक राष्ट्रीय महाविद्यालय के निमन्त्रण पर दिया गया था। उन्होंने कहा कि "जहां तक शिक्षित लोगों से सम्बन्ध है, उनके लिए बेकारी की समस्या उतनी बड़ी नहीं है जितनी खर्चीले रहन सहन की, जिसे चलाना उनके लिए कठिन होता है। क्या शिक्षा का अर्थ यही है कि रहन सहन खर्चीला हो जाय? तब किसी शिक्षित पुरुष के मन में यह सवाल पैदा ही क्यों होता है कि उसके अशिक्षित भाई की अपेक्षा उसे अपने रहन सहन पर अधिक खर्च करना चाहिए? शिक्षा का अर्थ है, शिक्षार्थी को इस काबिल बनाना कि वह देश की सम्पत्ति, कला, संस्कृति, और आध्यात्मिक जीवन में वृद्धि करे। मगर हमारी शिक्षा ने तो केवल हमारा खर्च भर बढ़ा दिया है। तब इसका कारण क्या है कि एक साधारण किसान जो ५) रुपये महीना कमाता है, वह जितना काम करता है और देश की जितनी सम्पत्ति बढ़ाता है, उतना उसके दस गुना या उससे भी अधिक पाने वाला शिक्षित पुरुष नहीं करता? इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा ने अपने हाथ पैरों से काम करने की हमारी शक्ति छीन ली है। जब तुम काबेज की छुट्टियों में घर जाते हो तो तुम्हारी बूढ़ी दादी तुम्हारे लिए पानी भर देती है। जब रेल में चलते हो तो तुम से बूढ़े लोग तुम्हारी गठरी दो देते हैं। मेरे बूढ़े चाचा जी अब भी अपने रुपये अपने हाथों ही धो लेते हैं, मगर मैं नहीं क्योंकि मैं तो तुम्हारी ही तरह शिक्षित हूं। तुम अपने विचारों को दूसरे किसानों के ऐसा ही कठिन और सादा जीवन बिताने का विषय कर लो। तब तुम सुखी रहोगे और तुम्हें काफी समय भी रहेगा। तुम्हें अपनी विद्या और शिक्षा को बेंचने की जरूरत न पड़ेगी। उसे तुम देश की सेवा में लगा सकते हो। आज हम शिक्षित लोग, बेकारी के रोग से पीड़ित नहीं हैं। मगर हमारा रोग है लाज्ज का निषेध और खर्चीला रहनसहन। जब हम उसे दूर करने का निषेध कर लेंगे तब हमें पता चलेगा कि हमारे

लोगों के जीवन के सम्बन्ध की ऐसी हजारों समस्याएं पड़ी हुई हैं, जिनका समाधान हमारी अपनी समस्या से कहीं अधिक जरूरी है। हम जान सकेंगे कि हम बेकारी से पीड़ित नहीं हैं किन्तु हमारा रोग काम की अधिकता है। सीधे सादे किसान और मजदूर के जीवन की नकल करो। तुम कहोगे कि यह तो बड़ी विचित्र बात है। मगर मुझे यह बतलाने दो कि इंग्लैण्ड में कितने बड़े २ धनी लोग गरीब लोगों के साथ उन्हीं से रहने जाते हैं जिसमें वे उन्हें और उनकी समस्याओं को समझ सकें। तब मेरा यह कहना अनुचित है क्या, कि इंग्लैण्ड के उन जवानों की तरह तुम बहुत कम में गुजर करना, अपनी जरूरियात को कम से कम करना सीखो और यह कुछ गरीबी से लाचार होकर नहीं, किन्तु खेल के तौर पर, प्रयोग के तौर पर?"

मैंने इतने छोटे में उनके काफी लम्बे तर्कों को भर दिया है। इसके बाद वक्ता ने अशिक्षितों की बेकारी की समस्या पर विचार किया। उन्होंने कहा कि "पढ़े लिखे लोग, अपने शादी खर्च को चलाने की फिक में दिन रात लगे रहते हैं इस लिए अशिक्षितों की बेकारी की समस्या और भी जटिल हो गयी है। उनके लिए यह जिन्दगी और मौत का सवाल है। भूख, रोग और मौत का प्रत्यक्ष कारण है उनकी अतिशय गरीबी। इससे उनका शरीर तो किसी काम लायक रहा ही नहीं, उनकी चरित्र्य भी चौपट हो गया है। सिर्फ ८ आने में ही किस प्रकार सहज ही किसान लोग वोट देने को तैयार हो जाते हैं। अगर हमारे जन-समूह उतने दमिद न होते जितने कि आज हैं तो क्या राजनीति से वे इतने उदासीन रहते? ज्ञान विज्ञान सीखने के बदले, 'उदार' शिक्षा का खर्चीला और शायद खतरनाक भी, विलास भोगने के बदले, तुम उस समस्या को हल करना सीखो, जिसके कारण गरीबों के बिल्कुल मिट जाने का ही खतरा है।"

पाठक अनुमान कर सकते हैं कि इस प्रकार की बात जीत किस बात की ओर गयी। इन पृष्ठों में हमारी गरीबी की कथा, और इस बात पर कि खर्चा ही उसका एक इलाज है, बहुत बार लिखा जा चुका है। मैं उन्हें यहां दुहराऊंगा नहीं। वक्ता ने पूछा, "क्या तुम हिन्दुस्तान को व्यावसायिक—कल कारखानों वाला देश बनाना चाहते हो? आज हिन्दुस्तान के सभी प्रकार के



कारखानों में मिला कर १४ लाख से अधिक आदमी नहीं हैं। अगर २२ करोड़ आदमी कारखानों में जा बैठें तो समझ लो कि तब तुम्हें अपना माल बेचने के लिए मंगल तारा को आबाद करना होगा।" इसके बाद वक्ता ने अपने गाँव में किये गये अपने प्रयोग का वर्णन किया। वहाँ बिना किसी प्रकार के राज-नीतिक इलजल के ३००० परिवारों से उनका सम्पर्क हो गया है। कारण यह है कि वे भूखों मरते हैं, और ये चखें चलवा कर मृत खरीदने, और खहर बनवा कर बेचने का प्रबन्ध करते हैं। विद्यार्थी लोग क्या करेंगे? उनके लिए वक्ता का उपदेश था, "तुम में से जो लोग सेवा के भूखे हैं, जो ब्रह्मचारी हैं, वे गाँवों में जायें और वहाँ वैसा ही जीवन बितावें जैसा कि मैं या कई शिक्षित नवयुवक बिता रहे हैं। उस समय तुम्हें हजारों भूखों को खुश देख कर सन्तोष होगा। सुख कुछ इसी में नहीं है कि चार पाँच बच्चे पैदा कर लिये और उनकी जरूरियातों को बढ़ाते और जुटाते जायें। अपने पड़ोसियों को सुख देने में ही सुख है। जो सुख, केवल अपने को सुखी बनाने में मिलता है वह शीघ्र गायब हो जायगा मगर सेवा-सुख का सौन्दर्य बढ़ता ही जायगा। जब कभी मैं किसी शिक्षित आदमी को विलायती कपड़े पहने देखता हूँ, मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। कम से कम काम जो तुम कर सकते हो वह है अपने विलायती कपड़ों को त्याग कर खादी पहनना।"

मुझे इसकी खबर नहीं कि जिनसे ये बातें कही गयीं, उनकी आँखों में भी आँसू आये या नहीं किन्तु खादी पहने हुए दो नवयुवक आचारी जी के साथ स्टेशन तक आये और उन्होंने विनय की कि "हम सरकारी कॉलेज के विद्यार्थी हैं। हमें ऐसे उपदेश की बहुत बड़ी जरूरत है। आप कृपा कर कलह मौरिस कॉलेज में चल कर ये ही बातें दुहरावें।" आचारी जी ने पूछा "मगर तुम क्या खादी पर मेरा भाषण सुनोगे? तुम्हारे प्रिन्सिपल क्या इस पर राजी होंगे? क्या वे सभापति बनेंगे?" लड़कों ने जबाब दिया "जहर।" उन्होंने अपने वचन का पालन किया। सभा का ठीक ठाक कर लिया गया और प्रिन्सिपल को भी सभापतित्व के लिए राजी किया गया। यह बात प्रकाशित कर दी गयी कि श्रियुक्त राजगोपालाचार खहर पर भाषण करने आ रहे हैं।

नागपुर के लिए यह परम गौरव की बात है कि वहाँ ऐसा एक सरकारी कॉलेज है और उसके ऐसे प्रिन्सिपल और विद्यार्थी हैं जिन्होंने खहर पर बोलने के लिए एक पक्के खहर-भक्त को बुलाया। मगर इतना ही नहीं, वह सभा भी एक आदर्श सभा थी। कॉलेज का सभा-भवन दूसरे कॉलेजों के लड़कों से भी ठसा ठस भरा था। एक सिद्ध शिक्षक के समान, आचारी जी ने कोई डेढ़ घण्टे तक खहर की कथा सुनायी। लड़कों ने इतनी देर तक बहुत ध्यान देकर सुना। आचारी जी ने कहा कि, "मैं यहाँ फेरीवाला बनकर आया हूँ। माल बेचने के लिए मुझे उसका गुणगान करना ही पड़ेगा।" पीछे के एक कमरे में खादी के यान सज कर रखे हुए थे। जिस प्रकार इंग्लैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक फैरेडे ने 'मोमबत्ती की कथा' में विद्वानों और सर्वसाधारण को बहुत ज्ञान दिया था, उसी प्रकार आचारी जी ने खादी की कथा सुनायी। उनके उस भाषण में इस पत्र के पाठकों को तो कोई नयी बात न मिलेगी किन्तु उन लड़कों के लिए तो सभी नया ही नया था। उनके भाषण में से जहाँ तहाँ से लेकर मैं कई वाक्य देता हूँ। "वाई रुपये महीने पर रहने की कोशिश कर देखो। तब हिन्दुस्तान की सभी हालत की, यानी गाँववालों की हालत

में रहने की कल्पना करो।.....क्या इन लोगों को, उनके घर के तुम कहीं हिला सकते हो? वे खूँटा गाड़ कर वहाँ जमे हुए हैं। उनके लिए तो वह रोजगार चाहिए जो घर बैठे हो सके।.....कोई भी उद्योग, कोई भी व्यवसाय छोड़ा न गया है मगर तौभी ऐसे करोड़ों पड़े हुए हैं जिन्हें दो आने रोज भी मयस्सर नहीं होते।.....किसी भी मर्द या औरत को जिसे काफी काम हो और जो दो आने रोज से अधिक पैदा कर सके उसे हम चर्खा चलाने को कहते। चर्खा तो भूखों मरने की दवा है।.....हिन्दुस्तान में कम कारखाने खोल कर, उद्योगयुग को लाकर, तुम उसका उद्धार कर सकते। उद्योगयुग लाने के बदले हिन्दुस्तान को ही उद्योग बनाना पड़ेगा।.....सच पूछो तो, अन्त में खहर सस्ता पड़ता है। आज अगर तुम ५०) ६० विलायती कपड़े पर खर करते हो तो खहर में २५) से ही काम चल जायगा। मिठा खाने में तुम अतिशय कर सकते हो और बीमार पड़ सकते हो। लेकिन रोटी और भात तो अधिक नहीं खा सकते। खहर की यही बात है।.....इस भाषण के लिए पहले मैंने 'शिष्ट पोशाक' किसे कहेंगे' का विषय चुना था। मैं तो मानता हूँ कि खहर छोड़ कर और कपड़े पहनना अशिष्टता है। अशिष्टता और है ही क्या! अपने आपसा के लोगों के सुख दुःख की पर्वा न करना ही तो अशिष्टता है।.....गरीब से गरीब लोग आज हमारे ग्राहक नहीं बन सकते। मैं तुम लोगों से ग्राहक बनने को कहने आया हूँ।.....इस उद्योग को जो 'बाउन्टी' (खाद्य मदद) सरकार की ओर से मिलनी चाहिए, वह नहीं दे रही है। मैं तुम से, तुम्हारे प्रेम के 'बाउन्टी' माँगता हूँ।"

भाषण का असर खूब हुआ। मिस्टर चेसायर ने दिल से कर वक्ता को धन्यवाद दिया और विश्वास और साहस से कई वाक्य उन्होंने कहे, "सरकारी नौकर होते हुए भी खादी खरीद कर समाज सेवा करने में मैं किसी को बाधा दूँगा। वक्ता ने तुम्हें बताया है कि आज कल लोगों की आमदनी है २॥) ठाई रुपये महीने। मैं कहता हूँ कि इस देश में ११) ६० महीने से कम में किसी का चल नहीं सकता। इस लिए मैं तुम्हें कहूँगा कि इन भूखों मरते हुए करोड़ों लोगों की दवा सुधारने के लिए जो हो सके त्याग करो। ग्राम अर्थशास्त्र पर सचमुचे ही एक अच्छा भाषण देने के लिए वक्ता महाशय को मैं धन्यवाद देता हूँ। हिन्दुस्तान ऐसे देश में ऐसा ही अर्थशास्त्र पढ़ना चाहिए किन्तु खेद की बात है कि इसका स्थान उस अर्थशास्त्र ने ले लिया है जिसका व्यावहारिक जीवन से कोई सम्पर्क नहीं है। सरकारी प्रदर्शनों में मैंने खहर देखा है। कला की दृष्टि से भी मुझे खहर ही जँचा। मैं खुद खहर खरीदने को तैयार हूँ।"

इसके बाद मनोरञ्जक प्रश्नोत्तर हुए। एक भले मानस पूछा, 'साहब, आप तो फेरी वाले हैं! आप को मजदूरी मिलती है?' 'कुछ नहीं भाई! यहाँ तो तुम्हारे जैसी को खहर पहना दिया तो इसीका सन्तोष रहता है।' दूसरे साहब फरमाया, 'आप हमें प्राथमिक स्थिति में ले जाना चाहते हैं जब सारा संसार आगे बढ़ रहा है तो हमें कब तक उस हाल में पड़े रहेंगे।' 'मैं तो तुम्हें इस कृत्रिम, गरीबी की अच्छी दशा में लौटने को कहता हूँ। मैं तुम्हें कुछ दशा में लौटने को नहीं कहता।' गायद प्रश्नकर्ता विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा ही तो, 'यह तो पीछे आचारी जी ने भी तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कहा, यह है तो पीछे इतना जरूर मगर वैसा ही जैसा कि किसी आदमी को ईमानदारी के रास्ते पर पीछे लौटने को कहा जाय।'







# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पोष बहि ४, संवत् १९८३

## खादी-सेवक-मंडल

अ० मा० चर्चा-संघ के कार्य-मण्डल ने बहुत ही सावधानी पूर्वक खूब वाद विवाद के बाद, और खादी-सेवक-संघ के नियमों के मसविरे पर जो इस पत्र में कुछ दिन हुए छपा था, जितनी सम्मतियाँ आयी, उन सब पर पूरा विचार करके, नियमावलि फिर से तैयार की है। वह अन्यत्र छपी जाती है। अभी और नौकरी के शर्तनामों के नमूने भी दिये गये हैं। इस संघ के द्वारा उन लोगों को सेवा करने का अवसर मिलता है जो खादी के द्वारा सेवा करना चाहते हैं। उनके अपने लिए इसके जरिये थोड़े वेतन का भी प्रबन्ध हो जाता।

इसकी शिक्षा समिति ही परीक्षक मण्डल भी होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी परीक्षक हर एक परीक्षार्थी की परीक्षा जरूर ही करेंगे। किन्तु नियमों के अनुसार भिन्न भिन्न आवश्यक परीक्षाएँ शिक्षा-समिति के अध्यक्ष के चुने हुए, एक या दो परीक्षक लेगे।

ऐसी सम्मतियाँ आयी थीं कि थोड़े मुशाहरे के खयाल से तीन साल की शिक्षा की अवधि बहुत ही लम्बी कही जायगी। मगर सभी सदस्य इसीपर सहमत रहे कि जो २ विषय पढ़ने हैं और व्यावहारिक काम करके सीखने हैं, उनके खयाल से तीन साल की शिक्षा कुछ बहुत अधिक नहीं कही जायगी। गत ५ वर्षों के अनुभव से पता चलता है कि, इस पढ़ाई में शामिल भिन्न २ हुनरों को सीखाने के लिए निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। जो लोग कम ज्ञान और अनुभव लेकर गाँवों में खादी कार्य का संगठन करने गये हैं, उन्हें कठिनाई पड़ी है। हाथ-कटाई के शास्त्र में उन्नति हो सकती है। समय समय पर जो खोजें होती रही हैं, उनसे मालूम होता है कि हम में से अच्छे से अच्छे लोगों के भी इस हुनर की उन्नति में अपनी शक्ति लगाने का अवकाश है, जिसमें बिना अधिक मिहनत या समय के उन करोड़ों गरीब लोगों की आमदनी दुगुनी हो जाय जिनके लिए कटाई का प्रचार किया जाता है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे स्कूलों और कॉलेजों में हाथ से काम करने के हुनर का कोई स्थान नहीं है। खादी की आवश्यक शिक्षा के लिए, स्कूलों और कॉलेजों की शिक्षा बहुत कम उपयोगिनी है। इस लिए स्नातकों को किसी अनपढ़ के साथ करीब २ एक साथ ही काम सीखना पड़ता है। दोनों की स्थिति एक होती है। सब पूछो तो कभी कभी शिक्षित युवक को ही अधिक कठिनाई झेलनी पड़ती है, जैसी की अधिकांश लोगों की हालत होती है, अगर उसने भी अपने हाथों काम करने से घबराने की आदत लगा ली हो।

इसका सवाल जिस पर बहुत सावधानी से विचार करना पड़ा, मुशाहरे का सवाल था। वे कौड़ी पैसे के लोगों की जरूरतें पूरी करने के लिए खादी-सेवक-मण्डल खोला गया है। ऐसी सेवा में अधिक आमदनी की उम्मेद दिखाना असंभव है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत-सरकार ने अपने नौकरों के मुशाहरे का जो माव रखा है, हिन्दुस्तान के जन-पमूह की हालत

देखते हुए वह बहुत बेढंगा है। एक धनी टापू के लोगों की जरूरियात से उसका सम्बन्ध है और इस लिए उससे हमारे करोड़ों गरीबों के ऊपर प्रायः अप्रत्याशित बोझ पड़ता है। इस लिए सरकारी नौकरी के, और खादी-सेवक-मंडल के मुशाहरो में कोई मिलान न करें। साथ ही साथ मैं यह भी कहने का साहस करता हूँ कि शुरूआत तो इसकी भी जैसे ही अच्छे मुशाहरे से होती है जैसी कि सरकारी नौकरी की। खादी-सेवा दबती है केवल अन्त में अधिक से अधिक मुशाहरा देने में। सरकारी नौकरी में कई हजार रुपये तक का मुशाहरा मिल सकता है किन्तु खादी-सेवा में तो अधिक से अधिक २० ) २० की ही बढ़ती संभव है। इस लिए जिन्होंने अंगरेजी शिक्षा पायी है, उनके लिए, इस सेवा-मंडल में प्रवेश करना सचमुच ही स्वार्थत्याग है। मगर देश के अंगरेजी पढ़े युवकों से त्याग की आशा रखना, और वह भी जो आखिर बहुत ही छोटा त्याग है, क्या बहुत अधिक है? मैं इसे बहुत छोटा समझता हूँ क्योंकि अंगरेजी शिक्षा जनता के ही खर्च पर दी जाती है। यह ऐसी शिक्षा है जिसे केवल कुछ लोग पाते हैं और सर्वसाधारण कभी पा नहीं सकते। और इस शिक्षा के जरिये अगर थोड़े से आत्म-त्यागी देश-भक्त हमें मिले हैं तो साथ ही साथ बहुत से ऐसे सज्जन भी, जो इस देश को गुलामी में रखने के लिए सरकार को स्वेच्छा से सहायता देते हैं।

यह भी खयाल कर लेना चाहिए कि योग्य और गरीब व्यक्तियों के लिए इस सेवा में समुचित शिक्षा-वृत्ति, या वजीफा दिया जाता है और शिक्षा काल समाप्त हो जाने पर अगर वे चाहें तो संघ के उनमें से योग्य लोगों का दश वर्ष तक रखने पर सज्जूर किया जाता है मगर उनको तो संघ की सेवा करने या न करने की पूरी स्वतंत्रता दी जाती है। यह ढील जानबूझ कर इस लिए की गयी है कि जिसमें नवयुवक आवें, और कटाई और उसके सम्बन्धों सब बातें सीखें तो, चाहें वे सेवा-मंडल में प्रवेश भले ही न करें। (अ० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## खादी प्रतिष्ठान

[ पिछले हफ्ते मैंने पंजाब में खादी की प्रगति पर एक विस्तृत रिपोर्ट का संक्षेप छपा था। इस बार 'खादी प्रतिष्ठान' की वैसी ही रिपोर्ट देता हूँ। 'बैलेन्सशीट' (आमद व खर्च के हिसाब का संक्षेप) छोड़ दिया है क्योंकि पाठकों के लिए प्रायः सभी रुचिकर बातें रिपोर्टों में ही आ गयी हैं। खादी कार्यकर्ता इन रिपोर्टों को जरा ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे जिसमें वे भिन्न प्रान्तों में काम के तरीके का मिलान कर सकें। पाठक देखें कि 'मैजिक लैन्ड' के जरिये खादी का प्रचार करना, खादी प्रतिष्ठान की एक विशेषता है। अब हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्त भी इसे शुरू कर रहे हैं। प्रतिष्ठान की एक और खूबी है उसका शिक्षण विभाग। बहुत मुश्किलों के बाद खादी प्रतिष्ठान को अपना मकान मिल सका है। वहाँ खादी की रंगाई और धुलाई के प्रयोग बड़े पैमाने पर किये जाते हैं।

मो० क० गांधी

## संगठन और प्रबन्ध

१९२३ में खादी का काम करने के लिए 'खादी प्रतिष्ठान' बना। यह एक रजिस्टर्ड ट्रस्ट है। इसका प्रबन्ध ट्रस्टियों के बोर्ड के हाथ में है। ट्रस्ट के सभापति हैं आचार्य प्रफुल्ल चन्द्रावर्य, मंत्री श्रीयुत क्षितीशचन्द्र दासगुप्त, सदस्य डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र वीर और श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त।

## नफा किसका होता है

प्रतिष्ठान के काम में व्यापार शामिल है। खादी की उत्पत्ति और बिक्री जैसे ही व्यापारिक काम हैं, जैसा कि कोई दूसरा



१९२६ दिसम्बर, १९२६

लोगों को विचारती काम । अन्तर इतना ही है कि दूसरे व्यापारिक कार्यों में पूँजी के को नफा होता है और यहाँ खादी प्रतिष्ठान का नफा राष्ट्र को मिलता है । अगर साल भर के बाद पता चले कि कुछ नफा हुआ है तो वह धन ट्रस्टियों में बाँट न दिया जाता बल्कि अगले साल खादी का काम घटाने या प्रतिष्ठान की विस्तार में उसका उपयोग होगा ।

### खादी का प्रगति

वर्ष १९२५ के बाद महात्मा गांधी के बंगाल में बहुत दिनों तक रहने के कारण खादी को बहुत सहारा मिला । तभी से खादी बढ़ने लगी है । जनवरी से मई, ५ महीनों के भीतर, सन् २५ और २३ के अंको से खादी की प्रगति की उन्नति का पता चलेगा ।

	१९२५	१९२६
१९२७	५७,१९४) रु.	१,०४,८११) रु.
१७,६८७) रु.	३७० मन	८२३ मन
५५ मन		

प्रगति और बिक्री का मिलान हर साल के जनवरी से मई तक की जाती है । इसके साथ, उत्पत्ति को बढ़ाने के लिए चेहरे बिक्री बढ़ी है । अगले फातने में फी घन्टे आधा पैसा यानी दो घन्टे से अधिक की आमदनी नहीं है मगर तौभी के लिए हाय हाय मची ही हुई है । हमारा काम दो चीजों से घटा गया है । पहले तो हमारी शक्ति और दूसरे हमारी पूँजी से । बंगाल खादी के प्रति आसाधारण प्रेम प्रकट कर रहा है । खादी का एक मात्र कारण है शिक्षितों का देश-प्रेम । अगर खादी अपने और अच्छी और सस्ती बनायी जा सके तो उसकी माँग बढ़ेगी । हमारे पास पूँजी कम होने से हमारी प्रगति भी सीधी ही होती है ।

सन् १९२५ में हमारी सारी पूँजी, जिसमें बिना सूद के भी शामिल है, १,३५,५४७) रु. की थी । नवम्बर १९२६ तक वह २,५८,९३५) रु. हुई । इकट्ठे कर पूँजी को कोशिश की जा रही है ।

जनवरी से आगे नवम्बर तक, १०<sup>३</sup> महीनों में मित्रों से प्रतिष्ठान को ५९,७९६) रु. दान स्वरूप मिले । इसके अलावा एक दयालु मित्र ने ३०,०००) रु. बिना सूद के कर्ज दिया है । सभी और बहुत अधिक की जरूरत है । खादी के प्रेमियों हमारी प्रार्थना है कि वे धन दे कर इस संस्था को सहायता दें ।

### प्रतिष्ठान और बंगाल

प्रतिष्ठान अपनी तैयार की हुई करीब २ सारी की सारी पूँजी बंगाल में ही बँच लेता है । अखिल भारत चर्खा संघ ने १,५२२) रु. कपास खरीदने के लिए और १,०६,०००) रु. और के लिए कर्ज दिये हैं । चर्खा संघ ने १ लाख रुपये और के लिए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है मगर यह रकम अभी तक नहीं है । इस बारे में बंगाल की जिम्मेवारी बहुत भारी है । इस संस्था को जीवित रखने और पल्लवित करने का भार बंगाली भाइयों पर ही है ।

### बिक्री और उत्पत्ति के केन्द्र

उत्पत्ति केन्द्र : नीचे लिखे १३ केन्द्रों में उत्पत्ति का काम चल रहा है : छिचिया, सतकनिया, फेनी, मलिकन्डा, दुर्गापुर, गायघर, मुंशीरहाट, कुंभरहाट, रसली, खालिसपुर और बिक्री बिंदु : कलकत्ते के दो बिक्री बिंदु के अलावा, प्रतिष्ठान के और अठारह बिक्री बिंदु हैं । वे हैं बरिसाल,

बर्दवान, चाँदपुर, चटगांव, चौमुहानी, ढाका, दिनाजपुर, फरीदपुर जलवाई गुडी, जैसोर, खुलना, नोआखाली, राजशाही, फरीदपुर, मदारीपुर, मयमनसिंह, रतनगंज, और तेजपुर ( आसाम ) ।

### कार्यकर्ता

प्रतिष्ठान के काम में सब मिला कर इस समय १८३ आदमी रखे गये हैं । सभी उत्पत्ति और विक्रय केन्द्रों के कार्यकर्ता, कलकत्ता और सोदपुर के दफ्तरों में काम करनेवाले और भ्रमण में लगे हुए सभी कोई इसमें शामिल है ।

### प्रतिष्ठान का प्रचार-कार्य

प्रकाशन : खादी का प्रचार करने के लिए, प्रतिष्ठान की ओर से एक प्रकाशन-विभाग चलता है । उसके द्वारा, विज्ञप्तियों, समाचार पत्रों के लिए लेखों और खादी समाचारों को प्रकाशित करा कर बाँटा जाता है । एक सुप्रसिद्ध खादी-प्रेमी साहित्यिक सज्जन के जिम्मे यह काम दिया गया है । जून १९२५ से मई १९२६ तक साल भर में इस विभाग के किये काम की रिपोर्ट यह है :

१. लेख और समाचार जो केवल बंगला दैनिकों में ही छपे — २७० ।
२. लेख और समाचार जो केवल बंगला मासिकों में ही छपे — १३ ।
३. लेख और समाचार जो केवल अंगरेजी दैनिकों में ही छपे — १६६ ।

### खादी की फेरी और 'मैजिक लैन्टर्न'

घर घर पर खादी की फेरी लगा कर, और 'मैजिक लैन्टर्न' के जरिये, खादी का प्रचार किया जाता है ।

सन् १९२५ के साल में, शहरों और गांवों में खादी पर भाषण दे कर उसे बँचने के लिए कार्यकर्ता भेजे गये । इन्होंने भले और बुरे सभी समयों में, अपना काम धैर्य और आनन्द के साथ पूरा किया । इसी भ्रमण, फेरी, 'मैजिक लैन्टर्न' के साथ भाषण, विज्ञप्तियाँ और इतिहास, दैनिक और मासिक पत्रों में लेख आदि और खादी प्रदर्शनों के जरिये, बंगाल में आज खादी को इतना लोकप्रिय बनाया जा सका है । इस नयी शैली के काम को पहले पहल करने में बेहिचक खर्च पड़ता है । जितना काम किया गया है, उसे देख कर कहना पड़ेगा कि, इस मद में जो रुपया खर्च किया गया है, वह ठीक और समुचित ही खर्च हुआ है ।

उस लैन्टर्न लेक्चर का तर्जुमा कई भाषाओं में हो चुका है । प्रतिष्ठान की ओर से भाषणों के लिए जरूरी चित्र इत्यादि, बँचे जाते हैं और कई प्रान्तों को प्रतिष्ठान ने अब तक दिया भी है । लेक्चर का नाम है 'देशेर परिचये खादी' यानी 'खादी और हिन्दुस्तान' । दो और लेक्चर तैयार हैं; एक है 'बंगाल और खादी' और दूसरा है, 'द० अफ्रीका में सत्याग्रह' ।

### नियमित भ्रमण

जनवरी १९२६ से इसका प्रबन्ध किया गया है कि, बंगाल के सभी महत्वपूर्ण स्थानों और व्यापार केन्द्रों में नियमित रूप से दौरे किये जायँ । इस उद्देश्य से 'मैजिक लैन्टर्न' और खादी लेकर, ५ भागों में ५ दल भेजे गये थे । जनवरी से जून १९२६ तक छह महीनों में प्रतिष्ठान के कार्यकर्ता ९६ स्थानों में गये और वहाँ उन्होंने भाषण किये और खादी बँची ।

### फेरी

उन्ही ९६ जगहों के फेरी के जरिये, ४०,०००) रु. की खादी बिक्री ।  
( ५० इ० ) ( अगले अंक में समाप्त )



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३  
अध्याय ३  
कसौटी

अग्निबोट गोदी (घाट) पर आया। मुसाफिर लोग उतरे। लेकिन मेरे बारे में मि. एस्कंन ने कप्तान से कहला मेजा था कि “गांधी तथा उनके कुटुम्ब को शाम को उतारना। गोरे लोग उनके विरुद्ध बहुत भड़के हुए हैं और गांधी की जान खतरे में है। गोदी के सुपरिण्टेण्डेंट मि. टाम उनको शाम के वक्त लिवा ले जायेंगे।”

कप्तान ने मुझे उस संदेश की सूचना दी। मैंने वैसा ही करना स्वीकार कर लिया। लेकिन इस संदेश को मिले हुए आध घंटा भी न हुआ होगा कि मि. लॉटन आये और कप्तान से बोले, “अगर मि. गांधी मेरे साथ चले तो मैं उनको अपनी जिम्मेवारी पर ले जाना चाहता हूँ। इस स्टीमर के एजेन्ट के वकील की हैसियत से मैं आप से कहता हूँ कि मि. गांधी के सम्बन्ध में जो सूचना आप को मिली है उस सम्बन्ध में आप मुक्त हैं।” कप्तान के साथ उपर्युक्त बातचीत कर के वे मेरे पास आये और मुझ से इस प्रकार की कुछ बात कही, “अगर आप मरने से डरते न हों तो मेरी इच्छा है कि श्रीमती गांधी तथा बच्चे तो गाडी में बैठ कर सेठ रस्तमजी के घर जायें और आप तथा मैं आम रास्ते से हो कर पैदल चलें। आप अंधेरा हो जाने पर शहर में गुप्तचर जायें—सो मुझे कतई पसन्द नहीं। मुझे लगता है कि आप का बाल तक बांका न होगा। अभी तो सब शान्त है, गोरे लोग सब तितितर बितिर हो गये हैं। लेकिन मेरा विचार तो यह है कि चाहे कुछ हो, मगर आप को शहर में छुके छिपे तो जाना ही न चाहिए।”

मैं राजी हो गया। मेरी धर्म-पत्नी और बाल-बच्चे गाडी में बैठ कर सेठ रस्तमजी के घर गये। वहाँ वे सही सलामत पहुँच गये। कप्तान की इजाजत लेकर मैं मि. लॉटन के साथ जहाज से उतरा। वहाँ से रस्तमजी का मकान कोई दो मील होगा। अग्निबोट से मेरे उतरते ही कई लड़कों ने मुझे पहिचान लिया और ‘गांधी-गांधी’ का शोर किया। यह सुन कर दो चार आदमी और इकट्ठे हुए और शोर बढ चला। मि. लॉटन ने यह देख कर कि यों तो भीड़ बढ जायगी रिकशा मँगाया। मुझे उसमें बैठना कभी नहीं आता। उसमें बैठने का यह मेरा पहिला ही मौका होने वाला था। लेकिन लड़के भला मुझे बैठने क्योंकर देते? रिकशावाले को उन्होंने धमका कर भगा दिया।

हम लोग आगे बढे। भीड़ भी बढती गयी। भीड़ खूब हो गयी। सब से पहले तो मुझे मि. लाटन से अलग कर दिया गया और बाद को मुझ पर पत्थर और सड़े अण्डे फेंके। किसी ने मेरी पगड़ी उखाड़ी। लातें शुरु हुईं।

मुझे लकड़ आ गया। मैंने पासवाले घर की जाली पकड़ ली। जरा दम लिया। वहाँ खड़ा होना भी मुश्किल था। तमाचा पड़ा।

इतने में वहाँ के पुलिस अफसर की बी इस रास्ते से हो कर आ रही थी। वह मुझे जानती थी। मुझे देखते ही मेरे पास आ खड़ी हुई और धूप के न होते हुए भी उसने अपनी छतरी मेरे ऊपर तान ली। इससे लोग जरा कुछ नरम पड़े। अब अगर वे चोट करते भी तो उस बी (मिसेज एलेक्जेंडर) को बचा कर ही।

इस बीच मैं कोई हिन्दुस्तानी नौजवान, मुझ पर मार पड़े देख पुलिस चौकी पर दौड गया। पु० सुपरिण्टेण्डेंट मि. एलेक्जेंडर ने एक टुकड़ी (कुछ सिपाही) मुझे चारों ओर से घेर कर बचा लाने के लिए मेजा। वह यथा समय आ पहुँची। मेरे रास्ता थाने के पास से ही हो कर था। सुपरिण्टेण्डेंट ने थाने में ही ठहर जाने को कहला मेजा। मैंने नाई कर दी और कहा कि “जब लोगों को अपनी भूल मालूम होगी तब शान्त हो जायेंगे मुझे उनकी न्यायबुद्धि में विश्वास है।”

उस टुकड़ी के साथ मैं सहीसलामत पारसी रस्तमजी के घर पहुँचा। मेरी पीठ में सिर्फ सूखी चोट भर लगी थी; केवल एक ही जगह कुछ छिल गया था। स्टीमर के डाक्टर दादीबरजी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने मेरी अच्छी सेवा शुश्रूषा की।

उस प्रकार अन्दर शान्ति थी मगर बाहर तो गोरी लोग घर को घेर लिया। शाम हो गयी थी। अंधेरा हो चला था। हजारों लोग बाहर हल्ला कर रहे थे और ‘गांधी को हमारे हवाले करो’ की पुकार मच रही थी। खतरा समझ कर सुपरिण्टेण्डेंट वहाँ पहुँच गये थे और भीड़ को डरा धमका कर नहीं किन्तु विनोद द्वारा काबू में किये हुए थे। तौभी वे फिक से बरी न थे उन्होंने मुझे इस आशय का सन्देश मेजा—अगर आप अपने मित्र के मकान व माल असबाब की तथा अपने कुटुम्ब की चाहते हों तो जो तरीका मैं आप को बताऊँ उस तरीके (यानी छिप कर) इस मकान से आप को खिसक जाना चाहिए।

एक ही दिन मैं मुझे दो परस्पर प्रतिकूल कार्य करने में मौका आया। जब कि जान का खतरा फर्जी मालूम होता था तब सरे आम बाहर निकलने की सलाह मि. लाटन ने दी और मैंने मान ली थी। लेकिन खतरा मेरी आंखों के सामने आ खड़ा हुआ तब अन्य मित्रों ने मुझे उससे बिल्कुल उलटी सलाह दी कि मैंने मान ली। कौन कह सकता है कि मैं अपनी जान की जोखिम से डरा, कि अपने मित्र के जानमाल की जोखिम से, या कुटुम्ब की को या तीनों की? कौन निश्चय के साथ यह कह सकता है कि मेरा स्टीमर पर से तो साहस दिखा कर उतरना और भय प्रत्यक्ष आ जाने पर छिप कर भाग जाना ठीक था? लेकिन वीर्य घटनाओं के बारे में इस प्रकार की बातें ही निस्कार हैं। वीर्य वीर्य हुरे बातों को समझ लेना चाहिए; उनसे सीखने की बातें प्रकट कर लेनी चाहिए वस इतना ही काम का है। फलां मौके फलां आदमी क्या करेगा सो निश्चयपूर्वक कहा ही नहीं जा सकता उसी प्रकार यह भी देख सकते हैं कि मनुष्य के गुणों की उसी बाह्याचार पर से, जो परीक्षा होती है वह अधूरा-अनुमान माना होता है।

खैर कुछ भी हो; भागने में लग जाने के कारण मैं अपने घर को भूल गया। मैंने हिन्दुस्तानी सिपाही की पोशाक पहिनी सिर पर शायद मार पड़े; इस लिए उससे बचने के लिए मैंने सिर पीतल की एक तदतरी रख ली और उस पर मद्रासी ढंग का साफा बाँध लिया। साथ में खुफिया पुलिस के दो आदमी थे। उनमें से एक ने हिन्दुस्तानी व्यापारी के ढंग के कपड़े पहन लिए। उन्होंने अपना मुँह हिन्दुस्तानी की भाँति रँग लिया। दूसरे ने क्या पहिना सो मैं भूल गया हूँ। हम लोग पासवाली दूकान की एक गली हो कर निकले और गोदाम के बोरों के गंज के ऊपर से अंधेरे से उतरे और दूकान तथा दरवाजे से होकर भीड़ से होते हुए चले गये। उस गली के नाके पर एक गाडी खड़ी थी। वे खुफिया पुलिस वाले मुझे उसमें बिठा कर उस थाने में आश्रय लेने के लिए



पर मार पड़े  
मि. एलेक्जेंडर ने उनसे कहा  
और से वे जिसमें ले जाने के लिए सुप० एलेक्जेंडर ने उनसे कहा  
पहुँची। मेरे पास था। मैंने सुरिण्टेंडेंट का एवं उन खुफियावालों का  
सुरिण्टेंडेंट ने अपने कारनामों का जिक्र किया। और जिस समय मुझे सुरिण्टेंडेंट थाने

चलो भाइयो आज हम, गांधी के धर पाँय ।  
इसके पेड़ से, फांसी दें लटकाय ।

तो गोरो ने कहा कि तो इस दूकान से सब्जियाँ लेना। सटका गया।  
 हो चला था। मैं से कुछ तो कुछ हुए, कोई हँसे और बहुतों ने यह  
 हो चला था। मैं से कुछ तो कुछ हुए, कोई हँसे और बहुतों ने यह

कन्तु विनोद ने आप गांधी को ढूँढ निकालेंगे तो मैं उन्हें आप के सुपुर्दे कर दूँगा।

उस तरीके से जो हरगिज न जलावेंगे और न गांधी के वीवी बच्चों को बोट पहुँचावेंगे।”

होता था लक्ष्मण सूचकता तथा चतुरता की प्रशंसा करते हुए — लेकिन कुछ और मैंने मारुत में बढ़ाते हुए — चले गये ।

सलाह दी कि प्राकण करने वालों पर मुकदमा चलाओ जिसमें अदालत से नुक़्त की ज़ोबिह में नव भिले । मि. एडवॉ ने मुझे अपने पास बुलवाया ।

और भय पावें। मि० लाटन की सलाह मानकर आपने जहाज से तुरंत ? लेकिन वीरता जाने का जो साहस किया सो तो आरका हक ही था।

कलां मौके पर दिवान सके तो उनको पकड़वाने तथा उन पर मुकदमा चलाने  
हीं जा सकता है। लिए मैं तैयार हूँ। पि० तैयार करने की ज़रूरत है।

अनुमान सा... हमला करनेवालों में से शायद एक दो को मैं पहिचान लूंगा।  
किन्तु उन्हें सजा कराने से क्या हासिल होगा? बल्कि मैं तो उन लोगों को दोषी मानूँगा।

एए मैंने सिर पर धरती की निन्दा की थी। यह बात सच मान कर

ने क्या पहिने ताकि वह नजर न आए। तब ही वह तारों के बीच से नहीं कर सकते हैं। एक गली में खड़ा था। तब ही वह तारों के बीच से नहीं कर सकते हैं।

होते हुए जब असल बात प्रकट होगी और

मैं यह चाहता हूँ कि आप

( नवजीवन )

मोहनदास करमचंद गांधी

अखिल भा. चर्खासिंघ के अधीन एक सेवा होगी 'खादी-सेवा'।

इस सेवा में आगे से कोई भी ऐसा आदमी दाखिल नहीं किया जायगा जिसे शिक्षण-समिति से प्रमाण पत्र न मिला हो । अ. मा. चर्खासंघ की स्थापित की हुई शिक्षा-समिति का जिक्र आगे होगा । मगर जो लोग हाल में चर्खा संघ या उसकी शाखाओं की नौकरी में हैं, उन पर यह नियम लागू न होगा और बिना प्रमाणपत्र वाले उन लोगों पर भी लागू न होगा जिन्हें रखना अपने काम के लिए चर्खासंघ या उसकी शाखाएँ आवश्यक समझें ।

शिक्षा समिति के सदस्य ये लोग होंगे ।

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त

॥ विनोबा भावे

॥ चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार

के. सन्तानम

॥ लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

॥ राजेन्द्र प्रसाद

॥ एष. जी. पुजारी

११ शङ्कर लाल वैष्णव

॥ मगनलाल गांधी—मंत्री

चर्खासिंघ की कार्य समिति समय समय पर इनके बदले दूसरे सज्जनों को चुन सकेगी ।

खादी-सेवा के उमेदवार शिक्षा के लिए अ. भा. चर्खासंघ खादी विद्यालय सत्याग्रदाश्रम, सावरमती में या संघ की कार्यसमिति की पसन्द की हुई दूसरी संस्थाओं में दाखिल किये जा सकेंगे।

उमेदवारों की लियाकत

जिनकी उम्र १६ साल से कम हो, अपने प्रान्त की भाषा और अंकगणित का जिन्हें काफी ज्ञान न हो, जो अपनी सच्चरित्रता और अच्छे स्वास्थ्य का प्रमाणपत्र न दे सकें, ऐसे सज्जनों को तालीम के लिए भर्ती नहीं किया जायगा।

दाखिले की हर एक दरखास्त शिक्षा-समिति के मंत्री के पास मेज दी जायगी। अगर मंत्री को उस दरखास्त से सन्तोष मिलेगा तो वे किसी केन्द्र का निश्चय कर उमेदवार को वहां उपस्थित होने को लिख देंगे। वहां के अध्यक्ष, उमेदवार से मिल कर अगर उसे दाखिल करने लायक समझें तो उसे बतौर आजमाइश के रख लिया जायगा और किसी केन्द्र में उसे तीन महीने काम करने को मेज दिया जायगा। वहां की अवधि समाप्त हो जाने पर उसे तालीम पाने के लिए मेज जायगा। राह-सूच उसे आप बरदास्त करना होगा।

**तालीम**

शिक्षा का कम दो साल का होगा। उसका निश्चय शिक्षा-समिति करेगी। उसमें ये बातें शामिल होंगी।

(क) घुनाई तक कपास की जितनी क्रियाएँ की जाती हैं जैसे कपास चुनना, ओटना, धुनना, सत काटना, और घुनना।



(ब) हिन्दी या हिन्दुस्तानी का ज्ञान  
(ग) बही खाता लिखने का ज्ञान  
(घ) और जहाँ विद्यार्थी ने कहीं रीतिमत् शिक्षा न पायी हो,  
खादी के लिए आवश्यक साधारण ज्ञान जहाँ तक हो सके।  
उमेदवार को अगर इनमें से किसी विषय का पूरा ज्ञान होवे तो उस के विद्यालय के अध्यक्ष परीक्षा लेकर उसे उस विषय की पढाई से माफ कर सकते हैं और उसके शिक्षा काल में उतना समय कम कर दिया जायगा।

ऊपर के विषयों में निपुणता का प्रमाणपत्र पा लेने पर उसे संघ के खर्च पर किसी प्रान्त के किसी खादी कार्यालय में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने को भेजा जायगा। उसे इसके लिए वहाँ ९ महीने तक रखा जा सकेगा। जिस प्रान्त में वह व्यावहारिक शिक्षा के लिए भेजा गया था वहाँ के प्रधान से सन्तोषप्रद प्रमाणपत्र पा लेने पर उसे खादी-सेवा-संघ में दाखिल कर लिया जायगा।

संघ में भर्ती किये जाने के लिए इच्छुक हर एक उमेदवार को संघ के बनाये शर्तनामे को पर हस्ताक्षर करना होगा। इस के अनुसार, उसके लिए तीन साल तक संघ की सेवा करनी लाजिमी होगी और उसके बाद जितने दिनों तक वह मिहनत और ईमानदारी से सन्तोष प्रद काम करता जायगा, उसे नौकरी से हटाया नहीं जायगा, मगर उस प्रान्त के प्रधान दुधरित्रता या अयोग्यता या किसी भी दूसरे सन्तोष प्रद कारण से निकाल सकेंगे। अ० भा० चर्खा-संघ की कार्य-प्रमिति से वह अपील कर सकेगा। उसका फैसला आखिरी फैसला होगा।

खादी-सेवा-मंडल में भर्ती किये गये हर एक आदमी को जहाँ कहीं संघ चाहे जाकर काम करना होगा।

उनका माहवारी वेतन होगा ३० रुपये। ३ साल के बाद, खादी-सेवा-मंडल जिस प्रकार निश्चय करे समय समय पर उसमें बढ़ती होगी। अन्त में अधिकसे अधिक वह ५० रु. माहवार तक पहुँच सकेगा।

### विधि

जो लोग मंडल में भर्ती होना नहीं चाहते, वे भी तालीम के लिए मंडल के निश्चित किये गये विद्यालयों में भर्ती किये जा सकेंगे। हाँ, मगर मंडल के उमेदवारों को ही हमेशा तरजीह दी जायगी।

३ महीने का भी एक अवकाश-काम होगा। यह उन लोगों के लिए होगा जो सूत कातना और उसके सम्बन्ध के सब काम जैसे कपास ओटना, रई धुनना और पूनियाँ बनाना सीखना चाहते होंगे।

हर एक उमेदवार को, जिसे तालीम के लिए भर्ती करने का निश्चय कर लिया गया है। अपने घर तक का लौटती का किराया और ३) अधिक जमा करना होगा। अगर वह किसी भी कारण से हटा दिया गया तो उस समय उसके लौटती के खर्च के लिए उसी रुपये का उपयोग होगा।

### बजीका

जो अपने खाने पीने का खर्च चुकाने में असमर्थ होंगे उन उमेदवारों को रहने का स्थान और १२ रु. माहवार खाने के लिए दिया जायगा। जब तक तालीम और व्यावहारिक शिक्षण चलेगा, बजीका दिया जा सकेगा। जहाँ कहीं उमेदवारों के लिए शिक्षण विभाग ही समान भोजनालय चला सकेगा वहाँ उमेदवारों को नकद बजीका कुछ भी नहीं मिलेगा।

### विशेष अधिकार

समय समय पर इस विधान में परिवर्तन या सुधार उपनियम बनाने, सेवा की अवधि निश्चित करने काम के बनाने और जिन बातों का खुलासा विधान में ही नहीं हो पाय उनका निश्चय करने का विशेष अधिकार चर्खा-संघ अपने रख छोड़ता है। जो पहले से ही चर्खा-संघ की सेवा उन सज्जनों के अधिकारों में इस योजना से कुछ फर्क नहीं

तालीम के लिए भर्ती होने की दरखास्त का न

पूरा नाम

पता और प्रान्त—

उम्र—

पुष्प या खी

बच्चे, अगर हैं तो कितने—

उमेदवार पर निर्भर रहने वाले—

हाल पेशा—

स्कूल या कोलेज में अगर पढा हो तो कहाँ, क्या और

(अगर नौकरी की हो तो कहाँ, क्या और कब) —

सुवरित्रता और अच्छे स्वास्थ्य के लिए प्रमाणपत्र

देनेवाले का पता (अधली प्रमाण पत्र शामिल

होना चाहिए) —

अगर बजीका चाहिए तो क्यों—

मैंने खादी-सेवा-मंडल के सब नियम पढ़ लिये हैं और समझ लिया है कि तालीम किस प्रकार की मुझे लेनी होगी अगर तालीम के लिए मैं चुन लिया गया तो मैं जिस संघ में भेजा जाऊँगा उसके नियम आदि स्वीकार करूँगा और तालीम

हस्ताक्षर.....

तारीख.....

डाकघर.....

### नौकरी का शर्तनामा

अ० भा० चर्खा-संघ के कार्य मंडल और..... आगे से इस संघ के नौकर कहे जायेंगे) के इम्तियान नौकरी शर्तनामा।

मैं.....इकरार करता हूँ कि मैंने खादी-सेवा-मंडल का शिक्षा-काम समाप्त कर लिया है और उसकी शिक्षा ने मुझे काबिल ठहराया है। अब यह संघ तीन साल तक किसी केन्द्र में मुझे जिस पद पर समय समय पर भेजा ३० रु. माहवार वेतन पर जाकर काम करूँगा और इसके से जो बन चुके हैं या आगे से बनेंगे वैधा रहूँगा।

इन तीन वर्षों के बीतने पर यह मेरे अधिकार कि नौकरी करूँ या न करूँ मगर संघ को मुझे, अगर तो और सात वर्षों तक जरूर रखना पड़ेगा और अगर पर जैसा कि वह उचित समझे मेरे वेतन में बढ़ती कर ५० रु. माहवार तक पहुँचाया जा सकेगा, नशर्त कि प्रतिनिधि की दृष्टि में मेरा काम मिहनत और ईमानदारी रहे, और जब कभी वे चाहें, मुझे दुराचरण, अयोग्यता या से काम में असमर्थता या किसी दूसरे दोष के निकाल दे सकते हैं। इस बरखास्तगी के विरुद्ध मुझे अ० चर्खा-संघ की कार्य-प्रमिति में अपील करने का अधिकार इस शर्तनामे में दी गयी सभी बातों में, और बरखास्तगी के भी, अ० भा० चर्खा-संघ की कार्य-प्रमिति का फैसला आखिरी और लाजिमी होगा। अगर अ० भा० चर्खा-संघ जाय तो यह शर्तनामा भी उसी समय से दूट जायगा।

यज्ञी

अ० भा० चर्खा-संघ

हस्ताक्षर



शहीद श्रद्धानंद

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २० ]

मुद्रक-प्रकाशक  
श्री श्री आनंद

अहमदाबाद, पौष वदि ११, संवत् १९८३

सुबवार, ३० दिसम्बर, १९२६ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
धारंगपुर सरकीमरा की बाड़ी

## अस्पृश्यताओं की तुलना

जब मैं रहते समय मुझे अछूतों के मुद्दों को देखने का मौका मिला था। उनके बाशिन्दे सुखी मालूम पड़ते थे किन्तु मुझे लेनी बाण्टि हो चुकी है, उसके कारण अस्पृश्यता-निवारण के लोका की धोरी चाल से वे असन्तुष्ट हैं। उन्हें इस बात का है कि अब भी साधारणतः मन्दिरों, कुओं या स्कूलों का प्रवेश नहीं करने दिया जाता। वे यह समझ ही नहीं सकते, कि वे भी कि प्रगति लैगडी होती है और इस लिए बहुत ही। वे इसकी कोई वजह नहीं देख सकते, कोई है भी नहीं उन्हें जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं, वे झेलनी ही पड़ें।

इस मनोरंजक सैर के दो दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि अछूतों की कोशिशों की बदौलत और जगहों से वर्षों से अछूत अधिक सुखी हैं। वहाँ के कई सार्वजनिक कुओं से वे पानी भर सकते हैं, म्युनिसिपल स्कूल में वे वेरोकटोक के भर्ती किये जा सकते हैं, अनायास में अछूत और वे अछूत अनाथों में कोई अंतर नहीं माना जाता, पानी के सार्वजनिक नलों से उन्हें पानी भरने दिया जाता है, और उनके विरुद्ध पक्षपात की दीवाल को निरन्तर कोशिश की जाती है।

जिस समय अछूत माइनों की विचार धाराओं के अनुभव मुझे मिले थे उसी समय मुझे द० अफ्रीका की अस्पृश्यता की घटनाएं मिलीं। इस समय वहाँ जो गोलमेज कान्फ्रेंस विचार रहीं हैं, उसके खयाल से मुझे ऐसा करना ही पड़ा। यहाँ अस्पृश्यता के लिए हम लोग उत्तरदायी हैं, और हमें हमें उसकी शिफारहें हैं। यहाँ तो जालिम के ऊपर ही बात दुहरायी गयी है। जैसा हम हिन्दुस्तान में करते हैं, उसका पदला हमें द० अफ्रीका में सूदसहित मिलता है।

यह विचार कर रही है कि इसका उपाय क्या है। अछूतों की प्राप्ति के लिए ऐन्ड्रयूज भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। द० अफ्रीका की पवित्रतम शक्तियों को इसके पक्ष में लाना, दोनों प्रकार की अस्पृश्यताओं के अन्तर पर हम विचार कर रहे हैं। हिन्दुस्तान की अस्पृश्यता घड़ियाँ गिन रही है। उसकी तुलना

जब पर कुलदादा लग चुका है। विक्षित समाज उसके विरुद्ध है। कोई भी प्रभावशाली पुरुष उसका समर्थन नहीं करता। अछूतों को बांध रखनेवाली जजीरें तडातडा टूटी जा रही हैं। कानून उसे सहा नहीं करता। यह जो कुछ बची है, वह रस्मो रिवाज के कारण। रिवाज जल्दी बदलते नहीं। कानून का सहारा न रहने पर भी वे जीते ही जाते हैं, और खास कर अगर वे पुराने रिवाज हुए। हिन्दुस्तान की अस्पृश्यता अब समय पा कर आप ही आप दूर हो जायगी।

दूसरी ओर द० अफ्रीकावाली दिन पर दिन जब पकड़ी जाती है। इसे दिन बदिन कानून की अधिकाधिक सहायता मिलती जाती है। सन् १९१४ के अखीरी समझौते के बाद भी, १९१५ से अब तक, यूनियन पारलियामेन्ट की हर बैठक में द० अफ्रीका के हिन्दुस्तानी अछूतों की कानूनी कठिनाइयाँ बढ़ती ही गयी हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के और हिस्सों में भी यह रोग फैलता जा रहा है, जैसा कि केनिया की हालत से साफ मालूम पड़ता है।

इन्हीं बढ़ती हुई गुण्डियों के विरुद्ध द० अफ्रीका में ऐन्ड्रयूज करीब २ अकेले ही लोहा लिये हुए हैं। आइये, हम आशा करें कि उनकी मिहनत सफल होगी।

किन्तु वेशक इस गुण्डाई का सामना करने का सबसे अच्छा तरीका है, हिन्दुस्तान में पहले हमीं उससे बरी हो जायें। द० अफ्रीका के डेपुटेशन के मेम्बरों के मुँह से यह बात अनेक बार सुनने में आयी है कि पहले हम अपने घर में तो चिराग जला लें फिर द० अफ्रीका का भी अन्धेरा मिटाने का समय मिलता रहेगा। शायद वे भूल गये थे, या उन्हें मालूम ही नहीं था कि यहाँ हम लोगों के साथ, अछूतों पर कोई कानूनी बंधन नहीं है। मगर दूसरों से न्याय माँगते समय, इस तरह की दलील पेश करना हमें शोभेगा नहीं। कानून का एक बहुत अच्छा सिद्धान्त है जो हमारे मुआमले पर लागू होता है। 'जो दूसरों से न्याय की चाह रखते हैं, उन्हें आप वेदाग होना चाहिए।' इस लिए द० अफ्रीका की अस्पृश्यता के विरुद्ध जो सबसे अच्छी दलील हम तैयार कर सकते हैं, वह है, पहले अपने ऐंग को दूर कर लेना। तब तक के लिए जो कुछ आराम गोलमेज सभा दिला सके, उसी पर हमें सन्तोष करना पड़ेगा।



इस सवाल का एक और दूसरा पहलू भी है। अछूतों को भी कुछ न कुछ हम लोगों का और हिन्दुस्तान का कण चुकाना पड़ेगा। किन्तु इस दूसरे पहलू का विचार किसी दूसरे ही लेख में करना होगा।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

### अखिलभारत गोरक्षा मंडल

यों कहा जा सकता है कि इस मंडल का काम धीमे धीमे चलता है। इस महीने की १० वीं तारीख को उसकी कार्यवाहक समिति की बैठक वर्धा में हुई थी। समिति के सदस्यों की जरूरी संख्या के हाजिर न होने से समिति का काम आध घण्टा मुस्तबी रख कर करने का ठहराव करने के बाद एक सभ्य बास्कर मुंजे आ पहुँचे और इस लिए पूरी संख्या होने पर काम शुरू हुआ। ऐसी हालत किसी संस्था की न होनी चाहिए। किन्तु रचनात्मक कार्य में कम अथवा कुछ नहीं के बराबर रस होने के कारण ऐसे कार्यों में जिनमें अर्थ-लाभ न हो, थोड़े ही लोग इकट्ठे होते हैं।

इस मंडल की दुग्धालय और चर्मालय की मारफत गोरक्षा करनी है। इस लिए इसमें तो उद्यम, द्रव्य, बुद्धि इत्यादि की ही आवश्यकता है। इसमें कौन हाजिर हो ?

तौसी, गोरक्षा का प्रश्न धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। डोर के बिना खेती न होगी, खेती बिना आदमी न जीवेंगे, और डोर बिना दूध नहीं मिलता और दूध बिना मनुष्यों का जीवन मुश्किल हो पड़ता है।

डोर की आबादी का सवाल केवल उनके ज्ञानमय पालन पोषण और उत्पत्ति पर है। यह ज्ञान उद्यम के बिना मिलने का नहीं। इस लिए अ० भा० गोरक्षा मंडल का उद्देश्य, प्रयोग के द्वारा इस ज्ञान की वृद्धि करना है। चमड़े के व्यापार से और चमड़ा कमाने के धंधे से जनता में जो घृणा भरी हुई है, उसे दूर करना है।

इसमें मन कौन लगाता है ? सभी विचारवान् स्त्री पुरुषों को मन लगाना चाहिए। किन्तु वे मन कम लगावें वा अधिक, ऐसे मंडलों को भी अपना काम दृढ़ता पूर्वक कायम रख कर अपनी श्रद्धा सिद्ध करनी चाहिए।

इस लिए समिति ने चार प्रस्ताव स्वीकार किये हैं।

दुग्धालय चलाने की विद्या में एक निपुण सज्जन के मिल जाने से, ऐसे दुग्धालय का प्रयोग शुरू करने के लिए, ५०००० ) २० तक खर्च करके का अधिकार प्रमुख को दिया गया है।

चर्मालय के लिए भी एक सज्जन मिल गये हैं। इस लिए वह प्रयोग करने के लिए भी दूसरे ५०,००० ) २० खर्च करने का अधिकार प्रमुख को दिया गया है।

इतना रुपया मंडल के पास अभी नहीं है। भाग्य से ही मंडल के पास १०,००० ) २० होंगे। बाकी तो जब मिले तब। बाकी के मिलने की आशा बैठायी गयी है। मित्रवर्गों ने सहायता करनी स्वीकार की है और चूँके मेरी ऐसी श्रद्धा है कि काम अच्छा हो और काम करने वाले भले हों तो द्रव्य तो मिलता ही है, मैंने समिति से यह सत्ता ली है। इस कार्य में जिस गोसेवक को मदद करनी हो करें। हिसाब कौबो कौबो का रहता है और रहेगा। वह प्रकट हुआ ही करेगा। कार्य में सफलता और निष्फलता का आधार अनेक संयोगों के ऊपर है। उमेद तो यह है कि ऐसा बताया जा सकेगा कि प्रयोग के अन्त में दोनों वस्तुएँ स्वावलम्बी हो सकती हैं।

जिन कर्मचारियों को रोक लिया गया है, उनका जरा अनुभव मिलने के बाद देने का विचार है। अगर वे सफल हों तो उनमें मैं गोरक्षा का बीज देखता हूँ।

दूसरे दो प्रस्ताव मंडल को सभ्यों पर अवलम्बी करने लिए हैं। मंडल में काम करने वालों की जरूरत है, अफसोस नहीं। इससे एक प्रस्ताव यह है कि समिति के जो सभ्य लगातार तीन बैठकों में गैरहाजिर हों उनकी जगह खाली जाय। यह ठहराव आवश्यक है क्योंकि जरूरत उन्हीं सदस्यों है जो समिति के ठहरावों में अपने मत का लाभ दे सकें। हाजिर न रह सकें वे सहायता किस प्रकार देंगे ? इस बात पर मंत्री प्रत्येक सभ्य के साथ पत्र-व्यवहार चलावेंगे।

चौथा ठहराव सभ्यों पर लागू है। जो सभ्य दूसरे का अपना चन्दा न भरें, वे सभ्य ही न गिने जायें। यह दिलाने के लिए है। यह बहुत अमीष्ट है कि इस के प्रतिनिधि और सभ्य जवाबदेह हों। सच्ची दृष्टि से दो नियम यानी सभ्यों का चन्दा देने और प्रतिनिधियों के हाजिर होने के—सभी संस्थाओं के लिए अनिवार्य चाहिए।

मेरी उमेद है कि जो लोग मंडल के उद्देश्य को पसंद करें वे ऊपर के चारों ठहरावों का स्वागत करेंगे और मदद देंगे।

मंत्री के विषय में समिति को एक विचार कर लेना ऐसा कहा जा सकता है। श्री वालजी गोविन्दजी देसाई (२०० ) २० के दरमाहे पर मंत्री रक्खा गया था। श्री गोरे रामाये देसाई गो-सेवक हैं, विद्वान हैं। उन्होंने कुछ लोभ के होकर २०० ) २० न माँगे थे किन्तु उनकी कौटुम्बिक बड़ी होने से माँगे थे। इनसे अधिक योग्य मंत्री नहीं था। मंडल के प्रस्तावानुसार, हूँदने की यह जिम्मेदारी थी। जिस समय श्री वालजी देसाई को रक्खा उस समय कल्पना थी कि उन्हें अपना सारा समय गोरक्षा के देना पड़ेगा। पीछे से अनुभव हुआ कि उनका समय था। वह समय साहित्य सेवा में लगाकर उससे आमदनी निश्चय हम दोनों ने किया। ऐसा काम उन्हें मिल रहा मंडल के पास से हर महीने ५० ) २० से अधिक न अपना अभिप्राय उन्होंने मंडल को जताया। पिछले जुलाई से उससे भी कम ही लेते हैं। मंडल ने उनका निदोष स्वीकार किया है और बचे हुए समय में मंडल के काम मिले तो उसे करने की इजाजत दी है। मुझे यह चाहिए कि इस बचे हुए समय में भाई वालजी, जो हैं, वह मंडल का भले ही न कहा जा सके किन्तु गोसेवा का ही होता है। यह बात 'नवजीवन' के बतलाने की कुछ जरूरत नहीं है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद

'हिन्दी नवजीवन' की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे पाँचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। एक जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम पोस्टेज के रुपये है।

व्यवस्थापक, 'हिन्दी नवजीवन'



१० दिसम्बर, १९२४

# सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय ४

शान्ति

हमले के दो एक दिन बाद जब मैं मि. एस्कंवर से मिला, तब अभी मैं पुलिस थाने में ही था। मेरे साथ मेरी रक्षा लिए एक दो सिपाही रहते थे। किन्तु सचमुच मैं तो जब मि. एस्कंवर के पास ले गये, तब मेरी हिफाजत की कुछ ज़रूरत रही न गयी थी।

अगले दिन मैं उतरा, यानी पीले झंडे के उतरते ही 'नेटाल-लैण्ड' का प्रतिनिधि मुझसे मिल गया। उसने मुझसे खूब बातचीत की और मैं उसके एक एक आरोप का पूरा २० जवाब दे सका था। सर फीरोजशाह के प्रताप से उस समय हिन्दुस्तान में मैंने बिना लिखे एक भी व्याख्यान दिया ही नहीं था। मेरे सभी भाषणों और लेखों का संग्रह तो मेरे पास था। उसे वह संग्रह देकर मैंने साबित कर दिया कि मैंने हिन्दुस्तान में कोई एक भी ऐसी बात नहीं कही थी कि जिसे सिंग अफ्रीका में उससे अधिक कड़े शब्दों में न कह चुका होऊँ। मैंने वह भी बतला दिया कि 'कूरलैण्ड' और 'नादरी' के अफ्रीकी को लाने में मेरा हाथ बिलकुल न था। उनमें बहुत तो वहाँ के पुराने वाशिनदे थे और बहुत से नेटाल नहीं, बल्कि ट्रांसवाल के जानेवाले थे। उस समय नेटाल में मंदी चल रही थी। ट्रांसवाल में खूब अधिक कमाई होती थी, इस लिए अधिक हिन्दुस्तानी वहाँ जाना पसन्द करते थे।

इस बुलावे की ओर वैसे ही हमला करनेवालों पर सामला करने के विषय में मेरे इनकार का असर इतना अधिक पड़ा कि मेरे घरवाले, समाचार पत्रों ने मुझे निर्दोष ठहराया और हुल्लड़ करनेवालों की निन्दा की। इस परिणाम से मुझे तो लाभ ही हुआ और मेरा लाभ तो उस आन्दोलन का ही लाभ था। हिन्दुस्तानी भी इस बात को बहुत बड़े और मेरा मार्ग अधिक सीधा हो गया।

तीन या चार दिनों में मैं अपने घर गया और थोड़े दिनों में स्थिति ठीक हो गया। मेरा वकालत का धंधा भी ऊपर की तरफ से बढ़ा।

किन्तु हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा ऐसे जो बड़ी तो उनके लिए भी बड़ा। इसका विश्वास होते ही कि उनमें लड़ने की क्षमता है, उनसे भय भी बढ़ा। नेटाल की धारासभा में दो ऐसे प्रतिष्ठित पेश हुए जिनसे हिन्दुस्तानियों का कष्ट बढ़ा। एक से हिन्दुस्तानी व्यापारियों के धंधों को नुकसान पहुँचा और दूसरे से हिन्दुस्तानियों की आवाजाही पर अंकुश लगा। भाग्ययोग से हिन्दुस्तानियों के साथ हिन्दुस्तानियों के रूप में कोई नियम नहीं था। इसका अर्थ कि कानून में रंग-भेद या जाति-भेद न होना चाहिए। इससे ऊपर के दोनों कानून, ऊपर से भाषा के अनुसार तो सब पर लागू मालूम पड़ते थे किन्तु उनका मतलब हिन्दुस्तानी जाति पर ही दबाव डालना था।

अपनी कानूनी ने मेरा काम बहुत बढ़ा दिया और हिन्दुस्तानियों को कोई हिन्दुस्तानी अज्ञान न रहे, इस प्रकार लोगों को समझाया गया और हमने उनका तल्लुमा छापा। अन्त में यह तद्वार मेरा बहुत कुछ समय सार्वजनिक काम में जाने लगा।

उस बाल नागर का नेटाल में होना मैं लिख गया हूँ। वह

मेरे साथ रहे। उन्होंने सार्वजनिक काम में अधिक हिस्सा लेना शुरू किया और मेरा काम कुछ हलका हुआ।

मेरी गैरहाजिरी में सेठ आदमजी मीरखान ने अपने मंत्री-पद को खूब शोभा दी। सभ्य भी बढ़े थे और स्थानिक कांग्रेस के कोष में १ हजार पाउन्ड बढ़ा था। जहाज के यात्रियों पर हमले के कारण और उसी प्रकार ऊपर के कानूनों के कारण जो जायति हुई उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने का मैंने विशेष प्रयत्न किया और कोष में लगभग ५००० पाउन्ड हुए। मेरा यह लोभ था कि अगर कांग्रेस को कोई स्थायी कोष हो और उससे जमीन ले कर भाड़े पर दी जाय और उससे अगर भाड़ा आवे तो कांग्रेस निर्भय बन जाय। सार्वजनिक संस्थाओं का मेरा यह पहला ही अनुभव था। साथियों के सामने मैंने अपना विचार पेश किया। उन्होंने भी उसे स्वीकार कर लिया। मकान लिये गये और उन्हें भाड़े पर दिया गया। उनके भाड़े में से कांग्रेस का मासिक खर्च सहज में चलने लगा। मिलकियत का मजबूत ट्रस्ट बना। आज भी वह मिलकियत वैसी ही मौजूद है किन्तु इस बीच में वह झगड़े की जड़ बन पड़ी है और उसका भाड़ा अदालत में जमा होता है।

यह दुःखद स्थिति तो मेरे दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद हुई किन्तु सार्वजनिक संस्थाओं के लिए स्थायी कोष रखने के संबंध में मेरे विचार द० अफ्रीका में ही बढ़े। बहुत सी सार्वजनिक संस्थाओं की उत्पत्ति और वैसे ही उनके सुप्रबन्ध के लिए जिम्मेदार रह चुकने के बाद मेरा दृढ़ निर्णय यह हुआ कि किसी सार्वजनिक संस्था को स्थायी कोष के ऊपर चलने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसमें उनकी नैतिक अधोगति का बीज चुपा हुआ होता ही है।

सार्वजनिक संस्था वह है जो लोगों की मंजूरी से और उनके पैसे से चलती हो। इस संस्था को जब लोगों की मदद न मिले तो उसे अपनी हस्ती बनाये रखने का अधिकार ही नहीं है। स्थायी कोष के ऊपर चलने वाली संस्थाएँ लोकमत से स्वतंत्र हो जाती हुई देखने में आती हैं और कितनी बार तो उलटा आचरण तक करती हैं। ऐसा अनुभव हमें हिन्दुस्तान में पग पग पर होता है। कितनी धार्मिक मानी जाती हुई संस्थाओं के हिसाब-किताब का कहीं कुछ ठिकाना ही नहीं। उनके प्रबन्धक ही मालिक बन बैठे हैं और किसी के प्रति जवाबदेह नहीं हैं। इस विषय में तो मुझे कुछ शंका ही नहीं है कि जैसे कुदरत रोज पैदा कर के रोज खर्च करती है वैसे ही सार्वजनिक संस्थाओं का भी होना चाहिए। जिस संस्था को लोग मदद करने को तैयार न हों उसे सार्वजनिक संस्था के रूप में चलने का अधिकार ही नहीं है। हर साल मिलने वाली मदद उन उन संस्थाओं की लोकप्रियता और उनके संचालकों की प्रामाणिकता की कसौटी है और मेरा मत यह है कि इस कसौटी पर हर एक संस्था को चढ़ना चाहिए।

इस लेख का उलटा अर्थ न समझा जाय। ऊपर की टीका ऐसी संस्थाओं पर लागू नहीं है जिन्हें मकान इत्यादि की आवश्यकता होवे। सार्वजनिक संस्थाओं के वार्षिक खर्च का आधार जनता से मिलने वाली सहायता पर होना चाहिए।

ये विचार द० अफ्रीका के सत्याग्रह के समय में दृढ़ बने। यह ६ वर्ष का महान् युद्ध जिसके लिए लाखों रुपये की आवश्यकता थी, स्थायी सहायता के बिना चली। ऐसे समय भी मुझे याद है जब मुझे इसकी खबर नहीं रहती थी कि कब का खर्च खर्च कर चलेगा। किन्तु अभी आगे वही जानेवाली बातों का उल्लेख मैं यहीं न करूँगा। ऊपर के मत का समर्थन पाठक को जगर वजगह समुचित प्रसंग उपस्थित होने पर मिलेगा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष वदि ४, संवत् १९८३

## शहीद श्रद्धानन्द

जिसकी उमेर भी बड़ हो गुनरा । कोई ६ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी सत्याग्रहाश्रम में आ कर दो एक दिन ठहरे थे । बात चीत में उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके पास जब तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालने की धमकी दी जाती थी । किस सुनारक के निर पर बोली नहीं बोली गयी है ! इस लिए उनके ऐसे पत्र पाने में अवाम्मे की कोई बात नहीं थी । उनका मारा जाना कुछ अनेखी बात नहीं है ।

स्वामी जी सुनारक थे । वे कर्मवीर थे, वनवीर नहीं । जिसमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे । उन विश्वासों के लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े । वे वीरता के अवतार थे । भय के सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया । वे योद्धा थे और योद्धा रोग शय्या पर मरता नहीं चाहता । वह तो युद्ध भूमि का मरण चाहता है ।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्दजी बहुत बीमार पड़े । डाक्टर अनसारी उनकी चिकित्सा करते थे । जितने अनुशासन से उनसे संभव था, डाक्टर अनसारी उनकी सेवा करते थे । इस महीने के शुरू में मेरे पूछने पर उनके पुत्र प्रो. इन्द्र ने तार दिया था कि स्वामी जी अब अच्छे हैं और मेरा प्रेम और दुआ माँगते हैं । मैं उनके बिना माँगे ही उन पर प्रेम और उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करता ही रहता था ।

भगवान् को उन्हें शहीद की मौत देनी थी । इस लिए जब अभी वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारे के हाथ मारे गये जो इस्लाम पर धार्मिक चर्चा के नाम पर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामी जी की प्रेरणा से आने दिया गया, जिसने प्यास मिटाने को पानी माँगने के बहाने स्वामी जी के ईमानदार नौकर चर्मपिंड को पानी लेने को बाहर हटा दिया, और जिसने नौकर की गैरहाजिरी में बिस्तर पर पड़े हुए रोगी की छाती में दो प्राणघातक चोटें कीं । स्वामी जी के अन्तिम शब्दों की हमें खबर नहीं । मगर अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मा से उसके लिए क्षमा-याचना की होगी जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है । इस लिए गीता की भाषा में वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है ।

मृत्यु तो हमेशे ही धन्य होती है मगर उस योद्धा के लिए तो और भी अधिक जो आने धर्म के लिए यानी धर्म के लिए मरता है । मृत्यु कोई शैतान नहीं है । वह तो सब से बड़ी मित्र है । वह हमें कष्टों से मुक्ति देती है । हमारी इच्छा के विरुद्ध भी हमें छुटकारा देती है । हमें बराबर ही नयी उम्रें, नये रूप देती है । वह नींद के समान मीठी है किन्तु तौमो किसी मित्र के मरने पर शोक करने की चाल है । अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिताज नहीं रहता । अतएव इस मृत्यु पर मैं शोक नहीं कर सकता । स्वामी जी और उनके सम्बन्धी ईश्वर के पात्र हैं क्योंकि श्रद्धानन्द जी मर जाने पर भी अभी जीते हैं । उससे

भी अधिक सबे रूप में वे जीते हैं जब वे हमारे बीच विशाल शरीर को लेकर घूमा करते थे । ऐसी महिमामय मृत्यु जिस कुल में उनका जन्म हुआ था, जिस जाति के वे थे सभी धन्यता के पात्र हैं । वे वीर पुरुष थे । उन्होंने जी पायी ।

मगर इस दृश्य का एक दूसरा पट भी है । मैं को मुसलमानों का मित्र समझता हूँ । वे मेरे सहोदर हैं । उनकी भूलें मेरी भूलें हैं । उनके सुख से मैं और दुःख से दुःखी होता हूँ । किसी मुसलमान के मुझे उतना ही दुःख होता है जितना कि अगर वह हिन्दू करता । एक मुसलमान ने यह घोर कृत्य किया मुसलमानों के मित्र की हैसियत से मुझे इसका बहुत दुःख है । मृत्यु की खुशी इस लिए कम हो जाती है कि उसका बना था एक भूला हुआ भाई । इस लिए धर्म बलि की नहीं की जा सकती । वह तो आनन्द की वस्तु तभी जब बिना बुलाये आती है । हम अपने छोटे से छोटे भूल पर हँस नहीं । मगर बात तो यह है कि जब तक भयंकर रूप धारण कर नहीं लेती, उसे भूल माना ही नहीं जब तक उसकी यथेष्ट निन्दा नहीं हो लेती तब तक नहीं होती ।

इस काण्ड का बहुत बड़ा राष्ट्रीय महत्व है । जाति को नष्ट करनेवाले दोष की ओर यह हमारा ध्यान खींचता और मुसलमान दोनों को ही, अपना कर्तव्य चुन लेना यह हम दोनों की ही आँच का मोका है । क्रोध हिन्दू अपने धर्म का अपमान करेंगे और उस एकता लेंगे जो एक दिन जहर ही आवेगी । आत्म-द्वारा वे अपने आप को अपनी उपनिषदों और युधिष्ठिर के योग्य सिद्ध कर सकते हैं । एक व्यक्ति के हम सारी जाति का पाप न मान बैठें । बदला लेने के न लवें । इसे हम एक हिन्दू के प्रति एक मुसलमान मानने के बदले एक वीर पुरुष के प्रति दूसरे भूले की भूल मानें ।

मुसलमानों को अग्नि-परीक्षा में से होकर निकलने में कोई शक नहीं कि छुरी और पिस्तौल चलने हाथ जहरत से अधिक साफ हैं । तलवार कुछ इसका चिह्न नहीं है मगर इस्लाम की पैदाइश हुई ऐसी तलवार की ही तृती थी और अब भी है । यीशू के सन्देश अस्तर नहीं पड़ा क्योंकि उसे ग्रहण करने लायक योग्य ही उपस्थित नहीं । पैगम्बर के उपदेशों के साथ भी मुसलमानों के ध्यान से अब भी तलवारें बहुत हैं । इस्लाम को अगर इस्लाम यानी शान्ति बनना है तो तलवार ध्यान में ही रखनी होगी । इसका खतरा है कि मंत्री इस कृत्य का समर्थन ही करें । उनके लिए यह दुर्भाग्य की बात होगी क्योंकि हमारा मसला है । अगर खुदा पर भरोसा करना भरोसा छोड़ना होगा । उनकी ओर से स्पष्ट शब्दों से निन्दा के प्रस्ताव होने चाहिए ।

मैं अबदुल रशीद की ओर से भी कुछ कहना मैं उसे जानता नहीं । मुझे इससे मतलब नहीं मारा । दोष हमारा है । अखबारवाले चलते हैं वन गये हैं । वे झूठ और शिकायत की अपनी भाषा की गालियों के शब्द भंडार की वे







३००) रु. इकट्ठे किये जा सकेंगे। वहाँ की राष्ट्रीय पाठशाला बड़ी कठिनाइयों के विषय चल रही है। शिक्षकों के लिए यह गौरव की बात है। एक शिक्षक हैं मि. जोगलेकर। आप पहले हिमालय कॉलेज में प्रोफेसर थे किन्तु असहयोग करने के बाद से पीछे लौटने का खयाल आप के पास फटकने तक नहीं पाया है। आपने अपने गुजर के लिए गल्ले की एक दूकान खोल रखी है और अवैतनिक रूप से दो तीन घण्टे समय स्कूल में दिया करते हैं। सभी शिक्षक और स्थाने लड़के चर्चा-संघ के सदस्य हैं।

अमरावती का दौरा कुछ खादी के सम्बन्ध में नहीं था इस लिए उसका जिक्र अलग ही करना चाहिए। डाक्टर पटवर्धन बहुत दिनों से प्रार्थना कर रहे थे कि गांधी जी अमरावती चल कर उनका अखाड़ा खोल दें। उनका दावा है कि सारे बरार प्रान्त में तो वैसा दूसरा अखाड़ा है ही नहीं सारे हिन्दुस्तान में भी उसका जोड़ नहीं है। सचमुच है भी वह वैसा ही। इसकी कोई ५० शाखाएँ हैं और खास अमरावती में ही कोई ५०० विद्यार्थी हैं। डाक्टर पटवर्धन के केवल एक घण्टा समय दिया गया था और उन्होंने एक मिनट भी अधिक समय नहीं लिया। जो खेल दिखावाये गये उनमें कुछ तो सचमुच ही आश्चर्यजनक थे और जहाँ तक शारीरिक उन्नति से संबंध है, लड़कों को देख कर मात्तम होता था कि वह संस्था एक जरूरी कमी पूरी कर रही है। प्रबन्धकर्ताओं और लड़कों को बधाई देने में गांधीजी ने १० मिनट में ए५ भाषण किया। वह भाषण इस लिए महत्वपूर्ण है कि उससे अखाड़ों या व्यायामशालाओं के प्रति उनके दृष्टिकोण का पता चलता है। उन्होंने कहा, “आप जानते हैं कि मुझे अपनी कमजोरियाँ मात्तम हैं। मेरे स्वभाव में ही यह नहीं है कि जितना काम मैं कर सकूँगा उससे अधिक काम उठाऊँ। मगर डाक्टर पटवर्धन की प्रार्थना को इनकार भी तो नहीं कर सकता था। मुझे यह जान कर खुशी हुई कि इस अखाड़े में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से लिये जाते हैं, और सिर्फ मुसलमान ही नहीं बल्कि अछूत लड़के भी इसके सदस्य हैं। मुझे यह देखकर आनन्द हो रहा है कि यह संस्था इस प्रकार साम्प्रदायिकता से अछूती है।

“हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जो युवक अपने शरीर को स्वस्थ और सबल बनाना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। मैं सारे देश में घूमा हूँ। मुझे सब से अधिक कष्ट यह देख कर होता था कि हमारे नवयुवक साँस की फूँक से उड़ जाने वाले हैं। जब तक हमारे यहाँ बालकों के ऊपर बाल विवाह का अभिशाप है, जब तक हमारे समाज में बाल-विवाह से उत्पन्न हुए आदमी हैं, तब तक अधिक शारीरिक श्रम असंभव है। राजयक्ष्मा के रोगी को दूध बैठक करने को कौन कहेगा? अगर हमें नवयुवकों और नवयुवतियों को स्वस्थ और सबल देखने की चाह है, अगर हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान मजबूती और तन्दुस्ती के रास्ते पर उन्नति करे तो हमें इस कुप्रथा की जड़ में कुल्हाड़ी मारनी पड़ेगी। मनु ने कहा है कि विद्यार्थी को कम से कम २५ वर्ष तक अवश्य ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए। जब तक ये बातें पूरी नहीं होतीं, सभी कसरत और व्यायाम निष्फल हैं।

“मगर इसके अलावा एक और बात है जिस पर मैं आप लोगों का ध्यान खींचना चाहता हूँ। आप जानते हैं कि जिस बात का हिंसा से बहुत दूर का भी सम्पर्क हो, उससे मैं संबंध नहीं रख सकता। दूसरे लोग चाहे जो कुछ करें मगर मेरा पक्का विश्वास है कि अहिंसा मार्ग के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है और मेरे लिए यह सबसे

बड़ा और शाश्वत धर्म है। इसपर कोई सज्जन पूछ सकते हैं कि तब मेरे ऐसे अहिंसा-प्रेमी ने इस संस्था से सहकार किया क्यों? इसका कारण स्पष्ट है। अहिंसा का अर्थ है हिंसा की शक्ति का त्याग कर देना। इसलिए जिसमें वह शक्ति है वो नहीं, वह अहिंसा का पालन कर ही नहीं सकता। अहिंसा बड़ी भारी आत्मिक शक्ति मगर इसके पालन में शारीरिक शक्ति के व्यवहार की ताकत होनी चाहिए मगर उसे जानबूझ कर, सोच समझ कर उस शक्ति से काम न लेना होगा। शारीरिक शिक्षा कुछ हिंसा करने की शक्ति देने का रास्ता तो नहीं है मगर हम अपने युवकों को अहिंसा-पालन के लिए निर्बल बनने की सलाह न दें। हथियार छीन कर के किसी को अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के पापों में एक पाप यह है कि हमारे हथियार हमसे जबर्दस्ती छीन लिये गये हैं किन्तु अगर यह संभव भी होता तौभी हमें कुछ अहिंसक बनाने के लिए नहीं किन्तु हमें नपुंसक बनाने के लिए। मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान मजबूत बने और हथियार का उपयोग करने को उसे स्वतंत्रता मिले किन्तु तौभी वह उसका त्याग कर देवे।

“इस प्रकार शारीरिक कल्याण के लिए ऐसी संस्थाओं को मैं पसन्द करता हूँ। मगर मुझे चेतावनी का भी एक शब्द कह लेने दो। कोई भी संस्था जिसका उद्देश्य हो जाति-विशेष को दबाना, चाहे वह जाति, हिन्दू या मुसलमान या किस्तान या पारसी कोई भी क्यों न हो, वह मेरा आशीर्वाद नहीं पा सकती। मेरे आशीर्वाद की अधिकारी वही संस्था हो सकती है जिसका उद्देश्य है, सभी सम्प्रदायों, सभी जातियों, सभी समाजों, राष्ट्र के सभी युवकों का शारीरिक कल्याण चाहे वे किसी भी जाति या समाज के हों। अगर मुझे यह नहीं मात्तम होता कि आज जो व्यायामशाला मैंने खोली है, वह इस प्रकार की है तो मैं यहाँ आता ही नहीं। एक बार और तुम्हें बधाई देता हुआ मैं मनाता हूँ और भगवान् की प्रार्थना करता हूँ कि तुम सभी कोई सच्चे और पवित्र बने और तुम्हारा जीवन हमारे राष्ट्र और धर्मों के लिए बलिदान हो।”

(यं. इ.)

महादेव हरिभाई देसाई

## टिप्पणियाँ

### बुरे विचारों का दमन

‘अनीति की राह पर’ शीर्षक लेख माला में जो विचार दिये गये हैं, उनके समर्थन में कोई भाई एक लेख भेजते हैं। इसमें कोई नयी बात तो नहीं है, मगर बुद्ध भगवान की शिक्षाओं में से एक उतारा है, जिससे उन लोगों को सहायता मिल सकती है जो बुरे विचारों का दमन करना चाहते हैं।

वह उतारा यह है:—

“अगर मन की किसी स्थिति के कारण, किसी भाई में भ्रष्टा, अनैक्य सम्बन्धी बुरे विचार उठें, तो उसे अपने मन की दूसरी उचित बात में लगाना चाहिए। अगर तब भी बुरे विचार उठते ही रहें तो उसे इन बुरे-विचारों के कारण होनेवाले खतरों को पढ़ना चाहिए और इस पर ध्यान देना चाहिए कि ऐसे विचार कैसे बुरे हैं और किस प्रकार वे बुरा फल लाते हैं। अगर वे तब भी उठते ही रहें तो उसे उनकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने मन को उनपर उठने की न देना चाहिए। अगर वे तब भी उठते ही रहें तो उसे सोचना चाहिए कि किस प्रकार इस बुरे विचारों के दबाया जा सकता है। ऐसा करते ही वे विचार निकल जायेंगे, गायब हो जायेंगे। उसका चित्त दृढ़ और एक



१३ दिसम्बर, १९२१

हो जायगा। अन्त में, वह लाख दशवे मगर, ये विचार आते ही रहें तो दांत में दांत भिड़ा कर और ताल में जीभ लगाकर केवल मन के बलपर उसे चित्त का दमन करना चाहिए। अपने शासन के अधीन करना चाहिए। वह मन में बलात् लाकर, अपने गुजर जायेंगे, गायब हो जायेंगे। वह सोचते ही ये विचार गुजर जायेंगे, गायब हो जायेंगे। वह ऐसे विचारों को ही सोचेगा, जिन्हें सोचना वह चाहता है न कि उन्हें, जिन्हें वह सोचना ही नहीं चाहता।”

अ. भा. चर्खा-संघ

अ. भा. चर्खा-संघ की सालाना रिपोर्ट अभी लगी है। वह इतनी संक्षिप्त है कि कोई भी काम काजी आदमी उसे पढ़ ले सकता है। चर्खा-संघ वह है जो गरीबों का न होकर भी गरीबों के लिए हो। गरीब से गरीब लोगों का यह संघ हो नहीं सकता क्योंकि वे जानते ही नहीं कि संघ दौन सी चीज है। उनके पास इतनी मिहनत भी अधिक नहीं है कि उस संघ को देख सकें। इस लिए अगर उनके लिए कोई संघ होना ही है तो वह जरूरी है कि दूसरे लोग जो उनकी मिहनत पर गुजर करते हैं, अपने उन गरीब से गरीब भाइयों के लिए कुछ न कुछ दें। तब ऐसे लोगों का ही यह संघ बना है। इस काम के लिए उनकी तरफ ऐसे लोगों का ही यह संघ बना है। इस काम के लिए उनकी संख्या बहुत ही कम हैं। मेरी इच्छा है कि वे और अधिक होते। मगर वे अधिक हों या कम, उनका काम है मद्दतपूर्ण। इसके हिस्सों से ११० धुनियों, ४२,९५९ कातने वालों और ३,४०७ बुनने वालों का पता चलता है जिनमें कम से कम ९ लाख से भी कुछ अधिक ही रुपये बाँटे गये। यह बाँटने का काम १५० उत्पत्ति केन्द्रों पर हुआ, जिनके द्वारा मोटे हिस्से से १५०० गांवों को सहायता पहुँची है। रिपोर्ट में एक भी भर्ती का शब्द नहीं है। यह केवल भारतीय इकट्ठे किये हुए और सजाये हुए अंकों और कामों की सूची मात्र है। पाठक अगर देखना चाहें तो उसमें उन्हें साल के भीतर तैयार हुई और बिकी हुई खादी के भी आंकड़े मिलेंगे। उसमें यह भी मिलेगा कि इस बढ़ते हुए संगठन से कितने नवयुवकों का गुजर होता है और कितने और दूसरे सहायक उद्योग चलते हैं। अ. भा. चर्खा-संघ कार्यालय अहमदाबाद के पास चार आने के टिकिट मेजने पर रिपोर्ट मिलती है।

अ. भा. चर्खा-संघ के प्रस्ताव

अ. भा. चर्खा-संघ की कार्य समिति की गत १३ से १६ दिसम्बर की सभा में निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकार किये गये:

(१) सीधे अ. भा. चर्खा-संघ के द्वारा संचालित या प्रान्तीय शाखाओं के द्वारा संचालित खादी डिपोओं को दूसरे कार्यालयों से थोक या फुटकर बिक्री में उधार व्यवहार करने की सख्त सुमानियत की जाती है।

(२) फेरी लगानेवालों से जितने की वे खादी ले जाते हैं, उसकी कीमत के बराबर नकद जमानत माँगी जाय। खास शर्तों में, जहाँ आवश्यक समझा जाय, अगर फेरी लगानेवाला नकद जमानत न दे सके तो उससे जाती जमानत ली जा सकती है। हर हालत में फेरी लगानेवालों को सख्त ताकीद की जाय कि वे किसी भी हालत में उधार न दें और समय समय पर हिस्सा दिखलायें। अगर किसी समय कोई फेरीवाला, बिक्रे स्टॉक का हिस्सा चुकता न कर सके या बचा स्टॉक हिस्सा से न मिले तो उसे उसी समय हटा देना चाहिए और बाकी पैसे की वसूली के लिए दुरत ही कोई उपाय करना चाहिए।

(३) चूंकि यह अभीष्ट नहीं है कि वहाँ जहाँ जनता इतनी पूरी मदद नहीं देती जिसमें बिना घटी के वहाँ के बिक्री-केन्द्र

चलाये जा सकें, सभी प्रान्तीय शाखाओं को कहा जाता है कि वे अपने डिपो बंद कर दें जहाँ दो साल के अनुभव के बाद मालूम होता है कि वहाँ एक रुपये की बिक्री में एक आने से अधिक का खर्च पड़ता है और नये डिपो वहीं खोले जाय जहाँ यह स्थिति कम से कम एक साल में लायी जा सके।

(४) चूंकि यह अभीष्ट है कि हाल में उन्हीं केन्द्रों में शक्ति लगानी चाहिए जहाँ कि अधिक बेरोजगारी या हाथ कटाई तथा हाथ बुनाई के धंधे के लिए विशेष सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण खादी तैयार करने के लिए अधिक सहूलियत हो, यह निश्चय किया जाता है कि काम की योजनाएँ पेश करने करने में प्रान्तीय प्रतिनिधि या मंत्रीगण, जैसे उत्पत्ति केन्द्र खोलने या चलाने का भार न लें जो केवल घटी सह कर ही चलाये जा सकते हैं। मगर जहाँ कहीं, आन्दोलन के लाभ के विचार से ऐसा समझा जाय की घटी सह कर भी कोई केन्द्र चलाना चाहिए, वहाँ के लिए यह याद रखना चाहिए कि ऐसे नये कामों में सारे प्रान्त में लगी हुई पूँजी के दशवें हिस्से से अधिक पूँजी न लगायी जाय।

(यं. इं.)

मो० क० गांधी०

विद्यार्थी-खादी-संघ

मॉरिस कौलेज के विद्यार्थी, विद्यार्थी-खादी-संघ खोलने का गंभीर विचार कर रहे हैं। उसका मसविदा नीचे दिया जाता है। यह एक ऐसी चीज है, जिसे सभी जगह काम में लाया जा सकता है। गरीब लोगों के लिए बिना सूद नकद रुपया इकट्ठा करने का यह बहुत अच्छा उपाय है।

२) र. महीना चंदा देनेवाले कौलेज के ५० विद्यार्थी एक संघ खोल सकते हैं। यह चंदा उनकी कौलेज फीस के साथ ही दिया जाया करेगा। इस संघ की एक प्रबन्धक समिति होगी जिसमें प्रिन्सिपल, एक मंत्री, एक खजान्ची और दो दूसरे सभ्य होंगे। हर महीने जमा होनेवाले १००) र. से अ० भा० चर्खा-संघ के किसी खादी डिपो से या किसी दूसरे प्रामाणिक खादी डिपो से खादी खरीदी जायगी। हर महीने चिट्ठी लगा कर चार सभ्यों का नाम निकाला जायगा। वे आपस में खादी बाँट लेंगे। इस प्रकार उनमें से हर एक को २५) र. की खादी मिल जायगी जिससे साल भर के लिए काफी, धोतियाँ, कुर्ते, कोट, टोपी, गमछे और बिस्तरे की चादरें बन सकेंगी। सभ्यों में से कोई चाहें तो वे भले ही, अपना अधिकार अपने किसी दूसरे साथी को दे सकते हैं। हर महीने इस प्रकार चार नाम निकलते जायेंगे, और बचे हुए लोगों में चिट्ठा लगा करेगा। साल के अखीर में सभी सदस्यों को अपने पूरे चंदे की पूरी खादी मिल जायगी और एक बार दाम दिये बिना ही, काफी कपड़ा भी। एक विद्यार्थी की जरूरत माफिक कोट, कमीज, धोतियाँ, और चादरों का सारा खर्च ३५ गज खादी से निकल सकता है। ३५ गज खादी मजे में, हर महीने २) र. के हिस्से से साल में २४) र. के चंदे में मिल सकती है।

जलान, भोजन, कौलेज फीस, खेल, तमाशे वगैरह में विद्यार्थी जितना खर्च करते हैं, उसे देखते हुए उनके लिए दो रुपये महीने का चंदा बहुत अधिक नहीं हो सकता। मैं जानता हूँ कि जिन लड़कों को सिगरेट की बुरी लत है, अगर वे उसे छोड़ दें तो वे बिना किसी अधिक खर्च के खादी का चंदा दे सकते हैं और साल भर के लिए काफी कपड़ा ले सकते हैं। ऐसे संघों के सदस्य नवयुवकों में खादी का प्रचार करने के लिए शीघ्र ही अच्छे केन्द्र बन जायेंगे।



ऐसे संघों का संगठन और प्रबन्ध करने से विद्यार्थियों में सहयोग का भाव पैदा होगा और वे व्यवसाय कुशलता सीखेंगे। उनकी मानसिक शिक्षा और शारीरिक खेलों के अलावा, यह तीसरी ही चीज होगी। एक कौलेज में ऐसे कई संघ एक साथ, कोई ५०, ५० लड़कों की भिन्न २ जमायतों के लिए काम कर सकते हैं।  
(यं. इ.)

## खादी प्रतिष्ठान

(गतांक से आगे)

### खादी प्रदर्शनी

मिर्जापुर पार्क खादी प्रदर्शनी हर साल की एक आम बात हो गयी है। यह प्रदर्शनी दुर्गापूजा से कोई १५ दिन पहले खुल कर, पूजा की पछी तक चलती है। प्रदर्शनी में पूजा के अवसर पर कपड़े खरीदने का बहुत अच्छा मौका मिलता है। प्रदर्शनी के साथ नामी २ खादी-प्रेमियों के भाषण कराने का भी प्रबन्ध कराया जाता है। समाजों के लिए टिकिट नहीं रखने से बहुत लोग आकर खादी में दिलचस्पी लेते हैं।

कामेश के अवसर पर प्रदर्शनियाँ: १९२३ में काकिनाडा में बाड-सहायक कोष की खादी और आचार्य राय के 'देशी रंग' की पद्धति से खादी की रँगई की क्रिया दिखलायी गयी थी। १९२४ में बेलगांव में प्रतिष्ठान खादी मेजी गयी थी। १९२५ में कानपुर में खादी-प्रतिष्ठान के सामान बहुत ही आकर्षक थे और रोज हजारों आदमी देखने आते थे। दिखायी गयी चीजों में विशेष उल्लेखनीय वस्तुएँ ये थीं:

१. ढाका मुलमल का १० गज लंबा × ३६ इंच चौड़ा धान, वजन ८३ तोला। ढाका के एक पुराने बुनने वाले श्रीयुत रसिकलाल बसाक ने कोई ४५ साल हुए इसे अपने ही लिए बुना था। इस समय रसिक बाबू की उम्र ७५ साल की होगी। उन्होंने यह धान प्रतिष्ठान को दे दिया है।

२. एक बोडी स्लिपर—इसे महात्मा गांधी ने द० अफ्रीका में बनाया था।

३. महात्मा गांधी और आचार्य राय के हाथ का सूत।

४. प्रतिष्ठान तकली

५. प्रतिष्ठान—चर्खा

६. प्रतिष्ठान का एक दिन का सूत और कपड़ा—७,७ मन के दो गुठर।

७. किस्म किस्म की कपास।

८. बंगाल के ओटे और पिंजन।

९. पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की मा के हाथ का १०० वर्ष पुराना चर्खा।

१०. बंगाल बाड-सहायक—कोष की अच्छी २ साड़ियाँ।

महीन कताई: प्रतिष्ठान के श्रीयुत योगेश्वर चट्टोपाध्याय ने २०० गज फी घन्टे की चाल से १०० अंक का सूत कात दिखलाया।

तेज कताई: उसमान (लड्डा) ने १५ अंक का सूत ८०० गज फी घन्टे काता।

### बिना लाभ के काम

प्रचार और प्रकाशन कार्य के बाद, ऐसे कामों में उन केन्द्रों को चलाया गिना जायगा जहाँ के लोग बँचने के लिए नहीं किन्तु केवल अपने कपड़ों के लिए सूत कातते हैं। इन केन्द्रों से गांववालों में चर्खे बाँटे जाते हैं और उन्हें अपने कपड़े बुनवाने के लिए कातने को कहा जाता है। उनके लिए कपास भी जुदायी जाती है। उनके चर्खों की परम्मत भी की जाती है।

जब कुछ लोगों के घरों पर काफी सूत जमा हो जाता है तो बुनाई खर्च लेकर उसका कपड़ा बुनवा दिया जाता है। अभी यह काम प्रयोगावस्था में है इस लिए खर्च के हिसाब से काम बहुत ही कम होता है। आशा है कि कुछ दिनों में इन सेजों में भी काम खूब बढ़ेगा।

### खादी-सेवा का शिक्षणालय, सोदेपुर

खादी-प्रतिष्ठान का विचार सारे बंगाल में अपना काम फैला देने का है जिस प्रकार आज कल काम फैल रहा है, खादी-कार्य के लिए विशेष शिक्षित कार्यकर्त्ताओं की जरूरत बढ़ती जाती है।

कताई बुनाई, और दूसरी सभी प्रक्रियाओं की व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए एक स्कूल जरूरी है। सोदेपुर में इसके लिए ३० बीघे जमीन ली गयी है। कुछ मकान बन रहे हैं और रँगई और धुलाई के लिए छाजन तैयार हो गये हैं।

खादी कार्यकर्त्ता को केवल कपास ही नहीं पहचाननी पडनी। उसे तो कुछ कलकांटे का और बड़ीखाते का भी काम जानना चाहिए। सोदेपुर की योजना में इनका प्रबन्ध है। सोदेपुर को खादी की शिक्षा के लिए सभी आवश्यक सामानों से सज्जित खादी के शिक्षण के लिए केन्द्रीय स्थान बनाने का विचार है।

### केन्द्रीय धुलाई और रँगई घर, सोदेपुर

प्रतिष्ठान के उत्पत्ति केन्द्र प्रायः स्थानीय धोबियों से ही अपने कपड़े धुला लेते थे। जगह जगह की धुलाई मौसम के अनुसार भिन्न २ प्रकार की होती थी। जितनी अच्छी धुलाई चाहिए, गांव गांव में हो नहीं पाती थी और धोबियों को खादी के कई धानों को लेकर धोने के शास्त्रीय ढंग मालूम न होने से काम चलाऊ धुलाई भी हो पाती थी। अन्त में यह सोचा गया कि अगर एक केन्द्रीय स्थान में सभी कपड़े धोये और रँगें जावें तो कठिनाई बहुत कुछ दूर हो जावेगी।

रँगई में इससे भी बड़ी कठिनाइयाँ पेश आयीं। 'देशी रंग' की विधि से कथई, बैंगनी और पीले रंग बहुत सुन्दर आते हैं। किन्तु जनता की माँग तो तरह तरह के रंगोंन कपड़ों की होती थी, इस लिए उत्पत्ति केन्द्र पास के रंगरेज से जर्मन रंगों द्वारा सूत-रँगवा लेते थे किन्तु उनके पकैपन का कुछ इतनी नहीं दिलाया जा सकता था। कभी २ तो रंगरेज के यहाँ उससे अज्ञान से रँगने में सूत ही बिगड़ जाता था। प्रामाणिक रंग रँगने में बड़ी कठिनाई पडती थी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कलकत्ते के निष्ठ में एक रँगई घर खोलने का विचार किया गया। केन्द्रीय धुलाई और रँगई केन्द्र सोदेपुर को बनाने का निश्चय किया गया।

### प्रतिष्ठान के उद्देश्य

भारतवर्ष के लिए यह उद्योगों की पुनः स्थापना आवश्यक है। चर्खे के ही चारों ओर यह उद्योगों के सारे भाव घूमते हैं। अगर चर्खा स्थापित हो सका तो हिन्दुस्तान की सुख-समृद्धि बढ़ेगी।

बंगाल में इस भाव को मूर्तिमन्त करने के प्रयत्न प्रतिष्ठान का रहा है। प्रतिष्ठान हमेशा के लिए खादी बनाने और बँचने का काम करना नहीं चाहता। प्रतिष्ठान तो रास्ता भर दिखलाने का काम करता है। ज्योंही जन-प्रमूद देश भक्त समाजों का उदाहरण देख कर समझ लेंगे कि खहर ही हमारा एक मात्र पहरावा है प्रतिष्ठान का भार हलका हो जायगा।

जनता से हम प्रार्थना करते हैं कि वे इसे हमारे उद्योग भविष्य का चिह्न समझें और प्रतिष्ठान को सभी तरह से उदारता पूर्वक सहायता दें।  
(यं. इ.)



वार्षिक मुख्य ४)  
छः मासका २)  
एक प्रति का १)

महासभा

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २१ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, पौष सुदि ३, संवत् १९८३  
गुरुवार, ६ जनवरी, १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगंरा की बाड़ी

## श्रद्धानंद स्मारक

यह उचित ही है कि हिन्दू महासभा की ओर से स्वामी श्रद्धानंद के स्मरण के लिए धन की सहायता माँगी जाय । स्वामीजी संन्यास-धारण के बाद जिन कामों के लिए जीते थे, उनके लिए चन्दा इकट्ठा करने का हिन्दू महासभा ने निश्चय किया है । इस निश्चय के लिए मैं उसे सधुवाद देता हूँ । वे काम हैं, 'अस्पृश्यता-निवारण', शुद्धि और संगठन । ५ लाख की अपील की गयी है 'अस्पृश्यता' के लिए और शुद्धि और संगठन के लिए भी उतने की ही । जिसे साधारणतः शुद्धि समझा जाता है, उस अर्थ में शुद्धि-आन्दोलन की आवश्यकता में मेरा विश्वास अब भी नहीं है । पापियों की शुद्धि निरन्तर आन्तरिक किया है । उन लोगों की शुद्धि जो न तो हिन्दू न मुसलमान कहें जा सकते हैं, या जो हाल में ही विधर्मी करार कर दिये गये हैं मगर जो यह भी नहीं जानते कि धर्म-परिवर्तन कहते किसे हैं, और जो निश्चय रूप से हिन्दू ही रहना चाहते हैं, धर्म-परिवर्तन नहीं है बल्कि प्रायश्चित्त है । शुद्धि का तीसरा पक्ष है असली धर्म-परिवर्तन । इस ज्ञान और सहन युग में उसकी जरूरत नहीं मानता । मैं धर्म-परिवर्तन का विरोधी हूँ चाहे कोई उसे हिन्दुओं में शुद्धि, मुसलमानों में तबलीग या क़िस्तानों में धर्म-परिवर्तन कहे । धर्म-परिवर्तन तो हृदय की किया है और उसे केवल भगवान ही जान सकता है । उसे तो अपने आप पर ही छोड़ देना होगा । मगर धर्म-परिवर्तन पर मेरे मत प्रकाश करने का यह स्थान नहीं है । जिनका इसमें विश्वास है उन्हें बिना किसी विरोध के अपने रास्ते चलने का तब तक पूरा अधिकार है जब तक वे उचित सीमाओं के अन्दर रहते हैं जहाँ जब तक कोई जोर या धोखा या लालच नहीं दी जाती और जब तक दोनों पक्षों को पूरी स्वतंत्रता है और वे स्थानी उग्र नहीं हैं इस अपील पर सहायता देने का पूरा अधिकार है । अगर वह अपनी हस्ती अलग रखना चाहे तो हर सम्प्रदाय को अपना संगठन करने का पूरा अधिकार है । बल्कि उसके लिए यह परमावश्यक है । मैं इससे इस लिए बका रहा हूँ कि संगठन के विषय में मेरे विचार

कुछ अनोखे हैं । संख्या से अधिक गुण पर मेरा विश्वास है । आजकल संख्या पर, बल्कि गुण के बढ़ने की उसी पर विश्वास रखने की चाल है । समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में निस्सन्देह संख्या को स्थान है । केवल मैं ही इसका उस प्रकार संगठन करने में असमर्थ हूँ जैसा कि आजकल हो रहा है । इस लिए मेरे लिए अछूतोद्धार के ही कोष की कीमत है । इसकी अपनी निराली ही शक्ति है । हिन्दूधर्म के सुधार और इसकी सच्ची रक्षा के लिए अछूतोद्धार सबसे बड़ी वस्तु है । इसमें सब कुछ शामिल है और इस लिए हिन्दूधर्म का यह सब से काला दाग अगर मिट जाय तो शुद्धि और संगठन से जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमें इससे अपने आप ही मिल जायगा । और मैं यह इसलिए नहीं कहता कि अछूतों की, जिन्हें हर एक हिन्दू को गले लगाना चाहिए बहुत बड़ी संख्या है किन्तु इस लिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाज को तोड़ डालने के ज्ञान और उससे होनेवाली शुद्धि से इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी । इस लिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक किया है । स्वामी जी उस सुधार के जीवित मूर्ति थे क्योंकि वे इसमें आधाशाखा सुधार नहीं चाहते थे, वे समझौता नहीं कर सकते, दब नहीं सकते थे । अगर उनका चलता तो वे बात की बात में हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को निकाल बाहर करते । वे हर एक मन्दिरको, हर एक कुँए को, सबकी बराबरी के हक के साथ अछूतों के लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते । स्वामी श्रद्धानंदजी के लिए मैं इससे अच्छा कोई स्मारक नहीं सोच सकता कि हर एक हिन्दू आज से अपने दिलों से अस्पृश्यता की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगों के समान बर्ताव करे । उस आदमी की पैसा की सहायता तो, मेरी समझ में, अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म से सदा के लिए निकाल डालने की उस के हठ निश्चय का चिह्न भर होगी ।

स्वामीजी को सामुदायिक और धार्मिक रूप से सम्मान प्रदर्शन करने के लिए जनवरी सोमवार को दिन निश्चय किया गया है । मुझे आशा है कि हर शहर हर गांव में यह होगा । मगर इस प्रदर्शन का असल मतलब ही गायब हो जायगा । अगर उसमें भाग लेनेवाले अपने में से उसी साथ अस्पृश्यता की अपवित्रता को न दूर करें । हर एक



‘अछूत’ को उस सभा में शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उसी दिन अछूतों के लिए सभी मन्दिर खोल दिये जाते ! अगर संगठित रूप से उद्योग किया जाय तो उस दिन सूर्यास्त के पहले ही कोष भर जा सकता है।

मोहनदास करमचंद गांधी

(यं. हं.)

### स्वामी जी के स्मरण

स्वामी जी से मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुंशीराम के नाम से प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रों से हुआ। उस समय वे कांगड़ी गुप्तकुल के प्रधान थे जो कि उनका सब से पहला और बड़ा शिक्षा-क्षेत्र का काम है। वे सिर्फ पश्चिमीय-शिक्षा पद्धति से ही सन्तुष्ट न थे। लड़कों में वे वेद-शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे और वे पढ़ाते थे हिन्दी के जरिये, अंगरेजी के नहीं। शिक्षा-काल में वे उन्हें ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। द० अमोका के सत्याग्रहियों के लिए उस समय जो बन इकट्ठा किया जा रहा था उसमें चंदा देने के लिए लड़कों को उन्होंने उरुहित किया था। वे चाहते थे कि लड़के खुद कुली बन कर, मजदूरी कर के चंदा देंगे क्यों कि वह युद्ध क्या कुलियों का नहीं था ? लड़कों ने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमा कर मेरे पास भेजी। इस विषय में स्वामी जी ने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिन्दी में था। उन्होंने मुझे ‘मेरे प्रिय भाई’ कह कर लिखा था। इसने मुझे महात्मा मुंशीराम का प्रिय बना दिया। इससे पहले हम दोनों कभी मिले नहीं थे।

हम लोगों के बीच के मूल एन्ड्युज थे। उनकी इच्छा थी कि जब कभी मैं देश लौटूं, उनके तीनों मित्रों, — कवि ठाकुर, प्रिन्सिपल कद और महात्मा मुंशीराम से परिचय प्राप्त करूं।

वह पत्र पाने के बाद से हम दोनों एक ही सेना के सैनिक बन गये। उनके प्रिय गुप्तकुल में हम १९१५ में मिले और उसके बाद से हर एक मुलाकात में हम दोनों परस्पर निकट आते गये और एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारत, संस्कृत और हिन्दी के प्रति उनका प्रेम असीम था। वैशक, असहयोग के पैदा होने के बहुत पहले से ही वे असहयोगी थे। स्वराज के लिए वे अधीर थे। अस्पृश्यता से वे नफरत करते थे और अस्पृश्यों की स्थिति ऊंची करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता पर कोई बांझ लगाना वे नहीं सह सकते थे।

जब रौलट ऐक्ट का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सब से पहले शुरू करनेवालों में से वे थे। उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम से भरा हुआ एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगम और अमृतसर काण्ड के बाद सत्याग्रह का स्थगित किया जाना वे नहीं समझ सके। उस समय से हमारे बीच मतभेद शुरू हुए किन्तु उनसे हम लोगों के भाई भाई के संबंध में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ा। उस मतभेद से मुझ पर उनका बाल-पुलम स्वभाव प्रकट हुआ। परिणाम का विचार किये बिना ही, उन्हें जैसा मामूली था उन्होंने मुझ से इसी बात कह दी। वे अतिवाहसिक थे। समय बीतने के साथ साथ हम दोनों में जो स्वभाव का अन्तर था, उसे मैं देखता गया किन्तु उससे तो उनकी आत्मा की शुद्धता ही सिद्ध हुई। सब को सुना कर विचार करना कुछ पाप नहीं है। यह तो एक गुण है। यह सत्यप्रियता का सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामी जी ने अपने विचार गुप्त रखे ही नहीं।

बारदोली के निषेध से उनका दिल टूट गया। मुझ से वे निराश हो गये। उनका प्रकट विरोध बहुत जबरदस्त था। मेरे माम उनके निजी पत्रों में और भी विरोध होता था किन्तु हमारे

मतभेद पर जितना वे जोर देते थे, प्रेम पर भी उतना ही। प्रेम का विश्वास केवल पत्रों में ही दिला देने से वे सन्तुष्ट न थे। मौका मिलने पर उन्होंने मुझे ढूँढ़ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझायी और मेरी समझने की कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूँढ़ने का अवल कारण यह था कि जिसमें अगर इसकी जरूरत हो तो मुझे वे विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाई के समान मुझ पर उनकी प्रीति जैसी की तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उसके संस्थापक पर मेरे मतों से और उनके नाम का उल्लेख देने से उन्हें बहुत कष्ट हुआ परन्तु इस धक्के को सह लेने की शक्ति हमारी मित्रता में थी। वे यह नहीं समझ सकते थे कि महर्षि के विषय में मेरे मतों और अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के प्रति कृपि की असीम क्षमा का एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षि में उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओं पर कोई भी टीका वे सह नहीं सकते थे।

शुद्ध आन्दोलन के लिए मुसलमान पत्रों में उनकी बड़ी कड़ी आलोचनाएँ और निन्दा की गयी है। मैं स्वयं उनके दृष्टिबिन्दु को स्वीकार नहीं कर सका था। अब भी मैं उसे मानता नहीं। किन्तु मेरी नजर में अपने दृष्टिबिन्दु से वे अपनी स्थिति का पूरा बचाव करते थे। जब तक शुद्ध और तबलीग मर्यादा के भीतर रहें, तब तक दोनों ही बराबर छूट के अधिकारी हैं। इस महा विवाद-प्रस्त विषय की चर्चा का अवसर यह नहीं है। तबलीग के और शुद्धि के, जो उसका जवाब है, मूल में ही परिवर्तन करना होगा। संसार के धर्मों के उदार अध्ययन में उन्नति होने के साथ साथ, शुद्धि या धर्मप्रचार का वर्तमान वेदंगा तरीका, जो तत्व से अधिक रूप पर ही ध्यान देता है, विलकुल बदल जायगा। यह तरीका तो एक दल की अधीनता को छोड़ कर दूसरे दल में जा मिलना है और एक दूसरे के धर्मों को गाली देना है। इसीसे परस्पर घृणा फैलती है।

अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनों, शुद्धि का आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामी जी की मृत्यु से भी लाभ उठाया जा सकता।

एक महान् सुधारक के जीवन के स्मरणों को मैं सत्याग्रहाश्रम में उनके कुछ महीनों पहले के अखीरी आगमन की बात के बिना खत्म नहीं कर सकता। मुसलमान मित्रों को मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वे मुसलमानों के दुश्मन नहीं थे। कुछ मुसलमानों का विश्वास वे वैशक नहीं करते थे। किन्तु उन लोगों से उनका कुछ द्वेष नहीं था। उनका खयाल था कि हिन्दू दबा दिये गये हैं और उन्हें बहादुर बन कर अपनी और अपनी इज्जत की रक्षा करने योग्य बनना चाहिए। इस बारे में उन्होंने मुझ से कहा था कि ‘मेरे विषय में बड़ी गलत फझी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातों में मैं विलकुल निर्दोष हूँ। मेरे पास धमकी के कितने एक पत्र आया करते हैं।’ मित्रगण उन्हें अकेले चलने से मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया, करता था ‘ईश्वर की रक्षा के सिवाय और किस रक्षा का मैं भरोसा करूं। उसकी आज्ञा के बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। मैं जानता हूँ कि जब तक वह मुझे इस देह के द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बांका नहीं हो सकता।’

आश्रम में रहते समय उन्होंने आश्रम पाठशाला के लड़के लड़कियों से बातें कीं। उनका कहना था कि हिन्दू धर्म की सब से बड़ी रक्षा आत्मशुद्धि से ही होगी, भीतर से ही होगी। चारित्र्य और शरीर के गठन के लिए, ब्रह्मचर्य पर वे बहुत जोर देते थे।

(यं. हं.)

मोहनदास करमचंद गांधी



६ जनवरी, १९२७

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय ५

लड़कों की शिक्षा

सन् १८९७ की जनवरी में मैं डरवन में उतरा। उस समय मेरे साथ तीन लड़के थे; मेरा भाजा कोई दश वर्ष की उम्र का, ९ वर्ष का मेरा बड़ा और ५ वर्ष का मेरा दूसरा लड़का। इन सब को कहाँ पढाऊँ ?

गोरों की पाठशालाओं में मैं अपने लड़कों को भेज सकता था किन्तु वह तो केवल मिहिरवानी और अपवाद स्वरूप ही। और दूसरे हिन्दुस्तानी लड़के वहाँ नहीं पढ सकते थे। हिन्दुस्तानी लड़कों को पढाने के लिए किस्तानी मिशन स्कूल था। वहाँ मैं उन्हें भेजने को तैयार न था। वहाँ दी जानेवाली शिक्षा मुझे पसन्द न पड़ती थी। गुजराती द्वारा शिक्षा वहाँ मिल ही कहां सकती थी? सिर्फ अंग्रेजी के जरिये या बहुत प्रयास करें तो अशुद्ध हिन्दी या तामिल द्वारा वहाँ शिक्षा मिल सकती थी। यह और दूसरी और त्रुटियाँ बरदाश्त करने को मैं तैयार न था।

लड़कों को मैं आप ही पढाने का कुछ प्रयत्न करता किन्तु वह अत्यन्त अनियमित होता। अपने मन लायक गुजराती शिक्षक मैं ढूँढ न सका।

मैं फेर में पड़ा। जैसी मैं चाहूँ, वैसी ही शिक्षा देनेवाले अंगरेज शिक्षक के लिए मैंने विज्ञापन दिया। इससे मैंने निश्चय किया कि जो शिक्षक मिलें उनके जरिये थोड़ा नियमित शिक्षण दिलाऊँ और बाकी तो आप ही जहाँ तक हो सके जैसे जैसे चलाना होगा। एक अंग्रेज महिला को सात पाउन्ड के मुसादरे पर रख कर यह गाड़ी कुछ दूर और चलायी।

बालकों के साथ मेरी बातचीत केवल गुजराती में ही चलती थी। सबसे थोड़ा बहुत गुजराती का ज्ञान उन्हें मिल जाता था। उन्हें देश भेज देने को मैं तैयार न था। मुझे उस समय भी ऐसा लगता था कि लड़कों वच्चों को मा-बाप से अलग नहीं रखना चाहिए। उन्हें सुव्यवस्थित घर में जो शिक्षा सहज ही मिल जाती है, छात्रालयों में वह नहीं मिल सकती। इस लिए अधिकांश में वे मेरे ही साथ रहे। भाऊजे और बड़े लड़के को देश में कुछ महीनों के लिए मैंने जुदा जुदा छात्रालयों में भेजा या सही किन्तु वहाँ से उन्हें तुरत ही बुला लिया। पीछे से मेरा बड़ा लड़का ठीक उम्र पा जाने पर अपनी इच्छा से अहमदाबाद के हाईस्कूल में पढने के लिए ६० अफ्रीका छोड़ कर आप आया। ऐसा मुझे याद आता है कि अपने भाऊजे को जो कुछ शिक्षा मैं दे सका था, उसे उसी से सन्तोष था। वह भरी जवानी में थोड़े ही दिनों को बीमारी भोग कर स्वर्गलोक को गया। दूसरे तीन लड़के कभी किसी स्कूल में गये ही नहीं। ६० अफ्रीका के अन्त्याग्रह के सम्बन्ध में मेरी स्थापित पाठशाला में उन्होंने थोड़ा नियमित अभ्यास किया था।

मेरे ये प्रयोग अपूर्ण थे। बालकों को मैं आप ही पढाना चाहता था और इतना समय उन्हें दे सका नहीं। इससे और दूसरे अनिवाय संयोगों के कारण मैं जैसा चाहता था उन्हें वैसा अक्षर-ज्ञान नहीं दे सका। मेरे सभी लड़कों की इस विषय में मुझ से थोड़ी बहुत शिकायत भी रही है। क्योंकि जब कभी वे 'बी. ए.', 'एन. ए.' और 'मेट्रिक्युलेट' के भी प्रश्न में आते हैं तब उन्हें आप स्कूल में न पढने की कमी दिखायी पड़ती है।

यह होने पर भी मेरा अपना मत यह है कि उन्होंने जो अनुभव-ज्ञान पाया है, मातापिता का उन्हें जो सहवास मिल सका है, स्वतंत्रता का जो पदार्थपाठ उन्हें सीखने को मिला है, वह सब वे नहीं पा सकते अगर जैसे जैसे पाठशाला में भेजने का ही मेरा आग्रह होता। उनके बारे में मुझे आज जो निश्चिन्तता है, वह न होती और उन्होंने जो सादगी और सेवामाव सीखे हैं, वे सब मुझसे अलग विलायत में या ६० अफ्रीका में रह कर, कृत्रिम शिक्षा पाते तो न पा सकते बल्कि उनका कृत्रिम रहन सहन ही मेरे देश-कार्य में शायद विघ्नकर्ता हो पड़ता।

इससे जितना मैं चाहता था उतना ज्ञान तो उन्हें नहीं दे सका किन्तु तभी जब मैं गुजरता जमाने का विचार करता हूँ तो मुझे ऐसा खयाल नहीं आता है कि मैंने उनके प्रति अपने धर्मपालन में यथाशक्ति कमी की है। मुझे पड़तावा भी नहीं होता। इसके उल्टे जब मैं अपने बड़े लड़के के विषय में दुःखद परिणाम देखता हूँ तो मुझे हमेशा मालूम होता है कि मेरे अधकचरे पूर्वकाल की यह प्रतिध्वनि है। उस समय उसकी उम्र इतनी थी कि उसे मेरी वह हालत याद रहे जिसे मैंने अपना मूर्खकाल यानी वैभव-काल माना है। वह क्योंकर माने कि वह मेरा मूर्ख-काल था? वह क्यों न माने कि वही मेरा ज्ञान-काल था और उसके बाद से जो परिवर्तन हुआ वही अज्ञान और मोहजन्य है? वह यों क्यों न माने कि उस समय मैं संसार के नियमित बंधे रास्ते पर चलता था और इस लिए सुरक्षित था और उसके बाद जो फेरफार हुए वे मेरे सूक्ष्म अभिमान और अज्ञान की निशानी थे? अगर मेरा लड़का बारिस्टरी की डिग्री हासिल किये होता तो उसमें बुराई क्या थी? उसके पंख काट डालने का मुझे क्या अधिकार था? उन्हें डिग्रियाँ हासिल करने देने लायक स्थिति में मैंने क्यों न रक्खा? मेरे कितने मित्रों ने भी मुझसे ये दलीलें की हैं।

मुझे इस दलील में कुछ बल नहीं मालूम हुआ। मैं अनेक विद्यार्थियों के संसर्ग में आया हूँ। दूसरे बालकों के ऊपर मैंने दूसरे प्रयोग भी किये हैं या कराने में मददगार हुआ हूँ। ऐसे लड़के और मेरे लड़के आज एक उम्र के हैं। मैं नहीं मानता कि वे मेरे लड़कों से मनुष्यत्व में कुछ बढ कर हैं या उनसे मेरे लड़कों को कुछ खास बात सीखने की भी है।

खैर, मेरे प्रयोग का परिणाम तो भविष्य में ही मालूम होगा। इस विषय की यहाँ चर्चा करने का अर्थ केवल यह है कि मनुष्यजाति की उन्नति के अभ्यासी, गृह-शिक्षण और शाला-शिक्षण के सेद का और मा-बापों के अपने लड़कों पर किये हुए परिवर्तनों से होनेवाले असर का कुछ माप निकाल सकें।

किन्तु इस प्रकरण का तात्पर्य यह भी है कि सत्य का पुजारी इस परीक्षा में देख सके कि सत्य की आराधना कहाँ तक ले जायी जाती है, और स्वतंत्रता देनी का उपासक यह देख सके कि यह देवी कैसे भोग माँगती है। बालकों को अपने साथ रख कर भी अगर मैंने स्वाभिमान खोकर ऐसा विचार न रक्खा होता कि दूसरे हिन्दुस्तानी लड़के जहाँ पढने न पावें वहाँ मुझे अपने लड़कों को पढाने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए तो मैं अपने बालकों को अक्षरज्ञान दे सकता सही किन्तु उन्होंने स्वतंत्रता और स्वाभिमान का जो पाठ पढा है वे उसे न सीख सकते। और जहाँ स्वतंत्रता और अक्षरज्ञान में विरोध होते वहाँ कौन न कहेगा कि अक्षरज्ञान की बनिरात स्वतंत्रता हनारगुनी अधिक अच्छी बीज है?



शायद वे नौजवान अब मेरे कथन का मूल समझ सकेंगे जिन्हें मैंने १९२० के साल में स्वतंत्रता-घातक स्कूलों और कौलेजों को छोड़ने का निमन्त्रण दिया था और कहा था कि गुलामी में रह कर अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने की बनिस्वत स्वतंत्रता की खातिर निरक्षर रह कर सबक पर पत्थर तोड़ना भी अच्छा है।  
(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, पौष सुदि ३, संवत् १९८३

### महासभा (१)

कानपुर में जब आसाम के प्रतिनिधियों ने १९२६ की महासभा गोहाटी में करने का निमन्त्रण दिया था और महासभा ने उसे स्वीकार कर लिया था तो उस समय मेरे मन में कितनी शंकाएँ उठी थीं। मुझे मालूम हुआ कि महासभा के लिए आसाम बहुत दूर है, वहाँ संगठन भी कुछ नहीं है, और उसके पास महासभा का खर्च बरदाश्त करने लायक धन भी नहीं है। गोहाटी की आबादी सिर्फ १६००० की है। ऐसी छोटी आबादी वाले किसी और शहर ने, महासभा को बुलाने का दुस्साहस आज तक न किया था। गोहाटी ने मगर पहले के सभी शहरों से बाजी मार ली। इतने कम समय में कि मुनकर विश्वास नहीं होता है, प्राकृतिक शोभा के बीच, ब्रह्मपुत्र के किनारे उसने खादी का शहर खड़ा कर दिया। महासभा का खास मण्डप भी शुद्ध आसाम-खादी का बना था। भिन्न भिन्न प्रान्तों के दर्शकों और प्रतिनिधियों की अलग अलग जूरतों के खयाल से, स्वागत-सभ्यता को बाहर से आदमी और सामान मँगाने पड़े थे। नेताओं की शोपडियाँ, प्रतिनिधियों के स्थान से अलग रखी गयी थीं। जब इस प्रकार अलग छोट्टे जाने का मैंने विरोध किया तो मुझे बतलाया गया कि ऐसा जान बूझ कर नहीं किया गया है, बल्कि लाचारी से किया गया है क्योंकि एक ही स्थान में इतनी जगह न थी कि सभी रह सकें। शोपडियों की बनावट भी अत्यन्त सरल और सुन्दर थी, बस आसाम के बाँस, आसाम की मिट्टी, आसाम का खद, आसाम की खादी, और आसाम की मिहन्त के मिलने से ब्रह्मपुत्र के किनारे वे बहुत ही साधारण और सुन्दर कुटियाँ बन खड़ी हुईं। एक सुन्दर कुटी में ले जाते हुए मि० फूडन ने मुझसे कहा, 'अब तो आपका दिल बहुत खुश होगा कि हम लोग आपको जैसा कि आपने बेलगाँव में कहा था कुटी के नाम पर राजमहल न देकर, सचमुच ही एक कुटी दे रहे हैं। मगर इसमें हम लोगों की कुछ तारीफ नहीं है क्योंकि यह गुण तो अमान का है। हम आपको इससे अच्छा, या कुछ भी दूसरा दे ही नहीं सकते थे।' और, मुझे इस अभाव के गुण से बहुत खुशी हुई। पाठक कृपया यह न समझ लें कि इन साधारण सुन्दर कुटियों में बेलगाँव के शाही महल से कुछ कम आराम था। और दूसरे प्रबन्ध भी इतनी सादगी और सुन्दरता से किये गये थे।

स्वागताध्यक्ष का भाषण भी वैसा ही सादा और सुन्दर था, इस लिए स्वागतः ही छोटा था।

सभा की कार्यवाही ठीक नियमित समय पर ही हुई। रीतिरिस्ते में कोई समय नष्ट नहीं किया गया। चन्द मिनटों में मि० फूडन का संक्षिप्त भाषण समाप्त हो जाने पर अब ध्वनि के

बीच सभापति अपना भाषण पढ़ने को व्यास-पीठ की ओर स्वामी अद्भुतानन्द जी हरया की खबर से सारी सभा में हुई उदासी तो बड़ा थी ही, किन्तु इतनी दबायी हुई थी बाहर से मालूम नहीं पड़ने दी जाती थी। प्रतिनिधियों मालूम था कि स्वामी जी ने वीर गति पायी है, इस लिए समय रोने का न था, काम करने का था और इस लिए महासभा का कार्य वैसे ही चलता रहा मानों कुछ हुआ ही न हो। रस्म की सभी बातें, सभापति का नियमित जुलूस तक, बिना काट डाले गयी थीं। सभापति का अभिभाषण, उसमें विप्रश्नों पर विचार किया गया है, उसके लिहाज से काफी है। भाषण के आधे हिस्से को, जिसमें काउन्सिलों का है और स्वराज दल की नीति का समर्थन है, मैं छोड़ देता हूँ।

रचनात्मक कार्य को उसका योग्य पद दिया गया उसमें खदर को सब से पहला स्थान मिला है। सभापति विश्वास है कि "अ० भा० चर्खा-संघ मजदूर आन्दोलन के में सारे देश में फैल जायगा, और यह बिल्कुल स्वराज्य न पर भी उसकी ओर कुछ दूर तक जायगा।" अगर महासभा की हर एक स्त्री और पुरुष अपना कर्तव्य पालन करें तो सच्चा साबित हो सकता है। श्रीयुत ऐंगमर कहते हैं कि, "जाति मनो-वृत्ति पर चर्खे का उसकी अपनी और खींच लेने की शक्ति बहुत असर पड़ा है और हमारे पुरुषत्व और स्त्रीत्व को इसने दृढ़ उच्चता दी है।" अब महासभा की सदस्यता के लिए खदर का आया तो बहुत जबरदस्त विरोध रहने पर भी उसे स्वीकार में इस बात का काफी सबूत मिल गया था। तब इसमें कुछ नहीं है कि सभापति के मत में "खदर हमारे स्वातंत्र्य और सद्गुण, दोनों का ही चिह्न स्वरूप है।"

दूसरा स्थान शराबबंदी को दिया गया है और सभापति ही इस आरोप को स्वीकार कर लेते हैं कि पिछले दिनों लोगों ने शराब की बिल्कुल बंदी पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। उनका कहना है, "अगर हमें राष्ट्र को इस संगठित रूप से विमुक्त बना सकें तो जरूर ही इस आन्दोलन का नैतिक बहुत बड़ जायगा।" उनका खयाल है कि, "पिछले छह सालों में एक भी ऐसा मंत्री नहीं मिला है जो शराब की बिल्कुल बंदी के लिए प्रस्ताव लाने का साहस करे और उसके नकार अस्वीकृत हो जाने पर इस्तीफा दे देवे।" कहीं कुछ काला जरूर है अगर हिन्दुस्तान के ऐसे शराब विरोधी ऐसे मंत्री न मिल सकें जो देश की शराबबंदी का उसका अधिकार दिलावें। यह तर्क भी कि शराब पर रोक लगाने शराबी के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर धक्का लगता है, उतना ही जितना यह कहना कि चोरी के विरुद्ध कानूनों से चोरी का अधिकार खरब पड़ता है। चोर तो धन ही चुराता है मगर अपना और अपने पड़ोसी की इज्जत बँचता है। मुझे यह आश्चर्य होता है कि सभापति ने शराबबंदी से, आमदनी में कमी को पूरा करने का सहज उपाय नहीं बतलाया है। हमें बहुत बड़ा सैनिक खर्च है जो बिल्कुल बेकार है और आधारे देश का अविश्वास है। शराब से होनेवाली आमदनी २५ करोड़ है और सैनिक व्यय में २५ करोड़ से अधिक की जा सकती है।

इसके बाद अष्टुदयता आती है। उनकी समझ में शराब को दूर रखे बिना स्वराज्य के लिए बैठे रहने की जरूरत नहीं है। अपने पक्ष में वे अमेरिका का बहुत ही सुन्दर उदाहरण देते हैं जिधने अपने यहाँ गुलामी के फेंके हुए रहने पर भी



६ जनवरी, १९२७

की ओर  
सभा में  
थी हुई थी  
प्रतिनिधियों  
इस लिए  
इस लिए महा  
न हो।  
स तक, वि  
उसमें कि  
काफी सं  
लों का ल  
छोड़ देता  
दिया गया  
सभापति  
आन्दोलन के  
स्वराज्य न  
धगर महा  
लन करें तो  
हैं कि, "ज  
च लेने की शक्ति  
को इसने इस  
ए खदर का ड  
उसे स्वीकार  
तब इसमें  
हमारे स्वा  
।"

और सभापति  
पिछले दिनों  
मान नहीं दि  
उत रूप से  
का नैतिक  
पिछले छह  
की बिल्कुल  
उसके नाप  
कहीं कुछ  
ब विरोधी  
का उग्रका  
पर रोक लग  
उतना ही स  
से चोरी  
राता है मगर  
मुझे यह दे  
मदनी में हो  
लाया है। ह  
गर है और  
होनेवाली  
से अधिक की

समझ में अ  
जहरत नहीं  
उद्वेगन ऐश  
हने पर भी ल

अज्ञानदः पर गांधीजी का महासभा में दिया गया भाषण  
 त्यागमान से इस बार नहीं दिया जा सका। अगले अंक में व  
 शयः अक्षरशः दिया जायगा। [उपस० 'हिन्दी नवजीवन']

वज्राघात

सांझ को चार बजे वहाँ से निकले । उसी गाड़ी में महासचिव के अध्यक्ष, श्रीमती नायडू, गांधी जी, मालवीय जी, अलीभाई, विठ्ठलभाई साहेब और दूसरे लोग थे । हर एक स्टेशन पर जो सैकड़ों या बड़े स्टेशनों पर हजारों आदमी जमा होते थे, उनसे खादी के लिए भिक्षा माँगने का नियम गांधी जी ने रक्खा है, इस लिए हर स्टेशन पर खादी कोष में कुछ न कुछ बढ़ती होती ही जाती थी । सबेरे शोरभोग स्टेशन आया । सामान्यतः गाड़ी यहाँ साढ़े आठ बजे पहुँचती है, आज साढ़े दश बजे पहुँची लोगों की भीड़ तो थी ही । गांधी जी खादी की भिक्षा माँगने को जैसे ही खड़े हुए कि उनके हाथ में एक तार रख दिया गया । उस तार के समाचार से वज्रपात जैसा हो पड़ा । साफ स्पष्ट भाषा में लाला जी ने वह तार दिया था और कलकत्ते से पिछली रात को वह छोड़ा गया था । “स्वामी श्रद्धानन्द जी का गोली मार कर खून किया गया है । आप लिखिए कि मुझे दिल्ली या गोहाटी जाना चाहिए ।” शब्द तो स्पष्ट थे किन्तु बहुतांश के मन में हुआ कि तार में कहीं कुछ भूल तो नहीं है, किसी शब्द में बदले दूसरा शब्द तो नहीं लिखा गया है । सब ने अपनी अटकल लगायी । गांधी जी चुपचाप शोकाच्छन्न मुद्रा से सब सुनते थे । उन्होंने तुरत ही मालवीय जी, श्रीमती नायडू, अलीभाई और श्री श्रीनिवास ऐयंगर को तार की खबर मेजी । घड़ी भर में ही श्री ऐयंगर, श्रीमती नायडू, और मौलाना मुहम्मद अली आ पहुँचे । पंडित जी ने संदेशा मेजा कि, ‘मेरा दिल भर गया है । दूसरे स्टेशन पर आऊंगा ।’ गांधी जी को तार में कोई शक ही नहीं था । कोई छह महीने पहले जब स्वामी जी आश्रम में आये थे तभी वे गांधी जी से कहते थे कि ‘मेरे पास कितने मुसलमानों के पत्र आते हैं कि तुम्हें मार डालेंगे ।’ यह कह कर हँसते थे । अगर यह धमकी सचची भी साबित हो गयी तो उसमें नवीनता क्या थी ? गांधी जी ने तुरत ही पुण्यश्लोक स्वामी जी के पुत्र इन्द्र को तार किया, ‘स्तब्ध कर देनेवाला तार मिला । शान्ति रखना । पिता जी को तो वीरगति मिल गई है ।’ दूसरा तार लाला जी को किया । उसमें उन्हें बतलाया ‘आप का स्थान तो इस समय दिल्ली में है ।’ मौलाना मुहम्मद अली ने भी श्री इन्द्र को, डाक्टर अनसारी को, और आश्रम के पत्र के आदमियों को तार दिया । खबर तो सारी गाड़ी में फैल गयी थी । सभी अपना २ तर्क वितर्क करते थे और अपने मुआफिक अटकल लगाते थे । दूसरे तीसरे स्टेशनों पर और अधिक समाचार मिले । इस खबर को गोहाटी से अखबार का आदमी लाया था । जब अमीन गांव पहुँचे तब वहाँ तो ऐसोशिरेटेड प्रेस का गांधी जी को सविस्तार तार पढ़वाने को खड़ा ही था । अध्यक्ष साहेब ने जुलूस निकालना मना करने का तार दे दिया था, इसलिए सभी शान्ति से ब्रह्मपुत्र के तट पर आकर अपने-अपने मुकाम पर पहुँचे । कार्य-समिति की बैठक तुरत ही हुई । उसके बाद महासमिति की बैठक हुई ।

मोहनदास करमचन्द गांधी

सादी-शिक्षा मंडल

म० मा० चर्खा सच की कार्य समिति ने शिक्षा मंडल में  
 प्रकलनचक्र घोष का नाम इस शर्त पर रखा था कि वे  
 जेजर कर लेंगे किन्तु पत्र छपने के समय तक उनकी मंजूरी न  
 आ सकी थी, क्योंकि वे अपने प्रधान कार्यालय से कहीं बाहर  
 गये थे। इस लिए अखीरी घडी में उनका नाम लौटा लिया गया।  
 प्रकलन घोष ने अब वह पद स्वीकार कर लिया है। पाठकों को  
 यह जान कर खुशी होगी कि मंडल को एक ऐसे पुरुष की सहायता  
 प्राप्त होगी जिसने खादी और चर्खा शास्त्र का अध्ययन किया है,  
 और उसे उनका व्यावहारिक अनुभव है।

— स्वाधीन —

मो० क० गांधी

श्रीः अक्षरया दिया जायगा। [उपस० 'हिन्दी नवजीवन']



### पुण्य शोक का स्मरण

सब के सामने और दूसरी बात थी ही क्या ? महासभा की व्यवस्था, खाने पीने की व्यवस्था, वस्त्रोपकरण का सौन्दर्य, सभी बातें सब कोई भूल गये थे और सब के मुँह पर एक ही बात की चर्चा थी ! इस भयावक शोक-प्रसंग के ऊपर हृदय-द्रावक उद्गार निकाल कर श्रीमती नायडू ने महा-समिति की बैठक शुरू की। उन्होंने कहा कि स्वामी जी हिन्दू धर्म और देश के एकनिष्ठ भक्त थे। उस गरीब निवाज और निर्धन योद्धा ने १९२० में गुरखा लिपहियों की बंदूकों के आगे छाती खुली कर दी थी। दिल्ली की जुमामस्जिद में बोलने का असाधारण गान उन्हें मुसलमानों के ही हाथों मिला था। इन बातों की याद दिलायी और उनके अपूर्व यशस्वी अन्त की बातें की। यह काला काम किसी कौम का नहीं है किन्तु एक पागल, पापी व्यक्ति का है। इसके लिए कौम पर चिठ्ठा नहीं चाहिए। मुसलमान जाति के नेताओं का तो कर्तव्य है कि वे इसकी, निन्दा खुले शब्दों में करें; इत्यादि उद्गार निकाल कर उन्होंने गांधी जी से दो चार शब्द बोलने की विनती की।

### धन्य मृत्यु

गांधीजी का भाषण तो अक्षरशः देता हूँ। वे हिन्दी में बोले :

“मेरे पास अखबारवाला आया था और कुछ जाहिर करने का आग्रह उसने दो बार किया। मैंने उसे कह दिया कि मुझ से कुछ कहना पार लगे मेरी ऐसी हालत नहीं है। श्रीमती नायडू ने भी मुझे यहाँ कहा कि कुछ सन्देशा प्रकट करो। उन से भी मैंने इनकार कर दिया। अब पीछे से मुझे यही आज्ञा होती है इसलिए अपना उद्गार निकालने की कोशिश करता हूँ किन्तु मेरी ऐसी दशा नहीं है कि मैं कुछ कह सकूँ। हाँ; तत्काल मेरे मन पर कैसा असर हुआ यह मैं कह सकता हूँ सही। लालाजी का तार मेरे पास पहुँचते ही तुरत मैंने मालवीयजी वगैरह को खबर भेजी और लालाजी और स्वामीजी के सुपुत्र इन्द्र को तार भेजा। इस तार में दुःख या शोक प्रकट न करके मैंने तो जनाया कि यह सामान्य मृत्यु नहीं है। इस मृत्यु पर मैं रो नहीं सकता। अगवें कि यह मृत्यु अमूल्य है तौभी मेरा दिल शोक करने को नहीं कहता और कहता है कि यह मृत्यु हम सबको मिले तो क्या ही अच्छा हो ?

“स्वामी भद्रानन्द की दृष्टि से इस प्रसंग को धर्म-प्रसंग कहेंगे। वे बीमार थे। मुझे तो कुछ खबर न थी किन्तु एक मित्र ने खबर दी कि स्वामी जी भाग्य से ही बच जायँ तो बच जायँ। पीछे से मेरे तार के उत्तर में उनके लड़के का तार मिला कि वे धीरे धीरे आराम हो रहे हैं। यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर अनसारी बहुत अच्छी तरह सेवा शुश्रूषा कर रहे हैं। इस प्रकार की गंभीर बीमारी में वे बिछौने पर पड़े थे और उस बिछौने पर ही उनके प्राण लिये गये। मरना तो सबको है, किन्तु यों मरना किस काम का ? सारे हिन्दुस्तान में और पृथ्वी पर जहाँ २ हिन्दुस्तानी लोग होंगे, वहाँ वहाँ स्वामी जी के स्वाभाविक बीमारी से ही मरने से जो असर होता उस की अपेक्षा इस अपूर्व मरण से अजब ही असर होगा। मैंने भाई इन्द्र को हमदर्दी का एक भी तार या पत्र नहीं लिखा है। उन्हें और कुछ दूसरा कह ही नहीं सकता। इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारे पिताको जो मृत्यु मिली है वह धन्य मृत्यु है।

“किन्तु यह सब बात तो मैंने स्वामी जी की दृष्टि से, मेरी अपनी दृष्टि से की है। मैं अनेक बार कह चुका हूँ कि मेरे केले हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक हैं। मैं जन्म से

हिन्दू हूँ और हिन्दू धर्म में मुझे शान्ति मिलती है। जब भी अशान्ति हुई, हिन्दू धर्म में से ही मुझे शान्ति मिली है। दूसरे धर्मों का भी निरीक्षण किया है और इसमें चाहे जितनी और त्रुटियाँ हों तौभी मेरे लिए यही धर्म उत्तम है। ऐसा ही लगता है और इसीसे मैं अपने को सनातनी हिन्दू हूँ। कितने सनातनियों को मेरे इस दावे से दुःख होता है। ‘विलायत से आकर यह सुबरा हुआ आदमी हिन्दू कैसा ?’ मेरा हिन्दू होने का दावा इससे कुछ कम नहीं होता और धर्म मुझे कहता है कि मैं सब के साथ मित्रता से रहूँ। मुझे मुसलमानों की दृष्टि भी देखनी है।

“मुसलमान की दृष्टि से जब इस बात का विचार तो मुझे दूसरी ही बात मालूम पड़ती है। यह काण्ड मुसलमानों के हाथ बन पड़ा। धर्म चर्चा के बहाने घर में प्रवेश उसने यह कृत्य किया। नौकर ने तो कहा, ‘स्वामी जी हैं। आज नहीं मिल सकते।’ दरवाजे पर हुजत हुई। जी ने सुन कर कहा, ‘अच्छा है, आ जाते दो।’ और स्वामी के उससे बात करने को न रहने पर भी उन्होंने बातों की करने की तो उनमें ताकत ही नहीं थी — स्वामी जी को सभक्षा कर विदा कर देने को था, इस लिए तुला कर कहा, ‘अच्छे हो जाने पर तुम्हें जितनी बहत्त करनी हो कर लेना आज तो बिछौने पर पड़ा हूँ।’ इस पर उसने पानी धर्मसिंह को स्वामी जी ने आज्ञा दी, ‘इसको पानी पिना आज्ञाकारी नौकर पानी लेने जाता है तब तक तो यहाँ रिवाजवर निकाल ली। एक से सन्तोष न हुआ तो दूसरी मारी। स्वामी जी ने उसी समय प्राण खोये। धर्मसिंह सुन कर अपने मालिक को बचाने दौड़ा किन्तु बचावे कौन को स्वामी जी के शरीर की रक्षा नहीं करनी थी। धर्मसिंह ऊपर भी चार हुआ। उसे चोट लगी। वह अस्पताल मारनेवाला अबदुल रशीद हिरासत में है। ऐसे संयोगों किये गये इस खून से मुसलमानों के लिए हिन्दुओं को भाव आवेगा, इसका मुझे बहुत दुःख है और इसमें नहीं है कि हिन्दू जनता को मुसलमानों के खयाल आवेगा। क्योंकि आज दोनों जातियों में नही है, विश्वास नहीं है। दोनों जातियाँ जानती हैं कि दिन तो मिल कर भाइयों के जैसा रहना ही है किन्तु कमजोर होने के कारण एक दूसरे से लड़ कर, मजबूत तब एकज होने की आशा रखती हैं। इससे आज जो गंदगी फैल रही है, जो जहर पैदा हो रहा है, उसे यह कहना कठिन है कि इस कृत्य का क्या परिणाम इसीसे मैं खामोश रहना चाहता था। मेरे दिल में उछल रहा है, उसे मैं शान्त नहीं कर सकता, दशा नहीं और तुम्हारे आगे व्यक्त नहीं कर सकता।

“हमारे लिए यह एक अच्छा शिक्षा-पठ कि स्वामी जी का खून अबदुल रशीद के हाथों हो। एक दूसरे को सभक्ष लेवें, अगर हम यह समझ लें कि कर साथ नहीं रह सकते तो क्या ही अच्छा हो आज का वातावरण देख कर मुझे यह आशा नहीं एक ही खून से बच जायँगे।

“भद्रानन्द जी और मेरे बीच कैसा संबंध था, मैं यहाँ नहीं कहूँगा। मेरे सामने वे अपने दिल की करते थे। कोई छह महीने हुए जब वे आश्रम में आते कहते थे, ‘मेरे पास धर्मको के कितने पत्र आते हैं।’



काला कर डाला है कि उससे बढ कर काले काम को सोचना भी मुश्किल है। मैंने डाक्टर बनसारी और अपने आदमियों को और व्योरो के लिए तार किया है। हमें इसकी खबर नहीं कि उसने इध खून का मतलब क्या बतलाया है ! मगर चाहे वह कुछ भी हो, इस खून का बचाव कोई कर नहीं सकता।

“ इस सलान्त को और अधिक जबरदस्त लड़ाई देने का कार्य-क्रम ठीक काने की उमेद से इस कांग्रेस में मैं आया था । हम एक दूसरे से लड़ने के बदले कुछ अपने ऐब धोवें और कार्य-क्रम ठीक करें, ऐसी मेरी इच्छा थी । यहाँ तो काले काम की शायी मैं हम इकट्ठे हुए हैं । इससे अगर कुछ सीखे बिना हम यहाँ से चले जावें तो मुझे तो सब से अधिक तकलीफ होगी, यह मैं कह देता हूँ । खूनी तो फांसी चढ़ेगा उसे उसके गुनाह की सजा मिलेगी किन्तु उसके पाप का प्रायश्चित्त अगर मेरे जैसे एक आदमी से हो सके तो मैं कहता हूँ कि मेरा प्राण कोई ले तो मुझे चैन हो, सुख हो और शहादत मिले . . . ”

( नवजीवन ) महादेव हरिभाई देशाई

गुजरात खादी मंडल की रिपोर्ट से मालूम होता है कि इस वर्ष उसने १,०८,४५२ १/२ वर्ग गज खादी तैयार की। यह वर्ष १७ महीने का था क्योंकि पिछले साल के ४ महीने इसमें शामिल हैं और बाद से इस वर्ष का १ अधिक मास भी मिलाया गया है। उत्पत्ति के अंक ३ महीनों में दिखालाये गये हैं।

(१) अपने कपड़े के लिए कातनेवालों के सूत का ५२,३२१ गज (२) मजदूरी देकर कतनाये गये सूत का ४,३२१ गज और (३) मेम्बरों वगैरह के चन्दे के सूत का ११,५००<sup>३</sup>/<sub>४</sub> गज। यह सब काम मंडल के अधीनस्थ २२ और दूसरे २ केन्द्रों के हैं। इन केन्द्रों ने अपनी खादी आर बेंच ली और इनके अलावा प्रान्त में ५ खादी-भण्डार खादी भी थे जिनमें गुजरात की तथा और और प्रान्तों से लायी गयी भी बेंची जाती है। सालाना बिक्री हुई १,१२,९१६-१४-६ रु. की खादी की जिसमें २६,१५७-३-० रु. की गुजरात की खादी थी और बाकी दूसरे प्रान्तों की।

खादी कार्य के लिए भिन्न २ लोगों में इस प्रकार रुपये बाँटे गये:

	रु.	भा.	पा.
३६ कार्यकर्त्ता	९,९०२	१०	६
१७ परिवार (धुनियों के)	४,२९५	०	३
९९८ कृतवैद्ये	५,३१०	१५	६
८५ परिवार (बुनवैयों के)	१९,२०९	१३	३
	<hr/>	<hr/>	<hr/>
	३९,०१८	८	३

इसमें ९,९०२-१०-६ अपने कपडे के लिए कातनेवालों को सहायता देने में बाँटे गये। २२ केन्द्रीय द्वारा १०३ गांवों की सेवा हुई। १,६८६ आदमियों ने अपने सूत के कपडे बुनवाये।

अपने लिए कातनेवालों को और सूत खरीद कर बुनी खादी पर सहायता देने के अलावा, उन संस्थाओं या व्यक्तियों को सैकड़ों ६ सूद दिया गया, जिन्होंने अपनी पूँजी लगा कर खादी तैयार की। शर्त यही थी कि जितने रुपये वे पूँजी में लगावें उसकी चांगुनी खादी तैयार करें। ६ पाई फी गज की सहायता अब घटा कर ५<sup>३</sup> पाई कर दी गयी है।

वेढली और रमेवरा दो केन्द्र में साथ साथ समाज—सुधार का भी काम चला जाता है। दोनों जगहों में शाबखोरी बहुत कम हो गयी है और बरिया लोग अपने रस्मों पर शाब्द ही



भारी खर्चों के लिए रुपया कर्ज लेते हैं। कतवैये अपनी कपास आप ओट और धुन लेते हैं और कुछ नीची जातिवालों ने बुनना सीख लिया है और वे ही इन क्षेत्रों सब का सब कपड़ा बुन लेते हैं।

नये बुननेवाले तैयार करने के अलावा, पुराने जुलाहों को जो हाथकते सूत का कपड़ा नहीं बुन सकते थे बुनना सिखलाया गया है। खादी मंडल ने अपने खर्च से ऐसे जुलाहों के १५ परिवारों को सिखलाया है। इन्हें उन जगहों में भेजा गया है जहां जुलाहे नहीं थे या हाथकते सूत को न बुन सकते थे या चौड़ा कपड़ा नहीं बुन सकते थे।

कपास बुनने से ले कर खादी बुनने और रँगने तक सभी प्रक्रियाओं की तालीम का प्रबन्ध ४ केन्द्रों में किया गया था : (१) सरयाप्रहाश्रम, साबरमती, (२) उद्योगशाला मढवा, (३) खादी आश्रम, वेढडी और (४) खादी आश्रम, रमेसरा। इन केन्द्रों में ८ आदमी सिखलाये गये।

धुनाई में भी उन्नति करने की कोशिश की गयी, बारदोली में मंडल के खर्च पर धुनियों के ९ परिवारों को रख कर सब तरह की धुनकियों से अच्छी धुनाई करने की खास तालीम से धुनाई में उन्नति हुई जिससे सूत का अंक भी सहज ही ६ से बढ़ कर १०, १२ तक पहुँच गया और इस से खादी भी हल्की और मस्ती हुई और जुलाहों की आमदनी भी बढ़ी। नीचे के आंकड़ों से पता चलेगा कि फी गज पहले जैसी ही मजदूरी देने पर भी जुलाहों की औसत आमदनी इस प्रकार बढ़ी है :

केन्द्र	आषाढ १९८१ में मजदूरी फी जुलाहा	अपाढ १९८२ में मजदूरी फी जुलाहा
मजूर उद्योगशाला	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.
अहमदाबाद	२० ९ ९	२५ ४ १०
रहाड वणाटशाला	१८ ६ ९	२३ ८ १०
कराडी वणाटशाला	१६ ८ ३	२६ ९ ०
वराड खादी आश्रम	२१ १३ ०	४४ ० ०
भद्रन वणाटशाला	१५ १२ ०	२५ १४ ६

इन आँकों से पता चलता है कि सूत में उन्नति होने के कारण पिछले साल की बनिस्बत जुलाहे इस साल अधिक कपड़ा बुन सके हैं। मगर अभी तरकी की बहुत गुंजायश है क्योंकि अभी मिलवालों की अपेक्षा धुनाई के लिए फी गज दुपुनी मजदूरी देनी पड़ती है।

मजदूरी दे कर बुने गये सूत की फी सही मजदूरी और समानता के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं।

केन्द्र	मजदूरी	समानता	अंक
कठलाल	४१।	८५	११
धर्मरज	३४।।।	८१।	१०।।
भद्रन	३२	७९	८।
आनन्द	३३।	७१।।	८।
नडियाद	३२।	७५	८
वराड	४२।।	८०	११।।
सरमोन	४१।।	७७।।	१०
मजूर उद्योगशाला			
अहमदाबाद	४०।	७२।।	१०
मणिपुर	४२।	७२	१०

पहले की अपेक्षा अब बहुत अच्छा सूत होता है मगर अभी बहुत कुछ करना बाकी है। प्रयोग से मालूम होता है कि कपास बुनने, धुनने और भिगोने में अधिक सावधानी रखने से अच्छा

सूत आता है। कार्यकर्ता लोग इसके प्रयोग जारी रखें तो अपने केन्द्र के सूत में बहुत उन्नति होती देखेंगे।

बारदोली में एक कारखाना खोला गया। बढईगरी की तालीम देने के लिए शुरू में एक बढई रक्खा गया था। अब तीन कार्यकर्ता सब सीख गये हैं और वे चर्खे और धर्चों के संबंध की सभी चीजें तैयार कर लेते हैं। इस दूकान से निम्नलिखित चीजों की इस प्रकार बिकी हुई।

चर्खे ३१८	तकवे के लिए
तकवे ७७	पीतल की घरारी ७४
परते २६१	पानी छीटनेवाला ७
परते	तकवा दानी ८६
(नये किस्म के) ३१९	,, ,, (पुराने किस्मकी) ८७४
तकलियाँ २६६३	तकवे के लिए चक्के ५०५
तकली दान ३३	धुनकियाँ ४०
हाथ छोटे १६०	छोटी ,, १४९
गठ ९६५	धुनने की चटाइयाँ ७
काकड १८०	पूनी बनाने की पटरियाँ २०
कपास १,७६९	पाउन्ड (३९ तोला = १ पाउन्ड)
पूनियाँ ३,८४४	,,
सूत १,१३१	,,

हर केन्द्र का हर महीने निरीक्षण होता है। सन्तोष जन काम दिखलाने पर सहायता दी जाती है। हर महीने के निरीक्षण का फल हर महीने प्रकाशित कर दिया जाता है और दोषों की कमियों को जाहिर कर दिया जाता है।

(यं० इ०)

पारसियों में हाथबुनाई

बम्बई प्रान्त के गैजेटियर, सातवां हिस्सा, पेज ११८८३ के संस्करण से नीचे का उतारा एक मित्र मेजे "गामदेवी के पारसी जुलाहे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् १७८७-८८ में डाक्टर हील नाम के एक यूरोपीयन उस शहर में खास इस लिए गये कि पारसियों से उनकी कुछ सीखें। कोई ५० साल के ऊपर से यह उद्योग मर गया पारसी स्त्री पुरुषों के पहनने के लिए अभी तक पूरक श्रेणी पारसी स्त्रियाँ कस्तीयर-कस्ती नाम के पवित्र धागे बनाती हैं। बम्बई में ये धागे खूब बिकते हैं और मिहनात के मुताबिक इनके ३) रु० या उससे अधिक दाम मिलते हैं। कुछ पारसी स्त्रियाँ चारपायों के लिए डोरियाँ और स्थानीय व्यापारियों के हुकम के अनुसार धोतियाँ और खद्दर भी बुनती हैं। किन्तु यों तो पारसियों अपना बुनने का काम जिसमें वे बहुत होशियार थे छोड़ दिया है।"

अगर वे पारसी लोग, जो शराब की तिजारत में लगे हैं, उसे बुनाई के ऊँचे उठानेवाले और लाभदायक बंदूक लेते तो हिन्दुस्तान को और उन पारसियों को लाभ पहुँचता! हाथकती कस्ती के जिक्र से मुझे एक बहिन की याद हो आती है। वह मुझे नवसारी में मिली उसने मुझे कहा था कि नवसारी में कुछ लोग सुधारक बन गये थे और हाथकती कस्ती के बदले वे मिल के सूत का प्रचार कराना चाहते थे। वहाँ की उन पारसी जिनकी गुजर कस्ती कातने से होती थी और जिनकी पवित्र लियों के संसर्ग से कस्ती भी पवित्र होती है, उन सुधारकों वहाँ से भगा दिया।

(यं० इ०)



राष्ट्रीय पाठशालाएँ

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

वर्ष ६ ]

[ अंक २४ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, माघ वदि ९, संवत् १९८३

गुरुवार, २७ जनवरी, १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## साप्ताहिक पत्र

### विहार

मैं यहाँ काम करने आया हूँ यानी चर्खा और खादी के लिए पसा इकट्ठा करने और खादी बेचने आया हूँ। कौन जानता है कि विहार में मेरा यही अखीरी दौरा न हो! इस लिए मैंने यहाँ के मुझे काम कर देने दो। यही १ मिनट का समय था। और यह दौरा सचमुच में काम का ही दौरा हुआ है। यहाँ के लोगों ने गंगा जो के दक्षिण के स्थानों से शुरू किया और मुकाम या छोटानागपुर में डाल्टन गंज। उसके बाद कोयला खानों के रास्ते हम गया आये और वहाँ से पटने में गंगा के किनारे छपरे जिले की सुन्दर हरी भरी भूमि से होकर जीरादेई पहुँचे। वहाँ एक दिन शान्ति से विताया। यह स्थान हम के लिए तीर्थ-स्थान सा है क्योंकि इसी गांव में राजेन्द्र का जन्म हुआ था। उसके बाद से तो बवंडर के समान हमें यहाँ हर आधे मील पर आमचूखों के सुन्दर कुंज हैं। यहाँ हर भरे खेतों में अरहर, जौ, मटर, चना की हरियाली फैली है। वहाँ से उत्तर पूर्व की ओर दरभंगे में बड़े। दो दिन बड़ी ही मिहनत के बीते हैं। शोरो गुल और चना तो कहना ही क्या? ऊपर से मित्रों की यह फिक्र कि हमें यहाँ के समय में अधिक से अधिक जगहों में गांधीजी को पाठग पर चलने में सड़क भी वैसी ही बुरी! एक आदमी का भाषण सबको सुनायी देता था। इसलिए गांधी जी को पहले नामनेवालों से मिलना पड़ा तब छोटे-छोटे लोगों और फिर अगल बगल वालों से मिलना पड़ा और फिर चंदे की माँग पूरी हुई। अब तो हर सभा में हमें मिली कि अगले अधिकारियों लोगों ने पैसे या धन जुनाड़े की लोगों से वसूल कर के दी जायगी।

थेली की एक तिहाई तक। एकमा और महाराज गंज की सभाएँ भी करीब २ वैसी ही बड़ी थीं मगर वहाँ कुछ प्रबन्ध न था इस लिए बहुत मुश्किल से उन्हें सँभाला जा सका। मगर मैरवा की सभा शान्ति और सुप्रबन्ध का नमूना थी और साथ ही साथ अब तक की हमारी सब से बड़ी सभा थी। तीस हजार से अधिक आदमी, मानों रणसज्जा से डट कर बैठे हुए थे। वह बड़ा मजमा, और कुछ हाथी भी जिन पर कुछ लोग चढ़ कर आये थे, एक बड़ी सेना सा मादम पड़ता था। गांधी जी के आने पर जरा खलबलाहट भी न हुई। तब भी न हुई जब लोगों को कहा गया कि वहाँ पर सभा के एक कोने में बियों की पर्दा सभा में गांधी जी पहले बोल लेंगे तब पुरुषों की सभा में आवेंगे। लम्बे भाषण का यहाँ जिक्र ही क्या? वे भाषण चाहते भी न थे! उन्हें बखूबी मादम था कि गांधी जी क्या कहेंगे और उनसे क्या माँगा जायगा। मगर गांधी जी ने सभा में कई जगहों पर घूम घूम कर कुछ शब्द कहे और उनकी दान शीलता तो सचमुच हमारी याददाश्त में अनोखी बात थी। सिकों की न सिर्फ वर्षा ही होने लगी बल्कि मूसलधार वर्षा होने लगी। मर्दों और औरतों ने भी (जिन्होंने अब अपना पर्दा तोड़ दिया था) बच्चे बूढ़ों और जवानों ने पैसा देने में बाजी लगा ली। इसका सुबूत कि यह आन्दोलन गरम का है, इससे बड़ा और क्या चाहिए? गांधी जी के पास की सीढ़ की उपमा, बंक का दिवाला निकलने से पावनेदारों के घावे से दी जा सकती है मगर यहाँ तो खदर बंक का दिवाला न निकालना था बल्कि उसे धनी बनाना था। जमा सिकों का वजन इतना था कि तीन आदमियों को उसे उठाना पड़ा। अनुमान किया जाता है कि यह १०००) रु. से कम न होगा। मैरवा में अ० भा० चर्खा-संघ का एक खादी कार्यालय है, और स्वयंसेवकों का एक दल। स्वयंसेवकों के अपना काम ठीक ठीक करने का यह काफी सुबूत मिल गया। गोपालगंज की सभा भी करीब २ इतनी ही बड़ी थी, मगर वहाँ पर चन्दा बहुत कम इकट्ठा हुआ क्योंकि सभा खूब कसी हुई थी और चन्दा लेने वालों को घूम फिर कर वसूल करने की जगह यी ही नहीं।

दूसरी जगहों का भी चन्दा कुछ बुरा न था। बियों की सभा की भी चन्दा बहुत ही कम (१००) रु. तक पहुँच जाता था और



अगर गहनों की गिनती करें तो २००) भी मजे में कह सकते हैं। मगर एक बात स्पष्ट है। चाहे इस आन्दोलन को जितने भले बुरे दिन देखने पड़े हों मगर गांवों में अभी बहुत जान है। शहरों से तो वहां पर शुद्ध खादी अधिक देखने में आती है और कितने ऐसे आदिमियों का पता मिलता है जो अपने कपड़ों को आप कात कर बुन लेते हैं और शहरातियों का चन्दा हमेशे बहुत अघन्तोषजनक रहा है।

चन्दा देने में झरिया, पिछली बार सब से आगे रहा। इस बार शायद सब से पीछे रहेगा। बेशक, इसका मुख्य कारण है हिन्दुस्तानी खानों का बेकार पड़े रहना और यहाँ के कोयले पर इतना रेलवे भाड़ा रखना कि द० अफ्रीका का कोयला आकर यहाँ के कोयले से बाजी मार ले जावे। गया में और अधिक यहाँ के कोयले से बाजी मार ले जावे। गया में और अधिक रकम जमा हो सकती थी अगर सुप्रबन्ध होता। मगर यहाँ भी समा में का चन्दा अच्छा था। एक साहब ने अपनी फोर्ड मोटर गाड़ी दे दी जो सब से अधिक बोली बोलनेवाले को ७५०) में दी गयी। छपरा और सिवान की रकम सब से कम हुई मगर यहाँ भी, गरीबों का दान काफी था। इस दौरे में सब से बड़ी रकम इकी हुई ता. १८ को दलसिंगराय, समस्तीपुर और दरभंगा से। सब मिला कर ७५००) रु. मिले।

खियों की समा हर जगह अच्छी हुई। मगर अगर कम शोरोपुल और अधिक सुप्रबन्ध रहता तो और भी अच्छा होता। इसकी अच्छी शुरुआत हुई सोनपुर में। वहाँ महिलाओं की एक छोटी सी शान्त समा हुई जिसमें गांधीजी ने उन्हें भारी गहनों का बोझ उतार देने को कहा। उन्होंने कहा, 'सीता की कल्पना करो। तुम क्या समझती हो कि वे राम के साथ १४ वर्ष वनवास में तुम्हारे ऐसे भारी गहने पहिने हुए गयीं? उनसे क्या तुम्हारी कुछ शोभा बढ़ती है? सीता ने तो अपने हृदय की सुन्दरता की फिक रक्खी और अपना शरीर शुद्ध खदर से ढँका। तुम्हारे भारी भदे गहने न सिर्फ बदसूरत ही हैं बल्कि हानिकारक भी हैं क्योंकि मैल बैठने के वे घर हैं। इन बेडियों को तोड़ फेंको और उन लोगों की गरीबी को दूर करो जिन्हें तन ढाँकने को कपड़ा तक नहीं है, गहने की तो बात ही क्या?' हाथों और पैरों, नाक तथा कानों के बोझ बात की बात में उतरने लगे और यहाँ जो गहने जमा हुए, दूसरी समाओं में वे ही जोरदार माषण का काम करते थे।

गांधीजी ने सोनपुर में एक और नयी बात शुरू कर दी। अपने हाथों में वे थोड़ी खादी ले लेते थे और स्टेशनों पर और समाओं में वे उसे खुद बेचते थे। सब जगह एक ही समान, यह गॉग भले प्रकार पूरी हुई। हर समा में सैकड़ों की खादी विक्रि जाती थी।

चन्दा का हिसाब संक्षेप में नीचे देता हूँ:

स्थान	थैला	समा की वसूली
बाल्टन राज	१५००)	७५४-४-९
कोयले की खानें	२२६३)	७४३-१०-९
बौरगाबाद	२५०१)	२२५-०-९
गया	१७९५)	३५०-०-३
सोनपुर	४३१)	२०५-१२-०
छपरा	...	३५८-१०-४
एकमा	...	३५२-१२-४
महाराजगंज	५७५)	३७२-११-९
दलसिंगराय	२०००)	३१०-१४-१०
समस्तीपुर	१७६५)	अभी हिसाब मिला नहीं)
दरभंगा	२,१०३-५-६	२१२-७-७
शिवहर	७४४-०-६	३५२-९-६
सीतामढ़ी	९३२-९-०	६३१-२-९

मैं यह सूची पूरी नहीं कर सका हूँ क्योंकि अभी कई समा गिनती चल रही है। इन हिसाबों में खियों की समाओं का चन्दा शामिल है।

जिन प्रान्तों में गांधी जी के दौरे का अभी से ठीक ठीक चुका है, उनके पास उनके दौरे की तैयारी करने के लिए काफी समय है। उनसे उमेद है कि वे अपने पैरों तले घास चराने देंगे। चंदे की वसूली तथा खादी की विक्री दोनों के लिए वे अपनी समाओं का सुप्रबन्ध करें। समाओं में चलने के लिए काफी जगह छोड़ें जिसमें गांधी जी समा के किसी हिस्से से सँके और वसूलने वालों को घुमने फिरने का सुभीता हो। बाद सभी किस के और सभी दास के खादी के कपड़े विक्री लिए रखें।

इस दौरे के व्यावहारिक हिस्से को मैं खतम कर चुका। मैं कुछ खास रोचक बातों का मुस्तसर में जिक्र करूँगा। पण्डित मुनिसिपैलिटी का मान-पत्र, साफ ही खादी और अछूतों के अविश्वास दिखलाता था। गांधी जी ने अपना आश्चर्य प्रकट कि उन्हें आखिर मान-पत्र दिया ही क्यों गया और उस मान की एक नकल उन्हें पहले से दे क्यों न दी गयी। गया में हिन्दू समा की ओर से भी एक मान-पत्र दिया था जिसमें खादी और अछूतों के सहानुभूति दिखलायी गयी और गांधीजी से उनके शुद्धि कार्य के लिए शुभांश माँगा गया था। गांधी जी ने जवाब दिया, यह बात कभी छिगायी नहीं है कि मैं शुद्धि आन्दोलन के पहलुओं को पसन्द नहीं करता। हिन्दू शास्त्रों का सहित अध्ययन करने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि धर्म में वैसी शुद्धि को जगह नहीं है जैसी इस्लाम या ईसाई में होती है। कुरान को भी पढ़ने पर मैं कहता हूँ कि उस जैसी तदलीग आजकल चल रही है उसकी जगह नहीं है। मैं हिन्दू धर्म में भूल करता हूँ। उस दशा में भगवान् ने सुधारें। मैं अपने लिए तो तपश्चर्या के द्वारा ही अपने रक्षा करना चाहूँगा। किसी भी पुण्य कार्य में एक यही रास्ता है। स्वामी जी के लिए हिन्दू लोग जो सच्चा बना सकते हैं, वह है हिन्दूधर्म से अछूतपने का पाप धोना हिन्दू और मुसलमान दोनों ही स्वामी जी के पवित्र लहू दिल धो लें। गीता या कुरान, जो कुछ मैं चाहूँ, मुझे स्वतंत्रता होनी चाहिए। गीता पढ़ने को मुझे हिन्दू धर्म करें और कुरान पढ़ने को मुसलमान? बाइबिल पढ़ने के लिए सिर पर कोई ईसाई क्यों सवार होवे? मनुष्य और या परमात्मा के बीच में कोई क्यों पड़े? जिसमें धर्म भी न हो, जिसका दिल पाप और छोटे विचारों से बँधा वह अशुद्ध दिल लेकर दूसरों को शुद्ध करने का क्या कर सकता है? मगर यह मेरी अपनी मैं स्वतंत्रता का पुजारी हूँ। इसी लिए आप ऐसी हुए भी मैंने इस पर जोर दिया है कि स्वामी जी धर्म का प्रचार करने का वैसा ही हक था जैसा कि मुसलमान को कुरान के धर्म का। और अगर शुद्धि स्वामी जी की हत्या की गयी तो इस्लाम के लिए यह प्रद नहीं है। हिन्दू धर्म को इस आत्मबलिदान का प्रद नहीं है। इससे उसकी मदिया बड़ी है। कोई गुप्त रूप से भी मैं इस हत्या का समर्थन न करे और यह न समझे कि इसका कुछ भला हुआ है। एक भी हिन्दू बदला लेने का मन में न लावे। अगर हिन्दू और मुसलमान



१० जनवरी, १९२७

१९२७

अभी कई जगह  
समाजों का

भी से ठीक

के लिए

ले घास लगे

दोनों के

में चलने के

सी हिस्से से

नीता हो।

क पड़े बिना

कर चुका

कहंगा।

और अछूतो

आश्वय प्रकट

और उस मा

दी गयी

न-पत्र दिना

देखलायी

लिए शुभा

दिया,

आन्दोलन के

आत्मा का

पहुँचा हूँ कि

लाम या इस

ता हूँ कि उ

नहीं है।

भगवान् मे

ही अपने

में एक य

जो सच्चा

पाप धो

पवित्र लह

में चाहूँ,

मुझे हिन्दू

ल पढ़ने के

ध्य और

जिसमें धर्म

विचारों से

करने का

री अपनी

भाव ऐसी

स्वामी जी

जैसा कि

अगर बुद्धि

के लिए यह

लिदान का

हम से भी

समझे कि

नदला लेने

लमान पार

और अविश्वास छोड़ दें तो फिर उनकी स्वतंत्रता को रोक रखने की शक्ति किसी में नहीं है। अपनी गुलाबी के कारण स्वयं हथी हैं। इस विषय में मैंने अब तक अपनी जगह पर ताला लगा रखा था। भक्तानन्द जी के आत्मबलिदान के कारण ही कुछ दृढ़ तक मेरा हृदय झुल सका है। मगर इस वायुमंडल में मैं नेतृत्व नहीं कर सकता। मैं तो केवल भगवान् से प्रार्थना करूँगा कि वे हम से भय, घृणा और अविश्वास छुड़ा दें और केवल प्रेम का ही भरोसा करने की शक्ति दें। ”

महादेव देशाई

## मादक द्रव्य निवारण पर

शैतान के समर्थन में धर्मवाक्य

यह बात सारा जहान जानता है कि अमेरिका में ऐसी जवर्दस्त बंसाएँ उठ खड़ी हुई हैं जो शराबबंदी के कानून को व्यर्थ करते और लौटाने की कोशिश करती हैं। ये संस्थाएँ संसार के अन्तर्देशीय शराब-व्यापार के कार्यक्रम का एक अंग हैं। उनको अपार धन और शक्ति है और अमेरिका में शराब बंदी को असफल करने पर वे तुली हुई हैं। दूसरे देशों में भी जहाँ शराब विरोधी आन्दोलन होने की उमेद है, वे सूक्ष्म प्रचार कर रही हैं। हिन्दुस्तान में भी यह काम शुरू हो चला है। ‘यथार्थ मादक-निवारक मंडल’ की ओर से जो शायद दिल्ली में है, निकले हुए कुछ पर्चे भेजे देखें। ये लोग जैसा खोबीर निकालते हैं उसका नमूना दो एक अवतरणों से ही मिल जायगा।

‘भगवद्गीता शराब पीने का समर्थन करती है।’ एक पर्चे में लिखा है, “भगवान् के ग्रन्थ भगवद्गीता में उस युग के प्रिय पेय पदार्थ सोमरस का कई जगहों में जिक्र आया है और सोमरसियों की बड़ी प्रशंसा की गयी है। उदाहरणार्थ, भगवद्गीता में कृष्ण कहते हैं, ‘तीन वेदों के जाननेवाले, पाप रहित, योगशील, यज्ञों से मेरी पूजा करते हैं और मुक्ति की प्रार्थना करते हैं।’ कृष्ण फिर कहते हैं, ‘पृथ्वी में प्रवेश कर के मैं अपनी जीवनशक्ति से प्राणियों का पालन करता हूँ और, सुखाद सोमरस धन कर सभी पौधों का रक्षण करता हूँ।” शराब का यह हिमायती विजयगर्व से पूछता है, ‘अगर श्री कृष्ण ने आप नहीं पिया तो फिर वे सोमरस को सुखादु क्यों कहते हैं?’

गीता से अब इतिहासों पर आइये

“महाभारत में इसके विशिष्ट प्रमाण मिलते हैं कि उस समय के अधिकांश महापुरुष शराब पीते थे।” “कृष्ण और अर्जुन की आँखों का वर्णन किया गया है शराब के मद से लाल हो सी।” “रामायण में भी सुरा-पान का जिक्र बार बार आया है।” “राम को वनगमन से लौटाने में असमर्थ भरत शोक करते हैं कि खजूर की सुगंधि अथ राजधानी में नहीं मिलती।” शराब का पाप जारी रखने के लिए इस प्रकार हमारे धर्म से पवित्र धर्म-ग्रन्थों से अवतरण लिये जाते हैं।

तब तो यह है कि प्राचीन काल में भी यहाँ शराब का और दौरा था और इस लिए अब इसे रोको मत। शराब पीना धर्म और शिष्ट कर्म है। इन्द्र ने पी, विश्वामित्र ने चक्खी, शिष्ट ने उबायी, कृष्ण और अर्जुन ने उसका मजा लूटा। पहले का यह नियम कि ऐसे गैरे नत्थू खेरे सभी धर्म-ग्रन्थ न पढ़ने का, बिल्कुल बेमानी मतलब न था।

इसके बाद वर्तमान काल के लेखकों के लेखों से हमारा सुकामिका कदाया जाता है। यह ताज्जुब की बात है कि बड़े बड़े प्रसिद्ध यूरोपियन लेखकों, राजनीतिज्ञों, तत्ववेत्ताओं, और धर्माचार्यों के भी लेखों से शराब के पक्ष में अवतरण ढूँढ कर यों इकठे

कर शराब का प्रचार करनेवालों के काम लाये जा सके हैं। नीचे दिये गये भावों के समान भाव अँगरेजी लेखों में प्रायः ही मिल सकते हैं। उनका ‘सत्य यथार्थ मादक-निवारक मंडल’ के पत्रों में पूरा उपयोग किया गया है।

“शराब, बियर, और स्प्रिट के लिए भी दुनिया में जगह है। अगर बहुत अधिक सेवन किया जाय तो उनसे नुकसान होता है।”

“बेहद शराब पीने के दुष्परिणामों का उपयोग उस न्यायत की बंदी के लिए नहीं होना चाहिए जो योगी, भोगी और पापी सभी के दिलों को सरपञ्ज करती है।”

यह बात तो कल्पना के बाहर है कि नशीली वस्तुओं के पक्ष में उतने ही प्रसिद्ध हिन्दुस्थानी लेखक ऐसी दलीलें लिखें। हाँ, इन संस्थाओं की ओर से भविष्य में पैसे के गुलाम कवियों और लेखकों का एक दल खड़ा किया जा सकता है जो संयत रूप से सुरा-सेवन के लाभों का गान गावे। हिन्दुस्थान और यूरोप के शराब के प्रति दृष्टि-कोण का पता केवल इस एक बात से लग सकता है कि जहाँ चार्ल्स डिकेंस, प्रोफेसर ब्लैकी, सेन्ट पौल के प्रधान पादरी, और वैसे ही दूसरे लेखकों के लेखों से शराब के पक्ष में अवतरण ढूँढे जा सकते हैं, यहाँ शराब के संयत सेवन के समर्थन में किसी हिन्दुस्थानी भाषा के किसी काल के अरहस्य-वादी साहित्य में से उतारा निकालना असंभव है।

हिन्दुस्तान का शिष्ट समाज शराब पीने की आशा कभी देता ही नहीं। शराब पीना यहाँ असंभव काम गिना जाता है और अगर पीना ही हो तो छिप कर, घर से दूर पीना पड़ता है और वह भी सिर्फ उन समाजों में ही जो जातीय संस्कृति और सभ्यता के लिहाज से बहुत नीचे हैं। इस आशय के तर्कों की कि यूरोप में आदरणीय पुरुष शराब पीते हैं हिन्दुस्तान में कोई जगह ही नहीं है।

## अमेरिका

इस सब से बड़ी बात के विरुद्ध कि अमेरिका ने शराब बिल्कुल बन्द कर दी है, अमेरिका के प्रसिद्ध पुरुषों की रायों का सहारा लिया जाता है। सर वेसिल ब्लेकेट ने अमेरिका के मुक्ति दाता अब्राहम लिंकन के विचारों के उद्धरण दिये हैं। सच मुच में इन उतरों का निशाना बहुत दूर तक जाता है। खुद अमेरिकनो से ही अधिक लिंकन भक्त होने की हमें जरूरत नहीं है। अगर बुद्धिमान अमेरिकन सचमुच ही शराब निवारण के इतने विरुद्ध होते तो अमेरिका अपने कानून में इतना बड़ा परिवर्तन, और वह भी इतनी अधिक कठिना-इयाँ होने पर, न करता। या तो आज कल के अमेरिकन अब्राहम लिंकन के जमाने के अमेरिकनो से कुछ दूसरा ही सोचते हैं या आज के अमेरिकन अपने देश से एक ऐसे दोष को जब मूल से नाश करने में अपने को समर्थ समझते हैं जिसकी ओर पहले दूसरे उद्देश्यों और कार्यों की ओर दृष्टि रहने से वे ध्यान न दे सकते थे। या यह भी संभव है कि पहले की अपेक्षा अब सार्वजनिक हित के लिए शराब अधिक खतरनाक हो गयी हो। चाहे बात कुछ भी हो, मगर इसे तो कोई इनकार कर नहीं सकता कि अमेरिकन लोगों ने, जो संस्कृत, सभ्य और प्रजा-राज्य का सुख भोगते हैं, स्वेच्छापूर्वक, और इसकी कठिनाइयों का प्रबन्ध करके, शराब निवारण का प्रस्ताव पाष किया है, और अब विशाल पैमाने पर काम में ला रहे हैं और वह भी अमेरिका में जो हिन्दुस्तान से कई गुने बड़ा है और जहाँ के निवासी हिन्दुस्तानियों से कहीं अधिक बड़ कर शराबी थे।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार

(यं. इं.)



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ दि ९, संवत् १९८३

## राष्ट्रीय पाठशालाएँ

विहार के बारे में मने ऐसी कई राष्ट्रीय पाठशालाएँ देखी हैं जो विघ्न बाधाओं के होते हुए भी चल रही हैं। मगर इन स्कूलों से असहयोग के शिक्षा कार्यक्रम की ऊपरी असफलता का कारण दिखायी पड़ता है। क्योंकि कम से कम मुझे तो उन्हें देख कर इसमें कुछ शक नहीं होता कि जिन हजारों लड़कों ने सरकारी स्कूल छोड़े और फिर उन्हीं में लौट गये, उनके लौटने का कारण उनकी निर्बलता न थी, उनके माता-पिताओं की निर्बलता न थी, मगर उन स्कूलों के अध्यापकों के ही दिलों में अपने काम में काफी विश्वास न था। मगर, जैसा कि मैंने कहा है, खुद उन पर भी बहुत दोष नहीं लगाया जा सकता। वे खुद भी तो उसी दूषित शिक्षा-प्रणाली के फल थे और उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे अपनी परिस्थितियों के सारे प्रभावों को एक भारी ही दूर कर सकेंगे। आश्चर्य तो यह है कि इतनी विघ्न-बाधाएँ होने पर भी अभी थोड़े लोग आदर्श पर बटे हुए हैं। मगर थोड़े लोग जो अब भी ठहरे हुए हैं उनसे मैं नितान्त सत्य-शीलता की प्रार्थना करूँगा। इसकी हर एक शाखा में असहयोग के विध्वंसक और रचनात्मक पहलू थे ही। रचनात्मक पहलू तो सचमुच ही अधिक चिरस्थायी था। उसके बिना विध्वंसक पहलू बेकार था। अगर साथ ही साथ शिक्षा का कोई कार्यक्रम बनने वाला न होता तो सरकारी स्कूलों से केवल निकल आने का तो कोई मानी ही नहीं था। सरकार से असम्बद्ध हर एक पाठशाला तो राष्ट्रीय केवल इसी लिए है नहीं कि वह सरकार से सम्बद्ध नहीं है और उसे सरकारी सहायता नहीं मिलती। अगर केवल सरकार से असम्बद्धता और सहायता न पाना ही एक मात्र जाँच होते तो फिर हजारों मिशन स्कूलों को राष्ट्रीय मानना पड़ता। हमारे पास महासभा की दी हुई राष्ट्रीय पाठशाला की परिभाषा है। उस परिभाषा में और मुख्य बातों के साथ कताई का आवश्यक होना भी एक है। विहार की एक राष्ट्रीय पाठशाला में मैंने देखा कि वहाँ चर्खा केवल दिखावे के लिए ही था, और यो ही जब तब काता खाता था और खुद शिक्षक लोग भी कातने में ऐसे ही वैसे थे। धुनना वे जानते ही नहीं थे। अच्छे बुरे चर्खों की उन्हें पहचान न थी। सीधे तकवे के लाभ उन्हें मालूम न थे। उन्हें इसका पता न था कि अगर महीन और अधिक सूत निकालना होवे तो अच्छे तकवे चाहिए ही। जितने चर्खे मैंने देखे करीब २ सत्रों से एक अजब ही कर्णकटु ध्वनि निकलती थी। एक स्कूल के प्रधानाध्यापक से मैंने जिरह की। उन्होंने सब कुछ बहादुरी से स्वीकार कर लिया और उन्हें दूर करने का वचन दिया है। इस मनोरंजक अनुभव से मैं यह शिक्षा लेना चाहूँगा कि अगर राष्ट्रीय पाठशालाओं के शिक्षकों को अपना दुहरा हक साबित कर दिखलाना है तो उन्हें उस आदर्श का पालन करना होगा यानी सत्यशील बने रहना होगा। अगर उन्हें चर्खे में विश्वास न होवे तो उन्हें यह खुलासा कह कर नौकरी छोड़ देनी चाहिए। अगर लड़कों के माता पिता लड़कों को स्कूलों में भेजें मगर अपने लड़कों का कातना सीखना या चर्खा चलाना प्रसन्द

न करें तो उन लड़कों को स्कूल में लेने से इनकार कर दें। मगर अगर वे राष्ट्रीय शिक्षा का एक आवश्यक अंग सूत कताई को समझें तो वे इसका इतम खूब अच्छी तरह आप सीख लें और लड़कों को यह भी उसी प्रकार सिखलावें जैसे और सभी विषय। उन्हें यह कहने का हक नहीं कि उनके लड़के कातना नापसन्द करते हैं। पाठ्य विषय को रोचक बनाना, शिक्षक का काम है। मैं रसायनशास्त्र से घृणा करता था क्योंकि मेरे शिक्षक को ही वह विषय इतना न आता था कि वे उसे रोचक बना सकें। पीछे से मैंने उसे सीखा और उसे बहुत ही रोचक पाया। रेखागणित के ऐसे बहुत ही मनोरंजक और मनबहलाव के विषय को स्कूलों के लड़के सिर्फ इस लिए पढ़ना न चाहेंगे कि शिक्षकों को ही अपने काम से प्रेम नहीं है और इस विषय में उन्होंने खुद यथेष्ट रुचि पैदा न कर ली है। कताई की भी वही बात है। मैंने ऐसा एक भी चतुर कतवैया न देखा है जो यह न स्वीकार करे कि मन बहलाव के तरीके पर भी सूत कातना काफी रुचि कर और ऊँचे ले जाने वाली चीज नहीं है। पियागो पर सिर्फ पें पाँ कने से तो जो सुनने को सबसे अधिक तैयार होगा उसके भी सिर में दर्द हो जा सकता है मगर जिसे गाना से कुछ भी शौक नहीं है उसे भी उस्ताद का गाना अपनी ओर खींच लेगा। चर्खों की भी वही बात है। यहाँ मेरा मतलब चर्खों की आकर्षक शक्ति दिखलाने का नहीं है मगर इस बात को सिद्ध करना है कि अगर राष्ट्रीय पाठशालाओं में यह सिखलाना है तो इसके लिए वैसे ही शिक्षक चाहिए जो इसे खूब अच्छी तरह जानते हों और अपने लड़कों के साथ धैर्य से काम ले सकें। हम अपने ही अज्ञान या उदासीनता से तो अपने छात्रों में एक ऐसी चीज के प्रति नफरत न पैदा कर दें जो राष्ट्र के लिए परम महत्वपूर्ण माना जाता है।

ईमानदारी का मतलब है कि वे शिक्षक जिन्हें कातना आता न हो या उसमें विश्वास न होवे, नौकरी भले ही छूट जाय मगर अपने स्कूलों में इससे सम्बन्ध रखने से इनकार कर दें। अगर हम सत्यशील हैं तो अन्त में यह लाभ दायक ही सिद्ध होगा। अगर हम सच्चे नहीं हैं तो फिर हमारा बचाव असंभव है और यह एक ऐसा आन्दोलन है जिसे सफलता के लिए अपने कार्यकर्ताओं के एक मात्र चरित्र पर ही भरोसा करना पड़ता है—अगर इसके कार्यकर्ता धोखा देने पर ही तुल जायें तो इस आन्दोलन की सफलता असंभव है। लगे हाथ राष्ट्रीय पाठशालाओं के प्रबन्धकों को मैं यह भी याद दिला देता हूँ कि चर्खे से अधिक तकली ही अन्त में लाभदायक और अच्छी साबित होगी। सबसे अच्छे कतवैये लड़कों को अच्छे चर्खे दिये जा सकते हैं अगर वे हर महीने कम से कम 'इतना' सूत अवश्य कातें।

(य. इ.)

मोहनदास करमचंद गांधी

## आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्डर मिलते हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आर्डर मेजनेवाले सज्जन अभी से शिकायतें भेजना शुरू न करें छठी आवृत्ति तैयार हो रही है।

'हिन्दी नवजीवन' की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे और पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। एक साल की जितने बची पूरी फाइल का दाम ढाक खर्च के अलावा सात रुपये है।

व्यवस्थापक, 'हिन्दी नवजीवन'



१९२७  
२७ जनवरी, १९२७

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

## अध्याय ८

## ब्रह्मचर्य (२)

जैसे प्रकार चर्चा करने के बाद और पक्का विचार कर चुकने के बाद १९०६ में मैंने व्रत लिया। व्रत लेने तक मैंने धर्मपत्नी को नहीं छूँने की थी किन्तु व्रत के समय सलाह ली। उनकी भी विरोध न हुआ।

व्रत लेते समय मुझे बहुत भारी पड़ा। मेरी शक्ति कम हो गई। विचारों का क्योंकि दमन कर सकूँगा? स्वपत्नी के साथ भी संबंध का त्याग नयी बात सी लगती थी। तौभी मैं यह देख सकता था कि यही मेरा कर्तव्य है। मेरी दयानत शुद्ध विचार कर के कि ईश्वर शक्ति देंगे, मैं कूद पड़ा।

व्रत बीस वर्ष बाद उस व्रत का स्मरण करते हुए मुझे सानंद होता है। संयम पालन की वृत्ति तो १९०१ से प्रबल थी पालन कर रहा था मगर जो स्वतंत्रता-सुख मैं अब भोगने लगे वह पहले कभी न मिला था। क्योंकि उस समय मैं जल रहा था। जभी चाहे तभी उसके वश हो सकता था। मेरे ऊपर सवारी करने में वासना असमर्थ हुई।

मैंने ब्रह्मचर्य की महिमा अधिकाधिक समझने लगा। मैंने प्रीतिश्रम में लिया था। चायलों की सेवा के काम से पाकर मैं प्रीतिश्रम गया था। वहाँ से मुझे तुरत ही स्वर्ग जाना पड़ा। मैं वहाँ गया और एक महीने के भीतर ब्रह्मचर्य-व्रत की नींव पड़ी। कौन जाने कि यह ब्रह्मचर्य-व्रत उसी लिए तैयार करने न आया था। सत्याग्रह की मुझे भी न थी। उसकी उत्पत्ति अनायास—अनिच्छा से—ही थी। किन्तु मैंने देखा कि पीछे के मेरे सभी काम—श्रम, बाग, जोहान्स्वर्ग का बड़ा घर खर्च कम करना, और ब्रह्मचर्य-व्रत लेना—मानों उसी के तैयारीरूप थे।

ब्रह्मचर्य का संपूर्ण पालन है ब्रह्मदर्शन। यह ज्ञान मुझे के बरिये न हुआ। यह अर्थ मेरे आगे धीरे २ अनुभव होता गया। उसके लागू शास्त्रवाक्य भी मैंने पीछे से बाँचे। मेरे के बाद मैं दिनों दिन इसका अधिकाधिक अनुभव करने लगे। ब्रह्मचर्य में शरीररक्षा, बुद्धिरक्षा और आत्मा की रक्षा के लिये ब्रह्मचर्य को घोर तपस्यारूप रहन देने के बदले जाना था। उसी के सहार इसे निभाना था। इसलिए अब मुझे नित्य नये दर्शन होन लगे। किन्तु कोई मान लेवे कि इस प्रकार मैं उसका रस ही लट्टता था और किन्तु न होती थी। आज पूरे छप्पन वर्ष के होने बाद ब्रह्मचर्य की कठिनाता का अनुभव तो होता ही है। यह मैंने समझ रखा हूँ कि यह व्रत है तलवार की धार पर चलना। निरंतर जागृति की आवश्यकता देखता हूँ।

ब्रह्मचर्य का पालन करना हो तो जीभ पर तो काबू करना पड़ेगा। मैंने यह आप अनुभव किया है कि जो स्वाद को मैंने ब्रह्मचर्य अतिशय सहज है। इसलिए अब मेरे आहार में केवल निरामिषाहार की दृष्टि से नहीं किन्तु ब्रह्मचर्य की दृष्टि से भी सोना चाहिए। इसका मैंने प्रयोग कर के अनुभव किया है और दूसरा स्वाद के पीछे देह में अनेक चीजें भर के उसे दुर्गन्धित कर डालता है। दोनों के बीच ऐसे अन्तर रहा ही करते हैं। और दिनों दिन वे बढ़ते हैं, घटते नहीं।

सूखे या हरे वनपक फलों पर ही रहता था, तब जो निर्विकारपन रहता था, उसका अनुभव खुराक में फेरफार करने बाद न हुआ। फलाहार के समय ब्रह्मचर्य सहज था; दुग्धाहार के समय उसके लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। इसका विचार कि दुग्धाहार पर क्यों जाना पड़ा, समुचित स्थान पर होगा। यहाँ तो इतना ही कहना बस होगा कि इसमें मुझे कोई शंका ही नहीं कि ब्रह्मचारी के लिए दूध का आहार विघ्नकर्ता है। इससे कोई भाई यह न मान लेवे कि ब्रह्मचारी मात्र को दूध का त्याग करना ही चाहिए। ब्रह्मचर्य के ऊपर खुराक का कितना असर पड़ता है, इसके संबंध में बहुत प्रयोगों की आवश्यकता है। दूध के जैसा स्नायु बाँधने वाला और उसीक समान सहज ही पच जानेवाला फलाहार, आज तक मेरे हाथ न लगा। न कोई वैद्य डाक्टर या हकीम ही उसे बता सका। इसलिए दूध को विकार पैदा करने वाली वस्तु मान कर भी उसका त्याग करने की सलाह मैं किसी को दे नहीं सकता।

बाह्य उपचारों में खाद्य पदार्थों की जाति और प्रमाण की मर्यादा जैसी आवश्यक है वैसा ही उपवास का समझना। इन्द्रियों ऐसी बलवान् हैं कि उन्हें चारों ओर से, ऊपर से और नीचे से, इस प्रकार दशों दिशाओं से घेर कर रक्खा जाय तभी वे अंकुश में रहती हैं। सभी कोई जानते हैं कि भोजन बिना वे काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इन्द्रिय-दमन के उद्देश्य से इच्छापूर्वक किये गये उपवास से इन्द्रिय-दमन में बहुत मदद मिलती है। इसमें कोई शक नहीं। कितने लोग उपवास करते हैं मगर तौभी निष्फल होते हैं। इसका कारण यह है कि यह मान कर कि हम बहुत उपवास कर सकते हैं, वे स्थूल उपवास करते हैं और मन से छप्पन भोग भोगते, और उपवास के दर्म्यान ही इस विचार का भी स्वाद लेते हैं कि अब उपवास बीतने पर क्या खाँगे क्या पीवेंगे। पीछे से फिरयाद करते हैं कि न तो स्वादेन्द्रिय का ही संयम हुआ और न हुआ जननेन्द्रिय का ही। उपवास की सच्ची उपयोगिता वहीं होती है जहाँ मनुष्य का मन भी देह दमन में साथ देता है। बात यह है कि मनुष्य के मन में विषय-भोग के प्रति वैराग्य होना चाहिए। विषय के मूल मन में हैं ही। उपवासादि साधनों का मदद बहुत होने पर भी प्रमाण में थोड़ा ही होती है। यों कहा जा सकता है कि उपवास करते हुए भी आदमी विषयासक्त रह सकता है सही, मगर उपवास बिना विषयासक्ति का जड़मूल से नाश असंभव है। इससे ब्रह्मचर्य के पालन में उपवास अनिवार्य अंग है। ब्रह्मचर्य के प्रयत्न करने वाले कितने आदमी निष्फल होते हैं क्योंकि खाने पीने इत्यादि में अब्रह्मचारी के ऐसा रहना चाहते हुए भी ब्रह्मचर्य पालन का वे इच्छा करते हैं। गर्मी के दिनों में जाड़े का अनुभव करने जैसा यह प्रयत्न कहा जायगा। संयमी और स्वच्छन्दा, मांगा और योगी, दोनों के जीवन के बीच भेद होना ही चाहिए। उनमें जो साम्य होता है वह ऊपरी होता है, उसी पर से भेद साफ दिखायी पड़ना चाहिए। आँख से दोनों ही काम लेते हैं। ब्रह्मचारी श्रेय-दर्शन करता है और भोगी नाच तमाशों में मस्त रहता है। कान से दोनों ही सुनते हैं, मगर एक सुनता है ईश्वर भजन और दूसरा विलासी गीतों में ही मोज मानता है। जागते दोनों ही हैं, मगर एक जाग्रतावस्था में हृदय-मन्दिर में विराजमान राम को गुहराता है और दूसरा नाच रंग की धुन में सोना ही भूल जाता है। खाते दोनों ही हैं मगर एक तो शरीर रूपी तीर्थ को निभाने के लिए आवश्यक भाग चुकाता है और दूसरा स्वाद के पीछे देह में अनेक चीजें भर के उसे दुर्गन्धित कर डालता है। दोनों के बीच ऐसे अन्तर रहा ही करते हैं। और दिनों दिन वे बढ़ते हैं, घटते नहीं।



ब्रह्मचर्य है मन बचन काया से सभी इन्द्रियों का संयम । मैं दिनों दिन इसे देखता गया हूँ कि इस संयम के लिए ऊपर के प्रमाण में त्याग आवश्यक है । आज भी देख रहा हूँ । जैसे ब्रह्मचर्य की महिमा की सीमा नहीं है वैसे ही त्याग की भी सीमा नहीं है । ऐसा ब्रह्मचर्य थोड़ी ही कोशिश से नहीं मिल सकता । करोड़ों के लिए तो यह हमेशा केवल आदर्श रूप ही रहेगा । क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी अपनी ग्यूनताओं का नित्य दर्शन करेगा, अपने हाठ मांस में घुसे हुए विचारों को पहचान लेगा और उन्हें निकालने का सतत प्रयत्न करेगा । जब तक विचारों पर ऐसा काबू न मिला है कि इच्छा बिना कोई विचार मन में आवे ही नहीं तब तक वह संपूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं है । विचार मात्र विकार है । उन्हें वश करना क्या है, मानों मन को वश करना है । और मन को वश करना तो वायु को वश करने से भी कठिन है । तौभी अगर आराम है तो यह वस्तु भी साध्य है ही । हमें मुश्किलें आ पड़ती हैं, इस लिए उसे असाध्य न मान बैठें यह परम अर्थ है । और परम अर्थ के लिए परम प्रयत्न आवश्यक हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या ?

देश में आकर मैंने यह देखा कि ऐसा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न करने से ही नहीं मिल सकता । यों कहा जा सकता है कि तब तक मैं भूच्छा में था । मैंने ऐसा मान लिया कि फलाहार से विकार जड़भूल से नेस्तनाबूद होते हैं और अभिमान से मानता था कि अब मुझे कुछ करना नहीं है ।

किन्तु इस विचार के प्रकरण तक पहुँचने में देर है । इस बीच इतना ही कह देना आवश्यक है कि ईश्वर-दर्शन की मैंने जो व्याख्या दी है, वैसे ही ब्रह्मचर्य के पालन की इच्छा करनेवाले को अगर ईश्वर में भी उतना ही विश्वास होवे जितना अपने प्रयत्नों में तो उसके निराश होने का कोई कारण नहीं है ।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रखवर्ज रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

निराहारी के विषय तो शान्त होते हैं मगर रस ( इच्छा, रुचि ) रहती ही है । रस भी ईश्वरदर्शन से शान्त होता है ।

इस लिए इसका साक्षात्कार कि रामनाम और रामरूपा ही, आत्माधी के अखीरी सहारे हैं, मैंने हिन्दुस्तान में ही किया ।

( नवजीवन ) मोहनदास करमचंद गांधी

### अक्टूबर के आंकड़े

अक्टूबर १९२६ में खादी की उत्पत्ति और बिक्री के आंकड़े नीचे दिये जाते हैं:

प्रान्त	उत्पत्ति (रुपयों में)	बिक्री (रुपयों में)
अजमेर	२,२८६)	२,४५०)
आन्ध्र	१६,८३१)	१७,१६७)
बंगाल	३५,०६७)	५८,२१८)
बंबई	.....	२१,२६३)
बर्मा	.....	३,३७६)
दिल्ली	७६७)	१,०३८)
कर्णाटक	३,६९४)	५,०५१)
उत्तर महाराष्ट्र	२७०)	५,५७७)
दक्षिण महाराष्ट्र	.....	१३८)
पंजाब	३,८७२)	१०,५८५)
तामिलनाडु	६२,५२८)	९०,२९३)
उत्तराल	३,८०१)	३,२९५)
कुल	१,२८,१२१)	३,१८,४५१)

मो० क० गांधी

## नागरी बनाम रोमन लिपि

[रोमन और लैटिन लिपि के हिमायती एक यूरोपियन लिपि के नागरी लिपि पर निन्दा-व्यंजक कटाक्ष के उत्तर में दूसरे यूरोपियन पंडित, डाक्टर मैकडोनल का मत तथा नीचे दिये जाते हैं ।]

डाक्टर मैकडोनल अपने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' ब्राह्मीलिपि के विषय में ( जो नागरी का पूर्व रूप है ) लिखते हैं—  
“ इस पूर्ण वर्णमाला को विद्वान् ब्राह्मणों ने ध्वनि-सिद्धान्त निकाला होगा । प्रोफेसर बूलर के सबल तर्कों के अनुसार वर्ष ५०० वर्ष पूर्व जरूर थी । इसी लिपि को ईस्वी पूर्व में पाणिनि ने अपने वृहत् व्याकरण में स्वीकार किया है तब से आज तक इसके मूल में और संस्कृत भाषा व्यवहार में कोई अदल बदल नहीं हुआ है । यह न सिर्फ संस्कृत ध्वनियों को ही प्रगट कर सकती है बल्कि पूरी वैज्ञानिक पर इसकी रचना हुई है । इसमें पहले साधारण ( लघु और दीर्घ ) आते हैं, तब कंडोष्य और अन्त में वर्णों में वे व्यञ्जन जो एक एक अंगों से उच्चरित होते हैं जैसे दन्त्य व्यञ्जन त्, थ्, द्, ध्, न् आते हैं और ओष्ठ्य प्, फ्, ब्, भ्, म् । मगर और हम यूरोपियन लोग, २५०० वर्ष बाद विज्ञान ऐसी वर्णमाला से काम लेते हैं जो न सिर्फ हमारी ही सभी ध्वनियों को प्रगट करने में असमर्थ है बल्कि अभी तक और स्वरों को वैसे ही बेतरतीब कायम रखे हुए हैं जैसे आजसे २५०० वर्ष पहले प्राथमिक सेमिटिक लिपि को ग्रीकों ने लिया था ।

( छोटा टाइप मैंने दिया है । लेखक )

अब आदर्श तरतीब और ध्वनि पूर्णता सिर्फ नागरी लिपि में नहीं पड़े हैं परन्तु पूर्व एशिया के बौद्ध देशों की उन लिपि के भी, जो देवनागरी से उत्पन्न या छायायुक्त हैं । हमारी उत्तर और दक्षिण भारतीय लिपियाँ सिंहाली, और और देवनागरी से सम्बन्धानुसार क्रमोद्देश स्थानी, तिब्बती, कोरियन लिपियाँ भी शामिल हैं । प्रशान्त महासागर में हिन्दुओं की कवि लिपि इसकी प्रतिनिधि है । यह तो हुआ की पुत्रियों और बहिनों के विषय में अब । पुरानी सांस्कृतिक महत्व का पुरानी रोमन से मिलान किया मेरी समझ में यह कहना कुछ अत्युक्ति नहीं होगा यहाँ छोटा से छोटा बच्चा जो अ से ह तक सब अक्षर जान चुका है, इसी ज्ञान की बदौलत पश्चिम के शिक्षक-विद्यार्थी से जो ध्वनि शास्त्र पढ़ रहा है, कहीं दबा शास्त्री है । अगर और कुछ नहीं तो इसी लिए कि पाश्चात्य बहुत कुछ सीखी हुई गलत बातें भूलनी पड़ती हैं, जिन्हें अपनी वर्णमाला पढ़ने के साथ ही साथ सीख लिया था । वर्णमाला रोमन लिपि जैसी त्रुटिपूर्ण और बेकार है । वह बातों को पढ़ने से बच भी नहीं सकता । मगर हमारे बच्चा भी ध्वनि के सरल और सच्चे नियमों को सीख कर जैसी बनी बनायी वैज्ञानिक लिपि को पढ़ता है जिसमें से भूलना नहीं पड़ता । और यह रोमन पक्षपाती यूरोप बात नहीं है क्या कि जब कोई किसी दूसरे आदमी को पूछता है तो उसे यह भी पूछना पड़ता है कि यह नाम लिखते क्योंकर हैं ? यह देख कर पूरा के रहनेवालों इसी आती है ।

( यं० इ० )

एस. डी. नाडक



अपि

ਡੀ. ਨਾਡੀ

टिप्पणियां

देशबन्धु समाक्ष

अ० भा० देशबन्धु स्मारक को यं. इं. के  
मुझे आशा है कि अ० भा० देशबन्धु स्मारक को यं. इं. के  
कानपुर महासभा के बाद जब मैंने अपने  
मैं यह जानता था कि अ० भा० देशबन्धु  
तब मैं वंद किये तब मैं वंद किये तब मैं वंद किये  
जमा होना बंद हो जायगा । मैं उन स्मारक के  
भविष्य थी । और वंद करने के लिए दौरे शुरू कर दूंगा । मैंने  
वन्द करने का चंद जमा करने के लिए दौरे शुरू कर दूंगा । मैंने  
वन्द करने का चंद जमा करने के लिए दौरे शुरू कर दूंगा । मैंने  
वन्द करने का चंद जमा करने के लिए दौरे शुरू कर दूंगा । मैंने  
वन्द करने का चंद जमा करने के लिए दौरे शुरू कर दूंगा । मैंने

प्रबन्धकर्त्ताओं को

भारत सब ठीक ठिकाने से निभ गया तो बिहार के अलावा  
पश्चात्, मद्रास प्रान्त कर्णाटक, संयुक्त प्रान्त, बंगाल और उडिसा  
के कुछ हिस्सों को भी इसी साल में तय कर लेने की उमेद  
रखा है। दूसरे प्रान्तों में भी मैं जाना चाहूंगा, बशर्ते कि समय  
का और मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा और वे प्रान्त स्मारक कोष में  
पानी खादी के लिए दान देना चाहें।

वहाँ तक मनुष्य की शक्ति में है मैंने उद्दिष्टा आने और  
 सरसक नवम्बर का महीना वहीं बिताने का वचन दिया है। यह  
 इसलिए नहीं कि उद्दिष्टा में मैं कुछ बहुत चंदा इकट्ठा करने की  
 आशा रखता हूँ बल्कि इस लिए कि हमारी दुर्दशा का वह चिह्न  
 है। सरकार के पुनरुद्धार का अर्थ मेरे लिए भारतवर्ष का उद्धार

है। यह प्रान्त सारे देश में गरीब न होना चाहिए था। हिन्दुस्तान के और हिस्सों के लोगों से यहां के आदमी किसी भी विषय में दवे हुए नहीं हैं। उनका इतिहास बहुत ही सुन्दर है। उनके बहुत सुन्दर मन्दिर हैं। उनके यहां 'जगन्नाथ' हैं जो अपनी सृष्टि के भिन्न २ जीवों में अन्तर नहीं मानते। मगर तौभी, लिखते हुए कष्ट होता है कि उस महाविशाल मन्दिर की छाया में ही हजारों आदमी गूखों मरते हैं। यह है चिरस्थायी दरिद्रता, सनातन अकाल और जीर्ण रोगों का देश। और कहीं भी लोगों की आंखों में मँने वह भावशून्यता, उतनी निराशा, जीवनशून्यता न देखी जैसी कि उडिस्सा में। इस लिए मैं अगले नवम्बर में उडिस्सा निवास का विचार संखेद आनंद से करता हूँ।

यह ऐसा प्रान्त है जिसका चर्खे के लिए सहज में ही संगठन किया जा सकता है, और करना चाहिए क्योंकि आदमियों को कोई काम नहीं है। बंगाल के कारखानों में या सारे हिन्दुस्तान के भी कारखानों में मिलाकर, सारा उड्डिस्सा ले बसाया तो नहीं जा सकता। अगर यह संभव भी होता तो गलत कहा जाता। खुशी की बात है कि यह संभव ही नहीं। लोगों को अपने ही देश में रहना होगा और जुगती, उद्यमी और शायद सुखी होना भी सीखना होगा। वे भुल गये हैं कि सुख कौनसी चिडिया है। इस लिए उड्डिस्सा के कार्यकर्ता गण अपनी जिम्मेदारी समझ लें। मैं उमेद करता हूँ कि खादी आन्दोलन में वे जी जान से लग जायँगे। सारे उड्डिस्सा का वे खयाल न करें। वे तो एक एक गाँव का ही विचार करें जहाँ वे जाकर बस जायँ और लोगों को श्रद्धा के साथ निरन्तर प्रयत्न करके निराशा के गर्त से, जिस में वे फँसे हुए हैं निकालें।

और जैसा कि मैंने कहा है; मैं बहुत चन्दे की आशा नहीं रखता। मैं तो सभा में जानेवालों के एक एक ही पैसा चाहूँगा जैसा कि सन् १९२१ में दौरा करते समय मैंने कहा था। बड़े लोगों का अपनी गाँवों कांपती हुई जँगलियों से खोल खोल कर मुझे अपने पैसे देना, कभी भूलनेवाला दृश्य नहीं है। मैं वह दृश्य फिर देखना चाहता हूँ और अगर इस निश्चय को दुहराने की जरूरत हो तो दुहराना चाहता हूँ कि निराशा का यह अंधेरा दृश्य भविष्य में बदल कर आशा और सुख का प्रकाश करना ही होगा।

प्रबन्धकों को मैं यह भी याद रखने को कहूंगा कि यह दौरा करीब करीब निरन्तर चलता रहेगा और मुझे अपने पत्रों का सम्पादन और पत्र-व्यवहार उसी समय में जो वे मुझे छोड़ें और और रेलों में ही चलाना होगा। सोमवार के अलावा, नित्य कर्मों को छोड़ कर तीन घन्टे समय मुझे रोज देना चाहिए। रात के सभी मजमे बंद रखने चाहिए। दिन भर की मिहनत की थकावट के बाद रात को सोने के समय का विधान सहन करना असंभव है।

चूंके यह केवल कामकाजी दौरा है, इस लिए सभा का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि चन्दा जमा करनेवालों को भागे पीछे जाने आने का रास्ता रहे। सभी प्रकार का शोरगुल बंद रहना चाहिए। मैंने देखा है कि जहां प्रबन्ध अच्छा रहता है चन्दे की रकम बहुत बढ जाती है। जनता को मैंने बराबर ही चन्दा देने को राजी पाया है। धनियों के हजारों ही रुपये लेने मुझे पसन्द है, मगर मैं जानता हूं कि गरीबों के पैसों और १,१ रुपयों से ही आन्दोलन धन्य होता है। यह उन्हीं का आन्दोलन है और वे इसमें अपनी मदद बेरोक देंगे।

मो० क० गांधी०

( यं. इं. )

मो० क० गांधी०



## इंग्लैण्ड का वर्तमान सोने का प्रमाण

### भारतवर्ष के लिए आदर्श

यह बात अनेक बार कही गयी है कि सोने के धातु का प्रमाण मानने की सलाह देने में, जो कि उत्तम-सुवर्ण-प्रमाण है और इंग्लैण्ड की वर्तमान मुद्रा-नीति का अनुसरण करता है, मुद्रा कमीशन हिन्दुस्तान को ईमानदार और पूर्ण-सुवर्ण-प्रमाण देना चाहता था। अब इन में हर एक बयान का अलग अलग विरोध करना कुछ कठिन नहीं है। वे आधे सत्य हैं और इस लिए दुष्टता से भरे पड़े हैं।

(१) सोने की धातु का प्रमाण तब तक सचमुच में सोने का प्रमाण ही नहीं सकता जब तक कि मूल्य-मापक मुद्रा सोने की न हो कर चाँदी का रुपया हो। ४०० आउन्स यानी कोई २५ पाउन्ड की सोने की ईंट सुभीते की इकाई तो है नहीं और जब हिल्टन गंग कमीशनवाले भी वैदेशिक व्यापार के लिए रुपये का सुवर्ण मूल्य निश्चित करने की बात करते हैं तब उस ईंट को मूल्य माप की कोई इकाई ही नहीं मानते। सुवर्ण आधार में यह मानी हुई बात है कि कोई सुवर्णमुद्रा जरूर होगी जिसके जरिये सभी वस्तुओं का दाम जगाया जायगा। यह कुछ जरूरी नहीं है कि उस सुवर्ण-मुद्रा का प्रचार होवे ही या वह सचमुच में विनिमय-साधन हो। मगर उसे पदार्थों का मूल्य-मापक कानूनन निश्चित कर देना होगा। एक बार यह बात निश्चित हो जाने पर फिर यह सवाल न रहेगा कि हमारे रुपये की कीमत है १८ पेन्स या १६ पेन्स। उस समय आन्तरिक प्रचार के लिए रुपया केवल एक संकेत मात्र रह जायगा। हमारे विनिमय का हिसाब लगेगा इंग्लैण्ड के सोवरेन और हमारी सुवर्ण-मुद्रा के वजन के अनुपात से। अगर एक सुवर्ण-मुद्रा कानूनन निश्चित कर दी जाय तो फिर वैदेशिक विनिमय का संभ्रत न रहेगा। वह अपने आप ही ठीक चलेगा। यह कहना कि सुवर्ण का धातु-प्रमाण सुवर्ण का ही प्रमाण है सरासर धोखा देनेवाली बात है।

(२) इसके अलावा सुवर्ण का धातु-प्रमाण सुवर्ण का उत्तम प्रमाण भी नहीं है क्योंकि अगर वह सुवर्ण का प्रमाण ही नहीं है तो फिर उसका उत्तम प्रमाण होना तो दूर की बात है। इसके पक्ष में एक दलील यह पेश की जाती है कि इससे आन्तरिक चलन में सोने की क़िफायत होती है। अब आन्तरिक चलन में सोने की क़िफायत करने के दो तरीके हैं: एक तो कानूनन सुवर्ण-मुद्रा का प्रचार बन्द कर देना, दूसरे सभी विनिमय साधनों का सोने में बदला जाना संभव कर देना, और इस प्रकार चेकों और कागजी मुद्रा के व्यवहार में साल जमाना। दूसरा तरीका ही अधिक प्रचलित है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक सही है। सन् १९१४ के पहले यही सारे संसार में प्रचलित था और 'सुवर्ण-प्रमाण' के नाम से अभिहित था। इंग्लैण्ड जैसे कुछ देशों में अगर पहला तरीका चालू है तो उसका कारण यह नहीं है कि वही अधिक पक्का तरीका या इस बात है बल्कि यह है कि यही एक तरीका चल सकता है क्योंकि उसकी कागजी मुद्रा को चुकाने लायक उसके पास सोना ही नहीं है। इंग्लैण्ड के सिर पर जो लाचारी की दवा के तौर पर आ पड़ता है उसे हिन्दुस्तान के लिए अनुकरणयोग्य आदर्श तो नहीं बनाना चाहिए।

(३) सुवर्ण धातु-प्रमाण, जिसके लिए करेन्सी कमीशन ने सलाह दी है, इंग्लैण्ड की वर्तमान मुद्रानीति की नकल नहीं है। इंग्लैण्ड में मूल्य की इकाई सोने का सावरेन है और वैदेशिक विनिमय कोई ठीक करता नहीं मगर प्राकृतिक रीति पर चलने को वे छोड़ दिने जाते हैं। मूल्य की इकाई होगी सुवर्ण धातु-प्रमाण के अधीन

चाँदी की सांकेतिक मुद्रा (रुपया) और हमारे विनिमय की ठीक करनी सरकारी अफसरों के हाथ रहेगी जैसा कि वे गत वर्षों से करते आये हैं, सिवाय तब जब कि, जैसा लम्बे जमाने में हुआ था, दर नियत करना ही असंभव हो जाय। (यं० इ०)

पी. ए. वाहिन

### अभय आश्रम

(गताङ्क से भागे)

#### प्रचार

आश्रम के पास खहर, चर्खा, राष्ट्रीयता इत्यादि के प्रचार लिए पाँच मैजिक लेन्टर्न हैं। साल के भीतर हमारे कार्यकर्ता ने काफी दौरे किये। फरवरी महीने में, आश्रम के वाषिष्ठियों के साथ, खादी प्रदर्शनी की जाती है जिसमें, चर्खा खहर की हर प्रकार की उन्नति दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है। चर्खा दंगल का भी प्रबन्ध होता है और पुरुष और कतवैयों को तमगे दिये जाते हैं। परसाल सब से अच्छे सुवर्णवाले को सोने का एक तमगा दिया गया था। जुलाई को नकशे बुनने में उत्साहित करने को जब तब इनाम दिये जाते हैं। नये नमूने बुनना सिखाने के लिए एक घूमनेवाले बुनवैये रखे गये हैं। इसके अलावा प्रान्त के प्रायः सभी सुवर्ण खादी-प्रदर्शनों में हम बिक्री के लिए अपनी खादी भेजते हैं। कलकत्ते के मुख्य दैनिकों में जब तब लेख भी छपते हैं। जहाँ के मुताबिक विज्ञापन भी छाप कर बाँटे जाते हैं।

हम लोगों ने देखा है कि नयी इकानें खोलने से खादी की बिक्री में बहुत वृद्धि होती है। इस लिए इस साल हम मुख्य गांवों, शहरों और सब डिविजनों में १२ नये केन्द्र खोले हैं।

#### खहर के दाम में कमी

खहर के दाम में बहुत कमी हुई है। वेशक, कपास का दाम भी बहुत घटा है। मगर सिर्फ एक इसी कारण से खहर का दाम नहीं घटा है। सूत में साधारण उन्नति होने से बहुत से जुलाहे खुद खादी से आकर्षित हो कर आये हैं और इस लिये बुनाई की दर घटी है। कोमिला में हमारे यहां बुनाई की दर घटने का हिसाब इन अंकों से मालूम होगा।

“८x४४” एक जोड़ी धोती की बुनाई

१९२४

१९२५

१९२६

१-८-०

१-४-०

से १-२-० तक

१-२-० से १-०-० तक

हमें आशा है कि बुनाई की दर पहले से कभी और नीचे गिरेगी। रुताई की दर भी फी पाउन्ड एक आना गिरी है। हमें विश्वास है कि अगर आगे कुछ दिनों तक यही हालत रही तो खादी का दाम उसी हिसाब से कम हो जायगा जिससे बुनवैयों और कतवैयों की दक्षता बढ़नी जायगी। खादी के दाम में कमी का पता इन अंकों से चलेगा:

“८x४४” एक जोड़ी धोती का दाम

१९२४-२५

१९२६ (शुरु में)

अब

रु. ५-०-०

रु. ४-८-०

रु. ३-१०-०

हमें आशा है कि तुरत ही हम उसे और भी सस्ते बँच सकेंगे।

यहां इसी साथ यह लिख देना भी मनोरंजक होगा कि हमारा खादीकार्य बिना किसी घटी के चलता रहा है। उत्पत्ति के साथ २ खहर की माँग भी बढ़ती नहीं गयी है। इसके अलावा मिल के कपड़ों के दाम की कमी भी खादी के लिए बाधक हुई है। जब तक हम खादी सस्ती नहीं तैयार करते और उसके लिए अधिक जवर्दस्त प्रचार का प्रबन्ध नहीं करते, खादी की प्रगति में उसी चाल से अब उन्नति न होगी जैसी की पिछले दो सालों से हुई है। (यं० इ०)

(समाप्त)



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका २)  
एक प्रति का १)

हमारी बेवसी

# हिन्दी नवजावन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २५ ]

संपादक—  
सामी आनंद

अहमदाबाद, माघ सुदि १, संवत् १९८३

गुरुवार, ३ फरवरी १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारांगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३  
अध्याय ९

सादगी

मेरी का आदर तो किया मगर वे टिक न सके। पहले के ऐसा घर बनाने में मुझे मोह नहीं उपज सका। इस लिए घर बनाने की मैंने खर्च कम करने का निश्चय किया। धोबी का खर्च भी कम किया। मैंने अपने धोबी को बतला दिया कि वह धोने के लिए दो तीन दर्जन कमीज और कालर से भी मेरा काम न करता था। कालर रोज ही बदलना चाहिए और कमीज रोज नई तो दूसरे दिन तो जरूर ही। इससे दोनों ओर से अधिक खर्च पड़ता था। यह मुझे नाकाम मालूम हुआ। इस लिए धोने का प्रयत्न ठीक किया। धोने की कला की विताव पढ़ कर धोना सीखा। पत्नी को भी सिखाया। वोश्रा कुछ तो बड़ा ही मगर काम था इस लिए विनोद होता था।

अपने हाथों धोया हुआ मेरा पहला कालर तो मैं कभी नहीं पहन सका। इसमें मांडी खूब चढ़ी थी और इल्ली पूरी गर्म न थी। कालर जल जाने के डर से इल्ली ठीक दबायी नहीं। इससे वह कड़ा तो बना मगर उसमें से मांडी झरती थी।

ऐसी हालत में मैं अदालत में गया और बारिस्टरों के मजाक का शिकार बना। मगर ऐसे मजाक सह लेने की शक्ति उस समय मुझ में ठीक थी।

अपने हाथों कालर धोने का यह पहला ही मौका है इस लिए मुझे मांडी झरती है। मुझे इससे कुछ अहचन नहीं होता। मैंने उस सब लोगों को इतना आनन्द मिलता है, यह और भी अधिक बड़ा हुआ।

एक मित्र ने पूछा, 'मगर धोबी क्यों नहीं मिलता?'

'नहीं धोबी का खर्च तो मुझे असह्य मालूम होता है। धोने के काम के बराबर तो धुलाई ही गयी है और उसपर भी धोबी को गुलामी करनी। इससे तो मैं अपने हाथों धोना ही प्रयत्न करता हूँ।'

सादगी की यह खूबी मैं मित्रों को समझा न सका। मुझे कहना चाहिए कि पीछे मैंने अपने काम लायक धोबी के लिये मेरी भी काफी निपुणता प्राप्त कर ली और धोबी की धुलाई

से घर की धुलाई जरा भी उतर कर न होती थी। कालर का अहचन और चमक धोबी के धोये कालर से कम न होती। गोखले के पास महाद्व गोविन्द राणाडे की प्रसादी रूप एक चादर थी। यह चादर गोखले प्रतिशय यत्न से रखते और खास खास मौकों पर ही काम में लाते जोहान्सवर्ग में उनके सम्मान में दिये गये भोज का प्रमंग महत्वपूर्ण था। द० अफ्रीका में उनका यह सब से बड़ा भाषण था। इस लिए उस अवसर पर वह चादर ओढ़ने की थी। वह मैली हो गयी थी और उसमें इल्ली करने असंभव था। मैंने अपना हुनर आजमाने का तरतु, इल्ली करा लेना

'तुम्हारी वकालत का मैं विश्वास करता हूँ मगर तुम्हारी धोबी कला का उपयोग करने को अपनी चादर न दूँगा। इस दुपटे को तुम अगर जला डालो तो? इसकी कीमत क्या तुम जानते हो?' ऐसा कह कर बहुत अलास के साथ उन्होंने मुझे प्रसादी की कथा सुनायी।

मैंने विनय की और जला न डालने का वचन दिया। मुझे इल्ली करने की इजाजत मिली। मेरी कुशलता का प्रमाणपत्र मुझे मिल चुका। अब अगर दुनिया मुझे प्रमाणपत्र न भी दे तो क्या हुआ?

जैसे धोबी की गुलाबी से छूटा, वैसे ही हजाम की गुलामी से भी छूटने का प्रसंग आया। हजामत (दाढ़ी) बनाना तो विलायत जानेवाले सभी कोई सीखते हैं मगर मुझे इसका खयाल नहीं आता कि बाल काटना भी किसीने सीखा हो। प्रियोरिया में एक बार मैं एक अंग्रेज हजाम की दूकान में पहुँचा। उसने मेरी हजामत बनाना इनकार किया और इनकार करने में जो तिरस्कार किया, वह तो अलग ही है। मुझे दुःख तो हुआ। मैं बाजार में गया। बाल काटने का साँचा खरीदा और आरसी के सामने खड़े हो कर बाल काटे। जैसे जैसे कटा तो सही पर पीछे के बाल काटने में बहुत मुश्किल हुई। सीधा तो नहीं ही कटा। अदालत में खूब हँसी हुई।

'तुम्हारे बाल चूहा कतर गया है।'

मैंने कहा, 'नहीं। मेरे काले माथे को गोरा हजाम क्योंकर छूए? इस लिए जैसा तैसा भी अपने हाथों कटा बाल मुझे अधिक पिय है।'



१९४

हिन्दी-नवजीवन

३ फरवरी, १९२७

इस जवाब से मित्रों की आश्चर्य न हुआ सबी दृष्टि से देखने पर हज्जाम का कोई दोष न था। अगर वह काले लोगों के बाल काटे तो उसकी कमाई जाय। हम क्या, ऊंची जातिवाले हिन्दुओं के हज्जामों के पास अछूतों के बाल काटने देते हैं? इसका बदला ६० अणोंका में मुझे एक नहीं, बल्कि अनेकों बार मिल चुका है। मेरी ऐसी समझ होने से कि यह परिणाम अपने ही दोषों का है, मुझे कभी इस बात पर रोष न हुआ।

स्वावलम्बन और सादगी के मेरे शौक ने आगे चल कर जो तीव्र स्वरूप पकड़ा उसका वर्णन तो उसके स्थान में ही आवेगा। किन्तु उस वस्तु का मूल तो असल से ही था और उसके फैलने के लिए केवल सिँचाई की ही जरूरत थी। वह सिँचाई अनायास ही मिल गयी।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## टिप्पणियाँ

गंदी गया

हिन्दुओं के तीर्थों में राजा स्वरूप गया की गंदगी का मैं विहापन करना नहीं चाहता। शहर की एक मुख्य सड़क के बीच मैके से भरे गटे की दुर्गंध के कारण जब मेरी हिन्दू आत्मा प्रस्त हो उठी तो मैंने लाचार हो कर म्युनिसिपैलिटी के मान-पत्र के उत्तर में इस ओर विशेष ध्यान खींचा। मैं जानता हूँ कि और तीर्थस्थान भी काफी गन्दे हैं मगर गया में जो देखा है, वैसा कहीं देखने की याद मुझे नहीं आती। यह संभव है कि दूसरी तीर्थ भूमियों के गन्दे हिस्सों में मैं नहीं ले जाया गया होऊंगा। मगर गंदगी को तौलने के लिए सोने के तराजू नहीं चाहिए। गया का नाम तो मैं केवल बतौर उदाहरण के लेता हूँ कि दूसरी अपने नगरों की सफाई। म्युनिसिपैलिटी की दलादली, राजनीति के सगवों, बगैरह सभी बातों से अधिक महत्व इस एक बात को देना चाहिए। ठीक उसी प्रकार से जैसे कि म्युनिसिपैलिटी के आमदखच का हिसाब शुद्ध और शक न करने लायक रखना सभी दलों का कर्तव्य है, वैसे ही शहर की सफाई भी बिल्कुल दुरुस्त और शक न करने लायक रखना हर एक दल का पवित्र कर्तव्य है। हर एक म्युनिसिपैलिटी को अपने आप को सफाई सिखाने का स्कूल बना लेना चाहिए। शहर की सफाई के विषय में हमें अभी पूरा ज्ञान नहीं है। जब तक हमारे घर साफ हैं, हम अपने पड़ोसियों की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। अपनी मोरियों से हम काम लेना नहीं जानते। इसे मानना ही पड़ेगा कि हमारी म्युनिसिपैलिटियों के सिर पर, इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने का कठिन काम है। मगर मुश्किल चाहे कितनी ही हो पर इसे हल करना ही होगा। उन पवित्र नगरों में जहाँ हर घाब काखों लाख आदमी जाते हैं, यह और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। गया में मैंने जो मेला गढ़ा देखा उसके वैसा रहने का कोई कारण न था। लोगों को नदियों के किनारे क्यों बिगाड़ने दिये जायें? म्युनिसिपैलिटियाँ अगर यह निश्चय कर लें कि वे अपने शहरों का वैसा ही खयाल करेंगी मानों वे उनके अपने ही घर होवें तो बिना किसी कठिनाई के, नगर निवासियों की ओर से बिना बाधा के, वे बहुत काम कर लेंगी।

मगर कठिनाई तो अपने ही भीतर से पैदा होती है। म्युनिसिपैलिटी के सदस्य प्रायः आप ही उदासीन होते हैं और कभी-कभी अपने ही जुने हुए अध्यक्ष के रास्ते में रोड़े अटकाते

हैं। कभी तो वे आपस के झगड़े में ही लगे रहते हैं और सफाई की ओर असावधानी दिखलाते हैं। अब तो हमें अपने नागरिक कर्तव्य का पूरा भान होना ही चाहिए। इस बारे में हमें पश्चिम से अभी बहुत कुछ सीखना है। पश्चिमवाले बड़े शहरों के बनानेवाले हैं। ताजा हवा, स्वच्छ पानी, और साफ सड़क के महत्व को वे जानते हैं। जो कोई शहर अपनी सफाई की ओर उचित रीति से ध्यान देगा, उसके निवासियों के स्वास्थ्य और समृद्धि में उन्नति होगी। इस बारे में पवित्र नगरों को रास्ता दिखलाना चाहिए। उनको वे अवसर प्राप्त हैं जो दूसरे शहरों को नहीं हैं। इस अंगरेजी कहावत में कि 'स्वच्छता पवित्रता का माता है,' बहुत, बुद्धिमानों भरी पड़ी है। अपने २ समर्थों के निरूपण स्वच्छता के नियम मनु, मूणा और मुहम्मद सभी को मिले हैं। वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार उनमें बढती जा रही होगी। इतना ही जानना काफी है कि इन प्राचीन शास्त्रकारों स्वच्छता को सच्चे धर्म का एक अंग माना है।

चर्खा-संघ की खबरें

अ० भा० चर्खा-संघ ने भले तौर पर साल शुरू किया है। गत वर्ष २० जनवरी १९२६ को इसके प्रथम श्रेणी २३३४ और दूसरी के ४१५ सदस्य थे। इस साल भी ११ दिन सदस्यों की संख्या थी, पहली श्रेणी में १४५८, दूसरी ११५ और बाल श्रेणी में १५९; इन १४५८ सदस्यों में ११ तो पुराने हैं और २४६ नये सदस्य बने हैं। गत वर्ष निश्चित रूप से सूत देने वाले १०७७ सदस्य थे। यानी इस वर्ष भी १३५ और नियमित सदस्य मिले हैं, और कलालावा नये सदस्य अलग ही हैं। अब जो गत वर्ष के सदस्य थे, वे भी नये सदस्य बन जायें।

शिक्षण विभाग ने सदस्यों के सूत की जाँच करना शुरू कर दिया है। ४६४ सदस्यों के सूत की अब जाँच हो चुकी है और उनका फल उन्हें बतला दिया गया। अब सूत की रसीद में समानता, अंक, और मजबूती के भी जगह रहा करेगी।

शिक्षण विभाग के जाँचे हुए कुछ भले और बुरे नमूनों का फल नीचे दिया जाता है:

अच्छे नमूने

	मजबूती	समानता
वी. एच. डंडेकर, बनारस	९४	९४
बेलजी लखमसी नप्पू, बंबई	८७	९६
वी. वी. जेराजानी बंबई	८७	६
गोविन्द भाई पटेल, गुजरात	८७	९३
भाई लाल बाजीभाई, गुजरात	८६	९२
परभुदास सरैया, गुजरात	१००	७९

बुरे नमूने

	मजबूती	समानता
खेरातीराम, आमदपुर	१३	९३
रामधर रामलोड, महाराष्ट्र	२३	७५
धीरेन्द्रनाथ दास गुप्त, आसाम	१८	७२
रामचन्द्र डंडेकर, महाराष्ट्र	२५	७२

बुरा से भला और भले से अत्यन्त सुन्दर बनाना सब का उद्देश्य होना चाहिए।

चर्खा-संघ के सभी एजेन्टों की सूचना दी गयी है कि अपने यहां के सभी किस्मों के कपड़ों के ४,४ गज नमूने



## पदों को फाड़ फेंको

जब कभी मैं बंगाल, विहार या संयुक्तप्रान्त में गया हूँ, मैंने वहाँ पदों की प्रथा का और जगहों से अधिक कड़ा पालन देखा है। मगर जब कि मैंने दरभंगे में, रात के समय, शोर-गुल से दूर, और अदम्य भीड़ों से अलग, एक सभा में भाषण किया तो मेरे सामने पुरुष थे और मेरे पीछे पदों की आड़ में खियाँ थीं, जिनका पता मुझे तब तक नहीं चला जब तक मुझे बतलाया नहीं गया। यह समारोह था एक अनाथालय को खोलने के संबंध में मगर मुझे पदों के भीतर की महिलाओं से भाषण करने को कहा गया। उन पदों को देख कर जिनके पीछे मेरी श्रोता मंडली थी, जिनकी संख्या का मुझे कुछ पता न था, मुझे शोक हुआ। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और मेरी जिल्लत हुई। मैंने पुरुषों की ओर से पदों को बचाये रख कर हिन्दुस्तान की स्त्रियों पर किये जाते हुए अत्याचार पर विचार किया। चाहे किसी जमाने में इसका कुछ भी मतलब न रहा हो मगर अब तो यह पाशविक प्रथा बिल्कुल बेकार है और इससे देश को असंख्य हानि हो रही है। अखीरी १० वर्षों में हमने जो कुछ शिक्षा पायी है, हम पर उसका कुछ भी असर न पड़ा सा मालूम होता है क्योंकि मैं देखता हूँ कि शिक्षित परिवारों में भी पर्दा बचा हुआ है और इस लिए नहीं कि वे शिक्षित पुरुष इसमें विश्वास रखते हैं किन्तु वे इसका मर्दानगी से विरोध न करेंगे और इसे एक बार्गी ही मार न भगावेंगे। स्त्रियों की सैकड़ों सभाओं में हजारों स्त्रियों से मुझे बोलने का अवसर मिला है मगर वहाँ के शोरगुल के कारण सभा में आयी हुई स्त्रियों से बोल कर कुछ प्रभाव डालना असंभव हो जाता है। जब तक वे अपने आँगन और घर के पिंजड़ों में बंद हैं, उनसे और किसी अच्छी बात की आशा नहीं की जा सकती। इस लिए जब वे अपने को एक बड़े कमरे में जमा पाती हैं और उनसे आशा आता कि वे आप क्या करें और भाषण क्यों सुनें जब शास्त्री छु जाती है तब भी रोजमर्रा की साधारण बातों में भी उनकी रुचि पैदा करना कठिन मालूम पड़ता है क्योंकि उन्हें कभी स्वतंत्रता की ताजा हवा का साँस लेने तो दिया नहीं गया। मैं जानता हूँ कि यह चित्र कुछ बड़ा कर खींचा गया है। इन हजारों बहनों की, जिनसे मुझे बोलने का अवसर दिया जाता है, बहुत ऊँची सुसंस्कृति को मैं खूब जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुषों की स्थिति तक वे चढ़ आ सकती हैं। मुझे यह भी मालूम है कि उन्हें बाहर आने का भी अवसर मिलता है मगर यह पुरुषों के लिए कुछ तारीफ की बात नहीं है। सवाल यह है कि वे और बाहर क्यों नहीं आयी हैं? हमारी स्त्रियों को भी वह स्वतंत्रता क्यों नहीं प्राप्त है जो पुरुष भोगते हैं।

पवित्रता कुछ पदों की आड़ में ही रखने से नहीं पतपती। बाहर से यह लादी नहीं जा सकती। पदों की दीवार से उसकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। और अगर उसका कुछ मूल्य होना है तो वह सभी प्रकार के विनयुल्लाप आकर्षणों का सामना करने योग्य होनी चाहिए। वह तो सीता की पवित्रता सी उद्धत होगी। अगर वह पुरुषों की नजर को सहन न कर सके तो उसे बहुत ही साधारण चीज कहना होगा। मर्दों को अगर मर्द होना है तो उन्हें इस लायक बनना होगा कि अपनी औरतों का वे वैसा ही विश्वास कर सकें जैसा कि औरतों को उनका करना पड़ता है। हमारे एक अंग में पूरा या अधूरा ही सही मगर लकवा मारे हुए न

जिस सूत के वे कपड़े बुने गये हों, उसकी एक एक लच्छियाँ, भेजें जिसमें कपड़े की जाँच की जा सके और देश में बनने वाले भिन्न २ प्रकार के कपड़ों की सूची तैयार हो सके। अभी तक सिर्फ ५ कैन्ट्रों ने ही इसकी तामील की है और उन्होंने भी सभी सबालों का ठिकाना से जवाब नहीं लिखा है। मैं आशा करता हूँ कि दूसरे और अधिक देर नहीं करेंगे और जिन्होंने अभी उत्तर भेजा है, वे उसे पूरा कर देंगे। हर एक टुकड़े के साथ एक चिट में नीचे लिखी बातें लिखी रहनी चाहिए।

१ सारे थान की लम्बाई —

२ पनहा

३ तानी और भरनी में सूतों की संख्या

४ एक गज का वजन

लागत खर्च — बिक्री की दर

कितने लोग चर्खे के इनामवाले लेख की प्रतियाँ वी. पी. पी. से भेजना चाहते हैं। रजिस्ट्री खर्च के अलावा, इसमें देर और असुविधा भी बहुत होती है। एक वी. पी. लॉट भी आयी। आगे से वी. पी. नहीं भेजी जायगी। जिन्हें लेना होवे वे एक रुपये ढाई जाने मनिआर्डर से भेजें।

### अस्पतालों में खादी

अ० भा० चर्खा-संघ के बंबई खादी सेंडार की बहुत ही तेजक बातों से भरी हुई (गुजराती) रिपोर्ट में बंबई कार्पोरेशन के दिग एडवर्ड मेमोरियल हास्पिटल में ११०००) रु. की खादी की बिक्री का उल्लेख मैंने देखा। वहीं पर खरीदी गयी वस्तुओं की सूची भी दी हुई है। उसमें गदेलों के खोल, तकियों के कोर, शायरों के जूते, लेनिंग नौलिये पदें, डाक्टरों के शूज, गजबामे, कोट, घाघरे, रात को पहनने के कपड़े, टैबुल की जारों, सोसा पोंछने के गमछे, खिडकी के पर्दे, डाक्टरों के झड़े, उजले कंबल वगैरह कितनी चीजे हैं। अगर सभी राष्ट्रीय या सामगी अस्पतालों तथा ऐसी दूसरी संस्थाओं में खादी का व्यवहार होने लगे तो केवल अकेले वे ही हिन्दुस्तान में आज जितनी खादी बनती है सब खपा लेंगी। इसका अर्थ यह नहीं होगा कि कुछ भी खादी बचेगी ही नहीं; क्योंकि जब खादी की माँग व्यापक हो जाने के कारण वह वैसे ही बिकने लगेगी जैसे कि थी, तब कार्यकर्ताओं को बिक्री की फिक्र न रखनी पड़ेगी और वे केवल उत्पत्ति का ही संगठन करते रहेंगे और माँग को पूरा करने के लिए वेदद खादी बनने लगेगी। हाँ, मगर इसका भी कोई कारण नहीं है कि सरकारी संस्थाएँ भी खादी क्यों न धेवें। मगर वह तो हृदय के परिवर्तन का चिह्न होगा। कान्तिबलों के स्वराजी सद्स्य, इस विषय में सरकार की कम से कम बाँच तो कर सकते हैं।

(२० ई०)

भा० क० गांधी

चर्खे पर जिन दो लेखों के लिए १०००) रु. का इनाम दिया गया था उन दोनों की एक नयी पुस्तक तैयार कर के कम्पनी से छप गयी है। जिन्हें लेना हो वे उसे एक रुपया देकर आने भेज कर चर्खा-संघ कार्यालय, अहमदाबाद या 'इस्ट पोस्ट' प्रेस से भेगावें।



होना चाहिए। राम का कहीं ठिकाना न लगे अगर सीता भी उन्हीं जैसी स्वतंत्र और स्वाधीन नहीं होती। मगर स्वतंत्रता के लिहाज से द्रौपदी का उदाहरण शायद ज्यादा माकूल होगा। सीता कामलता का अवतार थी। वह नाजुक फूल थी। द्रौपदी थी विशाल वटवृक्ष। अपनी अदम्य इच्छा के आगे भीम को उसने झुका दिया। सच के लिए भीम मंथकर ये मगर द्रौपदी के सामने वह भी शान्त गाय बन जाते। पाण्डवों में से किसी की भी रक्षा की उसे जरूरत न थी। हिन्दुस्तान के खोखले विकास का आज हम विरोध करके हिन्दुस्तान के पुनरुत्थन के विकास को रोक रहे हैं। अपनी स्त्रियों और अछूतों के प्रति हम जो कमई करते हैं वही हजार गुणा बढ़ कर हमारे आगे आती है। हमारी निर्बलता, अनिश्चयता, सकीणता और बेवसी का यह एक कारण है। इस लिए हम एक बार महान् प्रयत्न करके इस पदों को फाड़ फेंके।

( यं० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी

# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदि १, संवत् १९८३

## हमारी बेबसी

करमान निकल गया है। एक हिन्दुस्तान अपनी सेना चीन देश में भेजेगा; दरअसल में उन्हें उनकी आजादी के जंग में दबाने के लिए मगर ऊपर से कहा जाता है कि विदेशियों को रक्षा के लिए। बड़ी धारा सभा को इसमें बाले न दिया गया। इस मन्त्रालय पर उसकी दस्तखत करनी नौदानों समझा। असम्बली के अपने भाव प्रगट करने से राकने के लिए यही काफ़ी था।

अधेश्वरी के सदस्यों के लिए सिर्फ विचार ही करने नहीं मगर हिन्दुस्तान की वैदेशिक नाति का निश्चय करने के लिए भी, जिस अधिक से अधिक महत्व पूर्ण सवाल की कल्पना भी की जा सकती है उससे यह कम महत्वपूर्ण नहीं है। हमारी बेगसी इससे अधिक खुलासा कभी नहीं दिखायी पड़ता जब कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों को बेशर्मी से दूसरी की आजादी छानने को भेजा जाता है। दुनिया के एशियायी और दूसरा गैर यूरोपियन लोगों को छूटने की कुंजा सचमुच हिन्दुस्तान ही है। आज सिर्फ अपने आपको ही छूटने के लिए उस गुलामी में नहीं रक्खा जाता बल्कि उसके नजदीक या दूर के पड़ोसिया को भी छूटने के लिए।

कोई ताज्जुब नहीं है कि वायसराय ने स्पष्ट शब्दों में जोर देकर अपने बयान में कहा कि इस नामधारी सुधार में कुछ भी बढ़ता कराने के लिए हिन्दुस्तान को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के आगे सुटने टेक कर भीख माँगना पड़ेगा। बतौर एक के हिन्दुस्तान को कुछ नहीं मिल सकता। ऐतिहासिक घटनाओं के संयोग से इंग्लैण्ड को हिन्दुस्तान की भी-मिकियत मिली। जब तक हो सकता, वह उस रखेगा। सभी सुधार इस एक बहुत बड़ी शर्त के मुताबिक ही होंगे।

अतः यहाँ एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसे कोई भी स्वामिमानी  
हिन्दुत्ववादी मान नहीं सकता। अमजो की हकूमत ही वह एक बात

है जिसे हिन्दुस्तान बर्बाद नहीं कर सकता । इसी बात को बिल्कुल  
खुलासा करने के लिए स्वतंत्रता-वादियों ने देश का अन्तिम  
ध्येय मुकम्मिल आजादी ( पूर्ण स्वातंत्र्य ) बनाने को गोहाटी  
में इतनी लड़ाई की । उसी घड़ो उनकी मुराद पूरी न हो सकी,  
इसकी उन्हें कुछ पर्वा नहीं है । वे तो चाहते थे कि कौम  
एक यही मंजिले मकसूद माने और दूसरा कोई नहीं ।

मेरे ऐसे आदमी मनुष्य जाति के स्वभाव में अपने विश्वास पर अटल रहते हैं और चाहे इसके विरुद्ध लक्षण कितने न दिखायी पड़े मगर वे तो घमंड से चूर अंग्रेजी दिमाग को भी झुकाने की जुगत रखते हैं । मगर चाहे वह उपनिवेशों की सी स्थिति होवे चाहे और कोई भी, मगर अंगरेजों के नीचे रहना वे नहीं चाहते । चाहते हैं पूर्ण समता । यह निश्चय करने का अधिकार कि हमारे सैनिक क्या करें, कहाँ जावें, हमें होना चाहिए न कि अंगरेजों को ।

यह सच्ची जीवन-शक्ति सुधारों को हाल में चलाने से नहीं मिलेगा। वह ताकत तो अन्दर से, भीतर से ही पैदा करनी होगी। तब कोई भी शासन-पद्धति हो हम उसे चला सकेंगे। आज चाहे किसी प्रकार को शासन-पद्धति हमें दी जाय, उसे चलाने में हम अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। लोगों के ऊपर हमारा जल्दी प्रभाव नहीं है सिर्फ सच्ची और निःस्वार्थ सेवा करने से ही वह असर मिलेगा जब तक इस असल बात को हम समझ नहीं लेते हमारे सभी कामों का नतीजा 'कुछ नहीं' निकलेगा।

हम वारे में मैं जो चखें का नाम लूं तो जेसन्न पाठक हूँ  
नहीं । मैं कहता हूँ कि प्रजा के साथ हमारे लिए जीवन  
सम्बन्ध स्थापित करना असंभव है अगर हम उन्हींके बीच  
जाकर, उन्हींके लिए काम न करें और वह भी उन्हींके

अब अधीर पाठकों को सपना लेना होगा कि जिन जन-समूहों के लिए उन्हें काम करने को कहा जाता है, जिनके नाम पर वे बोलना चाहेंगे, वे नंगे हैं, भूखों मरते हैं और साल में अधिकतर जबरन बेकार रखे जाते हैं। चीन संबंधी प्रस्ताव पर वायसराय की बंदी आर सुधारों के विषयों में उनके खुला बयान से हमारी आंखें खुल जायें और हम कच्चे सत्य को देख सकें।

चीन को हिन्दुस्तानी सेना भेजने की यह बात अधर्म-नीति है और यह अच्छा ही हुआ कि कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस मुआमले से अपना हाथ धो लिया है। स्वातंत्र्य-संग्राम में लड़ने वाले चीनी जान लेवें कि हिन्दुस्तानी सेना उनके देश में जायगी तो सिर्फ इस लिए कि अगर उनसे भी अधिक बेबस होना मुमकिन हो तो हम बड़ी हैं। यह पहला ही मौका नहीं है जब हिन्दुस्तानी सैनिक चीनियों की आजादी छीनने जायेंगे। अपने अमर ग्रन्थ 'जान चाइना मेन के पत्र' से लो डिकिन्सन ने दिखाया है कि चीन के ऊपर अफीम लाने को हिन्दुस्तानी सैनिकों को किस प्रकार काम में लाया गया था। हम जानते हैं कि झूठ में किस्तानी कहलाने वाली ताकतों ने चीन में क्या किया है। मगर जो देश अपनी स्वाधीनता की कीमत देने को तैयार है उसे कोई भी बहुत दिनों के लिए गुलाम नहीं रख सकता। चीन के लिए यह भला ही है कि वह आवश्यक साम देने को तैयार सा माछम पड़ता है।

( यं. इं. )

मोहनदास करमचन्द गांधी



को बिलकुल  
अन्तिम  
गोहाटी  
हो सकी,  
ये कि कौम

ने विश्वास  
कितने न  
ग को भी  
शों की सी  
चे रहना वे  
य करने का  
हमें होना

ने से नहीं  
ही पैदा  
हो हम  
सन- पद्धति

नहीं है  
मिलेगा  
हमारे सम

पाठक हों  
ए जीवन  
उन्हींके बी  
भी उन्हीं

जिन जन  
जिनके ना  
साल

प्रस्ताव प  
के खुलाप  
य को दे

अधर्म-नीति

मैं जायगी

नहीं है जब अपने

केन्सन ने  
हिन्दुस्तानी  
जानते

चीन में  
सीमा देने

गुलान  
आवश्यक

द गांधी

बंदर की उड़ान जारी है और अभी चलती ही रहेगी।  
 जल्द ही हम लोग ३० तारीख को पटने  
 पहुँचेंगे। अनगिनत लोगों की जीब और अत्यन्त बड़ी बड़ी सभाएँ  
 भर बयाल होता है कि क्या इससे और अच्छा कार्यक्रम नहीं  
 बनाया जा सकता था? मगर इसमें प्रबन्धकों का कुछ दोष नहीं  
 क्योंकि हम देखते हैं कि सभी किसी को सन्तुष्ट करने के लालच  
 करने पर भी वे सबको सन्तुष्ट नहीं कर सके क्योंकि वे उन  
 ही स्थानों में गांधी जी को नहीं ले जा सके जहाँ जहाँ के  
 लोग अपने यहाँ भी उनका आना चाहते थे। आखिर जब हम  
 पटने में पटने पहुँचेंगे तो आराम की उतनी खुली सांस न  
 ले पाएँगे। ईश्वर को धन्यवाद देंगे कि गांधी जी ने इस मिहनत  
 भरे सफर में हमें ही तौर पर सह लिया। आराम तो नहीं ही होगा  
 कि हमारे आदमी जो हम लोगों को घेर लेते हैं उन्हें देख  
 उस आन्दोलन के विशाल भविष्य की आशा हृदय में भर  
 है जिसका अन्दाजा, साम्प्रदायिक झगड़ों और महासभा-  
 यों की अनेकता की रिपोर्टें निकालने वाले अखबारों को न  
 कर सकता है। जिसे शक हो वह विहार में जा देखे कि उस  
 में, जिसका गंगा और सरयू, सोन और गंडक अभिप्रेक करती  
 हैं और श्रद्धा की भी गंगा बढ़ती है जो कभी सूखेगी नहीं।  
 रामगंगा, चम्पारण, आरा और मुंगेर, ये चार जिले एक हफ्ते  
 अपने विचारों को इकट्ठा कर उन्हें ठीक कर के, चाहे कितना  
 खर्च करे, लिखना असंभव है। खैर जैसा तेज यह दौरा  
 है, उसी चाल से मैं भी इस साप्ताहिक पत्र को लिखूंगा।  
 यह—प्रमाण पुरखों को अगर चिढ़ाये बिना मैं कह सकूँ तो कहूँगा  
 रामगंगा है आज कल के तीर्थों की भूमि। तीर्थ पावन और  
 कर्मा होते हैं। और जहाँ हमारे प्राचीन तीर्थों में बाह्या-  
 र, पाण्ड और मकिनता देख कर जी घबरा उठता है, इस  
 तीर्थों — खादी कारखानों — की यात्रा करने पर हम  
 न रोते हैं और ऊँचे चढ़ते हैं। गांधी जी ने कहा कि 'तुम्हें  
 साफ नहीं चलना होगा। इस दौड़धूप में तुम कुछ भी नहीं  
 करोगे। उन जगहों में कल जाओ और जी भर कर देखो।'  
 लखी से आवा-पालन किया। इस यात्रा से मैं सिर्फ बहुत  
 थक ही न सका बल्कि मेरी आँखें खुल गयीं। आँखों का  
 जलना था और आत्मा का संतोष। पंडौल, मधुबनी,  
 और कपसिया को देख कर मानो जादू के दृश्य आँखों के  
 सामने कगते थे। बहुत ही सुन्दर बुहारें हुए आँगन में  
 बसे हुए चूल्हों से मधुर ध्वनि निकाल रही थी।  
 और अभी तक मेरे कानों में सुनायी देती है। मौलाना  
 बड़ो का दिल यह जान कर खिल उठेगा कि वे सभी की  
 सुखमान ब्रियाँ थी। दश बीस या पचास नहीं मगर पूरी  
 तो जलते अपने हुनर को दिखला रही थीं। जब कि हम  
 पर सगह रहे थे, एक भाई ने, जो हमें खुमा फिरा कर  
 निकल रहे थे, कहा, 'साहेब, यहाँ इस जवार में एक हजार  
 किसानों की परिवारों की ब्रियाँ हैं। वे कातती हैं और हम बुनते हैं। ये  
 हमें देख को देखा। इसकी पीठ में इतना बड़ा कूबड  
 रखा-होए पर ही बैठती है और उसकी अभिमानी  
 के निकलनेवाला मछली के भागे के समान उसका तागा

मानों कहता था कि अभी उसकी उँगलियों की शक्ति भगवान् ने उसे बख्श रखी है और उससे वह शायद देखनेवाले से अधिक ईमानदारी की रोजी कमा सकती है। उससे कुछ हाथ धर एक बुढ़िया माता नैठी हुई चर्खा चला रही थी। उसके उजले बालों और मुँह पर की झुरियाँ ही उसकी उम्र बताये देती थी। वह अपना महीन कोकटो का सूत कातती जाती है और अपनी धुन में हमारी पर्वा भी नहीं करती। हमने पूछा, 'तुम कब से कात रही हो?' 'सबेरे से।' फिर पूछा, 'कितने साल से?' वह हँसती है और इस सवाल पर आश्चर्य करती हुई कहती है, 'ठीक नहीं कह सकती। मगर तुम अपना अन्दाजा लगा सकते हो। मैं जब उस बच्ची के बराबर थी तब से विवाह होने के बाद से कात रही हूँ।' जिस लड़की की ओर उसने बतलाया वह उसकी परपोती के बराबर होगी। अर्थशास्त्री होने के कारण से हम पूछते हैं, 'और इससे तुम्हें मिलता क्या है?' वह कहती है, 'यही तो हमारी रोजी है।' मगर और अधिक पूछने पर उसने व्योरे बतलाये जिन्हें हमारे साथ के उस खहर पोश बुनवैये भाई को हमें समझाना पड़ा। अगर्चे कि उससे कम मिहनत कर के हम उसके दश गुणा पाते हैं मगर उसकी आमदनी से हमें ईर्ष्या होती है और हम पूछते हैं, 'तब तो तुम फुरसत के समय काम कर के हर महीने ७,८ रुपये पैदा कर लेती हो?' वह अपनी बड़ी आमदनी बतलाना नहीं चाहती थी। उसने कहा 'हां'। जिसमें हम उतावली से कुछ बड़ी बात मान न लें, इस दर से और कहा कि, 'सब को इतनी आमदनी नहीं होती। सब को इतनी फुरसत भी नहीं है, और मेरे ऐसा बुढ़िया सूत सब कातती भी नहीं हैं और कोकटो के सूत का पैसा भी कुछ अधिक मिलता है।'।

छिपो में हमें कुछ औरतें सूत के लच्छे लिये मिलती हैं जो कहती हैं कि रुई की दर गिरने से उनकी आमदनी घट गयी है। कैसे ? वे डेढ़ सेर रुई ले जाती हैं और उसका एक सेर सूत लाती हैं। आधा सेर रुई का दाम उनकी मजदूरी गिनी जायगी। इससे यहाँ की बदलौबल पद्धति के दोष मालूम पड़ते हैं।

बेलवर में कातनेवाली बहुत ब्राह्मण स्त्रियाँ हैं जिनमें लड़कियाँ अपनी सुन्दर छोटी छोटी तकलियों पर और स्यानी स्त्रियाँ चर्खों पर कातती हैं। वे अपनी मुसलमान बहिनों से निपुण नहीं हैं। उनकी सरदार है ६० वर्ष की एक बाल-विधवा। वह बतलाती है कि चर्खों का उनके लिए क्या अर्थ है। उनमें ऐसी कातनेवालियाँ हैं तो मगर कम हैं, जिनके कला-नैपुण्य की हम तारीफ़ करें। एक माता अपने बच्चे को छाती से लगाये कात रही है। उसे बड़ी आमदनी की कोई गौरवमय कथा कहने को नहीं है। मगर उससे भी अधिक अभिमान के साथ क्योंकि इसमें स्वाँ न मिला था, वह कहती है, 'कल मेरा सूत गांधी जी का हार बनाने को गया था।'

कपसिया एक गांव है जहाँ करीब २ सभी के सभी बुनवैये हाथ कता सूत ही बुनते हैं । हम लोगों ने कई घरों में जाकर देखा । मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े सभी के सभी काम में लगे हुए थे । एक प्राणी भी बेकार न था । और फिर यह एक मुसलमान बस्ती थी जिसका संगठन हिन्दू नवयुवकों ने किया था । अब कोई मुसलमान संशयालु भाई इनमें से किसी स्थान पर जावे और उन मुसलमान स्त्री पुरुषों से देशभक्ति और सहन-शक्ति का पाठ पढ़े । हम लोगों ने बैठ कर जुलाहों से बातें की । उनका मुखिया तो एक अच्छा सा व्यावहारिक भाषण दे सकता था । अपने धंधे के आर्थिक और राजनीतिक, दोनों अर्थों को वह



समझता था। 'जैसे और जगहों पर हिन्दू मुसलमान लड़ते हैं वैसे क्या तुम भी लड़ते हो?' वह बोला, 'नहीं साहेब! हम आपस में लड़ते हैं मगर वैसे ही जैसे हिन्दू लोग आपस में लड़ते हैं, मगर एक जाति दूसरे के विरुद्ध कभी नहीं। हमें वक्त ही नहीं बचता। हमारी औरतें कातती हैं और हम बुनते हैं! मुसलमान जुलाहे और हिन्दू कातनेवाल्या, भाई बहिन से हैं। मैं तो चाहता हूँ कि जब उनकी स्त्रियाँ कातती हैं तो ब्रह्मण भाई भी कुछ करते तो क्या ही अच्छा होता!' ब्राह्मणों पर उसने यह उचित ही छीटा लगाया।

मगर मुझे तेजी करनी चाहिए। चंदे के लिहाज से भी दरभंगा और मुंगेर का काम सबसे अच्छा रहा है। मैरवा की सभा के समान ही मुजफ्फरपुर की भी कुछ बड़ी सभाएँ हुईं मगर सुप्रबन्ध की कमी थी। चम्पारण के समारोहों में शोरोगुल बहुत होता था। मालूम होता है कि शायद उनकी समझ में गांधी जी पर उनका खास दावा है क्योंकि उन्होंने पहले पहल गांधी जी को मशहूर किया। मुंगेर और आरा में हुल्लड़ की हड़ हो गयी। इसका कारण शायद यह हो कि उन जिलों में गांधी जी पहले पहल गये थे। मगर तौमी चंदा तो सभी जगहों में बहुत ही अच्छा मिला। भीड़ की संख्या के हिसाब से ही चंदा मिलता था। सिर्फ एक मोतीहारी में ऐसा न हो सका क्योंकि सभा का प्रबन्ध ही ठीक न था।

इस बारे में मैं दो एक बातें कह देना चाहूँगा। सभा के प्रबन्ध के विषय में मैंने अपने अखिरी पत्र में कुछ कहा है। मंच बनाने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। वह ६,७ फीट से कम ऊँचा न होवे और उसमें ५,६ आदमियों के बैठने की जगह और चारों तरफ काफी जगह रहनी चाहिए। इससे गांधी जी को खूद-चन्दा वसूल करने में सुभीता होगा और भीड़ या किसी दुर्घटना का डर भी न रहेगा क्योंकि बहुत आदमी स्वयं गांधी जी के हाथों में पैसा देना चाहते हैं। मुंगेर में बेगूसराय का प्रबन्ध इस बारे में पक्का था। मंच कोई ६ फीट से अधिक ऊँचा था और चार मजबूत खम्भों पर अड़ा हुआ था, जिनके बीच से आदमी आ जा सकते थे। गांधी जी जब पैसा लेने को झुकते थे तब, १४ आदमी फी मिनट के हिसाब से उनके हाथों निकलते थे। उन्हें इसका सन्तोष होता था कि उन्होंने गांधी जी के हाथों में पैसे दिये हैं और वे गांधी जी के पैर भी न छू पाते थे। और पैर छूने के पीछे हमेशा बेहिजाब धक्का धुकी और भीड़ हुआ ही करती है। विहार में हम दुर्घटनाओं से बाल बाल बचते गये हैं। सुप्रबन्ध और सुसंगठन के बल से हमें दुर्घटनाओं का होना ही असंभव कर देना होगा।

यह तो कहना ही पड़ेगा कि कम समय मिलने पर भी कार्यकर्ताओं ने अच्छी थैलियाँ मेट करने में सफलता पायी थी। सभाओं की वसूली की बात ही अलग है। उनसे हमें एक अलग ही शिक्षा मिलती है। मैरवा की सभा में अगर ३२००० आदमी हम मान लें तो फी आदमी तकरीबन दो पैसा चन्दा पड़ता है। यह तो सुन्दर संगठन का ही फल कहा जा सकता है। दूसरे प्रान्तों के प्रबन्धकर्ता इसे याद रखें। चंदे का हिसाब नीचे दिया जाता है:

जगह	थैला	सभा की वसूली
मैरवा		११२२-१४-३
सवान्ही		३०५-१४-९
गोपालगंज		७२६-२-३

मीरगंज	२३०३-५-९	५३८-८
दरभंगा	५०१-०-०	२१२-५
पंडौल	३००-०-०	*
मधुबनी	१०००-०-०	*
बरगनिया	७४९-०-६	१५६-१२-११
शिवहर	३०१-०-०	३५२-९
रसौल		१७७-१२-११
गोडाशहर		६५६-०
ढाका		७२३-०
सुगौली		२०७-०
मोतीहारी		६७०-०
बैतिया		२२९१-११-
शिकारपुर		१०८९-१२-
बगहा		७३७-८
चनपटिया		४२२-५
मुजफ्फरपुर	२९३१-८-३	६५९-१
बेगूसराय	४१४२-०-०	११५१-१२-
खगडिया	१२०८-७-०	२३८-१
गोगरी		४५५-०
खडगपुर	१५५५-४-०	*
जमुई	२०१४-८-१३	३२०-७-११
स्टेशनों पर		४४४-८

[\* ऐसे फूल वाली रकमें अभी गिनी जा रही हैं।]  
अब संक्षेप में और रोचक बातों का जिक्र कर लेना और थैलियों के साथ मुजफ्फरपुर की एक छोटी सी थैली जिक्र करना होगा। खादी भंडार में गांधी जी के ७० भा० चर्खा-संघ की इस शाखा में काम करने वाले धोबियों और रंगरेजों की ओर से वह थैली मेट की गयी। एक खदरपोश धोबी ने वह थैली गांधी जी को दी। गांधी जी ने फिर कहा, 'मुझे इससे बड़ी खुशी हुई लोगों ने भी तो खूब पैदा किया होगा।' धोबी बोला, 'हां। आप की दया से अब हमारे हाथ खाली गांधी जी ने सुनाया, 'तब जान लो कि तुम लोग यह दे रहे हो, उसका भी उपयोग तुम्हारी ही गरीबी को दूर लिए होगा।' 'हमें वह मालूम है महाराज! इस शहर के सबसे अच्छे दो धोबी खदरधारी हैं। शहर शौकीन रईसों की, जो विलायती कपड़ा पहिनते हैं, प्रतिज्ञा से कुछ कष्ट तो होता है मगर हम उसे क्यों कर सकते हैं?' गांधी जी ने खुले दिल से हँस कर कहा, 'नहीं, वे चेत जायें।' दूकान में खादी भलीभाँति सभी प्रकार के कपड़े वहाँ थे। नाजुक से नाजुक निगाहें जँचने वाली रँगई और छपाई के नमूने वहाँ मौजूद थे। सौन्दर्य से प्रेम हो या जो अपने घर सजाना चाहते हों, तरह का कपड़ा चाहें माँगें और उनके मन के मुताबिक मिलेगा। मुजफ्फरपुर में विद्यार्थियों ने भी गांधी जी को घेर वहाँ के स्कूलों और एक कॉलेज के कोई १००० विद्यार्थी होने में हर एक स्थान मधुर स्मृतियों से भरा पड़ा है। उनमें एक मधुर स्मृति से गांधी जी ने अपना भाषण शुरू किया। 'मुझे पता नहीं कि आज तुम में उन पुराने रूढ़ियों में'।



है ना वही जिनके सरदार कृपालाणी थे। उन्होंने सबसे पहले जगपाल में मेरा स्वागत किया। उनके बाद के वर्षों में भी तुम्हारी तरफ से मेरी माँग की कुछ कम पूर्ति न हुई। आज क्या तुम मेरा बोधा सा न करोगे, जो मैं तुम्हें करने को कहता हूँ ? उनके बाद तो खादी और ब्रह्मचर्य पर एक बहुत ही मार्मिक बरील थी। हंग वही था जो हिन्दू विश्वविद्यालय में था। उन्होंने एक छोटी थैली दी और खादी खरीदने की माँग की। पूर्ति बूटे दिल से की। कुछ और रोचक बातें दूसरे पत्र में दूंगा।  
( ६०-६० )

विहार में खादी

२२९१-११- प्रीयुत राजेन्द्र प्रसाद ने मेरे पास अ. भा. चर्खा-संघ की  
 १०८९-११- विहार शाखा की सितम्बर १९२६ तक की सालाना रिपोर्ट मेजी  
 ७३७-७-  
 ४२२-५- निश्चित गति से प्रगति का यह लेखा है। शुरू में हस्त संस्था को जो  
 ६५९-१- अतिनाया होलनी पर्वी, उनका जिक्र करने के बाद लिखा है :  
 ११५१-१३- "खादी बोर्ड के अधीन और बाद में चर्खा-संघ के अधीन  
 २३८-१- प्रगति होने के बाद से खादी की प्रगति का पता नीचे के  
 ४५५-१- प्रगति से लगेगा :

म करने वाले अपने गांधी कुटीर की खादी की बिक्री और उत्पत्ति के मेट की गांधी मिल नहीं है। १९२६ के शुरू के पहले तक तो कुटीर को दी। गांधी का नाम प्रांतीय खादी बोर्ड या पीछे से चर्खा-संघ की विहार मिला, "देखा बाबा के काम से कहीं बड़ा चढ़ा था।"

खुशी हुई थी कि और उत्पत्ति के ८ केन्द्र हैं और ११ खादी डिपो हैं। धोबी बोना, बने लबावा ६ एजेन्सियाँ हैं और अभी और अधिक खुलने जा राथ खाली नहीं है। इनमें ६५ कार्यकर्ता हैं जिनमें दो अवैतनिक हैं। म लोग यह उनकी औसतन माहवारी आमदनी है २५) रु. इस साल २,६९८ गरीबी को दूर करने में २९,५१९) रु. बाँटे गये; ४८९ पुनर्वसियों को न। इस साल १६,६२३) रु. मिले; दो महीने में ६ दर्जियों को २३०) रु. ८। इनकार करते हैं और छपे को ६ महीने में रंग का दाम भी मिला कर री हैं। साल १९५६) रु. बिये गये; और ६ महीनों में ४० भोवियों को पहिन्ते हैं, साल १९५१) रु. मिले। यह तो कहना ही बेकार है कि कतवैये और उसे क्यों कर लेते थे। दिन भर काम करने वाले न थे। वे तो केवल ईश कर कर लेते थे समय काम करते थे।

नालुफ निब... भागे चल कर कहा है "अब तक जो उन्नति हुई  
हैं मौजूद हैं और उत्पत्ति में बढती ही की नहीं है, मगर  
चाहते हैं कि अछी और सस्ती भी बनने लगी है।" १९२३ में  
मन के मुताबिक हो गया १२ आने गज । १-०-५ ६. गज । १९२६ में वह  
गार्भाभी जी को देखा ७५ ईश जीके कपड़े की तुनाई पढती थी सवा तीन आने  
विद्यापीठिनी । अब सूत अच्छा होने से तनाही छोड़ा कपडा सवा दो  
बा है । उनमें एक सूत गुहा जाता है । दाधकता सूत बुनने के लिए अब  
कुछ किया । किसी की भी कुछ कामो नही है । इन में कुछ तो ७५ ईश  
उने कपडा बुने लेते हैं । इन्हीं, पोड के कई तरह के  
उने बिहार विद्यापीठ के एक स्नातक कर रहे हैं ।

ऐसी भाषा की जाती है कि रिपोर्ट में लोगों के ख़ास ख़तरानों की जो प्रार्थना की गयी है, वे उनके मुँह से निकलेंगे।

(11)

三三三



## असल बात

जहाँ तक मैं अभी घूम सका हूँ मैंने देखा है कि खादी कार्यालयों में कतवैयों का ठीक २ लेखा नहीं है और इस पत्र में जो आंकड़े छपे हैं, उनको कतवैयों को दी गयी मजदूरी के आधार पर से निकालना पड़ा है। आंकड़ों के खयाल से तो यह रीति काफी ठीक है क्योंकि इसमें सबी तरफ ही यानी कम बयानी की ही भूल हो सकती है। पर खास आन्दोलन के लिए यह ठीक नहीं है। चर्खा-आन्दोलन का स्थायित्व निर्भर करता है, कार्य-कर्त्ताओं और कतवैयों के बीच सच्चा और सीधा सम्पर्क स्थापित करने पर, क्योंकि तभी, उससे पहले नहीं, वे लोग कतवैयों की जरूरतें, इच्छाओं और कमियों को जान सकेंगे। उद्देश्य है, हिन्दुस्तान के दूर से दूर कोने के गांवों के असंख्य घरों में घुसना और उनमें आशा और प्रकाश की एक किरण पहुँचाना। अगर हम कतवैयों से जीवन्त सम्पर्क स्थापित न करें तो यह कमी न होगा। इस लिए हम बिच बिचवैयों के ही काम से सन्तुष्ट नहीं हो सकते जिन्हें हम न भी जानें तो चलेगा और जानते हैं भी नहीं। हमें एक एक पैसे का हिसाब देखना पड़ेगा जब तक की वह कतवैयों के हाथों में पहुँच कर सुरक्षित नहीं हो जाता। कार्यकर्त्तागण यह याद रखें कि कताई ही आन्दोलन का असल केन्द्र है; बुनाई नहीं, रँगई नहीं, छपाई नहीं, कताई के पहले की भी क्रियाएँ ओटाई और धुनाई भी केन्द्र नहीं हैं। क्योंकि आर्थिक समस्या का हल होता है अधिक से अधिक भुखमरो के लिए कोई सहायक धंधा हूँडने से। वह सब से अच्छा काम, कताई है, और जैसा कि इस पत्र में प्रकाशित भिन्न २ प्रान्तों के अंकों से मालूम होगा, कताई ही हो सकता है।

इसी अंक में प्रकाशित विहार के अंकों से ४८९ जुलाहों के लिए २,९९० कतवैयों का पता चलता है। मेरा अपना अनुभव है कि दोनों अगर बराबर समय लगवें तो १ बुनवैये के लिए १० कतवैये चाहिए। अन्तिम उद्देश्य है कतवैयों को धुनना और ओटना दोनों सिखलाना जिसमें वे बिना किसी विशेष शिक्षा के या प्रयत्न के अपनी आमदनी बढ़ा सकें। काफी बड़े पैमाने पर विहार बंगाल और मद्रास में यह हो रहा है। चर्खा-संघ अपनी हस्ती की जरूरत एक इसी तरह से सिद्ध कर सकता है कि वह उन अनगिनत लोगों की गरीबी धीरे धीरे कम कर दिखावे जिसे और किसी दूसरे तौर पर उतने कम समय में दूर नहीं किया जा सकता। इस आन्दोलन के बढ़ते हुए प्रभाव और जीवन शक्ति का भी आधार यही है कि यह करोड़ों लोगों की रूनेह के साथ सेवा करे। अभी तक उनमें से बहुत कम के साथ यह संबंध स्थापित कर सका है।

कार्यकर्त्ताओं ने मुझे सुझाया है कि अगर हर एक कतवैये का सही लेखा रखा जाय तो इसमें अधिक खर्च पड़ेगा। शायद पड़े। किसी एक केन्द्र का संचालक न होने के कारण ऐसे खाते रखने की कठिनाइयाँ मैं ठीक ठीक नहीं समझ सकता। मगर मुझे यह कहते हुए विरोध का दर नहीं है कि चर्खा जब तक अपने आप ही घर घर चलने न लगेगा और उसके मर जाने का दर बिल्कुल जाता न रहेगा, तब तक चाहे खर्च क्यों न कितना ही पड़े, कतवैयों का पूरा लेखा रखना परमावश्यक है। अगर हमें इस आन्दोलन की जब को मजबूत करना है तो ऐसा खाता रखने में जो अधिक खर्च पड़ेगा, उसे जाया न समझना चाहिए। किसी भी बैंक या महाजन के यहाँ एक एक पैसे की आमदनी और खर्च के विट्टे का भी उसकी ईमानदारी और निश्चित उत्पत्ति सिद्ध करने

के लिए महत्व है, वही महत्व चर्खा-आन्दोलन की सबी जरूरत को निश्चित उत्पत्ति को सिद्ध करने में कतवैयों के सही लेखे का है। इस लिए मैं आशा करता हूँ कि और समय बरबाद किये बिना हर एक खादी-कार्यालय में कतवैयों का पूरा और सही लेखा रखना शुरू कर दिया जायगा। यह कहना बेजुबानी है खाता लिखने वाले जिनका कतवैयों से सम्पर्क होगा, अवश्य निष्कलंक चरित्र के पुरुष — क्या ही अच्छा होता होगा जिनमें सच्चाई होगी। इस दोष का पता मुझे बंगाल के नाना मिजाज कार्यकर्त्ताओं के संसर्ग से चला। अमय आश्रम रिपोर्ट छापते समय मैंने लगे हाथों लिखा था कि हमारे अंकों में 'तकरीबन,' 'कोई,' 'अन्दाजन,' 'प्रायः' इत्यादि शब्द न होने चाहिए। इसके बाद मैंने चरित्र की शुद्धता विषय में साधारण मत प्रकट किया था। यह राय लिखते समय मेरे ध्यान में कोई खास संस्था या आदमी न था, अमय आश्रम की रिपोर्ट के साथ छपने से कुछ आश्रमवादी को सन्देह हुआ कि मैंने उन पर टीका की है। उनके मन यह शक दूर मैं मुझे कुछ भी कठिनाई न हुई मगर इस चीत से मैं उन्हें कतवैयों का सही लेखा रखने का महत्व समझा सका और उसकी जरूरत का विश्वास दिला सका। अगर कुछ नहीं तो सिर्फ इस लिए कि इससे हमारे आदमियों के की भूल मैं पकड़ सका, मुझे अमय आश्रम की रिपोर्ट के वह वाक्य छापने का कुछ खेद नहीं है। सब कोई इससे लेंवें कि इस चर्खा-आन्दोलन से अनपेक्षित फल संभव है, हम अपने कार्यकर्त्ताओं के चरित्र की निष्कलंकता पर कितना भी जोर क्यों न दें, वह कस ही कहा जायगा इसके लिए आवश्यक है कि हम अच्छे दिल से दी गयी टीकाओं और विचारों को सुन और सह सकें।

(य. इ.)

खीड़नखीड़न करमचंद गाँव

## खादी कार्यकर्त्ताओं की

खादी की मामूली धोतियों के एक दोष की ओर विद्युत्दास जेराजानी ध्यान आकर्षित करते हैं। उनके फट जाते हैं और धोतियों तथा सारियों में सब से अधिक कोर ही पर पड़ा करती है। उनकी सलाह है कि यह कतवैयों दूर की जा सकती है आधा इंच या पौन इंच तक दुबरे हुए सूत से कनारी बुनने का खयाल रखा जाय। इसका खास सूत बुना जाय और उस बुने हुए सूत का इस्तेमाल किया जाय। अगर जुलाहे को और सूत के साथ साथ बुनने के लिए खास सूत अलग से दिया जाय तो यह सहज और दोनो ही होगा। इसके लिए सभी खादी कार्यालयों किनारी का सूत रखना होगा। कई केन्द्रों में यह अभी है। मगर सब जगह यही रीति प्रचलित नहीं है और जब सभी धोतियों और सारियों की किनारी जरूर ही मजबूत बनायी जाती जैसे जैसे इस आन्दोलन की उत्पत्ति जायगी, हमारे पास शिकायतों का ढेर लगता जो लोग खादी के खास प्रेमी हैं, उन्हें चाहे जो कुछ हो जाय, वे उसीमें सन्तोष मानेंगे मगर जिस प्रकार अभी बात की बात में बननेवाले हैं, वे तो जो कुछ या बेमन के बुने हुए कपड़े से ही सन्तुष्ट न होंगे। वे बेने कपड़े चाहेंगे जिन में टिकाऊ पत, सौन्दर्य, किस्म, और सभी गुण भरपूर हों और जहाँ तक हमसे को सार्वजनिक रुचि के पीछे ही चलना होगा।



वार्षिक — मुख्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

समय पर सावधान

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
श्री श्री आनंद

अहमदाबाद, माघ सुदि ९, संवत् १९८३  
शुक्रवार, फरवरी, १० १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,  
सारांगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## हृदय की ज्वाला

विहार विद्यापीठ के समावर्तित संस्कार के अवसर पर  
गांधी जी का भाषण )

आज समापति का स्थान लेकर मेरे हृदय में जो भाव  
उभरे हैं, उनका मैं वर्णन नहीं कर सकता। हृदय की  
ज्वाला नहीं ला सकती। मुझे विश्वास है कि मेरे हृदय  
की बात आप लोगों के हृदय समझ लेंगे।

अगर यह कहूं कि स्नातकों को धन्यवाद देता हूं तो यह  
कोई आचार कहा जायगा। उन्होंने देश सेवा और धर्म  
की ओर प्रेरणा दी है, उसका रहस्य वे हृदय में उतारें और  
मेरे मुँह से उन्होंने जो श्रुति वचन के बोध सुने हैं, उन्हें हृदय  
में धारण करें और उनके योग्य आचरण करें तो मुझे तो इससे  
बड़ा हीरो और इसीसे विश्वास रख कर कि विद्यापीठ का जीते  
का कर्मचारी है मैं इस पद पर बैठता हूँ।

विहार विद्यापीठ में कुछ दिन हुए मैने जो उद्गार काटे थे,  
जो मेरे मुँह में आज आ रहे हैं। हमारे यहाँ अगर एक  
आदर्श अध्यापक रह जायँ, एक भी विद्यार्थी आदर्श  
नहीं रह जाय, तो हम सफल होंगे कि हमें सफलता मिली है।  
मगर परिश्रम के बाद एक दो हीरे निकलते हैं। द० अफ्रीका  
का यह तथ्य था कि मैं असह्य गिना जाता हूँ, इससे मेरा  
मान बढ़ा। पर गोखले को अफ्रीका का यह उद्योग  
नहीं था। उनका अपमान तो होना ही न था।  
उनका पथर का भारी पहाड़ पड़ा हुआ था। इसके ऊपर  
मनुष्य, दो चार खरे हीरे निकल गये तो भाग्य बखानें। पर  
जब तक कि मनोरथ या अनुपम हीरा निकालना। कोहेनूर  
का हीरा निकाल कर कुतर्भ होना। मनुष्य की खान पर भी हम लाखों करोड़ों खर्च  
कर रहे हैं। वे रत्न सत्पन्न करने के भाव से ही यह विद्यापीठ

यह दुःख की बात नहीं है कि आज इस विद्यापीठ से इतने  
कम स्नातक पदवी लेते हैं। दुःख की बात तो तब होगी जब  
वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करें और प्रतिज्ञा करते हुए मन  
में मानें कि इतने पद ओठ से भले ही बोल लें, फिर बाहर  
आकर झूठ जायँगे। तब मेरे दिल में होगा कि इस प्रवृत्ति ने देश  
को दगा दिया है। तब तो आप जो कुछ किया है, वह सभी  
नाटक हो जायगा और ऐसे ही नाटक करने हों तो फिर विद्यापीठ  
की इस्ती जितनी जरूरी मिट जाय उतना ही अच्छा।

आज हमारे पास पाँच विद्यापीठ हैं—विहार, काशी,  
अमिथे—मिथिला दिह्री, महाराष्ट्र और फिर गुजरात। मेरा ऐसा  
विश्वास है कि सभी अपने २ ध्येय पर ठीक ठीक चल रहे हैं  
और इन से देश का अहित न हुआ बल्कि हित ही हुआ है।

इन सब की प्रवृत्ति के दो रूप रहे हैं—इतिपक्ष और  
नेतिपक्ष। सभी विद्यापीठों के नेतिपक्ष का ध्येय है—सरकार का  
अनाश्रय। मुझे अतिशय विचार और अवलोकन के बाद मालूम  
होता है कि यह अनाश्रय या असहकार उनसे करा कर के मैने  
कुछ घुसा नहीं किया है। मुझे इसका जरा भी पछतावा नहीं है  
कि मैने हजारों विद्यार्थियों को सरकारी संस्थाओं में से निकाला  
और सैकड़ों शिक्षकों और अध्यापकों से इस्तीफे दिलवाये। मुझे  
इसकी खबर है कि उनमें कितने लौट गये हैं। कितने दुःखी  
होकर गये हैं और बहुतों को संतोष नहीं है। मगर इसका मुझे  
कुछ दुःख नहीं है। दुःख नहीं है, इसका अर्थ यह है कि  
पश्चात्ताप का दुःख नहीं है, समभाव का दुःख तो है ही। पर  
यह कष्ट तो हमारे ऊपर पड़ना ही चाहिए। ऐसे कष्ट अभी  
और अधिक पड़ेंगे। सत्य का आचरण करने से कोई तकलीफ  
न झेलनी पड़े, सदा मुख की सेज सोने को मिलती हो तो सभी  
सत्य का आचरण करें। परिश्रम अगर पड़े ही नहीं तो फिर  
सत्य की खूबी कहाँ रही? हमारा सर्वश्रेष्ठ चञा जाय, हिन्दुस्तान  
हाथ में से जाय तभी हम सत्य न छोड़ें और विश्वास रखें कि  
ईश्वर की गति न्यायी है। अगर यह सच हो कि ईश्वर का  
राज्य सत्य पर अवलंबित है तो हिन्दुस्तान का एक पीछे उसे  
मिलेगा ही। यही हमारी सत्य निष्ठा है। अनेक अध्यापक आज  
अशान्त हैं। कितने भूखों मरते हैं। भले ही अशान्त हों,  
भले ही भूखों मरे। यही हमारी तपश्र्या है और इसी तपश्र्या  
से हम राष्ट्रीय वातावरण को स्वच्छ करेंगे।



परन्तु इस द्रष्टव्य जगत में इति पक्ष भी पड़ा ही हुआ है। सभी धर्म ईश्वर का वर्णन नेति नेति कह कर करते हैं मगर तौभी व्यवहार में तो इति से ही काम लेते हैं। यह इतिपक्ष कठिन है—यह रचनात्मक पक्ष है। इसकी कठिनता में देख रहा हूँ, इस इतिपक्ष के विचार में मैं रोज रोज प्रगति कर रहा हूँ। यूरोप का जब मैं खयाल करता हूँ तो वहाँ के देशों में बालकों को वहाँ की जलवायु के अनुकूल तालीम दी जाती है। एक ही लड़ाई का वर्णन तीन देश के जुदा २ इतिहास-कार तीन जुदा २ दृष्टियों से करेंगे। जुदा जुदा दृष्टियों से ही उन उन देशों का हित होता है। इंग्लैण्ड की दृष्टि से फ्रांस या जर्मनी नहीं देखते। और हमारे यहाँ? हमारे यहाँ तो इंग्लैण्ड की वायु के अनुकूल तालीम दी जाती है। यही बात दृष्टि में रख कर हमारे यहाँ सारी तालीम दी जाती है कि हम अंग्रेजी सभ्यता का अनुकरण किस प्रकार करेंगे? इसमें कुछ आशय नहीं। हमारी आज की स्थिति में यही स्वाभाविक है। मैकौले बेचारा हमारे पुराणों को न समझे तो क्या करे? वह तो उन्हें बकवाद समझ कर, पाश्चात्य पुराण को ही दाखिल करने का आग्रह करेगा। उनकी प्रामाणिकता में मुझे कुछ सन्देह नहीं मगर उन्होंने इस शिक्षा का जो आग्रह रखा, इससे देश की हानि हुई है। परदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा पाने के कारण हम नयी चीजें उत्पन्न करने की शक्ति खो बैठे हैं, वेपाख की विडिया बन गये हैं। हम लड़के या अखबार नवीस बनने की ही दृष्टि रखते हैं। अगर बहुत बहुत हुआ तो बाट साहेब बनने तक हमारी दृष्टि पहुँचती है। एक लड़के ने मुझे कहा कि 'मैं लाट साहेब बनना चाहता हूँ।' मैं हारा। मैंने कहा कि इसके लिए सरकार की सलाही बजानी पड़ेगी, सरकार की खुशामद करनी, उसकी तालीम लेनी पड़ेगी; हमारे देश में लांडे सिंह बनाने की ताकत नहीं। आज तो ईंट के बदले संगमरमर की फस क्यों कर बने, इसी का खयाल लगा हुआ है। इलाहाबाद के इकानमिक इन्स्टीट्यूट को देखकर और उस पर लाखों का खर्च सुन कर मुझे दुःख हुआ। उसमें हम कितने आदमियों को पढ़ा सकेंगे? जब करोड़ों भूखों मरते हों तब ऐसे महलों को हम किस लिए बनावें? नयी दिल्ली को देखो। उसे देख कर तो आँख में आँसू आता है। रेलवे ट्रेन के पहले दर्जे और दूसरे दर्जे के डब्बों में पिछले २० वर्षों में कितना बदल बदल हुआ है? पर क्या गाँववालों के लिए भी डब्बे का सुधार हुआ है? गाँववालों को फर्स्ट क्लास के डब्बे में सुधार होने से क्या लाभ पहुँचा है? यह सब प्रगति सात लाख गाँवों का खयाल दूर करके की गयी है—इसे अगर सैतानियत न कहें तो मेरी सत्य-निष्ठा खोटी ठहरे। इस राज्य की यही कल्पना है। इसमें भी कोई शंका नहीं कि यह एक यही कल्पना कर सकता है। हाथी अगर चींटी के लिए इन्तजाम करने जाय तो बेचारा हाथी क्या प्रबन्ध करेगा? उसके लिये सामान ढेर के ही नीचे चींटी कुचल जाय। सर लेपल ग्रीफिन ने कहा था कि हिन्दुस्तान के लोगों का खयाल हमें आ ही नहीं सकता। जिसके बवाय फटती है वही उसका कष्ट जानता है। मगर हम तो दूसरों से ही अपना प्रबन्ध कराने में इति श्री मानते हैं। हमारी व्यवस्था दूसरा कोई क्योंकर सकेगा? चाहे वह कितना ही मरका हो मगर तौभी वह बेचारा क्या करे? कितने जान बूझ कर नाश कराने वाले हैं सही मगर इसमें मुझे कुछ शंका ही नहीं है कि अनेक अंग्रेज शुद्ध बुद्धि वाले हैं। मगर जहाँ तक हम आप ही तैयार न होयें, वे हमारा दुःख, हमारी भूख क्यों कर समझें? उनका उलट्टा न्याय चलता है। हमारा उपाय

गरीब का खयाल पहले करना। और चर्खे के सिवाय गरीबों साथ यह आध्यात्मिक संबंध हो ही नहीं सकता। इसका पूरा विश्वास है।

हमारे स्नातक भी दूसरे सरकारी विद्यापीठों के स्नातकों समान पंडित बनना चाहें तो यह उलट्टे न्याय से ही चलना होगा जितना ज्ञान प्राप्त करना हो वे चर्खे की ही केन्द्र रख कर वे नेतिपक्ष रख कर सबको राष्ट्रीय विद्यालय कहलाने का हक है मगर यह पुकार कर कहता हूँ कि साथ ही साथ जो इतिपक्ष स्वीकार करे तो वह सच्चा राष्ट्रीय विद्यालय नहीं है। देवदास साहब विकारी ने मुझे अपना अनाथाश्रम दिखलाया और कहा कि 'यहाँ चर्खा भी रक्खा है।' मैंने कहा, 'इसमें कुछ भी नहीं अनेक चीजों में एक चर्खा तो भूल जायगा।' जो चर्खे अर्थशास्त्र समझते हैं, वे ऐसी भूल में न पड़ेंगे कि वस्तुओं में एक हितकर वस्तु चर्खा है। तारे अनेक हैं, सूर्य एक ही है। अनेक राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के तारों में सूर्य एक चर्खा है। इसके बिना विद्यालय नाकाम है, पाठशाला कौड़ी काम की नहीं।

लार्ड अरविन ने सच ही कहा है कि पार्लियामेन्ट की हमें जितना मिलना हो ले लेवें। यह बात ऐसी है कि उन पर किसी को गुस्सा न होगा। उन्होंने यह बात सदा की है। उनके पास दूसरे कुछ की आशा रखना स्वप्न ही तो वीरपुष्प है और अपने देश की दृष्टि से ही यह बात है। तो हम क्या अपनी वीरता खो बैठे हैं? हम क्या देश की दृष्टि से नहीं देख सकते? उनके ज्योति मंडल में लण्डन और हमारे में चर्खा। इस में मेरी भूल हो सकती है जब तक मेरी यह भूल मुझे मालूम न होवे, यह भावना प्राणसम प्रिय है। इस चर्खे में देश का अकल्याण करने की नहीं है मगर इसके त्याग में देश का नाश है, दुनिया का नाश है। कारण यह कि यह सर्वोदय का साधन है सर्वोदय ही सच्ची बात है। मेरी आँख सर्वोदय की ही देखती है। भूल करनेवाले को मैं देखता हूँ तो मुझे लगता है मैं भूल करनेवाला हूँ, अगर मैं किसी कामी पुरुष को देख तो सोचता हूँ कि एक समय मैं भी वैसा ही था इसी लिए अपने समान समझता हूँ। सबका हित अपनी दृष्टि में रखे मैं विचार नहीं कर सकता। अधिक से अधिक लोगों का अधिक हित यह चर्खा नहीं है। चर्खाशास्त्र तो सर्वोदय—सर्वोदय—दिखलाता है। तुम पढो तो यही दृष्टि रख कर सीखो करो तौभी यही दृष्टि रख कर कि परिणाम में तुम्हें सब दिखलायी पड़े। जिस प्रकार सब कुछ में से प्रह्लाद ने राक्षस ही निकाला, तुलसीदास को मुरलीधर का दर्शन करते भी दिखलायी पड़े, वैसे ही मुझे चर्खे के सिवाय और कुछ ही नहीं। इसी में तुम्हारे विचार समाप्त होवें कि इसमें क्यों कर उन्नति हो। तुम्हारा रसायन ज्ञान इस में किस काम आवेगा, तुम्हारा अर्थशास्त्र इसे क्यों कर बढ़ावेगा, भूगोलज्ञान का इसमें क्या उपयोग होगा, इसी प्रकार उन्नति करना है। और मैं जानता हूँ कि यह बात हमारे विचार अभी नहीं आयी है। मगर इसमें मैं किसी की टीका या करना नहीं चाहता। मैं तो अपने दुःख की जगल आगे रखने बैठा हूँ। यह दुःख ऐसा नहीं है जो कहा जा इसी आशा से इतना कहा है कि तुम इस दुःख को पहचान सकोगे। इतना समझाने के बाद भी अगर तुम्हें विद्यापीठ के बाहर है तो विद्यापीठ के



१० फरवरी, १९२७

जाओ। इस साल मेरा काम नखें के सिवाय और कुछ नहीं है। विद्यापीठ का अस्तित्व इसी के लिए है और इसी के लिए मैं आपसे कुछ माँगता हूँ। राजेन्द्र बाबू को विद्यापीठ के लिए भीख भोगनी पड़े तो यह उनकी शक्ति का अपव्यय है। आप लोग इस विद्यापीठ को सँभालो और राजेन्द्र बाबू से दूसरा काम लो। आप लोग, तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रह कर उसका पालन जीवन भर करो यही मेरी प्रार्थना है।

### राजस्थान में खादी-काम

राजपूताना हिन्दुस्तान के उन प्रान्तों में है जहाँ खादी-उत्पत्ति बहुत अनुकूलता है, जहाँ हजारों चरखे और सैकड़ों करघे पहले से चल रहे हैं, जहाँ मजदूरी सस्ती है, जहाँ देहात में तथा शहरों में अब भी मिश्र खादी बहुतायत से इस्तेमाल की जाती है, जो तो यहाँ कुछ खादी की पैदावार और बिक्री का काम प्रायः सभी के लिए हुआ जब से असहयोग आन्दोलन में खादी को प्रधानता दी जाने लगी; परन्तु महासभा की मार्फत यहाँ काम तब शुरू हुआ जब कि महासभा ने अपना खादी-मण्डल कायम किया। सबसे यहाँ व्यवस्थित रूप से खादी-काम की शुरुवात हुई। पिछले साल अ० मा० च० संघ की स्थापना के बाद सारे भारत में एक-सूत्र से व्यवस्थित और संगठित काम शुरू हुआ। उसके अनुसार अजमेर में राजस्थान खादी संघ स्थापित हुआ और उसकी मार्फत काम होने लगा। उसकी सीधी देखरेख में तथा यों प्रोत्साहन से इतनी जगह राजस्थान में खादी काम हो रहा है—

१ अमरसर	}	जयपुर—राज्य
२ सीकर		
३ घोरावड़		जोधपुर—राज्य
४ बिजोलिया		उदयपुर—राज्य

ये मण्डल-केन्द्र हैं। बिक्री के लिए अजमेर तथा जयपुर में एक एक खादी-मण्डल अलहदा हैं।

खादी-कार्य की आदर्श अवस्था यह सोची गयी है कि प्रायः हर घर में एक चरखा और हर गाँव में एक करघा हो जाय। भारतवासी अपने घर का कता और गाँव का बुना कपड़ा पहनने लग जायँ। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक अधिकांश लोग खादी के रहस्य, महत्व और प्रभाव को न समझ लें तथा यह न देख लें कि ऐसा होना संभवनीय भी है। इसीके प्रयोगों और प्रदर्शन के लिए अ० मा० च० संघ की स्थापना हुई है और सभी मार्फत देश में दोनों प्रकार के प्रयोग जारी हैं—

- (१) आदर्श अवस्था का अर्थात् घर की कत्ती और गाँव की बुनी खादी पहनने का और
- (२) उन उन स्थानों में खादी-उत्पत्ति के केन्द्र तथा बिक्री के कारखाने कायम करने का जहाँ इसके लिए सब से ज्यादा सहूलियत और जरूरत हो तथा व्यवसाय और स्वावलंबन के सिद्धान्त पर कार्य करना।

यह एक देश खादी मय पड़ली अवस्था को नहीं प्राप्त हो जाता। एक दूसरी अवस्था अपरिहार्य है। राजस्थान में इस समय जो भी प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं। पहले प्रकार का प्रयोग हो रहा है बिजोलिया में जिसे कि अ० मा० च० संघ की पिछले साल की रिपोर्ट में मंत्रीजी ने बारडोली के प्रयोग से भी ज्यादा प्रशंसा की थी बताया है। बिजोलिया उदयपुर राज्य के उपरमाल को आबादी कोई ११००० है। यदि हम १० गज साल के हिसाब से कपड़े की जरूरत मानें तो वहाँ के लिए १,१०,००० गज कपड़ा चाहिए। खादी

कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से वहाँ कताई और बुनाई शुरू हुई और अब ६५ करघे वहाँ चल रहे हैं जिन से ७८,००० गज कपड़ा तैयार हो सकता है। यदि ६० करघे और चल पड़ें तो वहाँ की जरूरत का सारा कपड़ा वहीं बनने लग जाय। इस स्थिति को लाने के लिए लोगों को कोई कृत्रिम उत्साह नहीं दिलाया गया सिर्फ उसकी जरूरत उन्हें बताई गई और जरूरी बातों और चीजों का प्रबन्ध कर दिया गया।

दूसरे प्रकार के प्रयोग में भी दिन दिन सफलता मिलती जा रही है। १९२४-२५ में जहाँ २६,४७४ की खादी बनी और २५,६७९ की बिक्री थी तहाँ १९२५-२६ में ६७,१९४ की बनी और ४६,९७९ की बिक्री। जैसे जैसे योग्य, परिश्रमी, उत्साही और जानकार काम करने वाले मिलते जाते हैं तैसे तैसे काम बराबर बढ़ता जा रहा है और ईश्वर ने चाहा तो इस साल में काम का अच्छा हिसाब पेश किया जा सकेगा।

नीचे लिखी सहूलियतें जितनी ही ज्यादा मिलेंगी उतना ही काम जल्दी, ज्यादा और अच्छा हो सकेगा।

(१) लगन वाले कार्यकर्ता

(२) राज्यों की ओर से चुंगी हटाने तथा अपनी जरूरतों के लिए खादी मोल लेने की व्यवस्था

(३) शिक्षित लोगों की ओर से खादी पहनने और खादी प्रचार का आश्वासन

राजस्थान देशी राज्यों में बँटा हुआ है। इसलिए ब्रिटिश भारत से यहाँ राष्ट्रीय और सार्वजनिक जीवन स्वभावतः मन्द और थोड़ा है। फिर अभी खादी-काम इतना जम और फैल नहीं पाया है कि वह स्थानिक लोगों के मन में इतनी जबरदस्त प्रेरणा करे कि वे खादी-काम में पड़ें। इसीलिए अभी तो बाहर के मंहंगे कौर थोड़े कार्यकर्ताओं से ही काम चलाना पड़ता है। यदि स्थानिक त्यागी और परिश्रमी कार्यकर्ता आगे बढ़ें तो काम सस्ता और ज्यादा हो सकता है।

देशी राज्य चाहें तो इस में बहुत मदद दे सकते हैं। जयपुर-राज्य ने अपने यहाँ बनने वाली और चीजों के साथ खादी पर से भी चुंगी उठाली है। दूसरे राज्य भी इसका अनुकरण कर सकते हैं। ग्वालियर-राज्य ने किसानों के लिए सहायक धंधा खोजने के निमित्त एक कमीशन नियुक्त किया है—और इस विषय के विशेषज्ञ लोगों का निश्चित और सिद्ध मत है कि सिवा चरखे-करघे के और कोई ऐसा सार्वजनिक या आम धंधा नहीं हो सकता। इन्दौर के राज्याधिकारियों ने भी खादी के प्रति सद्भावपूर्ण दृष्टि है। बोकानेर, उदयपुर, किशनगढ़, जावरा के महाराजा तथा नवाब सा० ने भी खादी के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया है तथा राजपूताना के ए० जी० जी० आदि कितने ही अंगरेज हाकिमों ने भी उसे स्नेह की दृष्टि से देखा है। श्री भरतपुर-नरेश ने आगामी फरवरी में होने वाले साहित्य, कवि तथा धर्म सम्मेलन के अवसर पर खादी-प्रदर्शनी करने की व्यवस्था करके खादी को उत्तेजना दी है। ये सब शुभ लक्षण हैं और राजस्थान में भावी खादी-प्रगति के सूचक हैं। क्या आश्चर्य है यदि राजस्थान के नरेश काठियावाड़, गुजरात अथवा दक्षिण के कितने ही राज्यों से खादी प्रेम में आगे बढ़ जायँ?

राजस्थान के शिक्षित लोग भी धीरे धीरे खादी में अपनी दिलचस्पी बढ़ा रहे हैं। इन्दौर और उज्जैन में एक एक खादी मण्डल कायम हो ही गया है—एजेन्सियों की माँगें आ रही हैं। एकाध जगह खादी फेरी करते रहने का भी विचार कुछ



उत्साही लोग कर रहे हैं। यह सब अभिनन्दन करने योग्य है; परन्तु जब तक राजस्थान खादी की आदर्श अवस्था को न पहुँच जाय तब तक न तो कार्यकर्त्ताओं को संतोष हो सकता है, न प्रान्तवासी ही अपने खादी प्रेम का दबा कर सकते हैं।

राजस्थान में खादी एक जीवित वस्तु है। सिर्फ उसके सुधार, संगठन और प्रचार की ज़रूरत है। यदि बलिभूमि राजस्थान के सपुन चाहें तो दो ही चार साल में राजस्थान को खादी मय कर सकते हैं।

हरिभाऊ उपाध्याय

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, माघ सुदि ९, संवत् १९८३

### समय पर सावधान

अप्रिल का अविस्मरणीय महीना सिर पर आ रहा है। और अपने साथ वह लावेगा राष्ट्र के जन्म की स्मृति भी, जिस समय लाखों लाख आदमियों ने अद्वितीय उल्लास से भाग लिया था और दिखा-लाया था कि अगर एक मत होकर हम काम करें तो राष्ट्र क्या न कर सकता है। इसी महीने में यह भी देखने को मिला था कि घमंडी, बदला लेने को उत्सुक और निर्दय साम्राज्यवाद भी अपनी रक्षा के लिए क्या न कर गुजर सकता है। राष्ट्र के जीवन में ६ और १३ अप्रिल के दिन कभी भूलने लायक दिन नहीं हैं। तब से कौम इसी के लिए प्रयत्न करती रही है कि वह हिंसा का जघाप हिंसा से न दे, बदला लेने के भाव से प्रेरित हो कर काम न करे, बल्कि आत्मशुद्धि के लिए उस संयुक्त शक्त-सरिता से काम लेवे जो जलियाँवाला में बही थी। चर्खा, खादी, अछूतो-द्धार और भिन्न २ सम्प्रदायों की एकता में जो अहिंसा का भाव स्पष्ट होता है, उसीके द्वारा आत्मप्रकाश करने के प्रयत्न राष्ट्र करता रहा है। और, यह तो स्पष्ट है कि खादी ही वह एक मात्र वस्तु है, जिसमें सारा राष्ट्र हाथ बँटा सकता है। अगर हमें अहिंसक होना है तो हमें अवश्य ही कुछ रचनात्मक कार्य, धैर्य, शान्ति और अपने आप में तथा अपने तरीकों में अचल विश्वास के साथ करना होगा। हमें एकता, शक्ति और अटल नियमन पैदा करने होंगे। हमें लाख विरोध रहने पर भी अपने भावों के पीछे चलना सीखना होगा। हम समझ लें कि ब्रिटिश आधिपत्य हमारे ऊपर इसी लिए लादा गया है कि ब्रिटिश व्यापार हमारे ऊपर ज़ब्त रक्खा गया है। अगर हम अंग्रेजी व्यापार को शुद्ध कर सकें तो हम अंग्रेजों का संबंध भी सहज ही शुद्ध कर लेंगे। अंग्रेजों और वैसे ही सारी दुनिया के साथ हमारा तिजारती संबंध हमारी खुशी पर हीना चाहिए और इस लिए दोनों को फायदेमन्द और वितान्त ऐच्छिक होना चाहिए। मगर लंकाशायर का कपड़ा हमारे नेबल लुटे जाने का चिह्न है, जहाँ कि स्वावलम्ब और स्वाधीनता का चिह्न खादी है और वह भी दो चार व्यक्तियों की नहीं, समाजों की नहीं, सम्प्रदायों की नहीं बल्कि सारे राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वावलम्ब का चिह्न है। यह वैसा आन्दोलन है जिसमें राजा और रंक, मर्द और औरत, लड़के और लड़कियाँ, हिन्दू, मुसलमान और ईसाई, पारसी और दहवी, अंग्रेज और अमेरिकन और जापानी, इत्यादि सभी अगर वे हिन्दुस्तान का भला चाहें और इसके छूट को रोकना चाहें तो इसमें हथ बँटा सकते हैं। इस प्रकार यह आन्दोलन अपने ढंग का एक ही है। इससे न सिर्फ कुछ लोगों भर का ही भला होगा, या न सिर्फ बहुत अधिक लोगों का ही

भला होगा मगर इससे तो सभी किसी का भला होगा। हम लोग आगामी राष्ट्रीय सप्ताह में चाहे जितने दूसरे और काम कर सकते हैं, मगर कम से कम हम खादी का संगठन तो जरूर करें उसके ये तरीके हैं:

१ हमें जितनी खादी खरीदने की शक्ति हो, उतनी खादी हम सब कोई खरीद सकते हैं।

२ जितनी हम से हो सके, हम खादी बेच सकते हैं।

३ जितना हो सके हम सूत कात सकते हैं।

४ अपनी शक्ति भर हम अ० भा० चर्खा-संघ को सहायता दे सकते हैं और दूसरों से दिला सकते हैं।

५ अन्त में, अगर हमारी ऐसी इच्छा हो, और हमें अवसर मिले तो खादी कार्य में हम अपने जी जान लगा सकते हैं।

यह लिखते हुए मेरे अपने मन में यह सवाल उठता है कि 'मगर आँख के सामने आये हुए सवाल का क्या होगा? बंगाल नजरबन्दों का क्या होगा जो अपने विशुद्ध इल्जाम को जाने बिना जेल की कोठरियों में पड़े लड़ रहे हैं, जिनका विचार न हुआ और जिन्हें इसका पता भी नहीं कि वे कितने दिन रहेंगे?' मेरा उत्तर बिलकुल स्पष्ट है। उन्हें मुक्त करने का कोई दूसरा अच्छा वाअसर तरीका ढूँढ सकता तो मैं उसे काम लाता और आज उसे बतलाता मगर वैसा तरीका ही नहीं है। धीसा यह भले ही माछम पड़ता है मगर गेरी नम्र सम्मति यही सबसे निश्चित और शीघ्र फलदा तरीका है। इस लिए खादी में भी विश्वास हो या खादी के सिवाय और कुछ में विश्वास ही न हो, राष्ट्रीय सप्ताह में वे अपनी शक्ति भर खादी के काम को सच्चा सिपाही कूच करते हुए यह बहस नहीं करता कि अन्त किस प्रकार सफलता मिल सकेगी। वह तो यह विश्वास रख है कि अगर वह अपना काम ठीक बजाता रहेगा तो किसी किसी प्रकार, लड़ाई जरूर जीती ही जायगी। इसी भाव में हम किसी को काम करना चाहिए। भविष्य-दृष्टि हम मनुष्यों को दी गयी है। मगर अपना २ काश ठीक २ कर लेने का ज्ञान सभी को मिला है। तब हम अगर चाहें तो बही करें जो जानते हैं कि हमारे लिए संभव है।

( यं० इं० )

सोहनदास करमचंद गांधी

### नवम्बर के आंकड़े

नवम्बर १९२६ में खादी की उत्पत्ति और बिक्री के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं:

प्रान्त	उत्पत्ति (रुपयों में)	बिक्री (रुपयों में)
अजमेर	१,८०७	१,८९१
आन्ध्र	२१,३९९	३६,०५५
बंगाल	३०,६०७	४१,१५४
बिहार	१७,२९३	१९,७७१
बंबई	.....	१,९४३
बर्मा	.....	६४९
दिल्ली	८३०	.....
गुजरात	४,८३६	७,४०२
कर्णाटक	१,३५६	३,३३०
केरल	१६२	१,४२८
उत्तर महाराष्ट्र	१५८	८,४४४
पंजाब	४८,१८	७,९७१
तमिलनाडु	५२,२५०	८३,२०५
संयुक्त प्रान्त	५,२०४	१०,०५९
उत्तरकल	३३,२३	३,७४४
कुल	१,४४,०४३	२,३६,५५४
गत वर्ष इसी महीने के मीजान	१,४४,९१४	१,६०,३५०

मो० क० गांधी



१९०७  
१० फरवरी, १९२७

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १०

बोअर युद्ध

सन् १८९७ से ९९ के बीच के जिन्दगी के कितने अनुभवों के बीच कर अब बोअर युद्ध पर आता हूँ। जब यह युद्ध हुआ, उस समय मेरी सहानुभूति केवल बोअरों की ही ओर थी। मगर बाद में मेरी समझ में आया कि ऐसे विषयों में व्यक्तिगत विचारों के अनुसार बोलने का अधिकार अभी मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। इस बाबत में मेरे हृदय का सूक्ष्म निरीक्षण करने दे० अफ्रीका के सत्याग्रह के विषय में किया है, इस लिए यहां उसे दुहराना नहीं चाहता। जिन्हें जानने की इच्छा हो, उन्हें वह इतिहास पढ़ लेने की सलाह दूंगा। मैं तो यही कहना चाहता हूँ कि ब्रिटिश राज्य के प्रति मेरी भावना ने मुझे उसमें हाथ डालने को जबरन खींच घसीटा। मैंने ऐसा लगा था कि अगर मैं ब्रिटिश प्रजा की हैसियत से एक सैनिक रहूँ तो ब्रिटिश प्रजा के रूप में राज्य के रक्षण में भी हाथ डालना मेरा धर्म है। उस समय मेरा मत था कि ब्रिटिश साम्राज्य की ओर उसीके जरिये हिन्दुस्तान का संपूर्ण उद्धार हो सकता है। इस लिए जितने साथी मिल सके, उन सब को इकट्ठा कर के, हिन्दुस्तानी जोखम के काम न पड़ेंगे, स्वार्थ के बाद उन्हें और कुछ में विश्वास ही नहीं। इस लिए कई अंग्रेज मित्रों ने मुझे निराशा की ही जवार दिया। एक मात्र डाक्टर वूथ ने ही खूब उत्तेजन दिया। उन्होंने हम लोगों को घायल सिपाहियों की सेवा करने की तारीफ दी। हमने अपनी योग्यता के विषय में डाक्टरों के प्रमाण पत्र लिये। मि. लाटन और मरहूम मि. एस्कम्ब ने भी यह पत्र पसन्द किया। आखिर लडाई में सेवा करने देने की हमने सरकार से प्रार्थना की। जवाब में सरकार ने हमारा उपकार माना मगर यह बतलाया कि उस समय हमारी सेवा की उसे दरकार न थी।

फाल्गुन हमें ऐसे 'ना' कह देने से संतोष भान कर बैठना न था। डाक्टर वूथ की मदद ले कर उनके साथ मैं नेटाल के शिप के पास गया। हमारे दल में कितने ही हिन्दुस्तानी ईसाई थे। शिप को हमारी माँग बहुत रुची। उन्होंने हमारी सेवा लोकार काने में मदद करने का वचन दिया।

उस बीच समय भी अपना काम कर ही रहा था। बोअरों की तैयारी, खता, वीरता इत्यादि धारणा से कहीं अधिक तेजस्वी मिले। सरकार को बहुत रंगरूटों की जरूरत पड़ी और अंत में हमारी प्रार्थना स्वीकार हुई। हमारी टुकड़ी में लगभग ११०० आदमी थे। उनमें लगभग ४० सिपाही थे। दूसरे कोई ३०० हिन्दुस्तानी मुक्त गिरमिटिया या स्वतन्त्र थे। शिप गिरमिटिये थे। डाक्टर वूथ भी हमारे साथ थे। टुकड़ी का काम अच्छा हुआ। भगवें कि हमें गोला बारूद के बाहर काम करना और रेडक्रास की रक्षा करनी थी। तौभी गाढे अवसर पर शस्त्रास्त्र होता है लाल स्वस्तिक। ऐसे चिह्न वाले पट्टे शुश्रूषा करने वालों के पहने हाथ में बाँध दिये जाते हैं और सुघरे युद्ध का प्रकाश माना जाता है कि जिसके हाथों में ऐसे पट्टे हों, उन्हें शत्रु भी न मारे।

विशेष—इस युद्ध प्रकरण के विशेष वर्णन के लिए और शुश्रूषा के काम करने वालों के नाम इत्यादि के लिए भी 'द० अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' देखो, खंड १, अध्याय ९। मौ० क० गांधी

हमने गोली बारूद की हद के भीतर भी काम किया। ऐसे जोखम में न डालने का इकट्ठा सरकार ने अपनी ही इच्छा से हमारे साथ किया था मगर स्त्रियाँकोप की हार के बाद स्थिति बदली। इससे जेनरल बूलर ने संदेश भेजा कि भगवें कि जोखम उठाने की हम बाध्य नहीं हैं मगर अगर हम खुद जोखम उठा कर घायल सिपाहियों और अफसरों को रणक्षेत्र से डोली में उठा ले जाने की तैयार होंगे तो सरकार उपकार मानेगी। हम तो विपत्ति बटोरने को तैयार ही थे। इस लिए स्त्रियाँकोप के युद्ध के बाद हम गोली बारूद की हद के अन्दर काम करने लग गये।

इन दिनों हम सभी को बहुत बार एक दिन में बीस पचीस माइल का दौड़ा करना पड़ता था और एक बार तो घायल को डोली में उठा कर इतनी दूर चलना पड़ा था। जिन घायल योद्धाओं को हमें यों ले जाना पड़ा था उनमें जेनरल बुडगेट इत्यादि भी थे।

उह हफ्ते के बाद हमारी टुकड़ी बिदा की गयी। स्त्रियाँकोप और वालक्रान्त की हार के बाद लेडीस्मिथ इत्यादि को बोअरों के घेरे से तुरत ही मुक्त करने का विचार ब्रिटिश सेनापतियों ने छोड़ दिया था और इंग्लैण्ड तथा हिन्दुस्तान से दूसरी और अधिक सेना की राह देखने तथा तब तक धीमे २ काम देने का निश्चय किया था।

हमारे इस छोटे से काम की उस समय तो बहुत तारीफ हुई। इससे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी। ऐसे गीत गाये गये कि, 'हिन्दुस्तानी भी अंत में साम्राज्य के नागरिक तो हैं ही।' जेनरल बूलर ने अपने खरीते में टुकड़ी के काम की प्रशंसा की। मुखियों को लडाई के चाँद भी मिले।

हिन्दुस्तानी जाति और अधिक संगठित हुई। गिरमिटिया हिन्दुस्तानियों के प्रसंग में मैं अनेकों बार आ सका। उनमें बहुत जागृति हुई और यह लगन कि हिन्दू, मुसलमान, किस्तान, मरासी, गुजराती, सिन्धी सभी के सभी हिन्दुस्तानी हैं, बहुत बढ़ गई। सब ने माना कि अब हिन्दुस्तानियों का दुःख दूर होना ही चाहिए। गोरों के बर्ताव में भी उस समय तो सबे फेरफार नजर आये।

लडाई में जिन गोरों से प्रसंग पड़ा था वे स्वभाव के मीठे थे। हजारों 'टामियों' के सहवास में हम आये। वे हमारे साथ मित्रभाव रखते थे और हम उनकी सेवा करने को आये हैं, यह जान कर उपकार मानते।

इसका एक मधुर संस्मरण कि मनुष्य दुःख में क्यों कर पिघल जाता है, यहां लिखे बिना नहीं रह सकता। हम चिवली छावनी की ओर जाते थे। यह वही क्षेत्र है जहां लार्ड राबर्ट्स के पुत्र लेफिनेन्ट राबर्ट्स को मृत्यु चोट लगी थी। लेफिनेन्ट राबर्ट्स के शव को ले जाने का मान हमारी टुकड़ी को मिला था। दूसरे दिन गर्मी बहुत सख्त थी। हम कूब कर रहे थे। सभी प्यासे थे। रास्ते में पानी पीने के लिए एक छोटा सा झरना था। पहले कौन पानी पीवे? मैंने निश्चय किया कि पहले 'टामी लोग' पी लेंगे तो हम लोग पीवेंगे। 'टामियों' ने हम लोगों को देख कर तुरत हमी से पड़े पानी पीने का आग्रह शुरू किया। इस प्रकार कितनी देर तक हम लोगों के बीच, 'तुम पहले, हम पीले' की ऐसी मीठी तनातनी चलती रही।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



## खादी-सेवक के गुण

खादी का काम देश में दिन दिन बढ़ रहा है। उसने देश के शिक्षित लोगों और सब साधारण दोनों के मन पर अपना असर डाल दिया है और महासभा के सभापति ने मुक्त कण्ठ से अपने भाषण में उसे स्वीकार किया है। इधर महासभा ने भी अपने कर्मचारियों के लिए खादी पहनना लाजिमी करार दे कर इस बात को तत्सलीम किया है। चुनाव के दिनों में धारासभावादियों ने जनता पर खादी के असर को अच्छी तरह देख लिया है और अब खादी भारत की राजनीति का एक अवयव बन गयी है। इधर अ० भा० च० संघ ने खादी-प्रगति के लिए हाल ही एक खादी-सेवक मण्डल की योजना प्रकाशित की है तथा गांधी जी ने खादी-यात्रा भी आरंभ कर दी है। इन बातों के फल-स्वरूप शिक्षित युवकों का ध्यान खादी-सेवा की ओर जाना स्वाभाविक और वाञ्छनीय है। ऐसे समय यह जरूरी मालूम होता है कि वे यह अच्छी तरह जान लें कि खादी संबंधी शास्त्रीय ज्ञान के अलावा उनमें किन किन गुणों की आवश्यकता है।

मेरी राय में खादी-कार्यकर्ता की प्रायः चार हैसियतें हुआ करती हैं (१) तपस्वी (२) शासक या व्यवस्थापक (३) व्यवसायी और (४) सेवक या सुधारक। उसे विकट और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी काम करना पड़ता है; स्थान, भोजन और स्वास्थ्य-संबंधी सुविधायें सब जगह सदा नहीं मिलती; यदि यह कुटुम्बी है तो उसे और भी मानसिक और शारीरिक क्लेश सहन करना पड़ता है, नये नये स्थानों में तबादले, भ्रमण आदि के कारण अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है — इस प्रकार उसका जीवन एक तरह से तपस्वी का जीवन हो रहता है। देहात में अज्ञ या अल्पज्ञ लोगों से काम पड़ता है, जिनकी रुचि, आदतें, संस्कार शहरों से बिल्कुल भिन्न होते हैं, इसलिए भी शहराती काम करने वालों को बहुतेरी कठिनाइयों पेश आती हैं। यदि इन सब का सानन्द स्वागत करने की तैयारी के बिना कोई सेवक खादी-सेवा के लिए आमादा होगा तो संभव है, शुरू में, वह कुछ उदास और निराश हो। यदि वह लगन वाला, कष्ट और विपत्ति में आनन्द मानने वाला, उन्हें सेवा के निमित्त दिया ईश्वर का प्रसाद समझने वाला न हुआ तो एका एक देहात में कम ठहर सकेगा। अतएव प्रत्येक खादी-सेवेच्छु को सबसे पहले तपोमय जीवन की तैयारी रखनी चाहिए।

दूसरे, खादी-सेवक को दूसरे साथी कार्यकर्ताओं, कातने और बुननेवालों तथा मण्डल के अन्य लोगों से काम पड़ता है, काम लेना-देना पड़ता है, इस अवस्था में उसमें शासक या व्यवस्थापक की योग्यता भी जरूर होनी चाहिए। इसमें जरूरी बात है नियम-बद्धता, रुचि, योग्यता और शक्ति के अनुसार कार्य बाँटने और काम लेने की कुशलता; कार्यकर्ताओं के एक एक क्षण का उपयोग कर लेने की चिन्ता और चतुरता; तथा फिर उनका प्रेम और आदर अपने प्रति बनाये रखने तथा बढ़ाते रहने की योग्य सु-शीलता। नियम-बद्धता का आधार सत्ता की अपेक्षा प्रेम और शील हो तो वह ज्यादा उपयोगी है। शासक और व्यवस्थापक की सभी कुशलता इसी बात में है कि उसे कार्य-संपादन के लिए सत्ता का उपयोग कम से कम करना पड़े। यह तभी हो सकता है जब शासक या व्यवस्थापक प्रायः सब बातों में अपने साथियों या अधीन कर्मचारियों से बड़ा हो। इसलिए हर खादी-सेवक यदि ऐसी निर्दोष महत्वाकांक्षा को ले कर खादी-काम में प्रवृत्त हो तो अच्छा।

तीसरे वह व्यवसायी भी होता है। उसे खादी खरीदने बेचनी भी पड़ती है। एक बनिये में और खादी-सेवक में इतनी बातों का अन्तर है (१) बनिया अपने लाभ के रोजगार करता है — खादी सेवक देश के लाभ के लिए बनिया झूठ बोल कर भी, धोखा देकर भी माल की खरीद करता है, खादी-सेवक सत्य और सचाई से जौ भर नहीं सकता। खादी कोरा व्यापार नहीं है; आत्मशुद्धि, सदाचार, चरित्र निर्माण का आन्दोलन भी है। कहीं कहीं कार्यकर्ता मोह में कि नहीं तो माल बिकेगा नहीं, रुपया पैसा कुछ असत्याचरण से काम लेना पुरा नहीं मेरी राय में ऐसा करने से शुरू में कुछ सुविधा मिले जाय, वास्तव में खादी-प्रगति और खादी-प्रचार को धका है। धीरे धीरे लोगों का विश्वास खादी-आन्दोलन की कार्यकर्ताओं की सचाई और नेकनीयती से उठते जाने की ओर रहती है और इससे खादी-प्रगति को कम हानि न पहुँचने दोनों में इतनी बातों में साम्य है—

(१) हिषाव कितान और बड़ीखाता साफ सुधरा रखना।

(२) माल के बिगड़ने या लुकसान न होने देने की चिन्ता और सावधानी रखना।

(३) खरीद-विक्री के मौघम, लोक-रुचि, भाव-तान, सजन-स्वभाव की जानकारी रखना।

चौथे वह सेवक या सुधारक है। खादी के उत्पत्तिकेन्द्र देहात में हैं। कातने वाले और बुनने वाले प्रायः अम्ब, की हवा से दूर, अछूत, और शुरू में कम विश्वास रखने होते हैं। उनके साधारण दुःखों, रोगों, बुरी आदतों से काम का नित्य काम पड़ता है। उनके सुधार के कामों में थोड़ा-पडे बिना उसका चारा नहीं। बलिष्ठ ग्राम-सुधार का एक कदम कहना चाहिए जो कि खादी आन्दोलन का एक लक्ष्य ऐसी अवस्था में खादी-सेवक के अन्दर दो गुण होने चाहिए:

(१) अपने अपंगु गरीब और दुःखी भाइयों के प्रति सदा पूर्ण हृदय,

(२) चुनकी सहायता करने का सामर्थ्य और विवेक।

देहात में प्रायः उससे अधिक विवेक और चतुराई लेना पड़ता है जितना धारासभाओं या शान्ति-परिषदों में पड़ता है। किस सुधार को किस स्थिति में किस हद तक देना और आगे बढ़ाना चाहिए तथा उसके लिए किस विधि काम लेना चाहिए — इतना सूक्ष्म विचार और विवेक प्रत्येक के अन्दर होना चाहिए। देशी-राज्यों के अन्दर खादी करने वालों को तो और भी दूरदेशी से काम पड़ता है।

कार्यकर्ताओं को यह याद रखना चाहिए कि वे देहात गरीबों की सेवा के लिए जाते हैं, अतएव उन्हें शहर की जैसी ऐसी आदतों और चीजों को वहाँ न दाखिल करना चाहिए से देहात में शहर की बुराईयाँ फैलने लगे।

मेरी राय में यदि इतनी तैयारी का खयाल कर के कार्य-कर्ता आगे बढ़ेगा तो वह जरूर सफल होगा और इस जिसने एक केन्द्र में सब तरह सफलता-पूर्वक काम कर वह स्वराज्य में, जरूरत पड़ने पर, एक जिले या प्रान्त का और शासन भली भाँति कर सकेगा। खादी सेवा हमें इस भी करनी है कि हमें न केवल स्वराज्य प्राप्त करना है,



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



शहर से आये हुए लोगों की संख्या यह सिद्ध करती है कि लोगों का ध्यान आकर्षित करने में इस संस्था को सफलता मिली है।

गांधी जी का समावर्तन संस्कार भाषण, अगर्व कि केवल विद्यार्थियों के लिए ही न था, मगर साधारण भाषण होने की अपेक्षा वह प्रायः हार्दिक बातचीत ही अधिक था। मगर उनकी श्रोता मंडली ऐसी थी, जिससे वह सब कुछ कह सकते थे और जो न केवल मुँह की कही हुई भाषा समझती बल्कि दिल की न बोली गयी मौन भाषा भी समझ सकती थी। यह वार्ता भाषों से भरी हुई थी और स्थान स्थान पर आत्मचरित की बातें भी आती थी। उनका पूरा भाषण अन्यत्र दे रहा हूँ।

भाषण के अन्त में विद्यापीठ की मदद के लिए उनकी माँग की पूर्ति करने में पूरा उत्साह दिखायी पड़ा। २,००० रुपये के वचन मिले और ५०० रु. से अधिक वहीं पर इकट्ठे हो गये।

( यं० इं० )

महादेव देशाई

### केवल प्रार्थना से ही होगा

सिवान (विहार) में हिन्दू-मुसलिम एकता पर कुछ कहने को गांधी जी से कहा गया। गांधी जी के हिन्दी भाषण का सारांश नीचे दिया जाता है:

“मुझे खुशी है कि आप कहते हैं कि आपका सब विविजन और जगहों की बनिस्बत हिन्दू-मुसलिम एकता के संबंध में अधिक अच्छा है। मगर क्या आप कह सकते हैं कि बाहर कहीं कुछ भी होवे मगर आप की एकता जैसी की तैसी ही बनी रहेगी? मैं चाहता हूँ कि इस विशाल देश में एक भी प्रान्त, जिला या सब विविजन ऐसा होता जो गर्व से कह सकता कि वहाँ पर दुनिया की कोई भी शक्ति हिन्दू मुसलमानों में झगडा नहीं लगा सकती। हम मान सकते हैं कि हम जीते हैं मगर अनेकता के कारण हम मरे हुएों से भी बदतर हैं। हिन्दू मानता है कि मुसलमानों से झगडा करने से हिन्दू धर्म की उन्नति होती है और मुसलमान समझता है कि हिन्दुओं से झगडने से सवाब मिलता है। मगर दोनों ही इससे अपने २ धर्म का सत्यानाश कर रहे हैं। यह जहर दोनों सम्प्रदायों के आदमियों में फैल गया है। इसमें ताजुब ही क्या है? एक पाप करके दूसरी ओर पुण्य नहीं छूटा जा सकता। मनुष्य का जीवन तो एक पूरी वस्तु है जिसके हिस्से नहीं किये जा सकते।

“मैंने कोमिट्टा में कहा कि यह सवाल आदमियों के वश के बाहर चला गया है और इसे ईश्वर ने अपने हाथों में ले लिया है। संभव है कि यह बात मेरे अहम्माव के कारण मुझे सुझती हो। मगर मैं ऐसा नहीं मानता। इसके लिए मेरे पास काफी कारण भी हैं। छाती पर हाथ रख कर मैं कह सकता हूँ कि एक मिनट के लिए भी मैं भगवान् को भूलता नहीं। गत २० वर्षों से मैंने सभी काम उसी प्रकार किये हैं जैसे मानों साक्षात् ईश्वर मेरे सामने खड़े हों। हिन्दू-मुसलिम एकता को मैंने अपने जीवन का एक ध्येय बना लिया था। द. अफ्रीका में मैंने इसके लिए काम किया, यहाँ मैं इसके लिए खड़ा, इसके लिए मैंने तपस्वियों की मगर भगवान् संतुष्ट न हुआ। इसके लिए वह मुझे कुछ साबासी देने देना नहीं चाहता था। इसलिए मैंने इससे अपना हाथ खींच लिया है। मैं वैराग्य हूँ। मैं अपनी सारी शक्ति लगा चुका। मगर चूँकि परमात्मा में मेरा विश्वास है, एक क्षण के लिए भी उसमें मेरी श्रद्धा कम नहीं

होती, मेरे लिए जो दुःख या सुख वह लिखता है, उसीसे सन्तोष मानता हूँ, इसलिए मैं वैराग्य भले ही होऊँ मगर निराश नहीं होता। मेरे भीतर कोई चीज कड़ती है कि हिन्दू-मुसलिम एकता होगी और उससे भी पहले होगी जितनी जल्दी हम उसकी आशा कर सकते हैं और हमारे न चाहने पर भी परमात्मा हम ऊपर एक दिन एकता लाद देगा। इसीसे मैंने कहा है कि सवाल अब भगवान् के हाथों में पहुँच गया है। बाहर की बात को कुछ लोग अहंकार और उद्वेगता समझें। उद्वेगता का अर्थ है कि मानों मुझसे अधिक किसीने इसके लिए श्रम किया ही न हो और अब यह किसी भी आदमी के वश की बात नहीं है। मगर इसमें कुछ भी घमंड नहीं है। सैकड़ों आदमियों के इसके लिए उतनी ही व्यग्रता, प्रेम और मिहनत से श्रम किया होगा मगर मुझसे अधिक किसीने नहीं। और मेरा विश्वास कि वे सभी आज अपने को वैरागी ही वैराग्य पाते होंगे जैसा मैं। १९२० में मैंने कहा था कि ब्रिटिश साम्राज्य भी अपनी सैनिक शक्ति, राजनीति-चातुर्य और संगठन रख कर भी हमें नहीं कर सकती, हमें गुलाम नहीं बना सकती, हिन्दू-मुसलिम को अलग नहीं कर सकती। मगर मैंने उस समय हम सब किसीको धर्म-भीरु समझा था। हम एक दूसरे का विश्वास करते थे और परस्पर एक दूसरे के बल का भरोसा करते थे। मगर आज मैं तुम्हें क्योंकि समझाऊँ कि निर्भय बन जाओ, घृणा का अविश्वास को छोड़ दो। श्रद्धानंद जी मुसलमानों के शत्रु न बने वे योद्धा थे। उनसे लड़ने का रास्ता उनका खून करना नहीं था। हम हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके खून से अपने पाप धो लें।

“और आखिर हम लड़ें भी किसके लिए? हम हिन्दू बुतपरस्त हो सकते हैं। हम गलत रास्ते में हो सकते हैं। मगर जब ईश्वर ने आदमी को भूलें करने का हक दिया, बुतपरस्त होने पर भी हमें वह जीने देता है तो मुसलमान भी हमें क्यों न इतनी स्वतंत्रता दें? और अगर एक मुसलमान समझता है कि उसे गाय मारने की चाहिए तो कोई हिन्दू उसके हाथ को जबरदस्ती क्यों रोके उसके आगे वह छुटने देकर उसे क्यों न समझावे? मगर हम ऐसी कोई बात न करेंगे। तब भगवान् ही एक दिन, हम हिन्दू और मुसलमानों को वह करने पर लाचार करेंगे जो आज हम नहीं करेंगे। अगर तुम धर्म में विश्वास करते हो तो अपने ही भीतर सुख जाओ और परमात्मा से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें गलत रास्ते से बचावे और सुपथ पर ले जाय। नित्य प्रति सायं प्रार्थना हम यह प्रार्थना करें। दूसरा कोई रास्ता नहीं है।”

( यं० इं० )

### आश्रम भजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्डर मिलते हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आर्डर भेजनेवाले सज्जन बंधों से शिकायतें भेजना शुरू न करें। छठी आवृत्ति तैयार हो रही है।

‘हिन्दी नवजीवन’ की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अवश्य हैं। तीसरे, चौथे और पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। एक साल हिन्दू बंधी पूरी फाइल का दाम ढाक सर्च के अलावा सात रुपये हैं।

व्यवस्थापक,

‘हिन्दी नवजीवन’



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका २)  
एक प्रति का १)

शून्य में से

# हिन्दी नवजावन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २७ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
—सामी आनंद

अहमदाबाद, फाल्गुन अदि १, संवत् १९८३  
शुक्रवार, फरवरी, १७ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## श्री सकलातवाला

भाई सकलातवाला का गर्जना की झनकार बहुत श्रियों से सुने थे। आखिर नागपुर में पहले पहल अंत भी हो गयी। गांधी जी से वे कितने दिनों से मिलना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने विहार में तार भी किया था। गांधी जी और वे बहुत प्रेम से मिले। कई साल से विलायत में घर घर के बसे हुए इस भाई ने अपनी मीठी पारसी गुजराती में बान शुरू की। गांधी जी ने पूछा, 'आपको कुछ खानगी बातें तो नहीं करनी हैं न ?' भाई ने कहा, 'मैं तो कोई अडचन हूँ ?' वेबडक जवाब मिला, 'आपको खानगी नहीं है। इस तो छपार पर चढ़ कर अपना विशेष गोटते हैं।' उनकी हर एक बात में उनके निरालिसरना और मजबूतवाह की छाप पड़ी होती थी। मगर जिस प्रकार किसी एक पारसी भाई और मौ० शौकतअली अपने से ही बात कर सकते हैं, यही हाल सकलातवाला का भी था। उन्हें गांधी जी ने जितना समय दिया था, सब समय वे आप ही गोटते रहे, तौ भी बात पूरी न हुई। इसलिए गांधी जी ने उन्हें स्वतन्त्रता में बुलाया और वे आये। वहाँ पर उनकी सादगी और शुद्धता और भी देखने में आयी। पीछे पर बैठ कर दाल खाया और १२ बजे दिन से लेकर ४ बजे तक बातें कीं। उनकी सादगी ऐसी थी जो किसी गरीब अंग्रेज के लिए शोभाप्रद होती। उनका ठाटबाट उन्हें सहज ही साम्यवादी या 'कम्युनिस्ट' बनाता था। उनकी बात चीत में पग पग पर उनकी देश प्रेम दिखायी पड़ती थी। यवतमाल की कई संस्थाओं को उनके बाद, व्यायाम मन्दिर की पुस्तक पर कुछ लिखने को गांधी जी तथा श्री सकलातवाला से कहा गया। गांधी जी ने व्यायाममन्दिर की मंगल कामना और व्यायाम की आवश्यकता पर लिखी में दो वाक्य लिखे, मगर भाई सकलातवाला ने तो खासा के ने लखे हैं, उस कुटुम्ब की लडकियों के लिए क्या ? — 'सकलातवाला।' इस प्रकार खेळ देखते देखते भी वे गांधी जी के लिए हम क्या करते हैं ? गरीबों के लिए हम क्या करते हैं ? दलितों के लिए क्या करते हैं ? तमाम दलितों को जीन बसा से दुःखी सकलातवाला का दर्शन इस छोटे से

हमारी वर्तमान राजनीति उन्हें पसन्द नहीं है। पसन्द हो क्यों कर ? उन्हें मालूम होता है कि पिछले ५,६ वर्षों की जायति के बाद हम भीख माँगने, प्रस्ताव करने, भरजो देने, वगैरह की पुरानी नीति की ओर हटे जा रहे हैं। अपने दिखी के अनुभवों के बारे में बात करते हुए उन्होंने कहा : 'विलायत की आम सभा ( हाउस ऑफ कॉमन्स ) में सभापति के आसपास दो चित्र हैं; एक में यह दिखलाने को कि प्रमुख परतंत्र है—उसके सामने राजा और उसकी सेवा मन्त्री हैं और हमारे में तब करना है कि राजा आवे या राजा का बाप, मगर प्रजाकी जो मर्जी है, वही मेरी मर्जी है। उसके सामने ठहरने की किसकी मजाल। विठ्ठलभाई पटेल के सामने चीन की स्थिति पर विचार करने की दरखास्त आयी। वायसराय ने उसे नामंजूर किया और इसीसे विठ्ठलभाई ने यह कह कर कि वायसराय का हुक्म आया है, अब मुझसे कुछ न होगा, उससे हाथ धो लिया। तुमसे कुछ होगा क्यों नहीं भाई ? प्रजा का मत सुनाने को जो प्रतिनिधि हैं, उनका क्या हक नहीं है ? अगर विठ्ठलभाई को इस्तीफा देना पड़े तो ? इस्तीफा भी आखिर क्यों देना पड़े ? स्वराज दल में क्या ऐसे दो चार वक्ता न मिलेंगे जो १५ दिनों तक बोलते ही रहें और सब को थका मरें ? मैं तो इन लोगों से कहता हूँ कि भाई, मेरे लिए कोई जगह खाली करे और दो चार महीनों के लिए थोड़ी जमीन खरीद कर, मुझे कहीं से चुन कर धारासभा में भेजे तो मैं बताऊँ कि इन लोगों से कैसे तौबा तौबा करवाया जाता है। यह जुदा ही बात है कि हिन्दुस्तान में 'स्पीकर' ( सभापति ) ऐसा कर सकते हैं या नहीं ।'

यह हैं शापुरजी सकलातवाला ! इनका यह एक दर्शन है। दूसरा दर्शन तो बातचीत में हुआ। यवतमाल में उनका भाषण हुआ। उनकी बातचीत का सारांश यह है, 'साम्राज्यवाद का अन्त करना चाहिए। इसके लिए सभी कोशिश कर रहे हैं। चीन, रूस और मेक्सिको जैसे देशों को सफलता भी मिल चुकी है। हम भी क्यों न सफल होंगे ? हम भी अगर सभी कोई एक साथ मिल कर चलेंगे तो हमारी बात सुनी जायगी। हमारे पास अगर १० लाख मजदूरों का संघ हो तो हम जो चाहें कर सकते हैं। यह संघ सहज ही खड़ा भी किया जा सकता है। हमारे मतभेद तो किसी हिसाब में नहीं। मतभेद हों ही तो क्या ! सब को अपने अपने विचार रखने का अधिकार है, और मैं तो



मानता हूँ कि हिन्दू मुसलमानों को लड़ने का भी अधिकार है। दूसरे देशवाले आपस में लड़ते नहीं हैं क्या? लड़ते २ भी क्या वे स्वतंत्रता का सुख नहीं भोगते? इससे हम सब इकट्ठे हो कर कहें कि जैसे सारी दुनिया स्वतंत्र है, हम भी वैसे ही स्वतंत्र होना चाहते हैं। सरकार के पास हम प्रार्थना क्यों करें? नन्से तो हमें यह पूछना है कि तुम्हें यहाँ किस शर्त पर रहना है? खादी के विषय में उनकी सब से बड़ी बाधा यह है कि उससे हिंसा होती है। हिंसा अहिंसा से उनको कुछ लेना देना तो है नहीं मगर वे कहते हैं कि खादीवादीयों का अहिंसा का दावा उचित नहीं है। उनका कहना है, 'खादी में एक्य नहीं है। घर बैठ कर चर्खा चलाने से एक्य क्यों कर होगा? एक्य तो फैक्टरी में एक साथ मिल कर काम करने से ही होता है।' यह तो एक शब्द में उनकी बातों का सारांश हुआ। उनकी सभी बातें लिखी जायें तो शायद पचासों पृष्ठ लगें, मगर सार तो ऊपर आ ही गया। गांधी जी ने कहा, 'आप जो कहते हैं, उसमें मे जितना शक्य है, वह हो रहा है। जो शक्य नहीं, वह नहीं होता है। यहाँ कुछ दिन ठहरिये तब आग को कठिनाइयों मालूम होंगी। मेरा दावा यह है कि आप जो संगठित बल चाहते हैं वह केवल खादी से ही तैयार होगा। खादी में आप हिंसा कहाँ देखते हैं? हम किसी शराबखाने से शराब लेकर पीते हों, अगर ज्ञान होने पर शराब पीना बन्द कर देंगे तो यह क्या उस पर हिंसा होगी?' इस अखीरी सवाल का जवाब श्री सकलातवाला ने लगभग 'हां' में दिया। गांधी जी इसे। इस हिसाब में ही उनका ग्रन्थ जवाब दिया कि 'तब तो यह ग्रन्थ भी आवश्यक ही है।' खादी की संगठन शक्ति के विषय में गांधी जी ने उन्हें अपने साथ चल कर खादी कागें करनेवालों, बुनवैगों, कनवैगों, धोबियों, रंगरेजों, लपटों बंगरह का संगठन अपनी आँखों देख लेने को कहा मगर भाई सकलातवाला की समय नहीं है। उन पर न्याय करने के लिए यह कहना चाहिए कि खादी से स्वतंत्रता और स्वावलम्बन की जो हवा बड़ी है, वह उन्हें बहुत पसन्द पड़ी है।

उसी दिन सन्ध्या के भाषण में भाई सकलातवाला का और भी परिचय मिला? पाठकों को ज्ञान कर आनन्द होगा कि यह भाषण हिन्दी में हुआ। यह पारसी हिन्दी भी पारसी गुजराती जैसी ही मीठी थी। सारे भाषण का सारांश यह था कि, 'मजदूरों और किसानों, तुम संगठित हो और अच्छे नागरिक बनो। इसमें विलायत के मजदूरों से एकत्रता का अनुभव करोगे।' हम एकत्रता का अर्थ उन्हीं के शब्दों में यह है, 'अमेरिका के किसान और मजदूर एक आना रोज नहीं कमाते। वे कई रुपये रोज पाते हैं। उन्हें मोटरकार है। वे सिनेमा में, नाटक में जाते हैं। तुम भी संगठित हो और उन हकों का सुख भोगो। मैं यह नहीं कहता कि फैक्टरी में से अपने लड़कों को खींच लो मगर वे आज जितना कमाते हैं, उसके दुगुना कमायें, दुगुने सुखी हों।' गांधी जी ने भी सकलातवाला के फैक्टरी के विषय में आग्रह पर इतना ही कहा कि 'अगर सारा हिन्दुस्तान फैक्टरीयों में काम करने लगे तो हमें चूने के लिए पृथ्वी पर कोई देश ढूँढना होगा, शायद दुसरा ग्रह ढूँढना होगा।' इसका जवाब भाई सकलातवाला के पास न था। भाई सकलातवाला और खादी के बीच का मेद समझ में आने लायक है। खादी-वादी अमीरों को आम लोगों में लाना चाहता है तो सकलातवाला गरीबों को ही अमीरी का मजा चखाना चाहते हैं। खादीवादी ऊँचे वर्ग को उनका कर्तव्य बतलाने के लिए, उनके कुटेब छुड़ाने, उनकी जरूरतें कम करने और गरीबों के साथ खुद उन्हें गरीब

बना कर उनके दुःख दर्द समझाने का उद्देश्य रखते हैं तो भी सकलातवाला का क्रम विलम्ब उल्टा है। इस उल्टे क्रम में जितने खतरे भरे हैं, इसका उन्हें पता नहीं है। अगर वे यही रूढ़ देश की स्थिति को देखें तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि उनकी हरि नागयण की सेवा इसी ही रूप लेवेगी। परन्तु दुःख की बात यह है कि वे यहाँ रह नहीं सकते। खैर, जितने दिन वे यहाँ खादीवाद को अधिक समझने का प्रयत्न करें तो ठीक है। पकि में जरूरियात बढ़ाने की ही गुंथार समझते हैं, तो खादीवाद का मूल मंत्र है:

जो साथ नवावे, वह हरि की भावे।

(नवजीवन)

सहादेव देशा

## सहचार

राष्ट्रों का संघर्ष निकट आता जान पर पड़ रहा है। उसे टाल क्या संभव है? जिन लोगों ने अपनी दीर्घ दृष्टि के बल से इस विषय की गम्भीर कलना की है, वे उसे टालने का भगोरथ प्रयत्न रहे हैं। पर, ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं। उनके वचन आरण्यरुदन से मालूम पड़ते हैं, लेकिन उनमें श्रद्धा इतना तो उन्हें दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर की लीला अन्त भले ही हो, लेकिन वह संलग्न है और उसका परिणाम कर्मकारी है। वे लोग इस श्रद्धा को जो रूप देना चाहते हैं, वह रूप जब आचार ग्रहण नहीं करता, तब वे भी चकर में जाते हैं। लेकिन आस्तिक श्रद्धा की कोई भट्ठादा वैधी न होने काण वे नम्रतापूर्वक कहते हैं:—किस प्रकार से होगा सो हम नहीं जानते। वे निगर में से शक्ति का उदय होगा, उस में से ही संघर्षार्थ उद्भव होगा। ऐसा माना नहीं जा सकता कि अग काल के असंख्य सज्जनों का पुरुष अथवा २ उन्नति कर लेने अलावा और कुछ न कर सकेगा।

यह अमर श्रद्धा है, यही महान् समस्या है; इसी के पर भविष्य को बलात् कुशल स्वरूप धारण करना पड़ेगा।

मनुष्य-सृष्टि में असाधारण काल निकट आने लगा मानवी का चरित्रबल, ज्ञानबल, तथा कर्मबल, तीन संस्थाओं एकत्रित हुए हैं—धर्म, सस्कृति और जाति में। ये तीन मनुष्यजाति की महान् से महान् संस्थाएँ हैं। मनुष्य किसी समय जाति को प्राधान्य देता है, किसी वक्त धर्म और किसी काल में संस्कृति को। ये तीनों वस्तुएँ हकीकत एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। एक ही मानवी जीवन तीन पहलू हैं फेर फेर से एक एक ऊपर आती और दिशा में उन्नति ही कर जाती हैं।

मनुष्य जाति की आत्मा एक है—हथिर भी एक है। जो विभाग-क्रम रक्ता गया है कि ऐसा सुगम ध्यान में आ जावे। ईश्वर की किसी अतर्क्य योजना के विभाग किसी किसी वक्त अलग हो जाकर अपनी २ स्वतंत्र रूप से साधते हैं और कभी कभी समीप आकर प्रभाव डाल कर एक दूसरे में नवीनता लाते हैं। कियाएँ इष्ट हैं—द्वितकर हैं। ऐसे समझों पर दो में से का उत्कर्ष होता है।

दो जातियाँ, धर्म अथवा संस्कृतियाँ जब एक दूसरे समीप आती हैं, तब वहाँ शान्ति नहीं रह सकती। संस्कृति दूसरे को हटाना, मिटाना या नष्ट कर देना चाहती है। ऐसा नहीं होता तो वे कभी कभी तेल पानी की तरह अलग रहना चाहती हैं। दो जातियों के बीच जो तेल पानी की तरह अलग रहना चाहती हैं, वे दोनों



१२२७

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

१२२७

ते हैं तो मो  
कम में किने  
वे यही रह ता  
कि उनकी शक्ति  
दुख की भा  
देन वे यही  
रीक है। पक्षि

इतिवृत्त

है। उसे टाक

ल से इस वि

गोरथ प्रयत्न

उनके वचन

में भ्रष्टा

लीला अन्त

रिणाम कल्प

चाहते हैं,

चक्र में

वैधी न हो

सो हम नहीं

होगा।

सकता कि अ

मिति कर ले

है; इसी के

पड़ेगा।

ने लगा

न संस्थाओं

ये तीन

मनुष्य

वक्त धर्म

हुँ हकीक

जीवन के

नी और

एक है।

सुगम

यर्थ योजना

अपनी उ

आकर पर

ते हैं।

दो में से

एक दूसरे

सकती।

चाहती है।

अलग अ

वे दोनों

तो की तरह एक दूसरे में मिल जाना। इस वचन के मूल में चाहे जो अर्थ हो, लेकिन इस प्रकार से भी इसे घटित कर सकते हैं कि सम होने पर धर्म की रक्षा विशेष रूप से करनी चाहिए। धर्म का घात करते जाने से खुद का नाश हो जाता है। धर्म में से यथा कम और यथागर्वाद् अर्थ काम की प्राप्ति हो सकती है, लेकिन अंधा काम या उतावला अर्थ धर्म को ही ले डूबता है और अन्त में स्वयं का भी नाश करता है।

लेकिन "अन्त में"—सो कब? भोग के साथ ही तो रोग का बीज पड़ जाता है, लेकिन उसका प्रभाव तुरत ही प्रगट नहीं होता। इस कारण लोग इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि अधर्म से मनुष्य की हानि नहीं होती। उल्टे जिन्दगी मजे से कटती है; धर्म तो डरपोक लोगों के लिए है।

इस भ्रम का कारण अंधा स्वार्थ और अज्ञान जन्य संकुचितता ही है। सुख किसमें है? प्रगति कसे पहचानी जाय? सत्ता का आंतिम फल क्या है? इन विषयों में मनुष्य की कल्पनाएँ अभी जंगली हालत में हैं। इसी वास्ते तो मनुष्य कलह में प्रवृत्त होता है।

आज कल की संस्कृति कौशल्य-प्रधान है। ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत करना, उस के जारिये कौशल्य प्राप्त करना, सत्ता को हाथियाना, उसे निभाना, बढाना और अन्त में अमर्त्याद् भोगों का भोग करना—यही सब आज कल की संस्कृति की—मालूम पड़ती है। जेब ज्ञान पूरे तार पर बढेगा, उस के अन्तर्गत हृदय का विकास हागा, कौशल्य परोपकारा बनेगा, सत्ता सेवा के काम में लगेगा, और साधोत्रक उत्कर्ष से ईश्या के बढे प्रसन्नता का अनुभव होगा, तब नया संस्कृति का प्रवर्तन हागा। इसी वशा में कतने ही लोगों के प्रयत्न जारी हैं लेकिन इसे विजोगोपु (विजय की तृणावले) लागू समझ नहीं सकते और दुःख की बात तो यह है कि आजकल (जाने का दुःख का कारण) लोग नहीं समझ सकते। इन दोनों के कब्जे को छुड़ाने के प्रयत्न में लगे हुए लोग इन दोनों को ही आप्रय मालूम होते हैं।

जीवन रहस्य का कल्पना संबंध में तीन मुख्य संस्कृतियाँ संसार में आधिकार भोग रही हैं: आर्य संस्कृति (जिसमें पारसी, बौद्ध, हिन्दू इत्यादि सब आ जाते हैं) इस्लामी और ईसाई। उन तीनों संस्कृतियों का शुद्ध रूप देखने पर उनके बाव जो अन्तर है वह साफ प्रकट हो जाता है। इसका कारण नहीं मिलता कि इन तीनों में पाराधन क्यों हो। मनुष्य जब तक यह कहता रहता है कि 'मेरी बात सच्ची है, मेरी बात अच्छी है' तब तक तो वह रास्ते पर है लेकिन जिस वक्त वह यह कहने बैठता है कि हमस जो पृथक होता है उसकी बात गुरी है तभी वह मोड़ करने में प्रवृत्त होता है। अज्ञान से बढकर अभिमान और कहां मिलेगा? संकुचित हृदय में जितनी कठारता होती है उतनी ही भला अन्यत्र कहां? स्वार्थ में जो अत्मघातों पैदपन होता है वह भला कहीं और भी?

इस सबसे किध प्रकार बच सकते हैं? महाप्रजाओं की दृष्टि में परिवर्तन होना ही चाहिए। उनकी जीवन की कल्पना शुद्ध होनी चाहिए एक दूसरे को समझने लायक समभाव इनमें होना चाहिये। न किसी से डरना चाहिए और न किसी को डरवाना और शिक्षण के साथ साथ समभाव तथा संतोष का आनन्द मनुष्य को एक बार चखना चाहिए। 'सन्तोष' शब्द यहाँ भले ही ऐसा वैसा लगता हो, इसमें भले ही पराक्रम न दिखायी देता हो लेकिन अन्त में इसीमें पुरुषार्थ एवं श्रेय है।



सम्राट ययाति ने सत्य ही कहा है —

यत् पृथिव्यां त्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।  
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात् तृष्णां परित्यजेत् ॥

और मनु महाराज कहते हैं :—

अधर्मेणैव तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।

ततः सपत्न्या जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

उन्मत्त मनुष्य को प्रतीत होता है कि यह सब कोमल वृत्ति वाले साधु पुरुषों की सदिच्छाएँ हैं, हम उनका पार उलंघन कर सकते हैं। अच्छे अच्छे सम्राटों ने यह प्रयत्न कर देखा है और अब भी बहुत से बड़े साम्राज्य आजमायश कर देखेंगे।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन वदि १, संवत् १९८३

### शून्य में से

अब चर्खे की संभवता पर विचार विशाल संभवता किया जाता है तब यह आश्चर्यजनक मालूम होता है कि ऐसी सीधी सी बात के सर्व प्राप्ति होने में इतनी देर क्यों लग रही है। एक लैटिन कहावत है जिसका अर्थ यह है कि शून्य में से शून्य हासिल होता है ही। लेकिन चरखा तो कम से कम इस कहावत के शब्दार्थ को ज़रूर ही गलत बतला रहा है। क्योंकि बिना किसी उपयोगी चीज को बरबाद किये या हथिये चर्खे का काम राष्ट्र के फालतू और आलस्य में बिता दिये जानेवाले समय का उपयोग

यह आलस्य, स्वाह वह अपने आप अस्तित्व पर किया हुआ हो, हराह जबरन लादा गया हो, राष्ट्र को आत्मा को ही नष्ट कर रहा है। जितना जितना में गाँवों में प्रवेश करता जाता हूँ उतनी ही ज्यादा गहरी चोट किसानों के चेहरों पर हवाइयाँ उठती देख कर मेरे दिल पर लगती है। अपने बेलों के साथ साथ मशकत करने के अलावा और कोई काम उनके पास न रहने के कारण वे उन्हींकी तरह बन गये हैं। यह लोमहर्षण-कारी दुष्वटना है कि हमारे करोड़ों देशवासी अपने हाथों की हाथों की तरह इस्तेमाल नहीं कर सकते। प्रकृति हमारी इस भारी भूल का, कि हम इन्सानों को जो खासियतें उसने अता की हैं उनको हम कतई काम में नहीं लाते, हम से बड़ा जबरदस्त बदला ले रही हैं। हमें उसकी देन का पूरा फायदा उठाने की पर्वा नहीं। और अन्य बातों के मध्य हाथों के ही कौशलपूर्ण व्यवहार के बिना पर हम देवान से बड़ कर माने जाते हैं। हममें से करोड़ों तो हाथों को पैरों की ही तरह इस्तेमाल करते हैं। फल यह होता है कि प्रकृति हमारे शरीर तथा मस्तिष्क—दोनों को जर्जरित कर देती है।

चर्खा ही इस सत्यानाशी बरबादी को रोक सकता है। चर्खा इस घड़ी भी यह काम कर सकता है और इस काम के लिए बहुत ज्यादा धन या दिमाग की जरूरत नहीं। इस बरबादी के कारण हम लोग मानों मरे हुए से रह रहे हैं। हममें जीवन फिर से आ सकता है—लेकिन तभी जब कि प्रत्येक घर में चर्खा बनने लगे और प्रत्येक गाँव में (हाथ के सूत का) कपड़ा बुना जाने लगे। इतना होते ही हमारी पुरानी ग्राभीण कला पुनः

सजीवित हो उठेगी और फिर वही देहाती तान छिड़ने जायगी। लगभग शून्य मरती जाति में न तो कोई पंचे जाता है, न कला और न संगठन ही।

एक ही एतराज चर्खे के खिलाफ आज तक उठाया गया है वह यह है कि चर्खे से काफी आमदनी नहीं हो सकती। लेकिन अगर चर्खे से एक पैसा भी रोज कमाया जा सकता है तो सोचते हुए कि हमारी औसत आमदनी डेढ़ आना की आमतौर पर रोजाना है, वह कुछ न कुछ तो देता ही है (जब कि एक अमेरिकी और एक अंग्रेज की औसत रोजाना आमदनी क्रमशः १३, ६, रुपये हैं, चर्खा जहाँ कुछ नहीं है; वहाँ कुछ तो दिखाता है) क्योंकि अगर हम चर्खे के द्वारा राष्ट्र के ६० करोड़ रुपये हर बच्चा ले, और हम ऐसा अवश्य कर सकते हैं, तो इतनी बड़ी रकम को राष्ट्र की आमदनी में जोड़ देते ऐसा करने में हमारे गाँवों का संगठन स्वतः हो जाता है। चूंकि इस करीब २ पूरी रकम को मुल्क के गरीब से गरीब में बाँटनी पड़ेगी इसलिए यह किया इतने धन के न्याययुक्त सम विभाग की योजना बन जाती है। और अगर इसमें विभागकम का सहानू नैतिक मूल्य जोड़ दिया जाय तो चर्खे पक्ष इतना सबल हो जाता है कि उसका विरोध किया ही जा सकता।

(यं. इ.)

### साप्ताहिक पत्र

बिहार से मध्य प्रान्त (मराठी) और बरार में क्या हो रहा है। यहाँ दक्षिणियों की उन भीड़ों का कहीं पता नहीं, जो कभी रात की नींद भी हराय कर देते थे, उनकी सी भरी अथाह सागर भी नहीं दिखायी पड़ता, अनन्त श्रद्धा और श्रद्धालु हैं जहाँ लोग, खास कर बड़ील लोग सवालत पूछते उनके जवाब माँगते हैं, हमारी ओर देखकर आँखें चुगना हैं मगर तौभी थोड़े से श्रद्धालु लोगों में अपना काम करे अदम्य उत्साह दिखलायी पड़ता है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि बिहार के दौरे को की विजय क्यों कहे और मध्यप्रान्त तथा बरार के दौरे को व्यक्ति विशेष की। जो थोड़ा बहुत संगठन बिहार में देखा आता था, वह लोगों की ओर से ही अपने आप ही होता राजेन्द्र बाबू बराबर पीछे २ छिपे रहते थे मगर मध्यप्रान्त बरार का दौरा तो बिलकुल जमनालाल जी का ही था। यह देख कर कि उन्होंने रोजरोज के लिए के बजे उठना, कर के मिनट पर कहीं सभा में जाना इत्यादि इस प्रकार कार्यक्रम बनाया था चकित कह रह गये। मैंने कहा 'बराबरों के साथ कह कार्यक्रम हम पूरा सके तो दौरा काम हो हमें स्वराज्य मिल जाना चाहिए।' आखिर दौरा अब खत हो गया और मुझे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ती है। मैं कहता हूँ कि अगर ऐसे ही हमारे २१ प्रान्तों के बिहार आदमी मिल जायें जिनमें जमनालाल जी की श्रद्धा, चातुर्य, बुद्धि, और पड़ी के समान समय—पालन होवे तो हमें स्वराज मिल जाय। जमनालाल जी की बड़ी संगठन शक्ति से लोग परिचित हैं, इस नम्र बनिसे की वीरता भी कितनी देखी है, मगर जैसा कि हम लोगों ने इस बार देखा, पता शायद ही किसी को होवे कि वे कैसे ही पके सिंगे हैं। दौरा शुरू होने के कितने दिनों पहले से ही उन्होंने



गरीबों के लिए कुछ भी नहीं है मगर खादी पहन कर,  
 उसका प्रचार कर, गरीबों के उपकार का बदला चुकाना है।  
 गांववालों को जो हम दिन दिन लूट रहे हैं, उसका बदला चुकाये  
 बिना स्वराज की कुछ आशा नहीं। चन्दा की म्युनिसिपैलिटी  
 खादी के लिए कुछ खर्च किया करती है। वहां उन्होंने कहा,  
 'इन हारों को लेकर मुझे क्या करना है? माला पहिन कर निकलने  
 का यह समय नहीं है। गरीबों को दूध वगैरह जो चीजें  
 मयत्तर नहीं होतीं, वे चीजें भी खाने का यह जमाना नहीं  
 है। कितनी ही बार मैंने सोचा है कि यह दूध भी त्याग  
 दूँ और देश की गरीब भूखों मरनेवाली बहियों को दे दूँ,  
 मगर मैं रुक गया हूँ क्योंकि यह आत्मनाश होता। खैर, किसी  
 प्रकार अनिच्छा से मुझे दूध खाना पड़ता है और उनकी सेवा  
 करने को जब तक ईश्वर चाहता है, मैं अपने को जिन्दा रखता  
 हूँ। इस लिए मालाओं पर रुपये न फूँको? मालाओं पर अगर  
 एक रुपया बचाते हो तो उससे १६ बहियों को खाना देते हो।  
 उन गरीबों की ओर से कान मूँद लेने की हमें क्या शर्म नहीं है,  
 जिनकी भिड़नत पर हम जीते हैं, जिन की जमीन से हमारी रोजी  
 चलती है? अगर आप उनकी बनायी खादी भी नहीं पहन सकते  
 तो 'लोकमान्य की जय' पुकारना तो बन्द करो। पहले कुछ  
 लोकमान्य के भाव दिखलावो, उनके कुछ काम करो, गरीबों के  
 लिए उनके उमड़ते हुए प्रेम की एक बूँद भी दिखला लो, तब  
 जाकर उनका नाम लेना।'

यह सन्देश बिलकुल बेकार ही न गया। खादी की बिक्री हर सभा की एक नियमित बात थी। बून और अमरावती प्रतिस्पर्धायोगियों के जबर्दस्त ठिकाने हैं। इस बात की याद हर एक रास्ता चलने वाले को देख कर आती थी। यहां भी खादी काफी बिकी और सभा की बसूली भी कुछ कम न थी, भगर्चे कि बिहार सी नहीं। अमरावती में म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष ने अपने भाषण में सबसे खादी पहनने की प्रार्थना की और उन्होंने ने उसी दिन से खादी पहनने की प्रतिज्ञा ली। पाँच और सज्जनों ने यह प्रतिज्ञा ली। नानाभाई मशरूवाला की बदौलत, जो असहयोगियों और दूसरों के बीच प्रेम के संबंध स्वरूप हैं, अकोले में कुछ बकील लोग भी शामिल हुए और खादी की खूब बिक्री हुई। इन प्रान्तों में ब्रियाँ सभाओं में प्रायः अवश्य आती हैं, और जहाँ जहाँ उनके लिए अलग सभाएँ की गयीं, वे बहुत ही सफल हुईं। अकोले में ब्रियों ने ५००) रु. की थैली तो इकट्ठी की ही थी, उसके अलावा ब्रियों के लिए गृहवर्ग में एक चर्खा वर्ग भी खोलने को उन्होंने गांधी जी को बुलाया था।

रुई का बाजार इतना मन्द होने पर भी — यह प्रान्त कपास का प्रान्त कहा जाता है — सभी जगहों में काफी बड़ी रैलियाँ मिलीं । इसके लिए जमनालाल जी और मारवाडी भाई धन्यवाद के पात्र हैं । कुछ खास दानों का यहाँ जिक्र किया जा सकता है । श्रीयुत गणपतराय एम० एल० सी, भंडारा ने १५००) रु०; श्रीयुत राघवेन्द्र राय, मंत्री ने ११००) रु०; नागपुर के नवाब साहेब ने ५००) रु० और सर मोरोपन्त जोशी ने २१) रु० दिये । सर मोरोपन्त का दान कुछ कम न समझना चाहिए क्योंकि वे उन नामी लिबरलों में से हैं जिन्होंने अभी तक खहर को अपनाया नहीं है ।

नागपुर का बिक्र करते हुए मुझे एक सुखद संस्मरण लिखने की लालसा होती है । नागपुर में पहुँचते ही शुद्ध जादी पहने हुए







१७ फरवरी, १९२७

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय ११

नगर-सुधार; दुष्काल-कोष

अगर समाज का एक भी अंग बेकार रहे तो यह बात अचिन्तनी है। जनता के दोषों को ढँक कर उसका चेहरा छुपाया जाये तो समाज का चेहरा ही नष्ट हो जायेगा। हमें अपने दोषों को बिना ढँक किये हुए हक सौंमने की प्रतीति देनी चाहिए। इस कारण दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों पर जो लांछन आरोपित था, हमें अपने दोषों को छुपाकर नहीं रखते, और बहुत सैले रहते हैं।

नगर-सुधार: सुनने में आया करती थी। इस कलकत्ता के निमित्त शुरू शुरू में हमारी कौम के नेताओं के घरों में सुधार आरंभ हो ही गये थे। लेकिन घर घर में सफाई पड़े तो तभी हुआ जब कि डार्वन में प्लेग फैलने लगा। इस काम में म्युनिसिपैलिटी के अमलदारों का हाथ था, तथा उनकी सहायता भी थी। हमारी मदद जब मिली तो तब उनका काम सुगम हो गया और हिन्दुस्तानियों को भी काम मिलने लगा। क्योंकि जब कभी प्लेग होता है तो लोग बहुत सदा होता है अमलदार लोग प्रायः ही अधीर होते हैं, प्रकृत से ज्यादा तजवीजें सोची जाती हैं, और हमें देखने में आता है कि जिन पर वे रंज हो जाते हैं उनके घर उन अमलदारों का दबाव अमल हो पड़ता है।

विचारों पर हमें हिन्दुस्तानी लोग अपने आप ही सख्त पढ़ने से ही नदीलत उबर आये।

जब हमें कठु अनुभव भी हुए; मैंने देखा कि स्थानीय सरकार के अमलदारों की माँग पेश करने में मैं अपने हिन्दुवासियों की सहायता जितनी सुगमता से ले सकता था, उतनी सुगमता से उन लोगों को सहायता मिलनी (अपने २ फरायज अदा करने की बात) सम्भव नहीं। कितने ही स्थानों में अपमान तक होता कि हमें ही में विनय पूर्वक उदासीनता दिखायी जाती। गंदगी को साफ करने का कष्ट उठाना तो उन्हें अखरता था—फिर भी हमें अपने खर्च करने की बात से काम कैसे चल सकता था? हमें तो यह भी काम करवाना हो तो धैर्य रखने की जरूरत है।—इस पाठ को अब मैंने अधिक अच्छी तरह सीखा। सुधार होते हैं सुधारक की गरज से। जिस समाज में सुधार करना चाहता है, उस समाज से उसे विरोध, और जान जोखिम तक की आशा रखनी चाहिए। हमें तो सुधारक सुधार मानता है, उन्हें समाज कुधार मानते हैं। और अगर समाज उन्हें कुधार न माने, तो वह समाज ही उदासीन क्यों न रहे?

हम आन्दोलन का फल यह हुआ कि वहाँ की हिन्दुस्तानी समाज के घर घर स्वच्छ रखने की आवश्यकता को थोड़ा बहुत समझा। फलतः अफरों में मेरी इज्जत बढ़ी। वे लोग भी हमें मानने लगे कि मेरा धंधा महज शिकायतें करना या हक माँगना नहीं है, बल्कि शिकायतें पेश करने अथवा स्वतः माँगने में ही शक्ति है। उतना ही भीतरी सुधारों के लिए भी हमें काम था। और यह काम था अफ्रीका-निवासी हिन्दुस्तानियों को भारतवर्ष के प्रति (प्रसंग आने पर) लौटकर आने का प्रयत्न था।

हमारे देश के लोग भी समाज की वृत्ति को दूसरी ही दिशा में ले जाने के लिये काम था। और यह काम था अफ्रीका-निवासी हिन्दुस्तानियों को भारतवर्ष के प्रति (प्रसंग आने पर) लौटकर आने का प्रयत्न था।

समझाना तथा उस धर्म का पालन भी कराना। भारतवर्ष तो कंगाल देश है। लोग धन कमाने के लिए परदेश जा कर कष्ट झेलते हैं, उनकी कमाई का कुछ न कुछ भाग भारतवर्ष को आपत्ति के समय तो मिलना ही चाहिए। सन् १८९७ ई० में अकाल पड़ा और फिर बाद की सन् १८९९ में उससे भी कठिन दुष्काल पड़ा। उन दोनों मौकों पर दक्षिण अफ्रीका से खासी सहायता भेजी गयी। पहले अकाल के अवसर पर जो रकम एकत्रित हो सकी थी, उससे बहुत बड़ी रकम दूसरे दुष्काल के वक्त इकट्ठी हो गई। उस उगाही में हम लोगों ने अंग्रेजों तक से सहायता माँगी थी और उनकी ओर से खूब सहायता मिली थी। इस उगाही के वक्त गिरमिटिया हिन्दुस्तानी लोगों ने भी चंदे दिये थे।

इस प्रकार इन दो दुष्कालों के समय जो प्रथा पड़ी सो आज तक कायम है और हम देखते ही हैं कि भारतवर्ष में सार्वजनिक संकट के मौकों पर दक्षिण अफ्रीका की ओर से वहाँ रहनेवाले हिन्दुस्तानी हमेशा अच्छी रकम भेजा करते हैं।

दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी लोगों की यों सेवा करता हुआ क्रमशः अनेक बातें मैं अनायास ही सीख रहा था। सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी सेवा जितनी की जायगी उसमें से उतने ही फल निकलते दिखायी देंगे। उनका कोई वारा-पार नहीं। सत्य में जितने गहरे उतरते जायें, उतने ही उसमें से रत्न हाथ आते जायेंगे और सेवा के मौके मिला करेंगे।

( नवजीवन )

मोहनदास करमचंद गांधी

## राष्ट्र भाषा

मेरे उस सीधे सादे लेख के उत्तर में जो मैंने सार्वजनिक सभाओं में अंग्रेजी बोलने की बुरी आदत के बारे में लिखा था और जो आदत खुश किस्मती से दिन पर दिन कम होती जा रही है—एक सज्जन लिखते हैं :—

२८ वीं जनवरी के 'यं. इ.' में आपने यह लिखा है कि मेरे दक्षिण भारत के भ्रमण में, जहाँ कहीं मुझे मान पत्र दिये जायें, वे सब प्रान्तीय स्थानीय भाषा में लिखे जायें; और उन का हिन्दी भाषान्तर मुझे दे दिया जाय, ताकि मैं उसे बॉच सकूँ। आपने यह भी प्रकट किया है कि आपका खयाल है कि अब वह समय आ गया है जब कि दक्षिण भारत को बड़ी सार्वजनिक सभाओं में अंग्रेजी का इस्तेमाल न करना चाहिए। आपके मतानुसार तो अंग्रेजी जानने वाले नेता गण ही हिन्दी न पढ़ने का हठ कर के जनता की उन्नति की तीव्र गति में बाधा दे रहे हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि अगर यह (अंग्रेजी) भाषा न होती तो जो राजनीतिक जीवन आज हिन्दुस्तान में हम देख रहे हैं, वह होता ही नहीं। इतना ही क्यों—खुद आप और मैं उस सूरत में यदि अपने २ घरों में नहीं तो कम से कम अपने प्रान्त में ही मड़बड़ रहते।

“आपके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता हुआ, बड़े नम्र भाव से क्या मैं आप से यह पूछ सकता हूँ कि आपने जो यह सलाह दी है, उसपर पूरे तौर पर गौर कर लिया है? मैं जरा चीन के वर्तमान अग्रगण्य पुरुष डा० यूजेनचेन के जीवन का कुछ हाल 'नेशनल हेराल्ड' से उद्धृत कर देता हूँ।

“सर राबर्ट बेडन ने कहा है कि यह एक अजीब बात है, कि हालाँकि मि० चेन चीन मुक्त का एक बड़ा प्रभावशाली नेता है, वह चीनी भाषा का एक शब्द भी कठिनाता से बोल सकता है। सिर्फ अंग्रेजी ज़बान ही वह ठीक ठीक जानता है।” अब मेरे बारे में सुनिए: मैं जहाँ का रहने वाला हूँ वहाँ की भाषा है, और स्कूलों में



सब के साथ, दूसरी ही भाषा, मलयालम्, पढ़ाची जाती है। फल यह होता है कि ऐसे लोग न तो लिखित तामिल से अभिन्न होते हैं और न मलयालम् में ही वे प्रवीण हो पाते हैं। और अगर ऐसे लोगों को सार्वजनिक सभाओं में तामिल या मलयालम् में बोलने का मौका पड़े तो वे न तो तामिल वालों को ही संतोष दे सकेंगे और न मलयालम् भाषा भाषी जनता को ही।

उचित हो या अनुचित — अंग्रेजी के प्रति काफी से ब्यादा तवज्जह दी जा रही है और दी जाती रहेगी — और ऐसा होना भी चाहिए। इसका कारण यह है कि अगर हिन्दुस्तान में कोई ऐसी शिष्ट भाषा है जो कि भिन्न २ जिलों (प्रान्तों की बात तो जाने ही दीजिये) के लोगों को एक कर सकती है और जिसकी बढौलत वे एक दूसरे को समझ पाते हैं तो वह अंग्रेजी ही है। यद्यपि कांग्रेस का अस्तित्व ४१ वर्ष से है, किसी ने भी गंभीरता पूर्वक यह सलाह नहीं दी है कि हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा अंग्रेजी के सिवाय और कुछ ही। निस्सन्देह, जहाँ के लोग यों ही वे पढ़े हैं वहाँ इस प्रकार की नवीनता दाखिल करना गैर मुमकिन सा है। और फिर याद रहे तब—जब कि हमें इस बात का फल नहीं हो सकता कि हमारी सरकार राष्ट्रीय सरकार है। जैसे कि आप फरमाते हैं कि खानवालों के बीच खड़े होकर अंग्रेजी में उन्हें व्याख्यान सुनाना उनका अपमान करना है, उसी प्रकार मेरा कहना यह है कि जहाँ पर देश के भिन्न २ भागों से लोग एकत्रित हुए हों, वहाँ अंग्रेजी को छोड़ कर अन्य किसी भाषा का प्रयोग करना उनकी तौहीन करना है। आपको याद होगा कि इस साल की महासभा के सभापति से पहले हिन्दी में बोलने के लिए कहा गया था। यह कहिये कि अपने अपूर्व साहस या — असाधारण चातुर्य की बढौलत वे उस पेचीदा मौके को समझाले गये। मान लीजिए कि सभापति महोदय अपनी ही भाषा में बोलते, तो बताइये कि कितने लोग समझ पाते? बहुत से बक्ताओं ने तो यह आदत सी ढाल रखी है कि कांग्रेस मंच पर भी वे उन लोगों का कतई खयाल न कर जो उनकी भाषा नहीं जानते — अपनी मातृभाषा में ही बोलेंगे। इसलिए उस वर्ष तक, जब तक कि हिन्दुस्तान और ब्रह्मदेश सब को एकसाँ काम देने वाली हिन्दुस्तानी ज़बान नहीं चल निकलती, पारस्परिक व्यवहार के लिए अंग्रेजी भाषा का ही एक मात्र साधन होना लाजिमी है और वह रहेगी भी। इसलिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का विरोध करने के बजाय, उस समय तक के लिए जब तक सारे देश के लिए सर्व सामान्य भाषा का प्रादुर्भाव नहीं हो जाता, आप के ऐसे नेता को यह न चाहिए कि वह लोगों से एक बिल्कुल भिन्न भाषा पढ़ने को कह कर लोगों की मौजूदा तकलीफों को और बढ़ा दें।

“यह प्रश्न कि सार्वजनिक सभाओं में कौन सी भाषा इस्तेमाल की जाय, हमेशा के लिये तै कर दिया जाना चाहिए। आज तो कैफियत यह है कि बम्बई कलकत्ता और मद्रास ऐसे सब प्रान्तों के लोगों से भरे हुए शहरों में भी सार्वजनिक सभाओं में कई भाषाओं का प्रयोग होता है। मेरी विनम्र और गौर शुदा राय यह है कि सभी सार्वजनिक सभाओं में सारी कार्रवाई अंग्रेजी में की जानी चाहिए। राष्ट्रीय महासभा या अन्य राजनीतिक या औद्योगिक सम्मेलनों के अवसर पर तो खुसूसन, जहाँ पर कि प्रतिनिधि लोग समस्त देश से आकर एकत्रित होते हैं, अंग्रेजी को छोड़ अन्य किसी भाषा का व्यवहार किया जाता उन लोगों का घोर तिरस्कार करना होया। आप अपने लेख में फरमाते हैं कि अगर अंग्रेजी को माध्यम रक्खा जायगा तो जन

साधारण में हम मुश्किल से प्रवेश कर सकेंगे। मैं यहाँ पर आपका पूरा पूरा सहमत हूँ। लेकिन, जन साधारण के पास जाने वाले उन्हीं के भाषा भाषी तथा उन्हीं में रहने वाले चाहिए। मैं कह रहा हूँ कि उनसे मिलते समय इन लोगों को उन्हींकी भाषा में समझाना चाहिये। मैं इसी विषय पर कांग्रेस के वर्तमान सभापति मि० श्रीनिवास आथंगर से बातचीत कर से चुका हूँ। वे अभी भी मेरे बम्बई पधारे थे। मैंने उनसे यह प्रार्थना विशेष रूप से की कि वे अपने उच्चपद से इस समस्या का समाधान ढूँढ निकालें।

मैंने इस पत्र को यहाँ इस लिए दिया है कि एक दृष्टि प्रस्तुत करता है। पत्र के लिखने वाले ने आलसीपन का समर्थन करने की अपनी उत्कट अभिलाषा क्योंकि लेखक की विचारशैली को और किसी प्रकार वर्णन कर कठिन है निम्न-लिखित मूल बातों को भुला दिया है—

१ अंग्रेजी भाषा देश में रहने वालों में से मुश्किल से फीसदी लोग जानते हैं।

२ वह सर्व साधारण के द्वारा कभी सीखी नहीं जा सकती।

३ और हम को राजनितिक मामलों में रोज व रोज साधारण से अधिक काम पड़ता है।

४ कांग्रेस में प्रतिनिधि तथा दर्शक लोग प्रति वर्ष ऐसे करते हैं जिनमें से अधिकांश अंग्रेजी न तो जानते और समझते हैं और जब यह कांग्रेस पूरी तौर पर एक जन-संस्था बन जायगी, जिसके प्रतिनिधि मेढतर, किसान, धोबी, दर्जी इत्यादि होंगे, तब और भी कम लोग समझने के वास्ते रह जायेंगे। आज जब कि मुश्किल से फीसदी लोग अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखते हैं, मुक्त की आप का ६० फीसदी से अधिक हिस्सा सामूली देहाती हिन्दुस्तानी कह सकता है। एक भारतवासी के लिए किसी समय अंग्रेजी अपेक्षा हिन्दुस्तानी सीखना बेइन्तिहा आसान है।

बातें ये हैं, लेकिन पत्र-लेखक ने उनका विचार नहीं किया इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी को कांग्रेस की कार्रवाई की बनाने के जोश में लेखक महोदय उस आन्दोलन को भूल रहे हैं जो कि कांग्रेस में शुरू से ही हिन्दुस्तानी को माध्यम बनाने का पक्ष में जारी है और उन्होंने यह भी भुला दिया है कि कांग्रेस यह एक स्वीकृत प्रस्ताव भी है कि हिन्दुस्तानी राष्ट्र भाषा दी जाय। पत्र-लेखक का शायद यह खयाल है कि मैं पढ़ना तक बुरा बतलाता हूँ — यह मैंने कभी नहीं कहा है।

इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अंग्रेजी जानने वाले हिन्दुस्तानियों ने देश की बड़ी भारी सेवा की है, लेकिन उनसे, इस बात से भी तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आगे की तरफ़ी हमें अंग्रेजी बोलने वाले लोगों के द्वारा सीखा जा सकता है कि हम सर्व साधारण की भाषा को सीखें तथा उनके बीच में उन तरीकों से जो उनके लिए परम उपयुक्त है, काम करने से इन्कार करते हैं। जो उदाहरण लेखक मि० चैन का दिया है, वह बेमौका है। मुझे यह नहीं पता कि मि० चैन क्या कर रहे हैं, लेकिन इतना मैं अवश्य जानता हूँ कि वह चीन के सर्व साधारण से अंग्रेजी भाषा में नहीं बोलते।

और मेरे लिखने का यह अभिप्राय है, कि मिश्रित सर्व साधारण सभाओं में, जहाँ कि प्रान्तीय भाषा द्वारा समझी नहीं जा सकती, अगर किसी दूसरी भाषा का उपयोग करना है तो हिन्दुस्तानी भाषा ही उपयोग की चाहिए। यह एक ऐसा प्रस्ताव है कि जिसका विरोध किया ही जा सकता है।

(१००६)



# सम्माननीय समझौता

## हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वार्षिक मूल्य ४)  
छ: मासका २)  
एक प्रति का १)

पृष्ठ ६ ]

[ अंक २८

मुद्रक-प्रकाशक

अहमदाबाद, फाल्गुन बदि ७, संवत् १९८३

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

स्वामी आनंद

गुरुवार, फरवरी, २४ १९२७ ई०

सारंगपुर सरकांगरा की बाड़ी

### सेवा मंत्र

[ विहार के राष्ट्रीय विद्यार्थी सम्मेलन के सभापति के पद से श्रीयुत महादेव देशाई के भाषण का सारांश नीचे दिया जाता है ]

मैं शिक्षक नहीं, गुरुजन नहीं, केवल सेवक हूँ परन्तु तौभी आपने मुझे सभापति का पद दिया है। इसका कारण मैं कुछ ब्रह्म समझ सकता हूँ। यह युग शंकर-पूजा का है और श्रद्धा की श्रृंखला तो कैसे चले, शायद इसीलिए आपने मुझ जैसे ब्रह्म करने वाले सेवक को यह पद दिया है।

आपके मुद्रालेख में है 'तप्तो मा ज्योतिर्गमय' और हमारे यहां पुजारात विद्यापीठ में है, 'सा विद्या या विमुक्तये'। वही सच्ची विद्या वही है जो मुक्ति दिलावे और वही प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है। दूसरे शब्दों में सच्चे सेवक बनना, ज्ञान या प्रतिष्ठावान् होना नहीं, हमारा उद्देश्य है। मैं जानता हूँ कि इस उद्देश्य की प्राप्ति में आपको और आपके शिक्षकवर्ग को बड़ी कठिनाइयां पेश आ रही हैं मगर सेवा धर्म अगर सहज होता तो फिर कृपियों ने यों न कहा होता कि 'सेवाद्वयः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।' परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा के जनकों ने इसकी एक कुंजी बतायी है। एक शब्द में वह कुंजी है आत्मशुद्धि। आत्मशुद्धि अगर आपमें पैदा हो जायगी तो फिर दूसरे बनें भी पैदा होंगे। उसके लिए कुछ अक्षर-ज्ञान जरूरी नहीं है। उसका साधन तो सेवा का मंत्र है। अगर विद्या पढते हो तो उसे ऐसी बनाओ कि वह आत्मशुद्धि की सहायक होवे। जो जी जिस ग्रन्थ की कल्पवृक्ष सा मानते हैं, जिसका वे नियम पराएण करते हैं और जिसकी कसांटी पर अपना हर एक काम जाँचते हैं उसी महाग्रन्थ श्रीमद् भगवद् गीता का आधार है आत्मशुद्धि के साधनों की खोज के लिए लंगा:

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।

यह दान और तप यही तीन मुमुक्षु को पावन करने वाले हैं, जिसका उद्देश्य करने वाले हैं। इन तीनों को हम समझ लें तो सेवा का महामंत्र समझ सकेंगे।

दूसरे स्थान पर गीता जी ने यज्ञ को बतलाया है फल को न लीजना किंवा गया सात्विक यज्ञ। इस यज्ञ की हमारे युग

की परिभाषा गांधी जी ने बतलायी है। वह है समाज सेवा के लिए चर्खा यज्ञ। यही प्रवृत्ति आज हमारा बड़ा से बड़ा काम हो रही है। इसी का मंत्र विहार के कोई दश लाख आदिमियों को सुनाते हुए गांधी जी आज पटने आये हैं। उनका बड़ा से बड़ा काम है असहयोग और सत्याग्रह तथा सब से बड़ी साधनाएँ हैं अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य। अगर आप अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य में विश्वास करोगे तो चर्खे पर उनके इतना जोर देने का भी अर्थ समझ सकोगे। सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का निरन्तर पालन करने के परिणाम में उन्हें हिन्दुस्तान की सच्ची दशा का ज्ञान हुआ और जाग्रत पालन के कारण ही उससे निकलने का पाय सूझा। असहयोग और सत्याग्रह तो उन्होंने पहले ही निकाल लिये या परन्तु सत्य और ब्रह्मचर्य के उत्तरोत्तर पालन से चर्खे को उन्होंने उनके भी आगे ला रक्खा। दूसरी रीति से देखें तौभी सत्याग्रह और असहयोग, दोनों के ही प्रयोग के परिणाम में चर्खे को ही सारे कामकाज का केन्द्र बनाना उन्हें सूझा। दोनों प्रकार से देखने पर सभी आन्दोलनों का परिष्कृत फल चर्खा ही दिखलायी पड़ेगा। आखिर इस यज्ञ चक्र में भी क्या ही भाव उन्होंने भर दिये हैं। शारीरिक श्रम की शिक्षा तो यह निरन्तर देता ही रहता है; गरीबों की भूख और हमारी मा बहिनों की तबियत की याद इसका कण्ठगान दिलाता ही रहता है; यह आशा दिलाता है कि हिंसायुग के महाचक्र की भीषण ध्वनि के बदले अहिंसाचक्र की मधुर ध्वनि सुनने में आवेगी। इसी लिए गांधी जी ने इस यज्ञ को किसी महाव्रत के पालन सा गंभीर बना डाला है। सबेरे चार बजे से ले कर ग्यारह बजे रात तक काम करते रहने से चर्खा न चला सकने पर वे उस समय भी कम से कम १ घण्टा चर्खा चलाये बिना नहीं रहते। उनकी यह प्रतिज्ञा है। क्या यह भी बतलाना होगा कि इस यज्ञ के पालन से नियमितता, एकाग्रता, प्रतिज्ञा-पालन के उत्साह और आग्रह अपने आप ही आ जाते हैं?

दूसरा साधन है दान। गीता जी में देश, काल और पात्र के योग्य दान की ही प्रशंसा है। तुम कहोगे कि हम गरीब लोग गरीबों से पढते हैं, हम दान क्या देंगे? मगर तुम बहुत कुछ दान कर सकते हो। तुम्हारी मुक्ति के लिए तुम्हें जो विद्या मिल रही है, दूसरों की मुक्ति के लिए उसका उपयोग करो। इसकी कीमत रुपये पैसे में न लो। यह अमूल्य दान है। विद्या का



पवित्र वस्तु दूसरी नहीं। उससे दूसरों की सेवा करो, पर उसका दाम लेकर उसे अपवित्र न करना।

अब तीसरी बात है तप। तप के बिना यज्ञ और दान अशक्य हैं, सेवा की तो बात ही क्या। गीता जी में तीन प्रकार के तप हैं : शारीर तप, वाङ्मय तप और मानस तप। शारीर तप हुआ गुरुओं, आचार्यों की सेवा शरीर शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा। वाङ्मय तप हुआ अनुद्वेगकर सत्य और प्रिय वाणी बोलना और ऋषि वचनों का पुनः पुनः अभ्यास करना। मानस तप है मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मनिग्रह और भाव की शुद्धि। इससे घराबो नहीं। इसका पालन करने में तुम लोग हम लोगों से कहीं अधिक शक्तिशाली हो क्योंकि तुम अभी युवक हो। यह शक्ति सब में रहती है। कोई अपने प्रयत्न से बढ़ाता है और कोई उसे बरबाद कर डलता है।

आज की भाषा में इन तीनों तपों का वर्णन करें तो शारीर तप हुआ ब्रह्मचर्य यानी समाज और धर्म की सेवा के योग्य शरीर को बनाना, सेवा का काम प्रभु का काम समझना अर्थात् प्रभु के लिए कतवैया, बुनवैया, धोबी, भगी, ग्वाला चमार बन कर समाज की सेवा करना। वाचिक और मानसिक तप हुए, इन सभी सेवाओं में मन की प्रसन्नता रखनी, समाज की निन्दा के सामने भी प्रसन्नता रखना और अपने हर काम में सत्य को ही प्रकट करना। सच्ची बात तो यह है कि ये तीनों एक दूसरे पर अवलंबित हैं, और जब कभी तीनों को मिला कर के ऋषियों ने कुछ कहा है तो केवल ब्रह्मचर्य का ही नाम लिया है। अगर उसी ब्रह्मचर्य की महिमा देखनी हो तो गांधी जी को देखो। उनकी आत्मकथा पढ़ो। दीहातयों की परिभाषा के अनुसार न उन्हें आराम की जरूरत है, न आहार की, न सोने की। उन्हें तो मंदिर की मूर्ति के समान दिनरात अखंड दर्शन देते रहना चाहिए। बैसता का पट भी बंद होता है मगर उनका न होना चाहिए। इस विकट परिश्रम को वे क्यों कर सह रहे हैं? उनको यह वज्र जैसा शरीर कहाँ से मिला कि वे आज दिन रात काम करते २, अपने महायज्ञ की मूर्ति में दीहातयों की परिभाषा भी सच्ची कर रहे हैं। वे पुकार पुकार कर कहते हैं कि यह ब्रह्मचर्य का परिणाम है। इस ब्रह्मचर्य की तपःशक्ति को लेकर चाहे जिस अंधेरे प्रदेश में चले जाओ, तुम्हारे लिए भय न रहेगा। ब्रह्मचर्य के बिना बहनों के सामने तुम कौन सा मुँह ले कर जा सकोगे? गत वर्ष गांधी जी ने अपने अखीनस्थ बालकों को ब्रह्मचर्य-पालन के लिए तीन उपाय बतलाये थे—प्रत्य, स्वध्याय और इन्द्रिय निग्रह। चहे जितनी भूलें क्यों न हो किन्तु वैद्यस्वरूप पिता और गुरु से उन्हें कह देना ही पहला काम है। उनसे छिगाना पाप है।

स्वध्याय का पाठ सिखाने के लिए ही वे स्वयं चाहे बारह बजे रात को साँवे या दो मगर नित्य चार बजे उठ कर प्राथना के बाद गीता का स्वाध्याय करते हैं। तुम लोग भी गीता जी को पढ़के अपने शिक्षकों से समझलो और फिर नित्य एक अध्याय पढ़ा करो। आज ही नहीं, दस वर्ष बाद भी तुम्हारे जीवन से यह गोता सभी हुई होगी।

इन्द्रिय निग्रह है तीसरी बात। हमारी आँखें भली ही वस्तुएँ देखें, कान चले ही सुनें नाक मूँचे, स्पर्श भी पवित्र वस्तुओं का ही हो, जीम भी पावन वस्तुएँ ही चम्के। उठने और सोने के समय यही प्राथना हम किया करें। इन सभी निग्रहों में स्वाध-निग्रह ही सबसे पहली बात है। गांधी जी कहते हैं कि शरीर को साफ़ धुलाने के लिए ही भोजन करना चाहिए।

इसी लिए उन्होंने सभी मसालों का त्याग कर दिया है, कुछ दिन तक दूध और नमक भी छोड़ दिये थे। त्याग व्रत लेने सही अवसर है। बड़े होने पर इन्द्रियों भोगों में लिपट जाते हैं स्वादेन्द्रिय का तीर हाथ से छूट जायगा, जीती बाजी हार बैठोगे। इस लिए आज ही चेत जावो।

सेवाव्रत है असिधारा व्रत। व्रत ले कर उसे तोड़ना परम अपमान है। तुम रोज सबेरे

‘मृत्योर्मांडित्यं गमय’

की प्रार्थना करते हुए भी व्रत तोड़ तोड़ कर प्रतिक्षण में मर हो। वीर एक ही बार मरते हैं, बार बार भरना तो वीरों नहीं कायरों का ही काम है।

इस लिए आइये, हम सेवा व्रत का गांधीय समझ कर व्रत लें और हम सब शूद्र बनें, स्वयं भंगी और चमार बन उठें अपने सब बनावें और यज्ञ, दान तथा तप से शुद्ध हो मीराबाई के साथ भगवान् से प्रार्थना करें:

‘मनि चाकर राखो जी।’

(नवजीवन)

## टिप्पणियाँ

### श्रद्धानन्द स्मारक-

पं. मदनमोहन मालवीय और ला० लामपतराय के हस्ताक्षर के साथ यह निम्न-लिखित अपील प्रकाशित हुई है :—

“यह तय पाया है कि गुरुकुल कांगड़ी के लिए ढाई लाख की जो अपील पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की से निकल चुकी है, उसे छोड़ कर अब हिन्दू जाति की ओर केवल एक अपील दस लाख के लिए होनी चाहिए, जिसमें पाँच लाख तो स्थायी कोष में रहने चाहिए और शेष पाँच लाख तुर्त ही नीचे लिखे मर्हों में यथाक्रम काम में लाये जाने चाहिए ढाई लाख गुरुद्वार के निमित्त, सवालाल शुद्धि का काम के लिए और सरालाख हिन्दू संगठन के वास्ते। दूसरे उद्देश्य-पूर्ति के लिए समय समय पर, जैसा उचित समझा जाय दूसरी लोग हिन्दूधर्मा, सनातन धर्मसभा, आर्यसमाज (भारतीय शुद्धि सभा और दलितोद्धार सभा दिल्ली) द्वारा काम और जो हिमाच के पेश करने या जांच कराने के सम्बन्ध सामान्य नियम बनाये जावेगे, वे उन उपरोक्त संस्थाओं को मिलेंगे। लेकिन संगठन का कार्य केवल हिन्दू महासभा के होगा। जिस अनुपात में इन तीन मर्हों में पाँच लाख बाँटी गई है उसी अनुपात में स्थायीकोष वाले पाँच लाख बंजान उन तीन मर्हों के काम में लाया जायगा।

“यह भी निश्चय किया गया है कि किसी प्रान्त के द्वारा गुरुकुल की हुई रकम का कम से कम आधा हिस्सा उसी प्रान्त में ही किया जायगा; स्थायी कोष के सूद के बारे में भी यही लागू होगा।

“यह निश्चय किया गया कि जिस मकान में स्वामी श्रद्धानन्द मारे गये थे, उसी मकान को स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक बनाने के उद्देश्य से प्राप्त करने की कोशिश की जाय प्रत्येक दाता को यह हक है कि वह उपरोक्त तीन कामों किछी भी कार्य के निमित्त अपना दान निर्वारित कर दे। रकम सिर्फ उसी मर्ह या उन्हीं मर्हों में शर्च की जायगी।

“यह सब चंदा मैनेजर पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड दिल्ली के से. ‘श्रद्धानन्द स्मारक फंड के खते में, आना दानप्रेषकों से निवेदन है कि रुपया मेजते समय बैंक नाम, पते तथा रकमों की पूरी र सूची भेजें



२५ फरवरी, १९२७

१, १९२७

तो शायद अगर कोई दाता कुछ हिदायतें देना चाहे तो वह भी लिख दें। उनसे यह भी प्रार्थना की जाती है कि वे उस पुत्री को एक नकल मंत्री श्रद्धानन्द स्मारक फंड के नाम से दें।

“इस इत्मीनान के लिये कि सब चंदे फंड में जमा हो गये वे भी हुई रकमों की बाकायदा रसोई श्र० स्मा० फंड के मंत्री को पास भेज देंगे। और अगर रुपया भेजने के पंद्रह दिन के भीतर भेजी हुई रकम की रसोई न पहुँचे तो दाता को चाहिए कि वह मंत्री को इत्तिला दे।

“इसका श्रेय पूज्य स्वामी जी को स्मृति की होगी कि यह फंड का चंदा, जिसके लिए अपील की गयी है, ज्यादा से ज्यादा आगामी ३० वीं अप्रैल तक पूरा हो जाय।”

अपील करनेवालों ने यह भी लिखा है कि हमारी सम्मति में सब विल भारतीय चंदे को इच्छा करने के लिए सभी प्रकार की कोशिशें और दिशाओं से हटा कर इस ओर लगानी चाहिए।

और जब तक यह चंदा पूरा पूरा जमा न हो जाय। तब तक स्मृति एवं छोटे स्मारकों के लिये रुपया वसूल करने का काम स्थगित रखना चाहिए। जो विभाग उपरोक्त फंड में किया गया है उससे प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रिय उद्देश के निमित्त भिक्षु हो कर चंदा दे सकता है। आशा है कि दान दाता

को तारीख को स्मरण रखेंगे जिस के पूर्व ही यह स्मारक चंदा वसूल कर लेने की आशा रखनी है।

एक बड़े कतव्ये

विराट का दौरा खत्म करके मध्य प्रान्त को जाते समय मुझे अपने श्रुत योगेश्वर चटर्जी का मृत्यु-संवाद मिला। मुझे अपने परिवार प्राप्त था। उनसे यह आशा की जाती थी कि वे रात की शबनम—रात की ओस का मलमल—की कला को जिला सकेंगे। मैंने खादी-प्रतिष्ठान के क्षितीश बाबू से पूछा कि उनके जीवन के विषय में कुछताछ की। समाचार यह है और पाठकों के भी जानने योग्य हैं :

“२४ परगना जिले के पानापुर गांव के श्रुत जटिलेश्वर चटर्जी के पुत्र श्री योगेश्वर चटर्जी का वृद्धस्वपतिवार १६ जनवरी को हुआ और २० जनवरी रविवार को उनकी मृत्यु हुई। अब वे घर में उनका विधवा पत्नी, एक साल की बच्ची, एक छोटा बेटा और बड़े पिता हैं। उनका छोटा भाई इ. बी. रेलवे में काम करता है।

“योगेश्वर बाबू ने बी. ए. तक पढ़ा और कुछ दिनों तक काम किया। उसके बाद इ. बी. रेलवे में नौकरी कर ली। वहां काम करते-करते मरने के समय वे ३५ साल के थे।

“अवधयोग के जमाने में उन्होंने कातना शुरू किया। वे कातना को अपना ६० अंक का सूत बुनने को दिया। तभी से कातना से उनका निकट सम्बन्ध बढ़ा। इस सूत की कपास उन्होंने कातना से पैदा हुई थी। उस सूत का कपड़ा उन्होंने गांधी जी के प्रदर्शन के लिए उसे प्रतिष्ठान को दे दिया।

“कातनी गति दिखलायी थी। गोहाटी में २०० अंक का सूत कातना से पैदा हुआ। इसका प्रबंध खादी प्रतिष्ठान ने किया था। गोहाटी प्रदर्शनी में खादी प्रतिष्ठान ने २०० अंक के कातना का मलमल दिखलाया था। उसका सूत योगेश्वर बाबू ने ही

काता था। एक साल के भीतर वे इस मलमल के लिए २०० अंक का सूत और दो धोतियों के लिए १०० अंक का सूत कात सके थे। एक धोती आचार्य राय के लिए थी और दूसरी उनके पिता के लिए।

“गोहाटी से लौटने पर सगीश बाबू के कहने से वे ३०० अंक का सूत कातने लगे थे। वे बराबर ही खादी प्रतिष्ठान के पेटी चर्खे पर ही काता करते थे। वे पके खादी मक थे और फुरसत के समय कात कात कर उन्होंने ऐसी प्रगति कर ली थी।”

उनके परिवार से मैं समवेदना प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि योगेश बाबू के साथ ही साथ पुरानी कला को जिलाने की कोशिश भी न मर जायगी। लोग यह याद रखें कि योगेश बाबू की इतनी मिहनत का कारण केवल उनका देश-प्रेम ही था और केवल स्वेच्छा से कातनेवाले ही उनके महा प्रयत्न का अनुकरण कर सकते हैं।

( गं० रं० )

मो० क० गांधी

## मध्यप्रान्त और वरार के चन्दे

नाम	वचन	वसूल	कैफियत
गोन्धिया		५३५९ ८ ०	
तुमसर	१७००)		खजांची को अभी नहीं मिले
भंडारा	३५००)	३३८२ ६ ०	
नागपुर	५०००)		"
वर्धा		४६४३ ३ ३	
हिंमनवाट		१३०१ ० ०	
चन्दा		१४५८ २ ६	१ मोहर और ३ तोले सोने की अंगूठी
वरोडा		५७५ ० ०	
वन	३५००)		अभी खजांची को नहीं मिले
पंढरकवाडा		११८३ १० ०	
घाटनजी	२७१)		"
यवतमाल	२०००)		"
अमरावती	३५००)	२५०० ० ०	
मुरतुजापुर स्टेट		४५२ १३ ०	
अकोला	५१००)	४५०० ० ०	
शेगांव		४५१ ० ०	
खामगांव	३०००)	१५०४ ० ०	
मलकापुर		१३५३ १० ३	
धामनगांव और			
दूधरे गांव		३५० १२ ०	
स्टेशनों पर की			
फुटकर वसूली		८४ १ ९	

भीजान २९०५९ २ ९

## आश्रमभजनावलि

पांचवीं आश्रुति खत्म हो गयी है। अब जितने आर्बर मिलते हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आर्बर भेजनेवाले सज्जन अभी से शिकायतें भेजना शुरू न करें। छठी आश्रुति तैयार हो रही है।

आस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, काल्पुत बदि ७, संवत् १९८३

## सम्माननीय समझौता

दोनों पक्षों के लिए सम्मान्य समझौता करा लेने के लिए सर मुहम्मद इबीबुल्लाह और उनके सहकर्मियों धन्यवाद के पात्र हैं। इससे भी अच्छे समझौते की कल्पना की जा सकती थी मगर इससे अच्छा समझौता किया नहीं जा सकता था। मुझे इसमें शक है कि कोई दूसरा डेपुटेशन इससे कुछ अधिक कर सकता। कालों और गोरों को अलग अलग क्षेत्रों में रखने के जिस प्रस्ताव के कारण यह कान्फ्रेन्स हुई थी, वह अब मर गया, भिट गया। राइट आनरेबल श्री श्रीनिवास शास्त्री जी ने द० अफ्रीका को डेपुटेशन के रहना होने के समय हमें चेताया था कि बहुत फलकी आशा नहीं रखी जा सकती मगर कान्फ्रेन्स के समाप्त हो जाने पर वे भी अपना सन्तोष छिपा न सके। समझौते को पढ़ने पर सन्तोष होना उचित है मगर सभी समझौतों के ऐसा इसमें भी खतरे के कुछ मौके हैं ही। एक ओर से तो क्लाइ एरिया विल को हटाया जाता है दूसरी ओर से वहाँ के हिन्दुस्तानियों को स्वदेश लौटाने की नीति बदल कर दूसरे देशों में मेजने की जारी हो रही है। अगर यह दूसरा नाम अधिक शिष्ट है तो इसमें खतरे भी अधिक है। घर लौटाना तो केवल हिन्दुस्तान को ही हो सकता है मगर पुनः प्रवास तो किसी भी देश को। इसके अर्थ का पता, समझौते के इस बात से स्पष्ट लग जाता है कि 'इसलिए द० अफ्रीका की यूनियन सरकार, उन्हें हिन्दुस्थान लौटाने या दूसरे देशों में जहाँ यूरोपीय रहन सहन नहीं है, मेजने में सहायता देने की योजना करेगी।'

दूसरे देशों को मेजने में सहायता देने की इस बात को मैं खतरनाक समझता हूँ क्योंकि उन अशोष लोगों की क्या दशा होगी जो किसी अनजाने देश में विलकुल परदेशी बन कर पहुँचेंगे। केवल फीजी और न्यूगिनी ही ऐसे देश हैं जो उन्हें लेने को राजी होंगे। हिन्दुस्तान में दोनों ही बदनाम हैं। दूसरी जगह मेजने में सहायता देने की बात में साथ देना जरूर ही हानिकारक है।

इस सहायता के विषय में भली बात यही है कि समझौते के पहले जहाँ स्वदेश लौटे लोगों की वहाँ की नागरिकता छिनी जाती थी, अब वह तब तक बनी रहेगी जब तक वे इतने दिनों तक द० अफ्रीका से गैर-हाजिर न रहें कि उनके फिर लौट आने में सन्देह किया जा सके। यह दूसरा सवाल है कि कितने लोग अपनी सहायता का रुपया लौटाने की आशा कर सकेंगे। हकों के अस न कर लिये जाने की शर्त का हेतु उतना उनको निश्चित हक देना नहीं है जितना राष्ट्रीय स्वाभिमान पर चोट न करना है।

द० अफ्रीका में भारतीय सबालों पर गोलमेज कान्फ्रेन्स के निश्चयों का जो सारांश छा है वह भी माँके का कागज है। इसकी हर पंक्ति में विरोधी हितों और भावों की संगति मिलाने का भगीरथ प्रयत्न किया गया है। परिश्रमी पाठक को आशा पूर्ण स्थल भी हट निकालने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इस लिए मैं एक स्थल की ओर इशारा करके ही रह जाऊँगा जो भयानक खतरों से सरा पड़ा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य कानून के अनुसार

यूनियन गवर्नमेंट डरबन में और उसके आस पास नगर को विशेष रूप से जाँच करेगी और इस जाँच में कुछ लोग लगा कर म्युनिसिपैलिटी की जमीन बेचने के सवाल का भी निश्चय करना शामिल है। मुझे इसका मतलब मालूम नहीं मगर मेरे शक्ती दिमाग में इस प्रस्तावित समिति और रोक टोक की बात से भयानक परिणाम ही दिखायी पड़ते हैं। मेरे शक के आधार पर पहले के कड़े अनुभव जब कि सबल पक्ष ने उचित या अनुचित रीति से निर्बल पक्ष के लिए शर्तों का हानिकार ही नष्ट लगाया है।

डरबन के कोर्पोरेशन को अभी से वैसे अधिकार दे दिये गये हैं जिनसे उसने हिन्दुस्तानी नागरिकों का दमन किया है। जहाँ तक मैं जानता हूँ कोई समिति वैसी बातें नहीं पेश कर सकती है जो सरकार को या कोर्पोरेशन को पहले से ही मालूम न हो। हिन्दुस्तानियों की सलाह देनेवाली समिति बनाने से लाभ की आशा नहीं की जा सकती। स्वास्थ्य समिति ऐसे आशंका जनक विवरण ला सकती है, और मैं जानता हूँ कि एक पुरानी समिति ने ऐसा किया भी था, जिनसे हिन्दुस्तानियों के म्युनिसिपैलिटी की जमीन खरीदने में बाधाएँ लगायी जायँ और डरबनवासी हिन्दुस्तानियों को कठिनाई हो। मैं उस हिस्से को भी नापसन्द करता हूँ जिससे यह ध्वनि निकलती सो मालूम होता है कि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से पूछे बिना किसी भी हिन्दुस्तानी के साथ कैसा भी व्यवहार करने का अधिकार दिया जाता है। मगर मेरे बतलाये हुए इन खतरों के रहते हुए भी यह समझौता स्वीकार करने लायक है और जितना इसलिए नहीं कि यह समझौता बहुत अच्छा है उतना इसलिए कि द० अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के प्रति कट्टर दुश्मनी का वातावरण बदल कर उदार सहनशीलता का और सामाजिक बहिष्कार से सामाजिक कामों में साथ लेने का हो गया है।

मि. ऐन्ड्रयूज ने मेरे पास इस बात के प्रशंसा सूचक वर्ण मेजे हैं कि किस प्रकार डेपुटेशन के हिन्दुस्तानी सदस्यों का सरकार और लोगो ने एक समान हार्दिक स्वागत किया था, हिन्दुस्तानी लोग केप टाउन के बड़े से बड़े फैशनेबुल होटलों में बिना किसी हिचक या उग्र के घुस सके, और द० अफ्रीका के अंग्रेज किस प्रकार उनके पास हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के डेपुटेशन के विचार में पूछने को जुटा करते थे। अगर दोस्ती और मिलनसारिता यह वातावरण कायम रखना जा सके तो इस समझौते के द० अफ्रीकावासी हिन्दुस्तानियों की स्वतंत्रता के भव्य मंदिर को पक्की नींव बनाया जा सकता है। मगर इस समझौते को सफल बहुत कुछ उस आदमी पर निर्भर है जिसे भारत सरकार कोन्सल या कमिश्नर बना कर अपना प्रतिनिधि चुने। वह पुनः अत्यन्त योग्य, चारित्र्यशील और मेरी समझ में हिन्दुस्तानी होना चाहिए। उसका हिन्दुस्तानी होना ही यूरोपियनों पर अवलंब करेगा और उनके दिलों में वहाँ के हिन्दुस्तानियों की इज्जत बढ़ेगी हिन्दुस्तानियों के दिलों तक उसकी जैसी पहुँच होगी, वैसी कि अंग्रेज की, शायद मि० ऐन्ड्रयूज तक की भी नहीं हो सकती और अगर यूनियन सरकार में भी उस की वैसी ही इज्जत हो तो भविष्य के विषय में कुछ आशंका नहीं है। मेरी नम्र सम्मति ऐसे आदमी राइट आनरेबल श्रीनिवास शास्त्री जी हैं। समझौते की इस सरसरी जाँच को मैं यह लिखे बिना समाप्त नहीं कर सकता कि मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस सुपरिणाम का कारण मुख्यतः उस ईश्वर भीरु, आत्म त्यागी अंग्रेज चार्ली ऐन्ड्रयूज के सतत और प्रार्थना मय परिश्रम ही हैं।

(यं. इ.)

मा० क० गांधी



१९२७

# सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १२

देशगमन

जहाँ के काम से कारिग होने पर मेरे मन में यह आया कि मैं देश छोड़कर अफ्रीका में बँठा २ में थोड़ी बहुत सेवा तो कर सकता हूँ लेकिन मुझे ऐसा लगा कि यहाँ मेरा खास काम तो चल ही रहा था। मुझे भी ऐसा लगा कि देश छोड़कर जाने पर मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नैटाल में मेरा मनसुखलाल नाजर तो थे ही।

मैंने अपने साथियों से प्रार्थना की कि मुझे अब जाने दें। वहाँ मुझसे मेरी यह प्रार्थना शर्त के साथ स्वीकार की गई थी कि अगर एक वर्ष के भीतर दक्षिण अफ्रीका में मेरी आवश्यकता प्रतीत होगी तो मुझे दक्षिण अफ्रीका लौट आना होगा। मुझे यह शर्त मान्य हुई, लेकिन मैं प्रेमपाश में बँधा हुआ था: निरिधर के हाथों बँधो, मीरां कच्चे ताग।

गुणित पै नाचों सदा, प्रेम कटारी लाग ॥

मेरा यह उपमा मेरी हालत में थोड़ी बहुत लागू हो रही थी। पंच भी तो परमेश्वर हैं। मैं मित्रों की बात की मान्य नहीं कर सकता था। मैंने वचन दिया और छुट्टी ली। १९०५ पर मेरा निकट सम्बन्ध नैटाल के साथ कहा जा रहा था कि भारतवासियों ने प्रेमामृत से मुझे नहला डाला। मेरा यह मुझे मानपत्र देने की सभाएँ हुईं और प्रत्येक वर्ष बहुमुख में आयीं।

१९०५ ई० में जब मैं हिन्दुस्तान आया था तब भी मुझे मिली थी लेकिन इस मौके की भेटों से तथा मानपत्र देने की दृष्टि से तो मैं अचंचल में आ गया। भेटों से मेरे चोरी की चीजें तो थीं ही लेकिन उनमें हीरे की वस्तुएँ नहीं थी।

मैं पंच चीजों को स्वीकार करने का मुझे कैसा अधिकार दे रहा है? और अगर इनको स्वीकार कर भी लूँ तो मेरे मन को कैसे समझाऊँ कि मैं तो देशवासियों की सेवा करने लिये जाता हूँ। इन भेटों में कुछ मुवकिलों की दी चीजें को छोड़ कर शेष सभी भेटें मेरी सार्वजनिक सेवा करने की थीं। और फिर, मेरे मन में तो मुवकिलों तथा देशवासियों के बीच कोई अंतर नहीं था। सभी मुख्य मुवकिल सार्वजनिक कामों में भी हाथ बटाने वाले थे।

मेरे भेटों में, पचास गिन्ती का एक हार कस्तूरबाई के लिए था। लेकिन चूँकि उनको मिली हुई वस्तु भी मेरी सेवाओं के सम्बन्ध में थी, इसलिए वह अलग नहीं छाँटी जा सकती थी। मेरे ध्यान को ये मुख्य भेटें मिली थीं, वह रात मैंने सोने को तरह जाग कर काटी। अपने कमरे में टहलता हूँ तो कठिन पुत्रता था, लेकिन उनको रख लेना तो उससे भी आसान लगता था।

मेरे भेटों को पचा भी सक्ते लेकिन मेरे बच्चों तथा मेरे मित्रों को? उन लोगों को शिक्षण तो सेवा का मिल जाता। उन्हें हमेशा समझाया जाता कि सेवा का मूल्य लिया नहीं

जाता। घर में बहुमुख आभूषण इत्यादि में रखता नहीं था। सादगी बढती जा रही थी। ऐसी स्थिति में सोने की घड़ियाँ कौन लगावे? सोने की जंजीरें तथा हीरे की अंगूठियाँ कौन पहने? गहने आभूषणों का मोह छोड़ने को दूसरों से मैं तब भी कहता था। इसलिए अब इन गहनों और जवाहिरातों का हम क्या करते? मैंने यही निर्णय किया कि हम इन चीजों को नहीं रख सकते। पारसी हस्तमञ्जी इत्यादि को इन सब चीजों के टूट्टी बनाने की चिट्ठी उन्हें लिखकर तैयार की और सवेरा होते ही स्त्री पुत्र इत्यादि से मशवरा करके मैंने अपना भार हलका करने का निश्चय किया।

यह बात मैं जानता था कि स्त्री को समझाना कठिन होगा और यह भी भरोसा था कि लड़कों को समझाने में जरा भी कठिनाई न होगी। सोचा कि इन लड़कों को ही अपना वकील बनाऊँ।

बालक तो तुरत समझ गये। वे बोले।—हमें ये गहने इत्यादि नहीं चाहिए इन सब को वापिस ही कर देना चाहिए और अगर ऐसी चीजों की हमें दरकार होगी तो हम आपही क्यों नहीं खरीद सकते?

मैंने प्रसन्न होकर उनसे पूछा—तो फिर अपनी मां को समझाओगे न?

लड़कों ने कहा—हाँ हाँ, जरूर। उन्हें समझाना हमारा काम रहा। क्या उन्हें ये गहने पहनने हैं? वह तो हम लोगों के लिए ही इनको रखना चाहती हैं। जब हमीको इनकी जरूरत नहीं तब वे किस बात का हठ करेंगी?

लेकिन वे यह काम जितना सफल समझते थे उतना सफल न था।

वे बोलीं—“तुम्हें ये भले ही न चाहते हों, तुम्हारे लड़कों को भी इनकी दरकार न हो, बालकों को जैसी पट्टी पढाओ वैसी पहेंगे—हमें भी भले न पहनने दो लेकिन मेरी बहुओं का क्या होगा? उनके काम तो आयेंगे? और कौन जानता है कि कल क्या होने वाला है, इस वजह से पायी हुई चीजें वापिस देना ठीक नहीं।” इस प्रकार की वाग्धारा के साथ साथ अश्रुधारा भी चल पड़ी। बालक जोग हट रहे; और मुझे ढिगना था नहीं।

मैंने धीरे से कहा—उन्हें अपना व्याह करलें—यह तो ठीक है लेकिन हमको क्या बाल-विवाह करना है? बड़े होने पर वे जो करना हो भले ही करें और क्या गहनों की शौकीन बहुएँ खोजनी हैं? और उस पर भी अगर कुछ बनवाना ही हो तो मैं कहाँ चला जाऊँगा?

मेरी पत्नी बोली—तुम्हें देख लिया। मेरे गहने तक उतरवा लिये—तुम तो वही हो न? तुमने मुझे जब सुख से पहनने न दिये तब भग्न बहुओं के लिए उन्हें क्यों लेने लगे। लड़कों को तो आज से ही बेरागी बनाने लग पड़े हो। देखो, ये गहने लौटाये नहीं जायेंगे और मेरे हार पर तुम्हारा कौनसा दावा?

मैंने पूछा—लेकिन यह हार तुम्हारी कि मेरी सेवा के उपलक्ष में मिला है? पत्नी बोली—नाता, लेकिन तुम्हारी सेवा तो मेरी सेवा भी हुई। मुझसे रातदिन टहल कराना तो सेवा में शामिल ही नहीं है न? मुझे हला हला कर जिसे तिसे घर में ला रक्खा और उसकी जो चाकरी मुझसे कांथी उसकी कैसी गिनती?”

ये सब तीर बड़े पैने थे। इनमें से कितने ही चुभते थे। लेकिन गहने तो मुझे वापिस देने ही थे। अनेक बातों में तो मैं ज्यों त्यों कर पत्नी को राजी कर सका। सन् १९०६ में मिली हुई तथा सन् १९०९ में पायी हुई समस्त



भेंटें मनें लौटा दीं। दृष्ट बना और इस शर्त पर वे चीजें बैंक में रखा दी गयीं कि सार्वजनिक कामों के लिए उनका उपयोग मेरी या ट्रस्टियों की इच्छानुसार हो। सार्वजनिक काम के लिए जरूरत पड़ने पर इन गहनों को बेचने के लिए मैं कई बार तैयार हुआ हूँ पर उन्हें बिना बेचे ही मैं अनेक बार पैसा इकठा कर सका हूँ। आज भी वे चीजें आपत्ति धन के तौर पर मौजूद हैं और उनमें वृद्धि भी होती रही है।

इस काम के लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। दिन बीतने पर कस्तूरबाई को भी इस का औचित्य मालूम हो गया। हम बहुत सी लालचों से बचे हैं।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सार्वजनिक सेवा करने वालों के लिए भेंटें नहीं होती।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## शराब खोरी और व्यक्ति-स्वातंत्र्य

यूरोप और अमेरिका में धनिक वर्ग का शराब पी कर जोश व 'मजा' उठाने की स्वतंत्रता की मांग, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की मांग नहीं है बल्कि गरीबों के भले की ओर से उदासीनता का क्रूर प्रदर्शन है। गाँठ के बड़े, थोड़े आदमी कहते हैं, 'हमें नशा पीने के लिए पैसा है। हम इस आराम को क्यों छोड़ देंगे? इस देश में शराब आने दो।' मगर गरीब ऐसा साइस नहीं कर सकते। उनके लिए यह सिर्फ कुछ पैसों का ही खर्च या शाम को 'समाज' में बैठ कर अपनी चिन्ताएँ भुला देना ही भर नहीं है। उनका तो इससे घरबार सभी उजाड़ हो जायगा। धनी आदमी जब चाहे पीयेगा, जब जाहे न पीयेगा। अगर वह पूरा पूरा अंदागफोल भी हो जाय तभी इससे उसकी परनी पुत्र का बहुत बिगड़ता नहीं है क्योंकि उनका खर्च तो चलता है रियासत की आमदनी से, और सेवा सहाय करते हैं नौकर लोग। मगर समाज की निचली तह के अभागे जब एक बार अपने दुःख को शराब में डुबोना शुरू कर देते हैं, फिर वे रुक नहीं सकते। यह पिशाच उन्हें दिन दिन और भी अधिक नीचे लिये चला जाता है क्योंकि वे अपनी चिन्ताएँ थोड़े में ही नहीं भूल सकते, साधारण अमल से ही वे दूर नहीं की जा सकती। शराब के मानी हैं गरीबों की तबाही। क्या थोड़े से धनी आदमी यह दावा कर सकते हैं कि उनके जेब तब तक 'मजा' उठाने के लिए गरीबों के सामने हमेशा मौत की जहर से युक्तो हुई लालच रखी रहे? अमेरिका में शराबबंदी का पूरा पालन करने के लिए अभी कोशिश चल ही रही है। मगर अगर धनी लोग चोरी की शराब का मुँहमाँगा दाम दे भी सकते हैं तो गरीब तो ऐसा मजा न उठा सकने के कारण बच जाते हैं।

इसके बाद शराब के पक्ष में डाक्टरों की दलील आती है। कई एक बड़े डाक्टरों ने शराब के विरुद्ध अपनी राय प्रकट की है। मगर किसी मादक-निवारक पुष्प को यह इन्कार करना आवश्यक नहीं है कि दूसरे जहरी जैसे शराब से भी कभी कभी डाक्टर लोग लाभ उठा सकते हैं। इसी लिए शराबबंदी के कानून में डाक्टर की सलाह पर शराब व्यवहार करने की सभी तरह की छूट है। शराबबंदी के पक्ष या विपक्ष किसी से इस दलील का संबंध नहीं है।

इससे मद्दा दूसरा तर्क हो नहीं सकता जो कि शराब से लाभ उठानेवाले कहाँ करते हैं कि शराबबंदी से अमेरिका में कानून के प्रति लोगों में श्रद्धा घट गयी है और इस लिए विधान की रक्षा के लिए यह कानून लौटा देना चाहिए। खुद वे ही लोग जो शराब बंदी को चौपट कर उसे मजबूर लौटाने जा रहे हैं, आप ही उस को

तोड़ने, चोरी कर शराब लाने इत्यादि के लिए प्रेरित करते हैं और बढावा देते हैं, और फिर मकर के आंसू बाराते हैं कि इस कानून ने तो बेकानूनी बढा दी। वे इस कानून का पालन ही असंभव करके इसे उलट देना चाहते हैं। किसी प्रजातन्त्र में कोई भी अल्प संख्या, अगर चाहे तो अमेरिका के इन हारे हुए शराब भक्तों के समान काम कर के शासन को असंभूत कर दे सकती है। संभव है कि कुछ लोगों को शुरू में केवल वे का ही एक भाव इसे तोड़ने पर उकसावे, और उन लोगों का हाथों में ला चाले जो केवल बेकानून के बल से ही अपनी बात रखना चाहते हैं। मगर जब जोरों से शराब बंदी का आन्दोलन ऐसे कामों की बेकारी सिद्ध कर देगा, तब वे स्वार्थी लोगों का धन देने की भूल समझ सकेंगे।

शराबबंदी के विरोधी प्रचारकों की कानून-भक्ति का अर्थ है जो से बेकानूनी लोगों की यह हास्यास्पद दलील पेश करनी कि हमारे ही हाथों से कानून का भंग होने से उसे बचाने और कानून-भक्त प्रजा बनाने के लिए यह कानून ही लौटा देना चाहिए। शराब छिन जाने से नागरिकों में कानून की इस दिन पर दिन घटते जाने की दलील जैसी हास्यास्पद है ही पोची भी।

(यं० इ०)

चक्रवर्ती राजगोपालाचार

## साप्ताहिक पत्र

खानदेश

बरार के बाद हम लोग खानदेश पहुँचे। छोटे २ गांवों में मिला कर खानदेश के दो जिलों के ३० स्थानों में ५ दिन घूम आये। चन्दे का पूरा हिसाब अभी तैयार नहीं हुआ है मगर ३० हजार से ऊपर ही रुपया मिला है।

खानदेश के कई भागों में कपास खूब उत्पन्न होती है, व्यापारी भी बड़े बड़े हैं और सूखे विवाद करनेवाले बड़ील कम हैं, इसलिए वहाँ खादी का क्षेत्र अच्छा है। यहाँ भी आखिर मुट्ठी भर विप्रिय तो हैं ही। वे लोग जहाँ तहाँ सवाल ले ले कर पूछा करते हैं इनका प्रश्न गांधी जी को प्रिय लगता था। एक स्थान पर वे उन्होंने खूब विस्तार से जवाब दिया था।

तिलक स्वराज कोष का १ करोड़ रुपया मानों अक्षय्य को रखा हो, इस प्रकार लोग पूछा करते थे कि 'वह रुपया खर्च हुआ भी आप और चन्दा क्यों उगाहते हैं? जैसे वह रुपया खर्च में गया, वैसे ही यह भी तो जायगा?' गांधी जी ने पाने में कहा:

"इस करोड़ की पाई पाई का हिसाब छप चुका है मगर आप पढ़िये ही नहीं तो हम क्या करें? हाँ, इस करोड़ में बहुत धन अलग अलग प्रान्तों में गया और कहीं कहीं उधर गडबड भी हुआ। मगर आप जानते हैं कि बड़ो बड़ी रकमों के दाताओं ने तो अपने आप ही उसी खबरगोरी दर ली जो उदाहरण के लिए सेठ रामनारायण ने बड़ी रकम एक खास काम के लिए अलग दी थी। सेठ रेवाशंकर भाई का रुपया राजकोष के शिक्षण कार्य के लिए था। ऐसी रकमों का हिसाब तो उन दाताओं के ही पास है। इन सभी रकमों की व्यवस्था किस हाथ में है? इनकी व्यवस्था करते हैं जमनालाल जी और रेवाशंकर भाई जैसे कुशल और व्यवहार दक्ष व्यापारी जिन्होंने स्वयं बड़े दान दिये हैं। परन्तु जैसा कि मैं कह गया हूँ कहीं कहीं उधर गडबड भी हुआ है मगर वह कहाँ नहीं होता? ऐसा कोई कारण



१९३७  
१४ फरवरी, १९३७

लिए मगर जहाँ कभी कुछ चोरी या अव्यवस्था न हुई  
 तो तौभी सब मिला कर सारे देश में ५० हजार या १ लाख  
 बरबाद हुआ होगा। क्या महाजन की कोठी में  
 बरबाद नहीं होता? मगर इससे क्या हुआ? यह जानबूझ  
 कि वो पैसा गया है और जायगा आप चंदा दीजिए। अगर  
 कि वो पैसा न हो तो मेरी शर्म की खातिर एक कौड़ी न  
 काम में विश्वास न हो तो सामान्य धंधे में जैसे थोड़ा बहुत  
 मिलता है, वैसा ही संभव समझ कर इसमें चंदा दीजिए।"  
 उन गांव से चंदा मिल सके इसलिए श्री दास्ताने ने  
 गांव गांव में इतने अधिक गांव रखे थे। सब ने थोड़ा बहुत  
 काम में दिया ही। व्यापारियों का बाजार मंदा होने के कारण  
 उनसे आशा थी उतनी तो नहीं मिली मगर तौभी  
 का दान अच्छा ही कहा जायगा।

उन स्थानों में खादी खूब खपी। अगर खादी बिक्री के  
 लिए तालुका मिल जाते क्या ही अच्छा होता मगर इस अन्ध  
 में तो यह कठिन है। महाराष्ट्री बहिन १८ हाथ  
 मोटी साडियाँ पहिनती हैं। मोटी साडियाँ उन्हें बहुत भारी  
 और महीन खादी महंगी। इसलिए उनमें खादी का बिल्कुल  
 नहीं हो पाया है। पूने में कुछ बहिनें महाराष्ट्र साडी  
 को कोशिश कर रही हैं मगर वह साडी भी महंगी ही  
 पड़ती है। खैर जब तक साडियाँ मिलतीं नहीं, तब तक  
 दास्ताने के परिवार के समान और महाराष्ट्र बहिनों को भी  
 तेरे और छोटी ही साडी पहननी पड़ेगी।

तेरा तालुका अच्छा क्षेत्र है। धनी भी है। आज  
 का काम हो रहा है वहाँ की शक्यता के सामने तो वह  
 नहीं है। वहाँ गांधी जी ने घर घर घूम कर खादी  
 को गाँव पर ४२००) रु. को थैली मिली जिसमें १३००) रु.  
 के लिए अलग थे। सारे जिले में चर्चा-संघ के ६३  
 १ तो चोपडे के हैं। २७ आदमी वहाँ नियमित  
 खादी पहिनने वाले हैं। यह गिनती यदि और जगह भी  
 काय तो क्या ही अच्छा हो!

यह प्रदेश की एक विशेषता यह थी कि हर सभा  
 की जवाब देने के लिए कुछ सवाल लिख  
 दिये जाते थे। अमलनेर में यह पूछा गया था कि  
 वैसे मिलोवाले स्थान में खहर का मंत्र सुनाने से क्या  
 फायदा? वहाँ दो हजार मजदूर हैं और उन्हीं की आबादी अधिक  
 है। आप आशा करते हैं कि वे खादी पहिनेंगे या मिलमालिक  
 पहिनेंगे? गांधी जी ने इसका लंबा जवाब दिया। उन्होंने कहा,  
 ऐसा सवाल है जो आप भले पूछ सकते हैं मगर अब  
 पूछने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। जबतक  
 काय को समझ नहीं जाते उसे लाखों बार दुहराना  
 और केवल एक बार ही सत्य को कह देना यथेष्ट होता तो  
 सभी को ईश्वरभक्त हो गये होते। बात यह है कि  
 'ईश्वर एक है' लाखों बार कहा जा चुका है मगर बहुत  
 लोगों के दिलों पर उसका असर हो सका है। मजदूरों ने  
 इसे मेरे लिए वे उतने ही वजन के सोने से भी  
 महत्वपूर्ण दिखलाया है। मिलमालिकों ने भी इस विश्वास  
 को सुकृत कर रहे हैं, ऐसा किया है और मजदूरों ने  
 सहाय्यता से दिया है। मगर अपना  
 पालन करना, वे दोनों दो बातें हैं।

अगर दोनों एक ही होते तो हमें रामराज्य मिल जाता। उदाहरण  
 के लिए हम उन्हें ले सकते हैं जो ब्रह्मचर्य को मुख्य समझते हैं  
 पर पालन नहीं कर सकते। वैसे ही वे भी हैं जो खादी का  
 सन्देश समझते हैं मगर अपनी आसतलबी और विलास-प्रियता  
 को जीत कर पूरे पूरे खादीधारी नहीं बन सकते। कितने मेरे  
 पास आकर बहते हैं कि, 'हम आप का सन्देश समझते हैं परन्तु  
 उसके पालन का रास्ता बतलाइये।' और इस प्रवृत्ति से मुझे नयी  
 आशा उत्पन्न होती है। सच्चे विश्वास का पालन शीघ्र हो या  
 देर से मगर अवश्य होगा ही। आप यहाँ दो हजार मजदूरों को  
 भले काम दे रहे हों मगर यह न गूलिए कि आप उन्हें खेती से  
 खींच लाते हैं, आप को मिल केवल मुठ्ठी भर लोगों को ही रोजी  
 दे सकती हैं, और उन करोड़ों को वे कोई काम नहीं दे सकतीं  
 जिन्हें अपने खेती से ही लिपटे रहना होगा और जिन्हें और  
 अधिक काम की जरूरत है। यह सवाल रायल कृषि कमीशन के  
 सामने है, यह सवाल वायसराय के सामने है और मैं किसी को भी  
 चुनौती देता हूँ कि वह मेरे बतलाये समाधान से कोई अच्छा समाधान  
 निकाले। बोगरा और खुलना के अकाल पीड़ितों के पास आचार्य  
 राय अपने रासायनिक कारखाने उठा नहीं से जा सकते थे, आखिर  
 उन्हें चखें पर ही आना पड़ा। आप की अभिलाषा एक ही मिल  
 में हजारों चखें इकट्ठे करने की न होवे, बल्कि, हर घर को ही  
 मिल बना लेने की होनी चाहिए।

"मुझ से बार बार पूछा गया है कि क्या मैं मिलों का नाश  
 करना चाहता हूँ। अगर मेरी यह मन्शा होती तो देशी मिलों के  
 कपडे पर से चुंगी उठा लेने को मैं नहीं कहता। मैं मिल  
 व्यवसाय की उन्नति चाहता हूँ मगर देश की हानि कर के उसकी  
 उन्नति होना नहीं चाहता। इसके उल्टे अगर उनके नाश में ही  
 देशहित होता तो मैं उन्हें बिना किसी हिचक के नष्ट हो जाने  
 दूँगा। जो मिलमालिक मेरा समर्थन करते हैं वे मेरी प्रवृत्ति समझते  
 हैं और इससे उनकी घटी भी हो तौभी कितने ही इस उद्योग  
 की उन्नति चाहते हैं।

"और आप पूछते हैं कि जो मिल का कपडा बनाते हैं वे  
 और कपडे कैसे पहन सकते हैं? क्या आपको मालूम है कि  
 मैन्चेस्टर में मिलमालिक अपनी मिलों का कपडा नहीं पहनते।  
 अपनी मिलों का ही कपडा पहनने की बात आप भूल जा सकते  
 हैं। सदरलैण्ड की नेक डचेस साहिबा ने हेब्राइडीज टापाओं  
 के निवासियों की गरीबी देख कर उनके हाथों में चर्खा  
 और कर्षा रक्खा। मैन्चेस्टर के नगर निवासी जिनमें मिल-  
 मालिक भी शामिल हैं, हेब्राइडीज लोगों के हाथकटे कपडे ही  
 पहनते हैं अगचें कि मिल के कपडों के तियुना उनका दाम  
 लगता है।

"महीनों और सस्तेपन पर न जाओ। अगर महीन कपडा  
 चाहिए तो स्वर्गीय योगेश चटर्जी के ऐसा महीन सूत कातो नहीं  
 तो अधिक पैसा देना ही पड़ेगा। जो स्वराज की बातें करते हैं  
 उन्हें सस्ती और महीनी दोनों बातें नहीं मिल सकती। लोक  
 मान्य ने जो त्याग किये और जिनकी आपसे आशा की उनका  
 खयाल करो। सोचो कि सभी योद्धाओं को क्या त्याग करने  
 पड़ते हैं। इंग्लैण्ड की रानी एलिजेबेथ के समय में परदेशी  
 सामान पर वहाँ बहुत बड़ी चुंगी लगायी जाती थी और हौलैन्ड का  
 लेस खरीदने वालों को कड़ा दण्ड होता था। तब मैं आपको  
 अपने गरीब भाइयों को याद करने और खादी खरीदने को कहता  
 हूँ तो क्या कुछ बहुत कुछ कहता हूँ। यह न कहो कि गरीबी



को दान देकर जिलावोगे। दान के पात्र केवल दो ही श्रेणी के लोग हैं—एक तो वह ब्राह्मण जिसे कुछ भी नहीं है और जिसका काम है पवित्र ज्ञान का प्रचार करना और दूसरे हैं अंधे और अपाहिज। मगर जगन्नाथपुरी में हष्ट पुष्ट आलसियों को भीख देने की अन्यायपूर्ण प्रवृत्ति जारी है और इससे हमारी शर्म और शिष्टता की सीमा नहीं रहती। उसी कलंक टीका को पोंछने के लिए मैं देश के कोने कोने में चर्खे का सन्देश ले कर घूम रहा हूँ।”

अब धुलिया के सबसे पीछे स्मरणों पर हम आते हैं। महाराष्ट्र में यह वही स्थान है जहाँ के प्रधाननेताओं ने अपनी खादी-भक्ति के विषय में अपने राजनीतिक मतभेदों की कुछ पर्वा न की है। इस स्थान को श्रीयुत बर्वे जैसे पक्ष उदारदलवादी, और श्रीयुत जावड़ेकर जैसे प्रतिसहयोगियों से चोली दामन के समान दिल मिल कर नाना साहेब देव जैसे स्वतंत्र और श्रीयुत बालुभाई मेहता तथा ठाकर के समान पक्ष अपरिवर्तनवादियों के साथ काम करने की अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। साधु स्वभाव नाना साहेब इन रत्नों को एक में गुंथ रखने वाली रेशमी डोरी हैं। उन्होंने कहा, ‘हमारे पूनावासी मित्रों को यह देख कर आश्चर्य होता है कि हमारी जैसी अगमेल जोड़ी एक साथ चल सकती है। मैंने उन्हें कह दिया कि हम लोग एक साथ बैठ कर एक वस्तु को जैसे खादी को केन्द्र मान कर उसी पर ध्यान लगाते हैं, मगर पूने में आप लोग अपनी आँखें केन्द्र के ठीक उलटी ओर रख कर बैठते हैं।’ फल यह हुआ है कि उन्हें कई बकीलों की सहायभूति प्राप्त हुई है जो इस प्रदेश की दूसरी जगहों के उलटे यहाँ कम से कम खादी तो पहनते हैं। खादी और शराबबंदी को केन्द्र मान कर, एक हलके में ग्राम सुधार का काम करने की योजना श्रीयुत बर्वे, ठाकर, बालुभाई मेहता, और रानाडे प्रदर्स की साथ के कर नाना साहेब बना रहे हैं। अभी, इस दशा में भी, श्रीयुत ठाकर गांव गांव घूम कर गांववालों को स्वच्छता और स्वास्थ्य, और गांव के अर्थशास्त्र और राजनीति की शिक्षा देते फिरते हैं। अपने काम की वे पक्षिक रिपोर्ट लिखा करते हैं जो इन मित्रों में बँटती है, और लोगों के लाभ के लिए छपायी जाती है। ये रिपोर्टें बड़ी लाभ प्रद होती हैं।

धुलिया का कार्यक्रम बहुत बड़ा था मगर सब काम इस शान्ति और नियम से किये गये कि गांधी जी एक दिन में छह सभाओं में बोल सके और सभी जगह भाषण करते हुए चर्खा भी चलाते जा सके। उन्होंने कहा, “अगर मैं चर्खा चलाते २ भाषण करूँ तो आप इसे गुस्ताखी न मानेंगे जब डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकर एक बार आश्रम में आये तो मैंने प्रातःकाल की प्रार्थना समाप्त हो जाने पर उनसे बालकों को कुछ कहने की प्रार्थना की। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। बिना किसी भूमिका के उन्होंने अपने सब से अच्छे गानों में से एक सब से अच्छे ढंग से गा सुनाया और चुप हो रहे। मेरी समझ में शिष्टता की यह चरम सीमा थी। वे जो अच्छी से अच्छी वस्तु दे सकते थे, उन्होंने हमें वही देकर सन्तुष्ट किया। मैं आपके सामने अपने एक मात्र चर्खे का सन्देश सुना कर, केवल जिस एक वस्तु से मैं समझता हूँ कि मैं हिन्दुस्तान की सेवा कर सकूँगा, मैं उसी का पदानुसरण कर रहा हूँ।” उस दिन की सभा वृत्ताएँ महत्वपूर्ण थीं मगर मेरे पास केवल एक ही का वर्णन देने भर का स्थान है। सार्वजनिक सभा में व्यापारियों ने अपना एक अलग ही मान-पत्र दिया था, और अलग ही थली भी मेट की थी। इससे गांधी

जी को, उनको बतौर व्यापारी वर्ग के अपने कर्तव्य करने का अवसर मिल गया। उन्होंने कहा, “जैसा कि १९२५ में जलपाई गुडी में कहा था, हिन्दुस्तान की पराधीनता के कारण, न तो ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय और न शूद्र बर्किंग हैं और केवल वे ही भारत की भाग्यश्री को लौटा भी ला सकते हैं और भारतीय इतिहास उन बनियों की कथाओं से भरा पड़ा है जो का अहित होते हुए भी अंग्रेज व्यापारियों की सेवा करते रहे। जो दुकानदार तिजारत के लिए आये वे ही व्यापार की रक्षा के योद्धा बन गये और उसके आधार पर खड़ी हुई अपनी श्रम रक्षा के लिए ब्राह्मण। हमारा वर्णाश्रम धर्म यह नहीं सिखा कि अपनी बहिन की इज्जत बचाने को कोई बनिया क्षत्रिय कर लड़ नहीं सकता या ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण नहीं बन सकता या शूद्र बन कर सेवा नहीं कर सकता। अंग्रेजों में ये भाव भरे पड़े थे और हम चकित हो कर उनके पैरों तले गिर अपना धर्म भूल गये, कायर बन गये, बनिये का असल कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य — भूल गये और मातृभूमि के विनाश बन बैठे। हम फिर भी बिगड़ी बना सकते हैं अगर फिर बनिये बन कर सारा राष्ट्रीय व्यापार अपने हाथों कर लें। काली टोपियाँ, मिल की धोतियाँ, हमारी स्त्रियों की महीन कपड़े — हमारी गुलामी और शर्म के पट्टे हैं। कच्चा माल देश में और उसीका माल तैयार करने के बदले हमने अपने सङ्कीर्ण स्वार्थ को देखा और कच्चा माल बेच दिया, कच्चा हमारे ऊपर अपना पंजा और भी कड़ा करने दिया। हम अपने अनीतिलुलक व्यापार में लगे हुए हैं जिससे मातृभूमि वेदद बरबादी हो रही है। अगर हम बीमार पड़ें तो हमें चंगा कर सकेंगे, वकील कचहारियों में हमें फँसा रखें मगर स्वराज्य तो केवल बनिये ही जीत सकेंगे। मैं चाहता हूँ कि हम भगवद्गीता के वे वैद्य बनें जिनका स्वभावज कर्म गोरक्षा और अपने ही देश के लिए वाणिज्य। अगर हम धर्म के पक्के होते तो फिर विलायती कपड़े का एक टुकड़ा यहाँ क्यों आ पाता, कसाई के हाथ एक भी गाय को पाती, ९ करोड़ रुपये की खाल विदेशों में क्यों मेजों पर हमारे कर्तव्य की ओर से हमें इतना नेमान किस बात के लिए दिया है? कोई सोचता है कि हमें विलायती कपड़े की जरूरत करनी ही पड़ेगी, अगर कोई हमें बतलाता है कि अपने कपड़े के चमड़े को हम खुद कमावें तो हम इनकार कर देते हैं। हमें अपनी गोशालाओं को अच्छी दूधशाला और चमड़े का बनाने को कहा जाता है तो हम घबरा उठते हैं। मैं क्या करता हूँ? क्या आप समझते हैं कि मैं छठिया गया हूँ? कहता हूँ कि मैं अपना अभिमान भूल जाऊँगा और जो बर्खा भूल मुझे सुझा देंगे, उन सबके पैरों पर गिर पड़ूँगा। साहस हो तो मुझे अपने पक्ष में कायल कर लो तभी पीछे चलो और खादी और गो माता की सेवा करो।”

(यं० इ०)

महादेश देव

‘हिन्दी नवजीवन’ की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे पाँचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। एक जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम ढाक खर्च के अलावा रुपये हैं।

व्यवस्थापक, ‘हिन्दी नवजीवन’



संयमी भारत

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक २९ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी. आनंद

अहमदाबाद, फाल्गुन बदि ३० संवत् १९८३

शुक्रवार, मार्च, ३ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारांगपुर सरकीगरा की बाडी

## टिप्पणियां

### खादी सलाह

अपने दौरे में मैं देखता हूँ कि मेहमान के आने के बाद अपने स्वयंसेवक बिना सोचे समझे मानपत्रों की प्रतियाँ बगैरह बिना में बाँटना शुरू कर देते हैं। वे यह नहीं समझते कि इस प्रकार से भरी हुई बैचैन सभा में नये सिरे से गड़बड़ हो शुरू हो जाता है। अगर पच्चे बाँटने ही हों तो सभा शुरू होने के पहले ही बाँट दिये जाने चाहिए। लोग यह भी समझते कि अगर पच्चे बाँटे जाते हों तो जो कोई माँग उन को मिलने चाहिए। बड़ी सभाओं में यह हो नहीं सकता अगर पच्चे की हजारों नकलें न छपायी जायँ। मेरी राय में सार्वजनिक पैसे को बिल्कुल बेकार उड़ाना होगा। जो कुछ निष्पत्त जल्दी बात होगी, उन्हें स्थानीय अखबार छापेंगे ही और सभा को अपने अखबारों पर ही सन्तोष करना चाहिए। अगर पच्चे के बिना सभा की कार्यवाही ठीक ठीक संपन्न न जा सके तो उन्हें बैचैन कुछ बुरी बात न होगी। उस हालत में पत्रकार का सवाल ही नहीं हो सकता। इस लिए वे सब लोग पच्चे जेना चाहते हों, नाममात्र के दाम पर उन्हें पा सकते हैं और उस पैसे से छपाई का खर्च दे कर सभाओं के प्रबन्ध के काम में भी कुछ न कुछ, चाहे कितना ही कम हो, मगर जरूर निकाल सकते हैं।

### राष्ट्र के निधि-रक्षक

गोरे से ही पूर्व-विचार से कितनी तरद्दुद समय और धन की बचत हो सकती है। इन सभाओं में मैं सार्वजनिक धन को पानों से बहाये जाते देखता हूँ। सभाओं के प्रबन्धक, खास कर खादी सभाओंवाले, यह बात हृदयंगम कर लें कि हमारा देश दुनिया के सब देशों से गरीब है, अगर और कुछ नहीं तो इसी लिए करोड़ों आदमी यहां आधा पेट खाकर रहते हैं, कि उन्हें तीन पैसे रोज से भी कम की आमदनी है। इस लिए प्रबन्धक लोग समझ लें कि राष्ट्र के निधि-रक्षक के नाते सभा यह कर्तव्य है कि सार्वजनिक धन वे कंजूसी से खर्च करें और बिना सोचे, बिना जरूरत एक पैसा भी खर्च न करें।

वे यह भी समझ लें कि एक एक पैसा जो इकट्ठा किया जाता है वह भूखों मरनेवालों के लिए है और इस लिए एक पैसे की कीमत किसी विधवा की एक दिन की कमाई के बराबर मायः ही होती है। बिना जरूरत वे एक पैसा नहीं खर्च कर सकते। मसलन कागजी सजावट में वे रुक्या लगाते हैं। यह जमाना सजावट का नहीं है। सिवाय उनको छोड़ कर जिनसे लोग आकर्षित हों, वे कोई सजावट न करके जितना पैसा बचा सके बचावें। वे कितनी सुन्दर चीजें सोच सकेंगे जिनमें एक पैसा भी न लगेगा या बहुत कम खर्च होगा। इस तरह वे रही खादी के झंडे पताके बनवा सकते हैं। खादी के साथ, खादी की निजारे के काम की उन्नति भी अब होगी ही। दर्जी की दुकान में हमेशा ही बहुत रही टुकड़े पड़े रहते हैं, जिन्हें वे फूट देते हैं। अब इस रही माल के हर टुकड़े का इस्तेमाल, झंडे पताकों के लिए हो सकता है। कागज के झंडे दूसरे ही दिन फूट दिये जाते हैं मगर ये तो आगे के लिए भी रखे जा सकते हैं।

### मान पत्र हाथ से लिखो

फूलों को बिल्कुल छोड़ कर सूत की मालाएँ मेट की जा सकती हैं। लच्छी में गांठें लगाकर सूत को बरबाद नहीं करना चाहिए। उसे जैसा का तैसा ही देना चाहिए जिसमें पीछे से उसका बुनने में या किसी दूसरे तौर पर उपयोग हो सके। मानपत्रों को न छपा कर भी पैसा बचाया जा सकता है। संयोजकों में से जो सब से सुन्दर अक्षर लिखते हों, वे हाथ के बने कागज पर मानपत्र लिख दें और वह कागज खर्च पर मजे में सी दिया जा सकता है या उससे भी अच्छा होगा अगर कोई छोटा लडका या लडकी उसे सूत से खर्च पर ही काट दे। इसके लिए सूत भी हाथकता होना चाहिए। ऐसी चीज सुन्दर और कीमती भी होगी। छपरा म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष बाबू महेन्द्र प्रसाद की लडकी रमा ने अपने पिता के लिए म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र इसी प्रकार खर्च पर काट दिया था। यह भाव मैंने वही से लिया है। इसमें म्युनिसिपैलिटी का कुछ भी नहीं खर्च हुआ और मेरे पास कला की एक ऐसी वस्तु हो गयी जो गुजरात विद्यापीठ में अध्यापक मलकानी की बनायी कलाशाला की शोभा बढ़ावेगी।



## चाँदी की पेटियाँ न दो

कीमती पेटियों की जरूरत नहीं है क्योंकि मुझे उनका कोई काम नहीं है और रखने की मेरे पास जगह भी नहीं है। हाल में मैं उपहार में मिली सभी पेटियाँ नीलाम करता आया हूँ और उनका दाम अखिल भारत देशवन्धु स्मारक कोष को देता आया हूँ। अगर्चे कि इन नीलामों में पेटियों की असल कीमत से अधिक पैसा मिलता आया है मगर अधिक दाम उठाने के लिए ही पेटियाँ देना समुचित नहीं होगा। अगर पंटी में भर कर ही मानपत्र देना हो तो कोई सस्ती, सुन्दर, और स्थानीय वस्तु हूँदनी, संयोजकों के लिए अच्छा व्यायाम होगी।

## सैर सपाटा नहीं

गंगाधर राव जी ने भले ही कहा है कि मेरा यह दौरा कुछ सैर सपाटा नहीं है बल्कि कामकाजी दौरा है जिसमें मैं अपने मालिक दरिद्रनारायण के लिए काफी काम कर लेने की आशा रखता हूँ। इस लिए हर एक समारोह इसी के लायक होना चाहिए। मैंने देखा है कि काम की जरूरत की लिहाज से कहीं अधिक स्थानिक आदमी मेरे साथ घूमते हैं और किरायत शारी की पर्वा किये बिना मोटरें भाड़ा की जानी हैं। खर्च का हर एक मद पहले से ही सावधानी से सोच लेना चाहिए। जब तक हम ऐसा नहीं करते, भूखों मरनेवाले करोड़ों के लिए हम कोई योग्य आर्थिक संस्था नहीं स्थापित कर सकते और हम भी उसी फिजूल खर्चों के दोष के भागी होंगे, चाहे जितने ही कम पैमाने पर क्यों न हो, जिसके लिए सरकार को हम उचित ही दोषी ठहराते हैं। जब कहीं संभव हो किटसन कालटेनों को छोड़ ही देना चाहिए। खाने पीने पर भी मैं शाही खर्च देखता हूँ। मेरे साथ जो घूमते हैं वे प्रजा उठाने को नहीं घूमते। स्वच्छ स्थान, और स्वच्छ भोजन भर ही काफी हैं। सबमुच में कई बार मेरे मन में आया है कि अपने साथियों का भोजन अपने साथ लिये चलने में मैं श्री भरुवा के भले उदाहरण की नकल करूँ। हम खाने पीने पर बहुत बल्कि जरूरत से अधिक समय और रुपया, खर्च करते हैं। लोगों को कलकत्ते बंबई से फलों का पार्सल मँगाते देख कर मुझे कष्ट होता है। यह खर्च बहुत कुछ बेकार ही जाता है। वैशक कुछ फल तो मेरे आहार का आवश्यक अंश हैं और जब वे उसी स्थान पर न मिल सकें तो निःसन्देह उन्हें बाहर से मँगाना ही पड़ता है। मगर मुझे विश्वास है कि फलों पर जितना पैसा लगाया जाता है उसका कम से कम तीन चौथाई तो जरूर बचाया जा सकता है। मगर अति-उत्साही मित्र कहते हैं, 'मगर जो लोग आप से प्रेम करते हैं, वे कुछ ऐसी सेवा कर के अपना प्रेम क्यों न प्रकट करें? वे और तरह से पैसा खर्च नहीं करेंगे और आप की खास सेवा में जितना खर्च करते हैं, उतना यों वहीं देंगे। इस लिए आप की सेवा में कुछ खर्च करने का आनन्द उन्हें उठाने दीजिए।' वैशक, यह इलील प्रशंसात्मक तो है मगर जरा भी कायल नहीं करती।

## सेवा में परिवर्तन

जो लोग प्रेम करते हैं, वे अगर मेरे सिद्धान्त से भी प्रेम नहीं कर सकते तो उनका प्रेम अन्वा है और उसकी कीमत बहुत कम है। मैं नहीं जानता कि किसी को केवल मित्रों की खातिर करने को ही जीना चाहिए। मित्रता का अर्थ है प्रेमभरी पारस्परिक सेवा। कभी कभी तो बहुत अधिक खातिर कर के प्रलोभनों के बीच में डाल देना शत्रुता भी हो जाता है। और अगर ऐसे मित्र हैं जो मेरे आराम के लिए रुपये फूँकेगे मगर मैं

जिस कार्य को करता हूँ उसके लिए खर्च नहीं करेंगे तो मेरा आरामों से बचना ही मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। मित्रों को आप मित्रता निभानी है तो उन्हें पहले मेरी जिन्दगी की जरूरतों की जुटानी होगी। उसके बाद वहाँ जाकर आराम का वे खयाल कर सकेंगे और खर्च का काम मेरे जीवन के लिए परमावश्यक वस्तु है, भोजन से भी वह अधिक आवश्यक है। स्नापन सभाएँ इसे गाँठ बांध लें।

## हारों का नीलाम

ये पिछली पंक्तियाँ अहमदनगर पहुँचने के पहले लिखी गयी थीं। वहाँ पर एक बड़ी प्रभावशाली सभा हुई जिसमें मेरे मानपत्र पढ़े गये। म्युनिसिपैलिटी का मानपत्र चाँदी की पंटी में दिया गया। हर संस्था के प्रतिनिधि फूल की कीमती माफियाँ भी लाये थे। श्रीयुत फिरोदिया ने, थैली देते हुए उसमें एक रकम होने का कारण यह बतलाया कि अहमदनगर अकाल का प्रदेश है। इस लिए जब मैंने उत्तर शुरू किया तो मैं पहले के समान कोटियों, खर्चीले प्रबन्ध और अकाल के बयान की अव्यवस्था को छोड़ न सका। मैंने कहा कि जो अहमदनगर की दशा है वही सारे हिन्दुस्तान की है। हिन्दुस्तान क्या अकाल-पीडित देश नहीं है? मगर इससे कुछ थोड़े लोगों में ही धन का जमा हो जाना तो नहीं सका है। हम नगर निवासी अकाल-पीडित गाँववालों को ही चूम चूस कर जीते हैं, और खर्च आन्दोलन का अर्थ है। इस वुराई का इलाज करना और उन लोगों को थोड़ा सा बदला चुकाना जिन करोड़ों को आज हम चूस रहे हैं। इस लिए मैंने सुझाया कि अहमदनगर का अकाल-पीडित होना वहाँ के धनियों के लिए कम नहीं बल्कि और भी अधिक बढ़ा देना दुगुना लाजिमी कर देना है। मैंने यह भी कहा कि ऐसी सुन्दर पेटियाँ और कीमती फूल-मालाएँ लेना मेरे लिए शोभनीय न होगा। मैंने यह भी कहा कि फूल में हमी लोगों के जैश प्राण का होना मानने के कारण, मैं एक भी फूल का योंही तोष जाना पसन्द नहीं करता। मगर अहमदनगर जैसे स्थान में मेरी नापसन्दगी इस याद से और भी बढ जाती है कि मैं उन्हीं अकाल पीडितों का अपने आप बना हुआ प्रतिनिधि हूँ जिनका जिक्र श्रीयुत फिरोदिया ने किया। वेजहरी बातों में एक रुपया खर्च करने का मानी है, १९ अकाल-पीडित स्त्रियों कीरोजी मारती। इस लिए मैंने सुझाया कि पंटी और फूलमालाएँ नीलाम करदी जाय और मेरी बात का अगर कुछ भी असर पड़ा हो तो वे इनका बाजार का दाम न दें बल्कि इनमें जो भाव भरा है उसके लिए पैसा दें। स्वभावतः ही नीलाम का काम म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष खाँ बहादुर दोराब सेठ को दिया गया। सेठ भैरगीराम जी को (१००१) में पंटी मिली और फूलों का दाम आया (५०२) रुपये। मेरी अपील का असर केवल सभा भर में ही न पड़ा बल्कि उसके बाहर के लोगों पर भी पड़ा और मालूम होता है कि वहाँ के नागरिकों ने मेरे भाषण का भाव समझा क्योंकि (१०००) की जिस थैली के लिए श्रीयुत फिरोदिया की माफी माँगनी पड़ी थी, वह बढ कर करीब ६०००) पर पहुँच गयी और इसके अलावा सभा में खारी भी खूब बिकी। दूसरी जगहों के प्रबन्धक चेत जायँ। मैं उन्हें चेता देता हूँ कि उन्हें फूल या कीमती पेटियाँ देने की जरूरत नहीं है पर अगर वे देंगे तो मैं समझूँगा कि नीलाम करने के लिए ही वे दी जाती हैं जिसमें गरीबों के कोष में उनका हिस्सा काफी बढ सके।

( ५०६ )

सो० क० गाँधी



## साप्ताहिक पत्र

महाराष्ट्र के अनुभवों के विषय में इस सप्ताह मुझे कुछ बहुत कम लिखनी पड़ी है। बराबर शोलापुर तक कुछ पढ़े लिखे लोगों के बीच और अगर विरोध का नहीं तो उदासीनता का भाव फैला हुआ रहा। मगर जनसमूहों में जागृति देख कर उनकी आँखें खुली होंगी। क्या वे इसका कल्पना भी कर सकते थे कि नासिक, अहमदनगर और शोलापुर में खादी की विक्री हुई, वैसी विक्री होगी। हम लोगों का तो अनुभव है कि जहाँ कहीं विरोध का भाव था, वहाँ खादी की और भी विक्री हुई। अहमदनगर, शोलापुर और गुलबर्गों में प्रायः सारी की सारी खादी बिकी और कुछ खरीदारों को निराश हो कर खाली हाथ लौटना पड़ा। शोलापुर जिले के कुछ स्थानों में माँग पूरी हो गई। खादी की ख़ाशी ही नहीं थी।

वहाँ भी खूब वसूल होता गया है। खुद गांधी जी ने ही अपने लेख में अन्यत्र लिखा है कि व सिर्फ मानपत्र की पेटी ही नहीं बल्कि भी नौलाम करना उन्हें लाभप्रद जैसा और इसका प्रयोग कैसा विचित्र असर पड़ा। यह प्रयोग सफलतापूर्वक शोलापुर और गुलबर्गों जैसे स्थानों में ही किया गया। अहमदनगर जैसी छोटी जगहों में भी हारों के लिए पचास सौ, साठ सौ रुपये मिले।

अहमदनगर में मिल मजदूरों की छोटी मगर उल्लेखनीय थैली भी बिकी है। वहाँ की थैली नगर के लिहाज से प्रसिद्ध प्रद न थी मगर श्रोयुत चशवन्तप्रसाद देशाई के द्वारा वहाँ ने १०१) रु. का सुन्दर दान दिया। शोलापुर में श्रान्तिकुमार नरोत्तम के प्रयत्नों की बदौलत शोलापुर मिल के कारियों, शोलापुर की सभी मिलों के मजदूरों और थैली के बालचरों ने भी सुन्दर दान दिया। मिलों में मजदूरों के लिए किये जाने वाले अतिशय सुन्दर कामों में से एक शोलापुर मंडल का संगठन है।

इसका एक भाषण पिछले सप्ताह के पत्र में दिया जा चुका है। वहाँ की म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को गांधी जी ने उत्तर दिया, उसका सारांश नीचे देता हूँ। “सारे गांधी के धुमने पर भी मैंने एक भी स्थानिक संस्था ऐसी नहीं देखी है जो स्वतःप्रवृत्त होकर काम करती हो और जिसे मैं

अतिशय ऊँचे वातावरण से नीचे उतरते हुए उन्हें कुछ चोट सीलगती हो, वे हँसते हुए बोले, ‘मुझसे इतना बोलवाया, अब इसका दाव न दोगे क्या?’ दाम में थैली और खादी की विक्री थी।

अहमदनगर में खादी की विक्री भी अच्छी हुई। अहमदनगर के पात्र संगमनेर में भी सारी खादी बात की बात में उड़ गयी। खानदेश और महाराष्ट्र के चन्दों की रकमें नीचे दी जाती हैं।

## खानदेश और महाराष्ट्र के चन्दे

## पूर्व खानदेश

पाचोरा	१३५०)	जलगांव	५०००)
शेंदुर्गी	३१)	एरडोल	५५१)
जामनेर	१७२८)	चोपडा	४२१)
ऐदलाबाद	३७५)	अमलनेर	१२५२)
भुसावल	१५००)	पश्चिम खानदेश	
नसीराबाद	१०५)	विंदखेड	५००)
पोंराले	१०१)	शहादें	५९६)
धरणगांव	१००१)	मिरजगांव	४१०)
वरखेडी	१०१)	शहादें मानपत्रकी पेटी	३००)
नेरी	१०१)	दोंडाइचे	११५१)
बोदवड	३३७)	मानपत्र की पेटी	७५)
वरणगांव	६३३)	रकाबी प्याला	१२०)
रावेर	७५४)	धुरोबार का नौलाम	६१)

क० गांधी



मालपुर	१०१)	नासिक	१३८७)
चिमठ गे	१९१)	सिन्नर	१०१)
धुलिया	४१००)	नगर जिले	
चालीसगांव	५३०)	संगमनेर	४३१)
नासिक जिला		बेलापुर	५४०)
मालेगांव	६५१)	कोपरगांव	५२६)
मनमाड	७९-४-०	अहमदनगर	५५४३)
नांदगांव	५१०)		

महादेव देशाई

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन अदि ३० संवत् १९८३

### संयमी भारत

एक अंग्रेज मित्र जो हिन्दुस्तान में संयम प्रचार का काम करना चाहते हैं, लिखते हैं:

“मैं जानता हूँ कि सब कोई मुझे यही बतलावेंगे कि हिन्दुस्तानियों ने शराबबंदी के लिए कोई जबरदस्त इच्छा प्रकट नहीं की है और चूँकि खास उन्होंने इसके लिए कोई आन्दोलन नहीं किया है, इस लिए, हम लोगों को इस मुआमले में भागे बढना ही होगा। प्रान्तीय धारा सभाओं (काउन्सिलों) में से भी केवल एक या दो ने ही मादक द्रव्य निवारण का सिद्धान्त स्वीकार किया है। लोग अभी से मुझे ये बातें सुना रहे हैं। मैं बराबर ही उन्हें असहयोग आन्दोलन को याद दिलाता हूँ जब कि स्वयं-सेवकों ने शराब की दुकानों पर पहरा दिया था। मगर जब वे कहते हैं कि वह तो पाँच साल पहले की बात है, उसके बाद तो उन्होंने कोई उत्साह नहीं दिखाया है तो इसका क्या जवाब दिया जायगा ?”

ये मित्र मुझे जो समस्या हल कराना चाहते हैं, वह कुछ नयी नहीं है। जो कोई हिन्दुस्तान में शराब की कतई बंदी के आन्दोलन का इतिहास नहीं जानता, उसे यह सवाल उठेगा ही। और हमारे यहाँ आने वाले परदेशी के मन में यह सवाल उठेगा ही कि, ‘अगर हिन्दुस्तान शराब की बिनाकुल रोक चाहता है तो फिर और कितनी ही चीजों के समान इसके लिए भी वह आन्दोलन क्यों नहीं करता ?’ यह देखने में आता है कि नितान्त हताश हो जाने पर फिर कोई आन्दोलन नहीं करता। हम लोगों के साथ तो यह हमारी निराशा ही है जो हमें आन्दोलन नहीं करने देती सिवाय इसके कि कुछ मादक द्रव्य निवारण सभाएँ प्रस्ताव स्वीकार करें और धारा सभाओं में प्रार्थनापत्र भेजे जायँ। परम महत्वपूर्ण विषयों में भी हमारी बढती हुई बेबसी के हृदयज्म होने से स्वराज की पुकार शुरू हुई। सैनिक खर्च को लीजिये। सभी के हृदयों में यह बात है कि इसका अधिकांश बहुत दुरे तौर पर बर्बाद जाता है। वह धन भूखों मरनेवालों से जमा किया गया है। सैनिक खर्च में घटी कराने के बदले इस स्वराज के लिए आन्दोलन करते हैं क्योंकि स्वराज के बिना कुछ हो ही नहीं सकता। कौन कह सकता है कि इसमें धन्य का बहुत अंश नहीं है ? १९२० में जब हमने समझा कि हमें स्वराज मिल रहा है, हम स्वयं कानून के विधाता बन बैठे; शराब की दुकानों और मद्यियों पर पहरा देने में हमें सफलता

मिली और सरकार अपनी आमदनी में तुरत ही घटी होते देख गयी। भट्टी वालों के दिल कांप उठे और हमें उस क्षण में मान्य हुआ कि मानों शराब का अभिशाप गया ही है। दुर्भाग्य से अधिकांश वादी जनता पर पूरा कब्जा न कर सके थे। बलात्कार हुआ हो गया। पता चला कि पहरा देनेवालों ने अहिंसामय विरोध प्रदर्शन देने करने को आह्वानों का सर्वत्र पालन न किया बल्कि वे धमकी लगे, और उन्होंने उससे भी बुरी बातें कीं। पहरे को तो देना पडा।

पर १९२०-२१ का इतिहास स्पष्ट रूप से यह दिखता है कि अगर हिन्दुस्तान को शक्ति हो तो वह क्या करेगा या जब उसने अपने को शक्तिशाली समझा, तब उसने क्या किया था। इसके अलावा यह भी याद रखना चाहिए कि हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमी बजरिये धर्म और आदत के शरारत अछूते हैं। इसलिए शराब की दुकानें खुली रखने में तब दिलचस्पी होनी असंभव है। इसलिए जहाँ तक यह कहा जा सके कि हिन्दुस्तान में शराब की कतई रोक के लिए कोई आन्दोलन नहीं है, वहाँ तक उसका कारण यह नहीं है कि शराब पीना चाहते हैं बल्कि यह है कि यह इच्छा स्वराज की ही बड़ी इच्छा का एक अंग है। सचमुच में यही बात एक अंग्रेज को शराब की दुकानों की आमदनी का समर्थन करना पडे कि उसकी रोक का आन्दोलन यहाँ जारी नहीं है। स्वराज की परमावश्यकता की एक अकाट्य दलील बन जाती जिनका इसमें सच्चा विश्वास है, इससे हिन्दुस्तान की दशा का अतिशय अज्ञान प्रकट होता है। मलेरिया ज्वर या बीसों दूसरों के विरुद्ध भी तो जनता की ओर से कोई आन्दोलन नहीं होता तो यह क्या इनको रोकने के उपाय न करने की एक दलील है ? दूसरे शब्दों में, एक जाने सुने दोष को दूर के छपट उपाय करने के लिए कोई आन्दोलन जरूरी नहीं चाहिए। कई दृष्टियों से तो शराब और दवा-की बुराई और या दूसरी बीमारियों से बेहद बुरी है क्योंकि इससे तो शरीर ही बिगड़ता है, और वे आत्मा को भ्रष्ट करती हैं। शराब की आमदनी, सैनिक खर्च और लंकाशायर के कपडे के लिए भारत का चूषा जाना — हिन्दुस्तान पर ये तीन ब्रिटिश सरकार की की हुई हैं। जब अंग्रेज लोगों के दिल में बात पैठ जायगी कि गरीब हिन्दुस्तानी मजदूरों की शराब आदत पर तिजारत करना पाप है, हिन्दुस्तान में इंग्लैण्ड के दूसरे विदेशों के कपडे लादना गुनाह है जब कि यहाँ के मरनेवाले करोड़ों आदमी सहज ही जरूरत के लिए कपड़ा बना सकते हैं, और जब उनको यह बात सूझ जायगी हिन्दुस्तान के ऊपर भयंकर सैनिक खर्च रखना पाप है, जो से तो हिन्दुस्तान की सीमाओं की रक्षा के लिए रखी जायगी मगर दर अफल में उसके आदमियों को उनकी इच्छा के अनुसार गुलाम बनाये रखने के लिए है, तब आन्तरिक भाव बदलने यह पूरा पूरा सबूत होगा और पूरी समता पर सहयोग होना हमें संभव होगा। इसलिए हिन्दुस्तान जो एक मात्र आन्दोलन सकता है वह इस पद्धति का ही अन्त करने का है जिसके ऐसी बुराइयाँ होनी संभव होती हैं यानी स्वराज का आन्दोलन इन सभी को खर करने का आन्दोलन है इन बुराइयों को होना अंग्रेजी सत्तानत की जाँच की कसौटी है।

(यं. इं.)

मोहनदास करमचंद

भरतपुर में अखिल भारत हिन्दी साहित्य, कवि तथा सम्मेलन और खादी प्रदर्शन २६ मार्च से ४ अप्रैल तक



१ मार्च, १९२७

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १३

देश में

यह प्रकार देश को बिदा हुआ। रास्ते में मौरिशस पड़ता था। वहाँ बहुत देर तक जहाज रुका। इससे मैं वहाँ उतरा। मौरिशस की स्थिति से पूरी वाकफियत हासिल कर ली। वहाँ के गवर्नर सर चार्ल्स ब्रूस के यहाँ भी एक रात रुका। वहाँ से सर फीरोजशाह जिस गाड़ी से रवाना हुए, उसीसे हिन्दुस्तान पहुँचने पर कुछ दिन घूमने फिरने में लगाये। सर १९०१ का साल था। इस साल की महासभा कलकत्ते में हुई थी। दिनशा एदल जी वाचा सभापति थे। मुझे महासभा में जाना था ही। महासभा का मेरा यह पहला अनुभव था।

मुझे सर फीरोजशाह जिस गाड़ी से रवाना हुए, उसीसे मुझे भी जाना था। द० अफ्रीका के विषय में मुझे उनसे बातें की गयी थी। उनके डिब्बे में एक स्टेशन तक चलने की मुझे इजाजत थी। उन्होंने तो खाल सैलून किराये किया था। उनके डिब्बे और खान से मैं वाकफ था। नियत स्टेशन पर मैं उतरने डिब्बे में गया। वहाँ उस समय दिनशा जी और उस समय रिपनलाल सीतलवाड (अब के सर चिमनलाल) बैठे थे। उनके साथ राजनीतिक बातें चल रही थीं। मुझे देख कर सर फीरोजशाह बोले, 'गांधी, तुम्हारा काम होने को नहीं है। तुम्हारे तो हम प्रस्ताव स्वीकार कर लेंगे पर हमें अपने ही देश में अधिकार मिलते हैं? मैं तो मानता हूँ कि जब तक किसी देश में हमारा कोई अधिकार नहीं होता तब तक हमें वहाँ में तुम्हारी स्थिति सुधर नहीं सकती।' मैं तो चकित हो रहा। सर चिमनलाल ने हाँ में हाँ मिला। सर दिनशा ने मेरी ओर दया की दृष्टि से देखा। मैंने समझाने का प्रयत्न किया। पर वंबई के नेताज के महासभा को मेरे जैसे क्या समझा सकते थे? मैंने इसी पर जोर माना कि महासभा में मुझे प्रस्ताव तो लाने देंगे। 'प्रस्ताव लिखकर मुझे दिखलाना जी।' सर दिनशा ने मुझे उत्तर देने को कहा। मैंने उपकार माना। दूसरे स्टेशन पर ज्योंही गाड़ी रुकी, मैं भागा और अपने डिब्बे में जा बैठा।

मैंने जो हम कलकत्ते पहुँचे। सभापति वगैरह नेताओं को बड़ी रास गम से शहरवाले ले गये। मैंने एक स्वयंसेवक से पूछा, 'मुझे कहाँ जाना होगा?' वह मुझे रिपन कॉलेज में ले गया। उसमें बहुत प्रतिनिधियों की जगह थी। मैं जिस विभाग में था मेरे सौभाग्य से वहाँ लोकमान्य जी उतरे थे। ऐसा मुझे याद आता है कि वे १५ दिन पीछे से आये थे। जहाँ लोकमान्य हों वहाँ एक छोटा सा दरबार तो लगता ही। वह जगह और उसकी बैठक अभी तक मुझे इतना साफ साफ याद है कि अगर मैं चित्रकार होता तो वे जिस खाट पर बैठे थे, उसका चित्र खींच कर रख देता। मुझे मिलने को आने वाले अनगिनत लोगों में मुझे एक का ही नाम याद है। 'अमृत-बाजार पत्रिका' के मोतीबाबू और लोकमान्य का ठाकर हंसना और सरकारी अफसरों के अन्याय के बारे में बातें करना, मूलने लायक नहीं हैं।

मगर जरा यहाँ का प्रबन्ध देखें।

स्वयंसेवक एक दूसरे के साथ उलझ पड़ते। जो काम जिसे सौंपो उसे उसकी न जिम्मेदारी न होती। वह दूसरे को फौरन बुलाता, दूसरा तीसरे को। बेचारे प्रतिनिधि न तीन में न तेरह में, न छप्पन के ही मेल में रहे।

मैंने कई स्वयंसेवकों से दोस्ती की। उनको द० अफ्रीका की कई बातें बतायीं। इससे वे शरमाये। मैंने उन्हें सेवा का मर्म समझाने का प्रयत्न किया। वे थोड़ा समझे। पर सेवा का ज्ञान कुछ शरबत में घोलकर पिलाया तो जा नहीं सकता। उसके लिए इच्छा होनी चाहिए और फिर अभ्यास। इन सीधे सादे स्वयंसेवकों को इच्छा तो बहुत थी पर तालीम और अभ्यास कहाँ से मिलें? महासभा वर्ष में तीन दिन होकर सो जाती। हर साल तीन दिन की तालीम से कितना ज्ञान होवे?

जैसे स्वयंसेवक, वैसे ही प्रतिनिधि भी मिले थे। उन्हें भी उतने ही दिनों की शिक्षा थी। अपने हाथों आप कुछ भी न करें, पर सभी बातें में हुकूम चलाया ही करें, 'स्वयंसेवक यह लावो, स्वयंसेवक वह लावो।'

छूत छात का साम्राज्य भी देखने में खूब आया। द्राविड रसोई क्या थी, तीन लोक से मथुरा न्यारी। इन प्रतिनिधियों को दृष्टि-दोष\* भी लगता था। उनके लिए कालेज के अहाते में चटाई से घेर कर भोजन शाला बनायी गयी थी। धूआँ तो वहाँ इतना था कि आदमी का दम घुट जाय। खाना, पीना, नहाना, धोना सब कुछ वहीं होना ठहरा। रसोई क्या तिजोरी थी। कहाँ से भी खुला न होना चाहिए। मुझे यह वर्णाश्रम धर्म का लगा। यह तैराशिक जोड़ कर कि महासभा में आनेवाले प्रतिनिधि इतने छूत छातवाले हों तो उन्हें मेजने वाले कितने होंगे जो जवाब आया उससे मैंने सदैव आह खींची।

गंदगी का तो पा' न था। सभी पानी ही पानी हो रहा था। पैखाने ओड़े ही थे। उनके दुर्गंध को याद मुझे अब भी घबरा देती है। स्वयंसेवकों को मैंने वह दिखलाया। वे हँस कर बोले, 'यह तो अंगी का काम है।' मैंने झाड़ू मँगा। वे मेरा मुँह देखते रह गये। मैंने झाड़ू बना लिया। पैखाना साफ किया। पर यह तो सिर्फ अपने ही लिए किया। भीड़ इतनी थी और पैखाने इतने कम थे कि हर बार इस्तेमाल करने पर उसे साफ करना चाहिए था। ऐसा करना मेरी शक्ति के बाहर था। इस लिए मैंने अपने लायक सुभीता करके संतोष कर लिया। मैंने देखा कि दूसरों को यह गंदगी खलती न थी।

पर इतना ही बस न था। रात के समय तो कोई घर के ओसारे को ही इस्तेमाल कर लेता था। सबेरे स्वयंसेवकों से मिल कर मैंने यह दिखलाया। साफ करने को कोई तैयार न था। साफ करने का यह मान तो केवल मुझे ही मिला। आज इस विषय में बहुत सुधार हुए हैं परन्तु अब भी अविचारी प्रतिनिधि, महासभा की छावनी में जहाँ तहाँ पैखाना पेशाब करके उसे बिगाड़ देते हैं। और सब स्वयंसेवक उसे साफ करने को तैयार नहीं होते।

मैंने देखा कि महासभा को अगर ऐसी गंदगी में अधिक दिनों तक रहना पड़े तो जरूर ही बीमारी फैल जाय।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

\*द्राविड ब्राह्मण जब भोजन करते हों तब दूसरे वर्ण का कोई आदमी उन्हें देख भी ले तो छूत लगती है। इसे दृष्टि दोष कहते हैं। इससे इन लोगों में घर का दरवाजा बंद कर खाने का रिवाज है।



## नित्यव्यवहार में गीता

( नासिक में गांधी जी का भाषण )

कई युवकों ने मुझे यहाँ आते ही कितने एक प्रश्न दिये ।

उनका जवाब ही मेरा आज का भाषण होगा ।

प्रश्न—हिन्दुस्तान की वर्तमान परिस्थिति में क्या आप को ऐसा नहीं लगता है कि बतौर हिन्दू के आप को श्रद्धानन्द स्मारक कोष पर और अधिक जोर देना चाहिए ? अगर आप को ऐसा मालूम होता हो तो फिर किस लिए, यह कोष इकट्ठा करने में आप हाथ नहीं बँटाते ?

उत्तर—मैं तो एक अपूर्ण मनुष्य हूँ । सम्पूर्ण स्वशास्त्रिकिमान् तो एक ईश्वर है । मैं अर्थशास्त्र जानता हूँ । मेरे पास जो समय या शक्ति है, वह सब मैंने देश को अर्पण कर दी है । मुझे यह अभिमान नहीं कि सारा काम मैं ही करूँ । जिस काम में पंडित मालवीय जी और लाला जी के समान अनुभवी नेता पड़े हुए हों, उसमें मुझे और अधिक क्या करना था ? जब कलकत्ते में श्रद्धानन्द स्मारक के लिए ५० हजार रुपया इकट्ठा किया गया उस समय मालवीय जी की आज्ञा से मैं वहाँ हाजिर रहा था । इसके बाद और कुछ अधिक की आज्ञा मालवीय जी ने मुझ से रखी नहीं । मेरे कार्यक्षेत्र की मर्यादा बँधी हुई है । भगवान् श्रीकृष्ण के, गीता के उपदेशानुसार चलने का प्रयत्न करनेवाला मैं एक अल्प मनुष्य हूँ और मैं यह समझता हूँ कि मेरा अपना धर्म थोड़े से थोड़े में भी क्या है :

श्रेयान्वयधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

दूसरा धर्म चाहे जितना अच्छा लगता हो पर मेरे लिए मेरा मर्यादित धर्म ही भला, दूसरा भयावह है

प्रश्न—आज आप जो चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, वह तो केवल खादी के लिए ही है न ? अगर यह ठीक हो तो आप उसका कितन प्रकार इस्तेमाल करेंगे ?

उत्तर—हाँ यह धन केवल खादी के लिए ही है क्योंकि यह अखिल भारत देशवन्धु स्मारक कोष के लिए इकट्ठा किया जा रहा है । इस कोष के साथ देशवन्धु का नाम केवल इसी लिए लगाया गया है कि देशान्त के थोड़े ही दिनों पहले उन्होंने खादी की योजना तैयार की थी और खादी कार्य उनकी प्रिय था । खादी के लिए चन्दा उगाह कर उसकी व्यवस्था करने के लिए ही अखिल भारत चर्खा संघ की योजना की गयी है । इस कोष की पाई पाई का हिस्सा रक्खा जाता है । और जो कोई चाहे उसे देख सकता है । इस संघ का एक कार्यवाहक मंडल है, हिस्सा जँचने-वाले हैं, निरीक्षक हैं । इस संघ ने अभी देश के सामने खादी-सेवक-संघ को योजना पेश की है । आओ कि जान लिया आप का मंडल । दीजिएगा तीव्र रुपही । उससे भला होगा क्या ? हाँ, हमारा मंडल तो भिखारी मंडल है क्योंकि बहुत से गरीब भिखारियों से पैसे ले कर यह स्थापित हुआ है । यह कुछ इंडियन सिविल सर्विस नहीं है कि हजारों रुपयों का मुआवजा देना पड़े । इंडियन सिविल सर्विस तो लोगों के कर के ऊपर चलता है । वह तो लोगों पर राज्य करने के लिए है और हमारा मंडल तो लोगों की सेवा के लिए है ।

प्र०—आप मुसलमानों के लिए पक्षपात क्यों करते हैं ? कितने मुसलमान नेता आपके ऊपर व्यक्तिगत आक्षेप करते हैं उसका भी आप जवाब क्यों नहीं देते ?

उ०—परधर्म का शुद्ध पक्ष लेने में मैं अपने धर्म की रक्षा

ही करता हूँ । मैं हिन्दू धर्म का नाश नहीं चाहता । मैं कर नहीं सकता क्योंकि मैं हिन्दू-महासागर की एक बूँद हूँ । मुसलमान मुझे काफिर कहें तो उससे क्या हुआ ? उनका जवाब क्या देना है ? मेरा भाजा मेरे ही साथ रहता था दूसरों को जब लगता था कि मैं उसके साथ पक्षपात कर रहा हूँ उस समय मैंने और उसने भी समझा कि मैं उससे न्याय करता था । मुसलमान मेरे ऊपर जब आक्षेप करते हैं तो शायद यह मालूम होता है कि मैं उन्हें अभी पूरा न्याय न दे सकूँगा । मुझे जवाब देने की आवश्यकता किस लिए होती है मेरे तो चौबीसो घंटे श्रीकृष्ण भगवान् को समर्पित हैं । मेरी रक्षा करते हैं और दासानुदास श्रीकृष्ण भगवान् से मैं प्रार्थना करता हूँ कि, ' हे कृष्ण, मेरी ओर से जो जवाब दे दो, जा, तूही दे आ । '

प्रश्न—आपने खिलाफत की लड़ाई जी जान से लड़ी । प्रकार आज हिन्दू संगठन के लिए क्यों नहीं जुट जाते ?

उत्तर—खिलाफत के लिए प्राण अर्पण करने की मेरी प्रवृत्ति थी । परधर्म के लिए जितना हो सका मैंने किया । मैं मानता था और अब भी मानता हूँ कि मेरी इस सेवा से गोरक्षा होगी आप पूछोगे कि ' गोरक्षा हुई ? ' गोरक्षण नहीं हुआ पर मेरा क्या ? मैं तो प्रयत्न का अधिकारी था । फल के अधिकारी तो श्रीकृष्ण भगवान् हैं । भगवान् ने कहा कि सहम्मद अली मिलो, शौकतअली से मिलो, उनके साथ काम करो । मैंने किया । उन्हें जितनी मदद दी जा सकी, दी । इस काम के लिए मुझे जरा भी पछतावा नहीं है । फिर ऐसा प्रसंग आता तो मैं यही करूँगा । गीता भाषवत आदि धर्मग्रन्थ मुझे सिखलाते हैं । लोग मेरी निन्दा करें, मेरा अपमान करें, मैं जवाब में निन्दा अपमान करने को नहीं । मैं तो वही करने का तुलसीदास ने उपदेश दिया है, यानी तपश्चर्या । प्रकृति ही ऐसी बनी है । मुझसे दूसरा क्या होगा ? गीताजी ने कहा है न कि सब जीव अपनी प्रकृति के अनुसार ही चलते हैं निग्रह क्या करेगा ? इस लिए मुझे तो तपश्चर्या करनी रही । मुसलमानों के दिल में खुदा बसेंगे, और एक दिन ऐसा आयेगा कि हिन्दुओं के समान वे भी गोरक्षा करेंगे, — मैं भविष्य-वादी करता हूँ कि तब आप कहोगे कि यह गोरक्षा पुराने जमाने की किसी गांधी नाम के पागल की आभारी है ।

मैं नहीं मानता कि आज के जैसी, तबलीग या शुद्धि या पविर्त्तन करने की आज्ञा इस्लाम, या हिन्दू धर्म या ख्रिस्तान में है । तब मैं शुद्धि में किस प्रकार हाथ बँटा सकता हूँ ? तुलसीदास और गीता तो मुझे सिखलाते हैं कि जब तुम्हारे ऊपर या तुम्हारे धर्म पर हमला होवे तो तुम आत्मशुद्धि कर लेना और जो पिण्ड में वह ब्रह्माण्ड में । आत्मशुद्धि-तपश्चर्या का मेरा प्रयत्न चौबीसों घंटे चल रहा है । पार्वती के नसीब में अशुभ लक्षणोंवाले पति थे । ऐसे लक्षण होने पर भी शुभकर तो शिवजी ही थे । पार्वती ने उन्हें तपोबल से पाया । संकट के समय में ऐसा ही तप हिन्दू धर्म सिखलाता है । इस धर्म का साक्षी हिमालय है, — वही हिमालय, जिसके ऊपर हिन्दू की रक्षा के लिए लाखों ऋषि मुनियों ने अपने शरीर गला दिये हैं । वेद कुछ कागज पर लिखे अक्षर नहीं हैं । वेद तो अन्तर्यामी हैं । और अन्तर्यामी ने मुझे बतलाया है कि यम नियमादि का पालन कर और कृष्ण का नाम ले । मैं वित्त के साथ पल्लव सत्पत्ता से कहता हूँ कि हिन्दू-धर्म ही सेवा, हिन्दू-धर्म की रक्षा



१ मार्च, १९२७

हता । मैं तो एक वृद्ध हूँ।  
हुआ ? उसका  
रहता था।  
कर रहा।  
उससे न्याय  
रहे हैं तो  
न्याय न दे  
स लिए हो  
पित है।  
बान् से मैं  
जो जवाब  
लड़ी।  
ते ?  
की मेरी प्र  
या। मैं मा  
गोरक्षा हो  
हुआ पर  
ल के अधि  
हम्मइ अ  
। मैंने  
इस काम  
प्रसंग का  
स्थ सुखे  
न करें, इस  
तो वही ह  
पथर्या। मे  
गीताबी  
ही चले  
रनी रही।  
ऐसा आने  
भविष्य-वा  
पुराने जमाने  
शुद्धि या  
खिस्तान  
टा सकता  
तुम्हारे क  
द्ध कर लेना  
तपश्चर्या कर  
की नसीब  
भी शुभकर  
। संकट के  
इस धर्म  
पर हिन्दू  
र गला  
वेद तो अ  
यम नियम  
के साथ प  
धर्म की र

हता । मैं तो एक वृद्ध हूँ।  
हुआ ? उसका  
रहता था।  
कर रहा।  
उससे न्याय  
रहे हैं तो  
न्याय न दे  
स लिए हो  
पित है।  
बान् से मैं  
जो जवाब  
लड़ी।  
ते ?  
की मेरी प्र  
या। मैं मा  
गोरक्षा हो  
हुआ पर  
ल के अधि  
हम्मइ अ  
। मैंने  
इस काम  
प्रसंग का  
स्थ सुखे  
न करें, इस  
तो वही ह  
पथर्या। मे  
गीताबी  
ही चले  
रनी रही।  
ऐसा आने  
भविष्य-वा  
पुराने जमाने

हता । मैं तो एक वृद्ध हूँ।  
हुआ ? उसका  
रहता था।  
कर रहा।  
उससे न्याय  
रहे हैं तो  
न्याय न दे  
स लिए हो  
पित है।  
बान् से मैं  
जो जवाब  
लड़ी।  
ते ?  
की मेरी प्र  
या। मैं मा  
गोरक्षा हो  
हुआ पर  
ल के अधि  
हम्मइ अ  
। मैंने  
इस काम  
प्रसंग का  
स्थ सुखे  
न करें, इस  
तो वही ह  
पथर्या। मे  
गीताबी  
ही चले  
रनी रही।  
ऐसा आने  
भविष्य-वा  
पुराने जमाने

## अन्तकाल का आश्वासन

बौद्ध धर्मग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय में से ( छकनिपात, साराणीय वग्न, १६, १-२ ) नीचे की वार्ता संस्कृत छाया और अनुवाद के साथ ली गयी है। पं० वेचरदास ने कृपा कर के छाया लिख दी है।

एकं समयं भगवा भग्वेसु विहरति सुसुमारगिरे मेसकालावने सिगदाये । तेन खो पुन समयेन नकुलपिता गृहपति आबाधिको होति दुःखितो बाळहगिलानो । अथ खो नकुलमाता गृहपतानी नकुलपितरं गृहपति एतद् अवोचः—

मा खो त्वं गृहपति सापेक्षो कालं अकासि । दुःखा गृहपति सापेक्षस्स कालकिरिया गरहिता च भगवता सापेक्षस्स कालकिरिया मिया खो पुन ते गृहपति एवं अस्स 'नकुलमाता गृहपतानी ममात्ययेन न शक्नोति दारके पोसेतुं घरावासं संथरितुं' ति । न खो पुन एतं गृहपति एवं ददुव्वं । कुशलाऽहं गृहपति कप्पासं कंतिंतु वेणि ओल्लिखितुं सकोमऽहं गृहपति तव्वचयेन दारके पोसेतुं घरावासं संथरितुं । तस्मा ति ह त्वं गृहपति मा सापेक्षो कालं अकासि । दुःखा गृहपति सापेक्षस्स कालकिरिया, गरहिता च भगवता सापेक्षस्स कालकिरिया ।

सिया खो पुन ते गृहपति एवं अस्स 'नकुलमाता गृहपतानी ममात्ययेन अउजं घरं गमिस्सतीति' । न खो पुन एतं गृहपति एवं ददुव्वं । त्वं चैव खो गृहपति जानासि अहं च यथा नो सोल्लवस्सानि गृहपकं ब्रह्मचरियं समानिणं । तस्मा ति ह त्वं गृहपति मा सापेक्षो कालं अकासि । दुःखा गृहपति सापेक्षस्स कालकिरिया गरहिता च भगवता सापेक्षस्स कालकिरिया ।

( एकं समयं भगवान् भग्वेसु विहरति सुसुमारगिरे मेसकालावने मुगदाये । तेन खलु पुनः समयेन नकुलपिता गृहपतिः आबाधिको भवति दुःखितः बाळहगिलानः । अथ खलु नकुलमाता गृहपतानी नकुलपितरं गृहपतिमेतद् अवोचत् ।

मा खलु त्वं गृहपते सापेक्षः कालम् अकार्षीः । दुःखा गृहपते सापेक्षस्य कालक्रिया, गहिता च भगवता सापेक्षस्य कालक्रिया । स्यात् खलु पुनः तव गृहपते एवं स्यात् 'नकुलमाता गृहपतानी ममात्ययेन न शक्नोति दारकान् पोषयितुम् गृहावासं संस्तुम्' इति । न खलु पुनः एतद् गृहपते एवं द्रष्टव्यम् । कुशलाऽहं गृहपते कार्ष्णमम् कंतिंतु वेणिमवल्लिखितुम् शक्नोमि अहं गृहपते तवात्ययेन दारकान् पोषयितुम् गृहावासं संस्तुम् । तस्मात् इह त्वं गृहपते मा सापेक्षः कालम् अकार्षीः । दुःखा गृहपते सापेक्षस्य कालक्रिया गहिता च भगवता सापेक्षस्य कालक्रिया ।

स्यात् खलु पुनः तव गृहपते एवं स्यात् 'नकुलमाता गृहपतानी ममात्ययेन अन्यद् गृहं गमिष्यतीति' । न खलु पुनः एतद् गृहपते एवं द्रष्टव्यम् । त्वं चैव खलु गृहपते जानासि अहं च यथा नः पोडशवर्षाणि गृहस्थकं ब्रह्मचर्यं समानिणम् । तस्मात् इह त्वं गृहपते मा सापेक्षः कालम् अकार्षीः । दुःखा गृहपते सापेक्षस्य कालक्रिया गहिता च भगवता सापेक्षस्य कालक्रिया । )

“ गृहपति नकुलपिता बीमारी से बहुत दुःखी थे । पीछे गृहपतानी नकुलमाता ने गृहपति नकुलपिता से कहा, ' हे गृहपति, तुम एक क्षण के लिए भी चिन्ता न करो । चिन्तातुर आदमी की गति विगड़ती है और भगवान् ने ऐसी मृत्यु की निन्दा की है । शायद तुम्हें यह विचार उत्पन्न हो कि ' मेरे मरने बाद नकुलमाता बच्चों का पालन पोषण न कर सकेगी और घर न चला सकेगी । ' पर यह विचार मन से निकाल बाहर करो । मैं सूत कातने और गाल सँवारने में कुशल हूँ इस लिए तुम्हारे न रहने पर भी मैं बच्चों को पालपोष सकूंगी । इस लिए चिन्ता छोड़ कर भगवान् का नाम लो जिसमें तुम्हारी आत्मा का कल्याण हो ।

दे० व



## सहकार से खादीक्रय

श्रेयुत के. ए. नैयर लिखते हैं :

“अखिल भारत चर्खा संघ का सदस्य हो कर मैं बराबर सोचा करता था कि लोगों को किस प्रकार खादी पहनाऊँ। इसके फल स्वरूप मैं जिस दफ्तर में काम करता हूँ वहाँ पर इसकी एक योजना शुरू की है और इसमें मुझे बहुत सफलता मिल रही है।

“जो लोग इस समिति में शरीक हुए हैं, उनके लिए मैंने ये ६ नियम बनाये हैं :

(१) इस समिति के सदस्यों की कुल संख्या १२ होगी।  
(२) हर सदस्य को २) रु. का महीना देना पड़ेगा जिससे हर महीने २४ रु. मिलेंगे।

(३) १२ टिकटों पर सदस्यों के नाम लिख लिये जायेंगे और हर महीने चिट्ठी लगा कर एक टिकट निकाला जायगा। फिर उस टिकट का नाम बतला कर उसे फाड़ कर फेंक दिया जायगा। हर महीने ऐसे ही चिट्ठी लगायी जाती रहेगी।

(४) अब २४) रु. का चन्दा उस आदमी को नकद नहीं दिया जायगा जिसके नाम की चिट्ठी निकली हो। उसे २४, रु. की अच्छी मशीन खादी उसके पसन्द मुताबिक खरीद कर दे दी जायगी।

(५) इस समिति के सचिव, सदस्यों की मदद से खादी खरीदेंगे।

(६) जिसमें केवल कुछ हाथकली और हाथबुनी खादी मिल सके अ. भा. चर्खा संघ की निरीक्षकता में उसके धन से चलते हुए खादी भंडार में से ही वह खरीदी जायगी।

“विशेष—इस उद्योग की मदद कर गरीब गांववालों को सहायता देने के सिवाय, इसका और दूसरा उद्देश्य नहीं है।

“मैंने ज्यों ही इसे अपने आफसरों और सहकारियों में प्रकाशित किया, त्योही इसकी ओर लोग झुक पड़े और मैंने उसीके अनुसार जनवरी १९२८ से यह योजना शुरू कर दी है। ऐसा कुछ काम करके मैं साल में २८८) रु. की खादी खपा सकूँगा।”

खादी प्रेमियों से मैं इस सुन्दर उपाय की सिफारिश करता हूँ। इस उपाय से तुरत ही लाभ दिये बिना भी आदमी खादी खरीद पाता है। मगर उस सदस्य को जिसका नाम बारहवें महीने में निकलता है, सिवाय इसके कि वह सस्ते में खादी खरीदना सीखता है, और कोई लाभ नहीं होता। समिति उसका ‘सेविंग्स बैंक’ बनी रहेगी और बिना किसी तकलीफ के वह अपने सारे २४) की खादी एकवार ले सकेगा। अगर १ साल से कुछ और दिनों के लिए यह प्रबंध बढ़ाया जा सके, और थोड़ा परिवर्तन करने पर पर यह हो सकेगा, तो सबको एक सा लाभ मिलेगा। मगर शायद इसका आकर्षण है लाभ की अनिश्चितता और हानि के जरा से होने में ही। इसकी सफलता सदस्यों की ईमानदारी पर ही बिल्कुल निर्भर है क्योंकि जिसने २४) रु. का अपना कपड़ा पा लिया, वह अगर अपना हिस्सा देना बन्द कर देवे तो दूसरों को हानि होगी। इस लिए अगर यह योजना बिना खर्च के और तौभी सफलता पूर्वक चलनी है तो इसके सदस्यों की संख्या जरूर ही कम रखनी होगी और केवल उन्हीं लोगों को लेना होगा जो एक दूसरे को जानते हों, और शायद एक ही दफ्तर या संस्था में काम करते हों, जिसमें किसानों मरवाने या वेईमानी करने का कम से कम खतरा हो। मैं आशा करता हूँ, कि श्रीयुत नैयर और उनके मित्रों के उदाहरण का अनुकरण और लोग भी करेंगे।

( यं० इ० )

मोहनदास करमचन्द गांधी

## दौरे के बाद

महात्माजी के विहार के दौरे के बाद, लोगों में खादी लिए बहुत उत्साह बढ़ा है। इस लिए अब और अधिक बनाने का निश्चय हुआ है। इस वर्ष में ३ लाख रुपये खादी बनाने का आयोजन हो रहा है। इसके लिए पहले बुनाई केन्द्रों के अलावा और भी दो तीन केन्द्र पटना, और भागलपुर के जिलों में खोले जायेंगे।

खादी में कुछ भी उन्नति करने के लिए रुई में करनी आवश्यक है। इसके लिए अच्छी रुई खरीदी गयी और रुई के अगले फसल में अच्छी कपास खरीदनी होगी तो कताई के केन्द्रों में सूत की तरकी का इन्तजाम हुआ पर छितवन में जो हम लोगों का कताई केन्द्र है और जहाँ डेढ़ मन सूत रोज बदला जाता है, कताई और बुनाई के कार लोग रखे गये हैं। वे लोग हर कस्तिन (कातनेवाले) के पास जायेंगे और उसे धुनना सिखलावेंगे।

सूत का वर्गीकरण भी खूब उत्साह से हो रहा अभी सिर्फ चार वर्गों में ही सूत अलग अलग रखा गया पर शीघ्र ही और वर्ग भी बढ़ाने होंगे। अभी छांटने वाले आंखें, पूरी पूरी बैठ नहीं सकी हैं। जब महाविरा हो तो वे अपने आप ही और वर्गों की आवश्यकता समझने लगे इस प्रकार के अलग किये हुए सूतों के कपडे अच्छे होते बुनाई की दर भी घटायी गयी है। बुनाई की दर जोड़ी है, ताने में सूतों की संख्या पर। इससे कपड़ा खूब और गमस निकल रहा है। एक एक मेल का कपड़ा एक का निकालने की कोशिश हो रही है। पहिले जहाँ पांच दो तरह की धोतियां मोटी और महीन होती थीं, अब पांच मेल की निकल रही है।

जुलाहे भी अब खादी छोड़ कर मिल के सूत-का बुनेंगे। हमारे पास इधर बहुत कपड़ा हो गया था, हम लोगों ने दिसम्बर और जनवरी में कम कपड़ा बुना जुलाहों को मध्य जाड़े में छोड़ दिया गया, फिर भी वे नहीं कमा सके, जितना वे खादी बुन कर हम से पैदा करके इसलिए वे हमें छोड़ नहीं सकते। हमारी सख्ती से वे कपड़ा बुनने लगे हैं; और बुनाई की घटायी गयी दर स्वीकार करते हैं।

अक्टूबर से जनवरी तक लगभग १ लाख की खादी जिसमें महात्मा जी के भ्रमण में लगभग चालीस हजार रुई। लोगों में बहुत उत्साह हो गया है। महात्मा लौट जाने के बाद भी खादी की माँग बहुत काफी है।

रँगई, छपाई में भी काफी उन्नति हुई है। छपाई के बाहर से छपेरे बुलाये गये हैं। कपडे पर कामदानी (Embroidery) करने को बनारस से एक कारीगर गया है। ये लोग पैसा भी खूब पैदा कर रहे हैं।

बिक्री के लिए भी काफी व्यवस्था हो चुकी है के अलावा, दो प्रदर्शनी-दल बनाये गये हैं। वे स्वयं पर सारे प्रान्त में खादी-प्रदर्शन करते और खादी खादी की फेरी की भी योजना बन रही है। मैं — हम लोगों का भविष्य उज्ज्वल है। काम करने उत्साह है जिससे काम की उन्नति अनिवार्य है।



कार्यकर्ता चाहिए

वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३० ]

सूत्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, फाल्गुन सुदि ७ संवत् १९८३  
सुबवार, मार्च, १० १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १३

कारकुन और 'बेयरा'

महासभा की बैठक में एक दो दिनों की देर थी। मैंने कहा कि महासभा के दफ्तर में जो मेरी सेवा स्वीकार करे, मैं उसे सेवा कहूँ और अनुभव लूँ।

एक दिन मैं पहुँचा, उसी दिन महासभा के दफ्तर खोल दिया गया। बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु और श्रीयुत घोषाल मंत्री के पास पहुँचा और काम सौंपा। उन्होंने मेरी सेवा स्वीकार कर ली।

मेरे पास तो कोई काम नहीं है मगर शायद मि० घोषाल को कुछ काम दें। उनके पास जाओ।

मि० घोषाल के पास गया। उन्होंने मेरे सिर से पैर तक तपाईं करीब जरा हँस के पूछा;

'मेरे पास तो कारकुन का काम है। वह करोगे?'

मैंने जवाब दिया, 'जरूर करूँगा। जो मेरी शक्ति के, मैं न हो वह सब काम करने को आपके पास आया हूँ।'

'नवयुवक, यही सच्ची भावना है।'

उनके कमरे में जो स्वयं-सेवक खड़े थे, उनकी ओर देख कर मैंने कहा;

'तुम देखते हो, यह जवान क्या कहता है?'

उन्होंने मेरी ओर ताक कर बोले:

'तब यह रहा चिड़ियों का डेर और सामने कुर्सी पड़ी है। तुम देखते हो कि मेरे पास सैकड़ों आदमी भाते, मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें से कितनी ही चीजें मिली हैं।'

मैंने कहा कि कारकुन नहीं जिससे यह काम ले सकूँ। इन चिड़ियों में से कितनी ही चीजें मिली हैं। जिसकी पहुँच लिखनी हो, लिखना, जिनके पास कुछ पढ़ना हो पूछ लेना।'

मैंने कहा कि मैं इस विषय से फूला न समाया। मि० घोषाल मुझे यह बातें कहते थे। नाम ठाम जानने का काम तो उन्होंने पीछे छोड़ दिया। चिड़ियों की फाइल संभालने का काम मुझे सहाज

लगा। पहली फाइल तो मैंने तुरत ही पूरी कर दी। मि० घोषाल खुश हुए। बात करने का उनका स्वभाव था। मैंने देखा कि बातों में वे अपना बहुत समय लगाते थे। मेरा इतिहास जानने के बाद तो उन्हें कारकुन का काम सौंपने की जरा शर्म लगी मैंने उन्हें निश्चित कर दिया।

'मैं कहाँ और आप कहाँ? आप महासभा के पुराने सेवक, मेरे लिए तो गुस्ते के समान हैं। मैं रहा अनुभवहीन नवजवान। यह काम सौंप कर तो मेरा आपने उपकृति ली है क्योंकि मुझे महासभा में काम करना है। उसका काम काज समझने का आपने मुझे अवसर अवसर दिया है।' मि० घोषाल ने कहा:

'सच पूछो तो यही सच्ची वृत्ति है। पर आज के युवक ऐसा नहीं मानते। बाकी मैं तो महासभा को उसके जन्म से ही जानता हूँ। उसे जन्म देने में मि० ह्यम के साथ मेरा भी कुछ हाथ था।'

हमारे बीच ठीक ठीक गाँठ बँधी। दोपहर के भोजन में उन्होंने मुझे अपने साथ ही रखा। मि० घोषाल के कोट के बुताम भी 'बेयरा' ही लगता था। यह देख बेयरा का काम भी मैंने आप ही ले लिया। मुझे वह रुचता था। बड़ों के लिए मेरे मन में हमेशा से ही बहुत आदर था। जब से वे मेरी वृत्ति समझ गये तब से अपनी सभी व्यक्ति-गत सेवा के काम मुझे करने देते। बुताम लगाते हुए, मुझ से हँस कर कहते, 'देखो न, महासभा के सेवक को बटन लगाने का भी समय नहीं मिलता क्योंकि उस समय भी जो काम करना रहा।' इस मोड़ पर मुझे हँसी तो आयी पर ऐसी सेवा पर मन में जरा भी आदर कम न हुआ। मुझे जो लाभ हुआ, उसकी कीमत नहीं लगायी जा सकती।

थोड़े ही दिनों में महासभा के तंत्र की मुझे खबर हुई। कितने ही नेताओं से मेट हुई। गोखले, सुरेन्द्रनाथ बंगोरह योद्धाओं की रीतिनीति मैं देख सका। समय की जो बरबादी होती थी, मैं उसे भी देख सका। अंग्रेजी भाषा का भी प्राबल्य देखा। इससे तब भी दुःखी हुआ। मैंने देखा कि जो काम एक आदमी से होगा, उसमें एक से अधिक भी लग पड़ते और यह भी देखा कि कितने ही महात्वा-पूर्ण काम कोई नहीं करता।



मेरा मन इन सभी कामों की टोका किया करता परन्तु जित उदार था इस लिए ऐसा मान लेता कि जितना होता है उससे अधिक सुधार अशक्य होगा और किसी के प्रति अन्नादर का भाव नहीं होता।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

## बर्मा और लंका (सीलोन)

एक मित्र, जिनकी अध्ययनशीलता उनके पत्र से ही टपकती है, लिखते हैं:

“नीचे के कुछ सवाल आप को शायद केवल बहस की खातिर ही किये गये मालूम होंगे मगर हिन्दी भाषा के राष्ट्रभाषा होने के सम्बन्ध में ‘हिन्दी नवजीवन’ के गत १७ फरवरी के अंक में प्रकाशित पत्र के कारण मुझे आप से ये सवाल करने का मौका मिल जाता है। मैं इन्हें पूछने का बहुत दिनों से विचार कर रहा था।

“१. हमारे भविष्यत् स्वराज में बर्मा क्या हिन्दुस्तान का योग्य साथी बन सकता है या आप की समझ में बर्मा का एक अलग ही राष्ट्र होना चाहिए? (चूँके इस विषय में खुद बर्मा निवासियों में ही मतभेद है इस लिए आप की सम्मति से उनको और हिन्दुस्तानियों को भी रास्ता सूझ सकता है।)

२. हिन्दुस्तान के अपने पिछले कई दौरों में क्या आप कभी बर्मा गये हैं? अगर नहीं गये हों तो क्या आगे जाने का इरादा रखते हैं और कब?

३. क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि लंका को भविष्य के हमारे स्वराज में हिन्दुस्तान का हिस्सेदार होना चाहिए, क्योंकि बर्मा की अनिष्टत हिन्दुस्तान से उन्हींका अधिक जातीय, भाषा सम्बन्धी, और धार्मिक सम्बन्ध है — बशर्ते कि वे इस पर राजी हों। और उनका राजी होना संभव जान पड़ता है?

४. क्या आप समझते हैं कि बर्मा में हिन्दी का कुछ विशेष प्रचार है अर्थात् कि कई साल से बर्मा महासभा का प्रान्त माना जा रहा है (१९०८ से?) या बर्मा निवासियों को हिन्दी स्वीकार होगी?

५. लंका और लंका निवासियों के विषय में आप इस प्रश्न पर क्या सोचते हैं?

“मेरे जैसे आदमी के ऐसे सवाल पूछने से, जो आप न तो कभी बर्मा या लंका गया है, या वहाँ से जिसका कोई शस्सी सम्बन्ध नहीं है, आप को आश्चर्य हो सकता है मगर इन सवालों में बतौर एक विश्वप्रेमी के मेरी रुचि है और मैं आप को भी वैसा ही समझता हूँ। इस लिए मैं आशा करता हूँ कि आप शीघ्र से शीघ्र इन सवालों का जवाब देगे क्योंकि जैसा कि मैं जानता हूँ कितने ही बर्मी या लंकावासी और उसी प्रकार हिन्दुस्तानी भी इस प्रश्न में दिलचस्पी रखते हैं और आप की राय जानने को उत्सुक हैं।”

मैं बर्मा गया हूँ और उस देश को इतने काफी अच्छी तौर पर जानता हूँ कि पत्र-लेखक के प्रश्नों का उत्तर भरोसे के साथ दे सकूँ। लंका के विषय में बड़ी बात नहीं कह सकता। इच्छा होते हुए भी अभी मैं वहाँ नहीं जा सका हूँ। मेरे मन में इस बारे में कोई शक है ही नहीं कि स्वराज प्राप्त हिन्दुस्तान का एक हिस्सा बर्मा नहीं हो सकता। ब्रिटिश भारत एक नकली वर्णन है, जिस से हमें अपने ऊपर विदेशी यानी ब्रिटिश आधिपत्य की याद होती रहती है और हमारी सरहदें हमें गुलाम बना रखनेवाले ही निश्चित किया करते हैं। स्वतन्त्र भारत तो एक पूर्ण शरीर

सा होगा जिसमें वे ही रहेंगे जो इसके स्वतंत्र नागरिक बन रहना चाहेंगे। इस लिए स्वतंत्र भारत की भौगोलिक, जातीय और सांस्कृतिक सरहदें होगी। अतएव स्वतंत्र भारत बर्मियों के साथ जाति और संस्कृति का अन्तर स्वीकार करेगा और ही साथ बर्मियों की ओर मित्रता और सहायता का हाथ बढ़ायेगा और पूर्ण स्वातंत्र्य का उनका अधिकार स्वीकार करके, उसे प्रदान करने और बनाये रखने में अपनी शक्ति भर उन्हें सहायता देगा। अब यह कहना बेकार है कि मेरी योजना में बर्मियों को हिन्दु या हिन्दुस्तानी सीखने को नहीं कहा जाता। जो लोग समझते हैं कि वे हिन्दुस्तानी सीख लेंगे क्योंकि वे एक देश के अधिवासी हैं, एक संस्कृति में पले हैं, दूसरे कई हितों की समानता में हैं, और उनकी प्रान्तीय भाषाओं में बहुत से एक दूसरे मिलते जुलते शब्द हैं।

लंका के विषय में उसी विश्वास से मैं नहीं बोल सकता अर्थात् कि लंका की और हमारी संस्कृति एक है, और वहाँ अधिकांश निवासी दक्षिण भारतीय हैं, तौभी वह एक अलग ही देश है और चूँके मेरी कल्पना के हिन्दुस्तान को साम्राज्य अभिलाषा नहीं है, मैं उसे अलग स्वतंत्र देश देख कर हो नहीं रहूँगा मगर अगर खुद लंका निवासी ही स्पष्ट शब्दों में हिन्दुस्तान से मिलने की इच्छा प्रकट करें तो उन्हें मिला लेने में मुझे कुछ उग्र न होगा।

(यं० हं०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## चिठी पत्री

सेवा में, संपादक यं. हं.

महाशय,

मुझे यह देख कर खुशी होती है कि श्रीमान् श्री एयंगर ने अपने सभापति के अभिभाषण में अस्पृश्यता के विषय पर काफी ध्यान दिया है। हिन्दू लकीर की फकीरी के पुराने माइलपुर में बहुत दिनों तक रह चुकने, उन पाशविक रिवाजों, असभ्य पहलुओं को देखने का कितने अवसर पाने, जिनके समर्थन धर्म और लोकमत करता है, और दूसरे समयों पर दकियानुसी और भ्रष्ट रिवाजों का शिकार बनने के बाद मैं, जो अभिभाषण के एक वयान के सम्बन्ध में कुछ सवाल पूछना चाहता हूँ।

सभापति जी कहते हैं:

“सामाजिक और धार्मिक सुधारों की श्रेणी में ही, जो दूर करने का सवाल भी बहुत दिनों तक हृदयंद करके रखा गया था और तब उसकी शीघ्र प्रगति नहीं हुई। महासभा रचनात्मक कार्यक्रम का एक भाग बना कर महात्मा गांधी के नेतृत्व में हम लोगों ने पल भर में ही इसके प्रति शिक्षितों और अधिवासी सब के मनोभाव बदल दिये।”

क्या श्रीयुत एयंगर को सबसुच विश्वास है कि शिक्षितों के मनोभाव दर असल में बदला है? अपने अनुभवों के विषय में मुझे कुछ लिखने देंगे। हिन्दुस्तान के बाहर कोई ४ साल रहने के बाद गत वर्ष मैं मद्रास में कोई ६ महीने रही। एयंगर की परिभाषा में जिन्हें शिक्षित कहेंगे, जैसे मद्रास हाई स्कूल के बच्चीलें, जमीन्दारों, राष्ट्रीय समाचार पत्रों के अधिकांशक इत्यादि लोगों के समाज से भी मेरा सम्पर्क रहा और आदमी के भी मनोभाव में मैंने सच्चा परिवर्तन नहीं देखा और जहाँ कहीं विरले ऐसा परिवर्तन मालूम भी पड़ा, वहाँ



१९२७

महासभावादी नेता, बयानों के बदले हमें आंकड़े  
भवदीया  
महासभावादी नेता

卷四

रामचन्द्र-कोश

“साबरमती में कोश का दाम

३० फीट तक की गहराई के लिए १२५) रु.

३५ " " " १३२) रु.

४७ " " " १३९), और

हर ५ फीट की और गहराई के लिए ७) व. अधिक लगेंगे। ये दाम ३२ गैलन पानी की डोलों के कोश के हैं। और बड़ी बालटियों के लिए खास दाम बतलाया जायगा।

[ ये दाम बाजार दर के मुताबिक घट बढ़ सकते हैं और बिना किसी विज्ञापन के इनमें बदल बदल हो सकता है ]

“स्थानिक संस्थाओं, जमीन्दारों, सहकार समितियों और देशी नरेशों के लिए जो अपने यहां बड़े पैमाने पर कोश चलाना चाहते हैं, उन्हें ५० या अधिक कोशों का खास दाम बतलाया जायगा। कोश के बंडल बांधने और रेलवे किराये में बचत के अनुसार उनके लिए दाम में कमी की जायगी।

“कोश मंगाते समय कृपया कुएं की तह से लेकर जगत तक की गहराई लिख भेजिए और यह भी बतलाइए कि कितनी बड़ी बालटी चाहिए ।

“सभी मांगों के साथ आधा दाम नकद पेशगी आना चाहिए और बजरिये वी. पी. पी. सामान भेज कर बाकी वसूल कर लिया जायगा। अगला रुपया आने के कोई एक महीने बाद, मांग के क्रमानुसार कोश मिलेगा।”

आश्रम को कोई नफा नहीं है केवल लागत दर और माल पहुँचाने का खर्च लिये जायेंगे। अब तक आश्रम में जो कोश चलता रहा उससे पूरा पूरा सन्तोष मिला है और अब यही सवाल है कि आश्रम के बेजहरी बेलों का क्या उपयोग किया जाय। एक सचित्र पर्चा पूरे २ व्यौरों के साथ छपा है। जो कोई उसे लेना चाहे आश्रम के अध्यक्ष को एक आने का टिकट भेज कर भँगा ले सकते हैं। जिन्होंने श्रियुत रामचन्द्र ऐयर या मुझसे खतो किताबत की थी वे अब ऊपर लिखी शर्तों पर कोश भँगा सकते हैं।

(यं. इ.)

मो० क० गांधी

भूल सुधार

गत ३ मार्च के हिन्दी नवजीवन में, 'संयमी भारत' शीर्षक लेख (पृष्ठ २२८) की सातवीं पंक्ति में 'इस लिए हम लोगों को इस मुशामिले में भागे बटना ही होगा' को पाठक कृपा कर इस प्रकार सुधार दें, 'इस लिए हम लोगों का इस मुशामिले में भागे बटना अनुचित ही होगा ?'

भवदीया

सुहासिनी देवी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, काल्युन सुदि ७ संवत् १९८३

## अस्पृश्यता, स्त्रियाँ और स्वराज

श्रीमती मुहासिनी देवी का पत्र मैं खुशी से छापता हूँ जिसे पाठक अन्यत्र पावेंगे। महासभा के बहुज समापति अपना बचाव करने में आप समर्थ हैं परन्तु मुझे ऐसा खयाल होता है कि इस बहिन ने अपने थोड़े से अनुभव पर से ही बहुत अधिक व्यापक नियम निकाले हैं। अछूतोद्धार के आन्दोलन की बड़ी प्रगति सिद्ध करने के लिए आंकड़ों की जरूरत नहीं है। यह दीवार हर जगह टूट रही है। हर सूत्र में ऊँची श्रेणी के लोग दलित जाति के लड़कों की सेवा के लिए स्कूल, छात्रालय आदि चला कर उनकी सेवा करते हुए मिलते हैं। समापति महोदय ने अपने भाषण में जब इसका जिक्र किया, तब स्पष्टतः यही बात उनके ध्यान में थी। खैर, मगर जो कुछ अभी तक हो सका है, उसके लाख गुणा और करना बाकी है। स्त्रियों के दुराग्रह को दूर करना सब से कठिन काम है। सच पूछो तो यह स्त्री शिक्षा का सवाल है। और इस विषय में यह सवाल केवल लड़कियों की ही शिक्षा का नहीं है बल्कि विवाहिता स्त्रियों की शिक्षा का है। इस लिए मैंने यह बात बार बार सुझायी है कि हर एक देशभक्त पति को, अपनी पत्नी का शिक्षक आप बन जाना चाहिए और उसे अपनी दूसरी कमनसीब बहिनों में काम करने के लायक बनाना चाहिए। मैंने इस सलाह के रहस्यों की ओर भी ध्यान खींचा है। पत्नी को केवल विलास-सामग्री न समझ कर राष्ट्रस्थान के काम में अपना सहकारी समझना भी उन्हीं में से एक है। सीता के बिना हमें राम नहीं मिल सकते। वनवास और साधना के भयंकर वर्षों में, राम की स्नेहमयी छाया तले सीता की सबी शिक्षा हुई। खैर, अपने ही देश में हम सब कोई देश निकाले से हैं और यथाशक्ति और यथावसर हमें राम और सीता का ही अनुकरण करने की जरूरत है।

इस विषय में श्रीमती मुहासिनी देवी का इस ओर ध्यान दिखाये बिना मैं नहीं रह सकता कि श्रीयुत ऐयंगर ने अस्पृश्यता का बन्धन न सिर्फ अपने ही लिए तोबा है बल्कि अपने साथ वे अपनी स्त्री और परिवार को भी ले चल सके हैं। यही सुधार दश वर्ष पहले, स्वयं उन्हीं को असंभव मालूम होता।

सहभोज और अस्पृश्यता के सवाल अलग ही अलग रखने होंगे। खाने पीने के मुकामिले में अलग अलग रहने की नीति सारे हिन्दू समाज में घुसी हुई है। अब अस्पृश्यता में और इसमें अन्तर न रखने से अछूतोद्धार के आन्दोलन की गति रुकेंगी। किसी दूसरे मनुष्य के बराबर ही, उन्हीं शर्तों पर, अछूतों के भी सामाजिक अधिकार पाने में जो बाधाएँ हैं उन्हें दूर करना इस आन्दोलन का उद्देश्य है।

स्वराज के विषय में भी कुछ अस्पष्ट ज्ञान है। स्वराज शब्द के कई अर्थ हैं। जब श्रीयुत ऐयंगर कहते हैं कि अस्पृश्यता के दूर होने से स्वराज का कोई संबंध नहीं है तो मैं मानता हूँ कि उनका मतलब है कि अस्पृश्यता का रहना शासनाधिकार की प्रगति का बाधक नहीं हो सकता। द्वैतशासन या घारा समाजों को अधिक अधिकार दिये जाने के सवाल से तो निश्चय ही इसका कुछ केना देना नहीं है। अस्पृश्यता को दूर करना सामाजिक

प्रश्न है जिसे हिन्दुओं को हल करना होगा। इसके कारण हिन्दुओं को और साथ साथ, मुसलमानों और पारसियों को भी सैनिक खर्च का नियंत्रण करने, या विनिमय की दर ठोक करने या शराब की बिक्री कतई बन्द करने, या स्वदेशी उद्योगों की रक्षा के लिए विदेशी माल पर चुंगी लगाने के अधिकार क्यों न मिलें। सच्चा जीवन्त स्वराज तो एक मुश्किल सवाल है। साधारणतः लोगों के दिलों में स्वराज के साथ जिस स्वतंत्रता की भावना मिली हुई है, वह तो न सिर्फ अछूतोद्धार और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में हार्दिक ऐक्य के बिना ही असंभव है, बल्कि और भी कई दूसरे सद्गुण ही दिखायी पड़नेवाले सामाजिक दोषों को भी दूर किये बिना असंभव है। इस व्यापक शब्द स्वराज का अर्थ हम लोगों ने समझ लिया है, निरन्तर आन्तरिक विकास और जब तक इस विकास के शुभ पोषे को पक्षपात, मनोविकार और अन्धविश्वास की दीवारें घेरे हुई हैं, वह उग नहीं सकता।  
(यं० इ००)

मोहनदास करमचन्द गांधी

## तरुण बंगाल का प्रवर्तक संघ और खादी

इस घड़ी बंगाल का पीडित प्रान्त दूसरा नहीं है। इसके कुछ अच्छे से अच्छे नवयुवक जेलों में सज रहे हैं और उन्हीं इसका कारण भी मालूम नहीं। महासभावादियों के बीच भी फूट फैला हुआ है। देशबन्धु के बाद फिर कभी बंगाल महासभा ने किसी को अपना एक मात्र नेता स्वीकार नहीं किया। इसमें तबल्लुब भी कोई बात नहीं है। देशबन्धु तो केवल एक ही हो सकते थे।

मगर इन सब के होते हुए भी बंगाल में रचनात्मक कार्य निरन्तर चल ही रहा है। इस काम में लगे हुए निराला नवयुवकों की संख्या, दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। श्रीयुत मोतीलाल राय के नेतृत्व में, प्रवर्तक संघ, जिसका प्रधान कार्यालय चन्द्रनगर में है, खादी तैयार करने और बेचने अपना काम बराबर बढ़ाता गया है। मगर अब तक उसमें खादी का गौण ही स्थान रहा है—उसके कई बड़े २ कामों में यह भी एक छोटा सा काम रहा है। मगर अब मोती बाबू इसे अपने संघ का केन्द्र बनाने का दृढ निश्चय कर लिया है। मैंने उनसे आप बहुत देर तक बात की थी और उन्होंने कहा था कि उनके दिल में यह बात बलात् पैठनी जा रही है कि चर्खों को मध्यविन्दु बनाये बिना जनसमूह की सबी सेवा का असंभव है। श्रीयुत शंकरलाल और लक्ष्मीदास मेरे बाद चन्द्रनगर गये। खादी के लिए संघ के उत्साह की और कुटुम्बिया में उनके खादी-कार्य की उन्होंने मुझसे बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने मुझे भी बतलाया कि कताई और धुनाई में नयी से नयी तरकियों को सीखने के लिए मोती बाबू कितने उत्कण्ठित हैं। यह संघ एक पुनर्स्था है। इसके मूल में पांडीचेरी के ऋषि की भावना भरी है। बंगाल में इसके कितने निःस्वार्थ और श्रद्धालु सेवक हैं।

उनके जनवरी मस की खादी के आंकड़े देखने से मुझे पता चलता है कि इस महीने में उन्होंने ७०० रु. से अधिक की खादी बनायी और ३४०० रु. से अधिक की बेची। अपने खादी तैयार करने में यह संघ अपनी शक्ति लगा सके तो वे तुरत ही खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रम की बराबरी करने लगे। इसमें उसे किसी से उलझना भी नहीं पड़ेगा क्योंकि हर एक नया संघ अपने लिए नया क्षेत्र ढूँढ लेवे तो खादी की तैयारी और बिक्री दोनों के लिए ही प्रायः असीम संसाधन हैं। बंगाल जैसे विशाल प्रान्त की भाँगे पूरी करना, किसी संस्था के लिए असंभव है।

(यं० इ००)

मो० क० गांधी



## कार्यकर्ता चाहिए

रोजमर्रा की बीमारियों का घरेलू इलाज भी उसे आना चाहिए । साधारण बड़ी खाता और हिसाब उसे जानता होगा और अगर गांववालों पर उसे असर डालना है और उनका विश्वास भाजन बनाना है तो सबसे बड़ी बात यह है कि उसे शुद्ध और पवित्र जीवन बिताना होगा । स्वभावतः ही गांव के कार्यकर्ता को सादे और सस्ते जीवन में ही आनन्द मिलेगा । कोई यह न समझे कि मैंने उपर जो कुछ बतलाये हैं, वे बातें पूरी हो ही नहीं सकती । व्यावहारिक शिक्षा जो बातों में इतनी बड़ी चीज मालूम होती है, धीरे विद्यार्थी के लिए कुछ कठिन नहीं है । किसी ऐसे काम में चरित्र की शुद्धता का होना तो मानी हुई बात है ही । कोई प्रामाण्य कार्यकर्ता बीमारियों का शिकार होने से बच नहीं सकता अगर वह स्वच्छता के साधारण नियमों को जानता और बर्तता नहीं है तथा साधारण बीमारियों का घरेलू इलाज नहीं जानता । उपर दी हुई इस सादी जाँच में उतरनेवाले कितने भी कार्यकर्ताओं के लिए चर्खा-आन्दोलन में जगह है ।

( यं. इं. )

मोहनदास करमचंद गांधी

### साप्ताहिक पत्र

इस पत्र के वे पाठक जो दैनिक समाचार पत्र पढ़ा करते हैं, देखेंगे कि हमारी इस तेज चाल के कारण मैं हर जगह का वर्णन नहीं दे सका हूँ मगर वे यह भी समझेंगे कि मैं लाचार था । जितनी जगह मैं ले रहा हूँ इससे अधिक ले नहीं सकता था और महाराष्ट्र के तर्क-प्रिय भाइयों ने गांधी जी से जो भाषण दिलवाये, कम से कम उनका सारांश दिये बिना भी नहीं रह सकता था । अनुभवों के विषय में तो यह बात मानी जायगी कि मैंने चुनाव में खूब सख्ती और विचार से काम लिया है ।

शान्ति और व्यवस्था की दृष्टि से शोलापुर की सभा आदर्श कही जायगी । इस शान्ति का उपयोग कर के गांधी जी ने निजी पत्रों में आये हुए कई आक्षेपों के उत्तर दिये । पहला आक्षेप था कि 'खादीधारी पाखण्डी होते हैं । सिर्फ गांधी जी को दिखलाने के लिए वे खादी पहिनते हैं ।' गांधी जी ने इस का कड़ा जवाब दिया, " लोग अगर मेरे पास से करोड़ रुपये की खादी ले कर नदी में फेंक दें तो उससे मेरा क्या ? मेरे पास से तो वे करोड़ की ही लेते हैं । इस लिए गरीबों के घर में तो करोड़ रुपये जाते हैं और यह बस है । परन्तु सच्ची बात यह है कि सभी खादीधारी पाखण्डी नहीं हैं । वे बेचारे तो मेरे सामने आकर स्पष्ट कहते हैं कि हमें तो खादी प्रिय है पर हम हमेशे नहीं पहिन सकते । ऐसा कुछ काम आप कीजिए जिसमें हमें हमेशा पहिनने की शक्ति मिले । इन लोगों को मैं क्यों कहूँ कि तुम खादी पहिनना छोड़ दो ? मेरा कर्तव्य तो पूरा धर्म बतलाना है मगर लोग उसमें से जितने का पालन कर सकें, करें । मैं तो व्यापारी हूँ । मैं तो इन्द्र नारायण का स्वतःनिर्वाचित बनिया हूँ, अडतिया हूँ । मेरे पास, मेरी सेवा का ही प्रमाण-पत्र है । अगर मेरी बात आप मानो तो मैं कहता हूँ कि गत वर्ष हमने ९ लाख रुपये गरीब आदमियों से बाँटे । हम १५०० गांवों में खादी का सन्देश ले गये और आज इस संस्था द्वारा जितना खादी कार्य हो रहा है, उतना किसी संस्था द्वारा नहीं होता है ।"

खादी के लिए पैसा देनेवालों को उन्होंने यह सख्त चेतावनी दी: "जब तक मैं तुम्हारे सामने सच्चा हिसाब पेश कर सकूंगा तब तक तुमसे पैसा माँगता ही रहूँगा । जब तक तुम्हें मुझ पर प्रेम और विश्वास होगा तब तक तुम मेरे काम में उतना ही विश्वास रख कर पैसा दोगे । मगर मेरे काम की कीमत तुम्हारे दिक्मैन हो तो मेरे



नाम को भूल जाना। मुझमें नाम का अभिमान नहीं है। मुझमें असाधारण शक्ति नहीं है, मैं तो एक विन्दु भर हूँ। मुझमें तो एक सामान्य आदमी की शक्ति है। अगर मुझे 'महात्मा' कहे बिना नहीं रह सकते तो 'महात्मा' भले ही कहे पर मेरा महात्मापन तुम्हारी ही शक्ति का प्रतिविम्ब है। मुझे खबर मिली थी की मेरे मौन दिवस को लोग मेरा दर्शन कर जायेंगे। इससे मुझे दुःख हुआ। मैं किसी को दर्शन देना नहीं चाहता। दर्शन मैं किस लिए दूँ? दर्शन देने के लालच मैं नहीं हूँ। मुझे न तो 'दर्शन' शब्द प्रिय है न 'महात्मा' शब्द। दर्शन करना हो तो खादी का दर्शन करो। खादी की शक्ति का दर्शन करो। हम सब तो मिट्टी के पुतले हैं, और सौ ऐबों से भरे हुए। जैसी आपको वैसी ही मुझे भी खाने की, पीने की, सोने की जरूरत है। जैसे दोष विकार आपमें हैं, वैसे ही मुझमें भी हैं। तो मेरा दर्शन किस लिए करना? दर्शन ईश्वर का करो—निरंजन निराकार का करो। उनका दर्शन तो सर्वत्र हुआ ही करता है। उनका दर्शन जैसे मंदिर में वैसे ही पायखाने में भी हो सकता है। मेरे दर्शन से क्या लाभ होना है?"

घड़ी भर तो नासिक जैसा ही वातावरण हो रहा। सब के दिलों पर खूब असर हुआ सा दीख पड़ा। फल स्वरूप जब खादी बेंचना शुरू किया तब लोगों की माँग पूरी करनी मुश्किल थी।

सोलापुर से गुलबर्गा पहुँचे। गुलबर्गा को कौन नहीं जानता? गुलबर्गा में १९२४ में जो कुछ हुआ था गांधी जी के भाषण में उसकी याद ताज़ी सी मालूम पड़ती थी। गुलबर्गा के लोगों ने २५००) की थैली दी और गांधी जी के प्रति प्रेम भी बहुत दिखलाया। वहाँ के महत्वपूर्ण भाषण का कुछ अंश नीचे देता हूँ :

"मेरे पास जब विलायती टोपी और कपड़ा पहिन कर युवक आते हैं तो मेरा दिल बैठ जाता है। मेरे मन में आता है कि ये नौजवान यह क्यों नहीं समझते कि जब कि खादी की टोपी के पाँच आने हिन्दुस्तान के गरीबों के घर में जाते हैं विलायती टोपी पर जो ये डेढ़ रुपये फेंकते हैं, वह दरिया में जाता है? जो आदमी देश के गरीबों को भूल कर दुनिया के गरीबों को ढूँढने जाता है वह पागल है। खुदा उसे तक़्वरी करने वाला कहेंगे। खुदा कहेंगे कि 'अपने देश के गरीबों भूखों को पहले देख, पछे दुनिया का विचार कर। दुनिया के लोगों का विचार करने तो मैं बैठा ही हूँ, तू अपने पड़ोसी का विचार कर।' जो आदमी गरीबों के लिए कुछ नहीं करता, वह हिन्दू होकर चाहे गायत्री जपता हो, मुसलमान होकर पाँच नमाज पढ़ता हो, सिद्धे करके चाहे वह सिर भले ही घिस डाले तौभी अगर वह गायत्री, वह नमाज, वह सिद्धा, सभी बेकार हैं। क्या तुम जानते हो कि मद्रास में हजारों हिन्दू ब्रिगों और बिहार, बंगाल में हजारों मुसलमान ब्रिगों को भूखों मरने से और पाप तथा शर्म की जिन्दगी बिताने से बचानेवाली खादी है? पर इसकी खबर किसे हो? तुम तो शेर बन कर एक दूसरे का गला काटने में लगे हुए थे। यह अज्ञान है, जंगली पना है। मैं तुम्हारे आगे अपने दिल की आग दिखलाने आया हूँ।"

गो कह कर, वे हिन्दू-मुसलमान प्रश्न पर आये: "मैंने इस सवाल से हाथ जो लिया है। कारण यह है कि मैं अपनी आवाज किसे सुनाऊँ? केवल खुदा को ही सुनाना रहा है। मैं यह बन्दगी बराबर करता हूँ कि ईश्वर इस आफत से तू हिन्दुस्तान को किसी भी भाँति बचा। पर आज यहाँ इतने मुसलमान बैठे हैं। मैं उनका हित चाहनेवाला, खुदा परस्त, सत्याग्रही

हो कर उन्हें अपने दिल की आवाज क्यों न सुनाऊँ? मैं मन्दिर में गया। वहाँ सुना कि मूर्ति का नाश हुआ है और नदी के टुकड़े किये गये हैं। मैं तो बुतपरस्त हूँ और सभी जगह खुदा को देखनेवाला, इसलिए सभी जगह सिर झुगानेवाला रहा। किसी स्थान में बन्द नहीं रहता। मैंने तो बरबदा जेल में मौलाना जिबली का लिखा महम्मद साहेब का चरित्र पढ़ा, और वेदान्त और अलकलाम में एक ही बात देखी। सीत बाई और उत्पल साहेब को पढ़ा। इन सभी ग्रन्थों को पढ़ कर मुझे कहता हूँ कि मूर्ति तोड़नी तुम्हारा काम न था। मूर्ति तोड़ कर मुसलमान खुदा के गुनहगार बने थे।

"ऐसे झगड़े देख देख कर मैं थक गया। ये झगड़े मिटाने को अगर कोई आदमी अपना सारा जीवन खर्च कर रहा था तो मैं तो था ही। मगर मेरी कोशिशों का कोई फल न दिखला पड़ा, इस लिए मैंने सन्न किया और खुदा के ऊपर भार देकर बैठ गया। इस सम्बन्ध में मुझे इस्लाम की तवारीख में से एक कहानी याद आती है। पैगम्बर साहेब की वफ़ात के बाद, सत्ता के लिए जब बहुत लोगों में झगडा होने लगा तो औलियों ने कहा कि 'हमसे इस झगडे में पडना पार नहीं लगेगा।' उनमें किसी की मिसर को भागे, कितने ईरान और कितने तुर्की को भागे और जैसे हमारे ऋषि हिमालय की गुफा में जाते वैसे ही कि पहाड़ों की गुफाओं में चले गये। इन औलियों ने इस्लाम की जीवित रखा है। मुझे भी होता है कि, 'अरे जीव, तू कोई गुफा ढूँढ कर बंदगी कर।' पर जब हिन्दू मुसलमानों तवारीख लिखी जायगी, तब मुझे विश्वास है कि मेरे विषय यह लिखा जायगा कि, खुदा का एक बंदा था जो हिमालय में भूले करता हुआ भी तौबा करना जानता था। आज मैं इससे थोड़ा बैठा हूँ तौभी तुम्हें यह कहने आया हूँ कि तुम अपनी कौम भूखों का खयाल करो। जहाँ सैकड़ों, हजारों मुसलमान ब्रिगों मदद हिन्दू कार्यकर्ता कर रहे हैं, वहाँ हिन्दू मुसलमानों को शराब की फुरसत नहीं है। जिसके पेट में आग लगी हो, वह झगडा किस प्रकार करेगा? ६० वर्ष की एक बुढ़िया से पूछा गया कि इतने सचमुच इस दुनिया में है तब तो मेरे मुँह में एक आने की रोटी पड़ती है। इसलिए मैं तुम्हें कहता हूँ कि, तुम्हें लडना लडो मगर मेरे जैसे लोग जब आ जायें तो दुश्मनी भूल कर अदावत भूल कर, मेरा तो कुछ काम करो।"

इस के बाद हम लोग सोलापुर के कुछ गाँवों से होकर पंढरपुर गये। पंढरपुर से सांगली, फल्टन वगैरह रियासतों होकर सतारा आये। सतारा की सभा सुन्दर थी। थैली सतारा के लिए शोभनीय न थी। सतारा जिले से पाँच सौ रुपये कहे जायेंगे? पर सतारा में भी खादी खूब बिकी। हार, पेटी और हलदी, कुंकुम का भी नीलाम हुआ। सूत का ६) रुपयों में खरीदने वाली मिस पिक्कन नाम की एक महिला थी। उन्होंने पूछ्य माता जी (श्रीमती गांधी) को सोने की एक अंगूठी भी भेंट की।

कर्णटक की बात चलाने के पहले पंढरपुर का थोड़ा जिक्र करना ही चाहिए। पंढरपुर में मन्दिर के अधिकारियों को किसी प्रकार यह खबर लग गयी थी कि गांधी जी यूरोपियन के साथ आ रहे हैं और वे इस सोच में पड़े थे कि अगर वे बनारस के जैसे यहाँ भी उसे ले कर मन्दिर में करना चाहें तो क्या किया जायगा। हमारी मंडली में यूरोपियन को न देख कर जहर ही उनके दिल का



१० मार्च, १९२७

मैं इससे रा  
अपनी कौम  
ममान लियों  
तों को भगव  
वह झगडा कि  
या कि इतने प  
कहा कि व  
एक आने के  
तुम्हें लडना है  
इमनी भूल अ

कारा से हम बेलगांव होने हुए काँकण गये। इस प्रदेश में हमारे  
के नेता घूमे नहीं है। इसका कम वा अधिक भगर कारण है,  
जिस से दूसरे स्थान की लंबी दूरी और आने जाने के साधन  
हैं। पश्चिमी घाट में यह सुन्दर प्रदेश, अपने बंदरगाहों  
के साथ साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी की याद दिलाने वाले  
को सोमा से और भी अधिक सुहावना दिखायी पडता है।  
जो लोगे ने सावन्तवाडी से शुरू किया और वहां से वेंगुरला  
तक, पयुर के किनारे किनारे उत्तर की ओर कोलाबा जिळे में  
गये, वहां से दर पर बंबई दिखलायी पडता है। इन दिनों  
प्रबल नीचे देता हूँ:

गांधी से होकर	२१ फरवरी	अलीबाग
रियासतों से	सायन्तवाडी	साम्बावाणी
। थैली घटाकर	२७ फरवरी	१ मार्च
सौ रुपये का	मैणाला	रत्नागिरी
। हार, पेड़ों	मालवन	संगमेश्वर
सूत का हार	२८ फरवरी	चिपलूण
एक सिक्की	कपल	२ मार्च
गांधी) के	कनकावली	खेड
	बरेपटन	

महाद  
कासू  
३ और ४ मार्च  
सरोळे  
उरान  
पनवेल  
चौक  
करजत

तो बहुत सुन्दर, सभी जगह हरियाली लहलहात  
 ऐसे महा नदियों से भरे हुए बंगाल की शोभ

मध्यश्रेणी के लोग नौकरी पेशा हैं और हाल साल से निम्न श्रेणी के लोग मिलों में मजदूरी या दफ्तरों में सिपाही के काम के लिए बंबई में जुटने लगे हैं। ऐसी दशा में खादी के लिए इस क्षेत्र की अनुपयुक्तता की कल्पना सदन ही की जा सकती है कोई कहता है कि 'हमारे यहां खापास ही नहीं होती।' तो दूसरे साहेब फरमाते हैं कि, 'वकीलों और नौकरी पेशा लोगों को खादी चाहिए नहीं और बंबई की बंदौलत गरीब लोगों को काम की कमी नहीं है। जो लोग बंबई न जाकर खेत पर ही लगे रहे, उनको भी अपनी रोटी पैदा कर लेना कुछ बहुत मुश्किल नहीं है, और तभी आपा साहेब पटवर्धन, बंबई के नामी एम. ए. हो कर भी, अपनी भीख का खप्पर लिये हुए, इस देश के एक कोने से दूसरे कोने तक खादी का सन्देश सुनाते हुए जाते हैं। उनको कुछ बहुत सफलता तो नहीं मिली है परन्तु उनके उदाहरण का बड़ा असर पड़ता है और हर स्थान में अकेले दुकेले मगर बड़े ही अच्छे कतबे और खादी धारी मिल जाया करते हैं। वकीलों ने भी, यहाँ तक कि प्रतिसहयोगियों ने भी स्वागत में हाथ बँटाया और थैली के लिए चंदा दिया था। यहाँ का कार्यक्रम बड़ा मुश्किल था, सोमवार को भी आराम न था मगर लोगों का उत्साह देख कर और यह जानकर कि जिसमें उनके काम में आगे चलकर सुभीता हो, इस लिए वे उन स्थानों में गांधी जी को ले जा रहे हैं, जहाँ पहले कोई नहीं गया था, पटवर्धन जी पर रंज होने को जी नहीं चाहता था।

नेलगान्ध से हम रात को देर में सावन्तवाड़ी पहुँचे। वहाँ के सरदार साहेब ने स्वागत किया और आधी रात को गांधी जी के चर्खा कातते समय उनसे चर्खे पर बातें की। मालूम होता था कि चर्खे का संदेश वे ठीक ठीक समझते हैं। दूसरे दिन सबेरे गांधी जी और श्रीमती गांधी को राजमहल में निमंत्रण दिया गया और वहाँ उन्हें १०००) की थैली और सौभाग्य चिह्न मेड किये गये। सरदार साहेब की देशभक्ति का यह अच्छा नमूना है। मालाओं, पेटियों और दूसरी मेडों की नियमित बिक्री हुई और हर जगह पर खादी खूब बिकी। यहाँ का हर एक स्थान दूर दूर पर है, इस लिए किसी किसी गांव में तो हम लोग आधीरात को पहुँचे, और कभी कभी तो उसके भी बाद। बहुत दूर तक मोटर पर चलने के बाद, गांधीजी की थकावट का, सहज ही अनुमान किया जा सकता है, मगर उनकी खुशमिजाजी उनको और दूसरों को भी सँभाळे रही। लांजे में आधीरात के बाद पहुँचे। वहाँ के लोग समा में बैठे हुए बेचैनी से राह देख रहे थे। वहाँ गांधी जी ने कहा, 'मैं नहीं समझता कि इतनी देर तक बैठाये रहने के लिए मैं तुम लोगों पर तरस खाऊँ या अपने पर। मगर हम लोगों ने आज वह कर दिखाया है जो गीता का योगी करता है, यानी, "या निशा सर्वभूतानां तस्या जागर्ति संयमी।" मैं आपके योग पर आपको बधाई देता हूँ परन्तु आप हमारी खादी खरीद कर गरीबों



की सहायता करोगे तो सच्चे योगी बन कर हमारे धन्यवाद के अधिक भागी बनोगे।” इस पर बड़े जोर का ठाका पड़ा और अधो सोयी हुई श्रोता मंडली जाग उठी। अब अगले पत्र में रत्नागिरि और कोलाबा का वर्णन वेगा।

(यं० इ० और नवजीवन)

मो० क० गांधी

## वेद आदि में वस्त्र विद्या

अन्न और वस्त्र मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ हैं और इतिहास के प्रमातृकाल से ही भारतभूमि जगत की अन्न तथा वस्त्र-पूर्णा की पदवी भोग रही है। ईसू के बाद की पहली सदी में एक ग्रीक व्यापारी ने सिन्धुसागर (हिन्द महासागर) के प्रवास तथा व्यापार का वर्णन लिखा था। इसमें उसने भरूच को बारीगाजा और सौराष्ट्र (गुजरात) को सीराष्ट्रनी लिखा है। और कहता है कि इस स्थान से गहूँ, चावल, वी, तेल, शक्कर, सूती कपड़ा, रेशम और नील वी विदेश में भेजे जाते हैं। सिन्धु नदी के नाम के ऊपर से हमारे देश, लोगों तथा धर्म को नाम मिला है। इतना ही नहीं बल्कि इस देश से जानेवाले एक प्रकार के कपड़े का भी नाम था ‘सिंडोन’ और वह भी सिन्धु पर से। पारस देश के उच्चारण में स का ह हो जाता है (सोम—होम, असुर—अहुर इत्यादि।) इसके आधार पर प्रोफेसर सेइस दलील करते हैं कि हिन्दुस्तान और यूफ्रेटीज नदी के बीच प्राचीन समय में समुद्र मार्ग से व्यापार होता था क्योंकि बैबिलोन शहर के प्राचीन कपड़ों की एक फेहरिस्त में ‘सिन्धु’ नाम भी है। ग्रीक लोग हाका के कपड़े को ‘गेजेटिका’ का नाम देते थे। इस नाम से मालूम होता है कि यह कपड़ा गंगा के तीर पर बनता था। चौथी ही शताब्दियों पहले पाश्चात्य देशवासियों को रुई जैसा पदार्थ मालूम ही नहीं था, परन्तु अपने यहाँ से तो ईसा से ४,००० वर्ष पहले ईरान की खाड़ी में समुद्र मार्ग से रुई जाती थी। और मिसर में भी बहुत पहले दाखील हो गयी थी। प्रख्यात ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस लिखता है कि उस समय हिन्दुस्तानी कौम दुनिया की सब कौमों से बड़ी चढी थी और, यूरोपियनों को उस समय रुई इतनी अपरिचित थी कि उसने ऐसा गोल गोल वर्णन किया है कि, ‘हिन्दुस्तान, में अपने आप उगने वाले पौधे का फल

यह ग्रीक व्यापारी शक्कर का नाम देते हैं, ‘शक्करी नाम की सांठे से चूनेवाला मनु’। यूरोप के इतिहास में शक्कर के व्यापार का यह पहला उल्लेख है। चीनी तो शक्कर को औषध के रूप में ही जानता था। मालूम होता है कि ऊख की खेती पहले पहल अपने ही यहाँ हुई।

नील=अंग्रेजी में ‘इन्डिगो’ या हिन्दुस्तान का बादली रंग।

विदेश में भेजे जानेवाले दूसरे पदार्थों का विचार यहाँ प्रस्तुत विषय नहीं है। तौमी इतना लिखना ठीक है कि इसमें लोहा तथा फोलाद और आबनूस की लकड़ी का भी समावेश था। रोम के बादशाह मार्कस ओरेलियस के समय में जिन जिन वस्तुओं पर जुंजी ली जाती थी, उनमें ‘हिन्दुस्तानी लोहा’ भी आता है। प्लिनी कहते हैं, ‘लोहे की कारीगरी में हिन्दुस्तानी कुशल है। संसार की मशहूर से मशहूर तलवारें उन्हीं के कारखानों में बनती हैं। हिन्दुस्तानी फोलाद की धार को कोई बड़ नहीं सकता।’ मध्यकालिक यूरोप में दमिस्क या दमास्कस की तलवार का बखान होता था। वह भी बर्धिका में यहाँ से गयी थी। लैटिन के महाकवि वर्जिल की कविता में हिन्दुस्तान की आबनूस लकड़ी की प्रशंसा है। होरेस की कविता में भी उसका उल्लेख है।

जो मेढ की ऊन से भी ज्यादा अच्छा होता है।’ ऐसे वर्णन आते हैं कि देव देवी बुने हुए कपड़े पहनते थे। लगभग अब तक सूती कपड़े बनाने में हमारा ही पद था। रोमन साम्राज्य में और उसी भाँति मध्यकालिक यूरोप में हमारे महीन कपड़ों की भारी खपत थी और उनका खूब दाम मिलता था। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत की सभ्यता आधार बहुत कुछ इस कपड़े के उद्योग पर ही था और चीनी दिनों से ले कर जब तक कम्पनी बहादुर (!) ने बंगाल प्रान्त कब्जा किया, तब तक पश्चिम के देशों में हमारा माल जाता उसके बदले यहाँ सोना रूपे की धारा बहती थी। हाँके का विशेष रूप से प्रख्यात था। २० गज लंबा और १ गज भर उसका एक पूरा थान अंगूठी के भीतर से निकल सकता था। सौ साल पहले १५ गज लंबा और १ गज चौड़ा थान इतना बनता था कि उसका वजन सहज ही १०० ग्रेन या कोरी तोलों से ज़ा सा ऊपर आता था। सन् १८४० में थान १६०० ग्रेन के वजन से अधिक पतला नहीं हो था। ऐसा १० गज लंबा और १ गज चौड़ा थान बुनने में महीने लगते और बुनने का काम चौमासे में ही चलता भीगी हवा होने से तार टूटते नहीं। १८५१ में डा. टेल् लिखा कि उनके देखते हुए एक जुआहे ने सूत की लच्छो तो एक सेर रुई का २५० गील लंबा तार हुआ। इस के कपड़े के भिन्न २ काव्यमय नाम रखे जाते जैसे, ‘बुनी हुई’, ‘शबनम’, ‘बहता पानी’ वगैरह। यात्री टेवर्नियर ने लि है कि ईरान का एक एलची अपने देश को लौटा तो राजा लिए शाहमृग के अंडे के जितना बड़ा रत्नजडित नारियल गया और जब उसे फोड़ा तो उसमें से ६० हाथ लंबी पगड़ी निकल बह ऐसी महीन थी कि हाथ में रखने पर भी मालूम होती।

हमारा यह अत्यन्त महत्व का एक उद्योग जो बैठ गया उत्तरदायी अधिकांश में अंग्रेजी राज्य है। यह उद्योग अपने से बिल्कुल उठ गया और पश्चिम में जो जा बैठा, हमारे इतिहास का यह एक गंभीर काण्ड है। इम्पिरियल में लिखा है कि, ‘सुधारे हुए यंत्रों और विचारपूर्वक खेती, वर्षा वंशपरंपरा प्राप्त कुशलता और प्राथमिक व्यापार पर पाती हैं, उसका यह जानने लायक उदाहरण है।’ उसके साथ यह बात भी लिखी है कि सन् १७२१ में (आज से १७५ वर्ष पहले) मैचैस्टर के लाभ के लिए, इंग्लैण्ड की राबर्ट छपे हुए कपड़े का वहाँ जाना बंद किया था। यह बात करती है कि अंग्रेज लोग न्याय और नीति के स्तर यह बात अगर सच हो तो, मैचैस्टर से हमारे देश में काँधे आना वे बन्द करें। ‘चटक मटककर चलनेवाले, मदमरी आँखों और मनुष्य जाति के रक्षाधी’ इस प्रकार अपना बखान करने अंग्रेज लोग ऐसी धोतियाँ बुनते हैं जो उनके काम नहीं आती और नफा पचा पचा कर के अपनी गरीब प्रजा को बँवने यह उलटी गंगा के जैसा कलियुग का कौतुक अपनी आँखों न होते इस पर यकीन ही न आता।

हमने देखा कि हमारे देश में वस्त्र विद्या बहुत प्राचीन प्रतिष्ठित है। हमारे साहित्य में इस विषय के कितने हैं। उन्हें लिख लेना ही इस लेख का उद्देश्य है। इतनी के बाद अब हम लिखें।

(नवजीवन)



मार्च, १९२७

ता है।

पडे पहिने

ही पद पर

मध्यकालिक यूरोप

उनका खर

रत की समुद्र

और स्वीनी

वंगाल प्रान्त

माल जाता

हाके का

गज भर

ल सकता था

थान इतना

भेन या कोरे

१८४० में

नहीं हो

थान बुनेने

चलता था

में डा. टेक

की लच्छो

आ। इस के

‘बुनी हुई

वर्नियर ने

टा तो रा

त नारियल

वी पगड़ी नि

भी मालूम

किया ?

भारत में

युद्धोपयोग

आ, हमारे

रियल गे

लेती, क

पर वि

‘उधके

(आज से

की रास

यह बात

के स्तम्भ

देश में क

दहमरी आ

बखान कर

म नहीं आ

को बँव

सनी ओ

त प्राचीन

के कितने

। इतनी

दें।

यहीं और हां

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

Subscription  
Expires Next Month

वार्षिक

मूल्य ४)

छः मासका

२)

एक प्रति का

१)

[ अंक ३१ ]

सुरक्ष-प्रकाशक  
सामी आनन्द

अहमदाबाद, फाल्गुन सुदि १४ संवत् १९८३

शुक्रवार, मार्च, १७ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १५

महासभा में

महासभा में। मंडप की सुन्दर सजावट, स्वयंसेवकों की सजी  
वस्त्रों पर चुनरी की बँट्टे देख कर मैं घबराया। इस  
महासभा में भला मेरा क्या

भाषण तो एक पुस्तक ही था। ऐसी स्थिति  
में कि वह पूरा पूरा पढा जा सके। उसके कोई कोई  
पृष्ठ छिपे गये। पीछे विषयसमिति के सभ्य चुने गये।  
मुझे गोखले के गये।

सर फीरोजशाह ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार करने की हाँ तो  
मैं पर मैं यही सोचता बैठा हुआ था कि महासभा की  
स्थिति में उसे कौन उठावेगा, कब पेश करेगा। एक एक  
पक्ष लगे भाषण, वह सब अंग्रेजी में, एक एक के पीछे  
भाषण—इस नगरे की चोट में मुझे तूती की पुकार  
गयी। ज्यों ज्यों रात बीतती जाती थी, मेरा दिल धड़कता  
था। मुझे ऐसा भाव आता है कि अन्त के प्रस्ताव तो  
सर फीरोजशाह की चाल से तुरत तुरत खत्म होने लगे  
गये। मेरे सामने की तैयारी में थे। रात को ग्यारह बज गये।  
मेरे को भिन्न न थी। मैंने गोखले से मिल लिया था।  
मेरा प्रस्ताव देख लिया था।

कोई कभी के पास जा कर मैंने धीरे से कहा:

‘मुझसे प्रस्ताव मेरे ध्यान में ही है। यहाँ  
तुम देख ही रहे हो। मगर मैं इस प्रस्ताव को  
नहीं दूँगा।’

‘अब तो काम खत्म हुआ?’

‘प्रस्ताव तो अभी है ही न? मि. गांधी कब  
गोखले बोल उठे

‘सर फीरोजशाह ने पूछा:

‘वेशक।’

‘तुम्हें वह पसन्द पड़ा।’

‘ठीक है।’

‘तब, गांधी, तुम पढो।’

मैंने काँपते २ पढ सुनाया।

गोखले ने ताईद की।

‘सर्वसम्मति से स्वीकार।’ सभी बोल उठे।

‘गांधी, तुम पाँच मिनट लेना’ वाचा बोले।

इस दृश्य से मैं खुश न हुआ। किसीने प्रस्ताव समझने की  
तकलीफ न उठायी। सभी उतावली में थे। गोखले ने देख लिया  
था, इससे दूसरों को देखने सुनने की जरूरत न मालूम पड़ी।  
सबेरा हुआ।

मुझे तो अपने भाषण की ही लगी थी। पाँच मिनट में  
क्या बोद्धंगा? तैयारी तो मैंने ठीक ठीक की मगर जो शब्द  
चाहिए वे आते नहीं। निश्चय ऐसा था कि लिखा हुआ भाषण  
नहीं पढ़ूँगा। पर ऐसा लगता था कि द० अफ्रीका में भाषण करने  
की जो छूट आ गयी थी, वह यहाँ खो बैठा हूँ।

मेरे प्रस्ताव का समय आया। सर दीनशा ने मेरा नाम  
पुकारा। मैं खड़ा हुआ। सिर में चक्कर आया। जैसे जैसे किसी  
प्रकार प्रस्ताव पढा। किसी कवि ने अपना काव्य छपा कर सब  
प्रतिनिधियों में बाँटा था। उसमें विदेश जाने और समुद्र पार  
करने की स्तुति थी। वह मैंने पढ सुनाया और द० अफ्रीका के  
दुःखों की कुछ बात की। इतने में सर दीनशा ने घन्टी बजायी।  
मुझे भरोसा था कि अभी मैंने ५ मिनट नहीं लिये होंगे। मैं  
जानता न था कि मुझे चेतावनी देने के लिए दो मिनट पहले  
ही वह घन्टी बजी थी। मैंने बहनों को आधा गधा, पौन पौन  
घन्टा बोलते सुना था मगर घन्टी न बजी थी। मुझे दुःख तो  
लगा। घन्टी बजते ही बैठ गया। परन्तु मेरी बाल बुद्धि ने मान लिया  
कि उस काव्य में सर फीरोजशाह की जवाब मिल गया।

प्रस्ताव के ‘पास’ होने के विषय में तो पूछना ही क्या?  
उस समय शायद ही दर्शक और प्रतिनिधि में अन्तर रहा होगा।  
प्रस्तावों का विरोध भी करने को होता ही नहीं। सभी कोई हाथ  
ऊँचा करते ही। सभी प्रस्ताव एक मत से स्वीकार हुए। मेरे  
प्रस्ताव का भी विरोध नहीं हुआ। इससे मुझे प्रस्ताव का महत्त्व नहीं



मालूम पड़ा। तभी मेरे आनन्द के लिए यही बात काफी थी कि महासभा में प्रस्ताव स्वीकार हुआ। जिस पर महासभा की मोहर होवे उस पर सारे भारतवर्ष की छाप होती है—यह ज्ञान किसके लिए काफी न होगा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### साप्ताहिक पत्र

रत्नागिरि की भनक तो, कोंकण में ज। से प्रवेश किया तभी से सुनायी पड़ रही थी। लोकमान्य के स्वराजमंत्र की रटन गांधी जी ने महाराष्ट्र के एक भाषण में भी छेड़ी न होगी। यही रत्नागिरि लोकमान्य की जन्मभूमि है। यहां सब को आशा थी कि गांधी जी का भाषण स्मरणीय होगा और हुआ भी वही।

घुसों के नीचे, एक शान्त स्थान में रत्नागिरि की सभा हुई। मंच पर, वकील लोग और म्युनिसिपैलिटी तथा लोकलबोर्ड के सभ्य लोग बैठे हुए थे। गांधी जी के आने के पहले, इन लोगों से मेरी कितनी हँसी मजाक की बातें हुईं। मैं तकली चला रहा था। इसे देख कर, पास में बैठे हुए एक अमेरिकन पादरी ने किसी से पूछा, 'ये क्या करते हैं?' उन्होंने कहा, 'सूत कातते हैं।' इस पर पादरी ने फिर कहा: 'इतने सहज में ही सूत कते तो बहुत ही अच्छा।' फिर मेरी ओर फिर फा कहा, 'यह तो समय का सदुपयोग है। अगर सभी कोई यों काते तो क्या ही अच्छा हो?' मैंने हँस कर कहा, 'हम कातें, तो फिर दूसरे कातेंगे।' इस पर पादरी साहेब बोले, 'मि. गांधी की बात अत्यंत समझ में आती है। यह भी स्पष्ट पड़ता है कि शिक्षित लोगों के कातने पर वे क्यों जोर देते हैं।' इतने में एक वकील पाहेब बोल उठे, 'मि. गांधी की बात में इतनी ही सर एक वस्तु है न?' मैंने कहा, 'हां, गांधी जी की बात में सत्य और अहिंसा भी तो एक ही चीज है न।' वकील भई को यह कटाक्ष जरा खटका और वे बोले, 'नहीं, नहीं, मैं टका नहीं करता हूँ। मैं तो कहता हूँ कि इतनी एक बात सब के करने लायक है।' अपने आसपास विदेशी कपड़ा पहने हुए शिक्षित लोगों को देख कर वह पादरी हँस पड़ा। बात अभी और चलती मगर तब तक गांधी जी पहुँच गये।

गांधी जी ने बतलाया कि लोकमान्य की यह जन्म-भूमि सारे भारतवर्ष के लिए तीर्थ-भूमि है। यह भी याद दिलाया कि श्री सावरकर भी यहीं रहते हैं और सावरकर के साथ अपने परिचय, ईंग्लैण्ड में उनके साथ वार्तालाप की बात की, उनके १९वें-२५वें और देश सेवा का उल्लेख करके बतलाया कि उनके साथ जबसे मतभेद होते हुए भी मित्रता तो पहले ही जैसी बनी हुई है। "मतभेद चाहे जितना हो, तभी प्रेमभाव तो चलता ही रहना चाहिए। अगर ऐसा न हो तो मुझे मेरी पत्नी का भी दुश्मन बनना चाहिए। इस दुनिया में ऐसे दो व्यक्तियों को मैं नहीं जानता जिनमें मतभेद कतरे न हो। गीता का समदृष्टि का उपदेश माननेवाला होकर मैंने तो अपनी जिन्दगी में ऐसा प्रयत्न किया है कि जिसके साथ मतभेद हो, उसके साथ भी उतना स्नेह रहना जितना अपने माता, पिता, भाई बहन, या पत्नी के साथ रखें।"

यों कह कर गांधी जी लोकमान्य के मंत्र पर आये। "लोकमान्य का मंत्र सिद्ध करने के लिए मुझ से बढ़कर लोकमान्य का दूसरा अनुयायी मैं नहीं देखना हूँ। मेरे जैसे दूसरे अनुयायी होंगे मगर मैं यह नहीं मानता कि मुझसे कोई अधिक प्रयत्न इस स्वराज मंत्र की सिद्धि के लिए करता है। इस

कारण कि मैं समझ गया हूँ कि 'स्वराज हमारा जन्म पितृ है।' इतना ही नहीं बल्कि 'हमारा कर्तव्य है।' क्योंकि मैं से हम जितने दूर हैं, मनुष्यत्व से भी उतने ही दूर हैं। स्वराज के बिना, हमारी सभी शक्तियों का अधिर्भाव असंभव है।"

यह बतलाकर कि लोकमान्य का स्वराज, रत्नागिरि-वासी महाराष्ट्रियों का ही नहीं है परन्तु सारे देश का स्वराज गांधी जी ने कहा कि गरीबों को भर पेट भोजन दिये बिना, स्वराज नहीं हो सकता। आगे चल कर कहा कि, "लोकमान्य मिल के मालिक नरोत्तम सेठ मेरे मित्र हैं। उनके पुत्र ने स्वागत किया, सेवा की। इससे क्या मुझे उनकी मिल का लेना और 'गरीब' नरोत्तम सेठ की सेवा करनी चाहिए? उनसे भी पूछा जाय तो वे नहीं कहेंगे कि उनका कपड़ा लेने गरीबों की सेवा करता हूँ।"

"आप ने मुझे जगह बजगह सुनाया है कि यह देश है। अगर बात ऐसी हो तो आपको यह स्थिति असह्य चाहिए। आप कहते हो कि आप के यहां के आदमी, बंकीरों में जा कर रोजी पैदा करते हैं। क्या आप को खबर है इस रोजी के लिए उन्हें क्या कीमत देनी पड़ती है? चिन्ता और रोशनी की एक कोठरी में कई कुटुम्ब रहते हैं। नैतिक वातावरण की तो बात ही क्या? ऐसी स्थिति में क्या अपनी मा, बहिन को भोजन को तैयार हो? अगर तैयार हो तो कोंकण से जो बहिनें वहां जाती हैं, वे क्या मा, बहिन नहीं हैं? क्या तुम चाहते हो कि वे वहां व्यभिचार सीखें? क्या तुम्हारी यह मंशा है कि जो मजदूर गांव में रह कर व्यभिचार या शराब को न जानता हो, जाकर ये दुर्गुण सीखे, और घर लौटते, ये रोग अपने साथ आवे? इतनी कीमत दे कर अगर आठ आने रोज मिलते इसमें भला क्या फायदा है?

"हिन्दुस्तान में पशु नष्ट होते हैं क्योंकि हम गोरख जानते, उसी प्रकार गांव पायमाल होते हैं क्योंकि स्वराजवादी हुए भी मनुष्यशास्त्र न जानने के कारण, हम उनका नाश करते हैं। नाश की इस गति को रोकनेवाला चर्खा है। जहां को रोजाना आमदनी डेढ़ आने है, वहां भला चर्खा कैसे निकाले कहा जा सकता है? हमारे यहां की आदमी रोजाना आमदनी डेढ़ आना मान कर मैं यह पूछता हूँ। मगर वे की कमाई का हिसाब भी भूल पैदा करनेवाला है। 'देहे धाहे, लडका लडकी डूवे काहे' वाली कहावत सा यह अंदाजा धोखा देनेवाला है। इस डेढ़ आने रोज में वायसराय से दूसरे सभी सरकारी अफसरों और लखपतियों की कमाई है। उसे अगर बाद करें तो गांववालों की कमाई भाग्य तीन पैसे रोज से अधिक बढ़ेगी। और यह कमाई अगर मैं रोज जितनी बढ़ा दूँ तो फिर चर्खे को कामपेड़ छोड़ और क्या कहूँ? इस बारे में मैं पागल नहीं हूँ। कितने कहते हैं कि मुझ में भारी शक्ति है, भारी चारित्र है। भगवान् ही जानें। मेरे सत्यग्रह के विषय में दो मत हो हैं मगर चर्खाशास्त्र ऐसी वस्तु है जिसमें शंका का नहीं है। मुझे अगर आज कोई बतला देवे कि हिन्दुस्तान करोड़ों गरीब दुःखी नहीं बल्कि सुखी है तो मैं कबूल कर कि उनके आगे चर्खा रखने में मैंने भूल की है।

"इसलिए मैं तुम्हें कहता हूँ कि, इस गरीब के आदमियों, चर्खे में तुम्हारी नीति का चिन्ता और शारीरिक सम्पत्ति का



१५ मार्च, १९२७

क्यों को हाथ में लेने पर चारों ओर २३ कोटि देवता  
उसके पुनरुद्धार से दूसरे कई मरे हुए कला  
को पुनरुद्धार होगा। चारों ओर पानी भरा हो तो तालाब  
ही क्या होगी? ऐसी वस्तु का, जिसमें बचे, बूढ़े,  
गरीब, तबंगर, हिन्दू, मुसलमान सभी हाथ बँटा सकते  
होने में कोई मानी मतलब है? एक जवान मुझे फेर  
लेने आया था। उसे लगा कि यह सवाल पूछें तो मैं कुछ  
जानते आया था। उसने मुझसे पूछा, 'अगर लोकमान्य  
न दे सकें तो उन्हें इसे अपने आप क्यों न  
देते? अगर इस सवाल से मैं भूलने वाला नहीं हूँ। उसे  
लोकमान्य की स्वदेशी की परिभाषा में खादी न हो, मगर  
स्वदेशी की परिभाषा में खादी का समावेश न हो सके,  
तो नहीं ही है। मैं तो लोकमान्य के मंत्र का  
और उनके बताये मंत्र की विरासत में वृद्धि न करूँ तो  
किस काम का? अगर अपने पिता जैसे मैं राजकोट की  
लेकर बैठ जाता तो उसमें मैं क्या साधन कर सकता  
हूँ तो लोकमान्य के मंत्र का ध्यान धर साधना की,  
और इस मंत्र की शक्ति का विचार करता हुआ  
कि उनकी स्वदेशी का अर्थ खादी है। लोकमान्य  
होते, तो उनसे मैं पूछता कि स्वदेशी में खादी  
नहीं है क्या? वे तो कहते कि मैं जो नहीं कर  
सकता वह करने से तुम्हें न रोकूँगा। हिन्दू, मुसलमान सवाल के  
मौ. शौकतअली ने उससे पूछा। उन्होंने कहा कि,  
'अगर गांधी अपनी सही दे देंगे, उस पर मैं भी दूँगा'  
ने ऐसा नहीं कहा होता तौभी क्या, कि स्वदेशी में खादी  
ही है? स्वदेशी चमत्ता बनता हो, और उसे लेने के  
हैं कि 'यह क्यों कर पढ़ें? लोकमान्य ने तो इसे  
नहीं कहा है।' तो ऐसा आदमी वेदी कहा  
के 'वेदवादरत' पंडित जैसा कहा जायगा।  
यह वेदी, वेद की अनन्त शक्ति नहीं समझता उसी  
आदमी भी लोकमान्य के मंत्र की अनन्त शक्ति नहीं  
जानता।

मगर कोई कहते हैं कि मुसलमान हमें मारते हैं, तबलीग  
द्वारा को मुसलमान बनाते हैं। ऐसी हालत में भला  
कैसे निर्माण हो सकेगा? मैं पूछता हूँ कि हम क्यों ऐसे नामर्द  
हैं कि उनके हमें मुसलमान बनाते ही हम मुसलमान  
हैं? अगर आर में जीता जायता धर्म हो तो उसे ले  
किसमें है? पर मैं तो खादी की शक्ति  
का चाहता हूँ। मुसलमान स्त्रियाँ भी चर्खा  
और उनमें कितनी ही हिन्दू स्त्रियों से भी  
हैं। बंगाल में इन मुसलमान स्त्रियों को कई  
ने चर्खा छोड़ देने को कहा। दो दिन तो उन्होंने  
उसके बड़े में देने का मौलवी साहब के पास  
या नहीं। इसलिए वे बेचारी क्या करें? पीछे  
सबके के पास जाकर वे पूनेया मांग लायी। हर  
को यही दशा है। व्यास जी ने, विश्वामित्र  
का मूख के कारण अमर खाने और चोरी करने पर  
पुनः जन्म दिया है। इसका क्या पता चलता है?  
इसका क्या पता चलता है? इससे आपकी कहता हूँ कि  
इसका धर्म की रक्षा करनी है तो पहला काम  
स्त्रियों को बचाव को, उतनी को बचावो।

"मुझसे कहा जाता है कि शुद्ध करो। मैं शुद्ध का क्या  
कहूँ? मैं तो मुसलमानों को तबलीग करने और किस्तानों को  
धर्म परिवर्तन करने से रोकना चाहता हूँ, तो शुद्ध का क्या  
हूँ? यह भी क्या कोई बात है कि इसका अमर क्या जय कि  
आप कुरान का कलमा जब लड़ लागे तब अच्छे भावों से आगे?  
अच्छा बनना तो हरय की शुद्ध की बात है। इस लिए तबलीग  
और ईश्वर के धर्म परिवर्तन से मेरा विरोध है। वहाँ मैं शुद्ध  
में किस प्रकार पड़ सकता हूँ? इस लिए मैं हिन्दुओं से कहता हूँ  
कि तुम्हें जो करना हो करो, मेरे ऐसे विचारवालों को—अविश्व  
अनुभव के बाद विचार निश्चित करनेवाले आदमी को—इसमें न  
डालो। आखिर मनुष्य का शक्ति की मर्यादा तो है ही। मुझसे  
जितना होता है मैं करता हूँ। मैं कुछ शतावधानों नहीं, अष्टाव-  
धानी भी नहीं। मैं तो एक काम भी ठोक ठोक कर सक्ता हूँ तो  
ईश्वर की कृपा है। इस लिए मैं तो 'श्रियान्स्वधर्मो विगुणः'  
वाले शीता के उपदेश की जड़ पकड़ के बैठ रहा हूँ। अगर  
आप को लगे कि मेरे चर्खे में ग्राम संगठन है, इसमें देश को  
जगाने की शक्ति भरी हुई है, तो आप से जितनी हो सके  
मदद दो।"

सभा में खड़ी अच्छी तरह बिकी, मानव की पेटियों के  
२००) रुपये मिले। दो पहर को स्त्रियों की जो सभा हुई, वह  
इससे भी अधिक सुन्दर कही जायगी। लगभग एक हजार स्त्रियाँ  
नारियल के पत्तों से छये हुए एक मंडप में बैठी थीं। वहाँ न  
तो उनकी धातवात की गड़गड़ थी और न था बालों के रोंने का  
कोलाहल। गांधी जी ने कहा कि "हिन्दुस्तान में स्त्रियों की दो  
चार शान्त सभाएँ जो मैंने देखी हैं, उनमें एक यह भी है।"  
बहिनो ने थैली तो तैयार की हो थी। गांधी जी के भाषण के  
बाद उन्होंने ठीक पैसा दिया।

इस सभा में जाने के पहले गांधी जी ने, काला पानो से  
तथ्यार्थ करके लाटे हुए भाई सावरकर के घर जा कर उनके मेड  
कर ली थी। पाँच दश मिनट में बहुत बात क्या हो सकती  
थी? गांधी जी को यहाँ पर इसका पता चला कि अस्पृश्यता और  
शुद्धि के समन्वय में उनके विचारों को उलटा रख दिया जाता  
है। पर और अधिक चर्चा के लिए उन्होंने भाई सावरकर से  
पत्रव्यवहार करने का आग्रह किया, आप जानते हैं कि 'सत्य  
के प्रेमी के तौर पर, सत्य के लिए मरण पर्यंत लड़नेवाले  
के तौर पर, मेरे मन में आप का कितना आदर है। आखिर हम  
दोनों का ध्येय तो एक ही है। इसलिए आप जिस जिस विषय में  
मेरे साथ चर्चा करना चाहें उस विषय में खूब पत्रव्यवहार चलाएँ,  
और अगर आप की इच्छा हो तो शुद्धि, खादी वगैरह के विषय  
में खुलासा कर लेने के लिए मैं दो तीन दिन निकाल कर आप  
के साथ रत्नागिरि में रहने का तैयार हूँ।' श्री सावरकर ने कहा,  
'आप ऐसे मुक्त का मे बन्दा बनना नहीं चाहता।' पत्र लिखने  
की सलाह उन्होंने खुशी से स्वीकार कर ली।

(नवजीवन)

महादेव देशाई

'हिन्दी नवजीवन' की पुरानी काइलें

पहले और दूसरे साल की अग्रपृष्ठ हैं। तीसरे, चौथे और  
पाँचवें साल की बहुत यादा प्रतियाँ बची हैं। एक साल की  
जिल्द बँधी पूरी काइल का दाम ढाक खर्च के अलावा सात  
रुपये हैं।

व्यवस्थापक,  
'हिन्दी नवजीवन'



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, फाल्गुन सुदि १५ संवत् १९८३

## सभापति का दान

पाठकों को एक खुशखबरी न सुनाने का मुझे खेद है। अब वह नीचे दिये गये, श्रीयुत विठ्ठलभाई पटेल और मेरे बीच के पत्र-व्यवहार से प्रकट होगा :

(१)

आर्थ-भवन

सैन्ट्रलस्ट रोड, बंबई

१० मई, १९२६

प्रिय महात्मा जी,

जब मैंने लेजिस्लेटिव असेम्बली का सभापतित्व स्वीकार किया था तो उस समय अपने मन ही मन मैं निश्चय कर लिया था कि मेरे वेतन से जो कुछ बचत होगी, उसका किसी राष्ट्रोपकारी काम में उपयोग करूँगा। कई कारणों से, पहिले ६ महीनों में मैं कुछ कहने सुनने लायक रकम नहीं बचा सका। पिछले महीने से, मुझे कहते हुए खुशी होती है कि, मैं कठिनाइयों के पार हो आया हूँ और एक दबीज रकम बचा सकता हूँ। मैं देखता हूँ कि मुझे औसतन दो हजार रुपये महीने की जरूरत पड़ती है। इनकम टैक्स देकर, मेरा माहवारी वेतन है ३,६२५ रुपये। इस लिए, मैं चाहता हूँ कि पिछले महीने से शुरू करके, मैं हर महीने १,६२५ रु. अलग निकाल दूँ और इसका आप जिस काम में जैसे चाहें उपयोग करें। खैर, मेरे मन में इस विषय में कुछ विचार तो हैं, और समया-नुसार मैं उन पर आप से चर्चा करूँगा, मगर आप मुझसे उन विचारों में सहमत हों या नहीं, वह रकम आप के अख्तियार में रहेगी। साथ में ऐप्रिल मास के मुशाहरे से मैं १,६२५ रु. का एक चेक भेजता हूँ।

मुझे विश्वास है कि इस जिम्मेदारी को आप इनकार नहीं करेंगे।

आपका

(हस्ताक्षर) बी. जे. पटेल

(२)

“सुखडेल”

शिमला, ३१ मई, १९२६

प्रिय महात्मा जी,

साथ में मैं ४,३२५ रु. का चेक भेजता हूँ। इसमें १,६२५ रु. तो मई के मेरे मुशाहरे से देरा हिस्सा है, और २,७०० रु. उस ३,२०० रु. के बकिअंते हैं जो बंबई कार्पोरेशन के मेरे सहकारियों ने मेरे कार्पोरेशन के सभापतित्व का कार्यकाल समाप्त होने पर ५,००० रु. की थैली मुझे भेंट करने के लिए इकट्ठे किये थे। अखीरी मर्तजे जब मैं आप से साबरमती में मिला था तो मैंने आपको समझा दिया था कि इस रकम को जो मैंने यों साधारणः स्वराजदल के या बंबई राष्ट्रीय म्युनिसिपल दल के ऐसे कामों के लिए खर्च करने का निश्चय किया था जिन्हें मैं उचित समझता, अब उसे क्यों आपको देना चाहता हूँ ताकि मेरे मुशाहरे में से मेरी मासिक सहायता के कोष में वह मिला दिया जाय।

आपका

(ह०) बी. जे. पटेल

प्रिय विठ्ठलभाई,

मेरे पास आपके पत्र, और सब मिला कर ७,५७५ रु. चेक मिले जिसमें असेम्बली के प्रमुख के रूप में आप के तीन मास के मुशाहरे के हिस्से हैं और ५,००० की थैली की बचत है। आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काम में खर्च को कहते हैं, जिसे मैं पसन्द करूँ। वह पत्र लिखने के आपने मेरे साथ अपने सुन्दर दान के उपयोग के विषय में विचारों की चर्चा करली है। मैंने इस पर खूब विचार है कि उस रकम का मैं सचमुच में क्या उपयोग करूँ और मैं इस निश्चय पर आया हूँ कि अभी हाल में तो उसे जमा जाने दूँ। इस लिए आश्रम के एजेन्सी खाते में उसे ६ महीने बँधी मुद्दत के लिए जमा करता जा रहा हूँ जिसमें सूद को रकम इकट्ठी हो सके और दलादली का झगडा खत्म होते ही पारस्परिक मित्रों की सहायता ले कर, आप की और उनकी से किसी प्रशंसनीय राष्ट्रीय काम में लगाऊँ।

इस बीच मैं आप को इस उदार भाव के लिए, आप अपने मुशाहरे का एक बड़ा भाग सार्वजनिक काम के दे देते हैं, आप को साधुवाद देता हूँ। मैं आशा करूँ कि का उदाहरण और लोगों पर भी असर करेगा।

आपका

(ह०) मो. क.

(४)

२०, अक्टूबर रोड

नयी दिल्ली, ९ मार्च, १९२६

प्रिय महात्मा जी,

जैसा कि आप जानते हैं, मैंने आप को पहले ही जैसा, अप्रिल मास के मेरे पत्र में बतलाये हुए काम के लिए, हाँ कोई ऐसी रकम देने का निश्चय किया है, जो मैं समझूँ अपने मुशाहरे से बँचा सकूँगा। असेम्बली के सभापतित्व के कार्यकाल भर, जहाँ तक संभव हो, मैं यही प्रबन्ध जारी चाहता हूँ।

फरवरी के अन्त तक जो कुछ बचत हो सकी, है उसके २,००० रु. का चेक साथ में भेजता हूँ।

आपका

(ह०) बी. जे. पटेल

यह पत्र-व्यवहार, श्रीयुत विठ्ठलभाई पटेल की इच्छा से रोक दिया गया रहा। चुनाव के चलते समय, इसे प्रकाशित करने उन्हें कुछ संकोच सा मालूम हुआ। चुनावों के बाद भी मैं पिछले हफ्ते, उनकी रजामंदी पा सका। अगर सार्वजनिक लाभ प्रकाशन में ही न होता तो मैं स्वयं इस शिक्षक को बताना देता। मैं जानता हूँ कि विठ्ठलभाई चाहते हैं कि उदाहरण की नकल करें। अगर किसी न किसी कारण से, हिन्दु की स्थिति के हिसाब से, बेहिजाब बड़े मुशाहरे ही पड़ें तो, उनका एक अच्छा हिस्सा, सार्वजनिक काम के लिए अलग निकाल कर रक्खा जा सकता है। मैं हूँ कि ऐसे कितने बड़े मुशाहरो वाले आदमी हैं जो आमदनी, अपनी व्यक्तिगत मौज में नहीं उड़ाते, मगर सार्वजनिक सेवा में लगाते हैं। मगर उसका खर्च अपनी ही स्वाधिक मुताबिक करते हैं। विठ्ठलभाई ऐसे चन्दों का एक विशेष



१९२७

गरीबों की दशा के सुधार की उसकी योजना को मैं अविश्वास की दृष्टि से देखता हूँ, उसके मुद्रा-सुधार में मुझे धोखे का शक रहता है उसकी जल और स्थल सेना पर मैं यकीन नहीं करता। सभ्यता और उसकी हिफाजत के नाम पर इस सरकार ने, गरीबों का खून बराबर चूसा है, लोगों को गुलाम बनाया है, धनियों को धन और पदवी की रिश्वत दी है और अपने अनियंत्रित और अत्याचारी नियमों के नीचे उन स्वतंत्रता-प्रेमी देश-भक्तों को कुचल ढालने की कोशिश की है जिन्हें खुशामद या धन से खरीदा नहीं जा सकता। अगर मुझे ताकत होती तो उस पद्धति को मैं आज नष्ट कर देता। अगर मुझे विश्वास होता कि उनसे इसका नाश संभव है तो मैं अत्यन्त ही विकराल अस्त्रों का प्रयोग करता। उनका व्यवहार मैं इस लिए नहीं करता कि वे इस पद्धति को कायम ही रखेंगे, भले ही आज के शासकों का नाश कर सकें। जो लोग पद्धतियों के बदले, उनके नियमकों का नाश करना चाहते हैं, वे खुद उनके पंजे में पड़ कर उन लोगों से बुरे बन जाते हैं जिन्हें उन्होंने इस गलत विश्वास में मारा था कि आदमियों के साथ उनकी नीति भी मर जाती है। वे पाप के मूल को नहीं पहचानते।

१९२० का आन्दोलन यह दिखलाने के लिए था कि हम आत्मा-विहीन पद्धति का सुधार दिसा के जरिये और इस तरह खुद आत्मा-विहीन बन कर नहीं कर सकते मगर केवल इसी प्रकार यह हो सकता था कि हम खुद उसके शिकार न बनें यानी असहयोग करें, शैतान के फैलाये जाल में हमें फँसाने के लिए हर एक कोशिश के जवाब में हम जोरों के साथ 'नहीं' कहें। उस आन्दोलन को धक्का लगा मगर वह मर नहीं गया है। मेरे वचन में शर्तें भी लगी हुई थीं। शर्तें साधारण और सहज थीं। मगर उस आन्दोलन के नेताओं के लिए वे बहुत ही सख्त साबित हुईं।

जिसे 'बन्धु' सकलातवाला, मेरी भूल और असफलता मानते हैं उसे मैं अपनी शक्ति और सच्चे विश्वास का इजहार मानता हूँ। यह मेरी भूल हो सकती है मगर जब तक मेरा यह विश्वास है कि यह सच है, मेरी भूल ही, जैसा कि आज की हालत है, मुझे सँभाले रहेगी। बारदोली में मेरा पीछे लौट जाना मैं बहुत ही बुद्धिमानी का काम और देश की परम सेवा समझता हूँ। उस फैसले की वजह से सरकार की ताकत घटी ही है। अगर मैं चौरी चौरा के बाद वायसराय के नाम, जिसे अन्तिम चेतावनी समझते हैं, उसकी शर्तों का पालन करने पर ही जोर लगाये जाता तो सरकार के सारे खोये हुए मोर्चे फिर उसके हाथ आ जाते।

मेरे 'बन्धु' यह कहने में भूल करते हैं कि द. अम्रोहा का आन्दोलन असफल रहा। अगर वह असफल हुआ तो मेरी सारी जिन्दगी, नाकामयाब ही लिखी जायगी। और उनके दल में भर्ती होने का उनका निर्मन्त्रण भी बेमानी मतलब का समझा जायगा। महासमर के समय में अपने तब के विश्वासों के अनुसार, मैं और अपने साथियों का, चायलों की सेवा करने का निवेदन भी मैं भूल नहीं मानता।

पार्लियामेन्ट के ये बड़े भारी सदस्य उतावली में हैं। हकीकतों को समझने की कोशिश को ये हिकारत की नजर से देखते हैं। मैं उन्हें बतला दूँ कि खादी आन्दोलन गिरती पर नहीं है। १९२० के काम के कम से कम बीस गुना काम तो परसाल जरूर हुआ। १५०० गांवों में कमसे कम ५० हजार कतवों को इससे जरूर राहत मिलती है जिनके अलावा बुनवैये, रंगरेज, छपेरे, घोबी, और र्जी अलग ही हैं।

## मोहनदास करमचन्द गांधी नहीं और हां

'बन्धु' सकलातवाला की आतुरता का पार नहीं। उनकी बातों में झलकती है। उनके त्याग बहुत बड़े हैं। गरीबों के लिए उनके प्रेम का लोहा सभी मानते हैं। इस लिए मेरे नाम उनकी बातों का अपील पर मैंने उतनी ही गंभीरता से विचार किया जितनी ऐसे सच्चे देशभक्त और विश्वप्रेमी के पत्र के लिए करिए। अगर मुझे सच्चाई के जवाब में सच्चाई का व्यवहार करना है, या अपने धर्म का सच्चा बने रहना है तो 'हां' कहने की मेरी साहस्य हिंसा रहने पर भी मुझे 'नहीं' ही कहना होगा। मगर अपने पास हंग पर उनकी अपील के जवाब में 'हां' कह सकता हूँ। उनकी शर्तों पर मैं उनसे सहयोग करूँ — इसकी उनकी इच्छा बलवती इच्छा के नीचे यह बड़ी शर्त मानी हुई है ही कि 'हां' तो तभी कहूँ जब उनकी दलील से मेरे दिल और विचार को संतोष हो जाय। सच्चे विश्वास के कारण 'नहीं' बस, उस 'हां' से लाख दर्जे अच्छा और बड़ा है, जो किसी को सहज खुश करने के लिए या जो उससे भी बुरी बात है, झगड़ से बचने के लिए कहा जाय।

उनके साथ हार्दिक सहयोग करने की पूरी स्वादिष्ट होते हुए मेरी अपना रास्ता बंद देखता हूँ। उनकी हकीकतें कपोल-कल्पित हैं। उनके आधार पर निकाले गये नतीजे जरूर ही निराधार हैं। वहां कहीं वे हकीकतें सच हैं, मेरी सारी शक्ति उनके झूठे अस्त्र (मेरे प्रति) को ही दूर करने में लग जाती है। मुझे इसका खेद है। मगर हम जरूर दुनिया की दो छोरों पर हैं। मगर, खैर एक बड़ी चीज हम दोनों में समान है। दोनों का ही कहना है कि देश और विश्व का भला ही हमारे एक मात्र उद्देश्य है। इस लिए इस समय हम लोग उलटी दिशा में जाते हुए भले ही मालूम पड़ते हों, मगर मेरी आशा है कि एक दिन हम मिलेंगे जरूर। मैं वचन देता हूँ कि अपनी तरफ मुझे ही मैं काफी क्षति पूर्ति करूँगा। इस बीच में मेरी तरफ से मैं उसे भूल नहीं मानता, मेरा अवलम्ब और प्रतीक्षा होगी।

'बन्धु' सकलातवाला के ठोक उलटे, मैं यह नहीं मानता कि मेरी शर्तें और उनकी पूर्ति के लिए यंत्र बढाते जाने से अपने देश को और दुनिया एक पग भी बढ रही है। 'बन्धु' सकलातवाला मेडिया घबान के नाम पर मरते हैं। काल और देश को रूढ़ि को नष्ट करने, पाशविक वृत्तियों को बढाने और उनकी वृद्धि के लिए सब कुछ कर गुजरने की इस उन्मत्त इच्छा से वे जो जान से घृणा करता हूँ। अगर आधुनिक सभ्यता इन सभी बातों का समर्थन करती है, और मैंने उसे ऐसा समझा है, तो मैं 'शैतानी' कहता हूँ और उसके साथ ही वर्तमान शासन को भी शैतानी कहता हूँ जो उसका सबसे अच्छा नमूना है।



मि० सकलतवाला पूछते हैं कि खहर का क्या रहस्य है। इसका रहस्य है सादगी, दिखाव बनाना नहीं। गरीबों के शरीरों पर यह खूब खिलता है और जैसा कि पहले बतता था, बड़े से डे धनी और कला-प्रेमी स्त्री, पुरुषों के शरीर को सुशोभित करने लायक बन सकता है। इससे पुरातन कला और कौशल का पुनरुद्धार होता है। सभी यन्त्रों का यह नाश करना नहीं चाहता मगर उनके व्यवहार का नियंत्रण और उनकी बेजबूरत बढ़ती की रोक जरूर ही करता है। गरीब से गरीब के, उसीके झोपड़े में बैठे बैठे राहत पहुँचाने के लिए यह यन्त्रों को इस्तेमाल करता है। खुद यह चक्र ही एक बहुत सुन्दर यन्त्र है।

गरीबों को धनियों के बन्धन से, खहर छुड़ाता है, और धनियों और गरीबों में एक नैतिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ता है। इसके जरिये, गरीबों से जो छिन गया है, उसका कुछ अंश उन्हें फिर मिलता है।

इसके कारण एक भी यह उद्योग नष्ट नहीं होता। इसके उलटे, दिन पर दिन यह बात और भी अधिक मानी जाती है कि दूसरे यह उद्योगों का यह केन्द्र बन रहा है। विधवाओं के सज्जे घर में यह आशा की एक किरण पहुँचाता है।

मगर अगर वह और अधिक कमा सकती है तो यह उसे रोकता नहीं। किसीको अधिक आमदनी का पेशा अद्वितीय करने से यह रोकता नहीं। काम ही जिन्हें जरूरत है उन लोगों को यह सम्मान्य पेशा देता है। राष्ट्र की बेकार छवियों का यह उपयोग करता है। ये सम्मान्य 'बन्धु', घमंड के साथ उनका जिक्र करते हैं, जो अधिक आमदनी के काम देते हैं। वे जान लेवें कि खहर यह काम अपने आप ही करता है। इससे जब गरीबों को कुछ जाने लेंगे तो दूसरों को भी रुपये मिले बिना रह नहीं सकता। इधर जो लोग शहरों में काम शुरू करते हैं, बेशक वे काम तो अच्छा करते हैं मगर तभी वे इस सवाल को जरा सा छू भर ही पाते हैं। खहर तो उसकी तब तक पहुँचता है और इस लिए इसमें सभी समाविष्ट हैं।

मगर, इस अधीर 'साम्यवादी' का सारा पत्र, शहरों पर ही ध्यान देता है, और इस लिए हिन्दुस्तान और उसकी दशा को उपेक्षा करता है, जिनका पता हिन्दुस्तान के ७ लाख गांवों में ही चलेगा। आज के मुड़ी भर शहर, बेजबूरत की बढ़ती है और कुछ तो केवल दीहालों का जीवन-रफ़्तार चूस लेने के बुरे मतलब के लिए ही है। खहर तो इस क्रिया का सुधार करने के लिए, उसकी गति पलट देने के लिए है। अपने मदमाते किलों के साथ शहर गांवों के जीवन और स्वतंत्रता के लिए हमेशा खतरे है।

खहर में सबसे बड़ी संगठन शक्ति है क्योंकि पहले खास इसीका संगठन करना होगा और यह सारे हिन्दुस्तान के लिए लागू है। खहर अगर आकाश से बरसता तो यह बड़ी भारी विपत्ति होती। मगर, चूँके लाखों भुखंडों और हजारों मध्यवित्त जो पुरुषों के सहयोग से ही यह बन सकता है, इस लिए, इसकी सकलता के मानी हैं, अमन और चैन के रास्ते से सबसे बड़ा संगठन। अगर खाना पकाने की क्रिया का भी पुनरुद्धार करना होता और उसमें भी यही संगठन चाहिए था तो मैं उसके लिए भी उसी खूनी का दावा करता जो खहर के लिए करता हूँ।

मेरे साम्यवादी 'बन्धु' जमशेदपुर के मजदूरों में मेरे काम पर इस लिए दांव लगाते हैं कि वहाँ पर मैंने ताता की ओर से नहीं हिन्दू मजदूरों की ओर से मानपत्र स्वीकार किया था। उनकी नापसन्दगी का कारण मुझे यह मालूम पड़ता है कि स्व० मि० रतन ताता सभापति थे। खहर, इस सम्मान से मैं भरना

समझदार मालिक मालूम हुए। मैं समझता हूँ कि कर्मचारियों को सभी प्रार्थनाएं उन्होंने सहज ही स्वीकार करलीं और मैंने सोचे से सुना कि उस समझौते का समुचित पालन भी हुआ है। मैं अपने काम के लिए धनियों और गरीबों से दाव माँगता और लेता हूँ। धनी लोग खुशी से अपने दान मुझे देते हैं। यह कोई शक्ती जीत नहीं है। यह अहिंसा की विजय है, जिसे मैं, चाहे जितना ही कम क्यों न होवे मगर, दिखलाने की कोशिश करता हूँ। मेरे लिए यह व्यक्तिगत सन्तोष की बात है कि मुझ पर उन लोगों का भी विश्वास बना रहता है, जिनके सिद्धान्तों और नीतियों का मैं विरोध करता हूँ। द० अफ्रीका वालों ने मुझ पर शक्ती तौर पर विश्वास किया और मुझ से मित्रता की। ब्रिटिश नीति और सरकार की मेरे लाख निन्दा करने पर भी, मुझसे हजारों अंगरेज स्त्री, पुरुष प्रेम करते हैं और आधुनिक भौतिक संभ्यता केवल निन्दा ही निन्दा करने पर भी, यूरोपियन और अमेरिकन मित्रों की मंडली बराबर बढ़ती जा रही है। फिर भी यह अहिंसा की ही विजय है।

अन्त में, शहरों में मजदूरों की बात रही। इसके विषय में गलतफहमी न रह जानी चाहिए। मैं मजदूरों के संगठन का विरोध नहीं करता, मगर और सभी चीजों के ऐसा, इसे भी हिन्दुस्तानी ढंग पर या चाहो तो कहो कि मेरे ढंग पर चाहता हूँ। मैं यह का रहा हूँ। हिन्दुस्तानी मजदूर इसे स्वभाव से ही जानता है। मैं पूँजीपतियों को मजदूरों का शत्रु नहीं मानता। उन दोनों का सहयोग मैं बिल्कुल संभव मानता हूँ। द० अफ्रीका, चम्पाण या अहमदाबाद में मैंने मजदूरों का जो संगठन किया, वह पूँजीपतियों का विरोध करने के भाव से नहीं। हर हालत में जहाँ तक विरोध करना जरूरी समझा गया, उसमें सफलता मिली। मेरा आदर्श है, धन का बराबर बँटवारा होना और जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, यह होने को नहीं है। इस लिए बराबर के बँटवारे के लिए मैं काम करता हूँ। इसे मैं खहर के जरिये प्राप्त करने की कोशिश करता हूँ। और चूँके इसका प्राप्ति से, इंग्लैण्ड द्वारा हिन्दुस्तान का चूषा जाना, व्यर्थ हो जायगा, इससे आशा की जाती है कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड का संबंध शुद्ध हो जायगा। इस लिए, इस अर्थ में खहर स्वराज की प्राप्ति करावेगा।

'महात्मा' को तो उसके भाग्य के भरोसे ही मुझे ओर देना पड़ेगा। असहयोगी होते हुए भी मैं, खुशी से किसी ऐसे कानून का समर्थन करूँगा, जिससे मुझे महात्मा कहना, या मेरे पैर छूना जुर्म करार किये जायें। जहाँ मैं आम ही पर कानून चला सकता हूँ, वहाँ यानी आश्रम में, यह जुर्म समझा जाता है।

( य० इ० )

मोहनदास करमचंद गांधी

( पृष्ठ २४८, कालम २ के आगे )

वस्त्रनिर्माणार्थं दशपलानि सूत्रं गृहीत्वा पिष्टमश्यायुः प्रवेशादेकादशपलं वस्त्रं दद्यात्। यदि ततो न्यूनं दद्यात्तदा द्वादशपणान् राजा दार्यं स्वमित्रश्च तुष्टिः कर्तव्यैव ॥ कुल्लुकमहः।  
दूसरे में और चीजों के साथ कपास, रेशम, या ऊँट की चोरी करने पर तीन दिनों तक दूध पीकर रहने का नियम है।  
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशस्य च।  
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव उपरं ५५: ॥ अ० ११-१६  
हम में से कितनों को तो यह दण्ड के बदले इनाम हो जायगा।

कमशः

द० बा०

( य० इ० )



१७ मार्च, १९२७

## कालीपरज के चित्र

[भारवोली प्रदेश में कालीपरज नाम की एक दलित जाति है। वहाँ पर हलितोद्धार का काम हो रहा है। उसी कालीपरज जाति के रूप में यह लेख माला है।]

## हमारी अश्रद्धा

दरिद्रनारायण के दर्शन को हमारी टोली निकली थी। कालीपरज के छप्पों में उनका दर्शन हो सकेगा, इस खयाल से वेडली के कालीपरज आश्रम की शरण में आये। चुनीभाई और उनकी पत्नी सूरजबहिन ने कहा, "भले आये, हम दरिद्रनारायण के दर्शन ही हैं। तुम्हें दर्शन बरा देंगे।" चुनीभाई ने अपनी पत्नी निकाली, 'वेडली गांव में २७९। सेर सूत कता, मवरिया में २२३।, खेडा में २१३ और रूपवाहा में १०३। सेर।' इस तरह उन्होंने ५३ गांवों का हिसाब पढ सुनाया और ३२० छप्पों में २७२९ सेर सूत कता। उन्होंने दलील की कि दो वर्ष में इस कालीपरज में जो इतने चखें फैल गये हैं इससे सिद्ध होता है कि, वहाँ दरिद्रनारायण विराजमान हैं। सिद्ध होता होगा, मगर साक्षात् दर्शन के बिना इस सिद्धान्त को बुद्धि स्वीकार नहीं करती थी। उसी चुनीभाई ने हमें उठाया। पीछे पीछे फूलों से शोभित हाथ के हरे खेतों से हो कर, कहीं नारियल जैसे बालों से ढूँढ़े हुए जुवार के खेतों से हो कर तो कहीं नयी मंजरियों से सजित आम की कुंजों के नीचे से हो कर हम जा रहे थे। वहाँ के लडके पेड़ों पर चढ चढ कर खेलते और किल किल करते और ढेलवांस में कंकड भर कर चिडियों को खेते। हमें चुनीभाई के खाते पर अश्रद्धा उत्पन्न होने लगी। हमें हुआ कि, दरिद्रनारायण यहाँ कैसे आये?

हमने लीक से हो कर एक गाड़ी निकली। भीतर बैठा हुआ किसी कोई सेठ मालूम पड़ता था। हमारी अश्रद्धा बढ़ी। घोड़े का कोई जवान निकला। उसके चेहरे पर विद्या का चमक नहीं पर धन का अभिमान दिखायी पड़ता था। उसकी आँखों पर से लगता था कि वह किसी देहाती जमीन्दार का बेटा होगा। अश्रद्धा, पहले से भी अधिक बढ़ी। ऐसे ऐसे लोग वहाँ रहते हों, वहाँ दरिद्रनारायण का दर्शन कैसा?

## नारायण का रथ

हमने तो एक गाड़ी निकली। उसके पीछे दूसरी गाड़ी थी। पहले के पीछे तीसरी। सात आठ गाड़ियों की पांती थी। गाड़ीवालों के लकड़ी के गठुर भरे हुए थे। खींचते खींचते गाड़ीवालों के बँचारे बँचो की आँखें निकली पड़ती थीं। गाड़ीवान गाड़ीवालों को धोखे से और भी दुगुनी आँखें निकाल निकाल कर, धोखा देना चुभाता था। गाड़ीवान के भी शरीर पर बँचों के बँचों की, केवल हाड और मांस भर ही था। गाड़ी का अंग अंग टूट रहा था। पहियों के आरों की भी वही हालत थी। जिसमें वे गाड़ीवालों से होकर गाड़ी निकल गयी। किसी की आँखों में भी नाम भी नहीं मिलता था। कितनी मिहनत से गाड़ीवालों को गाड़ी में लादी होगी, कितनी मिहनत से गाड़ीवालों को गाड़ी में लादी होगी। इन लोगों के लिए यह आशा कुछ छोटी थी कि गाड़ी में जाकर लकड़ी बेचेंगे, उसका दूध जैसा उधर रुपये से घर के लिए अनाज ले लेंगे। गाड़ीवालों के लिए चारा ले जायेंगे और बच्चों के लिए भी कुछ लेंगे। इनकी आशा भी इन दोन लोगों के दिल में हो

तो उनकी आँखें, दीये जैसी चमक उठें। मगर इनकी आँखें तो सूखे तालाब जैसी गहरी और काली पड़ी हुई हैं। इन्हें अपनी मिहनत का माल तो किसी साहुकार के आगे या किसी ब्राह्मण के भ्रमलहार के आगे ला घरना है। दो पहर के लिए रोटियाँ भी उन्होंने घर से बाँध ली हैं। बेल के लिए चारा भी घर से ही ले लिया है। आनन्द के बदले, उनके मनमें तो भय की धडक मालूम पड़ती है। लकड़ी कहीं घट गयी तो? गाड़ी हाँकते हुए इनके मन में कई बँधे हुए विचार भी आते होंगे, 'बाडे में लकड़ी गिरा कर, किसी के देखे बिना खिसक जाऊँ। कोई देख लेगा तो सारी लकड़ी मुझी से ढुलवायेगा।'

इस चित्र में अभी पिछली वार रंग भरना बाकी ही है कितने गाड़ीवानों के मुँह में से दारु और ताडी की दुर्गन्ध निकलती है। कोई लवनी ढलका कर पड़ा है तो किसीने बोटल चढायी है। मानों निराशा का अधेरा कछ कम था कि बेहोशी का धूँआँ भी फैला लिया था।

गाड़ियाँ, अपनी लीक पर गयीं। हम अपने रास्ते चुनीभाई के पीछे २ चले जाते थे। रद्द रद्द कर मन में ऐसा होता था कि अभी जो गाड़ियाँ गयी हैं, वे लकड़हारों की न थीं; बल्कि वे तो दरिद्रनारायण के रथ थे। कथा है कि तुलसीदास के पास से राम लक्ष्मण निकल गये और उन्होंने नहीं पहचाना पीछे से पता चलने पर बहुत पछतावा हुआ। इस मिलान का अविनय माफ कीजिए तो हमारी भी कुछ वैसे ही दशा कही जायगी।

क्रमशः

(नवजीवन)

'माधवानुज'

## वेद में हाथ कताई

२

## ऋग्वेद

कपास के विषय में माना जाता है कि उसे हिन्दुस्तान में कोई लाया नहीं अगर्चे कि वेद मन्त्रों में उसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। मेड और ऊन का जिक्र मिलता है \* १-१२६-७; ५-५२-९ में मरुतों का वर्णन है, उनके कपडे पहने हुए, ऊर्णा वसत; ६-५-१६ में अग्नि को ऊन की किनारीवाली वेदी पर बैठने को निमन्त्रण दिया जाता है; १०-२६-६ में पूषण देवता के विषय में कहा जाता है कि वे मेड की ऊन को बुनते और धोते हैं; और १०-७५-८ में सिन्धु देश में बहुत ऊन का होना कहा गया है। स्थान स्थान पर अच्छे कपडे पहनी हुई स्त्रियों का (४-३-१ जायेव सुवासा:। १०-७१-८; १०-७-९) और सुन्दर कपडों का जिक्र मिलता है (५-२९-१५ वस्त्रेव भद्रा सुकृता।) कैसा या किस वस्तु का कपडा बनता था, इसका कोई पता नहीं चलता है। केवल एकमात्र जिस विशेष कपडे का जिक्र मिलता है वह है 'उष्णीष' या पगडी (अथर्व वेद १५-२-१)।

बुनाई का घर घर प्रचार था (स्यूर संस्कृत टेक्स्ट, पाँचवां खण्ड पृ० ४६५)। 'वे' धातु (बुनना) का आङ्कारिक प्रयोग, पद्य रचना के लिए मिलता है। १-६१-८ में इन्द्र के अहि को मारने पर देवपरिचर्यों के स्तोत्र 'बुनने' का (अर्कमूतुः) वर्णन है। राष्ट्रीय जीवन में 'बुनने' की कला इतनी महत्वपूर्ण थी की जब कभी ब्रह्मा ऋषियों को 'स्तोत्र रचना' कहना होता तो उन्हें 'वे' धातु ही याद आती। मांडी लगाना भी मालूम था। त्रित कुरे में कैद होने पर इन्द्र की स्तुति करता है कि जैसे चूहे जुलाहे के सूत खा जाते हैं, वैसे ही उनका गुण-गान करने पर भी उनकी चिन्ताएँ बुर नहीं होती।



मूषो न शिष्टाना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतकतो ।

ऋ० १-१०५-८ ।

यथा मूषिकाः शिष्टानां कुविन्देन वायितान्यन्नरसेन लिप्तानि  
सूत्राणि मक्षयन्ति । सायणः ।

शा यद इससे सूत में पके चावल के पानी की माँड़ी लगाने की चाल का पता  
चलता है क्योंकि उसके बिना सूत को चूहे खा नहीं सकते ।  
कवि के स्तोत्र की उपमा जाल से दी गयी है (१-११३-७) ।  
यज्ञ की सूत से उपमा दी गयी है और अग्नि से प्राचीन काल  
से होने वाले यज्ञ के करने को बहते समय, कवि कहता है:

तन्तुं तनुष्व पूर्वम् । ऋ० १-१४२-१

तन्तुं विस्तृतं यज्ञं तनुष्व विस्तारय । सायणः ।

“प्राचीन सूत को कातो ।” नियमानुकूल यज्ञ करने को एक  
लंबा सूत कहा जाता है जो एक के बाद दूसरे ऋषियों से होकर  
आजकल तक चला आया है (दीर्घ तन्तुः । १०-६९-७) ।  
राष्ट्र की भलाई और स्वतंत्रता के महान् फल के लिए भी सूत  
कातने को अपनी अमर्यादा माननेवाले कुछ विशेष बुद्धिमान् पुरुष  
मिलते हैं । प्राचीन कवि के लिए सूत कातना ऐसा अच्छा काम था  
कि उनके देवता भी काता करते थे (१-१६४-५; ८-१३-१४;  
९-२२-३, ७; ९-८६-३२) धार्मिक कृत्यों के अपने अज्ञान का  
जब ऋषि को कष्ट होता है तब वह कहता है, ‘मैं न तानी,  
न भरनी को ही जानता हूँ । यज्ञ में पुरोहित जो जाल बुनते हैं  
उन्हें मैं नहीं जानता’:

नाहं तन्तुं न विजानाम्येतुम् ।

न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ॥ ऋ१ ६-९-२ ।

तन्तवः षट्स्य प्रागायतानि सूत्राणि । ओतवस्तिरश्चीना निःसूत्राणि ।  
उमयसाध्यः पठो यज्ञवक्ष्णो यं देवयज्ञे ऋविजो वयन्ति  
तन्तुनोत्सृज्य संतन्वन्ति । सायणः ।

एक स्थान पर अथर्ववेद में कहा है कि ‘ऋग्वेद के मंत्र तानी  
के सूत हैं और यजुर्वेद की ऋचाएँ भरनी हैं ।

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजुषि तिर्यञ्चः । अ० २५-३-६  
प्रजापति का प्राथमिक यज्ञ जो सृष्टि रचना है, बुनाई के ही शब्दों में  
वर्णित है । (८-३३-९, १२)

यो यज्ञो विश्वतस्तनुभिस्तत् एकशतं देवकर्मभिरायतः ।

इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्रवयापवयेत्यासते तते ॥

पुमां एनं तनुत उत्कृण्ति पुमान्वितत्ने अधिनाके अस्मिन् ।

इमे मयूखा उपसेदुरु सदः क्षामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥

ऋ० १०-१३०-१, २ ।

(पुमानेनद्वयत्युत्कृण्ति पुमानेनद् विजभारदिनाके । इमे मयूख  
उपस्वभु दिव सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ अ० १०-५-४३, ४४ ।  
तन्तुमिवियदाभिर्भूतैः सर्गात्मको यज्ञो सर्वतो विस्तृतः । सायणः ।

“यहां पर आये हुए पितर, उसे बुनते हैं, जिस यज्ञ को  
चारों ओर सूत फैला कर १०१ पुरोहितों ने बनाया है वे तानी  
के पास बैठ कर कहते हैं, ‘आगे बुनो’, ‘पीछे बुनो’ । पुरुष  
वसे फैलाता है और पुरुष उसे खोलता है । यह आकाश में भी  
विस्तृत है । ये खुदियां पूजा के आसन में गड़ी हुई हैं । सामवेद  
की ऋचाओं को उन्होंने ढरकी बनाया’ ।

जान पड़ता है कि बुनाई ब्रिजों का खास काम था । ‘रात्रि और  
संध्या की सुनवैया जैसी साथ मिल कर लंबे धागे को, पूजा के जाले  
को बुनती है ।’ रात्रि का फिर वर्णन आया है ।

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उपासनक्ता वय्येव रथिते ।

तन्तुं ततं संवयन्ती सगीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥

ऋ० २-३-६ ।

‘संसार व । कपडा बुननेवाली स्त्री सी घेरे हुए ।’ उन लोगों का  
जो धार्मिक कृत्यों में भाग नहीं लेते, इस प्रकार वर्णन मिलता है,

पुनः समव्यद्विततं वयन्ती । ऋ० २-१८-४

‘वे जो न तो कभी एक पग भी आगे बढ़ते हैं, न तो पीछे  
हटते हैं, जो न तो ब्राह्मण हैं, और न सुरादान के कर्ता, जो  
पापसे वाचा को प्राप्त होकर अपने सूत कुमारियों ( स्त्री बुनवैया )  
जैसे कातते हैं ।’ दिन और रात का निरंतर चकर अथर्ववेद के  
त एते वाचमभिपद्य पापया सिमुस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥

ऋ० १०-७१-१ ।

यों वर्णित है, ‘दो नवयुवती कुमारियां ( उषा और रात्रि )  
६ खुंटियों वाले ताने के पास पारी पारी से पहुँचो और उसे  
बुनती हैं । एक सूत निकाली है, दूसरी उसे रखनी है । वे  
उन्हें न तो तोड़ती हैं, न उनका काम कभी समाप्त होता है ।’

तन्त्रमेकै युवती विरूपे अभ्याकामं षण्मयूखम् ।

प्राण्या तन्तुं स्तिरते धत्ते अन्गा नापवृज्जानते न गमातो अन्तम् ॥

अ० १ १०-७-४२ ।

अन्त में हम अथर्ववेद से एक मंत्र देंगे जिससे पता चलता है कि  
विवाह के दिन वर जो कपडा पहनता था, वह कन्या का बुना  
हुआ होता था । इंग्लैंड के किसानों में भी एक ऐसे ही रिवाज  
का पता चलता है ।

ये अन्ता यावर्तीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।

वासो यत्पत्नीभिस्तं तन्तः स्योनमुपस्पृशात् ॥ अ० १४-२-५१

‘कन्या के बुने कपडे की तानी और भरनी के सभी सूत, जो  
उसकी किनारियां छूने में कोमल हों ।’

अथर्व वेद के समय में चाहे जो स्थिति रही हो, हम आधुनिक  
हिन्दू विवाह में यह बात देख सकते हैं कि हस्त-मिलाप के समय  
वर और कन्या दोनों के गलों में सूत की एक माला डाल दी  
जाती है । ‘प्रोक्षण’ विधि के समय जिन चार वस्तुओं से वर  
का स्वागत किया जाता है, उन में एक वस्तु तकुभा भी है ।  
मालूम होता है कि ये चीजें उनके भविष्य जीवन के मुख्य विषय  
के तौर पर हैं । दूसरी तीन चीजें हैं । कृषि का परिचायक  
जुआठ के साथ हल, अन्न कूटने का चिह्न मूल और दही मढ़ने  
या गोरक्षा का चिह्न रही ।

\* जहाँ कहीं वेद का नाम नहीं दिया है, वहाँ ऋग्वेद के  
ही मन्त्र मानने चाहिए ।

### मनुस्मृति

मनु का नियम है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत सूत का, क्षत्रिय का  
सन का और वैश्य का ऊन का होना चाहिए । समय के फेर से वे  
सब अन्तर जाते रहे ।

कार्पासमुपवत स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृत्तं त्रिवृत् ।

शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्यावकसात्रिकम् ॥ अ० २-४४ ।

दण्ड के दो रोवक अर्थात् हैं । उन में एक जगह पर वह है  
कि जो बुनवैया कपडा के सूत का १० पल पाता है, वह  
उसके बढे माँडी लगा कर ११ पल लौटावे । नहीं तो  
राजा की ओर से उस पर १२ पण का दण्ड होगा ।

तन्तुमायो दशपलं दद्यादेकपलं विक्रम् ।

अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशं दमम् ॥ अ० ८-३५० ।

[ जोष पृष्ठ २४६, कालम २ के नीचे ]



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

# हिन्दी नवजावन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३२ ]

अहमदाबाद, चैत्र वदि ६ संवत् १९८४  
गुरुवार, मार्च, २४ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## कालीपरज के चित्र

३

[ बारडोली प्रदेश में कालीपरज नाम की एक दलित जाति  
वहाँ पर दलितोद्धार का काम हो रहा है। उसी कालीपरज  
के विषय में यह लेख माला है। ]

### काली परज के अस्पृश्य

सबसे पहले एक छोटी सी नदी के किनारे हम आ पहुँचे।  
नदी नाम झाँखरी था। नदी के किनारे पर एक छोटी  
झोपड़ी थी। बांगन में एक टोली बैठी थी। वहाँ पर बूढ़े  
मियाँ थी, जवान थे, लड़के थे और लड़कियाँ थीं।

वे बैठे थे, गंड़े थे। आंगन मैला था। झोपड़ी का दरवाजा दूध  
का पाटा की कट्टियाँ खींच खींच कर लड़कों ने छेद कर दिये  
थे। लड़के नंगे थे। स्त्रियों लड़कियों की भी आधी ही लाज ढकी थी।  
झोपड़े में लगी लगी थी, माये में मैला चिथड़ा लपेटा था। बाकी  
मैला था। इतनी छोटी झोपड़ी में इतने अधिक प्राणी? भला

प्राणी खाते क्या होंगे? लाते कहाँसे होंगे?

जुनीभाई ने कहा, 'ये लोग बांस की टोकुरियाँ और सूप  
का बेंचते और खाते हैं।'

'क्या बेंच खाते होंगे? ये सब तो हाथ में दही जमा कर  
ले हुए हैं। आखिर जुनाई भी कितनी मिलती होगी?'

एक ने पूछा, 'ये लोग नदी किनारे क्यों रहते हैं, और  
सबसे पहले क्यों हैं?'

जुनीभाई 'इन की गरीबी?'  
पंढ्या जी ने अनुमान किया, 'शायद इन्हें बांस फैलाने की  
जगह यहाँ, नदी किनारे ही मिलती होगी।'

जुनीभाई—'और दूसरे ये लोग कोटवालिये हैं। यहाँ ये भी  
मिल जाते हैं। इस कारण भी दूसरे सभी लोगों से इन्होंने  
झोपड़ी खड़ी कर ली है।'

... माई पहले से ही उत्सुक थे। ज्यों ही सुना कि ये लोग भी  
मिल जाते हैं, वे बोल उठे 'चलो, अन्दर जा कर इन लोगों से  
बातें करें।' वे अन्दर घुसे और हम सब उनके पीछे पीछे

गये।

दूसरे के पास से निकल कर सभी लड़के झोपड़ी में

बूढ़े थोड़ी देर तक शंका भरी नजर से हमारी और ताकते  
रहे। सबने राम राम किया। बूढ़ों, बूढ़ियों को थोड़ा धीरज बँधा।  
पंढ्या जी ने मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया कोटवालिये, भौंचक  
होकर खड़े रहे, मानों वे यह सब बातें समझ ही न सकते हों।  
वे तो पंढ्या जी की आँख देख रहे थे। आँख में की माया  
उन्होंने पहिचान ली और उन्हें विश्वास आया। बांस का काम  
करते करते, उनका हाथ रुखड़े पत्थर जैसा हो गया था। वह  
हाथ उन्होंने आज पहिले पहिल ब्राह्मण के हाथ में देकर अपने  
को पावन बना समझा। ब्राह्मण ने भी अपने को पावन  
हुआ समझा।

बात चीत्र चली। पहले सूप से काफी पैसे मिलते थे क्योंकि  
जंगल से बांस मुफ्त का मिलता था। अब तो उसका पैसा देना  
पड़ता है। इतने थोड़े में से भी कुछ वैसे ही निकल जाता है।  
गांवों में माल बेंचने जा कर, जब बिकता नहीं तो उसे कौड़ी के  
मोल बेंच कर आना पड़ता है, नहीं तो धरम धक्का खाते हुए,  
सिर पर बोझा लेकर आना पड़े।

झोपड़ी की मरम्मत क्यों नहीं करते? उन्हें खेत नहीं, जमीन  
नहीं। पहले के जैसा, बांस, घास, फूस, खर, पतहर कुछ भी,  
इस महँगी में कोई माँगने पर देता नहीं और बाजार से खरीद  
लाने को पास में पैसा नहीं होता।

अखीर में कपड़े पर बात आयी। सूत कैसे कतता है,  
कातना कितना सहज है, जरासी मिहनत से किस प्रकार चीनी जैसा  
मीठा कपड़ा मिल जाता है—ये सब बातें, ये बात की बात में  
समझ गये।

जुनीभाई कहते हैं, 'तुम लोग गरीब हो। इस लिए तुम्हें  
चर्खा और पूनी यों ही दंगा।'

दूसरे दिन अपने तीन जवान लड़कों के साथ एक बूढ़ा बेडड़ी  
आश्रम में आ धमका। चार चर्खे चार जनों के सिर पर चढ़ कर  
गरीब लोगों के घर में बरकत लाने को चले।

यह दृश्य देख कर सूरज बहिन और उनकी लड़की, रसोड़े  
में से दौड़ आयीं। उन्होंने आ कर कहा, 'माई, तुम किसी बात  
की फिक न करना। मैं अपनी लड़की के साथ कल दो पहर  
को तुम्हें कातना सिखलाने आऊंगी। तुम्हें तो यह हँघते खेकते  
आ जायगा। जब तक सीखोगे, हम वहाँ रोज आवेंगी। कल दो  
पहर को कहीं जाना नहीं।'



‘बहिन, कलह नहीं परसों आना । कलह हमें सूप लेकर हाट में जाना है ।’

‘बहुत ठीक, परसों आऊंगी ।’

बूढ़े जीवन काका का घर नदी के किनारे है । उन्होंने कहा, ‘मैं भी दो पहर को आया कहूँगा । जाओ, भाई जाओ । तुम्हारा नसीबा आज खुल गया ।’

४

### गोमती

अब कहीं दूसरी ओर चलना चाहिए ।

हम वेढी से बीच माइल दूर नि ल गये और ठेठ बारताड में जा पहुँचे । इस गाँव में काजीपरज की बस्ती है । थोड़े घर नारियल के छाये हैं, और बाकी सभी खपरौल हैं ।

कोई चर्खे के काम के लिए वा किसी दूसरे काम के लिए जाता है तो पहले नारियलवाले घर में ही जाता है । क्योंकि इस घर का मालिक खाट बिछा देता है, बातें करता है और सिर हिला हिला कर हा, हा, करता है और कभी कभी चर्खा उठाता है ।

पर हमारे साथ ... भाई थे । वे सब से पूछते फिरते थे, ‘सब से गरीब आदमी यहाँ कौन है ? यहाँ सब से गरीब कौन है ?’

सबसे गरीब का दर्शन कराने को हमें रणछोड़ धुलिया ले चला । संध्या हो रही थी, रात का अंधेरा फैल रहा था । हमारी टोली के कुछ लोगों के पाँवों में जूते न थे । काँटा देख कर वे पीछे लौट पड़े ।

एक झोपड़ी आयी । भीतर अंधेरा था ।

‘भीतर कोई है ?’

अन्दर उजाला हुआ । एक रोगी आदमी भीतर नंगे बदन, घुटनों में सिर लगा कर फटी चटाई पर पड़ा हुआ था । पास चूल्हे में भूख तप रही थी, और उसके बदन पर चर अंगारे बरसा रहा था । बगल में उसकी घरवाली गोमती बंठी थी । उसके दो लडके, चूल्हे के पीछे आ जमे थे ।

हम लोगों ने भीतर जाकर पहले रोगी की खोज खबर की । ‘बहिन, इन्हें आज खाने को न देना । लंघन से पेट का गड़बड़ साक होगा तो सुखार उतर जायगा ।’ क्या जाने, भोगने पर पर भी वह खाना दे सकती थी या नहीं ।

गोमती बहिन, छप्पर में से सड़े रहेटे के लेकर, एक एक दो दो जलाया करती और झोपड़े में उजाला रखा करती थी । वह आप खिल खिल हँसती थी । हमें ऐसा लगा मानो उसकी हँसी से ही वह झोपड़ी ठहरी हुई थी ।

‘दीया नहीं जलाती हो ?’

‘दीये का तेल कहाँ से लाऊँ ?’

‘आज क्या काम करने गयी थी ?’

‘काम क्या ?’

‘आज क्या खाया ?’

‘जहाँ तहाँ खा लिया । सामने के बाड़े में से थोड़े सुटे तोब लायी । उन्हींको मसलकर, भूनकर रख लिया ।’

‘कलह क्या खावोगी ?’

‘कोई पर्व नहीं । चार पाँच दिन चलने लायक जुवार है अभी बाड़े में ।’

बाड़े में जुवार के थोड़े बाने छोट दिये थे । वह उगी थी । उसी पर इनकी गृहस्थी चलती थी ।

बातें तो हम इनकी सुन रहे थे, पर अर्थ क्या इस तक

पहुँचता था ? आधा तो उसकी हँसी में ही भूल जाता था । हमने निष्ठुर होकर पूछा,

‘अभी क्या खाया ?’

‘खाया, यही तो ।’

इन्हें ईश्वर को छोड़कर और किसी के सामने रोना न था । पर हमने स्वाभिमान को समझा नहीं । हमने फिर से पूछा,

‘तौमी ?’

‘भला इस वक्त क्या खायें । सबेरे की जुवार जरा भिज बची थी । वह लडकों को दे दी ।’

‘तुम्हारे घर में या और कुछ बची हुई नहीं है ?’

वेचारी ने बहुत बार स्वाभिमान को बचा लिया था परन्तु ... भाई के आग्रही सवालों के आगे, वह कहाँ तक ठहर सके ।

कौन जाने, इतनी बतचीत से या हम गांधी जी के आश्रम हैं इसलिए उनके मन में विद्वाप हो गया था । अब तो कुछ चोरी रखने की जरूरत न समझी ।

‘देख लो न सारी झोंपड़ों ।’ यों कह कर एक हाथ से जलती लकड़ी और दूसरे में रहेटे का छोटा पूंछो ले कर वह चली । सिद्धराज के ध्वजचक्र के समान कैसरिया रंग का उसका मुँह हमें घर में घूमते देख कर नाचते २ कोने में जा बैठा ।

एक भाई ने कहा, ‘अरे वर्गह तो बेचती होगी न ?’

हमें न रुकने लायक ताने से उसने कहा ।

‘मुर्गा भी अंडा देता है न ?’ पीछे से यह सोच कर कि यह दिवंगी अच्छा न रही, सुचार कर कहा :

‘आर लोग जैसे अत्माराम को पार ते हैं, वैसे ही यह भी है । लडकों का खलवाह है, और घर भी अच्छा लगता है ।’

फिर से हमने सारा घर देखा पर कुछ भी न था । हमने कहा ।

‘अने दुःख का भार तू ही झेल सकती है । तेरा एक आसरा तो राम है और दूसरा राम दिल में बस सके तो वह गांधी जी का चर्खा ।’

५

### सात जनों में दो सेर आन

सब से गरीब का दर्शन करने हम निकले थे और भगवान् ने दिखाया । हम पीछे लौटे । एक गरीब की झोपड़ी से होकर हम निकले । झोपड़ी के बाहर एक छी अपने कई बच्चों को खिपे, आग तापती थी । हमें देख कर छांटे लडके झोपड़ी में घुस गये । वह छा खड़ी हो गयी ।

‘क्यों बहिन, क्या खाया ?’

जैसे कुछ बहुत अच्छी चीज मिली हो, ऐसी आवाज से वह बोली,

‘दालभात तो’

हम मन में यह मान कर कि गोमती से तो यह बहुत ही सुखी है, आगे चले जाते थे । पर भाई.....यों जाने दें तब तो । इन्हें तो बातें करनी थीं ।

‘सबेरे क्या खाया ?’

‘वही दालभात तो ।’

‘तब, अभी ?’

‘वह तो सबेरे का बचा हुआ था ।’

‘सबेरे कितना राँधा था ?’

‘दो सेर ।’

दो सेर में इसने खाया, इसके सात लडकों ने खाया और बचा कर रात का भी काम चलाया ।







# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र बदि ६ संवत् १९८३

## कांगड़ी गुरुकुल

कांगड़ी गुरुकुल में ही स्वामी श्रद्धानन्द के प्राण बसते थे, भले ही उनका नाशमान शरीर एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्यों न घूमता हो। जब तक गुरुकुल जीता है, स्वामी श्रद्धानन्द भी जीते ही रहेंगे। इस लिए इस स्वर्गीय शाहीद का जो अच्छा से अच्छा स्मारक बन सकता है, वह है इस गुरुकुल को स्थायी बनाना। निःसन्देह सचमुच में स्थायी स्मारक का तो आविर्भाव होगा गुरुकुल के अध्यापकों और ब्रह्मचारियों के चारित्र्य के, और उसमें प्राचीन शिक्षा और संस्कृति की मुख्यता बनाये रखने के उनके दृढ़ आग्रह के जरिये। श्रद्धानन्द जी को यह कहने का पूरा कारण था कि उनका गुरुकुल भी, अग्रहयोग की परिभाषा के अनुसार, अग्रहयोग के जन्म के कई साल पहले से ही राष्ट्रीय संस्था है। उनका विश्वास था कि चाहे हम चाहें या न चाहें मगर सरकारी शिक्षणालयों में जाने का अर्थ ही है, पश्चिम के प्रभावों की मुख्यता माननी। पश्चिम की जो कुछ बात वे लाभप्रद समझते उसे अपने तौर पर, अपने सुविधानुसार लेने में उन्हें कोई उज्र नहीं था। इस कारण स्वामी जी का योग्य स्मारक होने के लिए गुरुकुल को सरकार से पूरा पूरा स्वाधीन रहना ही होगा। यह कुछ कम सन्तोष की बात नहीं है कि, सरकार की कोई सहायता न लेकर, स्वाधीन रहने पर भी, इसके सदस्यों की संख्या वैसे ही बढ़ रही है, जैसे कि मैं आशा करता हूँ कि इसके पुण्यश्लोक संस्थापक की भावना के अनुसार चारित्र्य में इसकी उन्नति हो रही है।

मगर, अगर यह स्मारक, सचमुच में इसके ब्रह्मचारियों और अध्यापकों के चरित्र पर निर्भर है तो वह अभी अभी देश की आर्थिक सहायता पर निर्भर है। आचार्य रामदेव ने अभी तीन लाख रुपये की प्रार्थना की है। मैं समझता हूँ कि कोई दो लाख तो मिल चुके हैं। मैंने १९ तारीख को गुरुकुल-भूमि में, उस बड़े मंडप के भीतर जो दृश्य देखा, वह कभी भूलने लायक नहीं है। दर्शकों के बीच, स्वयं-सेवक बालटियों लेकर घूम रहे थे। उनमें बच्चे और नाट बालने की मानों ली, पुरुष, सभी कोई चढा ऊपरी सी कर रहे थे। ऐसे तो शायद ही कहीं दिखलायी पड़े। मैं बड़ी खुशी से यह अपील जनता के सामने रखता हूँ। आर्य-समाज और उसके सिद्धान्तों से अपने मतभेद में बतला चुका हूँ। वे तो हैं ही। गुरुकुल चलाने के नियमों में भी मेरा मतभेद है। मगर आर्य-समाज की सेवाओं और गुरुकुल की आवश्यकता को मैं भूल नहीं सकता। अगर धर्म को बाढ़ उन्होंने सीमित कर दी है तो उसमें नयी जान भी फूंक भरी है। सभी सुचारों में यह प्रवृत्ति रहती ही है। चतुर पुरुषों का काम है, नीर छोड़ क्षीर प्रदण करना। गुरुकुल में बहुत बातें ऐसी हैं, जिन्हें बचाना होगा, और जो लोग यह चाहते हैं कि यह आज जैसी स्थिति में है, उससे अच्छा होवे, उन्हें, कहीं वे इसमें सुधार कराने का नाम ले सकते हैं। इस लिए घन की इस अपील में योगदान करने में मुझे कोई उज्र नहीं है। यह छोटी रकम इकठ्ठी करने में कोई देर या दिक्कत नहीं होनी चाहिए। (यं० इ०)

मोहनदास करमचन्द गांधी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १६

लॉर्ड कर्जन का दरबार

महासभा का काम तो खत्म हुआ पर मुझे तो द० अमरीका के काम के संबन्ध में कलकत्ते में ठहर कर चेम्बर ऑफ कॉमर्स इत्यादि मंडलों से मिलना था। इससे मैं कलकत्ते में एक सप्ताह ठहरा। इस समय होटल में ठहरने के बदले मैंने पत्रिका प्राप्त कर के इंडिया क्लब में ठहरने का प्रबन्ध किया। क्लब में हिन्दुस्तानी नेता ठहरा करते थे, इस लिए उनके साथ मैं आकर उन्हें द० अमरीका के काम में कुछ रस उत्पन्न करने का मुझे लोभ था। इस क्लब में हमेशा नहीं तो, कभी कभी गोखले विलियम्स खेलने आया करते थे। जर उन्हें पता लगा कि मैं कलकत्ते में ठहरने वाला हूँ तो उन्होंने अपने साथ रहने का निमन्त्रण दिया। मैंने उनका उपकार माना और निमन्त्रण स्वीकार किया। पर अपने आप ही वहां जाना मुझे ठीक नहीं लगा। एक दो दिन राह देख कर गोखले मुझे अपने साथ ही ले गए मेरा संकोच देख कर उन्होंने कहा, 'गांधी, तुम्हें तो देश छोड़ देना है, इसलिए ऐसी शर्म काम नहीं आवेगी। जितने लोगो राहो रश्म पैदा कर सको तुम्हें करना चाहिए। मुझे तुमसे बड़ा सभा का काम लेना है।'

गोखले के यहां जाने के पहले, 'इंडिया क्लब' का अनुभव देता हूँ।

इसी बीच लॉर्ड कर्जन का दरबार था। उसमें जाने का कोई राजा महाराजा इस क्लब में थे। क्लब में तो मैं बराबर ही सुन्दर बंगाली धोती, कुर्ता और चादर की पोशाक में ही पाता था। आज उन्होंने पतलून, जूता, खानसामा पगडी और चमकदार बूट पहने। मुझे दुःख हुआ और मैंने फेर बदल का कारण पूछा।

जवाब मिला, 'अपना दुःख हम जानते हैं। अपना सूर और खिताब रखने के लिए हमें क्या क्या अपमान सहने पड़े हैं, उन्हें आप क्या जानो।'

'पर यह खानसामाशाही पगडी और उसी मेल के किस लिए?'

'हममें और किसी खानसामा में आपने क्या फर्क देखा? हमारे, तो हम लॉर्ड कर्जन के खानसामा। मैं 'लेवी' में से गैरहाजिर रहूँ तो भी मुझे भोगना पड़े। अगर मैं अपने साधारण कपड़े में जाऊँ तो वह भी गुनाह गिना जाय। और वहां जाकर मुझे लॉर्ड कर्जन के साथ कुछ बातें करने को मिलना है क्या? नहीं नहीं।'

मुझे इस साफदिल भाई पर दया आयी।

ऐसे ही प्रसंगों का मुझे एक दूसरा दरबार याद आता है। जब काशी विश्वविद्यालय की नींव लॉर्ड हाडिंज ने डाली, उस समय उनका दरबार हुआ। उसमें राजे महाराजे तो होते ही भारत-भूषण मालवीय जी ने मुझे भी उसमें हाजिर रहने का आग्रह किया था। मैं वहां गया था। केवल औरतों को शोक लायक पोशाक, पहने राजा महाराजों को देख कर मैं दुःखी हुआ। रेशमी इजारबंद, रेशमी अंगरखा, छाती पर हीरामोती की माला हाथ में बाजुबंद और पगडी के ऊपर हीरामोती की लटकनियां इन सबके साथ, बगल में सोने की मूठवाली तलवार लटकी







वैश्य समाज के इस शिक्षा-भवन में उन्होंने खास दो सलाहें दीं। एक तो यह कि वैश्य होकर ब्राह्मण के बिना चलने का मोह न रखना। “मैं आप ब्राह्मणपुत्र हूँ, पर ब्राह्मणों की सहायता मुझे न मिले तो मैं दीन हो जाता हूँ। आप भी अगर सच्चे ब्राह्मणों की सेवा करोगे तो आपके बालकों को ब्राह्मचर्य और विद्या का सुसंस्कार मिलेगा।” दूसरी सलाह यह कि वैश्य के तीन स्वभाव-सिद्ध कर्म हैं, “कृषि गोरक्षा और वाणिज्य, इनका शुद्ध संस्कार करने में जीवन बिताना। आज इन तीनों वस्तुओं की उलटी गंगा बह रही है। इस उलटी गति से गाँवों और देश की रक्षा हो, ऐसा कुछ करना। व्यापार तो आज राक्षसी चलता ही है मगर उसे अगर सात्विक बनाना है तो उसका केन्द्र खादो और चूँचें को बनावोगे।”

अतिशय शान्ति से सबने यह उपदेश सुना। किसीने याद दिलायी कि और जगहों जैसे यहाँ भी हारों का नीलाम हो और सभा में बन्दा इकट्ठा किया जाय। गांधी जी ने कहा, “इस संबंध से मैं यहाँ आया ही नहीं हूँ। ऐसी मैंने आशा ही न रखी थी कि मेरे काम के लिए यहाँ पैसा मिलेगा। ताभी आपने तो मुझे वह वस्तु भी दी है जिसकी मैंने आशा भी न की थी। मुझे यहाँ हार नीलाम करना नहीं है, भिक्षा भी नहीं माँगनी है।”

रात को ११ बजे की प्रार्थना में सभी जुटे। कई ऐसी संस्थाएँ होगी जो और बातों में इसकी बराबरी मले ही कर लें, मगर इसके भजन के वातावरण की जोड़ तो और कहीं नहीं है।

साम्प्रकाल और प्रातःकाल, दोनों समयों की प्रार्थना में हम शामिल थे। विद्यार्थियों का उच्चारण, प्रार्थना के समय की गंभीरता और शान्ति, और मधुर संगीत के साथ मिली हुई भजन की भाव मयता—ये सभी बातें अपूर्व थीं। सुनने को बैठ जाने पर उठने का मागो मन ही नहीं करता था।

सबसे गांधी जी ने शिक्षकों के साथ उनके रसोड़े, घर और पायखाने तथा पढाई लिखाई के विषय में बातें कीं। अन्त में रसोड़े और पायखाने पर ही सारी बात एकाग्र हो गयी। सारी बातचीत का तात्पर्य यह था कि ये दोनों वस्तुएँ ब्रह्मचर्य की दृष्टि से ही बनी होनी चाहिए। नदी-किनारे शौच लाकर, नदी में ही अंग साफ कर लेने से गंदगी तो बढती ही है, ब्रह्मचारियों की शालीम भी अधूरी रह जाती है। गाँवों में जाकर वे शौच-स्थानों की सफाई का काम क्योंकर उठा के सकते हैं? विद्याश्रम के रसोड़े के विषय में गांधी जी को सन्तोष न हुआ। जहाँ तक विद्यार्थी, रसोइया न रख कर आप अपना रसोडा नहीं चलाते, जहाँ तक अपने संयम की ही दृष्टि रख कर भोजन-व्यवस्था नहीं करते, वहाँ तक उनके ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं होती। और सच्ची बात तो यह है कि आखिर आदमी का जीवन है ही क्या? आहार और शौच—इन दोनों वस्तुओं की अच्छी व्यवस्था जो कर सके हैं, उन्हीं का जीवन सफल होता है। इसके बाद आन्तरिक व्यवस्था पर थोड़े समय में जो कुछ बातें हो सकी, हुईं।

प्रातःकाल में गांधी जी के हाथों व्यायाम मन्दिर में मारुति की स्थापना हुई। विद्यार्थियों ने शारीरिक कसरत के कई खेल कर दिखावाये। महाराष्ट्र की यह एक बड़ी विशेषता है कि वहाँ एक भी शाला, व्यायाम मन्दिर के बिना नहीं है। सब के शरीर मजबूत, घुटन और कान्तिवान थे। अपनी उदात्त कथना के अनुसार श्री ठक्कर ने शिवा जी महाराज के राज्यभिषेक के गठ रायगड के परपरी में से यह सुन्दर मूर्ति ढूँढ निकाली थी। इस

महावीर-मूर्ति की स्थापना के बाद, गांधीजी ने निम्नलिखित उपदेश किया :

“महावीर जी की प्रतिष्ठा हम किस लिए करते हैं? कारण कि वे वीर लडाके थे? मारुति में शरीरबल तो बहुत परन्तु शरीरबल हमारा आदर्श नहीं है। अगर शरीरबल होता तो हम रावण की मूर्ति की स्थापना क्यों नहीं करते? हनुमान् का शरीरबल तो उनके आत्मबल का अविभाज्य और आत्मबल, उनके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का फल था और चन्द्र जी के लिए उनके अनन्य प्रेम का परिणाम था। आज पत्थर के एक टुकड़े की स्थापना नहीं की है प्रतिष्ठा तो एक भावना की की है और इस भावना को रख कर हम मारुति बनना चाहते हैं। ब्रह्मचर्य पालन आत्मबल पैदा कर, उस आत्मबल का देश-सेवा के लिए करना चाहते हैं। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि तु सबको का शरीरबल और आत्मबल दे और उसके लिए ब्रह्मचर्य की शक्ति दे।”

इस प्रकार, हमारा यह अत्यन्त आह्लाद का दिन विद्याश्रम में बीता।

### पूने में

महाराष्ट्र के दौरे में अखीरी सुकाम पूना था। यह पूना है कि पूने में दौरा खतम होता न कि शुरू होता। यह कि जब सारा हिन्दुस्तान खादी पहनने को तैयार हो पूना भी पहनेगा ही। गिनती में वह सब से पीछे रहेगा, मगर दिल हममें किसीसे कम न होगा। वहाँ के कार्य-कर्म देश-बन्धु स्मारक के लिए एक अच्छी रकम इकट्ठा करने के कठिनाइयाँ पड़ीं, मगर गांधी जी के पूने पहुँचने के (५०००) रु. इकट्ठे कर सके थे। विरोधी लोग चाहें जो मगर, इस रकम का और उसे देनेवालों का ख्याल कर पड़ेगा कि विरोध के होते हुए भी खादी कार्यकर्ता सफलता है। उन दो अथक बहिनों, श्रीमती कर्माजी जोगलेकर ने, जिन्होंने भले और बुरे सभी दिनों में काम जारी रखा है, पूने की छियों से (५००) रु. इकट्ठे श्रीयुत हरिभाऊ फाटक ने (२,५००) रु. का अपना धन बीमा दे दिया। किसी स्वार्थ त्यागी के लिए, इसके लिए और बच ही क्या जाता है? और कुछ नहीं तो इन दो लिए ही पूने की थैली की कीमत, उसके नकद मूल्य के लगायी जायगी।

मगर मैं यह मानता हूँ कि पूने की सभा उन लोगों जल्दगी नहीं थी, जिनको पहले से ही विश्वास था, संशयालुचित लोगों को विश्वास दिलाने के लिए जल्दगी थी। की सभा में और विद्यार्थियों की सभा में गांधी जी के गरीबों के प्रति प्रेम की आग भरी हुई थी। अपनी छाती चोर कर दिखा दिया कि उसमें रामनाम और कुछ नहीं है। मुझमें अपना हृदय चोर शक्ति नहीं है मगर अगर तुममें से कोई इसे देखना मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उसमें तुम सिवाय राम के कुछ नहीं पावोगे। उन्ही राम का मुझे साक्षात् दर्शन के करोड़ों भूखे लोगों में होता है।” विद्यार्थी हजारों की जमा थे। शायद कुछ तो सिर्फ मना देखने के लिए गांधी जी का सन्देश सुनने को आये थे। वहाँ के बलिहारी है कि गांधी जी उनके पास अधोरात के पड़े सके। तब तक वे सब विद्यार्थी धैर्य के साथ ठहरे।



## टिप्पणियाँ

## पदों पर

[ एक भाई ने यं. इ. में छापने के लिए गांधी जी को पदों के विषय में एक पत्र भेजा है। उसी का उत्तर यहां दिया जाता है। ]

पदों के पक्ष में आप का लम्बा पत्र छापना मैं नहीं चाहता। मेरा मत है कि हिन्दुस्तान में पदों की प्रथा, हाल की चीज है और यह हिन्दुओं के पतन के समय पैदा हुई। जिस युग में अभिमानिनी द्रौपदी और निष्कलङ्क सीता रहती थीं, उसमें पर्दा ही नहीं सकता था। गाँगी का शास्त्रार्थ पदों के भीतर से हो ही नहीं सकता था। पर्दा कुछ सारे हिन्दुस्तान में फैला हुआ भी नहीं है। दक्षिण, गुजरात और पंजाब में इसका पता नहीं है। किसानों को भी इससे कुछ वास्ता नहीं है, मगर कभी इन प्रान्तों में या किसानों की स्त्रियों की इस थोड़ी बहुत स्वतंत्रता से कोई कुफल सुनने में नहीं आया। यह कहना भी उचित नहीं होगा कि दुनिया के जिन हिस्सों में पर्दा नहीं है, वहाँ के लोग पर्दा नहीं रखने के कारण ही कुछ अनैतिक हैं। सभी प्राचीन वस्तुओं का समर्थन करने पर आप उतारू हैं। यह मानते हुए कि हमारे पूर्वजों ने अतुलनीय, नीतिग्रन्थ लिखे हैं, मैं यह मानने से इनकार करता हूँ कि उनकी एक भी बात में भूल नहीं है। और यह कह दी कौन सकता है कि कौन सी वस्तु सचमुच में प्राचीन है? क्या सभी १०८ उपनिषदें, बराबर ही महत्व की हैं? मुझे मालूम होता है कि जिस किसी बात की हम बुद्धि की कसौटी पर जाँच कर सकें, करें और जो इस जाँच में खरा न उतरे, वह चाहे भले ही पुराने रूप में क्यों न आया हो, उसे इनकार कर दें।

( यं. इ. )

मो० क० गांधी

## परमानन्द

केपटाउन ही गोलमेज कान्फ्रेंस के एक सब से नाजुक समय में, जब कि फ्रिक और मिहन्त का भार अधिक से अधिक था, मेरी माता के स्वर्गवास की वर्षगांठ आयी। इस साल वह रविवार को पड़ी। बहुत दिनों पहले से मैं उनके विषय में सोच रहा था।

कई साल हुए। मैंने यह बात लिखी थी कि उन्होंने मुझे ऐसे समय पर द० अफ्रीका को भेजा था जब वे सचमुच ही बहुत बीमार थीं, और जानती थीं कि उनका अपना अन्तकाल भी निकट ही है। उन्होंने मुझे घर जाकर उनका अन्तिम दर्शन करने को मना करके द० अफ्रीका में जाकर उनके दुःखी हिन्दुस्तानी भाई बहनों की सेवा करने की आज्ञा दी थी। उनके स्वर्गवास के बाद, उनका अखीरी पत्र मुझे मिला। उन्होंने लिखा था कि 'मेरा दर्शन करने न आकर तुम्हारे द० अफ्रीका जाने से मुझे अजहद खुशी हुई है।'

वर्षगांठ भी आयी। उसके पहले के सप्ताह में मुझे फ्रिक मारे सर उठाने की फ्रासत न थी। मुझे नींद की बड़ी जरूरत थी, मगर सोना मुहाल था। सबसे बुरी बात तो यह हुई कि ईश्वर की वह ज्योति, जो अब तक मुझे सँभाले हुई थी, अब धुँधली सी मालूम होने लगी। फ्रिक और तरबूद के इस असह्य बोझ को सहना असम्भव हो चला।

तब मुझे उन भजनों में से एक याद आया जो मेरी माता को बहुत ही प्रिय थे।

महादेव देशाई



‘ ओह, अगर उसका पता मैं जानता  
ताकि उसके सामने जा पहुँचता । ’  
शब्दों के साथ तान भी याद हो आयी । मैंने इसे मन ही मन माया  
‘ ओह, अगर उसका पता मैं जानता  
ताकि उसके सामने जा पहुँचता । ’  
इसके बाद यह सुन्दर ‘ टेक ’ आयी जो आत्मा की भूख  
मिटायी है और भाषा की ज्योति जगानी है ।  
‘ उसको अगर सच्चे दिलसे ढूँढोगे  
तो निश्चय निश्चय पता उसका पाओगे ।  
यह प्रभु की आज्ञा है । ’

ये शब्द सचमुच में ही परमात्मा की ओर से एक बड़ी  
ही नाजुक बड़ी में मुझे मिले । मेरी आँखों के आगे मानों मेरी  
मा सदेह ही आसदी हुई । धैर्य लौटा । उस समय के लिए मैं  
एक ऐसे मनोराज्य में पहुँच गया था, जहाँ शरीर का भान नहीं  
रहता केवल शुद्ध आनन्द ही आनन्द रहता है ।

उस सारे दिन मेरा आनन्द बना रहा । मा की याद के  
साथ साथ एक कविता भी याद हो आयी जिसे वह बहुत  
मीठे स्वर से गाती थी :

‘ वचन के वह परे है,  
लेख उसे पा नहीं सकता  
स्वानुभव ही लोग ही जानते हैं  
कि परमानन्द किसे कहते हैं । ’

( यं० इ० )

सी० एफ० पण्डूयूज

चन्दे

सोलापुर जिले

करमाल	७५१)	५१) पेटी
जेवर	६१)	
डुईवाडी	२५७)	३१) पेटी
बारशी	९०८)	२१३) हार
बलसंग	१०१)	
सोलापुर	६,७३३-५-०	
मोहोल	११३)	
पेनूर	२१)	

सतारा जिले

लोणंद	१६७)	
दूधगांव	२३१)	१५) हार
कवली	२५)	दूधगांव में दिया
अष्टे	४०४) ३०) पेटी; २२) हार; २५) खानगी थैली	
इस्लामपुर	६२०)	३५) हार
रेडरे-हरणाक्ष	३०-८-०	इस्लामपुर में दिया
कराड	५१०)	
सतारा	५५५)	३६) अंगूठी; १३) छल्ला
गादेगांव	५१)	
नातेपुते	६१)	फलटन में दिया

देवा राज्य

अमलकोट	२२७-८-०	
गुलबर्गा	३,६५०)	
फलटन	५२०)	
सांगली	१३८५) ३००) खादी मेट के और, १५१) हार	
बेळगांव के रास्ते में	१५)	

रत्नागिरि जिला

सावन्तवाडी	१७३५-१-०
वेंगुरला	९२३-१२-१
मालवन	८७५-१-०
कसल	३१-०-०
कनकावलि	१०२-०-०
खरे पाटण	११३-१-०
राजापुर	२८२-६-०
लांजे	१६४-०-१३
रत्नागिरि	१७७०-८-३
संगमेश्वर	५३३-७-१
चिपलूण	७४७-१२-१
खेड	१९४-७-१

कोलाबा जिला

महाद	९१०-०-१
कामू	१०१-०-०
नगोठना	१२२-१२-१
पाली	५१-०-०
पेन	५६५-७-०
चारी	१८१-१२-०
वाशी	११-०-०
अलीबाग	१२१४-७-१
वैश्य विद्याश्रम के विद्यार्थी	६३-३-०
कोंकण वैश्य समाज	५०१-४-०
ससवणें और खेडी	१९०-०-०
माडुंगा के वैश्य	१०१-०-०
रुक्मिणी बाई मोरे	१०१-४-०
अष्टमी	५-४-०
वैश्यकोठी	११-०-०
सरोले	५१-०-०
उरान	१०१-०-०
पनवेल	१,०६५-०-०
चौक	१६७-०-०
करजत	५१-०-०
धूत पापेश्वर औषधालय	१०१-०-०

५,५७५-१०-०

आश्रमभजनावलि

पांचवीं आवृत्ति खत्म हो गयी है । अब जितने आर्डर  
हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं । आर्डर भेजनेवाले सज्जन  
से शिकायतें भेजना शुरू न करें । छठीं आवृत्ति तैयार  
रही है ।

‘ हिन्दी नवजीवन ’ की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं । तीसरे, चौथे  
पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं । एक एक  
जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम ढाक खर्च के अलावा  
रूपये हैं ।

व्यवस्थापक  
‘ हिन्दी-नवजीवन ’



Subscription  
Expires Next Month

वार्षिक मूल्य ४)  
७: मासका " २)  
एक प्रति का " १)

गोरक्षा

# हिन्दी नवजीवन

पादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३३ ]

गुरुक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, चैत्र वदि १३ संवत् १९८४  
शुक्रवार, मार्च, ३१ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १६

### गोखले के साथ एक महीना (१)

वही ही दिन से गोखले ने मुझे ऐसा न मानने दिया कि मैं न हूँ। मुझे इस प्रकार रक्खा, मानों मैं उनका सगा छोटा बेटा होऊँ। मेरी सभी जरूरतें प्रसन्न लीं और उन्हींके द्वारा व्यवस्था कर दिया। सौभाग्य से मेरी जरूरतें थोड़ी थीं। मैं सब काम आप ही कर देने की आदत जो मैंने लगा ली थी, उससे मुझे थोड़ी ही सेवा लेनी पड़ती थी। मेरे इस व्यवहार की देव, मेरे पोशाक की सुघडता, मेरे उद्यम और निरमलता का उन पर गहरा असर पड़ा और वे मेरी इतनी प्रशंसा करने लगे कि मैं घबरा उठा।

ऐसा मुझे नहीं मालूम हुआ कि उनका मुझसे कोई दुराव था। मुझे कोई बड़ा आदमी मिलने आता तो मेरा परिचय कराते। इन लोगों से आज मुझे सबसे अधिक स्पष्ट याद जिनकी आती है, वे हैं, प्रफुल्लचन्द्रराय। वे गोखले के मकान के पास ही रहते थे। वे कौन करीब हमेशा ही आते रहते थे।

“वे हैं प्रोफेसर राय, जो हर महोने आठ सौ रुपया पारते और अपने खास खर्च के लिए ४०) रु. महीना रख कर मुझे सभी सांजनिक काम में लगा देते हैं। इन्होंने विवाह नहीं किया है और करना चाहते भी नहीं।” ऐसे शब्दों में गोखले ने मुझको परिचय दिया।

आप के आचार्य राय में और तब के प्रोफेसर राय में मैं कोई भेद देखता हूँ। वैसी पोशाक तब पहिनते थे, लगभग वैसी ही अब भी पहिनते हैं, आज खादी है। तब तो खादी नहीं। स्वदेशी मिल का कपड़ा होगा। गोखले की मेरी ओ. राय की बातें सुनते मेरा मन नहीं भरता था क्योंकि वे मेरी देश हित के संबंध की होतीं या कोई ज्ञान-चर्चा होतीं। कितनी बातें दुःखद भी होतीं क्योंकि उनमें नेताओं की आलोचना होती। जिन्हें मैंने महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छूटे दिखायी पड़ने लगे। गोखले की काम करने की पद्धति से मुझे जितना आनंद

हुआ, उतना ही सीखने को भी मिला। वे अपना एक क्षण भी बेकार नहीं जाने देते। मैंने अनुभव किया कि उनकी सब बातचीत देशकार्य के संबंध में ही होती। बातों में मैंने कभी मलिनता, द्वेष या झूठ न देखा। हिन्दुस्तान की कंगालियत और दरिद्रता उन्हें बराबर ही खटकती। अनेक आदमी उन्हें कई कामों में लगाने को आते। उन्हें वे एक ही जवाब देते, ‘आप यह काम कीजिए। मुझे तो देश की स्वाधीनता लेनी है। वह मिलने बाद मुझे दूसरा कुछ सूझेगा। अभी तो इस काम से मेरा एक क्षण भी बाकी नहीं रहता।’

राणडे के प्रति उनका पूज्यभाव तो बात बात में देखा जा सकता था। यह तो उनका ‘तकिया कलाम’ सा बन गया था कि ‘राणडे यों कहते थे।’ जिस समय मैं वहाँ था, उसी बीच राणडे की जयन्ति (या पुण्यतिथि थी, इसकी मुझे याद नहीं है) पड़ती थी। मुझे ऐसा लगा कि गोखले उसका हमेशा पालन करते होंगे। उस समय मेरे भलावा, उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे और एक दूसरे कोई सबजज थे। उन्होंने इन लोगों को जयन्ति मनाने के लिए निमंत्रण दिया और उस प्रसंग में राणडे के कितने स्मरण सुनाये। राणडे, तैलंग और मांडलिक का मिश्रण भी किया। मुझे याद है कि तैलंग की भाषा की तारीफ की थी। मांडलिक की बतौर सुधारक के प्रशंसा की। अपने मुवकिल के प्रति कर्तव्य-पालन दृष्टान्त में वह कथा भी सुनायी, जब रोज की ट्रेन छूट जाने पर वे अपने मुवकिल के मुकदमे की खातिर ‘स्पेशल’ ट्रेन कर के गये थे। और राणडे की सर्वतोमुखी शक्ति का वर्णन किया और बतलाया कि उस काल के अगुओं में वे सर्वोपरि थे। राणडे केवल न्यायाधीश न थे, वे इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे, सुधारक थे और अपने निरूपण से, सरकारी नौकर होते हुए भी महासभा में दशक के रूप में हाजिर होते। उसी प्रकार उनकी बुद्धिमानी में सबका इतना विश्वास था कि उनका निर्णय सभी कोई स्वीकार करते। यह वर्णन करते समय गोखले के आनन्द का पार न रहता था।

गोखले घोड़ा गाड़ी रखते थे। मैंने उनसे इसकी शिकायत की। उनकी मुद्रिकलें मैं नहीं समझ सका था। ‘आप सब क्या ट्राम में नहीं चढ़ सकते? इससे क्या नेताओं की प्रतिष्ठा घटती है।’

मुझे जितना आनंद हुआ, उतना ही सीखने को भी मिला, वे अपना एक क्षण भी बेकार नहीं जाने देते। मैंने अनुभव किया कि उनकी सब बातचीत देशकार्य के संबंध में ही होती। बातों में मैंने कभी मलिनता, द्वेष या झूठ न देखा। हिन्दुस्तान की कंगालियत और दरिद्रता उन्हें बराबर ही खटकती। अनेक आदमी उन्हें कई कामों में लगाने को आते। उन्हें वे एक ही जवाब देते, ‘आप यह काम कीजिए। मुझे तो देश की स्वाधीनता लेनी है। वह मिलने बाद मुझे दूसरा कुछ सूझेगा। अभी तो इस काम से मेरा एक क्षण भी बाकी नहीं रहता।’



समझ सके क्या ? मुझे बड़ी धारा सभा (असेम्बली) में से जो कुछ मिलता है, उसका मैं अपने लिए खर्च नहीं करता। तुम्हारा ट्राम पर का चलना देख कर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मुझसे यह पार नहीं लग सकता। मुझे जितने लोग जानते हैं, जब उतने तुम्हारे भी परिचित होंगे तो तुम्हारे लिए ट्राम में चलना असंभव नहीं तो मुश्किल तो हो ही जायगा। ऐसा मानने की कोई वजह नहीं है कि नेता लोग जो कुछ करते हैं, मौज या शौक के लिए ही करते हैं। तुम्हारी सादगी मुझे पसन्द है। जितना होता है, मैं सादगी से रहता हूँ। पर तुम जहर मानलो कि कितने खर्च, मेरे जेसों के लिए अनिवार्य हैं।

‘पर आप घूमने भी नहीं जाते। इस पर बीमार पड़ें तो इसमें नयापन ही क्या है? क्या देश-कार्य से व्यायाम की छुट्टी भी नहीं मिल सकती?’ मैंने कहा।

जवाब मिला, ‘मुझे तुम खाली कब देखते हो जब मैं घूमने फिरने जा सकूँ?’

मेरे मन में गोखले के लिए ऐसा आदर था कि मैं उनके सामने जवाब नहीं देता था। ऊपर के जवाब से मुझे सन्तोष तो न हुआ पर मैं चुप रहा। मैंने मान लिया, अब भी मानता हूँ कि काम कितना ही हो मगर हम जैसे खाने के लिए समय निकाल लेते हैं, उसी तरह हमें व्यायाम के लिए निकालना चाहिए। मेरा मत है कि इससे देश की अधिक सेवा होती है, कुछ कम नहीं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### साप्ताहिक पत्र

इस सप्ताह के अखीरी दिन बहुत ही कष्ट में और राम राम करते बीते हैं। हरिद्वार से, कर्णाटक के लिए चलते समय, मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि दो ही तीन दिनों में मुझे सारे देश में गांधी जी का स्वास्थ्य सहसा बिगड़ जाने के और सभी दौरे बन्द कर देने के तार मेज़ने पड़ेंगे। बात यह है कि महाराष्ट्र के बहुत ही मिहनत के दौरे के बाद मालूम हुआ कि गांधी जी का वजन चार, पाँच पाउण्ड बढ़ा है और हम सब कोई इस धोखे में आ गये कि कड़ी मिहनत से थकने के बदले, उनका स्वास्थ्य सुधर ही रहा है। मगर पीछे की बातों से मालूम होता है कि यह उन्नति धोखे की ठही थी, और हम बड़े मालुम मौके पर पहुँचे जा रहे थे।

हाँ, हरिद्वार में एक क्षण के लिए भी शान्ति न थी। हम लोग २३ तारीख को बंबई पहुँचे और सारा दिन ऐसे मित्रों से मिलने में खर्च हुआ, जो महीनों से मिल नहीं सके थे। मित्रों से मेट करना तो हमेशा ही आनन्द की बात होती है मगर यह बिल्कुल आराम तो है नहीं। फिर शाम को सान्ता कुज का समारोह भी तो था। जब गांधी जी गुजरातियों के बीच होते हैं, तब वे जन्त नहीं कर सकते। उन्होंने अपनी डोर ढीली छोड़ दी। वहाँ पर उन्होंने एक घण्टे तक हृदय-स्पर्शी भाषण किया। तामिल भाइयों ने हिन्दी भाषण पर जोर दिया। उनकी भी इच्छा पूरी की गयी। तब छादी की बिक्री और नीलाम का अनिवार्य काम भी तो होना था ही। ये सभी उत्साह और आनन्द देनेवाले हृदय थे, मगर आराम तो हम उन्हें कभी नहीं कह सकते। हम लोग आधीरात के आधे घण्टे बाद घर लौटे। गांधी जी एक बजे के करीब सोये होंगे। इसने दिन का काम शुरू हुआ ४ बजे सबेरे की नियमित प्रार्थना से— ४ नहीं बल्कि ५ बजे क्योंकि ४ बजे उठना उन के लिए शरीरतः

असंभव हो गया था। इसके बाद मिलने वालों का जो ताता लगा तो दिन को दो बज गये जब हम स्टेशन के लिए रवाना हुए। इस बीच में उन्हें घाटकोपर में जाना पड़ा। वहाँ प्रबन्ध से उन्हें सन्तोष न हुआ, इस लिए वहाँ भी एक भाषण मय भाषण करना पड़ा। स्टेशन के रास्ते में रोमियों को देखकर था और राष्ट्रीय शाला के विद्यार्थियों से बातें करनी थीं। आखिर सवा तीन बजे रेल गाड़ी पर सवार हुए। गांधी जी प्रायः रेलगाड़ी में कुछ नींद ले लेते हैं और मोटर की मुसाफिरी से रेल की मुसाफिरी पसन्द करते हैं। मगर उस दिन यह भी भाग्य में बड़ी नहीं थी।

कोई ५ बजे उन्हें अचनक सिर में चक्कर आने लगा और जेठे अंग सुन्न होते से मालूम होने लगे। हम लोग सब तरह के अटक लगाने लगे। पूना स्टेशन पर अपने आप चलने लायक उनकी स्थिति नहीं थी। उन्हें उठा कर बंगलोर रेल में ले जाना पड़ा। वहाँ पहुँचली हो गयी और बहुत ही मुश्किल से एक आध बाते के बाद वे चाहते थे, लिख सकें। नींद आने से यह दौरा बुरा हुआ और दूसरे दिन सबेरे वे फिर काम में जुत गये। हम लोगों की चिन्ता मारी गयी थी। अब भी हम चेतने नहीं और कोल्हापुर की मुश्किल दौरा उन्हें करने दिया। वहाँ वे सात सभाओं में बोले फल यह हुआ कि अखीरी सभा के अन्त में फिर दौरा हुआ तब हमने समझा कि सचमुच में कुछ चिन्ताजनक स्थिति है। हमने इस बात पर अडे हुए थे कि मोटर में जिपानी जाने के बदले वे कोल्हापुर में ही ठहर जायें। मगर उन्होंने कहा कि कार्यक्रम का तो हालत में पालन करना ही होगा। इस प्रकार यहाँ आने पर हमें उन्हें और भी बुरी हालत में पाया। डाक्टर लोग बुलाये और सौभाग्य की बात है कि वे कहते हैं कि ऐपोलेक्सियाँ गांधी जी बाल बाल बच गये हैं। इसका कारण है अति परिश्रम और स्नायुओं की थकावट। उन्होंने सभी दौरे बन्द करने और जब तक पूरी ताकत न लौट आये बिल्कुल आराम लेने की सलाह दी है। इस लिए आगे कुछ दिनों के लिए हमारे सम्बन्ध में मेरा यह अखीरी साप्ताहिक पत्र होगा। पाठकों के साथ इस प्रार्थना में शरीक हों कि दौरे फिर से शुरू होवें लेकिन पिछले दौरों की मारक स्थिति में नहीं बल्कि सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था से उनमें कम से कम तकलीफ हो और रोज कुछ काफ़ी आराम मिल सके। हमारे राष्ट्र की तालीम हो रही है। हमें कितनी सीखनी और कितनी भूलनी है। सबसे आवश्यक बात यह सीखनी है कि हम आप तकलीफ सह कर आत्म-चेतना प्राप्त करें न कि शिक्षकों की जान ले कर। हमें यह बात भूल जानी है कि हम में जो थोड़े से शिक्षक अब भी बचे हुए हैं, वे कुछ हमारे आपके जैसे आदमी नहीं बल्कि देवता हैं, जिन्हें सोने, आराम करने की जरूरत नहीं है और उन दैवी कलों से जब तक उनका दम में दम है, हमें काम ही लेते जाना चाहिए। कब तक ये बातें सीख और भुला सकेंगे?

× × × ×

ऊपर की बातों से मालूम होगा कि नीचे के वर्णन में बहुत ही करुण रोचकता है।

कोल्हापुर में गांधी जी पहले कभी नहीं गये थे। इस लिए प्रबन्धकों ने सोचा कि अब गांधी जी से जितना कुछ ले सकेंगे उसे ही लेंगे। अहत्तों को अपनी अलग सभा कराये बिना कहीं और उन की शाला में न जाने के लिए गांधी जी को उनके बहस किये बिना छुटकारा कहाँ? आर्य समाजी ही उन्हें कहीं छोड़ने लगे। छादी पहनाया था ही और चर्खा-मन्दिर की भी



११ मार्च, १९२७

११ मार्च, १९२७

को लो भी। जितनी नीवें हम ढाल सकें, ढाल लेंगे। मकानों को तो भगवान् कर ही लेंगे। तब स्त्रियों की सभा भी होनी चाहिए क्योंकि उन्हें हम पुरुषों ने अपने से इतनी दूर रख रखा है। अलग अलग व्याख्यान चाहिए! स्कूल के लड़कों को अलग अलग शिक्षा मिलनी ही चाहिए क्योंकि उनके माबाप का एक साथ ही गुलामी में रखेंगे जिसमें उनकी जिन्दगी बीती है। तब उनके लिए भी अलग सभा होनी चाहिए। और जो छोटे लड़कों ने आपस में ३८५) ६ की थैली जमा कर ली है, उस बलग सभा का सम्मान उनसे कौन छीन सकता है? और हमारी गूंगी गाय के समान विना कैसे चलेगा? और गांधी जी को जाना ही चाहिए क्योंकि और लोगों के यहां गांधी जी को जाना ही चाहिए क्योंकि और गांधी तो कम से कम इसीलिए कि उन्हें निमंत्रण देने को जवान है। शुक्र है खुदा का कि म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट के मेम्बरों के लिए अलग सभा करनी जरूरी नहीं समझी है। अन्नाहणों के लिए खास सभा जरूरी थी क्योंकि वे क्यों मिल जायें? मैं इसी आशयों की बात भूल रहा हूँ। उन्होंने भी अपना हक पेश किया और गांधीजी के मुंह 'सर्वोपराय' का अर्थ सुना। पाठक मेरा आशय समझने को कहें। मैं जो बात कहना चाहता हूँ, वह यह है कि जो शक्ति से ठोस काम करने की चाह नहीं है बल्कि हम को, उन्हें अपने यहां लाने का अपना अपना दावा पेश करते हैं। उनसे लाभ उठाना चाहते हैं। और सबकी अपनी अपनी सभाएँ हुई। इसी आशयों ने कि गांधीजी के कार्य में हम उनसे सहमत हैं, हम अराष्ट्रीय हो गये हैं, अछूतोद्धार के हम हाथी हैं, और गांधीजी से 'सर्वोपराय' के विषय में कुछ सुनना चाहते हैं। गांधीजी कहें, 'मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि 'ईश्वरीय राज्य' ही है, और हम 'प्रभु', 'प्रभु' कह कर उसे नहीं पा सकते। प्रभु की इच्छा और काम करके ही पा सकते हैं। अगर हम उस राज्य के बाहर से आने की आशा किये तो हमें बहुत बड़ा धोखा होगा। मुझे खुशी है कि मेरे काम में मुझसे सहमत हैं। मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि मैं जो कुछ करता हूँ उसी दशा की प्राप्ति को मान कर करता हूँ। आप कहते हो कि अछूतोद्धार का भी उतने ही बड़े प्रेमी हो, जितना मैं। मैं आपको बतला दूँ कि आप खादी में सन लगाये बिना अछूतोद्धार नहीं कर सकते क्योंकि अछूतोद्धार तो होता ही है। उससे भी और कई बड़े काम हैं। आप क्या जानते हैं कि गांवों में लोग भूखों मर रहे हैं। उनका नाश अभी अभी होना ही चाहता है। अगर हम सोने, आभूषण सुन पाते तो हम जरूर सुनते कि उसका नाम हमें है और गरीबों की पर्वा नहीं करते। अभी उस दिन जो एक ऐसी जगह पर मिले जहां खादी और चर्खे का प्रचार हो दिखलाया पड़ता था। मैं आपको ऐसी जगहों को बता दूँ और अगर आप न जा सकें तो मेरी बात को कि गरीबों के लिए चर्खे के सिवाय दूसरा सहायक नहीं है। गरीबों को जो थोड़ी सी सहायता की जरूरत है अगर हम न करें तो फिर ईश्वर का नाम लेने और गरीबों की बात करने का कोई मतलब नहीं है। कृपा कर के आप और अपनी आंखों सब कुछ देख कर गरीबों की मदद को उनमें मिला दीजिए।'

गोशाला में उन्होंने उसे आदर्श दुग्धालय और चर्मालय बनाने तथा, गायों की सेवा और मरे जानवरों की खाल का सदुपयोग करने को कहा।

महिलाओं की सभा में सानन्दाश्वर्य हुआ। किसीने भी इतनी बड़ी सभा की आशा न की थी क्योंकि कोल्हापुर में ऐसी सभाएं कभी हुई ही नहीं हैं। धन और गहनों की माँग की उन्होंने तुरत ही पूर्ति की।

स्कूल के लड़के, अपनी जमा की हुई थैली लेकर धूप में बैठे हुए थे। उन्होंने गांधी जी से निर्भयता का पाठ सीखा। 'निर्भयता ही सभी शिक्षाओं की जड़ है। यही से शिक्षा शुरू होती है, खत्म नहीं। अगर तुम उसीकी नींव पर अपनी सारी तालीम खड़ी न करोगे तो वह एक दिन गिर पड़ेगी।' यह सीख उनके दिल में पैठा देने के लिए, उन्होंने प्रह्लाद की कथा सुनायी और कहा कि 'विनय पूर्वक और बहादुरी से, फल की पर्वा किये बिना, तुम सत्य बोला करो जैसा कि १२ वर्ष के बालक प्रह्लाद ने किया था।

दिन में कोल्हापुर के दीवान साहेब मिलने आये थे। उनसे बड़ी देर तक बातें हुई। गांधी जी ने पूछा कि 'कोल्हापुर रियासत में क्या खादी की कोई रोक टोक है?' दीवान साहेब ने कहा 'पहले कुछ ऐसा होगा, मगर अब तो कुछ नहीं है।' गांधी जी ने पूछा, 'तब क्या आप मुझे इजाजत देते हैं कि मैं सार्वजनिक सभा में आपके नाम पर कह दूँ कि लोग सभी शाही महल में या दफ्तरों में या सरकारी समारोहों पर खादी पहिन कर जा सकते हैं?' दीवान को कोई उज्र नहीं था। गांधी जी ने सार्वजनिक सभा में यह बात कही और उन्हें इसके लिए धन्यवाद दिया। सार्वजनिक सभा के भाषण में से दो बातें मैं दूंगा। उन्होंने कहा, "खादी के बारे में किसी धोखे में न रहो। बात यह नहीं है कि खादी से किसी को सुरक्षा के पर लग जाते हैं। जिस किसी के दिल में गरीबों के लिए प्रेम है, खादी पहनना उसका धर्म है। इसे तो कोई व्यक्तिचारी पुरुष भी, कोई वैश्य भी पहिन सकती है। उनसे मैं कहूँगा कि, 'अपने चरित्र के लिए तुम भगवान् से बूझ लेना। मगर तुम अपना सुधार करो या न करो, परन्तु तुम खादी तो जरूर ही पहिन सकते हो और गरीबों की सेवा कर सकते हो।' शराब पर पसा उठाने वाला पाप करता है। सिगरेट या तम्बाकू में धन बर्बाद करने वाले को अगर आप चाहो तो, उससे छोटा पापी कह सकते हो। विलायती कपड़े पर पैसा बर्बाद करने वाला, अगर शराबी के बराबर नहीं तो तम्बाकू के प्रेमी के बराबर तो जरूर ही पापी है। हिन्दुस्तानी मिल का कांडा पहिननेवाले के लेखे में न पाप ही आता है, न पुण्य ही। मगर खादी पहिननेवाले के खाते में जरूर कुछ न कुछ पुण्य लिखा जाता है क्योंकि वह गरीबों की और देश की सेवा करता है। खादी से वह तुरत ही कुछ ऊंचे घरातल पर पहुँच जाता है। गरीबों का दोस्त बन जाता है।"

इसके बाद शोरोगुल के बीच अन्नाहणों की सभा हुई जहाँ पर बीमारी का दूसरा दौरा हुआ।

\* \* \*

मैं दूसरे भाषणों का संक्षेप नहीं कहूँगा। एक माननीय मित्र ने उस दिन मुझे कहा कि, 'दोरे की हर एक बात, हर जगह, हर सभा, हर काम का वर्णन दे कर मैं कुछ बुद्धिमानी नहीं दिखला रहा हूँ। उससे गांधी जी को हर जगह, हर प्रकार के समारोह में बुलाने की इतिहास इच्छा पैदा होती है।



इस बात की सच्चाई, अब कष्ट उठाने के बाद मेरी समझ में आयी है। वेशक सभी कार्यक्रमों को गांधी जी खुद मंजूर करते हैं और गंगाधर राव जी के शब्दों में "अपने आपसे लाभ उठाने देते हैं। जिसमें गरीबों को दो पैसे मिल जायें।" मगर अब हमें जरूर चेत जाना होगा। हमें भगवान का गुण गाना चाहिए कि यह चेतावनी और बुरी न हुई और उनकी अपनी इच्छा के विरुद्ध भी उन्हें बचाने की भर सक्त कोशिश करनी होगी।

(यं. इं.)

महादेव देशाई

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र बदि १३ संवत् १९८३

### गोरक्षा की शर्तें

मेरे लिए यह अफसोस की बात रही है कि जीवन के अन्तिम वर्षों में मैंने अपने सिर गोरक्षा का भार लिया है। मगर जब भारों को ढूँढना नहीं पड़ता, वे अपने-आप ही बेरोक हमारे पास आते हैं, तब अफसोस की कोई बात नहीं रह जाती। गोरक्षा के विषय में मेरे साथ गयी बात हुई है।

हाल में, घाटोपर, बंबई, की जीवदया संस्था की गोशाला को देखने का अवसर मुझे मिला था। इसका योग्यता पूर्वक प्रबन्ध, संस्था के मंत्री श्रीयुत नगीन दास करते हैं। यह संस्था दुग्धालय चलाने का प्रयोग कर रही है। इसका प्रशंसनीय उद्देश्य है अन्तोगोष्ठा बंबई की बदनृतपाम और रोगों का घर, खानगी दुग्धालयों का स्थान लेना जो बंबई के केंद्र में हैं, जहाँ पर होरों को ध्यायाम की जगह नहीं मिलती और अच्छे अच्छे जानवर, अकाल में ही कसाई की छुरी के घाट उतारे जाते हैं।

यद्यपि इस संस्था का प्रबन्ध योग्यता से होता है, मगर इसमें मौलिक त्रुटियाँ भी हैं। पृष्ठ पर मुझे संस्था का ध्यान भी उन दोषों की ओर दिलाना पड़ा। इसी सिलसिले में मैंने गोरक्षा की शर्तों को बतलाने का भी साहस किया था। उन्हें यहाँ दुहराने से काम ही होगा।

१. ऐसी हर एक संस्था बाहर मैदान में होनी चाहिए जहाँ कि खूब काफी, हजारों बीघे खुली जमीन मिल सके, जिससे दोतों को चारा भी मिले और व्यायाम भी। अगर सभी गोशालाओं का प्रबन्ध मेरे हाथों में होता तो मैं सभी गोशालाओं को नके पर बँच देता और आसपास में ही सुभीते की जमीन खरीदता। जहाँ की गोशालाएँ महज गाएँ भर्ती करने के लिए होतीं सिर्फ वही की जमीन छोड़ता।

२. प्रत्येक गोशाला को आदर्श दुग्धालय और चर्मालय बनाना चाहिए। हर एक घरे-दोर का संचय करना चाहिए, और उसकी बाल, हड्डियों, और दूसरे अंगों की वैज्ञानिक रूप से कमाई होनी चाहिए और उनका अधिक से अधिक लाभदायक उपयोग होना चाहिए। मैं मुरदार चमड़े को पक्षि और व्यवहार्य वस्तु मानूँगा। यह चमड़ा हलाली या मारे गये दोर के चमड़े या और अंगों से अलग है, जिसे आदमियों के या कमसे कम हिन्दुओं के व्यवहार के अनुपयुक्त मानना चाहिए।

३. कई गोशालाओं में गोपूत्र और गोबर को फेंक देते हैं। इस परवारी को मैं गुनाह मानता हूँ।

४. सभी गोशालाओं का प्रबन्ध वैज्ञानिक देख रेख में होना चाहिए।

५. अगर सुप्रबन्ध हो तो हर एक गोशाला को स्वावलम्बी होना चाहिए, और वह बनायी जा सकती है और दान का उपयोग उसकी वृद्धि के लिए हो सकता है। इन संस्थाओं को नफा करने वाली चीज बनाने का विचार नहीं है; बल्कि सभी लाभों का उपयोग अंग-विहीन, लाचार जानवरों को खरीदने और खुले बाजार में कसाईखाने के लिए बिकनेवाले सभी जानवरों को खरीदने के लिए होना चाहिए।

६. अगर गोशालाएँ भैंस, बकरियाँ रखें तो फिर यह काम असंभव होगा। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, चाहे मैं कितना ही इसका उलटा क्यों न चाहूँ मगर जब तक सारा हिन्दुस्तान निरामिष भोजी नहीं बन जाता, बकरियाँ या भेड़ें, कसाई की छुरी से बचायी नहीं जा सकती। अगर हम भैंस का दूध पीने का आग्रह छोड़ दें तो उसे बचाया जा सकता है। दूसरी ओर बंबई में गाय के दूध के बदले, भैंस का ही दूध पीने की चाल है। वैद्य लोग इस पर एकमत हैं कि गाय का दूध भैंस के दूध कहीं अच्छा होता है और दुग्धालयों के विशेषज्ञों का कहना है कि आज गाय का दूध जैसा मिलता है, उसे उससे कहीं अधिक पुष्टिकर तैयार कराया जा सकता है। मैं मानता हूँ कि गाय और भैंस दोनों को बचाना असंभव है। गाय की रक्षा तभी हो सकती है जब भैंस का पालन बंद कर दिया जाय। कृषि कर्म में भैंसे का कुछ बड़े पैमाने पर उपयोग नहीं हो सकता। आज जितनी भैंसे हैं, उन्हें हम बचा सकते हैं, अगर उनकी नस्ल हम और न बढ़ावें। भैंस की, या गाय की ही रक्षा करना कुछ धर्म का अंग नहीं है। हम अपने काम के लिए उन्हें उत्पन्न करते हैं। भैंस को उत्पन्न करना तो, गाय और भैंस दोनों के प्रति क्रूरता है। दया-प्रेमियों को जानना चाहिए कि इस समय भी हिन्दू ग्वाले पाड़े को बड़ी निंदेयता से मार डालते हैं क्योंकि उन्हें खिलाने में कोई लाभ नहीं होता है। गाय और उसकी सन्तति की रक्षा के हाँ लिए — और यही एक मात्र व्यावहारिक प्रस्ताव है — हिन्दू लोग गाय और उसके सम्बन्ध की तिजारत से नफा छोड़ सकते हैं, और किसी जात के लिए नहीं। सच्चे धर्म की दया-धर्म का खाता ठीक रखना होगा यानी आमदनी और खर्च पूरे पूरे बराबर होने चाहिए। ऐसी स्थिति गाय के लिए ही संभव है और धार्मिक हिन्दुओं के दान की कुछ वर्ष तक सहायता मिलने पर ही केवल गाय के लिए संभव है। यह याद रखना चाहिए कि कि यह बहुत बड़ा प्रयोग, गोभक्षक संसार के विरोध के रहते हुए हो रहा है। जब तक सारा संसार मुख्यतः निरामिषभोजी नहीं बन जाता, मेरी बतलायी सीमाओं से आगे बढ़ना असंभव है। यहाँ तक सफलता पाने का अर्थ है, आगे की पाठियों के और प्रयत्न करने का रास्ता खोल देना। इन सीमाओं का उल्लंघन करने का मानो होगा हमेशा के लिए गाय को और उसके साथ दूसरे जानवरों को भी कसाई के हाथों में दे देना।

गोशालाओं और पीजरापोलों के प्रबन्धक हिन्दू लोग और दूसरी दया-प्रचारिणी सभाएँ, अगर वे बुद्धिपूर्वक धार्मिक हैं तो, गोरक्षा की ऊपर दी हुई शर्तों को मन में याद रखेंगी और उन्हें पुरत ही असल में लावेंगी।

(यं. इं.)

मोहन दास करमचन्द गांधी



## गुरुकुल महोत्सव

## रजत-जयन्ति

स्वामी श्रद्धानन्द जी की उत्तमोत्तम कृति गुरुकुल को २५ साल हो गये। इस अवसर पर आकर जो भी आशीर्वाचन देने की प्रार्थना गांधी जी से आचार्य राम जी मनीषों से कर रखी थी। स्वामी जी के देहान्त के बाद जाने के वचन का पालन करना तो अब विशेष रूप से होना पड़ा।

विशेष रेशन पर उतर कर के कनखल से होकर चार दिनों के रास्ते पर गंगा पार कर के गुरुकुल में जाते हैं। हरिद्वार के बाहरियों की भीड़ की गिनती नहीं थी। ऐसा देखने वाला कि मानों किसी महा धार्मिक मेले में हार के हार जा रहे हों। इस रजत महोत्सव के अवसर पर ही गुरुकुल में सप्ताह समारंभ भी था ऐसे पदवीदान के प्रसंग पर जो लोग आदमी जाते हैं, पर इन यात्रियों में तो कितने ही ऐसे आमवर्ग के लोग थे। सद्गुरु जी सचके मन में होता है, वे सभी लिखा गादियों में भर भर कर बहा जाती होंगी ?' गुरुकुल की ओर खींचनेवाली शक्ति, स्वामी श्रद्धानन्द जी का ही था। गांधी जी के जाने के कारण भी कितने आये-गये बगल लगी हुई रावटियाँ और दूकानें महासभा की याद से छाये हुए मंडप के भीतर की उपस्थिति से कुछ कम न थी।

## राजेन्द्र बाबू का भाषण

जब दिन हम पहुँचे, वह समारंभ का तीसरा दिन था। पदवी-दान समारंभ चल रहा था, और आचार्य जी दे रहे थे। इसके बाद राजेन्द्र बाबू ने, अध्यक्ष-पद से भाषण शुरू किया। कोलाहल इतना अधिक था कि जिससे के कुछ लोगों को छोट कर और कोई सुन न सकता था। भाषण के प्रारंभ में, पाश्चात्य और पौराणिक संस्कृति में एक प्रवृत्ति - प्रधान है, दूसरी निवृत्ति - प्रधान — राजेन्द्र बाबू ने अपना स्थान ग्रहण किया। उनका भाषण हुआ था। उसे पढ़ने का आग्रह न रख कर वे, दो बेंचों में बैठ गये। उनके भाषण में से कुछ उतारे देता हूँ: 'वे यह नहीं कहता कि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को छोड़ दो। पर इस ज्ञान-विज्ञान को लोक-हितकारी बनाना है। इसके अनुकूल मनोवृत्ति रखनी चाहिए। किन्तु एक गुरु और विलास की प्रवृत्ति उचित सीमा में मर्यादित होनी चाहिए, जब तक हम यम नियम की कठिन साधना नहीं करते, जब तक त्याग और सेवा से आत्मा नहीं बनती, इस ज्ञान-विज्ञान को लोक हितकारी बनाना नहीं है। हमारे गुरुकुलों और राष्ट्रीय विद्यालयों का यह उद्देश्य चाहिए कि आवश्यक ज्ञान विज्ञान की चर्चा और प्रयोग के साथ साथ, आत्म-निग्रह, त्याग और सेवा की दीक्षा प्रेषित विद्यालय की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा: 'भारत की कोई भी संस्था पारतीय या राष्ट्रीय कहलाने का दावा नहीं कर सकती है जब वह अपने विद्यार्थियों को हिन्दुस्तान का भूतलाल बनाए, जलरतों का, दीनता और दीनता का, दुःख का अनुभव करावे, जो इस दुःखदरिद्र को दूर करे, देश की शक्ति को बचावे, बिसरी शक्ति का संचय करने और नवजीवन को प्रताप दे, और उस मार्ग पर संकल्प, साहस, दृढ़ता और प्रयत्न के साथ चलने की योग्यता विद्यार्थियों में उत्पन्न करे...

आदमी गांवों के रहने-वाले थे और १८९१ से १९२१ तक शहरवाले, बस्ती के परिमाण में सैकड़ों बढ़े हैं। जो यह हिसाब जारी रहा तो हिन्दुस्तानियों को शहराती बन जाने में तीन हजार साल चाहिए। इसलिए हमें यह बात माननी ही चाहिए कि गांव और गांवों के जीवन को ही आधार मान कर हमें अपनी शिक्षणशैली का निर्माण करना चाहिए।'

आजीविका के सवाल का विचार करते हुए उन्होंने कहा:

“हम जानते हैं कि आज बीस पचीस रूपयों की मामूली नौकरी के लिए मैट्रिकयुक्तों और प्रेजुएंटों की सैकड़ों, हजारों अभियाँ पड़ती हैं। यह दावा तो झूठ है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने से नौकरी मिलती ही है। सरकारी स्कूलों के, सरकारी शिक्षा पद्धति के बड़े से बड़े, और कट्टर से कट्टर हिमायती से मैं पूछता हूँ कि वहाँ के पढ़े हुए सभी विद्यार्थियों को नौकरी मिल ही जाती है, या उनकी रोटी का खवाल टल जाता है क्या? अगर बात ऐसी न हो तो यह क्यों पूछा जाता है कि राष्ट्रीय पाठशालाओं के — गुरुकुलों के — विद्यार्थियों का आगे चल कर क्या होगा? अगर दोनों जगहों रोटी का सवाल एक सा ही मुश्किल हो तो फिर किस लिए लोग राष्ट्रीय विद्यालयों को अपनाते नहीं हैं? यहां से तो निकल कर विद्यार्थियों को राष्ट्र-सेवा और समाज-सेवा का अवसर मिलेगा, उधर सरकारी विद्यालयों में रह कर तो सरकारी चक्की चलानी है, सरकार को गुलामी का राज्य बनाये रखने में मदद करनी है।”

## मालवीय जी का आशीर्वाद

इसके बाद साधु भास्वानी उठे उन्होंने सभी ओर बैठे हुए श्रोताओं को प्रणाम किया, और प्रणाम कर के बैठ गये। इसका भी वैसा ही असर हुआ, जैसा भाषण का होता। इसके बाद पं० मालवीय जी आशीर्वाद देने को खड़े हुए। पण्डित जी की बुलन्द आवाज से भला कौन शान्त नहीं होता? सारा कोलाहल तुरत ही शान्त हो गया। यों कह कर कि, गुरुकुल को जीता रखने के लिए सदा तत्पर रहो और स्वामी जी की विरासत को बढावो, उन्होंने उपस्थित जनता से व्रत-भिक्षा मांगी। यह भिक्षा और कुछ नहीं थी, केवल विदेशी वस्त्र के त्याग, खादी-धारण और जहाँ खादी न मिले, वहाँ स्वदेशी मिल का कपड़ा पहनने का व्रत था। इस संबंध में उनका भाषण स्मरणीय था। पर उसे यहाँ न देकर खादी-प्रदर्शन खोलने के समय के भाषण के साथ ही मैं दूंगा।

इसके बाद, पदवी-प्राप्त स्नातकों को पदवियाँ और पारितोषिक वगैरह दिये गये। स्वामी जी के खून के बाद, खून को बहादुरी से पकड़नेवाले धर्मपाल जी को तीन तमगे मिले। और स्वामी जी को बचाने में अपनी जान जोखिम में डालने वाले धर्मपाल को ५००) रु. का इनाम मिला। पाँडे से वह रकम उन्होंने गुरुकुल को अर्पण कर दी।

## गांधी जी का आशीर्वाद

इसके बाद गांधी जी बोलने को उठे। थोड़ी देर तक तो कुछ भी कोशिश करने पर उनकी आवाज लोगों तक पहुँचती ही नहीं थी। गर्म पानी पिया, तब जाकर आवाज कुछ सुवरी। यह भाषण कुछ विस्तार से देता हूँ:

“आज तो मेरे मन में ऐसा होता है कि साधु भास्वानी के जैसे मैं भी प्रणाम करके बैठ जाऊँ। पर यों हर किसी की नकल हर कोई नहीं कर सकता। अनुकरण भी स्वाभाविक होना चाहिए। इससे मुझे तो जो कहना है, वह मैं कहूँगा।



“स्वामी जी का देहान्त हुआ ही नहीं है। देहान्त तो तब होगा, जब हम उनकी सच्ची देह को मिटाने की कोशिश करेंगे, अगवें कि सच्ची बात तो यह है कि हमारी कोशिश से भी उनकी देह का नाश होने को नहीं है — जब तक यह गुरुकुल कायम है, जब तक एक भी स्नातक गुरुकुल की सेवा करता है, तब तक स्वामी जी जीते ही हैं। स्वामी जी का शरीर तो किसी दिन गिरने को था ही। पर स्वामी जी का सबसे बड़ा काम गुरुकुल है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसमें लगा दी थी, इसे पैदा करने में उन्होंने अधिक से अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्य की प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसी की मकदूर नहीं कि वह गुरुकुल को मिटा देवे।

“पर गुरुकुल को चिरस्थायी रखने के लिए, उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवन में देखी। वीरता का लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्य का संयम है। वीरता और वीर्य की रक्षा से तुम देश और धर्म की पूरी पूरी रक्षा कर सकोगे। मैं जानता हूँ कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहाँ के बहुत से विद्यार्थियों के पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते हैं। स्तुति तो नाकाम चीज है। उसका असर मेरे ऊपर नहीं होता। परन्तु जब विद्यार्थी चिढ़ कर गाली देते हैं तो मुझे चिन्ता होती है क्योंकि क्रोध से वीर्य का नाश होता है। स्वामी जी के सामने मैंने ब्रह्मचर्य की अपनी व्याख्या रखी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्री का मलिन स्पर्श न करने में ही ब्रह्मचर्य नहीं होता। हाँ, ब्रह्मचर्य वहाँ से शुरू जरूर होता है। पर क्षमा की पराकाष्ठा ब्रह्मचर्य का लक्षण है। पिछले साल स्वामी जी जब टंकारिया से पीछे लौटते समय मुझसे मिलने गये थे तो उन्होंने मुझे कहा कि ‘हिन्दूधर्म की रक्षा नीति से ही संभव है।’ अगर तुम वैदिक आचार और विचार की रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रखो कि तुम्हें पग पग पर रुपये मिल जायेंगे, मगर ब्रह्मचर्य का, नीति का पाया यहाँ पर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टी में मिल जायगा। इस भूमि के तो आत्मा नहीं है। इसकी आत्मा तुम्हीं हो। अगर तुम आत्म बल खो दोगे और ‘उदरनिमित्त बहुकृतवेशः’ जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

“मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादी की बात करने नहीं आया हूँ। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरता का — क्षमा का है। उसे भूल जाओगे तो स्वामी जी का काम कायम नहीं रहेगा। रशीद की गोली से स्वामी जी का क्या हुआ? वे तो उस गोली से ही अमर हुए।

“स्वामी जी का दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शस्त्रों में साकवीय जी ने खादी की वकालत की, मैं नहीं कर सकता। पर इतना जरूर कहूँगा कि अगर हम हमेशे गरीबों और अछूतों की फिक्र रखेंगे तो खादी से अलग नहीं रह सकते। अगर किसी अमली काम में वीर्य की रक्षा का उपयोग करना हो तो खादी से बच कर दूसरा कोई काम नहीं है। खादी के कार्य के साथ मैं स्वामी जी का नाम नहीं जोड़ना चाहता क्योंकि यह उनका मुख्य काम नहीं था। पर तुम स्नातको। विदेशी कपड़े से अपने शरीर छुनाने का विचार न करोगे पर अपने गरीबों और अछूतों की रक्षा के लिए केवल खादी ही धारण करोगे।

“ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओं

की रक्षा करें, गुरुकुल का कल्याण करें, और स्वामी जी का हर एक काम परमात्मा चाख रखें।”

### आर्य समाज का काम

दूसरे दिन गुरुकुल के लिए धन इकट्ठा करने का खास जमना था। वहाँ भी लोग तो उतने ही मौजूद थे। आचार्य रामदेव ने गुरुकुल के स्नातकों की लिखी पुस्तकों और असहयोग में दिये गये कोषों वगैरह का वर्णन किया। उनकी कही एक दलील देने लायक है। ‘गांधी जी कहते हैं कि चर्खे से ही स्वराज मिलेगा। कहता हूँ कि स्वराज ब्रह्मचर्य से ही मिलेगा। क्योंकि संयम चर्खा नहीं चल सकता, और ब्रह्मचर्य बिना संयम नहीं और तपश्चर्या बिना ब्रह्मचर्य नहीं और गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली बिना तपश्चर्या नहीं हो सकती।’

इसके बाद चंदा इकट्ठा होने लगा। उस समय का दृश्य तो कभी भूलने लायक नहीं है। बालटियों से चंदा इकट्ठा होता था और भीतर रुपया क्या पड़ता था, मानों टकसाल चल रही थी कितनी देर तक यों रुपये की बरसात हुई। नोट भी ढेर के ढेर आते थे। इसके बाद मानों इस वर्षा में तूफान लाने के लिए गांधी जी धन की अपील करने को उठे। शिक्षा भोगने के लिए वे आनन्द से उठे। उस समय के उनके उद्गार लिखने लायक हैं:

“आर्य समाज की मैं टीका करता हूँ, पर स्तुति भी करता हूँ और जो दार्दिक स्तुति करता है, उसे टीका करने का अधिकार होता ही है। मैं मानता हूँ कि ब्रिटिश राज्य स्थापित होने वाले शिक्षितों के जनता के साथ आध्यात्मिक संबंध का नाश हुआ और उस संबंध का पुनरुद्धार करनेवाला आर्यसमाज है।

“आज जो दृश्य यहाँ दिखलायी पड़ता है, वैसे दृश्य भांग से ही कहीं दूसरी जगह देखने में आते हैं। मैं आप का कुछ अनुकरण करता हूँ पर मुझे बालटियों में पैसे नहीं मिलते। मैं तो रुमालों में पैसा इकट्ठा करता हूँ। मुझे तो पैसा मिलता है, और आप को रुपये मिलते हैं। सभी के सभी पंजाबी कुछ धनिक नहीं हैं। आप में भी गरीब लोग तो हैं ही। पर आप का दिल उदार है। मैं आर्यसमाज की टीका करता हूँ, आप को झगड़ा कहता हूँ पर आज आप का काम करने आया हूँ। उदार पंजाबियों को मैं कहता हूँ कि जो पैसा दे चुके हैं, वे फिर से दें, क्योंकि मैं यहाँ स्वीकार करना चाहता हूँ कि गुरुकुल की मार्फत हिन्दुस्तान की सेवा हो रही है। मैं ऐसा नहीं मानता कि आप की टीका करते हुए मैं आप का त्याग न समझता होऊँगा। आप में त्याग तो भरा हुआ है ही पर इस त्याग पर सन्तुष्ट न हो जाओ। जो त्याग आगे दिखलाना है, उसके मुकाबिले में, यह त्याग कुछ भी नहीं है। पर मैं आप के त्याग की स्तुति करता हूँ क्योंकि आप के बराबर दूसरे में त्यागशक्ति नहीं है। काम तो वही है जो त्यागवृत्ति से किया जाय। बाकी तो स्वच्छंद है।

“आपकी स्तुति करता हूँ तो इससे सन्तुष्ट न हो जाना। आपने दिया तो इससे यह न समझना कि पूरा दे दिया। दान का अर्थ ही है कि वह अधिक से अधिक दिया जाय। जिस संस्था के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के सर्वस्व का त्याग था, उसके लिए जितना दे सको, दो। और कुछ परिणाम न भी निकले तोभी गुरुकुल ने संस्कृत के अभ्यास को स्थान दिया है, वह क्या कुछ छोटी बात है? जब किसी पंजाबी को मैं देवनागरी पढ़ते देखता हूँ तो अटकल करता हूँ कि वह गुरुकुल का पढ़ा होगा। दोष किस संस्था में नहीं होते? पर दोषों के होते हुए



हम पागल बन गये हैं। यह निश्चित मान लेना कि जो संस्था आपस में द्वेष और भय रखना सिखलाती है, वह राष्ट्रीय नहीं है।”

(नवजीवन)

महादेव देशाई

## सोने की खान

इस शीर्षक से पाठक चकित न होंगे। मैं शुरू में ही पाठकों को बतला देना चाहता हूँ कि अभी तक मैं सोने की किसी खान के भीतर जा तो नहीं सका हूँ, मगर उसके विषय में कुछ बातें सुनी जरूर हैं, और सोना निकालने की तरद्दुद भी मुझे मालूम है। खैर, यहां तो मुझे ऐसी खान की कथा सुनानी है जो साधारण खानों से लाख दर्जें कीमती और उनके दोषों से रहित है। इसके रत्न कभी खत्म ही नहीं हो सकते।

परम प्रसिद्ध बारडोली से कुछ ही माइल की दूरी पर वेढछी गांव है। वहां पर, कुछ साल हुए भाई चुनीलाल मेहता, अपनी पत्नी और पुत्रियों के साथ, कालीपरज लोगों में जा बसे। इन कालीपरज लोगों का नाम अब बदल कर रानीपरज यानी पहाड़ी जाति रख दिया गया है। वे हुकूमत का मजा चखने नहीं बल्कि सेवा का मेवा खाने गये थे। पति के समान ही, उनकी पत्नी भी, कपास लोडने से ले कर कपड़ा बुनने तक की सभी क्रियाओं में पारंगत हैं। वे मा, बेटियां भी भाई चुनीलाल के काम में कंधा लगाने लगीं। यहीं पर तीन साल पहले, एक सभा में सभापति गांधी जी ने इन लोगों को शराब छोड़ देने और चर्खा चलाने का उपदेश दिया था। कालीपरजों ने भी, गांधी जी के कहे पर चलने का वचन दिया था। वेढछी से कुछ माइल दूर पर फिर वे इस बार सम्मिलित हुए थे। इस बार के समारोह की कल्पना गांधी जी भी नहीं कर सके थे। चुनीभाई का फरमान निकल गया था कि स्वागत समिति के सदस्य केवल वे ही लोग हो सकते हैं जो अपने घर की कती खादी पहिनते हों। सदस्य बनने के लिए मर्द, औरत बच्चे, बूढ़े सभी के सभी जुटने लगे। सभा के दिन उनकी संख्या ११०० थी, और उनके प्रबन्ध से, उनसे अधिक शिक्षित भाइयों को भी, जो सभा में थे, बहुत कुछ शिक्षा मिली। मंडप के लिए उनकी एक कौड़ी भी खर्च नहीं हुई थी, और सभापति की कुटिया, बांस की बनी हुई थी। ऊपर से दूरे पत्तों से छाया हुई थी। पायखाने का प्रबन्ध भी उतना ही साफ और अच्छा था, जितना रहने का। ये पहाड़ी लोग दूर दूर से बैल गाड़ी में चढ चढ कर आये थे। पोटलियों में उन्होंने सूखी रोटियां बांध ली थीं या कुछ ने खिचड़ी बनाने के लिए चावल ढाल बांधे थे। नदी के सूखे पेटे में इनका डेरा लगा था। वहां न तो किटसन लम्प था, न कोई दूसरी ही गैस की रोशनी। कुछ साधारण हरोकैन लालटेन थीं, और बाकी के लिए तो खुदाई मशाल, चन्द्रमा था ही।

मगर यहां विषयान्तर हो रहा है। मुझे तो अपनी सोने की खान में ही चलना चाहिए। मैंने बिना सोचे विचारे ही, इस लेख का शीर्षक सोने की खान नहीं रखा है। गांधी जी ने औरत, मर्द और बच्चों से पूछा, 'जिस जिसने कहर पहिनने का व्रत लिया हो, वह हाथ उठावे।' सभी के हाथ उठे। 'किस किसने शराब छोड़ने का वचन लिया था?' सब। 'किस किसने अपने व्रत का पालन किया है?' सब। 'किन्होंने व्रत तोड़ दिया है?' कोई नहीं। यह तो आश्चर्य-जनक बात थी। उनसे घुमा फिराकर, बार बार पूछा गया, मगर इन ११०० राम के प्यारे लोगों में से एक के मुँह से भी यह नहीं निकला कि

१९२७

जी का हा

का खास ज

आचार्य रामदेव ने

योग में दिये

कील देने का

राज मिलेगा

कि संयम विरा

ही और तपस्वी

बिना तपस्वी

य का दृश्य

इकट्ठा होता

चल रही थी

भी डेर के

लाने के लि

मौंगने के लि

उद्गार लि

उत्ति भी

ने का अधि

पित होने

का नाश

है।

से दृश्य

आप का

मिलते

मिलता

पंजाबी

पर आ

हैं, आप

ने आया

के हैं, वे

के गु

ही मानता

सता हो

पर सन्तु

गविले में

स्तुति

है। काम

छंद है।

हो जाना

दिया।

नाथ।

था, उसके

भी निक

देया है, वह

देवनारी

का प

के होते



उसने त्रत तोड़ा है। सभी दर्शकों को इसकी सचाई में सन्देह हुआ। मगर यह तो भगवान् का सत्य था। अभिमानी कांग्रेस-वादियों को, अपनी प्रतिज्ञाओं को तोड़ मरोड़ कर, मनमाने मतलब निकाल कर, अपने वादे आप तोड़ने की कोशिश करते हुए देखने के बाद, इस सत्यशील पन्थ को देख कर मेरी आंखें आनन्द से भर आयीं। चुनीभाई और उनकी पत्नी को, जिन्होंने अपनी किममत इन्हीं लोगों में लड़ा दी है, और जुगतराम दवे को, जिन्होंने सच्चे जीवन का अनुभव लेने, और जीवन के काव्य लिखने के लिए अखबार नवीसी छोड़ी थी, इस खान में काम करने के बाद, खरा सोना हाथ लगा है। मैंने मन ही मन कहा, महासभा का कीमती तमाशा बरने के बजाय, क्यों न महासमिति के सदस्यों को बारडोली से नंगे पैरों, किसी ऐसे सम्मेलन में चलने और ये गरीब पहाड़ी जो कुछ रुखा सूखा खिला सकें, खाने तथा जिस आंच में यह सोना खरा घावित हुआ है, उसकी एक चिनगारी लेते जाने को कहा जाय? इन्हीं जांचे हुए, खरे, सत्यशील लोगों पर सम्मेलन ने खारी प्रचार और मादक-निवारण का काम रखा है।

उनका अपना छोटा सा प्रदर्शन भी था ही। वहाँ पर उन्होंने, बारडोली आश्रम में सीखे हुए अपने लड़कों के बनाये चूखें, और कताई के संबंध में दूसरे यन्त्र और गत ४ साल में अपनी कताई की प्रगति दिखलाने के लिए, हर साल के अलग अलग सूत दिखाये।

#### यंत्रों की बिक्री के आँकड़े

सम्बत्	चूखें	तकुर	ओटे	धुनकियां
१९८०-८१	३८८	४६६	२३	१४
१९८२	७०	१०३	१४	२५
१९८२ (४ मास में)	३४९	३६०	९	१२
चूखों की संख्या		सूत (पाउन्ड में)		
१९८१	११०		५५०	
१९९२	५०४		२,७३६	
१९८३ (४ मास में)	५३७		२,४६०	

घर की कती खारी पहननेवाले कुटुम्ब

सं० ८२ में सं० ८३ में

चूखों की संख्या कितने चूखें बडे

बारडोली तालुका	१९८	९९	२९७	१६
मांडवी	१०	६९	७९	१७
भ्यारा	२४२	१२६	३६८	३२
महुवा	२७१	२२६	४९७	३६
सोनगढ	१३	...	१३	३
मीजान	७३४	५२०	१२५४	१०४

ये अंक आप ही अपने वकील है। इस साल के चार महीनों का काम आश्चर्यजनक हुआ है। प्रायः पिछले साल भर के काम के बराबर काम ४ महीनों में हुआ है।

लोगों के लिए प्रस्ताव तो दो थे यानी खादी प्रचार और मादक-निवारण के। दूसरे दो प्रस्ताव कार्यकर्त्ताओं पर लागू थे, जिनकी कई समितियाँ बनायी गयीं, जो जंगलात के अफसरों के अत्याचारों की जांच करके, उनके इलाज सोचें, और वर्तमान लगान कानून में परिवर्तन सोचें जिसमें सुद खोर साहुकारों से प्रजा की जमीन की रक्षा हो सके।

गांधी जी के भाषण का यहां मैं सारांश नहीं दूंगा। मैं केवल एक दो बातों का उल्लेख भर कर दूंगा। भाषण के पहले हिस्से में उन्होंने साहुकारों और भट्टीवालों की बर्तनी और पारसिया से

अपना रहन सहन सुधारने को कहा और पिछले हिस्से में पहाड़ियों को बधाई दी और आत्मशुद्धि का काम जोरी पर को कहा। इन्हें 'पहाड़ी लोग' का नाम देते हुए उन्होंने कहा

"तुम्हें 'कालीपरज' या काले आदमी क्यों कहा जाय सभी काले हैं। हमारे चमड़े को रंगनेवाले भगवान् उनकी कूची, सभी के सभी काले ही काले हैं। आज से तुम्हारा होगा, रानी-परज यानी पहाड़ी आदमी। पहाड़ों में रहनेवाले जैसे तुम बहादुर बन जाओ, जिसमें कोई तुम्हें ठग न करे पर जुल्म न कर सके, तुम्हारी इज्जत पर हमका न करे वन का एकान्तवासी तो हानीकृषि या डाकू या जंगली ही हो सकता है। तुम न तो डाकू हो, न जंगल के जानवर ही। तुम्हें कृषि तो बनना ही पड़ेगा। तुम्हें इसके अवसर भी काफी मिलेंगे। शहर के दुष्ट प्रलोभनों से तुम्हारा रास्ता न रोकेंगे। प्रकृति ने ही तुम्हें कन्द, पुर पर बसर करने लायक, खाने के लिए जोनेवाला न कि के लिए खानेवाला बनाया है। इस लिए हमें इस उचित स्वामित्व की तालीम देने की लियाकत तुम्हींमें है। हमारी गाथाएँ सीखो, और अपने हृदय की सहज पवित्रता से प्रेरित हो, पुराने कृषियों के समान तुम पालतू बना दो। बर्तनी को शब्द कहूँगा। मुझे खुशी है कि तुमने खादी को अपना अवसर में चाहता हूँ कि तुम अपने अंदरे गहनों को निकालो जिनसे तुम्हारे अंगों की शोभा भरती है, और जो पैरों और तुम्हारी गुलाबी के निशान हैं।" कितनी बर्तनी ने अंग बात की बात में खाली कर दिये। इनके शरीर पर या चांदी के गहने न थे। मगर अपने पीतल और सीसे के का ही, इन्हें सोने चांदी से कुछ कम मोह न था, जिसे अधिक सुसभ्य बर्तन गले लगाये फिरती हैं। दूसरी उपस्थिति बर्तनों के लिए यह अच्छी शिक्षा रही।

संक्ष को पूर्णाहुति के रूप में एक नाटक हुआ। पहाड़ियों के अनन्य सेवक जुगतराम ने उनके लिए प्रेम की से लिखा था। मगर यह उससे भी बड़ा था। यह था प्रेम खेल। इसके लिए मंच, पर्दों या पोशाक की जरूरत न थी। तो सामने के स्वच्छ, बुझारे हुए मैदान में ही, चांदनी में, और विद्यार्थी, अपने रोजाना कपड़ों में, जरा मरा अवल बरत आ खडे हुए। ऊपर आसमन का चँदीवा तना था। खेत का था 'अंधे की गाड़ी'। इसमें अंधे पहाड़ियों की जो अपना भी नहीं समझते और साहुकार, भट्टीवाला, और पुलिस की जो अपने संकीर्ण स्वार्थ को छोड़ और कुछ नहीं देखते यों पहाड़ियों का जीवन भारी बना रहे हैं बड़ी बेरहमी से उली गयी थी। जिस खूबी से वह लिखा गया था, उसी रूप वह भदा भी हुआ और लोगों के इस नाटक-लेखक की निपुणता वह नमूना ही नहीं है, बल्कि वह है, उनके सर्व-साधारण विलकुल हिल मिल जाने का निशान।

खैर, वेशक हम लोग सच्चे सोने की खान में गये थे।

(नवजीवन)

महादेव देवता

'हिन्दी नवजीवन' की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं। एक साल जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम ढाक खर्च के अलावा रुपये हैं।

व्यवस्थापक, 'हिन्दी-नवजीवन'



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

क्या करूं?

# हिन्दी नवजीवन

Subscription  
Expires Next Month

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३४ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
श्यामी आनंद

अहमदाबाद, वैशाख सुदि ६ संवत् १९८४  
गुरुवार, अप्रैल, ७ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीभरा की बाड़ी

## साप्ताहिक पत्र

मिलने पत्र में कुछ कड़वापन दिखलाने के लिए पाठक मुझे कहेंगे। क्या मुझे यह भी कहने की जरूरत है कि मुझे किसी के कुछ दोष देना न था और मैंने अनजाने तौर पर अपने उस तत्त्व का प्रयोग किया है जो सभी परिचारकों को कड़वी प्रयोग का प्राप्त है। कोल्हापुर तो केवल एक उदाहरण था। और कई जगहों पर भी हमने प्रकृति पर अत्याचार किए और वह सिर्फ इसी कारण कि चाहे जितना अधिक असह्य उसे सको, ले लो, गांधीजी तैयार थे। प्रकृति को बदला देना था ही, पर ईश्वर को धन्यवाद है कि उसके साथ उनकी दया कृपा तो है ही।

x x x x

उस दिन डाक्टर ने कहा था, 'आप जब तक निर्बल हैं, निश्चल चुपचाप पड़े रहिए।' गंगाधर राव ने कहा, 'डाक्टर ने कहा है कि आज काटिए मत।' इतने में तुरत ही उनका चेहरा बदल कर दिया, 'मान लीजिए कि कातते कातते ही मर गया तो इससे धन्य मृत्यु और क्या होगी?' तब तो उस दिन डाक्टर ने फिर दलील की। पर दलील को स्मोकर की जाय? दलील करने में खून का दबाव बढ़ता था। ऐसा मुश्किल रोगी भी किसको मिलता होगा? डाक्टर को ज्ञाने अपनी जीवन कला यों समझाया, 'आपका कहा मैं मान रहा हूँ मैंने अपने जीवन के कुछ नियम बना लिये हैं। मुझे उनका पालन कर लेंगा, तब आपके मानूंगा। मैं पांच चीजें ही खा सकता हूँ। आप अगर मुझे पांच चीजों की मिली खा देंगे तो मैं कुछ भी नहीं खा सकूंगा। कर्नल मैडक को मैंने यही तो समझाया था। वैसे ही काते बिना भी मैं नहीं खा सकता। मुझे लगता है कि जीना हो और खाना हो तो काते बिना नहीं सकता। मैं कातता रहूँ और आप मुझे देखने का भरोसा रखें। मैं भी बीच से अगर आखें बंद हो जाय तो मैं समझूंगा कि मैंने मर चुका हूँ और क्या होगी? आप क्या मेरे आसपास बैठेंगे तो मैं भी मर जाऊँगा कि ये कैसे शंख हैं कि मुझे कातने से

रोक न सके? अगर आप भले होंगे तो इन्हें गाली न देंगे और समझ लेंगे कि मैं अपना धर्म-पालन करते हुए मर गया। ऐसी मेरी जिन्दगी है। हाँ, एक बात है। चर्खा बंद करने को तैयार हूँ, पर तब तो खाना भी बंद कर देना चाहिए। कताई से आराम, पढ़ने से आराम, लिखने से आराम लेना पड़े तो खाने से भी आराम चाहिए। यही मेरी जिन्दगी है। इसमें फेरफार होने से मुझे जो आघात पहुँचेगा, वह दूसरे आघातों से कहीं भयंकर होगा। इसलिए मुझे कातना छोड़ने को मत कहिए।'

यह तो हुई उनकी डाक्टर से बातचीत। अब यह दिखलाने के लिए कि वे किस वातावरण में उब रहे हैं, मैं उनके एक पत्र की कुछ वानगी यहाँ दूँगा। आश्रम की बहिनों को वे प्रायः हर सोमवार को एक पत्र लिखते हैं। कभी कभी काम बहुत अधिक होने से वह रह भी जाता है मगर इस बारे क्यो छूटे? बहिनें चिन्ता करती होंगी। उनको नाहक (1) चिन्ता करने से रोकना चाहिए। इस लिए लिखा :

"मेरी गाड़ी अटक गयी है। इससे घराना नहीं। आज तो अटक ही भर गयी है, एकाव साल में टूट भी जाय तो उससे क्या? गीता जी मैं तो पुकार कर कहा है, और हम रोज अनुभव करते हैं कि जिसका जन्म हुआ है, उसे मरना जरूर है, और मरा हुआ, जन्म लेता ही है। सभी अपना कर्ज थोड़ा बहुत चुका कर अपने रास्ते लगते हैं। मेरा कहना तो सब ही है। विकार बिना रोग नहीं होते। पर निर्विकारी को भी तो यहां से जाना है ही। वे पके फल के समान सहज ही टपक पड़ते हैं। यों सहज ही टपक पड़ने की इच्छा और आशा मैंने रखी है। वह अब भी है, मगर आगे का हाल कौन जानता है? विकार तो है ही। वे अपना काम करते जाते हैं। निर्विकार स्थिति तो अनुभव होने के बाद ही सच्ची होगी।"

एक दूसरे पत्र में लिखते हैं :

"यह निश्चय बढ़ता ही जाता है कि स्वराज का अर्थ है चर्खा-राज। उसकी स्थापना करने के लिए प्राण दे देना।"



एक और पत्र में जीवन का मर्म बतलाया है :

“यह मुझ पर क्यों नहीं लागू पड़ता कि जो यह किये बिना खाता है, वह चोरी का अपराधी होता है ? सोना, बैठना, खाना, पीना तो पशु भी कर सकता है। डाक्टर तो विचार करना भी मना करते हैं। मुझसे यह होगा ही कैसे कि विचार करूँ और उसे भयल में न लाऊँ ? इस लिए मान लिया है कि लिखना, पढ़ना और कातना तो ठीक ही है। जब तीनों में से कुछ भी नहीं होगा तब उपवास करना ही सीधा से सीधा औषध मालूम पड़ता है।”

यह तो हालत है। जरा अच्छे होने लगे कि फिर इन्हें रोकना मुश्किल हो पड़ेगा। अभी तो उनसे काम लेनेवाले खूब चेत चेत कर ही चल सकते हैं, वे खुद जितना काम मांगें, उससे अधिक काम न दिया जाय, अपने आप तो और काम लादने का गुनाह कोई करे ही नहीं।

× × × ×

श्रीयुत राजगोपालाचार्य के शब्दानुसार, ‘ईश्वर हमारी जांच करना चाहता है। देखना चाहता है कि गांधी जी के दर दर न फिरने पर भी हम अपने चन्दे देना चाहते हैं या नहीं।’ निपानी की तो जांच हो गयी। वह खरी उतरी। इन चार दिनों में जब तक हम वहाँ ठहरे रहे, लोगों का व्यवहार आदर्श था। वहाँ पर कहीं शोरगुल नहीं था, दर्शन का कोई आग्रह नहीं था। वे जानते थे कि गांधी जी सहसा बीमार पड़ गये हैं और सब कोई शान्ति से आते फाटक पर गांधी जी की दैनिक-स्वास्थ्य-सूचना पढ़ कर लौट जाते। वहाँ से चलते समय, हमारे मेजबान ने केवल इतनी इच्छा भर प्रकट की कि गांधी जी खिड़की के सामने एक दो मिनट के लिए बैठ जायें तो उनके कारखाने में काम करनेवाली स्त्रियाँ गांधी जी का दर्शन दूर से कर दें और उनके दो प्रतिनिधि ऊपर जाकर पैली मेट कर आवें। यह सारा काम बहुत शान्ति से सहज ही हो गया। माता जी (श्रीमती गांधी) ने स्त्रियों के बीच बैठ कर उन्हें कुछ बातें सुनायीं। दूसरे दिन हम बेलगांव के लिए रवाने होने वाले थे। श्रीयुत मूल जी ने कहा कि गांधी जी केवल सभा में चले भर चले, जहाँ पर श्रीयुत गंगाधर राव के और सब काम खत्म कर लेने पर वे सिर्फ पैली ले लें। गांधी जी की मोटर सीधे मंच तक ले जायी गयी। जब तक मानपत्र पढ़ा गया और (८४५७) रु. की पैली अर्पण की गयी, वे चुपचाप एक कुर्ची पर बैठे रहे। सारा काम १० मिनटों में खत्म हो गया। उन्होंने गंगाधर राव जी को अपनी ओर से संक्षेप में अन्यावाद का सन्देश धीरे से सुना दिया, गंगाधर राव जी ने वह जोर से उदराया। अब हम बेलगांव को रवाने हुए। श्रोता मंडली खूब खुश थी। निपानी जैसे सुसंगठित स्थान में इसके कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

अब उस पैली का ग्योरा भी देखिए:

निपानी में नकद चन्दा  
सिर्फ किसानों से बसूल  
निपानी बाजार में तम्बाकू  
बेचनेवाली गलित महार जाति  
मूलभी सिक्का कम्पनी के मजदूर  
अन्यों से विविध चन्दा  
हाँ स्कूल के लड़कों से

रु. आ. पा.

६,०८०-०-३

१,६२२-०-०

५४१-९-६

१०३-१३-६

९२-२-६

१०१-६-०

सभा में मालाओं का नीलाम

वगैरह से

मुतफरकात

खर्च

गाडीभाडा विज्ञापन, प्रचार वगैरह

थैली

यह उदाहरण श्लाघ्य है। हम आशा करें कि इसका अनुसरण और लोग भी करेंगे। कौन जानता है कि बीमारी के रूप में परमात्मा की अनुकंपा ही न होवे।

× × × ×

निपानी की सभा से कुछ लोगों के मन में ऐसे खयाल गये हैं कि गांधी जी अब अच्छे हो गये और सभाओं में भाषण करने लगे हैं। अभी से हमारे पास पत्र आने शुरू हो गये हैं कि फलां सभा में सिर्फ पांच मिनटों के लिए, बेलगांव लौटते गांधी जी आयें। दूसरी सभावाले भी उतनाही समय मांग रहे हैं। मित्रों ने बधाई के पत्र भेजे कि गांधी जी अच्छे हो गये हैं। कुछ नये निकलनेवाले पत्र लेख भी मांगने लगे हैं।

मुझे बड़े खेद के साथ उन्हें बतलाना पड़ता है कि स्वास्थ्य की दिल्ही दूर है। गांधी जी अभी विस्तरे पर ही हैं। डाक्टरों ने जरा भी शारीरिक या मानसिक श्रम करने की इजाजत नहीं दी है। अभी खुद उन्हें भी इसके लिए ताकत मालूम होती। कौन जाने कि यों दितने दिनों तक काम करना ही पड़ेगा।

× × × ×

निपानी की दूसरी चेतावनी के ठीक एक हफ्ते बाद मैं पत्र लिख रहा हूँ। हम लोग इस समय सावन्तवाडी के निकट छोटे से पहाडी स्थान में हैं जहाँ पर गांधीजी के शान्ति आराम लेने का सब प्रबन्ध सावन्तवाडी के राजा साहेब ने कर दिया है। यह स्थान समुद्र से बहुत ऊँचा नहीं है। यहाँ समुद्र सीधे १२ माइल पर है और समुद्री हवा के यहाँ आने कोई रुकावट भी नहीं है। इसलिए इस स्थान को एक साफ पहाडी स्थान और समुद्र के पास के स्थान की खूबियाँ तो प्रसिद्ध हैं परन्तु जहाँ और पहाडी स्थान या तो रोगियों के कारण अस्पताल से मालूम पड़ते हैं या केवल कौतुक और मजे के लिए आये हुए ‘पैशेनेबुल’ लोगों के कारण उनका वातावरण बहुत बुरा बना रहता है, यहाँ वह सब कोई बात नहीं है। इस स्थान की शान्ति, गांधी जी के लिए थकावट के बाद मरहम की मिली है।

हमें यहाँ रहते चार दिन हो चुके। गांधी जी की तबीयत मजबूत मालूम पड़ती है मगर अभी उतनी जल्दी उन्नति नहीं होती, जैसी कि लोग चाहेंगे। बात यह है कि महीनों ही नहीं, बल्कि सालों की नींद और आराम की कमी उन्हें पूरी करनी है। अभी तो आगे का दौरा बंद कर दिया गया है और सायद दो महीनों के लिए आराम लेने वे माईसोर जावेंगे। इस बीच हम लोग धर्म के साथ ईश्वर-प्रार्थना करते हुए रास्ता देखें।

(य. ई. और नवजीवन)

महादेव देशाई



मालवीय जी और खादी

देखाई

धन की भिक्षा का अच्छा जवाब मिला। यह कहने से भी चल सकता है कि जब से मालवीय जी ने खादी को आशीर्वाद दिया है, तब से नया ही युग शुरू हुआ है। हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर मालवीय जी दश दिन बितानेवाले थे। उस बीच में खादी कार्य खूब बढ़ाने का वचन ले कर गांधी जी ने उनसे छुट्टी ली।

(नरजीवन) महादेव देसाई



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, चैत्र सुदि ६ संवत् १९८४

## मैं क्या करूँ ?

सत्याग्रह सप्ताह सिर पर है। इसके छपते छपते भी एक दिन बीत जायगा। पाठकों को मैं कहूँगा कि यह सवाल पूछ कर कि 'हम क्या करें?' वे सप्ताह को यों ही न गँवा दें। यह सवाल पूछ कर कि 'मैं क्या करूँ' इससे वे अधिक से अधिक लाभ उठावें। एक समय था जब यह सवाल पूछने में भी लाभ था, और हम पूछते भी थे। अगर हर शस्त्र अपने कर्तव्य का पूरा पूरा पालन करे तो हम शीघ्र ही यह पूछने लायक भी होंगे कि, 'अब हम आगे क्या करें?'

राष्ट्र निर्माण के ही समाप्त, सत्याग्रह की जब निःसन्देह आत्मशुद्धि, आत्मार्पण, और आत्मत्याग हैं। हर कोई अपने मन से पूछे कि 'राष्ट्रीय दृष्टि से मैं कैसे आत्मशुद्धि कर सकता हूँ?' खानगी जीवन की पवित्रता निश्चय ही इसकी नींव है। अगर मेरा खानगी जीवन गँदला है तो मैं पोले ढोल के समान हूँ। तब अगर मेरा अन्तर ठीक नहीं है तो मुझे जरूर इसी क्षण अपने को सुधारना होगा, बलिदान के योग्य पात्र बनना होगा। इसमें सरकार मेरी सहायता नहीं कर सकती। विरोध भी उसके किये नहीं हो सकता। मेरा बनना विगड़ना बिलकुल मेरे ही हाथों का खेल है।

पहले अपना खानगी जीवन शुद्ध कर लेने के बाद मैं यों धौंछूँगा। राष्ट्र का सेवक बन कर मैं क्या करूँ? अगर मैं हिन्दू होकर मुसलमान से या किसी दूसरे परधर्मी से घृणा करता हूँ तो मुझे उससे सम्माननीय समझौता जरूर करना पड़ेगा। अगर मैं अब तक घमंड से या अज्ञान से किसी आदमी को अछूत मानता रहा तो अब, मुझे यह कलङ्क दूर करना पड़ेगा, उसे गले से लगा लेना होगा और इसी निशानी के तौर पर उसकी कुछ शस्त्री खिदमत करनी होगी; चाहे यह उसके मुहल्ले में जा कर उसके लडकों को इकट्ठा कर साथ खेलना ही भर क्यों न हो। फिर इन बातों में भी मुझे सरकार की सहायता दरकार नहीं है और तौभी ये काम दिल लगा कर करने से मैंने स्वराज को अधिक निकट लाया है, और जब कभी मौका दरपेश हो संगठित सेवा के लिए अपने को अधिक योग्य बनाया है।

क्या मेरे आसपास में शराब की कोई दुकान है? एक भूले भटके भाई को नाशवर्ग से मुझे लौटाना ही होगा। १९२१ में हमने बड़े शान से यह काम शुरू किया। हमारी हिंसा-प्रवृत्ति से इसका बैसा ही भड़ा अन्त हुआ। अगले कि अभी तत्काल सार्वजनिक रूप से प्रयत्न करने का योग्य वातावरण यहाँ नहीं है, व्यक्तिगत रूप से कोशिश करना अब भी संभव है।

अखीर मैं कातना तो हूँ ही मगर यह किसी से कप मदत्व का काम नहीं है। अगर मेरा विश्वास है कि चरखे में गरीबों का दुःख दूर करने की ताकत है तो मुझे अपने हिस्से का तूत जरूर कातना होगा। खादी की फेरी लगानी पड़ेगी। अगर मेरे पास ताकत हो तो अपने पड़ोसी को दरिद्रनारायण के लिए कातने को कहना होगा, और अगर वे विलायती कपड़ा पहिनते हो तो उन्हें उसका त्याग करने की समझाना होगा।

इतने में ही सब काम खत्म नहीं हो गये। मैंने तो व्यक्तिगत प्रयत्नों की विशाल संभवता का इशारा भर कर दिया है। इस

सप्ताह में सब कोई अपने लिए सेवा करने का अच्छा से अच्छा रास्ता ढूँढ निकालें। जो कोई इसकी खोज करेगा वह एक सप्ताह मिलकर किये जाने वाले शान्त, अरोक और फलदायक कामों को विशाल संभवता को देख कर, चकित रह जायगा। एक सप्ताह मिलकर करनेवाले कामों की विशदता से ही हमारे हाथ पाँव सुख न होंगे या आँखें चौंधिया न जायें। आज जो दो चार पाँच सप्ताह के बारे में सब सावित होगा, कलह बही चारे देश के बारे में सब होगा, बशर्ते कि वे आशा न छोड़ें, हिम्मत न हार दें।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचन्द गांधी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

### अध्याय १८

#### गाखले के साथ एक महीना (२)

गोखले की छाया में रह कर मैंने सारा समय घर में बैठ कर नहीं बिताया।

मैंने दक्षिण अफ्रीका के ईसाई मित्रों को कहा था कि हिन्दुस्तानी ईसाइयों से मिलूँगा, और उनकी स्थिति जानूँगा। कालीचरण बनर्जी का नाम मैंने सुना था। वे महासभा में खूब भाग लेते। इससे उनके विषय में मेरे मन में मान था। सामान्यतः हिन्दुस्तानी ईसाई महासभा से और हिन्दू मुसलमानों से अलग रहते, इसलिए उनके प्रति जो अविश्वास था वह बुरा नहीं था। कालीचरण बाबू के साथ न थी। उनसे जाकर मिलने की बात मैंने गोखले से की। उन्होंने कहा, 'वहाँ, जाकर क्या लोगे? ये बहुत भले आदमी हैं पर मुझे मात्तम होता है कि वे तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकेंगे। मैं उन्हें भलीभाँति जानता हूँ तौभी तुम्हें जाना हो तो खुशी से जाओ।'

मैंने समय मांगा। उन्होंने मुझे तुरत ही समय दिया, मैं गया। घर पर उनकी पत्नी मरणशय्या पर पड़ी हुई थी। उनका घर आदा था। महासभा में उन्हें कोट-पतलून पहने देखा था। उनके घर में उन्हें बंगाली धोती, कुर्ता पहिने देखा। वह सादगी मुझे रुची। उस समय अगर्चे कि मैं खुद पारसी कोट पतलून पहने हुए था, मगर मुझे उनकी यह सादगी खूब लगी। उनका समय न खराब करते हुए, मैंने अपनी कठिनाइयाँ पेश की। उन्होंने मुझे पूछा, 'आप क्या मानते हैं कि हम पाप लेख जन्म लेते हैं?'

मैंने कहा, 'हाँ, साहब।'

'तब तो इस मूल पाप का निवारण हिन्दूधर्म में नहीं है और ईसाई धर्म में है।' यों कह कर उन्होंने कहा, 'पाप का बदला मौत है। बाइबिल कहता है कि इस मौत से बचने का मार्ग ईसू की शरण है।'

मैंने भगवद्गीता का भक्तिमार्ग उपस्थित किया, पर मेरा बोलना निरर्थक था। मैंने उनकी भलमन्दाइट के लिए उपाय माना। मुझे सन्तोष न हुआ, पर इस मुलाकात से मुझे लाभ ही हुआ।

यों भी कहूँ तो चल सकता है कि इस महीने में मैंने कलकत्ते की गली गली की खाक छानी। बहुत कुछ काम तो पाँवपारी ही करता। इसी वर्ष न्यायमूर्ति मित्र से मिला। सर गुरुदास बनर्जी से मिला। द० अफ्रीका के काम के लिए उनकी सहायता की जरूरत थी। इसी समय राजा सर प्यारी मोहन मुकुर्जी का भी दर्शन किया।



कथा

२)

कहा था कि 'यही जगह नहीं है ? यही जगह मिली है क्या ?'

जाकर मिलने के लिए वहस आगे न बढ़ायी । हम मन्दिर में पहुँचे । सामने मेरी बही बंद रह गयी थी । दर्शन करने की मेरी इच्छा न थी ।

मो । ' मो ।

मर चुकी थी। उन्होंने कहा, 'वहाँ नगाचे बजते हैं। उस  
मर चुकी को जैसे चाहो मारो तभी उसे छोड़ें दुःख न होगा,

देखा। बाबा कहते हैं कि यह घातकी रिवाज बन्द होना चाहिए। वृद्धदेव

कहानी याद आयी, पर मैंने देखा कि यह बात मेरी  
गहर थी।

को माना, वह अब भी मानता हूँ। मेरे मन में,  
को जान की कीमत आदमी की जान से कम नहीं है।  
में नहीं है।

‘पाप का बचने का’ मैं मानता हूँ कि जितना ही अधिक अपंग घातकीयने से बचने के लिए मनुष्य का

पर मेरा उद्देश्य ही अधिक अधिकार है। पर योग्यता के हिसाब से भी असमर्थ है। बकरे को इस लिए उद्देश्य देने में भी असमर्थ है। बकरे को इस लिए उद्देश्य देने में भी असमर्थ है।

गुह्ये लाम

... और त्याग की जरूरत है। ऐसा लगता है कि अब

... नाम पर झूखते हुए ही मारना

... तो निरन्तर करता हूँ कि ऐसा कोई तेजस्वी

जहाँ, बुद्धिवाली, त्याग वृत्तिवाला, भावना प्रधान बंगाल, जहाँ को यों सहन काता है ?

मोहनदास करमचंद गांधी

‘ खर्च क्यों कर चलेगा ? ’ सचमच में शराब-बंदी के सभी

‘उन्नति’ की कोई योजना, लाखों को शराब से छुड़ाने से बच कर नहीं हो सकती । इससे गरीब से भी गरीब के घर कुछ पैसे पहुँचेंगे । शराब कर की आमदनी का एक एक रुपया छोड़ने के मानी होते हैं, गरीबों के घर में, उनके बाल बच्चों के लिए कई रुपयों का बचना और इतने रुपये बचने के मानी होंगे, लोगों के जीवन में सुधार । इससे ‘अछूतों’ को सचमुच में वह व्यावहारिक सहायता मिलेगी, जो शायद और किसी एक काम से नहीं मिल सकती । अगर मंत्री लोग इस दिशा में कुछ प्रस्ताव करें तो दल या सम्प्रदाय का खयाल किये बिना, उन्हें सबल लोकमत का समर्थन प्राप्त होगा । इसके पक्ष में सार्वजनिक आन्दोलन से उन्हें नौकरशाही की लकीर की फकीरी से सफलतापूर्वक जूझने में सहारा मिलेगा । अगर ‘संरक्षित’ ‘आधा हिस्सा’ मंत्रियों की मदद करने से इनकार करें और उनके लिए अपना काम करना नामुमकिन कर दें तो फिर इसी बात पर इस्तीफा देकर मतदाताओं से अपील करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए ।

मैंने इसके लिए एक प्रस्ताव तैयार किया है। वह किसी प्रान्त की धारा-सभा में पेश किया जा सकता है। उसे प्रकाशित करना लाभदायक हो सकता है। उसे पूरा पूरा छानने के लिए बहुत जगह चाहिए। इस लिए उन भागों को छोड़ दिया है जो सहज ही पूरे कर लिये जा सकते हैं।

यह प्रस्ताव इस दृष्टि से तैयार किया गया है कि शराब की बिलकुल रोक के ध्येय की प्राप्ति का रास्ता यह नहीं है कि स्थानीय सम्मति पर रोक की जाय, यह तरीका इस देश के लिए उपयुक्त ही नहीं है, और न स्थान स्थान पर शराब की दुकानों की संख्या घटा कर ही कुछ होगा बल्कि कुछ ऐसे जुने हुए क्षेत्रों में शराब बिलकुल बंद करके ही कुछ हो सकेगा, जो इतने काफी बड़े हों कि जिनसे इस काम का कुछ अनुभव हो सके और आगे के लिए भरोसा हो सके। यही तरीका इस पत्र में बराबर बतलाया गया है। इस प्रस्ताव में आगे बढ़ती के लिए भी अवसर दिया गया है, जैसे कुछ खास चुनिन्दा जगहों में उनका प्रयोग करने के बाद समय और अनुभव के अनुसार, दूसरे क्षेत्रों में भी यह कानून लागू कराया जा सकेगा।



इस प्रस्ताव के जरिये जहाँ कहीं इसका प्रयोग होवे वहाँ के मौजूदा आबकारी कानून को संसूख कर के इसे जारी करने की कोशिश की जायगी। जहाँ इसका प्रयोग न होगा, वहाँ पर लाइसेंस लेकर शराब बेचने के सम्बन्ध में मौजूदा आबकारी कानून ही लागू रहेगा। मगर चूँके यह प्रस्ताव एक खास दूसरे ही मकसद के लिए है, और इसका हेतु स्पष्ट और महत्वपूर्ण है, इस लिए अगवें कि इसकी रचना, मौजूदा आबकारी कानून के सुधार के रूप में भी हो सकती थी, इसे उसके बड़े जारी होनेवाला बनाया गया है।

इसके जरिये शराब और दूसरे मादक द्रव्यों की बिक्री और व्यवहार को लुप्त करार किया जाता है। मगर चिकित्सा के लिए छूट की भी जगह है। कुछ खास वस्तुओं की जिनका दवा के लिए बहुत ही व्यवहार होता है, यों ही छूट दी जा सकती है। सचमुच में सिर्फ दवा के वास्ते ही इस्तेमाल करने के लिए, दवाखानों को मुमानियत की हुई चीजें भी रखने की 'लाइसेंस' मिलेगी।

इस प्रस्ताव का एक महत्वपूर्ण अंग यह है कि शराबबंदी के कानून को कामयाब करने के लिए अवैतनिक अफ़वर मुक़रर किये जा सकेंगे। जो या पुरुष, सभी कोई भर्ती किये जा सकेंगे और इस महान् समाज-सुधार को सफल करने के लिये स्वेच्छा—सेवकों की मुकामी और काबिल 'पुलिष' खड़ी की जा सकेंगे।

आज भारत-शासन कानून का जैसा कुछ अर्थ लगाया जाता है, कुछ बातों के लिए शायद गवर्नर जनरल (बड़े लाट) की स्वीकृति आवश्यक हो पड़े। मगर, चूँके इस पुकार के पक्ष में बहुत सबल लोकमत है, जिसमें सभी दल के नेता शामिल हैं और यह प्रस्ताव स्थानीय सरकारों को किसी जगह पर उसे काम में लाने का अधिकार भर देता है, इस लिए शायद वे स्वीकृति देना इनकार न करें।

विशेष—प्रस्ताव अगले अंक में छपेगा।

(य. इ.)

चक्रवर्ती राजगोपालाचार

## राजनीति का भूत

एक मित्र गांधीजी को लिखते हैं:

"मेरे एक पत्र के उत्तर में, जिसमें मैंने निश्चित रूप से पूछा था कि ख़दर आन्दोलन में (खादी कोष) चन्दा देने की क्या सरकारी नौकरों को मुमानियत है, मन्त्रालय सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी लिखते हैं (पत्र संख्या-१७ फरवरी १९३७ का ४९५-१) 'हिन्दुस्तान में चलनेवाले या हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में किसी राजनीतिक आन्दोलन में सरकारी नौकरों को भाग नहीं लेना चाहिए। हैर, मगर अभी तो अधिकांश लोगों की राय में खादी का राजनीति से या हिन्दुस्तान के मुआमिले से कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता।' मगर तौभी चूँके यह बात बहुत बड़े सार्वजनिक महत्व की है, और इसका भी खयाल करके कि भूल से वा किसी प्रकार सरकारी नौकरों के दिलों में यह शक छिपा हुआ है ही कि श्रीगुप्त राजगोपालाचार या शंकरलाल बकर के लाख कहने पर भी कि खादी का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, कुछ न कुछ वैसा सम्बन्ध है ही, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप यह सिद्ध कर दें कि खादी का काम, शुरू से अख़ीर तक केवल आर्थिक ही है, और सरकारी नौकरों को इसमें हाथ बँटाने की स्वतंत्रता है, या मैं कहूँगा कि यह उनका धर्म है।"

एक ऐसा ही प्रवाल असेम्बली (बड़ी धारा सभा) में पूछा गया था। इन्हीं चीफ़ सेक्रेटरी साहिब के जवाब के समान जहाँ भी उद्धृत जवाब दिया गया। कुछ ऐसे लोग हैं जिन्हें सचमुच में पन्धेड़ है कि खादी का कोई राजनीतिक स्वरूप है या नहीं मगर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने पहले से ही निश्चय कर लिया है

कि इसका अन्त में राजनीति से सम्बन्ध है ही और इसलिए कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए। कई पादरी मित्रों ने भी गांधी जी से यही सवाल पूछा है, और कुछ ने सहायता देनी स्वीकार की, बशर्ते कि गांधी जी इसकी दरिद्रनारादन की सेवा में अधिक जोर दें। कोल्हापुर में दीवान ने भी इसकी कामना करते हुए, यह शर्त लगा दी थी कि इसे राजनीतिक अन्त न बनाना होगा।

अब हम संक्षेप में इस प्रश्न पर विचार करें। आखिर राजनीति है किस चिडिया का नाम? क्या अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा राजनीतिक वस्तु है? अगर नहीं है तो क्यों नहीं है? लड़कों की जन्म स्कूल में भेज कर हम देश की निरक्षरता दूर करते हैं और राष्ट्रीय या राजनीतिक जागृति के लिए रास्ता बनाते हैं। कौमिल, या टैम पेन की क्या बात है, बिना शिक्षा पाये तो कोई अपना नवजीवन या यंग इण्डिया भी नहीं पढ सकता और अगर इस जहर को फैलने से रोकना है तो इसकी जड़ काट डालनी पड़ेगी। मगर हम सभी जानते हैं कि प्राथमिक शिक्षा से सरकार का कोई झगडा नहीं है और जब कभी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध होता है यह कानून सरकारी नौकरों के लड़कों पर भी वैसा ही लागू होता है, जैसा औरों पर। इस निरन्तरोत्तमता राजनीति से इसका सम्बन्ध होने पर भी, सरकारी नौकरों के लिए भी प्राथमिक शिक्षा की कोई बन्धेज नहीं है।

अब हम सामाजिक सुधारों की जैसे बाल-विवाह की विधवा-विवाह का प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण की बात लेते हैं क्या इसमें भी किसीको शक है कि ये बातें भिन्न २ सम्प्रदायों को एक करेंगी और उन्हीं के जरिये राष्ट्र में एकता उत्पन्न करेंगी और राष्ट्र निर्माण के सिवाय, राजनीति का उद्देश ही दूसरा क्या है? पर तौभी हमने कभी यह नहीं सुना कि सरकार इन कामों का विरोध करती है। हकीकत तो यह है कि कुछ सुधारों को सरकार अपनी निष्क्रिय और कहीं कहीं तो सक्रिय सहायता दी है।

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की बात हम के लेवें। क्या हिन्दू मुसलमानों के पूर्ण ऐक्य से भी बढ़कर दूसरी कोई शर्त स्वागत के लिए है? और तौभी कम से कम मुँह से ही सही, सरकार ने बढ़कर दूसरा कोई हिन्दू-मुसलिम ऐक्य का हामी नहीं है। तब मादक-निवारण का सवाल लीजिए। मादक-निवारण का राजनीतिक परिणाम सभी कोई जानते हैं और अगवें कि अपनी आगदनी के नाम पर सरकार इसका विरोध करती है, मगर तौभी कोई ऐसा कानून नहीं है जिससे सरकारी नौकरों का शराब न पीना मुँह गिना जाय।

तब खादी के सम्बन्ध में यह उडना कैसा? क्या इस लिए कि अन्ततोगत्वा स्वराजप्राप्ति के अलावा, इसका तुरत ही प्रभाव पड़ता है कि खादी के एक एक गज से लंकाशायर को मोद पहुँचती है। तब सभी बातों का मतलब यह है कि सरकार खादी का विरोध इस लिए नहीं करती कि उसका राजनीति में कोई सम्बन्ध है, — क्योंकि हमारे और किसी दूसरे काम का राजनीति से इसकी बनिस्वत कम वास्ता नहीं है—बल्कि इस लिए करती है कि खादी के एक एक गज के पुरे असर से वह वाकिफ़ है। सामाजिक सुधारों, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, और मादक-निवारण वगैरह के बारे में वे हमारे आलस्य और कुटेवों, हमारे पारस्परिक डाह और संकीर्ण स्वार्थ पर भरोसा कर सकते हैं और उनके कारण तुरत ही डरने की कोई बात नहीं है। खादी के सम्बन्ध में वे हमारी आसक्त का भरोसा नहीं कर सकते क्योंकि और कुछ न भी हो तौभी करोड़ों आदमी आज बेकारी के काँ



८, १९२७

८, १९२७

इस लिए उस राजनीति की, यानी हमारे उन दारिद्र्य बुर होगा ? इन्हें और लियाकत पैदा करने दो तो ये तुम्हारा भार हलका करेंगे ।”

पर बूढ़े को हम समझा नहीं सके । देन का भार तो वह क्यों क्यों करके ढो ही ले जा रहा था । पर तेनदार जब तकाजे करते, न सुनने लायक बातें सुना जाते तब यह सब अकेले होल लेने में वह हार जाता था । जवान लड़के पास हों तो बूढ़े बाप का भार अपने कंधे पर ले लेंगे न ।

बूढ़े को क्या दिलासा दिया जा सकेगा ? लड़के तो थिलकल बौराये हुए हैं । वे घर लौटने को नहीं और लौटें ही तो क्या लाभ होगा ?

महादेव देशाई

### कालीपरज के चित्र

बारडोली प्रदेश में कालीपरज नाम की एक दलित जाति है । वहाँ पर दलितों का काम हो रहा है । उसी कालीपरज के विषय में यह लेख माला है । ]

६

### आर्थिक संयोगों का जोर

कालीपरज में चार दिन बिताकर हम सब पीछे लौटे आ रहे हैं । हमारे मित्र के एक विद्यार्थी का गाँव यहीं नजदीक में है । अपना घर देख आने का आग्रह कर रहा था । देखने के लिए मैं भी गया । मेरे मित्र का यह बड़ा ही सुन्दर घर है । कोई भी मर्म की बात कहो तो, उसीकी आँखों में पड़े उस मर्म की चमक देखोगे । इसने कभी मेरे घर की बात कही न थी मगर गाँव में आकर हमने देखा कि वहाँ भी दारू पीता है और बड़ी बुरी हालत में है ।

मेरे मित्र ने देखा कि बूढ़े, बूढ़ी दो धरों में अलग अलग हैं । उनके दो लड़कों को यह दारू पीना पसन्द नहीं आता । वे अलग रहते हैं । दो लड़कों में से एक तो यही विद्यार्थी है ।

उसने अपने रहने को जो झोपड़ी बनायी है, उसे देखने पर हमें मूल जाता है । वह पूरी खरूर के पत्तों से बनी है । तब के ऊपर पत्ता रख कर जिस प्रकार वैष्णव लोग मनाते हैं, वैसी ही उसकी शोभा मालूम पड़ती थी । जब हमारी बहन कर तैयार हुई, उन लड़कों ने बारडोली विद्यालय के लड़के निकाला ।

हमारे मित्र ने बूढ़े से पूछा, “तुम्हारे लड़के हमारे यहाँ पठने को हैं, वह पसन्द है न ?”

“पसन्द करना ही रहा । इन्हें कुछ घर की चिन्ता है

“नहीं, काम में मदद नहीं करते हैं क्या ?”

“काम करने से ही क्या हुआ ? देन का भार मैं अकेले

“क्या देन है क्या ?”

“देन तो ?”

“मित्रों कि इस बूढ़े ने अपने बाप से मिली हुई सोलह

“देन में धीरे धीरे गाँवा दी और ऊपर से चार पाँच

“बाड़ी ?”

“सकते क्या ?”

“नारी के हाथों

“लड़के अभी से काम में लग जायें तो इसमें तुम्हारा क्या दारिद्र्य बुर होगा ? इन्हें और लियाकत पैदा करने दो तो ये तुम्हारा भार हलका करेंगे ।”

पर बूढ़े को हम समझा नहीं सके । देन का भार तो वह क्यों क्यों करके ढो ही ले जा रहा था । पर तेनदार जब तकाजे करते, न सुनने लायक बातें सुना जाते तब यह सब अकेले होल लेने में वह हार जाता था । जवान लड़के पास हों तो बूढ़े बाप का भार अपने कंधे पर ले लेंगे न ।

बूढ़े को क्या दिलासा दिया जा सकेगा ? लड़के तो थिलकल बौराये हुए हैं । वे घर लौटने को नहीं और लौटें ही तो क्या लाभ होगा ?

उसकी आर्थिक स्थिति का हम कोई निकाल न बता सके, इस लिए दारू के विषय में पूछते संकोच होता था । पर बात तो करनी ही चाहिए । बहुत समझाने का प्रयत्न किया । मान बचाने के लिए वह हर एक दलील में ‘हां’ ‘हां’ कहता गया । इस हाँ हाँ से उत्साहित होकर सीधे सवाल पूछा, “बोली, तब, अब तो शराब छोड़ दोगे न ?”

बूढ़ा रुक गया । सवाल हम फिर फिर से पूछने लगे । आखिरश हिम्मत करके उसने सुना ही तो दिया,

“नहीं, यह तो नहीं बनेगा ।”

“हां, क्या कहते हो ?”

“ना, यह तो नहीं बनेगा ।”

“अरे, अपने लड़कों की ओर भी तो देख कर छोड़ दो ।”

उसने शर्त रखी, “अगर लड़के मेरा भार उठावें और घर आवें तो छोड़ दूँगा ।”

लड़के तो अभी तक भार उठाये ही हुए थे पर तौभी बूढ़े ने नहीं छोड़ी । अब उस बूढ़े की बात पर भरोसा रख करके पीछे लौटने को वे तैयार न थे ।

पीछे से उसने यह भी बतलाया कि वह दारू क्यों नहीं छोड़ता है । आजू बाजू में शराब ताड़ीवालों का वास ठहरा । दारू छोड़ देवे तो उस पर ये सब विगड उठें । सुधरे भगत को मजदूरी मिलने में बाधा पड़ती है । कभी अभी गालियाँ सुननी पड़ती हैं । हमारे लायक विद्यार्थियों को कितनी बार गाली सुननी पड़ी थी । भगत के नाम से ये कितनी बार धुतकारे गये थे । सभी पीने वाले साथ पीवें तो उस मंडली में खाने पीने से सही सलामत रोजी पा सकता है ।

लड़कों ने दीन भाव से समझाने का प्रयत्न किया, “हमको तो पिलाते हैं, पर ये लोग आप भी किसी दिन पीते हैं ?”

“ये तो नहीं पीते, पर हम पर गुस्से तो होंगे न ।”

“वहाँ का भड्डावाला दारू बेचता है, पर पीता नहीं ।”

आखिर, बकते झकते, बूढ़े ने अपने मन को मनाने की कोशिश की ।

“हम पैसा खर्च करके कहाँ पीते हैं ? कभी उनके यहाँ काम करके पी आते हैं ।”

इस विद्यार्थी के जैसी कठिन चिन्ता दिल में रखते हुए, कितने विद्यार्थी उतने ही आनन्द पूर्वक अपने अभ्यास में लगते होंगे ?

तूफान में डूबते हुए यात्री को सुड़ी भर की छोटी नाव में क्या आस्था होगी ? यह जानते हुए भी कि इसकी भी शायद ही आस्था हो, चर्खे की बात सुना कर हम अपने रास्ते लगे ।

रास्ता चलते हुए हम विचार करते थे कि ऐसा कोई कानून नहीं हो सकता क्या कि “सौ के साथ” के न्याय से



गरीब के ऊपर जो कर्ज चढ़ बैठता है, वह हलका हो जाय ? पर हाय, अगर ऐसा राजा ही अपने यहाँ होता तो उससे असहयोग ही करने का विचार क्यों आता ? कुछ लोग सरकारी संस्था बनाते हैं, पर जहा ५०) रुपये में १५ बीघे जमीन खींच गयी हो, और ऊपर से पांच सात सौ का लटका लगा हो, उस हालत में यह अत्यन्त धीमी चाल से चलनेवाली संस्था क्या दिलासा दे सकती है ?

जिनके दर्शन को हम निकले थे, दर्शन तो उनका हुआ, पर दर्शन से तुम तही हुई क्योंकि एक ही दरिद्रनारायण अनेक रूप धारण करिye हुए हैं। अनन्त में से हमने तो दो चार के ही दर्शन कर पाये।

केवल एक बात की श्रद्धा हृदय में दृढ़ हो गयी। दरिद्र नारायण की सच्ची से सच्ची पूजा, उनके हाथों में चर्खा धरा कर ही हो सकती है।

हमारी टोली में से एक आदमी ने कहा, "गांधी जी ने ऐसे अनुभवों से ही चर्खा हूँ निकाला होगा।"

दूसरे ने कहा, "उनकी महान् श्रद्धा हम समझ नहीं सकते क्योंकि जो देख कर उनकी वह श्रद्धा पैदा हुई, वह हमने अभी देखा ही न था।"

( नवजीवन )

‘ माधवानुज ’

## खादी की प्रगति

[ भाई लक्ष्मीदास के मुसाफिरी के पत्र में अभी तक नहीं छाप सका क्योंकि उनको देखने भालने का बिलकुल वक्त ही नहीं मिला। मेरे पास उनके उपयोगी पत्र काफी इकट्ठा हो गये हैं। चाहे जैसे हो, मगर वक्त बचा कर अब उनमें से कुछ कुछ देने का निश्चय किया है। उसमें से चन्द्रनगर के प्रवर्तक संघ के काम का वर्णन नीचे देता हूँ।

मा० क० गांधी ]

१

### चन्द्रनगर की आशा

चन्द्रनगर तो हम मोतीबाबू से सिर्फ मिलने के ही लिए गये, पर देखते ही मोतीबाबू ने कहा, 'महात्माजी कह गये हैं कि आप से हम लोग कातना, धुनना सीख लें। इस लिए हमें यह सब सिखाइये। हमारा कातना आप देखिए और हमारी भूलें बतलाइए। धुनना तो हममें से कोई जानता ही नहीं है। कातने का प्रबन्ध, दोपहर को भोजन के बाद किया है।'

जिन्हें कातना आता था, वे दोपहर को कातने बैठे। कितने लोग देवकपास की हाथ से बनायी हुई पूनी से कातते थे। सामान्य रई से कातनेवाले तो बेधुनी रई में से ही तार खींचते थे। मोतीबाबू के घर पर लकड़ी का कारखाना होने से चर्खों की बनावट तो सुन्दर थी। पर तब कितने ही टेढ़े हो गये थे। कई तबूजों में ०। इंच व्यास की पीतल की गिरारी बैठायी थी और चर्खों का चक्र २० इंच के व्यास का होने के कारण, खर फेरना पड़ता था क्योंकि कातनेवाले अधिकांश में ३० अंक से ऊपर का ही सूत कातते थे। गति तो सभी की धीमी थी, पर कातते सभी थे ध्यानपूर्वक। हर बार तार खींचने के बाद सभी कोई तार में बल चढ़ाने के लिए चक्र को दो तीन बार फेरते। इतनी न्यूनताएँ होने पर भी उनके सूत की मजबूती देखने पर हमें आश्चर्य हुआ। उसका हिसाब नीचे दिया जाता है।

क्रम	कपास की जाति	अंक	मजबूती	समाजता
१	देव	४३	६०	११
२	टिपरा	१८॥	५३	५०
३	"	२०	४९	४५
४	"	२९	३८	१०
५	देव	६६	६३	५४
६	टिपरा	३७	३९	१३
७	देव	४४	६५	६८
८	"	७०	६५	६४
९	टिपरा	३५॥	६९	५७

ये आंकड़े बतलाते हैं कि कातनेवाले को लगन हो तो क्या न कर सकता है।

अपनी भूलें समझ लेने में यहाँ के लोग गजब की सावधानी दिखलाते थे। मोतीबाबू ने सच्चा तफ्तीस पहिचानना सहज ही लिया। और कातने के बाद पीछे से बल चढ़ाने के बख्ते, कपास के साथ ही साथ बल चढ़ाना, सबने सीख लिया। धुनने साधन हम साथ लाये नहीं थे, इस लिए वह काम सीखने साधन साथ लाने के ऊपर मुस्तबी रहा। पर देवकपास को से ही पूनी बना लेने की रीति तो मुझे ही यहाँ की महिला सीखनी थी। कपास का कोभा या फूट लेकर, उसमें से रई के चुटकी से खींच खींच कर, एक बहिन ने पांच इंच लंबे, ५ पांतिश्यां फैलायीं। पीछे सलाई पर उसकी पूनी बनाली। यही पद्धति सन्तोष हुआ कि बेधुनी रई की पूनी धुनी रईवाली से भी बन सकती है। मोतीबाबू को कहा कि, 'आप के यहाँ, का केन्द्र में एक अच्छी धुननेवाली रहती है। उस बहिन को धुनने का ढब और साधन, सभी बहुत सुन्दर हैं। इसने धुनने ४० वर्ष लगाये हैं। मेरा अनुभव तो सिर्फ पांच साल का है। दूसरे दिन कमठा और प्रतिष्ठान का बारडोली पिकन पहुँचे। मैंने रई धुनी और सबने देखा। अनदेखी बात देव सबको आनन्द हुआ और यह भरोसा हुआ कि यह काम सहज ही है। सीखने की कोशिश भी दो तीन आदमियों ने और अधिक अभ्यास के लिए, पिंजन वहीं रख लिया।

गांधी जी की मुलाकात के बाद से मोतीबाबू ने बारों में बहुत बड़े मनसूवे बांधे हैं। उन्हें भरोसा हो गया है उनके केन्द्रों में चलने वाले खादी काम की उन्नति होगी। बीच में हम यह भी देख सके कि खादी-कार्य ही अब संघ प्रधान प्रवृत्ति रहेगी। हमें यह भी यकीन हो गया है कि संघ का खादी काम देखते देखते ही, अभय आश्रम और की बराबरी का हो जायगा।

संघ के पास अदृष्ट श्रद्धाबल है। सेवकों की संख्या अच्छी है। सेवकों को सेवा करनी आती भी है। कातने में अभी कुछ कच्चाई है, मगर संघ ने उसे जल्द से जल्द दूर देना स्वीकार किया है। इस लिए हमारी धारणा यह है कि खादी-प्रवृत्ति का भविष्य आज से अधिक उज्ज्वल है।

(नवजीवन)

लक्ष्मीदास पुरचोता

‘ हिन्दी नवजीवन ’ की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं। एक साल जिल्द बँधी पूरी फाइल का दाम ढाक खर्च के अलावा रुपये हैं।

व्यवस्थापक, ' हिन्दी-नवजीवन '



मैल, १९२७

समाज

११

५०

४५

१०

५४

९२

६८

६४

५७

लगन हो तो

गजब की साफ

नना सहज ही

ने के बदले, इस

लिया। धुने

द काम सीखने

देवकपास को

यही की बहिन

उसमें से रहे हैं

इंच लेने, ५४

गली। यही पा

वाली से भी

के यहां, ५४

बहिन को

इसने धुने

च साल का

रडोली पिं

देखी बात दे

कि यह काम

आदमियों ने

लिया।

बाबू ने बा

सा हो गया

उत्पत्ति होगी।

ही अब सं

गया है कि

आश्रम और

की संस्

हैं। काते,

से जल्द

यह है कि

उज्ज्वल है।

दीप्त पुंखो

फाईल

नीसरे, बो

एक सा

के अला

दी-नवजीवन

बुद्धि वनाम श्रद्धा

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वार्षिक मूल्य २)  
छः मासका " २)  
एक प्रति का " १)

वर्ष ६ ]

[ अंक ३५

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, चैत्र सुदि १३ संवत् १९८४

गुरुवार, अप्रैल, १४ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सादक निवारण का प्रस्ताव

मद्रास प्रान्त में शराब और दूसरी नशे की चीजों की तैयारी और इस्तेमाल को रोकने के लिए सादक निवारण कानून के लिए एक प्रस्ताव

चूंकि मद्रास प्रान्त निवासियों की नैतिक और आर्थिक बचवूरी के लिए यह अच्छा समझा जाता है कि जहां तक जल्द हो सके, शराब और दूसरी नशे की चीजों को उत्पत्ति, तैयारी, रखना, देशांतर भेजना, देशांतर बिना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, खरीद, बिक्री, इस्तेमाल, उपयुक्त सूत्रों में रोका जाना चाहिए;

और चूंकि इसे उपयुक्त प्रान्त के कुछ चुनिन्दा क्षेत्रों में इसमें लोकर, इस नोते को अमल में लाना और इससे मिले अनुभव का उपयोग, इसे और क्षेत्रों में बढाने में करना समझा जाता है, इस लिए :

यहां यह कानून बनाया जाता है कि :—

### अध्याय १

#### प्रस्तावना और परिभाषाएँ

१. (१) यह कानून, मद्रास सादक-निवारण कानून, १९२७ (आय प्रोविजन ऐक्ट, १९२७) कहा जा सकता है।

(२) इसका क्षेत्र सारा मद्रास प्रान्त है।

(३) इसका अमल उपयुक्त प्रान्त के किसी ऐसे स्थान में, किसी ऐसे समय से, शुरू होगा, जिसकी सूचना, इस विषय में, स्थानीय सरकार देवे।

(४) किसी जगह जिस तारीख से इसका अमल शुरू होगा परिशिष्ट में बतलाये गये कानून, उसके तीसरे खाने में बतलायी गयी हद तक संसूख कर दिये जायेंगे।

२. शब्दों ३, ओपियम (अफीम) ऐक्ट १८७८ में की ओपियम की परिभाषा के अनुसार, किसी खास समय में किसी जगह पर जब तक यह कानून लागू रहेगा, इसका अफीम पर लागू नहीं पड़ेगा। [ चूंकि यह प्रस्ताव प्रान्तीय कानून है, 'सादक-निवारण का अफसर,' 'कमिशनर,' 'जिला अफसर,' 'मैजिस्ट्रेट,' 'ताडी,' 'शराब,' 'सिस्ट,' 'नशीली

चीजें,' 'बिक्री या फरोस्त,' 'आमद' 'रफ्तानी या देशांतर भेजना,' 'तैयारी' 'बोतल,' 'जगह,' और 'पुलिस थाना,' शब्दों की वही परिभाषा, जसुरी रद्दी बदल के साथ रहेगी जो आबकारी कानून १८८७ में दी हुई है।

### अध्याय २

#### मनाहट और सजाएँ

४. [१] जो कोई यह कानून अमल में आने बाद,

(क) शराब या दूसरी नशीली चीजें, देशांतर से लाता है, भेजता है, उसकी रफ्तानी करता है या रखता है; या

(ख) शराब या दूसरी नशे की चीजें तैयार करता है; या।

(ग) सिवाय इस बारे में बनाये गये कानूनों के अनुसार भाग या कोका के पौधे रखता है; या इन पौधों का कोई हिस्सा जमा करता है, जिससे नशे की कोई चीज तैयार की जा सकती है; या

(घ) भीठी ताडी को बुझाने के लिए लाइसेंस लिये बिना और सिवाय ताडी के पेडों से ताडी बुझाने की शर्तों और नियमों के अनुसार; ताडी बुझाता है या अपने कब्जे के, या अपने किसी पेड में किसी को बुझाने का हुक्म देता है, या

(ङ) किसी पेड से जिसका वह मालिक है या कब्जे में है ताडी छेता है, या किसी को छेने की इजाजत देता है, या छेने देता है; या

(च) शराब बुझाने की भट्टी या कारखाना चलाता है; या

(छ) शराब या कोई नशे की चीज तैयार करने के लिए कोई सामान, बरतन, यंत्र, कल, इस्तेमाल करता है, रखता है, या उसके कब्जे में है; या



(ज) बिक्री के लिए किसी किस्म की शराब की बोटलबंदी करता है; या

(झ) शराब या नशे की कोई चीज बेचता है; या

(ञ) शराब या कोई नशे की चीज इस्तेमाल करता है या खरीदता है; या

(ट) सीधे अपने कब्जे के किसी मकान में ऊपर

बतलाया हुआ कोई काम किसी को करने देता है,

उसे किसी मजिस्ट्रेट के सामने विचार के बाद, फैसले पर जेल की सजा होगी, जो छ महीने तक की हो सकती है या एक हजार रुपये तक का जुर्माना होगा, या दोनों सजाएँ हो सकती हैं।

(२) अन्तर्धारा (सब सेक्शन) १ के अनुसार मुकदमा चलने पर, जब तक इसके उल्टा साबित न किया जायगा, यह बात मान ली जायगी कि उस आदमी ने अपने सीधे कब्जे के मकान के सम्बन्ध में जुर्म किया है, जहाँ पर कोई जुर्म किया जाना साबित किया जा सके, या किसी शराब, या नशे की चीज, या किसी किस्म के भी यंत्र, बरतन, कल, साधन, जिनका उपयोग शराब या कोई नशे की चीज तैयार करने में होता है, या किसी चीज के सम्बन्ध में जिसका इस्तेमाल मामूली तौर पर शराब या दूसरी नशे की चीज तैयार करने में होता है, और जिनके लिए वह कविले इम्पीनान कैफियत दे सके, उसे जुर्माना समझा जायगा।

५. जो कोई, किसी किस्म की शराब, जो ब्रिटिश भारत की बनी हो या बाहर की, इन्वयन के पीने लायक बनाता है या बनाने में मदद करता है, जो नाकाबिले इस्तेमाल इन्वयन कर दी गयी है, या जिसके पास ऐसी शराब होवे जिसके बारे में उसे शक हो या ऐसा शक करने की वजह हो कि उस पर ऐसा फेल किया गया है, किसी मजिस्ट्रेट के फैसले पर, उसे ६ महीने तक के कैद की सजा या एक हजार रुपये तक के जुर्माने की या दोनों की सजा दी जायगी।

६. (१) जब पांच या पांच से अधिक आदमी धारा ४ की अन्तर्धारा १ या ३ में बतलाये गये जुर्मों के करने का रास्ता प्रहज करने की सलाह करें या उसे करें, उनमें हर एक शख्स को, बिना इसका खयाल किये कि उन्होंने या उनमें किसीने, सिवाय मशविरे के इस बारे में और कोई जुर्म नहीं किया है, तीन साल तक के कैद की या पांच हजार रुपये तक के जुर्माने की या दोनों की सजा दी जायगी।

(२) इस धारा के जुर्म का फैसला सिर्फ़ दौरा इजलास (सेसन कोर्ट) में ही हो सकेगा।

धारा ७ से १३ (यहाँ मौजूदा भावकारी कानून की धाराएँ ५३, ६०, ६१, ६३, ६५, ६६ और ६८, जहरी सुधार संशोधन के बाद लिखी जायँ।)

## अध्याय ३

### छूट और लाइसेन्स

१४ (१) सूचना दे कर, और जो शर्तें वह ठीक समझे, उनके मुताबिक, स्थानीय सरकार किसी चीज की जिसमें शराब या कोई दूसरी नशे की चीज मिली हो, इस कानून की कुछ धाराओं से या सभी धाराओं से इस बिना पर छूट दे सकेगी कि इस चीज का इस्तेमाल दवा के लिए या दूसरे सामानों की उत्पत्ति के लिए होता है।

(२) अन्तर्धारा (१) के मुताबिक, छूट की विज्ञप्ति निकालते समय स्थानीय सरकार को अहितधार होगा कि वह शर्तें लगा देवे कि छूट के लिए उसकी लगायी हुई शर्तों को तोड़ने पर छ महीने तक के कैद की या एक हजार रुपये तक के जुर्माने की या दोनों की सजा, जुर्म करनेवाले को दी जायगी।

१५. स्थानीय सरकार या इसके लिए नियुक्त, उसके अधीन कोई अफसर, किसी शख्स को या संस्था को, सरकारी या गैर सरकारी, शराब, या दूसरी नशे की चीजों, या उन चीजों को, जिनमें ये मिली हुई हों, तैयारी, रफ्तारी, आमद, बिक्री या रखने का लाइसेन्स इस बिना पर दे सकता है कि इन चीजों की जरूरत उस आदमी या संस्था को समुचित रूप से दवा के लिए या दूसरे माल की तैयारी के ही लिए है।

१६ से १८ (यहाँ पर भावकारी कानून की धाराएँ २४, २५ और २६, जहरी हेर फेर के बाद लिखी जायँ।)

१९. ऐसे लाइसेन्स रखनेवाले के छूट या उसके किसी नौकर के, या किसी आदमी के, उसकी सहाय या अप्रष्ट इजाजत से, इन शर्तों में से किसीके तोड़ने पर, उसकी लाइसेन्स छिन जाने या कुछ दिनों के लिए बन्द हो जाने के अलावा, उसे, जुर्म साबित होने पर, छह महीने तक के कैद या एक हजार रुपये तक के जुर्माने या दोनों की सजा दी जा सकेगी।

कोई आदमी जो रुवाद लाइसेन्स रखनेवाले की इजाजत से या बिना इजाजत के कोई शर्तें तोड़ेगा, उसे भी वही सजा दी जा सकेगी।

## अध्याय ४

२०. स्थानीय सरकार समय समय पर, विज्ञप्ति के जरिये, उन स्थानों पर जहाँ यह कानून लागू होवे,

(क) प्रान्त में मदक-निवारण विभाग का प्रबन्धक अफसर नियुक्त कर सकती है;

(ख) किसी जिले में या खास निर्दिष्ट क्षेत्र में, सभी या कुछ अधिकारों को ही काम में लाने के लिए, और जिना मजिस्ट्रेट की सलाह से वा सरन्धर रूप से इस कानून के अनुसार जिला अफसर का काम करने के लिए, स्थानीय सरकार के आदेशों के अधीन काम करने को, जिला मजिस्ट्रेट के सिवाय और किसी को नियुक्त कर सकती है;

(ग) इस कानून से जिला मजिस्ट्रेट को दिये गये, सभी या कुछ अधिकार छीन ले सकती है;

(घ) इस कानून की धाराएँ ३३ से ४६ तक के काम करने के लिए अफसर नियुक्त कर सकती है;

(ङ) जैसा कुछ स्थानीय सरकार उचित समझे, भेगी, नाम, अधिकार, और कर्तव्यों के साथ, इस कानून के मुताबिक अफसर नियुक्त कर सकती है;

(च) हुक्म दे सकती है कि किसी अफसर को, (ब), (घ) और (ङ) अन्तर्धाराओं के अनुसार दिये गये अधिकार और फरायज कोई खास सरकारी अफसर या कोई भी सर्व या औरत जो इसके लिए अवैतनिक अफसर नियुक्त किया जाय, अदा कर सके;

(छ) इस कानून के अनुसार आने कुछ या सारे अधिकार, किसी मादक-निवारण अफसर को दे सकेगी;



१७ अप्रैल, १९२७

(अ) इस कानून को तैयार करने के सुझावों के फैसले करने के लिए विशेष अतिरिक्त मजिस्ट्रेट नियुक्त कर सकते हैं।  
 ११ समय समय पर स्थानीय सरकार नियम बना सकती हैं।

(क) श्रेणियों के मादक-निवारण अफसरों के इस विषय के मुताबिक कर्तव्य और अधिकार निश्चित किये जायें;  
 (१) कमिश्नर या किसी जिला अफसर को इस कानून से जो अधिकार दिये हैं, उन्हें दूसरों को देने का नियंत्रण करना;  
 (२) अवैतनिक, मादक-निवारण अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार बनायी जाय।

२२. (यहां पर आधकारी कानून की धारा ५ क, जहरी फेर के साथ रखी जाय।)

## अध्याय ५

अफसरों के अधिकार, कर्तव्य और कार्य-विधि

११. से ४६. (यहां पर आधकारी कानून की धाराएँ ३० से ४६, जहरी सुधार संशोधन के साथ ली जायें।)

## अध्याय ६

नियम और सूचनाएँ

१२. (यहां आधकारी कानून की धाराएँ २९ (१), २९ (२), ३० (१) अदल बदल के साथ ली जायें।)

१३. इस कानून के अनुसार बनाये गये सभी नियमों और सूचनाओं को फोर्ट सेन्ट जॉर्ज के गजट में बना कर प्रकाशित किया जायगा, और उन नियमों को फोर्ट सेन्ट जॉर्ज के गजट के लगातार प्रकाशित किया जायगा, और उन जिलों, या जिले के अफसरों के गजट में, जहां पर वह लागू होगा, वह कम से कम एक बार प्रकाशित किया जायगा। इसके बाद उन सब नियमों को कानून की जगह प्राप्त होगी और इस कानून के अन्तर्गत रहेंगे।

## अध्याय ७

कानूनी कार्रवाई

१४. (यहां, जहरी घटाव बढ़ाव के साथ, आधकारी कानून की धारा ४७ ली जाय।)

१५. सभी अदालतों को, उन पर विज्ञप्तियों और हुक्मों की प्रतिकृति को, जिन्हें अधिकार या कर्तव्य दिये जायें, प्रस्तुत करने होंगे।

## परिशिष्ट

[ देखो धारा २ (१) ]

विषय

कहां तक वह मंजूर किया जाता है

आधकारी

जिस क्षेत्र में यह कानून (नया) लागू होता है, वहां पर यह (पुराना कानून) पूरा पूरा मंजूर कर दिया जाय।

१९०५

१९१३

१९१५

१९१५

१९१५

## सुन्दर भेट

मद्रास प्रान्त के मेडोर के श्री कस्तूरी देवी राष्ट्रीय विद्यालय की छोटी छोटी लड़कियों ने यज्ञार्थ कात कर ७३,५०० गज सूत गोरक्षा मंडल को भेंट किया है। यह भी कहा जा सकता है कि इनकी सुन्दर भेट, गोरक्षा मंडल को यही पहले बार मिली है। यह यज्ञ कर के ये लड़कियाँ केवल गोरक्षा की ही नहीं, बल्कि हमारे बड़े से बड़े राष्ट्रीय उद्योग की सेवा के लिए धन्यवाद की पात्र बनी हैं। उन लड़कियों को उम्र, नाम और सूत के गज नीचे देता हूँ।

उम्र वर्ष	नाम	गज
८	जानकीश्रमा	वार ३,०००
८	सुवाम्मा के०	५००
९	अमृताम्मा	१,०००
९	ब्रह्मरम्मा बी०	१,०००
१०	मंजुषा	३,०००
१०	मैत्रेयी	२,५००
१०	रुक्मिणीश्रमा एम.	१,५००
१०	वर्धनाम्मा	१,५००
१०	सुवर्णरत्नम्	१,०००
१०	नागरत्नम्	१,०००
११	वनजाक्षी	१,०००
११	सीताम्मा	११,०००
११	वर्धनाम्मा	८,५००
११	कमलाम्मा बी.	७,०००
११	कमलाक्षी	५,०००
११	पीचाम्मा	३,०००
११	ब्रह्मरम्मा डी०	३,०००
११	कमलाम्मा के०	१,५००
११	अनंतलक्ष्मम्मा	१,०००
११	सुवर्णलक्ष्मम्मा	१,०००
११	शेषाम्मा	१,०००
११	सुवर्णाम्मा आर	१,०००
११	वल्लभम्मा	५००
११	मंगाम्मा	५००
१२	विशालाक्षी	४,०००
१२	सीतारामम्मा	२,०००
१२	रुक्मिणीश्रमा बी.	१,५००
१२	रमालक्ष्मम्मा	१,५००
१२	अलीमचम्मा	१,०००
१२	सरोजिनी	५००
१३	कामेश्वराम्मा	२,०००

## आश्रमभजनावलि

पांचवीं आश्रमिता खत्म हो गयी है। अब जितने आश्रमिता हैं, दर्ज कर लिये जाते हैं। आश्रम मेजनेवाले सज्जन अभी से शिष्यायें भेजना शुरू न करें। छठी आश्रमिता तैयार हो रही है।

‘हिन्दी नवजीवन’ की पुरानी फाइलें

पहले और दूसरे साल की अप्राप्य हैं। तीसरे, चौथे और पांचवें साल की बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं। एक साल की जिल्द बंधी पूरी फाइल का दाम ढाक रुपये के अलावा सात रुपये है।

व्यवस्थापक, ‘हिन्दी-नवजीवन’



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदी १३ संवत् १९८४

## बुद्धि बनाम श्रद्धा

संभाले से एक डाक्टर सहैव कई सवाल मेजते हैं। पहला सवाल यह है।

“एकबार जे. ई. में आपने लिखा था कि श्रद्धा का आरंभ वहाँ से होता है जहाँ बुद्धि की सीमा समाप्त होती है। तब मैं उम्मेद करता हूँ कि अगर कोई आदमी अपने विश्वास के कारण न बतला सके तो आप उस विश्वास को श्रद्धा कहेंगे। तब क्या यह ख़ुलासा नहीं हो जाता कि श्रद्धा का अर्थ है बेसबब विश्वास करना? अगर कोई आदमी किसी अकारण बात में विश्वास करे तो क्या इसे आप उचित या सत्य समझेंगे? इस प्रकार विश्वास करने को मैं मूर्खता समझता हूँ। मुझे खबर नहीं कि आप का ‘वकीली’ विभाग इसे क्या बहेगा। अगर आप भी मेरे ही जैसे सचें तो मुझे विश्वास है कि आप श्रद्धा को मूर्खता ही कहेंगे।”

अगर लायक डाक्टर साहेब मुझे ऐसा कहने दें तो मैं कहूँगा कि उनके सवाल से ही यह बात झलकती है कि उन्होंने मेरा मतलब समझा ही नहीं है। बुद्धि के जो परे है, वह निश्चय ही निष्ठुरता नहीं है। मूर्ख विश्वास का नाम अन्व-विश्वास है और वह प्रायः ही वहम होता है। किसी को ऐसी बात में योंही विश्वास करने को कहना जिसके प्रमाण दिये जा सकते हैं, जरूर मूर्खता है। जैसे कि किसी बुद्धिमान पुरुष को यह विश्वास करने को कहना कि त्रिभुज के तीनों कोणों का योग फल दो समकोण के बराबर होता है, और इसके लिए कोई प्रमाण न देना, अयुक्त होगा अगर किसी अनुभव पुरुष के दूसरे से यह कहने का कि “ईश्वर है मगर मैं उसे सिद्ध नहीं कर सकता हूँ” यह अर्थ है कि वह नम्रता के साथ अपनी सीमाएँ मानना है और दूसरे को केवल श्रद्धा के ऊपर, अपने अनुभव की बात मान लेने को कहता है। यह तो बिल्कुल उम आदमी की विश्वासलुपता का प्रश्न है। दुनिया की मामूली बातों में प्रायः ही घोखा खाने रहने पर भी दम, लोगों की बात का ही यकीन करते हैं। तब हम क्यों नहीं जीवन मरण के मसले में सारी दुनिया के संतों की यह बात मान लें कि ईश्वर दर असल जरूर है और उसकी प्राप्ति सत्य और निष्पाप (अहिंसा) रास्ते से ही होगी? कम से कम यह उनका युक्तियुक्त तो जरूर है कि पन्ध्रहज़ार से मेरे सारे संसार की साक्षात् में बड़ी श्रद्धा रखने को कहूँ जितना कि वे मुझसे आशा रखेंगे कि कई डाक्टरों से कोई फायदा न उठा कर भी मैं आँख कान मूँर कर केवल उसी श्रद्धा सहित उनकी दी हुई दवा खा लूँ। मैं तो यह कहने का ग्राह्य करता हूँ कि श्रद्धा और विश्वास न रहें तो क्षण भर में प्रलय हो जाय। सभी श्रद्धा के मानी हैं, उन लोगों के युक्तियुक्त अनुभवों का आधार काना उनके विषय में हमारा विश्वास है कि उन्होंने तपस्या और भक्ति से पवित्र जीवन बिताया है। इस लिए प्राचीन काल के अवतारों या नवियों में विश्वास करना कुछ वैयक्तिक वहम नहीं है, परन्तु यह है आत्मा की आन्तरिक भूल की सन्तुष्टि। इस लिए सृष्टि सच की पहिचान का उपाय जो मैंने सप्रतापूर्वक पेश किया है, वह यह है कि जिस किसी बात को प्रमाणित किया जा सके, उसे बिना प्रमाण के मानना ही

नहीं और जिस बात को बिना अपने अनुभव के सिद्ध किया ही नहीं जा सकता, उसे वेद-वाक्य सा मान लेना चाहिए। दूसरा सवाल यह है:

“९ दिसम्बर के हिन्दी नवजीवन में छपा है कि एक डाक्टर हेरेल्ड ब्लेजर ने अपनी लड़की को क्लोरोफॉर्म देकर मार डाला था क्योंकि उन्हें मालूम हुआ कि उनका अपना भी अन्त समय पास ही है और उनके बाद उनकी लड़की को देखने आनेवाला कोई न रह जायगा। उन्हें अदालत ने बेकसूर छोड़ दिया था। डाक्टर ब्लेजर के वकील मि. हौरी ने कहा था कि, ‘डाक्टर ब्लेजर ने समाज के ऊपर उस वैचारी अपंग लड़की का भार न डाल कर, नैतिक और उचित ही काम किया था।’ इस पर आपने अपना विचार प्रकट किया था कि डाक्टर ब्लेजर ने अपनी लड़की को मारने में भूल की क्योंकि उससे यह शक्यता है कि उन्हें अपने आत्मपास के लोगों की दयावृत्ति में सन्देह था और यह मान लेने की कोई वजह नहीं थी कि दूसरे लोग उस लड़की की कोई खोज खबर नहीं लेंगे। मैं कहूँगा कि अपनी राय जाहिर करने में आपने सहीमाना बहस नहीं की है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि इस पर आप फिर फिर विचार करें क्योंकि मेरी समझ में यह कोई मामूली विषय नहीं है और यह स्पष्ट है कि समाज के ऊपर एक बेकार बोझ लाने के लिए आपको कोई रज़ नहीं है और वह इसी लिए कि आपको विश्वास है कि समाज उस भार को उठा लेगा। भगवान् के नाम पर हमें आप उस बेकार, बलिहारी अत्यन्त हानिकारक सिद्धान्त पर विश्वास करने से बचें। मैं सच्चे दिल से विश्वास करता हूँ कि हिन्दुस्तान के हक में आपका यह विश्वास बहुत ही हानिकारक होगा डाक्टर ब्लेजर के वकील की बहस पर भी तो ध्यान दीजिए उसने कहा कि डाक्टर ब्लेजर ने उस बेकार लड़की को समाज पर बोझ न बनाने में ठीक ही किया। यह तो प्रस्तुत सवाल बिल्कुल अलग है कि समाज उसका देखभाल करता या नहीं मैं आपसे एक सवाल पूछूँगा:—मान लीजिए कि कुछ सालों में आप बिल्कुल ही अंधे, वहीरे, गूंगे हो गये हों दूसरे शब्दों में समाज के लिए आप कौड़ी काम के न हो जायें। तब क्या उस दशा में भी आप चाहेंगे कि समाज आपकी खिलाने पिलाने क्योंकि आप में अभी जान बाकी है आपने उसकी सेवा खूब ही की थी। मुझे मालूम नहीं कि अहिंसा के विषय में आपके क्या अजीब खयालात हैं मगर जवाब ख़ुलासा है। कई सालों तक सेवा करने के बाद अगर बेकार हो जाऊँ तो मैं अपने प्रिय समाज के बोझ बनने के बदले मार डाला जाना चाहूँगा क्योंकि विश्वास करता हूँ कि सौ मारा जाकर मैं समाज के हित को बचाऊँगा और उसपर उपकार कर रहा हूँगा। यह तो बिल्कुल ही अलग बात है कि संसार उपयोगी मनुष्यों और पशुओं को पालन करना, समाज का कर्तव्य है।”

मेरा हृदय विश्वास है कि जगन्ने कि श्री ने डाक्टर ब्लेजर को ठीक ही किया था, मगर सख्त नैतिक दृष्टि बिना देखने पर, डाक्टर ब्लेजर ने भूल की थी। मेरे पत्र-लेखकों की उपेक्षावाद के उन्माद में, अपने बतलाये सिद्धान्तों और भयंकर फायों का बिल्कुल खयाल नहीं किया। सच पूछा तो उनका सिद्धान्त उन्हीं के धंधे में गलत ठहरेगा। उस नये डाक्टर के बारे में क्या कहेंगे जो किसीका रोप और हथकड़ी रागी को समाज पर भार समझ कर उसे बेकसूर और मार डाले और उसी रोगी को दूसरा अनुभव



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय १९

गोखले के साथ एक मास (३)

काली माता के निमित्त होनेवाले विकराल यज्ञ को देख कर, बंगाली जीवन जानने की मेरी उत्कण्ठा बड़ी। ब्रह्मसमाज के विषय में तो ठीक ठीक पढ़ा सुना था। प्रतापचन्द्र मजुमदार का जीवन वृत्तान्त थोड़ा बहुत जानता था। उनका व्याख्यान सुनने गया था। उनका लिखा हुआ, वैशवचन्द्र सेन का जीवन-वृत्तान्त ढूँढ़ा और अत्यन्त रसपूर्वक उसे पढ़ गया। साधारण ब्रह्मसमाज और आदि ब्रह्मसमाज का मेरे समक्ष। पं० शिवनाथ शास्त्री का दर्शन किया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का दर्शन करने, प्रो० कायवटे और मैं गये। परन्तु वे उन दिनों किसीसे मिलते नहीं थे, इस कारण दर्शन न हो सका। लेकिन उनके यहाँ ब्रह्मसमाज का उत्थव था। हमें भी निमन्त्रण मिला था, इस लिए गये थे और वहाँ ऊँचे तौर का बंगाली संगीत सुन पाये। तभी से बंगाली संगीत पर मेरा मोह उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मसमाज का जितना हो सका निरीक्षण किया। अब उसके बाद स्वामी विवेकानन्द का दर्शन किये बिना कैसे चले? अत्युत्साहपूर्वक मैं बेलूर मठ तक, बहुत कर के पाँच प्यादे ही चल कर पहुँचा। पूरा रास्ता पैदल ले किया या आधा यह अब याद नहीं है। मठ का एकान्त स्थान मुझे दया। यह सुन कर कि स्वामी जी बीमार हैं, उनसे मेट नहीं हो सकती और वे अपने कलकत्ता-वाले घर पर हैं, हम निराश हो गये। भगिनी निवेदिता के मकान का पता चलाया। चौराँधी के एक महल में उनका दर्शन मिला। उनके दबाव से मैं घबरा उठा। बातचीत में भी हमारा मेल न बैठा। यह बात मैंने गोखले से कही। उन्होंने कहा, 'यह सच है' बहुत तेज है। इस लिए यह बात समझ में आती है कि तुम्हारा मेल न मिला।'

फिर एक बार पेस्तनजी बादशाह के घर पर उनसे मेरी मेट हुई। वे पेस्तनजी की वृद्ध माता का उपदेश दे रही थीं। सी बीच मैं मैं जा पहुँचा। इस लिए उन दोनों के बीच मैं हुआविषा बना था। हमारा मेल न मिलते हुए भी, मैं इतना तो देख सका कि भगिनी निवेदिता के हृदय में हिन्दू धर्म के लिए प्रेम समझ पड़ता था।

दिन के मैंने दो हिस्से किये थे। एक हिस्से में द० अफ्रीका के काम के लिए, कलकत्ते में रहनेवाले बड़े नेताओं से मिलती और दूसरे हिस्से को कलकत्ते की धार्मिक संस्थाओं और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं को देखने में लगाता। 'बोअर युद्ध में हिन्दुस्तानी सेवकों के काम' पर मैंने डाक्टर मल्लिक के सभापतित्व में एक दिन व्याख्यान दिया। 'इंग्लिशमैन' के साथ का मेरा परिचय इस समय बहुत मददगार साबित हुआ। इस वक्त मि० सौन्सर्स बीमार थे परन्तु उनकी मदद तो १८९६ के साल जितनी ही मिली। यह सावण गोखले को पसन्द पड़ा था। और जब डा० राय ने मेरे भाषण की तारीफ की तब वे बहुत खुश हुए थे।

गोखले की छाया तले यों, रहने से मेरा काम बंगाल में बहुत सरल हो पड़ा। बंगाल के अग्रगण्य कुटुम्बों की जानकारी मुझे सहज ही मिली और बंगाल से मेरा निकट सम्बन्ध बना। इस चिरस्मरणीय मास की कितनी यादगारियाँ मुझे छोब देनी पड़ेंगी। उस महीने में मैं ब्रह्मदेश का भी चकर काट आया था। फुनियों

से मुलाकात की और उनके आलस्य से दुःखी हुआ। सुषमे का दर्शन किया। मन्दिर में छोटी २ अलगिनत सोमवर्त्तिनी थीं। वे पसन्द न पड़ीं। मन्दिर के भीतरी घर में चूरी घूमते देख कर दयानन्द का अनुभव याद किया। महिलाओं की स्वतंत्रता, उनका उत्साह और जहाँ के मन्दता देख कर, स्त्रियों के ऊपर मोह आया, और पुराने विषय में दुःख हुआ। मैंने तभी देखा कि जैसे वंश हिन्दु नहीं है, वैसे ही रंगून ब्रह्मदेश नहीं है। और जैसे हम अंगरेजों के साथ मिल कर, बर्मियों को कमीशन एजेन्ट हुए हैं।

बर्मा से लौटे कर मैं गोखले से विदा हुआ। उनका मुझे खला, पर मेरा बंगाल का, सच पूछो तो कलकत्ते का, पूरा हो गया था।

काम में लगने के पहले, मेरा विचार था कि, तीसरे चाल कर हिन्दुस्तान की छोटी मुसाफरी करूँ और तीसरे मुसाफिरी की तकलीफें जान लूँ। गोखले के आगे मैंने यह रक्खा। पहले तो उन्होंने हँसी उड़ायी पर जब मैंने अपनी का वर्णन किया तब उन्होंने खुशी से मेरी योजना का समर्थन मुझे पहले तो काशी जी में जाकर विदुषी वसन्ती देवी का करना था। उस समय वे बीमार थीं।

इस मुसाफिरी के लिए मुझे नये सामान ठीक करने थे। डिब्बा गोखले ने ही दिया और उसमें मेरे लिए मगज के और पूरियाँ रखवाईं। बारह आने की 'कैन्वैस बैग' छाया (पोरबन्दर के पास का एक गाँव) की ऊनक एक लिये। बैग में यह कोट, अंगोछा, कुर्ता और एक के लिए एक कमली (छोटा कम्बल) थी। इसके अलावा मैंने एक लोटा भी लिया। इतना सामान लेकर मैं निकला।

मुझे विदा करने, गोखले और डाक्टर राय स्टेशन पर आने के लिए मैंने दोनों से प्रार्थना की परन्तु दोनों ने आने का आग्रह रक्खा ही। गोखले बोले 'तुम पहले दर्जे में तो मैं शायद न आता, परन्तु अब तो मुझे आना ही है।'

छाटकारम पर जाते हुए गोखले को तो किसी ने नहीं रोका उन्होंने अपना रेशमी फेंटा बाँधा था और धोती तथा कोट पहने थे। डाक्टर राय बंगाली पोशाक पहने हुए थे। इस लिए नव टिकिट-मास्टर ने अन्दर जाते हुए पहले तो रोका पर गोखले ने जब कहा कि, 'ये मेरे मित्र हैं' तब वे दाखिल हुए। इस प्रकार दोनों ने मुझे विदा किया।

(नवजीवन)

गोखलदास करमचंद गांधी

## प्रतिष्ठान की कलाशाला

बंगाल का खादी प्रतिष्ठान, अपने काम, एक के बाद दूसरा, बढ़ता ही चला जाता है। कलकत्ते से आधे घंटे के रास्ते पर सोदेपुर में, कलाशाला खोल कर उसने अपनी बढ़ायी ही है। कलाशाला में एक ओर धुलाई, रंगाई, छगई, और खादी में माँजी लगाकर इन्हीं चढ़ने के काम का प्रबन्ध किया गया है। ये सब काम, सुधरी रीति के समान, हाथ से ही किये जाते हैं। सिर्फ भाप की मदद भर एक छोटे से बायलर से ली जाती है। दूसरी ओर देशी ढव से उड़ान, बड़ई, का काम होता है। ये सभी काम व्यापारी ढंग पर चलाने की प्रतिष्ठान की धारणा है। पर उनका उपयोग, तात्कालिक







कातनेवालों के लिए

[illegible]



वार्षिक मुख्य ४)  
छः मासका ,, २)  
एक प्रति का ,, १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
शामी आनंद

अहमदाबाद, वैशाख अदि ४ संवत् १९८४  
गुरुवार, अप्रैल, २१ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## साप्ताहिक पत्र

जो यह कहते हुए खुशी होती है कि यह पत्र बीमारी का कारण है कि गांधी जी निश्चित रूप से किन्तु धीरे धीरे तरकीब से ठीक हो जायेंगे। इस सप्ताह में खासा काम हुआ। राष्ट्रीय दिवस के दिन पहले गांधीजी ने हमें पूछा कि तुम अम्बोली में किस तरह मनाना चाहते हो। मैंने कहा—'१२ घंटे खाना-पान कर के?' पर इससे कहीं उन्हें संतोष होने की बातें बारह घंटे का चरखा यज्ञ ? ठीक है, मैं भी अपना योगदान दूँगा। पर तुम्हें सावतवादी जा कर वहां राष्ट्रीय दिवस की खादी की फेरी करनी चाहिए, अस्पृश्यों के मुहल्ले में जाकर उनके सुखदुःख की बातें जाननी चाहिए, देखना चाहिए कि उनके बच्चों की पढ़ाई का कोई इन्तजाम है या नहीं, पीने के लिए उनके अपने कुएँ तो हैं ? अगर देवदास और गोरे भी चले जाओ तो तुम्हारे यज्ञ को अखंड जारी रखने में बाधारी में लेता हूँ।' उनका आदेश मान्य किया। किन्तु मैंने अपने करने के पहले चूंकि हम रियासत के मिहमान थे, हमारे महारजा को पत्र द्वारा यह पूछ लेना हमें उचित लगा कि हम राष्ट्रीय सप्ताह में यदि खादी की फेरी करें, तो महारजा को खादी बेचें तो उन्हें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। उत्तर मिला 'शोक से फेरी करिए और खादी बेचें।' अब, हम अपने काम के लिए निकल पड़े। हम चरखा-यज्ञ के अंक और नतीजा लिख रहे हैं। हमें यह भी पता है कि वह कोई भारी काम हुआ, हमें यह भी पता है कि वह जरा बोध-प्रद है। हमें यह भी पता है कि वह भी अपेक्षा बहुत कम चक्र खाता है। हमें यह भी पता है कि वह बहुत कम धरती थी। 'अ' अखंड चरखे का जोर देते हैं कि पहले दिन की फी घंटे की औसत ४०० गज की औसत आई थी। और आखिरी दिन की सबसे ज्यादा यह है उस दिन का फल, जो दिन-ब-दिन बढ़ता जाता

था। रविवार और सोमवार को जो न्यूनता दिखाई देती है उसका कारण है, अच्छे कातने वालों की उन दिनों में गैरहाजरी ता. ७ को चरखा एक घंटे तक चला और दो दिनों से बराबर नित्य सोलह सोलह घंटे। कातने वालों की औसत छः थी।

ता.	घंटे	अ.	आ.	टोटल	गज
६	१२	१९९२	१५३२	३५२४	१६६
७	२५	५०२०	१७५६	६७७६	३००
८	१२	२७९६	२०४०	४८३६	२३३
९	१६	३६०८	१४८५	५०९३	२२५
१०	१६	३४३६	१३०४	४७४०	२१४
११	१६	३३४०	१४४७	४७८७	२०९
१२	१६	३७१२	५३२	४२४४	२३२
१३	१६	३७४०	९७६	४७१६	२३४

सारे सप्ताह में कुल ३२,६४४ गज सूत अखंड चरखे का और ११०७२ गज अर्थात् कुल ४३,७१६ गज १४ अंक का सूत कता। यह इतना है कि इसमें से ५० इंच अर्ज की पांच गज लंबी कोई २ साड़ियाँ आसानी से बुनी जा सकती हैं। यदि चरखा, पूनियाँ और कातने वाले सभी अच्छे होते तो और भी अच्छा काम होता। मुझे याद है कि पिछले वर्ष आश्रम पर फी घंटे ४०० गज की औसत आई थी।

हमारी खादी फेरी भी उतनी ही उत्पाद जनक थी। तीन दिन तक हमने खादी की फेरी की। कुछ उन लोगों को बेची जो अम्बोली में हमसे मिलने के लिए आये थे। सब मिल कर कोई १०००) की खादी बिकी होगी।

महाराजा और रानी साहब ने भी कुछ खादी खरीदी। पर उनकी प्रजा ने उनसे कहीं अधिक खरीदी थी। और राजा साहब इससे बड़े खुश थे। प्रायः कदम कदम पर हमें लोगों के मुँह से यह सुनाई देता था कि हमारे महाराजा के जितना प्रजा का कल्याण चाहने वाले शासक ही कोई अन्य नरेश हों। जिनसे जिनसे हम मिले, फिर वे सरकारी अधिकारी हों या प्रजाजन, उन सब के मुँह से हमें यही सुनाई देता था। किसी विश्वस्त सूत्र से मुझे इस बात का भी पता चला है कि



भीमन्त अपने खानगी खर्चों के लिए प्रतिमास २०००) से अधिक नहीं लेते। उनके खानगी तथा सरकारी दान वगैरा सब इसी रकम में से होता है। यदि यह सत्य है तो तमम देशी नरेशों के लिए यह एक अनुकरणीय उदाहरण है। (यं० इ०)

संवत्वादी एक संस्कारी गांव है। यहां के एक दो सज्जन बगई के हाइकोर्ट के जज भी रह चुके हैं। इसलिए यहां पर एक बात को देख कर खेद हुआ। क्या मैं उसे भी अपने इस वर्णन में लिख दूँ? हम खदी वेच रहे थे वहां से होकर इन्हें का एक बड़ा भारी जुद्ध का रहा था। जुद्ध में सब से आगे तो राजे-बाले थे, उनके पीछे दो स्त्रियां जा रही थीं, इनके पीछे हमारे पुरुष, फिर पा-खियां और उनके बाद स्त्रियां, उस तरह उस जुद्ध की रचना थी। हमें यों ही शंका हुई कि वे दो स्त्रियां कौन हैं जो जुद्ध के आगे हैं। पर जुद्ध नजदीक आने पर हमें मालूम हुआ कि ये तो वेदियाएं हैं। विवाह-मंडप में वेदिया का नाच कराने की कुप्रथा गुजरात में—और खास कर सूरत-रमई में है। पर वहां भी उसका विरोध किया जा रहा है और उसके परिणाम-स्वरूप वह कम होती जा रही है। पर यह तो मुझे पहले पहल ही मालूम हुआ कि महाराष्ट्र में भी यह गंदगी है। पर मेरे दुखदायी आश्चर्य का अन्त यहीं नहीं हुआ। हमने पूछा, 'क्या यह विवाह का जुद्ध है?' उत्तर मिला 'नहीं, यह तो उपनयन का जुद्ध है। हमें बड़ा आघात पहुंचा। पालखी में चार सुकुमार बालक बैठे थे, जिनका उपनयन संस्कार दो दिन पहले हो गया था। फिर यह कौनसा संस्कार था? उपनयन और सभावर्तन दोनों साथ साथ हो रहे थे। बालक काशो जाते हैं—ब्रह्मचर्य-साधन के लिए—पर बालकों के मामा उन्हें कानों में यह कह कर लौटा जाते हैं कि "चलो, बापिप्र लौट चलो, मैं अपनी लड़की तुम्हें ब्याह दूंगा।" यह प्रथा महाराष्ट्र और दक्षिण ही में है। मामा की लड़की को ब्याहना वहां प्रत्येक पुरुष का अधिकार सा समझा जाता है। हमें यह देखकर गुजरात में स्वभावतः कुछ आघात सा पहुंचता है।—यद्यपि मुझे याद है कि हमारे एक विद्वान् ने अपने किसी नाटक में इस प्रथा का वर्णन कर के गुजरात में उसका प्रचार करने का प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र की अनेकों प्रथाओं में उन्हें यह प्रथा शायद अनुकरणीय दिखाई दी हो। पर मुझे तो यह बड़ी ही भद्दी प्रथा मालूम हुई। खैर इसकी बात छोड़ दें। यह विषय शायद विवादास्पद भी हो, क्योंकि यह एक मानना का प्रश्न भी तो है। पर उन वेदियाओं को सरे बाजार जुद्ध के सामने नचाते हुए ले जाना, कहां की सम्भ्यता है? क्षण भर के लिए ब्रह्मचरी बने हुए उन बालकों को पुनः संसार में लौटने की यह सामग्री तो न ही?

हमें यह देख कर तो बड़ा ही दुःख हुआ कि इन बुराई को एक संस्कारी ब्राह्मण परिवार शुरू रखता है। उसके विषय में जानचीत करते समय अनेकों को घृणा तो होती ही थी। पर बिना प्रकार इसी अनेकों बुराइयों को देखकर हम क्षणभर के लिए रुझित हो जाते हैं, और फिर ज्यों के त्यों लापरवाह बने रहते हैं, मानो कुछ हुआ ही न हो, वही हालत हमने यहां भी देखी। (यं० इ०)

#### महादेव देशाई

#### सूचना

मंत्री, अ० भा० चर्चा संपन्न लिखते हैं:

कभी कभी सूत मेननेवाले भाई, अ० भा० चर्चा संपन्न, अहमदबाद लिख कर देते हैं। इससे डेर होता है। इस लिए सदस्यों से निवेदन है कि वे अपने सूत-चन्दे इस पते से भेजें:

व्यवस्थापक, शिक्षण विभाग,

(अ० भा० चर्चा संपन्न) सरपंचाग्रहण, पो. साबरमती

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

### भाग ३

### अध्याय २०

### काशी में

यह मुसाफिरी काशी से राजकोट तक की थी। काशी से जयपुर आर पालनपुर होते हुए मुझे राजकोट जाना था। स्थानों को देखने के अतिरिक्त मैं अधिक समय नहीं दे सका था। हर एक जगह एक एक दिन रहा। पालनपुर को छोड़ और सब स्थानों में यात्रियों की तरह या तो धर्मशालाओं में पंडों के ही महान पर मैं ठहरा था। जहां तक मुझे याद है प्रवास में रेल किराये सहित मुझे इकतीस रुपये लगे। तीसरे दर्जे में प्रवास करते हुए भी मैं प्रायः डांक गाड़ी में जाता था। क्योंकि मैं जानता था कि उसमें भीड़ न्यार है और तीसरे दर्जे के किराये के हिसाब से उसमें पैसे भी ले देना पड़ते थे। मेरे लिए यह भी एक कारण था।

तीसरे वर्ग के डिब्बों में जा गंदगी और टट्टियों की आज कल है वही पहले भी थी। संभव है, आज कल बहुत सुधार हो गया हो। पर तीसरे और पहले वर्ग की धाओं में जो अंतर है, वह इन दो वर्गों के किराये के अंतर अपेक्षा मुझे कहीं ज्यादा मालूम हुआ। तीसरे दर्जे के मुसाफिरों तो मेह-बकरी समझे जाते हैं, और इनके बैठने के डिब्बे में डिब्बे। यूरोप में तो मैंने अपनी सारी मुसाफिरी तीसरे वर्ग की ही की थी। सिर्फ अनुभव के लिए एक बार मैं पहले वर्ग में गया था। पर वहां मुझे पहले और तीसरे वर्ग के बीच का अंतर नहीं दिखाई दिया। दक्षिण आफ्रिका में तीसरे वर्ग में मुसाफिर अक्षर इक्की ही होते हैं। पर फिर भी वहां के दर्जे के डिब्बों में मुसाफिरों की सुविधा और आराम का अधिक रक्खा जाता है। कहीं कहीं तो वहां पर तीसरे वर्ग के डिब्बे में मुसाफिरों के सोने तक की व्यवस्था रहती है। बैठकों पर गद्दे लगे होते हैं। प्रत्येक खाने में बैठनेवाले मुसाफिरों की संख्या पर भी ध्यान धरावर दिया जाता है। पर यहां मुसाफिरों की इन संख्या की हद पर ध्यान देते हुए मैंने देखा ही नहीं।

ये तो हैं वे अनुविधाएँ जिनके लिए रेलों के संचालन जिम्मेदार हैं। पर इनके अतिरिक्त प्रायः मुसाफिरों में खरे ऐसी गंदी आदतें हैं, जिनके कारण इस वर्ग में प्रवास करने सुबह मुसाफिरों के लिए सफर करना एक प्रायश्चित सा हो जाता है। जहां चाहा थूक दिया और कूड़ा कंकट डाल दिया। जो मैं आया और जिन तरह चाहा बीड़ी फूंकना, पान और चबा चबा कर जहां तहां उसकी पिचकारियां छोड़ना, जूठन को जिनके अंदर जमीन पर ही डाल देना, पास में बैठे हुए मुसाफिरों की सुविधा अनुविधा का जरा भी ह्याल न करना तथा गंदी-इत्यादि इत्यादि बुराइयां सब दूर एकसी पाई जाती हैं।

१९०२ के मेरे अनुभव में और १९१५ से लेकर १९१७ तक के तीसरे वर्ग के अखंड प्रवास के अनुभव में मुझे भारी फर्क नहीं दिखाई दिया। इन महाविधाओं का तो मुझे ही उपाय दिखाई दिया। और वह यही कि शिक्षित तीसरे दर्जे में ही प्रवास करे, और इन लोगों की सुधारने का प्रयत्न करे। इसके अतिरिक्त महकमा रेल अधिकारियों से उसकी बड़ इन्तजामी की शिकायतें कर करके तंग करे, अपने लिए सुविधा प्राप्त करने और उसकी रक्षा



मैल, १९२७

११ अप्रैल, १९२७

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया

मकया की स्थिति वगैराह न दे और कभी भूख कर एक मकया को ऐसा न किया जाय जो गैर कानून हो।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है। बोमारी के कारण सन् १९२० से मकया की अनुभव यह कहता है कि ऐसा करने से बहुत हो सकता है।

शान्त, निर्मल, सुगंधी, और स्वच्छ वातावरण—गद्य तथा आंगिक भी—पैदा करें, और उसे वैसा बनाये रखें। पर इसके स्थान पर मैंने शोइनों, बडिया से बडिया मिठाइयों और खिलौनों का बाजार देखा।

मंदिर पर पहुंचा तो ठीक दरवाजे के सामने सड़े हुए फूलों का एक ढेर पड़ा था, जो बड़ी बूरी बदबू मार रहा था। अंदर बडिया संगमरमर की फर्श थी, जिसे किसी अंधश्रद्धालु ने रुपयों से बीच बीच में मड़ दिया था। और रुपयों में मट्टी भर गई थी।

मैं ज्ञानवापी के पास भी गया। यहां भी मैंने ईश्वर को छुंडा पर वह नहीं मिला। इसलिए मैं भीतर ही भीतर जल रहा था। ज्ञानवापी के पास भी कूड़ा देखा। दक्षिणा रखने की जरा भी इच्छा नहीं थी, इसलिए मैंने सचमुच एक पाई वहां रख दी। बस, पंडाजी तो आग बबूझा हो गये। पाई को उठाकर उन्होंने फेंक दिया और दो चार गालियां सुना कर वाले 'तू इस तरह अपमान करेगा तो नरक में पड़ेगा'।

मैं शान्त था। मैंने कहा, "महाराज, मेरा तो जो कुछ होना होगा जरूर होगा। पर आप के मुंह में यह अलल फलल शोभा नहीं देता। यह पाई लेना हो तो लो, नहीं तो इसे भी खो बैठोगे।" "जा जा, तेरी पाई को मुझे जरूरत नहीं है" कह कर उन्होंने और भी दो चार बातें सुनाईं। मैंने तो उस पाई को उठा लिया, और यह सोच कर चलता बना कि महाराज ने पाई खो दी और मैंने उसे कमालिया। पर महाराज यों वह पाई खोने वाले नहीं थे। उन्होंने मुझे फिर वापिस बुला कर कहा, 'अच्छा रख दे, मैं तेरे जैसा नहीं होना चाहता। मैं इसे नहीं छू तो तेरा बुग होना'।

चुपचाप मैंने पाई को रख दिया, और एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर आगे बढ़ा। इसके बाद और भी दो बार मैं काशीविश्वनाथ जा चुका हूं पर वह तो 'महात्मा' बनने के बाद। इसलिए १९०२ के अनुभव तो कैसे मित्र सजते थे? 'मेरा दर्शन' करने वाले लोग मुझे क्यों दर्शन करने देने लगे? 'महात्मा' के दुःख तो मेरे जैसे 'महात्मा' ही जान सकते हैं। हां, बल्कि गंदगी और शौर तो वही पहले का सा मैंने वहां देखा।

परमात्मा की दयालुता में यदि किसी को संदेह हो तो वह इन तीर्थ-क्षेत्रों को देख ले। वह महायोगी अपने नाम पर होने वाली कितनी मक्कारी, अधर्म और पाखंड को बरदाश्त करता है? पर उसने तो कह दिया है:—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तैव भजाम्यहम्।

अर्थात् जैसा जोओगे वैसा कांटोगे। कर्म को भला मिथ्या कौन कर सकता है? फिर भगवान को बीच में पड़ने की जरूरत भी कहाँ रह जाती है? वह तो अपना कानून बता कर अलग हो गया है।

यह अनुभव प्राप्त कर के मैं मिसेस वेसंट के दर्शन करने के लिए गया। हाल ही में वे बीमारी से उठी थीं। मैंने इतला भेजी, वे फौरन आईं। मुझे तो केवल दर्शन करना थे। इसलिए मैंने कहा "मैं जानता हूं कि आप अस्वस्थ हैं, मुझे तो केवल आपके दर्शन ही करना थे। अतः मैं केवल इसीसे संतुष्ट हूं कि तबियत खराब होने पर भी आपने मुझे मिलने की इजाजत दे दी। मैं आपका इससे अधिक समय नहीं लूंगा।

यह कह कर मैं उनसे विदा हुआ।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख वदि ४ संवत् १९८४

## सत्य एक है

पोलेण्ड के एक प्रोफेसर लिखते हैं : **प्रोफेसर**

यंग इण्डिया में आपके चितवेषक लेखों को पढ़ कर मुझे खूब आनन्द होता है, और इस सत्य को मैं आप पर प्रकट कर देना चाहता हूँ कि उनसे न केवल आपके देश को, बल्कि सारे संसार को शक्ति मिल रही है। और चूँकि आपका आध्यात्मिक अनुभव इतना विशाल है, क्या मैं आप से एक प्रश्न पूछूँ और प्रार्थना करूँ कि यदि हो सके तो उसका उत्तर कृपया अपने यंग इंडिया में प्रकाशित करें? प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण और गहरा है। और उस पर आप का उत्तर भी बड़ा किमती होगा। क्या आप मानते हैं कि मनुष्य के विचारों में कोई ऐसी बात है जो पूर्णतया निश्चित हो? उदाहरण के लिए परमात्मा और प्रार्थना की ही लीजिए। क्या हम इन दो में से किसी एक के विषय में भी ऐसे नतीजे पर पहुँच गये हैं, जो पूर्ण हो, जिसको बदलने की अब जरूरत न हो? क्या आप कृपया बतावेंगे कि किसी खास अनुभव के कारण, किन्हीं खतरनाक जानवरों को मारने के हक के विषय में अपने पहले मत को आपने बदल दिया है? यदि ऐसा हो तो मेरा मुख्य सवाल यह है कि, किस खास बात के बारे में आप अपने इस मत को बदल रहे हैं। और क्या यह परिवर्तन आप को यह विश्वास दिला सकता है कि आप जिस नतीजे पर पहुँचे हैं वह पूर्णतया सत्य है? मुख्य सिद्धान्तों में पूर्ण निश्चय होने के कारण मनुष्य के विचारों में आनेवाली स्थिरता, तथा सुविधानुसार मत परिवर्तन करानेवाली अस्थिरता को कैसे पहचाना जाय? क्या आप ऐसा कोई सर्व साधारण नियम बता सकते हैं, कि हम फलों जगह मत बदल सकते हैं, और फलों फलों बातें विलकुल अपरिवर्तनीय होती हैं? क्या प्रत्येक देश की स्वाधीनता ऐसी ही एक अपरिवर्तनीय—कभी न बदलने वाली बात है? क्या कुछ देश स्वभावतः स्वराज्य के अयोग्य होते हैं, और क्या कुछ अन्यदेश स्वभावतः ही इन कमजोर देशों पर शासन करने योग्य होते हैं, जैसा कि जर्मन लोग अपने को बताते हैं और अपनी शासन विषयक महत्वाकांक्षा का समर्थन करते-हैं?”

मूल पत्र में जहाँ कहीं लेखक का मतलब साफ साफ नहीं निकलता था, मैंने इस पत्र में वैसे ही यहाँ वहाँ एक आध शब्द बदल दिया है। इस पत्र के लेखक मुझ पर जिन शक्तियों का आरोप करते हैं उनका बिला किसी प्रकार दावा किये, मैं अत्यंत नम्रतापूर्वक उनके प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा। मेरा अपना दावा बड़ा सरल, स्पष्ट और मजबूत है। मैं एक नम्र किन्तु अत्यंत सच्चा सत्य-शोधक हूँ। और जितने भी सत्य को खोजने वाले हैं, उन सब पर मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ, जिससे मैं अपनी गलतियाँ जान लूँ और उन्हें भी दुस्त कर रहा हूँ। मैं कबूल करता हूँ कि मेरा अनुमान और निर्णय कई बार गलत निकला है। उदाहरण के लिए, अधूरे सबूत से ही मैंने यह अनुमान कर लिया कि वेबो के लोग सविनय-भंग के लिए तैयार हैं। पर एकाएक मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह अनुमान गलत और महा भयंकर था। मैंने देखा कि वे सविनय-भंग नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे

पहले तो ऐसे कानूनों की स्वेच्छापूर्वक पाबन्दी करना भी नहीं जानते थे, जो कष्टप्रद होने पर भी अनोत्तिष्ठ नही थे। उन्होंने मने यह मालूम किया, उसी क्षण अपना कदम पीछे हटा लिया। इसी प्रकार निर्णय सम्बन्धी दूसरी एक गलती मैंने उस पत्र को मेरे समय की थी जिसे बारडोली की 'आखिरी चेतावनी' कहा गया है। तब मैंने विश्वास कर लिया था कि देश अर्थात् लोग आन्दोलन द्वारा खडबड़ा कर जाग्रत हो गये हैं और अहिंसा की उपयोगिता को भी समझ गये हैं। पर उस चेतावनी को मेजने के बाद जोबीस वर्षों के अन्दर ही मुझे अपनी गलती मालूम हो गई और फौरन उस मौके पर भी मैंने अपने कदम पीछे हटा लिये। और चूँकि ऐसे हर एक मौके पर मैंने अपना कदम हटा लिया है, देश को ऐसी कोई भारी हानि नहीं पहुँची। इसके विपरीत इससे तो अहिंसा का एक सिद्धान्त पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट हो गया और देश को भी गहरा नुकसान नहीं हुआ। मैंने अपने इस मत को अभी तक बदला है कि किन्हीं खास परिस्थितियों में, जैसा कि मैंने अपने पहले लेखों में साफ तौर से बता दिया है, कुछ खतरनाक जानवरों को मार डालना अनिवार्य है। जहाँ तक मुझे याद है, उन जगहों में प्रकट किये गये मत को मैं हमेशा धारण करता आया हूँ। पर इसके मानी यह नहीं कि वह कभी बदला नहीं जा सकता। मैं किसी ऐसी स्फूर्ति या मार्गदर्शक शक्ति का दावा नहीं करता जो कभी गलती ही न करती हो। बल्कि मेरा अनुभव तो यह है कि किसी भी मनुष्य का यह दावा ठीक नहीं सकता, क्योंकि हम देखते हैं कि वह स्फूर्ति भी उसीको होती है जो बिरुद्ध शक्तियों के द्वन्द्वों से मुक्त हो। यदि कोई ऐसा दावा करे भी तो वह इनसे मुक्त हो गया है तो उस समय उसका समर्थन करना महा कठिन है। अतः द्वन्द्व-मुक्त होने का—पूर्ण होने का—दावा करना भी हमेशा बड़ी खतरनाक बात होगी। पर मैं मानता हूँ कि हमारे लिए कोई मार्ग-दर्शक शक्ति है ही नहीं। संसार के बड़े-बड़े ऋषियों के अनुभव का खजाना हमारे लिए खुला पड़ा है और भविष्य के लिए भी खुला रहेगा। इसके अतिरिक्त मूल सत्य भी तो बहुत से नहीं हैं। वह तो केवल एक ही है और वह है स्वयं 'सत्य' अथवा दूसरे शब्दों में 'अहिंसा'। अपूर्ण मनुष्य प्राणी सत्य और प्रेम का पूर्ण रूपेण दर्शन नहीं कर सकता; क्योंकि सत्य अनन्त है—असीम है, और प्रेम सान्त और स-सीम। पर हमें अपना काम चलाने योग्य उपाय ज्ञान तो जरूर है। हाँ, उसके व्यवहार में हम भले ही गलती कर जायँ, और शायद भयंकर गलती भी कर जायँ। पर मनुष्य तो अपना शासन आप करने वाला प्राणी है। और स्वाभाविक शासन के अन्दर गलतियाँ करने और उतना ही बार उन्हें सुधारने की शक्ति भी तो जरूर शामिल है।

मैं नहीं जानता कि इस उत्तर से पत्र प्रेषक महाशय को क्या तक संतोष होगा। चाहे उन्हें संतोष हो या न हो। इससे अधिक संतोष-जनक उत्तर देने की शक्ति मुझमें नहीं है। आखिर प्रत्येक मनुष्य को स्वयं ही अपना नियामक और मार्गदर्शक होना चाहिए। पर इस हालत में एक शर्त अनिवार्य ही है। वह यही कि आदमी हमेशा परमात्मा का दर अपने हृदय में धारण करके चले अर्थात् एकसा आत्मशुद्धि करता रहे। मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनने के लिए, जैसा कि हिन्दू और ईसाई लोग कहते हैं, द्विजन्मा अथवा पुनर्जन्मा होना जरूरी है।

पत्र लेखक महाशय के अंतिम प्रश्नों के जवाब आसानी से दिये जा सकते हैं। सब पूछिए तो इन उपर्युक्त वाक्यों से वे प्राप्त हो सकते हैं। मैं प्रत्येक देश की स्वाधीनता को



३, १९२०

करना भी नहीं हो। जो भी देशों में प्रत्येक मनुष्य की स्वाधीनता सत्य है। अतः देशों या राष्ट्रों में स्वराज्य विषयक स्वाभाविक अयोग्यता पत्र को न दूसरे देशों में अन्यदेशों पर शासन करने और कलतः न दूसरे देशों में अन्यदेशों पर शासन करने की स्वाभाविक होती है। निःसन्देह पत्र लेखक का यह प्रामाणिक हलाल है कि दूसरे देशों पर शासन का यह शक्ति-शक्ति का दावा जर्मन करते हैं। पर जर्मनों के साथ साथ ऐसे नम्र लोकसत्तावादी भी हैं, जो शान्तिपूर्वक अपने देश का शासन कर रहे हैं, जो संतोष मानते हैं।

मोहनदास करमचन्द गांधी

### दरिद्र नारायण के मंदिर में

मंदिर के गांव तो कितने ही देखे थे। गांव के बाहर एक 'मंदिर' की हठी फुटी झोपड़ियां होती हैं। उनकी ओर हम जाकर भी नहीं देखते, बल्कि सीधे बड़े बड़े मकान वाले गांव जाते हैं। यदि पाठशाला खोलने की इच्छा है तो गांव जाते हैं, चरखा चलाना चाहते हैं तो गांव में जा कर गांव की बात का हमें ख्याल भी नहीं होता था कि गांव का पूर्ण अंग तो एक तरफ रह गया है।

मंदिरादी की पूजा करना चाहते थे पर पूजा करने की तरादी को इस कलियुग में हम भूल गये थे। पंजे के बल पर कर देवी के मस्तक पर हम सिंदूर लगाना चाहते थे। मंदिरादी की पूजा करना चाहते थे पर पूजा करने की तरादी को इस कलियुग में हम भूल गये थे। पंजे के बल पर कर देवी के मस्तक पर हम सिंदूर लगाना चाहते थे। मंदिरादी की पूजा करना चाहते थे पर पूजा करने की तरादी को इस कलियुग में हम भूल गये थे। पंजे के बल पर कर देवी के मस्तक पर हम सिंदूर लगाना चाहते थे।

हमारे लिए यह प्रस्ताव कि इन दुबलों की एक सभा कायम की जाय। हमें उनके मुँह देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमें के पागल बना हुआ पुजारी अपने इष्टदेवता के समक्ष भगवान् उनके चरणों में अपने नाखून नहीं चुभाये। वही हाल हमारा भी हुआ। अपने उत्प्राद में हमने मंदिर को मरनीद सोए हुए दुबले भाइयों की बीचही में जगा दिया। बुलाये विद्यार्थियों के झुंड के झुंड साथ में लेकर हम 'दादिया रास' तथा भजनों का खूब शोर मचाया। मंदिर के झोपड़ों में घुब घुब कर बहनों के काम में तथा आंगन में विप्राति लेते हुए भाइयों के आराम में खरल डाला। पर मैं उन बोंसों हड्डियों को चित्रित नहीं करना चाहता था। मैंने चित्रित भी क्या करें? गरीब भोले भाले देहातियों को विश्वास न होगा तो हमें वह और मिलेगा कहां? हमें चित्रित कर इन गरीबों के अविश्वास के ही कुछ दृश्य दिखाने हैं, जिससे पाठकों को कुछ कुछ पता चल जाय कि क्या चीज है जो उनके दिल में चुभती है।

‘आश्चर्य’

मंदिरादी को अलग, दूर, एक झोपड़ी खड़ी हुई थी। मंदिरादी ने अपना गुंजन फैला दिया था। पेड़ के नीचे चढ़कर पर से और सब छोटे-बड़े उठ उठ कर मंदिरादी को देख रहे थे, और एक बूढ़ा बाड़े का ‘झोपला’ भी वहीं था।

ठीक इसी समय दूर वहां पहुंचे, और हमारी मंडली में से अनेकों ने एक साथ ऊपर ऊपर पूछ ताछ शुरू कर दी। ‘फलों गांव कितने है? ‘दुबलों’ का मुँह कहां है?’

‘इस गांव में इनके कितने मकान हैं? अरे भई हम रास्ता तो नहीं भूल गये?’

‘व्याल’ कर के हम वैसे ही निकल पड़े थे। खूब चले, और भटके भी खूब। हममें थके और प्यासे लोगों ने भी अपने काम की पूछ ताछ शुरू कर दी ‘क्या गांव बहुत दूर है? यहां आसपास कोई कूभा भी है?’

पर हम लोगों में कई बड़े उत्प्रादी भी थे। वह बूढ़ा बेचारा सोच ही रहा था कि क्या जवाब दिया जाय कि उसके पहले इन्होंने भी अपने नये प्रश्नों का तांता लगा दिया। अरे भई सुना, गांधी जी आने वाले हैं। अरे, ‘गांधी’ महात्मा! महात्मा ‘गांधी’ का नाम नहीं सुना? उनका भाषण सुनने को आओगे न?

दिन दहाड़े सरे बाजार यदि किसी पट्टे लिखे आदमी पर भी इस तरह प्रश्नों की भरमार होती तो वह भी घबड़ा जाता।

फिर यह आदमी तो बेचारा एक ‘दुबला’ बूढ़ा था। रात अंधेरी थी और नौ दस का अंदाज था। पंद्रह बीस आदमी एकसी सफेद खादी पहने हुए और कुछेक के हाथों में लम्बी लम्बी लाठियां भी थीं। और यदि किसी बात की न्यूनता थी तो उस झोपड़ी के निराकेपन और एकान्त ने उसे और भी पूरा कर दिया। बूढ़ा अविश्वास भरी आंखों से अंधेरे में हमारी ओर आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा।

“अरे भाई तुम दुबले होत?”

हम तुम्हें एल खुशखबर सुनाने के लिये आये हैं।

हम आश्रमके आदमी हैं आश्रमके, पहचाना हम तुम्हें यह खबर सुनाने के लिये यहां आये हैं कि गांधीजी बारडोली में आ रहे हैं।

पहले तो गांधी का नाम सुनते ही उसने ऐसा हावभाव किया मानो कोई नवीन शब्द कानों से टकराया हो और “आगे बढो आगे बढो” कह कर हमारी इस आकस्मिक बला को टालने का उसने प्रयत्न किया। उसके व्यवहार से यह साफ साफ मालूम होता था कि इस बूढ़े को अपने जीवन में मनुष्य जाति के बड़े ही कड़ए अनुभव हुए हैं और उनके कारण उस पर से इसका सारा विश्वास उठ गया है। क्योंकि ऊपरा ऊपरी इतने प्रश्न सुनने पर भी इस बूढ़े के सूखे गालों पर बड़ी मुश्किली से कहीं हंसी की बारीक रेखाएं दिखाई देने लगीं और मैंने कांचके समान आंखों में कुछ कुछ विश्वास चमकने लगा।

“क्यों, गांधी जी का भाषण सुनने के लिए बारडोली आओगे न?”

“क्यों नहीं आवेंगे?”

यही यहां के लोगो की ‘हां’ कहने की शैली है।

अपने को अकलमंद समझनेवाले एक आदमी ने, जिसने पहले पहल इस बात को चलाया था, उसी बूढ़े के मुँह से उस बात को कहलाने के उद्देश्य पूछा तो अभी कर्णों ऐसी सूरत बना रहे थे मानो तमने कभी गांधी का नाम भी नहीं सुना हो?

“हम समझे तुम कोई ‘आश्चर्य’ की बान सुना रहे हो।”

हम सब खूब हंसे। हंसनेवालों को उस वक्त यह याद नहीं आया की कूपारोहण के समय ईसा के पद शिष्यों ने ही उसका इन्कार कर दिया था। संभव है, जब मौका आवेगा तब शायद हमही इस दुबले बूढ़े से भी कितने आगे बढ जावेंगे कौन कह सकता है?

( नवजीवन )

‘माधवमूल’



## पिंजन ने पर्दा तोड़ हटाया

गोहाटी से आधाम मेल में हम दोपहर को एक बजे निकल कर दूसरे दिन सबेरे सिलहट परगने के विद्याश्रम में आ पहुँचे। पहली रात लम्बिंग जंकशन में पड़ी हुई गाड़ी में और दूसरी रात करीम गंज में घर पर आकर सोये। इस रास्ते का सौन्दर्य तो घड़ो भर के लिए मसूरी की शाभा को भी मात कर देता है। करीमगंज की राष्ट्रीय शाला दिखलाने, उसके शिक्षक हमें रात को ले गये। शाला के मकान, जमीन, खेती काम और कताई काम उन्होंने हमें दिखलाये। खेती काम में शाक भाजी बोना था। कताई काम में चर्चा, तकली, और कर्पा थे। पर यह सब काम नया शुरू किया हुआ होने के कारण, एक भी काम का व्यवस्थित हिसाब शिक्षकों के पास न था। शिक्षकों का बार बार फेर बदल होने के कारण, कताई का काम एक पग भी बढ़ा हुआ नहीं मालूम पड़ता था। जितनी तकलियाँ हमें दिखलायी गयीं, वे सभी की सभी टेडी थीं। कातने के लिए विद्यार्थी अपने घर से ही रुई लाते थे। इस प्रदेश में बहुत वर्षा होने के कारण कपास की खेती नहीं होती, परन्तु देव कपास के पौधों का बहुत होना सुना जाता है। देव कपास से, इस शाला के एक शिक्षक के सूत की जाँच करने पर हमें उसकी मजबूती ५३ फीसदी, समानता ८४, तथा अंक १५॥ मिले। शंकर लाल भाई ने उन्हें अच्छी तकली रखने और काते गये सूत का ठीक ठाक से हिसाब रखने को कहा। सिलहट परगने के विद्याश्रम ने सेवा के अनेक काम करना अपना उद्देश्य रखा है, पर हाल में अधिकांश तो वहाँ खादी का ही काम होता है, और खादी की मार्फत जो और कोई काम सहज ही हो जाता है तो उसी पर वह सन्तोष मानता है। आश्रम में अब तक १६ सभ्य शामिल हुए हैं। साल के भीतर १३००) रु. की खादी तैयार करायी है और १०००) की बेंच भी ली है। इस हिसाब से आश्रम के एक महीने के काम का औसत ७७५) रुपये का पड़ता है। आगके साल में इसके बौगुना काम कर लेने की उनकी उमेद है। खादी कार्य में उनकी कच्चाई दिखलायी तो पड़ती है, पर उसका उन्हें पूरा पूरा भान है और वे उसे दूर करने में लगे हुए हैं।

बीयानी बाजार से लार्ड मील की दूरी पर कताई का केन्द्र दिखलाने हमें वे ले गये थे। रास्ते में एक बुनवैये का काम भी हमें दिखलाया गया। यहाँ के कतवैये और बुनवैये अपना खेती का काम कर चुकने के बाद कपास लोडते हैं, कातते हैं और बुनते हैं। यहाँ, खेत और बाग में, यों दो प्रकार की फसल होता है। नारंगी, अननास, कटहल वगैरह यहाँ असंख्य होते हैं। बांस की तो कोठें देख देख कर आँखें पनाह माँगती थीं। खेत की फसल में राई और घान खूब होते हैं। यहाँ की जमीन इतनी उपजाऊ है, और वर्षा इतनी होती है, कि घान की भी दो फसलें काटते हैं। शाकभाजो का हिसाब ही कौन पूछता है? मजदूर की कमी है। भाठ आने रोज दीर्घ तब कहीं आदमी मिलता है, मगर तभी चखें की मजदूरी, और बुनाई काम, लोगों को रुकते हैं, और इसके लिए उन्हें फुरसत भी है, और फुरसत के समय में दूसरा काम भी नहीं होता। यहाँ के 'लोकलबोर्ड' की ओर से लोगों को बुनाई का काम सिखलाने के लिए खास स्कूल खोला गया है। इसमें लोग फलाई शटल पर बुनाई का काम सीख सीख कर घर पर जाकर कर्पें बैठते हैं। यह बुनाई शाला हाथ का भी सूत बुनती है और बुनना सिखलाती है। जब हम गये थे, उस समय इसमें

मिल के और हाथ के सूत अलग अलग बुने जा रहे थे। 'इंच पनहे का मिल के सूत का कपड़ा बुननेवाले से हमने पूछा कि 'कितने गज रोज बुनते हो?' '१२ से १५ गज।' यही सवाब गज।' हमारे साथ के आश्रम के संवालकों ने अपनी कबूतें तुरत ही समझ ली। इस कपड़ोरी को दूर करने का विचार करते करते हम कतवैये के यहाँ जा पहुँचे। भाँति भाँति के कपड़ा बुनने रंग का सूत दुहराने, तथा तेहराने के लिए, चाख तकुर की भाँति पर ही अंगरेजी डब का 'फड़ाया,' जिसे यहाँ के बुनाई-चिह्न ने बनाया है, हर्षे चाख हालत में दिखलाया गया। देख कर आनन्द हुआ, और हमने, बना कर एक मेज देने का उसे लिखा दिया।

इस प्रदेश में पर्दे का प्रचुर विवाह होने के कारण पहले हमें यह चेतावनी दी गयी की शायद कातनेवाल्यां, अपना काम दिखलाने में संकोच करेंगी। कातनेवाले के घर हम पहुँचे। थोड़े देर तक तो पहले सभी चर्राये। पर थोड़ी देर बाद एक बुनवैये माई की धुनना दिखलाने पर इन लोगों ने राजी किया। एक इंच मोटे और एक फुट लंबे बांस के टुकड़े के दोनों किनारों पर दो गोल कोनदार पच्चर लगाये। उन दोनों के बीच ताँत के बदले बांस के छाल की डोर लगायो, और गुलैडे के बदले बांस के अंगूठे से ही धुनकने लगी। मेरा कपड़ा मेरे साथ ही था। परन्तु 'पसियापार' की बहिन के हाथ में जिस प्रकार मैं घर ही उसे रख सका था, वैसा यहाँ उचित न लगा। क्योंकि माता के धुनने का ढंग और साधन बिल्कुल जुदा थे। धुनकी की झनकार ने पर्दानशन बहिनों का पर्दा, बिल्कुल तोड़ हटाया। एक के बाद दूसरी, वे बाहर आती गयीं। 'कैसा सुन्दर, कैसा महीन, और कितनी जल्दी? हम भी सीखेंगी, हमें भी बस आवेगा।' इन बहनों की उमंग मानों समाती ही नहीं थी। हमारे साथ के विद्याश्रमवाले भी चक्किन हुए और उन्होंने भी सीखने की इच्छा दिखलायी। नमूने की धुनकी रख जाने को कहा। परन्तु हमें कहना पड़ा कि बिना सिखाये नमूना नहीं दिया जाता।

धुनकी के इस नन्हें से प्रदर्शन के बाद, हम कातना देखने बैठे। चर्खा तो खिलौना सा था। चक्कर का व्यास सिर्फ ११ इंच था, मगर तकुरा था नंगा। इस लिए हर चक्कर में तकुरा १०८ बार तो फिरता ही था। अब बहिनों के और मेरे बीच संकोच तो था ही नहीं। एक बहिन कातने बेटी और १५ मिनिट में उसने ११ अंक का, ५३ मजबूती और ८४ समानतावाला, ५८ तार सूत कात दिखलाया। यह परिणाम देख कर हमें कुछ ताजुन हुआ क्योंकि उस छोटे चखें को देखकर हमने ऐसे फल की आशा ही न की थी। जैसा यहाँ का चर्खा छोटा, वैसा ही छोटा ओटा भी था। कपास ओटने के दोनों लाठ लकड़ी के थे। बीच के लाठ की लंबाई ७ से ८ इंच की थी। बहुत ही कम तादाद में विनौलों को बिना हानि पहुँचाये इस ओटे के कपास ओटी जाती थी। यहाँ ओट की लाठ, या तो हमली की लकड़ी के गार की बनती है या 'नागेशर' नामक लकड़ी की। ओटा या चर्खा कोई एक रुपये में बिकता है। धुनकी को सब अपने आप ही बना लेते हैं। तकुरा १५ इंच लंबा तीन आने का पड़ता है बिल्कुल सीधा तकुरा तो हमें देखने को ही न मिला हथारे सामने की सूत की मजबूती ५३ निकली सही मगर यहाँ की औसत मजबूती ३४ है।



१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

सूत के लिए चटगांव से टिपरा के पहाड़ों की कपास मंगायी  
है। इस प्रदेश में अतिवृष्टि के कारण देव कपास के सिवा  
कोई भी खेती की कपास हो ही नहीं सकती। टिपरा की डुंगरा  
जमीन को गिनी जाती है। वह पूरी पकी हो  
जरा मोटे परन्तु खूब मजबूत होते हैं। इस  
लिए की लंबाई होने इंच के आस पास रहती है। इस में से  
सूत साधारण धुनकी से ही, अच्छी तरह  
काता जा सकता है। यहां के ओटे और चर्रें  
को सुधार किए जाँ तो कतवैये की कमाई बहुत बड़े और  
सूत की मजबूती भी बढ़ जाय। विद्याश्रम के  
विद्यार्थियों के होने के कारण, वे ठाके से भी सूत मँगाते  
हैं। ठाके के सूत की जाँव करने पर गजब का फल आया :

संख्या	मजबूती	मानता	अंक
१	११२	६३	३०
२	१००	८५	२०॥

सूत की अधिक मजबूती का कारण यह है कि ठाके का सूत  
से कता था। देवकपास की जो रूई हमने यहां  
की, उसके रेशों की लंबाई १ से १॥ इंच तक थी इस तरफ  
की गानो खूब पड़ता हो, देवकपास के पौधे हर भांगन में  
को कोशिश करनी चाहिए, इस पर से अनुमान लगाया  
जाता है कि ठाके का असल महीन सूत, देवकपास से  
निराला होगा।

(जबोवन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

## खादी भण्डार

जिल्हा, विहार, केरल और महाराष्ट्र, इन चार प्रान्तों के  
लोगों की फेहरिस्त दिलचस्पी से पढ़ी जायगी। दूसरे  
प्रान्तों की फेहरिस्त मिलने के साथ ही मैं छापना चाहता हूँ।  
खादी की, सन् १९२० से अब तक की भारी प्रगति  
देखें। मंजिले मकसूद के खयाल से तो यह प्रगति अभी  
कम है। जब खहर की भी थी और नाज के जैसे  
लोगों, तब चार प्रान्तों के इन ११० भण्डारों का  
जो बड़े एक ही शहर में होना कुछ ताज्जुब की बात न होगी  
तब भी वे नाकाफो ही होंगे। और खादी का भी और  
जो बड़ा घर घर में डेरा डालना अवश्य की या कपास के  
जो भी बात क्यों हो ? पर अगर खहर का ऐसा प्रचार  
असंभव हो तो फिर यही सोचना क्यों बड़ी बात होवे  
जो बड़े कोई बीस साल बाद आस्ट्रेलिया के भी और अमेरिका  
के भी आज की देशी दूकानों जितनी ही दूकानें होंगी ?  
जो बड़े या आंखों को छुभावने होने के कारण विलायती  
जो बड़े विदेशी मकखन और वो खरीदना भी देश-भक्ति के चिन्ह  
न मिले जाय, चाहे इधर ग्वाले और किसान बेकार हो  
जो बड़े दुर्गम काम न पाने से भूखों ही क्यों न मरने लों ?  
जो बड़े पढ़नेवालों के विचार के लिए ये कुछ खयालात हैं।  
जो बड़े भण्डार हम—खादी कार्यकर्ताओं को कौन सी  
जो बड़े भण्डार में सचचे और योग्य संगठन से  
(क) अगर खादी बनानेवाले अधिक सगान और

कपास सूत कतवाने, कम से कम मिल के सूत के बराबर  
कपास सूत कतवाने पर ध्यान दें;

(ख) अगर वे लोगों की रुचि समझने की कोशिश करें,  
और भौंति भौंति के कपड़े बनवावें;  
(ग) अगर सुप्रबंध के बल पर खादी का दाम घटावें,  
(घ) अगर खादी बेचनेवाले, लोगों की पसन्दगी को  
और अधिक समझ लें और खादी बेचने की कला सीखें;  
(ङ) अगर बनाने और बेचनेवाले दोनों ही समझ लें  
कि कम से कम दाम पर उन्हें अधिक से अधिक माल देना  
होगा, और खादी के सार्वजनिक संगठन के लिए आत्म-त्याग  
की शर्त अनिवार्य है,

मैं देखता हूँ कि खानगी दूकानों को मालिकों का या कोई  
दूसरा नाम दिया जाता है। अधिक सुभीते के लिए मैं सलाह  
दूंगा कि वे सब एक समान नाम, सीधे सीधे खादी भण्डार रखें  
और, उसके पहले जहरत के मुआफिक अ० भा० चर्खा-संघ,  
काम्रेस या (खास) सा कुछ जोड़ लें। एक ही जहाँ दो  
या अधिक भण्डार हों, वहाँ उन्हें नम्बर एक, नम्बर दो इत्यादि  
कहा जाय। जब तक खादी का संगठन करना है उसे पालना  
पोसना है, अधिकांश भण्डार अ० भा० चर्खा-संघ की ही मिल  
कियत हैं, या उसके जांचे हुए, तथा उससे सम्बन्ध हैं, यह बात  
इष्ट है।

## खुदरा बिक्री के खादी माण्डार तामिल नाड और केरल

स्थान	भाण्डार	स्थान	भाण्डार
१. अवनासी	"	१६. मायावरम	"
२. बंगलोर	"	१७. मुथुपेट	"
३. कलिकट	"	१८. पदियूर	"
४. चेयूर	"	१९. पालघाट	"
५. कोयम्बटूर	"	२०. पल्लियमपट्टी	"
६. कन्जीवरम	"	२१. पुल्लियनकुर्ची	"
७. कुडालोर ३० ता.	"	२२. सलेम	"
८. एरनाकुलम	"	२३. तालीपरम्बा	"
९. एरोड	"	२४. तन्जोर	"
१०. गोपाचेरीपालयम	"	२५. टिनेवेली	"
११. कल्लकुर्ची	"	२६. तिरुपुर	"
१२. कराईकुडी	"	२७. त्रिचिनापोली	"
१३. कीनाधु किडाधु	"	२८. उडुकुली	"
१४. मन्नस	"	२९. वेलोर	"
१५. मडुरा	"	३०. विशदुनगर	"

## खानगी भाण्डार

३१. चिदम्बरम्	भारत खहरशाला
३२. डिंडिगुड	मडुरा स्वदेशी कम्पनी
३३. कल्लकुर्ची	को-ओरेंटिव स्टोर्स
३४. कदर	रामविलास खहर स्टोर्स
३५. कुम्भाकोनम	खहर आश्रम
३६. "	कल्याणवर्धन स्टोर्स
३७. मन्नस	चिदम्बरम् चेडियर
३८. मडुरा	राजा खहर वस्त्रालय
३९. मन्नारगुडी	खहरशाला
४०. मायावरम्	कल्याण सुन्दरम मुबालियर
४१. नागमनिकुनपेटाई	कुमार स्वामी चेडियर
४२. नागपट्टम	देशभक्त समाजम
४३. पापनाशम्	खहरशाला
४४. पोलीकवल्लिपारम्	के. एस. रामस्वामी चेडियर



४५. पुष्पालयम्  
४६. पुष्पागारम्  
४७. राजापालयम्  
४८. " "  
४९. सङ्गम  
५०. " "  
५१. हिण्डवानम्  
५२. तिरुमंगलम्  
५३-६० तिरुपुर

## गांधी आश्रम

- राम स्वामी ऐयर  
के. ए. पेरुगुप्पा  
रंगस्वामी राजा  
सिद्धराज  
जयगोपाल चेडियर  
को-ओपरेटिव स्वदेशी वस्त्रालय  
मदुरा डिस्ट्रिक्ट खदर बोर्ड  
(१) चिदम्बरम् चेडियर  
(२) गांधी खदरालयम्  
(३) कोयु हैन्डस्विमिंग वि. कम्पनी  
(४) लक्ष्मण चेडियर  
(५) सुरेश मुडालियर  
(६) मुथुस्वामी चेडियर  
(७) शंकरप्पा चेडियर  
कंठस्वामी गुप्त  
खदर निलयम्  
वी. वैद्यनाथ ऐयर

## महाराष्ट्र

१. अकोला काँग्रेस खादी भंडार  
२. अमरावती खादी भंडार  
३. मुम्बई महाराष्ट्र खादी भंडार  
४. चंदा ( मध्य प्रांत ) शुद्ध खादी कार्यालय  
५. चोपडा ( पू. खानदेश ) शुद्ध खादी भंडार  
६. धूलिया काँग्रेस खादी भंडार  
७. एरानडोल ( पू. खानदेश ) खादी भंडार  
८. गोन्दिया खादी भंडार  
९. जलगांव काँग्रेस खादी भंडार  
१०. खामगांव शुद्ध खादी भंडार  
११. नागपुर अ. भा. चर्खासिंध खादी भंडार  
१२. पूना सिटी काँग्रेस खादी भंडार  
१३. रत्नागिरि खादी भंडार  
१४. शोलापुर काँग्रेस खादी भंडार  
१५. वेणुजी ( कोकण ) खादी भंडार  
१६. वर्धा खादी भंडार

चर्खासिंध के ६, सहायता-प्राप्त ५ और खानगी ४ भंडार ।

## बिहार

- | १. आरा                  | का. खा. भं. | का. खा. भं.                  |
|-------------------------|-------------|------------------------------|
| २. औरंगाबाद             | "           | १७. झरिया "                  |
| ३. बहेरा                | "           | १८. मधुबनी "                 |
| ४. बेगूसराय (मुंगेर)    | "           | १९. मैरवा (छपरा) "           |
| ५. वैतिया               | "           | २०. मुजफ्फरपुर का. खा. भं.   |
| ६. भागलपुर              | "           | २१. पंडौली (दरभंगा) "        |
| ७. छपरा                 | का. खा. भं. | २२. पटना "                   |
| ८. दरभंगा               | का. खा. भं. | २३. पुपरी (मुजफ्फरपुर) "     |
| ९. देवघर                | "           | २४. सीतामढी (मुजफ्फरपुर) "   |
| १०. डोह (मुजफ्फरपुर)    | "           | २५. रांची "                  |
| ११. गया                 | "           | २६. समस्तीपुर "              |
| १२. गोगरी               | "           | २७. विष्णुपुर "              |
| १३. मोरौंग (मुजफ्फरपुर) | "           | २८. गोपालगंज (छपरा) "        |
| १४. झांसीपुर            | "           | २९. चकधरपुर सीताराम स्माराशी |
| १५. जमना (मुंगेर)       | "           | ३०. आनंदगंज                  |
| १६. समस्तीपुर           | "           | ३१. मुंगेर कलौयशौप "         |

तामिलनाडु: ३० चर्खा संघ के, ३३ खानगी

महाराष्ट्र: ७ चर्खा संघ के, ५ सहायता प्राप्त,

४ खानगी, बिहार: ३१

कुल ११०

## अखिल भारतीय गोरक्षा परिषद्

इस व्यापारी संस्था की कार्यवाही पूरी पूरी प्रकाशित करने की कोशिश थी । इस का जन्म तो योही अचानक हुआ था, इसे जानते भी बहुत कम लोग हैं । यह अपने जन्म काल से ही गोरक्षा का बहुत ही मुश्किल सवाल, धार्मिक अर्थ-नीति की जरिये हल करने की कोशिश करती रही है । परिषद् की प्रबन्ध समिति की और साधारण सभा की भी एक गत ११ मार्च को आश्रम में हुई थी । मगर मेरे वहां से जन्म चल देने और फिर बीमार पड़ जाने के कारण, रिपोर्ट छप न सकी । उस सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था:

‘परिषद् की प्रबन्ध-समिति ने (वर्धा में) प्रस्ताव किया था अधिक से अधिक एक लाख रुपये, एक आदर्श दुग्धालय की एक आदर्श चर्मालय बनाने में लगाये जायें । आज यहाँ स्वीकार किया जाता है कि वह प्रयोग, सत्याग्रहाश्रम, साधारण की प्रबन्ध-समिति के द्वारा उसके अधीन, अ० भा० गोरक्षा परिषद् के उद्देश्यों के अनुकूल किया जाय और उसके अधिक से अधिक एक लाख की रकम अलग निकाल दी जाय और वह रकम परिषद् के कोष से आश्रम की प्रबन्ध समिति की दी जाय और उन्हें कहा जाय कि समय समय पर इस प्रयोग की प्रगति की सूचना वे परिषद् को देते रहें ।

उस सभा में अ० भा० गोरक्षा परिषद् के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये:

## सभारति

मोहनदास करमचंद गांधी

## खजंची

सेठ रेवाशंकर जगजीवन झवेरी

## सदस्य

श्रीयुत वैजनाथ केडिया

„ महावीर प्रसाद पोद्दार

सेठ जमनालाल बजाज

श्रीयुत परमेश्वरी प्रसाद गाजीपुरिया

„ नारायणदास पोद्दार

डॉक्टर बी. एस. मुजे

मेरी आशा थी कि दोनों में मैं गोप्रेमियों से परिषद् के धन इकट्ठा कर सकूँगा । प्रस्ताव तो एक लाख रुपया खर्च चाहता है । मगर परिषद् के पास १५,००० रुपयों से नहीं है । पर प्रस्ताव इसी आशा से माना गया था कि की ओर से काफी सहायता मिलेगी । अब, जब कि परिषद् के काम में दिलचस्पी लेते हैं और हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए इसके तरीकों को पसन्द करते हैं, मैं करता हूँ की उनके पास व्यक्तिगत अपील बिना किये ही वे सहायता भेज दें । जो कुछ मिलेगा, इस पत्र में स्वीकृत जायगा । ठाठ जानते हैं की परिषद् का सदस्यशुल्क साठाना ५) या २४,००० गज ठीक ठीक काता गया सुन्दर सूत है । उनसे, जो परिषद् के तरीकों और प्रबन्ध में विश्वास रखते हैं, अच्छी रकमों की आशा रखता हूँ ।

( इ. यं. )

मो० क० गांधी



वार्षिक मुख्य ४)  
छः मासका ,, २)  
एक प्रति का ,, १)

मयंकर फर्क

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३७ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
लामी आनंद

अहमदाबाद, वैशाख बदि १२ संवत् १९८४  
गुरुवार, अप्रैल, २८ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
धारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## रोगशैया के पास से

गांधीजी से यह आखिरी पत्र लिख रहा हूँ। जैसा कि पहले  
चुका है, आज यहाँ से हम रवाना हो रहे हैं। सावतवाडी  
गांधीजी से मिलने के लिए शाम को आ गये  
गांधीजी से बार बार आग्रह किया कि “कुछ  
बोझ रह जाइए न ?” डॉक्टरों की भी यही राय है,  
बदिन और यही रहें तो क्या हर्ज है ?” गांधीजी  
सुगन्ध मय रम्य और शान्त स्थान में मुझे जो  
बिठा है, वह कहीं नहीं मिल सकता। आप निश्चय पूर्वक  
जानें कि आप से यह बिदा लेना मेरे लिए जरूर दुखदायी है।  
यहाँ हुए बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि आराम के  
बिना अपने काम में लग जाने का लोभ भी तो मुझे है  
और अब तो सब दूर तार बगैरा कर दिये गये हैं। वे  
तो राह देखते होंगे। फिर यहाँ कैसे रह सकता हूँ ?”  
एक-दूसरे को इससे संतोष नहीं हुआ। पीछे मुड़कर वे  
जो कहेंगे “क्या उन सब तारों को आप रद्द नहीं कर  
लेंगे ? लोग भले ही आशा से राह देखते होंगे, पर इनको  
आप भी जरा समझाइए तो सही !”  
गांधीजी की तबियत के विषय में यहाँ पर दो शब्द कहे  
जा सकते हैं कि उनकी तबियत सुधरती जा रही  
है। जो थकवट आ जाया करती थी, पैर दुखते  
थे अब दो चार दिन से कुछ नहीं है। दो फर्लांग से भी  
ज्यादा चल सकते हैं। इसका कारण उनकी तबियत  
में स्वभाविक प्रगति है, या उनके द्वारा शुरू किये गये  
कार्य, वह नहीं सकते। मैं पहले लिख चुका हूँ कि  
मोहनदास का साहित्य पढ़ रहे हैं। साथ ही इस  
समय गांधीजी से बात चीत भी होती है। और इसके  
साथ ही एक तो यह कि संभव है, वर्तमान व्याधि का  
उपचार करने से निकल आवे। और दूसरे, वे इस श्रद्धा

से उन्हें कर रहे हैं कि ब्रह्मचारियों के लिए कुछ सहजसाध्य  
प्रयोग सूचित किये जा सकें, तो देखना चाहिए। यह श्रद्धा सच्ची  
है या केवल भ्रम ही साबित होती है, सो तो अनुभव से ही  
मालूम होगा। हाँ, यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि  
इनसे कोई हानि नहीं दिखाई दी है। पर फिर भी गांधीजी  
इस विषय में अपने डॉक्टर की राय तो लेने के लिए तैयार  
थे ही, कि इतने में कर्नल इरानी—बेलगांव के सिविल सर्जन—जिन्होंने  
बेलगांव आते ही गांधीजी को जाना था, उन्हें देखने के लिए  
आ पहुंचे। वे तो केवल मित्र-भाव से ही आये थे। उनका यह  
आगमन गांधीजी को बड़ा अच्छा मालूम हुआ। गांधीजी ने उन्हें प्रयोगों  
के सम्बन्ध में सब हाल कह दिया। खून का दबाव तो जितना  
पहले था वही उन्हें दिखाई दिया। जब पूछा गया कि “इन  
क्रियाओं से शरीर पर जो असर हो रहा है उसे देखते हुए  
इन्हें करने की आप सिफारिश कर सकते हैं या नहीं,” तो वे इसके  
विपक्ष में कुछ नहीं कह सके। परन्तु सावधानी की दृष्टि से उन्होंने  
इन क्रियाओं की सिफारिश करने से इन्कार कर दिया। तथापि  
इस ‘इन्कार’ को आवश्यकता से अधिक—सावधानी का फल  
समझ कर गांधीजी ने अपने प्रयोग तो ज्यों के त्यों शुरू रखे।  
स्वयं उन्हें तो इनसे अच्छा मालूम होता है। परमात्मा चाहेगा तो  
इन क्रियाओं का कुछ अनुभव प्राप्त करके स्वयं गांधीजी ही  
आगे चल के इन पर कुछ लिखेंगे।

कर्नल इरानी अपने दो पारसी मित्रों को भी साथ में  
लाये थे। वे दोनों ऊँचे अधिकारी थे। गांधीजी ने  
उनके सामने अपना चर्खा शुरू कर दिया। उन दो मित्रों में से  
एक ने कहा “इस तरह हाथ हिलाते हिलाते आप ऊब नहीं जाते ?”  
गांधीजी ने कहा “यह क्याल कर लीजिए कि आप यह करोड़ों  
भाइयों के लिए कर रहे हैं, तब नहीं थकेंगे ?”। उस मित्र ने  
खादी विषयक यह दलील तो शायद पहिली ही बार सुनी होगी।  
इसलिए वे कुछ आश्चर्य-चकित हुए, किन्तु कोई जवाब नहीं  
दिया।

( नवजीवन )

महादेव हरिभाई देशाई



## सत्य के प्रयोग मन्षा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय २१

बम्बई में रह गया ?

गोखले की भारी इच्छा थी कि मैं बम्बई में रह जाऊँ, वहीं बैरिस्टरी करूँ और साथ ही उनके साथ सार्वजनिक सेवा में भी भाग लूँ। उस जमाने में सार्वजनिक सेवा के मानी महासभा सेवा ही था। उन्होंने जिस संस्थाको स्थापन किया था, उसका बाघ कार्य तो महासभा का कार्य संचालन ही था।

इच्छा तो मेरी भी वही थी। पर मुझे यह विश्वास नहीं था कि मेरा पेसा ठीक ठीक चल निकलेगा। पिछले अनुभव को मैं अभी भूला नहीं था। और खुशामद करना तो मेरे लिए विष के समान था।

इस लिए पहले पहल तो मैं राजकोट में ही रहने लगा। वहाँ मेरे पुराने हितैषी और मुझे इंग्लैड मेजनेवाले कैवळराम मावजी रहे थे। उन्होंने मुझे तीन मामले दिये। उन में से दो तो काठियावाड़ ज्यूडिशियल असिस्टेंट की इजलास में अपीलें थीं, और तीसरा था एक जामनगर का मामला, जो बड़ा महत्वपूर्ण था। इस मामले को लेने से मैंने जरा आनाकानी की। तब कैवळराम बोले—भाई, हारेंगे तो हम हारेंगे। आपसे जितना हो सके, अपनी शक्तिभर कोशिश करके देख लीजिए। और आखिर मैं भी तो आपके साथ ही रहूँगा न ?”

इस केस में स्वर्गीय समर्थ मेरे प्रतिपक्षी की ओर से खड़े हुये थे। मैंने तैयारी अच्छी कर ली थी। यहाँ के कानून का तो मुझे विशेष ज्ञान नहीं था। पर इस काम में कैवळराम रवे ने मुझे खूब सहायता की। जब मैं दक्षिण आफ्रिका गया तो मेरे मित्र कहते थे कि एविन्स एंशट तो फिरोजशाह की जवान पर रक्खा है। और यही उनकी सफलता की कुंजी भी है”। इस बात को मैंने ध्यान में रक्खा, और दक्षिण आफ्रिका जाते समय यहाँ का एविन्स एंशट मय टीका के मैंने खूब अच्छी तरह पढ़ लिया। अलावा इसके दक्षिण आफ्रिका का तजरिवा भी तो था ही।

मामले में मेरी जीत हुई। और इससे मेरा विश्वास भी बढ गया। उन दो अपीलों के विषय में तो मुझे शुरू से ही कोई चिन्ता नहीं थी। अब मुझे माखम होने लगा कि यदि मैं बम्बई भी चला जाऊँ तो कोई चिन्ता की बात नहीं है।

पर इस विषय में अधिक लिखने के पहले अंगरेज अधिकारियों के अविचार और उनके अज्ञान के अनुभव को भी बोधा जा लिख दूँ।

ज्यूडिशियल असिस्टेंट एक स्थान पर तो कभी बैठते ही नहीं थे। हमेशा घूमते रहते थे। और जहाँ जहाँ वे साहेब जाते, वकील मुवक्किलों को भी उनके पीछे पीछे जाना ही पड़ता। और वकील काफ़ी स्थान पर जितनी फी केंते, दौरे पर उससे अधिक तो जरूर केंते। अर्थात् मुवक्किलों को दूना खर्चा उठाना पड़ता। पर इसका विचार जब साहेब को थोड़े ही हो सकता है।

अपील की सुनवाई बेराबक में होने को थी। इस समय बेराबक में भयंकर प्लेग था। सड़े याद है कि प्रतिदिन पचास पचास केसेब होते थे। कत्ने की जनसंख्या ५५०० के लगभग थी। पर घरा गाँव आली पड़ा था। मैं जाकर वहाँ की निर्वन जमेबाका में ठहरा, जो बस्ती से कुछ फास पर थी। पर

मुवक्किलों का क्या हाल ! यदि वे गरीब होते तो उनका रखवाला परमात्मा ही था।

वकील मित्रों ने मुझे तार द्वारा साहेब से यह प्रार्थना करने लिए कहा कि वे प्लेग के कारण अपना मुकाम बेराबक से हटा कर और किसी दूसरे स्थान में कायम कर दें। साहेब से मैंने यह अब किया तो वे पूछने लगे ‘क्या आप बरते हैं ?’

मैंने कहा—“यह सवाक मेरे डरने न डरने का नहीं मेरा हयाल है कि मैं तो अपनी रक्षा कर सकता हूँ। पर मुवक्किलों का क्या होगा ?”

साहेब बोले—“प्लेग ने तो भारत वर्ष को अपना बना लिया है। अब इससे डरने से क्या होगा ? देखिए न, का जलवायु कैसा बढ़िया है ? (साहेब बस्ती से दूर, एक के समान तंबू में रहते थे।) लोगों को इस तरह घात बाहर रहना सीख लेना चाहिए।”

इस फिलासफी के सामने मेरी क्यों चलने लगी ? अपने सरिस्तेदार से कहा, ‘देखोजी, मि. गाँधी की बात हयाल में रखना। और अगर वकीलों और मुवक्किलों को तकलीफ होने लगे तो मुझे इशारा कर देना।’

साहेब ने तो सरलता-पूर्वक अपनी बुद्धि के अनुसार तो किया। पर वह कंगाल भारतवर्ष की कठिनाइयों को क्या वह बेचारा भारत की जरूरतों, आदतों, कुटुंबों और रिवाजों का समझता था ? मुहर के नाप से अपना लेन-देन और करने वाले के हाथ में पाई दे कर उसे व्यवहार करने के कहे ? तो बँह क्या कभी झट पट गिन्ती कर सकता है ? झुप हेतु होने पर भी जिस प्रकार हाथी च्यूंटी का विचार असमर्थ है, उसी प्रकार हाथियों की छी जरूरतों वाला अंगरेज च्यूंटियों की छी जरूरतों वाले भारतीयों के विषय में विचार और उनके लिए नियम बनाने में असमर्थ ही साबित होगा।

क्षैर, अब पुनः अपने विषय को लें।

उपर्युक्त सफलता मिलने के बाद भी मैं तो यही कर रहा था कि कुछ रोज और राजकोट में रह दूँ, कि एक दिन कैवळराम मेरे पास आये और ‘बोले गाँधी, अब हम यहाँ नहीं रहने देंगे। आप को तो बम्बई में ही रहना होगा।’

“पर वहाँ तो मुझे कोई पूछेगा भी नहीं। क्या आप वहाँ का खर्च देंगे ? मैंने पूछा।

“हां हाँ, आपका खर्च मैं दूँगा। आपको एक बड़ा बैरिस्टर बना कर के किसी मामले में बीच बीचमें यहाँ के करेंगे और लिखने वगैरा की सामग्री तो वहीं आप के पास मेज करेंगे। बैरिस्टरों को छोटे से बड़े, और बड़ों को छोटे तो हमी वकीलों के हाथों में है न ? जामनगर और बेराबक आपने अपना जो परिचय दिया है, उससे मैं तो बिल्कुल विश्व हो गया। आप तो सार्वजनिक सेवा करने के लिए पैरा है। हम आपको यों काठियावाड़ में कभी नहीं रफन होने देंगे। हाँ, बताइए आप कब जा रहे हैं ?”

मैंने कहा—नाताल से मेरे कुछ रुपये आ रहे हैं वे निक पर मैं यहाँ से जा सकूँगा।

दो ही सप्ताह में वे रुपये मुझे मिल गये, और मैं चला गया। पेहन गिबर्ट ख्यानी के आफिस में मैंने किराये पर लिये, और मुझे माखम हुआ कि अब मेरा जीवन

(मनजीवन)

मोहनदास करमचंद



## अस्पृश्यता और अविभेक

अतः यदि हम मान लें कि घटना का ब्यौरा ठीक है, तो इसमें कोई

सन्देह नहीं रह जाता कि उस कहानेवाले बर्गोंने ऐसा गैर कामूनन बर्ताव किया जिसके लिए उन्हें उकसाया नहीं गया था। क्योंकि हमें स्मरण रखना चाहिए कि अन्त्यजों के तालाब पर पानी पी लेने के कारण ही त्रिजातियों के झुंड मंदिर में इकट्ठा नहीं हुए थे। इसका कारण तो यही वह गलत अफवाह, जिसमें कहा गया था कि अन्त्यज मंदिर में घुसना चाहते हैं। पर अविभेक के साथ साथ विचारशीलता शायद ही कभी पाई जाती है। अस्पृश्यता स्वयं ही अविचारपूर्ण वस्तु है। वह तो एक अमानुष संस्था है। जो अब विनाश के मार्ग पर है। भले ही कहर मतावलम्बी अपने पशुबल से उसकी चाहे कितनी ही हिमायत करें।

इस कठिन प्रसंग पर अस्पृश्य कहे जानेवाले भाइयों ने जिस संयम से काम लिया वह सचमुच अनुकरणीय है। और उनके इस व्यवहार ने हमें इस जटिल सवाल को हल करने में एक कदम आगे बढ़ा दिया है। यदि उन्होंने इसका बदला चुका दिया होता तो दोषारोपण का काम शायद कठिन हो जाता। पर इस परिस्थिति में तो सारा दोष उन स्पृश्य जातियों के सिर पर ही है। पशु-बल अस्पृश्यता की रक्षा नहीं कर सकता। इससे तो उलटें अस्पृश्यों के पक्ष में लोकहृदय हो जायगा। यह समय का प्रताप है कि कम से कम कुछ लोग तो ऐसे निकले, जो गरीब अन्त्यजों का पक्ष लेकर उनकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील हुए। क्या ही अच्छा होता यदि महाब में इससे कहीं अधिक लोग अस्पृश्यों के अभिभावक होते। ऐसे मौकों पर मूक सहायभूति अधिक उपयोगी नहीं होती। प्रत्येक हिन्दू को, जो अस्पृश्यता निवारण का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य समझता है, चाहिए कि वह ऐसे मौकों पर खुले आम दीन-दुष्टों का पक्ष कर उनके प्रति अपनी सहायभूति को व्यक्त करे परवा नहीं यदि यह पुण्य कार्य करते हुए उसका सिर भी फूट जाय। डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्यों को तालाब पर पानी पीने की सलाह दे कर बम्बई धारासभा के प्रस्ताव को तथा महाब म्यूनिसीपल कमिटी के मत को कार्य में परिणत कर के उसे जो कसौटी पर चढ़ाया, यह मेरी मति में तो बिल्कुल उचित ही जान पड़ता है। हिन्दू सभा जैसी इन सुधारों में दिक्कतपी लेने वाली संस्थाओं को ऐसे एक भी मौके को बेकाम नहीं जाने देना चाहिए। मेरे संवाददाता की लिखी बातों की वे जांच पड़ताल करें, और यदि वे ठीक हों तो वे स्पृश्य जातियों के कार्यों की निन्दा करें। अस्पृश्यता जैसी बुराइयों को जब से उखाड़ने के लिए सुशिक्षित लोकमत के समान शक्तिशाली कोई उपाय नहीं है।

( यं ६० )

मोहनदास करमचन्द गांधी

### भूल सुधार

पिछले अंक में भूल से गोरक्षा समिति के कुछ सदस्यों के नाम छूट गये थे। अधिकारियों तथा सदस्यों की पूरी नामावलि यों है—(१) श्री मोहनदास करमचन्द गांधी (अध्यक्ष), (२) श्री रेवाशंकर जंगजीवन सवेरी (कोषाध्यक्ष), (३) श्री वैजनाथ जी केडिया, (४) श्री महावीर प्रसाद पोद्दार, (५) श्री बमनालाल बजाज, (६) श्री परमेश्वरी प्रसाद गान्धीपुरिया, (७) श्री नारायण दास पोद्दार, (८) डॉ. बी. एस. मुंजे, (९) श्री बालकृष्ण मार्षाजी चौधे, (१०) श्री शंकर श्रीकृष्ण देव, (११) श्री नारायण बालकृष्ण केकर, (१२) श्री नगीनदास अमलखराय, (१३) श्री मणिकाल बलभजी कोठारी, (१४) श्री मगनलाल खुशालचंद गांधी, (१५) श्री बालजी गोविंदजी देसाई (मंत्री)।



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख वदि १२ संवत् १९८४

## भारत के पहले राजदूत

दक्षिण आफ्रिका निवासी भारतीयों को यह सुनकर बड़ी तसल्ली होगी, कि माननीय शास्त्री ने पहला भारतीय राजदूत बन कर आफ्रिका में रहना स्वीकार कर लिया है, बशर्ते कि सरकार यह स्थान ग्रहण करने के प्रस्ताव को आखिरी बार उनके सामने रखे। भारत सेवा संघ और शास्त्री जी ने यह बड़ा ही त्याग किया है, जो वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि यदि यह प्रस्ताव नहीं किया जाता तो वे भारत में अपना काम छोड़कर इस जिम्मेदारी को अपने सिर पर लेने के जरा भी इच्छुक नहीं थे। परन्तु जब उन्हें साम्राज्य यह अनुरोध किया गया कि वे ही एक ऐसे आदमी हैं, जो उस समझौते के अनुसार कार्य शुरू कर सकते हैं, जिसके स्वीकृत कराने में उनका बहुत भारी हाथ रहा है, तो उन्हें इस प्रार्थना और आग्रह को मंजूर करना ही पड़ा। दक्षिण आफ्रिका से समय समय पर जो तार भेजे गये थे उनसे हमें पता चलता है कि वहां के अंगरेज भी इस बात के लिए कितने उत्सुक थे कि शास्त्रीजी ही इस सम्माननीय पद को ग्रहण करें। शास्त्रीजी की वक्तव्य-शक्ति, निस्पृहता, मधुर विवेकशीलता, और असीम सचाई ने यूनिन सरकार और वहां के यूरोपीय लोगों के हृदय में उनके लिए चाह और आदर उत्पन्न कर दिया जब वे हसीबुल्ला शिष्टमंडल के साथ कुछ दिनों के लिए दक्षिण आफ्रिका गये थे। मैं खुद जानता हूं कि हमारे दक्षिण आफ्रिका निवासी भाई इस बात के लिए कैसे असीम चिन्तातुर थे कि किस प्रकार शास्त्रीजी ही वहां भारत के पहले राजदूत बनकर जाएं। और श्रीयुत धीनिवास शास्त्रीजी के लिए भी तो जिन्हें परमात्मा ने ऐसे उदार हृदय से भूषित किया है, ऐसे सर्व संमत अनुरोध का इन्कार करना असंभव था। और अब यह प्रायः निश्चित है कि शीघ्र ही उनकी बाकायदा नियुक्ति होकर उसकी खबर प्रकाशित कर दी जायगी।

अब इन पहले राजदूत का काम भी उनके लिए निश्चित कर दिया जायगा। निःसन्देह, यूनिन सरकार और हमारे दक्षिण आफ्रिका के भारतीय भाई भी भारत के इस पहले राजदूत से बड़ी बड़ी आशाएँ तो करते ही होंगे। चूंकि शास्त्री जी स्वयं भारतीय और एक विख्यात पुरुष हैं, निःसन्देह यूनिन सरकार जरूर यह सोचती होगी कि जहां तक भारतीयों से सम्बन्ध है, उन्हें समझा बुझाकर, शास्त्रीजी सरकार के प्रस्तावों आदि का काम सरल कर देंगे। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि यूनिन सरकार उनसे आशा करती है कि शास्त्री जी उसकी बातों को भारतीय समाज तथा भारत सरकार के सामने सहायभूति पूर्वक रखेंगे। इधर भारतीय समाज भी आशा करता है कि शास्त्रीजी इस बात का जरूर आग्रह करेंगे कि समझौते का सम्मानयुक्त—बल्कि उदारता पूर्वक पालन हो। दो प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारों को संतुष्ट करना यों कठिन तो है ही। पर दक्षिण आफ्रिका में, जहां कि जातियों और रंगों के स्वार्थों में आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध है, यह काम कहीं अधिक मुश्किल है। किन्तु मैं जानता हूं कि अगर इस सूक्ष्म तराजू को अपने हाथ में कोई ठठा सकता है, और

दक्षिण आफ्रिका से सम्बन्ध रखने वाले सभी रंगों को संतुष्ट कर सकता है, तो अकेले शास्त्री जी ही एक ऐसे आदमी हैं। मेरा खयाल है कि, यूनिन सरकार के मंत्री यह तो अपेक्षा नहीं रखेंगे कि भारतीय समाज को उसके न्याय्य स्वत्वों को दिलाने के शास्त्री जी एक इच्छा भर भी पीछे हट जायें। हां, ज्यादा से ज्यादा शास्त्री जी यह कर सकते हैं, कि वे भारतीयों को समझौते का उल्लंघन करके आगे बढ़ने से रोकें, कम से कम तब तक तो जरूर रोकें, जब तक कि वहां के भारतीय अनुकरणीय आत्म संयम और अपने अन्य द्वारा १९१४ से प्राप्त किये समझौते से आगे अपनी पात्रता को सिद्ध नहीं कर देते। अतः यदि दक्षिण आफ्रिका के भारतीय भाई इस भारत के प्रतिनिधि के को सरल और अपनी परिस्थिति को सुरक्षित कर लेना चाहें तो वे उनसे बड़े बड़े चमत्कारों की आशाएं करना छोड़ दें। उनका अनुमान गलत होगा कि “चूंकि हम अभी एक सम्माननीय समझौते पर कर चुके हैं, और उस पर अमल कराने के लिए भारत का महान पुरुष हमारे यहां आ रहा है, इसलिए अब तो हमारी परिस्थिति में एक दम कायापलट हो जायगा।” उन्हें याद रखना चाहिए कि माननीय शास्त्रीजी वहां उनके वकील बनकर उनके प्रत्येक व्यक्तिगत शिकायत के लिए लड़ने को नहीं आते हैं। उनको मामूली व्यक्तिगत शिकायतें सुना सुना कर परेशान करना उस सोने के अंडे देने वाले पक्षी की इत्या करने के समान है। वे तो वहां भारतीय सम्मान के रक्षक बन कर जा रहे हैं। सर्वसाधारण भारतीय समाज के स्वत्व और स्वाधीनता की रक्षा के लिए वे वहां जा रहे हैं। शास्त्रीजी वहां यह देखने के लिए जा रहे हैं कि यूनिन सरकार कहीं कोई नवीन कवायती नहीं बनाने पाए। अलावा इसके वे देखेंगे कि वर्तमान कानूनों पालन उदारता पूर्वक तो हो रहा है? उनके पालन में भारतीयों के स्वत्वों को कोई हानि तो नहीं हो रही है, आदि। अतः उनसे कोई व्यक्तिगत शिकायत की भी जाय तो किसी व्यापक सर्वसाधारण नियम का उदाहरण—स्वरूप हो। इधर यदि व्यक्तिगत मामलों में शास्त्री जी की सहायता मांगने में दक्षिण आफ्रिका का भारतीय समाज दूरदर्शी संयम से काम न लेगा, तो वह उनकी परिस्थिति को असह्य और उस महान् उद्देश के लिए उन्हें अक्षम बना देगा जिसके लिए वे वहां खास कर भेजे गये हैं। सचमुच एक राजदूत की उपयोगिता केवल यही समाप्त नहीं होती कि वह केवल सरकारी पद से सम्बन्ध रखने वाले अर्थव्यवस्था के कर्तव्य का पालन भर कर ले। बल्कि उसकी वह अप्रत्यक्ष सेवा कहीं अधिक उपयोगी है जो सरकारी तथा गैर सरकारी कामों को लेकर उससे मिलने जुलने वाले लोगों पर उसके मिलन स्वरूप और सचरित्र के प्रभाव द्वारा होती है। अतः यदि हमारे देशभाई शास्त्री जी की दिमागी और हृदय के महान् गुणों का उपयोग करना चाहें तो वे मेरी बताई उपर्युक्त मर्यादाओं का जरूर स्थापन रखें।

मैं समझता हूं कि यदि श्री शास्त्रीजी जावेंगे तो श्रीमती शास्त्री भी उनके साथ दक्षिण आफ्रिका जावेंगी। दक्षिण आफ्रिका में रहने वाले भारतीयों के लिए यह बड़े ही लाभ की बात है। भारतीय बहनें प्रेम से श्रीमती शास्त्री को वहां घेर लें। उन्हें समाज-सेवा का एक अमूल्य साधन पावेंगे। क्योंकि दक्षिण आफ्रिका में फैली हुई हजारों बहनों का जीवन ऊंचा उठाने में वे बहुत सहायक होगी

(यंगदक्षिणा)

मोहनदास करमचंद गांधी



## भयंकर फर्क

जिन्होंने गत मार्च में पहले पहल नयी दिल्ली के 'ऐसेम्बली हॉल' को देखा है, लिखती हैं:—

बात की ओर आपका ध्यान खींचना चाहती हूँ। उस दिन मैं पहले पहल 'ऐसेम्बली हॉल' को देख गई। नयी दिल्ली को भी मैंने पहले कभी नहीं देखा, तो मालूम हुआ कि सचमुच लाखों-करोड़ों रुपये खर्च हुए होंगे, तब कहीं इस भव्यता की छवि हुई होगी। 'ऐसेम्बली हॉल' भी उतना ही भव्य दिखाई देता है। पर व्यर्थ ही 'ऐसेम्बली हॉल' को देख कर बाहर निकली, एकाएक मेरी नज़र 'मैग्नेट' पर पड़ी, जिनमें, मैंने सोचा, नई दिल्ली के नए नए मजदूर रहते होंगे। मैं उन झोंपड़ों के बीच से गुजरती हूँ तो मुझे असीम दुःख हुआ। उन गरीबों के लिए बनाये गये झोंपड़े जरा भी मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं थे। और यही वे मकान थे, जिनमें बेचारे कठिन परिश्रम कर के विश्रान्ति की आशा से रहते थे। कहीं कहीं तो दिवालियों में चूने और मिट्टी का इस्तेमाल भी नहीं था। बस, कोरी ईंटें एक पर एक रख दी गई थीं। वे झोंपड़े बनाये गये उन महलों, और तनतौड़ मिहन्त कर के बने हुए इन गरीबों के झोंपड़ों में इतना भयंकर फर्क था कि यह विचार करने का साहस भी नहीं होता था। पर उन दिनों रत्नेश्वरी स्त्रियों को, मालूम होता है, इसका कोई खयाल नहीं था। शाम का समय था, जब मैं उनके झोंपड़ों को देख रही थी। वे स्त्रियाँ तो अपने अपने काम पर व्यस्त रह रही थीं। पर यहाँ मेरा दिल रो रहा था। यह स्त्रियाँ अधिकारियों और धनिकों के आराम के लिए करोड़ों रुपये खर्च कर सकती हैं, जब कि बेचारे मजदूर इतने घुंरे में दिन काटते हैं? मैंने सोचा 'ऐसेम्बली' में प्रति दिन जो मेम्बर लोगों की नजर में यह भीषण फर्क क्यों पड़ेगा, जो नयी दिल्ली में आने पर चंद्र सिनटों में ही मेरी नजर पड़ेगी? वे बड़े बड़े प्रश्नों पर बहस करते हैं, अनेकों प्रश्नों को ठीक करते हैं। तब क्या वे इन बेचारे गरीबों और अज्ञानी लोगों के लिए एक शब्द भी नहीं कह सकते? क्या वे इस बात को नहीं समझ सकते कि इन बेचारों ने इन झोंपड़ों में जाड़े में कैसे कैसी काटी होगी? मैंने इस विषय में अभी किसी को नहीं कहा है। पर क्या आप इस के लिए कुछ कर सकते हैं? मैंने तो किसीसे इसलिए नहीं कहा है, कि मेरे पास कोई अधिकार नहीं होता। पर शायद आप इस बारे में कुछ कर सकते हैं। आप दीन-बन्धु हैं, और आपके हाथ से उनका भला हो भी सकता है। जो हो, आपके सामने अपना दुःख कहिये बिना मुझसे तो नहीं रहा गया।"

जिन्होंने हिन्दी में जो कुछ लिखा है उसका मैंने तो धनिकों और मजदूरों की रहन सहन में हम फर्क देखते हैं, यह आज कल कोई नई चीज नहीं है। आपका आविष्कार हमें उस आविष्कार की याद दिलाता है, जो गौतम बुद्ध ने सदियों पहले किया था। और वह भी कोई नई वस्तु नहीं थी। पर अन्य दुःखों के दृश्यों ने बुद्ध के जीवन में भी इसी प्रकार का संसार में एक कान्ति कर दी। अच्छा यह कि मैंने हिन्दी को भी यह पहली चोट लग गई। यदि

वे और भारत की अन्य शिक्षित महिलाएँ भी, जिन्होंने इन गरीबों के धन से शिक्षा प्राप्त की है, जरा और गहरी जाँचें और उन गरीबों का साथ देकर उस धन को कुछ लौटाने की कोशिश करें, तो उन बेचारों की यह दीन दशा सुधरने में अधिक काल नहीं लगेगा। प्रत्येक महल जिसे हम भारत में देखते हैं, उसकी सम्पत्ति का चिह्न नहीं है। वह है सत्ता की गुस्ताखी का चिह्न जिसे संपत्ति कुछेक लोगों के हाथों में सौंपती है।—सम्पत्ति जो भारत के लाखों करोड़ों गरीब मजदूरों से उनका हिस्सा चुरा कर इकट्ठी की जाती है। हमारी यह सरकार करोड़ों श्रमजीवियों के परिश्रम का अनुचित लाभ उठा कर ही जी रही है और वही उसकी बुनियाद है। उस दिन एक मित्र ने मेरे पास इंग्लैंड के किसी पत्र की एक कतरन मेजी थी, जिसमें लिखा था कि एक अंगरेज के लिए भारत में १५००) मासिक काफी नहीं है। उसमें अंगरेजों को सावधान भी किया गया था कि यदि १५००) से अधिक वेतन नहीं मिले तो वे भारत में नौकरी के लिए जाने का साहस नहीं करें। वेतन के काफी ना काफी होने के विषय में वाद विवाद की कोई बात नहीं है। लेखक की दृष्टि से तो १५००) स्पष्ट रूप से कम ही है। क्योंकि 'क्लब' का खर्चा, मोटर, गर्मी के मौसम में किसी पहाड़ की सैर, इंग्लैंड में बच्चों की पढाई, कम से कम ये सब तो उसके लिए अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। इस पर तो केवल यही कहा जा सकता है और जरूर कहा जाना भी चाहिए कि यदि यह एक अंगरेज की छोटी से छोटी जरूरत हो तो यह गरीब भारत की शक्ति से ज्यादा खर्चीली है और अंगरेजों की सेवाएँ सिद्धान्त रूप से चाहे कितनी ही कल्याण कारक बताई जाएँ, पर यदि इन दिन रात कठिन परिश्रम करने वालों करोड़ों भारतीयों को हम जीने देना चाहते हैं, तो हमें इनकी इन कल्याण-कारिणी सेवाओं के बिना ही अपना काम चला लेना चाहिए। कारण सिर्फ यही है कि हमारी जेब में इतना पैसा ही नहीं जो हम इन अंगरेजों की सेवाओं को खरीद कर उनका लाभ उठा सकें। मैं समझता हूँ कि यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि इन करोड़ों भारतीयों को यहाँ से उठा कर हिमाचल के किसी समथल प्रदेश में रख दिया जाय तो उनकी उम्र आसानी से दूनी हो जाय। पर यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसे वे हंस कर अलग रख देंगे। इन बहनों ने जो नई दिल्ली में देखा वह तो उस दिन ब दिन बढने वाले महान रोग का, जो प्रति दिन हजारों के प्राण हरण करता है, एक छोटासा चिह्न है। यह कल्पना करना भी आसान है, कि यदि कोई उत्साही सदस्य सरकार के सामने इन गरीबों के रहने के लिए अच्छे मकान बनाने के विषय में एक प्रस्ताव रखें, तो वह मंजूर हो जायगा, सरकार उसे अपने विशेषाधिकार का उपयोग करके अस्वीकृत भी नहीं करेगी। बल्कि वह तो इनसे भी अधिक गरीबों को छुट कर उस पर अमल कत करना शुरू कर देगी। पर मैं जानता हूँ कि लेखिका बहन केवल यही नहीं चाहती। देश की हालत को जानने वाले हर एक भारतीय के साथ साथ वे तो यह चाहती हैं, कि इस शासन प्रणाली में ही गहरा परिवर्तन हो जाय। यह वर्तमान शासन पद्धति तो बहुत भारी खर्चीली है। उसके असह्य भार के नीचे इस देश के गरीब निवासी दिन ब दिन पिसे जा रहे हैं, इस कठिन परिस्थिति से निकलने का रास्ता मैं इतनी बार बता चुका हूँ कि जिसकी गिनती नहीं है। और बस, उस एक रास्ते के अतिरिक्त मैं और कोई रास्ता नहीं मानता।

(य. इ.)

मोहनदास करमचंद गांधी



## एक लोकप्रिय नरेश

अम्बोली का जलवायु जितना अच्छा था, उतनी ही मधुर वहाँ के अर्थात् सावतवाडी नरेश के सहवास की स्मृति भी है। नरेशों का मिहमान बनना यह हमारे लिए कोई पहला ही मौका नहीं था। कई देशी राजाओं को निकट दृष्टि से देखने के मौके आये हैं। परन्तु भारत के किसी नरेश ने हमारे दिल पर इतना प्रभाव नहीं डाला जितना सावतवाडीकर बापू साहब ने डाला है।

खादी केरी में हमने गरीब, अमीर, नौ र बर्ग, वकील बर्ग, आदि सब का अनुभव प्राप्त कर लिया है। इन सब दिनों में राजा की स्मृति के सिवा और कुछ किसीने कहा ही नहीं और फिर वह तारीफ भी कैसी? कोई कहता 'हमारे यहाँ तो रामराज्य है।' कोई अभिमान के साथ कहता "हमारे राजा के समान राजा भारत में और दूसरा नहीं मिलेगा।" कोई भविष्य कथन करते हुए कहता "देखिएगा, हमारा राजा एक दिन गांधी महात्मा के समान फकीर बन जायगा।" तो कोई कहता हमारे राजा के समान धर्मात्मा पुण्य आप को कहीं न दिखाई देगा। वह बिना गीता-पाठ और पूजा आदि के तो अन्न को छूएगा भी नहीं। बिना देवदर्शन के वह रही नहीं सकता।" कोई कहता 'हमारे राज्य के देवस्थानों में पशु-वध बन्द है। शिकार का यहाँ नाम न कीजिए। बापू साहब, नागली (एक सस्ता नाज) की रोटी पर कई दिन रह सकते हैं।' हमें आशा थी कि कोई तो कुछ टीका करेगा। पर हमें तो वह कहीं भी सुनाई नहीं दी। तहाँ, अन्य राज्यों में जब जाते हैं, तो राजाओं के भले-बुरे कामों की बातें सुन कर घृणा से तबियत चबरा उठती है। और यहाँ तो मामूली टीका करने वाला भी नहीं मिला। हाँ, यदि इसे टीका कहा जाय तो कहिए। हमने वहाँ यह जरूर सुना है कि 'हमारा राजा तो साधु है। ऐसे एकदम साधु राजा से भी काम नहीं चल सकता।'

x                      x                      x                      x

अम्बोली से निकलने के एक दिन पहले राजा-रानी दोनों गांधी जी से मिलने के लिए आये मने उनके विषय में जितनी बातें सुनी थी, सब गांधी जी से कह दी थी। इसलिए गांधी जी ने तो सीधा उन्हींको पूछना शुरू कर दिया। "महादेव ने आपके विषय में इतनी अच्छी अच्छी बातें सुनी हैं कि उनमें से कुछेक के विषय में स्वयं आपसे कुछ पूछने की इच्छा होती है। कहा जाता है कि आप राज्य के उत्पन्न से केवल २०००) मासिक वेतन लेते हैं। और आपका दान-धर्म आदि का खर्च भी इसी में से होता है। क्या यह ठीक है? " बापू साहब सकीचपूर्वक बोले:— यह सत्य है कि मैं एक निश्चित रकम ही लेता हूँ, पर वह दो नहीं, बर्रा हजार है। परन्तु दरबार भरने हो, बाइघराय, गवर्नर आदि से मिलना हो, सतलज यह कि राज्य सम्बन्धी जितने काम हों, उन सब का खर्चा राज्य से ही होता है "तब विशेष स्पष्टीकरण के लिए गांधी जी ने पूछा — "पर आप तो कितने ही अनाथ बच्चों का भी पालन करते हैं। यह तो आपके निजी खर्च से ही होता है न? यही, आप अम्बोली रहने को आये हैं, इसका खर्च राज्य से किया जायगा, या आपके खानगी वेतन से?" बापू साहब ने उत्तर दिया "हाँ यह सब तो खानगी रकम में से ही होता है" तब संक्षेप हो कर गांधीजी बोले—"वहाँ तक मुझे

मालूम है, देशी राजाओं में आपका पहला ही उदाहरण जिसमें राजा राज्य का सेवक बन गया है" बापूसाहब ने उत्तर दिया—"नहीं और भी आपको ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं। मैसूर के महाराजा भी अपने खानगी खर्च के लिए एक निश्चित रकम ही लेते हैं।" तब गांधीजी बोले—"तब तो आपकी मिहमांसी लेकर उनके यहाँ जाना और भी आनंद की बात है" सावतवाडी नरेश ने कहा—"और सिंधिया? वे तो राज्य के उत्पन्न से एक पाई भी नहीं लेते थे"। "इसके मानी क्या हुए?" "वे अपना खर्चा खानगी उत्पन्न से ही चलाते थे"। "आपके उत्पन्न के मानी यही न कि, जो राज्य में से ही प्राप्त किया गया था?" यों तो लॉर्ड एंस्ट्रुडिल भी कहते कि मैं गरीब आदमी हूँ मैं तो यह कहना चाहता हूँ, कि आपकी तरह स्वयं धन्य करके एक ऊंचे नौकर की तरह मजदूरी भर लेनेवाला राजा आपकी ही कोई होगा।" बापूसाहब के लिए मानो यह अपनी स्तुति सुनना कष्टप्रद हो गया। तब उन्होंने सिंधिया वाली बात ही आगे बढ़ाते हुए कहा, "गांधीजी, आप कभी सिंधिया सरकार भी मिले हैं?" "हाँ, दो बार; एक बार तो मुझे याद है वे मुझे यह समझाने के लिए आये थे कि प्रिन्स आफ वेल्स बायकॉट आप क्यों करते हैं?" "सिंधिया बड़े सादा आदमी थे। उन्हें गरम पानी तक की जरूरत नहीं पड़ती थी जहाँ चाहते, चले जाते, और जो समय पर मिल जाता, वही पी लेते। इसीलिए वे अपनी प्रजा में इतने लोकप्रिय थे।" बातों से यह मालूम होता था, मानो यह लोकप्रियता की उन्होंने सिंधिया से ही ली है। वे आगे बोले—"और उनका रातदिन तनतौब महिनत करते"। गांधीजी—"हाँ, यह तो वही शरीर ही कह देता था।" पर गांधीजी यों खास बात को छोड़ने नहीं थे। "मैंने तो काठियावाड़ के कई नरेशों से भी जरूरतें और खर्च को मर्यादित करने के विषय में कहा कि किसीने ध्यान नहीं दिया।" यह कह कर वे रानी साहबा और मुझे।

"पर आपकी सी सादगी तो मैं एक जगह देख चुका हूँ रानी साहबा श्री सयाजीराव गायकवाड की पौत्री हैं।" "राज्य की रानी की मुझे याद हो आती है। उनकी सादगी को देख मैं तो चकित हो गया। एक मामूली साड़ी; बघ, शरीर पर केवल एक मंगलसूत्र मात्र दिखाई दिया। घर में फनीचर मामूली सा ही था। पर यह तुलना यही खतम होती है। आप तो राज्य की सेविका बन गई हैं। वह रानी थोड़ी सेविका है? अतः जब आपकी रहन सहन की बात सुनी तब मेरी समझ में आगया कि आपने इतनी कम खादी क्यों ली है। प्रजाने ही हमें तो कह दिया था कि हमारे राजा के पास बहुत पैसे नहीं हैं। पर आपने जितनी भी खादी खरीदी है, वही सतोष के लिए काफी है"। राजा साहब बोले "हम यह, पहली बार नहीं खरीद रहे हैं? पिछली प्रदर्शनी में भी खरीदी और जैसे जैसे आवश्यकता होगी आपके पास से बराबर लिया करेंगे"।

यों बड़े प्रेमपूर्वक बातें हो रही थी, और उधर शाम होती थी। राजा साहब छोटी प्रतलून और बूट पहन कर घूमने जाने लगे। खाकी पोशाक पहने अमीन पर ही बैठे थे। मालूम हुआ कि वे भी थक गये। उन्हें बैठने के लिए कुर्सी दी गई। पर वे बैठने से न रुके? रानी साहबा नहीं बैठी थी इस लिए राजा साहब



क, १९२०

यह नहीं कि उन्हें लालच होती है, बल्कि उनमें इन्कार करने का साहस या तेजस्विता ही नहीं होती।”  
 “पर क्या हम पूछ सकते हैं कि फिर आपने इसे भारत में छोड़ा कैसे?”  
 राजा साहब इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं थे। हमने भी कोई आग्रह नहीं किया। पर एक क्षण के बाद वे पुनः बोले—“प्रसंग यह था। एक दिन मैंने अपने दो नौकरों को शराब के नशे में मस्त देखा। तब मैंने उन्हें नौकरी से हटा दिया। किन्तु बाद में मेरी अंतरात्मा ने कहा “जब कि मैंने स्वयं शराब को नहीं छोड़ा है, मुझे उन्हें सजा देने का कोई अधिकार नहीं था; अतः जब तक वे नौकर रहेंगे मैं शराब नहीं ले सकता।  
 कैसी अंतर्मुख इति। पर अब तो हम गांव में आ पहुँचे। इस धर्म-भीरु ईश्वर-भक्त राजा के सामने हमारा हृदय झुक गया। कैसा आभिजात्य, कैसी सत्यता, कितना विनय! पर ऐसे राजा के राज्य में भी राज्य की आय का तीसरा हिस्सा शराब के उत्पन्न से प्राप्त होता है। किन्तु इस दिशा में सुधार करना जितना आसान यहाँ है उतना शायद ही और कहीं होगा। क्योंकि राजा साहब ऐसे हर एक सुधार पर विचार करने के लिए तैयार हैं जिसमें जनता का कल्याण हो।  
 (नवजीवन) महादेव देशाई

## सत्याग्रहाश्रम में राष्ट्रीय सप्ताह

इस बार सत्याग्रहाश्रम में राष्ट्रीय सप्ताह कुछ विशेषता के साथ मनाया गया। बहनों के मंडल ने निश्चय किया कि समस्त आश्रम की सफाई का काम रमेशा पुरुष-वर्ग करता है, इसलिए उसे इस सप्ताह के लिए मुक्त करके बहनों ही इस काम को राष्ट्रीय सप्ताह में करें। इसके अनुसार सुबह की प्रार्थना के बाद बहनों ने अपनी तीन टुकड़ियाँ बना लीं; और पूरे सप्ताह भर टट्टियाँ तथा पेशाब-घर साफ करने का काम किया। इसमें कितनी ही बहनों के लिए तो यह काम नया नहीं था। आश्रम में टट्टियों को इस तरह रक्खा जाता है कि मैले की बालटियों को खेत में मैला गाड़ने के लिए जबतक नहीं ले जाते, तबतक अजनबी आदमी को तो क्या भी नहीं हो सकता कि इनमें क्या रक्खा है। मलत्याग के पहले और बाद यहाँ पर उस बालटी में मिट्टी डालने की प्रथा है। इसके कारण टट्टियाँ इतनी साफ और दुर्गन्ध-रहित रहती हैं, कि उनमें मक्खियाँ भी मुश्किल से दिखाई देती हैं। खेत में एक डेढ़ फूट गहरा गढ़ा खोद कर पहले तैयार रक्खा जाता है। बाद में मैले की बालटियाँ उसमें उंडेल, कर उन्हें लम्बी झाड़ू से साफ करके, स्वच्छ पानी से धो कर धूप में रख दिया जाता है। इस तरह मैला साफ करनेवाले को इस काम से कहीं भी धृणा करने के लिए स्थान नहीं रह जाता। और विचारवान मनुष्य उसे आसानी से कर सकता है।  
 सुबह ६। बजे विद्यार्थियों की प्रार्थना शुरू होती थी। उसमें आश्रम के समस्त ज्ञीपुरुष भी भाग लेते थे। नियमानुसार श्लोक पढ़े जाने पर सातों दिन तक भिन्न भिन्न विषय के अध्ययन करनेवालों के अपने अपने विषय पर व्याख्यान हुए थे। ये विषय कमशः यों थे।

१ सत्याग्रह सप्ताह  
 २ सिके का सवाल  
 ३ गोरक्षा  
 ४ दक्षिण जातियाँ  
 ५ भारत की सांप्रतिक छट  
 ६ खादी कला  
 ७ कंपारन का सत्याग्रह  
 ८ राष्ट्रीय जागरण



इस सप्ताह में कातने के अतिरिक्त पीजने और रुई ओटने की क्रियाओं पर विशेष ध्यान दिया गया था। अब तो कई बहने अच्छा पीजने लग गई हैं। इसलिए उनके हाथ की बनी पुनियों ने कताई को अधिक सुलभ बना दिया। सप्ताह भर में पिंकाई इतनी करनी पड़ी कि कितनी ही बहनों ने लालटेन लगा लगा कर पीजने तथा पुनियों बनाने का काम किया। गांधीजी के कमरे में एक चरखा अखंड चलता रहा। उस पर कातनेवालों ने कुल ३३६२५ तार (अर्थात् ४४,८३२ गज) सूत काता। इसके अतिरिक्त आखिरी दिन पांच चरखे पूरे २४ घंटे तक बराबर चलते रहे। इन अखंड चरखों के अंक अपूर्व थे। उनमें से दो जनों की एक टुकड़ी पहले बारह घंटों के बाद शौच, स्नान, तथा नाश्ते के लिए सिर्फ एक घंटे के लिए उठी। पर दूसरे दो लड़कों ने तो पूरे २४ घंटों तक अखंड-एक बैठक में—चरखा चलाया। पहली टुकड़ी में से एक के कुल ११,०६१ तार (अर्थात् १४७५० गज) हुए थे। उसके पहले १२ घंटों में फी घंटे की औसत ५०० तार (६६६ गज) से भी अधिक बढ गई थी। सूत का अंक १५ था। दूसरी टुकड़ी में से एक ने १६६९ तार (१२८८९ गज) कांते थे। उसकी फी घंटे की औसत ४०० तार (५३३ गज) से कुछ ही अधिक थी। इसके सूत का नंबर भी १५ था। पहली टुकड़ी के दूसरे विद्यार्थी ने २२॥ घंटों में ८२०५ तार (१०,८४० गज) सतत कांते। उसकी औसत ३६५ तार (४८६ गज) पड़ी और नंबर १४॥ था। इन तीनों को पहले वर्ग में दाखल करने के बाद अन्य कातनेवालों के अंक भी उल्लेखनीय हैं।

नाम	तार	घंटे	वेग	मजबूती	समानता	अंक
केशु	११,०६१	२३	४८०	६७	८५	१३॥
कांति पारेख	९,६६९	२४	४०३	५९	९३	१४॥
कृष्णदास	८,२००	२३	३५६	७०	७९	१३
दुखीदास	६,००६	२०	३००			
कैशवलाल	५,५५५	१८॥	३००			
जयसिंह	५,५००	१९॥	२८२			

कांति गांधी	४,३२१	११	३९२
रावजीभाई	४,२००	२४	१७५
कृष्णमैया देवी	४,०००	१३	३०७
मगनभाई देसाई	४,०००	१९	२१०
जयंती	३,५३५	१७॥	२०२
पुरुषोत्तम	३,१२५	११	२८४
शंकरन	३,०००		२५०
माधव	३,१००		
धीर	३,०००		

तारीख १३ के दिन एक हजार से अधिक तार कातनेवालों की संख्या ५६ थी। इस सप्ताह में जो कुल कताई हुई उससे पिछले साल की कताई से तुलना कीजिए।

वर्ग	तार	रोजाना औसत	तार	इस साल रोजाना औसत
पुरुषवर्ग	१,८७,४५७	४८०	१,९०,९७३	४८०
स्त्रीवर्ग	१,५१,४१४	६३८	१,१८,७०४	६३८
कुमारवर्ग	२,३७,०१०	१०८७	३,०५,४६७	१,०८७
बालवर्ग	३५,२७४	३४९	४४,९५९	३४९

सबसे अधिक कांतनेवाले इस साल भी वही हैं जो पिछले साल थे। बालकों में आनंदी का स्थान मणि ने ले लिया। कुमारों की संख्या की औसत में इस साल खूब प्रगति हो गई। आखिरी दिन की कताई की औसत फी मनुष्य १२०५ और सप्ताह में प्रतिदिन की औसत १२५ के आसपास रही।

चर्खासिंध में ता. १३ के दिन सबको कातने का अवसर के लिए दूसरे सब काम बन्द रखे थे। कई आदमी देशवादी नेचने के लिए भी गये थे।

इस सप्ताह में जिस उत्पाद से कताई आदि काम हुआ उस साल उससे भी अधिक प्रगति हो, यह इच्छा करते हुए राष्ट्रीय सप्ताह का कार्य समाप्त किया।

(नवजीवन)

### जनवरी १९२७ का

#### खादी की उत्पत्ति और बिक्री का व्यौरा

प्राप्त	जनवरी २७	जनवरी २६	दिसंबर २६	ज. २७	उत्पत्ति ज. २६
अजमेर	४,४७५	३,३३०	३,४४१	७,२६३	३,४४५
आन्ध्र	३६,०३५	२५,०५०	४६,१०१	१२,१७०	१६,१०६
बंगाल	३२,६०३	२९,३५७	५६,६५९	१९,७४२	३३,०३४
बिहार	४६,१३९	१५,५५३	१९,२११	११,०३८	१६,७५८
मद्रास	२,१८९	१,८४०	१,३१४		
मध्य	११,९१४	४२,५६०	९,३४०		
दिल्ली	१,४२१	१,११६	१,१२०	९३१	१,७४७
गुजरात	५,९४५	६,४७०	९,१२६	४,२७३	५,१०५
कर्णाटक	५,३००	५,१३३	३,६८४	२,६४७	४,७००
महाराष्ट्र	१३,५७६	६,४१४	१८,४८५	५७२	५५३
पंजाब	१०,७८५	९,१७८	१०,८६०	७,०४४	८,९९७
तामिलनाडु	७१,८७८	८३,४३९	५१,०२३	५१,८१०	८२,५१३
गुफप्राप्त	७,०२८	१३,७२४	११,१२२	४,७४७	६,७१३
उत्तरक	३,१०८	२,२१३	३,७३१	२,३७३	३,८४३
मीशान	३,५२,३९४	२,४५,४७७	२,४५,२१७	१,२४,६१०	१,८३,५१४

x मधुरे अंक



संवादक.—मोहनदास करमचन्द गांधी

अहमदाबाद, वैशाख सुदि ४ संवत् १९८४

गुरुवार, मई, ५ १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
घारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

होगा, सो भी जैसा कि हमारे अन्य किलों का इतिहास कहता है, बहुत संभव है, खुद हमारे आदमियों के विश्वासघात के कारण ही। इसकी रचना ऐसी है कि केवल पश्चिम की ओर से ही इस दुर्ग पर आक्रमण किया जा सकता है। और किसी तरफ से इसपर चढ़ने की गुजर नहीं थी। पश्चिम की ओर तीन दिवालें थीं, जो आज भी मौजूद हैं। इस पर आक्रमण करने वाले शूर अंगरेज सेना-नायक के शौर्य और बुद्धि की कहानी कही जाती है। वह उल्लेखनीय है। हमला चांदनी रात में किया गया था। सिपाही हुकम की राह देख रहे थे, कि इतने में एक सिपाही ने कहा—‘देखना, हमारे सामने एक बहुत भारी खान है।’ सिपाही कहीं खान पर चढ़ कर सुरंग से उड़ा दिये जाने के भय के कारण अपनी बाजी न खो दें, इस ख्याल से जनरल मेडोव ने कहा—‘हां, खान तो है ही, पर यह तो सोने की खान है, और किला जीतते ही वह हमारी हो जायगी’। सिपाही इस पड़े और उत्साह-पूर्वक आगे पड़े।

आज इस टेकड़ी पर जितने बंगले हैं, सब अंगरेजों के बनाये हुए हैं। यहाँ के आम, जामुन, तथा युकेलिप्टस के विशाल वृक्ष भी अंगरेजों के द्वारा ही लगाये गये हैं। बंगले छः हैं जिनके नाम बांधनेवाले अधिकारियों के नाम पर—मसलन कबन, कनिंगहैम—इत्यादि हैं। परन्तु प्राचीन काल का स्मरण दिला देनेवाली भी दो चार चीजें यहाँ खड़ी हैं। ऊँचे से ऊँचे टीले पर योगनंदीश्वर का मंदिर है जिस पर ११ वीं सदी के शिलालेख हैं। नंदी गाँव के सामने भोग नंदीश्वर का मंदिर तो चोल राजाओं के समय का है। गढ़ पर एक छोटासा जंगल और एक विशाल बंधा हुआ सरोवर भी है। वह भी हिन्दू राजाओं के समय का है। इसका नाम अश्रुत सरोवर है और इसका स्वच्छ स्फटिक के समान पानी आजकल भी कबक नियमों के अनुसार बिलकुल शुद्ध रक्खा जाता है। सरोवर समभुज चतुष्कोण है, और चारों ओर से दीवारें बनी हुई हैं। कहा जाता है कि इसकी तह में ठेठ नीचे तकहटी में एक मंदिर है।

तलहटी से टेकड़ी की उंचाई १८०० फीट अर्थात् पाड़ीताना की शत्रुंजय के टेकड़ी की इतनी—है। परन्तु समुद्र की सतह से यह कोई ४०५० फीट अर्थात् सिंहगढ़ के जितनी उंची है। किन्तु जहाँ सिंहगढ़ भारी शौच की याद दिलाता है तहाँ इस पर तो सेकड़ों पराजय के चिन्ह पड़े हुए हैं।



बृहत् बरौदा खूब लगाए गये हैं। टेकड़ी को मनोहर बनाने में किसी बात को उठा नहीं रखा है। सिंहगढ़ के आसपास शिवाजी के शौर्य शाली शासन कार्य का स्मरण कराने वाले अनेक गढ़ हैं, वहाँ इस गढ़ के आसपास तो मीलों तक मैदान ही फैले हुए हैं। मैदान में असंख्य छोटे छोटे तालाब हैं, किन्तु दिन भर धूप में आग उगलने वाले प्रखर पत्थर के पहाड़ भी बहुत हैं। आम्बोली के दृश्यों से तो इसकी तुलना ही क्या की जा सकती है? आम्बोली उंचाई में इससे लगभग आधी है, तथापि समुद्र के सामने होने के कारण वहाँ की ठंडक किसी प्रकार कम नहीं है। नील-पहाड़ी से ढंके हुए परिवर्ती पर्वतों के तथा सुबह शाम समुद्र पर दिखाई देने वाले सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य यहाँ देखने की मिला कठिन है। यहाँ की मनोहरता मनुष्य के प्रयत्नों का फल है, परन्तु इस तुलना की क्या आवश्यकता है। यहाँ का जलवायु गांधी जी को मुआफिक हो जाय कि हम तो गंगा नहा लिये।

( नवजीवन )

महादेव देशाई

### रोगशय्या के पास से

तारीख २० को अम्बोली से नंदी दुर्ग आये। बेलगांव से बंगलोर तक स्टेशनों पर लोगों के झुंड तो बैसे ही थे। और लोग मानो यही समझ कर आये थे कि ओहो, गांधीजी जा रहे हैं। वे बीमार हैं, आराम के लिए जा रहे हैं तो क्या हुआ? दर्शन के लिए तो हम उन्हें जरूर कष्ट दे सकते हैं। गांधीजी के बिस्ते को हमें स्टेशनों पर बंद रखना पड़ता। जिससे बाहर के कोलाहल से उन्हें कष्ट न हो। पर इसका परिणाम उल्टा ही होता था। लोग खिचकियों के अंदर झाँकते, और 'एक मिनट के लिए ही दर्शन दे दीजिए, कष्ट कर चिन्ताते श्री गंगाधर राव वेण्पाखे की आरजू मित्रों का भी कोई उपयोग नहीं हो रहा था। तमाम राह भर मुझे यही पछितावा होता रहा कि अम्बोली से ही हम क्यों निकले होंगे? इस कष्ट से गांधीजी की तबियत पर कहीं कोई बुरा परिणाम तो नहीं होगा?

किसी प्रकार नंदी दुर्ग पहुँचे। अम्बोली की शान्ति तो यहाँ कैसे प्राप्त हो सकती थी। वह तो ग्रामीण जीवन से ओत-प्रोत बने हुए राजा का विश्राम-स्थान था, वहाँ नंदीदुर्ग एक महान राजा का ग्रीष्म-निवास। अम्बोली के आसपास तो मीलों तक प्रशान्त अरण्य फैला हुआ है। जहाँ चाहें, बैठ जाइए, बस, एकान्त ही है। किन्तु इस छोटी सी टेकड़ी पर वह एकान्त कहाँ? कुल मिला: बंगले यहाँ है। प्रायः प्रति दिन कोई न कोई नवीन सज्जन मिलने के लिए आते। आज शिक्षा-विभाग के प्रधान आये तो कल कृषि-विभाग के, आज कोई चरखे को स्कूलों में जारी करने की सलाह देने के लिए आ रहे हैं, तो कल गोरक्षा के विषय में बात चीत करने के लिए कोई आना चाहते हैं। बस, यही हाल रहा।

पहले दो दिन मिलने जुलने वालों की खूब भीड़ रही। बाद में श्री श्रीनिवास शास्त्रीजी आये। मित्रों और खासकर गांधीजी के आग्रह से उन्होंने भारत सरकार के राजदूत बनकर दक्षिण अफ्रीका जाना कुबूल कर लिया था, अतः वहाँ जाने के पहले एक बार गांधीजी से तो मिल लेना चाहिए न? वे आये, उन्होंने तो दो ही चार खवाल पूछे होंगे। किन्तु गांधीजी मला कहीं रुक सकते थे? गांधीजी ने तो उनके सामने समस्त दक्षिण अफ्रीका का चित्र खींच कर रख दिया, वहाँ के राजनीतिज्ञ, वहाँ हुए भारतीय, वहाँ की संस्थाएँ, लोगों की कठिनाइयाँ, उनकी

अभिलाषाएँ, सब कुछ रख दिया। पूरे दो घंटे से भी अधिक बात चीत होती रही। जब से वे बीमार हुए थे, आज ही उन्होंने इतनी देर तक बात चीत की थी।

दूसरे दिन डॉक्टरों से बात चीत हुई। टेकड़ी की तलहटी में चिकबालपूर नामक गाँव में रहने वाले एक सज्जन अजमेरवा डॉक्टर आये। उन्होंने गांधीजी के शरीर की कोई बड़े बड़े तक जाँच की और उपयुक्त सूचनायें देकर तथा बार बार देखने के लिए आने का आश्वासन देकर चले गये। कितने ही अजमेरवा में पाई जानेवाली कुलनता और उदात्तता के साथ साथ मैंने इनमें प्रयोज्यवृत्ति और ईश्वर-निष्ठा का एक अजीब मिश्रण देखा। जहाँ जहाँ जाते हैं ऐसे सज्जन मिल ही जाते हैं।

उस दिन रात को गांधीजी को बड़ी थकावट मालूम हुई। दूसरे दिन भी थकावट के साथ साथ कमजोरी बनी रही। हम लोगों ने इस पर अपने अपने अनुमान किये। किसीने कहा टेकड़ी का जलवायु मुआफिक नहीं आया होगा; कोई बोले 'शायद उंचाई अधिक है।' खून का दबाव तो अधिक था ही।

खैर, हमने निश्चय किया कि अब उन्हें पूरी विश्रान्ति देना चाहिए, किया भी वही, और परिणाम भी सुंदर पाया गया। कल फिर उनमें पूरी स्फूर्ति पाई गई। कल श्री राजगोपालाचार्य बंगलोर के दो नामी डॉक्टरों को ले आये। उन्होंने भी गांधीजी के शरीर की खूब जाँच की। और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि गांधीजी जैसे संयमी और मिताहारी पुरुष के खून का दबाव इतना ज्यादा कैसे है? नब्ज, हृदय आदि और किसी बात की कोई शिकायत नहीं थी। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि संभव है, आंतों की किसी विकृति का परिणाम यह बीमारी तो न हो? पर उन्होंने वह विश्वास दिखाया कि इस टेकड़ी पर आने के बाद खून का दबाव तो किसी हालत में नहीं बढ़ सकता। उल्टे यहाँ के इस निवास से वह कम जरूर हो जायगा। इस तरह श्री राजगोपालाचार्य और गांधीजी को विश्वास दे कर वे चले गये। दवा तो गांधीजी लेते ही नहीं, इसलिए कुछ सूचनायें मात्र वे दे गये।

दोनों अत्यंत विद्वान और अनुभवी डॉक्टर थे। अनुभव और किताबों के प्रमाणों से वे अपने कथन की पुष्टी करते जाते थे। "परन्तु जब दो डॉक्टरों के बीच ही मतभेद हो, तब क्या करना चाहिए?" बोले "जो सब से ज्यादा कानिबल हो उसीकी बात को मानना चाहिए।" अब सब से ज्यादा कानिबल की परिभाषा कौन बनाए? "पर महात्माजी, इस पुस्तक में काफी जाँच और अनुभव के आधार पर लिखी बातों को तो आप मानेंगे न?" गांधीजी बोले "किन्तु जब दूसरा डॉक्टर मेरे सामने एक दूसरी ऐसी ही किताब लाकर रख दे, तब मुझे क्या करना चाहिए?" अन्त में डॉक्टरों को एक विनोदी किस्सा सुना कर उन्होंने खूब हँसा दिया। "मैं विलायत में था, मिसेस मेत्रिक का मामला उस समय चल रहा था। मिसेस मेत्रिक एक करोड़ पति की ली और कोटयधीश की लड़की भी थी। उसने अपने पति को विष दे दिया था। और उस पर खून का अभियोग रखा गया था। ऐसे धनिक मवक्किलों के वकील भी मामूली क्यों होते? दोनों ओर से इंग्लैंड के बड़े से बड़े वकील खड़े हुए थे। सरकार तथा अभियुक्त दोनों ओर से नामी नामी डॉक्टरों की गवाहियाँ हुईं। एक पक्ष का डॉक्टर इतने लगा कि इतने परिमाण में विष देने से आदमी नहीं मर सकता, तहाँ दूसरा कहता, मर जाता है। मामला कई दिन तक चलता रहा। अन्त में जज ने ज्यूरी को अन्तिम आदेश दिया। इस आदेश में जज ने ज्यूरी से बड़े ओर के साथ कहा कि अपना निर्णय देते समय



१९२०

भी अधिक  
आज हीकी तलहटी  
जन अन्तरेहैं डेढ़ घंटे  
बार देखनेही अन्तरे  
साथ मैंनेजीव मिश्रण  
ते हैं।मालूम हुई।  
रही। हमकिसीने कहा  
कोई बोलेथक था ही।  
चाहिए, कियाउनमें पूरी  
के दो गायीशरीर की  
कि गांधीजीतना व्यापक  
हैं शिकायतहै, आंतों  
उन्होंने यहका दबाव  
इस निवासलाचार्य और  
गांधीजी केअनुभव  
जाते थे।क्या करना  
हो उसीकीकाविल की  
क में काफीतो आप  
डॉक्टर मेरेमुझे क्या  
सुना करसेस मेट्रिक  
एक करोड़सने अपने  
अभियोग

नी मामूली

खड़े हुए

डॉक्टरों

कि इतने

तहाँ दूसरा

अन्त

आदेश में

देते समय

१ नव, १९२०

संसार और मनुष्य स्वभाव को जानने-  
का प्रयत्न, व्यवहार-कुशल, शांतिपूर्वक विचार करके, अपना  
मनुष्य की हैसियत से, डॉक्टरों के मत को जरा भी महत्व न  
दीजिएगा। क्योंकि मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इन  
डॉक्टरों का काम बड़ा अजीब है, जिन औषधियों का उन्हें  
पता नहीं होता, उन्हें वे ऐसे शरीर के लिए देते हैं जिसके विषय  
में वे और भी गहरे अज्ञान में हैं। इनका क्या भरोसा किया  
जाए ? दोनों डॉक्टर कहकर मार कर हंसने लग गये।  
डॉक्टर बोले—‘यह तो कितने ही साल पहले की दशा  
कह रहे हैं। आज तो हमने बहुत प्रगति कर ली है।’  
डॉक्टर बोले ‘लेख यह तो जज की टीका हुई। ससम  
का मुख्य सज्जन सर फ्रेडरिक ट्रीनम कहता—‘हमने अभी-  
भी कोई प्रगति नहीं की है। वैद्यक के मुख्य प्रश्नों के विषय  
में अब तक हम किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाये हैं। इस पर  
क्या क्या जवाब है ?’ डॉक्टर बोले ‘यह भी तो पुरानी  
बात है।’ अंत में गांधीजी ने डॉक्टरों का खूब एहसास मानते हुए  
कहा ‘फिर भी आप यह न समझिए कि मैं आपका कदा नहीं  
मान रहा हूँ। आपकी सूचनाओं का मैं स्वीकार करूँगा। किन्तु  
यह भी क्या कम लाभ है कि राजगोपालाचार्य की चिन्ता कम  
हो गई ?’

युनिवर्सिटी पूर्ण बातचीत से पता चलता है कि तबियत  
क्यों थी। अब तो मिलना जुलना बंद कर दिया। किन्तु  
शिकारी नंदी दुर्ग से जाने वाले थे, और बाद में विलायत  
के लिए रवाना होने वाले थे। फिर उन्हें गांधीजी से मिलने  
का काम नहीं मिल सकता था, इसलिए वे मिलना चाहते थे।  
डॉक्टर ‘हां, आप एक नजर भर भले ही उन्हें देख आएं।’  
डॉक्टर उठते उठते मुझे कहने लगे ‘सिर्फ एक ही बात पूछ  
लें। अब तो गांधीजी ने ही उत्तर दिया “जल्द पूछ  
लिए मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।” उन्होंने सवाल किया  
‘आप चारों के आर्थिक सत्त्व पर इतना जोर देते हैं, और  
कोई भी आर्थिक आवश्यकता को देख कर उसे उनके सामने  
नहीं लाते हैं। परन्तु आर्थिक आवश्यकता के अलावा क्या उनकी  
कोई आवश्यकता है ही नहीं ? लोग तो अनेकों भ्रमों में,  
आप में और दुर्म में डूबे हुए हैं। एक कौम दूसरी कौम का  
विचार करती हैं, सिर फुटवाते होती हैं; गरीबों के लिए तो  
कोई भी सुख का नाम भी नहीं है, और न परलोक में  
प्राप्त होने की उन्हें आशा है। ऐसे कठिन समय में  
आप के समान विपुल आध्यात्मिक अनुभव शाली पुरुष  
लोगों के सामने ऐसी चीज रखें तो क्या ही अच्छा हो,  
जो उन्हें परमात्मा की ओर ले जाने में सहायक हो ? ऐसा  
सिद्ध उन्हें सिद्धाचार्य और कौन सुना सकता है, जिससे  
उनकी नीति उन्नत और हृदय विशाल हो जाय ?’ बस, अब  
डॉक्टर गांधीजी का प्रवाद।

‘यदि आप यह बात ऊपर के वर्गों के लिए कहें तब  
तो यह समझ में आ सकती है। पर आप यह भूल  
जाते हैं कि मैं ऊपर के वर्ग के सामने आर्थिक दृष्टि से चरखे को  
नहीं ला रहा हूँ। उनके सामने तो खादी और चरखा इस  
प्रकार का है कि चरखा गरीबों का उद्धारक है और  
खादी उनको काँकेरी को भगाती है; और इनके द्वारा उनके  
सामने प्रेम की उन्नत भावना का  
प्रवाद किया जाता है। अब इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि  
इसे आर्थिक दृष्टि से ही रखता हूँ।

क्या आप जानते हैं कि गरीबों को तो सिवा पेट के और कोई  
चिन्ता ही नहीं है; और बातों की चिन्ता करने की उन्हें फुरसत  
ही नहीं है ? वे राजनीति को नहीं जानते, देशसेवा का उन्हें  
पता नहीं, और ईश्वरभक्ति को तो वे जानें ही क्या। आप उन्हें रोटी दे  
दीजिए, तब कहीं किसी दूसरी बात पर विचार करने के लिए  
आप उनसे कह सकते हैं। यदि आप चाहें कि विचार शून्य बन कर पड़े  
हुए लोग कुछ कुछ विचार करना सीखें तो पहले उन्हें वह चीज  
दीजिए जिसकी भूख उन्हें सब से ज्यादा है। दुर्भाग्यवश हमारे  
देश में ऐसे लाखों लोग भूखों मर रहे हैं, जिनके सामने यदि  
कोई ईश्वर की बात करे तो जरा भी न सुनें, किन्तु यदि कोई  
ऐसी सूत बतावे जिसमें उन्हें भर पेट भोजन मिलने लग जाय  
तो उसे वे ईश्वर की तरह पूजने को तयार हो जाएं। ऐसी के  
सामने यदि आप नीति और मनुष्य-सेवा, मानव-प्रेम और ईश्वर-  
भक्ति की बातें करेंगे, तो कोई ध्यान भी न देगा। जनरल बूथ  
के दिया सलाई के कारखाने का किस्सा आपने सुना हो तो अपनी  
इंजलैब की सफर में आप उसे जल्द देख लीजिएगा। जब वे  
दक्षिण आफ्रिका आये तो उन पर टीका की झड़ो लग गई।  
दिया सलाई के कारखाने जैसी तुच्छ संस्था बनाने पर  
लोगों की टीका सुनकर वे आवेश पूर्वक बोले ‘मैं आपको  
किस तरह समझाऊं ? मेरे पास तो निष्ठुर, नटखट, और  
बदमाश व्यापारी से लेकर भूखों मरने वाले भिखारी तक आते हैं,  
मनुष्य स्वभाव के कई नमूने आते हैं। उनके सामने मैं बाइबल  
रखूँ या ब्रेड (रोटी) ? मैं उनके सामने रोटी रखता हूँ किन्तु  
वह इसी शर्त पर कि वे उसे अपने परिश्रम से प्राप्त कर लें।  
जिन्हें परिश्रम करने की इच्छा ही नहीं, उन्हें आप ईश्वर-भजन  
भी क्या सिखाइयेगा ? दिया सलाई का काम आसान से आसान  
है। वह आप उन्हें सिखलाइए, और उनमें काम करने की वृत्ति  
उत्पन्न कीजिए, तब कहीं आपकी दूसरी बात को वे सुनेंगे।  
विलायत में प्रोफेसर हक्सले ने उन्हें कहा ‘आप उन्हें संगीत की  
शिक्षा क्यों नहीं देते ? उनके जीवन में संगीत से जरूर कुछ कुछ  
प्राणों का संचार होगा।’ जनरल बूथ ने कहा ‘उन्हें तो सब  
से पहले रोटी का संगीत सुनने की इच्छा है। दूसरे किसी  
संगीत की उन्हें आवश्यकता नहीं है। प्रोफेसर साहब को जब  
दूसरी कोई चिन्ता नहीं होगी तब वे मले ही संगीत श्रवण करेंगे।  
शायद उससे उन्हें शान्ति भी प्राप्त हो, पर मैं इन लोगों को  
क्या संगीत सुनाऊं ?’

विद्याधिकारी स्तब्ध होकर सुनते रहे। राजगोपालाचार्य ने  
इशारा किया, ‘बस कीजिए’। गांधीजी की बागवारा तो  
चली ही जा रही थी। परन्तु मि. माथन समझ गये। उन्हें  
मालूम हुआ कि गांधीजी को इससे कष्ट हुए बिना न रहेगा।  
इसलिए उठे और उन्होंने बिदा ली। मालूम होता है इस बात  
चीत से उन्हें कुछ क्षीणता आ गई थी। इसलिए शाम को  
बोले ‘मेरे जैसे जीवन वाले आदमी का खून का दबाव इतना  
क्यों बढ़ जाता होगा इस बात का डॉक्टरों को आश्चर्य होता है।  
मानसिक चिन्ता वाले, स्वच्छन्दी, तथा असंयमी आहार विहार वाले  
आदमी का यह हाल हो तो वह बात समझ में आ सकती  
है। पर मुझे चिन्ता ही क्या है ? हाँ, चरखे की चिन्ता  
जरूर है। लेटे लेटे भी मुझे तो इसके सिवा दूसरा कोई विचार  
ही नहीं सूझता। ‘लोग मेरी बात को कब समझेंगे ? इसे  
कब अपना लेंगे’ इस विचार से मैं भीतर ही भीतर जलता  
रहता हूँ। और जब ऐसे प्रश्न पूछने वाले कोई आ जाते हैं  
तब वह बाला एकदम धक्का उठती है—हृदय से बहका-



मनु उसका पड़ता है। और इससे यदि खून का दबाव बढ जाता हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? परमात्मा चाहेंगे तो वे मेरे काम को पूरा करके इस बड़बानल को शान्त करेंगे देश के इस महारोग के सामने इस खून के दबाव का क्या हिसाब है। उस महारोग के मिटते ही सब रोग अपने आप मिट जावेंगे।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई

## हिन्दी-नवजीवन

गुस्वार, वैशाख सुदि ४ संवत् १९८४

### घोर अमानुषता

पाठक अग्र्य एक डॉक्टर की घोर अमानुषता का हाल पढ़ेंगे जो उसने काठियावाड़ के एक गांव में रहने वाले अत्यंत की पत्नी के प्रति दिखाई है। श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर ने, जिन्होंने इस मामले की तकसील नवजीवन में प्रकाशनार्थ भेजी थी, उस स्थान और व्यक्तियों के नाम इस स्थान से जान बूझ कर छोड़ दिये हैं, कि प्रकट करने से कहीं वह अत्यंत स्कूल-मास्टर उस डॉक्टर के द्वारा अधिक न सताया जाय। पर मैं तो चाहता हूँ कि नाम प्रकाशित कर दिये जाने चाहिए। ऐसा समय भी आवेगा जब हमें अत्यंतों को अधिक कष्ट और अत्याचार सहने के लिए बाध्यित करना होगा। उन्हें तो पहले ही से इतने अधिक कष्ट हैं कि कुछ और कष्ट बढ जावें तो वे उनके लिए असह्य नहीं होंगे। ऐसे अत्याचारों पर लोकमत को ज.रुत नहीं किया जा सकता, जिनको साबित नहीं किया जा सकता हो, या जिनकी तब तक हम नहीं पहुंच सकते हैं। मैं बम्बई की मेडिकल कॉलेज के नियम तो नहीं जानता, पर अन्य स्थानों पर ऐसे पेसाबाज डॉक्टर का नाम, जो फी लेने से पहले मरीज की शुश्रूषा करने से इन्कार करता है, कॉलेज के सदस्यों की फेहरिस्त से हटा लिया जाता है, तथा अन्य रीति से भी उसे कष्ट सजा दी जाती है। निःसन्देह फी तो वसूल की ही जा सकती है, परन्तु मरीजों का ठीक ठीक तरह से इलाज करना एक डॉक्टर या वैद्य का सबसे पहला कर्तव्य है। परन्तु यदि घटना का वर्णन ठीक है तो सबसे घोर अमानुषता तो यह है कि डॉक्टर ने अत्यंतों के मुहल्ले में जाने, मरीज की जांच करने और छुद थरमातेर लगाने तक से इन्कार कर दिया। सचमुच यदि अस्पृश्यता का सिद्धान्त किसी परिस्थिति से संवार में लागू करना ठीक हो तो वह अपने पेशे को कलंकित करने वाले इस मनुष्य को निःसन्देह लगाया जा सकता है। पर मैं आशा करता हूँ कि श्री. ठक्कर के संवाददाता ने कहीं अत्युक्ति कर दी होगी। और यदि यह घटना पूरी तरह सत्य हो, तो मैं यह आशा करता हूँ कि वह डॉक्टर स्वयं आगे बढकर उस समाज की सेवा द्वारा अपनी गलती की भर पाई कर देगा जिसके सामने रहने अपनी अमानुषता द्वारा ऐसा घोर अत्याचार किया है।

(मं० इ०)

मोहनदास करमचन्द गांधी

आमस भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत २) पोस्टेज -); बिना जगानी कार्ड या टिकट के भ्रम नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की पी. पी. नहीं भेजी जायगी। पी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम पेशगी देना चाहिए।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

अहमदाबाद

### पढिए सोचिए और रोइए

काठियावाड़ के एक गांव में एक अत्यंत शाला है। उसके पिछले भाई . . . . . संस्कारी, सेवाभाववाले और जन्मतः सुकृते (अर्थात् देव) हैं। गायकवाड़ सरकार की अनिवार्य शिक्षा-योजना की योजना के अनुसार वे पढे हैं, और अपनी जाति की उन्नति के लिए जो कुछ सेवा उन से बन पड़ती है, कर रहे हैं। वे सुघड हैं, सुबिचार वाले हैं, और उन की रहन-सहन भी ऐसी है जिससे उन्हें सहसा-कोई डेढ नहीं कह सकता। तथापि पुराण प्रिय काठियावाड़ के एक छोटे से गांव में रह कर अपनी हाति के बच्चों को पढाने का सौभाग्य या दुर्भाग्य उन्हें प्राप्त हुआ है। इसलिए वहां का प्रत्येक आदमी उन्हें डेढ और अस्पृश्य समझता है। परन्तु वे तो अपना काम उसी तरह चुपचाप करते आ रहे हैं। परन्तु इस असह्य स्थिति में रहने पर भी कभी कभी मनुष्य का रोष, कष्ट, और दुःख शब्दों में प्रकट हो ही जाता है। इन भाई के नीचेवाले पत्र से यह बात साफ साफ प्रकट होगी। इस पत्र के प्रत्येक छोटे वाक्य में कण्ठा कूट कूट कर गरी हो गांव, डॉक्टर, लेखक, सज्जन नगरसेठ, और अन्य 'गरासिया' भाई के नाम जानबूझ कर इसलिए छोड़ दिये हैं कि संभव है, उनके माध्यम हो जाने पर लेखक शिक्षक को कोई नुकसान पहुंचावे।

१

ता. ९-४-२७

नमस्कार के साथ वि० है कि ता. ५-४-२७ को मेरी धर्मपत्नी प्रसूत हुई। ता. ७-४-२७ के दो पहर के बाद मैं बहुत बीमार हो गई। कई जुलाब हुए और जवान भी बंद हो गई। सांस बढ गया, छाती सूज गई, और पसलियां भी दुखने लगीं। इसी में यहां के मिहिरबान डॉ. . . . . को बुलाने के लिए गया। परन्तु उन्होंने कहा कि मैं डेढवाड़े में नहीं जाऊंगा। डेढ को छूकर उसकी जांच नहीं करूंगा। अन्त में नगरसेठ और गरासिया दरबार को लेकर मैं डा० सा० के पास गया। २ नगरसेठों से फी देना कुबूल कराया, तब उन्होंने इस शर्त पर आना कुबूल किया कि मरीज को डेढवाड़े से बाहर लाओ तो चलता हूँ। दो दिन की प्रसूता जच्चा को डेढवाड़े से बाहर लाया गया। डॉ. साहब ने मुसलमान को थर्माभितर दिया और उन्होंने मुझे। मैंने उसे लेकर अपनी पत्नी की बगल में रखवा और निकाल कर फिर मुसलमान को दे दिया। मुसलमान ने पुनः उसे डा० सा० को लौटा दिया। उन्होंने अंधेरे में दूर से, बिना देखे ही कह दिया कि इसे न्यूमोनिया हो गया है। रात के आठ बजे होंगे। डॉ. साहब गये, हम लोग दवा लाए, अलसी लेप का चिन्हा मैं दूकान से खरीद कर लाया, दवा कर रहे हैं। डॉ. साहब ने शरीर की जांच नहीं की, दूर से देख कर चले गये। २) फी के दे दिये। ऐसी गंभीर बीमारी है। . . . . . से मेरी स्त्री के कुशल समाचार लेने के लिए आये हैं। परमात्मा करेगा सो होगा। अब क्या करना चाहिए, कृपया लिखें।

आपका नम्र सेवक

२

विशेष यह है कि चिराग गुल हो गया। मेरी स्त्री आज दो पहर के दो बजे चक बसी।

सेवक



५ मई, १९२७

उसके सिवा  
नमत : जुलु  
यै शिक्षा-नोति  
नी जाति को  
है, कर रहे हैं।  
हन भी ऐसी है  
गपि पुराण प्रि  
पनी जाति के  
स हुआ है।  
मस्पृश्य समझा  
चाप करते हैं।  
भी कभी कभी  
ही जाता है।  
क साफ प्रष्ट  
ट कर गरी है।  
रासिया' भाई के  
हैं, उनके माता  
वे।

१-४-२०  
-२० को मेरे  
र के बाद ग  
नी बंद हो ग  
लगीं। इति  
के लिए ग  
गा। डेढ़  
और गराक्षि  
। २ नगाक्षि  
र आना झु  
चलता है।  
या गया। त  
उन्होंने मुझे  
र निकाल बा  
डा० सा० को  
ही कह दिया  
क आठ बजे  
अलसी के  
हवा कर रो  
से देख बा  
बीमारी है।  
के लिए आ  
बाहिए, कृपा  
म्र सेवक

मेरी को

जब उद्युत किये पत्र पर चर्चा करके दिल के फकोले फोड़ना पड़े लिखे डाँ, एक मुसलमान भाई को मध्यस्थ बना कर दो दिन की जवाब को कुत्ते-बिल्ली से भी बुरी और हीन करने से इन्कार करते हैं? ऐसे निर्दय को क्या कहा जाय? और जो समाज ऐसे निंद्य वर्तव को शोक! शोक!!

अमृतलाल वि० ठक्कर

### कंगाल उडीसा और चरखा

भाई लक्ष्मीदास के पत्रों की प्रस्तावना में नहीं लिखता। इस पत्र की प्रस्तावना लिखे बिना मुखसे नहीं रहा जा सकता। मेरा तो ख्याल है कि यदि उत्कल—उडीसा में चरखा चल सकता, तो वह कहीं नहीं चल सकता। तथापि चरखे के जितनी कठिनाई उत्कल में हो रही है, उतनी और नहीं। यह एक आश्चर्यजनक किन्तु सच्ची बात है। उत्कल के अस्थिपंजरो की आँखों में आशा की किरणें ही हैं। जिसने जीवन की आशा को ही छोड़ दिया है वहाँ के साधनों की ओर कौन ध्यान देने बैठता है? जिन्होंने छोड़ दी है, उनके लिए खादी-सेवक कार्यकर्ता हमारे पास संख्या में हैं भी कहाँ? उन्हें तो हम अपनी आँखों के समक्ष संसार से हजारों की संख्या में तडाकत उठते हुए होते हैं। परन्तु हम यह तभी देख सकते हैं जब अपनी आँखें खोलें। और यदि आँखें खोल दें तो हम सब यशार्थ चलाते लग जायें। और यदि हमारे पास पसा हो तो काम में लगा दें। और न हो तो अपने सुब-बिलास को भुँवा बना कर इस पुण्यकार्य में उसे खर्च करने लग जायें। कातने लगे तो उसमें से स्वालम्भन का प्राण-वायु निकल कर कालों को स्पर्श करेगा। किन्तु स्पर्श करने पर भी बिना पैसे के तो हो ही नहीं सकता। सब से पहले हमें हाथों में चरखा देने की लिए द्रव्य की जरूरत है। इसके साथ साथ दक्षिणा तो लगी ही है न? इस युग का चरखा है, और सच्ची दक्षिणा चरखे के प्रचार के लिए दिया हुआ धन। यह तो मैं अपनी निरी आँखों से देख रहा हूँ। जिसे अपनी आँखें न हों वह मेरी आँखों से देख सकता है। अब पाठक यह पत्र पढ़ें और सोचें।

मो० क० गांधी]

पाँच बजे हम कलकत्ता से मद्रास मेल में सवार हुए, जो पाँच बजे बरहामपुर आ पहुँचे। उत्कल प्रान्त का बरहामपुर में है, और उसके अधीन २ बुनाई कातने के और ३ खादी—बिक्री के मध्यक हैं। मुख्य रूप से रंगई तथा छपाई का काम होता है। सब मिल कर ४० कार्यकर्ता यहाँ की शाखा में काम करते हैं। उनमें ११ मुख्य रंगई तथा छपाई का काम करते हैं। फी १०००) होता है। और काम की औसत फी १०००) होती है। इस प्रान्त का खादी संगठन और इसका श्रेय सतीश बाबू के कौशल को है। यहाँ के खादी कार्यकर्ताओं की अपेक्षा अन्य प्रान्तों के खादी कार्यकर्ता अछूता है। इसलिए वे जितनी खादी कात सकते हैं। कपास तो यहाँ नाम मात्र की है। इसलिए यहाँ की खादी उसी प्रमाण में महंगी

पड़ती है, जितना बाहर से आनेवाली कपास पर उसको रेल किराया देना पड़ता है। पहले पहल यहाँ दूसरे प्रान्तों से खादी लाई जाती, और उससे मिलान करके यहाँ की खादी भी बेचनी पड़ती थी। पर इसलिए यद्यपि यहाँ के कार्यकर्ताओं ने खादी पैदा करके बेच तो दी पर उसमें से वे अपना खर्च भी नहीं निकाल सके। परन्तु अब तो वे अपने काम के लायक खादी बनाने लग गये। बाहर से खादी लाना तो कभी से बन्द कर दिया। बल्कि वे तो और भी ज्यादा खादी बनाने की उम्मीद करते हैं, अर्थात् अब इसके बाद वे, बहुत संभव है, अपना व्यवस्थापन खर्च उसमें से निकाल सकेंगे। परन्तु अपने काम को बढ़ाने के लिए उन्हें बाहर के द्रव्य और खादी की बिक्री के लिए बाहर के नेताओं की सहायता की जरूरत तो अब भी रहेगी ही।

वहाँ पहुँचते ही हमें कहा गया कि आज संक्रान्ति होने के कारण कताई पिंजाई कहीं भी देखने को नहीं मिल सकेगी। परन्तु यह सोच कर कि प्रयत्न करके तो देख लें मुझे कार्यकर्ता कोडाला गाँव को ले गये। भाई शंकरलाल गोपबन्धु दास से मिलने के लिए बरहामपुर ही रह गये। रेल में तीन घंटे बैठ कर १२ मील मोटर बस में चल कर हम कोडाला पहुँचे। यहाँ कताई और बुनाई भी होती है। मुझे कहा गया कि यहाँ की कातनेवाली स्त्रियाँ कपास को स्वयं नहीं पीजती। वह काम तो यहाँ के जुलाहों की स्त्रियाँ कामठे पर फी रतल डेढ़ आना बुनाई लेकर कर देती हैं। पूनियाँ तो प्रायः कातनेवाली ही बना लेती हैं। रई पीजने का कामठा, धनुष्य, जैसा कि अन्यत्र होता है, नकरा वांस का दोनों तरफ सुवड बना हुआ और गोल कोनेवाला होता है। परन्तु चार तार की ताँत की दो ताँतें उसमें बाँधी गई थीं। दो ताँतें बाँधने का कारण पूछने पर यह बताया गया कि जब उसमें रई लग जाती है तब दोनों ताँतों को अलग अलग करते ही उसमें लडकी हुई रई झट से उखड़ कर अलग हो जाती है। बहनें कहने लगी कि आज तो संक्रान्ति है, पिंजाई नहीं हो सकती। मैंने कहा 'बिलकुल ठीक है, पैसे कमाने के लिए आज तुम भले ही न पीजो, सिखाने के लिए पीजने में कोई हर्ज नहीं हो सकता। यह तो पुण्य-कार्य है। यह सुनते ही वह फौरन रई ले आई और पीजने लग गई। जितना अच्छा उससे पीजा जा सका उसने पीजने की कोशिश की।

अब मैं पीजने लगा।

ताँत के रणत्कार से आसपास के छोटे बड़े सभी भाई बहन इकट्ठे हो गये, मैं यहाँ के कार्यकर्ताओं को अच्छी रई के गुणावगुण समझाता जा रहा था। पीजने वाले गे को मेरे पीजने में दिलचस्पी होने लगी। अच्छी पिंजी हुई रई के गुणावगुणों को अब वे समझ गये। मेरे धनुष्य को एक के बाद एक सब आजमाने लगे। ऐसा तो हम पीज सकते हैं। पर इस पिंजाई के उनके कौन देत है? ये लोग पीजने के अतिरिक्त कातने और बुनने का भी काम करते हैं, इसलिए मैंने कहा 'तुम इस तरह पीज कर उस रई के सूत को अलग बुन कर के देख लो तब तुम्हें नी मिहनत का बदला मिल जायगा। अब हमारी पिंजाई-प्रदर्शनी को समाप्त कर के बुनाई देखने लगे। तरह तरह की जीन किनारेदार धोतियाँ, चार पावड़ी के जूहेरिये वजा चदर तथा सादी खादी को भिन्न भिन्न करवों पर बुनते देखा। मुझे कहा गया कि ये सब जुलाहे तीन चार साल से केवल खादी बुनने का काम ही करते हैं। जुलाहे बोले 'आज दिन भर मैं जितना कपड़ा बुना जा सकता है चार साल पहले उससे आधा कपड़ा उतने ही समय में बुना जाता था। अब तो सूत भी सुधर गया, और हम प्रतिदिन ६-७ गज खादी बुन सकते



है। यहाँ बुनाई की चौरस गज  $(=)$  ॥ दी जाती है। सूत की मजदूरी को देखते हुए बुनाई अच्छी है।

यहाँ की विशेषता यह थी कि जुलाहे भी खादी पोश थे। बुनाई दिखा देने पर मुझे कताई दिखाने के लिए ले गये संक्रान्ति की दलील का जवाब सुनते ही यहाँ भी कांतनेवाली बहन चरखा चलाने को चुपचाप बैठ गई। चरखे का व्यास २७ इंच था। तबूआ एक धागे का तथा विना साड़ी का था। उस पीजनेवाली की बनाई पूनी से यह बहन 'की घंटा डेढ़ सौ गज के वेग से काँतती थी। काँतते काँतते वह बराबर कहती जाती थी। कि पुनियाँ अच्छी नहीं है, और पिंजाई भी बहुत ली जाती है। इतने बड़े व्यासवाले चरखे पर भी यह बहन केवल आठ अंठ का सूत ही कात सकती थी, और पूनी खराब होने के कारण उनका सूत बारबार टूटता जाता था। वह तबूए पर से सीधा ऊपर को हाथ ले जा कर कातती थी। अब उसका चरखा और पूनी मैंने ली, और एक पूनी अपने ढंग से काँत कर दिखा दी। महीन और विना टूटते सूत को कतते देख कर पास खड़ी हुई दुसरी बहनों को कुछ आश्चर्य सा मालूम हुआ।

एक बहन बोली 'हम जब कातती हैं तब तो सूत टूट टूट जाता है और इन भाई के हाथ वह क्यों नहीं टूटता?' हम आपस में एक दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते थे। आवश्यकतानुसार यहाँ के कार्यकर्ता हमारी बातें एक दूसरे को भिन्न भिन्न भाषाओं में समझा देते थे। परन्तु हमारे हाथों की भाषा से ही अधिक तर काम चल जाता था। मैंने उन बहनों से कहा कि 'यदि तुम खुद अपनी रुई पीज लिया करो तो इससे भी अधिक महीन सूत कातने लग जाओ' और पिंजाई के पैसे भी तुम्हारे ही घर में बचने लग जाएँ।' 'हम क्या पीज सकती हैं? यह काम तो पिंजारी का है। हम इसे करने लगे तो हमारे जाति भाई हमें जाति से बाहर न कर दें?' इस जवाब से कार्यकर्ताओं के काम की कठिनाई का पूरापूरा ख्याल मुझे हो गया। उनके सामने केवल चरखे के प्रचार और सुधार का ही प्रश्न नहीं है। जनता की सामाजिक कठियों को सुधारने का महत्त्वपूर्ण और कठिन काम भी उनके सामने पड़ा हुआ है। कुछ

समझाने बुझाने पर वे यह कुबूल करने लग गईं कि अपनी ही खुद पीजना कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु स्वयं पीजने की हिम्मत उनमें से किसी को नहीं हुई।

कताई पिंजाई मिल कर पके सेर पर यहाँ आठ आने दिये जाते हैं। यहाँ के अन्य मथकों में भी कातने वाली के सामने यही पीजने की कठिनाई है। परन्तु 'बोलगढ मथक' में सब अपनी अपनी रुई पीज लेती हैं। और वहाँ पर मजदूरी पैसों में नहीं बचोड़ी रुई देकर चुकाई जाती है। और कातने वाले बचे हुए सूत से अपने लिए थोड़ा बहुत कपड़ा बनवा देती हैं। यहाँ के कार्यकर्ता भी इस द्विविध पद्धति के—कातने वाली अपनी रुई आप पीज लेना, और पैसों के बदले बचोड़ी रुई देकर मजदूरी चुकाना—गुणों को समझ गये हैं। अब इसे वे अन्य मथकों में भी शुरू करने वाले हैं।

इसके अतिरिक्त बाबू गोपबन्धु दास की देख-भाल में पुरी भी अकाल निवारण प्रीत्यर्थ चरखे का प्रचार किया जा रहा है। परन्तु हम उसे देखने के लिए नहीं जा सके। आन्ध्र से लौटने के समय हम यहाँ के विशेष मथक देखने का विचार कर रहे हैं।

अब तक कामठी बनाने के लिए 'नकोर' बांस की लकड़ी हमें कहीं भी नहीं दिखाई दी थी, किन्तु यहाँ—कोडाला में—हमें दिखाई गई। और वह यहाँ इतनी तादाद में होती है कि फीस के एक पैसे के हिसाब से आप को जितनी चाहें मिल सकती है।

इस प्रान्त की गरीबी किसीसे छिपी नहीं है। अकाल की अतिवृष्टि ने यहाँ के लोगों को सता सता कर उनके शरीरों के केवल कंकाल बना दिया है, यहाँ ऐसे लोगों की संख्या आपको हजारों में मिलेगी जो मौत की राह देख रहे हैं। यहाँ के लोगों को चरखे जैसे हलके काम लगाने में भी अभी काफी समय लगेगा। परन्तु कार्यकर्ताओं जो दल आज यहाँ काम कर रहा है उसके अन्दर से हम यहाँ में कुछ कुछ आशा की किरणें फैलने लगे हैं। किन्तु उन्हें यहाँ काम पर बटे रहने के लिए पैसे की, तथा बनाई हुई खादी के लिए कुछ समय तक देश की सहायता की सारी जरूरतें (नवजीवन)

लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम

### फरवरी १९२७ का

#### खादी की उत्पत्ति और बिक्री का व्यौरा

प्रान्त	उत्पत्ति			बिक्री		
	फरवरी २७	फरवरी २६	जनवरी २७	फ. २७	फ. २६	ज. २७
अजमेर	८,९९६	३,४४४	७,२६३	२,२८६	३,२०९	४,४०५
आन्ध्र	१८,६०६	३,३५०	१२,१७०	६८,२१४	१८,०४६	३६,०३९
बंगाल	१३,९३०	३२,६९३	१९,७४२	२३,१२४	२७,८८१	३२,६०३
बिहार	११,८६६	१९,०११	११,०३८	१९,५९७	२२,२४४	४६,१३३
ब्रह्म				१,२६५	१,७०८	२,१८६
बम्बई				१५,५३३	२७,५४०	११,९१४
दिल्ली	९१५	१,०९०	१३१	१,६०९	८९९	१,४३१
गुजरात	४,१२८	८,०५२	४,२७३	६,०९९	१३,६८६	५,९५४
कर्णाटक	५,३५४	३,३९६	३,६४७	१०,७५८	६,००३	५,३००
महाराष्ट्र	३३८	७४५	५७२	१७,२२१	९,८१६	१३,५७६
पंजाब	८,६८४	१३,४१४	७,०४४	८,७९९	६,४३५	१०,७८५
तामिलनाडु	६४,९८९	५८,०३७	५१,८१०	६२,८९४	८८,७४९	७१,८७८
सुखप्रान्त	१३,५५३	११,९१५	४,७४७	१०,७३७	८,०१३	७,०३६
सत्तर	३,३४५	४,३३४	२,३७३	२,६२६	१,५४२	६,१८८
सीमान	३,००,७६२	३,३५,७७१	१,२४,६१०	१,५१,८२४	१,५९,४८१	३,५९,४८१



# सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३

अध्याय २२

धर्म-संकट

कि अपनी तो  
जने की हिम्मतमाठ आने बिने  
वाली के सामनेमें सब अपनी  
पैसों में नतीकातने बाग  
बनवा देतीतने वाली का  
ले बयोदो

रव इसे वे जान

माल में पुरी

या जा रहा

आन्ध्र से बोले

र कर रहे हैं

गांस की लक

माला में-हमें

इ कि फी लक

मेल सकती है

अकाल की

नके धारी

गों की संक

रख रहे हैं

हलके का

कार्यकर्ता

दर से इस

न्तु उन्हें

हुई खादी

भारी जक

स पुरुषोत्त

न. २०

४,४०५

३६,०३५

३२,६०१

४६,११९

किस के साथ ही साथ मैंने गिरगांव में एक मकान भी बनवा दिया। किन्तु परमात्मा ने मुझे स्थिर नहीं होने दिया। मैंने वहाँ कुछ ही दिन हुए थे, कि मेरा दूसरा लड़का पैदा हो गया। कालज्वर ने उसे घेर लिया। बुखार तेज हो गया, उतरने का नाम नहीं, साथ ही घबराहट भी थी। मैंने तो सन्निपात के चिह्न तक दिखाई देने लगे। इस वक्त के पहले वचन में उसे शीतला भी खूब निकली थी। डॉक्टर ने कहा 'उस पर अब दवा देना ही सलाह है। डॉक्टर ने कहा 'उस पर अब दवा देना ही सलाह है। अब तो उसे अंडे और मुरगी का शोरवा देना पड़ेगा।' अब तो उसे अंडे और मुरगी का शोरवा देना पड़ेगा।

माल में पुरी जा रहा था। उस समय दस वर्ष का था। उसे तो पूछने की जरूरत ही क्या थी? उसके लिए तो मैं ही जिम्मेदार था। अतः मैंने उस पर निर्णय करने की जिम्मेदारी भी मुझ पर ही आई। मैंने एक बड़े सज्जन पारसी थे। "डॉक्टर साहब, हम तो आपकी आहार करनेवाले हैं, और इस लड़के को मैं उन दो चीजों में से जो नहीं देना चाहता। और कोई उपचार नहीं है?"

उसने बोले 'इस वक्त आपके लड़के की जान का खतरा है और पानी मिला कर दे सकते हैं, किन्तु उससे उसको कुछ नहीं मिल सकता। आप तो जानते हैं, कि मैंने हिन्दू कुटुम्बों में जाता हूँ। परन्तु दवा के नाम पर जो कुछ भी देते हैं वे ले लेते हैं। और मेरा तो आप अपने बच्चे के साथ ऐसी सख्ती न करेंगे तो मैं दवा दूँ।'

माल कथन तो सत्य ही है। और आपको यही कहना पड़ा। बचा अगर समझदार होता, तब तो मैं जरूर उसके बचने की कोशिश करता, और वह जो चाहता वही उसे देता। पर यहाँ तो उसके विषय में भी मुझको ही सलाह देनी पड़ी। मुझे तो मालूम होता है कि मनुष्य के धर्म की परीक्षा ही समय होती है। मैंने इस सिद्धान्त को अपने धर्म में माना है—कि वह ठीक हो या गलत—कि मनुष्य को जो खाना चाहिए। जीवन के साधनों की भी हद तो है। मैंने कभी ऐसी नहीं है जिन्हें हमें जान की जोखिम में पार भी नहीं करनी चाहिए। मेरे धर्म की मर्यादा है कि मेरे अपने लिए तथा मेरी के लिए भी मांस का भक्षण नहीं देती। इसलिए, जैसा कि आप मुझे उस खतरे का सामना करना ही चाहिए। पर मैंने मांस नहीं खाया। आपके बताये उपचार तो मैंने किये। स्वयं मेरा जल-चिकित्सा पर जरा विश्वास है। इसलिए उसके उपचार मैं करना चाहता हूँ। मैंने आप नियम-पूर्वक आकर मणिलाल की सलाह से मेरी कठिनाई को दृष्टिगत करके, और मेरी कठिनाई को देखने के लिए आना उन्होंने

यद्यपि उस समय मणिलाल में इतनी समझ तो नहीं थी कि वह अपनी स्वतंत्र राय दे सके, किन्तु डॉक्टर साहब से जो बात चीत हुई थी वह मैंने उसे कह सुनाई और उसे अपनी खुद की राय जाहिर करने को कहा।

'आप कोई चिन्ता न कीजिए, पानी के उपचार शुरू कर दीजिए। मैं अंडे और मुरगी का शोरवा नहीं खाना चाहता।'

इस वचन से मैं खुश हो गया, यद्यपि मैं जानता था कि यदि मैं उसे खिलाना चाहता तो वह उन दोनों चीजों को खा भी लेता।

मैं क्यूनी के उपचारों को जानता था, बल्कि मैंने उसके प्रयोग भी किये थे। यह भी जानता था कि बीमारी के उपचारों में लंघन का स्थान बहुत ऊँचा है। क्यूनी की बताई पद्धति के अनुसार मैंने मणिलाल को कटि-स्नान देना शुरू किया। तीन मिनट से अधिक समय तक मैं उसे टब में नहीं रखता था। तीन दिन तक सिर्फ नारङ्गी के रस में पानी मिला कर देता रहा और उसी पर उसे रक्खा।

पर बुखार नहीं हटा। रात को कुछ कुछ बढ़ावा भी था। बुखार १०० डिग्री तक चढ़ता था। मैं घबड़ाया। कहीं बच्चे को खो बैठा तो संसार मुझे क्या कहेगा? 'मोटाभाई' क्या कहेंगे? दूसरे डॉक्टर को क्यों न बुलाऊँ? क्या वैद्य को भी नहीं बुला सकता? ऐसे मौके पर अपनी ज्ञानहीन अकल आजमाने का माता पिता को क्या अधिकार है?

इस तरह के विचार आते। पर हृदय के अंतस्तल से यह आवाज भी सुनाई देती कि "अरे जीव! तू अपने लिए इस परिस्थिति में जो करता, वही यदि लड़के के लिए करेगा तो परमात्मा संतोष मान लेंगे। तुझे जलोपचारों में श्रद्धा है, दवा में नहीं। डॉक्टर प्राण-दान तो नहीं दे सकते। वे भी तो प्रयोग ही करते हैं। जीवन का डोर तो एक मात्र परमात्मा के ही हाथों में है। बस, उसीका नाम ले कर श्रद्धापूर्वक तू अपने मार्ग पर कायम रह।"

इस तरह यह संयन मुझे भीतर ही भीतर बेचैन कर रहा था। रात हुई, मैं मणिलाल को पास में लेकर सोया हुआ था। उसे निकाल कर भीगोकर निचोड़े हुए दोब में लपेट कर सुलाने का मैंने निश्चय किया। मैं उठा, दोब लिया, उसे ठण्डे पानी में भीगोया, और निचोड़ कर उसमें मणिलाल को सिर से पैर तक लपेटा और ऊपर से दो कम्बल ढाल दिये। सिर पर एक भीगा हुआ टुवाल भी रख दिया। बुखार तब की तरह तप रहा था। शरीर सूखा था। पसीना तो आता ही नहीं था।

मैं खूब थक गया था। मणिलाल को उसकी माँ के सिपुर्द कर के, आध घंटे के लिए मैं हवा खाने के लिए जरा बाहर निकला। थकावट दूर होकर जल्दी शान्ति मिल जाय इस ह्याल से मैं चौपाटी की ओर ही गया। रात के दस बजे होगे। मनुष्यों की चहल पहल बहुत कम हो गई थी। पर मुझे कहीं होश था। मैं तो अपने विचार-सागर में गोते लगा रहा था। हे ईश्वर इस धर्मसंकट में मेरी लज्जा रचना। मुंह से राम राम तो एकसा रटता ही जा रहा था। कुछ घूम कर धक्कते हुए हृदय से वापिस लौटा अंदर पैर रखते ही मणिलाल बोला: "बापू, आप आ गये?"

"हां, भाई।"

"अब मुझे इस से बाहर निकालिए न? मैं तो जला जा रहा हूँ।"

"क्यों मणिलाल, पसीना छूट रहा है?"

"अजी मैं तो पसीने से नहा रहा हूँ। जल्दी निकालिए न भाई साहब।"



मैने मणिलाल की पेशानी को देखा। उसपर मोती की तरह पसीने की बूँदें चमक रही थीं। बुखार गिरता जा रहा था। हस्तहस्ता की एक लम्बी साँस से मैने परमात्मा को धन्यवाद दिये। 'मणिलाल, बस, समझ ले कि अब तो तेरा बुखार भाग जायगा।' बोझ पसीना और नहीं आने देगा?

ना भाई साहब! अब तो मुझे छुड़ाए। फिर और दूसरी बार देखा जायगा।

मुझे हिम्मत आ गई थी। इसलिए कुछ समय बातों में लगा दिया। सिर से पसीने की धारायें बह निकलीं। मैने चहर को खोला। शरीर को पोंछ कर सूखा किया। और दोनों बाप-बेटे साथ साथ सो गये। दोनों को खूब नींद आई।

सुबह देखा तो मणिलाल का बुखार बहुत गिर गया है। बूझ, पानी तथा फल पर बह चालीस दिन तक रहा। मैं अब निर्भय हो गया था। बुखार हठीला था किन्तु अब वह हमारी काबू में आ गया था। आज मेरे सभी लडकों में मणिलाल ही सब से अधिक मजबूत है।

पर इसका निराकरण कौन कर सकता है कि वह श्री राम की कृपा थी या जलोपचार, अल्पाहार तथा दूसरे एहतेहात का फल। अब भले ही अपनी श्रद्धा के अनुसार करें। मैने तो उस समय यही समझ लिया कि परमात्मा ने मेरी लाज रख ली, और आज भी मैं यही मानता हूँ।

(नवजीवन) मोहनदास करमचंद गांधी

### मृत्युंजयी क्षमा

प्राचीन समय में कलाबू नामक राजा वाराणसी नगरी में राज्य करता था। उस समय कोटिष्ठवज ब्राह्मण के यहाँ पुत्र हुआ। लड़के का नाम कुंडक-कुमार रखवा गया। बड़ा होने पर कुंडक कुमार तक्षशिला के विद्यापीठ में समस्त शास्त्रों में पारंगामी हो कर आया। माता पिता की मृत्यु के बाद धन-राशि को देख कर इसने सोचा 'इस धन को पिताश्री ने कमाया, और यहीं छोड़ कर चले गये। मुझे भी इसे यहीं छोड़ कर जबरदस्ती चले जाना पड़ेगा, अतः उसके पहले मैं ही न इसे स्वेच्छा-पूर्वक त्याग दूँ? यह सोचकर सत्पात्रों को दान दे, धन से मुक्त हो, उसने प्रव्रज्या ले ली। हिमालय में बहुत दिन तक साधना करके वह धूमता घामता वाराणसी आ पहुँचा, और राजा के उद्यान में ठहर गया।

अब एक दिन राजा कलाबू सुरापान करके मन्दोमत्त हो, कंचनियों का एक झुंड अपने साथ लेकर इसी उद्यान में आया, और मंगलशिलापट पर सेज बिछाकर बैठा। कंचनियों का संगीत शुरू हुआ, और शीघ्र ही राजा को वहीं आगई नींद। बस, कंचनियों भी अपना गायन बंद कर, लगी उद्यान में घूमने। घूमते घूमते उस साधु को देख कर एक बोली 'अरी यहाँ आधो सब, इस शालवृक्ष के नीचे साया में वह साधु बैठा है। जब तक राजा सोये है, आधो इसके पास बैठ कर धरम की एक भाष बोल सुन के।' यह सुन सारा समाज वहाँ आ पहुँचा और साधु को प्रणाम कर उसे घेर कर बैठ गया। सब ने मिलकर साधु से कहा 'महाराज हमारे लायक दो उपदेश की बातें कहिए।' साधु ने कुछ धर्म-कथा कही।

इसपर राजा की प्रिय कंचनी ने उसे जगया। राजा जागकर देखता है, तो सभी कंचनियाँ हवा! राजा ने पूछा 'यह सब माँ कहाँ?' 'महाराज, वे तो एक तापस की घेरे बैठी हैं। राजा कोमायमान हो तलवार खींच कर 'इस बगुने भगत का इसी घड़ी आत्मा किने देता हूँ' यों कहता हुआ आवेश में निकल पड़ा। कंचनियों ने राजा को शान्त करके उसके हाथों से तलवार लेली।

राजा साधु के सामने खड़ा हो कर बोला 'हे भ्रमण, तू किस सिद्धान्त को मानता है?'

'महाराज, मैं क्षमावादी हूँ।'

'और यह क्षमा क्या होती है?'

'लोग हमें अपशब्द कहें, मारें, पीटें, निन्दा करें, तो भी हम उन पर रोष नहीं करें। इसीका नाम क्षमा।'

'अब तेरी क्षमा की परीक्षा करके देखना चाहिए।' यों कह राजा ने चोर घातक को बुलाने की आज्ञा दी।

'कंधे पर कुल्हाड़ा, हाथ में कांटेदार कोड़ा, पीलावज्र, लाल माला धारण किये घातक आया, उसने झुककर राजा को वन्दना की और बोला 'क्या आज्ञा है, महाराज?' 'इस दुष्ट साधु को घीसता हुआ लेजा, और इसकी देह छील जाने पर, वह कांटे वाला कोड़ा है न, उससे आगे पीछे और दोनों बगल पर, इस तरह चारों ओर दो सहस्र प्रहार लगा।

घातक ने राजा की आज्ञानुसार ही किया, साधु की चमड़ी और मांस भी निकल आया। खून का पतित-पावन प्रवाह वर निकला।

फिर राजा ने प्रश्न किया 'हे भिक्षु, तेरा शास्त्र कौनसा है?'

'महाराज, क्षमा ही मेरा शास्त्र है। तू समझता होगा कि मेरी चमड़ी में ही क्षमा का निवास है, सो नहीं। उस देवी की प्रतिष्ठा तो ऐसे स्थान में मेरे हृदय के अंतस्तल में है जहाँ तू उसे देख भी नहीं सकता।

घातक ने पुनः पूछा 'क्या आज्ञा है, महाराज?'

राजा बोला 'इस जोगड़े के दोनों हाथ काट डाल'।

घातक ने अपने परशु से साधु के दोनों हाथ काट डाले।

फिर राजा बोला अब इसके पैर भी अलग कर दे।

घातक ने पैर भी खटाखट उड़ा दिये। हाथ और पैरों के जड़ों में से खून के प्रवाह बह निकले।

फिर राजा ने पूछा 'हे साधु, तू कौन वादी है?'

साधु ने उत्तर दिया 'महाराज मैं क्षमावादी हूँ। तूने तब मैं सोचा मानो साधु के हाथ-पैरों की जड़ में क्षमा बसती है। यह नहीं। मेरी क्षमा तो हृदय की गहनतम गुहा में विराज रही है। राजा ने कहा 'अब इसके नाक-कान छांट दे' घातक ने वही किया। सारा शरीर लोहू-छहान हो गया।

फिर राजा ने पूछा 'तेरा धर्म क्या है?'

साधु ने उत्तर दिया। 'क्षमा ही मेरा धर्म है, राजनू तेरा क्या होगा कि नाक और कान की कोटियों में ही क्षमा होगी। पतन भाई वह तो कहीं दूर, गहरी, सुरक्षित है। तेरे हाथों वह नहीं लग सकती?'

राजा बोला 'हे नीच साधु देखूँ, तू सीधा लेट कर अपने क्षमा धर्म का परिचय दे।' यों कह साधु के हृदय पर एक लात मार कर राजा वहाँ से चल दिया।

राजा के सेनापति के आग्रह से साधु इस उद्यान में ठहर गये। इस सेनापति ने खून को पोंछ कर साधु के शरीर को धुआँ किया। हाथ, पैर, नाक, कान, की कोटियों पर पट्टियाँ बाँधी, और तब प्रणाम करके कहा, 'भगवन, यदि क्रोध करें तो अराधकों राजा पर ही कीजिए, कहीं काशी राष्ट्र पर क्रोध न कीजिए।'

साधु ने मृत्यु महोत्सव की पूर्णाहुति करते हुए आशीर्वाद दिया—

यो मे हत्ये च पादे च कण्ठ नासं च छेदयि।

चिरं जीवतु सो राजा, नहि कुञ्जन्ति मादिसा।

वह राजा चिरकाल जीये जिसने मेरे हाथ, पैर, और नाक काटे हैं। क्रोध करना मुझ जैसे को नहीं शोभा देगा।

(जातक ४-२-३) (नवजीवन) वालजी गोविंदजी देसाई



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ३९ ]

१९२७

प्रकाशक  
लक्ष्मी आनंद

अहमदाबाद, वैशाख सुदि ११ संवत् १९८४

गुरुवार, १२ मई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ३  
अध्याय २३

### पुनः दक्षिण आफ्रिका

मुझे तो अच्छा हो गया, पर मैंने देखा कि गिरगांव  
में रहने लायक नहीं था। उसमें सीलन थी। प्रकाश  
नहीं था। इसलिए रेवांशकर भाई से सलाह करके हम  
बांद्रा के बाहर किसी मुहल्ले में खुली जगह में बंगला  
बाँटने का निश्चय किया। बांद्रा, सांताक्रूज वगैरह मुहल्लों  
में तलाश किया। बांद्रा में बूचडखाना था इसलिए हम  
वहाँ की इच्छा नहीं हुई कि वहाँ रहें। घाटकोपर आदि  
में मालूम हुए। सांताक्रूज में एक सुन्दर बंगला मिल  
लगा। वहाँ रहने को चले गये और हमें मालूम हुआ कि अब  
हम वहाँ से हम सुरक्षित हो गये। मैंने चर्चगेट जाने का  
विचार पास निकलवाया। मुझे याद है कि कई बार मैं  
बांद्रा ही रहता, इसलिए कुछ अभिमान भी होता। कई  
बार से चर्चगेट जाने वाली स्पेशल ट्रेन पकड़ने के लिए  
बांद्रा से बांद्रा तक पैदल भी जाता।

मेरे बीच आर्थिक दृष्टि से अपेक्षा से भी अच्छा चल निकला।  
दक्षिण के सुबकिल भी मुझे कुछ कुछ काम दिया करते  
थे। मैंने देखा कि उसमें से मेरा खर्च आसानी से निकल

जायेगा। काम तो अभी मुझे नहीं मिलने लगा था। परन्तु  
उस समय जो 'भूट' [चर्चा] होती थी उसे सुनने के लिए  
मैं जाता था। उसमें भाग लेने की तो हिंमत नहीं  
थी। मुझे याद है कि उसमें जमियतराम नानाभाई काफी भाग  
लेते थे। वे रिस्तरों की भाँति हाईकोर्ट में मैं भी केसेस  
के लिए जाता। केसेस सुनने की अपेक्षा वहाँ समुद्र की जो  
वात आती उसमें झपकियाँ लेने में ही मुझे अधिक आनंद  
मिलता था। मुझे साधियों को भी यों झपकियाँ लेते हुए देख कर  
मुझे कोई लज नहीं मालूम हुई। बल्कि मैंने तो  
उनको यों बैठ कर झपकियाँ लेना भी एक फैशन में शुमार  
करके पुस्तकालय का उपयोग करना शुरू किया। वहाँ

कुछ कुछ परिचय भी बढ़ाना आरम्भ कर दिया। मैं सोचने लगा  
कि अब मैं शीघ्र ही हाईकोर्ट में भी काम करने लग जाऊँगा।

इस तरह एक ओर से तो मुझे अपने धंधे के विषय में  
निश्चितता होने लगी।

दूसरी ओर से गोखले की नजर तो मुझ पर बनी ही रहती  
थी। सप्ताह में दो तीन बार चेम्बर में आकर वे मेरी पूछ ताछ  
कर जाते, और कभी कभी अपने खास मित्रों को भी ले आते।  
साथ ही अपने कार्य करने के ढंग से भी मुझे वाकिफ करते रहते।

परन्तु यदि यह कहें तो असत्य नहीं होगा कि मेरे भविष्य के  
विषय में परमात्मा ने मेरे मन की एक भी बात को टिकने नहीं  
दिया।

जहाँ मैंने वहाँ स्थिर होने का निश्चय किया और मैं कुछ स्वस्थता  
को अनुभव करने लगा कि एकाएक दक्षिण आफ्रिका से तार आ  
पहुँचा 'चेम्बरलेन यहाँ आ रहे हैं, आपको फौरन यहाँ आ जाना  
चाहिए' मैं अपने वचन को भूला नहीं था। मैंने उत्तर में लिख  
दिया 'मैं आने को तैयार हूँ, खर्च भेजिए।' उन्होंने रुपये भेजे,  
और मैं अपने ऑफिस को बन्द करके रवाना हुआ।

मैंने सोचा था कि मुझे एक वर्ष तो जरूर लग जायगा।  
इसलिए बंगले को रहने दिया और यह भी ठीक समझा कि बच्चे  
भी वहीं रहें।

उस समय मेरा यह ख्याल था कि जो साहसी युवक देश में  
अच्छी तरह नहीं कमा रहे हैं। उन्हें विदेशों में चले जाना  
चाहिए। इसलिए अपने साथ मैं ऐसे चार पाँच युवकों को भी  
मैं ले गया। उनमें मगनलाल गांधी भी एक थे।

गांधी-परिवार विशाल था, आज भी है। मेरी इच्छा यह भी  
कि उनमें से जो स्वतंत्र होना चाहें, हो जायें। मेरे पिता कितनों  
ही को निवाहते थे, पर संस्थान की नौकरी में। मुझे मालूम हुआ  
कि वे इस नौकरी को छोड़ दें तो अच्छा हो। यह नहीं कि मैं उन्हें  
नौकरी दिलाने में सहायता करता,—यह तो मैं शक्ति होने पर भी  
नहीं चाहता था। मेरी तो यह धारण थी कि वे तथा दूसरे भी  
स्वाधीन बनें तो अच्छा हो।

पर अन्त में तो ज्यों ज्यों मेरे आदर्श आगे बढ़ने लगे (यह  
मैं मानता हूँ) त्यों त्यों मैंने इन युवकों के आदर्शों को भी घटने  
का प्रयत्न किया। उनमें भी मगनलाल गांधी को अपने साथ ले



चलने में मैं बहुत सफल हुआ। परन्तु इस विषय को फिर आगे बढ़ा कर और उठाना है।

बच्चों का वियोग, जमा जमाया काम तोड़ देना, निश्चित वस्तु में से अनिश्चित में प्रवेश करना, यह सब मुझे एक क्षण भर के लिए खटका। परन्तु मुझे तो अनिश्चित जीवन की आदत ही पड़ गई थी। इस संसार में — चाहे उसे ईश्वर कहिए या सत्य—उसके सिवा और कुछ भी निश्चित नहीं। यहां तो निश्चितता का ख्याल भी करना दोषमय है। आज जो हमारे आसपास दिखाई देता है, और हो रहा है, वह सब अनिश्चित है, क्षणिक है। उसके अंदर जो एक परमतत्त्व निश्चित रूप से छिपा हुआ है, उसका यदि आभास भी हमें हो जाय, और उस पर श्रद्धा बनी रहे तो हमारा जीवन सार्थक हो जाय। उसकी खोज ही परम पुरुषार्थ है।

मैं डरबन एक दिन पहले भी नहीं पहुंच पाया। मेरे लिए काम बिल्कुल तैयार ही रक्खा था। मि. चेम्बर लेन से मिलने के लिए जानेवाले डेप्यूटेशन की तारीख सुकरर हो चुकी थी। मुझे वह अर्जी तैयार करनी थी जो उनके सामने पढ़ी जाने वाली थी और उनसे मिलनेवाले डेप्यूटेशन के साथ भी जाना था।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## रोगशय्या के पास से

और और बातें लिखने के पहले इस सप्ताह के अच्छे समाचार कह दूं। गांधीजी की तबियत अब सचमुच सधरने लगी है ऐसा विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है। कल खून के दबाव की फिर जांच की गई तो पाया गया कि वह करीब करीब मामूली स्थिति तक पहुंच गया है। सात दिन पहले हमें कुछ चिंता रहती थी पिछले तीन दिन से उनकी चलने की शक्ति और गति बढ गई है। रोज सुबह-शाम आध-आध घंटा वे घूमते हैं। पहले इससे जो थकावट उन्हें मालूम होती थी, वह अब नहीं है। बल्कि दिन ब दिन प्रफुल्लितता बढ़ती जा रही है। यही स्थिति कायम रही और खून का दबाव पुनः न बढ़ने पाया, तो नंदीदुर्ग में काफी आराम ले लेने के बाद वे साधारण काम करने लायक हो जावेंगे ऐसी आशा कर सकते हैं। आज ही 'यंग इन्डिया' और 'नवजीवन' के लिए वे पहले के जितना काम कर रहे हैं। इस अंक में उनके तीन लेख हैं। इसीको उनकी बढ़ती हुई नीरोगता और शक्ति का सबूत हम कह सकते हैं।

मेरे पिछले पत्र में यह शंका प्रकट की गई थी कि नंदीदुर्ग का निवास गांधीजी की शायद मुआफिक न हो, और सचमुच किसी को यह आशा नहीं थी कि वे इतनी गन्दी तरकी कर सकेंगे। परन्तु परमात्मा की दया से सब भले चंगे हुआ करते हैं। दिन-रात मंद मंद त्राय चलती रहती है, ठंडक बढ गई है, और अब तो कुछ शक्ति बढ जाने के कारण, गांधीजी परिवर्ती प्रदेश का सौंदर्य और सूर्यास्त के समय आकाश में होनेवाली रंग की होली के दृश्यों का आनंद भी उठाने लगे हैं।

## कुछ मूर्तियां

१

अब रोग-शैया के निकट आई हुई कुछ मूर्तियों का परिचय दे दूं? यह परिचय किसी की टीका-टिप्पणी के ख्याल से नहीं, बल्कि इस ख्याल से दिया जा रहा है, कि उससे हमें कुछ बोध हो। नामों को तो मैं छोड़ ही दूंगा। और उन डॉक्टरों का परिचय भी नहीं दूँ, जिन्होंने गांधीजी को जांच कर के अपने सौजन्य का परिचय दिया। क्योंकि उसमें तो अज्ञानतः भी तुलना की छाया आ सकती है। किन्तु यह कह देना तो आवश्यक है कि प्रत्येक डॉक्टर ने असीम

सज्जनता दिखाई, और अपने आपको गांधीजी जैसे सुकृत्य मरीज के अनुकूल बनने की आश्वर्य-जनक तैयारी दिखाई। आज तो मैं दूसरी ही मूर्तियों का परिचय दे रहा हूं।

जब हम निपानी में थे तब किसीने गंगाधररावजी से कहा कि देहात में कहीं एक ऐसा आदमी है जो लकुआ या पक्षपात मरीज को किसी पेड़ की पत्तियों का लेप लगा कर नीरोग कर सकते हैं। यह कोई बात नहीं कि गंगाधररावजी का इस आदमी में विश्वास था। परन्तु दूसरे सब लोगों के समान उन्हें भी यह शक तो थी न कि गांधीजी जल्दी से जल्दी नीरोग हो जाएँ। इसलिए उन्होंने गांधीजी को बिना ही पूछे उस भाई को भेजने लिए तार कर दिया। बेलगांव से सौ मील पर उस गांव था। वह तो बेचारा अपठ ही था। परन्तु गांधीजी का नाम उसने जरूर सुना था। वह कभी अपना गांव छोड़कर किसी पास नहीं जाता था। जिस किसी को जरूरत होती, पत्तियां भेज देता, कोई फी वगैरा भी नहीं लेता था। गांधीजी के लिए तो उसने अपना गांव छोड़ना भी उतूल लिया। हम बेलगांव आये उसके दूसरे ही दिन यह भाई एक कार्यकर्ता के साथ वहां आ पहुँचा। गांधीजी को जब इसकी गई तो झट हँस कर उन्होंने उसे अंदर लाने की आज्ञा दी। यह ग्रामीण भाई जब गांधीजी के सामने आकर बैठा उस का दृश्य तो देखते ही बनता था। बड़ी देर तक खेत में काम लेने के बाद किसान किसी पेड़ के नीचे विश्रान्ति के लिए बैठता? ठीक उसी तरह यह वैद्य अपने घुटनों पर हाथ रख के काँट के साथ बैठा था। (पर इसे वैद्य कहना तो अनुचित होगा, क्योंकि वह वैद्य या डॉक्टर होने का जरा भी दावा नहीं करता।) मैं एक लंगोटा, और सिर पर खादी के एक टुकड़े के सिवा उसके शरीर पर कहीं वस्त्र का नाम भी नहीं था। डॉक्टर के नेकटाय कौलर पहनने की इसे जरूरत ही क्या थी? परन्तु मील के फांसले पर जाने के लिए उसे बदन पर एक अंगोछा लपेटने की जरूरत नहीं मालूम हुई। इसने तो यही लंगोटी अपने कई लडके लडकियों को नहीं व्याह दिया होगा? और भला बड़ा प्रसंग उसके लिए और कौनसा हो सकता था? उसके काली चमकीली चमड़ी अनेक वर्षों की धूप-छाँह की गवाही देती थी। उसका प्रसन्न वदन और कान्तिमान भाल-प्रदेश एक किसान की प्रतिभा को प्रकट कर रहे थे। वह कानटी भाषा में बोलता गया जिसका अनुवाद करके गांधीजी को सुनाया गया उसने गांधीजी से कहा "आज मेरी विद्या सफल हो रही है। गांधीजी ने उत्तर दिया "पर यदि मुझे आपकी दवा की जरूरत ही नहीं पड़े तब?" "तब तो और भी अच्छा। मुझे तो विश्वास है कि परमात्मा आपको दीर्घ आयु प्रदान करेंगे।"

परन्तु यह देखने के लिए कि गांधीजी सचमुच अच्छे नहीं, उसने उनसे कुछ चलने के लिए प्रार्थना की। "जरा चलेंगे दिखावेंगे? मैं आपकी गति देख कर कुछ अनुमान कर सकूँ।" गांधीजी ने प्रसन्नता पूर्वक चल के दिखा दिया। तब वह बोला—"दवा लगाने की सचमुच कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा आपको रक्षा करें। और जिस पर उसकी अच्छी नजर है उसे मेरी दवा की क्यों जरूरत होगी? फिर उसने अत्यंत विनय पूर्वक पूछा। यदि दूसरों पर अब इस पाले का प्रयोग करें तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं, क्योंकि यहां इस रोग के कई मरीज हैं? अपनी दवा दे कर बूढ़ा खाना हुआ। कम से कम सत्तर वर्ष की उम्र तो जरूर होगी। पर उसे तो अपनी उम्र का ख्याल भी नहीं था। हमने उसे आश्चर्य पूर्वक कहा कि शाम को भोजन कर के जाइएगा। परन्तु



१९२७  
 १९२७  
 से अधिक  
 दिखाने।  
 ही नहीं खा सकते थे, इसलिए इन्कार कर के दूसरे  
 के पास वे वैद्य चले गये।

२  
 मूर्ति के दर्शन यहां हुए। यह खबर मिलते ही कि  
 योग का अध्ययन करते हैं, किसी मित्र ने इस योगी को यहां  
 उनके साथ वातचीत करते करते आप थक जावें  
 भी नहीं थकेंगे। उनके आसन और प्राणायाम की अनेक  
 बातें से तो यही प्रतीत होता था कि उन्हें जरूर कोई  
 गुरु मिले होंगे। परन्तु मालूम होता है, मौन अथवा  
 'उपदेश' उन्हें अपने गुरु से नहीं मिला था,  
 इन्होंने ही उसे न लिया हो। इन्हें दिन भर  
 कदम कदम पर उनके मुंह से गीता के  
 आदमी मोहित हो जाता। तहां कई बार उनके  
 से हंसी भी आये बिना नहीं रहती। परन्तु  
 यदि आप उनकी बातों को असम्बद्ध  
 तो भी उन्हें रंज नहीं होता था। बल्कि, वे हंस देते और उलटा  
 करने का प्रयत्न करते। 'नौली' की क्रिया तो वे अद्भुत  
 अनेक क्रियाओं का ज्ञान उन्हें काफी था।  
 अपनी औपधि-लेख-चटनी की बात करते तब तो बड़ी  
 गुण वही बताते जो आजकल अखबारों के  
 राम-बाण दवाओं के बताये जाते हैं। 'यह  
 दवाई-दवा है। इसके सेवन करने से बूढ़े जवान  
 से असाध्य रोग भी अच्छे हो जाते हैं। कोई अच्छासा धनिक  
 तो उससे जरूर मेरी दवा की सिफारिश कीजिएगा।'।  
 तो कोई धनिक मिल जाता है तो उसे खादी बेचता हूं,  
 प्रति दिलचस्पी पैदा करता हूं। आपकी दवा की  
 कहां जाऊँ? यह सुनकर वे हंसने लग गये। इतना  
 पुष्ट तो जरूर ब्रह्मचारी होगा, यह सोचकर मैंने  
 ब्रह्मचर्यव्रत कब धारण किया? तब वे बोले।  
 मैं हूं ही, पर परिणीत ब्रह्मचारी हूं। मेरे दो बच्चे  
 तब बाद में ब्रह्मचर्य व्रत लिया होगा?' इस पर जरा  
 बोले 'नहीं, एक-पत्नी-व्रत ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।  
 प्रश्न सुन कर मैं बहुत खुश हो गया हूं किन्तु आपको  
 रहस्य समझाने के लिए मुझे १० घंटे तक व्याख्यान  
 देने का समय देंगे तो बड़ा उपकार होगा।'।  
 प्रश्न सुन कर योगी महाराज बोले 'सुनो, शुक और  
 हमारे समस्त शात्रों में कोई अविवाहित ब्रह्मचारी  
 ब्रह्मचारी ही थे पर उन्हें भी वन में  
 जाना पड़ा।' मैंने चौक कर कहा 'इसी चौदह  
 ब्रह्मचर्य पालन की तो वाल्मीकि ने इतनी तारीफ की  
 गीता में मुझे कहने लगे, 'यह वह ब्रह्मचर्य नहीं था  
 कर रहे हैं।'।  
 'आपको याद है, सीताजी ने वन को जाते समय  
 'नियता ब्रह्मचारिणी, सह रंस्ये त्वया राम  
 तो सीता जी की प्रतिज्ञा का ही  
 प्रतिज्ञा का पालन किया, परन्तु ---  
 मैं उनका मतलब समझ गया था।  
 कि वे घबड़ा गये, और बोले इसका  
 'ध्यान लगा कर' जवाब देंगे।

इस मूर्ति को देखे बिना गांधी जी उसे कैसे जाने देते।  
 राजगोपालाचार्य की तो इच्छा नहीं थी, परन्तु गांधीजी बोले 'नहीं,  
 आने दीजिए मैं तो जरा गम्मत करूंगा।'।

गांधीजी के पास ले गये। अपनी देश-सेवा और भक्ति की  
 बातें कहने लगे। तब गांधीजी ने पूछा 'खादी पहनते हैं?'  
 हंस कर जवाब दिया 'खादी तो मेरे हृदय में ही है' कभी कभी  
 खादी का कोट भी पहन लेता हूं। पर क्या सभी एक ही काम के  
 पीछे पड़जाएँ? आप यह काम करें, मैं दूसरे काम करूंगा।' और  
 चली गांधीजी के सामने भी वही रेल। गांधीजी सुनते जाते  
 और हंसते जाते थे। बीच बीच में जब कभी गाडी पटरी पर से  
 नीचे उतर जाती तो उसे रोक देते। पर गांधीजी के विषय में  
 उन्होंने अपना एक मत प्रकट किया, जो गांधी जी को भी मानना  
 पड़ा। और स्वयं उन्हें उससे सबक मिला। 'आप महान् शक्ति-  
 शाली हैं, परन्तु अपने शरीर पर आप दया नहीं करते। आप महान्  
 योगी हैं, किन्तु योग को सफल होने के लिए आपने अवकाश ही  
 नहीं दिया। क्योंकि गीताजी में कहा है कि

मात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

अधिक खाने वाले से योग नहीं हो सकता। इसके मानी यह  
 नहीं कि आप बहुत खाते हैं, परन्तु आप अपने मन को हृद से  
 ज्यादा खुराक देते हैं, अपने शरीर को आपने कई बार निराहार  
 रखा है। आप स्वप्नशील हैं, अर्थात् आपने देशोद्धार के अनेक  
 स्वप्न देखे हैं, और आप हृद से ज्यादा जाग्रत भी रहे हैं, अर्थात्  
 आपने चौबीसों घंटे देशोद्धार का ही विचार किया है। इसीलिए  
 आपका योग सफल नहीं हुआ। अब आप इस अतिशयता को  
 छोड़ दीजिए।"

'बालादपि सुशिक्षितं ग्राह्यं' इस न्यायानुसार गांधीजी उनकी  
 बात को सुनते जा रहे थे। परन्तु बात चीत करते करते पुनः  
 उनकी गाडी पटरी पर से उतर ही तो जाती थी।

वे दो दिन तक रहे। उन्होंने गांधीजी को श्वासोच्छ्वास  
 की कितनी ही क्रियायें बताई, परन्तु मौका मिलते ही फिर उनका  
 व्याख्यान शुरू हो जाता। 'देशी राज्यों' पर उन्हें भाषण देना  
 था इसलिए वे बिदा मांगने लगे। तब गांधीजी बोले 'आप जैसे  
 योगी को देशी राज्यों से क्या मतलब?' 'मैं तो सभी विषयों  
 पर भाषण देता हूं।' तब गांधीजी जरा गंभीर होकर बोले,  
 'यदि आपको सेवा करने की शक्ति प्राप्त करना है, तो आपको अपनी  
 मर्यादा समझ लेना जरूरी है। मर्यादा के बाहर बोलने से सत्य का  
 भंग होता है। आपको बिना आवश्यकता के और बिना विचारे  
 कभी नहीं बोलना चाहिए। योगी तो मौनी होता है न? परमात्मा  
 कैसा मौन है! क्या वह अपनी तारीफ करता फिरता है? उसकी  
 महिमा तो हम उसके कृत्यों में देख सकते हैं। सूर्यनारायण,  
 आकाश, नदी, पर्वत, आदि को देख कर उसकी अनन्त शक्ति का  
 ख्याल हमें होता है। यदि ईश्वर से हम यह छोटीसी बात भी न  
 सीख सकें तो हमारी ईश्वर-भक्ति मिथ्या है।

यह भाई तो गद्गद् हो गये। गांधीजी को प्रणाम करके  
 बोले 'आपके इस मंत्र को मैं हृदय में रखूंगा। अपनी मर्यादा  
 को समझकर तदनुसार बरतूंगा' और इस तत्व को समझने की  
 कोशिश करूंगा कि अपनी मर्यादा के पालन ही में सत्य की रक्षा  
 है। आपके इस मंत्र का मैं हमेशा पठन, मनन और पालन  
 करता रहूंगा।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, वैशाख सुदि ११ संवत् १९८४

## बुढ़ापे में जवानी का उत्साह

एक अंगरेज बहन लिखती हैं

मुझे आपसे एक प्यारी स्विज बुढ़िया की बात कहनी है। उसकी उम्र ७० वर्ष से भी अधिक है, पर फिर भी वह 'विलेनिव' के सामने अपना सारा समय चरखा चलाती और बुनती रहती है। मेरे पत्र के जवाब में वह (फ्रेंच भाषा में) लिखती है, 'जाड़े का आरंभ-काल है, बर्फ पड़ना शुरू हो गया है, जो महीनों हमारे साथ रहेगा। और मुझे अब करघे पर काम करने के लिए काफी समय मिलता रहेगा। ५९ मिटर के दो टुकड़े तैयार करने के लिए मेरे पास कई दिन से फरमाइशें रखी हुई हैं। उन्हें तैयार करने के लिए मुझे ऐसे ही लम्बे समय की जरूरत थी। क्योंकि अब (७५ वर्ष की अवस्थामें) मैं जल्दी जल्दी थक जाता करती हूँ।' इस बूढ़ी मा का जीवन शैत्य और शांतिमय जीवन का एक बड़िया से बड़िया नमूना है जो कि प्रत्येक किसान का हृदय चाहिए। गरमी के मौसम में वह खेतों में काम करती है, हां, अभी अभी फुरसत मिलने पर या बारिश के बाद वह चरखा चलाती रहती है। जब की जमीन बरफ से ढक जाती है, वह बारिश की इंतज़ार करती है। आप उससे यह करघा कार चरखा छुड़ा लीजिए और उसकी वंशा विगडी। पर इस उद्यम के कारण उस पहाड़ी के सब किसानों में वह सब से अधिक सुखी और आनंदी प्राणी है। क्यों? इसलिए कि उन सब में केवल उसीने इस पुराने उद्यम को पकड़े रखा और इसलिए केवल उसीका जीवन संपूर्ण और सच्चा भी है। उसकी एक छोटी सी तस्वीर मैं आपके पास भेजती हूँ।

एक लकड़ी के डूँडपर बैठी हुई वह अपने एक बकरे को प्यार कर रही है। इससे आपको उसके प्यारे, बूढ़े, प्रसन्न चेहरे की कुछ कल्पना हो सकेगी। पास खड़ी हुई युवती उसकी पत्नी है।

यह सुंदर तस्वीर मेरे पास है। पर मैं उसे 'यंग इंडिया' में प्रकाशित नहीं कर सकता। तस्वीर की न्यूनता को पाठक अपनी कल्पना से ही पूर्ण कर लेंगे। ध्यान देने की बात है कि यंत्रों के प्रभाव के नीचे दबे हुए उन पश्चिमी देशों में भी ऐसे लोग हैं, जो चरखे और करघे द्वारा, जो कि एक समय प्रधान और सार्वभौम गृहोद्योग थे, सभी शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। और जब कि यह बूढ़ा महिला इस ७५ वर्ष की अवस्था में भी इस उद्यम के कारण जवानी के उत्साह को अनुभव करती है, और उससे केवल आजीविका ही नहीं बल्कि शान्ति भी प्राप्त कर रही है, तब भला उस उद्यम की इस देश में कितनी अधिक आवश्यकता है, जहां बिरली ही स्त्रियां ७५ वर्ष तक पहुंचती हैं, जहां अधिकांश बहनें ५८ वर्ष की अवस्था में ही जबरदस्ती बूढ़ी हो जाती हैं और जहां देश की करोड़ों बहनों को घर बैठे निर्दोष काम कर के मिलने वाली शान्ति की ही नहीं बल्कि उस भूख के भेड़िये को भगाने के लिए ही किसी आजीविका की बेहद जरूरत है।

इस पर वह अज्ञानी निंदक पूछता है, 'यदि ऐसा है तो वे भी क्यों नहीं उस प्यारी स्विज बुढ़िया की तरह चरखा चलाती, और

शान्ति को प्राप्त कर लेतीं? उन्हें यह करने से कौन रोकता जा रहा है?

१८८९ या १८९० में करीब करीब इसी प्रकार का एक प्रश्न हट्टेक्रेट्टे किन्तु असम्य दिखाई देनेवाले अंगरेज ने सुरेन्द्रनाथ बॅनर्जी से पूछा था, जब वे अंगरेजों की किसी सभा में व्याख्यान दे रहे थे, बाबू सुरेन्द्रनाथ से-बंगाल के तत्कालीन बेताज के राजा से- उस भले आदमी ने जो कि जान बुल अण्ड कम्पनी का एक सदस्य था, पूछा कि यदि यह ठीक है कि भारत स्वाधीनता चाहता है तो उसे कौन रोक रहा है? यह कैसी बात है कि उन्होंने (शक्तिमान की तो बात दूर रही, खिडकियों की तोंड-फोंड तक की बात नहीं सुनी, जैसा कि वे (सदस्य) अपने दिल की वस्तु न मिलने पर ऐसे मौकों पर किया करते हैं? जहां तक मुझे याद है अखबारों में वक्ता के उत्तर को नहीं छपा है। श्रोताओं के बीच से केवल "क्या कही" "क्या कही" की आवाज का उल्लेख है किन्तु उस सच्चे अंगरेज ने सुरेन्द्रनाथ जी से जो सवाल किया वह भी आज भी पूछा जा सकता है। और साथ ही यह भी जानते हैं कि यह सवाल स्वाधीनता की पुकार का जवाब नहीं दे सकता। शायद हम स्वाधीनता की प्राप्ति के मार्ग को न भी जानें हों? या उसे जान कर भी उस पर अमल करने की हममें इच्छा या शक्ति ही न हो। फिर भी स्वाधीनता की पुकार तो नकल और स्वाभाविक ही है, और चाहे वह कितनी ही नाकामयाब हो स्वाधीनता की पहली सीढ़ी तो जरूर है।

पर जब इन करोड़ों के भूखों मरने की बात कही जाती है तब ये अज्ञानी निंदक इस बात को भूल जाते हैं कि वे करोड़ों गरीब तो काम या रोटी के लिए पुकार मचाना भी नहीं चाहते। इसीलिए तो अंगरेज इतिहासकार के साथ साथ हम भी उन्हें 'गूंगे' कहते हैं और इसीलिए हमें (और निंदकों को भी) उनकी ओर से आग्रह उठानी पड़ती है। हमें उन करोड़ों गूंगों को पहला पाठ पढ़ना पड़ रहा है। और वे नहीं हम ही उनकी इस भयंकर गरीबी और अज्ञान के लिए जिम्मेदार हैं। वे तो बेचारे यह जानते नहीं कि उन्हें क्या चाहिए। क्योंकि वे जीते हुए भी मरे समान हैं।

उन अस्पृश्यों से यह कहने की किसीमें हिम्मत है, कि 'यदि हम स्वाधीनता चाहते हो तो ले लो, तुम्हें कौन रोकता है?' परमात्मा बड़ा शांतिशील और चिर सहिष्णु है। जालिम को वह उसकी कब्र खोदने देता है। हां, समय समय पर वह मृत्यु की चेतावनी बरपा दे दिया करता है।

हम कह सकते हैं, और न्याय पूर्वक कह सकते हैं कि, जबकि उस अंगरेज का ताना सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है परन्तु अंगरेजों के मुंह में यह प्रश्न शोभा नहीं दे सकता। जब कि हममें से हर एक आदमी अपनी लाचारी को महसूस करते हुए भी स्वाधीनता को प्राप्त करने की अपनी स्वाभाविक इच्छा को प्रकट कर रहा है। उसी प्रकार यदि हम मध्यमवर्गीय लोग भी करोड़ों गरीबों की आवश्यकता के उत्तर में उस कल्पित निंदक के भावों को प्रकट करें तो हमें वह शोभा नहीं देगा। उन्हें भले ही अपनी आवश्यकता का ज्ञान न हो किन्तु हम लोग तो उसे देख सकते हैं न? अतः उनकी उस आवश्यकता का उत्तर देने का मार्ग तो यही है कि हम ऐसे प्रतिनिधियों को चुन लें जो गरीबों के पक्ष को संसार के सामने रख सकते हों, और ही जो चरखा चलाने लग जावें। अपने विदेशी कपड़े को फेंक कर जो खादी पहनने लग जायें और जो तब तक विश्रान्ति न हों जब तक



१२ मार्च १९२७

कि देश का प्रत्येक फालतू घंटा काम में नहीं लग जाता । उसके पहले नहीं, भारत की स्त्रियां भी उस प्यारी स्विज को मंति ७५ वर्ष की उम्र में भी युवती के समान उत्साहवती और श्रद्धाली दिखाई देंगी ।

मोहनदास करमचंद गांधी

## गाय बनाम भैंस

एक कोंकणस्थ गो श्रेवक लिखते हैं :

पशुकोष गोशाला के विषय में ( गोरक्षा की शर्तों में ) आपने पा कि हमें गोरक्षण के साथ साथ भैंस और पाडे के संरक्षण की भी आवश्यकता चाहिए । मेरा खयाल है कि इस सूचना के जवाब में मिले कि खेती में पाडे का उपयोग नहीं होता ।

परन्तु कोंकण में तो पाडे भी काफी काम देते हैं । पशुकोष में भैंस की गाड़ियां खींचते हैं, पानी की रैयमाला को खींचते हैं, और हल में भी वे ही जोते जाते हैं । पाडे ही चलाते हैं, और हल में भी वे ही जोते जाते हैं । पाडे ही खूब वर्षा हो रही हो, तथा खेत में खूब कीचड़ हो तो वे ही काम दे सकते हैं । और कोंकण में तो पाडे ही तमी की जाती है जब खूब वर्षा हो रही हो ।

एक कोंकण में पाडा उपयोगी है । पाडा की गायें सामान्यतः आधा सेर दूध देती हैं, तहां भैंस २॥ सेर दूध देती हैं । प्रयत्न करने पर गाय अधिक दूध देती हैं और मक्खन भी अधिक कर सकती है, तहां भैंस की रक्षा तो स्वयंसिद्ध ही है । इसलिए क्या कोंकण में गोरक्षा के लिए भैंस की रक्षा भी नहीं करनी चाहिए ? यदि इसमें दोष है तो उसे दिखा कर अनुग्रहीत कीजिएगा ।

पाडे के ऊपर की बात जुदी है । वहां गरमी अधिक होती है वड़े वड़े होते हैं, और पानी कम होता है । ( पाडे के खेतों के लिए पानी तो आवश्यक होता है ) वहां पाडे काम दे सकते हैं । परन्तु कोंकण में तो उनके लिए क्षेत्र है ।

एक चर्मालय तथा दुग्धालय की योजना तो शहरों के लिए है, और उनके लिए तो जानवरों के पोषण-संवर्धन विषयक कुछ लिख कर राह दिखाईएगा । प्रत्येक गांव में एक वसु अर्थात् गोशाला जाय, उसका खर्च सार्वजनिक चंदा से दिया जाय । इस उपयोग करने वाले भी थोड़ा खर्च दें । यह कार्य सार्वजनिक है, इसे गाय और बैलों की नसल सुधर जायगी ।

यह भी प्रकार के कुछ उपाय बताइएगा ? ”

जवाब हुआ, जो ये सवाल पूछ लिये गये । मेरे लेख के जवाब में यदि हम भैंस को बचाना चाहें तो अब हमें उसकी रक्षा के लिए धन की आवश्यकता है । यदि भैंस का भी हम गाय के समान रक्षण करें तो गाय और भैंस दोनों को खो देंगे ।

यदि हम भैंस को बचाना चाहें तो उनका तो उपयोग करना ही होगा । यदि हम भैंस को बचाना चाहें तो उनका तो उपयोग करना ही होगा । यदि हम भैंस को बचाना चाहें तो उनका तो उपयोग करना ही होगा ।

जहां गाय से हमारा काम चल रहा है, वहां भैंस की नयी उपाधि हमें नहीं खड़ी करनी चाहिए । भैंस का प्रचार करना चाहिए । बम्बई में भैंस अथवा भैंस का प्रचार की जरूरत नहीं होनी चाहिए । अब तो भैंस का प्रचार की जरूरत नहीं होनी चाहिए । अब तो भैंस का प्रचार की जरूरत नहीं होनी चाहिए । अब तो भैंस का प्रचार की जरूरत नहीं होनी चाहिए ।

जा सकता है । यूरोप में और खासकर डेन्मार्क में तो गोरक्षा एक पृथक शास्त्र ही हो गया है, जिसमें इन सब बातों पर पूरा ध्यान दिया गया है । वहां की गायें हमारी भैंस की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा दूध देती हैं । वयों से सुना है कि गाय के दूध में जो कितने ही रोग-नाशक और आरोग्यवर्धक गुण हैं, वे भैंस के दूध में न होते न किसी प्रकार पैदा किये जा सकते । धर्मज्ञ पुरुषों के मुंह से सुना है कि गाय का दूध सात्विक होता है, तहां भैंस का तामसी । मैं खुद इन बातों को नहीं जानता । हां, खोज कर रहा हूं । अभी तो सुनी हुई बातें पाठकों के सामने पेश कर रहा हूं । यह सब लिखने का उद्देश्य यही दिखा देना है कि हमें भैंस के दूध से जो कुछ भी फायदा होता है, वह सब, बल्कि उससे भी अधिक फायदा, गाय के दूध से होता है, और उस फायदे को भी बढ़ाया जा सकता है । यदि यह बात ठीक हो तो, मनुष्य की दृष्टि से विचार करते हुए, मनुष्य भैंस की उपाधि क्यों नाहक बढ़ावे । भैंस की दृष्टि से विचार करें तो उसे क्यों हम गुलाम बनाये रखें । अथवा इसी बात को सौम्य शब्दों में कहना चाहें तो उससे हम क्यों सेवा लें ?

धार्मिक-चर्चा और सर्व साधारण के लाभ का विचार करते समय इस बात का विचार नहीं किया जा सकता कि कुछ लोगों को भैंस से आर्थिक-लाभ होता है । केवल अपने लाभ को लेकर बैठने की वृत्ति के कारण ही हमारा-अर्थात् देश का और धर्म का-क्षय हुआ है । हम एक शक्तिशाली राष्ट्र तमी हो सकते हैं जब हम इस वृत्ति को पृष्ठ करने लगे कि देश के लाभ में ही हमारा लाभ भी है । जब यही न होगा तो धर्म की बात तो बड़ी दूर है । देशवृत्ति में देश के लाभ को प्रधान स्थान दिया जाता है, और धर्मवृत्ति में सारे संसार को-छोटी से छोटी च्यूटी को लेकर बड़े से बड़े प्राणी के-लाभ को प्रधान पद दिया जाता है ।

यहां तक पढ़ने के बाद पाठक इस अंक में अन्यत्र दिये कोष्टक में लिखे अंकों पर जरा विचार कर लें ।

यह कोष्टक सत्याग्रहाश्रम के जानवरों के खर्च और उनसे होनेवाली आय का है । कोष्टक भेजते हुए व्यवस्थापक लिखते हैं :-

‘ यह नियम नहीं कि गाय की अपेक्षा भैंस से जरूर ही अधिक आय होती है । इस टिप्पणी में बताई कितनी ही गायें सर्वोत्कृष्ट और कमाऊ हैं; कुछ खराब भी हैं, जो नुकसान देती हैं । नुकसान देनेवाली गायों से बच्चे लेना अब बंद कर देना पड़ेगा । उनसे कोई हलका सा काम लेना शुरू करने का विचार है । एक बन्ध्या गाय से तो काम लेना शुरू कर भी दिया गया है । भैंस का पाडा बहुत कम कीमत में विकता है । तहां गायों के कई बछड़े तो सौ सौ रुपए कीमत के होते हैं । इनमें से दो तीन तो गाड़ियों में भी दौड़ने लगे गये हैं । इसलिए अब गाड़ी के लिए घोड़ों की जरूरत नहीं रहनी । ”

आश्रम में तो अब यह निश्चय कर लिया गया है कि भैंस नहीं बढ़ाई जायें । इस काष्ठक को दिखाने का उद्देश्य यह नहीं है कि इससे बड़े बड़े अनुमान निकाले जा सकते हैं, बल्कि यह है कि गाय को अच्छी खुराक दी जाय तो दूध में वह भैंस की बराबरी कर सकती है । और गाय पर खर्चा भी ज्यादा नहीं पड़ता । फिर यह तो सिद्ध है कि बछड़ों का उपयोग बनिस्बत पाडों के कहीं अधिक अच्छा हो सकता है ।

आश्रम में जो अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं उनका हाल मैं समय समय पर नवजीवन में देने की उमीद करता हूं ।

कोंकणस्थ मित्र की यह शंका ठीक नहीं कि दुग्धालय और चर्मालय शहरों के लिए ही उपयोगी हैं वेहात के लिए नहीं । इस



समय देहात में गाय बड़ी खर्चीली हो गई है। उसके दुध का हिसाब रखना, उसकी नसल सुधारना, दुधार गायों के दुध को बढाने और उसे अच्छा बनाने की कोशिशें करना आदि बातें शहरों के समान देहात के लिए भी परमावश्यक हैं। मरे हुए जानवरों की खाल निकाल कर उसका फौरन अच्छा उपयोग कर लेना आदि बातों की विशेष आवश्यकता तो देहात में ही है और यही काम चर्मालयों का है।

दुःख की बात है कि आज तो हमें इस शास्त्र को पहले शहरों में पूर्णता को पहुंचा कर फिर देहात में ले जाना पड़ रहा है देहात में बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किये जा सकते। जानवरों की भारी कत्ल तो शहरों में ही होती है। इसलिए यदि शहरों में चर्मालय और दुग्धालय के प्रयोग धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से होने लगे तो उसका व्यय समस्त देहात को अनायास मिलने लग जाय। और हिन्दुस्तान का यह जीवित धन, जो हमारे अज्ञान के कारण आज बहा जा रहा है, बच जाय, और मनुष्य तथा पशु दोनों सुखी हो जावें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### कल की पिसाई से हानि

दक्षिण आफ्रिका में बसे हुए भारतीयों के लाभ के लिए वहां जो तोड़ परिश्रम करते हुए भी, श्री एंड्रयूज यहां की उन बातों को नहीं भूल सकते जो उनके हृत्पथ के निकट हैं। कुछ रोज हुए, महादेव देसाई के लिखे बिहार के दौरे का व्यौरा पढ़ के उन्होंने तार दिया कि 'महादेव से कहिए कि तुम्हारा लिखा बिहार के दौरे का वर्णन पढ़ कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। राजेन्द्रप्रसाद से प्यार कहिएगा। सूचना करता हूं आप हाथ की पिसाई पर जोर दें। चावल की मिलों में यंत्र की पिसाई की घुराइयों को देख चुका हूं, उनमें पोषक-द्रव्य नष्ट हो जाता है। जनता को सावधान कर दीजिए कि यहां से भेजे हुए अप्रामाण्य तारों पर विश्वास न करें।' पाठक देख सकते हैं कि यह तार मुझे इसलिए भेजा गया कि मैं जनता को सावधान कर दूं कि वह दक्षिण आफ्रिका से आनेवाली ऐसी किसी खबर पर विश्वास न करे जिसपर श्री. एंड्रयूज की मुहर न हो। पर मुझे इस सावधानी की सूचना की इतनी आवश्यकता नहीं दिखाई देती। पर खैर अब तो जनता स्वभावतः ही ऐसी सनसनी फैलानेवाली अप्रामाण्य खबरों पर बहुत कम विश्वास करेगी, पर हम आशा करते हैं कि माननीय शास्त्रीजी शीघ्र ही दक्षिण आफ्रिका के लिए रवाना हो जावेंगे, और हमारी इस सारी चिन्ता और भय का कारण दूर हो जायगा।

इसलिए तार के दक्षिण आफ्रिकावाले हिस्से को छोड़ कर अब हम चावल की मिलोंवाले हिस्से पर विचार करें, जिसकी घुराइयों का श्री एंड्रयूज पर इतना प्रभाव पड़ा है कि उन्हें अपना मत तार द्वारा यहां तक भेजना पड़ा। जब मैं पाठकों से कह दूंगा कि जब तक एंड्रयूज भारत में रहेंगे, उन्हें चावल की मिलों के बीच ही रहेना पड़ेगा, तब वे उनकी इस चिन्ता की कद्र करेंगे। क्योंकि जब वे पहले पहल बोलपुर के निकट 'शान्तिनिकेतन' गये, तब बोलपुर में चावल की एक मी मिल नहीं थी। परन्तु आज तो उस स्थान में जो कि एक समय बिल्कुल शान्त था, कई मिलें खड़ी हो गई हैं। उन्होंने मुझसे उस शौर, धूल और धुंए और लोगों के नैतिक पतन के बारे में भी कई बार कहा जो इन मिलों के आगमन के कारण यहां बढ गया है। और साथ ही यह भी बताया कि इन मिलों की स्थापना के कारण किस तरह एक उपयोगी गृहयोग हमारे हाथ से छीना आ रहा है। इसमें तो कभी सन्देह हो ही नहीं सकता कि हमारे पिसे हुए चावल मिल के पिसे चावलों की बनिस्बत कहीं

अच्छे होते हैं। पर इस विषय पर मेरी अपेक्षा डॉक्टर और वैद्य अधिक अधिकार पूर्वक अपनी राय दे सकते हैं। पर निःसन्देह जब हम इन मिलों के हिस्सों में जाते हैं तो वहां की नैतिक घुराई की ओर तो हमारा ध्यान सब से पहले आकर्षित होता। मैं जानता हूं कि ये गृहयोग दिन व दिन नष्ट किये जा रहे हैं, और यदि मैं बीमार न होता, तो मैं इस काम को अपने हाथ में नहीं लेता, जिसे करने के लिए एंड्रयूज अपनी साधुता और असीम भारत-भक्ति के कारण सूचित कर रहे हैं। क्योंकि मैं तो अपने आपको एक ऐसा कार्यकर्ता समझता हूं जिसे अपनी सीमित शक्तियों का पूरा पूरा ख्याल है, और जो उनका उपयोग बड़ी किरफायत के साथ करता है। हाथ कताई को पुनर्जीवित करने के अपने प्रयत्नों द्वारा, मेरा ख्याल है, मैं इस घुराई की जड़ में ही कुठाराघात कर रहा हूं और यह अकेला काम ही ऐसा है, जिसमें मेरी पूरी शक्तियां काम में आ सकती हैं। यदि यह आन्दोलन सफल हो गया, और मुझे दिन बंदिन ज्यादा ज्यादा यकीन होता जा रहा है कि वह जरूर होगा, तो यह चावल की मिलों की घुराई, जिसकी ओर एंड्रयूज मेरा आकर्षित करते हैं, तथा अन्य — घुराइयां भी, अपने आप अदृश्य हो जावेंगी। हमें यह नहीं सोचना चाहिए की 'भारत में जो गति चरखे की हुई है, और हाथ पिसाई जैसे गृहयोगों की आवाज भी होती जा रही है, उससे राष्ट्रीय जीवन को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, क्योंकि ये बातें पश्चिम में हो चुकी हैं, और उसे इस पर दुःख भी नहीं करना पड़ा है, सब से पहली बात तो यह है कि हम अभी यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि पश्चिम के ग्राम-जीवन के विनाश से उसका या मानव जाति का सब दृष्टि के फायदा ही हुआ है। दूसरे, और यह बात अधिक युक्ति-संगत है हम क्षणभर के लिए मान लें कि पश्चिम में उदय पाये हुए इस नवयुग से मानवजाति का कल्याण ही होगा, तो भी हमें एक बात सोच लेनी चाहिए। और वह यह कि जहां पश्चिम के ग्रामीणों के गृहयोगों को नष्ट किया गया, तहां उन्हें फौरन ही दूसरा उद्यम मिल गया। परन्तु यहां उनमें से बहुत थोड़े लोगों को काम मिला जिनसे मिलों ने उनकी रोजी छीन ली है। उनमें से अधिकांश तो बेकार और दरिद्र ही हैं। तीसरी बात यह है, कि पाठक जल्दी जल्दी में यह भी ख्याल कर लें कि हाथ-कताई का यह आन्दोलन सभी प्रकार के यंत्रों पर एक अंधा और अविवेकपूर्ण हमला है। इस आन्दोलन का कदापि केवल ऐसे यंत्रों पर है जो राक्षसी शक्तियों द्वारा चलाये जाते हैं, तथा जो भूखों मरनेवाले करोड़ों मानव-प्राणियों को नैतिक और आर्थिक हानि पहुंचाते हैं। बात यह है कि पश्चिम की इस चक्रावृत्ति से तथा हर सप्ताह भेजे जाने वाले इस हानि कर साहित्य के द्वारा हम हृद से ज्यादा प्रभावान्वित हो गये हैं। फिर हम इस बात को भी भूल जाते हैं कि जो चीज कुछ कारणों से पश्चिम के लिए पूरी तरह फायदेमन्द हो, वही पूर्व की भिन और बिल्कुल विपरीत परिस्थिति के कारण हमारे लिए फायदे मन्द नहीं हो सकती। स्वतंत्र व्यापार की नीति इंग्लैंड के लिए चाहे भले ही फायदे मन्द साबित हुई हो। पर वही यदि जर्मनी में आखियार की जाती तो उसे निःसंदेह मिट्टी में मिला देती। जर्मनी की बढ़ती तो इसलिए हुई कि उसके विचारकों ने गुलामों की तरह इंग्लैंड का अनुकरण करने के बजाय अपने देश की खास परिस्थितियों का ख्याल करके ऐसी अर्थनीति को कायम किया जो उनके देश के लिए अनुकूल थी, और साथ ही यह भी निश्चय समझिए कि ज्यों ही इंग्लैंड और जर्मनी के शिष्ट लोग बने हुए देश संभल जाएंगे और इनके हाथों छुटने से इनकार करने देंगे, त्यों ही इन दोनों को भी अपनी अर्थनीति बदल देनी पड़ेगी। क्योंकि दोनों की सभ्यता दूसरे देशों की लूट पर रची गई है।



१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

१९२७

कि आज यदि हम इस तरह दूसरे देशों को जबरन जीत लें तो आज हम में वह शक्ति नहीं है, जिससे हमें अपनी अर्थनीति और परिस्थिति को ऐसी बना लेनी होगी जो हमारे विकास के अनुकूल हो।

मोहनदास करमचंद गांधी

## लगन क्या न करेगी

दुनियाँ देशों में कई बार 'क्लब स्विजिंग' अर्थात् मुद्रा चलाने का खेल भी चलाया है। ये तमाशे खेलने के लिए होते हैं कि मनुष्य की सहन-शक्ति किस हद तक बढ़ सकती है? इसे देखने के लिए हजारों प्रेक्षक जाते हैं, और मुझे भ्रम होता है कि ऐसे खेलों से कहां तक फायदा होता है।

परन्तु पाठकों को याद होगा कि कुछ कुछ इसी ढंग का प्रयोग १९२७ में हुआ था, अर्थात् धार्मिक हेतु से, सत्याग्रहभ्रम में राष्ट्रीय सप्ताह के समय किया गया था। कई युवकों ने अकेले ही चौबीस घंटे जागरण करके आग्रहपूर्वक चरखा चलाया था। उनमें से अधिकांश तारकांतने वाले युवक का पत्र पढ़ने योग्य है इसलिए मैं इसे प्रकाशित करता हूँ—

"एक बार चौबीस घंटे चरखा चलाने के विचार को तो मैंने ही कर दिया था। परन्तु आखिरी दिन मैंने और कृष्णदास को बताया कि चौबीसों घंटे चरखा चलाना ही चाहिए। चरखा शुरू करने का समय आया उस समय तक तो इस विचार के याद आते थे कि आज चौबीस घंटे चरखा चलाना है। प्रार्थना का घंटा बजते ही हमारे चरखे गूँजने लग गये। प्रारंभिक तब तो उसी विचार का असर रहा। परन्तु उसके बाद २४ घंटे की बात ख्याल से उतर गई, और यह धुन सवार हो गई। इस घंटे में पूरे ५०० तार कर देना चाहिए। मुझे कि इस निश्चय के अनुसार पहले घंटे में पूरे ५०० तार हो गये। दूसरे घंटे में ५१६ हुए। यह क्रम ३००० तार तक बढ़ रहा। फिर माल पुरानी होने के कारण टूट गई, और फिर दो घंटे तार भी बराबर हो गये। नींद भी अपनी शक्ति खो रही थी। सुबह सात बजे एक घंटे के चरखे, तब ६४५५ तार हुए थे। आठ बजे फिर बैठा। आराम के बाद चरखा का असर पूरा पूरा मालूम हो रहा था। ९ बजे तक १००० तार हुए। ४० तार पूरे करने रहे। दूसरे घंटे में १० तार बचे। तीसरे घंटे में भी इतने ही। चौथे घंटे में इन्जिन खराब हो गया और उस शेष २० तारों को पूरा कर के ५० तार बचे। अर्थात् फी घंटे ५७० तार हुए। मैंने सोचा, कि फी घंटे को कायम रखना चाहिए, और २३ घंटे में ११५०० के चरखे १२००० कर देना चाहिए। पर ठीक इसी समय अच्छी चिन्ता हो गई। ८००० तक तो पहले के ज्यादा तारों को चरखा चलाया, पर इसके बाद तो और भी खराब पूर्णियां आने लगीं। वेग ४८० से भी कम हो गया। मुझे तो यही चिन्ता हो गई कि ११००० भी पूरे होंगे कि नहीं? २ बजे ७८८० तार हुए। चार बजे तक तो १०००० हो जाना चाहिए थे। परन्तु ४ बजे ५००० से ऊपर बढ़ गया। आखिरी तीन घंटे में चिन्ता और थकावट के कारण मानो चरखा रुक गया था। मालूम होता था कि मैं कमी से चरखा चला रहा था, और अभी फिर कांतने के लिए

आ कर बैठ गया हूँ इसीलिए इतने कम तार हुए हैं। २४ घंटे कैसे बीत गये खबर भी नहीं पड़ी। हाँ उठते समय वह सब मालूम हो गया। बदन इस कदर जकड़ गया था कि दो तीन बार उठने का प्रयत्न करने पर भी लाचार हो फिर बैठ जाना पड़ा।

विद्यार्थियों की पवित्र लगन को सराहनेवालों तथा चरखा-यज्ञ में श्रद्धा रखनेवाले पुरुषों को यह पत्र पढ़ कर जरूर हर्ष होगा। जो विद्यार्थी इस पत्र को पढ़ें, वे इससे बोध लें। खेल में प्रेम होना अच्छी बात है। किन्तु वही प्रेम और लगन परोपकारी कार्य में होना और भी अच्छा है। वे यह भी देखें कि जो अपने स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं, और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उनके लिए उपर लिखे अनुसार चौबीस चौबीस घंटे का अविश्रान्त परिश्रम भी साध्य है। धन कमाने के लिए विद्या का उपयोग करना उसके दुस्प्रयोग के समान है। विद्या तो तभी सार्थक होती है जब उसका उपयोग सेवा के लिए होता है। फिर विद्यार्थी के लिए श्रद्धा की भी भारी जरूरत है। यह समझ लेने के लिए तो जरूर कुछ बुद्धि की आवश्यकता है कि भारत का दारिद्र्य चरखे जैसी चीज से ही नष्ट हो सकता है। परन्तु उस प्रेम को टिकाये रखना तो आखिर श्रद्धा का ही काम है। मैं तो विद्यार्थियों के विषय में इस बात को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि श्रद्धा के अभाव में उनकी विद्या निरर्थक हो रही है।

मोहनदास करमचंद गांधी

## पुरस्कार प्राप्त निबन्ध—हिन्दी संस्करण

अजमेर के सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल ने 'हाथ कटाई हाथ बुनाई' नामक पुरस्कार पाये हुए अंगरेजी निबन्ध का सस्ता हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर हिन्दी के पाठकों की निःसन्देह बड़ी सेवा की है। अनुवादक प्रो. रामदास गौड़ हैं जो हिन्दी-संसार के विख्यात साहित्य सेवी हैं। इस निबन्ध के अनुवाद का काम उनको फरवरी के अंत में सौंपा गया था और उन्होंने लगभग २० दिन में ही मंडल को सम्पूर्ण अनुवाद सौंप दिया। और हमें मालूम हुआ कि मंडल ने भी केवल पांच छः दिन में ही इसे छाप कर पाठकों के हाथों में दे दिया। इसके फल-स्वरूप मूल अंगरेजी संस्करण के अनुसार इसकी छपाई में भी अनेकों भूलें जरूर रह गई हैं। यदि इसकी छपाई में इतनी जल्दी नहीं की जाती, तो इसमें से अनेकों भूलें टाळी जा सकती थीं। पर और सब बातों में तत्परता के साथ साथ मौके पर काम किस तरह किया जा सकता है इसका यह एक बढ़िया नमूना है। किताब की कीमत सिर्फ दस आने रखी गई है। टाइप बड़ा और कागज अच्छा है। आशा है कि अन्य प्रांत भी अपनी अपनी प्रांतीय भाषा में इसका अनुवाद प्रकाशित करने में देरी नहीं करेंगे।

इस साहसी मंडल पर भी यहां एक शब्द लिख देना अनुचित नहीं होगा। मंडल के अध्यक्ष हैं श्री० धनश्यामदास जी बिडला और श्री० जमनालाल जी बजाज उसके प्रेरक प्राण। मंडल की स्थापना शुद्ध सार्वजनिक सेवा के उद्देश से कोई डेढ़ साल पहले की गई थी। वह लागतमात्र मूल्य में अनुवाद और मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित करता है। इतने थोड़े समय में ही उसने अब तक कोई २२ ग्रन्थ प्रकाशित कर दिये हैं, जिनमें गांधीजी का लिखा दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह, टॉल्स्टॉय का "क्या करें" और श्री. चि. वि. वेय के ग्रन्थ मुख्य हैं।

(यंग इंडिया)

सं० ६९



सत्याग्रहाश्रम की गोशाला के मासिक आय-व्यय के अंक  
( माघ मास )

गाय भैरव के नाम	सांस्कृतिक स्थल	रोजाना दूध	खली	बिनौले	सुस्ती	पूरियाँ	विशेष	खली	बिनौले	सुस्ती	पूरियाँ	खुराक की कीमत	कुल खर्च	सामान्य खर्च	कुल लाभ	द्वारा की कीमत
तामिरी	३३१।	११=	१७४	५८	५८	७२।		६।।।।।	२।।	२।।	६)	२०-१०-६	१२-९-६	१२-९-६	३३-४-०	४१-५-६
गोमती	२६१।।	९	११६	२९	५८	७२।		६।	१।	२।।	६)	१६-१-६	१२-९-६	१२-९-६	२१-३-०	३२-१०-०
नंदा	१८८	६।	२१६	२९	५८	७२।		"	"	"	"	१६-१-६	१२-९-६	१२-९-६	२८-३-०	२३-४-०
सरयू	३१३।।	१०।।	१७४	५८	५८	७२।		६।।।।।	२।।	२।।	६)	२०-९-६	१२-९-६	१२-९-६	३३-४-०	३९-३-०
छोटी तापी	२०८।	७=	११६	२९	५८	७२।		६।	१।	"	"	१६-१-६	१२-९-६	१२-९-६	२९-३-०	३६-८-०
काशी	२८८।।	६।।।	११६	"	"	"		"	"	"	"	१६-१-६	१२-९-६	१२-९-६	२९-३-०	३९-३-६
गोदावरी	२८७।।	६।।।	१७४	११६	"	"		६।।।।।	४।	२।।	६)	२२-१३-६	१२-९-६	१२-९-६	३५-११-०	२५-११-०
नर्मदा	२३२।।	८	११६	२९	"	"		६।	१।	२।।	६)	१६-१-६	१२-९-६	१२-९-६	२९-३-०	२९-११-०
बड़ी तापी	३७८।।	१३)-	१७४	५८	५८	७२।		६।।।।।	२।।	२।।	६)	२०-१०-६	१२-९-६	१२-९-६	३०-१३-०	१३-४-०
जमुनी	१०६	३।।=	८०	२९	५८	"	२० मेथी	०)=	१।	२।।	६)	१८-१-६	१२-९-६	१२-९-६	३०-१३-०	२५-१०-६
साबरमती	२०५।	७)-	८०	२९	५८	"	२० असारिया	०।	०)=	०।-	६।	४-१-०	१२-९-६	१२-९-६	४-१-०	१-१४-०
चंदमाणा	१५	५	१६५	३	६			०।।	०।	०।-	६।	४-१-०	१२-९-६	१२-९-६	४-१-०	१-१४-०
सांडी		'	५८	२९	५८	२०		३।	१।	२।।	४ १।।०।	१३-५-६	१२-५-६	१२-५-६	४१-९-०	३९-९-०
काली भैरव	२९६।।	१०)=	१७४	५८	५८	१००	बाजरा	६।।।।।	२।।	२।।	८)	२२-१०-६	१२-९-६	१२-९-६	३९-९-०	३९-९-०
काली झोंट	२७८	६।।	१७४	"	"	"	"	"	"	"	"	२२-१०-६	१२-९-६	१२-९-६	३९-९-०	३९-९-०
भूरी "भंस"	२३४।।	८)-	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२२-१०-०	१२-९-६	१२-९-६	३९-९-०	३९-९-०
भूरी झोंट	३८०।	१३)=	"	"	"	"	"	"	"	"	"	२२-१०-६	१२-९-६	१२-९-६	५३-८-०	५३-८-०
वरकरियां	२१८।।	७।।	मु.	"	"	"	वनकी ढाल मु.	"	१।।।	२)-	२)-	४-०-०	४-०-०	४-०-०	५३-१३-६	५३-१३-६

\* प्रसिद्ध दुषाढ ज्ञानवरों और थोड़ी सी वक्रियों के लिए गृह खर्च ज्यादा हो जरूर माहूम होगा। परन्तु जिस प्रकार कुटुम्ब का भार कमाऊ व्यक्ति पर पड़ता है उसी प्रकार इस गोशाला के समस्त ८० का आर्थिक दुषाढ ज्ञानवरों पर डाला गया है। मुल से वक्रियों पर खर्च का हिस्सा नहीं रक्खा गया है वह रह गया है।

गणपुर

सत्य व

[illegible]



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

सांगपुर का सत्याग्रह

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४० ]

१९६]

मुद्रक-प्रकाशक  
श्यामी आनंद

अहमदाबाद, जैष्ठ कृष्णा ३ संवत् १९८४

शुक्रवार, १९ मई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १

किया कराया स्वाहा ?

मि. चेम्बरलेन तो दक्षिण आफ्रिका से साठे तीन करोड़ पाउण्ड के लिए आये थे, अंगरेजों के, और यदि हो सके तो वोअरों को भी हरण करने के लिए आये थे। अर्थात् भारतीय प्रति-को को कोरा जवाब दे दिया गया।

आप तो जानते हैं कि उत्तरदायित्वपूर्ण संस्थानों पर बड़ी सत्ता नाम मात्र की होती है। आपकी फरियाद तो बन पड़ती है। मुझसे जो बन पड़ेगा मैं करूंगा। पर किसी तरह हो सके, यहां के गोरो को आप राजी कर लें।

जब सुनते ही प्रतिनिधियों के तो होशहवास ठंडें हो गये। मैं भी इस काम से अपने हाथ धो लिये। 'जब जागे तभी सबेरा' यह सोच कर मैं आगे की सोचने लगा। साथियों को प्रेरणा लिया।

मि. चेम्बरलेन का जवाब क्या बुरा था? गोल मोल कहने पर उन्होंने सीधा कह दिया। 'मारे उसकी तलवार' वाला मुझमें मधुर शब्दों में समझा दिया।

परन्तु हमारे पास तलवार ही कहाँ थी? हमारे तो शरीर भी खोये, जो तलवार के बार सह सकते।

मि. चेम्बरलेन कुछ ही सप्ताह रहने वाले थे। दक्षिण आफ्रिका के प्रांत नहीं है। यह तो एक देश है, महाद्वीप है।

मैं तो कितने ही उप-महाद्वीप हूँ। कन्याकुमारी से यदि १९०० मील है तो डरबन से केप टाउन १९०० मील है। इस महाद्वीप में मि. चेम्बरलेन के काम-काज से घूमना था। वे ट्रान्सवाल की ओर चले। अब वे वहाँ जाकर वहाँ के भारतीयों के पक्ष को उनके सामने रखेंगे। परन्तु प्रिटोरिया किस तरह जाया जाय। वहाँ जाने की राह के बाद ट्रान्सवाल निर्जन सा हो गया था। वहाँ खाने के लिए बाज भी नहीं था। पहनने ओढ़ने के लिए कपड़े के लिए बाज भी नहीं था। उन दुकानों को खलवाना था, जो लडाई के कारण बंद हो चुके थे। और यह काम तो धीरे धीरे

ही हो सकता था। ज्यों ज्यों माल आता जाता, त्यों त्यों ही घरबार छोड़कर भागे हुए लोगों को अपने घर पर लौटने दिया जाता। इसलिए हर एक ट्रान्सवालवासी को एक पास लेना पड़ता था। गोरो को तो झट मांगते ही यह परवाना मिल जाया करता था, किन्तु मुसीबत थी भारतीयों की। लडाई में भारत और लंका से बहुत से अधिकारी लोग और सिपाही भी दक्षिण आफ्रिका गये थे। उनमें से जो लोग वहीं बसना चाहते थे, उनके लिए वहीं रहने की व्यवस्था कर देना ब्रिटिश राज्याधिकारियों का कर्तव्य समझा गया था। अधिकारियों का एक नवीन मंडल भी तो उन्हें बनाना ही था। उनमें ये अनुभवी अधिकारी बड़े उपयोगी साबित हुए। इन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि के बल पर एक बिलकुल नये महकमे का आविष्कार किया। उनमें उनका ज्ञान भी तो अवश्य ही ज्यादा था। हबसियों से सम्बन्ध रखने वाला एक जुदा विभाग तो था ही। फिर एशियावासियों के लिए भी ऐसा ही एक भिन्न विभाग क्यों न हो? दलील ने सब को कायल कर दिया। जब मैं वहाँ पहुँचा तब तक यह नवीन विभाग खुल चुका था, और शनैः शनैः वह अपना जाल फैला रहा था। जो अधिकारी भागे हुए लोगों को परवाने दे रहे थे वेही सब को दे सकते थे। परन्तु एशियावासियों को इसका ज्ञान कैसे हो सकता था? दलील यह की गई कि अगर इस नवीन विभाग की सिफारिश पर परवाने दिये जाएँ तो उस दूसरे (परवाने देनेवाले) अधिकारी की एक तो जिम्मेदारी घट जाय, और दूसरे उसका काम भी हलका हो जाय। पर सच्ची बात यह थी, कि इस नवीन विभाग को काम और दाम की भी जरूरत थी। काम ही न हो तो इस विभाग की जरूरत ही न सिद्ध हो, और उसे कम कर देना पड़े। इसलिए उसे यह काम अनायास मिल गया।

परवाने के लिए भारतीयों को इस महकमे में अर्ज करना पड़ता। तब कहीं फुरसत से बहुत दिन बाद उस पर उत्तर मिलता। फिर ट्रान्सवाल जानेवाले तो बहुत से लोग थे। इसलिए उनके लिए दलाल भी खड़े हुए। इन दलालों और अधिकारियों के बीच गरीब भारतीयों के हजारों रुपये लुट गये। मुझे कहा गया कि बिना सिफारिश के परवाने की इजाजत नहीं मिलती। और तिस पर भी प्रत्येक आदमी के पीछे सौ सौ पाउण्ड खर्च हो जाते हैं। यहां मेरी गुजर कैसे भिड सकती थी?

मैं तो सीधा अपने पुराने मित्र डरबन के पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट के यहां पहुँचा और उनसे कहा आप परवाने देनेवाले अधिकारी से मेरी



परिचय करा के रूपया एक परवाना दिला दीजिए। आप यह तो जानते हैं कि मैं ट्रान्सवाल में रह चुका हूँ। फौरन उन्होंने अपने सिर पर टोप रक्खा और मेरे साथ आ कर परवाना दिला दिया। मेरी ट्रेन खुलने में मुश्किल से एक घंटा रहा होगा। अपना सब असबाब तो मैंने बांध बुंध कर तैयार ही रक्खा था। सुपरिन्टेन्डेन्ट अलेक्झांडर के प्रति ऐहसान जता कर मैं प्रिटोरिया जाने के लिए निकल पड़ा।

कठिनाइयों का पूरा पूरा चित्र मेरी आंखों के सामने खड़ा हो गया था। मैंने अर्जी बनाई। मुझे याद नहीं कि डरबन में किसीने प्रतिनिधियों के नाम पूछे हों। परन्तु यहां तो नवीन विभाग ही खुल गया था। इसलिए शुरू से ही नाम पूछे गये। मतलब यह कि प्रिटोरिया के भारतीय समझ गये थे कि अधिकारियों की मन्शा यह थी कि मुझे मि. चेम्बरलेन से मिलने न दिया जाय। पर यह दुःखदायक किन्तु मनोरंजक कहानी फिर।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## भयंकर कर्म

डरबन से भेजे हुए एक पत्र में श्री. एण्ड्रयूज लिखते हैं,

“आज कल भारतीयों के बीच यहां जो घोर कर्म हो रहा है उसने मुझे थड़ा परेशान कर रक्खा है। उम्बीलो के मन्दिर में बड़े विशाल पैमाने पर बुरी तरह से आत्म-कषणा या आत्म-ताडन किया जा रहा है, और दिन ब दिन यहां इसके बढ़ने की सम्भावना है। उस दिन ‘नेटाल अंडवर्टायजर’ में ऐसी तसवीरों का पूरा एक शृष्ट दिया गया था, जिसमें भारतीयों के इन घोर कर्मों के चित्र थे। किसी ने अपने गाल में काटे घुसा रक्खे थे, कोई आग पर चल रहा था और कहीं बकरों की हत्या बताई गई थी। अखबारों के संचालक इन बातों को छाप छाप कर ऐसे मौके पर सनसनी फैला रहे हैं, जब कि यहां गोरों की वृत्ति जरा मित्रतापूर्ण होती जा रही है। यह सनसनी बेहद नुकसान पहुंचा रही है।

यों ही हमें धीरे अपने घ्येय को गांठना होगा। पर मैं आपसे नहीं कह सकता कि मैं किस कदर थक गया हूँ। सच्ची बात तो यह है कि मुझे कभी विश्रान्ति नहीं मिली, बल्कि चिन्ता जरा भी कम नहीं हुई। पर मैं जानता हूँ कि परमात्मा की दया से सब कुछ ठीक हो जायगा। और यह श्रद्धा ही हमारा सब से बड़ा सहारा है।”

मैंने उम्बीलो के मंदिर को देखा है। उम्बीलो डरबन का एक मुहल्ला कहा जा सकता है। पर यह मन्दिर बनने के बरसों पहले मुझे गहरा भय था। मैंने अपने कड़ए अनुभवों से यह पाठ पढ़ा है कि सभी मन्दिर ‘देवालय’ नहीं होते। वे तो शैतान के निवास भी हो सकते हैं। इन पूजास्थानों का स्वयं अपना कोई महत्व नहीं होता जब तक कि खुद उनका रक्षक ही भगवद्रूप नहीं होता। मंदिर, मस्जिद और गिरजाघरों को आदमी जैसे बना देता है, वैसे ही वे हो जाते हैं। इसलिए इस स्थान में, जिसे लोग मंदिर कहते हैं, किये जानेवाले दुःखदायक और भयंकर अज्ञान भरे कर्मों का हाल पढ़ कर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। यह कहना कठिन नहीं है कि ये कर्म कैसे शुरू हुए होंगे। दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों के तीन वर्ग हैं। पहला दल है स्वतंत्र व्यापारी भारतीयों का, जिसका इन घोर कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरा वर्ग उन भारतीयों का है, जो वहीं पैदा हुए हैं और जो अत्यंत कठिनातापूर्वक सही, किन्तु काफी उदार शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। इन्हें भी उन कुकर्मों से कोई सरोकार नहीं है। तीसरा वर्ग है उन शर्तबन्द कूटियों का जो अब स्वतन्त्र हो गये हैं। स्वभावतः वे भारत के गरीब से गरीब वर्गों में

से गये हुए लोग हैं। और इन बेचारों को अपने अज्ञान तथा विश्वासों से मुक्त करने के लिए न तो सरकार ने कोई प्रयत्न किया है और न उनके मालिकों ने तथा दक्षिण आफ्रिका में बसे हुए स्वतंत्र भारतीय वर्गों ने। परिणाम यह हुआ कि वे उन अन्य विधवा लोगों के शिकार हो जाते हैं, जो शायद दुष्ट भी होते हैं और अपने आप को पुजारी अथवा साधु बताते रहते हैं। वे कुछ संस्कृत के श्लोक बोलते हैं, जिनका अर्थ वे खुद नहीं जानते और जिनका उच्चारण भयंकर अशुद्धियों से भरा होता है। यही लोग अनेकों प्रकार के भयंकर घोर कर्मों को करते रहते हैं। और ऐसे कर्मों के लिए मन्दिर से अधिक अच्छा स्थान कौनसा हो सकता है, जो सब तरह के लोग इकट्ठे होते हैं, और जिसके साथ भक्ति पवित्रता की भावना होने के कारण हर प्रकार का अज्ञान भरा कर्म गूढ़ रहस्य से भरा हुआ मालूम होने लगता है? मेरा ख्याल है कि यदि वहां की सरकार इन कुकर्मों को बन्द करना चाहे तो मामूली कानून ही इतना व्यापक है कि उसके अवलम्बन द्वारा सरकार बन्द कर सकती है।

बात यह है कि दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों के प्रति जो दुर्भाव फैला हुआ है उसका कारण ये कुकर्म अथवा इस जंगली प्रथा का शिकार बने हुए भारतीय नहीं बताये जा सकते। प्रधानतः दुर्भाव तो उस स्वतंत्र व्यापारी वर्ग के प्रति है, जिसे इन कुकर्मों से कोई सरोकार नहीं है। और इसलिए हम देखते हैं कि कुप्रथाओं पर अब तक कोई टीका टिप्पणी नहीं की गई है। यदि आज उसकी तरफ ध्यान आकर्षित किया जा रहा है, तो केवल इसीलिए कि इस हर्षावृत्ति-शिष्ट-मंडल के द्वारा किये गये समझौते के प्रति गोरी जनता में दुर्भाव फैलाया जाय, और उसके कारण भारतीय जनता को जो कुछ भी थोड़ासा लाभ पहुंचा है, उस पर पानी फेर दिया जाय। स्मरण रहे कि ये कुकर्म दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों में सभी जगह नहीं पाये जाते। वे केवल एक हिस्से में, नेटाल के किनारे पर, हैं, जहां कि शर्तबंदी भारतीय अधिक से अधिक तादाद में पाये जाते हैं। इसलिए यदि सरकार इन कुकर्मों को बन्द करना चाहे तो वह अपने मामूली कानूनों के द्वारा उन्हें आसानी से बन्द कर सकती है। म्युनिसिपल उप-कानूनों के द्वारा भी यह हो सकता है। मुझे तो निश्चय है कि यदि उन पर कोई कानूनन कार्यवाही की गई तो इन कुकर्मों की रक्षा के लिए धर्म के नाम पर एक भी आवाज नहीं उठेगी क्योंकि कोई संस्कारवान भारतीय उनसे सरोकार नहीं रखेगा, और अज्ञानी भारतीय जो इन कर्मों को भय की दृष्टि से देखते हैं, अपने इस अधिकार के लिए न्यायालय में लड़ने की हिम्मत नहीं करेंगे।

इस अन्ध-विश्वास से झगड़ने के लिए दक्षिण आफ्रिका के संस्कारवान भारतीयों को हम उत्साहित कर सकते हैं। सरकार की बिना सहायता लिये उन्हें गरीबों में काम शुरू कर देना चाहिए और उनको इस जंगलीपन से मुक्त करने की कोशिश करनी चाहिए। परन्तु यदि आवश्यकता हो और इन कुकर्मों को करनेवालों पर वे मामला चलाना चाहें, तो उन्हें सरकार की सहायता देने की सलाह भी हमें देनी चाहिए। मतलब यह कि उन्हें अपनी इस इच्छा को क्रियात्मक रूप में प्रकट करना चाहिए कि वे दक्षिण आफ्रिका में हमारा सभ्यता की बुराइयों को नहीं, केवल अच्छी बातों को ही प्रवेश कराना चाहते हैं। दक्षिण आफ्रिका में बसे हुए हमारे भाइयों को हमें ऐसी कोई बात करने के लिए सलाह नहीं देना चाहिए जिससे उनके विरोधी हलचलों को किसी प्रकार शक्ति मिले।

(य. इ.)

मोहनदास करमचंद गांधी



मलाबार के चंदे के विषय में

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

महात्मा गांधीजी सावरमती ।

महात्माजी,

हाल ही में दक्षिण भारत में बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए जो भिन्न भिन्न संस्थाएँ स्थापित हुई थीं, और जिन्होंने बाढ़-पीड़ितों के संकट-निवारणार्थ अपीलें कीं थीं, उनका उत्तर जनता ने इस उदारता के साथ दिया कि संकट के निवारण के लिए काफी धन खर्च कर लेने पर भी कुछ रकमें बच रही हैं। और इन संस्थाओं ने उनका उपयोग जनता की स्थिति सुधारने के लिए करना शुरू भी कर दिया है।

हमें मालूम हुआ है कि इस दक्षिण भारत के बाढ़ पीड़ितों के संकट निवारण के लिए आप के द्वारा इकठ्ठे किये गये चंदे में से काफी रकम बची हुई है । और आप किसी ऐसे उपाय को सोच रहे हैं जिससे इस रकम द्वारा उन लोगों को फलप्रद लाभ पहुंचे जिनके लिए वह इकठ्ठी की गई थी । हमें कहना न होगा कि यदि इस बचत का उपयोग दक्षिण भारत के बाढ़-पीड़ितों को खास फायदा पहुंचाने वाले खादी-कार्य के लिए किया जाय तो वह कितना सुंदर होगा ?

इसलिए हम विनयपूर्वक सूचना करते हैं कि दक्षिण भारत के बाढ़-पीड़ित सहायक कोश में से जो रकम आपके पास तथा आपके धम्बई के मित्रों के पास बची हो, उसे दक्षिण आफ्रिका के खादीकाई के लिए सुरक्षित रक्खा जाय और उसको अखिल भारत चरखा संघ में जिसके आप अध्यक्ष हैं, जमा कर के उसी संस्था द्वारा दक्षिण भारत में उसका उपयोग भी किया जाय । हमें विश्वास है कि यह सूचना उन सभी दानियों को भी पसन्द होगी जिन्होंने इस कोश में उदारतापूर्वक चंदा दिया है ।

## आपके स्नेहाधीन

एस. श्रीनिवास आयंगर

एस. रामनाथन, मंत्री

अ. भा. च. सं. तामिलनाडु और केरल

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

के. केलाप्पान, दीवान बहादुर

एम्. ओ. पार्थसारथी आयंगार

एम. कृष्ण नायर दीवान बहादुर

एम. एल. सी. प्रधान सचिव त्रावणकोर

टी. रंगाचार्य दीवान बहादुर

( यं इं )

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत २) पोस्टेज १); बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जबाब नहीं दिया जायगा । दस से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जायगी । वी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम पेशगी भेजना चाहिए ।  
व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन

अहमदाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जेष्ठ कृष्णा ३ संवत् १९८४

## नागपुर का सत्याग्रह

अखबारों में मैं एसोसियेटेड प्रेस के एक तार को देख रहा हूँ। वह खबर करता है कि श्री मैक्लरशा अवारी का कहना है कि बंगाल के कैदियों के छुटकारे के लिए शस्त्र-कानून और स्फोटक द्रव्यों के कानून का सविनय भंग करने की उनकी हलचल में उनके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति और आशा है। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो या तो एसोसियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि ने श्री अवारी का मतलब समझने में गलती की है, या स्वयं श्री अवारी ने ही मुझे समझने में भूल की है। मुझे तो याद नहीं होता कि मैंने श्री अवारी को किसी भी बात को लेकर सविनय-भंग छेड़ने के पक्ष में पहले ही से अपनी सम्मति दे दी हो। सचमुच, इस तरह पहले से सम्मति दे देना तो मेरे स्वभाव के विपरीत है। श्री. अवारी की देशभक्ति और स्वार्थ त्याग के लिए मेरे दिल में बड़ा ऊँचा स्थान है। और मैंने उनके साथ सविनय-भंग के सिद्धान्त पर चर्चा भी की थी। मैंने सविनय-भंग की गंभीर मर्यादाओं की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने भी बंगाल के कैदियों के विषय में बड़ा प्रेम और चिंताशीलता जाहिर की। और वह ठीक भी था। मुझे याद है कि मैंने उन्हें यह कहा था कि यदि सविनय-भंग जैसे किसी आन्दोलन पर विचार करके उसे छेड़ा जाय तो वह एक भारी बात होगी। अब भी मेरा यही मत है। क्योंकि मैं मानता हूँ कि बंगाल के देशभक्तों को बिना किसी प्रकार भी जांच बरकरा के अनिश्चित समय तक जेलों में डाल रखना एक गहरा अन्याय तो जरूर है। और यदि अभी तक मैं चुप रहा हूँ तो उसका कारण यह नहीं है कि मेरे दिल में उन देशभक्तों के प्रति उनके घनिष्ठ मित्रों का सा प्रेम नहीं है, बल्कि इसलिए कि मैं अपनी लाचारी का निष्फल प्रदर्शन करना नहीं चाहता। एक सार्वजनिक कार्यकर्ता को धीरज पूर्वक यह भी सीखना पड़ता है कि वह क्या क्या नहीं कर सकता। और आज विस्तर पर कैद होते हुए भी, यदि मैं उन बंगाली देशभक्तों को उस कैद से छुड़ाने के किसी व्यवस्थित और शान्तियुक्त उपाय को खोज सकता, तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के जरूर उस पर एक दम अमल करने लग जाता। पर मैं कुबूल करता हूँ कि मेरे सामने अभी ऐसी कोई योजना नहीं है। मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि अभी देश में सविनय भंग के अनुकूल वायुमण्डल ही नहीं है। आज कल तो बड़े बुरे दिन हैं। आज तो अहिंसात्मक सविनय भंग के योग्य नहीं, बल्कि बहुत भारी हिंसात्मक और आत्मघातक कानूनभंग के अनुकूल वायुमण्डल देश में फैला हुआ है।

मुझे बिलकुल पता नहीं कि नागपुर में क्या क्या हो रहा है। मैं श्री. अवारी के आन्दोलन पर कोई मत नहीं दे सकता और मैंने उनके इस आन्दोलन को अपनी सम्मति भी नहीं दी है। मैं तो उसके विषय में एक शब्द भी कहना नहीं चाहता था। अच्छा होता यदि श्री अवारी मेरे नाम को व्यर्थ ही बीच में न घसीटते। यदि वे सोचते थे कि उनके आन्दोलन के लिए मेरी सम्मति आवश्यक थी तो उन्हें चाहिए था कि वे अपनी हलचल की सारी योजना स्पष्ट रूप से मेरे सामने रख देते, और मेरी सही सम्मति प्राप्त कर लें। यदि मैं उसे पसंद करता किन्तु

स्वयं भाग न ले सकता तो कम से कम इन स्तम्भों में अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका समर्थन तो जरूर करता। खैर, अब यदि मेरी इस अस्वीकृति के प्रकाशन से उनकी हलचल को कोई हानि पहुंचे तो इसके लिए वे अपने आप ही को धन्यवाद दें। अब से मेरे नाम का उपयोग करने की इच्छा रखने वाले सभी कार्यकर्ताओं को इससे नसीहत उठानी चाहिए। बिना मेरी लिखित सम्मति लिये वे किसी आन्दोलन के साथ मेरा नाम न खींचें। निःसन्देह अब तो कार्यकर्ताओं को स्वावलम्बी और साहसी हो जाना चाहिए। उन्हें अब बड़े और प्रभावशाली समझे जाने वाले लोगों के मुंह की ओर इस आशा से देखने की कोई जरूरत नहीं कि वे उन्हें अपने नामों का उपयोग करने की इजाजत दें। बल्कि यदि वे किसी बातको ठीक समझें तो उन्हें स्वयं ही निर्भयतापूर्वक अपनी योजनाओं पर अमल करना शुरू कर देना चाहिए। उन्हें अपने विश्वास के बल और कार्य पर ही निर्भर रहना चाहिए। गलतियाँ तो होंगी। कष्ट भी होगा, ऐसा कष्ट जो टाला जा सकता है। पर राष्ट्र यों आसानी से नहीं बन जाते। किसी बड़ी बात के हांसिल करने के पहले कठोर और कड़े अनुशासन की जरूरत होती है। और यह अनुशासन निरंतर तर्क, दलीलों और वादविवाद से प्राप्त नहीं होता। अनुशासन का पाठ तो विपत्ति की पाठशाला से सीखा जाता है। और जब युवक बिना किसी ढाल के काम करने सीखेंगे, तो वे जिम्मेदारी और अनुशासन को भी अच्छी तरह जानेंगे लग जावेंगे। और इस उम्मीदवार नेताओं की फौज में से एक ऐसा सच्चा नेता पैदा होगा जिसे अनुशासन और आजाधिरता के लिए पुष्प नहीं मचानी होगी, बल्कि उसे वे अपने आप स्वभावतः प्राप्त होंगे। क्योंकि वह कई जगह रगड़ें खाकर कई परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर निश्चित नेतृत्व के लिए अपना अधिकार सिद्ध कर देगा।

मोहनदास करमचंद गांधी

## दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों के प्रति

श्री. श्रीनिवास शास्त्रीजी ने अपनी कितनी ही शुभेच्छाओं का त्याग कर, केवल आपकी सेवा के लिए, और मित्रों के आग्रह के कारण, भारत के पहले राजदूत के पद को मंजूर कर लिया है। अब उनकी सेवा का सदुपयोग करना, उनकी हाजिरी का लाल उठाना आपका काम है। नीचे लिखी बातों पर उनकी उपस्थिति से वहां लाभ उठाया जा सकता है।

- (१) आप उनसे ज्यादा आशा न करें
- (२) अपने व्यक्तिगत लाभ के काम उनसे लेने का प्रयत्न तक न करें
- (३) प्रत्येक व्यवहार में सत्य का त्याग कदापि न करें। उन्हें धोखा देना अपने आपको धोखा देने के समान है।
- (४) अपने अंदर पूरी एकता रखें।
- (५) भीतर की बुराई को निकाल कर आत्मशुद्धि करें।

यह मानने के लिए कोई कारण नहीं कि, शास्त्रीजी आवे हमारे सब दुःख दूर हो जावेंगे। यदि हमारे खिलाफ नये कानून बनने पाएँ, पुराने कानूनों पर अच्छी तरह अमल होने लग जाय, अभी अभी जो समस्याएँ हुआ है उस पर दक्षिण आफ्रिका की सरकार पूर्ण रूप से अमल करने लगे,—इतना भी यदि शास्त्रीजी कर सकें तो हमें समझ लेना चाहिए कि उन्होंने बहुत कुछ कर लिया। शास्त्रीजी भारत के प्रतिनिधि हैं, उन्हें भारत के सम्मान रक्षा करनी है। इसलिए उनसे एक एक आदमी का काम अपने अपने का कौड़ी की तरह उपयोग करने के समान है। आप ऐसी भूल कदापि न कीजिएगा।



जो हमेशा अंधे की आँखों में भी चुभती रहती है। इसलिए यदि इन बातों का विचार करने से मुझे रोकना हो तो हिन्दू-मुसलमानों को पशु की तरह आचरण करने के बदले मनुष्य की तरह आचरण करना चाहिए। और जिन्हें आवश्यकता से अधिक खाने को मिलता है, उन्हें चाहिए कि वे उन भूखों मरनेवाले अपने करोड़ों भाइयों का विचार करके विदेशी कपड़े का त्याग कर दें, और उन्हें चरखा चलाने के लिए प्रवृत्त करने की गरज से खुद भी फुरसत के समय में चरखा चलाने लग जायें”।

पर यह काम बेचारे डॉक्टर साहब के किये कहीं होता है? हां, एक समय जरूर उनके हाथों में बाजी थी। परन्तु अब तो लाचार हो वे भी अपने धंधे में मशगूल हो गये हैं। इसलिए स्वयं गांधीजी ही इस समस्या को यों हल करते हैं:

‘यदि इस खून के दबाव का कारण मानसिक चिन्ताओं का भार ही हो तो सचमुच मेरा ख्याल है कि इसे हलका करने के लिए आपको मुझसे उपास के उपचार की सिफारिश करनी चाहिए। गहरा विचार करने पर मुझे यही मालूम होता है कि लम्बा उपास ही रोग को निर्मूल करने में कारगर हो सकेगा। क्योंकि मुझे याद है कि २१ दिन के उस उपास में १० दिन के बाद तो मेरे दिमाग में बाह्य जगत् के विचार भी आना बंद हो गये थे। चित्त को घड़ी भर चिन्तामुक्त करना था, सो निराहार रहने के कारण हो गया। जब तक पेट में खाना जाता रहता है तब तक तो, विचार-क्रिया को बंद करना संभव हो तो भी, विचार बन्द करने से मन इन्कार कर देता है। यदि आहार छोड़ दूंगा तो अपने आप मन भी विचार करना छोड़ देगा। और सचमुच समय समय पर मेरी जांच के लिए आनेवाली डॉक्टरों की फौज के उपचार करते हुए भी, मेरी अपनी इच्छा से कितने ही अर्ध वैयों की सलाह लेते हुए भी, और निरंतर मेरी अतिशय सेवा-शुश्रूषा करनेवाले सेवकों के चिन्ता करते रहने पर भी, अगर यह खून का दबाव कम न हो तो, अनेक मित्रों को दुःखी कर के भी मुझे एक लम्बा उपास करना पड़ेगा, और इस निष्क्रिय, कष्टमय जीवन का अन्त या सुधार करना पड़ेगा। परन्तु अभी तो चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। मेरा ख्याल है कि दबाव जरूर कम हो जायगा।”

मानो इस सत्याग्रह की धमकी से प्रकृति को भी चिन्ता हो गई; और गांधीजी के किसी कड़े उपाय के अवलम्बन करने के पहले ही उनके खून का दबाव घट गया, ताकत भी बढ़ने लगी, पहले की बनिस्बत अब वे ज्यादा घूमने भी लग गये और सब की चिन्ता कम हो गई।

### शुश्रूषा करनेवाले

कोई यह न समझे कि यह चिन्ता केवल इन पंक्तियों के लेखक या उनके आसपास के लोगों को ही थी। नहीं, वे तो जहां जाते हैं, वहां उन्हें शुश्रूषा करने वाले दल के दल मिल जाते हैं। और उनके इस शुश्रूषा करने के आग्रह के कारण गांधीजी के साथ रहने वालों के हिस्से तो कुछ भी काम नहीं आने पाता। उदाहरण के लिए निपानी में श्री गंगाधर रावजी ने चार्ज ले लिया था। गंगाधर राव तो उनके जेलर के पद पर थे। परन्तु इस पद पर वे कुछ ही घंटे रह पाए। उन्हें शीघ्र ही परिवारक हो जाना पड़ा। उन दिनों की उनकी चिन्ता और दुःख का वर्णन करने की शक्ति इस लेखनी में नहीं है। अम्बोली में मकान तो राजा का था, परन्तु दूसरी कुल व्यवस्था गंगाधर रावजी की थी। हर बात पर वे खुद ध्यान देते। और मानो अम्बोली तक की सेवा से संतुष्ट न हो, वे यहां

### रोगशय्या के पास से

लंबे अंकों में मैं गांधीजी की तबियत के समाचार दे चुका हूं। ऐसे हैं जिससे उनके आसपास वाले तथा आम जनता के मन में शान्ति प्राप्त होगी। क्योंकि पिछले एक दो सप्ताह से उनके चित्त में जो मंथन जारी था, वह चिन्ता उत्पन्न कर गया था। डॉ. अन्सारी ने गांधीजी को भेजे अपने लम्बे पत्र में ‘मानसिक आराम’ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा था कि ‘कोई मानसिक चिन्ता को छोड़ देने से ही नहीं है; बल्कि अधिक विचार भी नहीं करना चाहिए। यह सलाह गांधीजी को सुझाई जा चुकी पड़ी। इसलिए एक लंबे पत्र में उन्होंने ‘आराम’ को लिखा कर डॉक्टर साहब के पास भेज दिया। ‘आराम’ का अर्थ यह कि मुझे अपने विचार लिख कर या बोल कर प्रकट करना चाहिए, तब तो आप की बात समझ में आ सकती है। यह तो विचार-क्रिया को ही बन्द करने की बात कह रही है। यह कैसे हो सकता है कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो विचार भी न करूं, सिर्फ बैठे बैठे सोचूं? करोड़ों मनुष्य मारे भूख के तड़फ रहे हैं, उनका विचार लिख कर कैसे रह सकता हूं? और इन दो बातों के विषय में मैं आपको नहीं पढ़ना पड़ता? ये तो ऐसी बातें हैं,



भी राजगोपालाचार्य जी के बोझ को हलका करने के लिए आ गये। पर राजगोपालाचार्य और गंगाधर राव तो मुख्य परिचारक थे। उनकी देख-भाल में काम करने वाले उन अनेक परिचारकों की सेवा का वर्णन मैं कैसे करूँ? हाँ, यदि उसका वर्णन देकर हम उन्नत हो सकते, तो जरूर वह वर्णन मैं यहां दे देता। यहां से कोई पांच मील के फासले पर चिकवालपुर नामक एक कस्बा है। ज्यों ही वहां के निवासियों को मालूम हुआ कि गांधीजी यहां आने वाले हैं, त्यों ही उन्होंने उनकी सेवा-शुश्रूषा और व्यवस्था करने का बीड़ा उठा लिया। एक ही सज्जन उनके यहां के निवास का सारा खर्चा देने को तैयार हो गये। राजगोपालाचार्य ने इन्कार करते हुए कहा, 'नहीं, आप वही रकम दास-स्मारक में दे दीजिएगा। आप अकेले ही यह लाभ उठा लें सो नहीं होगा, समस्त गांव वालों को भी इसमें शरीक होने दीजिएगा। इस तरह हम चिकवालपुर के लोगों के मिहमान हैं। परन्तु यह कहंगा तो अनुचित होगा कि हमारे उनके बीच में मिहमान और आतिथ्यकर्ता का रिश्ता है। यहां तो परिचारकों का स्थान भी उन्होंने ले लिया है। वहां एक आम सभा हुई। वकील भी सेवा-दल में शामिल हो गये, बल्कि यहां आकर पाकशाला में काम करने से भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। चिकवालपुर की म्युनिसिपैलिटी ने खास कर एक खादीपोश मेहतर को भेजा। गांधीजी को जिस कुरसी पर बैठा कर टेकड़ी पर ले गये उसका छत्र भी खादी का ही था। कुरसी को उठाने वाले भी खादीधारी थे। एक नई रोजमर्रा आता है, वह भी खादीपोश! एक दिन गांधीजी ने इस नई से पूछा 'यह खादी तुझे किसने दिलाई?' गांधीजी का ख्याल था कि चिकवालपुर के स्वागतमंडल ने ही यह खर्च किया होगा। बल्कि उन्होंने तो मंडल के खर्चिलेपन पर टीका करने का भी विचार कर लिया होगा। परन्तु नई ने साफ साफ कह दिया 'ये तो मेरे अपने ही कपड़े हैं।' तब उसे फिर पूछा गया 'क्या रोज यही कपड़े पहनता है?' उस बेचारे ने नम्रतापूर्वक किन्तु सच सच कह दिया 'नहीं रोज नहीं पहनता, आप आने वाले थे, इसलिए बनवा लिये। भला आपके सामने बिना खादी के कैसे आ सकता?'

इस तरह चिकवालपुर के लोगों ने सारे वायु-मण्डल को अपने भाव से भर दिया है। और यहां के स्वयंसेवकों की तो कहना ही क्या? स्वयंसेवकों के नायक बंगलोर इन्स्टिट्यूट ऑफ सायन्स के एक प्रेज्युट हैं—श्री राजाराम। वे पाकशाला में काम करते हैं। और सब काम काज की देख-भाल करते हैं। उनके पास ३।३ दूसरे स्वयंसेवक भी होते हैं। वे सब बंगलोर की स्कूल और कॉलेजों के विद्यार्थी हैं। गांधीजी के आने के पहले से ही इन्होंने अपना एक सेवा-दल बना लिया था जिसमें अनेकों विद्यार्थी हैं। इन्होंने तीन तीन विद्यार्थियों की एक एक टुकड़ी की है, जो तीन तीन दिन के बाद पाली पाली से आती रहती है। इन स्वयंसेवकों की सी निष्ठा और हर काम करने की तत्परता और कहीं नहीं देखी गई।

### परिचारकों की कठिनाई

मैंने जैसा आदमी इस सेवा के भार से दब जाय तो वह ऊपर लिखे अनुसार कृतज्ञता के द्वो शब्द लिख कर हलका हो जाय। परन्तु गांधीजी की स्थिति तो ऐसी नहीं है न। उन्हें तो यही विचार आया करते हैं कि इस सेवा के योग्य होने के लिए इस प्रान्त की पूरी सेवा करनी चाहिए। रोगशेया से उठे हैं नहीं, और अभी से वे आगे के कार्यक्रम की बातें कर के अपने मुख्य परिचारकों को बराने लग गये हैं। और खूबी यह कि उन्हें इसके लिए उत्साहित करनेवाले डॉक्टर भी मिल जाते हैं। बंगलोर के एक वयोवृद्ध

डॉ. आर्य। चिकवालपुर में गांधीजी के शरीर की जांच की, और स्वास्थ्य को अच्छा तथा खून के दबाव को गिरा हुआ देख कर गांधीजी का उत्साह बढ़ाने के लिए बोले 'साहब, अब आपको कोई बीमारी नहीं है।' गांधीजी ने हंसकर पूछा 'तो अब मैं अपनी दोड़ भाग शुरू कर दूँ न?' 'नहीं, जितनी शक्ति आप के शरीर के अन्दर आई है, उससे ज्यादा काम न कीजिएगा। हाँ, यदि आप एक मील चल सकते हैं और परिचारक आधा मील से अधिक न चलने दें तो उनकी न मानिएगा। यदि वे ऐसी बातें करें तो समझ लीजिएगा कि उन्होंने कोई डाक्टर या वैद्य के इलाज की जरूरत है।' ये सब बातें वे तो विनोद में कह रहे थे, किन्तु गांधीजी के लिए तो यह दिल की बात हो गई। डॉक्टर के चले जाने पर उन्होंने तो बड़ी बड़ी गंभीर बातें शुरू कर दीं। पहले पहल तो हमें मालूम हुआ कि वे सामूली तौर से बोल रहे हैं, परन्तु फिर तो उनके हृदय का बन्धु शब्दों के रूप में बरसने लग गया 'अरे, मेरी शक्ति का ठीक ठीक अंदाजा मुझे होना चाहिए या तुम लोगों को? और अगर तुम्हारा यह ख्याल हो कि तुम्हारी इन बातों का असर सुझ पर हो सकता है तो गीता के 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षणों का तुम्हारा प्रतिदिन रटना धूल में गया, ई० ई०। उनके सामने बोलने की हिम्मत किसे थी! सब स्तब्ध हो सुनते रहे। पर शाम को परिचारकों के दुःख को गांधीजी स्वयं ही समझ गये। तब कहने लगे—  
"जब मैं इस तरह का तकाजा करने लगूँ और तुम सब चुपचाप हो जाओ तो कैसे काम चल सकता है? मैं तो लड़ लेने पर भी वही कहंगा जो तुम चाहते हो। हाँ, सिर्फ मुझे लड़ने का हक जरूर होना चाहिए। मैं तो 'जेलर' की आज्ञा का पालन करने वाला आदमी हूँ। जब गांधीजी चिढ़ जाते हैं, तब परिचारक अपने जेलर के पूर्व पद को गृहण कर लिया करते हैं। राजगोपालाचार्य ने मानो वाक्यपूर्ति करते हुए कहा—परन्तु कैसी जेलर का बंधा हुआ नहीं। और इस कैसी को तो अपने जेलरों को भी 'बरखास्त' करने का हक है। परन्तु जब तक मुझे बरखास्त नहीं कर दिया जाता मुझे तो सावधान रहना ही प्राप्त है, और आपके स्वास्थ्य में जो सुधार हुआ है, उसे बनाये रखने के लिए आपको और और उपाधियों से बचाए रखना भी आवश्यक है।" गांधीजी राजगोपालाचार्य के दुःख को समझ गये। जरा सौम्य होकर बोले: 'आपकी बात को मैं स्वीकार करता हूँ, क्योंकि यदि कुछ विपरीत हो जाय तो सारी बदनामी तो आपके सिर पर ही आवेगी। ना, मैं तो सिर्फ अपने लड़ने के हक को बनाये रखना चाहता हूँ। मुझे एक बार लड़ लेने दीजिएगा। और यदि आपको मेरी बात पसन्द न हो तो आप जो कहेंगे सो मैं कुबूल कर लिया कहंगा।' राजगोपालाचार्य ने कहा 'परन्तु कुबूल करने पर भी जब आप उसी बात पर विचार किया करते हैं, तब हमारे दिल को बड़ी गहरी चोट पहुँचती है। उस बात को आप भुला दें तब तो हमें शान्ति रहती है, नहीं तो बस, हमेशा यही बुरा लगता रहता है कि आपकी बात को इन्कार कर के हमने मानो एक नई उपाधि खड़ी कर दी है।' गांधीजी ने कहा 'खैर अब आइन्दा एक बार जो बात तय हो जायगी उस पर मैं फिर विचार नहीं कहंगा। अरे, मैं तो बड़ा समझदार मरीज हूँ। क्यों नहीं? पर याद रखिए आपकी एक बात नहीं मानूंगा। आप से अभी कह देता हूँ कि अच्छा हो जाने पर मुझे कर्नाटक मैसूर और तामिल प्रान्त का प्रवास खतम करना बहुत जरूरी है। इस बात में मुझ पर आपका जुल्म नहीं चल सकता। इन प्रान्तों ने खूब तैयारियाँ की हैं। यदि इन प्रान्तों में मैं थोड़ा बहुत भी न पूरा खं तो वह मुझे एक अपराधसा मालूम होगा। हाँ, इसके लिए यदि इस प्रान्त में मुझे बहुत दिन तक रहना पड़े तो मैं तैयार हूँ।"



१९ मई, १९२७

सुखी स्थिति के बाद शिकायत के लिए कोई स्थान नहीं रहा। राजगोपालाचार्य को एक सूचना मिली थी हिम्मत हुई।

“एक सूचना कलुं ?” उन्होंने अपनी सूचना की प्रस्तावना की। “इस बीमारी में भी विस्तर पर लेटे लेटे आप किताब तो पढते हैं। शायद कुछ ज्यादा सोये भी हों। परन्तु आपका विचार-मन तो सोमवार के दिन भी नहीं छूटता। जब तक आप एक दिन मनोरंजन, आराम और विनोद के लिए न बैठें तब तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

“विनोद कैसा ? ताश खेळ ? टेनिस, बैडमिन्टन, पिंग पोंग ?” बां कह गांधीजी ने बात को वहीं से उठाना शुरू किया। राजगोपालाचार्य ने कहा ‘नहीं और भी अनेकों प्रकार का विनोद हो सकता है।’

‘तो बताइए, आपको किसी खेल या चित्त-विनोद का नाम सुचित करना चाहिए न ?’

‘जल्द मैं सोचकर कहूंगा।’

‘तब वीत में दूसरा विषय छिड़ गया, और उसका सारा प्रवाह उस दिशा में लग गया। तब झट, मानो राजगोपालाचार्य को हरा जाये, गांधीजी बोले, ‘वस, आपकी सूचना तो हवा में उड़ गई। भाई, मैं तो अपने लिए हर बात में से विनोद ढूँढ रहा हूँ। जिसके लिए सारा काम विनोद-रूप हो और सारा काम अपने काम के लिए हो, उसके लिए और दूसरे विनोद की आवश्यकता है ?’

‘हो, इस तल्लान से आप भले ही हमें समझा दीजिए। मैं विनोद की सूचना नहीं करता। मैं तो कहता हूँ कि आप केवल दिल बहलाव—मनोरंजन के लिए रक्खें। उदाहरण के साथ खेलना इत्यादि।’

‘तो तो मैं पहले ही कर रहा हूँ। यहां छोटे छोटे विनोद हैं तो क्या हुआ ? आपके जैसे दाढ़ी-मूछों वाले लोग तो हैं न ?’

‘तब वह बात को न उड़ाइएगा।’

‘आप सूचना कीजिए। अच्छा लीजिए, मैं ही सूचना दूँगा। आप मुझे कुछ दूँगे हुए चरखे और उन्हें सुधारने के लिए धुतारी और लालकरी दे दें तो कैसे ? अथवा टेढ़े तकुओं को सुधारने के साधन ला कर दें तो कैसा ? वस, तब तो मैं कभी लिखने पढ़ने का नाम भी न लूँगा। दिन भर तोड़-फोड़ किया कहूँगा।’

‘तो इससे काम न चलेगा। यह तो वही बात है। चरखे तो यों भी आप दिन भर करते ही रहते हैं। और चरखे को मरम्मत करते हुए भी आप वही विचार करते हैं कि विनोद तो कोई नया होना चाहिए।

‘क्या विनोद के कार्य-परिचर्या को ही विनोद बतलाया है। मैं तो नहीं सो देख लीजिए। यदि आप ऐसा ही परिवर्तन करते हैं। मैं लकड़ी की तोड़ फोड़ करके यदि मेज आदि बनाऊँ तो कैसे ? दक्षिण आफ्रिका में वहाँ मैंने छोटी छोटी कैसेस बनाई थीं।

‘तो क्या अच्छा काम ढूँढ लिया ? आप टोपियां बनाइएगा।

‘आप सभी गांधी टोपियां कहलाएंगी और हम उन्हें

‘यह कल्पना तो सुन्दर है। दक्षिण आफ्रिका में

(कपूर बा) मैं चोलियां सीता

नहीं कि वे उसे पसंद आती थीं या नहीं। पर इस बात की गवाह तो वा ज़रूर दे सकती है कि मैं उसके लिए चोलियां सीता था। वस उसी तरह अब टोपियां सीता रहूँगा।’

इस तरह बातचात में खूब विनोद बढ़ गया। सब लोग हँसने लगे और वह सूचना भी हँसी में उड़ गई। पर जो कुछ भी हो, क्या उस दिन हमने इस विनोद के द्वारा कम सेवा की ? क्या यह आश्वासन परिचारकों के लिए किसी प्रकार कम है ?

महादेव हरिभाइ घेसाई

## मद्रास में खादी कार्य

### तीन प्रकार की खादी-प्रवृत्ति

श्री राजगोपालाचार्य तथा उनके कार्यकर्ताओं के साथ हम तमिलनाडु, मलवार, दक्षिण कानडा और मैसूर के प्रदेशों में २३ दिन तक घूमे। इसप्रवास में श्री मंगलोर से श्री गंगाधर रावजी देशपांडे भी हमारे साथ हो गये थे। २३ दिन में २१ छोटे बड़े शहरों के निवासियों से हम मिले और खादी के ६ केंद्रों की जांच की।

इस प्रदेश में जो खादी-कार्य हो रहा है, उसने लोगों के दिल में खादी पर ठीक प्रमाण में विश्वास उत्पन्न कर दिया है। और यहां पैदा होने वाली खादी की जाति तथा तर्ज भी लोगों को रुच गई है। प्रत्येक गांव की खादी-सभाओं में सभी वर्ग के लोग बड़े उत्साह पूर्वक भाग लेते थे, खादी के लिए चंदा इकट्ठा करना भी वे बिना किसी प्रकार के संकोच के स्वीकार करते। राजाजी (राजगोपालाचार्य) का सबसे यह आग्रह था कि आपको (गांधीजी को) निमन्त्रित करने वाले प्रत्येक छोटेसे छोटे गांव को कमसे कम पांच हजार रुपये तो जरूर इकट्ठे करना ही चाहिए। श्री गंगाधर रावजी ने भी अपने प्रान्त में इसी रीति का अनुकरण करने का निश्चय किया है। ये दोनों भाई मिलकर तीन लाख रुपये के लगभग इकट्ठे करने की आशा करते हैं। और यहां की परिस्थिति को देखते हुए हमें पूरी आशा है कि वे इतना चंदा जरूर इकट्ठा कर सकेंगे।

तमिल नाडु में प्रचलित खादी प्रवृत्ति के यों विभाग किये जा सकते हैं।

(१) कांतनेवाला रई खरीद कर पींजे, कांते और जुलाहा कपडा बुने।

(२) कांतनेवाला कपास अपनी घर रक्खे या खरीदे और उसे पील कर पींजे कांते और कपडा मात्र जुलाहे से बनवाए।

(३) कांतनेवाला रई खरीदे, पिंजारे से पिंजवाए और उस सूत की खादी बने।

और घर पर ही कपास को पील-पींज और कांत कर घर काम के लिए बुनाई हुई खादी होती है सो अलूहदा।

कुल तैयार होनेवाली खादी में पहले प्रकार की खादी ज्यादा से ज्यादा तादाद में तैयार होती है। रई का भाव फी रतल ६ आने लगा कर वह कांतनेवाले को दी जाती है। प्रायः रई की कीमत कांतनेवाले के नाम पर लिख ली जाती है। कई कांतनेवालियों से रई की कीमत पेशगी ले ली जाती है और बतौर अमानत के जमा रक्खी जाती है। और सभी कांतनेवालियां यह कर सकें इसलिए यह युक्ति की जाती है कि कताई चुकाते समय, कांतनेवाली की सम्मति से हर चक्कर एक निश्चित रकम काट कर उसे रई की पेशगी कीमत में जमा कर लिया जाता है। कपास की चुनाई और कीमत के अलावा पिंजाई कताई तथा घटी के मिल कर १०-१३ अंक के सूत के फी रतल पांच आने और १४-१६ अंक के सूत के छः आने फी रतल के हिसाब से सूत खरीदा जाता है। प्रत्येक केंद्र पर कांतनेवाली की नामावलि रहती है, और प्रत्येक कांतनेवाले को



उसके नाम तथा क्रमांक का कागज चिपकाया हुआ टिन का एक टुकड़ा दिया जाता है जिस पर रई वगैरा के विषय में और भी तफसील की बातें लिखी होती हैं। यह व्यवस्था उन केन्द्रों में है, जहाँ चरखासंघ की सीधी देखभाल में काम हो रहा है। कांतनेवाले का सूत तभी लिया जाता है जब वह इस टिकट को दिखाता है। परन्तु संघ दूसरी तरह से भी — सूत के व्यापारियों मार्फत — सूत कतवा कर खरीदता है। यहाँ कांतनेवालों की नामावलि रखने की प्रथा नहीं है। परन्तु अब तो यहाँ की शाखा ने सभी स्थानों पर कांतनेवालों की नामावलि रखना स्वीकार कर लिया है।

पहले प्रकार की कताई का काम हमें तीरपुर अधीन के कोनूर गांव और तीरचेनगाड़ के अधीन सेवामापालियम नामक गांव में ले जाकर दिखाया गया। यहाँ की कताई में इस प्रान्त की रई की विशेषता साफ साफ प्रकट हो जाती है। पिंजाई पूरी बनाई, और तकुए में भी न्यूनाधिक परिमाण में अन्य प्रान्तों के समान यहाँ भी कुछ दोष तो जरूर ही दिखाई देते थे। परन्तु सीधे तकुए और अच्छी पिंजाई के फायदे यहाँ के लोगों से छिपे हुए नहीं हैं। वे इस बात पर विचार कर रहे हैं कि इन चीजों को सर्वग्राह्य किस तरह बनाया जाय। हमारे इस दौर के बीच सीधे तकुए और अच्छी पिंजाई के प्रयोगों को देख कर वे इन कामों की सरलता को विशेष रूप से समझ गये हैं। परन्तु आज कल खादी बनाने के काम में कार्यकर्ता इतने कार्यमग्न रहते हैं कि साधनों के सुधार करने की दिशा में उनसे बहुत थोड़ा काम हो सकता है। दूसरे, यहाँ के वर्तमान कार्यकर्ताओं में से अधिकांश लोग इस काम से न्यूनाधिक परिमाण में अनजान भी हैं। हाँ उनमें ऐसे लोग तो जरूर हैं ही, कि जिन्हें इसका शौक है। बस इन उत्साही लोगों के स्थान पर दूसरे जानकारी लोगों को रख कर इन्हें सुधरे हुए साधनों पर काम करने की तालीम दी जाय, तो वे नौसिखों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा काम दे सकेंगे। कांतने वालियों के साधनों को सुधारने वालों के लिए सुधरे हुए साधनों से काम लेना जान लेना जितना जरूरी है उतना ही यह जान लेना भी जरूरी है कि पुराने साधनों द्वारा खादी कैसे बनाई जाती है तथा लोक स्वभाव का अनुसरण करके लोगों से काम कैसे लिया जाय।

दूसरे प्रकार की कताई हमने राजापालियम नामक गांव में जाकर देखी। यहाँ संघ का केन्द्र नहीं है। परन्तु दो खानगी व्यापारी संघ की देख-भाल में यहाँ खादी का काम करते हैं। इस गांव में प्रायः सभी कांतनेवाले अपने घर की कपास ही रखते हैं। जिनके यहाँ कपास नहीं होती उन मजदूरों को यहाँ उनकी मजदूरी कपास के रूप में देने का रिवाज है। इसलिए यह वर्ग उसी कपास से अपना सूत कातता है। जिनके पास इन दोनों तरह से कपास नहीं आती वे फी रतल दो आने के हिसाब से कपास खरीद कर उसका सूत कातते हैं। पीलना पीजना और कताई ये तीनों काम यहाँ कांतने वाले ही करते हैं। यहाँ सूत वजन के अनुसार नहीं लम्बाई के अनुसार खरीदा जाता है। ८४० गज का एक आना इस हिसाब से कांतने वाले को कताई दी जाती है। और कांतने वाला मिल के सूत की आंटियों के समान तार गिनकर आंटियाँ बनाता है। इस कारण यहाँ का सूत तामिलनाड के अन्य सभी केन्द्रों की अपेक्षा अधिक महीन होता है। कांतनेवालों २० से लेकर ५० अंक तक का सूत कातती हैं। वह जितना ही महीन सूत कातती है उसी परिमाण में उसे पिंजाई और रई की कीमत की भत्त होती है। यहाँ २० " और २७ " व्यास के चरखे चलाये जाते हैं।

यहाँ की कांतनेवाली ने २७ इंच व्यास वाले चरखे पर १८ अंक का ६३ समानता युक्त और ४५ मजबूती वाला सूत फी घंटे २८५ गज की गति से कात कर दिखाया। अधिक लम्बा कांतने की गति से यहाँ के कांतनेवाले लोग रई अच्छी तरह पीज लेते हैं। पूरी भी अच्छी बनाते और उसे हिकाजत से रखते हैं। यह केन्द्र तामिलनाड के लिए महीन सूत की थोतियाँ, साडियाँ, तथा पटके (साफे) बनाते हैं और उनके इस माल की जहाँ तहाँ तारोफ भी होती है। हमेशा कपड़े की मांग तो बनी ही रहती है। लम्बाई के अनुसार सूत कांतने की इस पद्धति के कारण प्रत्येक अंक का सूत अलग अलग कर के बुनने वाले को दिये जा सकता है। इसलिए उसका काम भी एकसा और सुन्दर बुना जा सकता है। यह सभी विशेषताओं की सुन्दरता होने पर भी यहाँ अभी सुधार के लिए भी काफी अवकाश है। क्योंकि यहाँ के कार्यालयों को समान बुनाई के लिए मिल की अपेक्षा दो बल्कि ढाई गुनी बुनाई भी देना पड़ती है।

इस प्रदेश में तांत बेल की आंतों की बुनाई जाती है। दो तारों की तांत भी बकरे की आंत के आठ तारों की तांत इतनी मोटी हो जाती है। यहाँ जिन धनुष्यों का उपयोग किया जा रहा है, उनके लिए यह तांत आवश्यकता से अधिक मोटी हो जा सकती है। इस लिए कांतने वाली को इससे पीजने में भी ज्यादा पड़ती है, और पिंजाई भी ठीक नहीं होती। मेरे यहाँ का उपयोग करने में यहाँ की कांतनेवाली को जरा भी कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि धनुष्य की तो वह स्वयं ही माता थी, जो उससे खुद पीज कर वह तांत के फर्क को भी पौरन समझ ले। मेरा तांत का बंडल सब बहनों ने आपस में बांट लिया।

### दो अंधी कांतने वालियाँ

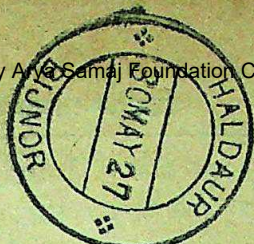
यहाँ ८५ वर्ष की कांतने वाली अंधी माता के मुँह से इसके लिए आवश्यक पूनियाँ यहाँ की बहनें बना कर दे देती हैं। रई देने वाला भी कोई न कोई माँई का लाल मिल ही जाता है। यह माता प्रतिदिन १८० गज की दो आंटियाँ कात कर बने दो आने रोज कमाती है। इसी प्रकार की एक अंधी किन्तु बहान को हमने राजाजी के सेवा पालियम गांव में चरखा चलाते देखा। अंधी बेटी कांतती जाती थी और उसका बुद्ध पिता हुआ सूत को अटेरन पर निकालता जाता था। राजापालियम में वरदाचारी भी मेरे साथ थे। राजापालियम की बहनें तो सहोदर की अपेक्षा भी इस भाई का स्वागत अधिक प्रसन्नतापूर्वक करती जाती हैं। एक वृद्ध माता अपने टूटे फूटे झोंपड़े में चरखा चलाते देखते ही बुलाने लगी—अरे ओ भैया, इतने दिन से तू क्या था? आ बैठ, अच्छा तो है न भैया? चरखे के कारण इस की जनता में जो सद्भाव और भाईचारा बढ़ता जा रहा है, तो यह केवल एक उदाहरण मात्र है। ऐसे तो कई उदाहरण मिल जाते हैं। यदि राजापालियम में किसान रई को बेच दे तो उसे रत्तल पांच आने मिलेंगे, वह अपने फुरसत के समय में सूत कात कर फी रत्तल बारह आने से लगा कर तीन रुपये तक दाम कमाता है।

तीसरे तरह की कताई अर्थात् पिंजारे की बनाई कताई कलाकूरची गांव में होती है। यह केन्द्र संघ की ओर चलाया जा रहा है। परन्तु जैसा कि राजापालियम में किया है, सूत तो ८४० गज का एक आने के हिसाब से खरीदा जाता है। लम्बाई के अनुसार सूत बेचने की प्रथा यहाँ का सूत भी २० अंक तक का होता है। परन्तु सूत की बनाई हुई होने के कारण सूत अधिक महीन और साफ बनता है।



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का " २)  
एक प्रति का " १)

अत्यंत असंतोषजनक



# हिन्दी नवजावन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४१ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, जैष्ठ कृष्ण १० संवत् १९८४  
गुरुवार, २६ मई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारांगपुर सरकीगरा की वाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४  
अध्याय २

### एशियाई नवाबशाही

एक नवीन विभाग के अधिकारियों की समझ में नहीं आया कि ट्रान्सवाल में किस तरह प्रवेश पा सका। उन्होंने उनके पास जाने वाले भारतीयों से पूछताछ की। पर बेचारे वे क्या कहें? तब अधिकारियों ने अनुमान कर लिया कि मैं अपने परिचय के बल पर बिना ही परवाना लिये ट्रान्सवाल में घुस गया। और यदि ऐसा हो तो मैं कैद किया जा सकता हूं। हाफ़क महान युद्ध के बाद, राज्यकर्ताओं को कुछ समय के लिए अधिकार दे दिये जाते हैं। वही दक्षिण आफ्रिका में भी हुआ। वहां शान्ति-रक्षा का कानून बना दिया गया था। उसमें एक धारा थी कि बिना परवाना लिये ट्रान्सवाल में प्रवेश करने-लेख को गिरफ्तार कर के कैद रक्खा जाय। अधिकारियों में यह बात पर सलाह मशविरा होने लगा कि इसी धारा के आधार पर मेरी गिरफ्तार कर लिया जाय। पर मुझसे परवाना मांगने की हिम्मत किसी को नहीं हुई।

इस बात पर मेज कर उन्होंने तहकीकात भी की थी। अतः मुझे जब उन्हें यह खबर मिली कि मैं तो परवाना ले चुका हूं, तो वे बड़े निराश से हो गये।

पर इस विभाग में काम करनेवाले अधिकारी इतने कम हिम्मतवाले थे जो इस छोटीसी निराशा से ही हार जायें। मैं आ गया था ही। पर अब वे यह कोशिश कर सकते थे कि मैं चेम्बरलेन को मिल ही न पाऊं।

इसलिए सबसे पहले शिष्ट-मंडल के सभ्यों की नामावलि मांगी गई। दक्षिण आफ्रिका में वर्ण-विद्वेष का अनुभव तो जहां तहां होता ही था। पर यहां तो भारत की जैसी गंदगी और गडबड-घुटाले की भी कमी नहीं थी। दक्षिण आफ्रिका के साधारण विभाग जनता के झुल्ल से संचालित किये जाते हैं। इसलिए अधिकारियों में एक प्रकार की सरलता और नम्रता भी होती थी। इसका फल कुछ अंशों से काले और पीले चमड़ीवाले लोगों को भी कभी मिल जाता था। किन्तु जब नवीन एशियाई नवाबशाही वहां प्रवेश हुआ, तब ठीक वहां के जैसी जोहकमी,

भ्रष्टाचार आदि गंदगी भी वहां घुस गई। दक्षिण आफ्रिका में तो एक तरह से प्रजा-सत्ताक राज्य-पद्धति थी। तहां एशिया से प्रत्यक्ष नवाब शाही का आगमन हुआ था। क्योंकि वहां प्रजा की सत्ता नहीं प्रजा पर सत्ता का अमल होता था। दक्षिण आफ्रिका में गोरे अपना घरबार ले कर बैठे थे इसलिए वे तो वहां की प्रजा ही ठहरे। अतः वहां के अधिकारी भी उनकी मुठ्ठी में थे, तिस पर उनमें शामिल हो गये एशिया से आये हुए निरंकुश अधिकारी भी। फिर क्या पृष्ठना था? बेचारे भारतीयों की दशा हो गई ठीक सरौते के बीच में सुपारी की सी।

और इस संयुक्त सत्ता का मुझे भी खासा अनुभव हुआ। पहले पहल तो इस विभाग के मुख्य अधिकारी ने मुझे बुलवाया। साहब लंका से तशरीफ लाये थे। 'बुलवाया' इस प्रयोग में शायद कुछ अत्युक्ति का आभास होगा। इसलिए जरा इस बात को अधिक स्पष्ट कर दूं। मुझे उन्होंने कोई चिट्ठी वगैरा भेज कर नहीं बुलाया था। भारतीयों में से जो अगुआ थे उनका तो वहां जाना आना हमेशा बना ही रहता था। उन्हींमें स्वर्गीय सेठ तैयब हाजी खानमहमद भी थे। उन्हें इन साहब ने पूछा:

‘गांधी कौन हैं, वे यहां कैसे आये हैं? तैयब सेठ ने जवाब दिया ‘वे हमारे सलाहकार हैं, उन्हें हमने बुलवाया है।’

‘तो हम सब यहां किस मज की दवा हैं?’ क्या हम आपकी रक्षा करने के लिए नहीं हैं। गांधी यहां की परिस्थिति को क्या जाने?’ साहब बोले।

जैसे तैसे तैयब सेठ ने इस प्रहार का भी जवाब दिया ‘आप तो हई हैं, पर गांधी तो हमारे अपने आदमी हैं न! वे हमारी भाषा जानते हैं, हमारी बात को, हमारे पहलू को समझते हैं। आप तो आखिर अधिकारी ही ठहरे।’

साहब ने हुक्म दिया ‘जरा गांधी को मेरे पास ले आइएगा।’ तैयब सेठ आदि के साथ मैं साहब के पास पहुंचा। मैंने देखा कि हम सब को खडा ही रक्खा गया। मेरी ओर आंख उठा कर साहब ने पूछा ‘कहिए, आप यहां कैसे तशरीफ लाये हैं?’

मैंने उत्तर दिया ‘मेरे भाईयों के बुलाने पर उन्हें सलाह-मशविरा देने के लिए आया हूं।’

पर क्या आप नहीं जानते हैं कि आपको यहां आने का कोई हक नहीं है? आपको परवाना तो भूल से दे दिया गया है। आप यहां



के निवासी नहीं समझे जा सकते। आपको लौट जाना होगा। नेम्बोल्लेन से भी आप नहीं मिल सकते। यह हमारा नया विभाग महज यहां के भारतीयों की रक्षा के लिए ही तो खोला गया है। अच्छा आप जाइए।

यह कह कर साहब ने मुझे विदा कर दिया। जवाब तक देने के लिए मौका नहीं दिया।

पर मेरे साथियों को इन्होंने रोक लिया और उन्हें डांट-डपट कर मुझे ट्रान्सवाल से विदा करने की सलाह दे कर, उन्हें भी विदा कर दिया। बेचारे छोटा सा मुँह लेकर मेरे पास बाहर आये।

इस तरह हमारे सामने ऐन वक्त पर एक नवीन समस्या खड़ी हो गई जिसकी हमने स्वप्न में भी अपेक्षा नहीं की थी।

मोहनदास करमचंद गांधी

## भाफ से भी अधिक शक्तिशाली

‘और यह मेरा हाथ काम के लिए तैयार है, जो परिश्रम की कठोर पाठशाला में काफी शिक्षा और कौशल प्राप्त कर चुका है।

मैं भिक्षा नहीं चाहता, काम बताइए। मेरे पास हाथ, पैर, शक्ति और काम करने के सभी साधन हैं। भिक्षा की क्या जरूरत है ?

— ‘थॉम्स हूड’

“गांधी तो करीब करीब अवतार ही है, क्यों नहीं ? जरा उनके बारे में कुछ कहिए तो ! क्या वह सचमुच एक महान् आत्मा नहीं है, जिस पर सुख, दुःख, जय, और अपजय आदि का कोई असर ही नहीं होता ?” बात चीत की शुरुआत यों हुई। मैं चुप रहा। इस बातचीत को वन्ध्या भ्रष्टा के मार्ग से हटा कर मैं उपयोगिता की पगडंडी पर खाना चाहता था। मेरे मित्र राज्य के उच्चाधिकारी थे। सरकारी नौकर होने पर भी वे भारतीय थे और देशभक्त भारतीय थे। वे बहुत कुछ कर सकते थे। बस देर थी तो गरीबों की सहायता के लिए दौड़ पड़ने की गांधीजी की पुकार की सत्यता को समझ लेने की।

“उन गरीबों की सहायता की पुकार को, जो रोटी के बाजार में से भूखे पेट निकलते थे, दूध के खजाने के पास से होकर प्यासे ही गुजरते थे और रेशम, ऊन तथा कपास के बने सुंदर सुंदर कपड़े के भंडारों के पास से होकर भी जो नंगे गुजरते थे।”

मेरे मित्र ने फिर कहा, वे सचमुच महात्मा हैं, परन्तु मेरा ख्याल है, उनकी शक्ति व्यर्थ बरबाद हो रही है।

‘बताइए, आपकी क्या मन्था है, उन्हें राजनीति में कैसे नेतृत्व करना चाहिए ?’ मैंने पूछा।

‘एक असंभव बात को ले बैठने के बजाय यदि वे अपने विशाल प्रभाव का उपयोग मिलों का संगठन करने में लगा देते तो, ओफ़, कितना फायदा होता ?’

मामूली सुस्के की बनिस्बत सचमुच इस में कुछ विशेषता तो थी। गांधीजी मिल के मेनेजर बन जायें ! हर एक आदमी गांधी को चाहता है। परन्तु वह गांधीजी के सिद्धान्तों को नहीं चाहता। लोगों को सिर्फ सिद्धान्तहीन गांधी की जरूरत है। राजनीतिज्ञ चाहते हैं कि गांधीजी पुनः देश के राजनैतिक नेतृत्व को ग्रहण करें, पर सत्य पर जोर देने की अपनी आदत को छोड़ दें। ‘अति’ सत्य किस काम का ! समाज-सत्तावादी चाहते हैं कि वे राजनैतिक उद्देश्यों को ले कर मजदूरों को संगठित करें। पर उनकी अहिंसा इन लोगों की समझ में नहीं आती। उसे गांधीजी छोड़ दें। अब की बार मिल-मालिकों की तरफ से उनके मैनेजिंग डायरेक्टरी ग्रहण करने के लिए प्रस्ताव आया। वे बरखे को थलगा रख दें। और इस काम को हाथों में ले लें। गांधीजी के विशाल प्रभाव के कारण सब उन्हें अपनी अपनी ओर

खींचना चाहते हैं। पर जरा ठिठक कर वे यह नहीं सोचना चाहते कि इस प्रभाव का रहस्य क्या है ? वे उन्हें चाहते हैं, उनके आत्मा को नहीं। पर वे यह ख्याल नहीं करते कि आत्माहीन गांधी उनके लिए किसी काम का नहीं होगा। फिर तो उन्हें का सा हो जायगा, न अच्छा न बुरा, खैर।

‘कैसे, जरा समझाइए ?’ मैंने पूछा।

‘क्यों ? वे पहले धनिकों का संगठन कर लें, मिल की उपाय को बड़ा दें। और विदेशी माल को देश के बाजारों से हटवा दें बस, इससे अपने आप देश की सम्पत्ति बात की बात में बढ़ जायगी। उस अधिकारी मित्र ने उमंग के साथ जवाब दिया, मानो उसकी आंखों में भावी आशा का प्रकाशमान चित्र खिंच गया हो, मानो भारत धीरे-धीरे हो गया और उसने व्यापारी प्रतियोगिता में इंग्लैंड को हरा दिया हो, इंग्लैंड कुचल दिया गया हो और अब मानो वह भारत के सामने खड़ा बन कर सुलह की प्रार्थना कर रहा हो, और भारत ऐंड कर गर्वपूर्वक अपनी कड़ी शर्तें लिखाता जा रहा हो।

और मानो मुझे दलील के अंतिम नतीजे पर ले जाने की इच्छा से दूसरे मित्र ने कहा ‘सच तो है, चाहे हम शान्तिमय क्रांति को या लाचार हो हिंसा-मय क्रांति करें, धन की तो हमें सबसे पहले जरूरत होगी। विना-धन के क्या कभी युद्ध हा सकता है ?’

‘ठीक है, मैं मानता हूँ,’ मैंने कुबुल करते हुए कहा। मेरे मित्र आगे बढ़े : ‘इस भयंकर गरीबी से हम जितना ही जल्दी देश का छुटकारा करावेंगे, बस, स्वाधीनता उतनी ही नजदीक आएगी। क्यों ठीक है न ? यानी, औद्योगिक प्रगति से और धन को खूब इकट्ठा करने से हमारा बड़ा फायदा होगा।’

‘देश में धन का बढ़ जाना और देश का धनवान हो जाना तो खुदी बातें हैं। सारी संपत्ति तो राष्ट्रीय संपत्ति नहीं है न ? मैं इस ठेठे मेढे और अर्थ-गर्भ जवाब को सुन कर सब हंस दिये। ‘हमारी मुक्ति की राह में सबसे पहला बिघ्न कौनसा है ?’ मैंने पूछा और जवाब के लिए विना ही ठहरे आगे बढ़ा—‘सच्ची देशभक्ति का अभाव या न्यूनता, अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो हमारा सम्पत्ति जो हम शासकों से कर रहे हैं।’

इस पहलू पर पिछली रात में काफी बहस हो चुकी थी। और कम से कम इन मित्रों में से एक तो ‘विदेशियों के शासन को इस सफलता के विषय में मुझसे पूरी तरह सहमत हो गये थे। इसलिए उन्होंने इस बातचीत में भी सिर हिला कर मेरी बात को मानते हुए आगे बढ़ने के लिए मुझे इशारा किया।

मैं बड़ा ‘देश की संपत्ति बढ़ने से आपके क्या मानी हैं ?’ वहीं न कि कल-कारखानों के सुसंगठित होते ही उनमें अधिक अन्न और बड़े वैमान पर माल पैदा होने लग जायगा, और इससे देश की संपत्ति बढ़ जायगी, पर इसके तो मानी ये हुए कि कारखानों के मालिकों के खजाने भर जावेंगे।

‘जी हाँ, और इसमें हानि भी क्या है ? ज्यों ही धनिक लोग देश की स्वाधीनता की आवश्यकता को सहजसूझ करने लग जावेंगे त्यों ही वह धन हमें मिल सकेगा।’

‘पर ख्याल कीजिए कि करोड़पति के खजाने को बढ़ानेवाला हर एक रुपया गरीब की जेब से आता है। और इस तरह दिन ब दिन हम उसे अधिक गरीब और भूखा बनाते रहते हैं। यदि करोड़पति के कारखानों के कारण कुछ लोगों को—एक नगण्य संख्या को—रोजी मिलती है, तो दूसरी ओर वे कारखाने हजारों दूसरे आदमियों की रोजी छीन कर उन्हें गरीब और बेकार बना देते हैं।

‘हाँ, आप सच कहते हैं।’ वे दूसरे मित्र बोले, जो कि श्रमिणी जीवन को देख चुके थे। पर पहले मित्र की समझ में था



१९२७

१९२७

नहीं सोचते  
चाहते हैं, उनके  
कि आसानी  
र तो वह ठीक

मिल की उप  
हों से हट्या दे  
में वड जायगी  
उसकी आंखों

तो भारत श्री  
रा दिया हो, म  
त के सामने क  
ऐठ कर गर्वपूर्व

जाने की इच्छा  
मय कान्ति को  
हमें सबसे पू  
कता है ?

हुए कहा। मे  
तना ही ज  
जदीक आप  
न को खूब ह

न हो जाना  
हैं न ?  
हंस दिये।  
ता है ? मैं

‘सच्ची देशभक्ति  
हो हमारा सहयोग

चुकी थी। और  
के शासन को  
त हो गये थे।  
मेरी बात को

मानी हैं ? यह  
अधिक अच्छा  
र इससे क  
कि कारखानों

धनिक लोग देख  
जावेंगे त्यों ही

बढानेवाला ह  
दिन व दिन  
यदि करोड़ों

या को—तो  
आदमियों की

बोले, जो कि  
समझ में न

‘पर साहब, संसार में निरी भावुकता से काम नहीं चलता ।  
वहां तो अर्थशास्त्र शासन करता है ।’

‘पर साहब, संसार में निरी भावुकता से काम नहीं चलता ।  
वहां तो अर्थशास्त्र शासन करता है ।’

‘क्या आप ब्राह्मण होने के कारण मांस-त्याग नहीं कर रहे हैं,  
जब कि गोमांस अधिक सस्ता और पोषक है ? क्या यह अर्थशास्त्र  
है ? आप तो बारहवें वर्ष में ही अपनी लड़की की शादी कर देते हैं !  
क्या यह अकर्मन्दी है ? क्या आपको रुढ़ी के सामने सिर नहीं  
झुकाना पड़ता, फिर वह भली हो या बुरी ? आप कितने ही निकम्मे  
कार्यों में, गरीब रिश्तेदारों के लिए, तथा ऐसी कितनी ही बातों में  
पैसा खर्च नहीं कर डालते ? बताइए यह अर्थशास्त्र है या भावुकता ?  
आप क्यों सोचते हैं कि हमें जन साधारण की देशभक्ति  
पर निर्भर नहीं रहना चाहिए ? जब कि सारे संसार में वह एक  
महान् शक्तिदायक भाव है ।

अब बातचीत का रुख तफसील की ओर घुमा । चरखे से  
आदमी को अधिक से अधिक आय क्या हो सकती है ? उसके  
लिए उसे कितने धंटे चरखा चलाना पड़ता है ? मेरे केन्द्र द्वारा  
कितने गांवों की सेवा हो रही है ? वे केन्द्र से कितनी दूरी पर है  
इत्यादि इत्यादि । उन्हें बड़ी दिलचस्पी हो गई ।

मैंने कहा ‘एक बार आकर अपनी आंखों देख लीजिए न कि  
चरखे में कितनी शक्ति है । जब आप उन किसानों के गूंजते हुए  
चरखों को देखेंगे, उनकी थोड़ी सी किन्तु सन्तोषप्रद आय पर  
विचार करेंगे, उन स्त्रियों की आशा से चमकती हुई आंखों को  
देखेंगे, तब आपको इस आन्दोलन की सच्ची उपयोगिता का पता  
लगेगा । प्रत्यक्ष अपनी आंखों देखने से जो फायदा होता है  
बातचीत से उससे आधा भी नहीं होता ।’

‘ठीक है, हम जरूर आवेंगे । पूरे एक सप्ताह की ही सैर क्यों  
न करें ? सब अपनी आंखों देख लेंगे ।’

‘और क्या ही अच्छा हो यदि सभी भले और बुद्धिमान लोग  
उन करोड़ों गहरी आंखों को देख लें जिनमें चरखे ने एक स्वर्गीय  
ज्योति जगा दी है ।’

थामस हूड की आत्मा इस थोड़ी सी स्वतंत्रता को क्षमा करेंगी  
जो मैंने उनकी कविता के साथ यहां ली है । जिन भाई बहनों के लिए  
उन्होंने ये पंक्तियां लिखी थीं वे भी हमारे उन्हीं देश-भाइयों और  
बहनों के से थे, जिनके लिए गांधीजी सोते-जागते भली और  
बीमारी की हालत में भी एकसा परिश्रम करते रहते हैं ।

‘क्योंकि सब मनुष्य भाई भाई हैं । फिर वे काले हों या गोरे ।  
वर्ण और रंग तो प्रकृति की योजना है । पर उन सब के खून में  
है वही शक्ति जो भाफ से भी अधिक शक्तिशाली है ।’

( यं इं० )

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुकरणीय

जावरा राज्य रंगाई और छपाई के लिए मशहूर है । मुझे मालूम  
हुआ है कि जावरा के नवाब साहब खादी के आन्दोलन में  
दिलचस्पी रखते हैं । और अब तो छपाई रंगाई द्वारा खादी को अधिक  
आकर्षक बना कर खादी हलचल को उत्साहित करने की गरज से  
उन्होंने खादी को सब प्रकार के कर्तों से मुक्त कर दिया है । इस  
प्रशंसनीय कार्य के लिए मैं जावरा राज्य को धन्यवाद देता हूं ; और  
आशा करता हूं कि अन्य राज्य भी इस महान और दिनबदिन  
बढनेवाले राष्ट्रीय उद्यम के साथ, प्रेमभरा व्यवहार करेंगे, जो भारत  
के करोड़ों भूखों मरनेवाले गरीबों के लिए असीम फायदेमन्द हो  
सकता है ।

‘मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जेष्ठ कृष्णा १० संवत् १९८४

## अत्यंत असंतोषजनक

मैं चाहता हूँ कि मैं श्रीयुत सुभाषचंद्र बास की रिहाई पर बंगाल की सरकार को धन्यवाद दे सकता। पर रिहाई की मंजूरी इसलिए नहीं दी गई कि लोकमत ने उसकी मांग की थी, इसलिए भी नहीं कि कलकत्ता कॉपोरेशन के चीफ ऑफीसर को सरकार ने निर्दोष समझ लिया, और न इसलिए भी कि सुभाष बाबू उस जुर्म के लिए सरकार की इच्छानुसार काफी सजा भुगत चुके जिसका न तो स्वयं सुभाष बाबू को और न जनता को ज्ञान है। बल्कि रिहाई की मंजूरी तो इसलिए दी गई कि स्वयं सरकार के मेडिकल ऑफिसर की राय में वह महान् कैदी बहुत बीमार समझा गया—इतना बीमार कि उसके जीने के विषय में उसे भय होने लग गया। अगर सुभाषचंद्र बोस समाज अथवा किसी खास शास्त्र की जान के लिए एक खतरनाक आदमी है, और अगर वे निश्चय के दृढ़ भी हैं, जैसा कि लोगों का ख्याल है, और स्वयं सरकार का भी विश्वास है, तो वे इतने अधिक बीमार होने पर आज भी किसी प्रकार कम खतरनाक नहीं हो गये हैं! फिर सरकार उनको जेल में मरने देने से क्यों डर गई? सचमुच उसकी यह कोई आदत तो हुई नहीं जो वह हरएक ज्यादह बीमार हो जानेवाले कैदी को छोड़ देती हो। और अगर उन्हें उनकी बीमारी के कारण ही छोड़ना ठीक समझा गया है, तो उन्हें उसी समय क्यों नहीं छोड़ दिया गया, जब उनके शरीर में पहले पहल ही क्षयरोग के चिह्न दिखाई दिये थे? अखबारों में उनकी चिंताजनक बीमारी की खबरें तो कई दिन से छपती आ रही हैं। स्वयं कैदी के भाई ने भी सरकार को बार बार सुभाषबाबू की बीमारी के विषय में चेतावनी दी है।

मैं तो यह कहने का साहस करता हूँ कि इस तरह एक मरणोन्मुख आदमी को उसके रिश्तेदारों को किसी तरह लौटा देना और उसकी मृत्यु के अपराध से हाथ धो लेना कायरता है। यह रिहाई हमें बंगाल के उन कैदियों के प्रश्न को हल करने में जरा भी सहायता नहीं करती जो विना जांच के कैद-कर लिये गये थे और जिन्हें सरकार ने ख्वाह मख्वाह इस लिए अनियमित समय के लिए जेल में बंद रखा है कि वह उन पर संदेह करना चाहती है। बंगाल रेज्यूकेशन भी अभी ज्यों का त्यों सुरक्षित है। अब उन कैदियों को भी जेल में सबूत रहना पड़ेगा जिनकी तविधतें भी हम ज्यादह बिगड़ी हुई हैं। बल्कि अब तो वे उनकी रिहाई के आन्दोलन की शक्ति से समी वंचित हो गये जो काफी जोरदार था। क्योंकि अब तक उनके साथ एक शक्तिशाली पुरुष था। यों तो निःसंदेह किसी न किसी प्रकार का आन्दोलन उनकी रिहाई के लिए अब भी होता ही रहेगा। परन्तु मुझे डर है कि वह काफी शक्तिशाली न होगा। बात यह है कि भारतीय स्वभाव छोटी से छोटी दया से भी कृतज्ञ होता है। वह झट से संतुष्ट हो जाता है। सुभाष बाबू की रिहाई में प्रकृति का हाथ था। पर लोग संभवतः इसके मानी यह प्रसन्न होंगे कि सरकार झुक गई, और सुभाष बाबू की रिहाई का आग्रह करते हुए वे सरकार को दूसरे कैदियों को कैद रखने के अपराध के लिए क्षमा कर देंगे।

अब यह लोग इसे निर्दयता कहें, परन्तु मैं तो ऐसी रिहाई की निश्चय नहीं ज्यादा पसन्द करूँगा कि रिहाई न होना ही अच्छा

है। इससे तो समस्या और भी ज्यादा उलझ जाती है और तब उसे सुलझाना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि इन कैदियों की रिहाई के प्रश्न की जड़ में नागरिकों की स्वाधीनता के साथ साथ महज गैर जिम्मेदार सरकारों द्वारा जनता के जीवन पर असाधारण अधिकार धारण कर लेने का जटिल सवाल भी तो मिला हुआ है। इस दुःखद बुराई में भी अगर जनता कोई भलाई ढूँढना चाहे तो उसे एक अच्छी बात जरूर मिल जायगी। और वह यही कि उनकी रिहाई के लिए सरकार द्वारा बार बार जो अपमान भरी शर्तें रखी गई, सुभाष बाबू आखिर तक उन सबको मानने से बराबर इनकार करते रहे। अब हमें आशा और प्रार्थना करनी चाहिए कि परमात्मा उन्हें शीघ्र ही नीरोग कर के चिर काल तक अपने देश की सेवा करने का मौका दें।

मोहनदास करमचंद गांधी

## भारतीय "मनुष्यता" के प्रति

अन्यत्र श्री किशोरलाल मथुवाला के नवजीवन में प्रकाशित लेख का सार दिया गया है। वे एक पुराने कार्यकर्ता हैं, और अभी अभी तक गुजरात विद्यापीठ के महामात्र [रजिस्ट्रार] थे। किन्तु बीमारी के कारण उन्हें उस पद का त्याग करना पड़ा है। भारत में चुपचाप काम करने वाले कार्यकर्ताओं में से वे एक अत्यंत विचारशील पुरुष हैं। हरएक शब्द को वे तौल तौल कर लिखते और बोलते भी हैं। मैं उनके गुणों का उल्लेख यहां पर इस गरज से कर रहा हूँ कि मैं चाहता हूँ कि पाठक उनके लेख को पढ़ कर भुला न दें, जैसा कि आजकल हमें कई लेखों को करना पड़ता है। रानीपरज की गरीब स्त्रियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार की बात हमारे देश के सिर पर एक कलंक का टीका है। श्री किशोरलाल मथुवाला ने इस बुराई को दूर करने के लिए पारसियों से अपील किया है, और उनके विचारानुसार यह ठीक भी है। क्योंकि यदि निर्दोष स्त्रियों को बिगाड़ने के दोषभाजी इन पारसी आदमियों पर कोई कुछ प्रभाव डाल सकता है तो वह केवल पारसी जाति ही है। परन्तु मुझे दुःख पूर्वक कहना पड़ता है कि गरीब बहनों की आवरू को इतनी सस्ती समझनेवाले केवल पारसी ही नहीं हैं। दूसरे धर्मों का अवलम्बन करनेवाले भारतीय भी ऐसी परिस्थिति में इसी तरह का व्यवहार करते हुए पाये गये हैं, जैसे कि इन शराब बेचनेवाले पारसियों के विषय में शिकायत की गई है। परन्तु इससे उन पारसियों के इन अमानुष अत्याचारों का कोई समर्थन नहीं कर सकता। पैसे का लोभ उन्हें ऐसे व्यापार की ओर ले जा रहा है जो, वे जानते हैं, इस पहाड़ी प्रदेश के निवासियों के पौरुष को नष्ट करता है, जिन्हें व्यर्थ ही कालीपरज (काली प्रजा) कहा जाता है। और वही पैसे का लोभ आगे चल कर उन्हें इन गरीब स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करने के महान् अपराध में भी प्रवृत्त करता है। पर श्री मथुवाला ने जो दुःखद कथा हमें कही है उसके लिए तो ब्रिटिश सरकार अथवा यों कहें कि भारत सरकार और बड़ौदा राज्य जिम्मेदार हैं। क्योंकि इसकी जड़ में वे ही हैं। वे ही उस बुरी कमाई के धन के लिए इन सीधे सादे लोगों के बीच शराब की दुकानें खोलने या रहने देते हैं। इन बेचारों ने इन सरकारों से कभी नहीं कहा था कि हमारे यहां शराब की दुकानें खुलवा दीजिए। और यदि कहा भी हो तो उनकी बात को मान कर शराब की दुकानें खुलवा देना तो और भी बड़ा गुनाह है, जैसा कि आग से खेलने की इच्छा रखनेवाले बच्चे के हाथ में आग दे देना है। परन्तु एक सुधारक कार्य शुरू करने के पहले उपदेश देने और सोने की तराजू ले कर दोष का बंटवारा करने को नहीं बैठता। जब कहीं और जहां कहीं उसे मौका मिलता है, वह अपना काम (सुधार) शुरू कर ही देता है। और चूंकि अब बुराई प्रकट हो



१९२७

और तब इन कैदियों के साथ पर असा-मिला हुआ चाहे तो कि उनकी शर्तें रखी पर इनकार के परमात्मा ने देश की रक्षा के लिए गांधी प्रकाशित हैं, और थे। किन्तु भारत में अन्त विचार-लेखते और गरज से पढ़ कर पड़ता है। सिंचार की किशोरलाल पील किया दि निर्दोष कोई कुछ । परन्तु को इतनी अवलम्बन वृद्ध करते विषय में अमानुष शोभ उन्हें शोभ प्रदेश हालीपरज भ आगे के महान को दुःखद कहें कि उनकी जड़ सीधे सादे हैं। इन शराब की बात को सुना है, में आग उपदेश को नहीं इ अन्त

प्रकाशित हैं, और थे। किन्तु भारत में अन्त विचार-लेखते और गरज से पढ़ कर पड़ता है। सिंचार की किशोरलाल पील किया दि निर्दोष कोई कुछ । परन्तु को इतनी अवलम्बन वृद्ध करते विषय में अमानुष शोभ उन्हें शोभ प्रदेश हालीपरज भ आगे के महान को दुःखद कहें कि उनकी जड़ सीधे सादे हैं। इन शराब की बात को सुना है, में आग उपदेश को नहीं इ अन्त

मोहनदास करमचंद गांधी  
एक दुःख दायक चित्र  
किशोरलाल मधुवाला ने रानीपरज के प्रदेश के दो चित्र दिये हैं। उनमें से एक दुःखदायक है, और दूसरा इस अंक में केवल पहला चित्र ही दिया गया है।  
यह चित्र रानीपरज परिषद ने जिस समिति को नियुक्त किया था उसका नाम आखिरी सप्ताह में अपनी जांच का काम था। वह अपने काम के लिए निकली तो भेरी विनन्ति के साथ मुझे भी उसके साथ घूमने की इजाजत दे दी।  
मैंने अपने विचार भी वह यथा समय अपनी जांच का समय पेश करेगी। इसलिए उस विषय में मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है। अपनी मुसाफिरी में मैंने जो दो चित्र केवल उन्हीं को नवजीवन के पाठकों के सामने रखना चाहता हूँ, यह करते हुए समिति के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं होगा।  
वह पारसी कौम को कलंकित करने और ताड़ी के विषय में नहीं लिख रहा हूँ, जो कि मेरी नीतिनाश की ओर प्रशंसा तो जरा विशाल है? और यह प्रश्न तो जरा विशाल होता है। इसलिए इस चित्र को भी समावेश नहीं होता है। इसलिए इस चित्र को भी अधिक अधिकार युक्त वाणी में कह सकेंगी।

मैं यहाँ पर इस विषय की भी चर्चा नहीं करूँगा कि यह आर्थिक दृष्टिसे भी कलाओं के लिए कहां तक लाभदायक है।

दूर, दूर गहरे जंगलों के गांधों में भी पारसी भाई अकेले ही शराब की दूकानें खोलने के लिए पहुंच गये हैं। यह बात उनकी साहसिकता को प्रकट करती है। मेरा ख्याल था कि सिवा धनलोभ के अधिक गहरी अनीति इस एकान्तवास की जड़ में नहीं होगी। परन्तु जब मुझे यह मालूम हुआ कि यहाँ रहने वाले पारसी रानीपरज की स्त्रियों के साथ व्यभिचारी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब मेरे हृदय पर आघात पहुंचा। एक शराबवाला यह बात कुछ गर्वपूर्वक कहने लगा। एक पारसी के रानीपरज स्त्री से सात बच्चे हुए हैं। और और स्थानों में भी रानीपरज में पिता के स्थान पर पारसियों के नाम बताये गये। कई स्थानों पर तो ये पारसी विलकुल स्वच्छन्द व्यभिचारी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और कहीं केवल एक ही स्त्री के साथ अनीतियुक्त सम्बन्ध रखते हैं। ऊपर ऊपर देखते हुए यह ख्याल हो जाना स्वाभाविक है कि चूंकि रानीपरज इसे वरदास्त कर लेती है, इसकी नीतिविषयक कल्पना बहुत ऊंची नहीं होगी और फलतः अपनी कौम की इस बेइज्जतीपर उसे बहुत दुःख नहीं होता होगा। परन्तु एक भाई ने अपनी कौम की इस बेइज्जती का वर्णन ऐसी कठणाजनक भाषा में किया कि सुननेवाला रो पड़े। तब हमें मालूम हुआ कि उन्हें दुःख तो जरूर होता है, पर वे असहाय हैं। उनका कोई सहायक नहीं, इसलिए यह सब उन्हें सह लेना पड़ रहा है।

परन्तु रानीपरज के पक्ष को तो वह जांच समिति पेश करेगी। मैं पारसी भाइयों से विनन्ति कहता हूँ कि वे अपनी कौम की उन्नति की दृष्टि से इस दुःखद कहानी पर विचार करें। यदि कोई पारसी अपनी कौम के बाहर विवाह करता है तो 'जुददीन' झगडा खडा हो जाता है। परन्तु यदि कोई दास्ता रखता है, जैसा कि रानी परज में कई पारसी कर रहे हैं तो, उसकी तरफ कोई ध्यान भी नहीं देता, परन्तु मैं यह समझा देना चाहता हूँ कि इस तरह के व्यवहार द्वारा हम केवल अपने दम्भ को ही पुष्ट करते हैं। यह एक जुदा सवाल है कि कौम के बाहर विवाह किये जायं या नहीं। पर यह हमेशा नहीं कहा जा सकता कि कौम के बाहर विवाह करने से अनीति ही होती है। परन्तु इस प्रस्तुत व्यवहार के मानी तो महज विषयलोलुप प्रजा की वृद्धि के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकते। मैं पारसी भाइयों से विनन्ति करता हूँ कि वे इस शोकदायक बात पर विचार करें।

## नौकरी से अलग !

जिस डॉक्टर को एक अंत्यज बहन के प्रति निर्दयता का किस्सा श्री अमृतलाल ठक्कर ने दिया था, उसके नाम और स्थान अब मुझे मालूम हो गये हैं। उस विषय में अब तहकीकत शुरू हो गई है। इसलिए अभी से उनके नाम वगैरह प्रकट कर देने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता। परन्तु एक प्रसिद्ध डॉक्टर मित्र लिखते हैं :—

“यदि यह डॉक्टर सरकारी नौकर हो तो इसे फौरन नौकरी से अलग करवा देना चाहिए। परन्तु यदि खानगी तौर से धंधा कर रहा हो तो सिवा सिर पीट कर रौने के, जैसा कि अमृतलाल भाई लिखते हैं, हमारे हाथों में और हई क्या? पर यदि अहिंसा को ताक पर रखना हो तो, उस डॉक्टर की हड्डियों को नरम कर देना ही अच्छा है। अरे, मरीज को छूकर उसकी जांच करके वह भले ही नहा लेता। इसमें उसे क्या हर्ज था? सचमुच अभी तक हमारे अन्दर असीम अज्ञान भरा हुआ है। हम कुत्ते और बिल्ली से तो जरा भी परहेज नहीं करते, और जो मनुष्य गंदे, अस्वच्छ काम करके हमारी सेवा करता है, उसके प्रति हमारा यह लज्जाजनक बर्ताव है। फी



की बात पढ़ कर तो मात्तम होता है। इस डॉक्टर का हृदय पत्थर का बना हुआ है। उसकी डिग्री की तलाश करके आप मुझे खबर कर सकते हैं? मेरा तो ख्याल है, वह कम्पाउण्डर से डॉक्टर बन गया होगा। जान पड़ता है कि उसे सबी शिक्षा ही नहीं मिली।”

यह पत्र प्रकाशित करने का उद्देश केवल यही है कि अत्यंज बहन के प्रति ऐसी निर्दयता को कोई बदरस्त नहीं कर सकता। मैं नहीं मानता कि यदि वह डॉक्टर खानगी तौर से धंधा करता हो तो सिवा रोने के, और यदि हम अपने धर्म को तिलाक दे देना चाहें तो सिवा उसकी हड्डियां नरम करने के और कोई उपाय ही हमारे लिए नहीं रह जाता। मैं नहीं सोचता कि उसकी हड्डियां नरम करने से भी वह डॉक्टर सम्मार्ग पर आ जावेगा। हां, इससे डॉक्टर को उसकी निर्दयता के लिए सजा जरूर मिल जायगी, परन्तु अत्यंज भाई-बहनों को उससे क्या लाभ होगा? पर अहिंसा-धर्म के सबे उपासक के लिए इसमें रोने-पीटने की तो कोई बात ही नहीं। अहिंसा-धर्म न तो फायरों का सहारा है, और न बुद्धिहीनों का ही। वह तो उस पुरुष का जीवन-धर्म है जो चौबीसों घंटे जागृत रहता है। हिंसा का कानून तो शरीर और केवल शरीर सम्बन्धी बातों को ही स्पर्श कर सकता है। परन्तु अहिंसा का धर्म तो ठेठ हृदय को भेदता हुआ चला जाता है। अहिंसा के द्वारा मनुष्यों में धर्म की जागृति हो सकती है। धर्म-जागृति के मानी हैं समाज में निडर और सात्विक लोकमत का विकास। जिस गांव में यह घटना हुई, वहां यदि शुद्ध दयाधर्म का निवास होता तो यह निर्दयता वहां हो ही नहीं सकती। वह त्रेचारा डॉक्टर तो निमित्त मात्र हो गया है। निर्दयता तो उस वायु-मण्डल में पहले से ही थी। तभी तो उसे इलाज करने या मरीज को देखने से भी पहले दो रुपये मांगने की हिम्मत हुई, और रुपये मिल जाने पर भी उस अत्यंज बहन को छूकर उसकी जांच करने से वह डर गया। अहिंसा का काम है हमेशा जागृत रह कर सात्विक लोकमत का विकास कर के ऐसा वायुमण्डल बना देना, कि जिससे इस डॉक्टर के जैसे लोगों की अधम वृत्तियों को पोषण ही न मिलने पावे।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## गाय और भैंस

एक अहिंसा के उपासक लिखते हैं:—

‘गाय बनाम भैंस वाले लेख में आपने यह लिखा है। मेरे लिखने का उद्देश भैंस को छोड़ देने से नहीं है। परन्तु यदि हम भैंस का बचाव करना चाहें तो उसकी संख्या को नहीं बढ़ाने बल्कि उसे स्वराज्य दे देने से है। गाय को हमने अपने उपयोग के लिए घरवासिनी बनाया है। और इसीलिए उसका रक्षण करना हमारा धर्म हो जाता है।’

इसमें ‘छोड़ देना’ और ‘स्वराज्य देना’ इन दो बातों का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आया। स्वराज्य देने के मानी क्या हैं? क्या उसे जंगल में छोड़ देने से है? अथवा उसके पालन की आज तक हमने जो जिम्मेदारी धारण की है उसका इनकार करने से है?

यह सवाल बिलकुल जुवा है कि गाय का दूध भैंस के दूध की अपेक्षा अधिक सात्विक है या नहीं? जब तक हम भैंस के पाडे का उपयोग करने की कोई युक्ति नहीं खोज लेते, तब तक उसे बचा कर भैंस के दूध का उपयोग करना सस्ता नहीं होता। पाडे को मार कर अथवा उसे मरने दे कर भैंस के दूध का उपयोग करना वास्तविक है। इस लिए यह तो साफ है कि हमें भैंस से कोई सेवा

नहीं लेनी चाहिए। और इसीलिए यह भी समझ में आ सकता है कि उसकी संख्या को हमें नहीं बढ़ाना चाहिए।

परन्तु जहां पर गाय और बल दोनों का निर्वाह और उपयोग करना कठिन है, और साथ ही जहां पर भैंस और पाडे दोनों का दे सकते हैं, तहां गाय के पालन का आग्रह नहीं होना चाहिए और भैंस-पाडे के पालन में आपत्ति भी नहीं की जानी चाहिए। आज जहां तहां से भैंस को निकाल दें यह नहीं हो सकता। क्योंकि गोपालन में बैलो का उपयोग होने के कारण वह अहिंसा की पोषण है। और भैंस के पालने से पाडे की हत्या होती है। इसलिए, वह अहिंसा धर्म को हानि पहुंचाती है। भारतवर्ष में ऐसे स्थान बहुत नहीं हैं, जहां गोपालन-तो कठिन हो, और भैंस का पालन आसान हो। इस लिए भैंस को पालने का सवाल राष्ट्रीय स्तर पर हो सकता है। यह भी स्पष्ट है। परन्तु जहां भैंस-पाडे ही काम कर सकते हैं, वहां यदि सारे देश के भैंस-पाडे एकत्र कर दिये जायें तो वह इष्ट ही होगा। ऐसे स्थानों को निश्चित कर के यदि वहां भैंस और पाडों को भेजने की सुविधा कर दी जाय, तथा ऐसा निश्चित कर दिया जाय कि उस टापु में से भैंस बाहर नहीं भेजी जायें तो भैंस और पाडे को अपना स्वाभाविक स्थान मिल जाय। फिर वहां पर जितने जानवरों की जरूरत हो, उतना ही वहां इनका वितरण बढ़ने दिया जाय इससे अधिक नहीं।

यह सत्य है कि जब तक भारत की जनता यह नहीं समझ ले कि पशुओं के प्रति हमारा क्या धर्म है तब तक यह होना सुनिश्चित है। परन्तु यह तो स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि गाय और भैंस की समस्या किस तरह हल हो सकती है।

इसके साथ ही एक और सवाल भी पृष्ठ लं? आप कौन पश्चिमी सभ्यता को आसुरी मानते हैं। आप भारत के ग्रामीणों को भी पसंद करते हैं। परन्तु आज तो इस ग्रामीण जीवन में अनेकों फेरफार करना होंगे, जो सामान्य जनसमाज को पश्चिमी सभ्यता के समान ही मात्तम होंगे। जब आप आदर्श दुग्धालय और कर्मा की बात करते हैं तब ये बातें लोगों की समझ में जल्दी नहीं आती इसका कारण यह है कि अमी लोग आपके आदर्श की कल्पना को जानने नहीं लगे हैं। क्या आप इसका चित्र अंकित करने के लिए खेत कम से कम कितने बड़े होने चाहिए? नये ढंग के औजारों का उपयोग करना चाहिए या नहीं? दुग्धालय और चर्मालय में पशुओं के लिए कोई स्थान है या नहीं? इस तरह के अनेक प्रश्न हैं। इनके खलासा यदि आप कर देंगे तो देहात में कार्य करनेवाले सेवकों को उससे बड़ा लाभ होगा।”

‘गाय-भैंस’ का लेख लिखते समय मैंने यह ख्याल कर लिया कि भैंस के स्वराज्य की बात में विशेष स्पष्टाकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस जानवर को हम पालते हैं उसकी स्वाधीनता छीन लेते हैं, फिर हम उसका पालन हम चाहे कितने ही शुभ हेतुपूर्वक करें। सैकड़ों अंगरेज यह मानते हैं कि वे भारत का पालन शुभ हेतुपूर्वक कर रहे हैं। और हम उनके इस दाने अस्वीकार करते हैं। तो भी वे हमें बेचकूफ समझकर अपने कर्मा धर्म को नहीं छोड़ते। परन्तु यदि हम दोनों के बीच कोई समझौता करने बैठें तो हमारी तरफ से केवल इतने शब्द काफी होंगे। दुःखों की बात वे श्राव्य क्या जानें जिन्होंने अपने आपको हमारा पालन-कर्ता बना लिया है? यह तो एक त्रिकालदर्शी पालन ही ज्ञान सकता है या खुद हम। और हम तो साफ साफ कह रहे हैं कि हमारा हित तो स्वाधीनता से होगा। इसी प्रकार यदि भैंस वाणी हो, और उसके तथा हमारे बीच कोई न्यायाधीश नियुक्त जाय, और भैंस हमारे ही समान दलील कर के अपना पक्ष



२६ मई, १९२७

अपना पक्ष छोड़ने का स्वयंसेवापूर्ण स्वीकार कर निस्वार्थी तथा संस्कारवान् देहात में चले जाना चाहिए । सबको तो जरूर ही स्वीकार

कोआपरेटिव सोसायटी के रजिस्ट्रार आये। उनके अपनी संस्था की प्रगति की बातचीत शुरू करने की देर थी कि झट गांधीजी ने पूछा 'आप उन्हें रुपये तो देते हैं, परन्तु क्या उनके फुरसत के समय का उपयोग करके उनकी आय बढ़ाने का भी कुछ उद्योग करते हैं?' एक पाठशाला के अंगरेज प्रिन्सिपल आये। वे बोले मुझे बिलकुल ना पसन्द है कि 'लडके बी. ए. एम. ए. हों। क्योंकि इससे और तो कुछ नहीं होता, बेकारों की संख्या मात्र बढ़ती जा रही है। इन लोगों को हम औद्योगिक शिक्षा देने के लिए कदम



तो कितना अच्छा हो? मैं तो कहता हूँ कि इसकी अपेक्षा तुम लोग मिलों में जाकर बुनना सीख लो।' बेचारे ने सोचा होगा कि बुनने की बात कहूँगा तो गांधीजी खुश हो जावेंगे। परन्तु गांधीजी बोले 'मिलों में कपड़ा बुनना ठीक है? परन्तु यह तभी ठीक है जब वे इस निर्णय पर पहुंचे हों कि मिलों अथवा यंत्रों से ही देश का उद्धार होगा। यदि वे अभी किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे हों और एकदम श्रीमान होने की भी उन्हें इच्छा न हो, अथवा देशसेवा करके केवल अपने गुजर-बसर के लिए लेकर काम करना चाहते हों, तो तो आप उनसे खादी-सेवा-संघ में शामिल होने के लिए सिफारिश कर सकते हैं, डेरी का काम अथवा मोची का काम सीखने की सिफारिश कर सकते हैं।' और यों कह कर उन्होंने इन तीनों धंधों का तफसील वार बणन करके उनकी महान् आवश्यकता उन्हें दिखा दी। एक जज टेकड़ी छोड़ कर जा रहे थे इसलिए गांधीजी से विदा लेने के लिए आये। चलते समय नमस्कार करते हुए वे बोले 'नन्दीदुर्ग पर खूब रहिएगा। बिना बिलकुल अच्छे हुए आप नीचे उतरिए ही नहीं। यहां तो बारहों महीने लोग आते रहते हैं। और यदि आप खूब लम्बे समय तक यहां रहकर अपनी तबियत को अच्छी करके जावेंगे तो उससे तो नन्दीदुर्ग की कीर्ति बढ़ेगी न? और फिर तो यहां और भी अधिक मुसाफिर आने लग जावेंगे।' गांधीजी ने हंस कर कहा 'हां रहूँगा तो। पर इस तरह बहुत से मुसाफिरों के आने से आपके राजा को जो आय होगी उसमें से आधी मेरी खादी के लिए देने को आप तैयार हैं?' एक अधिकारी ने गांधीजी के लिए कुछ फल भेजे और बड़े आग्रहपूर्वक कहला भेजा कि असुक फल तो गांधीजी जरूर ही खावें। गांधीजी ने उनसे कहला दिया 'क्या वे मेरी खादी के लिए कुछ देंगे? अगर दें तो उनके भेजे फल भी मैं जरूर खाऊंगा।'

पर यह तो सब विनोद था। ऐसा विनोद वे सब के साथ करते रहते हैं। और विनोद में ही अपना संदेश भी सब को सुनाते रहते हैं। परन्तु इस विनोद की तह में जो आग धधकती रहती है वह भी कभी कभी प्रकट हो जाती है। एक डॉक्टर जो कि बंगलोर में खादी का काम करते हैं; गांधीजी से मिलने के लिए आये। उनके साथ बंगलोर के मेडिकल ऑफिसर की पत्नी भी थी। दोनों का परिचय यों कराया गया—'ये डॉक्टर बंगलोर में रहते हैं। परन्तु वे आज तक इसलिए आपसे मिलने के लिए नहीं आये कि वे आपको कष्ट देना ठीक नहीं समझते थे। बंगलोर की खादी-प्रवृत्ति का सारा श्रेय इन्हींको है। ये डॉक्टर और ये बहन पूर्ण खादी-धारी हैं। ये बहन तो शायद खियों में सिर से पैर तक खादी पहननेवाली अकेली ही महिला हैं।' गांधीजी खुश हो गये। परन्तु इस आनन्द के साथ साथ वह भीतर की आग भी ज़ोरों से धधक उठी "है जरूर यह एक रेगिस्तान का जलाशय।" यदि उनसे मिलने के लिए आनेवाले सभी इस बात को समझलें तो क्या ही अच्छा हो कि इन 'रेगिस्तानों के जलाशयों' को देखने के लिए गांधीजी की आंख कैसी रात दिन तड़पती रहती है! चरखा तो इन मुलाकातों के समय भी चलता ही रहता रहता है। एक बैठक में पूरा एक घंटा न कत सके तो सुबह-शाम आध-आध घंटा बैठ कर कांतते हैं। जब बैठे-बैठे थक जाते हैं, तो पैर लंबे कर देते हैं।

इस तरह दिन बीते जाते हैं। सायंकाल की शान्ति दिव्यी के २१ दिन के उपास के दिनों की याद दिलाती है। उन दिनों बंगले की छत पर प्रार्थना होती थी। हिन्दू-मुसलमानों के झुंड के झुंड आते। प्रार्थना तो आश्रम के ढंग से ही होती थी। परन्तु

कभी कभी कोई हिन्दी भाषी भाई भी गानेवाले मिल जाते। परन्तु यहां इसमें नवीनता उत्पन्न हो गई है। दो तीन वृहत् हमेशा प्रार्थना में आती रहती हैं। तो बेचारी इशोर की ही राह देखती थीं। हमारा गायन भी तो उन्हें बेसुरा ही लगा होगा। गांधीजी ने उन्हें गाने के लिए कहा वस, तब से वे रोज शाम को गाती हैं। उनके तेरुगु भजनों के तेरुगु न जाननेवाले नहीं समझ सकते थे। परन्तु उनकी मधुरता ने कानों में घंटा तक गूंजती रहती थी। जब वे त्यागराज के भजनों 'जलधिशयन, जलजनयन' तथा श्याम और रामचंद्र की गुणगाथा वाले भजन ही गातीं तब तो सभी समझ जाते। जिस प्रकार मीराबाई के भजन उत्तर और, गुजरात में ही नहीं बल्कि बंगाल में भी गाये जाते हैं, उसी प्रकार उनके भजनों को गांधीजी यहां भी मिल जाते हैं। वही स्थान यहां पर त्यागराज के भजनों ने भी प्राप्त कर लिया है। त्यागराज ने लिखा तो है तेरुगु परन्तु उनका नाम समस्त दक्षिण भारत-में तमिल तेरुगु मलयालम बोलने वालों में भी-आदर के साथ लिया जाता है और जब ये बृहत् संस्कृत स्तोत्रों को ऊंचे स्वर में गाती हैं तो यह प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि मुशिक्षित भारतीयों की इस सभ्य भाषा देववाणी में सुदूर प्रान्तों में ऐक्य-साधना करने की जबरदस्त शक्ति है!

परन्तु गानेवालों में केवल ये बहनें ही नहीं थीं। किन्तु मुसलमान और ईसाई भाई भी प्रार्थना में भाग लेने के लिए आते। इस जिले (कोलार जिले) के कलेक्टर एक मुसलमान सज्जन वे रोज प्रार्थना में आते। जिस रोज उन्हें जाना था उस रोज वे बोले 'आज कुरान शरीफ से मैं कुछ सुना दूं?' गांधीजी ने 'जरूर, पर ये लोग कुछ नहीं समझ पायेंगे। अगर उसका भी समझा दें तो, बड़ा एहसान होगा।' उन्होंने एक दो आवां और अर्थ भी कह सुनाया। गांधीजी खुश हो गये, और 'हमारे आश्रम पर भी मेरे दक्षिण आफ्रिका के साथी इसम आते हैं। उनके उच्चार बड़े मधुर हैं।' दूसरे दिन मि. नामक एक मिशनरी आये। वे एक शाला के आचार्य हैं। शायद कहीं सुना होगा कि इस प्रार्थना-समाज में तो सभी भाग लेते हैं। इसलिए वे भी आये, और कुछ सुनाने की इच्छा जाहिर की। उन्होंने 'गिरिपर के प्रवचन' से भगवत्प्रिय विषय के वचन सुनाये।

इस तरह जिस समय यहां पर सभी धर्मों और सबों मधुर सम्मिलन होता रहता था, ठीक उसी समय देश में किन्तु की त्रिशतसंवत्सरी पर जहां तहां दंगे हो रहे थे और तब नदियां वह रही थीं। किसी ने गांधीजी को एक पत्र लिखा उसका उत्तर न मिलने पर उन्होंने गांधीजी को लिखा 'हां भी पांच सौवीं मंजिल पर रहते हैं?' गांधीजी ने कहा 'पांचसौवीं मंजिल पर तो नहीं पांचवी मंजिल पर जरूर रहता है और इस उद्गर से इस बात पर भी दुःखव्यक्त होता था कि इस पांचवी मंजिल पर रहना पड़ता है। इस नंरी पर बैठे गांधीजी को इन उपद्रवों से कितना दुःख हुआ होगा कोई कल्पना कर सकता है। एक मित्र के पत्र में गांधीजी ने है' मैं तो निश्चिन्त हूँ परन्तु इस शीतल गिरि-निवास पर तो 'गांगली तेलन' भी निश्चिन्त रह सकती है। आप ने हैं। और चौट सहते हुए भी शान्ति धारण किये हुए हैं। वही बात है।

(नवजीवन)

महादेव हरिभार



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

गोरक्षा कैसे करें ?

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४२ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
श्यामी आनंद

अहमदाबाद, जैष्ठ सुदी २ संवत् १९८४  
गुरुवार, २ जुन १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,  
सारेगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३

कडुवी घूंट पी गया

अपमान पर मुझे बड़ा दुख हुआ। परन्तु ऐसे तो कई बार मैं पहले सह चुका था। इसलिए जरा आदी बन गया था। मैंने सोच कर लिया कि इस अपमान की परवा न करके अपने को ठीक करते रहना चाहिए।

एक अधिकारी के दस्तखत का एक पत्र भी आया, जिसमें लिखा था 'मि. गांधी मि. चेम्बरलेन से डरबन में मिल चुके हैं, अब उनका नाम प्रतिनिधियों में से हटा देना जरूरी है।'

अधिकारियों को यह पत्र असह्य मालूम हुआ। उन्होंने यह विचार किया कि हम डेपुटेशन ही नहीं भेजेंगे। मैंने उनके सन्मुख कौम को हलत को रक्खा। 'अगर आप मि. चेम्बरलेन से नहीं मिलेंगे तो उसका अर्थ यह लगा लिया जायगा कि आपको यहां कोई काम नहीं है। और आखिर हमें जो कुछ कहना है, वह तो लिख कर दिया जायगा। और वह तैयार भी है। अब यह बात गौण है। उसे मैं पढ़ूँ या और कोई पढ़े। मि. चेम्बरलेन चर्चा करने को होंगे।'

मैंने यह कहा तो तैयब सेठ बोले—'पर आपका अपमान तो क्या अपमान हुआ न? क्योंकि आप हमारे प्रतिनिधि हैं। यह मुझसे कहा जा सकता है?' मैंने कहा 'यह तो सत्य है। परन्तु ऐसे अपमानों को तो मैं को भी हजम कर जाना होगा। हमारे पास और दूसरा उपाय है क्या?'

'ले ही, जो होना, होगा सो हो जायगा। यों जानबूझ कर अपने को अपमान कराएगा। बुरा तो यों भी हो ही रहा है। कोई हक दे दिये गये हैं?' तैयब सेठ बोले।

'मैंने जो शोष पसंद था। पर मैं यह भी जानता था कि अभी मैं इसका उपयोग नहीं हो सकता। कौम की मर्यादा का मुझे पता था। इसलिए मैंने अपने साथियों को शान्त किया। और मैंने एक भारतीय बैरिस्टर थे।

गोंडफे गये भी। मि. चेम्बरलेन ने मेरे विषय में यों ही कुछ पूछताछ की। 'एक ही आदमी से बार बार मिलने की बनिस्वत नये नये आदमियों से मिलना अधिक उचित है।' इत्यादि कह कर उस अपमान के घाव पर उन्होंने थोड़ी बहुत मरहम-पट्टी करने की कोशिश की।

परन्तु इससे कौम का और मेरा काम पूरा होने के बजाय और बढ़ गया। फिर श्रीगणेश से शुरुआत करती पड़ी। 'आपकी आशा से कौम ने लड़ाई में भाग लिया और आखिर उसका परिणाम तो यही हुआ न?' इस तरह कुछ लोग ताने भी मारने लग गये। परन्तु इन तानों का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने कहा 'मुझे उस सलाह पर पश्चात्ताप नहीं होता। अब भी मैं यही मानता हूँ कि हमने यह ठीक ही किया जो उस युद्ध में भाग ले लिया। हमने उसमें केवल अपने कर्तव्य का पालन ही किया है। उसका फल आज हमें भले ही न दिखाई दे, पर मुझे तो दृढ़ विश्वास है कि उस शुभ कार्य का फल शुभ ही होगा। और अब बनिस्वत गई गुजरी बातों का विचार करने के यह सोचना अधिक आवश्यक है कि अब हमारा क्या कर्तव्य है। इसलिए आइए हम यही सोचें।'

यह बात सब को मंजूर हुई। मैंने फिर कहा 'सच पूछा जाय तो आपने जिस काम के लिए मुझे बुलाया था वह तो प्रायः पूरा हो गया है। परन्तु मेरा तो ख्याल है कि अब तो आप मुझे जाने की इजाजत दे दें तो भी, जहां तक हो सके, मुझे ट्रांसवाल छोड़ कर अभी नहीं जाना चाहिए। मेरा काम अब नाताल से नहीं, यहां बैठ कर शुरू होना चाहिए। अब एक साल के अन्दर लौट जाने के विचार को मुझे ताक में रख कर यहां वकालत को सनद प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। मुझे तो पूरा विश्वास है कि मैं इस नये महकमे का सफलतापूर्वक सामना कर सकूंगा। अगर उसका सामना हम नहीं कर पाएंगे तो कौम छुट जायगी, और संभव है यहां से उसके पैर भी उखड़ जायं। कौम की दशा तो दिन ब दिन बिगड़ती ही जा रही है। मि. चेम्बरलेन का मुझसे नहीं मिलना, उस अधिकारी का बेहूदा बर्ताव, यह सब उस बदनामी के मुकाबले में कुछ भी नहीं जो आगे चलकर कौम को उठानी पड़ेगी। नहीं अब यह कुत्ते-बिल्ली का जीवन तो कदापि बरदाश्त नहीं हो सकता।'

इस तरह मैंने बातचीत शुरू की। फ्रिटोरिया और जोहान्सबर्ग के मुख्य मुख्य भारतीयों से बातचीत करके आखिर मैंने जोहान्सबर्ग में आफिस खोलने का निश्चय कर लिया।



इस बात के विषय में तो मुझे बराबर संदेह था कि ट्रान्सवाल में मुझे शायद वकालत की सनद नहीं मिलेगी। परन्तु वकील-मंडल की ओर से मेरी अर्जी का विरोध नहीं हुआ, और वह बड़ी अदालत में मंजूर भी हो गई। एक भारतीय के लिए अच्छे स्थान पर आफिस के लिए मकान मिल जाना भी आसान बात नहीं थी। इस समय तक मि. रीच से मेरा अच्छा परिचय हो गया था। उस समय वे व्यापारीवर्ग में थे। उनके परिचित हाऊस-एजेंट की मार्फत मैंने आफिस के लिए अच्छे स्थान पर एक मकान ले लिया और वकालत शुरू कर दी।

(नवजीवन)

## मोहनदास करमचंद गांधी रोगशय्या के पास से

मौन क्यों धारण किया ?

मैं पिछले सप्ताह में लिख चुका हूँ कि मिलने जुलने वालों से बात चीत करने का गांधीजी का मुख्य विषय खादी अथवा गोरक्षा होती है। पर नामदार शास्त्री इसके अपवाद थे। वे यहां पर दो बार आ गये। पहले तो दक्षिण आफ्रिका के लिए भारत के राजदूत की हैसियत से उनकी नियुक्ति होने से पहले, और दूसरे बाद में। दोनों बार खूब बात चीत हुई। जैसा कि मैं पिछले पत्र में बता चुका हूँ, पहली बार तो उन्हें दक्षिण आफ्रिका की स्थिति से परिचित करने, वहां के कार्यकर्ताओं को पहिचान देने आदि में ही सारा समय गया। उसमें खादी के लिए मौका ही कैसे मिल सकता था! सौभाग्यवश नामदार शास्त्री के साथ उनकी धर्मपत्नी भी थीं। वे कस्तूरबा के साथ बेठी थीं। बा तो सबके सामने खादी रखती हैं। तदनुसार उनके सामने भी रखी, और आन्ध्र की महीन खादी की बनी दो चोलियां खरीदने के लिए उन्हें ललचा सकीं। परन्तु शास्त्रीजी को कौन ललचावे! उन्हें ललचाने की मुझे इच्छा तो बहुत होती थी परन्तु पहले एक बार मैं इस विषय में उनसे बातचीत कर चुका था। किन्तु मैं उन पर असर नहीं डाल सका। दूसरी बार उनके आने से पहले मैंने गांधीजी से कुछहलपूर्वक पूछा 'पिछली बार खादी के विषय में तो एक भी बात नहीं हुई, इस बार कीजिएगा?' "नहीं"। "हम भी न करें?" "नहीं"। फिर जरा रह कर उन्होंने शान्तिपूर्वक कारण बताया। "शास्त्रीयार के साथ मैं पिछली बार, जब वे आश्रम पर आये थे तब, खूब बातचीत कर चुका हूँ। उन्हें सारा आश्रम दिखाया था। हमारा सुतारी विभाग, कताई और बुनाई विभाग, पिंजाई, टेकनिकल विभाग आदि सब दिखाया था। खादी ने कितनी प्रगति की है, कितनी उसे करना बाकी है, इत्यादि समी बातों के विषय में मैंने उनसे विस्तारपूर्वक बातचीत की है। परन्तु उन पर उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। जिस सत्य का भास मुझे हो गया है, वह, मालूम होता है, उन पर असर नहीं कर पाया है। इस लिए मैंने बात को छोड़ दिया। अब फिर वही बात उनके सामने क्या रखी जाय! उनके जैसे पुरुष के सामने वही की वही दलील बार बार पेश करने की आवश्यकता नहीं होती। जब उन्हें उस सत्य का साक्षात्कार हो जायगा तब वे किसीसे पीछे नहीं रहेंगे। परन्तु जब तक उन्हें उसका साक्षात्कार नहीं होता तब तक तो हमें उनकी राह ही देखना पड़ेगी। बहुत से लोगों के सामने बार बार कहना पड़ता है इसका कारण यह है कि वे समझते नहीं, और जो समझते हैं, तथा जिनमें सहानुभूति होती है, उनमें निश्चय-बल नहीं होता।" मैं शांत हो गया। हम में से किसीने भी — श्री राजगोपालाचार्य ने भी, जो उनके पुराने मित्र हैं, — खादी की बात तक नहीं छेड़ी। अब तो उनसे खादी के विषय में तभी बात चीत करेंगे, जब वे दक्षिण आफ्रिका से अपनी विजय-जयजा फहराते हुए लौटेंगे और हम

खादी का कार्य खूब कर चुके होंगे। परन्तु संभव है, तब उनके बात-चीत करने की जरूरत भी न पड़े।

## मंत्रियों से मुलाकात

इस सप्ताह में यहां के प्रधानमंत्री मि. मिरझा इस्माइल यहां आये थे। उनके साथ उनके पहले के मंत्री सर एम. विश्वेश्वरय्या तथा एक समय काम चलाउ मंत्री रहे हुए मि. हमजा हुसैन थे। सर एम. विश्वेश्वरय्या तो अब वयोवृद्ध हो गये हैं। परन्तु वे बड़े अनुभवी। हंसते हंसते उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा 'तब तो मैं गया बीता हूँ। बस, आराम की रोटी खा रहा हूँ।' तथापि उनके में उनका प्रभाव तो पहले का सा ही है। उन्होंने तो अपने समय का शासन-व्यवस्था के विषय में ही बहुत सी बातचीत की। बल्कि यों तो अत्युक्ति नहीं होगी कि अधिकांश समय वे ही बोलते रहे। हंसते हंसते उन्होंने कहा "क्या आपको याद है कि आपने इस राज्य को एकबार रामराज्य कहा था और बाद में कहा था कि अब रामराज्य नहीं रहा!" गांधीजी ने कहा "इसके मानी यही न कि आप तब तक वह रामराज्य था, और आपके हृदय ही वह रामराज्य नहीं रहा?" सच्ची बात तो यह थी कि गांधीजी को इस का कोई खयाल ही नहीं था। हमारा खयाल था कि जब इस बात की चर्चा होगी कि 'रामराज्य' इस नाम के योग्य बनने के लिए राज्य में कौन कौनसी बातें होना जरूरी हैं, तब खादी पर भी उल्लेख कहा जायगा। परन्तु यहां तो खादी का नामोल्लेख भी नहीं हुआ। वीवान साहब ने भी उस विषय में कोई बात नहीं छेड़ी। परन्तु इस राज्य में गोरक्षा कमिशन की जो नियुक्ति हुई है, उसके निमित्त मैंने गांधीजी ने जो उत्तर दिया है, उस पर वीवान साहब ने बातचीत छेड़ी। तब इस विषय पर पुनः अपने विचार कहने का मौका गांधीजी को मिल गया। कानून बनाने के बजाय सच्चा गो-पालन करने की सूचना करते हुए उन्होंने कहा "यदि कोई गोपालन करता हो तो उसे रोकने की जरूरत नहीं है, परन्तु प्रजा को गाय का शुद्ध दूध देने की जिम्मेदारी राज्य अपने सिर पर लेले, उसके लिए उत्तमोत्तम गोचर रखे, गायें रखे, उत्तम सांड भी रखे, गाय के दूध को सुधारने और बढ़ाने के प्रयोग करें, और राज्य की प्रगति को बढ़िया से बढ़िया-स्वच्छ दूध देने की व्यवस्था करें। जब के यहां साबू का कारखाना तो है ही। यह अच्छी बात है। चंदन का व्यापार तो पूर्णतया आपके अपने हाथों में ही है। यदि कोई कारण नहीं जिससे आप अपनी प्रजा की जरूरत को पूरा करने योग्य शुद्ध दूध भी उसे देने की व्यवस्था न कर सकें। और जब आप गोपालन करेंगे, तो मरे हुए जानवरों की व्यवस्था और चर्मालय के काम को भी आपको अपने हाथों में जरूर ही लेना पड़ेगा। आज जितना चमड़ा हम विदेशों में भेज देते हैं, यदि उसे हम यहां कमाने लग जावें, हड्डियोंका उपयोग करना सीख लें, खर्च बनाना सीख जावें, तो कितनी दौलत हमारे यहां, अपने देश की देल में रह जाय? आज तो हमने अपनी बुद्धि को मानो रहन बर्बाद दिया है। और जिसके पास वह है, भी उसे यही नहीं सुझाव कि उसका उपयोग कैसे करना चाहिए। जर्मनी में वेमोर्स रसायन शास्त्री इन कामों में जुट पड़े हैं। हमारे देश के शिक्षित लोग कोई ऐसी खोज क्यों नहीं करने लग जायें जिससे मरे हुए जानवर का चमड़ा भी उतना ही अच्छा हो जाय जितना अच्छा कल किये हुए जानवर का होता है? हमारी खोज बुद्धि भी नष्ट हो गई है। यदि राज्य इन दोनों कामों को अपने हाथों में ले ले, तो उससे व्यर्थ बरबाद होने वाली बुद्धि का सदुपयोग होने लग जायगा, शायक वृद्ध जाग्रत हो जायगी, और बेकार विदितों को रोजी मिल जायगी।"



## मन्त्री का वचन

मन्त्री बात चीत के बाद मिहमान उठने लगे। बस, वे जा ही जाते कि गांधीजी को एक बात याद आ गई। यहां बहुत से मन्त्री जाते हैं, जिनका परिचय मैं पिछले पत्र में दे ही चुका हूँ। गांधीजी से गांधीजी पूछते भी हैं 'आपके राज्य में तो चरखा ही से महाराज भी चरखा चलाते हैं। फिर आपको खादी क्यों पहनते हैं, स्वयं आपति हो सकती है?' किसीने जवाब दिया, "यह तो क्या आपति हो सकती है। पर यदि हम सचमुच खादी पहनने से दिखाने की बात है। पर यदि हम सचमुच खादी पहन लें, तो जरूर हमारी खबर ली जाय।" गांधीजी ने तब को दीवान साहब से कहा, तब उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। तब जब 'हम खुद चरखे के प्रचार के लिए अपनी शक्ति कोशिश कर रहे हैं, तब भला यह कैसे हो सकता है कि हम खादी पहनने से रोकें? जियाउद्दीन मक्की साहब हमारे यहां विभाग के डायरेक्टर थे। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा कि हम खादी पहनें तो कोई हर्ज तो नहीं?' मैंने उनसे झट कह दिया 'आप जरूर पहनिये। भला इसमें शेर पड़ने की कौन बात है?' मैं तो भारत सरकार से भी कहता हूँ कि इस दिन व दिन को हलचल की सहायता करना आपका कर्तव्य है।' तब मैंने कहा 'देखिए, अब यदि कोई अधिकारी इस तरह की बातें करे तो फौरन इसकी रिपोर्ट दीवान साहब से कर दें।' गांधीजी ने उनके एहसान मानते हुए उनसे ये बातें कह कर जाने की इजाजत भी मांग ली। और दीवान साहब ने भी नहीं हटाई।

## 'मैं फूलता नहीं हूँ'

गांधीजी की तबियत बराबर सुधरती जा रही है। शक्ति भी बढ़ रही है। इस सप्ताह में जमनालालजी, कच्छवाले जीवरामभाई और आ गये थे। चरखा संघ के अध्यक्ष की हैसियत से अब भी कोई कष्ट न दिया जाय, इस विषय की हाल ही में गांधीजी का स्वास्थ्य बिल्कुल अच्छा नहीं हो जाता, तब तक चरखा संघ के अध्यक्ष रहेंगे। इस विषय का तमाम पत्र-व्यवहार उन्होंने ही किया जाय। अगर कोई विशेष महत्व की बात हो, जिसमें गांधीजी की राय ले लेना जरूरी होगा, तो उनसे भी पूछ लिया जायगा। परन्तु यह व्यवस्था इस ख्याल से की गई है कि छोटी छोटी कामों के लिए उन्हें कोई कष्ट न दिया जाय। अध्यक्ष के अध्यक्ष श्री श्रीनिवास आर्यगर ने इस खुशखबरीवाला पत्र गांधीजी को भेजा था कि महासमिति ने अपनी बम्बईवाली प्रतिवार मतदार मंडल की व्यवस्था के बदले मिश्र मतदार को योजना की सर्वानुमति से स्वीकार कर लिया है। 'आप यह जानकर खुश होंगे कि महासमिति ने खूब विचारपूर्वक से सुपरमानों की तैयारी की गई योजना के लगभग अनुकूल में आशा करता हूँ कि इस खबर से आपकी तबियत में सुधार हो जायगा।'

गांधीजी ने इस तार का जवाब पत्र द्वारा दिया था। यह पत्र गांधीजी के मत को प्रकट करता है, इसलिए उसे पत्र में अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिए लिखा था। आपने मेरी तबियत का ख्याल करके चिन्तापूर्वक तार से लिखा है, उसके लिए मैं अहसानमन्द हूँ। परन्तु इस पत्र में मैं अपने से उन्नत नहीं हो गया। क्योंकि हमारे

आस पास दूषित वायुमण्डल तो अभी तक ज्यों का त्यों है। हमारे उत्तमोत्तम प्रस्ताव व्यर्थ हो रहे हैं। इसका कारण मेरे ख्याल से तो यही है कि लोगों को अपने साथ ले चलने की शक्ति को ही हम खो बैठे हैं। हम चाहे कितने ही अच्छे प्रस्ताव मंजूर कर लिया करें पर यदि इधर देश में लोग एक दूसरे का सिर उसी तरह फोड़ते रहे, तो ये प्रस्ताव किस काम के?

परन्तु मैं तो आपके विषय में एक बार कह चुका हूँ न कि जहां और सब हार गये हैं, तहां शायद आप सफलता प्राप्त कर लें। क्योंकि आपकी श्रद्धा अचल है। इसलिए मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूँ कि वे आपकी सहायता करें, और आज हमारे अन्दर जो यादवी मची हुई है, उसे बंद करने के, इस पाशविक हालत से हमें मनुष्यता की ओर ले जाने के आपके प्रयत्नों को वे सफल करें।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाइ देसाई

## रामचंद्र कोश

जबसे सत्याग्रह आश्रम ने इस कोश की व्यवस्था अपने हाथों में ले ली है तब से गुजरात में इसका अनेकों स्थानों में प्रचार हो रहा है। हाल ही में एक कोश पालनपुर में लगाया गया है। जिसके विषय में सैठ अमृतलाल रायजंद झवेरी लिखते हैं :

"उस दिन श्री रामचंद्र अय्यर और उनके सहायक यहां आये थे, और एक ८३ फीट गहरे कुएँ में कोश लगा कर चले गये। उससे हम पूर्णरीति से संतुष्ट हैं। कृष्ण बहुत गहरा होने के कारण जरा कठिनई ता हुई, परन्तु श्री रामचंद्र ने डबल चैन लगा कर कठिनई को दूर कर दिया। श्रीमान नवाब साहब भी कोश को देखने के लिए आये थे, और वे उसे अच्छी तरह काम देते हुए देख कर खुश हो गये। मुझे तो यह कोश आर्थिक और धार्मिक दृष्टि से भी फायदमन्द मालूम होता है। पैसे की बचत के साथ साथ वह पाडों की रक्षा करता है, जोकि उपयोग न होने के कारण अन्यथा नाहक मारे जाते थे। हमें यहां जिस काम के लिए चार बेल और तीन आदमियों को लगाना पड़ता था, उसे अब हम एक पाडा और दो आदमियों से कराने की आशा करते हैं।"

इस गुजराती पत्र का सार मैंने कोश की सफलता को दिखाने के लिए यहां दे दिया है। और अधिक लोगों के मतों को जानने के लिए तो हमारे पास रामचंद्र कोश ढेरों से पडे हैं। अगर उसका दयार्थ से इतना गहरा सम्बन्ध नहीं होता, तो मैं उसके झंझट में हरगिज नहीं पड़ता। तथापि मैं सावधान रह कर काम करना चाहता हूँ। इस कोश की कुछ टीका भी मेरे कानों पर आई है। इसलिए मैं इस पर दोनों पक्ष की बात सुन लेना चाहता हूँ। अबतक जो टीका मैंने सुनी है उसका मुझपर कोई असर नहीं हुआ है परन्तु यदि कोई ऐसी ही ध्यान देने योग्य बात पाई गई, तो उसे पाठकों के सामने पेश करने से मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं होगी। मुझे यह बार बार दोहराने का जरूरत नहीं है कि किसी व्यापारी उद्देश से जैसा कि इस शब्द का अर्थ समझा जाता है, यह नहीं चलाया जा रहा है श्री रामचंद्र अय्यर ने २५) फी कोश के हिसाब से १००० कोश तक लेने की शर्त पर इस कोश के अधिकार बेच दिये हैं। इसका कारण यह है कि उनके सिर पर इसके कारण बहुत सा कर्जा हो गया है। और दूसरे उनके गुजर के लिए भी तो कुछ जरूरत होती है। परन्तु इसके अलावा सिवा लागत के और कुछ इस कोश पर नहीं लगाया जाता। इस समय आश्रम में तीन कोश काम दे रहे हैं और शीघ्र ही चौथा भी चलने लग जावेगा। जो इस कोश को देखना चाहे, सत्याग्रह आश्रम सावरमती चले आवें और अपनी आंखों से चले हुए देख लें।

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जैष्ठ शुक्ल २ संवत् १९८४

## गोरक्षा कैसे करें ?

नाशिक की पांजरापोल के व्यवस्थापक भाई प्रागजी मावजी एक पत्र में नीचे लिखी सूचनाएँ करते हैं:—

(१) गोरक्षा के साथ साथ खेती करना बड़ा जरूरी है। खेती के योग्य अच्छे बैल बनाने, बछड़ों का पालन करने, अच्छा खाद बनाने, तथा जानवरों के लिए अच्छी घास पैदा करने की भी बड़ी जरूरत होती है। इसलिए यदि गोरक्षा के साथ साथ खेती भी हो, तो गोपालन बड़ी किफायत के साथ हो सकता है।

(२) यदि जानवरों को बहुत बड़ी संख्या में और कम खर्च में परवरिश करना हो, तो उनको ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहां नदी या तालाब अथवा इसी तरह पानी की कोई दूसरी व्यवस्था हो, और जहां कुदरती तौर से खूब घास पैदा होती हो। बारिश से जानवरों की रक्षा करने के लिए वहां सोंपड़े बनाकर वहां जानवरों को श्रावण से मार्गशीर्ष तक मजे में रखा जाय। और शेष जंगल को आश्विन कार्तिक में काटकर बारहों महीने की घास इकट्ठी कर लेनी चाहिए। इससे घास की भी तकलीफ नहीं होगी, और अधिक जीवों का पालन भी हो सकेगा।

(३) दुबले-पतले अथवा हलकी जात के सांड गायों के साथ नहीं रखे जायें। गोपालों को अच्छे और जातवान सांड अपने गोकुलों में रखने चाहिए।

(४) मरे हुए जानवर को ठीकेदारों को बेचने से वे मरे जानवरों का मांस अस्पृश्य लोगों को बेचते हैं, और उनको हानि पहुंचाते हैं।

(५) हड्डियों को विदेशों में भेज देने से उनके साथ साथ फासफरस नामक कीमती द्रव्य भी, जिसका बड़ा ही अच्छा खाद होता है, देश के बाहर चला जाता है। जब चमड़े का बाजार तेज हो जाता है तब ठेकेदार लोग अपने फायदे के लिए नीच लोगों को फोड़ कर अधिक जानवरों को मरवाने लग जाते हैं। इसलिए विश्वास-पात्र निरामिषाहारी आदमियों की देखभाल में मरे हुए जानवरों का चमड़ा निकलवा कर, उसके मांस और हड्डियों को यदि खेत में गाड़ दिया जाय तो उसका उत्तम खाद हो सकता है।

(६) खेती और गोरक्षा तो अपठ और सुपठ दोनों की रोजी दे सकती है। निर्रे गोरक्षा के उपदेशकों की अपेक्षा ऐसे सबे गो-सेवकों की देश को अधिक जरूरत है जो ठांस काम कर सकें। इन सूचनाओं में बहुत थोड़ी बातें ऐसी हैं जो 'नवजीवन' में पहले नहीं आ चुकी हैं। यहां तो इन सूचनाओं को यह दिखाने के लिए दिया गया है कि एक गोमाता के सेवक और पांजरापोल चलाने-वाले अनुभवी कार्यकर्ता किस तरह उन सूचनाओं का समर्थन करते हैं। इसमें कितनी ही बातें जानने योग्य भी हैं। उदाहरण के लिए यह बात आदमी को जरूर चौंका देनेवाली है, जिसमें मरे हुए जानवरों को काटकर रोटी के हाथ बेच देने से होनेवाली हानि बताई गई है। इस धर्म के नाम पर, मरे हुए जानवरों का उपयोग स्वयं नहीं करते और दूसरों को दे देते हैं इसीसे यह अधर्म होता है। हड्डियों के भिक्षा में जो सूचना की गई है उसमें सुधार की आवश्यकता है। हड्डियों को ज्यों का त्यों गाड़ देने से खाद नहीं बन जाता, खाद तो उनको पीसने से बनता है। मांस, आँतें आदि को भी

गाड़ने की जरूरत नहीं है। आंतों का उपयोग तो आक्खर रसियां, वाद्यों के तार, तांत आदि बनाने में हो ही रहा है। और मांस से चरबी निकाली जा सकती है, जिसका यंत्रों में खूब उपयोग होता है। इस प्रकार गाड़ने योग्य चीज तो बहुत थोड़ी रह जाती है। पर यह तो भविष्य की बात है। जिन वस्तुओं का उपयोग करने में आज हमें किसी प्रकार की धार्मिक रोक-टोक नहीं है, उनको भी यदि वर्तमान गोशालाएं और पांजरापोलों की मार्फत तैयार कराने लग जावें, तो बहुत से जानवरों को बचा सकेंगे। यह इस तत्त्व का स्वीकार हम कर लेंगे तो आगे की खोज-भाल सर होती रहेगी।

आखिरी सूचना में गो-सेवकों को जो उलहना दिया गया है वह सोचने योग्य है। सचमुच प्रत्येक गो-सेवक के लिए यह बात ध्यान देने योग्य है, कि गोरक्षा के उपदेशों की अपेक्षा प्रत्यक्ष काम दान सेवा करनेवाले तथा गो-सेवा के लिए ही ज्ञान प्राप्त करने की बहुत भारी आवश्यकता है।

परन्तु इस पत्र के साथ ही मेरे सामने एक अखबार की कतल पड़ी हुई है, जिसमें मुझे अनेक प्रश्न पूछे गये हैं। इन प्रश्नों की तह में मेरे द्वारा सूचित किये गये सिद्धान्त का निराधार छिपा हुआ है। जिस सिद्धान्त को मैंने सूचित किया वह यों है:—जो धर्म अर्थ का सर्वथा विरोधी है, वह धर्म नहीं, बल्कि अधर्म अथवा धर्माभास है। लेखक का यह ख्याल है कि यह सिद्धान्त सनातन-सूत्रों का विरोधी है। स्वयं मैं तो ऐसा नहीं मानता। सनातन-सूत्र नहीं जानता जो इसका विरोधी हो। प्रकृति के निरंतर इसी सिद्धान्त का अनुसरण करती आई है। और मैंने एक भी स्थान को नहीं जानता, जहां इस सिद्धान्त के विरोधी धर्म का प्रचार हो। जिसने दांत दिये हैं, वह उनके लिए चचीना भी देना 'हाथी को मन और च्यूटी को कण' ये तमाम रुढ़ कहावतें भी इस सिद्धान्त को पुष्ट करती हैं। कुदरत ने जीवों के लिए नाज की जरूरत के साथ साथ नाज भी तो पैदा कर दिया है। पर कुदरत की यह खासियत जरूर है, कि वह प्रतिदिन उतना ही नाज पैदा करती है जितना आवश्यक होता है। पर इस नियम को तोड़ कर मनुष्य जाति स्वार्थवश अपनी आवश्यकता से अधिक लेती है, और उसी प्रकार उपयोग भी करती है। और इस तरह अस्तैय तथा अपरिग्रह इन दो अनिवार्य नियमों का भंग करके अपने हाथों से अपने तथा प्राणी मात्र के लिए नये नये दुःख उत्पन्न करती है। शास्त्रों ने ज्ञानदान को ब्राह्मणों का कर्तव्य बना दिया, परन्तु उसी साथ ही साथ उन्होंने उन्हें भिक्षा मांगने का अधिकार तथा समाज पर भिक्षा देने का बोझ भी लाद दिया। और इस तरह धर्म के साथ अर्थ को भी मिला दिया। पाठक इस तरह के अनेकों दृष्टान्त ढूंढ सकते हैं। धर्म में जमाखर्च बराबर रहता है। जिसमें धर्म होता है वही शुद्ध अर्थ और शुद्ध धर्म कहा सकता है। जहां एक भी पैसा घटेगा या बड़ेगा वहां वह धर्म और धर्म दोनों नहीं। उसे धर्म और अधर्म समझना चाहिए। इसीलिए गीताकार ने योग की व्याख्या 'समत्व' शब्द से की है। साधारण मनुष्य अर्थ का यह धार्मिक उपयोग अथवा अर्थ करता ही नहीं। वह तो हमेशा धर्म चाहता है। मैंने अर्थ का जो धार्मिक अर्थ बताया है, उसमें नफे के लिए स्थान ही नहीं। उसी प्रकार नुकसान का भी कोई कारण नहीं है। जहां नुकसान होता है वहां धर्म का रक्षण असंभव है। और इसीलिए तो भारतवर्ष में १५०० पांजरापोल और गोशालाओं के होते हुए भी गोरक्षण नहीं हो रहा है। यही नहीं बल्कि दिन बदिन गायों की कत्ल बढ़ती ही जा रही है। यह होते हुए भी हमें यह मान लेने से गोरक्षा नहीं होती कि गोशालाएं तथा इतने प्राणी



[illegible]

आजकल के जमाने में उपर्युक्त वर्णनों पर विश्वास करना मुश्किल जान पड़ता है, जब कि अखबारवालों को सनसनी फैलानेवाले वर्णन घड़ने के लिए सच्ची खबरें न मिलने पर वे अपने पाठकों के मनोरंजन के लिए मनगढ़न्त कथायें दूँढते रहते हैं। परन्तु यदि हम इन्हें अत्युक्ति पूर्ण भी समझ लें, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका के लड़के-लड़कियों में अपराधों की संख्या काफी बड़ी हुई है, यहां तक कि हमें उस सभ्यता से सावधान रहना चाहिए जो निःसन्देह इस बुराई के लिए जिम्मेदार है। हम यह मान लेते हैं कि पश्चिम अपने ढंग से तरक्की करती जा रही है, और सो भी वच्चों में इन बुराईयों के होते हुए भी। हम यह भी मान लेते हैं कि वहां के समझदार लोग इस बुराई से बेखबर नहीं हैं, बल्कि उसे दूर करने के लिए वे वीरतापूर्वक प्रयत्न भी कर रहे हैं। फिर भी हमें यह तो निर्णय करना ही होगा कि क्या हम आखें मूंद कर इस सभ्यता का अनुकरण ही करते चले जावें? समय समय पर पश्चिम से आनेवाली इन भयंकर खबरों के सुन लेने पर यदि हम जरा ठहर कर यह सोच लें तो अनुचित नहीं होगा कि क्या हम अपनी ही सभ्यता को दृढ़तापूर्वक नहीं पकड़े रहें? क्या इस नवीन ज्ञान के प्रकाश में उसे जांच कर उसमें की बुराईयों को दूर करके उसीको सुधार लेना अच्छा नहीं है? क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिम के सामने एक महा भयंकर सवाल खड़ा है, जो उसकी अपनी इस सभ्यता से ही पैदा होता है। हमारी अपनी समस्याएं भी किसी प्रकार कम गम्भीर नहीं हैं। इस मौके पर इन दोनों सभ्यताओं की तुलना करना यदि बेकाम नहीं तो शायद अनावश्यक होगा। संभव है, पश्चिम ने उसकी परिस्थिति और आबोहवा के अनुकूल सभ्यता की रचना कर ली है। और उसी प्रकार हमने भी अपनी



परिस्थिति के अनुसार अपनी सभ्यता का विकास कर लिया है। यह भी संभव है कि दोनों अपने अपने स्थान पर उपयोगी हों। पर यह तो हम बिना किसी हिचकिचाहट के कह सकते हैं कि उपर्युक्त प्रकार के और गैरकानूनन व्यवहार हमारे यहां असम्भव हैं। मैं समझता हूँ कि यह हमारी शान्तिशील शिक्षा तथा उस आज्ञाधारिता के वायुमण्डल का प्रभाव है, जिसमें हम छोटे से बड़े हुए हैं। पर यदि इस प्राचीन सभ्यता को हम जीवित रखना चाहें तो हमें शान्तिशील शिक्षा से पैदा होने वाली उस कायरता से और आज्ञाधारिता के वायुमण्डल से उत्पन्न होने वाली अपने सम्बन्धी तुच्छता की भावना से भी किसी प्रकार छुटकारा पा लेना चाहिए। ये दोनों तो हमें मानो पुस्त दर पुस्त से मिलती गई हैं। इधर मनुष्य का अपनी आवश्यकताओं को बेहद बढ़ाना जहां आधुनिक सभ्यता का सबसे प्रधान लक्षण है, तहां प्राचीन पूर्वी सभ्यता का मुख्य लक्षण है इन आवश्यकताओं या कामनाओं को रोकना तथा उन पर कठोर नियन्त्रण रखना। इस आधुनिक अथवा पश्चिमी तृष्णा का खास कारण है भविष्य और ईश्वरीयशक्ति में सजीव श्रद्धा का अभाव; तहां पूर्वी और प्राचीन सभ्यता के संयम की जब उस श्रद्धा और विश्वास में है, जो कई बार लाचार होकर भी हमें मांगल्य और ईश्वरीयशक्ति के अस्तित्व में करना पड़ता है। यदि हम चाहें तो उपर्युक्त संक्षिप्त वर्णन से सावधान होकर पश्चिम के अधानुकरण से हमें बच जाना चाहिए, जो कि भारत के शहरों, और खास कर शिक्षित वर्गों में पाया जाता है। वर्तमान आविष्कारों से निपजनेवाले कुछ परिणाम जरूर ऐसे हैं, जो आदमी को चकित और पागल बना देते हैं, और उनका प्रतिकार करना बड़ा मुश्किल है। पर मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मनुष्य का सच्चा पुरुषार्थ और विजय तो इसी प्रतिकार की सकलता में है। स्मरण रहे कि एक क्षणिक आनंद के बदले इस समय हम अपने शाश्वत कल्याण को खोने को हैं।

(वेग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

### दयाहीन होते ही

वाराणसी नगरी में ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। वह अपने दोष जानने की इच्छा से नगर तथा जानपद में घूसा। पर वहां उसे कोई उसका दोष दिखानेवाला नहीं मिला। इसलिए अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए वह हिमालय में गया। वहां एक रमणीय प्रदेश में उसने एक वनमूलफलाहारी साधु का आश्रम देखा, और भीतर जाकर साधु महाराज को प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। उस समय साधु वन से लाये हुए धरगद के पके पके फल खा रहे थे। वे शकर के समान मीठे थे, इसलिए साधु ने उन्हें राजा को भी खाने के लिए दिये। उन्हें खाने पर राजा ने साधु से पूछा—

‘महाराज ये फल इतने मधुर क्यों हैं?’

साधु ने जवाब दिया ‘इसलिए कि राजा धर्मवान् है’।

राजा ने फिर पूछा ‘महाराज, यदि राजा अधर्मी हो, तो क्या वे इतने मीठे नहीं होंगे?’

‘ना बच्चा, राजा के दुष्ट होते ही तेल मधु (शहद) गुड़, आदि का ही नहीं, बल्कि वन के कंद, मूल, फलका भी रस सूख जाता है। यही नहीं, बल्कि सारा राष्ट्र तेजोहीन और कड़ुआ हो जाता है। और यदि सच्चा सदाकारी हो तो वे सब सुंदर मधुर और ओजस्वी होते हैं, और सारा राष्ट्र तेजस्वी होता है।’

‘शायद यही हो भगवन्!’ कह कर राजा साधु महाराज को बिना ही अपना परिचय दिये वाराणसी को लौट आया।

‘पर इन वचनों की परीक्षा कर के देखना चाहिए, यह सोच कर राजा ने अन्याय करना शुरू कर दिया। ‘अब देखना चाहिए कि क्या होता है,’ यों सोच कर कुछ समय के बाद राजा फिर उस साधु के पास पहुंचा, और वन्दना करके एक तरफ बैठ गया। साधु ने पहले की भांति इस बार भी राजा को वे पके हुए फीपर खाने के लिए दिये परन्तु इस बार तो वे उसे कड़वे लगे। इसीलिए उन्हें थूक कर राजा बोला ‘महाराज, ये तो कड़ुए हैं।’

साधु बोला ‘तब राजा जरूर पापी हो गया होगा। राजा ने अधर्म किया कि वन्य फल, आदि सब नीरस, निःस्वाद हो जाते हैं। यों कह कर साधु ने यह गाथा सुनाई—

गवं चे तरमाणानं जिम्हं गच्छति पुंगवो

सच्चा ता जिम्हं गच्छन्ति नेत्ते जिम्हगते सति ॥

यदि गायों का झुंड तैरता हो, और उनका अगुआ यदि देखे जाने लगे तो सब टेढ़ी जाने लग जाती हैं।

एवमेव मनुस्सेषु यो होति सेट्ठ संभतो ।

सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा ॥

सच्चं रट्ठं दुक्खं सेति राजा चे होत्यधम्मिको ॥

उसी प्रकार मनुष्यों में भी जो श्रेष्ठ और संभावित होते हैं यदि वही अधर्म करने लग जाते हैं, तो प्रजा भी उनका अनुकरण करने लगे जाती है। राजा के अधर्मी होते ही सारा राष्ट्र दुष्ट हो जाता है।

गवं चे तरमाणानं उज्जुं गच्छति पुंगवो ।

सच्चा ता उज्जुं गच्छन्ति नेत्ते उज्जुगते सति ॥

गायों का झुंड यदि तैरता हो, और यदि उनका नायक सोच रहा हो, तो सबकी सब बिलकुल सीधी जावेंगी।

एवमेव मनुस्सेषु यो होतिसेट्ठ संभतो ।

सो चे पि धम्मं चरति पगेव इतरा पजा ॥

सच्चं रट्ठं सुक्खं सेति राजा चे होति धम्मिको ॥

उसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ-संभावित होते हैं वे भी सदाचार का सेवन करें तो इतर लोग भी उनका अनुकरण करते हैं। राजा यदि धार्मिक हो तो सारा राष्ट्र सुखी होता है।

राजा ने अपना परिचय देते हुए कहा ‘भगवन् पहले के फलों को मैंने ही मीठा कर के बाद में कड़वे किये थे। अब इनके फिर मैं मीठे बना दूंगा।

(नवजीवन)

वालजी गोविन्दजी देसाई

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण आया; कीमत २) पोस्टेज २)।; बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की बी. पी. नहीं भेजी जायगी। बी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम पर भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक, हिन्दी नवजीवन

अहमदाबाद

हाथ कटाई बुनाई-अंगरेजी में जिस निबन्ध के लिए १००० पुरस्कार रक्खा गया था उसीका यह हिन्दी अनुवाद अजमेर सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल से प्रकाशित हुआ है। कीमत सिर्फ १०० पत्रव्यवहार का पता गुजरातीका हिन्दी अनुवाद है कीमत १२) पत्रव्यवहार का पता

सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर



## हमारे आश्रित

हमारे धर्म में वृत्तिच्छेद को उतना ही बड़ा पाप बताया गया है, जितना वध है। वृत्ति के मानी हैं आजीविका का साधन। वृत्तिच्छेद के मानी हुए किसी की आजीविका के शुद्ध साधन बन कर उसे असहाय बना देना। प्रत्येक प्राणी अपनी वृत्ति को पूरा करता है, इसीलिए वह किसी पर भाररूप नहीं होता। जो बड़ा हो या बड़ा, आसान हो या मुश्किल। जबतक आदमी काम करता रहता है तबतक उसका भार उठाना न तो कुदरत का मुश्किल होता और न समाज के लिए ही। मजदूर तबतक काम करता है जबतक कि वह मजदूरी करता रहता है। उसे न किसीका डर है न चिन्ता। जबतक मजदूरी का सोता बहता रहता है, तबतक वह आजीविका उसके लिए तैयार ही है।

मानव ने अपनी जरूरतों को निश्चित करके उन्हें पूरी करने के लिए अपने वर्ग बना दिए। जबतक वे वर्ग समाज का दिया हुआ पालनपूर्वक करते रहेंगे तबतक समाज उनका पोषण करने के लिए तैयार है। पर कुदरत का कानून जुदा है और मानव-समाज का कानून जुदा। कुदरत का न्याय अचूक किन्तु ऐसा होता है जो समझ में नहीं आता। पर मनुष्य हृदय-धर्म से बंधा हुआ है, दीर्घ-दृष्टि-द्वारा निर्णय किया गया है, और पारस्परिक अवलंबन से पुष्ट हो गया है। जीवन-धर्म विशेष है। पशु भी असहाय बालकों की रक्षा करके उन्हें पोषण देते हैं। फिर मनुष्य यदि वह करे तो इसमें कौन का दोष है? हां, न करे तो जरूर आश्चर्य होना चाहिए। बालकों के पोषण में हमारा जितना प्रेम पाया जाता है, उसकी जड़ में पशु और दीर्घ स्वार्थ है। पशु भी अपने ढंग से बालकों की श्रुषा करते ही हैं। पर वह तो एक खास हद तक ही। जो जिस प्रकार कृत्रिम जीवन को अस्तित्व प्रदान करके अनेक रोग फैलाए, उसी प्रकार उसने बीमारों का प्रतिपालन करने, दवा देकर उसका इलाज करने, और जहांतक हो उसके दुख को दूर करने की जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया है।

अनेक जीवन भर किसी न किसी तरह जिसने समाज की सेवा की है, समाज पर विश्वास करके निश्चिन्त रहा है, उसके लिए समाज का कर्तव्य समझता है कि वह वृद्धावस्था में उसे सुखी और सुरक्षित कर दे, और ऐसी व्यवस्था कर दे जिससे और उसके जीवन दिन चिन्ता और परावर्तित के अपमान में न बीतने दें। समाजकारियों ने इस कर्तव्य के विषय में बड़े गंभीर और सुंदर विचार रखे हैं। और समाज ने भी उनका स्वीकार कर लिया है। अनाथ, असहाय और वृद्धों की रक्षा करना पुरुषार्थ और समाज का मुख्य भूषण और सार्वजनिक समझा गया है।

अब यह सब धर्म मनुष्य मनुष्य में ही परिसमाप्त नहीं होता। जो हिंसा करते हैं, मनुष्य को मारते हैं, उसे नुकसान पहुंचाते हैं और अपने अपने लिए शिकार-धर्म बना लिया है। जो पशुओं को देखे नहीं, और मारा नहीं। तथापि जो पशु लोगों ने अपने लिए कितने ही नियम बना लिये हैं। जो पशु को मारने पर ही उसका सामना किया जाय। उनमें भी यदि आखेट के लिए पशु मारा हो या मादा गर्भिणी हो, तो उसे भी छोड़ दिया जाता है। जो पशु घोर जंगल में जाकर वहां रहनेवाले जानवरों को ललचा कर वहां से बस्ती में लाकर मारना शिकार-धर्म है। शिकार-धर्म ने यह स्वीकार किया है कि जिस पशु को अपनी बस्ती में निर्भयतापूर्वक रहने का हक है,

उसी प्रकार पशुओं को भी घोर जंगल में निर्भयतापूर्वक रहने का हक है, वहां जाकर मनुष्य को उसकी छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए।

पशुओं के दूसरे वर्ग में भेड़, बकरी और मुर्गे आदि का समावेश होता है। सिवा खाने के मनुष्य को इनका अधिक उपयोग नहीं है। मनुष्य ने इस वर्ग के तमाम पशुओं को सिर्फ खाने के लिए ही अपने वश में कर रखा है। अपनी आवश्यकतानुसार वह उन्हें जीने और बढ़ने देता है, और अन्त में मारकर खा जाता है। जब तक मनुष्य-जाति मांसाहार की दशा को पार नहीं कर जाती तब तक यह तो होता ही रहेगा। जिन लोगों ने मांसाहार छोड़ दिया है, वे न तो इन पशुओं का पालन करेंगे, और न उन्हें मारेंगे ही। अहिंसक पुरुष कभी ऐसे प्राणियों का संग्रह नहीं करेंगे जिनका केवल कल करके खाने के लिए ही पालन किया जाता है।

पशुओं के तीसरे वर्ग में गाय, भैंस, ऊंट, हाथी, कुत्ते, बिल्ली वगैरा गिनाये जा सकते हैं। मनुष्य ने ऐसे पशुओं से भी सेवा लेने की युक्ति को ढूंढ लिया है। इन सब को हम पालतू जानवर कह सकते हैं। ये निहन्त-कीमती परिश्रम या सेवा-के बलसे मनुष्य के जीवन के साथी बन गये हैं। एक तरह से देखा जाय तो ये सब मनुष्य की पूंजी हैं, और दूसरी दृष्टि से वे मनुष्य के सहायक मित्र हैं। दोनों दृष्टि से मनुष्य के लिए उनका पालन करना इष्ट ही है। हृदय-धर्म कहता है कि जिनसे हम सेवा लेते हैं, जो हमारे अन्नदाता बने हुए हैं, जिनके पालन द्वारा हमने स्वार्थ और आनंद को भी प्राप्त किया है, उन पर छुरी चलाना पाप है। उनका घात हम कैसे कर सकते हैं! बीमारी में हमें उनका इलाज करना चाहिए और वृद्धावस्था में उनके जीवन की आखिरी घड़ियाँ हमें उन्हें उनकी स्वाभाविक अवस्था में बिताने देनी चाहिए। इसीमें हमारी मनुष्यता है और बुद्धि तथा पराक्रम की शोभा है। इसीमें हृदय का विकास और परमात्मा का संतोष है।

परन्तु किसी भी जानवर का पालन करने के पहले मनुष्य को इस बात का विचार कर लेना चाहिए कि वह उसकी जिम्मेदारी उठा सकता है या नहीं। जितने जानवरों को पहले से ही रख छोड़ा है उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी को पूरी तरह अदा करने के बाद दूसरी जिम्मेदारियों को अपने सिर पर लेने का विचार मनुष्य करे। इस दृष्टि से विचार करते हुए यह साफ है, कि मनुष्य को दूध के लिए भैंस और बकरी का संग्रह नहीं करना चाहिए था। हाथी, घोड़ा, ऊंट इत्यादि तो अन्त समय तक सेवा दे कर सुरक्षित हो गये हैं। जिसकी सेवा जितनी अधिक उपयोगी होगी उसकी वृत्ति उतनी ही सुरक्षित और निश्चित होगी। जबतक उनकी इस वृत्ति का छेद नहीं हो जाता, अर्थात् उपयोगिता नहीं घट जाती, तब तक वह निर्भय है। राजपूताने के रेगिस्तान में जब तक बिना ऊंट के काम नहीं चलता, तब तक वेचारा ऊंट सही सलामत है। वहां मोटरें बढ़ने लगी नहीं, और ऊंट की वृत्ति का उच्छेद हुआ नहीं। फिर तो ऊंट को मनुष्य क्या कुत्ते और दिलीप भी नहीं बचा सकते। मोटरों ने घोड़ों का बहुत कुछ वृत्तिच्छेद कर दिया है, और अभी तो करती ही जा रही है।

कुदरती तौर पर सबसे अधिक जीने की अनुकूलता तो गाय और बैल को है। दूध के लिए गाय और खेती के लिए बैल अत्यंत आवश्यक है। इनका वृत्तिच्छेद होगा तब भारत की समाज-रचना टूट जायगी और नवीन समाज-रचना की-स्थापना होने के पहले पशुओं के साथ साथ असंख्य मनुष्यों का भी संश्लेष हो जायगा। इसलिए हृदय-धर्म के साथ साथ जीवन-धर्म भी आवेश करता है कि गाय और बैल की रक्षा करो।



गाय और बैल की उपयोगिता एकसी और हमेशा के लिए होती तब तो कोई सवाल ही नहीं था। हलने का काम नहीं होता तब बैल गाड़ी में जोता जाता है, इस तरह उस बेचारे की वृत्ति तो अश्वघात चलती रहती है। वर्ष भर में प्रत्येक दिन उसे सेवा देने का मौका मिलता रहता है। इस लिए वह निर्भय है। जब तक उसका वृत्तिच्छेद नहीं होगा, उसकी यह निर्भयता बराबर टिकी रहेगी। काम की चीज को कभी भय नहीं होता।

गाय की बात जुदी है। 'बारह मासी' के फूल की तरह वह अखंड दूध नहीं दे सकती। वह दूध नहीं देती, और खास समय के बाद वह निरिन्द्रिय भी हो जाती है। तब वह न तो बछड़े दे सकती है और न दूध ही। ऐसी स्थिति में गाय की रक्षा करना मनुष्य का धर्म है। अब यह सवाल मनुष्य के अपने ज्ञान और कौशल का है कि वह इसका रक्षण कम से कम खर्च से और स्वाभाविक रीति से करे। मनुष्य को अपनी तमाम बुद्धि-शक्ति और योजना-शक्ति को इसमें लगा देना चाहिए। गाय की प्रजा पुष्ट हो, इसका दूध बड़े और शक्ति-वर्धक हो, जब उसका दूध उड़ जाय तब उसकी गुजर कम से कम खर्च में किस तरह की जा सकती है, और इसके निरिन्द्रिय होते ही स्वाभाविक मृत्यु तक इसकी वृद्धावस्था में होनेवाली घटी किस तरह कम से कम हो इत्यादि बातों को मनुष्य को सोचना चाहिए। वृद्धावस्था में गाय के लिए कोई हलका सा काम लेकर घटी को कम किया जा सकता है। जब तक गाय जीये तबतक उसके गोबर और पेशाब का बढिया से बढिया उपयोग किया जाय। इसके मर जाने पर इसके चमड़े, हड्डियाँ, आँतें आदि से अधिक से अधिक प्राप्ति की जानी चाहिए। और इतना करने पर भी इसका शेष खर्च दूध के जानवरों से निकाला जाय तभी सच्ची गोरक्षा हो सकती है। जो गाय खुद जी कर मनुष्य को भी जिलाती है, बल्कि उसके पास चार पैसे कर देती है, वह अपनी ही जाति के पशु असहाय प्राणियों को भी जरूर आसानी से जिला सकती है। सिर्फ मनुष्य को अपना लोभ उस हद तक कम कर देना चाहिए।

भैंस गाय की जबरदस्त प्रतिस्पर्धिनी है। इसके पाडे का बोझा मनुष्य जाति पर पड़ता तो उसकी आँखें खुल जातीं। परन्तु मनुष्य ने तो हरकोई बहाना ढूँढ कर या बिनाही बहाने के निर्दयतापूर्वक पाडे को मारने की प्रथा अद्वितीय कर के भैंस के दूध का उपयोग शुरू कर दिया। और सो भी इसलिए कि वह "चरबी को बढ़ाता है। इसीलिए गाय की जीविका ज्यादा मुश्किल हो गई। अब यदि गाय को हम जिलाना चाहें तो हमें ऐसे सभी स्थानों से भैंस के मोह को छोड़ देना होगा जहाँ गाय को आश्रय दिया जा सकता हो।

यह ठीक है कि हम भैंस को न पालते तो अच्छा होता। पर यह बात नहीं कि भैंस को संसार में स्थान ही न हो। कई प्रदेश ऐसे हैं जहाँ बैल काम ही नहीं कर सकते। वहाँ की आबोहवा और खुराक भी बैल को सुआफिक नहीं होती। ऐसे स्थान पर पाडे काम देते हैं, और वहाँ पाडे का कीमत बैल की अपेक्षा ज्यादा होती है। ऐसे प्रदेशों की बड़े पैमाने पर खोज-भाल करके जितने हो सके उतने पाडे वहाँ भेज देने चाहिए। वहाँ पाडे सस्ते होंगे, खेती बढ़ेगी, और किसानों को लाभ होगा। स्वराज्य में खेती और रेलवे महकमा मिला दिये जावेंगे, और जिन जानवरों की जहाँ जरूरत होगी उन्हें वहाँ देश के खर्च से भेज दिया जायगा। यह बात बिल्कुल संभवनीय और व्यवहार्य है। जहाँ बैल नहीं जिल सकता हो वहाँ गाय की भी गुजर नहीं। निःसल खुराक पर गाय नहीं जी सकती। ऐसे स्थानों में भले ही भैंस जाकर अपना घर बना के और लोगों को दूध जैसी पौष्टिक खुराक दे।

ऐसे स्थान इने गिने ही हैं जहाँ बैल की गुजर न हो। पाडे मजे में रह सकें। इस लिए भैंस-पाडों की वृद्धि उसी के लिए सीमित कर दी जाय तो अच्छा हो।

बकरी का सवाल जरा भिन्न है। अभी बकरे-बकरियों मनुष्य भक्ष्य-भक्षक की दृष्टि से काम ले रहा है, सेव्य-सेवक की दृष्टि से नहीं। इन दोनों दृष्टियों का-दोनों सम्बन्धों का-सम्बन्ध करना मनुष्य के लिए असम्भव हो जाना चाहिए। यह ठीक कि बकरी गरीब मनुष्य की गाय है। परन्तु बकरी को दूध के लिए वही रख सकता है जो उसे कोई काम दे सके। बकरे के सारे बाद उसके बाल, चमड़े, आदि से जो उत्पत्ति होती है, इतनी नहीं होती जिससे उसका जन्मभर पोषण हो सके। पेशाब और लेंडी का खाद भी, अच्छा होता है, पर उसकी पर भी उसकी गुजर नहीं चल सकती। और बकरी दूध से इतनी आय तो हरगिज नहीं होती कि जिससे बकरी पोषण भी हो सके। यदि ऐसा करने का प्रयत्न भी करें तो वह गो-दोह होगा।

बकरी का दूध लेकर उसके बच्चों को मार खाने का रिवाज भले ही सारे संसार में प्रचलित हो, परन्तु मनुष्य-इंसान तो उससे घृणा होनी चाहिए। हाँ इस तरह श्रम-विभाग हो सकता है कि मांसाहारी लोग बकरों को खा लें, और अन्नाहारी लोग बकरों का दूध खावें। परन्तु इस स्थिति में इन जानवरों का पोषण तो मांसाहारी ही करेंगे न? अन्नाहारी तो बकरी को पाल करके उसके बच्चों को मार खाने के लिए मांसाहारी के हाथ नहीं बेच सकेंगे और न वह ऐसे निरुपयोगी प्राणी का पालन ही कर सकेंगे। बकरी की औलाद इतनी तेजी से बढ़ती है, कि अच्छे से अच्छे अन्न के लिए भी उसका पोषण करना असंभव हो जायगा।

इसलिए जहाँतक हो सके, बकरी और भैंस के दूध का उपयोग नहीं करना चाहिए, पालतु जानवरों का वृत्तिच्छेद नहीं होने चाहिए। और यह कोशिश होनी चाहिए कि जितना हो सके उनकी उपयोगिता को बढ़ायें और अन्त तक उनसे काम लें। आज इतनी रक्षा करना असंभव नहीं है। इसलिए उसी पर जोर देकर केवल उस एक वस्तु को सिद्ध करने के लिए ही हमारी सारी शक्ति को केन्द्रित कर देना चाहिए।

(नवजीवन)

वृत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

### विवेकानन्द और कर्ताई

एक पत्र लेखक ने मुझे अमेरिकन प्रश्न-कर्ताओं के उत्तर विवेकानन्द के दिये जवाबों से कुछ मनोरंजक अवतरण भेजे हैं।

भारत के ग्रामीण जीवन के विषय में भाषण देते हुए वे कहते हैं "कहीं कहीं एक मामूली सी देहाती लड़की अपने चरखे पर कपड़े बुन रही है। 'मुझसे द्वैत की बात मत कहो, मेरा चरखा तो बुरा है' सोऽहम् सोहम् — वही मैं हूँ वही मैं हूँ; इन यंत्रों से सायन्स से क्या फायदा? उनका तो केवल यह परिणाम हुआ कि वे ज्ञान का प्रचार करते हैं। पर आपने आवश्यकताओं के सवाल को हल करने के बजाय उसे और भी मुश्किल बना दिया। यंत्रों से गरीबी का प्रश्न नहीं सुलझ सकता। उससे तो उल्टा जीवन-कलह और भी भीषण हो गया है। प्रतियोगिता भी तेज होती जा रही है। x x x प्रत्येक चीज की कीमत इस अनुसार आँकी जानी चाहिए कि वह वस्तु परमात्मा के रूप में कितनी मिलती जुलती है।

(य० इ०)

मी० क० गोपाळ



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

सादी की शर्त

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४३ ]

६]

मुद्रक-प्रकाशक  
सामी आनंद

अहमदाबाद, जैष्ठ्य सुदी १० संवत् १९८४  
गुरुवार, ९ जून १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

## ‘चरखे में मधुर संगीत’

संगीत एक अपूर्व वस्तु है।

\* \* \*  
आदमी चाहे कितना ही दुखी हो, एक घड़ी भर यदि वह संगीत सुन लेगा तो अपने दुख को हमेशा के लिए भूल कर सकता है।

\* \* \*  
यह एक तीव्र आंतरिक वेदना-पीड़ा थी। इस पीड़ा से मुक्त किए कई बार मैं संगीत की ही शरण लेता था।

\* \* \*  
किसी ने मुझ से कहा— दारिद्र्य-माशक सुदर्शन चक्र, मनुष्य के दुःख-निवृत्ति शत्रुओं का संहार करने वाला दैवीशस्त्र, इससे मुक्त करनेवाला, निर्भयता का देनेवाला, अदभुत दैवी शक्ति का आगर, चरखा भी संगीत का सा गुणकारी है।

\* \* \*  
एक ही दिन मैंने चरखा खरीदा और मैंने उसे चलाना शुरू किया।

\* \* \*  
मेरे हाथ में पकड़ी हुई पूती से निकलनेवाले लम्बे तार की तरह चिजली की गति से घूमनेवाले चरखे की ओर मैं धटों धटता रहता। एक समय जब मैं चरखे की ओर एक टक देख रहा था, तब वह मुझे एक पुराने मित्र के समान प्रतीत हुआ। उसे मैं जानता था, इसलिए मानो वह मुझे अपने घर्षर स्वर से उलहना न दे रहा हो ऐसा मुझे मालूम हुआ। मैं शरमिन्दा हो गया। मेरी आँखों में आँसू का कारण अब मेरी समझ में आया। मैंने सोचा कि मैंने उसकी ओर पुनः देखने की मुझे हिम्मत नहीं है। आँखों में आँसू छल छला आये। फिर धीरे से मैंने अपनी कन्धियों में से उस चरखे की ओर देखा—मानो एक बालक अपनी लुट माता की ओर न देखता हो। उसकी ओर मैंने बार-बार मुझे हंसता हुआ दिखाई दिया। अरे, वह मंद मंद कुछ गुन गुना ही रहा है।

\* \* \*  
“जब प्राचीन काल में मैं भारतीयों के गृह का प्रदीप था —”  
यह सत्य है। वृहस्पति के प्रत्यक्ष दीप के ही समान था।  
“तब मेरे पीना किसी को अच्छा नहीं लगता था।”  
यह सत्य है, यही बात थी।

“तब सभी सुखी थे, चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था।”  
हाय, कहां वह हमारा शान्तिमय जीवन और कहां आज कल की यह गुलामी!

“ईर्ष्या और लोभ के कारण कुछ लोगों को यह नहीं भाया। सच कहता है भाई, भारत के वैभव और लक्ष्मी को देखकर विदेशियों को इसे जीतने की लालच हुई, और अन्त में हमारे अन्तःकलह के कारण उनकी बन आई।

“इतने में पश्चिम से हम एक भारी तूफान आया।”  
हां, ठीक तो है!  
“मेरी ज्योति विलीन हो गई। भारत में अंधकार का साम्राज्य फैल गया।”

सचमुच! तू गुल हो गया; भारत में अंधकार छा गया; इसीलिए सभी अंधे हो गये, सुध-बुध भूल गए, और धर्म-माय से भटक गये।  
“मुझे छोड़ और धर्म को भूल कर तुमने बड़ा पाप किया है।”

हां सच है, इसी पाप के फल आज हम भुगत रहे हैं।  
“अब बताओ, इसका प्रायश्चित्त तुम किस तरह करोगे?”  
प्रायश्चित्त! हां प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। बिना प्रायश्चित्त के हम पापमुक्त कैसे हो सकते हैं?

“तो अब मेरी ज्योति घर घर में हमेशा के लिए प्रकट कर दो। अब फिर भूल कर भी मुझे न छोड़िएगा। बस यही सच्चा प्रायश्चित्त है।”

शनैः शनैः उसका वह सुर बन्द हो गया, पर मेरे हृदय में तो वह हमेशा गूंजता ही रहेगा।

फौरन मैं प्रायश्चित्त करने की तैयारी करने लग गया।

“वनवासी”

उपर्युक्त लेख मुझे जैसा मिला है वैसा ही मैंने उसे छाप दिया है। भाई करसनदास चित्तलिया के एक विज्ञापन द्वारा चरखे पर निबन्ध मांगने पर जो लेख मिले थे, उनमें से यह एक है। उनमें से जिसे अच्छा समझ कर उन्होंने रख छोड़ा था, वह पिछले वर्ष उन्होंने मुझे दिया। किसी समय छाप दिया जायगा यह सोचकर मैंने भी उसे रख लिया, और आज पाठकों के सामने पेश करता हूँ।

यह लेख २१-९-२१ को लिखा गया था। वह जमाना जुदा था और आज का जमाना जुदा है। उस समय नशे में आकर लोग चरखे



की स्तुति करते थे। इसलिए यदि 'वनवासी' की नजर से 'नवजीवन' गुजरता हो और वे इस टिप्पणी को पढ़ें, तो मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या वे आज भी वही उत्तर निकाल सकते हैं जो उनके मुँह से स. १९२१ में निकले थे? जिन कितने ही लोगों को सन १९२१ में चरखा प्रिय लगता था उन्हींको वह अब अप्रिय मालूम होने लग गया है। वनवासी उन्हींमें से तो नहीं हैं? यदि ऐसा हो तो वे भले ही अपनी चरखे की निदा भी लिख भेजें। और यदि उसकी भाषा अच्छी होगी तो मैं उसे जरूर छाप दूंगा। क्योंकि मैं चरखे के लिए एक भी झूटे प्रमाण-पत्र का संग्रह करना नहीं चाहता। चरखे को यदि हमें निवाहना है तो वह अपनी निजी शक्ति पर ही निभ सकता है। चरखे की तारीफ में लिखीं अनेकों कविताओं के छापने पर भी यदि उसमें अपनी शक्ति न होगी तो वह आगे नहीं बढ़ सकता। यदि उसमें सत्त्वमुच शक्ति होगी तो चरखा चलानेवाले एक ग्रामीण का ग्रामीण भाषा में प्रकट किया हुआ अनुभव भी उसके समर्थन के लिए काफी होगा। और आज तो 'नवजीवन' का प्रत्येक पादक जानता है कि ग्रामीण भाषा में चरखे का समर्थन हो ही रहा है। चरखा धीरे धीरे किन्तु बराबर आगे कदम बढ़ाता जा रहा है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### रोगशय्या के पास से

नन्दी-दुर्ग से लिखा यह आखिरी पत्र होगा। क्योंकि अब यहां जोरों से आंधी और तूफान आने लगे हैं। हवा में टंडक भी बड़ गई है। कुछ ही दिनों में यहां रहना असंभव हो जायगा। प्रातःकाल का घूमना तो अभी से मुश्किल हो गया है। और धूप में तो गांधीजी घूमने के लिए निकलते ही नहीं। इसलिए कई बार सुबह सुबह घूमने का आनन्द गँवाना पड़ता है। इसलिए मुझे मादस होता है कि आगामी सप्ताह का पत्र बंगलोर से ही लिखूंगा।

### पक्षियों की प्रवचन

इच्छों के सहवास में गांधीजी को जो आनंद प्राप्त होता है, उसना शायद ही और किसी के साथ होता हो। बंगलोर की एक मिशन कन्याशाला की बालाएं यहां गर्मी की छुट्टियां बिताने के लिए आई थीं। राह में एक दो प्रतिदिन मिलतीं। एक दिन उनकी मुख्य अध्यापिका ने गांधीजी को एक मधुर पत्र लिखा। बालाओं ने भी अपने कोमल कन्चे अक्षरों से एक पत्र में लिखा कि "इस टेकड़ी पर की हवा, वनस्पति, सुंदर सुंदर पक्षी आदि से आपको अवश्य आनंद होता होगा। हम रोज प्रार्थना करती हैं कि आपको यहां पर जल्दी आराम हो जाय।" इस प्रेम से लबालब भरे पत्र का उत्तर देते हुए गांधीजी ने लिखा "प्यारे पक्षियो, तुम्हारे पत्र ने मेरे लिए एक शक्तिशाली औषधि का काम किया है। कुछ रोज बाद जब मैं अधिक चंगा हो जाऊंगा, तब तुम जरूर आइयो।"

तदनुसार मिस रॉबिन्सन अपनी ३० बालाओं को ले कर एक शाम को आ पहुंची। पचास वर्ष से यह शाला चल रही है अर्थात् जब इस राज्य का शासन अंगरेजों के अधीन था तब के मिशनो ने यहां प्रवेश कर के शालाएं स्थापन की हैं। और मिस रॉबिन्सन लगातार बीस वर्ष से अपनी विद्यार्थिनियों को प्रतिवर्ष यहां लाती हैं। इस शाला की कितनी ही बातें उल्लेखनीय प्रतीत होती हैं, इसलिए यहां बहते चलते उनका उल्लेख कर देता हूँ। गांधीजी ने सब से पहले पूछा कि इस संस्था में प्रत्येक कन्या का खर्चा कहां तक जाता है। '४००' मुन कर ने चौंके। पर जहां सारी रहन सहन यूरोपीय हो, अंगरेजी में शिक्षा दी जाती हो, अमेरिकन महिलाएं अध्यापिकाएं हो, वहां कम खर्च में काम भी कैसे चल सकता है?

परन्तु इस टेकड़ी पर उनका वताव और रहन-सहन शोभा के योग्य थी। उन्होंने यहां पर एक सस्ता सा मकान २) दैनिक किताबें पर ले रखवा है, जो राह पर ही है। इतने छोटे से मकान में सत्तर लड़कियां तो सो नहीं सकती थीं। इसलिए बाहर बृशकुन छोटी छोटी छोलदारियां खड़ी कर दी गई हैं। बड़ी बालाएं इन छोलदारियों में ही सोती हैं। और प्रतिदिन दो दो बालाएं को पाली पाली से चौकी करती हैं। चौकी इसलिए नहीं की जाती कि यहां चोर आदि का डर है। नहीं, यह उपाधि तो यहां नहीं। यह चौकी तो इस लिए होती है, कि यहां जहां तहां सफाई का भय रहता है। मिस रॉबिन्सन बड़ी बहादुरी के साथ कहती थीं कि लड़कियों ने कितने ही सांपों को मार डाला है। बालाएं अपना खाना खुद ही बना लेती हैं। सिवा एक नौकर के और उनके किसी की जरूरत नहीं होती। सुबह-शाम खूब घूमती हैं, तो पहर में एक दो घंटे शाला की पढाई होती है, और शाम को संगीत और ड्रिल। रात को कहानियां पढी जाती हैं, जिन्हें सब हकूत बैठ कर सुनती हैं। इस प्रकार खेल के साथ साथ उन्होंने काम भी मिला दिया है। गांधीजी ने तो उन्हें केवल प्रेमपूर्वक 'प्यारे पक्षियो' कर के सम्बोधित किया था। परन्तु हमें यह देखना पड़ा आनंद और आश्चर्य हुआ कि उनमें से कितनी ही लड़कियों ने पक्षी शिखर पर पक्षीवाली लकड़ी हाथ में रखी थी। अध्यापिका ने सब बात का खुलासा करते हुए कहा "हमने लड़कियों के कई मंडल बना दिये हैं। और प्रत्येक मंडल को भारत के पक्षियों के नाम दे दिए गये हैं। प्रत्येक बाला अपने अपने पक्षी के नाम से ही पुकारा जाती है। हमारी शाला में बालाओं को व्यक्तिशः इनाम कभी नहीं मिलता है। प्रत्येक मंडल को स्वच्छता, व्यवस्था और पढाई के अनुसार इनाम मिलता है। इससे मंडलों के बीच ही प्रतियोगिता होती रहती है, और पारस्परिक सहायता के सिद्धान्त का अनाम पालन होता है।

घात घात में मिस रॉबिन्सन ने कहा "देखिए गांधीजी, इनके सूत कांतना भी सिखाया जाता है"। इस बेचारी ने तो यह केवल गांधीजी को खुश करने के लिए ही कहा होगा। पर उसे यह पता था कि कांतने वाले को खादी भी पहननी चाहिए? "जस कांतती होगी। मुझे यह सुनकर आश्चर्य नहीं हो रहा है। क्योंकि आपके विशधिकारी स्टेनली जोन्स जब यहां आये थे तब वे कह गये थे कि हमारी शालाओं में हम कताई और खादी का भी प्रवेश कर देंगे। पर खैर, देखें वताओ तो, खादी किस चिडिया या मनुष्य का नाम है? वताओ देखें?"

बालाओं ने हंस कर कहा "जी, खादी तो कपडा होता है।" "ठीक है। वताओ, कैसा कपडा?" "मोटा कपडा!"

गांधीजी ने हंस कर कहा "यह तो है ही। पर इसके बनाने वालों के विषय में तुम कुछ जानती हो?"

"देश में बनता है।"

"नहीं, इतने से काम नहीं चलेगा। और वताओ, जब कोई न बता सकी तो गांधीजी ने उसकी परिभाषा सुना कर कहा—

"अब देखें कहो तो खादी क्यों पहननी चाहिए?"

एक बाला ने कहा "इसलिए कि वह सस्ती मिलती है।"

"नहीं यह तो बिल्कुल लचर दलील है। क्या हम वे सब चीजें खरीदते हैं, जो सस्ती मिलती हैं?"

दूसरी ने जवाब दिया "यह अच्छी तरह धोई जा सकती है।"

"यह भी कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं हुआ। जरा और सोचो।

देखें, तुम में सब से कम लोग खादी पहनते हैं?"



१९२७

१९२७

सहज सोना

२) दैनिक क्रिया

से मकान में

बाहर वृक्षों

बड़ी बालों

दो दो बालों

ए नहीं की

गधि तो यहाँ

जहाँ तहाँ

के साथ

ला है।

कर के और

धूमती है,

और शाम को

जिन्हें सब

उन्होंने काम

बल प्रेमपूर्वक

हमें यह देस

लड़कियों ने

अध्यापिका ने

कई मंडल

के नाम दे

म से ही पुनः

म कभी नहीं

डार्ड के अनु

ही प्रतियोगि

त का अना

गांधीजी, इस

तो यह

उसे वह

हिए ? " बस

हा है। क्योंकि

वे कह गये

प्रवेश कर

या मनुष्य

होता है।

इसके बनाने

जब कई

कहा—

" "

ही है।

हम वे सब

सकती है।

और सोचो।

क्या तुम यह बता सकती हो कि हमारा देश कैसा है ?  
 " सुंदर " ! पर एक होशियार लड़की ने कहा  
 " हाँ तो ऐसे करोड़ों गरीब लोग हमारे देश में हैं। वे अपने बच्चों  
 के लिए तुम्हारी तरह स्कूल में नहीं भेज सकते। तुम्हारे समान  
 लड़की के लिए ४०) माहवार देने के लिए रुपये वे कहां से  
 लेते तो मजदूरी कर के पेट भरते हैं। अर कितनों ही को  
 मजदूरी भी नहीं मिलती। उनसे जो सूत कतवा कर बुना जाता  
 है वह खादी बनती है। इस खादी को यदि तुम पहनने  
 लो तो उनके बच्चों को तुम्हारे समान शिक्षा तो नहीं मिल  
 पाएगी, पर हाँ, उनके लिए दूध, या कभी कभी साग मिल जाया  
 है, यह तो कैसे कहूँ कि इस ४०) माहवार की महंगी शिक्षा  
 तुम इसलिए छोड़ दो कि यह दूसरों को नसीब नहीं हो सकती ?  
 तुम कि परमात्मा ने तुम्हें ऐसी खचीली शिक्षा प्राप्त करने की  
 शक्ति दी है, इसलिए तुम्हें उन गरीबों के बच्चों को  
 शिक्षा चाहिए। वल्कि उनके साथ तुम्हें कुछ आध्यात्मिक सम्बन्ध  
 बना चाहिए। और यह सम्बन्ध तुम उनकी बनाई खादी पहन  
 कर बना सकती हो। पर अब यह बहुत हो चुका। अब तुम्हें  
 और संगीत सुने सुनाना होगा " बालाओं ने एक मधुर गीत  
 गीत और इसके बाद एक ने गांधीजी के सामने अपने हाथों  
 के ऊपर रखते हुए कहा " पता नहीं आप खावेंगे या नहीं, पर  
 मैं सिर्फ ये चॉकलेट ही बना कर लाई हूँ। "

### महासभा के अध्यक्ष

एक दिन सुबह अचानक महासभा के अध्यक्ष साहब आ पहुँचे  
 सभावासी तो हर्षित हैं। बात बात में खडबडा कर हँसना,  
 प्रसन्न स्वभाव आदि सब बड़ा आनन्द दायक था।  
 उनकी बातें उमड़ा पड़ती थीं। उन्हें सतानेवालों के विषय  
 में हीन विनाद पूर्वक खूब बातें कहीं। उनको उत्साहित  
 गांधीजी ने कहा " आपने तो खूब की साहब। " यह  
 उनके चेहरे पर कुछ गर्वयुक्त आनन्द की रेखा चमकने लग  
 गई। जब जाने को उठ खड़े हुए, तो गांधीजी ने कहा " कोई  
 कठिनाइयाँ ताँ आवेंगी ही। पर आप तो उनकी जरा भी  
 धिक्काई न करो। बस, उसी एक बात को पीटते रहिएगा। "

### स्वच्छता

डॉक्टर आये थे। उन्होंने सलाह दी कि अब पांच सात  
 दिन बंगलोर चले आँवें तो अच्छा होगा। गांधीजी ने पूछा  
 " मच्छर तो होंगे न ? " डॉक्टर ने झट जवाब दिया  
 " बंगलोर तो बहुत हैं। " गांधीजी को यह सुन कर जरा आश्चर्य  
 हुआ। पर इतनी सुंदर टेकरी पर जब मक्खियाँ  
 उड़ती हैं, तो बंगलोर में मच्छर क्यों न हों ? हमारे लोग इस  
 टेकरी पर मक्खी कैसे हो सकती है ? पर यहाँ तो सुबह  
 ही लोग लोथ लेकर बाहर निकल पड़ते हैं, और सुन्दर हवा को  
 श्वास लेते हैं। " इस पर डॉक्टर ने बाह्य स्वच्छता विषयक  
 बातें कहीं। वे चार वर्ष तक पश्चिम में  
 रहे हैं। उनकी ये बातें ध्यान देने और अनुकरण  
 के लिए मैं यहाँ उन्हें लिख देता हूँ।

डॉक्टर बोले—अरे, मुझ जैसे डिग्री लेकर इंग्लैंड को गये। पर  
 मैंने यहाँ बंगलूर की लज्जा मालूम हुई कि स्वच्छता विषयक  
 बातें कहीं। एक बार हम स्कॉटलैंड के सरोवर-

प्रदेश में सैर करने के लिए गये। चलते चलते एक रमणीय स्थान को  
 देखकर हम वहाँ बैठ गये। वहाँ खाया, पीया और जैसा कि  
 अक्सर करते हैं, कागजों से हाथ पोंछ कर उनको मसल कर फेंक  
 दिया। हमारे साथ एक मजदूर हमारे खाने की चीजें ले कर आई  
 थी। उसने झट इन कागजों को उठा कर अपनी टोकरी में रख लिया।  
 मैंने पूछा ' इन्हें कहां ले जाओगी ? ' तब वह बोली ' आप यहाँ  
 इसलिए आये हैं कि यह स्थान सुंदर है। यदि आप आज इसे गंदा करके  
 जावेंगे तो यहाँ फिर कौन आवेगा ? ' मैं बड़ा लज्जित हुआ। मैंने  
 देखा कि वह लड़की इन कागजों को अपनी टोकरी में रखकर पूरे साठ  
 मील तक वापिस ले आई, और पुनः अपने मुकाम पर आने पर जब  
 उसने उन्हें जला दिया, तब कहीं दूसरा काम करने लगी। यह स्वच्छता  
 हम लोगों में कब आवेगी ? बंगलोर ही में देखिए न ! लोग  
 कितने स्वार्थी हैं ? उन्हें इस बात का विचार भी नहीं छू जाता कि  
 हमारे फलों काम से दूसरों को क्या हानि और लाभ होगा ! पश्चिम में  
 सहकार भी बहुत है। मैंचेस्टर में नल लाने थे। पानी सौ मिल पर  
 था। इतना खर्च कौन उठावे ? सब ने उन सौ मील के अंदर आने  
 वाले गांवों में रहनेवालों से सलाह-मशविरा किया। उन सब से चंदा  
 लिया, और प्रत्येक गांव में पानी के नल बनाते बनाते मैंचेस्टर  
 में नल ले आये। वह बात आपको हमारे यहाँ नहीं दिखाई  
 देगी। इंग्लैंड और स्कॉटलैंड में आप मीलों चले जाइए, कहीं  
 मक्खी मच्छर आपको देखने की भी न मिलेंगे। अरे, एक  
 दिन मुझे कौआ दिखाई दिया तो मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान  
 में तो नहीं लौट आये ? नेपल्स में गंदगी देखी तब हमारे  
 देश की याद हो आई। वहाँ की इस स्वच्छता का कारण  
 यही है कि वहाँ स्वच्छता के नियम बड़े कडक हैं, और उसी तरह  
 उनका पालन भी किया जाता है। यहाँ तो पूरा मकान बन जाने पर  
 हम कहीं उसकी मंजूरी मांगते हैं, और वह दी भी जाती है। वहाँ तो  
 सारे मकान का छैन, पानी और गटर की व्यवस्था बिना देखे कभी मंजूरी  
 मिलती ही नहीं। मैं तो कहता हूँ साहब, कि यहाँ के पढे लिखे लोग  
 भी स्वच्छता के मामूली से मामूली नियमों को नहीं जानते। और  
 जानते भी हूँ, ताँ परवा नहीं करते। कुछ ही दिन की बात है। यहाँ  
 के एक बड़े परिवार में छेग का एक केस हो गया, तो उसे देखने के लिए  
 हम गये थे। ऑपरेशन कर गठान को काँटा और ऑपरेशन का खून, मवाद,  
 पड़ा, गठान आदि का नाश करने का कह कर हम चले आये। दूसरे  
 दिन हेल्थ आफिसर ने जा कर देखा तो पाया कि इन भले आदमियों ने  
 यह सब अपने पड़ोसी के आहूते में फेंक दिया है। आखिर उस  
 ऑफिसर ने उसे साफ और नाश करवाया। सच कहता हूँ साहब, मुझे  
 तो अपने इन लोगों की बड़ी लज्जा मालूम होती है। कहां इस  
 हिन्दुस्तान में मैं पैदा हो गया ! बड़ी शर्म मालूम होती है !

गांधीजी बोले " सच है, सच है, हिन्दुस्तान में पैदा होने पर हमें  
 लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इस बात पर हमें  
 जरूर लज्जित होना चाहिए कि हम स्वच्छता नहीं जानते। और  
 यदि पश्चिम हमें किसी बात की शिक्षा आज दे सकती है तो  
 उसकी स्वच्छता जरूर एक ऐसा गुण है जिसकी हमें उससे शिक्षा  
 लेनी चाहिए। "

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देसाई

आश्रम भजनावलि का मवीन और संशोधित संस्करण छप  
 गया; कीमत २) पोस्टेज २)। विना जवाबी कार्ड या टिकट के  
 जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की बी. पी.  
 नहीं भेजी जायगी। बी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम पेशगी  
 व्यवस्थापक, हिन्दी नवजीवन

अहमदाबाद



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, जेष्ठ शुक्ला १० संवत् १९८४

## खादी की शर्त

हिन्दू-मुसलिम-एकता तथा ऐसी ही अन्य बातों के लिए मानव प्रयत्नों से जो कुछ भी हो सकता है, वह सब अपनी शक्तिभर अधिक रूप से कर के श्री श्रीनिवास आर्यगार अपने प्रयत्नों द्वारा इस वर्ष को महासभा के इतिहास में एक अपूर्व कार्यशाली वर्ष बनाने की कोशिश कर रहे हैं। वे मेरे पास आये, और महासभा के सदस्यों के अनिवार्य रूप से हमेशा खादी पहनने की शर्त को ढीली करने की बात कहने लगे। मैंने उन्हें कह दिया कि इसमें कोई रियायत करने की तो बात ही नहीं है। गौहटी में तो मैंने किसी बात का भी आग्रह नहीं किया था। पर जब मुझ से पूछा गया तो मुझे अपना यह मत प्रकट करना पड़ा कि या तो खादी की शर्त बिलकुल उठ जानी चाहिए, या महासभा के सभ्यों के लिए खादी का हमेशा पहनना लाजिमी हो जाना चाहिए। केवल इस प्रसंग प्रसंग पर खादी पहनने से कोई काम नहीं चलेगा। और अब भी मैं उसी मत पर कायम हूँ।

पर यदि महासभा के सभ्य अनुशासन को-नियम की पाबन्दी को-पसन्द नहीं करते, और पसन्द करने पर भी यदि हमेशा खादी पहनने की शर्त को रहने देना ठीक नहीं समझते तो, और यदि वे हर मौके पे मौके उस शर्तकी हंसी-मखौल उड़ाया करते हैं तो, अच्छा यही है कि वह शर्त ही बेशक उठा दी जाय। आखिर एक लोकप्रिय संस्था में बहु संख्या के मत पर ही अमल होना चाहिए। आखिर मैं तो इस बात को हमेशा मानता आया हूँ कि यदि कुछ सम्मानित लोग किसी व्यावहारिक नियम को अच्छा नहीं समझते, तो यह बात बहुमत के लिए गौरव की तथा महासभा के लिए फायदे मन्द होगी कि वह बहु संख्या के बलपर मिलने वाले हक को छोड़ कर अल्प संख्या की बात को मान ले। बहु संख्या का नियम तो वहीं काम देता है, जहां बिरोधी लोग अपनी बात पर अधिक जोर नहीं दे रहे हों। बल्कि निर्भय खिलाड़ी की तरह वे बहुमत के द्वारा तय की गई बात को पालन करने के लिए तैयार हों। एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करनेवाले दलों के विवाद-प्रवाह में किसी संस्था के बह जाने पर वह शान्तिपूर्वक कोई काम नहीं कर पाती। खास कर जब कि वे दोनों एक दूसरे को देख कर गुंरा रहे हों, और उन दोनों दलों में से प्रत्येक दल भले या बुरे तरीकों से भी अपनी बात को पूरी करने पर तुल गया हो। इसलिए मैंने तो अध्यक्षसाहब से साफसाफ कह दिया कि यदि अल्प-मत वाले मित्र उस शर्त का अपनी इच्छापूर्वक पालन न कर सकते हों, तो उस शर्त का निकल जाना ही भला है।

पर यह बात मेरे व्यक्तिगत मत से बिलकुल जुदी है। मुझे अपना मत बदलने के लिए अपील करना मेरे साथ अन्याय करना है। खादी की शर्त तथा महासभा को किस तरह चलाया जाय इत्यादि विषयक मतोंपर मुझे कायम रहने दिया जाय। मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि मेरे मत को महासभा के एक मामूली से मामूली सभ्य के मत की अपेक्षा किसी प्रकार अधिक महत्व न दिया जाय। मेरा तो स्पष्ट यही मत है कि यदि महासभा अपने देश की भूखों मरनेवाली जनता से सजीव सम्बन्ध बनाये रखना

चाहती है तो वह बड़ी गलती करेगी, यदि उच्च वर्गों और गरीब जनता के बीच सम्बन्ध स्थापन करनेवाली एक मात्र वस्तु-खादी को छोड़ देगी। पर मैं जानता हूँ कि देश के दूसरे प्रकार के विचारों वाला भी एक दल है, जो खादी को उच्च वर्गों तथा जनता के बीच सम्बन्ध स्थापित करनेवाली वस्तु नहीं, बल्कि 'महात्माओं' की सनक और उनके अकारण प्रेमकी वस्तु समझते हैं। इस दल के लोगों का मत भी उसी सम्मान का मुस्तहक है जिसका दावा मैं अपने मत के लिए करता हूँ। महासभा के अध्यक्ष और उसके सभ्यों को चाहिए कि वे इस प्रश्न पर ठीक तौर से विचार करें और जिधर सत्य हो उसके अनुसार इसका निर्णय कर दें।

बात यह है कि यदि खादी में कुछ भी शक्ति है, यदि वह अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य हो गई है, यदि उसका सन्तुष्ट और पोषण करने के लिए दृढ-प्रतिज्ञ, सच्चे, और स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता हैं, यदि सचमुच उसमें कोई आंतरिक मूल्य है, तो महासभा के सदस्य होने की शर्त की हैसियत से, अथवा पूर्णतया छोड़ देने पर भी वह फूलफल सकती है। इसके विपरीत महासभा को एक ऐसी वस्तु को सबसे पहले अंगीकार करना होगा जो देश में एक सर्वोच्च शक्ति होंगी। हां, पहले पहल, जयतक कि वह वस्तु अपनी शक्ति का परिचय नहीं दे देती, महासभा उसकी उपेक्षा कर सकती है। ऐसी कई चीजें हो सकती हैं—हैं भी—जो स्वयं बड़ी अच्छी हैं परन्तु महासभा जैसी एक विशाल लोकप्रिय संस्था उन्हें मान इसलिए नहीं अपना सकती कि वे अच्छी हैं। वह तो ऐसी चीजों को अपना सकती है जो अच्छी होने के साथ साथ लोगों को प्रिय भी हों।

यदि यह लोकप्रियता उसमें न हो तो महासभा लोगों की प्रतिक्रिया निश्चिन्त संस्था ही न रहे। तब तो वह केवल सुधारकों और शौकीनों की संस्था हो जायगी।

इसलिए महासभा के सभ्यों को अब मेरे अथवा और किसी के मत से बिना विचलित होते हुए इस प्रश्न को एक बारगी तय करना चाहिए। और मेरा तो हमेशा यही मत रहा है कि प्रत्येक जरूरी बात का निर्णय करने का महासमिति को केवल अधिकार है नहीं, बल्कि वह ऐसी जरूरी बातों का निर्णय करने के लिए बाध्य भी है, उसी तरह जिस तरह कि स्वयं महासभा है।—परन्तु नहीं यदि ऐसे मौकों पर महासभा द्वारा उसके निर्णय के पालन जाने का खतरा हो। इस खतरे का सामना करना उसके लिए अनिवार्य है।

महासभा का विशेष आधिपेशन तो केवल तीन परस्थितियों में हो सकता है: (१) जब किसी जरूरी बात पर तीव्र मतभेद हो (२) जब ऐसी ही बात के विषय में लोक-मत जागृत और विनिर्णय करना हो; (३) या किसी प्रश्न पर लोक-मत का पूर्णतया सुसंगठित रूप से प्रकाशन या प्रदर्शन आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त हर एक महत्वपूर्ण बात या परिस्थिति के समय यदि महासमिति अपना निर्णय न देगी और उसपर अमल नहीं करेगी, तो मैं यह सोचने का साहस करता हूँ, कि महासमिति अपने कर्तव्य की अवहेलना करेगी।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

हाथ कताई बुनाई-अंगरेजी में जिस निबन्ध के लिए १००० पुरस्कार रक्खा गया था उसीका यह हिन्दी अनुवाद अजमेर के सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल से प्रकाशित हुआ है। कीमत सिर्फ १०० दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह यह गांधीजी के लिखे गुरुजती का हिन्दी अनुवाद है कीमत १०० पत्रव्यवहार का पता—

सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ३

### बढ़ती हुई त्याग-वृत्ति

जन्माल में कौमी हकों के लिए किस तरह लड़ना पड़ा, तथा महकमे के अधिकारियों के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहते बातों का वर्णन करने के पहले मेरे जीवन के अन्य जरा नजर दौड़ा लेना जरूरी है।

तब तक कुछ द्रव्य इकट्ठा करने की इच्छा थी। परमार्थ के साथ स्वार्थ भी मिला हुआ था।

तब मैंने जब अपना दफ्तर खोला तब अमेरिका की रोज-कम्पनी का दलाल आया। उसका चहेरा खुशनुमा था और सीठी। उसने मेरे साथ भविष्य की बातें इस तरह छेड़ीं कि मेरा पुराना मित्र न हो। 'अमेरिका में तो आपकी जैसा के तमाम लोग अपनी जान का बीमा करा लेते हैं। आपको अपनी जान का बीमा करा के भविष्य के लिए निश्चिन्त हो चाहिए। इस जिन्दगी का क्या भरोसा? हम तो जान का बीमा करते हैं। क्या आपको एक छोटीसी पालिसी के लिए मैं आग्रह न करूं?'

तब तक दक्षिण आफ्रिका और भारत में भी मुझे कई दलाल मिले। पर मैंने एक की भी दाल नहीं गलने दी थी। मेरा ख्याल था कि बीमा कराना एक तरह की भीखता और अविश्वास है। पर मुझे लालच हो ही गई। वह दलाल ज्यों ज्यों बातें करता जाता, त्यों त्यों मेरी आंखों के सामने पत्नी और पुत्रों की कड़ी होती जाती थी। "जीव तूने पत्नी के लगभग सब बच डाले, अगर कल तेरा कुछ भला-बुरा हो गया, तो तू और बच्चों का सारा चोझ तेरे गरीब भाई के सिर पर ही पड़ेगा, जिन्होंने पिता की तरह तेरा पालन किया है और उस पर भरोसा किया है? नहीं, यह तो अनुचित होगा।" इस प्रकार मन के साथ दलील करके मैंने एक १०,००० की पालिसी ले ली।

परन्तु दक्षिण आफ्रिका में परिस्थिति के बदलते ही मेरे मन भी बदल गये। दक्षिण आफ्रिका की नई आपत्ति के समय में जो कदम रक्खा था सब परमात्मा को साक्षी रख कर ही रक्खा था। मुझे इस बात का जरा भी पता नहीं था कि मुझे दक्षिण आफ्रिका में कितने समय तक रहना पड़ेगा। मैंने तो यही सोचा था कि अब मैं भारत को नहीं लौट सकता। मुझे पत्नी को अपने साथ ही रखना चाहिए। उनका वियोग अब मेरे लिए भी नहीं होना चाहिए। उनका भरण-पोषण भी अब दक्षिण आफ्रिका में ही होना चाहिए। इस तरह विचार करते ही उस दलाल की बातें मुझे हो आईं। वह मेरे लिए एक बड़ी दुखदायी चीज बन गई। "अरे, जब भाई पिता के समान हैं, तो तूने यह कैसे सोचा कि छोटे भाई की विधवा का पालन करना उनके लिए भारी हो जायगा। पालन करने वाला तो तू अपने बीबी-बच्चों को उलटे पाल रहा है। वे स्वावलम्बी क्यों न हों? असंख्य गरीबों को तूने क्यों नहीं समझता?"

यों बहने लगी विचार-धारा। इस पर मैंने एकाएक तो अमल नहीं किया था। मुझे याद है कि बीमे की एक किस्त तो मैंने दक्षिण आफ्रिका से भी भेजी थी।

पर इस विचार-प्रवाह को बाहर से भी अनुकूलता मिल गई। दक्षिण आफ्रिका की पहली सफर में मैं इसाई वायुमण्डल में जा कर धर्म के विषय में जागृत हो गया था। इस बार थियॉसफी के वायुमण्डल में मैं आ गया। मि. रीच स्वयं थियॉसफिस्ट थे और उन्होंने मुझे जोहान्सबर्ग की सोसायटी से परिचित कर दिया था। उसका सभ्य तो मैं हुआ ही नहीं, क्योंकि कई बातों में मेरा मतभेद था। तथापि प्रत्येक थियॉसफिस्ट से मेरा गाढ़ा सम्बन्ध हो गया। रोज उनसे धर्मचर्चा होती, उनकी किताबें पढ़ी जातीं, उनके मंडळ में मुझे कभी कभी भाषण देने के लिए भी कहा जाता। थियॉसफी का मुख्य सिद्धान्त है भ्रातृ-भावना को उत्पन्न और विकसित करना। इस विषय पर हम खूब चर्चा करते, और जहां कहीं भी मैं उनके इस सिद्धान्त में और सभ्यों के आचरण में भेद देखता, वहां उनकी टीका करता। इस टीका का असर मुझ पर भी अच्छा हुआ। मैं आत्मनिरीक्षण करने लग गया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### विद्यार्थी परिषद

सिंध की छठी विद्यार्थी परिषद के मंत्री ने मुझे एक छपा हुआ पत्र भेजा है, जिसमें मुझसे संदेश मांगा गया है। इसी बात के लिए मुझे एक तार भी मिला है। परन्तु मैं ऐसे स्थान में था जो एक तरफ था। इसलिए वह चिट्ठी और तार भी मुझे इतनी देर से मिले, कि मैं परिषद को कोई संदेश नहीं भेज सका। और न अब मैं ऐसी परिस्थिति में हूँ जो इन संदेश, लेख आदि भेजने के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं को स्वीकृत कर सकूँ। पर चूंकि मैं विद्यार्थियों से सम्बन्ध रखने वाली हर एक बात में दिलचस्पी रखने का दावा करता हूँ, और चूंकि मैं भारत के विद्यार्थी वर्ग के सम्पर्क में अक्सर रहता हूँ, अपने मन ही मन उस छपे पत्र में लिखे कार्यक्रम पर टीका किये बिना मुझसे नहीं रहा गया। इसलिए अब यह सोच कर कि वह टीका उपयोगी होगी मैं उसे लिख कर विद्यार्थी-जगत के सामने पेश करता हूँ। मैं नीचे लिखा अंश उस पत्र से उद्धृत करता हूँ, जो एक तो छपा भी बुरी तरह है, और जिसमें ऐसी-ऐसी गलतियां रह गई हैं, जो विद्यार्थियों की संस्था के लिए अक्षम्य हैं।

"इस परिषद के संगठनकर्ता इसे मनोरंजक और शिक्षाप्रद बनाने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहे हैं। हम शिक्षा विषयक कई वार्तालाप कराने की भी सोच रहे हैं। और हम आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप भी हमें अपनी उपस्थिति का लाभ दें। सिंध में स्त्री-शिक्षा का प्रश्न खास तौर से विचारणीय है। विद्यार्थियों की अन्य आवश्यकतायें भी हमारे ध्यान से छूटी नहीं हैं। खेल-कूद, प्रतियोगितायें, आदि भी होंगी। साथ ही वक्तृत्व में भी प्रतियोगिता होगी। इससे परिषद और भी मनोरंजक हो जावेगी। नाटक और संगीत को भी हमने छोड़ा नहीं है। अंगरेजी और उर्दु के प्रबंधों को भी रंगभूमि पर खेला जायगा।"

इस पत्र में से मैंने ऐसे एक भी वाक्य को नहीं छोड़ा है, जो हमें परिषद के कार्य की कुछ कल्पना दे सकता हो। और फिर भी हमें इसमें ऐसी एक भी वस्तु नहीं दिखाई देती, जो विद्यार्थियों के लिए चिरस्थायी महत्त्व रखती हो। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि



नाटक-संगीत और खेल, कूद आदि "Grand scale" [बड़े समारोह] के साथ किये गये होंगे। उपर्युक्त शब्दों को मैंने उस पत्र से ज्यों का त्यों अवतरण बिन्हीं में रख दिया है। मुझे इसमें भी सन्देह नहीं है कि इस परिपद में स्त्री-शिक्षा पर आकर्षक प्रबंध पड़े गये होंगे। परन्तु जहाँ तक इस पत्र से सम्बन्ध है, उस लज्जाजनक 'देने लेने' की प्रथा का उस में कहीं भी उल्लेख नहीं है, जिससे कि विद्यार्थियों ने अभी अपने को मुक्त नहीं कर लिया है, जो सिंधी लड़कियों के जीवन को प्रायः नरकवास और उनके माता-पिता के जीवन को एक घोर यम-यातना का काल बना देती हैं। पत्र से यह भी पता नहीं लगता कि परिपद विद्यार्थियों के चरित्र और नीति के प्रश्न को भी सुलझाना चाहती है। वह पत्र यह भी नहीं कहता कि परिपद विद्यार्थियों को निर्भय राष्ट्र-निर्माता बनने की राह बताने के लिए कुछ करेगी। सिंध ने कितनी ही संस्थाओं को तेजस्वी प्रोफेसर दिये हैं। निःसन्देह यह उसके लिए एक गौरव की बात है। पर जो ज्यादा देते हैं उनसे और भी ज्यादा की आशा की जाती है। मैं अपने सिंधी मित्रों का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने गुजरात विद्यापीठ में मेरे साथ काम करने के लिए बढिया कार्यकर्ता मुझे दिये हैं। पर मैं केवल प्रोफेसर और खासी कार्यकर्ता ले कर ही संतुष्ट होने वाला आदमी नहीं हूँ। सिंध में साधु बास्वानी हैं। सिंध और भी अपने कितने ही महान् सुधारकों पर अभिमान कर सकता है। परन्तु सिंध के विद्यार्थी गलती करेंगे यदि वे अपने साधुओं और सुधारकों से ज्ञान तथा गुण ग्रहण कर के ही संतुष्ट हो कर रह जावेंगे। उन्हें राष्ट्र-निर्माता बनना है। पश्चिम के इस नीच अनुकरण से तथा अंगरेजी में शुद्ध रीति से लिख पढ़ तथा बोल लेने से स्वाधीनता के मंदिर की एक भी ईंट नहीं बढेगी। विद्यार्थीवर्ग इस समय ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है, जो भूखों मरने वाले भारत के लिए बड़ी महंगी है। इसे तो बहुत ही थोड़े लोग-एक नगण्य संख्या-प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिए भारत विद्यार्थियों से आशा करता है कि वे राष्ट्र को अपना जीवन दे कर उसके योग्य अपने को साबित करें। विद्यार्थियों को तमाम धीमी गति से चलने वाले सुधारों के नायक हो जाना चाहिए। राष्ट्र में जो अच्छी बातें हों उनकी रक्षा करते हुए समाज-शरीर में घुसी हुई असंख्य बुराइयों को दूर करने में निर्भयता पूर्वक लग जाना चाहिए।

विद्यार्थियों की आंखों को खोल कर वास्तविक बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने का काम इन परिपदों को करना चाहिए। इनको उन्हें उन बातों पर विचार करने का अवसर देना चाहिए जिन्हें विदेशी वायुमण्डल से दूषित विद्यालयों में पढ़ने का मौका उन्हें नहीं मिलता। संभव है, ऐसी परिपदों में वे 'शुद्ध राजनैतिक' समझ जानेवाले प्रश्नों पर बहस न भी कर सकते हों। पर वे आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों पर तो जरूर विचार-विनिमय कर सकते हैं, और उन्हें जरूर करना भी चाहिए। आज हमारे लिए वे प्रश्न भी इतना ही महत्व रखते हैं, जितना की राजनैतिक प्रश्न। एक राष्ट्र विधायक कार्यक्रम राष्ट्र के किसी भी हिस्से को अछूता नहीं छोड़ सकता। विद्यार्थियों को करोड़ों मूक देशभाइयों में काम करना होगा। उन्हें एक प्रान्त एक शहर, एक वर्ग या एक जाति की भाषा में नहीं, बल्कि समस्त देश की भाषा में विचार करना सीख लेना चाहिए। उन्हें उन करोड़ों का विचार करना होगा जिनमें अत्यज, शराबखोर, गुंडे और वेड्याएं भी शामिल हैं और जिनके हमारे बीच अस्तित्व के लिए हम में से हर एक शस्त्र जिम्मेदार है।

विद्यार्थी प्राचीन काल में ब्रह्मचारी कहे जाते थे। ब्रह्मचारी के मानी हैं वह, जो ईश्वर-भक्ति है। राजा और बड़े-बूढ़े भी उनका

आदर करते थे। देश स्वेच्छा पूर्वक उनका भार वहन करता था और इसके बदले में वे उसकी सेवा में सौगुने बलिष्ट-आत्मा मर्तिव्य और बाहु अर्पण करते थे।

आज कल भी आपद्ग्रस्त देशों में वे देश की आशा के अवलम्ब समझे जाते हैं; और उन्होंने स्वार्थ-त्याग पूर्वक प्रत्येक विभाग में सुधारों का नायकत्व किया है। मेरे कहने का मतलब यह हरगिज नहीं कि भारत में ऐसे उदाहरण नहीं हैं। वे हैं तो, पर बहुत थोड़े। मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थियों की परिपदों को इस तरह के संगठनात्मक कामों को अपने हाथों में लेना चाहिए जो ब्रह्मचारी की सुप्रतिष्ठा को शोभा दें।

(यं० इ०)

मोहनदास करमचंद गांधी

## राष्ट्रीय शिक्षा

ठेठ नैरोवी से एक भाई लिखते हैं जिसका सार यों है "राष्ट्रीय शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकती इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शालाओं में विद्यार्थियों को कोई वातें नहीं पढाई जाती जिससे वे आगे चलकर अपने पैरों पर खड़े रह सकें। यदि खेती की शिक्षा उन्हें दी जाय तो वह कठिनाई दूर हो सकती है। चरखा तो होना ही चाहिए। राष्ट्र की तरह विद्यालय में भी खेती को प्रथम और चरखे को दूसरा स्थान होना चाहिए" इस टीका पर नवजीवन में विचार किया चुका है। किन्तु अखबारों में होने वाली चर्चा को याद रखने का रिवाज नहीं है। इस लिए जब जब कभी इस तरह के प्रश्न उठते हैं उन पर पुनः विचार करना पड़ता है।

यह मानने की जरूरत नहीं, कोई कारण नहीं, कि खेती की शिक्षा के अभाव के कारण राष्ट्रीय-शिक्षा का काम इतना निमित्त हो रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा जिस हद तक मंद हुई है, उसका कारण शिक्षक ही हैं। मैं इस बात को कई बार कह चुका हूँ, कि चूका हूँ, और यह सिद्ध भी की जा सकती है। 'नवजीवन' में कई बार यह बताया गया है, कि जहाँ जहाँ के शिक्षक चारित्र्यवान लगन वाले, श्रद्धाशील और चतुर हैं, वहाँ आज भी राष्ट्रीय विद्यालय अच्छी तरह चल रहे हैं।

इस तरह यद्यपि मंदता के लिए शिक्षक जिम्मेदार हैं, तथापि इसमें भी उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि वे शिक्षक भी तो स्वयं प्रतिकूल राज्यतंत्र और गुलामी-शिक्षा के शिकार थे, और इस बुराईयों से बड़ी मुश्किल से छूट कर भाग निकले हैं। उनसे जितना प्राण अर्पण किया जा चुका, वे उसे अर्पित कर के शांत हो गये। राष्ट्रीय शिक्षा की प्रगति अब तो तभी होगी जब वर्तमान राष्ट्रीय शालाएं अपने तेज को प्रकट करेंगी। और यदि उनमें चिरस्वामी होने की शक्ति होगी तो वे उसे जरूर प्रकट करेंगी भी। पर सरकारी शालाओं में भी ऐसी शिक्षा कहाँ दी जाती है, जिससे उसमें शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी आगे चलकर अपने पैरों पर खड़े रह सकें? फिर भी उनका प्रवाह तो ज्यों का त्यों चल ही रहा है। क्यों कि हमारी अंखों तो चकाचौंध के कारण अंधी हो गई हैं। दूसरे, उसमें यह लालच है कि किसीको न किसी को तो शिक्षा प्राप्त कर लेने पर चार सौ या छः सौ रुपये की नौकरी मिलने की उसमें सम्भावना है। जिस प्रकार जुएं या लौटरी में किसीको हजार या दो हजार का इनाम जरूर ही मिलता है, और हर एक शस्त्र इस आशा से उसमें भाग लेता है कि संभव है सुझीको यह इनाम मिल जाय, उन्हीं



१९२७

१९२७

वहन करता था—आत्मा मलिन

की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी  
वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

वहन करता था—आत्मा मलिन  
की आवाज में एक प्रकार का मतलब था वे हैं तो, पदों को इस तरह जो ब्रह्मचारियों मंचंद गांधी

भंग पर कड़ा कर देना पड़ता था। पर मिस्टर कौशिक को पैसे—वैसे की कोई परवा नहीं थी। उन्हें तो इस बात पर चिढ़ आ रही थी कि यह 'श्राद्ध' उसी दिन आत्मन से क्यों टपक पड़ा, जिस दिन कलेक्टर ने उन्हें पहले पहल ही अपने यहां भोज के लिए निमन्त्रण किया था। उन्होंने ब्राह्मणों से डपट कर कह दिया कि 'देखो, यह सब जल्दी खतम कर देना, आज दो पहर बाद मुझे कलेक्टर साहेब के यहां किसी जरूरी काम से जाना है।' ब्राह्मणों को क्या था? देने लेने की बातें तय होते ही ब्राह्मण एकदम उदार बन गये। उन्होंने तमाम आवश्यक बातें छोड़ कर डांक गाड़ी की गति से अपना काम जल्दी समाप्त करने का वचन देकर मि. कौशिक को निश्चिन्त कर दिया।

\* \* \*

दो वज्र चुके थे। पति के श्राद्ध को इतनी जल्दी जल्दी और लापरवाही के साथ करते देख कर वृद्धा को दुख हुआ। पर अपने बहू-बेटे पर उसका असीम प्यार था।

बहू के बाल संवारते संवारते वह बोली "मैं मर जाऊंगी तब तो गोपालकृष्णन् यह भी न करेगा।"

मि. कौशिक का सच्चा नाम गोपालकृष्णन अय्यर था। पर ऑक्सफोर्ड पहुंचने पर उन्हें यह बेहद लम्बा मालूम होने लगा। इसलिए उन्होंने अपना नाम गोत्रानुसार बना लिया। और यह सुधरी हुई अंगरेजी शैली से कुछ मिलता जुलता भी था। तब से वे मि. कौशिक बन गये।

वृद्धा ने अपनी बहू के सिर पर सिंदूर का तिलक लगाया, उसकी वेणी में ताजे फूलों की एक माला रक्खी, और आधी डझन बार उसकी ओर वात्सल्य भरी कलापूर्ण नजर से देखा कि सब ठीक तो है। जब उसे संतोष हो गया तब कहा 'हां, अब जाओ बेटी।'

'Are you ready darling' (प्यारी, क्या तुम तैयार हो गईं?) कह कर मि. कौशिक अपनी ड्रेसिंग रूम से चिन्ताये। मि. कौशिक पत्नी से अक्सर अंगरेजी में ही बातचीत करते थे। क्योंकि वे इन बेहूदी हिन्दुस्तानी भाषाओं में अपनी पत्नी को 'डार्लिंग' 'डियरी' आदि शब्दों से सम्बोधित नहीं कर सकते थे।

'जीहां, यह लीजिए मैं आ गई' कह कर पूरी तरह सज धज कर मिसेज कौशिक ने अपने पति के कमरे में हंसेत हुए प्रवेश किया। वे एक उत्कृष्ट बंगलौरी साडी पहनी थीं, जिसका सुंदर लाल रंग सोने के समान उनके कान्तिशाली शरीर पर बड़ा भला मालूम होता था।

पति ने देखते ही कहा 'अहा, प्यारी तुम कितनी सुन्दर हो।' लज्जा से मिसेज कौशिक के कपोल आरक्त हो गये। उनका सौंदर्य और भी खिल गया।

मोटर-सायकल पोर्च में खड़ी ही थी। मिस्टर कौशिक ने अंगरेजी प्रथानुसार पत्नी को सहारा दे कर 'साइड कार' में बैठाया, और बोले "गुजराती ढंग से साड़ी सिर पर ले लो, जिससे बालों में धूलि न गिरने पावे।"

स्वयं उन्होंने भी अपने सिर पर हॅट जमा कर रक्खी—बाहर जाते समय वे हमेशा हॅट पहनते थे—और हुए रवाना।

\* \* \*

फट् फट् फट् फट् फट् करते हुए चले दोनों पति-पत्नी पर्वतीपुर मंगा पटनम रोड पर से। लोकल बोर्ड का रास्ता था। कौन ध्यान देता है? कड़े गढ़े-खाइयां थीं। खेर। तहसील मिछडी हुई थी। लोगों के लिए मोटर-सायकल एक असाधारण चीज थी। बैलगाड़ियों को हटाने के लिए आधे मील से बिगुल बजानी पड़ती। और तब कहीं कुछ

मोहनदास करमचंद गांधी

हॅट्स और साड़ियां

"You should get ready, darling, before M. We have fifty two miles to make and party is at 5 P. M."

मि. कौशिक आहं, सी. एस्. पर्वतीपुर डिविजन के एक युवक के कलेक्टर थे। डिस्ट्रिक्ट कलेक्टर मिस्टर मोवरली आज के गे नहीं थीं।

मि. कौशिक ने तो बुद्धिपूर्वक तमाम हिन्दू अन्ध-विश्वासों को छोड़ दिया था। किन्तु उनकी माता एक कट्टर धार्मिक महिला थीं। इस बात पर बड़ा जोर दिया कि उनके पति का नाम बदलना अथवा एक नापने वाले के लिय नापना जाना नहीं है। धीरे धीरे नवयुवक इस शिक्षा को प्राप्त कर के आते हैं। और ज्यों ज्यों खादी की हलचल बढ़ेगी, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का काम भी बढ़ता जायगा।

मि. कौशिक ने तो बुद्धिपूर्वक तमाम हिन्दू अन्ध-विश्वासों को छोड़ दिया था। किन्तु उनकी माता एक कट्टर धार्मिक महिला थीं। इस बात पर बड़ा जोर दिया कि उनके पति का नाम बदलना अथवा एक नापने वाले के लिय नापना जाना नहीं है। धीरे धीरे नवयुवक इस शिक्षा को प्राप्त कर के आते हैं। और ज्यों ज्यों खादी की हलचल बढ़ेगी, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का काम भी बढ़ता जायगा।

मि. कौशिक ने तो बुद्धिपूर्वक तमाम हिन्दू अन्ध-विश्वासों को छोड़ दिया था। किन्तु उनकी माता एक कट्टर धार्मिक महिला थीं। इस बात पर बड़ा जोर दिया कि उनके पति का नाम बदलना अथवा एक नापने वाले के लिय नापना जाना नहीं है। धीरे धीरे नवयुवक इस शिक्षा को प्राप्त कर के आते हैं। और ज्यों ज्यों खादी की हलचल बढ़ेगी, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का काम भी बढ़ता जायगा।

मि. कौशिक ने तो बुद्धिपूर्वक तमाम हिन्दू अन्ध-विश्वासों को छोड़ दिया था। किन्तु उनकी माता एक कट्टर धार्मिक महिला थीं। इस बात पर बड़ा जोर दिया कि उनके पति का नाम बदलना अथवा एक नापने वाले के लिय नापना जाना नहीं है। धीरे धीरे नवयुवक इस शिक्षा को प्राप्त कर के आते हैं। और ज्यों ज्यों खादी की हलचल बढ़ेगी, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का काम भी बढ़ता जायगा।

मि. कौशिक ने तो बुद्धिपूर्वक तमाम हिन्दू अन्ध-विश्वासों को छोड़ दिया था। किन्तु उनकी माता एक कट्टर धार्मिक महिला थीं। इस बात पर बड़ा जोर दिया कि उनके पति का नाम बदलना अथवा एक नापने वाले के लिय नापना जाना नहीं है। धीरे धीरे नवयुवक इस शिक्षा को प्राप्त कर के आते हैं। और ज्यों ज्यों खादी की हलचल बढ़ेगी, त्यों त्यों राष्ट्रीय शिक्षा का काम भी बढ़ता जायगा।



इधर तो कुछ उधर होते और कुछ तो यही विचार करते रह जाते कि किस पटरीपर गाड़ी करनी चाहिए। ज्योंही आसिस्टेंट कलेक्टर साहब अपनी पत्नी सहित वहां से गुजरे त्योंही लोगों के झुंड के झुंड राह पर आकर और आ मुंह करके दांत दिखाते हुए खड़े हो गये। मानो वे किसी विचित्र प्राणी को देख रहे हों। अंत में ये दोनों मुकाम पर जा पहुंचे। जब मि. कौशिक कलेक्टर के बंगले पर पहुंचे तब वे बुरी तरह थके हुए थे। उनके चेहरे पर की वह प्रसन्नता और ताजगी भी अदृश्य हो गई थी। पर मिसेज मोबरली बड़ी अच्छी महिला थीं। उनकी बोलचाल और शैली अत्यन्त मनोहर थी। और हिन्दुस्तानी मिहमानों से तो वे बड़ी खुश होती थीं।

“कितनी सुन्दर! कैसी बढ़िया रेशम है। ये फूल! और तुम्हारे ये कालेकले बाल! मेरे भी ऐसे अच्छे बाल होते तो कितना अच्छा होता! हमारे इन गाऊन्स की बनिस्वत आपकी ये साड़ियां कितनी मनोहर मालूम होती हैं?” इत्यादि इत्यादि। सब प्रसन्न हो गये।

\*

\*

\*

बड़ा आनंद रहा। कहानी का प्रोग्राम (कार्यक्रम) भी था। हर एक को एक मजेदार कहानी कहने के लिए कहा गया था। और कहानी मजेदार हो या न हो, सब को दिल खोल कर हंसना जरूर चाहिए। भोज में एक डेप्यूटी कलेक्टर भी आये थे। युवक थे, सब लोग इनसे खुश थे। कहा जाता था कि वे बड़े चतुर अधिकारी और भारी कहानी कहनेवाले थे।

“अब आपकी बारी है मिस्टर साकेतराम, बढ़िया कहानी सुनाइये।” मिसेस मोबरली ने कहा।

“मुझे एक कहानी याद तो है, पर वह इस समाज में कहने योग्य नहीं है।” विनोदपूर्वक कटाक्ष करते हुए मि. साकेतराम बोले। “नहीं वही कहानी होगी” मि. कौशिक बोले। हाल ही में अपने कौशल पर वे शाबाशी प्राप्त कर चुके थे।

“तब क्या आप मुझे यह वचन देते हैं, कि बाद में मुझे आप दोष नहीं देंगे। पर नहीं, अब तो मुझे यही मालूम होता है कि मुझे वह कहानी यहां नहीं कहनी चाहिए। वह ठीक नहीं रहेगी। मैं आपको दूसरी कहानी सुनाऊंगा।”

“नहीं नहीं, वहीं चीज, वही सुनेंगे” कह कर हर एक व्यक्ति चिढ़ाने लगा।

“खैर, तो सुनिएगा। कहानी सबी है और खूबी यह कि आज की है।

“आज ही की? चलिए सुनाइए झटपट” सभी बोले।

“थोड़ी वाय लीजिएगा मिसेज कौशिक?” मि. साकेतराम ने पूछा।

x

x

x

अपने झे में सवार हो मैं पर्वतीपुर रोड पर से आ रहा था। जानते हैं न आप, जहां भीमवरम् का रास्ता उसमें पापनाशम के पास आकर मिल जाता है? वहां पर मैं जरा ठहर गया। जहां कहीं रैयतों का झुंड हो, एक डिब्बो कलेक्टर को ठहरना ही पड़ता है। उसे तो उनके संपर्क में हमेशा रहना चाहिए न? हां, एक आई. सी. एस. को भले ही इसकी जरूरत न हो?”

मिस्टर मोबरली ने हंस कर कहा ‘यह इशारा आप की ओर है मि. कौशिक।’

“नहीं, नहीं, मुझे अपनी कहानी कहने दीजिएगा।” मि. साकेतराम बोले। मैं जरा ठहर गया, जहां कुछ लोग खड़े हुए थे। अब बताइए उन लोगों ने क्या कहा?”

“हां, हां आगे बढ़िए जनाव” कह कर सभी लोग आगे बढ़े।

लगे। सब को यही ख्याल हुआ कि कहानी यों ही साफ़ी पड़ती है।

“मैंने पूछा ‘क्यों भाई, बारिश बारिश तो अच्छी रही’ सब के सब एकदम बोल उठे ‘जी नहीं’ और मेरी ओर आकर तथा कुतूहल भरी नजर से देखने लगे, जैसा कि अक्सर किसान हैं। इतने ही में एक बूढ़ा आदमी मेरे नजदीक आकर आवाज से गंभीरतापूर्वक बोला ‘हाजर, बारिश कैसे हो जब भले भले घर की विरेहमिन औरतें भी गोरो के साथ लग जायें?’

“हैं, यह क्या बात है?” आश्चर्यान्वित हो कर मैंने मुझे संदेह होने लगा कि इधर कहीं ऐसी कोई लजाजनक घटना नहीं हो गई जो अखबारों तक नहीं पहुंच पाई हो।

“अजी स्वामी, मैंने अपनी आंखों देखा।” वह बूढ़ा बोला। मैंने जरा कड़क कर पूछा ‘सच कहते हो?’ मुझे शक कि यह बूढ़ा हम ब्राह्मणों की हंसी उड़ा कर कुछ मजाक चाहता है।

हाजर, झूठ कैसे? अपनी आंखों देखी बात न कह रहा है। राम राम बड़ा बुरा काम! आंखों से देखा नहीं जाता था और कर आंखों पर विसवास करने को जी नहीं चाहता था। क्या सरकार, मैंने यह अपनी आंखों यहां, और अभी — आध घंटा नहीं हुआ होगा तब—देखा। अभी यहां वह एक जादू वाला की गाड़ी आई थी, जो पीछे से टप टप टप करती हुई छोड़ती जाती है। वह बदमाश गोरा तो साहब का सा लगाए पहिए पर बैठा था, और उसमें लगी हुई दूसरी गाड़ी उस सुंदर हरी गाड़ी में—लाल रेशम की साड़ी पहने हुए एक सी ब्राह्मण की लडकी बैठी थी, जो किलकिलाती हुई जा रही मानो उसे उस दुष्ट गोरे के द्वारा भगाये ले जाने पर बर्बाद हो रही हो। हमें देख लेने पर भी उन्हें लाज-शर्म का कहीं तक नहीं था साहब! दिन दहाड़े पाप! बापरे बाप, हमारी क्या गई है। इतने पर जो भगवान् बर्खा नहीं भेजे तो कौन करेगी की बात है?”

फिर असिस्टेंट कलेक्टर की ओर मुड़ कर मिस्टर साकेतराम पूछा ‘तो मिस्टर कौशिक आप की ‘साइड कार’ तो हरी नहीं शरम के मारे मि. कौशिक “हां” कह कर ही काटो तो खून नहीं!

मिसेस मोबरली की हंसी जब रोके नहीं स्की तब वे बोली ‘और क्या आप हेंट भी पहने हुए थे, मिस्टर कौशिक?’

इधर अपनी झेंप छिपाने की कोशिश करते हुए मिसेस कौशिक दूध का ‘जग’ उलटा दिया।

“नहीं, मिस्टर साकेतराम आप बड़े दुष्ट हैं, निर्दय हैं। को ऐसी झूठ-मूठ की कहानियां नहीं बनानी चाहिए” मोबरली बोले।

तिपाई पर कि चीजों को ठीक करते हुए मि. साकेतराम “यह तो खरी खरी बात है, मेरे दिभाग की उपज नहीं किसी को ख्याल भी हो सकता है कि हेंटस को इस्तेमाल करने ऐसे अनर्थ हो सकते हैं?”

कहा जाता है कि मि. कौशिक तब से पत्नी के साथ जाते हुए फिर कमी हेंट पहने नजर नहीं आये। पर दिन से उनके और साकेतराम के बीच का प्रेम अत्यन्त गया।

चक्रवर्ती राजगोपाल



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का ,, २)  
एक प्रति का ,, १)

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

# हिन्दी नवजावन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४४ ]

अहमदाबाद, अषाढ वदी १ संवत् १९८४  
गुरुवार, १६ जून १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ५

### निरीक्षण का परिणाम

१८९३ में मैं ईसाई मित्रों के घनिष्ठ संपर्क में आया, तब मैं एक विद्यार्थी की सी थी। ईसाई मित्र मुझे बाइबल का ज्ञान, समझाने और उसे मेरे द्वारा स्वीकृत कराने का प्रयत्न करने में नम्रभाव से किन्तु तटस्थवृत्ति पूर्वक उनकी शिक्षा को समझता जा रहा था। इसके कारण मैंने हिन्दू धर्म का अध्ययन किया और दूसरे धर्मों को समझने की भी कोशिश की। अब १९०३ में मेरी स्थिति जरा बदल गई। थियॉसॉफिस्ट अपने अपने मंडल में जरूर खींचना चाहते थे, परन्तु इसमें उनका एक हिन्दू की हैसियत से मुझसे कुछ प्राप्त करना। उनकी किताबों में हिन्दू धर्म की छाया और उसका प्रभाव बहुत काफी है। इसलिए इन भाइयों को मालूम हुआ कि मुझे कुछ सहायता कर सकूंगा। मैंने उन्हें समझाया कि हिन्दू का अध्ययन लगभग नहीं का सा है; मैंने उसके प्राचीन ग्रंथों को मूल संस्कृत में नहीं पढ़ा है; सिर्फ अनुवाद पढ़े हैं, जो बहुत थोड़े। तथापि चूंकि वे संस्कार और पुनर्जन्म को मानते थे, उन्हें मालूम हुआ कि मुझसे उन्हें कुछ सहायता तो फिर मिलेगी; और 'निरस्ये पादपे देशे एरंडोपि ब्रुमायते' वाली बात मेरे लिए वहां चरितार्थ हो गई। किसी के साथ विवेकानन्द का 'राजयोग' पढ़ना शुरू किया। एक मित्र के साथ पातंजल योगदर्शन पढ़ना पड़ा, जो मेरे ही के साथ गीता का अध्ययन शुरू हुआ। 'जिज्ञासु' नामक एक छोटा सा मंडल बना लिया गया, और उससे अध्ययन शुरू हो गया। गीताजी पर मेरा प्रेम और विश्वास ही था। अब उसका गहरा अध्ययन करने की कोशिश करने लगी। मेरे पास एक दो अनुवाद थे। मैं मूल संस्कृत समझने की कोशिश की। और रोज रोज स्नान करने के समय को इस काम में मैं पंद्रह मिनट और स्नान में मुझे २० मिनट

लगते थे। दतौन तो अंगरेजी प्रथा के अनुसार खड़े खड़े करता था। गीता के श्लोक कागज पर लिख कर सामने की दीवाल पर चिपका देता, और उन्हें देख देख कर कंठ करता जाता था। स्नान करते समय यही श्लोक पक्के हो जाते थे। और दरमियान पिछले सभी श्लोक भी एक बार नित्य बोल जाता। इस तरह मुझे याद है कि मैंने तेरहवें अध्याय तक गीताजी को कंठस्थ कर लिया था। इसके बाद मेरा व्यवसाय बंद गया। सत्याग्रह का जन्म हुआ और उस बालक के संगोपन-संवर्धन करने में मेरा विचार करने का समय भी बीतने लगा, बल्कि यों कह सकता हूं कि अभी तक उसी काम में मेरा समय बीत रहा है।

इस गीता के अध्ययन का असर मेरे सहाय्याधियों पर तो जो कुछ पड़ा होगा सो वे जानें, परन्तु मेरे लिए तो यह अध्ययन एक प्रौढ मार्ग-दर्शक हो गया। वह ग्रन्थ मेरा धार्मिक कोष बन गया। अज्ञात अंगरेजी शब्द की उत्पत्ति तथा अर्थ जानने के लिए मैं जिस प्रकार अंगरेजी कोष की सहायता लेता था, उसी प्रकार आचार सम्बन्धी कठिनाइयों, उनकी अटपटी उलझनों आदि को सुलझाने के लिए मैं गीताजी का आश्रय लेता। अपरिग्रह समभाव आदि शब्दों ने मुझे पकड़ा। समभाव का विकास कैसे किया जाय? उसका पालन कैसे हो? इसके मानी क्या हैं कि अपमान करनेवाले उद्धत अधिकारियों, रिश्तखोर अधिकारियों, व्यर्थ का विरोध करनेवाले मेरे कल तक के साथी, इत्यादि तथा वे सज्जन जिन्होंने मुझ पर उपकार किया हो, इनके बीच कोई भेद नहीं है, अपरिग्रह का पालन कैसे किया जा सकता है? यह क्या कम परिग्रह है, जो हम शरीर को धारण किये हुए हैं? स्त्री-पुत्रादि परिग्रह नहीं तो क्या हैं? क्या किताबों से भरी हुई इन अस्मारियों को जेला देना चाहिए? क्या घर को आग लगा कर तीर्थ जाना उचित है? उत्तर मिला कि बिना घर को आग लगाये तीर्थ हो ही नहीं सकता। अंगरेजी कानून ने भी मेरी सहायता की। स्नेल की कानून के सिद्धान्तों की चर्चा याद आई। 'ट्रस्टी' शब्द का अर्थ-विशेष मेरे ख्याल में अब आया। कानून के शास्त्र के प्रति हृदय में आदर बढ गया। उसमें मैंने धर्म का दर्शन किया। ट्रस्टी के पास करोड़ों होने पर भी, वह एक पाई को भी हाथ नहीं लगा सकता। उसी प्रकार मुमुक्षु को व्यवहार करना चाहिए, इत्यादि शिक्षा मुझे गीताजी से मिली। यह मुझे प्रकाश के समान साफ साफ दिखाई देने लगा, कि अपरिग्रही तथा समभाव-पूर्ण



होने के लिए हृदय के सबे परिवर्तन की आवश्यकता है। रेवांशकर भाई को मैंने लिख दिया कि 'बीमे की पोलिसी को लौटा दीजिए' कुछ वापिस मिल सकता हो तो ले लें नहीं तो समझ लें कि जो रुपये कंपनी को दिये गये हैं, सो हूब गये। बच्चों और स्त्री की रक्षा उनका और हमारा सरजनहार करेगा, इत्यादि। पिता समान भाई को लिखा "आज तक तो मेरे पास जो बचा, उसे आपकी सेवा में अर्पण करता रहा हूँ। अब मेरी आशा छोड़ दीजिए। अब तो जो कुछ भी बचेगा उसका उपयोग कौम के लिए यहीं किया जायगा।"

पर यह बात मैं उन्हें जल्दी नहीं समझा सका। उन्होंने पहले पहल तो मुझे सख्त शब्दों में उनके प्रति मेरा धर्म समझाया। मुझे पिताजी की अपेक्षा ज्यादा अकलमंद नहीं हो जाना चाहिए इत्यादि। मैंने उत्तर में विनय पूर्वक अर्ज किया कि मैं पिताजी का ही काम कर रहा हूँ। सिर्फ कुटुम्ब का अर्थ जरा विस्तृत कर दिया जाय तो मेरे आचरण का अर्थ आसानी से समझ में आ सकता है।

भाई ने आशा छोड़ दी। लगभग चुप्पी अख्तियार कर ली। मुझे इससे बड़ा दुःख हुआ। परन्तु मैं जिस बात को अपना धर्म समझता था, उसको छोड़ते हुए मुझे और भी अधिक दुःख हो रहा था। इस लिए मैंने दोनों में से छोटे दुःख को ही बरादस्त कर लिया। तथापि भाई साहब के प्रति मेरी भक्ति निर्मल और प्रचण्ड थी। भाई के दुःख का कारण उनका प्रेम था। उन्हें मेरी आर्थिक सहायता की बनिस्बत मेरे सदाचार की चिन्ता अधिक थी।

आखिर वे पसीजे। मृत्युशय्या पर से उन्होंने लिख भेजा कि मैंने जिस ओर कदम बढ़ाया था वही मार्ग सच्चा और धर्म्य है। उनका पत्र अत्यंत कठणाजनक था। यदि पिता पुत्र से माफी मांग सकता है तो उन्होंने मुझ से माफी मांगी। और उन्होंने मुझ से सिफारिश की कि मैं उनके बच्चों का भी मेरी विधि के अनुसार संवर्धन शिक्षा आदि करूँ। वे मुझसे मिलने के लिए अधीर हो गये। उन्होंने मुझे तार दिया। मैंने भी तार से जवाब दे दिया कि 'आ रहा हूँ'। पर भाई का पुनर्दर्शन मेरे भाग्य में नहीं लिखा था।

पुत्रों के विषय की उनकी इच्छा भी पूरी नहीं हुई। भाई ने देश में ही देह छोड़ दी थी। लड़कों पर उनके पहले जीवन के संस्कार मजबूत हो गये थे। उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मैं उनको अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। इसमें उनका दोष नहीं है। स्वभाव को कौन फलट सकता है? बलवान् संस्कारों को कौन मिटा सकता है? यह ख्याल करना मिथ्या है कि जिस प्रकार हमारे अपने जीवन में परिवर्तन और विकास होता जा रहा है, उसी प्रकार हमारे आश्रितों और साथियों में भी होता रहे। माता-पिता बनने वालों की जिम्मेदारी कितनी भयंकर है, यह इस उदाहरण से कुछ कुछ स्पष्ट हो सकता है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत =) पोस्टेज =); बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतिष्ठों की बी. पी. नहीं भेजी जायगी। बी. पी. भेजनेवालों को आधे दाम पेशगी भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक, हिन्दी नवजीवन  
अहमदाबाद

## रोगशय्या के पास से

यह पत्र नंदीदुर्ग से नहीं, बंगलोर से लिख रहा हूँ। बंगलोर की सलाह से कल सुबह बंगलोर आ पहुँचे। अधिकांश रास्ता गांधीजी स्वयं पैदल चल कर आये। चिकवालयपुर में लोगों की भीड़ बहुत थी। इसलिए गांधीजी को कुछ कष्ट हुआ। परन्तु सभा में अच्छी शान्ति रही। गांधीजी सिर्फ दो तीन मिनट बोलें। आवाज में बोले। उनके भाषण का अनुवाद करके सुना दिया गया:—

आप लोगों ने मुझ पर अपने प्रेम की जो वर्षा की है, तब नंदीदुर्ग पर हमारी जो सेवा की है, आतिथ्य किया है, उसके लिए पूर्णतया एहसानमन्दी जाहिर करना भी असंभव है। सुखी करने के लिए न तो धन की परवा की, न श्रम की। परन्तु मेरा आपके बीच रहना, मेरा मैसोर का यह प्रवास तो तभी सम्भव होगा जब आपके घर में खादी का संदेश प्रवेश करे और प्रत्येक स्त्री-पुरुष खादी पहनने और सूत कातने लग जाय। मैं यह चाहता हूँ कि आप से कई बार कह चुका हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के लिए पर एक महान् कलंक है। यह भी आपके अन्दर से मिट जाय ईश्वर आपको सुमति दें।"

### ठेठ रंगून से

परन्तु बंगलोर आने से पहले नंदी के आखिरी संस्मरण लिख जाऊँ। अंतिम सप्ताह में तो अनेकों लोग गांधीजी से मिलने के लिए आये। एक दिन एक भद्र महिला मोटी सी खादी की साड़ी पहन कर आईं। स्त्रियों के शरीर पर यहां खादी दिखना एक असाधारण वस्तु है। तिस पर भी एक मध्यम वर्ग की महिला वदन पर खादी होना तो एक अकल्पित बात ही है। परन्तु ये बहन तो चरखा भी चलाती और उनका भी जानती थीं। लडका रंगून में कर्क है। परन्तु वह अपने फुरसत के समय में खादी-प्रचार का काम करता है। जब वह अपनी लडकी की शादी के लिए रंगून से बंगलोर आई तब वेदों ने कहा 'गांधीजी से जरूर मिलना।' छोटे बच्चे, भावी दामाद आदि को ले कर सब नंदी दुर्ग आये। १०) अपनी तरफ से और ५) एक बहन की तरफ से इस तरह १५) गांधीजी के सामने रख कर कल नम्रतापूर्वक बोली 'इससे अधिक देने की शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिए मुझे दुःख है।' गांधीजी बोले 'आप तो एक स्त्री की देती तो मेरे लिए काफी था। पर आप निःसन्देह और भी बहुत दे सकती हो।' बहन को आश्चर्य हुआ। गांधीजी बोले 'देखिए आप अपनी इस लडकी और दामाद को खादी काम के लिए मेरे सिपुर्द कर दीजिए। यह नहीं कि ऐसी मांगें मैं कभी पेश नहीं करता हूँ। वल्कि वे तो स्वीकृत भी हो जाती हैं। दक्षिण अफ्रीका में जब मैं खाना हुआ, तो अनेकों ने अनेकों चीजें भेंट में दीं। परन्तु मि. नायडू ने खडे हो कर कहा "मैं तो केवल अपने चार पुत्र भेंट में आपके अर्पण करता हूँ, और कुछ नहीं।" इन लडकों को मैं अपने साथ भारत में ले आया था। उस बहन ने कहा 'जब मेरी बेटी और दामाद भी आपके ही हैं।' 'यह नहीं, मैं चाहता हूँ कि ये लोग खादी का ही काम करें।' 'जरूर करेंगे, वही काम करेंगे।'

### मिलमालिकों की कठिनाई

मिलमालिकों ने गांधीजी को यहां भी न छोड़ा। 'गांधीजी, हम बड़ी मुसीबत में हैं। मजदूरों के लिए इतनी सुविधा-व्यवस्था करें, हमें एक कौड़ी का नफा भी नहीं मिल रहा है। पर इस हालत में भी उबका वोनस उसी प्रकार जारी है। फिर भी न सालाना



हो जाता है ? अब हमारे मजदूरों को किस बात की जरूरत है, वही मेरी समझ में नहीं आता । ”  
 गांधीजी बोले ‘यह सत्य है । पर यह समझने की ज्यादा कोशिश करो कि आपके मजदूरों को क्या तकलीफ है । शोलापुर के मजदूरों के लिए कम नहीं करते । मकान अच्छे हैं, बच्चों के लिए पाठशाला है, और भी कई सुविधाएँ हैं । और मैं उनके असंतुष्ट ही रहते हूँ । और मैं उनके उस कारण समझ सकता हूँ । इस असन्तोष को दूर करने के लिए मैं उनके मुखियाओं ने जो उपाय किये उनको आप जान लें ।’  
 गांधीजी ने जो उपाय किये उनको आप जान लें । पर ये लोग तो बताते ही नहीं कि वह तो जाने लेंगे । और उन्हें उकसाने वाले स्वार्थी तो मिल ही जाते हैं । ”

यदि आपके स्थान पर मैं होऊँ और मेरे मजदूरों को यह तो कि मैं उन्हें चूस रहा हूँ, और उनकी स्थिति असह्य है, तो मैं उन्हें धोके की उसी वक्त बंद कर दूँ । पर आपको आज मैं तो मैं कोई सलाह नहीं दूँगा । जरा आराम होने पर तो मैं बहुत देर तक बातचीत नहीं कर सकता । ”

उसके बाद एक कारखानेवाले आये । किसी की समझ में नहीं आया कि कठिनाई क्या थी । उन्होंने पूछा ‘अपने लोगों को खादी के लिए हमें क्या करना चाहिए ? इन लोगों के लिए खादी खरीदी जाती है, और वह जल्दी फट भी जाती है ।’ गांधीजी ने स्वयं ही उन लोगों के लिए खादी खरीद लीजिए । और तब तक उठा कर उन्हें सस्ते भाव में खादी देना शुरू कर दें, तो शीघ्र ही वे अपनी पसन्दगी के योग्य खादी के लिए अच्छा सूत कातने लग जावेंगे । फिर आपको सिर्फ उस खादी बुनवा देनी होगी । और यदि आप मजदूरों को अपनी बात भी मानने लग जावें । पर इसके लिए आपको वह करना होगा जो लिबर वर्ल्ड ने किया है । ‘सन लाइट’ सोप के बनानेवाले हैं । उन्होंने अपने मजदूरों को अलग बस्ती बसा दी है । उसका नाम है—‘पोर्ट सनलाइट ।’ उन्हें आदर्श स्थिति में रक्खा जाता है ।

उसके बाद उन्होंने फिर एक सवाल पूछा, पता नहीं कि आपके मजदूरों के लिए । ‘जो मिल-मालिक लिबर वर्ल्ड के समान अपने मजदूरों को उत्तम रीति से रखते हैं, क्या आपको कपड़ा यदि पहना जाय तो काम चल सकता है ?’  
 गांधीजी बोले ‘नहीं; खादी की कल्पना मजदूरों की खराब स्थिति में नहीं हुई । इसका आधार तो इस कल्पना पर है कि काम और रोटी मिले । मिल चाहे कितनी ही अच्छी हो, बताइए वह बेकारी के प्रश्न को किस तरह सुलझाती है ?’

### भारत में नव-जीवन

जब एक मिशनरी आये । उनको देखने पर मालूम हुआ कि वे एक आदमी हैं । जिनके धर्म ‘मिशनरी’ हैं उन्हें तो अपने धर्म में लाने की लगन बराबर लगी रहती है । वे ही अनेक मुसलमान और ईसाई गांधीजी से मिले हैं । वे ईसाई बनने के लिए आग्रह कर चुके हैं । सबको यही कहना है कि ऐसा पुरख यदि हमारे धर्म में आ जाय, तो उसका धर्म और उसकी अपनी आत्मा का भी कल्याण हो ।  
 वे बोले—‘आपको अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए, और हमारा काम है उनकी रक्षा करना ।’

यह पादरी कोई ऐसी दरखास्त ले कर नहीं आये थे । परन्तु उनका उद्देश आसानी से समझ में आ सकता था । ‘आप गरीबों के लिए सुंदर काम कर रहे हैं । घर बैठे आपने उनके लिए कैसा अच्छा काम ढूँढ निकाला है !’ इत्यादि तारीफ करने लगे । पर साथ ही अपनी मिशन की बात भी छेड़ना शुरू कर दिया । ‘हम भी नागरकोइल त्रावणकोर में लेस बनवाते हैं । इस लेस में से कितने ही लोगों का भरण-पोषण होता है !’ गांधीजी बोले ‘यह मैं जानता हूँ, मुझे जब यह मालूम हुआ था, तब मैंने उस पर टीका की थी ।’ पादरी साहब चौंके । ‘क्यों ? यह तो घर बैठे का धंधा है, हमारे देश में पांच लाख रुपये सालाना आते हैं ।’ गांधीजी बोले ‘यही इसका दोष है । यह उद्यम की बुरी अवस्था को सूचित करता है कि उसे विदेशों की आवश्यकता पर निर्भर रहना पड़े । लेस भारत में कितनी विक सकती है ? और जिस चीज का उपयोग हमारे यहां न हो, उसे बनाने से क्या फायदा ? इसीलिए हमने खारी को संभाला है, जो सबके काम की चीज है ।’

कोई ३०-३५ वर्षों से ये मिशनरी इस भाग में काम कर रहे हैं । कन्नडा और तेलुगु भी अच्छी तरह जानते हैं दोनों भाषाओं में अपने बनाये ‘कालक्षेपम्’ [ईसा के कीर्तन] के विषय में बड़े अभिमान के साथ बातें करते थे । गांधीजी से पूछने लगे ‘क्या आपको नहीं मालूम होता कि भारत में नव-जीवन आ रहा है ?’

‘जल्द । इसी नव-जीवन के लिए तो देश का यह प्रयास है ।’  
 ‘मेरा भी यही ख्याल है ।’

गांधीजी—‘पर यहां नव-जीवन का अर्थ आपका और मेरा जुदा जुदा है । हम श्लेष के चक्कर में हैं ।’ पादरी बोले भले ही इसमें श्लेष—दो अर्थ हों । पर ईश्वर तो एक ही है न ? ईश्वर के तो दो अर्थ हो ही नहीं सकते ।’

‘भले ही न हो । पर कलकत्ता से एक बहन मुझे बराबर लिख रही हैं, कि आप जो कुछ भी काम करते हैं वह अच्छा है । पर जबतक आप ईसाई नहीं हो जाते, तबतक यह काम अधूरा ही रहेगा ।’

‘वे भले ही लिखती रहें । परन्तु हमें क्षणिक वस्तुओं का विचार नहीं करना चाहिए । हमें तो उसी वस्तु का विचार करना चाहिए जो शाश्वत है । क्या आपका काम ऐसा वैसा है ? ‘जिसका चित्त शुद्ध है, वही परमात्मा के दर्शन का अधिकारी है ।’ इस वचन में जितनी हमारी श्रद्धा है, उससे आपकी श्रद्धा किसी प्रकार कम नहीं है । आपने जनता के सामने नित्य और अनित्य के भेद को बड़े अच्छे ढंग से रक्खा है । आप ही ने तो लोगों को नींद से जगाया है, और अदृष्ट पर अंधे की तरह विश्वास करना छोड़ कर धंधे से लगाया है । नव-जीवन अवश्य आ रहा है । क्या आपको नहीं मालूम होता कि भारत को ईसा के माहात्म्य का साक्षात्कार कराने की आज बड़ी आवश्यकता है ?’

‘दो मानी नहीं हैं, दो मानी नहीं हैं—’ कहते कहते आखिर पादरी साहब लौट कर वहीं आकर खड़े हो गये ।

### मदरास का वकील-मंडल

मदरास युनिवर्सिटी के कानून के विद्यार्थियों के परीक्षकों ने अपनी एक सभा बंगलोर में की थी । और वहां से गांधीजी से मिलने के लिए नन्दी आये थे । सब के सब कानून के महान् महान् पण्डित और खूब रुपया कमाने वाले थे । पर उनकी सादगी को देख कर तो मैं दंग रह गया । इतनी सादगी मैंने किसी भी प्रान्त के वकीलों में नहीं देखी । कितने ही तो खादी भी पहने थे, हालांकि, यह तो गांधीजी को खुश करने के लिए ही किया होगा । सभी राजगोपाला



कार्यजी के मित्र थे। उन्होंने सबका परिचय देते हुए गांधीजी से कहा 'सभा के वकीलों ने हम पर मिहरबानी की है।' गांधीजी बोले 'किस तरह? खूब खादी पहनकर, या खादी के लिए बहुत सा धन देकर?'

"दोनों तरह से।"

"तब तो यह बड़ी अच्छी बात है। क्यों कि यह तो दूसरे किसी भी प्रान्त के वकीलों के विषय में नहीं कहा जा सकता।" फिर बातचीत शुरू हुई। उससे मालूम हुआ कि मद्रास के वकील तो इसलिए खादी पहनते हैं, कि वे अन्य वकीलों की अपेक्षा अधिक व्यवहारक्षम हैं। उन्होंने कहा कि 'खादी पहननेवाले खादी के शमले भी पहनते हैं। क्यों कि खादी के बने शमले की कीमत १७।१ होती है, और सामान्य अल्पाके के शमले के ३५) लगते हैं। बहुत से तो पगड़ी भी खादी की ही पहनते हैं, क्यों कि वह १।१ में मिल जाती है, और दूसरे प्रकार की पगड़ियों की कीमत पांच छ रुपये तक लग जाती है।' फिर ये भले सानस कोट-पतखन क्यों अल्पाका और चायना सिक्क के पहनते होंगे? उसमें भी व्यवहारक्षमता से काम लें तो और भी बहुत से रुपये बचा सकते हैं।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाइ देसाई

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, अशाढ बदी १ संवत् १९८४

### हिन्दू-मुस्लिम-एकता

महासभा के अध्यक्ष ने जब मुझे तार से खबर दी की महा-समिति की बैठक में हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न वाला प्रस्ताव सर्वानुमति से मंजूर हो गया है, तब मुझे बहुत भारी आनन्द नहीं हुआ। तार में प्रस्ताव के सज्जन के बारे में काफी खबर थी। जब अध्यक्ष साहब मुझ से मिलने के लिए नन्दी आये तब पूछने लगे कि 'क्या आप इस प्रस्ताव पर कुछ लिखेंगे।' मैंने जवाब दिया कि मैं इस पर ऐसा कुछ भी नहीं लिख सकता जिससे कुछ सहायता हो सके। इस मुलाकात के कुछ ही दिन बाद, मुझे एक मित्र का संदेश मिला, जिसका भाव यह था — हमारे बीच आज जो दंगे उपद्रव आदि हो रहे हैं, उसके लिए आप जिम्मेदार हैं। अगर आप ख्वाहमख्वाह हिन्दुओं को खिलाफत के मसले में न घसीटते तो ये दुःखद घटनाएँ नहीं घटती। पर अब इनसे देश की बचाने की शक्ति भी केवल आप ही के हाथों में है।'

इस संदेश का अनुवाद करते हुए मैंने मूल की भाषा की कटुता को बहुत सौम्य कर दिया है। मालूम होता है, मानो वह मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकता में अपनी अटल श्रद्धा घोषित करने को बुला रहा है। मुझे इस बात पर जरा भी अफसोस नहीं हो रहा है कि मैंने खिलाफत के आन्दोलन में भाग लिया। वह तो अपने मुसलमान देश भाइयों के प्रति मेरा कर्तव्य था। यदि हिन्दू अपने भाइयों की मुसीबत में उनकी सहायता नहीं करते, तो वह उनकी भारी गलती होती।

आज की परिस्थिति चाहे कितनी ही खराब हो, मुसलमानों की आत्मे वाली पुस्तें हिन्दुओं के इस भाईचारे के सलूक को कृतज्ञता के साथ याद करेंगी। पर भविष्य की बात जाने दीजिए। चूंकि इस बात में मेरा अटल विश्वास है कि भले का फल सदा भला ही होता है, खिलाफत के बारे में मैंने जो कुछ किया है उसका मैं तो

समर्थन ही करूँगा। इसलिए इन मित्र के ताने को मैंने शान्ति पूर्वक सह लिया।

पर मैं चाहता हूँ कि मैं इन दोनों जातियों में शान्ति-समाधान करने में अपनी शक्तिभर सहायता कर के उनकी आशा को पूरा कर सकता। क्योंकि मेरा तो इस एकता में और उसकी आवश्यकता में आज भी उतना ही अटल विश्वास है। अगर वह मेरे प्रार्थना से प्राप्त हो सकती हो तो मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता के अपने प्राण भी समर्पण कर देना चाहता हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि मुझ में अपने प्राणों को अर्पण कर देने की शक्ति भी है। बड़ी खुशी के साथ मैं कभी खतम न होने वाला एक उपास कर सकता हूँ जैसा कि मैंने दिल्ली में १९२४ में करीब करीब किया था। हाँ, अगर इससे हिन्दुओं और मुसलमानों का पत्थर का सा दिल पसीज और पलट सकता हो! परन्तु अभी इस तरह का प्रायश्चित्त करने के लिए परमात्मा की ओर से मुझे कोई संकेत नहीं मिला है और अगर प्रायश्चित्त एक आत्मशुद्धि का भी काम है, तो उसके लिए एक आत्मशुद्धि का सच्चा प्रयत्न हो जाना जरूरी है। पर स्पष्ट है अभी उस महान् प्रायश्चित्त के योग्य मेरी आत्मशुद्धि नहीं हो पाई है।

अगर आज कल पाठक मुझे इन पृष्ठों में इस प्रश्न को बार-बार उल्लेख करते हुए नहीं पाते हैं, तो इसका कारण यही है कि वह बहुत इतना गहरा चला गया है कि उसे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। इन लज्जा-जनक उपद्रवों के करने वाले चाहे हिन्दू हों या मुसलमान मेरे नजदीक यह बात कोई सह्य नहीं रखती। यह जान लेना चाहेंगे कि हम लोगों में से कुछ लोग एक शान्तिशील परमात्मा की निम्न कर रहे हैं, और धर्म के पवित्र नाम पर अमानुष कुकर्म कर रहे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि न तो खून-खबर से और न बदला लेने के ख्याल से निर्दोष मनुष्यों का वध करने से धर्म की रक्षा हो सकती है। धर्म की रक्षा तो — अगर वह धर्म के पवित्र नाम के योग्य है, — तो उसके अनुयायियों की पवित्रता, नम्रता और ऊँचे से ऊँचे दर्जे की निर्भयता द्वारा ही की जा सकती है। वस वही सच्ची शुद्ध और सच्चा धर्म-प्रचार है।

इसीलिए महासमिति के प्रस्ताव का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ। क्यों कि मैं जानता हूँ कि हमने अभी अपने हृदयों को न बदला है, और न हमने अभी अपने अन्दर से एक दूसरे के प्रति का को निकाल बाहर किया है। जो समझौता इन दो शतों को पूरा नहीं करता, वह ब्रूया है।

दूसरे, मेरा ख्याल है कि एक राष्ट्र के भिन्न भिन्न अंगों के बीच जो समझौता हो, वह पूर्णतया स्वेच्छापूर्वक हो और स्वेच्छापूर्वक ही उसका पालन भी हो। अगर स्वराज्य के ख्याल से वह समझौता किया गया है तो उसे अपनी अंतिम मंजूरी और अमल के लिए किसी सरकारी कानून पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। अगर हमारी अन्तर्गत संस्थाएँ उसे मंजूर कर लें तो वह संपूर्ण और बाध्य समझा जाना चाहिए। इसका अमल भिन्न भिन्न दलों के नेताओं की प्रतिष्ठा पर निर्भर रहे। यदि यह न हो और यदि हमें अहिंसा में भी श्रद्धा न हो तो खूबम खूब युद्ध छेड़ दिया जाय और भली या बुरी तरह उसमें लड़ लिया जाय; और उसका जो नतीजा हो उसके अनुसार ही यह प्रश्न तब ही जाय। पर एक विदेशी सत्ता के पास जा कर यह कहना कि हमारा निर्णय कर दो, या संगीन की नोक पर शान्ति कायम कर दो, स्वराज्य की योग्यता की नहीं, कमजोरी की निशानी है।

अगर लड़ाकू लोगों पर हमारा अर्थात् नेता कहे जाने वाले लोगों का कोई प्रभाव न हो, तो हमारे समझौते झूठे और व्यर्थ हैं। स्वराज्य की बात सोचने के पहले, जनता के दिल में हमें स्वतन्त्रता का प्रभाव प्राप्त कर लेना जरूरी है। यह सीख लेना जरूरी है कि हम



११ जुन, १९२७

कोई असर नहीं पड़ेगा। उस समझौते का दिल्ली पर कोई असर नहीं पड़ेगा। और हमारे लिए यह अत्यंत लज्जा की बात है कि वहां पर शान्तिकी रक्षक हम नहीं बल्कि सरकार ही रही।

मोरा अहिंसा धर्म एक महान शक्ति है। उसमें कायरता और अहिंसा के लिए जरा भी स्थान नहीं है। एक हिंसा का उपासक अहिंसा को बचन बन सकता है, पर एक कायर से तो कभी अहिंसक बनने की उम्मीद ही नहीं की जा सकती। इसीलिए मैंने कई मर्तबा इन पृष्ठों में लिखा कि यदि कष्ट-सहन अर्थात् अहिंसा द्वारा हम अपनी स्त्रियों और बच्चों की रक्षा नहीं कर सकते हों तो, और यदि हम स्वस्थानों की रक्षा नहीं कर सकते हों तो, और यदि हम हमें सशस्त्र प्रतिकार कर के तो जरूर उनकी रक्षा कर सकते हैं तो, कमसे कम हमें सशस्त्र प्रतिकार करने के लिए तैयार होना चाहिए। दो लड़ते हुए दलों के बीच शान्ति स्थापन करने के लिए हमारी स्त्रियों की रक्षा करने के लिए सरकार से कहना या हमें ऐसी आशा करना निरी कायरता है। और जब तक हम स्वस्थानों में सरकार तो केवल पुलिस का काम करती है। पर हाल ही में दिल्ली और लाहौर में की गई तैयारियों को पुलिस का काम नहीं कर सकता। मतभेद तो हमेशा बने ही रहेंगे। पर हमें उनको पंचायत द्वारा मिटाना सीख लेना चाहिए, फिर वे मतभेद न हों या अन्य प्रकार के। यदि हम स्वराज्य चाहते हैं तो शासकों को दिला देना चाहिए कि अपने मामलों को सुलझाने की ओर बुद्धि हमारे अन्दर है।

जिसे हमारे बीच ऐसे कोई नेता पुरुष न हों जिन्हें हम अपने कामों से और जो हमें न्याय और पक्षपात रहित राय दे सकते हों, और यदि हम इतने उड़ड़ और जंगली हों कि पंचों के सुनने तक न ठहर सकते हों या उसे सुन लेने के लिए उसका पालन न कर सकते हों तो हमें खूब मनमाना अपने दिमाग दुरस्त कर लेना चाहिये। हां, हम चाहें या नहीं सरकार तो शान्ति-रक्षा या अपनी रक्षा के ख्याल से जरूर ही इस लड़ाई में भी विघ्न करेगी ही। पर यदि लड़ाकू दल न हों और उससे रक्षा या सहायता न मांगेंगे तो वह हमें कमजोर नहीं कर सकती। और ऐसे युद्ध में मार काट करने का हत्यारे का बचाव क्यों किया जाय ? और फिर फांसी पर लटकने दिया जाय। पूजास्थानों को तोड़ने वाले और धर्म के लिए किया जाय। निःसन्देह यह बड़ा निर्दय और हृदयहीन सुनाई देगा। पर मैंने तो केवल वह रास्ता बताने का यत्न किया है जो हमारे वर्तमान तरीकों से अधिक सीधा, और कम कमजोर है।

और यदि हम सभ्य आदमियों की तरह पंचायतों से काम नहीं कर सकते, या ब्रिटिश न्याय और वंदूकों की विना सहायता मांगेंगे तो हमें समान युद्ध करके भी अपने झगड़ों का समाधान नहीं कर सकते, तो सुधारों के रूप में हमें केवल एक ही रास्ता मिलने की आशा करनी चाहिए। और वह है नौकर-कर्मियों के हाथों मिलनेवाली दलाली का बड़ा हुआ हिस्सा। दूसरे हैं, जो कहें कि सरकार करोड़ों मूक भारतीयों को लुटने के लिए तैयार है। हम जो कुछ भी समझोता आपस में करें, हमें उस खराब स्थिति में जा कर डाल दे।

मोहनदास करमचंद गांधी

## किसानों के प्रति

[ हाल ही में श्री वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के किसानों की एक सभा में जो भाषण दिया था, उसका महत्वपूर्ण हिस्सा नीचे दिया जाता है। सं. न. जी. ]

इतनी अधिक संख्या में तो प्रायः किसान तभी इकट्ठे होते हैं, जब या तो सरकार के साथ या साहुकारों के साथ कोई लड़ाई लड़नी होती है।

साधारण तौर से किसानों के दुःख दो ही प्रकार के होते हैं। एक तो अज्ञान के कारण अपने हाथों बुलाया हुआ, और दूसरा यह कि, हम परतंत्र हैं, परराज्य में हैं, गुलाम हैं। यह दुःख बहुत भारी और देशव्यापी है। और केवल किसानों को ही नहीं, सब को एकसा है। भारत के दूसरे हिस्सों के किसानों की बनिस्वत आप जरा अधिक सुखी हैं। उन्हें तो बड़ी तकलिफ है, जिसे देखते ही तरस आती है। करोड़ों किसान ऐसे हैं, जिन्हें पहनने के लिए कपड़ा नहीं मिलता, खाने के लिए रोटी नहीं मिलती और नहीं मिलता पीने के लिए साफ पानी भी। यह दुःख आपको नहीं है। परन्तु जो किसान समझदार हैं, वे परतंत्रता के दुःख को समझ सकते हैं, स्वमानभंग की पीड़ा को जानते हैं। बैल के कंधे पर जिस तरह धुरा रक्खी जाती है, और वह अपने अपमान को नहीं समझता, उसी तरह अगर आप को भी अपने मान-भंग का ख्याल न हो, तो आपको कोई दुःख नहीं होगा। पर यदि आपकी आत्मा जागृत हो, तो आपको विदेशियों का शासन असह्य होना चाहिए।

जिस प्रकार आदमी एक शेर को अपने वश में कर लेता है, उसी प्रकार एक काबिल आदमी दूसरे मनुष्य को भी अपने वश कर लेता है। पर वह है तो गुलाम ही। आज हमारी यही दशा है। इसी लिए एक वर्ष के अंदर इस गुलामी से छुड़ाने की आशा गांधीजी ने की थी।

उनकी बातों को आप सोचिए। किसान अकेली खेती पर अपनी गुजर-बसर नहीं कर सकता। हां, जिसके पास बहुतसी जमीन हो, विशेष बुद्धि हो और साथ ही जो खूब मिहनत भी करता हो, उसकी बात जूरी है। पर आजकल तो जमीनों के टुकड़े टुकड़े होते जा रहे हैं। अब तो किसान तभी अपना पेट भर सकेगा जब उसके पास खेती के साथ साथ कोई दूसरा भी ऐसा काम होगा, जिसे वह घर बैठे कर सके।

इस गांव में लगभग बत्तीस सौ मनुष्य रहते हैं। साल में फी आदमी कम से कम दस पंद्रह रुपये का कपड़ा तो लग ही जाता है। हिसाब लगाइए। आप हर साल तीस से लेकर चालीस हजार रुपये अपने गांव से बाहर भेजते हैं। यह इस तरह कबतक चल सकता है ? क्या आप ख्याल नहीं कर सकते कि ऐसा समय आ रहा है जब आपके पास आपके बैल भी रहने नहीं पावेंगे ? बैलों का स्थान यंत्र ले रहे हैं। गाड़ी भी नहीं रहेगी। हल वगैरा बाहर से आनेवाले हैं। फिर तो आपको सब खेती यंत्रों की सहायता से होगी। अहमदाबाद में शीघ्र ही खेती सम्बन्धी एक प्रदर्शनी होने वाली है उसमें आपको यह सब बताया जायगा और आप से कहा जायगा कि 'अब यहां खाना भी क्यों पकाते हो ? बनी बनाई रोटी मंगाकर खाओ'।

जरा ख्याल कीजिए, आपके पैदा किये माल तथा आपके बीच कितने दलाल हैं ? आपकी कपास वावला (कस्बा) की भेजी जाती है। वहां जीन में वह लोडी जाती है, उसकी रई बनती है। रई प्रेस में भेजी जाती है, वहां उसकी गठडियां बनती हैं। वहां से अहमदाबाद। इस बीच व्यापारी और दलाल तो होते ही हैं। अहमदाबाद से बम्बई, बम्बई से माल जहाज पर विदेशों में भेजा



जाता है। वहां जा कर कहीं उसका सूत और कपड़ा बनता है। कपड़ा बनते ही फिर वही उलटा क्रम। कारखाने से जहाज पर, जहाज से बम्बई में, बम्बई में 'मूलजी जेटा मारकेट' में कुछ विश्रान्ति ले कर माल अहमदाबाद आता है, और अहमदाबाद से आप उसे यहां लाकर पहनते हैं। कैसा औंधा व्यापार है? जिस प्रकार बैल से हम खेती का काम लेते हैं, उसी प्रकार विदेशी लोग हमसे मजदूरी कमा कर सब कुछ विदेशों में ले जाते हैं। और आश्चर्य यह कि यह सारा नाटक हमारी मार्फत ही खेला जा रहा है। गांधीजी कहते हैं कि साठ करोड़ रुपये का कपड़ा इंग्लैंड से आता है, उसे बंद कर दो। अपना कपड़ा खुद ही बना लो? इससे आपके जुलाहे रोजी से लग जायेंगे, और आपकी मां, बहनें, और बेटियों का भी पेट भरेगा। इन छोटी छोटी बालाओं को आप यह कितना सहन कपड़ा पहना रहे हैं? क्या यह हमें फबता है?

मुझे यह देख कर दुख होता है कि समझदार किसान भी इस बात को क्यों नहीं समझते। आज तो उन्हें नाटक सीनेमा और पैसे के खेल अच्छे लगते हैं। वे रोज सुबह शाम किराये की मोटरों में बैठकर यहां से अहमदाबाद और अहमदाबाद से यहां दौड़-धूप मचाते हैं। पर क्या आप जानते हैं कि सारे जिले को निचोड़ कर, उसका खून हड्डियां और मांस का भी सत्व निचोड़ निचोड़ कर यह अहमदाबाद बसा है? किसानों को पुनः अपनी असली हालत को संभाल लेना चाहिए। किसी धर्मवान् तपस्वी की बात को केवल सुन कर ही नहीं रह जाना चाहिए। उस पर आप अमल करेंगे तभी फायदा होगा।

दूसरी बात। किसानों में टंटे-बखेडे बहुत पाये जाते हैं। यदि इसमें खुद किसान ही आपस में समझौता नहीं कर लेंगे तो उन्हें कौन समझा सकता है? हमें अपने मतभेदों को कभी ऐसा गम्भीर स्वरूप नहीं देना चाहिए, जिससे लडके आपस में लड मरें। एक दूसरे की छेड़छाड़ और निन्दा भी नहीं करनी चाहिए। जिन किसानों में एकता है, उन्हें कोई नहीं सता सकता।

तीसरी बात ऐसी है, जिससे हर एक किसान को शर्मिन्दा होना चाहिए। जो मजबूत है, सुखी है, साधन-सम्पन्न है, उन पर यह आक्षेप किया जा रहा है कि वे अशिमानी हैं। और वे इतने अशिमानी हैं कि ईश्वर को भी भूल जाते हैं, जिसके दरबार में गरीब, अमीर ऊंच नीच सब एक हैं। वे इस बात को भूल जाते हैं कि उन्हें इस दरबार में खड़े होकर परमात्मा के सामने अपना हिसाब पेश करना है। इसलिए वे अपने से नीचे के वर्गों को सताते हैं। उनसे वे बेगार लेते हैं। सरकार भी जितनी बेगार नहीं लेती, उतनी ये लेते हैं। इतना देश-व्यापी आन्दोलन हो जाने पर भी इन किसानों के दिल में अभी यह बात नहीं जमने पाई कि किसी भी आदमी को अस्पृश्य समझना पाप है। अस्पृश्यता एक बहम है। हम कुत्ते को छूते हैं, बिछी को छूकर नहीं नहाते, फिर जो हमारे ही समान मनुष्य हैं, उसे छूकर हम अपवित्र कैसे हो जाते हैं? हिन्दुओं आर्यो, तुम भूल कर रहे हो। देश में हिन्दू-समाजों की स्थापना हो रही है। हिन्दू महासभा कहती है कि अंत्यज मुसलमान और ईसाई बन कर जब आपके सामने आता है तो आप उसे सलाम करते हैं। इस तरह जब हमारी हालत है तो हमारे यहां धर्म कैसे रहे? और इसमें ईश्वर का भी क्या दोष है? एक अंत्यज जबतक हिन्दू होता है, जबतक वह हमारे पास बैठने लायक नहीं होता, पर जब विधर्मी बन कर हमारे धर्म का विरोधी हो जाता है, तब वह हमारे साथ बैठने योग्य हो जाता है। कैसी विचित्र बात है!

आपके जमीन हो, धन हो, और बुद्धि भी हो तो उससे क्या फायदा? यह ठीक नहीं कि सुखी अपने सुख के मद में दूसरों

को दुख देता रहे। परमात्मा ने हमें बुद्धि बेंच खाने के लिए नहीं, बल्कि उसका सदुपयोग करके दूसरे को सुख पहुंचाने के लिए दी है। गरीब और दुखियों पर हमें साथी फैलानी चाहिए। सच्चा किसान वही है जिसके आश्रय में सब को स्थान मिले। पहले अन्नार्थी वर्ण किसान के आश्रय में रहते थे। इसका कारण उसका प्रेम था। अन्नार्थी जातियां एक कुटुम्ब — एक शरीर के समान रहती थीं। पुनः ऐसी व्यवस्था के लिए हमें अपने दिल में परिवर्तन करना चाहिए, प्रेम करना चाहिए। हम सबका न्यायदाता केवल परमात्मा है। इसलिए यदि किसान इस बात को समझ लें तो बड़ सुखी हो सकते हैं।

यह बात अब झूठी होती जा रही है कि गुजरात में हिन्दू-मुसलमानों का उपद्रव नहीं हुआ। गुजरात हिन्दू-मुसलमानों के उपद्रवों से अलूता नहीं रह सकता। यह न समझें कि कल आपके यहां कोई उपद्रव उठ खड़ा न होगा। जब सारे भारत में यह आग सुलगी हुई है, तब यह मानने के लिए कोई कारण नहीं, कि उसकी चिनगारियां यहां आकर यहां भी आग न सुलगा देंगी। इस समय तो सभी एक दूसरे का सिर फोड़ने की ताक में बैठे हुए हैं। पर देहात में यह सवाल इतना उग्र नहीं है। किसानों का इससे कोई भारी सम्बन्ध नहीं है। न सरकार से उसे विशेष सरोकार है। सामान्य दुःख तो सरकार के द्वारा दूर कराया जा सकता है। पर यह प्रथा अच्छी नहीं। इसका विचार आप भली भांति कर लीजिए कि अपने घर की आपसी व्यवस्था दूसरे के हाथों में सौंपना कहां तक अच्छा है? जब तक हमारे बीच दूसरे का दखल होगा, हमें कभी सुख नहीं मिल सकता। इसी सिद्धान्त पर अपने मामलों को सुलझाना किसानों को सीख लेना चाहिए।

अब तो स्वतंत्रता के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। स्वतंत्रता जरूर आवेगी। इसलिए आप अपनी जिम्मेदारी को उठाना सीख लें। अभी से इस बात का सबूत आप को मिलने लग गया है। पर शीघ्र ही ऐसा समय आवेगा, जब आपको अपनी ही पुलिस रखनी होगी। इसीका नाम स्वराज्य है। जब तुम्हारे लडके बंदूकें ले कर डाकूओं का सामना करते पाये जावेंगे, तब समझ लेना कि आपको स्वराज्य मिल गया। आजकल के लडकों ने तो कामया भी नहीं देखा होगा, रण की पुकार भी नहीं सुनी। जब आपके लडके मर्दाना खेल खेलते होंगे, झिल करते होंगे, और राष्ट्रीय फौज में भरती होने लगेंगे, तब गांव की रक्षा हो सकेगी, और यही स्वराज्य है। पर ये सब चीजें आस्मान से टपकने वाली नहीं हैं। उन्हें तो आपको प्राप्त करना करना होगा। इसलिए जागिए। अपनी चारों ओर क्या हो रहा है, जरा आंखें खोल कर देखिए। अगर आप नहीं देखेंगे तो धोखा खावेंगे। आजकल तो संसार ऐसा हो गया है कि कहीं भी किसी घटना होते ही चौबीस घंटे के अन्दर उसकी खबर सारे संसार में फैल जाती है। चीन में, अमेरिका में, अफ्रिका में जो कुछ हो रहा है, उसकी खबरें हमें फौरन मिल जाती हैं। यहां आपके इस गांव में भी कोई जानने योग्य घटना हो जाय, तो चौबीस घंटे के अंदर सारे संसार में उसकी खबर फैल जाय। इसलिए आपका यह कर्तव्य है कि आप हमेशा जागृत रहें और संसार में जो हो रहा है, उससे बेखबर न रहें।

पर किसान सब से बड़ा पाप तो यह करता है कि वह छोटे बच्चों की शादियां कर देता है। अगर मेरी चले तो बारह बारह तरह तरह वर्ष की बालाओं की शादी कर देने वाले पालकों को उसी वक्त गोली मार देने या फांसी पर लटका देने का कानून कर दूं। अरे, चौदह चौदह पंद्रह पंद्रह वर्ष की कोमल बच्चियां माताएं हो जान,



**चर्मालय**

जैसे पाठकों को यह सूचित कर सकता हूँ कि वे सत्याग्रहाश्रम के चर्मालय से मरे जानवरों का कमाया हुआ उम्दा चमड़ा खरीद सकते हैं। चम्पल (Sandals), कमरपट्टे इत्यादि चीजें जो वन में भी लग गई हैं। पर ये अभी इतनी तादाद में नहीं हैं जो बाहर से आनेवाली सभी फरमाइशें पूरी की जा सकाये हुए चमड़े की फरमाइशों को काफी हद तक जरूरतें पूरा कर सका है। चमड़ा तीन रंग का तैयार किया गया है काला, लाल और सफ़ेद का। कीमत के अनुसार वह दो प्रकार का है। (१) और दूसरा (२) फी रतल का। जो इस प्रयोग को करना चाहें, अथवा जो केवल मरे जानवरों के चमड़े का ही प्रयोग करना चाहें, वे सत्याग्रहाश्रम साबरमती के चर्मालय के अधिकारी से विशेष जानकारी के लिए पत्रव्यवहार करें। जबतक कि चर्मालय में बूट, शू, चम्पल, स्लीपर आदि काफी तादाद में उपलब्ध न हो जाय, ठीक तो यही होगा कि ग्राहक आश्रम से चमड़ा ही खरीदें और जिनको जिस चीज की जरूरत हो, उसे वे अपने मोर्चियों से खरीदें और जानवरों के चमड़े से बनवा लें। खादी खरीद कर जिस तरह की चीजें बनानी हैं, वैसे ही, लोग चमड़ा भी खरीद कर अपनी आवश्यकता के

मो० क० गांधी

पाषण्ड-गणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन् उक्तवान्मनुः ॥

कुटुम्ब ईश्वर की बनाई एक महान और सनातन संस्था है। इसका कुल-धर्म एक अत्यंत गंभीर वस्तु है। उसका संस्करण किया जा सकता है, विकास हो सकता है, पर उसका उच्छेद तो कर नहीं सकते। अर्जुन ने भी परम्परा से यही सुना था कि कुल-धर्म का उच्छेद करने वाले को नरकवास मिलता है। ऐसे कुलधर्म या कुल-परम्परा की तफसील शाक ग्रन्थों में नहीं दी जा सकती। कुटुम्ब-



संस्था लगभग अमर होने के कारण कुलधर्म का स्मरण, पालन, और विकास कुटुम्बीजनों के हाथों में सुरक्षित है।

परन्तु इस कुल-धर्म की महीमा कुल के अन्द ही समाप्त नहीं हो जाती उसी में समाविष्ट नहीं हो जाती। कुल को भी अपना आत्मोत्सर्ग करना ही पड़ता है। आत्मोत्सर्ग के सिवा कृतार्थता कहाँ ? वर्णाश्रम धर्म के आदर्श की स्वीकार करनेवाले के लिए कुल के बाद जाति है। जाति वर्ण का एक भेद-विभाग है। हमारे यहाँ वर्ण तो चार ही हैं। पर जातियाँ न जाने कितनी हैं। जब तक आदमी वर्ण के योग्य विशालता का विकास नहीं करता तब तक उसे जाति के अंदर ही रहना पड़ता है। ज्यों ज्यों संस्कारों का विकास होता है त्यों त्यों जातियों की संख्या कम होनी चाहिए। परन्तु हमारे यहाँ तो जातियाँ बढ़ती ही जा रही हैं, और क्यों न बढ़ेंगी? समाज-धर्म जब ढीला हो जाता है, संस्कारिता ज्यों ज्यों धुंधली होती जाती है, तब जातियाँ छिन्न-भिन्न न हों तो और क्या होगा? वर्ण का आधार तो समान आदर्श और समान रहन सहन पर स्थित है। जाति अपने धात्वर्थ के अनुसार रक्त सम्बन्ध को व्यक्त करती है। जातिधर्म प्राकृतिक है। वह कई बार संस्कारों की ओर से उदासीन रहती है। इसीलिए इसमें संकुचितता के बढ़ने की संभावना बहुत होती है। जिस प्रकार एक बावली माँ अपने बच्चों के गुण-दोषों का विचार नहीं करती, बल्कि मोह के कारण दोषों को भी सुंदर और अच्छा समझ कर पकड़े रहती है, उसी प्रकार जातिधर्म सजातियों से जातीय समता की ही उम्मीद करता रहता है। एक दूसरे को पहचान लो, एक दूसरों से आशा करो, परस्पर सहायता करो आचरण के विषय में इससे अधिक चिकित्सा की जरूरत नहीं। यह है जाति-स्वभाव। 'कौमी वाद' जाति-स्वभाव का एक महान् संस्करण मात्र है।

इस तरह के जाति-धर्म को वर्ण-धर्म के दश में हो कर रहना चाहिए। यदि जातियाँ वर्ण के आदर्श, वर्ण के कर्म उसकी टेक अथवा प्राण की उपेक्षा करें तो काम नहीं चल सकता। वर्ण-विमुख जाति निर्बल और निष्प्रभ हो जायगी।

जाति जन्म के अनुसार निश्चित होती है, इसलिए उसमें से गिरने का डर तो साधारणतया हो ही नहीं सकता। जो सच के प्रति हमेशा वफादार रहेगा वह तो जाति में सुरक्षित ही है। परन्तु वर्ण तो आचार-मूलक है। यदि आदमी आचार संस्कार या वर्ण की विशेष टेक को छोड़ दे तब तो वह जरूर ही वर्ण-विच्युत होगा। इसीलिए वर्ण के आचार निश्चित करने की आवश्यकता उपस्थित होती है। स्मृतियाँ इसी तरह बनती हैं। ज्यों ज्यों जमाना बदलता रहता है त्यों त्यों स्मृतिकार इस आचार-धर्म को कठोर या नरम करते रहते हैं। प्रत्येक जमाने के शीलसंपन्न जीवित समाज-पुरुष अपने अपने जमाने के स्मृतिकार ही होते हैं, वे अपने इन अधिकारों का उपयोग करें या न करें, यह बात जुड़ी है।

वर्णाश्रम-धर्म के साथ साथ पाषण्डधर्म और गणधर्म तो होने ही चाहिए। प्रत्येक समाज में एक ऐसा दल तो जरूर होता है, जो शास्त्र को प्रमाण नहीं मानता। ऐसे वर्ग को 'पाषण्ड' कहा जाता है। पहले शब्द 'पाषण्ड' गाली नहीं समझा जाता था। बौद्धधर्मी अशोक ने 'सर्वे पाषण्डा व्रतेयुः' यह कह कर सब को अभयदान दिया था। यद्यपि वह अपनी मति के अनुसार सच्चा धर्म तो बौद्धधर्म को ही समझता था। पाषण्डों लोग एक खास शास्त्र को प्रामाण्य भले ही न मानें। परन्तु इससे वे धर्मबाह्य अथवा धर्मशून्य तो नहीं हो जाते। उनका भी अपना धर्म तो होता ही है।

हिन्दू समाज के वैभवकाल में वर्णाश्रमधर्म ने राजशासन को सर्वोत्कृष्ट और अपरिहार्य माना था। परन्तु हिन्दू समाज प्रजातंत्र

का भी काफी अनुभव ले चुका था। जहाँ लोकसत्ता काम कर सकती हो वहाँ राजधर्म की क्या जरूरत? उनके लिए तो गणधर्म ही होना चाहिए।

इस तरह व्यक्तिधर्म, कुलधर्म, जातिधर्म, वर्णाश्रम-धर्म, पाषण्डधर्म, और गणधर्म मिल कर पूरा समाज-धर्म बन गया है। इस तरह प्रत्येक धर्म अपने अपने स्थान पर संपूर्ण है। परन्तु हम जब विदेशों में जाते हैं, अथवा विदेशी लोग हमारे यहाँ आकर बसते हैं तब हिन्दूधर्म, पारसीधर्म, इस्लाम, ईसाईधर्म इत्यादि स्वतंत्र महाधर्मों के अतिरिक्त हमें देश-धर्म को भी देखना पड़ता है।

देश-धर्म की ओर मनुष्य-समाज ने और खास कर भारत ने काफी ध्यान नहीं दिया है। जब अनेक धर्म एकत्र रहना चाहते हैं तब या तो उन्हें पशुओं के समान शिकार-धर्म का आश्रय लेना चाहिए या प्रत्येक धर्म की महत्ता को समझकर, प्रत्येक धर्म के जन्मस्थान के अनुसार, संस्कृति के अनुसार, उसकी प्रतिष्ठा निश्चित कर के देश-धर्म की रचना कर लेनी चाहिए। अरबस्तान ने अपना देशधर्म निश्चित करने का प्रयत्न किया है, फिर वह चाहे कैसा ही हो। अब तक वहाँ के लोगों ने यही आग्रह कायम रखा है कि जो इस्लाम को न मानता हो वह अरबस्तान में नहीं रह सकता। अमेरिका ने भी किसी तरह अपने लिए एक काम चलाउ देशधर्म कायम कर लिया है। आदमी चाहे जिस धर्म का अनुयायी हो नागरिकता के अधिकार केवल उसीको मिल सकते हैं जो गोरी जातियों में से होगा। आदमी चाहे जिस धर्म को माने वह बहु-पत्नी-प्रथा का पालन वहाँ नहीं कर सकता। इस तरह के देशधर्म के नियम अमेरिकावातियों ने बनाये हैं और भविष्य में बनाते रहेंगे। दक्षिण आफ्रिका के निवासी भी कानून के जोर से अपना देशधर्म बनाना चाहते हैं। वे न केवल नियम भी बनाना चाहते हैं कि दक्षिण आफ्रिका में अमुक आदमी और वे भी फलों फलों शतों पर ही वहाँ जा सकते हैं।

उदाहरण की सुलभता के ल्याल से ये तीन उदाहरण यहाँ दे दिये हैं। पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि संपूर्ण मानवजाति के विकास का विचार इसमें ठीक तौर पर किया गया है। यूरोप और अमेरिका के लोग जहाँ कहीं विदेशों में जा कर बसे हैं, वहाँ के मूल वतनियों के विकास का तो मानों वे विचार भी नहीं करते।

परमात्मा की इच्छानुसार हमारे यहाँ विश्व के सभी धर्मों का एक महान परिवार बन गया है। इसलिए हमारा देशधर्म विशाल, सर्वप्रधान, सर्वसहिष्णु और सर्वोदयसाधक होना जरूरी है। जब पारसी यहाँ आये और उन्होंने धार्मिक स्वाधीनता चाही तो उस समय के सत्ताधीशों ने उनसे देशधर्म के पालन का वचन मांगा। पारसीयों ने यहाँका देशधर्म मान लिया और वे यहाँ सुखपूर्वक रहने लगे और यहाँके निवासी बन गये। हिन्दू समाज यदि समर्थ रहा होता, और हिन्दू धर्म ने अपने तेज की हमेशा रक्षा की होती, तो अभी तक उसने संसार के सामने आदर्श देशधर्म उपस्थित कर दिया होता। कुलधर्म जितना सनातन है, उतना ही सनातन देशधर्म भी हो सकता है। क्योंकि इसमें विस्तार भेद और विकास के लिए संपूर्ण अवकाश रखकर प्रधान जीवन तत्त्वों का ही आग्रह रखा जा सकता है। और अहिंसा ही इस देशधर्म की नींव हो सकती है।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

अथवा

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।

सर्वः सद्बुद्धिमान्पुनोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥

यही इसका आशय है।

(नवजीवन)

वृत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर



मौका है

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४५ ]

अहमदाबाद, अषाढ वदी ९ संवत् १९८४

गुरुवार, २३ जून १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाड़ी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ६

### निरामिषाहार के प्रीत्यर्थ

कम में ज्यों ज्यों त्याग और सादगी बढ़ती गई, और धर्म-विज्ञान हुई त्यों त्यों निरामिषाहार का और उसके प्रचार की भी बढ़ने लगा। प्रचार तो मैं केवल एक ही प्रकार से करता हूँ—आचार और आचार के साथ-साथ जिज्ञासुओं को प्रवृत्त करके।

जर्मनी में एक निरामिषाहारी गृह था। उसे एक जर्मन मित्र ने जो क्यूनी के जलोपचारों को भी मानता था। मैंने उसका दृष्टि किया। साथ ही जितने अंगरेज मित्रों को वहां ले जाया मैं ले जाता था। परन्तु मैंने देखा कि यह गृह अधिक दिन चल पाएगा। आर्थिक कठिनाई तो उसे बनी ही रहती थी। उचित जान पड़ा, मैंने उसकी सहायता भी की।

मैंने सोचा भी। पर आखिर वह बंद हो गया। जर्मनी में बहुत से निरामिषाहारी होते हैं। कुछ पूरे, कुछ आंशिक। इस मंडल की एक बाई जरा साहसी थी। उसने बड़े पैमाने पर एक निरामिषाहारी गृह खोला। वह बड़ी कलाप्रिय थी। उसका धर्म भी। हिसाब नहीं जानती थी। उसकी मित्रता भी। पहले पहल तो इसका काम छोटे पैमाने पर शुरू हुआ। उसने उसमें कुछ बढ़ाने और बड़ा स्थान लेने का निश्चय किया। उसमें मेरी मदद चाही। उस समय उसके हिसाब वगैरा में मुझे कुछ भी मालूम नहीं था। मैंने समझ लिया कि उसका धर्म हिसाब ठीक होगा। उसकी कुछ सहायता भी मुझे थी। कई मक्किलों के पैसे मेरे पास थे। उनमें से एक से इजाजत लेकर उसकी धरोहर में से एक हजार पाउण्ड मैंने उसे दे दिये। यह गृहस्थ विशाल-विशाल था। वह पहले पहल गिरमिट में था। उसने कहा “भाई आप का दिल चाहे तो पैसे मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो आपही को जानता हूँ”

उसने कहा “भाई आप का दिल चाहे तो पैसे मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो आपही को जानता हूँ” सत्याग्रह में उसने बहुत भारी भाग लिया था। उपर्युक्त संमति मिलते ही मैंने उसके

पैसे उस बाई को दे दिये। पर दो ही तीन महीने के अंदर मुझे मालूम हो गया कि पैसे वापिस आनेवाले नहीं हैं। इतनी बड़ी रकम गंवाने की शक्ति मुझ में नहीं थी। मैं इतनी बड़ी रकम का दूसरी तरह उपयोग कर सकता था। आखिर वे रुपये तो वापिस नहीं मिले। परन्तु विश्वासशील बंदी के पैसे कहां जा सकते थे? वह तो मुझे जानता था, और मैंने वे पैसे भर दिये। एक मक्किल मित्र से मैंने इस लेन-देन की बात कही। उन्होंने मुझे मधुरता पूर्वक ताना देते हुए कहा :—

“भाई, (दक्षिण आफ्रिका में मैं ‘महात्मा’ नहीं बना था। ‘बापू’ भी नहीं हुआ था। मक्किल मित्र मुझे ‘भाई’ शब्द से ही संबोधित करते थे।) यह काम आपका नहीं है। हम तो आपके विश्वास पर चलनेवाले हैं। ये पैसे आपको अब वापिस नहीं मिलेंगे। बंदी को तो आप बचा लेंगे पर अपने खोवेंगे। पर यदि ऐसे सुधारों के लिए आप अपने मक्किलों के पैसे देने लगेंगे तो मक्किल बेचारे मर जावेंगे और आपको भभूत रमा कर घर पर बैठना पड़ेगा। इससे आपके सार्वजनिक काम को भी हानि पहुंचेगी।”

ये मित्र अभी जीवित हैं। दक्षिण आफ्रिका में और अन्यत्र भी उनकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ आदमी मुझे दूसरा नहीं मिला। किसी के विषय में अपने दिल में शक होते ही, तथा यह मालूम होते ही कि वह शक असत्य है, वे उससे फौरन माफी मांग कर अपनी आत्मा को साफ कर लेते हैं। मुझे इनकी चेतावनी सच्ची जान पड़ी। बंदी के पैसे तो मैं लौटा सका, परन्तु उसी काम में दूसरी बार एक हजार पाउंड यदि मैं खो बैठता, तो उनको भर देने की शक्ति मुझमें जरा भी नहीं थी। मुझे कर्ज ही करना पड़ता। और यह काम तो मैंने कभी अपने जीवन में नहीं किया, बल्कि मैं उससे हमेशा घृणा ही करता आया हूँ। मैंने देखा कि सुधार करने के लिए भी मनुष्य को अपनी शक्ति के बाहर कोई काम नहीं करना चाहिए। मैंने यह भी देखा कि इस देन लेने में मैंने तटस्थ निष्कास कर्म वाली गीता की मुख्य शिक्षा का निरादर किया था। यह भूल मेरे लिए एक दीपस्तंभ के समान महान् मार्गदर्शक हो गई।

निरामिषाहार के प्रचार के लिए ऐसा त्याग करने का मैंने कभी ख्याल भी नहीं किया था। यह तो मेरे लिए एक जबरदस्ती का पुण्य हो गया।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचन्द गांधी



## रोगशय्या के पास से

पिछले सप्ताह हम नन्दी से बंगलोर आ गये। रास्ते में थोड़ी देर के लिए चिकबालपुर में ठहरे थे। इसका हाल पिछले पत्र में आ चुका है। बंगलोर में तो हम राज्य के एक विशाल महलनुमा 'गेस्ट हाउस' में ठहरे हुए हैं। आबोहवा बड़ी आनंदप्रद और शीतल है। मिलने जुलनेवाले बहुत से आते हैं। परन्तु गांधीजी विश्रान्ति को अनुभव कर रहे हैं।

### प्रार्थना

यहां आते ही संध्याकाल को हमारी प्रार्थना में आनेवाले लोगों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यह देख कर हमें जरा चिंता हुई। आखिर एक दिन गांधीजी को उन सज्जनों से कुछ शब्द बतौर उपदेश और हिदायत के कहना ही पड़े। वे बोले "मैं चाहता हूँ कि आप मुझे कुछ शान्ति लेने दें। यानी, जब मैं शाम को घूमने के लिए जाऊँ, तब आप लोग मेरे पीछे पीछे न आवें। अभी मैं मरीज ही हूँ। मेरा शरीर और आवाज अभीतक दुर्बल ही है। मैं यहां आराम के लिए आया हूँ। अच्छा होने पर मुझे मैसूर की जनता की जो कुछ भी थोड़ी बहुत सेवा बन पड़ेगी, मैं करने की उमीद करता हूँ। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जितनी विश्रान्ति की मुझे जरूरत है, उतनी सब आप मुझे जरूर देंगे और मुझे शान्तिपूर्वक घूमने देंगे। यह मेरे विषय में हुआ। अब आपके विषय में सुनिए। आप चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, आप यहां आकर प्रार्थना में शामिल हो सकते हैं। पर इसके लिए एक दो शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि आपको इस वृत्ति, ऐसे हृदय और ऐसी मनोदशा को लेकर यहां आना चाहिए जो प्रार्थनामय हो—प्रार्थना के योग्य हो। हर एक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या और किसी भी धर्म का अनुयायी प्रार्थना में शामिल हो सकता है। गीता के श्लोक बोलने के बाद "रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम" कहते हैं। इसमें भी वे सब शामिल हो सकते हैं जिनकी आवाज अच्छी है, जिससे हमारी प्रार्थना में शक्ति उत्पन्न हो कर वह परमात्मा के कानों तक—अगर हमारी प्रार्थनाओं को सुननेवाला परमात्मा कहीं हो तो—पहुँच सके। एक शर्त और है। क्या आप जानते हैं कि पतितपावन सीताराम के मानी क्या है? इन शब्दों द्वारा हम उस परमात्मा को याद करते हैं, जो पतित और दलितों का उद्धार करता है। इसलिए मैं आपसे कहूँगा कि आप खादी पहनकर यहां आते जाइएगा। क्योंकि खादी पहनने से आपका उन पतित और दलित भाइयों से अनायास ही सम्बन्ध जुड़ जायगा। मैं सब आबालवृद्ध बालक-बूढ़े और स्त्री-पुरुषों से कहता हूँ कि आप यहां पर खादी पहन कर आवें।

रघुपति राघव राजाराम

पतित पावन सीताराम

इन पंक्तियों का उच्चारण करने योग्य अपने आपको बनाने के लिए आप कम से कम खारी तो जरूर पहन सकते हैं। यह ऐसी प्रार्थना है जिसमें हिन्दू, मुसलमान ईसाई आदि सब शामिल हो सकते हैं, क्योंकि यह किसी राजा की नहीं, राजाधिराज की—देवाधिदेव की प्रार्थना है, जिसकी हम सब पूजा करते हैं।" उपस्थिति ५०० के करीब हो जाती है। उपदेश का असर हुआ। प्रार्थना का वायुमण्डल शान्त और गम्भीर हो गया। परन्तु खादी की बात का सब पर अभी प्रभाव नहीं हुआ है।

### पं. मालवीयजी का आगमन

'छठी' जाते हुए पंडित मालवीयजी भी यहां एक दिन के लिए उठर गये थे। उनका स्वास्थ्य भी बहुत गिर गया है। जब गांधीजी और मालवीयजी आपस में एक दूसरे से स्वास्थ्य के विषय में सवधान रहने की बात कह रहे थे तब घुनते ही बनता था।

"कुछ दिन हुए 'हाथ कताई-बुनाई' के दो अध्याय पढ़े थे। मैं हमारे इस प्राचीन उद्यम के विनाश का इतिहास अच्छी जानता था, फिर भी मुझे उसे बार बार पढ़ने की इच्छा बम्बई में मेरे पास 'हाथ-कताई-बुनाई' की प्रति नहीं थी। बेलगाव से इसकी एक प्रति ले कर मैं उसे शुरू से पढ़ने लगे। कैसी कष्ट कहानी है! मैं तो चाहता हूँ कि हमारे इस विनाश कहानी देश के प्रत्येक मनुष्य के कानों तक पहुँच जाय और उठें और अपना कपड़ा आप बनाने लग जावें। मेरी श्रद्धा दिन प्रति दिन दृढतर होती जा रही है, और प्रति यह देख कर मेरा दुख बढ़ता जा रहा है कि अभी तक हमारे खादी की सीधी सच्ची बात को क्यों नहीं समझ रहे हैं।" खादी की मुद्रा नीति को देख कर उनके हृदय में मानो एक तीर सा गया है। वे बोले 'हम इस तरह कब तक अन्याय पर सहते चले जावेंगे?' "

अन्य मिहमानों में 'हिन्दू' (मदरास) के सम्पादक और के उद्यम विभाग के संचालक थे। चलते चलते श्री श्रीनिवासन 'महात्माजी, राजनैतिक कर्मक्षेत्र में आप कब उतरने वाले हैं?' "ज्योंही मुझे मौका मिलेगा अथवा मुझे अपनी इस हलचल में समा मिलेगी। सफलता तो मुझे आज भी मिल गई है। पहले जितनी खादी हम लोग बनाते थे उससे २० गुनी खादी आज हम बना रहे हैं। पर मैं ऐसी सफलता चाहता हूँ बताने योग्य हो। अर्थात् जब मैं देखलूँगा कि खादी विदेशी बाजार से हटा रही है। मैं देखता हूँ कि यह तो वह आवाज करने जा रही है। परन्तु यह बात आज कल में पूरी नहीं हो सकती इस शर्त के पूरे होते ही, और यदि जीता बचा रहा तो मैं जरूर राज्य क्षेत्र में फिर प्रवेश करूँगा। फिर तो विजय प्राप्त करके खतम होगा। परन्तु इस युद्ध के छेड़ने के पहले हमें बतौर योग्यता के सबूत के कुछ ठोंस काम करके दिखाना होगा। मेरे लिए यह ठोंस काम है अपना कपड़ा आप ही बना लेना योग्यता।

श्री रंगनाथ साहब ने गांधीजी को वे चरखे दिखाये, जो उनके कारखाने में तैयार किये जा रहे हैं। उन्होंने चरखा के विषय में भी गांधीजी से बहुत बात चीत की। अब तक १५०० चरखे गरीबों में बाँट चुके हैं।

'कपास यंत्र से नहीं, घर पर ही ओटी जाय, तथा घर पर ही पींजी जाय' इत्यादि उन्हें समझा देने पर गांधीजी "जहां संभव हो प्रत्येक गांव को अपनी कपास खुद ही पैदा चाहिए। कपास को बाहर ले जाने में सुभीता हो इसलिए उसकी पैदाइश को केन्द्रित कर रही है। हमें ग्रामीण जनता कल्याण के ख्याल से कपास की पैदाइश को सब देव फँसलाना होगा। मैं तो मुझसे मिलने वाले राज्य के अधिकारी से कहता आया हूँ कि देशी राज्य चरखा जानवरों की रक्षा के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। हमारे अत्यंत गरीब हैं और इतने अज्ञानी हैं कि ये सब बातें वे बुझ कर सकते। इसलिए देशीराज्यों को अपने सभी जानवरों की पूर्वक रक्षा करके लोगों को वैज्ञानिक ढंग पर गोरक्षा चाहिए। हमें अपने लोगों को ग्राम-सम्बन्धी अर्थशास्त्र की निर्यात पूर्वक शिक्षा देनी चाहिए। और इसका फल हमें बहुत जल्दी दिख देगा। हां, यह तो स्पष्ट है कि इस अर्थशास्त्र के द्वारा बनने की तो किसी को भी आशा नहीं करनी चाहिए। और कारण है जो खादी लोगों को आकर्षित नहीं करती। क्योंकि







# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ बदी ९ संवत् १९८४

## यह मौका है

टैरिफ बोर्ड की रिपोर्ट के प्रकाशन में इतनी देर होना इसी बात का एक निश्चित प्रमाण था कि भारतीय मिल-उद्यम की महान संस्था की आइदा रक्षा करने की सिफारिशों का साफ इन्कार किया जायगा। लंकाशायर और जापान के बीच भेदभाव दिखा कर सरकार जापान को नाराज नहीं करेगी। और लंकाशायर के लिए संरक्षक कर लगा कर उसे नाराज करने की हिम्मत तो सरकार को हुई नहीं। क्योंकि लंकाशायर ही तो सरकार का सार-सर्वस्व है। अतः भारत को लंकाशायर के विरुद्ध संरक्षक कर देने के मानी तो इंग्लैंड के लिए स्वयं आत्महत्या कर लेना है।

लंकाशायर और विदेशी प्रतिस्पर्धा से अपने मिल उद्यम की रक्षा करने का सवाल भारत के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है, जैसा कि वह लंकाशायर के लिए भी समझा गया है। इस कथन के सत्य की प्रतीति करने के लिए आदमी सिर्फ इस देश में बाहर से आनेवाली चीजों की फेहरिस्त को एकबार उठा कर देख जाय, तो काफी है। लंकाशायर से भारत में जितनी चीजें आती हैं, वे बाहर से आने वाली अन्य सब चीजों की अपेक्षा अधिक हैं। इंग्लैंड से इस देश में जितना भी माल आता है उसमें से आधा सिर्फ लंकाशायर का कपडा होता है। भारत के सब से बड़े गृहोद्योग की चिन्ता में से लंकाशायर खड़ा हुआ है, और इस देश के करोड़ों दीन बुजुर्गों को लुट कर उसका पालन-पोषण हो रहा है। यहां की मिलें सबमुच लंकाशायर के मार्ग में एक जबरदस्त कंठक हैं। और अगर उन्हें उसके मार्ग से कौशलपूर्वक अलग हटाया जा सकता हो, तो लंकाशायर के लाभ के लिए उन्हें जरूर बिना किसी सोच-विचार के दबा दिया जायगा। लंकाशायर का नफा इतनी बड़ी चीज है कि उसके सामने नीति-अनीति के ख्याल को जहां का तहां दबा दिया जाता है। यह मिल-उद्यम लंकाशायर और भारत दोनों को नुकसान पहुंचाता है। इधर भारत को तो उसने कंगाल बना दिया है, और उधर भारत की दरिद्रता लंकाशायर को नीति-शून्य बनाती जा रही है।

भारत के मिल-मालिकों के मार्ग में अब यह एक ऐसी आपत्ति खड़ी हो गई है जिसको लांघना उनके लिए करीब करीब असंभव है। हां, सिर्फ एक रास्ता है। यदि वे भारतीय जनता के साथ हो जायें तब जरूर सरकार को अपने लिए संरक्षक कानून बनाने पर वे मजबूर कर सकते हैं। वह तो देश का हक है। अगर किसी देश को यह अधिकार है कि वह यह निश्चय कर सके कि उसकी सीमाओं के अन्दर कौन रहे और कौन न रहें, और साथ ही वह उन लोगों को अपनी सीमा के अन्दर बसने से इनकार कर सकता हो जिनका वहां रहना वह अपने लिए खतरनाक समझे, तो सबमुच उसे इस बात का कहीं अधिक हक है कि वह देश में आनेवाली चीजों पर पूर्ण नियन्त्रण रखे, और ऐसी बाजों को अपने देश में आने देने से रोके जिन्हें वह अपनी जनता के लिए हानिकर समझे।

इसमें तो कभी शक हो ही नहीं सकता कि विदेश से आनेवाली तमाम चीजों में विदेशी कपडा इस देश के लिए सब से ज्यादा हानिकर चीज है। अब किसी प्रकार थोड़े समय के लिए भारत की मिलें भले ही अच्छी तरह चल जायें कुछ समय के लिए तथा भाग्यवश अच्छे संयोग प्राकर

कई तरह के हेरफेर और अंकों की उलटपुलट दिखा कर वे नफा भले ही दिखा दें। पर जब तक विदेशी कपडे से अपनी रक्षा के वह कारगर संरक्षक कानून नहीं बनवालेगी, जल्दी या देर से निश्चय ही हम अनुमान करते हैं उससे बहुत जल्दी, उसकी निश्चित है। किसी दिन-आज नहीं, कल-निश्चय ही एक दिन और स्थायी जागृति जरूर होगी। वह नियमबद्ध न हो, पागल हो पर अपने पागलपन में भी वह सुसंगठित होगी, अथवा (जैसे कि आशा करता हूं) संभव है, वह अहिंसात्मक ढंग से सुसंगठित नियमबद्ध भी हो। पर जब वह आवेगी, यदि जनता ने देशी को अपनी चीज नहीं समझा तो निश्चय ही विदेशी कपडे के साथ उसकी ज्वालायें इन्हें भी ले बैठेंगी। इसलिए मिल-मालिकों के लिए यह मौका है कि वे खादी आन्दोलन में शरीक हो कर अनिच्छुक सरकार के हाथों से अपने उद्यम की रक्षा को बलवत् करने इस देश में तो अभी कई वर्षों तक दोनों के लिए स्थान है, अगर देशी प्रदेश निश्चित कर दिया जाय, और कठोरतापूर्वक उसका पालन किया तब वे सरकार से दूर रह कर, बल्कि सरकार के दबे छिपे कर्तव्य पूर्वक उनका विरोध करने पर भी, वे फूलफूल सकेंगे। पर यह हो सकता है जब मिल मालिक बुद्धिपूर्वक कुछ त्याग करें, एक सजीव और शक्तिशाली संगठन कर लें, और कर्तव्य-करो कर अपने कार्यक्रम का पालन करें।

सरकार के निर्णय के उत्तर में मिल मजदूरों को लक्ष्य कमी करने वाली अफवाह का प्रामाणिक खंडन पढ कर मुझे बड़ी हुई। ऐसा करना इस समय तो आत्मघात के ही समान होता। समय मजदूरों को अपने विरोधी बनाने की नहीं, बल्कि उन्हें एक कर उनका साथ दे कर, इस समय तो शेअर होल्डर तथा एगेंसी भांति मिल-मजदूरों को भी मिलमालिक समझ कर उनको साथ में लेने की जरूरत है। अगर शेअर होल्डर पूंजी देते मिल मजदूर पूंजी से कपडा बनाते हैं। इसलिए मिलमालिक मजदूर और जनता ये तीनों मिल जायेंगे तो वह ऐसी शक्ति हो जायगी जिसकी उपेक्षा करने की जुरत सरकार नहीं होगी। क्या मिल मालिक इस मौके पर आवश्यक दूरदृष्टिता, और देशभक्ति का परिचय देंगे? यह शिकायत की गई थी (शिकायत बड़ी जोरदार थी) कि सरकार की १ शिलिंग ६ पेंसवाली भारत के इस महान उद्यम पर एक खासा प्रहार था और लंकाशायर के लिए एक देन। पर टैरिफ बोर्ड रिपोर्ट का यह प्रस्ताव सरकार के इस उद्यम पर एक दूसरा ऐसा ही प्रहार है और लंकाशायर के लिए एक दूसरी देन। मैं साधर्य देख रहा हूं कि इस दूसरे प्रहार से भी मिल मालिक सावधान हो कर ठीक दिशा में काम करने लगते हैं। सारी अजिंयों और धारासभा के प्रस्ताव व्यर्थ होंगे, जब तक कि उनके पीछे कारगर सार्वजनिक शक्ति नहीं होगी और मेरी राय में तो मैंने जैसे बताया है, इससे अधिक सौम्य आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

## सरदार खडकसिंह

जेल की चारह दीवारी से बाहर, हमारे बीच, सरदार खडकसिंह को पुनः राष्ट्रीय काम करते हुए देख कर प्रत्येक देशभक्त आनंद होगा। अपने उद्वेगमयी स्वभाव, और छुटकारा पाने के अधिकारियों के सामने अपना सिर झुकाने से इनकार करने कारण अपने देशभावियों के हृदय में उन्होंने बहुत ऊंचा स्थान कर लिया है। परमात्मा से प्रार्थना है कि इस स्वाधीनता के युद्ध में वे वर्षों तक देश की सेवा करें।

मो० क० गांधी



११ जून, १९२७

## स्वदेशी बनाम विदेशी

काठियावाडी भाई लिखते हैं :—

तारीख २२-४-२७ के 'नवजीवन' में 'गाय और भैरव' वाले में आपने लिखा है कि अगर हम देहात में सीने के लिए नहीं बना सकते, और आस्ट्रिया की सुई हमें सस्ती मिलती तो हमें उसका द्वेष न करना चाहिए। मैं ऐसी कोई वस्तु वहां लेने में दोष नहीं देखता जो अच्छी, ग्रहण करने और काम करने योग्य भी हो।

इस लेख में अब मुझे आपका स्वदेशी व्रत बहुत कम दिखाई देता है। उदाहरण के लिए सस्ता और अच्छा विदेशी कपड़ा क्यों न पहना जाय? ऐसी अनेकों चीजें हैं, जो हमारे देश में नहीं हैं पर महंगी और खराब होती हैं। क्या उन्हें छोड़ कर सस्ती और अच्छी विदेशी चीजें खरीद सकते हैं?

अगर आप मेरी आत्मा से पूछें तो मैं तो साफ ना कहूंगा। काठियावाड़ में मैंने ऐसे कई गांव देखे हैं, जहां विदेशी चीज शायद तो दिखाई देती है। वहां पर नये चर्मालय खोल कर चमड़े के लिए आप पश्चिम से यंत्र मंगाने की सलाह दें तो यह ठीक नहीं दिखाई देता। अगर आप इसे ठीक समझते हों तो आप पूर्ण साफ साफ तौर से समझा दें। मैं काठियावाड़ के एक छोटे से छोटे गांव का रहने वाला हूं, और खादी मुझे जन्म से ही प्यार है। मेरे दादा भी प्राण छोड़ते समय मुझे कह गये हैं कि 'देवगजी को मत छोड़ना।'

इस पत्र में जो विचार-दोष है, उसे पाठक झट समझ सकते हैं। पर फिर भी इस तरह के विचार-दोष कई बार सुने जाते हैं। मुझे यह उचित है कि स्वदेशी का रहस्य जितना स्पष्ट किया जा सके उतना स्पष्ट कर दिया जाय। फिर स्वदेशी के दुरुपयोग के हमें भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है। स्वदेशी के नाम और कितने ही लोग प्रयास कर रहे हैं। वे उन्हें छोड़ कर विदेशी स्वदेशी में अपनी शक्ति लगा दें तो हम अपने काम को पूरा जल्दी पूरा कर सकें।

मेरा स्वदेशी व्रत बजाय इसके कि वह कमजोर हो, मजबूत हो तीव्र होता जा रहा है, ऐसा मुझे विश्वास है। और जिस तरह कि उसे १९२० में घोषित किया था, उसी तरह मैं उसका पालन करता आ रहा हूं। बल्कि आज उसका पालन मैं अधिक दृढ़ता पूर्वक कर रहा हूं। विदेशी सुई हम जरूर ले सकते हैं। क्योंकि वह चीज अच्छी है, और हम उसे हजम भी कर सकते हैं। उसका स्वीकार करते इस देश के एक भी उद्यम को हानि नहीं पहुंचा रहे हैं। विदेशी उद्यमों के ग्रहण करने से देश में बेकारी नहीं बढ़ती। बल्कि वे सैकड़ों को रोजी देती है। और उनके परिश्रम से हमें विदेशी कपड़ा भले ही अच्छा हो, सस्ता भी हो, हमें उसके स्वीकार भी न देनी पड़े, पर फिर भी वह त्याज्य है। क्योंकि हमें गांधी में ही पैदा करते आये हैं। उस उद्यम के बदले में हमें दूसरा उद्यम अभी तक नहीं मिला है। उसका त्याग हमें हमेशा सहापाप किया है। उसके त्याग से देश में फाँकेकरी फैल गई, गुन्हें बढ़ गये, और अनीति फैल गई। अगर हमें इस देश के लोगों के लिए अधिक प्रामाणिक उद्यम मिल जाय, अथवा इस देश की कला न पड़ा कर सके, अथवा स्वयं किसान ही कपास के बीज का उपयोग, और अधिक धन देने वाली फसल पैदा कर सकें, तो उस समय भले ही कपड़े से सम्बन्ध रखने वाला

स्वदेशी व्रत निरुपयोगी हो सकता है। ऐसे समय यदि भावी प्रजा हमारे समय के साहित्य को देख, उसे अविचल सिद्धान्त समझ कर कपड़े ही में स्वदेशी का आरोप करेगी तो वह मूर्ख समझी जायगी। उसकी वह चेष्टा इसी प्रकार की होगी जिस प्रकार कोई अपने पिता के बनाये हुए को तैर कर पार करने के बजाय उसीमें डूब मरता है। मेरी बुद्धि तो ऐसी कल्पना नहीं कर सकती कि आगे चल कर कभी भारत में इस तरह का युग आवेगा। वह आये चाहे न आये। पर आज तो खादी शुद्ध से शुद्ध स्वदेशी है। इसमें दो मत नहीं हो सकते, बल्कि अब तो यह भी कहा जा सकता है कि मैं भी नहीं।

इस देश में करोड़ों रुपयों का कच्चा माल पैदा होता है। और हमारे अज्ञान, आलस्य, तथा शोधक शक्ति की खामी के कारण सब का सब विदेशों में चला जाता है। परिणाम यह होता है—जैसा कि श्री मधुसूदन दास का भी कहना है—कि हम पशु के समान हो रहे हैं। हमारे हाथ को जो कौशल-शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए वह नहीं होती, बुद्धि का विकास भी नहीं होता, देश से जीवित कला का लोप होता जा रहा है, और हम केवल पश्चिम का अनुकरण कर के रह जाते हैं।

अतः जब तक हमारे देश में मिलने वाले नौ करोड़ कीमत के भरे जानवरों के चमड़े का उपयोग करने योग्य यंत्र हम यहीं पर नहीं बना सकते, तब तक तो आवश्यक यंत्र पश्चिम से मंगा कर भी हम काम चला सकते हैं। और मैं इसे स्वदेशी धर्म का संपूर्ण पालन ही मानूंगा। मेरा ख्याल है कि यदि हठ-पूर्वक ऐसे यंत्र हम न लावेंगे तो स्वदेशी धर्म को हानि पहुंचेगी। उसी प्रकार हमारे देश में—ओपधियां बहुत होती हैं। और वे अनेक प्रकार की दवाओं के रूप में तथा अन्य रीति से फिर देश में वापिस आती हैं। उनका भी यहीं उपयोग करने के लिए यदि हमें बाहरी यंत्र अथवा सहायता की जरूरत हो तो हमारा धर्म है कि यंत्र बाहर से भी लाये जायें।

स्वदेशी तो शाश्वत धर्म है। उसका व्यवहार हर युग में बदलता ही रहेगा, और होना भी ऐसा ही चाहिए। स्वदेशी आत्मा है, और खादी इस युग के लिए उसका शरीर। समय पा कर उसके इस देह का नाश होना लिखा हो तो भले ही हो। तब स्वदेशी का आत्मा इस देह को छोड़ कर नवीन देह को धारण कर लेगा। पर आत्मा तो वही होगा। स्वदेशी एक सेवा-धर्म है। इस सेवाधर्म को यदि हम पूरी तरह समझलें तो हमारा, हमारे परिवार का, देश का, और सारे संसार का कल्याण हो। स्वदेशी में स्वार्थ नहीं, शुद्ध परमार्थ है। इसलिए मैं उसे यज्ञ समझता हूं। हां, इसमें मनुष्य का अपना फायदा जरूर है, परन्तु पर-द्वेष के लिए स्वदेशी में स्थान ही नहीं है। धर्म ऐसा ऐकान्तिक तो कभी हो ही नहीं सकता कि किसी समय, विदेश से कोई एक भी चीज न मंगावे। हां, हम विदेश से कोई ऐसी चीज न लावें जिससे देश को नुकसान हो। बल्कि धर्म तो इस तरह भी कभी ऐकान्तिक नहीं हो सकता कि हमारे ही देश का हमेशा भला होता रहे। हमारे और दूसरे देशों में भी जो कल्याण कर और पोषक हो वह तो ग्रहण करना चाहिए और जो खराब और घातक हो, फिर वह चीज स्वदेशी हो या विदेशी उसका त्याग करना चाहिए। देश में शराबें कितनी ही प्रकार की होती हैं। परन्तु वे सर्वथा त्याज्य हैं। यह सामने के लिए कोई कारण नहीं कि यदि समस्त-भारतवर्ष उसका त्याग कर देगा तो शराब का धंधा करनेवालों का नुकसान होगा। उनका आज का पेशा उनके तथा देश के लिए भी हानि कर है। अगर यह पेशा उठ जायगा तो वे भूखों नहीं मरेंगे। बल्कि दूसरा अच्छा सा पेशा उन्हें आसानी से मिल जायगा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



## सनातन प्रश्न

आत्मोडा से एक सन्यासी लिखते हैं:

‘गत १५ अप्रैल के’ ‘यंग इण्डिया’ में किसी पत्र-प्रेषक को उत्तर देते हुए आपने लिखा है कि यदि सांप भी आप पर आक्रमण करे तो आप उसे मारने की इच्छा न करेंगे। मेरे ख्याल से यह अनुचित होगा। क्योंकि एक तो इस तरह आप मानो स्वयं आत्मघात करेंगे; और दूसरे, उस विषैले जन्तु को वैसे ही छोड़ कर आप दूसरे लोगों को हानि पहुंचाने में कारण होंगे। दूसरा उदाहरण लीजिए। किसी गृहस्थ के घर में सांप निकलता है। वह उसे मारता नहीं, बल्कि अपने घर से बाहर छोड़ देता है। फलतः वह सांप निश्चय ही दूसरे किसी के घर में घुसकर उसमें रहने वालों को ईजा पहुंचावेगा। और निश्चय ही इसकी जिम्मेदारी उसी शख्स के सिर पर होगी, जिसने दया की मिथ्या कल्पना के कारण ऐसे भयंकर जन्तु को ज़िन्दा छोड़ दिया। और भी कितने ही, सरपट चलने वाले जानवर, पशु और जन्तु हैं जो मनुष्यों को हानि पहुंचाते हैं, या बीमारियां फैलाते हैं। सचमुच यदि ऐसे प्राणियों के नाश को हिंसा कहा जाय, तो वह उस हिंसा से कहीं कम होगी, जो इनके ज़िन्दा रहने से होती है। खैर, मान लिया जाय कि यदि आदमी अपनी जान बचाने के ख्याल से ऐसे भयंकर जानवरों को मारे तो वह हिंसा कही जाय। परन्तु यदि अनेकों कीमती प्राणों को बचाने के लिए यदि उसे मारा जाय तो वह कदापि हिंसा न कही जानी चाहिए। आखिर प्रत्येक कार्य की भलाई-बुराई का निर्णय हेतु को देख कर होता है, और जब वही उच्च तथा शुद्ध हो, तब वह नाश या वध हिंसा नहीं कर्तव्य का रूप धारण कर लेता है। मैं चाहता हूं कि आप इस प्रश्न का उत्तर ‘यंग इण्डिया में’ दें तो बड़ा अच्छा हो।’

सन्यासी का प्रश्न सनातन है। इसमें शक नहीं कि वह बड़ा जोरदार भी है। अगर उसमें यह शक्ति न होती तो प्राचीन काल से जो हत्या चली आ रही है वह जारी नहीं रहती। बहुत कम लोग दुष्टता पूर्वक निष्ठुरता का काम करते हैं। इतिहास में वर्णित घोर से घोर और निष्ठुर अपराध या तो धर्म या इसी प्रकार के अन्य उदात्त ध्येय की ओट में किये गये हैं। पर मेरे ख्याल से तो उस हत्या से हमारी दशा जरा भी नहीं सुधरी है—फिर भले ही वह हत्या धर्म जैसे सर्वोच्च आदर्श के नाम पर हुई हो। वेशक, किसी न किसी प्राणी की किसी न किसी रूप में हिंसा तो अनिवार्य है। जीव जीवों पर जीते हैं। इसलिए और महज इसीलिए बड़े बड़े द्रष्टाओं ने उस स्थिति को मोक्ष कहा है जिसमें जीवन शरीर से मुक्त हो—उस शरीर से, जिसका पालन संवर्धन करने के लिए हत्या या हिंसा अनिवार्य होती है। और मनुष्य के लिए इसी शरीर में रहते हुए उस पद की आशा करना असंभव भी नहीं, यदि वह हिंसा की मात्रा घटा कर कम से कम कर दे, जैसा कि वह निरामिषाहारी हो कर कर सकता है। वह जितना ही जानबूझ कर तथा बुद्धिपूर्वक अपने आपको ऐसी हिंसा से दूर रखेगा, जिसमें अपने निर्वाह के लिए दूसरे प्राणियों की हत्या होती है, उतना ही वह सत्य और परमात्मा के अधिक नजदीक होगा। संभव है, मनुष्यजाति ऐसा जीवन शायद पसन्द न करेगी जिसमें कुछ भी आकर्षण न दिखाई दे। परन्तु इससे मेरे कथन के सत्य को बाधा नहीं पहुंचती। परन्तु वे लोग, जो कि पूर्णतः ऐसा निस्वार्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और प्राणिमात्र के प्रति कष्टनामय व्यवहार करते हैं, हमें परमात्मा का माहात्म्य समझने में सहायता करते हैं। वे मनुष्य-जाति को ऊंचा उठाते हैं और उसके आदर्श-पथ को आलोकित करते हैं। उस जीवन को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं, जिसके बनाने की शक्ति हमें न हो। मुझे यह

दलील नास्तिक सी प्रतीत होती है, कि परमात्मा ने कुछ प्राणियों को इसलिए बनाया है कि वे मनुष्य के द्वारा मारे जाएं जिन्हें मनुष्य महज आनन्द के लिए या अपने शरीर के पोषण के लिए मारता रहे जो कि निश्चय ही किसी क्षण नष्ट होने को है। हमें पता नहीं कि प्रकृति के दरबार में उन भयंकर समझे जान वाले कभी न समझ पाएंगे। ऐसे पुरुषों के वर्णन हमारे पास मौजूद हैं जिनकी दया मनुष्य को व्याप्त कर उसे लांघ गई थी और जो भयंकर हिंस्र पशुओं के बीच रहते थे। समस्त-जीवन सृष्टि में कोई ऐसा-आन्तरिक सम्बन्ध जरूर है, कि जिसके कारण शेर, सिंह, बाघ और सांपों ने उन मनुष्यों को कोई उपद्रव नहीं पहुंचाया जो निर्मय हो कर, उन पशुओं के मित्र बन कर उनके पास गये थे।

यह दलील सदोष है कि यदि मैं किसी विषैले सांप को नहीं मारूंगा तो वह जरूर ही अनेकों आदमियों और स्त्रियों की जान का ग्राहक होगा। यह मेरे कर्तव्य का अंग नहीं है कि मैं तमाम विषैले जन्तुओं को ढूंढ ढूंढ कर मारता फिरूं। और न मुझे यह मान लेने की जरूरत है कि मुझे मिलने वाले विषैले सांप को यदि मैं नहीं मार डालूंगा तो वह किसी राहगीर को जरूर ही डस लेगा। उस सांप और मेरे पड़ोसी के बीच मुझे न्याय कर्ता नहीं बन जाना चाहिए। यदि मैं अपने पड़ोसियों के साथ वैसा ही सलूक करूं कि जैसे सलूक की आशा मैं उनसे करता हूं, यदि मैं उनको किसी ऐसे बड़े खतरे में नहीं डालता जिसमें कि मैं हूं और यदि उन्हें नुकसान पहुंचाकर मैं अपना भला नहीं कर रहा हूं, तो मैं समझूंगा कि मैं अपने पड़ोसियों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा कर लिया। इसलिए, जैसा कि अक्सर किया जाता है, मैं उस सांप को अपने पड़ोसी के आहूते में नहीं छोड़ूंगा। अधिक से अधिक मैं यह कर सकता हूं कि सांप को जितना एक तरफ छोड़ा जा सके उतना छोड़कर मैं अपने पड़ोसियों को इस बात की सूचना कर दूं। मैं जानता हूं कि इससे मेरे पड़ोसियों को न तो कोई आराम मिलेगा न रक्षा ही। पर हम तो मृत्यु के मुख में खड़े रह कर सत्य की राह ढूंढ रहे हैं। शायद हमारे जीवन में कदम कदम पर जान का खतरा है। क्योंकि इस खतरे का ज्ञान होने पर, तथा हमारे जीवन की अनित्यता का ख्याल होते हुए भी समस्त जीव मात्रों के खोत-उस भूत भावन के प्रति हमारी उदासीनता आश्चर्य जनक है। हमारे अहंकार से वह कुछ ही कम है।

इस उत्तर से मुझे सन्तोष नहीं है, जो मैं सन्यासी को दे रहा हूं। उनके पत्र से, जो कि हिन्दी में लिखा हुआ है, मुझे ज्ञात होता है कि वे स्वयं सत्य की खोज में हैं। इसीलिए मुझे उनके प्रश्न का उत्तर इस तरह प्रकाश्यरूप से देना पड़ा। स्वयं मेरी दशा तो बड़ी दयनीय है। प्राणिमात्र की किसी भी रूप में हिंसा देख कर मेरी बुद्धि तो बलवा कर देती है। पर मेरा हृदय अभी इतना मजबूत नहीं हो पाया जिससे मैं उन प्राणियों को अपना मित्र बना लूं जिन्हें अनुभव ने हिंस्र साबित किया है। इसीलिए प्रत्यक्ष अनुभव से पैदा होनेवाले विश्वास की निर्भ्रान्त भाषा मेरे पास नहीं है। यह हालत तबतक बराबर बनी रहेगी जबतक कि मैं सांप, बाघ, आदि प्राणियों से डरने योग्य कायर बना रहूंगा।

मैं इस प्रश्न का उत्तर बड़ी झिझक के साथ दे रहा हूं। पर मुझे मालूम हुआ कि ‘जाति’ खोने के भय से यदि मैं अपना विश्वास जाहिर न कर दूंगा तो वह अनुचित होगा। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में मेरे मित्र एक बार मुझे ऐसा ही समझने लगा गये थे। एक दिन हम खाना खा रहे थे, और इसी विषय पर बात चीत छिड़ गई। उन्होंने मेरे पुनर्जन्म गोरक्षा, निरामिषाहार विषयक विचारों की परीक्षा



२१ जून, १९२७

कुछ प्राणियों  
जाएँ जिन्हें  
पोषण के लिए  
को है। हमें  
जान बाले  
के कानूनों को  
पास मौजूद है  
थी और जो  
सृष्टि में कोई  
सिंह, बाघ और  
जो निर्भय हो

## शुभ दान

श्री बल्लभ भाई तार से सूचित करते हैं कि एक उदार गृहस्थ ने  
वित्तवृत्तियों की सेवा के लिए ५०,००० का दान दिया है, और एक  
दूसरे गृहस्थ ने २५०० का। मुझे अखबारों से मालूम हुआ है कि  
एक गृहस्थ का नाम श्री मनमुखलाल छगनलाल मेहता है। मालूम  
है, दूसरे गृहस्थ ने अपना नाम देना उचित नहीं समझा। इन  
दोनों गृहस्थों को मैं धन्यवाद देता हूँ। मेरा यह विश्वास तो दिन  
प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है कि ऐसे विचार पूर्वक दिये हुए दान  
सच्चे धार्मिक दान हैं। यह एक शुभ चिन्ह है कि हमारे  
धार्मिक दान करने की वृत्ति अभी तक काफी रूप में जागृत है  
हमसे शायद ही कोई जानते हैं कि सच्चा धर्म क्या है ?  
इस बार सूचित कर चुका हूँ कि आज कल धर्म के नाम पर  
काम बहुत हो रहा है। इसलिए हमारे सामने दो काम हैं।  
एक तो इन लोगों की धर्मभावना का पोषण करना और दूसरे उसके  
उचित मार्ग ढूँढ कर उसे जाहिर कर देना। केवल शुभ  
कर्म स्वर्ग नहीं मिलता। अंगरेजी में एक कहावत है—‘नरक  
की फाँसी शुभ हेतुओं से मढ़ी हुई है।’ इसमें बहुत कुछ  
सत्य है। कइ चोर शुभ हेतु से चोरी करते हैं। शुभ हेतु से  
सत्य भाषण करने वाले तो इस संसार में अनेकों पडे हैं।  
जैसे धर्मराज से भी शुभ हेतु के बहाने असत्य भाषण  
को डी भूल हो गई, और उसके लिए उन्हें नरक की बदव  
पड़ी। हम देखते हैं कि शुभ हेतु से कितने ही खून भी होते  
हैं। इसलिए स्पष्ट है कि केवल शुभ हेतु से काम नहीं  
चला। शुभ हेतु के साथ साथ शुभ कर्म का होना भी जरूरी है।  
शुभ कर्म शुभ ज्ञान से ही हो सकता है। इस लिए उपर्युक्त दाताओं  
को प्रशंसा करते हुए धार्मिक स्त्री पुरुष सच्चे धार्मिक कामों को  
करना उनका पोषण करने लग जावें तो क्या ही अच्छा हो !

## मूली किफायत

एक बहन उसी समय बीमार हुई जब कि मैंने विस्तर पकड़ा  
था। मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए तथा उसीकी दरखास्त  
को ध्यान में रखते हुए लिखती हूँ—जब से मैंने अपनी बोलने की  
शक्ति को खोया, मुझे फिलसुफी में गहरे गोते लगाने के लिए काफी  
काम मिल गया। और यह करते हुए एक विचार—रत्न मेरे हाथों  
में पड़ा कि जीने की जरूरत ही नहीं है। उल्टे दैव  
कर्मों का परदा गिरा कर भारी किफायत से काम ले रहा है।  
मुझे मृत्यु को भेज कर वह हमारी उस शक्ति को बचा लेता है,  
जो हमें जीवित रखती है। वह हमें बुराई बरबाद कर देते हैं। मैंने इस विचार को  
अपने मन पर चढ़ाया, जब तक कि मुझे उसने थका नहीं दिया। तब  
मैंने कहा, ‘पर इससे क्या फायदा।’ उसका हुक्म अभी  
तक मेरे पास कुछ नहीं रह जाता मुझे अपनी  
जिंदगी में खराद बरबाद करते ही रहना चाहिए।”

मोहनदास करमचंद गांधी

## टिप्पणियाँ

जब कभी मृत्यु आवे, उसे प्रकृति की योजना में बुद्धिपूर्वक रखी  
हुई चीज समझ कर उसका स्वागत करना कितना आनंद दायक है।  
अगर हम इस विश्व के नियम को समझ कर मृत्यु को एक महान्  
मुक्तिदाता और स्वागत करने योग्य मित्र समझें और उसके लिए  
हमेशा अपने आपको तैयार रखें तो कितना अच्छा हो ? इस सीषण  
जीवन—कलह से हम फौरन मुक्त हो जावें। हम दूसरे के जीवन की  
परवा न करके जीने की कल्पना तथा मानवता का तिरस्कार करना भी  
छोड़ दें। परन्तु ऐसी तत्त्वचर्चा करना—जैसा कि इन बहनों ने किया  
है,—एक बात है और ऐन वक्त पर उस तत्त्व का साक्षात्कार  
करना एक जुदी बात है। यह आत्म साक्षात्कार बिना तीन बातों के  
असंभव है—शरीर की निश्चित और गंभीर खामियों का ठीक ठीक  
ज्ञान, परमात्मा में अनन्य और अनन्त श्रद्धा, और उसके कर्म-विधान  
में अटल विश्वास।

(यं० इ०)

मो० क० गांधी

## अखिल भारतीय गोरक्षा-मंडल

गत २१ अप्रैल से लेकर अभी तक नीचे लिखे अनुसार चंदा  
और दान मिले हैं :—

श्री छोटालाल जोड़ताराम भट	अहमदाबाद	६०	५
„ मंगललाल तलकसी शाह	बडवाण	„	५
„ मनोहरलाल भार्गव	कानपुर	„	५
„ बापुभाई कृपाशंकर शेलत	रतलाम	„	१०१
„ एच. राघवेन्द्राधर	हरिवनम्	„	५
„ बाई नवल मणिशंकर	मदरास	„	५०
„ बाई छत्रल सवजी	„	„	५
„ वैजनाथजी केडिआ	कलकत्ता	„	२,५००
„ हस्ते शिवप्रसाद सिंहा	मऊ	„	३
„ भाइलाल विश्वनाथ व्यास	बसो	„	१-४
„ वैद्य सुरचंद डुंगरशी	अहमदाबाद	„	२
„ युक्मल चंदुमल परापीआ	करांची	„	५
„ दुर्गाबाई केलकर	पूना	„	५
„ सुमनलाल शिवलाल गोसालीआ	जेतपुर	„	५
„ यशवंतलाल रतनचंद	अहमदाबाद	„	१०
„ सद्गृहस्थ	कालीकट	„	१५
„ श्यामजी सुंदरदास	„	„	५
„ हेमचंद वीरजी	„	„	५
„ प्रेमजी गोवर्धनदास	„	„	२-८
„ हरिदास गोविन्दजी	„	„	२-८
„ बल्लभदास पुरुषोत्तम	„	„	२-८
„ शिवजी डोसाभाई	„	„	२
„ प्राणलाल रामजी	„	„	२
„ नाथुभाई नेमीदास पारेख	„	„	२
„ हीरालाल चांपशी	„	„	१
„ शंभुभाई देवशी	„	„	१
X	„	„	१
„ प्रागाजी मोनजी	„	„	०-८
„ कल्याणसिंहजी	बालारामपुर	„	१००
„ सी. के. पटेल	भासो	„	२५
„ हरिलाल मूलचंद नागोरी	अहमदाबाद	„	२५-४
„ एन० पी० टोपराणी	करांची	„	५
श्री विद्या देवी	साडीला	„	१००
श्री सरस्वती देवी	„	„	५
श्री वसुमती देवी	„	„	६
श्री तारादेवी	„	„	१५



## एक भला काम

होलाहल कर (मैसूर) से एक पत्र-प्रेषक लिखते हैं:—

‘आपको यह लिखते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है कि मेरे तहसील के लिम्बानी जाति के लोगों ने करीब एक डेढ़ महीने से ताड़ी तथा अन्य प्रकार की शराबों को बिल्कुल छोड़ दिया है। गत अप्रैल मास के अन्त में, जब यहाँ उनकी एक परिषद हुई थी, उन्होंने अस्तोन्मुख सूर्य को दंडवत प्रणाम करते हुए यह प्रतिज्ञा की थी। तब से वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं। अगर उनमें से कोई ताड़ी की दुकान के पास पाया जाता है तो गांव का नायक यजमान और कारभान उसे कड़ी सजा देते हैं। उनकी स्त्रियाँ हमें रोज यह शुभ वार्ता सुनाती हैं कि अब उनके मुहल्ले में कोई लड़ाई भगवा नहीं होता, और उनका जीवन बड़ा शान्तिमय हो गया है। यह इस बात का एक उदाहरण है कि हमारे राज्य में आपके पधारने के पहले ही आपके आत्मशुद्धि के संदेश कैसे पहुंच गया है।

मैं लिम्बानी जाति को उसके इस महान् कार्य पर धन्यवाद देता हूँ, और आशा करता हूँ कि वह उन बहुत से लोगों की तरह पीछे नहीं फिसलेंगे, जो कि १९२१ की लहर के बाद फिसल पड़े थे। मैं इस मौके पर इस जाति के नेताओं के सामने रानीपरज जाति कि मिसाल भी रख देना चाहता हूँ, जिसका जिक्र इन पृष्ठों में पहले कभी किया जा चुका है। रानीपरज लोगों ने भी शराब को छोड़ दिया था। पर जिन शराब छोड़ने वालों ने अपना ध्यान बढ़ाने तथा समय का उपयोग करने के लिए चरखे का आश्रय लिया उन्हें तो शराब की प्यास ने फिर से नहीं सताया। यही नहीं, बल्कि उनकी आय भी बूनी हो गई। क्योंकि उनके घर में केवल शराब में बरबाद होने वाले पैसों की ही बचत नहीं हुई, बल्कि अपना कपड़ा भी वे खुद बनाने लग गये। मद्यपान निषेध करनेवाले सुधारकों का यह तो सार्वत्रिक अनुभव है कि शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा लेने वाले अगर अपने समय की किसी उपयोगी काम में नहीं लगा देते तो वह प्यास फिर से लौट आती है। और उसको रोकना उनके लिए प्रायः असंभव हो जाता है। मैं आशा करता हूँ कि अन्य ग्रामों के लोग भी इनसे सबक सीखकर शराब को छोड़ देंगे, और जब मैं अपना दौरा शुरू

कर दूंगा तब, जैसा कि मुझे वचन दिया गया है, खादी की प्रगति के उदाहरणक अंकों के साथ साथ मैं शराब की बंदी के भी उदाहरण जनक समाचार और अंक सुनूंगा।

## असभ्य विज्ञापन

विस्तर पर पड़े पड़े, और डैक्टर्स की आज्ञानुसार गंभीर वाचन को टालने की कोशिश करते हुए, मेरी नजर संयोगवश अखबारों के विज्ञापक पृष्ठों पर पड़ जाती है। वे कभी कभी बड़ी दुखदायी शिक्षा देते हैं। अक्सर प्रतिष्ठित पत्रों में मैं कामोत्तेजक विज्ञापनों को देखता हूँ। शीर्षक थोड़ा देह होते हैं। एक उदाहरण सुनिए। शीर्षक था ‘योग सम्बन्धी पुस्तकें’ पर विज्ञापन के मजमून को पढ़ने पर मैंने पाया कि उन दस पुस्तकों में से मुश्किल से मुझे एक किताब ऐसी मिली जो योग से कुछ सम्बन्ध रखती थी। शेष सब कामशास्त्र सम्बन्धी थीं, जिनके नामों से यह सूचना मिलती थी कि युवक और युवतियाँ बैठकर विषयानन्त कर सकते हैं, और वे उसके लिए शुद्ध उपाय बताने का वचन देती थीं। बल्कि मैंने और भी ऐसी कई चीजें देखीं जिनको मैं इन पृष्ठों में देना नहीं चाहता। शराब और ऐसी दवाओं के विज्ञापनों से, जिनसे युवकों के चित्त अपवित्र होते हैं, शायद ही कोई अखबार बचा हो। इन अखबारों के संपादक और मालिक तो स्वयं शुद्ध और शराब, तमाखू इत्यादि बुराईयों के विरोधी समझे जाते हैं। कभी कभी वे इन चीजों के विज्ञापनों से मिलनेवाली आय के विरोधी नहीं मालूम होते जो कि स्पष्ट रूप से इन बुराईयों को बढ़ाने के लिये दिये जाते हैं और जिन्हें वे स्वयं —ने हैं। इसके उत्तर में कभी कभी यह दलील पेश की जाती है कि सिवा इसके और किसी तरह अखबार चल नहीं सकता। पर क्या हर किसी बात का बलिदान दे कर इस तरह अखबार जारी रखना जरूरी है? क्या वे जिस भलाई का प्रचार कर रहे हैं, वह इतनी बड़ी है, जो इन हानिकारक विज्ञापनों से फैलने वाली बुराई को दबा दे? हमारे यहां अखबार चलाने वालों की एक संस्था है। क्या उसके द्वारा अपने लिए एक निश्चित नियम बना करके इस तरह का लोक मत तैयार करना संभव नहीं है, जो एक प्रतिष्ठित पत्र के लिए उन नीति-नियमों का उल्लंघन करना असंभव कर दे?

(नवजीवन)

मो० क० गांधी

## मार्च १९२७ में खादी की उत्पत्ति और बिक्री का व्यौरा

	उ	त्प	त्ति	वि	क	री
प्रान्त	रु.	मार्च २७	मार्च २६	फरवरी २७	मार्च २७	मार्च २६
अजमेर	८,८४९	२,३६१	८,९१६	६,९९३	२,८०८	२,२८६
आन्ध्र	२८,०६९	५,९७५	१८,६०६	३४,४९५	१८,०७१	३८,२१४
बंगाल	१३,०२८	३१,२८८	१४,२५८	२५,४७७	३४,५५७	२३,१६९
बिहार	१९,१२२	१८,३९६	११,८६६	२७,३०२	१७,४६५	२३,६३०
बम्बई	१,०९७	५२१	९१५	२,०१३	२,३७९	१,६०९
गुजरात	४,५१२	८,११७	४,५२८	३,०५२	८,६९४	६,०९९
कर्नाटक	४,०७०	४,१६९	५,३३२	८,१३३	८,०९५	१०,५४२
महाराष्ट्र	१,२३१	२,२००	९३०	१४,८२५	१२,२८५	१८,८६४
पंजाब	७,८२१	१०,५२८	८,८०८	११,५७३	६,६७५	८,७९९
समिलनाद्र	७५,१६६	६०,०९४	७१,४०७	८९,०६८	८०,८३३	६९,५११
सुख प्रान्त	१०,२९१	३,४२७	१५,०६३	१४,७२७	१०,५६४	१०,७४४
उत्तरप्र	२,६३७	४,४६५	२,२४५	२,२५०	३,४१७	२,६२६
कुल रु.	१,७४,८९३	१,५१,९०१	१,६२,८७४	२,७९,३६५	२,४६,६८१	२,३१,८११



वार्षिक मूल्य ४)  
छः मास का २)  
एक प्रति का १)

हमारा कलंक

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद -

अहमदाबाद, आषाढ सुदी १ संवत् १९८४  
गुरुवार, ३० जून १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ७

### मिट्टी और पानी के प्रयोग

जो ज्यों मेरे जीवन में सादगी बढ़ती गई, त्यों बीमारी के खाने की मेरी स्वाभाविक अरुचि भी बढ़ती गई। जब मैं बड़े बकालत करता था, तब डाक्टर प्राणजीवनदास मेहता मुझे लाए थे। उस समय मेरा शरीर कमजोर बना और कभी कभी सूज भी जाता करता था। इस पर दवा दी थी और मुझे उस दवा से आराम हो गया। उसके बाद मैं स्वदेश को लौटा तब तक मुझे स्मरण नहीं है कि क्या मुझे हुई हो।

बोहान्सवर्ग में मुझे कब्ज की शिकायत हमेशा बनी रहती थी। सिर भी दुखता रहता। इसलिए रेचक लेकर स्वास्थ्य बनाये रखने की कोशिश करता। भोजन में तो सावधानी रखता था। पर इससे भी मैं पूर्णतया व्याधि-मुक्त नहीं हो सका। बनी ही रहती थी कि इस बार बार रेचक लेने के बाद कुछ तो बड़ा अच्छा हो।

उस समय मैंने सुना कि मैनचेस्टर में "नो ब्रेकफास्ट ऐंशोसि-सि" की स्थापना हुई है। उसकी खास दलील यह थी कि अंगरेजों को बार और बहुत खाना खाते हैं। रात के बारह बजे तक खाते ही रहते हैं, और फिर डॉक्टर को दूँते फिरते हैं। उन्हें इस उपाधि से छूटना हो, तो वे सुबह का नाश्ता खा दें। यद्यपि यह दलील पूर्ण रूप से मुझ पर लागू नहीं होती थी। मुझे मालूम हुआ, कि उसका कुछ अंश तो जरूर मुझ पर लागू होता था। मैं तीन बार भर पेट खाना खाता, और दो पहर तक सो जाता था। मैं कभी अल्पाहारी नहीं रहा हूँ। निरामिषाहारी मित्र-ससाले को छोड़ कर जो जो स्वादिष्ट चीजें हो सकती हैं, सब को मैं खाता था। छः सात बजने से पहले शायद ही मुझे सुझा मालूम हुआ कि यदि मैं भी सुबह का नाश्ता खा दूँ तो सिरदर्द की बीमारी से जरूर मुक्त हो जाऊँगा।

तदुपरा मैंने सुबह का खाना छोड़ भी दिया। कुछ रोज़ के लिए बुरा मालूम हुआ, पर सिर दर्द की व्याधि फिर मिट गई। इससे मुझे निश्चय हो गया कि मैं अधिक खाना खाता था।

परन्तु इस फेरफार से कब्ज की शिकायत नहीं गई। क्यूनी के कटि-स्नान के उपचार आजमाये। उनसे कुछ फर्क तो मालूम हुआ, पर संतोषजनक नहीं। इसी बीच उस जर्मन होटलवाले ने या किसी दूसरे मित्र ने मुझे जुस्ट की 'रिटर्न टु नेचर' (फिर प्रकृति की ओर लौट चलो) नामक पुस्तक दी। उसमें मैंने मिट्टी के उपचारों के विषय में पढ़ा। इस लेखक ने इस बात पर भी बड़ा जोर दिया है कि ताजे और सूखे फल ही मनुष्य का प्राकृतिक भोजन हैं। केवल फलाहार का प्रयोग तो मैंने इस बार नहीं शुरू किया, पर मिट्टी के उपचारों की आजमाइश फौरन शुरू कर दी, और उसका मुझ पर अजीब असर भी हुआ। उपचार यों किया गया? साफ खेत से जाल या काली मिट्टी लेकर उसमें निश्चित परिमाण में ठण्डा पानी डाला, मिट्टी के भीग जाने पर एक महीन गीले कपड़े पर उसे मोटी मोटी फैला दिया और आसपास कपड़ा लपेट कर उसे पेट के ऊपर रख दिया और ऊपर से पट्टी बांध दी। यह मैं रात को सोने के पहले बांधता और सुबह अथवा रात में जिस किसी समय उठता उसी वक्त उसे निकाल कर रख देता। इससे मेरी कब्ज की शिकायत बिल्कुल जाती रही। इसके बाद मैंने इन मिट्टी के उपचारों को खुद अपने ऊपर तथा अपने अनेक साथियों पर भी आजमाया, और मुझे याद है कि वे शायद ही कभी निष्फल साबित हुए हों।

मेरे आने पर मैं ऐसे उपचारों के विषय में अपना आत्म विश्वास खो बैठा हूँ। परन्तु प्रयोग करने तथा एक जगह शान्तिपूर्वक बैठने का मुझे अवसर भी तो नहीं मिला। फिर भी मिट्टी तथा जल के उपचारों में तो अब भी मेरी करीब करीब वैसी ही श्रद्धा है, जैसी पहले थी। आज भी मैं, कुछ मर्यादाओं का पालन करते हुए, अपने ऊपर इन मिट्टी के उपचारों का प्रयोग करता ही हूँ, और मौका पड़ने पर अपने साथियों से भी उनकी सिफारिश करता हूँ। अपने जीवन में मुझ पर दो सख्त बीमारियाँ गुजर चुकी हैं। तथापि मेरा तो यही विश्वास है कि मनुष्य को दवा लेने की शायद ही कभी जरूरत होती है। पथ्य, पानी और मिट्टी इत्यादि के भिन्न भिन्न घरेलू उपचारों से हजार में से नौ सौ निन्यानबे बीमारियाँ दूर की जा सकती हैं।

क्षण क्षण पर वैद्य, हकीम और डॉक्टरों के यहां दौड़ दौड़ कर और शरीर में अनेक औषधियाँ तथा रसायनों को भर भर कर मनुष्य अपने जीवन की मर्यादा को घटा लेता है। यही नहीं, बल्कि चित्त पर से अपनी काबू खो कर वह अपने मनुष्यत्व को खो



बैठता है, और शरीर का स्वामी बने रहने के बदले वह शरीर का गुलाम बन जाता है।

कोई यह सोच कर इन विचारों की अवगणना न करें कि मैं यह सब बीमारी के विस्तर पर पड़े पड़े लिख रहा हूँ। अपनी बीमारी के कारणों को मैं जानता हूँ। मैं अपनी ही गलती के कारण बीमार हुआ हूँ, और मुझे इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान और होश भी है। और वह होश होने के कारण ही मैंने अपनी शान्ति को नहीं खोया है। इस बीमारी को मैंने ईश्वर का अनुग्रह समझा है। और अनेक दवायें खाने की लालच से मैं दूर रहा हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं अपने इस हठ के कारण अपने डाक्टर मित्रों को थका रहा हूँ। पर वे उदारता पूर्वक मेरी हठ को सह लेते हैं? और मेरा त्याग नहीं करते।

पर मुझे अपनी वर्तमान अवस्था के वर्णन को लम्बाना नहीं चाहिए। इस लिए हम फिर १९०४-५ को लौट चलें।

पर इस पर अधिक विचार करने के पहले पाठकों को जरा सावधान कर देना जरूरी है। यह पढ़ कर जो पाठक जुस्ट की पुस्तक खरीदें उन्हें उसके प्रत्येक शब्द को वेद-वाक्य नहीं समझ लेना चाहिए। सभी लेखों में लेखक की प्रायः अपनी एकांगी दृष्टि होती है। परन्तु प्रत्येक वस्तु को कम से कम सात दृष्टियों से देखा जा सकता है। और उस प्रत्येक दृष्टि से वह वस्तु सच्ची होती है। परन्तु सभी दृष्टियाँ एक ही समय अथवा उसी प्रसंग पर सच्ची कदापि नहीं हो सकती। फिर कई पुस्तकों में विक्री और कीर्ति की लालच तो होती ही है। इस लिए जो लोग उपर्युक्त पुस्तक पढ़ें, विवेक पूर्वक पढ़ें, और यदि वे कुछ प्रयोग करना चाहें तो पहले किसी अनुभवी पुरुष की सलाह लें, अथवा जरा शान्ति पूर्वक विषय का पहले अच्छी तरह अध्ययन कर लें और तब प्रयोग शुरू करें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## अछूतों की ओर से

महाड,—५ मई के यंग इंडिया में छपी हुई काठियावाडी डाक्टर की कहानी, वायकोम और पालघाट के मार्गों के झगड़े, और अन्त में—पर किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं, आपके बेलगांव महासभा में अपने भाषण पढ़ने के बाद, १९२५ के आरम्भ में, बम्बई की सार्वजनिक सभा में आपको सजा देने की दी हुई धमकियाँ इत्यादि सब घटनायें आदमी की 'स्वराज्य' पाने की सारी मूख के भुग देती हैं। हमें कहा गया है कि महाड के दंगेखोर उस समय 'महात्मा गांधी की जय' की नारें लगा रहे थे जब वे दलित जातियों के लोगों को पीट रहे थे। हमें यह भी कहा गया है कि महासभा के एक पदाधिकारी ने, जिसके आह्वे में कुछ अछूतों ने आश्रय ग्रहण किया था, उनके छिपने की बात इन दंगेखोरों से कह दी। यदि यह सत्य हो तो यह मेरे जैसे आदमी के लिए एक बड़ी ही शर्म की बात है जो जो 'छूत' (पर यथार्थतः अछूतः) जातियों में से और महासभा का सभ्य होने का दम भरता है। गांधीजी, अगर आपको बतौर प्रायश्चित के उपास ही करना चाहिए था, तो किसी चौरीचौरा और कोहटों के वजाय उसके लिये यह उचित कारण था। क्योंकि यह उपद्रव की आग तो महाड में तब धधकी जब आप वहां जाने की थे।

खैर, महासमिति की बैठक हुई। ज्यों त्यों करके उसने एक राजनैतिक जातीय समझौता किया, और इस महान कार्य के लिए अपने आपको धन्यवाद देकर सब सभ्य अपने अपने काम पर चल दिये। पर उस

\* क्या ये दोनों पक्ष एक दूसरे के लिये अछूत नहीं हैं? वास्तव में हिन्दुओं की सभी जातियाँ न्यूनाधिक परिमाण में एक दूसरे के लिए अछूत ही हैं।

महासमिति की बैठक में जबकि वे लम्बी लम्बी वक्तुतायें दी जा रही थी, क्या उन अछूतों के विषय में—हमारे बीच वाली उस भारतीय 'दक्षिण आफ्रीका' के विषय में—किसीने अपनी जवान से एक शब्द भी कहा था, एक अक्षर भी लिखा गया था! ऐण्ड्रयूज उन इन गति नेताओं में से हैं, जिन्होंने भारत की किसी भावी राजनैतिक योजना में अछूतों की समस्या के विषय में अपनी चिन्ताशीलता को व्यक्त किया है। मुझे दुख है कि आप उन इनगिनो में से नहीं प्रतीत होते। मैं यह क्यों कह रहा हूँ सो आगे चलकर मालूम होगा। पर यह एक सच्ची बात है, और इसके लिए मैं आपको क्षमा कर सकूँ।

आपके दिल्ली के उपास और वहां की सर्वजातीय परिषद बाद, जब कि भले ऐण्ड्रयूज यंग-इंडिया के लिए एक सरस, हृदय की तह तक पहुंचने वाला लेख लिख रहे थे, जिसका आरम्भ यों होता है—

'जितना ही चिन्ताशीलता के साथ और पूर्णतापूर्वक मैं इस विषय का अध्ययन करता हूँ, उतना ही मुझे इस बात का निश्चय हो जा रहा है कि हिन्दू मुसलिम एकता की समस्या को हल करने के सम्भाव्य उपाय भी हमें तब तक नहीं मिल सकता, जब तक कि हम उसके साथ ही साथ अछूतों के प्रश्न को भी अपने ध्यान में नहीं ले लेते।'

(यं. इ. १२-११-२४)

उन्हें जेसोर के श्रीयुत रमेशचन्द्र बंजरजीका एक पत्र मिला, जो बड़ी आश्चर्यजनक रीति से मेरे उस समय के तथा अब के विचारों को भली भांति प्रकट करता है। मैं उसे ज्यों बच नीचे देता हूँ।

"समस्त भारतवर्ष एकता परिषद के भव्य कार्य की लोच से गूँज रहा है, और वह तारीफ विलकुल ठीक है। यह पत्र भारत की दो महान् जातियों के बीच प्रेम और सद्भावना उत्पन्न करने और उसे अमर बनाने के लिए निमन्त्रित की गई थी, जो उसने अपने काम को आश्चर्यजनक अच्छे ढंग से पूरा भी किया। प्रत्येक आदमी को इस बात का प्रायः निश्चय है कि वह मौजूदा सर्वश्रेष्ठ भारतीय उस असाधारण उपाय का अवलम्बन नहीं करता, तो ऐसी कोई परिषद नहीं हो पाती।

"पर यदि आप एक अपरिचित और अतीव तुच्छ भारतीय की श्रुति को क्षमा करें, तो क्या मैं आपसे यह पूछ सकता हूँ कि प्रेम और भ्रातृभावपूर्ण परिषद में, जिसके अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों ने इतने खुले दिल से एक दूसरे के अधिकार और स्वतंत्रता को कबूल किया है, उन गरीब अछूतों के विषय में एक शब्द क्यों नहीं बोला गया? क्या अछूत जातियाँ उच्च हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रेम की भी मुस्तहक नहीं हैं? उन लम्बी बहसों के बीच, जो कि घंटों और दिनों तक चलती रहती थी, जिनके अन्दर हर एक आदमी अपने हार्दिक प्रेम और भ्रातृभाव भावों को व्यक्त करने में दूसरे से प्रतिस्पर्धा करता था, एक भी अछूत आत्मा नहीं दिखाई दी कि जिसके दिल में उस वक्त गरीब अछूतों के विषय में विचार तक खड़ा हुआ हो। इस बात को ध्यान में रखते जब मनुष्य उन पांच करोड़ अछूतों के भविष्य का ख्याल करता है, जिनको हम प्रतिदिन कुत्तों की अपेक्षा भी बुरी तरह रखते हैं। और इस समय और प्रेम-परिषद की प्रशंसा से गूँज रहा है, उन गरीबों के लिए किसी के श्रीमुख से शब्द भी नहीं निकल रहा है। मेरे भीतर से एक अमंगल



१९२७

होते हुए सुनाई देती है कि क्या इस उदासीनता का कारण यह है कि वे अछूत किसीका सिर नहीं फोड़ सकते, मकानों की छतों पर नहीं उठ सकते, और कभी कभी सारे मुहल्लों को आग लगा सकते हैं? क्या इसका कारण यह नहीं है कि यह एक लीग ऑफ नेशनस (राष्ट्र संघ) के परिषद भी उस लीग ऑफ नेशनस (राष्ट्र संघ) के ही थी जिस में पराधीन राष्ट्रों के लिए कोई स्थान नहीं था?

(यंग इंडिया २७-११-२४ पृ. ३९४)

इसके बाद १९२५ में, जब हिन्दू मुसलमानों के बीच राज के लिए आपकी सलाह से एक ऐकरार नामा तैयार हुआ था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

“क्या स्वयं हिन्दू समाज ही इस तरह जातियों में विभक्त नहीं हो रहा था, मुझे आपसे यों शिकायत करना पड़ी थी।

आंखों देख कर हमारे लिए ‘यंग इंडिया’ में उसका वर्णन किया था। बेचारे नायाड़ी तो नाम मात्र के मनुष्य प्राणी हैं! उनका दर्शन भी सवर्ण-हिन्दुओं के लिए पातक है। उन्होंने उनकी जिवन-क्रिया (उसे मनुष्य जीवन कौन कहेगा) का भी वर्णन किया था। उनकी सामाजिक दुरवस्था के कारण वे भीख मांगने के लिए मजबूर कर दिये गये हैं। और यह भीख भी कैसी? — बस्ती से दूर, रास्ते से एक ओर, वे एक फटा चीथड़ बिछा देते हैं, और खुद जंगल में एक निश्चित दूरी पर (जो कि करीब आधी फरलांग से कम नहीं होती) छिप जाते हैं। जब उधर से कोई मुसाफिर गुजरता है, तो वे वहां से एक-तरह-की कर्ण-कठोर आवाज द्वारा उसे अपनी उपस्थिति की सूचना दे कर कपड़े पर अन्न-भिक्षा डालने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं। (क्यों कि पैसा तो उनके लिए करीब करीब निरुपयोगी वस्तु है) मनुष्य-जाति के अन्य प्राणियों के दृष्टि-पथ में न तो उन्हें कभी आना चाहिए और न उनसे एक निश्चित फांस ले के भीतर श्वासोच्छ्वास ही लेना छोड़ना चाहिए। श्री एण्ड्रयूज ने यह भी बताया कि इस तरह मिले हुए अन्न में से किस प्रकार कुत्ते और कौए भी अपना हिस्सा ले लेते थे। क्यों कि जबतक दाता उस अपवित्रता के लम्बे फांसले से बाहर नहीं निकल जाते बेचारा नायाड़ी अपने अन्न की रक्षा के लिए कपड़े के पास नहीं आ सकता। तहां कुत्ते और कौओं के लिए तो अपवित्रता का कोई डर ही नहीं होता। वे तो दाता के बिल्कुल नजदीक से भी अन्न जमीन से चून कर खा सकते हैं। क्या इस अछूत और उसके जाति भाइयों, के लिए भी, जिन्हें एण्ड्रयूज “महात्मा गांधीजी के बच्चे” कहते हैं, आपकी योजना में स्थान है, या केवल मुसलमानों के लिए ही? फिर यदि हम इस बात को भी मान लें कि एक औसत मुसलमान औसत हिन्दू की अपेक्षा अधिक दरिद्र है, तो क्या इससे यह सूचित किया जा रहा है कि हिन्दू काफ़िरों ने स्वार्थ-संगठन करके इस्लाम के दीनदारों को ऐसा बना दिया या बनाये रक्खा है, जैसा कि अछूतों को गरीब और अज्ञानी बनाये रखने के लिए छूत हिन्दुओं के विषय में कहा जा सकता है?”

पर मेरा पत्र प्रकाशित नहीं हो सका। आपने यह कह कर उसे लौटा दिया कि आपने इस जातीय प्रश्न पर कुछ समय के लिए मौन धारण कर लिया है। और मुझे दुःख है कि आपने इस तरह बात को खतम कर दिया।

पर अब विगत सप्ताह में बम्बई में एकत्र हुए छूत नेताओं ने फिर उसी संकुचित दृष्टि, उसी स्वार्थीपन का परिचय दिया है जिसकी जेतोर के श्री. बेनरजी ने उस समय शिकायत की थी। मैं आपसे अत्यंत नम्रतापूर्वक किन्तु बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना करता हूं, कि आप जरा इन नेताओं को—खास कर हिन्दू नेताओं को समय पर सावधान कर के उन्हें वस्तु-स्थिति समझा दीजिए। उन्हें अब इस बात की राह मत देखने दीजिए कि दलित जाति संघ और छूतअछूत जातियों के उपद्रव उनकी आंखों को खोल कर हमारे इन अत्यंत मोहताज भारतीयों की जरूरतें उन्हें दिखा दें। अब तो आपको अपनी बुलन्द आवाज से महासमिति द्वारा नियुक्त समिति को आगे के लिए वैध सुधारों की योजना तैयार करने के लिए कह देना चाहिए और अपने बच्चों के हितों को न भूलना चाहिए।

कारवार, उत्तर कानडा

(यंग इंडिया) २८ मई, १९२७

आपका

पत. डी. रा/डकर्णी



# हिन्दी-नवजीवन

गुस्वार, आषाढ सुदी १ संवत् १९८४

## हमारा कलंक

श्रीयुत एस्. जी. नाडकरनी एक साफ साफ लिखने वाले आदमी हैं, और अछूत कहे जाने वाले भारतीयों के लिए उनका हृदय भी बड़ा विशाल है। मैं अन्यत्र उनका वह पत्र ज्यों का त्यों प्रकाशित करता हूँ, जिसमें उन्होंने दलित जातियों के विषय में अपने हार्दिक भावों को खोल कर रख दिया है। और उन्होंने स्पष्ट जातियों की निंदा का जो घड़ा मेरे सिर पर डाल कर खाली किया सो ठीक ही किया है। पर मेरी बात को छोड़ दें तो भी उनके गहरे दुःख ने उनकी तर्क-बुद्धि पर, जो कि प्रायः जाग्रत रहती है, परदा सा डाल दिया है। किन्तु यद्यपि अंत्यजों की दशा बहुत भयंकर है, तथापि मेरा ख्याल है कि न तो बम्बई की महासमिति की बैठक में, और न दिल्ली की एकता परिषद में, उसको स्थान मिल सकता था, जब कि सिर्फ हिन्दू-मुसलिम एकता के सवाल पर ही हमें वहाँ विचार करना था। इन सभाओं में अस्पृश्यता के प्रश्न पर विचार करना उतना ही युक्ति-संगत होता, जितना कि बाल विधवाओं के दुखों पर विचार करना, यद्यपि वे भी हैं तो भयंकर ही। पर इस छोटे से तर्क-दोष के कारण उस महत्वपूर्ण प्रश्न का महत्व कम नहीं हो सकता, जिसे श्रीयुत नाडकरनी ने इतने जोरों के साथ पेश किया है। मैं इस बात में श्रीयुत नाडकरनी से पूर्णतया सहमत हूँ कि यदि हिन्दू-मुसलिम एकता के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता तो भारत के सिर के इस कलंक—अस्पृश्यता—को बिना मिटाये स्वराज्य की आशा और भी कम है। मुझे इससे कोई विशेष मतलब नहीं है कि हम जो राजनैतिक योजना बनावें उसमें अस्पृश्यों का स्थान कहाँ होगा, यदि हम हिन्दू लोग इस प्रश्न को गंभीरता पूर्वक हाथ में नहीं लेंगे तो उस योजना के वे सब कृत्रिम आधार गिर कर चूर चूर हो जायेंगे। पृथक जातीय चुनाव और पृथक रियायत या व्यवहार के विषय में मैंने जो दलीलें दी थीं वे अस्पृश्यता के विषय में भी उसी तरह लागू होती हैं। हमें अस्पृश्यता का निवारण किसी कानून की सहायता ले कर नहीं करना चाहिए। यह तो तभी सफल होगा जब, हिन्दू-विवेक जाग्रत हो कर अपने आप इस कलंक को स्वयं मिटा देगा। यह तो स्पृश्यों का अस्पृश्यों के प्रति अपना कर्तव्य है।

पत्र के अन्त में एक भयंकर वाक्य है। “उन लोगों को उस दिन की राह न देखने दीजिए जब दलित-जाति-सभाएं अथवा स्पृश्य और अस्पृश्यों के उपद्रवों को उनकी आंखें खोल कर अस्पृश्यों की आवश्यकताओं को उन्हें दिखाना पड़े।” इस वाक्य के अन्दर जो शक्ति है उसको मानने से इनकार करना असंभव है। यह वाक्य मुझे उस बातचीत की याद दिला रहा है, जो गोखले की मृत्यु के पहले मेरे और स्वर्गीय हरि नारायण आपटे के बीच हुई थी। पूना में भारत सेवक समिति के कार्यालय में यह बातचीत हो रही थी। कुछ मिशनरियों की भांति दलित जातियों में आन्दोलन कर के उनमें असंतोष उत्पन्न करने के बजाय, मैं यह बता रहा था कि ऊंची कही जाने वाली जातियों में काम करना अधिक अच्छा है। काम मेरे लिए नया था। श्री हरिनारायण आपटे की भांति मैंने अंत्यजों के इस दुःख-सागर का दर्शन और अनुभव नहीं किया था जिनमें कि मैं हूँ रहे थे। ऊंची जातियों द्वारा दलित जातियों पर जो अत्याचार

हो रहे थे, उनको देख कर इस सुधारक के हृदय में आग फैल रही थी। मैंने तत्त्वज्ञानी की सी बुद्धि दिखाते हुए इस जलम सुधारक से पूछा “क्या आप हमारे खिलाफ इन दलित जातियों को उकसाना पसन्द करेंगे? उन्होंने गरम हो कर एकदम जवाब दिया “जल्द, अगर वे मेरी सुनें तो मैं आज ही उनको हम ऊंची जातियों के खिलाफ बलवा करने के लिए उकसा दूँ, और उन्हें हम लोगों से वे चीजें बलपूर्वक छीनने के लिए कहूँ, जो कि हम अपने अपना कर्तव्य समझ कर देने से इन्कार करते हैं।”

इस सुधार के क्षेत्र में अब बहुत कुछ काम हो चुका है किन्तु वह काम भी बेहद है, जो हमें अभी करना बाकी है। कितने ही सुधार खून-खंजर के बाद हुए हैं। आखिर दलित समुदाय की सहनशक्ति के भी सीमा होती है, जिसके पार होते ही वे काम को अपने हाथों में ले कर, सारे दुःख और क्रोध के पागल हो, अत्याचारी का काम तमास कर डालते हैं, और मौका मिले ही वे सब गलतियाँ करते हैं जो उनके अत्याचारियों ने की थीं। इसलिए यद्यपि मैं आशा करता हूँ कि मैं इस समय उसी रोष के अनुभव कर रहा हूँ जो कि उस समय श्री हरि नारायण आपटे के दिल में भरा हुआ था, मुझे इस श्रद्धापूर्वक काम करना चाहिए कि ऊंची कही जानेवाली जातियाँ अब भी, जब तक समय है, अपने काम वापिस ले लेंगी, और दलित जातियों के साथ वह न्याय करेंगी कि उन्हें अब से कहीं पहले उनके साथ करना चाहिए था। मुझे इस श्रद्धा से भी काम करना चाहिए कि यदि ऊंची जातियाँ अपने किये की कहीं पश्चात्ताप न करें तो अपने अन्यायकर्ताओं के विरुद्ध बल करने के बजाय अछूत कोई दूसरा अच्छा सा रास्ता ढूँढ निकालेंगे। मुझे इस आशा से भी अपना काम जारी रखना चाहिए कि ये दलित जातियाँ आत्मशुद्धि और कष्ट-सहन द्वारा अपनी ऊंची आत्मा की ऊँचे हिन्दुत्व का परिचय दे कर मनुष्य और परमात्मा की नज़र में अपने आपको तथा हिन्दू-धर्म को इन लज्जित करने वाले की तुलना में अधिक ऊँचा सिद्ध कर दिखावेंगे। तब तक प्रत्येक, हिन्दू, जिसके हृदय में श्री नाडकरनी के समान अंत्यजों के लिए प्रेम है, उनका साथ देकर तथा उनके दुःखों में और संघर्षों में भाग ले कर अपने आप को ‘अस्पृश्य’ बना ले सकते हैं।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

## चितरंजन सेवा-सदन

डॉ. विघ्न चन्द्र रॉय ने ‘सेवा-सदन’ के लिए पांच लाख रुपये की अपील की है। वे कलकत्ता के एक विख्यात वैद्य और ‘अखिल बंग देशबंधु स्मारक ट्रस्ट’ के ट्रस्टियों में से एक हैं। पाठकों को याद होगा कि यह संस्था उसी जमीन पर खड़ी की गई है, जिसे देशबंधु ने अपनी जीवित अवस्था में ही ट्रस्टियों को दे दिया था। जमीन पर कुछ बोझ था। परन्तु देशबंधु की मृत्यु के बाद एकत्र किये गये स्मारक कोष से धन दे कर उसे छुड़ा लिया गया। अब कोई साल भर से ज्यादा समय हुआ, वहाँ एक बहिया और सुव्यवस्थित औषधालय चल रहा है जहाँ बाहर के रोगियों को भी दवाएं दी जाती हैं। साल कुल २२,००० रोगियों का इलाज किया गया है। अस्पताल से अपने घर को दवा ले जाया करते थे। नये मरीजों की संख्या ७०२३ थी। अस्पताल के अंदर ही जिन रोगियों का इलाज हुआ उनकी संख्या ५७९ थी और सो भी रोगशैयाओं पर। ट्रस्टी अब ३२ रोगशैयाएँ और बढाता चाहते हैं। इसमें किसी को संदेह नहीं है, कि यह संस्था—एक बृद्धि जल्दत को पूरी कर रही है, और संस्था



१२२७

१२२७

नहीं है। पर श्रद्धा के मानी तो हैं अधिक धन। जो लोग  
 की स्थिति का आदर करते हैं, और साथ ही जो दुखियों की  
 की आवश्यकता को भी महसूस करते हैं, वे  
 की गई अपील का उचित उत्तर देने में  
 की पूर्ण विवरण "डा० विधन चन्द्र रॉय १४८  
 की संस्था का पूरा विवरण "से मिल सकता है, जिसमें  
 की (दक्षिण) कलकत्ता से मिल सकता है, जिसमें  
 की साउथ (दक्षिण) कलकत्ता से मिल सकता है, जिसमें  
 की आय-व्यय का वा कायदा जांच किया हुआ व्यौरा तथा  
 की आय-व्यय और वर्गीकरण सहित हिसाब भी है।  
 की संख्या और वर्गीकरण सहित हिसाब भी है।  
 की सनमानों पर भेजा जा सकता है (१) मंत्री,  
 की लिये सरनामों पर भेजा जा सकता है (२) देश-  
 की सरकार दूर, ३६ वेल्डिंग स्ट्रीट कलकत्ता, या (२) देश-  
 की सरकारी दूर के खाते सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया, लिमिटेड  
 की स्ट्रीट कलकत्ता में जमा किया जा सकता है।

मो० क० गांधी

### बंगलोर खादी प्रदर्शिनी

बंगलोर में शीघ्र ही भरनेवाली खादी-प्रदर्शिनी को पूर्णतया सफल  
 के लिए श्री राजगोपालाचारी और श्री गंगाधरराव देशपांडे  
 की भारी तैयारियां कर रहे हैं। महज बहुत सी चीजें इकट्ठी करना  
 उद्देश नहीं है। वे तो असल बात चाहते हैं—गुण। और  
 की प्रदर्शिनी की मर्यादा का बहुत संकुचित कर दिया  
 की अखिल भारतीय नहीं, केवल दक्षिणी भारतीय खादी प्रदर्शिनी  
 की परतु खादी-निर्माण सम्बन्धी विभाग को संपूर्ण बनाने के  
 की तथा प्रदर्शिनी को एक खासा वस्तुपाठ बनाने की गरज से  
 की प्रान्तों से आवश्यक सहायता ले रहे हैं। इसलिए वे सब लोग, जो  
 की वोटने से लेकर हाथ धुनाई तक की खादी बनाने की कला  
 की जानना चाहते हैं, तथा उन क्रियाओं में इस्तेमाल किये जानेवाले  
 की को काम करते हुए देखना और उनका अध्ययन  
 की चाहते हैं, इस प्रदर्शिनी में आना न भूलें। राज्य से  
 की के खर्चे के लिए ५००) दिया जाना और उद्यम-विभाग  
 की बालक (डायरेक्टर) का प्रदर्शिनी-समिति का सभ्य होना मैसोर  
 की के शुभ भविष्य के पूर्वचिन्ह हैं सचमुच खादी का  
 की और पारस्परिक महत्त्व भी इतना भारी है कि यह देख कर  
 की होता है कि राजाओं और महाराजाओं ने अबतक इस हलचल  
 की महत्त्व क्यों नहीं दिया? हर आदमी इस बात को कुबूल  
 की है कि भारत के करोड़ों गरीबों के लिए किसी सहायक पेशे की  
 की है। प्रास-संगठन सफल कर के दिखाने के लिए लोग व.सों  
 की योजनाओं को लिये लिये घूमते हैं। पर उनमें से एक भी  
 की के समान सब के लिए उपयोगी नहीं है। जहां तक मुझे  
 की, उनमें से एक भी योजना की इतने बड़े पैमाने पर आजमाइश  
 की नहीं की जा रही है, जैसी की खादी की आजकल हो रही है।  
 की खूब दिखाना कोई मामूली बात नहीं है कि खादी योजना  
 की से कम १५०० ग्रामों में सुसंगठित रूप से काम कर रही है।  
 की सरकारी अफसर को भी इस बात से डरने की जरूरत  
 की है कि, खादी अपना राजनैतिक महत्त्व भी रखती है। खादी के  
 की महत्व की बात सुन कर सचमुच कितने ही विद्वान राजनीतिज्ञ  
 की इसी उड़ाने लग जाते हैं। और उनका यह हंसी उड़ाना  
 की नहीं, यदि राजनैतिक महत्त्व का वही अर्थ किया जाय जो  
 की का लगाया जाता है। खादी राजनैतिक दृष्टि से उसी  
 की महत्वपूर्ण है जिस अर्थ में शिक्षा, पारस्परिक सहकार संस्थाएँ  
 की संस्थाएँ हैं। देश को उन्नति की ओर ले जानेवाले  
 की भी महान कार्य के राजनैतिक परिणाम को टालना असंभव है।  
 की, राजा-महाराजा और प्रत्येक मनुष्य को भी यदि वे देशघातकी

नहीं हैं, तो हिन्दू-मुसलिम एकता को साथ करने के लिए जी-जान  
 से कोशिश करनी चाहिए। पर फिर भी किसी को यह कह कर  
 हिन्दू मुसलिम एकता की हंसी उड़ाने की हिम्मत नहीं हुई है कि  
 उसका परिणाम राजनैतिक होगा। और न मैं किसी ऐसे आदमी  
 को जानता हूँ कि जो महज इसलिए उसके लिए प्रयत्न करने से  
 इन्कार करता है कि हिन्दू-मुसलिम एकता का राजनैतिक महत्त्व है।  
 बात यह है कि खादी संपूर्णतया सफल और साथ ही उसका राजनैतिक  
 परिणाम तो तब होगा जब गरीब और अमीर, रैयत, और जमींदार और,  
 राजनीतिज्ञ तथा वे भी सब उसे अपनावे जो कि राजनीतिज्ञ नहीं हैं।  
 इसीलिए खादी को राजनैतिक झंझटों से ऊंचा रखने की हर तरह से  
 कोशिश की जा रही है। खादी बलवे का निशान नहीं, बल्कि आत्म  
 शक्ति, स्वाश्रय तथा गरीब और अमीर, मजदूर और पूँजीपति, के बीच  
 कृत्रिम भेदभावों को एक बारगी नष्ट कर देने और उन दोनों के बीच  
 सजीव, सम्बन्ध प्रस्थापित करने के शुभ निधय का चिन्ह है। इसलिए  
 मैं आशा करता हूँ कि सब वर्ग के लोग—बंगलोर कॅन्टोनमेंट में  
 रहनेवाले अनेक यूरोपीयन भी—इस प्रदर्शिनी की सहायता करेंगे। उस  
 बहुत संख्यक जनता का भी सब के साथ स्वागत है। सचमुच,  
 बंगलोर और नंदी में, मेरे स्वास्थ्य समाचार लेने के लिए कृपापूर्वक  
 आनेवाले यूरोपीयन मित्रों के सामने उनके स्वीकारार्थ, बातचीत के  
 सिल सिले में खादी का—अर्थात् भारत के करोड़ों भूखों मरनेवाले  
 निवासियों का—संदेश रखने से मैंने कभी संकोच नहीं किया है।

बंगलोर के फैशन-प्रिय लोगों से भी एक शब्द कह दूँ। मैं  
 देखता हूँ कि त्रिचनापल्ली के एक शिक्षक सिले कपड़ों में एक  
 छोटे से छोटा आदर्श अखितयार करने के पक्ष में खूब आन्दोलन कर  
 रहे हैं। मैंने यह भी देखा कि उस दिन एक सार्वजनिक सभा में  
 श्री श्रीनिवास शास्त्री ने भी बंगलोर के निवासियों की बहुत अधिक कपड़े  
 पहनने की आदत की ओर इशारा किया था। मैंने ध्यानपूर्वक  
 यह भी देखा है, कि खादी में श्रद्धा रखनेवाले लोग बंगलोर की  
 फैशन को देखते हुए खादी को अपनाने से हिचकिचाते हैं। मैं चाहता  
 हूँ कि वे धैर्यपूर्वक उस फैशन को अलग हटा दें जिसके निबाहने के  
 लिए गरीबों का बलिदान देना पड़ता है। बेशक, धनिक लोग अपने कपड़े  
 तथा अन्य आवश्यक चीजों में शौक से सुचि-युक्त अलंकारों का  
 उपयोग करें। पर मैं उनसे यह जरूर अनुरोध करूँगा कि वे अपने  
 और अपने भूखों मरनेवाले भाइयों के बीच ऐसा सम्बन्ध बनाये  
 रखें जो एक सुव्यवस्थित समाज में पाया जाता है। लंगोटी भारत  
 का सब से छोटा और कंगालों का वस्त्र है, जिसके लिए ३ गज  
 से अधिक कपड़ा नहीं लगता। हमारी फैशन हो तो इसीके अनुसार  
 हो? जो लोग हमारी रहनसहन का ऊंचा उठा कर भारत को कार्यशील  
 बनाने के लिए उसकी आवश्यकताओं का बढाना चाहते हैं, वे यह न सोचें  
 कि गरीबों को नुकसान पहुंचा कर, तथा उनको अपनी रहनसहन उसी  
 परिमाण में उंची बढाने के योग्य बनाने से पहले वे इस उद्देश की पूर्ति  
 अपनी जरूरतों को बढा कर कर सकेंगे। इन करोड़ों लोगों को अपनी  
 रहनसहन उंची करने के लिए प्रवृत्त करने का सार्वत्रिक, परिणामजनक  
 और तात्कालिक उपाय तो यह है कि मंशोले बर्ग के फैशन-प्रिय लोग  
 खादी पहनकर कुछ पैसे उन गरीबों के घर में भेजें। बंगलोर से  
 बहुत से लोगों ने खादी-कार्य के लिए आर्थिक सहायता दी है। पर  
 यह काफी नहीं है। जबतक लोग खादी पहनने नहीं लग जायेंगे,  
 तबतक खादी तरकी नहीं कर सकती। इसलिए बंगलोर और उसके  
 आसपास के जिलों के लोगों से मैं कहूँगा कि वे केवल प्रदर्शिनी को  
 देखकर या इस हलचल को आर्थिक सहायता दे कर ही न रह जायें,  
 बल्कि खादी पहन कर वे गरीबों के साथ समरस भी हों

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी



## रोगशय्या के पास से

कई मित्र अब इस शीर्षक से थक गये हैं। मैं भी थक गया हूँ। परन्तु यदि थक जाने भर से मौजूदा हालत बदल सकती होती तो इस थकावट की स्थिति का अस्तित्व ही नहीं रहता। बात यह है कि गांधीजी बिस्तर पर पड़े पड़े भी बहुत सा काम खोद खोद कर निकालते रहे हैं। सो इसलिए नहीं कि वे रोग-मुक्त हो गये बल्कि इसलिए कि बिना काम के उनका जीवन ही असंभव है। परन्तु मैं आशा करता हूँ कि इस शीर्षक को बदलने का समय नजदीक आ रहा है। यहाँ की हवा बड़ी ताजगी को बढानेवाली है। बल्कि इस स्थान की तो गरीबों का हिलस्टेशन (गिरिनिवास) सुखपूर्वक कहा जा सकता है। पहाड़ों पर जाना सब के लिए आसान नहीं होता। और जो जाते भी हैं उन सब को वहाँ का जलवायु अनुकूल होता हो, सो भी नहीं। तहाँ इस स्थान पर गरमी तो हुई नहीं, पर ठंडक भी अतिशय नहीं है। डॉक्टरों का कहना है कि आगामी १५ जुलाई के लगभग गांधी जी धीरे धीरे प्रवास करने लायक हो सकेंगे।

### राम कीर्तन

यहाँ के संगीत के विषय में तो मैं पहले लिख ही चुका हूँ। नन्दी में दो बहनें रोज हमारी प्रार्थना में शराक हो कर अपने अत्यंत मधुर स्वर में त्यागराज के भजन सुनातीं। परन्तु यहाँ तो उससे भी बड़ कर संगीत का लाभ हुआ। और इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं। यहाँ तो आप यदि किसी मामूली से मामूली राहगीर से भी पूछ लेंगे कि, 'क्यों भाई तुम गा सकते हो' तो वह कहेगा 'अवश्य'। फिर यहाँ संस्कारी कुटुम्ब तो शायद ही कोई ऐसे होंगे जिनमें संगीत न हो। यहाँ तो संगीत के बिना शिक्षा ही अधूरी समझी जाती है।

एक दिन एक गृहस्थ बड़ी देर से अपने स्त्री-जनों को ले कर आये। उन दिनों प्रार्थना बाहर करना असंभव था। खूब चारिश होती थी। और राज्य ने उस समय प्रार्थना के लिए तम्बू नहीं खड़े किये थे। (अब तो तीन तम्बू खड़े कर दिये गये हैं!) इसलिए छत पर प्रार्थना होती। प्रार्थना समाप्त होने पर बहनों को यों ही चुपचाप बैठी हुई देख कर श्री राजगोपालाचार्य ने पूछा "क्या आप कुछ गावेंगी?" बस, मानो ग्रामोफोन की चूड़ी शुरू हो गई। नहीं, मैं भूल गया। कहीं उन बहनों के मधुर कंठ के साथ ग्रामोफोन की भी तुलना हो सकती है? उसमें तो कभी ऐसा मधुर स्वर नहीं सुनाई देता। बंगाल को छोड़ कर ऐसा मधुर कंठ मैंने कहीं न सुना। पहले एक भजन गाया। और बाद—

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।

आरभ्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिको किलम् ॥

से ले कर बालकांड के आरम्भ में नारद ने श्रीराम-चरित्र का वर्णन किया है, उसके कुछ श्लोक बोल कर वे रुक गईं। परन्तु उनके साथवाले सज्जन के यह कहते ही कि 'आगे वढो,' वे पूरा सर्ग— १०० श्लोक-स्पष्ट शुद्ध उच्चारण के साथ सहज सरल अनुष्ठुप छंद में अत्यंत मोहक संगीत भर के कह गईं। मानो उस पुरातन कोकिल की कुहूक हो गये। "क्या ये सभी बहनें गाती हैं?" "बहुत सी बहनें गाती हैं। कई ब्राह्मण कुटुम्बों में शनिवार के दिन सारे सर्ग का इस तरह पाठ करने का रिवाज है।"

"क्या ये बहनें इन सब श्लोकों को समझ सकीं?"

"जी हाँ, मेरी बहन तो संस्कृत को पण्डिता हैं। पर मेरी स्त्री जरा कम समझती है।"

और क्यों न समझें? यदि यह कहें तो अत्युक्ति न कहें कि यहाँ पर हिन्दू संस्कृति की रक्षा तो स्त्रियों ने ही की है। उनमें से कई बहनें तो इस सर्ग के अंत में दिये हुए पाठफल में विश्वास करती होंगी।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।

यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(नवजीनव)

## वर्ण-धर्म

(१)

हिन्दू-धर्म ने चारों वर्णों की व्यवस्था दे कर प्रत्येक वर्ण को व्यवसाय अथवा पेशा निश्चित कर दिया है। यहाँ पर हम यह समझ नहीं उठावेंगे कि प्रत्येक वर्ण आज उसी धंधे को करता है या नहीं। यदि प्रत्येक मनुष्य अपना अपना पेशा करना चाहे और वह शक्य हो तो भी एक दूसरा यह सवाल रही जाता है कि—उसका यह काम इष्ट भी होगा या नहीं? हम तो इसका भी विचार अभी नहीं कर सकते। यदि यह सवाल उठाया जाय कि आज की परिस्थिति में समाज के धारण, पोषण और विकास के लिए ये चार प्रकार के धंधे बरतें होंगे या नहीं तो इसका उत्तर देना भी मुश्किल होगा। और आज में आज समाज में जो असंख्य धंधे चल रहे हैं, उन्हें चारों वर्णों के चार विभागों में बांट कर, प्रत्येक आदमी से यदि यह आशा की जाय कि वह अपना आचरण अपने वर्णानुसार रखे तो वह कहाँ तक निभ सकता है, यह भी एक विचारणीय प्रश्न ही है।

हमारी स्मृतियों में चारों वर्णों के मुख्य व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य कितने ही धंधे बताये हैं। उनमें यह भी लिख दिया गया है कि वे संकर जाति के व्यवसाय हैं। कम से कम एक पैसठ जातियों का उल्लेख संकर जातियों में पाया जाता है। तो क्या इससे यह आशा करनी चाहिए कि इन धंधों के लिए इन संकर जातियों को हमेशा टिकना चाहिए? संकर तो नरक का कारण है। इसलिए यदि संकर जातियों को मिटा दें (और चार वर्ण में शामिल कर दें) तो इनका काम कौन करेगा? शुद्ध वर्ण तो उन्हें कल्पित नहीं करेंगे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये धंधे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। तब क्या इन धंधों को परधर्मियों को सौंप दिया जाय? यदि ऐसा हो तो क्या हम यह कह सकेंगे कि हिन्दू-धर्म स्वयंपूर्ण है?

इन सभी प्रश्नों के शास्त्रीय जवाब तो आसानी से दिये जा सकते हैं, परन्तु ऐसी कोई बात इनके उत्तर में नहीं सूझ पड़ती जो व्यवहार्य हो। सनातन धर्म में यह माना गया है कि प्रत्येक मनुष्य अपने ही वर्ण का काम करे, दूसरे वर्ण का काम करने को न जावे।

श्रेयान् स्वधर्मां विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

इसका अर्थ यों किया जाता है कि मनुष्य को परम्परागत पुराण सेवित और स्ववर्णोचित व्यवसाय ही करना चाहिए। दूसरे वर्णों का धंधा करने से समाज का द्रोह होता है, समाज का नुकसान होता है, और व्यक्ति पाप में गिर जाता है। तत्त्वतः सभी सनातनी इस सिद्धान्त का बचाव करते हैं। पर इसका पालन ऊँची समझी जाने वाली जातियाँ तो करती नहीं करतीं। हाँ वे जातियाँ जहर इसका पालन करती हैं, जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा ऊँचे दर्जे की नहीं है, अथवा जिनमें नवीन संस्कारों को ग्रहण कर के, धनवान बन के जहाँ तक हो सके, ऊँचे चढने की अभिलाषा अथवा ज्ञान स्फूर्ति नहीं हुआ है।

'स्वधर्म' का इतना संकुचित और ऐसा विचित्र अर्थ करने का नतीजा कितना भयंकर हुआ है, यह देखनेलायक है। विद्या पढ़ना,



वह कहा त  
।  
ग्यों के अतिरिक्त  
दिया गया है  
से कम ल  
जाता है । त  
के लिए इन सं  
का कारण है ।  
र वर्ण में शान्ति  
तो उन्हें कदापि  
धंधे महत्त्वपूर्ण  
दिया जाय ? यदि  
स्वयंपूर्ण हैं ।  
से दिये जा  
रूझ पड़ती जो  
प्रत्येक मनुष्य  
को न जावे ।  
रम्परागत पूर्वज  
दूसरे वर्णों का  
होना है ।  
और वेचारे शूद्र तो मनुष्यदेह वाले द्विपद-पशु ही ठहरे । वे  
नहीं कर सकते—कहीं तपस्या करने जाते तो ब्राह्मणों के  
अकाल मर जाते । वे शस्त्र ग्रहण नहीं कर सकते । उन्हें कोई  
भी धारण नहीं करने देता था । और जिसके यज्ञापवीत  
होती उसे धनुर्विद्या कौन पढ़ाने चला ? अपनी हिम्मत से यदि  
कुछ सीख भी लिया तो उसे अपना अंगूठा काट कर के देना  
पड़ा । शूद्र व्यापार-वाणिज्य भी नहीं कर सकते थे । यदि कहीं  
शूद्र धनवान हो जाता ? तो वह समाज के लिए एक भयानक  
समस्या जाता । और अति शूद्र तो सिवा मिट्टी के बर्तनों के  
कोई पात्र में खाना भी नहीं खा सकते । उनका तो दर्शन भी  
नहीं । वे शहर तथा गांव की रक्षा के बाहर ही रह सकते । पर  
सब बातों के कारण अतिशूद्रों को एक लाभ जरूर हुआ । ये  
किसी हुई तो रहीं, परन्तु उन्होंने अपने तेज को नहीं खोया ।  
सब बात को सीख गई कि उस परिस्थिति में भी अपनी रक्षा  
के बाहर की जाय । व्यवहार चातुरी भी आज इस कौम में अधिक  
की होती है । यदि उनमें से संस्कार और उन्नति की अमिलाषा  
होती तो ये कौम देश की पुरोगामी जातियां होतीं ।  
जातियों तो यह तय कर दिया कि शूद्रों को असूया छोड़ कर,  
हर प्रकार की महत्वाकांक्षा को छोड़ कर, तीनों जातियों की  
के जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

और अमृत का मिश्रण हो सकता है। हुन्नर और कारीगरी में जिनकी बुद्धि अधिक चलती, वे कौमं अस्पृश्य करार दे ही गई। इस तरह वैश्य पुरुषार्थ की भी सशास्त्र हत्या की गई। समाज में सर्वतोमुखी अयोग्यता का विकास करने का इससे बढिया साधन कहीं ढूँढे भी नहीं मिलेगा।

और स्त्रियाँ ? वे तो मानवसमाज का अर्धांग हैं न ? उसे तो घरा में रखना भाग है । 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति' । और यदि स्वातंत्र्य देना स्वीकार नहीं, तो उन्हें ज्ञान और संस्कार किस तरह दिये जा सकते हैं ? स्त्रियों के सामने नम्रता, मर्यादा, आज्ञाधारिता तथा एक-निष्ठा के वे सभी आदर्श रखे गये, जिनकी कल्पना की जा सकती थी । परन्तु इन आदर्शों के साधन के लिए जिस तेजस्विता की जरूरत थी, उससे उन्हें वंचित रख दिया गया । जब समाज इस प्रश्न को नहीं सुलझा सका कि विधवाओं का क्या किया जाय, तब उसने मंत्र-घोष द्वारा और बाजे बजा कर सती प्रथा के आदर्श को जनता के चित पर अंकित कर दिया । भैसे से क्या काम लिया जाय, यह न सूझ पड़ने पर जिस समाज ने उसे देवी के सामने बलिदान करने की युक्ति का आविष्कार किया, उसीने 'सती प्रथा' को भी शुरू किया है । भारत की उन देवियों को हमारा सहस्रशः प्रणाम है, जो पाति-व्रत्य भावना के उत्कर्ष के कारण-सती हुई हैं । उन्होंने आर्य-जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया है । परन्तु हमारा मस्तक उन लोगों के सामने नहीं झुकता जिन्होंने सहगमन के आदर्श को समाज के सामने रखा है ।

यहां पर हम यह सिद्ध करना कदापि नहीं चाहते कि हमारे समाज में, पहले जो कुछ था, सब खराब ही था । हम यह निर्भ्रान्त चित्त से कह सकते हैं कि आर्यों की विचार-शीलता, धार्मिक शोध, तत्त्वनिष्ठा और चतुर्विध पुरुषार्थ संसार की किसी भी जाति की अपेक्षा घटिया नहीं है । परन्तु साथ ही हमें दुःख पूर्वक यह भी कहना पड़ता है कि इन सिद्धान्तों पर अमल करते समय हमने उत्तनी ही पठित मूर्खता का परिचय भी दिया है । शास्त्र वचनों पर हमारी श्रद्धा उस सीमा को जा पहुंची कि शास्त्रों का अर्थ करते हुए अपनी अकल का उपयोग तक करने की हमें हिम्मत नहीं हुई । स्मृति-ग्रन्थों के टीका लेखकों ने कई बार शंका करके उसका जो समाधान दिया है उसे पढ़ने पर हमें यह सन्देह होने लग जाता है कि शायद टीका लेखक यही ग्रहीत किये बैठे रहते थे कि समाज में सामान्य बुद्धि भी नहीं होती ।

( नवजीवन )

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

दो राजाओं में कौन श्रेष्ठ है ?

वाराणसी नगरी के राजा की महिषी के एक कुमार हुआ। उसका नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया। कुमार जब बड़ा हुआ तब सोलहवें वर्ष में तक्षशिला जाकर उसने वहां समस्त विद्या और कलाओं में कुशलता प्राप्त कर ली। पिता के देहान्त के बाद वह सिंहासनाखंड हुआ और उसने धर्म तथा समता पूर्वक राज्य करना शुरू किया। राजा स्वच्छन्द के वश में नहीं हुआ, वलिक न्याय पूर्वक राज्य करता था। इसलिए स्वभावतः अमात्यवर्ग भी धर्मपूर्वक ही व्यवहार (झगड़ों का निपटारा) करते थे। व्यवहार का निर्णय धर्मानुसार होने के कारण झूठे झगड़े खड़े करनेवालों का नाम भी न रहा। और फलतः राजद्वार पर शिकायत करने वालों की गर्जना भी शान्त हो गई। न्यायाधीश सारे दिन दिन भर न्यायासन पर बैठते। पर जब कोई न्याय के लिए नहीं आते तो, उठ कर घर को चल देते। जब



राजा ने सभी न्याय-सभाओं को सूनी पड़ी हुई देखा, तब उसने सोचा "मैं धर्मपूर्वक राज्य कर रहा हूँ इसलिए कोई न्याय मांगने के लिए नहीं आते। शिकायतें दूर हो गई हैं और प्रजा को न्यायासनों की जरूरत ही नहीं रही है। अब मुझे यह देखना चाहिए कि मुझ में और कौन कौन से दुर्गुण हैं? और जब मुझे मालूम हो जावेगा कि मुझ में अमुक दुर्गुण है तो उसे दूर करके मैं सद्गुण को धारण करने की कोशिश करूँगा।

अब राजा अपने दुर्गुण सुनाने वालों को इंटने लगा। घर के नौकरों में उसे कोई दुर्गुणों का बताने वाला नहीं मिला। 'ये तो मेरे घर के कारण मीठी मीठी बातें बना रहे हैं। इनसे मेरे अवगुण नहीं मालूम हो सकते' वह सोच कर बाहर के सेवकों की उसने जांच की। वहाँ भी राजा को कोई उसके दोष बताने वाला नहीं मिला। तब उसने नगरी में और नगरी के बाहर चारों दिशाओं के मुहल्लों में उसने अपने दोषों को जानने की कोशिश की। पर वहाँ भी कोई निन्दक नहीं मिला। उसे केवल प्रशंसा ही प्रशंसा सुनाई दी। "अब जनपद (देहात) में तलाश करना चाहिए" यह सोच कर राजाने राज्य तो किया अपने मंत्रियों के सिपुर्दे, और खुद रथ में बैठ कर देश बदल कर सिर्फ सारथी को ले चल पड़ा। घूमते घूमते वह ठेठ सीमान्त प्रदेश तक जा पहुँचा। परन्तु वह जहाँ कहीं गया, उसे केवल अपनी गुणगाथा और तारीफ ही सुनाई दी। उसे अपने दोषों का पता नहीं लगा, तब अन्त में सीमान्त प्रदेश से राज मार्ग पर हो कर उसने नगर की ओर अपने रथ को वापिस घुमा लिया।

उसी समय कोसल देश में मल्लिक नामक एक धर्मशील राजा राज्य करता था। वह भी अपने दोष-दर्शन की इच्छा से घूमता घूमता उसी प्रदेश में आ पहुँचा। दोनों राजा गाडी के रास्ते पर एक गढे में आमने सामने एकत्र हो गये। रथ के लिए दूसरा रास्ता नहीं था। दोनों ओर से मानो ऊँची दिवालें खड़ी हो गई थीं।

मल्लिक राजा के सारथी ने काशीराज के सारथी से कहा 'अपना रथ पीछे हटा कर रास्ता दे।'

"हे सारथी तू ही अपने रथ को हटा। इस रथ में काशी राष्ट्र के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त विराज रहे हैं।" काशी वाले सारथी ने जवाब दिया।

"अरे सारथी, तो इस रथ में कोसल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हुए हैं। तू अपने रथ को हटा और हमारे राजा के रथ के लिए मार्ग कर।" मल्लिक का सारथी फिर बोला।

"यह तो राजा राजा मिल गये। अब क्या करना चाहिए।"

### अप्रैल १९२७ में खादी की उत्पत्ति और बिक्री का ब्यौरा

प्रान्त	रु.	उ	रु.	तप	रु.	वि	रु.	री	रु.
अजमेर	"	अप्रैल २७	अप्रैल २६	मार्च २७	अप्रैल २७	अप्रैल २६	मार्च २७		
अन्ध्र	"	७,६४१	२,१२०	१०,५३०	६,५१९	२,८४३	७,६०६		
बंगाल	"	३१,४६४	९,४६५	२८,९०२	४९,६७५	१९,५५२	३९,६५१		
बिहार	"	१२,८९८	३४,६७०	१३,०६७	३४,१८०	३१,३७०	२७,६८३		
बम्बई	"	८,३६९	२०,९१४	१९,७६८	२१,८१८	१५,९१६	२७,३०२		
ब्रह्मा	"	"	"	"	३६,६५८	४४,१८६	३६,६६७		
दिल्ली	"	९२६	९०१	"	२,९७४	३,००९	२,७९०		
गुजरात	"	५,०९५	७,६१६	१,०९७	२,९९७	१,८६८	३,५१५		
कर्णाटक	"	२,००१	२,६६१	२,८१२	१४,२६४	१७,०६९	३,०५२		
महाराष्ट्र	"	१,५०५	२,०१८	४,०७०	४,८५८	९,१२७	८,३२०		
पंजाब	"	५,८०१	५,७०१	१,३१८	१९,१४६	१९,७९९	१९,५७३		
तामिलनाडु	"	७१,००६	४५,३९०	७,८२१	१०,७५१	१४,६९३	९१,७८३		
युक्त प्रान्त	"	७,११३	६,६६०	८५,२५८	७१,०८५	६५,५९२	१८,३११		
सत्कल	"	४,१५३	३,६३८	२,६३७	१६,३७६	१७,९६९	२,२५०		
कुल रु.		१,५७,९७१	१,४१,७४४	१,८८,९३०	२,९३,७८५	२,६५,३११	२,९४,३१९		

\* बंगाल अंक अधूरे हैं प्रवक्त-संघ ने अपनी रिपोर्ट नहीं भेजी है।

इस तरह उलझन में पड़े हुए काशीराज के सारथी ने सोचा। "यह उपाय है तो! यह पूछें न कि कोसलराज की अवस्था कितनी है? अर्थात् जो छोटा होगा, वह रथ को हटा कर बड़े को मार्ग देगा।" यों सोच कर उसने कोसल-राज के सारथी से पूछा कि उसके मालिक की उम्र क्या थी। पर दोनों राजा एक ही उम्र के पारे गये। तब राज्य का विस्तार, सैन्य, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल, सब पूछना शुरू किया। पर इन सब बातों में दोनों राजा एक से निकले?

"अब इन दोनों में जो अधिक शीलवान हो उसीके लिए प्रतिपक्षी को मार्ग छोड़ना चाहिए।" यह सोच कर काशीराज के सारथी ने पूछा "आपके राजा का शीलचार कैसा है?" तब कोसलराज का सारथी "यह है हमारे राजा का शीलचार" यों कह कर अपने राजा के दुर्गुणों को ही गुण बता कर प्रकट करते हुए बोला:—

दलहं दलहेन खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं।

साधुं पि साधुना जेति असाधुं पि असाधुना ॥

एतादिसो अर्थ राजा सम्राट् उच्यहि सारथि ॥

मल्लिकराजा कठोर को कठोरतापूर्वक, कोमल को कोमलता के साथ, भले को भलाई से और शत्रु को शत्रु से जीतता है। ऐसा है मेरा राजा। सारथी, चल, अपने रथ को मार्ग से अलग हटा।

काशीराज के सारथी ने पूछा 'हे सारथी तूने अपने राजा के सब गुण कह लिये?'

"हां, कह लिये।"

"अरे, अगर यही गुण हैं, तो फिर दुर्गुण किसे कहना चाहिए?"

"भले ही इन्हें तू चाहे दुर्गुण ही कह ले, पर अपने राजा के गुण तो बता।"

"ले सुन" यों कह काशीराज का सारथी बोला:—

अक्कोधेन जिने कोधमसाधुं साधुना जिने।

जिने कदरिथं दानेन सच्चेनालीकवादिनम् ॥\*

एतादिसो अर्थ राजा सम्राट् उच्यहि सारथि ॥

काशीराज क्रोधी को शान्ति से, दुष्ट को भलाई से, लोभी को दान से और शत्रु बोलने वाले को सत्य से जीतता है। ऐसा है यह राजा। 'हे सारथी अपने रथ को हटा उसके रथ के लिए मार्ग छोड़।

यों कहते ही मल्लिकराज तथा उसका सारथी भी रथ से नीचे उतर पड़े, घोड़ों को खोला, रथ को पीछे हटाया, और काशीराज को मार्ग दिया।

[जातक २-१५-१]

वालजी गोविन्दजी देसाई



# राजनीतिक संघ ?

वार्षिक मूल्य ४ )

छः मास का ,, २ )

एक प्रति का ,, १)

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४७ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, आषाढ सुदी ८ संवत् १९८४

गुरुवार, ७ जुलाई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की बाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ८

एक चेतावनी

प्रवाह-पतित कथा के प्रसंग को अभी अगले परिच्छेद तक स्थगित करना पड़ेगा ।

मिले प्रकरण में मैं मिट्टी के प्रयोग के विषय में जो कुछ लिखा है, उसी के समान खुराक के भी प्रयोग थे । इसलिए प्रयोग में भी इस समय कुछ लिख डालना उचित समझता हूँ । जो कितने प्रयोग प्रसंगोपात्त अभी पीछे आवेंगे । इन प्रकरणों के आधार के प्रयोगों और उनके बारे में विचारों का विस्तार लिखा जा सकता । इस विषय में मैंने 'इन्डियन-ओपीनियन' के लिए 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' या 'बायोम-साधन' नाम की जो किताब दक्षिण अफ्रीका में लिखी थी, उसमें विस्तार पूर्वक लिखा है । मेरी छोटी छोटी पुस्तकों में मैंने, पश्चिम में और यहां भी सबसे अधिक प्रसिद्ध प्राप्त की है । इसका कारण मैं आज तक समझ नहीं सका हूँ । यह किताब केवल 'इन्डियन ओपीनियन' के पाठकों के लिए लिखी थी । परन्तु उसके आधार पर कितने ही भाई बहिनों ने अपने जीवन में फेरफार किये हैं, और मुझसे पत्र-व्यवहार भी किया है । इसीसे इस बारे में यहां कुछ लिखने की जरूरत पड़ी हुई है ।

कारण यह है कि यद्यपि उसमें लिखे गये अपने विचारों में फेरफार करने की जरूरत मैंने महसूस नहीं की है, तौभी अपने पाठकों में महत्वपूर्ण फेरफार किये हैं । यह बात उस पुस्तक के पाठकों को नहीं जानते । इसकी जरूरत है कि वे इसे तुरत जान लें ।

यह किताब लिखने में — जैसे दूसरी चाजें लिखने में—केवल आत्मकथा थी और वही मेरे हर काम में आज भी रहती है, यद्यपि उसमें के कितने विचारों का आज मैं जो अमल नहीं कर सका, उसका मुझे खेद है, उसकी लज्जा है ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि माता के दूध के बाद, मनुष्य को दूसरे दूध की जरूरत नहीं । मनुष्य की खुराक सूखे या हरे फलों के सिवाय दूसरी नहीं है । बादाम आदि बीजों और

अंगूर वगैरह फलों से उसके शरीर और बुद्धि को पूरा पोषण मिल जाता है । ऐसी खुराक पर जो रह सकते हैं, उनके लिए ब्रह्मचर्य आदि आत्मसंयम बहुत सहज वस्तु हो पड़ते हैं । यह मैं और मेरे कितने साथियों ने अनुभव किया है कि इस कहावत में कि 'मनुष्य जैसा खाता है वैसा होता है' बहुत तथ्य है ।

आरोग्य वाली किताब में इन विचारों का विस्तार से समर्थन है ।

पर यह तो मेरे नसीब में ही न था कि मैं हिन्दुस्तान में अपने प्रयोग सम्पूर्णता को पहुँचाऊँ । खेडा जिले में सिपाही भर्ती का काम करते करते, अपनी भूल से मैं मरण शय्या पर पड़ा । बिना दूध के जीने के लिए मैंने बहुत जोर मारा । जिन वैद्यों, डाक्टरों या रसायन शास्त्रियों को जानता था, उनकी मदद माँगी । किसीने भूँग का पानी, किसी ने महुए का तेल और किसीने बादाम का दूध बतलाया । इन सभी चीजों का प्रयोग करते हुए मैंने शरीर को संभाला तो मगर विस्तर से उठ खड़ा न हो सका ।

वैद्यों ने मुझे चरक इत्यादि से श्लोक सुनाये कि रोग को दूर करने के लिए खाद्याखाद्य की बाधा नहीं रहती और मांसादि भी खाये जा सकते हैं । ऐसा न था कि ये वैद्य मुझे दूध के त्याग में कायम रहने में मदद दे सकें । जहां 'वीफ टी' और 'ब्रांडी' को स्थान है, वहां पर दूध के त्याग में मदद मिले, कहां से ? गाय भैंस का दूध तो ले ही नहीं सकता । मुझे तो व्रत था । व्रत का मतलब तो दूध-मात्र को त्याग करने का था । परन्तु व्रत लेते समय मेरे सामने गाय और भैंस माताएँ ही थीं । इससे और जीने का आशा से मैंने ज्यों त्यों कर के मन को फुसला लिया । व्रत के अक्षर का पालन किया और बकरी का दूध लेना निश्चय किया । बकरी माता का दूध लेते समय भी मैंने जाना कि मेरे व्रत की आत्मा का हनन हुआ ।

पर मुझे यह मोह छोड़ना न था कि मुझे रौलट ऐक्ट के साथ लड़ना है । इससे जीने की भी इच्छा रही और जिसे मैं अपने जीवन का महान् प्रयोग मानता हूँ वह रहा ।

खाने पीने के साथ आत्मा का संबंध नहीं, वह न खाती है, न पीती है । जो पेट में जाय वह नहीं, बल्कि भीतर से जो वचन निकलते हैं वे हानि-लाभ करते हैं, वगैरह दलीलों मैं जानता हूँ । इसमें तथ्यांश है । पर दलीलों में उतरे बिना, मैं तो यहां अपना दृढ़ निश्चय ही रख देता हूँ कि जो आदमी ईश्वर से डर कर चलना चाहता है, जो ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है, वैसे साधक



और मनुष्य के लिए अपनी खुराक की पसंदगी-त्याग और स्वीकार-वैसी ही आवश्यक है जैसी विचार और वाचा की पसंदगी - त्याग और स्वीकार - आवश्यक है।

पर जिस बात में मैं खुद पड़ा हूँ, उसमें दूसरों की पड़ने की सलाह न दूँगा। इतना ही नहीं बल्कि रोकूँगा भी। इससे आरोग्य की की पुस्तक के आधार पर प्रयोग करनेवाले सभी भाई बहनों को मैं सावधान कर देना चाहता हूँ। उस पुस्तक के आधार पर वे दूध का त्याग न करें। यहां का मेरा अनुभव अब तक तो मुझे यही बतलाता है कि जिनका हाजमा संद हो गया होवे, और जिन्होंने विस्तर पकड़ लिया हो, उनके लिए दूध जैसा हल्का और पोषक आहार ही नहीं है। इसलिए, इस किताब में बतलायी दूध की मर्यादा पर हठ न रखने की उसके पाठकों से मेरी विनती और सलाह है।

इस प्रकरण के पाठक कोई वैद्य, डाक्टर या हकीम या दूसरे कोई अनुभवी दूध के एवज में उसी जैसी पोषक मगर पाचक वनस्पति — अपनी किताबों के नहीं बल्कि अनुभव के आधार पर — जो जानते हों तो मुझे जना कर मेरे ऊपर उपकार करें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## वर्ण-धर्म

(२)

यह तो सब कोई जानते हैं कि समाज के मानी हैं परस्परा वलेचन, व्यवस्था और कार्य-विभाग। पर इसके मानी यह तो कदापि नहीं कि गाड़ी के अड जाने पर एक आदमी का काम दूसरा कोई करे ही नहीं। एक बार एक पुलिस के सिपाही ने चोर का पीछा किया। चोर दौड़ कर कलेक्टर के अहाते में घुस गया। अहाते के फाटक पर सरकारी हुकम लगा हुआ था 'बिला इजाजत अन्दर आने की मुमानियत है'। चोर कानून को क्या जाने? वह तो बिला इजाजत ही अंदर घुस गया। परन्तु कानून का आधार-स्तंभ, कानून का पालन करने और कराने वाला पुलिस का सिपाही उसका भंग कैसे कर सकता था? वह तो यह सोच कर फाटक पर खड़ा हो गया कि अन्दर से कोई आवेगा तब उससे आज्ञा पा कर, चोर को खोजेंगे। धर्म-पालन में हम लोगों ने कई बार ऐसी ही पुलिस-निष्ठा दिखायी है।

प्रत्येक वर्ण के धर्म के दो विभाग होते हैं। एक विभाग तो उसका खास धर्म होता है। और दूसरा ऐसा होता है जो सब पर लागू किया जा सकता है। ब्राह्मणों के लिए पट् कर्म बताये गये हैं। अध्ययन अध्यापन; यजन याजन; दान और प्रतिग्रह। यदि आजकल की भाषा में कहना चाहें तो विद्या प्राप्त करना और विद्या-दान करना; समाजहित के काम करना और दूसरों से कराना अथवा उनकी तरफ के खुद करना। और समाज हितकारी वर्ग का पोषण करना या समाज सेवा की दीक्षा ले कर समाज से पोषण प्राप्त करना। स्मृतियों में ही लिखा है कि इन में से तीन—अध्ययन, यजन और दान—सभी संस्कारी लोगों के लिए हैं। अध्यापन याजन और प्रतिग्रह ये जहां तक आजीविका के साधन के बतौर हों, वहां तक सिर्फ ब्राह्मण ही इस पेशे को करें। इसमें कोई उनके साथ प्रतियोगिता न करे।

पर लोगों ने तो समझ लिया कि छहों कर्मों को करें तो ब्राह्मण ही करें, हमारा यह काम नहीं है। हां, दान करने का हक जरूर सबको था। किसीको संस्कारपतित करार दे कर उससे दान करने का हक कभी नहीं छीना गया था। कलियुग में दान का माहात्म्य बहुत ज्यादा है।

इसी प्रकार प्रत्येक के लिए धार्मिक तथा व्यावहारिक विद्या प्राप्त करना भी कृपापूर्वककर अनिवार्य कर दिया होता तो क्या ही अच्छा होता! परन्तु बेचारे समाज-व्यवस्थापक क्या करें? "लोग कहीं संस्कारहीन हो कर विद्या पढ़ने लग जावें तो वे उसका दुरुपयोग न करने लग जावें? इस से क्या यही अच्छा नहीं है कि वे पढ़े ही नहीं? विद्या तो हमारा अक्षय्य भंडार है। समाज भले ही न बचे। परन्तु विद्या की रक्षा तो करनी ही चाहिए।" इत्यादि विचार उनके दिल में पैदा हुए होंगे। पर यह तो हम देखते ही हैं कि विद्या की रक्षा कहां तक हो पायी है! विद्या हमें बचाए या हमें विद्या की रक्षा करनी चाहिए? यह ठीक है कि हम विद्या का अनर्थ न होने दें। पर क्या इस लिए हम विद्या का ही गला घोट दें? यदि असंस्कारी लोग गूढ़ शास्त्रों का अर्थ न समझते हों, तो शास्त्रों को उनके सामने सीधी सादी भाषा में रखिए न? शास्त्रों को पिनल कोड की दफाएँ न समझ कर शास्त्र वचनों के अन्दर जो सामाजिक और धार्मिक तत्त्वज्ञान है वह लोगों को समझाइए। समाज के प्रति नास्तिक वन कर धर्म के प्रति हमारी आस्तिकता कोई काम न देगी।

प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म जरूर है। पर क्या इस लिए यह हालत हो जानी चाहिए कि आदमी अपना वचाव भी न कर सके? दूसरे को संकट में देख कर उसे उसमें से छुड़ाने को अपना बलिदान देने के लिए भी तत्पर रहना तो मनुष्य मात्र का धर्म होना चाहिए। अवला पर कहीं अत्याचार हो रहा हो, तब क्या ब्राह्मण, बनियों को 'अरे कोई क्षत्रिय आओ' यों पुकार मचाकर कै रहना चाहिए? हम मान लेते हैं कि सारे गांव पर यो देश पर विदेशियों की फौज आक्रमण करे तो उस समय क्षत्रियों का कर्तव्य है कि वे देश को बचावें। परन्तु क्या इसलिए अपना, कानून का और अपने पड़ोसियों का रक्षण करने के कर्तव्य से भी आदमी मुक्त हो जाता है? क्या ऐसे समय उसे अपनी शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए? वर्णव्यवस्था ने क्षत्रिय को क्षात्रधर्म सौंप दिया। पर क्या इसलिए दूसरों के हिस्से का पुरुषता ही रह गयी? प्रत्येक मनुष्य को मौका पड़ने पर अपनी रक्षा स्वयं अपने पराक्रम से ही करनी चाहिए। यह मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है कि "स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः" यह वचन केवल सूर्यवंशी राजा के लिए ही कहा गया है। जिस अर्थ में "गुडे चायपलानम" क्षत्रियों के लिए लागू होता है, क्या उसी अर्थ में वह दूसरों पर लागू नहीं करना चाहिए?

संक्षेप में हमें कमसे कम यह धर्म तो समझ लेना चाहिए कि सारे समाज का विचार करते हुए प्रत्येक वर्ण वही काम करे। जो उसे सौंप दिया गया है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए हर कोई काम करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह नहीं मान लेना चाहिए कि ऐसा करनेवाले पर-धर्म में हस्तक्षेप करते हैं। मनुष्य अपने घर का पाखाना साफ करके स्नान कर ले। बस, उसके लिए अलहदा प्रायश्चित्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर आदमी अपनी डाढ़ी बना ले या अपने कपड़े या जूते खुद ही सीले तो क्या वह ब्राह्मण्य से गिर गया? अपने कपड़े यदि वह खुद धोले तो क्या वह ब्राह्मण से रजक (धोवी) बन गया। प्रत्येक मनुष्य को खेती का काम काज सीख लेना चाहिए। उसे कातना और बुनना आना जरूरी है। खाना प्रकाना तो आना ही चाहिए। गाय दुग्ध, अपने मकान के भीतर बाहर स्वच्छता रखना, मौका पड़ने पर अपना तथा अपने आसपास के लोगों का बचाव करना ये सब अवश्य आवश्यक बातें हैं जो प्रत्येक मनुष्य को जानना जरूरी हैं। मनुष्य



१९२७

पर या देश पर यदि वैश्य दरजी कर्म करने जाय तो उसे इन बातों का विचार करना चाहिए कि ग्राहकों को समय पर कपड़े किस तरह दिये जा रहे हैं, कपड़े की वचत कैसे की जा सकती है, शिलाई कम कर के अपने काम से बराबर आय किस तरह बनी रहे इत्यादि सोचना चाहिए और शूद्र को, जिसकी बुद्धि तेज नहीं है, अधिक से अधिक काम लगाने के साथ वह काम करना चाहिए जो उसे बता दिया गया है ? प्रवेद पराक्रम से ही कृता नहीं है कि कुरुवंशी राजा के चाव्यपलायन में वह दूसरों पर क्रेता चाहिए करे। जो उसे लिए हर कोई नहीं मान लेता है। मनुष्य ते हैं। उसकी निर

अवस्थापक, हिन्दी नवजीवन  
अहमदाबाद

[ श्रीयुत य. म. पारनेरकर की सेवाएँ अ. भा. गोसेवा परिषद में ली गयी हैं । अच्छी गायों की खोज में वे काठियावाड गये थे । वहां के अनुभव उन्होंने अभी लिख भेजे हैं । इस आशा में कि पिंजरापोलों को आदर्श दुग्धालय और पशुशालाएँ बनाने की उनकी सलाह अरण्य-रोदन न होगी, मैं उसका सारांश नीचे देता हूँ ।

मो० क० गांधी ।

“इस बारे में दो मत हो ही नहीं सकते कि केवल कसाई की छुरी से ही गाय को बचाने में गो सेवक का काम खत्म नहीं हो जाता। मगर उसे तो चालू अवनति को रोकना है और दूध की उत्पत्ति में उन्नति करना है। यह बात कही जा सकती है कि कसाई खाने जाने से गाय को बचाने का सबसे सही रास्ता है उसे इतनी कीमती बना देना कि कसाई खरीद ही न सके। यह तभी हो सकता है जब ग्वाले को या गोशाला को गाय से नफा होने लगे। औसत दर्जे की गाय की उत्पादिका शक्ति इतनी कम हो गयी है कि किसान व्यापारी के लिए यह काम हाथ में लेना बड़ा मुश्किल है। इसलिए इस मसले को तो धार्मिक या राष्ट्रिय आधार पर ही हल करना होगा।

“ यह काम मौजूदा पिंजरापोल कर ले सकते हैं । उन्हें पूंजी, मकान और सबसे बड़ी बात—लोकमत—है ही । जरूरत है सुप्रबन्ध और साहस की । जब कोई पिंजरापोल सौ दो सौ ढोरों को पाल सकता है तो वह जरूर कुछ और गायों को रख ले सकता है जो अपना खर्च चलाकर औरों के लिए भी कुछ रख छोड़ें । अगर गायों की ठीक ठीक देखभाल हो, उन्हें अच्छे सांडों से गभिन कराया जाय, और बछड़ों की ठीक सेवा होवे तो थोड़े ही दिनों में, ये ऐसे स्थान बन जाने चाहिए जहां से ग्वाला अपने सब से पहले गायों और सांडों का मूल दल ले सके, किसान अपने बैल खरीदे, सुन्दर पशु रखनेवाले अच्छे सांड से काम ले सकें, रोगी पशुओं की दवा हो सके, अजानकार अपने पशुओं की सही सेवा संभाल सीख सकें और सबसे बड़ी बात तो यह है कि गोद के बच्चे से लेकर, मरणशय्या पर पड़ा हुआ बूढ़ा मनुष्य तक, सभी सस्ते दामों पर शुद्ध दूध और उसके दूसरे पदार्थ पा सकें । ”

य. म. पारनेरकर



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदि ८ संवत् १९८४

## राजनीतिक संघ ?

विगत २५ जून के 'हिन्दू' में मैं देखता हूँ:

“मैं समझता हूँ कि मद्रास सरकार ने सरकारी नौकरों के चलन के नियम २३ (१) के अनुसार, सरकारी नौकरों को खादी कोष में, जो अखिल भारत चर्खा संघ की सहायता के लिए है, चंदा देने से मना किया है। इस मनाहट के कारण ये बतलाये जाते हैं— (१) अ० भा० चर्खा संघ की स्थापना अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के एक अंग के रूप में महासमिति की स्वीकृति से हुई थी, (२) और यह संघ महासभा के सदस्यों का चंदा लेने और रसीद देने को तैयार है, (३) और इस लिए इसे जरूर ही राजनीतिक संस्था मानना होगा।”

‘हिन्दू’ के विशेष सम्वाददाता का दिया हुआ सम्वाद अगर सच है तो, मद्रास सरकार की आज्ञा मेरी समझ में कुटिल या दुष्ट निर्णय का एक उदाहरण और उसके नौकरों की व्यक्तिगत आजादी में बहुत बुरा दखल मालूम पड़ती है। अगर इसका मतलब केवल खादी और अ. भा. चर्खा संघ पर चोट भर पहुँचाना हो तो मुझे तो इसमें कोई शक नहीं कि दोनों इस धक्के को बरदाश्त कर जायेंगे। और अगर यह चर्खा संघ को महासभा से सम्बन्ध तोड़ने का न्यौता है तो यह जान कर मुझे बड़ा खेद होगा कि चर्खा संघ ने ऐसा न्यौता खुद न्यौता है। संघ को महासभा का आवश्यक अंग होने का गौरव है और महासभा के झंडे तले काम करना वह अपने लिए तब तक फल और इज्जत की बात समझता रहेगा जब तक यह सम्मान्य राष्ट्रीय संस्था उस पर अपनी छत्रच्छाया रखना उचित समझेगी। मगर अगर सिर्फ महासभा के पितृत्व और छत्रच्छाया में ही रहने से कोई संस्था राजनीतिक हो जाय तो फिर इस नियम से बहुत बुरे नतीजे निकलेंगे जिन्हें कोई स्वाभिमानी सरकारी नौकर सहन नहीं कर सकेगा।

कई प्रान्तों में, दलित जातियों के लिए महासभा के अधीन, उसके धन से पाठशालाएँ चलती हैं। उनमें सरकारी नौकरों का भी प्रकट रूप से चंदा देना पाया जाता है। यह क्या उनकी भूल थी? और क्या दलितों के लिए पाठशालाएँ इसी लिए राजनीतिक संस्थाएँ हैं कि महासभा के धन से उन्हें महासभावादी चलाते हैं? प्रान्तीय महासमितियों ने अकालकोष इत्यादि खोले हैं और उनके लिए चन्दे साँगने पर सरकारी नौकरों ने भी दिये हैं। इससे क्या उन्होंने सरकारी नौकरों के लिए नियमों को तोड़ा है? ये अकाल समितियाँ महासभा का आवश्यक अंग थी और ये दलित पाठशालाएँ हैं। इसलिए क्या वे राजनीतिक संस्थाएँ हो गयीं? महासभा बतौर अपना और अपने काम का एक आवश्यक अंग के अस्पताल खोल सकती है। इसलिए क्या वे शफाखाने भी राजनीतिक संस्था हो जायेंगे? खाद, आज महासभा की सदस्यता का एक आवश्यक अंग हो गया है। इसलिए क्या खादी पहनना, सरकारी नौकरों के लिए जुर्म हो जायगा? यह क्या संभव नहीं कि महासभा के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, स्वास्थ्य-सम्बन्धी, समाजशास्त्र-सम्बन्धी, आदि भिन्न भिन्न विभाग हों और सभी उसके परमावश्यक अंग होते हुए भी हर

एक पूरा स्वतन्त्र और दूसरों से बेलगाव होवे? हर महासभा-वादी को इसका दुःख है कि, यद्यपि महासभा और दूसरी सभी राष्ट्रीय संस्थाओं से अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण है मगर उसके पास अभी धन और जन की इतनी शक्ति नहीं कि जातीय-जीवन के प्रत्येक विभाग का वह संगठन कर सके। मगर समय पाकर ज्यों ज्यों वह अपने पास योग्य मनुष्य और धन का आकर्षण कर सकेगी, वह निश्चय ही जातीय जीवन के प्रत्येक विभाग को हाथ लगावेगी। तब यह कहना हास्यास्पद होगा कि चूंकि इसके हर एक अ-राजनीतिक काम में राजनीति की छूत लग गयी है, इस लिए सरकारी नौकरों को उनसे दूर हो रहना चाहिए। और अगर सरकार ने वैसा फरमान निकालने की हिम्मत की तो फिर वही उसकी मौत का परवाना होगा। मुझे इस बात का दुःखद ज्ञान है कि उस ऊँचे पद से महासभा अभी कई मंजिल दूर है। मगर जब वह वहाँ पहुँच जायगी, तब सरकार को वही हजम कर लेगी और उसके प्रभाव पर क्रोध, विरोध, या हस्तक्षेप करनेवाला कोई रही न जायगा। यह मानने पर कि ‘हिन्दू’ के सम्वाददाता की सूचना सही है, यही बात कि सरकार अ० भा० चर्खा संघ के राजनीतिक संस्था होने के विषय में सूचना निकाल सकी है, बतलती है कि इस घड़ी महासभा की किसीकी पर्वा नहीं, लोकमत बेअसर है, और इस लिए सरकार चाहे जैसी अपमानजनक या उपहासास्पद सूचनाएँ निकाल सकती है। मैं तो केवल यही आशा कर सकता हूँ कि ऐसे दिलेर सरकारी नौकर मिलेंगे जो इस आसुरी आज्ञा का विरोध करें और अ० भा० चर्खा संघ की खुल्लम खुल्ला सहायता करें। सरकारी सूचना के होते हुए भी मैं तो कहूँगा कि यह अ-राजनीतिक संस्था है और महासभा की भी यही मंशा थी कि यह अ-राजनीतिक संस्था होवे और बनी रहे जैसा कि इसे स्थापित करनेवाले प्रस्ताव में बतलाया गया है। इस प्रस्ताव की भाषा निम्नलिखित है, जो चर्खा संघ के विधान का भी एक अंश है:—

“चूँके समय आ गया है कि हाथकताई और खादी की उन्नति के लिए एक विशेषज्ञ संस्था खोली जाय और अनुभव से पाया गया है कि यह उन्नति स्थायी संस्था के बिना नहीं हो सकती जिस पर राजनीति, राजनीतिक परिवर्तनों या राजनीतिक संस्थाओं का कोई असर न पड़े, इस लिए अ० भा० चर्खा संघ नाम की संस्था अ० भा० महासमिति की रजामंदी से महासभा का आवश्यक अंग के बतौर परन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व और अधिकारों के साथ खोली जाती है।”

दो बातें इस भूमिका में बहुत स्पष्ट हैं, यानी इसपर राजनीति, राजनीतिक परिवर्तनों, राजनीतिक संस्थाओं का कोई असर नहीं पड़ेगा, और इसके स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकार होंगे। ऐसे संघ को कैसे राजनीतिक संस्था कहा जाता है और वह सिर्फ इसी लिए कि यह महासभा का आवश्यक अंग है और किसी बंक के जैसा उसका सूत का चंदा जमा करने की इसने एजन्सी ली है, यह समझना बुद्धि के बाहर है। मगर सरकारों के काम प्रायः ही समझने लायक नहीं होते। यह इसके अधिक ईमानदारी का रास्ता होता अगर मद्रास सरकार ने अपने नौकरों को अ० भा० चर्खा संघ से कोई सम्बन्ध न रखने का इस सीधी और समझ में आने लायक बिना पर हुकम दिया होता कि उसे गांवों में चरखे का प्रचार और उससे खादी की वृद्धि तथा इससे होनेवाले फलों का होना मंजूर नहीं है।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी



१९२७

जुलाई, १९२७

गाँव के बल्लालपट्टी गाँव में सेनगोडन नाम का एक नवयुवक है। जब वह चतुर और परिश्रमी नवयुवक है। जब वह था, उसका पिता मर गया। अब उसे केवल एक और चौदह वर्ष का छोटा भाई बचे थे। वह भाई को पढ़ाई करवा रहा था।

वज्रालापट्टी गांव में सेनगोडन नाम का एक  
नवयुवक है। जब वह  
चतुर और परिश्रमी  
था, उसका पिता मर गया। अब उसे केवल एक  
और चौदह वर्ष का छोटा भाई वचे थे। वह भाई  
पढ़ाई करता था।

तब तो इस साल तुझे विवाह कर ही लेना चाहिए, बेटा।  
 नलेगा? मैं तो बूढ़ी हुई। तेरा बाप कर्ज छोड़ कर  
 भगवान की दया से वह पट गया। अब कोई बोझ  
 तेरे मामा की बेटी कालिअक्का तेरे लिए ठीक लड़की है।  
 और लंबी है। तू अकेले क्यों मिहनत करेगा?  
 चढा तो देख लूँ। कोई तुझे खेत में खाना  
 जाल को भी तो देखने को चाहिए न? तब  
 सङ्गी।’

मेनोपॉज अपनी बूढ़ी मा की ये बातें दो साल से सुनता आ  
का। मगर इस समय वह गठिया से पड़ा हुई थी। ऐसे वक्त में  
इसमें एक और सहायक का मिलना उसे बहुत भला जैसा।  
वह अपने मामा की लडकी कालिका से विवाह कर लेने  
वादी हो गया।

हो फूली न समायी। उसका दर्द हवा हो गया। वह उठ  
 के अपने भाई के पास यह खुशखबरी ले कर पहुँचा।

\* \* \*

जरी हो गयी। इस साल सेनगोडन के खेत में सोना फला।  
सब खर्च सहज ही चाल गया। एक पैसा कर्ज न  
पड़ा। नेवते में कोई एक सौ रुपया तक आ गया था।  
न हो पाया था। सेनगोडन ने मा से सलाह की, 'यह रुपया  
पका कर उड़ा देने में क्या फायदा है? आखिर एक  
को भी ही इसे भी तो लौटाना ही है।' पचास रुपये बचा  
उसने अपना कुंआं दुरुस्त कराया।

बूढ़ी सास का गठिया बढ़ा तो मगर अब वह बड़बड़ाती न थी।  
बूढ़ी बच्ची और मिहनती लडकी थी। मुँह पर हँसी बराबर  
रहती थी। वह घर का सब काम करती। खेत पर  
जहाँ काम करती और बूढ़ी सास को दिन भर चर्खा चलाने  
देती।

\* \* \*  
 जलदार दो साल पानी न पड़ा। सभी के सभी सीलोन  
 खजंदरी करने की तैयारी कर रहे थे। कुली एजेन्टों की  
 भी तो थीं। मगर शीतला माता का प्रकोप हुआ। विदेश  
 की सारी बातें रुक गयीं। जवार पथार का भी आना जाना  
 रुक गया। शंख की देवी ने पुजारी को समाधि में कह दिया कि  
 मैं न होई आय न जाय। एक पखवारे में ही छह मांओं की  
 मूर्ति हो गयी।

दन्वाला आया और अपनी दवाएँ और छुरी वगैरह ले कर  
गांववाले उसे अपने लडकों के पास फटकने भी नहीं  
देवों कुपित थीं और टीका लेने पर लडके की जान  
आती। इसमें चौकीदार की जान अजाब में पड़ी  
को ले कर अछूत टोंलें में पहुँचा। लाख भागने  
लडकार करने पर भी, एक ही छुरी से पचास लडके लडकिय  
दे ही दिया गया। टीकावाला सोचता था कि बार बार  
को भाग पर कौन गर्म करे। तब तो छुरी के खराब हो

देर लगेगी नहीं और नयी छुरी मांगने पर दफ्तरवाले जान खायेंगे। फिर स्पिरिट और लोशन की जरूरत ही क्या थी? हिन्दुस्तानियों की देह सभी प्रकार की छूतों को सह सकती है। सुतरां, बिना किसी प्रकार की सफाई के उस एक ही छुरी से सब को टीका दिया गया।

टोका से मानों देवी और भी कुपित हुईं और लोग और भी मरे । पंचम टोले में भी बीमारी फैली ।

\* \* \*

गरीब के घर में रोग आपने देखा है — गरीब भी उनकी कल्पना का नहीं जिन्होंने अपनी जरूरियातें बड़ा ली हैं और वे जरूरी चीजों के न मिलने पर वैचैन हो उठते हैं, बल्कि वे गरीब जो पेट भर अन्न नहीं पाते और जीवन के लिए बिलकुल जरूरी चीजें खरादने का भी पैसा नहीं पाते ? उसके घर में रोग सचमुच ही असहनीय विपत्ति है । रोग आने पर, रोगी और घरवालों, सब के लिए, मौत भी एक तरह का आराम ही है । धनी के घर में, स्नेही सेवकों का मजमा, सुन्दर शृश्रूषा और चिकित्सा तो रोग को भी सुन्दर रूप दे देते हैं । गरीब के घर में बीमारी का दूसरा ही असर पड़ता है । डाक्टर का फीस का तो वे खयाल ही नहीं कर सकते । अस्पताल तक भी ले जाने के लिए सवारी की बात सोचना भी उनके लिए दुश्वार है । अगर रोगी बाजरे की रोटी या जौ का सत्तू नहीं पचा सकता तो उसके लिए दूध या चावल भी खरीदने का पैसा नहीं । उपवास और शीतला माता के सिवा और कोई उसका हाल पुरसां नहीं ।

वेचारे सेनगोडन की भी कड़ी जांच हुई। उसके भाई पर माता माई की कृपा हुई। उस लड़के की सेवा करते हुए उसकी पत्नी कालिअम्मा भी बीमार पड़ी। बूढ़ी मा का गठिया भी बढ़ चला। बड़े भाग्य से, बड़ी मनौतियां मानने पर लड़का तो बच गया पर वेचारी कालिअम्मा की आखें जाती रहीं। रोग छूटने और देह जुटने पर वह आखें मलतीं, मगर रौशनी तो उनमें जाती थी। जब उस वेचारी ने इसका सच्चा अर्थ समझा तो रो रो कर दिन बिताया। मगर आंसुओं के निकलने से रौशनी जाने का कु रास्ता तो बन नहीं गया।

सेठ लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम के साथ मैं गांव गांव घूमा।  
श्रीयुत शंकरलाल वैकर के साथ, इस प्रदेश का काम देखने आये थे।  
हाथ पीजन ले कर, कातने वालों के घर घर जा कर देख आये थे।  
उन्हें बहुत रुचता था। उनको लक्ष्मीदास भाई अच्छा धुन  
कातने को आनंद-दायक बनाना और कपास में से अधिक से अधिक  
लाभ लेना सिखलाते थे। जहां वे जाते कातनेवालियां उन्हें घेर लेतीं।  
उन के धनुष का टंकार ही घरों में से कातनेवालों को बुला लेता था।  
और जब तक वे उनका काम देखतीं, घर के धंधे पड़े रहते।

दो चार घर देखने बाद हम बल्लालपट्टी पहुँचे। एक पल के बाहर, पुआल पर बैठी हुई कोई लडकी कात रही थी।

‘चलो, उसका काम देखें।’ लक्ष्मीदासजी ने कहा।  
‘ठीक, यह तो लडका ही है। बूढ़े लोगों से इसके काम मिलान करें।’ मैंने जवाब दिया।

पास जाते हुए मैंने देखा कि मानों इसे हमारे पास पहुँचने  
पर्वा ही नहीं है। मैं ताज्जुब में आया क्योंकि ये चिरप्र  
किसान औरतें कभी ऐसा व्यवहार नहीं करतीं। मैंने जब उ  
चेहरे पर गौर से नजर डाली तो मुझे उसकी आँखों में  
गडबड सा मालूम हुआ। तौ भी वह कातती ही थी। इस  
मैंने पछा।



“तेरी आँखों में क्या हुआ है बहिन ?”

वह कातती ही रही। जवाब कुछ नहीं दिया। दूसरी ओर से एक बूढ़े ने जो थोड़ा सा सूत लपेटन पर उतार रहा था, कहा,

“माता माई उस की आँखें ले गयीं।”

“कितने दिन हुए ?”

दरवाजे के पास खड़ी एक औरत ने कहा, “दो साल हुए, उसे गोटी की निकसारी हुई थी और आँखें जाती रहीं। अब हमें उसको खिलाना पड़ता है। उसके पति ने उसे निकाल दिया है। वह दिन भर चर्खा ले कर कातती ही रहती है और हफ्ते में आठ आने कमाती है। घर के लिए जरूरी नमक मसाला हम उसी पैसे से मँगाते हैं। उस पर भगवान् की ऐसी ही मर्जी है। हम क्या कर सकते हैं ?”

लक्ष्मीदासजी का दिल भर आया। उन्होंने पूछा, “उसकी रूई कौन धुन देता है ?”

उसी औरत ने कहा, “उसकी और अपनी रूई मैं धुन लेती हूँ। बूढ़ा सूत उतार देता है। हम लोग सब कुछ तैयार कर के उसके सामने भर टोकरी पूनियाँ और चर्खा रख देते हैं। तब वह कातती है। बेचारी और करेगी ही क्या ?”

मैंने पूछा, “तुम उसकी मां हो।”

सांस खींच कर उसने कहा, “हां, वह मेरी ही बेटी है।”

उसके पति पर मुझे बड़ा क्रोध आया। उस राक्षस के विषय में मैंने पूछा, “क्या इसका पति इसी गांव में रहता है ?”

“हां, वह यहीं है। वह बूढ़े की बहिन का लडका है। मगर वह बेचारा भी क्या करे ? वह मेरी लडकी को कैसे रख कर खिला पहना सकता है, जब वह उसका कुछ काम नहीं कर सकती ? फिर उसे भी भगवान् ने कुछ धनी तो किया नहीं और यह दो चार दिनों की तो बात नहीं, इसे तो जन्म भर सँभालना पड़ेगा।”

मैंने लक्ष्मीदास जी से कहा, “ये गरीब लोग, भले विचार रख नहीं सकते। जब काम न कर सकें तो किसी औरत या बेल को ये नहीं खिला सकते। इसके लिए हम उनसे झगड़ भी क्यों कर सकते हैं ? वे गरीब ही इतने हैं।”

“सच है।” लक्ष्मीदासजी ने कहा, “मगर यह तो देखने लायक है। इस गांव में क्या और अंधी कातनेवालियाँ हैं ?”

वे सब दूसरी अंधी कातनेवालियों की बातें करने लगीं।

लक्ष्मीदासजी ने अंधी लडकी से पूछा, “क्यों बहिन, कातने में तेरा मन लगता है ?”

उस ने जवाब दिया, “मन लगना ? हां मन लगता है। नहीं तो दिन क्यों कट सकता ? अगर कातना न होता तो जगने के बाद सोने तक मैं क्या करती ? और फिर कुछ क्रिये बिना, मैं मा और बाबू से कुछ खाने को कैसे मांग सकती थी ?”

“हम लोग दुखिया आदमी हैं, स्वामी। रोज एक आना भी हमारे लिए बहुत है। बेचारी लडकी कातती है और अपना खाना आप कमा लेती है। इस के बिना तो बड़ी मुश्किल होती। उसके पति ने उसे निकाल दिया था। अब चर्खा ही उस का पति और रक्षक है।”

“यह तो ऐसा अनुभव है जो भूला नहीं जा सकता। इस से चखें में मेरा विश्वास सौ गुणा बढ़ता है।” लक्ष्मीदासजी ने कहा।

[पाठक, अब आप इसे निरी कल्पना ही न मानिए। अगर आप खादी क्षेत्रों में जाइएगा तो इसी या इस जैसी और लडकियों को पाइएगा। लाखों, करोड़ों के लिए हमारे गरीब देश में केवल एक चर्खा ही बेकारी का बीमा, बुढ़ापे का पेंशन या बीमारी या आकस्मिक घटनाओं का बीमा हो सकता है। हम लोग दूसरा कुछ

नहीं बना सकते। यह अनुभूति कैसी सुन्दर है कि जब हम अपने लिए दो गज कपड़ा लेते हैं तो उसी साथ गरीब, दुखियारे, दुखियों की भी लाज ढँकने, पेट भरने में अपनी ओर से थोड़ी मदद करते हैं। खादी सुन्दर वस्तु है। कपड़ा तो मोटा होता है, मगर पारस्परिक साहाय्य की ताना बाना सुन्दर होता है।]

( यं. इं. )

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

## साप्ताहिक पत्र

एक मित्र लिखते हैं: “यंग इन्डिया” और “नवजीवन” आपके लेख पढ़ते समय तो आप से रोग कोसों दूर मालूम पड़ता है। सच है क्योंकि यों मालूम पड़ता है कि गांधीजी के रोग पर रोग चाहे जितने प्रहार करे, मगर उनके मन पर सहज प्रहार नहीं कर सकता। बाकी अशक्ति तो उनमें इतनी है कि उनके साथ रातदिन रहनेवाले साफ देख सकते हैं। इसका मुझे ठीक ठीक पता है। इसीसे इस सप्ताह में प्रदर्शन, चर्खा-संघ की बैठक मिलनेवालों की भीड़ का खयाल कर मन घबरा उठता है। १५ के बाद मुसाफिरी की जो उमेद रखी है, वह कहां तक बर आएगी इसका भी प्रदर्शन के इन दिनों में ठीक ठीक पता चल जाय अब पहनेंगे

इस हफ्ते में बहिनें खूब मिलीं। गांधीजी तो सबसे एक बात पूछते, ‘खादी कब पहनोगी ?’ बेचारी हँस कर जवाब देती, ‘अब पहनूंगी।’ मगर यह ‘अब’ कब पूरा होगा ? एक और कई कर्णाटकी और तामिल बहिनें आयी थीं। कर्णाटकी तो दो ही थीं और तामिल कितनी एक थीं। कर्णाटकी बहिनें एक और बेटी और तामिल बहिनें खड़ी रहीं। कर्णाटकी बहिनों में एक बूढ़ा थी जो दूसरी सोलह साल की लडकी। प्रौढ़ा बहिन ने कहा, ‘मेरे पिछले हफ्ते अपनी नोट बुक दे गये थे। वह उनका मांगी है।’ राजगोपालाचारी जी ने परिचय कराया कि यह वही बहिन हैं, जिनके पति ने स्वयं आजीवन सूत कातने और एक हजार कातने वालों की सेना इकट्ठी करने की प्रतिज्ञा की है। वे इस लिए नोट बुक दे गये थे कि गांधा जी अपने शब्दों में उनकी प्रतिज्ञा का हिन्दी अनुवाद आप लिख कर, इस संस्था को आशीर्वाद करें। इस बहिन से कहने का तो गांधी जी को अवसर मिला। जिन पर कातने का इतना रंग चढ़ा हो, उनकी पत्नी खादी बिना क्यों होवे ! गांधी जी ने तो नोटिफिकेशन दी, ‘जब तक तुम खादी पहिन कर नहीं आती, नोट बुक मिलने की नहीं।’ ‘अब खादी पहिन कर ही नोटबुक लेंगी।’ यों कह कर यह बहिन शान्ति से बैठी। अब दूसरी लडकी से पूछा, ‘क्यों, तुम्हारा क्या विचार है ? खादी तो पहनोगी न ?’ ‘अब पहनूंगी।’ पीछे तामिल बहिनों से वही बातें हुईं। उन्होंने भी कहा, ‘अब हम पहनेंगी।’ ‘पर अब कब ? कर्णाटकी बहिनों को हराना है या उनसे हार खानी है ?’ इस पर कर्णाटकी बहिन बोल उठी, ‘हम हरावेंगी।’ तामिलों ने भी बात दुहरायी, ‘हम हरावेंगी।’ तब गांधी जी ने बिनोद किया, ‘ठीक, तब मैं कहूँगा कि तामिल और कर्णाटक, दोनों प्रान्त बहिनें जीतीं। बहिनें तो अच्छी हैं। सिर्फ मर्द ही भौंटे हैं।’

इस पर तामिल बहिनें बोल उठीं, ‘ना, ना, मर्द कुछ भी नहीं हैं। वे तो खूब खादी पहनते हैं। हमी नहीं पहनतीं।’ गांधीजी ने फिर कहा, ‘ठीक है। स्त्रियों और पुरुषों, दोनों को ही मैं धन्यवाद दूँगा। देखना है तुम मेरे सामने खादी पहन कर कब आती हो। नीचे ही खादी की दुकान है। बाहो तो अभी खादी खरीद ले सकती हो और मैं तुम्हें कपड़ा बदलने को कोहरा



आई, १९२७

जब हम जने दुखियारे, दिकि थोड़ी मदद का होता है, मर

राजगोपालाचारी

र 'नवजीवन' दूर माध्यम पर गांधीजी के श्रम पर सहज इतनी है कि उनका मुझे ठीक ठीक पथ की बैठक उठता है। १५ वहाँ तक वर आने ता 'चल जायगा'

तो सबसे एक स कर जवाब देना होगा? एक एककी तो दो ही एक और वेगों का एक बड़ा धीरे कहा, 'मेरे'। वह ऊपर वय कराया सत कातने की प्रतिष्ठा ली है अपने शब्दों पर, इस संस्था गांधी जी को चढा हो, मने तो नोटि

ने, नोट बुक नोटबुक लेगी लडकी से नेगी न? 'उन्हें तें हुई। उन्होंने कब? कर्णाटकी

'इस पर का प्रकल कहंगा। क्या इसकी भी कुछ खबर है?' गांधीजी ने धिनोद कि नहीं चलती। यह बदल कर नयी शुरू होवे तो सोने का

नया विषय शुरू हुआ। 'शिक्षकों को कैसा होना चाहिए?' शिक्षकों को भला, मजबूत, पवित्र और निर्भय बनना चाहिए। शिक्षक विलकुल अपना लेवें। आज तो शिक्षक और

का पया कि आज यह शक्य ही नहीं है।' गांधीजी ने कहा, 'पिछले चार गुण पैदा

करें तो सभी कुछ आ जायगा। बालकों को लगाना चाहिए कि

शिक्षकों की एक टोली नीचे बहने गयीं और वे आये।

सन्देश के भुखे

शिक्षक यहाँ के सब से बड़े विद्यालय के थे। पूरे २२ जने

वै। इस शाला में बारह सौ लडके हैं। शिक्षक भी कोई के हैं। उनमें से किसी वाचाल भाई ने कहा, 'आपने

सहैव से ठीक ही वचन लिया है। अब कोई शिक्षक या नौकर खादी पहनने में सरकार के डर का बहाना नहीं कर

एक नखशिख खादी-धारी बोला, 'अरे बहानों का भी टोटा है। जिन्हें पहनना नहीं है, वे अपने मगज में से कोई

दूसरा बहाना निकाल ही लेंगे।' गांधीजी ने कहा, 'खैर, आप की पाठशाला में

और चर्खे का कैसा वातावरण है?' 'ठीक, ठीक' अब कुछ कुछ काम होना शुरू हुआ है। हम चाहते हैं कि हम कैसे काम करें'

तने में तो एक दूसरा शिक्षक बोल उठा, 'क्या आप मानते हैं चर्खे से आजीविका मिल सकती है?'

उस खादीधारी की बात यहीं सिद्ध होती दिखलायी दी। गांधीजीने कहा, 'यह तो आप पुरानी बात उठाते हैं। इस

के तो बाल की खाल निकाली जा चुकी है। खैर, जितनी चला जाय, मुझे तो जवाब देना ही रहा।'

जवाब 'हिन्दी नवजीवन' के पाठकों के लिए नया नहीं है। अब दे कर शिक्षकों को चर्खा-प्रचार करने का ढंग गांधी जी

कतब्या, 'तकली चलाना सीखो और लडको को सिखलावो। शाला शुरू होने के पहले कितनी जगह प्रार्थना होती है। वैसे

तकली को रख सकते हो। मतलब यह है कि प्रार्थना करने के दिन मन निर्मल और विनम्र रहता है। आप विद्यार्थियों में

कर जरिये यह ख्याल पैदा कर सकते हो कि विद्या गरीब की लिए होती है। सिध की एक पाठशाला में पहले परेड है, तब और काम शुरू होते हैं। उसी प्रकार परेड की जगह तकली रख सकते हो।'

आप क्या कौलेज के विद्यार्थियों के लिए भी यही सलाह देंगे?' 'हां, जरूर। कौलेज के ही विद्यार्थियों को क्या, मैं तो

भी को आधा घन्टा कातने को कह रहा हूं। मैं वायसराय होऊं एक सरकारी नौकर के लिए नियम कर दूं कि आधा घन्टा

किना, टेबुल पर लिखने ही नहीं बैठना।' सभी हँस पडे। 'हो तो बादमी बोल उठे, 'वह दिन कब आवेगा, जब आप

करेंगे वने।' 'अरे देख लेना; वायसराय हुआ तो तुम्हीं गाली काँटि वायसराय होने पर मैं अपने कितने विचित्र खयाल दाखिल

करूंगा। क्या इसकी भी कुछ खबर है?' गांधीजी ने कहा, 'इस पर वह खादीधारी बोला, 'आज ही कुछ कम

नहीं चलती। यह बदल कर नयी शुरू होवे तो सोने का

नया विषय शुरू हुआ। 'शिक्षकों को कैसा होना चाहिए?' शिक्षकों को भला, मजबूत, पवित्र और निर्भय बनना चाहिए। शिक्षक विलकुल अपना लेवें। आज तो शिक्षक और

का पया कि आज यह शक्य ही नहीं है।' गांधीजी ने कहा, 'पिछले चार गुण पैदा

करें तो सभी कुछ आ जायगा। बालकों को लगाना चाहिए कि

शिक्षकों के साथ हमारा मावाप का संबंध है। इतना कर सको तो काम पूरा हुआ।'

पर शिक्षक क्या इतने ही पर छोड़नेवाले थे थोड़े। उन्हें तो संदेश चाहिए था।

जीता जागता संदेश

संदेश भी आ पहुँचा। कर्णाटकी बहिनें श्रीकृष्णम्मा और कांतिबाई घडी भर में सचमुच अपनी सारी पोशाक बदल कर आ खडी हुई और बोलीं, 'हमने तामिल बहिनों को हराया है।' गांधीजी चकित हो रहे। इन बहिनों ने नीचे जा कर साडी चोली वगैरह ली और अपने कपडे बदल कर आ धमकीं। शिक्षकों को गांधीजी ने कहा, 'क्या संदेश चाहिए? यह लो जीता जागता संदेश। अपने विद्यार्थियों से यह बात कहना। उन्हें इन बहिनों का अनुकरण करने को कहना। जब आप सब कोई खादी पहन लो तब मुझे बुलाना। मैंने तो कुछ सोचा भी न था। मगर आपको यह अच्छा पदार्थपाठ अनायास ही मिल गया। अब तो संदेश मिल गया न? तब जाओ।'

शिक्षकों को ठीक पदार्थ-पाठ मिला। उन्होंने इजाजत मांगी। अब कृष्णम्मा से गांधीजी ने कहा, 'तुमने तो गंजब किया। अब तो मुझे तुम्हारे पति के लिए अभी तुम्हारे सामने ही उल्था लिख कर देना पड़ेगा।' खाना अलग रख कर भाषान्तर लिखा। अपने हाथ से किताब में लिख कर पत्र लिखा, 'आपकी पत्नी की दृढता और तत्परता ने मुझे मजबूर किया है। उसके सामने हा हिन्दी भाषान्तर कर के किताब लौटाता हूं। ईश्वर उसे अपने निश्चय के पालन का बल देवें।' श्रीकृष्णम्मा बोलीं, 'बहुत अनुग्रह हुआ। आप के सम्मुख सङ्कल्प करती हूं कि आज से खादी के सिवाय और कुछ नहीं पहनूंगी।' अब कांतिबाई की वारी आयी। वह तो खुशी से फूली न समाती थी। गांधीजी ने कहा, 'तुझे तो दत्तक पुत्री कर लेने का जी चाहता है। तूने भारी हिम्मत दिखलायी है। अब तो अपनी शाला में जाकर खादी का प्रचार करेगी न?'

वह दृढता से बोली, 'हां जरूर करूंगी।' 'अच्छा, बहिनों, फिर आना।' इन्हें क्यों न फिर आने को कहें? ये तो उस दिन गांधी जी को नयी चेतना दे कर गयी थीं।

दुग्धालय में

दुग्धालय में तो कितनी बार गये। ढोरों की जाति, उनका चारा, उसका परिमाण वगैरह देखे। इस विषय के एक जानकार सब समझाते जाते थे: इतने गोरुओं पर हमारा प्रयोग चलता है, इसके पेट में इतना चारा, इतनी खली, इतना पानी जाता है और इसके इतना दूध इतना मूत्र और इतना गोबर होता है; इस हिसाब से हम जान जान जाते हैं कि यह जानवर कितनी खराक पचा सकता है और कितना बेपचा बाहर निकलता है, वगैरह। ये सब बातें जानने लायक थीं। गांधी जी ने अनेक सवाल पूछ कर बहुत जानकारी हासिल की। दुग्धालय का बड़ा अफसर एक स्कौच, बड़े उल्लास से सब बातें बतलाता था। इसकी बातों में बहुत ज्ञान भरा था। उसने कहा, 'मेरी सारी जिन्दगी गोरुओं में ही बीती है। मेरे बाप भी किसान थे। बीस वर्ष तक तो वे दुग्धालय की डिग्री लेनेवाले विद्यार्थियों के परीक्षक रहे। मेरी मा भी चतुर ग्वालिन थी।' उसने अपना परिचय यों दिया, 'इतना तो मैं असिमान से कह सकता हूं कि गायों पर मेरा बेहद प्रेम है। गो मांस तो मैंने शायद ही खाया हो।' गांधी जी को 'साइलो' दिखाने ले गया। 'साइलो' एक तरह का गड्ढा होता है। उस में कुछ चमत्कार नहीं है। सादी चीज है। उसके बारे में उसने बतलाया, 'जमीन में गड्ढा खोद कर उस में



हरी घास भरो और उसे खूब दबा दबा कर बन्द करो। यहां तक दबाओ कि उस में हवा न जाय। तब जानवरों के लिए दो दो वर्ष तक स्वादिष्ट और पोषक चारा रख सकते हो। लोग ऐसी सहज बात भी नहीं समझते। अकाल में इस जैसी मददगार और कोई चीज नहीं होती। चारे के प्रश्न का हल तो इसी से होगा। अपने जानवर दिखलाये। सभी पशुओं का इतिहास कहता जाता और अपना विवेचन तो चलता ही था। 'अपने यहां के लोग जानवरों को खिलाना नहीं जानते। हम लोग तो चारा और बिनौले भी परदेश भेज देते हैं। पशुओं की खुराक तो बाहर जानी ही नहीं चाहिए।' वे यह भी कह सकते थे कि पशु भी नहीं जाने चाहिए। गाय और बछड़े दिखलाये। अन्त में अपनी प्यारी गाय के साथ गांधी जी और मालवीय जी का चित्र केने की खाहिश जनायी। इस गाय का नाम स्मिथ साहेब ने 'जिल' रक्खा है। स्मिथ साहेब की आंखों के सामने वह पैदा हुई और तब से उन्होंने उसके १६ बछड़े देखे। १८, २० वर्ष से हर साल औसतन दस हजार सेर (४० तोले का सेर) दूध देती चली आ रही है। 'यह गाय तो हम सब की प्यारी है। इसे कोई सता नहीं सफता। सताने की जरूरत भी नहीं पड़ती। देखिए तो इसकी आंख में कितनी माया भरी है। बालक भी इसका आंचल पकड़े, उसके ऊपर बैठ जाय तो भी सिर नहीं हिलाती। हमारे यहां डोरों को अनेक रोग हुए मगर हमारी 'जिल' एक दिन को बीमार भी नहीं पड़ी।' इस गर्वी गाय माता के पास गांधी जी और मालवीय जी दोनों खड़े हुए और फोटो लिया गया।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाइ देसाई

## टिप्पणियां

## काशी विद्यापीठ

[यं. ई. के पाठक जानते हैं कि काशी विद्यापीठ उन इनी गिनी राष्ट्रीय संस्थाओं में से है जो अभी जीवित हैं। काशी विद्यापीठ के पीठस्थविर की भेजी, नीचे की विज्ञप्ति में सहर्ष छापता हूँ।

मो० क० गांधो]

गर्मी की छुट्टियों के बाद, आगामी १ श्रावण १९८४ (१७ जुलाई १९२७) को काशी विद्यापीठ खुलेगा। विद्यालय विभाग में चार साल का पाठ्यक्रम है। पहले दो वर्षों में हिन्दी, संस्कृत, दर्शन, विज्ञान, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और अँगरेजी का सामान्य ज्ञान कराया जायगा। बाकी दो वर्षों में, विद्यार्थी को निम्नलिखित किसी एक समूह का विशिष्ट अध्ययन करना होगा:

१. इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र; २. दर्शन; ३. प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास और संस्कृति। सभी शिक्षा हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के द्वारा दी जायगी।

विद्यापीठ की विशारद या प्रवेशिका परीक्षा या किसी शिक्षा-संस्था की मैट्रिक या उसके समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी भर्ती किया जा सकेगा।

सभी विद्यार्थियों के लिए विद्यापीठ में ही रहने का प्रबन्ध रहेगा। प्रार्थना, कातना, व्यायाम और सहभोज में सभी विद्यार्थियों को शामिल होना होगा।

रहने या पठने का कोई शुल्क नहीं लगेगा। इसके अलावा ५० निर्धन, सुचरित्र और योग्य विद्यार्थियों को अधिक से अधिक दस रुपये तक की मासिक छात्रवृत्ति भी मिल सकती है। मगर किसी विद्यार्थी का खर्च १५) रुपये से कम नहीं पड़ सकता। छात्रवृत्तियों के लिए सभी आवेदनपत्र १ श्रावण (१७ जुलाई) के पहले आचार्य के पास

पहुँच जाने चाहिए। दरखास्तों में विद्यार्थी की योग्यता और बर्तन का पूरा खुलासा होना चाहिए। पाठ्यक्रम इत्यादि और छात्रों के लिए पीठस्थविर, काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी के पत्र लिखना चाहिए।

## निष्कलंक मजदूरी

वीरमगम, लखतर इत्यादि प्रदेशों में कपास पैदा होती है यद्यपि वहां यंत्रों ने घर कर लिया है मगर अभी मानव-यंत्र विना काम नहीं चल सका है, इस लिए कपास चुनने इत्यादि क्रिया स्त्री पुरुषों द्वारा ही की जाती है। कपास चुनना एक काम नहीं है। यह काम कई आदमियों को ही करना चाहिए इस लिए किसी दिन यंत्र-युग का बल बढ़ेगा तो उसके लिए यहां यंत्र दाखिल होगा ही। पर हाल में तो सौभाग्य से दुर्भाग्य से— जो जिसकी प्रकृति के अनुकूल हो मान ले— कपास लोडने की क्रिया स्त्री पुरुष ही करते हैं, इस लिए मैंने यह करने वाले एक भाई से कई प्रश्न पुछवाये थे। उनके उत्तर वे भाई लिखते हैं "इस प्रदेश में कपास लोडने का सार्वजनिक और निष्कलंक गिना जाता है, उसी प्रकार तन्दुल सुधारनेवाला और समय का सदुपयोग करने वाला माना जाता है इस कारण श्रीमन्त और वैसे ही गरीब घर के लड़के, औरतें कभी कभी पुरुष भी कपास लोडते हैं। एक आदमी रोज एक डेढ मन तक कपास चुन सकता है और ४० सेर के मन का आने के हिसाब से मजदूरी मिलती है मगर कभी कभी छह आठ आने तक भाव चढ़ जाता है। मिहनताना का जो पैसा आता वह स्त्रियों को खानगी मिलकियत गिना जाता है और कई घरों में वह निर्वाह का आधार भी होता है। कितने तो आधे सारा गुजरान इसी में कमा लेते हैं और यों कहा जा सकता है कि धंधे में सारा कुटुम्ब हाथ बँटाता है।" ५०-६० वर्ष के अगर मेरे जैसा किसीने रई की कताई के सम्बन्ध ऐसा प्रश्न पूछा होता तो उसे अक्षरशः ऐसा ही जवाब मिला होता क्योंकि उस वक्त चर्खा गरीबी की नहीं किन्तु खानदानी की निशानी था और जिस प्रकार धनी लोग भी धर्म समझ कर कपास तोते हैं और उसका पैसा लेने में भी सङ्कोच नहीं करने, उसी प्रकार श्रीमन्त भी धर्म समझ कर कातते थे। और जहां तक श्रीमन्तों यह धंधा छोड़ा न था, वहां तक गरीब सुरक्षित थे और कलकत्ता के धंधे का नाश नहीं हुआ था। ऐसे सार्वजनिक धंधे जहाँ तक हैं, वहीं तक धर्म भी हैं। उनमें जब तक श्रीमन्त लगे रहें तभी तक वे चलते हैं क्योंकि करोडपति बनने का प्रसंग उनमें आ सकता, सट्टे का प्रसंग नहीं आ सकता। लोक समत कल्याण देखें, तभी वे धंधे चल सकते हैं। परमार्थ की ओर से हट जाय तो सभी करोडपति बनने के लिए नैवेन हो जायेंगे। इस प्रकार के धंधे हूँदें जिनसे करोडपति होना संभव होवे। पापी, और अधोगति करनेवाले प्रलोभन में जिसमें मनुष्य न भ्रष्ट हो, इसी लिए वर्णाश्रम धर्म की खोज हुई और उसे हिन्दू धर्म ने अपना इस धर्म का तो आज नाम मात्र ही रह गया है। इस का स्वरूप जाना जाता रहा। जहां देखिए वहां इस का कुरूप ही नजर आता है धंधे के लिए जिस धर्म की खोज हुई थी, वह अब रौटी व्यापार और बेटी व्यवहार में परिमित हो गया है। किसे और क्यों समझाया जाय कि चर्खे के पुनरुद्धार में वर्णाश्रम का, शुद्ध धर्म का और विवेक की मर्यादा का उल्लंघन न होवे तो कहें कि— यमों का पुनरुद्धार है ?

(नवजीवन)

मो० क० गांधो



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४८ ]

मुद्रक—प्रकाशक  
सामी आनंद

अहमदाबाद, आषाढ सुदि १५ संवत् १९८४  
गुरुवार, १४ जुलाई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ९

जवर्दस्त का ठेगा

जब एशियाई अमलदारों की ओर नजर करें। एशियाई अफसरों का से बड़ा थाना जोहान्सवर्ग में था। मैं देख रहा था कि जूने में हिन्दुस्तानी, चीनी, वगैरह लोगों का रक्षण नहीं बल्कि होता था। मेरे पास रोज ही फरियाद आती कि 'हकदार बचल हो नहीं पाता, और बेहक के लोग सौ सौ पाउण्ड दे जाते हैं। इसका इलाज आप न करें, तो और कौन करेगा?' यही वही लगन थी। अगर यह गड़बड़ दूर न की, तो जूने में मेरा रहना यों ही जायगा।

मैं सबूत इकट्ठे करने लगा। मेरे पास जब उसका ठीक जमाव हो तो मैं पुलिस कमिश्नर के पास पहुँचा। मुझे ऐसा लगा कि उनमें मेरे और इन्साफ थे। मेरी बात यों ही उड़ा देने के बदले उन्होंने मुझे मुनी और सबूत पेश करने को कहा। गवाहों की जांच की। उन्हें सन्तोष हुआ। परन्तु जैसे मैं जानता था, वैसे ही जानते थे कि दक्षिण अफ्रीका में गोरे पंचों के सामने गोरे लोगों को सजा दिलानी मुश्किल थी। 'तौ भी हम मिहनत तो करेंगे। वह तो उचित नहीं है कि जूरियों के हाथ से छूट जाने के बाद हम ऐसे गुनहगारों को पकड़वें ही नहीं। इसलिए मैं तो उन्हें छोड़ दूँगा। आपको यह, भरोसा देता हूँ कि मैं अपनी ओर से सबूत तो भरोसा न करूँगा।'

दूसरे अफसरों पर भी शक था मगर नपास काफी सबूत न थे। दो के बारे में जरा सोचने के बाद इसलिए दो के ऊपर वारन्ट निकला।

जोहान्सवर्ग तो ऐसा था जो गुप्त रही नहीं सकता। यह जाने लोग देखते कि मैं रोज पुलिस कमिश्नर के पास जाता।

गोपी करते और उन अफसरों को मेरे आने जाने की खबर देते थे। मुझे इतना कहना चाहिए कि इन अफसरों को इतनी खबर थी कि कितने भी जासूस हों, इनके लिए थोड़े ही थे।

गोपनीयता और उसी प्रकार नीतियों की मदद मुझे न मिलती तो मैं पकड़ते ही नहीं।

इन दो में से एक अफसर भागा। पुलिस कमिश्नर ने बाहर का वारंट निकाल कर उसे पकड़वा बुलाया। मुआमला चला। सबूत भी ठीक थे। एक के तो भाग जाने का भी सबूत जूरी के सामने दिया गया था, मगर तौ भी दोनों छूट गये।

मैं बहुत निराश हुआ। पुलिस कमिश्नर को भी दुःख हुआ। वकालत से भी चिढ़ हो गयी। बुद्धि का उपयोग गुनाह छिपाने में होते देख कर बुद्धि ही बुरी लगी।

दोनों अफसरों का गुनाह तो इतना प्रसिद्ध हो गया था कि वे छूटे सही मगर सरकार उन्हें रख तो नहीं ही सकी। दोनों बरतर्फ हुए और एशियाई थाना कुछ अच्छा हुआ। कौम को अब धैर्य और हिम्मत भी आयी।

मेरी प्रतिष्ठा बड़ी। धंधा भी चमका। कौम के सैकड़ों पाउण्ड हर महीने घूस में जाते थे। उसमें से बहुत कुछ बचा। यों तो कर्दा नहीं सकते कि सब बचा। बेईमान तो अब भी चर खाते थे ही मगर यों कहा जा सकता है कि ईमानदार अपनी ईमानदारी की रक्षा कर सकने लगे।

मैं कह सकता हूँ कि ये अफसर अगर्चे कि इतने अधम थे मगर मुझे व्यक्तिगत रूप में उनसे कोई झगडा न था। मेरा यह स्वभाव वे जानते थे। और उनकी कंगाल हालत में मदद करने का मुझे जब प्रसंग आया तो मैंने मदद भी की। अगर मैं विरोध न करता तो जोहान्सवर्ग की म्युनिसिपैलिटी में उन्हें नौकरी मिलने को थी। उनके मित्र मुझसे मिले और मैंने उन्हें नौकरी दिलाने में मदद देनी कबूल की। उन्हें नौकरी मिली भी।

इस बात का असर यह हुआ कि जिन गोरो के साथ मेरा सरोकार पडा वे मेरी ओर से निर्भय बनने लगे। और यद्यपि उनके विभाग से मुझे बहुत बार लडना पडता, तीखे शब्द बोलने पडते, तौभी वे मेरे साथ मीठा संबंध रखते। मुझे उस समय इसका ठीक ठीक ज्ञान न था कि ऐसा बर्ताव मेरे स्वभाव में ही है। यह बात मैंने पीछे से समझी कि ऐसे बर्ताव में सत्याग्रह की जड़ समायी हुई है, यह अहिंसा का अंग विशेष है।

मनुष्य और उसके काम—ये दो अलग अलग चीजें हैं। अच्छे काम के लिए आदर और बुरे के लिए तिरस्कार होना ही चाहिए। अच्छे बुरे काम करनेवाले के प्रति हमेशा आदर या दया होनी चाहिए। यह चीज समझनी तो सहल है मगर तौभी उसका अमल कम से कम होता है। इसीसे इस जगत में जहर फैला करता है।



सत्य की खोज के मूल में ऐसी अहिंसा घुसी हुई है। मैं तो प्रतिक्षण अनुभव करता हूँ कि जब तक वह हाथ नहीं आती, सत्य मिलता ही नहीं। तंत्र के साथ झगड़ना शोभता है मगर तंत्री के साथ झगड़ना अपने आप के साथ झगड़ने के बराबर है। क्योंकि सभी एक ही डोरी में गुँथे हुए हैं, एक ही ब्रह्म की प्रजा हैं। तंत्री में तो अनन्त शक्ति भरी हुई है। तंत्री का अनादर-तिरस्कार करने जाने में उन शक्तियों का अनादर होता है, और उससे तंत्री को और उतना ही जगत को सुकसान पहुँचता है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## जाति सभाएँ

१

कौन कह सकता है कि हमारी जातियाँ मर गयी हैं? और यही कौन कह सकता है कि वे जीती हैं? जाति और घटक, ये इतने स्वाभाविक हैं कि टूट नहीं सकते, और आज का जाति-जीवन, जाति-संगठन, और जातियों की आकांक्षाएँ, सब इतनी अ-स्वाभाविक बन उठी हैं कि जाति-जीवन में बहुत थोड़ा ही प्राण दिखलायी पड़ता है।

समान रहनसहन, समान कुलधर्म और समान धंधा रोजगारवाले कुटुम्ब समूहों को जाति कह सकते हैं। यह व्याख्या कि जिनके बीच खानपान और शरीर सम्बन्ध हो सके वही एक जाति के हैं, जितनी संकुचित है उतनी ही चौकस भी है। हाल की जातियों के संगठन का आधार यही मालूम पड़ता है कि विवाह शादी में सुविधा और मर्यादा रहे तथा संकुचित क्षेत्र में परस्पर सहकार हो। इन दो वस्तुओं के बाहर विशाल सामाजिक प्रवृत्ति की बाबत किसी जाति में एकमत या जागृति का होना हम नहीं जानते। जीना, खाना और व्याह करना, इन्हीं में जाति-जीवन समाप्त हो जाता है। संन्यासी वैरागी या कुत्तों को जाति जो खिलती है, उस दर्जे तक उसकी दृष्टि विशाल गिनी जायगी सही। पर अनेक जातियों को मिला कर बना हुआ महाजन परोपकार के यह काम करता है, इसलिए यह श्रेय भी जाति सहज ही नहीं ले सकती। यह कबूल करना चाहिए कि स्वार्थी सहकार में जाति की छात्रवृत्तियाँ, और जाति के छात्रावास बने हैं।

प्रतिष्ठा का कोई उमेदवार जब विरादरी को खिलता है, या कोई ऐसा वैसा आदमी विरादरी के कानून तोड़ कर उसे उसकाता है तभी उसकी नींद खुलती है। विरादरी की हालत तो महादेव सी है जो मन्दिर में घण्टा बजने पर ही उठते हैं। और इस जागृति के बीच में कोई सात्विक काम करने का उदाहरण कितनी जातियों के पत्ले पड़ता है? ऐसे उदाहरण पिछले पचास साल में कितने मिल सकते हैं कि विरादरी इकट्ठी हो कर वह अधिक संगठित हुई हो, उसने सभी समाज-शुद्धि की हो, आचार धर्म में सुधार किया हो, परोपकार का कोई विशाल काम शुरू किया हो या गरीब विरादरी की मदद की हो?

अभी अभी, जाति को जगाने का नया घन्टा हमारे हाथों आया है। वह है जाति-सभाएँ। जाति-सभा किसी एक के किये नहीं होती, और न एक दिन में खत्म ही होती है। पिछले तीस वर्ष की अनेक जाति-सभाओं की रिपोर्टों में सर्व साधारण वस्तुएँ कितनी मिलती हैं? उनमें सिवाय इसके और है ही क्या कि, अनेक कुप्रथाएँ दूर करने के असफल प्रस्ताव, सरकारी नौकरियों में विरादरी के लड़के अधिक घुस सके, इसलिए देश या विदेश में शिक्षा-प्राप्ति के लिए स्कॉलरशिप्, जाति का छात्रावास और जाति के मासिक पत्र। ऐसा कहीं जानने में नहीं आता कि जाति का हृदय क्यों कर

उन्नत होवे, देश-द्वार में, स्वराज्यप्राप्ति में जाति किस प्रकार मदद कर सकती है, इन प्रश्नों पर भी जाति सभाओं में विचार किया गया हो। विरादरी की पंचायतें तो यही सोचती आयी हैं कि अपनी विरादरी क्यों कर अधिक धनी बने, पुरे सामाजिक रिवाजों के खिलाफ बगावत करनेवाले क्यों कर दबाये जायँ।

और इन जातियों में या पंचायतों में नेता कौन होते हैं? ऐसा तो सब जगह देखने में आता नहीं कि अत्यंत चरित्रवान्, उच्च देशभक्त, राष्ट्रधुरीण, अथवा असाधारण विद्वान् पुरुष को जाति नेतागिरी बख्शे। और जब कभी सभाओं के ऐसे सभापति चुने जाते हैं तो उनका नेतृत्व स्वीकार करनेकी नीयत, जाति की नहीं होती। विरादरी के नेता तो दूसरे ही होते हैं। इन राष्ट्र-मान्य अथवा प्रान्त-मान्य पुरुषों को खुलाकर, प्रसंग का गौरव बढ़ाने का ही लोभ जाति को होता है। एक तरह से यह अनिवार्य भी है। आज कल के क्रान्तिकाल में आदर्श के बारे में, राजनीतिक आन्दोलन की पद्धति के विषय में और शिक्षा के संबंध में समाज के नये विभाग बनते जाते हैं। विरादरी अगर बहुत पिछड़ी न होवे तो उसमें इन सब पक्षों की खिन्ही मिली होती ही है। समाज के दुक्रे न कर डालने हों तो इन सभी विभागों के प्रति सद्भाव मूलक उदासीनता रख कर मौन रखना ही योग्य होता है। बाद में सही समाज सुधार और शिक्षा की बात। इस क्षेत्र में भी धर्मेन्द्र, राष्ट्रीय हितैषी, तेजस्वी लोगों की नेतागिरी, अगर जाति स्वीकार करे तोभी बहुत कुछ होवे। पर जातियों के जीवन-संग्राम में जिसमें अपनी ही जाति सुख से रहे, ऐसी शिक्षा आवश्यक होने के जीवन-कलह में प्रवीण और राष्ट्र-पराङ्मुख लोगों का ही नेतृत्व स्वीकार करना पड़ता है।

कोल, भील, धाराला, रानीपरज आदि पिछड़ी हुई जातियों की पंचायतों का अनुभव कुछ दूसरा ही है। उनमें आत्मशुद्धि की बेकरारी खुलासा दिखलायी पड़ती है। दाहताडी छोड़ने के ठहराव खादी तैयार कर पहनने के प्रस्ताव और ऐसे ही दूसरे सामाजिक उन्नति के निश्चय वे सद्भावसे स्वीकार करती हैं। और पिछड़ी होने से उनमें इतनी श्रद्धा है कि ठहराव अमल में लाने के लिए ही बिने जाते हैं। नैतिक उन्नति की उमंग और उत्साह, और स्वीकृत प्रस्तावों को व्यवहार में लाने की सङ्कल्पशक्ति ही अगर चरित्र की निशानी होवे तो ऊँची और पिछड़ी मानी जानेवाली जातियों के बीच का मिलान जरा विषम हो पड़े।

२

राष्ट्रीय महासभा, हिन्दू महासभा, औद्योगिक सभा वगैरह संस्थाओं में, अनेक प्रकार के लोगों का समुदाय मिला होता है। वहाँ समरस रखना कठिन होता है। जातियाँ तो एक रूप और समान कोटि के लोगों की संस्थाएँ हैं। उनका कार्यक्षेत्र संकुचित है, परस्पर विरोधी, शक्तियों का मेल बैठाने का अटपटा काम उनके माथे नहीं होता। ऐसी संस्था में बलवान् सहकार स्वाभाविक होना चाहिए। परन्तु पंचायतों का स्वरूप ही कैम्पिन्ग, देखवाला, और वाकू-प्रचुर कर डाला है। इन्हें जो हम ध्या रखेंगे वे तो ये बहुत काम कर सकती हैं। जातिपरिपदों का न मनुष्य न कि एक दूसरे के साथ मिले हुए कुटुम्बों का काम है। उनमें अगर हम व्याख्यान महोत्सव का लोभ छोड़ दें तो पुरुषों के जेबे खिँचें भी हाथ बँटा सकती हैं।

‘अशिक्षित बहिन सभा में आकर क्या करेंगी? इन्हें सभा में बैठना भी नहीं आता, क्या होता है, उसका एक अक्षर समझती नहीं।’ ऐसे आक्षेप सहज ही उठते हैं। पर हमें विचार रनाक चाहिए कि आज की स्थिति में भी कुटुम्बों का चरित्र



१४ जुलाई, १९२७

जवानदेही, कुटुम्ब का गौरव बचाने की चिन्ता, कर जतने से जीवन में शोभा लाने की कुशलता स्त्रियों को ही होती है। उनके लडकियों के लिए अनुकूल वहु और वर खोजने की भी अधिकांश में इन्हीं पर होती है। गृह जीवन का औद्योगिक जीवन का और इस लिए जाति-जीवन का अधिकांश विचारों पर ही होता है। वे अगर पंचायत में भाग न ले सकें तो वे पंचायत ही किस काम की? ऐसे उत्र करने के बदले कि हमारे हिस्सा बैठाने लायक वहिने विरादरी में नहीं हैं, जाति विरादरी जिनके हाथों में है, और जिनकी शक्ति के प्रयोग में ही प्रस्तावों का अमल हमेशा होना है, उन्हींके अनुसार क्यों न चल कर हम पंचायतें संगठित करें? ऐसा करने से पंचायतों का सारा स्वरूप ही बदल देना पड़ेगा। संभव है कि तभी इसका पूरा पूरा दर्शन होवे कि हमारा औद्योगिक जीवन कितना क्षीण है और हम कितनी असह्य निर्बलता से चले जा रहे हैं।

अगर ऐसा होवे तो इसमें बुरा ही क्या है? दोष जब उधारे जाय, वृष्टियां प्रकट होंगी, तभी उनका इलाज भी होगा। विरादरी हमें तत्कार करनेवाले, मगर बलवा करने का साहस न रखनेवाले इस दिशा में कुछ प्रयत्न कर देखेंगे तो उन्हें अपनी शक्ति और आगे की दिशा का चौकस ज्ञान होगा। शुरुआत भले ही छोटी शुरूआत में भले ही फल कुछ न दिखलायी पड़े। मगर अगर हम अनुभव करेंगे कि यही दिशा सही है तो बहुत कुछ कर सकेंगे। हर विरादरी में कितनी शिक्षित बहनों ने सार्वजनिक काम में योगदान दिया है। उन्हें अगर इस दिशा में चलना सूझे तो अधिक योगदान देंगी। और कुछ नहीं तो पुरुष-जीवन और स्त्री-जीवन में अंतर पड़ गया है, और जिसके कारण प्रगति रुकी है, उसे दूर होगा ही। गाडी का अगर एक पहिया बहुत बड़ा और बहुत छोटा हो तो गाडी वहाँ की वहाँ गोला चक्कर काटती है। और भीतर बैठनेवाले अंदर ठहर भी नहीं सकेंगे।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

## दो तुलाएँ

विवाही मा वाप ने वचपन में जिन्हें व्याह दिया था, जिन्होंने जो कभी देखा या पहचाना न था, वे बालाएँ 'विधवा' हुईं। वे विधवा में सैन मत दिया था कि मैं उनका विवाह हुआ ही नहीं था। उनका विवाह हुआ या न हुआ, यह विवाद दरकिनार हमें उनका विवाह कर देना मा वाप का धर्म है। मेरा यह प्रकाशित देख कर एक भाई ने मुझे हिन्दी में लम्बा पत्र लिखा है। उसका मतलब यह है:

'माप वाल-विधवाओं का पुनर्विवाह भला समझते हैं। वे पुनर्विवाह पर भी लागू हो सकेंगे। तो फिर पुनर्विवाह को उत्तेजन देंगे क्या? मैं तो कहूँगा कि पुनर्विवाह को उत्तेजन चाहिए और विधवा-विवाह की छूट को नहीं चाहिए।'

इस प्रकार की दलील से मनुष्य बहुत पाप करता आया है। मैं मानाहारियों को भी जानता हूँ जो वहस करते हैं कि उत्तर में कहां वारहों सहीने बर्फ जमी रहती है, मांस खाना पड़ता है। वे वहाँ से पाप की पुष्टि की बात हमें तुरत मिल जाती है।

इस प्रकार से कहने वाला नहीं, मगर उसकी आड़ ले कर पुनर्विवाह से रोकने वाला है। स्वराज्य के लिए हमें

नालायक बनाने वाले कहते हैं कि 'लायक बनो और स्वराज्य लो।' अछूतों को दवा कर उन की अधोगति करने वाले हम लोग कहते हैं, 'अछूत अच्छे बनें और भले ही हमारे साथ मिलें।'

मनुष्य अपने पास छोटे बनिये जैसा दो तराजू रखता है। एक से लेता और दूसरे से देता है। अपना पर्वत जैसा दोष महीन राई सा देखता है, और दूसरे का राई जैसा दोष पहाड़ मानता है।

जो न्यायबुद्धि से पुरुष विचार करें तो जानें कि विधवाओं को दवाने का उन्हें अधिकार नहीं है। बलात्कार से जो वैधव्य पलवाया जाता है, वह भूषण नहीं, दूषण है। यह गुप्त रोग है और प्रसंग प्रसंग पर फूट निकलता है। उम्र को पहुँची हुई स्त्री, विधवा हो जाने पर फिर विवाह करने की इच्छा जैसी भी न करे तो वह जगद्वंध्या है—वह धर्म का स्तंभ है। परन्तु जिसे पुनर्विवाह की इच्छा हुई हो, और जो समाज के भय से या कानून के अंकुश से रुकती है, वह तो मन से पुनर्विवाह कर चुकी। वह वंदना करने लायक नहीं है, वह दया-पात्र है और उसे फिर से विवाह करने की छूट होनी चाहिए। पहले थी। रुढ़ि के वश हो कर ऊँचे वर्ग के गिने जाने वाले हिन्दुओं ने इस ऐच्छिक धर्म को नियम बना कर के धर्म में बलात्कार को दाखिल किया है।

न्याय यों कहता है कि जहां तक विधुर पुरुष को पुनर्विवाह करने का हक है, वहां तक विधवा को भी उन्हीं शर्तों पर होना ही चाहिए। समाज की रक्षा के लिए अमुक प्रतिबंध दोनों एक समान होने चाहिए और उन में सारे समझदार पुरुषवर्ग के जैसी ही समझदार स्त्री वर्ग की सम्मति होनी चाहिए।

बाल विधवा और दूसरे विधवाओं के बीच भेद भूलना न चाहिए। बाल-विधवा का फिर विवाह कर देना, मा वाप का और समाज का धर्म है। परन्तु दूसरी विधवाओं के बारे में वह धर्म नहीं है। उनके ऊपर तो आज रुढ़ि या कानून का जो बलात्कार है, उसे ही दूर करने की आवश्यकता है। यानी यह कि वह विधवा दूसरा विवाह करना चाहे तो उसे इसकी छूट होनी चाहिए।

बड़ी उम्र को पहुँचे हुए विधुर या विधवा के पुनर्विवाह पर तो केवल लोकमत का ही अंकुश रह सकता है। अभी तो लोकमत उलटी दिशा में वह रहा है। परन्तु जहां धर्म का, मर्यादा का, संयम का पालन व्यापक हो, वहां थोड़े ही स्त्री पुरुष मर्यादा का उल्लंघन करेंगे। अभी तो उसे जो पालें उन्हीं का धर्म है। साठ वर्ष का धनिक बुढ़ा दश बारह साल की लडका से तीसरा विवाह करते शर्माता नहीं और समाज उसे सिर पर धरता है। और जब बीस वर्ष की विधवा संयम का पालन करने की कोशिश करती हुई भी, नहीं कर सकती और इस लिए फिर विवाह करना चाहती है तो समाज उसका तिरस्कार करता है! यह धर्म नहीं किन्तु अधर्म है।

इस बलात्कार को, अधर्म को दूर करने के सामने, दूसरे देशों की अनिति इत्यादि का हिसाब करना निरर्थक और बे मौके है। बाल-विधवा से ले कर बुढ़ी विधवा तक, सभी सती सीता जैसी पवित्र होवें तो भी मैं कहता हूँ कि अगर वे फिर से विवाह करना चाहें तो उन्हें रोकने का किसी को अधिकार नहीं है। उन्हें प्रेमपूर्वक समझाना समाज का काम है, उन्हें दवाने का समाज को अधिकार नहीं है।

अपने लिए हम जिस गज का इस्तेमाल करते हैं, दूसरों के लिए भी उसी से काम लें तो दुनिया के तीनों ताप दूर हों, और फिर एक बार धर्म की संस्थापना हो।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, आषाढ सुदि १५ संवत् १९८४

## सत्याग्रह की सीमाएँ

एक पत्र के उत्तर में, जिस में और कई बातें भी थीं, मैंने गुजराती में एक पत्र लिखा था। उसके एक निर्दोष अंश के कारण, मेरी सम्मति में सत्याग्रह और उसके कर्ता का वैचित्र्य अर्थ हुआ है। श्रियुक्त भूचा के पास लिखे गये एक खानगी खत का वह अंश था। सत्याग्रह का यह कुछ भाग्य तो है नहीं और दूसरे सभी पत्रों जैसे, इसमें भी कितनी बातें ऐसी हैं जो लेखक और पाठक में पहले से जानी समझी हुई थीं। यह पत्र अखबारों में प्रकाशन के लिए नहीं था। मगर जब श्री भूचा ने इसे प्रकाशित करने की अनुमति तार द्वारा मँगी, तब मुझे वह अनुमति देने में कोई उज्र न हुआ। अखबारों की रिपोर्टों से मुझे मालूम पड़ता है कि नागपुर की सभा के व्याख्याताओं ने कहा था कि श्री भूचा के पत्र में मैंने जो बात समझायी है, वह मुझे नागपुर सत्याग्रह के शुरू होते ही कह देनी चाहिए थी। इससे मुझे असम्मति ही बिखलानी पड़ेगी। अगर मि० अथारी ने अपने आन्दोलन के लिए मेरी मंजूरी की बात न कही होती तो उसके खंडन में लिखा गया, मैं अपना लेख भी नहीं लिखता। मेरा नियम है कि जहाँ मैं सहायता नहीं दे सकता बाह्य बेजहरत या बेगुने टांग भी नहीं अडाय करता। इस लिए, उस समय नागपुर सत्याग्रह के विषय में मेरा जो कुछ जानकारी थी, उस पर विस्तार से सम्मति देने के बदले मैंने केवल खंडन और देश में फैले हुए हिंसा के वायुमण्डल पर सामान्य विचार भर ही दिया था। और मुझे यह भी कहना ही पड़ेगा कि सत्याग्रह सुलझा करके के लिए मेरे खानगी पत्र का, उनके लिए जिन्हें वह पढ़ने को मिला था, उपयोग करना तब जब कि वे उसमें के तर्कों से सहमत नहीं थे, अनुचित कार्य था। और भी, जब उन्होंने उसे सर्वसाधारण में प्रकाशित करने का निश्चय कर, लिया तब मेरे प्रति उनका यह फर्ज था कि वे मुझसे वे बातें खुलासा करा लें जो वे समझ नहीं सके, या जो उन्हें मेरे पहले के लेखों के विरुद्ध मालूम हुई। नागपुर के उत्साही युवकों के प्रति उनका यह कर्तव्य था कि वे एक ऐसी सम्मति उनमें प्रकाशित कर उनके उत्साह पर पाला न डाल देते, उन्हें उलझन में न डाल देते जिस सम्मति को वे न तो समझते थे और न जिसे मानते ही थे। मैं इसे अपना कुछ लाजिमी फर्ज नहीं समझता कि मुक्त में पागलपने की जो बहुत सी बातें चल रही हैं, उन पर अपनी राय जाहिर किया करूँ क्योंकि मुझमें यह मानने की नम्रता है कि जो बातें मुझे बेमतलब मालूम पड़ती हों, वे ही उनके करनेवालों को बमतलब मालूम पड़ सकती हैं और दरअसल अहमन्दी की भी निशानी हो सकती हैं। इसलिए, अगवें कि कई जगह सत्याग्रह के नाम पर काम किये जा रहे हैं मगर उन पर राय देनी मैं ने अपने लिए जरूरी नहीं समझी है। और मैं नागपुर के नवयुवकों को और इससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोगों को यह बात जरूर बतला देना चाहता हूँ कि किसी अन्याय कर्म के विरुद्ध सत्याग्रह या दूसरे किसी किस्म का विरोध करने के लिए महासभा की आज्ञा लेने को वे तब तक बाध्य नहीं हैं जब तक वे महासभा के नाम का इस्तेमाल न करें। और अगर वे सचमुच में मानते हैं कि नागपुर सत्याग्रह समुचित था, वह सचमुच में सत्याग्रह था तो तुरत ही सत्याग्रह शुरू न कर देना, अपने सेनापति और दूसरे जेल-प्रवासी

साधियों के प्रति विश्वासघात करना होगा। यह तभी विश्वासघात न कहा जायगा जब वे मुझसे सहमत हों कि जिसे उन्होंने सत्याग्रह समझा था वह दर असल सत्याग्रह न था।

सद्भावयुक्त मित्रों ने उस पत्र की आलोचना शुरू की है। उन्होंने सत्याग्रह के विषय में गडबडझाल पैदा कर दिया है। अब, इतनी भूमिका के बाद, मैं उस गडबडझाल को दूर करने का प्रयत्न करूँगा। मैं इस पर कायम हूँ कि नागपुर के रीति पर सत्याग्रह के द्वारा शस्त्र कानून नहीं तोड़ा जा सकता। यह भी याद रहे कि नागपुर की 'नागरिक सेना' और सरकार के बीच झगड़े की जड़ यह शस्त्र कानून न था बल्कि कई देशभक्त बंगाली युवकों का बिना किसी कारण के, वे कानून के जेल में ठूसा जाना था। इस कारण सविनय अवज्ञा के लिए शस्त्र कानून को चुनना हर तरह से गलत था। मेरे पत्र का कई व्याख्यान दाताओं ने ऐसा अर्थ लगाया है जो अर्थ मैं मानता हूँ कि उस पत्र का नहीं है। और कभी वह अर्थ लग सके, ऐसा इरादा भी न था। १९१७ का १८ में ही मैंने कहा था कि सरकार के काले से काले कुकुरों में हथियार छीन लेना एक है। अहिंसा का पक्का विश्वासी होते हुए भी मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हर हिन्दुस्तानी को जो हथियार लगाना चाहे, कानूनन हथियार लगाने का हक है। मैं मानता हूँ कि एक शस्त्र कानून अब भी और किसी अच्छी सरकार के लिए जरूरी होगा। मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि हर नागरिक का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह जितने हथियार चाहे बिना सरकारी हुक्म के (लाइसेंस के) रखे। इसके उल्टे मेरा दृढ़ निश्चय है कि खुशासन की खातिर सरकार को यह अधिकार होना चाहिए कि खास निश्चित शर्तों के सिवाय यों कोई हथियार न ला सके। जिस प्रकार चोरी या दूसरे गुनाहों को रोकने के लिए किसी अन्यायी आईन के विरुद्ध मैं सत्याग्रह का समर्थन करूँगा उसी प्रकार मैं इसकी भी संभवता की कल्पना कर सकता हूँ कि अन्यायी शस्त्र कानून या इसके अन्याय अमल के विरुद्ध सत्याग्रह किया जाय। मगर मैं जिस प्रकार इस बात पर कायम हूँ कि गुनाह रोकने के अन्यायी कानूनों के विरुद्ध खास वे ही गुनाह कर के ही सत्याग्रह नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इस पर भी कि शस्त्र लग कर चलने से अन्यायी शस्त्र कानून के विरुद्ध सत्याग्रह नहीं हो सकता।

सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा का अन्तर भी हम समझ लें। सभी सविनय अवज्ञाएँ, सत्याग्रह का एक अंश होती हैं, मगर सभी सत्याग्रह तो सविनय अवज्ञा नहीं हैं। और यह देखते हुए कि नागपुर के मित्रों ने वह काम सुलझा कर दिया है जिसे वे सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा कहते थे, मैं उनका और दूसरों की जानकारी के लिए सूचना देता हूँ कि बंगाल के नजरबन्दों के लिए किस प्रकार सत्याग्रह किया जा सकता है। अगर वे मुझपर रंज न हों या मुझपर हँसे नहीं तो मैं यह कह कर शुरू करता हूँ कि खादी के जरिये जनता की शक्ति बढ़ा कर, और विदेशी कपड़े का बहिष्कार सफल करा कर, वे सत्याग्रह कर सकते हैं। हिन्दू-मुसलमान ऐक्य के अग्रदूत बन कर, जहाँ कहीं दोनों जाँता समवेत हो वहाँ अपना सिर तुड़ा कर और आम झगड़े में हिस्से मगूब न अपने परधर्मों की सेवा शान्ति से कर के सत्याग्रह कर सकते हैं। अगर ऐसी रचनात्मक बातें उन्हें बिल्कुल पसन्द न पड़ें, और हमारे चारों तरफ विचार, वचन और कार्य में हिंसा का वातावरण फैल रहे पर भी, सविनय अवज्ञा से कम मैं उन्हें सन्तोष ही न होने तो मैं उन्हें नीचे का नुस्खा बतलाऊँगा। यह व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा है, जिसे एक आदमी भी कर सकता है। सचमुच में इस आदमी से तो नहीं ही कि सत्याग्रह करते ही बंगाल के नजरबन्द व्यक्तिगत सत्याग्रह से भी अन्त में वे छूटेंगे ही, यह किया जा सकता है। कहीं से, या कहीं कि नागपुर से एक जलिया या



## बंगलोर खादी प्रदर्शन

तीन महीनों के बाद, बंगलोर खादी प्रदर्शन में गांधी जी ने पहले पहल सार्वजनिक सभा में भाषण किया था। उसका सार नीचे दिया जाता है:

## मुझ पर तरस न खाना

इस रमणीक नगर में पूज्य मालवीय जी के साथ आपसे मिलते हुए मुझे बड़ी खुशी होती है। हिन्दू सभ्यता में पले होने के कारण, जब से इस देश में आया हूँ, तब से जिन्हें बड़ा भाई गिनता हूँ, उनके सामने किसी काम में आगे बढ़ते मुझे भारी संकोच होता है। पर कर्तव्य के वश हो कर यह संकोच कुछ कम कर लेता हूँ।

वामारी के बाद डाक्टरों के हुक्म से यह पहले पहल मैं सार्वजनिक सभा में आता हूँ। इस प्रसंग पर मैसूर महाराज और उनकी प्रजा ने जो मेरे आराम के दिनों में मुझपर माया ममता दिखलायी है, उसके लिए मैं दोनों का उपकार मानता हूँ। आपके प्रेमपूर्ण आतिथ्य के कारण बीमारी भी आकर्षक बन गयी है। पर खादी के लिए मेरे मित्रों ने जो अपील निकाली है, उसमें मेरी बीमारी का व्यापार किया है। यह देख कर मुझे दुःख हुआ है क्योंकि उन्होंने आपको लालच दिया है कि खादी के लिए आप पैसा दो और खादी पहनो तो मैं जल्दी चंगा हो जाऊँगा। इस लालच को आप जरा भी वजन न देंगे। अगर खादी आपकी बुद्धि पर कोई असर न डाले, और देश के अर्थशास्त्र में इसका स्थान आपको कहीं न दिखलायी पड़े तो, भले ही यह मुझे चाहे जितनी प्रिय हो मगर आपको तो इसे तिलाञ्जलि ही देनी होगी।

जहाँ बड़े देशकार्य की बात होवे, वहाँ यह विचार नहीं किया जाता कि यह अमुक को भला लगेगा और अमुक को बुरा। अगर मैं ऐसा हो गया होऊँ कि मेरी धुनों और तरंगों को—जिन्हें आप शायद बेवकूफी में गिनें—लोग स्वीकार न करें तो मैं बीमार पड़ता जाऊँ तो देश के लिए यही बेहतर है कि मैं इतना कमजोर हो रहूँ कि जिस में कुछ और अधिक उधम न मचा सकूँ।

## काम देख कर भले ही चकित होवो

मेरी बीमारी नहीं, पर यह प्रदर्शन जरूर ऐसी वस्तु है जो आपके दिल और दिमाग पर असर करे। इसे खोलने में मैं सौभाग्य मानता हूँ। यह आपको पदार्थपाठ देगा कि खादी कौन चीज है और इससे कितना काम हुआ है। अगर इसे गौर से देखने पर आपकी अकूल खादी का महत्व कबूल कर ले मगर तौभी बुद्धि के बताये काम में पड़ने का साहस न हो तो भले ही मुझपर आपका प्रेम, आपकी कमजोरी दूर कर हिम्मत दिलाने में कुछ काम आवे। क्योंकि मैं आपके आगे, काम न मिलने के कारण अधभूखा, अध नंगा रह कर करोड़ों देशबन्धुओं का प्रतिनिधि बन कर आया हूँ। खादी के ऊपर आप जितने पैसे खर्च करेंगे, वह उन लोगों की सहानुभूति का सक्रिय प्रमाण होगा, जिन्हें स्वर्गीय देशबन्धु दास ने दरिन्द्रनारायण का योग्य नाम दिया था।

प्रदर्शन में जाकर आप खादी-निबन्ध और दूसरी पुस्तकें देखेंगे। आप यह देख सकोगे कि देश में जो बेकारी और दरिद्रता भरी पड़ी है, उसे दूर करने में खादी ने कितनी सहायता दी है। ग्राम्य संगठन की कितनी योजनाएँ कागज पर ही रहीं, मगर खादी और चरखे का धीमा पर अचूक असर सारे देश में फैल रहा है। अखिल भारत चरखा संघ के अहवाल में आप देखेंगे कि १९२६ में २३ लाख की खादी तैयार हुई थी, २५ लाख की बिकी थी और जुदा जुदा प्रान्तों में १५ लाख की रुकी हुई है। ५०,००० कानूनीवालों को, जिन्हें फुरसत के समय और कोई काम न था, इसमें से रोजी

मोहनदास करमचंद गांधी



मिली है। इन्हें मिनहत्त और कुशलता के हिसाब से रोज एक पैसे से दो आने तक मिले। इतनी रोजी के लिए बहुत स्त्रियों का चार चार मील तक से चल कर आना यह साबित करता है कि यह प्रवृत्ति अव्यावहारिक और मिथ्या प्रवृत्ति नहीं है। और चर्खे के आसपास और कितने दूसरे धंधे आ खड़े हुए हैं। जुलाहों, धोबियों, रंगरेजों, छपेरो, धुनियों इत्यादि को जिन्हें पहले किसी धंधे की आमदनी नहीं थी, अब नयी आशा मिली है। १० कातनेवालों के होते ही एक नया जुलाहा और एक नया धुनिया उठ खड़ा होता है और उन्हें चार आने से डेढ़ रुपये रोज तक मिलता है। १५०० गांवों की सेवा हो रही है और इसमें लगभग १००० सेवक लगे हैं, जिन में स्त्रियां भी हैं। उन्हें १०) रु. से लेकर १५०) रु. तक महीना मिलता है। कातनेवालों में सभी जाति और धर्म के लोग हैं। मुशाहरे पर कितने काम करनेवालों के अलावा, अनेक मुफ्त काम करनेवाले हैं। आचार्य राय के दो चुनिन्दा विद्यार्थी सतीश चन्द्र दास गुप्त जो आचार्य राय के दवा के कारखाने के प्राण थे, और डा० प्रफुल्ल घोष जो सरकारी टुकसाल में बड़े अफसर थे, अपनी नौकरियां छोड़ कर इस काम में पड़े हैं। व्यापारी वर्ग की भी समझ में अब यह बात आ रही है कि इस काम में व्यापारी बुद्धि और शक्ति के लिए भी जगह है। इसमें कितने मशहूर वकील और डाक्टर भी अपना काम छोड़ कर पड़े हैं। इस लिए इस हलचल को इस जमाने का बड़ा से बड़ा सहकारी हलचल कहने में मैं जरा भी अतिशयोक्ति-सुबालगा नहीं करता। इन छह वर्षों का यह काम आगे करने के भगीरथ काम के सामने बहुत थोड़ा लगता है मगर तौभी आगे कितना किया जा सकता है, उसका सुनिश्च है। और अगर ईश्वर करे तो थोड़ी मुश्त में आप दृष्टे हुए गांवों की ही योग्य धंधों का धाम बना देंगे।

### प्रदर्शन में क्या देखियेगा

प्रदर्शन में आप रुई से खादी बनने तक की सब क्रियाएँ देखेंगे। इस धंधे के सब औजार भी आप देखेंगे। जो नकशे रखे हैं, उन से आप देख सकियेगा कि इन औजारों से कितनी तैयारी होती है।

और इनमें खादी की दूकानें भी कैसी कैसी हैं? बंबई की ४०० गरीब महिलाएँ खादी पर सुन्दर काम करती हैं और रोज छह आने से डेढ़ रुपये तक पैदा करती हैं। उनके इस काम से सुशोभित खादी की दूकान की ओर में शौकीन और कला-प्रेमी धनियों का ध्यान खींचता है। यह काम राष्ट्रीय स्त्री सभा का है—जिसमें हिंदुस्तान के भीष्म पितामह दादाभाई नौरोजी की नातिनों और पेटिट खानदान की एक बहिन के अलावा और कितनी स्वार्थ त्यागी बहिनें काम कर रही हैं।

मधुसूदन दास कटक में बड़े भारी वकील थे। अनेक तरंगों और योजनाओं में वे लगे हुए थे पर उड्डिस्ता के दारिद्र्य ने उन्हें जगाया। उन्होंने देखा कि अगर खेती करें तो वह जरूरी तो है ही, मगर उसके साथ साथ हाथ की कारीगरी का कुछ काम न करें तो खेती के धैर्यों जैसे ही हम भी बुद्धिमान बन जायेंगे। और वे आप भी कारीगर बने।

पर अब मुझे भाषण को बढाना नहीं चाहिए। प्रदर्शन में आपकी आंखों और बुद्धि के लिए जो भोजन तैयार कर रखा गया है, वहां जाने में मुझे अब आप को रोकना नहीं चाहिए। यह प्रदर्शन देख कर आप समझ सकेंगे कि खादी ही ग्राम्य-संगठन का केन्द्र है। मैं चाहता हूँ कि आपमें से पुरसत और लगनवाले आदमी, गरीब कुल भी न हो तो अपने खर्च में केवल खादी का उपयोग करके गरीबों से आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ें। ईश्वर के इस काम में

फल तो खूब होगी, मगर काटनेवाले मजदूरों की ही आप सब लोग अगर चाहें तो मजदूरों के इस दल में बढ सकते हैं।

यह प्रदर्शन खोलते हुए मुझे आनन्द होता है और मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें यह काम संजूर होवे और उन्हें लायक मालूम पड़ें तो वे इस काम को आशीर्वाद दें।

### रोगशय्या के पास से

यों कहा जा सकता है कि गत ३ जुलाई को गांधी जी ने बीमारी के बाद से सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। प्रदर्शन में जितने टिकटों और कुर्सियों का प्रबन्ध किया गया था, वे सब खप गयीं और आनेवालों के लिए खास प्रबन्ध करना पड़ा। इतनी भीड़ पर भी अपार शान्ति छाई हुई थी। गांधी जी के आने पर शान्ति बनी रही। वे दो बार बोले—दोनों बार शान्ति उनकी आवाज तो सभी सुन पाते थे मगर उसमें सभी को जान पड़ती थी। इसलिए जो भाषण पहले से छपा लिखा था, वह राजगोपालाचारी जी ने पढ़ सुनाया। फिर मध्य उद्योग-विभाग के नये, आश्रय ढव के चर्खे को खोल कर खोला गया। इसके बाद गांधी जी चले गये और मालवीय सब दर्शकों को लेकर भीतर प्रदर्शन देखते गये। गांधी जी भाषण का मुख्य भाग ऊपर दिया गया है। प्रदर्शन के बारे में लेख अगले अङ्क में आवेगा।

### और बहिनों से बातें

पिछले अंक में बहिनों के साथ कुछ बातें छपी हैं, मगर बाकी हिसाब तो इस अंक में देना पडेगा। एक बहुत सीधे भोलीभाली बहिन ने गांधी जी के आगे केले और अंगूर लाने अनेक बहिनें तरह तरह की मनावा-छाएँ ले कर आती हैं, मगर कोई कैसे जाने? पर इस बहिन ने तो श्री राजगोपालाचारी पहले से ही कह रक्खा था कि 'गांधी जी को मेरी ओर से कहें कि मुझे सन्तान नहीं है। मुझे सन्तान होने का वे आशीर्वाद दें।' गांधी जी के सामने तो बड़ा दरबार लगा हुआ था राजगोपालाचारी जी के मुँह से इस इच्छा का वर्णन सुन कर तो जरा कैसा लगा मगर इस बहिन के मुँह पर तो प्रकाश था। बालक का इच्छा होवे तो उसमें अस्वाभाविकता सुधरे लोग भले ही हँसे मगर यह बहिन तो मातृ-भाव की बन कर गांधी जी के आशीर्वाद के लिए बाट जोह रही थी गांधी जी ने हँसते हँसते कहा, 'मैसूर में कितने सुन्दर बालक पूछो तो क्या यह किसी को गोद नहीं ले सकती?' राजा जी ने तामिल में समझाया। यह बहिन हँसती थी 'श्री जी ने अब गंभीर हो कर कहा, 'देखो, इस बहिन को कबा देखोगी तो कितने लडके नंगे मारे फिरते होंगे, मनुष्य के मिलेंगे। उनमें से किसी भूखे लडके को ले कर को कपडे पहनाओ, बेघरवार के लडके को दत्तक ले कर रखो। यों माता बनने से तुम्हारे जैसा आनन्द मैसूर माता नहीं उठा सकती।' जब गांधी जी यह बोल रहे बहिन, उन्हें निहार रही थी। ऐसा मालूम होता था कि उनकी आंखों में वह अपने दुःख की छाया देखती हो राजा जी ने अर्थ कर के बतलाया, गांधी जी ने कहा, 'कि सन्तोष हुआ।' खूब प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'जी हाँ।' और वह चली गयी।



सर व्रजेन्द्र नाथ सील

‘यह सब कुछ मैं अपनी और दृष्टि रख कर कहता हूँ क्यों  
यह सभी संकुचितता अपने आपमें तो देखता हूँ न ? और  
अपने आप को दूसरों से तो अधिक जानता ही हूँ । इस ओर  
युवकों में व्यक्ति-वैशिष्ट्य है, इनमें दृढता है, किसी काम  
अटल रूप से लगे रहने की शक्ति है जो दूसरों में नहीं  
पडती । गणित और कानून में यहां एक से एक बढ कर प्रतिभाशा  
मिलेंगे । तर्क में भी खूब कुशल होते हैं । दो युवकों को ब  
करते देखिएगा तो आप पाइएगा कि एक दूसरे का विरोध करते  
ये इल्ले, इल्ले, इल्ले ( ना, ना, ना ) इतने आवेश और आग्रह

सर ब्रजेन्द्र नाथ सील

हमें खबर तो थी कि बंगाल के समाजशास्त्री और विद्वान के रूप में गांधी जी के कुलपति हैं। परन्तु यह आशा थी कि हमने सोचा था कि मैस्टर उनसे भेंट हो सकेंगे। पर वे तो कलकत्ते से लौटते



कहेंगे, मानों इन की जानही निकली जा रही हो ! इसी कारण यहां अनेक सम्प्रदाय, अनेक शाखाएँ हैं। वैष्णवों में कितने सम्प्रदाय और कितने उनके विरोधी हैं !

‘आप दक्षिण के युवकों की दृढ़ता और हिम्मत की बात करते हैं ? बंगाल की हिम्मत क्या कुछ कम है ?’ गांधी जी ने पूछा।

मानों भारी अवगणना करते हों, इस प्रकार सर ब्रजेन्द्र बोले, ‘हिम्मत किस बात की, मरने की ? हां, मरने की हिम्मत है सही मगर जीने की हिम्मत ?’

गांधी जी हैंसे, ‘आप भी यों कहते हैं—ऐसी उजली दाढ़ी फरफराते हुए भी आप यों कैसे कह सकते हैं ? और सर सुरेन्द्रनाथ और रवीन्द्रनाथ जैसे उदाहरण भी पड़े ही हुए हैं तौभी ? कवि तो इस उम्र में १७ वर्ष के लड़के के जितने जीवन और उल्लास से रंगभूमि में उतर कर नृत्य करते हैं ! और बड़ो दादा !’

बड़ो दादा के नाम से मानों सर ब्रजेन्द्र किसी दिव्य चिन्तन में पड़ गये, ‘बड़ो दादा ! उनका काव्य, उनका चिन्तन, और उनका आर्ष जीवन ! चिड़िया भी खेल में उन्हें चोंच मार जायँ, उनकी गोद में खेले !’

बड़ो दादा के नाम से दलील का प्रवाह टूटा। सर ब्रजेन्द्र बोले, ‘पर इस विषय में आप को बतलानेवाला मैं कौन ? आपके अनुभव के सामने मेरा अनुभव कहाँ ? मैं इजाजत लूँगा।’ यों कह कर उठ खड़े हुए। गांधी जी तो विस्तर पर सोये हुए थे ही। नीचे झुक कर सर ब्रजेन्द्र ने उनके चरण छूए।

अतिशय शर्मा कर गांधी जी बोले, ‘मुझे आप लजवाना तो नहीं चाहते।’ यों कह कर उठ बैठे और उन्हें आप प्रणिपात कर के बिदा किया।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाइ देशाई

## फुटकर खादी बिक्री की दूकानें

### बंगाल

खादी प्रतिष्ठान, कलकत्ता, के अधीन

१८०, बहुबाजार स्ट्रीट कलकत्ता १५ कॉलेज स्क्वायर कलकत्ता

बारिसाल	वर्देवान
चांदपुर	चौमुहानी
ढाका	दिनाजपुर
फरीदपुर	जलपाईगुडी
जैस्तोर	खुलना
मैमनसिंह	नोआखाली
राजशाही	रतनगंज
तेजपुर	मदारीपुर
कुरीग्राम	

अभय आश्रम, कुमिल्ला, के अधीन

कुमिल्ला आश्रम, कलकत्ता	कुमिल्ला नगर भांडार
फेनी (नोआखाली)	चन्द्रबन्धा (जलपाईगुडी)
बरकमता (टिपरा)	फरीदपुर
मुंशीरहाट (नोआखाली)	मिदनापुर
ब्रह्मपुर	ढाका
कृष्णनगर	चौदहग्राम (टिपरा)
लेमना (नोआखाली)	पालोंग (फरीदपुर)
मदारीपुर (फरीदपुर)	वांडुरा (शहर)
मुरादनगर (टिपरा)	नारायणगंज

प्रवर्तक संघ, चन्द्रनगर, के अधीन

प्रवर्तक संघ खादी भांडार

७३, कॉलेज स्ट्रीट मार्केट कलकत्ता

दिन्यू बंगाल स्टोर्स,

मलेन्द्राहा

रैना आश्रम, रायनगर,

विद्याश्रम

”

”

भीमपुर खादी केन्द्र

आरामबाग खादी कार्यालय

खादी भंडार,

खादी भंडार,

प्रान्तीय खादी भण्डार,

कॉंग्रेस खादी भण्डार,

कॉंग्रेस खादी भण्डार,

”

शुद्ध खादी भण्डार,

खादी भण्डार

खादी भण्डार

सुदर्शन चर्खाखालय,

कॉंग्रेस खादी भंडार,

शुद्ध खादी निधि,

कॉंग्रेस खादी भंडार,

हवेली खादी भंडार,

हंगल शुद्ध खादी भंडार,

खादी भंडार,

”

”

खादी वस्त्र भंडार,

खादी भंडार,

मंगलोर खादी भंडार,

खादी वस्त्रालय,

बेलारी खादी दूकान,

अंकोला खादी भंडार,

चर्खासंघ से सहायता—प्राप्त

कर्णाटक खादी वस्त्रालय,

शहर को-ओपरेटिव सोसाइटी,

खादी भंडार,

खादी दूकान,

खादी वस्त्र प्रचारक समिति

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण

गया; कीमत =) पोस्टेज -); विना जवाबी कार्ड या टिकट जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की बी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम में भेजी जायगी। बी. पी. मंगानेवालों को आधे दाम में भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन अहमदाबाद

अन्दरकेला (चटगांव)  
जलालपुर (मैमनसिंह)  
पो० रैना (वर्देवान)  
विद्याश्रम, सिलहट, के अधीन  
कुलौटा (सिलहट)  
बेआनीबाजार  
सिलहट

दूसरे केन्द्र

लालगढ़ (मिदनापुर)

आरामबाग, मोघालबान्दीपुर

राजपूताना

पुरानी मंडी, अजमेर

जयपुर

संयुक्त प्रान्त

जोन्सन गंज, इलाहाबाद

जेनरलगंज, कानपुर

मारफत कॉंग्रेस, सीतापुर

खेरी

भन्डा

गांधी आश्रम, अकबरपुर

देहरा दून

कर्णाटक

चर्खा संघ के

गणपति गली, बेलगांव

धारवार, जिला धारवार

गाडग,

”

हुवली,

”

हवेली,

”

हंगल,

”

सिरसी, जिला उत्तर कानपुर

सिद्धपुर,

”

बीजापुर, जिला बीजापुर

बगलकोट

”

डाकघर कोडियल वेल्, दूध

”

किला, बंगलोर शहर

बेलारी,

”

अंकोला, उत्तर कनारा

स्वच्छ

कलघाट रामव

कुर्ग, पाले मनुष्य

जमखंडी, जिला



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

[ अंक ४९ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, श्रावण वदी ७ संवत् १९८४

गुरुवार, २१ जुलाई १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की बाडी

## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १०

### पुण्यस्मरण और प्रायश्चित्त

मेरे जीवन में ऐसी घटनाएं बराबर घटती आई हैं जिनके लिए मैं अनेक धर्मों तथा अनेक जातियों के धर्माचारों को छोड़ सका हूँ। इन सब के अनुभवों पर से यह कहा जा सकता है कि मैंने अपने-पराये, देशी-विदेशी, काले-गोरे, हिन्दू-मुसलमान या ईसाई, पारसी या यहूदी इनके बीच किसी भेद-भाव को नहीं किया। मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि मेरा हृदय भेद-भाव को पहचान तक नहीं पाया। पर इसे मैं अपना दोष समझता हूँ। क्योंकि मैं इस बात को पूर्णतया मानता हूँ कि भेदभाव, ब्रह्मचर्य अपरिग्रहादि यमों का अपने अंदर विकास करने के लिए मैंने प्रयत्न किया है, और आज भी कर रहा हूँ, पर अब तक यह ख्याल नहीं होता कि मैंने उपर्युक्त अभेद को अपने अंदर विकसित करने का कभी यत्न भी किया हो।

मेरे जीवन में बकालत करता था तब अक्सर मेरे कारकून मेरे साथ ही रहते थे। उनमें हिन्दू भी थे और ईसाई भी। उनके अनुसार कहें तो गुजराती और मद्रासी। मुझे स्मरण है कि उनके विषय में मेरे दिल में कोई भेदभाव खड़ा हुआ हो। मैंने कटुनी जन समझता, और यदि पत्नी की ओर से इसमें विचार किया जाता तो मैं उससे झगड़ता। एक कुर्क ईसाई थे। मेरे माता-पिता पंचम (अंत्यज) थे। हमारे मकान की बनावट अंग्रेजी थी। उनके कमरों में मोरी नहीं थी, और मैंने सोचा कि न होनी ही चाहिए। इसलिए प्रत्येक कमरे में एक कुर्क से नहीं उठवाया जाता था। हमी-पति पत्नी-यह काम मैंने अपने आपको घर के आदमी के समान समझा। पर ये पंचम कुल में जन्म पाये हुए कुर्क नवीन नवजीवन तो हमी को उठाना चाहिए था। दूसरे वर्तनों के कुर्क उठा लेतीं। पर अब तो उसके लिये हद हो गई। हमारे बीच झगड़ा हुआ। मुझ से उठवाना उसे पसंद नहीं था और उठाना तो उसके लिए मुश्किल था ही। आंखों

से आंसू की बूंदें टपकते हुए हाथ में उस वर्तन को उठाती और अपनी लाल लाल आंखों से मुझे उलहना देते हुए वह सीढ़ी पर से उतरती—कस्तूर बाई की वह तस्वीर आज भी मेरी आंखों के सामने खड़ी हो जाती है।

पर मैं तो जितना प्रेमी उतना ही निष्ठुर पति भी था। मैं अपने आपको उसका शिक्षक भी मानता, और इसलिए अपने अंध प्रेम के वश हो कर उसे अच्छी तरह सताता भी था।

इस तरह केवल उसके उस वर्तन को उठाने भर से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे संतोष तो तभी हो जब वह उसे हंसते हंसते ले जाय। इसलिए मैंने जरा ऊँची आवाज में उसे दो बातें सुनाई। “यह ढोंग मेरे घर में नहीं होना।” मैं गरम हो गया। बात तीर के समान चुभ गई।

उसके दिल में आग धधक उठी। “तब अपना घर संभालिए। यह मैं चली।”

मैं तो ईश्वर को भूल गया था। दया का लव-लेश भी नहीं था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ियों के सामने ही निकास का दरवाजा था। उस दीन अवला को खींचता हुआ मैं दरवाजे तक ले गया और दरवाजे को आधा खोला।

आंखों से गंगा-जमुना वह रही थीं। कस्तूरबाई बोली तुमने तो लाज शरम सब छोड़ दी। पर मेरे तो है। कुछ तो शर्माओ। मैं बाहर निकल कर कहाँ जाऊँगी? यहां मेरे मा-बाप बैठे हैं, जो मैं वहां चली जाऊँ? मैं तो औरत की जात ठहरी। इसलिए मुझे आप की लात-बात सहना भाग है। अब जरा शर्माओ और दरवाजा बंद करो। कोई देख लेगा तो दो में से एक को भी भला न कहेगा।”

मैं लज्जित तो हुआ, पर मुंह वैसे ही लाल लाल बनाये रक्खा। दरवाजा बंद किया। अगर पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी तो मैं उसे छोड़ कर कहाँ जा सकता था? हमारे बीच लड़ाई-झगड़े तो बहुत हुए हैं। पर उनका परिमाण हमेशा अच्छा ही हुआ है। पत्नी ने अपनी अदभुत सहनशक्ति के बल पर मुझ पर हमेशा विजय प्राप्त की है।

यह वर्णन आज मैं तटस्थ रीति से दे सकता हूँ। क्योंकि यह घटना तो हमारे गुजरे जमाने की है। आज मैं न मोहांध पति हूँ न शिक्षक ही। कस्तूरबाई चाहे तो आज मुझे धमका सकती है। आज तो हम कसे हुए मित्र हैं। एक दूसरे के प्रति निर्विकार हो कर रहते हैं। वह



आज मेरी बीमारी में बिना किसी बदले की इच्छा किये मेरी शुभ्पा करने वाली सेविका है।

उपर्युक्त घटना सन १८९८ साल की है। उस समय ब्रह्मचर्य के पालन के विषय में मैं कुछ नहीं जानता था। उस समय मुझे इस बात का स्पष्ट ख्याल नहीं था कि पत्नी पति की तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख दुःख की संगिनी है। मैं जानता हूँ कि उस समय मैं तो उससे इसी तरह व्यवहार करता था, मानो वह विषय भोग का भाजन है, और पति की आज्ञा का पालन करने के लिए ही, फिर वह आज्ञा जो कुछ भी हो, सिरजी गई है।

सन १९०० से मेरे विचारों में गंभीर परिवर्तन हुआ। १९०६ तक उनका परिपाक हो गया। पर इसकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

यहां तो केवल यही कह देना काफी होगा कि ज्यों ज्यों मैं निर्बिकार होता गया। त्यों त्यों मेरा घर-संसार शांत निर्मल और सुखी होता गया।

इस पुण्य स्मरण से कोई यह न समझ ले कि हम आदर्श दम्पती हैं, या मेरी धर्म-पत्नी में जरा भी दोष नहीं है, या अब तो हम दोनों का आदर्श एक है। कस्तूरबाई तो बेचारी स्वयं भी इस बात को नहीं जानती होगी कि उसका अपना कोई स्वतंत्र आदर्श भी है या नहीं। संभव है, मेरे कई आचरण उसे आज भी पसंद न हों। इस विषय पर हम कभी चर्चा नहीं करते न इसमें कोई सार ही है। उसे न तो उसके माता-पिता ने शिक्षा दी और न मैं ही उसे कोई शिक्षा दे सका, जब इसके लिए उचित समय था।

परन्तु उसमें एक गुण बहुत बड़े परिमाण में है, जो अन्य सभी हिन्दू स्त्रियों में भी न्यूनाधिक परिणाम में होता है। मन कर्म और ज्ञान अथवा अज्ञान से भी उसने अपने जीवन की सार्थकता मेरा अनुगमन करने ही में मानी है, और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने के मेरे प्रयत्नों में उसने मुझे कभी नहीं रोका। इसलिए यद्यपि हमारी बुद्धि-शक्ति में बड़ा भारी अंतर है, तथापि हमारा जीवन संतोषी सुखी और ऊर्ध्वगामी है, ऐसा मुझे मालूम हुआ है।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

समान न्याय

सम्पादक, यंग इंडिया

प्रिय महानुभाव,

आप कहते हैं कि जिस प्रकार हिन्दू-मुसलिम एकता के बिना स्वराज्य असंभव है, उसी प्रकार अस्पृश्यता के नाश के बिना भी स्वराज्य असंभव है। मैं इन दोनों असम्भावनाओं को जोड़ कर यह कहना चाहता हूँ कि अस्पृश्यता के नाश के बिना हिन्दू-मुसलमान एकता ही असंभव है। दूसरे शब्दों में सब हिन्दुओं की एकता के बिना हिन्दू-मुसलिम एकता ही असंभव है। मैं आशा करता हूँ कि आप इस विधान को मान लेंगे। श्री पंडितजी उन लोगों में से हैं जिन्होंने, मालूम होता है, इस विधान की सचाई को अनुभव कर लिया है।

पर यह जो कुछ भी हो। 'हमारा कलंक' शीर्षक आप के बड़े महत्वपूर्ण लेख में, जिसमें कि आपने (उसी अंक में-२० जून के-छपे) मेरे पत्र का बड़े उदार शब्दों में उल्लेख किया है, एक कठिनाई दिखाई दी। यों वह लेख बड़ा सहायक है। पर मैं उस कठिनाई को आप के सामने पेश कर देने की इजाजत चाहता हूँ। आपने १९-२-२५ के यंग इंडिया में प्रकाशित अपनी योजना में मुसलमानों के लिए इसलिए खास सुविधा की थी कि भारतीय स्वराज्य के लिए हिन्दू-मुसलिम एकता आवश्यक है, यही महासमिति

के ताजे इकरारनामे में किया गया है,—यह हिन्दू-मुसलिम इकरारनामा नहीं जैसा कि आपका ख्याल है,—बल्कि सावित्रीजी वयों छोड़ दिया गया है जब कि आप इस बात को कबूल करते हैं कि राष्ट्र की उनसे एकता होना उतनी ही जरूरी है जितनी कि हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक एकता?

हम बालविधवाओं के दुःखों पर इस योजना में इसलिए विचार नहीं करते हैं कि (१) विधवाओं की कोई अपनी पृथक् जाति नहीं है, (२) उनकी सहायता के लिए कानून है ही (३) और हम में अधिकांश लोग उनके दुर्दशा—निवारण को (यथार्थः या गलती से) स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य कारण नहीं समझते। अतः अलूत जातियों की एकता के लिए कानून का बनाना बेकार है तो हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए भी वह उतना ही बेकार होगा पर हम व्यवहार में क्या देखते हैं? हम देखते हैं कि स्वराज्य को हिन्दू-मुसलिम एकता के नाम पर सब से अधिक झगड़ने वाली जाति की जरूरतों (सच्ची या काल्पनिक) पर ही अपने कानूनों, इकरारनामों और योजनाओं में अधिक ध्यान देते हैं न कि उस जाति की जरूरतों पर, जो सब से अधिक गरजमन्द है। और इस पर कारण यह बताया जाता है कि किसी खास जाति के लिए सुविधा करना अनिवार्य बुराई है।

अच्छा, मैं कहता हूँ कि यदि खास रियायत करना अनिवार्य बुराई है तो उसे वहीं बरदाश्त करें जहां वह सब से ज्यादा जरूरी हो,— अर्थात् दलित जातियों के लिए। क्योंकि आप स्वयं कहते हैं, कि वे मुसलमानों की अपेक्षा भी खास रियायत की अधिक मुस्तहक हैं। यह खास रियायत सिर्फ वहीं न की जाय जहां सब से अधिक शौर मचाया जाता है, जैसा कि हमारे मुसलमान देवगढ़ कर रहे हैं। अगर जातीय प्रतिनिधित्व की बुराइयों को जड़ से उखाड़ दिया जाय तो भी उसे सब के लिए हम एकसा रक्खें। अन्यथा अपनी योजना में किसी जाति का जरा भी उल्लेख न कीजिए। बल्कि अपनी योजना में इस बात को एक अनुलंघनीय पथ-प्रदर्शक नियम कीजिए कि शिक्षा, सरकारी नौकरी और प्रातिनिधिक संस्थाओं में प्रतिनिधि भेजने की बातों में समस्त नागरिकों के लिए (जातियों के लिए नहीं) समान अवसर हों।

मैं आशा करता हूँ कि आप महासभा की कार्य-समिति को दो में से किसी एक रास्ते पर ही चलने की सलाह देंगे। क्योंकि देश के एक नम्र विद्यार्थी और कार्यकर्ता को यही दो मार्ग न्यायोचित मालूम होते हैं। हमारे लिए तो यह कोई सवाल नहीं कि हम दो में से किस मार्ग को चूनें। और मेरे सूचना करने पर आपने इस दूसरे मार्ग के पक्ष में, जिसे मैं सच्चा राष्ट्रीय मार्ग कह सकता हूँ, ता. २०-८-२५ के 'यंग इंडिया' पृ. २९२ में अपनी राय जाहिर नहीं कर दी है? हां, आपने जरूर किया है। इसीलिए मैं आप से सविनय अनुरोध करता हूँ कि आप महासभा की उस समिति को, जिसे इस देश के भावी शासन का तैयार करने का काम दिया गया है, और जिसने इसके लिए सर्व साधारण से सूचनायें मांगी हैं, यही सलाह दें कि वह इन दोनों मार्गों को छोड़ कर तेल और पानी के बीच हानि कर समझौता करे, बल्कि इन्हीं दो में से किसी एक को और जहां तक संभव हो दूसरे मार्ग को चूनें। न्याय और विवेक के लिए उस दुर्गम को दूर कीजिए जो कि १९१६ के ऐकरार नामे का दोष था।



बल्कि अपने (इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी]

टिप्पण्यां

मंजूर किया । इसके विपरीत ऐसी योजना को कार्य में परिणत करने के लिए इससे अधिक शुभ आरंभ और कोई हो ही नहीं सकता कि देश में इस विषय पर वायु-मण्डल के होते हुए भी एक राष्ट्रीय महासंस्था जिसमें हिन्दुओं की संख्या बहुत ज्यादा है, सर्वानुमति से और हृदय से एक मुसलमान को अपना अध्यक्ष चुने । अकेली यही बात हिन्दुओं की ओर से इस बातका साफ प्रमाण होगी कि हिन्दू एकता को दिल से चाहते हैं । और राष्ट्रीय ख्यालात् वाले मुसलमानों में डॉ. अन्सारी की अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनता में अधिक आदर कोई नहीं है । इसलिए मेरे ख्याल से तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डॉ. अन्सारी ही राष्ट्रीय महासभा के कर्णधार हों क्यों कि केवल किसी योजना को मंजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नहीं है । दोनों पक्षों द्वारा उसे मंजूर कराने की बनिस्वत उसे कार्य में परिणत करना शायद कहीं अधिक जरूरी है । और यदि हम मानलें कि दोनों पक्षों का समाधान करनेवाली एक योजना मंजूर हो भी गई, तो उसपर अमल करते समय अविरत-सावधानी की आवश्यकता होगी । डॉ. अन्सारी ही इस काम के लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष हैं । इसलिए मैं आशा करता हूं कि सभी प्रान्त एक मत से डॉ. अन्सारी के नाम को ही उस सर्वोच्च सम्मान के लिए सूचित करेंगे जो कि राष्ट्रीय महासभा के अधीन है ।

स्वर्गीय सर गंगाराम

मृत्यु ने सर श्री गंगाराम को क्या उठाया हमारे बीच से एक सुयोग्य और व्यवहार दक्ष खेती शास्त्र के जानकार को, एक महान दाता को और विधवाओं के बैधु को उठा लिया । सर गंगाराम यों तो वयोवृद्ध थे किन्तु उनमें उत्साह युवकों का सा था । उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारों का आग्रह । इधर मुझे उनसे निकटसा सम्बन्ध प्राप्त करने का सुअवसर मिला था । और यद्यपि हम अनेकों बातों में एक दूसरे से भिन्न मत ही रखते थे, तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्ता थे । और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमान के कारण मैंने उनके विचारों से बार बार आदरपूर्वक किन्तु दृढ़ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलना में कल का युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढ़ता ही जाता था । साथ ही साथ भारत की दरिद्रता के विषय में उनके कुछ विचित्र विचारों से मेरा विरोध भी । वे मेरे साथ लम्बे वादविवाद करने के लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारों का कायल कर देने की उन्हें इतनी दृढ़ आशा थी कि उन्होंने उनके अपने खर्च से मुझे इंग्लैंड चलने तक के लिए आग्रह किया, और मेरे दिभाग से सब पागलपन की बातों को निकाल देने का विश्वास दिलाया । यद्यपि मैं उनकी इस बात को कबूल नहीं कर सका, और यद्यपि उन्होंने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इंग्लैंड जाने से पहले उनसे मिलकर उन्हें चरखे का, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देने का मैंने वचन दिया था । अतः पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अकस्मात् मृत्यु की यह वार्ता सुन कर मुझे कितना दुःख हुआ होगा । पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेंगे । क्योंकि वे इंग्लैंड किसी आमोद-प्रमोद के लिए नहीं गये थे । बल्कि ऐसे कार्य के लिए गये थे जिसे वे अपना अत्यंत जहरी कर्तव्य समझते थे । इसलिए वे तो कर्तव्य-क्षेत्र ही में मर गये । भारत को हर तरह से इस बात का अभिमान है कि सर गंगाराम के समान पुरुष उसके विख्यात सपूतों में से एक है । दिवंगत सुधारक के कुटुम्बी जनो को मैं अपने धन्यवाद और समवेदना साथ साथ भेजता हूँ ।

(यंग इंडिया)

मो० क० गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण वदी ७ संवत् १९८४

## भूखों मरते म्युनिसिपल बोर्ड

म्युनिसिपालिटियों, लोकल बोर्ड्स और जिला बोर्डों के काम काज में दिलचस्पी लेने वाले तथा उनसे अच्छे काम काज की आशा रखने वालों को श्री वल्लभ भाई पटेल का वह छोटासा भाषण जरूर पढ़ना चाहिए जो कि उन्होंने गुजरात की म्युनिसिपालिटियों और लोकल बोर्डों की पहली परिषद में दिया था। वह चौंका देने वाली तथा दिल में अशान्ति मचा देनेवाली जानकारी से पूरा भरा हुआ है। वे कहते हैं कि एक ओर तो अधिक अधिकार दे कर के इन संस्थाओं की जिम्मेदारियों को बढ़ा दिया गया है, तहां दूसरी ओर इन जिम्मेदारियों को अदा करने के साधनों को किसी न किसी प्रकार कम कर दिया है। वे स्वयं ही एक ऐसी म्युनिसिपालिटी के अध्यक्ष हैं जो भारत की पहले दूजे की म्युनिसिपालिटियों में से एक है, अतः म्युनिसिपालिटी की सेवा का भी उन्हें दीर्घ अनुभव है। स्वयं सरकार को अहमदाबाद की म्युनिसिपालिटी के सुशासन के लिए उनकी मुक्त कण्ठ से साफ साफ धावों में प्रशंसा करनी पड़ी है। उन्होंने अपनी म्युनिसिपालिटी के लिए मान सम्मान को ताक में रखकर इस तरह खून का पानी किया है, जैसा शायद ही किसी ने किया होगा। एक बार अध्यक्ष का स्थान मेंबर कर लेने पर उन्होंने फिरोजशाह महता के समान अपने पद के काम को ही अन्य किसी भी राष्ट्रीय काम की अपेक्षा—फिर वह चाहे कितना ही बड़ा और जरूरी हो,—अधिक महत्त्व दिया है; और अपने “धर्म” का निर्णय कर लेने पर उन्होंने उसीमें लगे रहना पसंद किया है, यद्यपि उनकी असाधारण योग्यता तथा कार्य परायणता की मांग अधिक ऊंचे अंशों में बार बार की गई है। इस लिए इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उनके भाषण का अध्ययन करना आवश्यक है। वे अपने विधानों की पुष्टि में सबी सबी बातें पेश करते हैं। जो चाहें, उनकी सचाई को जांच लें। उनका ख्याल है कि वर्मई इलाके की १९७ म्युनिसिपालिटियां बड़ी दुरवस्था में हैं। कहीं कहीं म्युनिसिपल कमिटी की शालाओं में काम करने वाले शिक्षकों की तनखाई पिछड़ गई है। काम को देखते हुए उनकी आमदनी सचमुच कम है। घनाभाव के कारण उन्हें नगर की स्वच्छता सम्बन्धी योजनाओं को ताक में रखना पड़ता है, इन्हीं कारणों से अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं को अलग रख दिया गया है। अपने अधिकांश विधानों के प्रमाण में श्री वल्लभभाई अपने ही दुःखद अनुभवों को पेश करते हैं और म्युनिसिपालिटी के विषय में सरकार की कच्ची नीति कि कड़ी आलोचना करते हैं। अध्यक्ष ने सरकार के मुकाबले में नागरिकों के प्रति भी कोई रिश्तायत नहीं की है। उनकी भी वे उतने ही कड़े शब्दों में टीका करते हैं। वे कहते हैं “हमारे-शहरों के निवासी अपने जीवन को इस तरह व्यतीत करते हैं, मानों वे शहरों में नहीं, बल्कि देहात में ही रह रहे हों। अनेकों घरानों में स्वच्छता विषयक कोई सुविधा ही नहीं होती, गंदी खराब चीजों के डालने के लिए वे कोई बर्तन नहीं रखते। घनी बस्ती वाले शहरों में रहते हुए भी वे जिस तरह चाहते हैं, अपने जानवरों को रखते हैं। गाल गायों और भैंसों के छुंड लेकर के आते हैं, और बिना किसी बात की परवा किए, जहां दिल में आता है, उन्हें लेकर

बस जाते हैं। साधारण तौर से तमाम लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता सम्बन्धी मामूली से मामूली नियमों के पालन की भी परवा नहीं करते। न वे उन नियमों का पालन अपने लिए करना जानते हैं न अपने पड़ोसियों के लिए। यह तो हमारा रोजाना अनुभव है कि लोगों की ऊंची मंजिलों पर से भी वे पानी या कूड़ा फेंकने में जरा नहीं हिचकिचाते। सड़कों पर से जाने आने वालों की ओर वे ध्यान तक नहीं देते। वे जहां चाहे थूक देंगे। जहां जी में आएगा, पाखाना-पेशाब कर देंगे। देहान्त की दशा भी अच्छी नहीं है। गांव के गांव जाते ही घूंटों पर हमारी नजर पड़ती है। गांव के तलाव पानी के कुंड होते हैं, और कूओं के पास भी वेहद गंदगी होना एक मामूली सी बात है।” श्रीयुत वल्लभभाई पटेल कहते हैं कि अधिकांश लोग उनसे इस बात में सहमत भी होंगे कि “ऐसी बातों में सरकारी सहायता की अपेक्षा करना एक गुनाह है।”

मेरा ख्याल है कि म्युनिसिपालिटियों में होने वाले छल-कपट को जो कि सच्चे कार्यकर्ता के लिए काम करना असंभव कर देते हैं, उन्होंने अपने भाषण में जान बूझ कर उल्लेख नहीं किया है। कुछ अच्छे से अच्छे कार्यकर्ताओं ने ऐसी परिस्थिति में काम करके देखा, परन्तु अन्त में उन्हें भी निराश ही होना पड़ा। इलाहाबाद में इन छल-प्रपंचों ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को भी पटने में बाधू राजेन्द्रप्रसाद को बहुत तंग किया। देशबन्धु चित्तरंजन दास को भी इनसे खूब झगड़ना पड़ा था, और उस जिम्मेदारी ने उनको करीब करीब चूर चूर कर दिया था। बात यह है कि म्युनिसिपालिटी के मतदाता में अभी नागरिकत्व की जिम्मेदारी की भावना का उदय ही नहीं हुआ। वह किसी प्रकार अपने आपको तमाम नागरिकों के भले के लिए जिम्मेदार ही नहीं समझता। हम शिक्षा-प्रणाली की रचना इस उद्देश से नहीं की गई है कि बच्चों को सामाजिक जिम्मेदारियों के विषय में समुचित शिक्षा और वक्तु मिले। इसीलिए ऐसे म्युनिसिपल कॉन्सिलर भी अपने आप को बिल्कुल के प्रति जिम्मेदार नहीं समझते।

असहयोग के उत्कर्ष के दिनों में मैंने यह सूचित किया था कि यदि लोग अपनी नागरिक जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझने लग जायें, तो म्युनिसिपालिटी का पौना काम तो सरकार की विना सहायता और आश्रय के ही हो जाय। मेहमदाबाद की म्युनिसिपल कमिटी के अंक और काम को ले कर मैंने दिखा दिया था कि नगर-निवासी अपनी शहर की सफाई वगैरा के काम को बिना कानूनी म्युनिसिपालिटी के उससे आधे खर्च में अच्छी तरह कर सकते थे। मैंने तो यह भी कहा था कि कानूनी म्युनिसिपालिटी की जरूरत तो बड़ी होती है, जहां कॉन्सिलरों से गांव के लोग सहयोग न करते हों, जब वे अपनी सुधार योजनाओं को लोगों की इच्छा न होने पर भी उन पर जबरदस्ती लाइना चाहते हों। मेहमदाबाद जैसे छोटे से स्थान के लिए तो उन्हें अपनी सड़कों को प्रकाशित करने, टिड्डी और रास्तों को साफ करने, तथा पाठशालाओं की देखभाल करने और यदि नागरिक भले मानस हों, अथवा चोर उचके या गुण्डों से शान्तिशील नागरिकों की रक्षा करने के लिए वे अपने ही रक्षक बनाना लें, तो नगर-रक्षा के लिए भी उन्हें ऐसे लम्बे चौड़े शासन क्षेत्र की जरूरत ही न होगी, जो जनता के सच्चे सेवक हैं, वही उसका सेवा लिए, कॉन्सिलर हो जावेंगे, न कि कीर्ति, छल-कपट या अपने गरजने मित्र तथा रिश्तेदारों को नौकरी दिलाने के लिए। इस लिए जरूर तो इस बात की है कि कार्यकर्ता आस्था पूर्वक जनता को नजर में रखें, जम्मेदारियों की शिक्षा दें, भाषणों द्वारा नहीं, बल्कि मूक सेवा द्वारा और यह करते हुए बदले या इनाम की जरा भी अपेक्षा न करें।



११ जुलाई, १९२७

आशा भी न करें कि लोग हमारे प्रति एहसानमन्दी करें। वल्कि इस बात के जनता की गन्दी आदतें और अंध विश्वासों को मिटाने का प्रयत्न करने पर वह उन पर कर गन्दी गन्दी चीजें भी फेंके तो वे हमेशा उसके लिए हैं। मैं सफाई विभाग के एक इन्स्पेक्टर को जानता हूँ कि जिनमें एक शहर की सड़कों की सफाई की देख-भाल करने का काम कर दिया गया था। परन्तु जब वह उत्साह पूर्वक उन पुनर्वासियों को निस्पृहतापूर्वक पकड़ने लगा, जो इस शहर की सड़कों को सरासर वेवकूफी के साथ गन्दी कर रहे थे तब लोगों ने उसे को इस तरह सताया कि वह मरते मरते बचा।

मोहनदास करमचंद गांधी

### एक लिपि

कुछ समय पहले किसी गुजराती पत्र प्रेषक ने 'नवजीवन' में एक पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने, 'नवजीवन' देवनागरी लिपि में लिखे की मुझे सलाह दी थी। उद्देश्य यह था कि मैं अपने इस पत्र को दृश्य स्वरूप दे दूँ कि भारत के लिए एक ही लिपि का आवश्यक है। सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि एक ही तमाम भाषाओं के लिए एक ही लिपि होना फामदेस्मन्द है। वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है। तथापि मैं पत्र-प्रेषक के कहने पर अमल नहीं कर सका। इसके कारण मैं नवजीवन में कुछ कह रहा हूँ। यहाँ उनके दोहराने की जरूरत नहीं है। पर इसमें यह नहीं, कि हमें इस कल्पना के प्रचार की ओर ध्यान देने के मौके को, जिसे कि यह महान देश-जागृति हमें प्रदान कर रही है, अपने हाथ से नहीं खोना चाहिए। इसमें शक है कि हिन्दू मुसलिम पागलपन पूर्ण सुधार के मार्ग में एक महान प्रयत्न है। पर इसके पहले कि देवनागरी भारत की एक मात्र लिपि हो, हमें हिन्दू भारत को इस कल्पना के पक्ष में कर देना चाहिए कि तमाम संस्कृत-जन्य और द्रविड भाषाओं के लिए एक ही लिपि हो। इस समय बंगाल के लिए बंगाली, पंजाब के लिए गुरुमुखी, सिंध के लिए सिंधी, उत्कल के लिए उरिया, मद्रास के लिए गुजराती, आन्ध्र देश में तेलुगु, तामिलनाड में तमिल, केरल में मलयाली और कर्नाटक में कानरी लिपि है। मैं बिहार और दक्षिण की मोड़ी को तो छोड़ ही देता हूँ। तमाम भारतीय और राष्ट्रीय कामों के लिए यदि इन तमाम लिपियों के प्रयोग देवनागरी का उपयोग होने लग जाय तो वह एक बड़ी शक्ति होगी। उससे हिन्दू भारत सुदृढ़ हो जावेगा और भिन्न भिन्न प्रत्येक भाषा, जिसे कि भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं का तथा लिपियों का अनुभव से जानता है कि नवीन लिपि को सीखने में कितनी देर लगती है। इसमें सन्देह नहीं कि देवनागरी के लिए कोई बात कठिन नहीं है। और इन भिन्न भिन्न भाषाओं की कुछ तो बड़ी ही सुंदर हैं, अध्ययन करने में बहुत ही मजेदार हैं। परन्तु इस त्याग की आवश्यकता है कि हमें इन भाषाओं से नहीं कर सकते। राष्ट्रीय नेताओं को चाहिए कि वे अपनी भाषाओं को आसान कर के रखें। इसलिए देवनागरी के समान सरल जल्दी सीखने योग्य लिपि तैयार करनी चाहिए। और देवनागरी के समान सरल जल्दी सीखने योग्य लिपि तैयार करनी चाहिए। भारत में इस काम को करने के लिए एक संस्था की आवश्यकता थी—शायद अब भी है। मुझे पता नहीं कि क्या कर रही है। परन्तु यदि यह काम करना है तो उसी पुरानी संस्था को मजबूत बना देना चाहिए,

या उसी काम के लिए एक नवीन संस्था निर्माण कर लेना चाहिए। इस हलचल को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के साथ नहीं जोड़ना चाहिए। इससे तो गड़बड़ी हो जायेगी। यह दूसरा काम धीरे धीरे किन्तु अच्छी तरह हो ही रहा है। एक लिपि एक भाषा के प्रचार को बड़ा आसान कर देगी। पर दोनों के काम एक निश्चित हद तक ही साथ साथ चल सकते हैं। हिन्दी या हिन्दुस्तानी के प्रचार का उद्देश्य यह कदापि नहीं कि वह प्रान्तीय भाषाओं का स्थान ग्रहण कर ले। यह तो उनकी सहायक और आन्तर-प्रान्तीय कामों के लिए है। जब तक हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य कायम रहेगा तब तक उसका रूप द्विविध होगा। वह कहीं तो फारसी लिपि में लिखी जायेगी और उसमें फारसी और अरबी शब्दों की प्रधानता होगी। कहीं वह देवनागरी लिपि में लिखी जायेगी और तब उसमें संस्कृत शब्दों की बहुतायत होगी। जब दोनों के हृदय एक हो जावेंगे तब एक ही भाषा के ये दोनों रूप भी एक हो जावेंगे। और इस सर्व-सामान्य रूप में संस्कृत फारसी अरबी तथा वे सभी शब्द होंगे जो उसके पूर्ण विकास और विचार प्रकाशन के लिए आवश्यक होंगे।

परन्तु भिन्न भिन्न प्रान्तों की भाषाओं का अध्ययन करने में लोगों को कठिनाई न हो इसलिए एक लिपि के प्रचार का उद्देश्य जरूर यह है कि वह दूसरी तमाम लिपियों का स्थान ग्रहण कर ले। इस उद्देश्य को पूर्ण करने का सब से बढिया तरीका यह है कि एक तो तमाम शालाओं में हिन्दुओं के लिए देवनागरी का पठना अनिवार्य कर दिया जाय, जैसे कि गुजरात में किया जाता है, और दूसरे, भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं का महत्वपूर्ण साहित्य देवनागरी में छापना शुरू कर दिया जाय। कुछ हद तक तो यह प्रयत्न किया भी गया है। मैंने देवनागरी लिपि में छपी 'गीतांजलि' देखी है। पर यह प्रयत्न बहुत बड़े पैमाने पर करने तथा ऐसी पुस्तकों के छापने के लिए प्रचार करने की जरूरत है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के नजदीक लाने के लिए विधायक सूचनायें करना वर्तमान समय के ढंग के प्रतिकूल है, तथापि मैं जिस बात को इन स्तम्भों में और अन्यत्र कई मर्तबा कह चुका हूँ, उसे फिर यहाँ दोहराये बिना नहीं रह सकता कि यदि हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों के निकट आना चाहते हैं। तो उन्हें उर्दू पढ़नी ही चाहिए और हिन्दू भाइयों के निकट आने की इच्छा रखनेवाले मुसलमानों को भी हिन्दी जरूर सीख लेना चाहिए। हिन्दू और मुसलमानों की सच्ची एकता में जिनका विश्वास है, वे इस भयंकर पारस्परिक द्वेष के दृश्यों को देख कर चिंतित न हों। यदि उनका विश्वास सच्चा है तो वह जहाँ जहाँ संभव होगा, उन्हें जरूर मौका मिलने पर सहिष्णुता, प्रेम और एक दूसरे के प्रति सौजन्य युक्त कार्य करने के लिए पहले प्रेरित करेगा। और एक दूसरे की भाषा सीखना तो इस मार्ग में सब से पहली बात है। क्या हिन्दूओं के लिए यह अच्छा नहीं कि वे भक्त हृदय मुसलमानों के द्वारा अधिकार—युक्त वाणी में लिखी किताबों को पढ़ें और यह जानें कि वे कोरान और पैगम्बर साहब के विषय में क्या लिखते हैं; उसी प्रकार क्या मुसलमानों के लिए भी यह अच्छा नहीं कि अधिकारी-भक्त-हिन्दुओं द्वारा लिखी धार्मिक पुस्तकों को पढ़ कर वे यह जान लें कि गीता और श्रीकृष्ण के बारे में हिन्दुओं के ख्यालात क्या हैं, वनिस्वत इसके कि दोनों पक्ष उन तमाम खराब बातों को जानें जो कि एक दूसरे की धार्मिक पुस्तकों तथा उनके प्रवर्तकों के बारे में अज्ञानी और तोड़ मरोड़ कर बातें बनाने वालों के जबानी कही जाएँ ?

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी



## बंगलोर का पत्र

प्रदक्षिणी हो गई। प्रदक्षिणी के आखिरी दिन भी गांधी जी ने लम्बा भाषण दिया। उसके बाद दो स्थानों पर उन्हें खासे लम्बे भाषण देना पड़े। पर अभी तो सब कुछ कुशल है। इसलिए अब प्रवास का कार्यक्रम थोड़ासा शुरु कर दिया है। उसी प्रकार बंगलोर की भी अनेक संस्थाओं में जाना शुरु कर दिया है। फिर भी प्रवास-क्रम पर 'तबियत अच्छी रही तो' यह शर्त तो रखनी ही पड़ी है। क्यों कि अभी उनका स्वास्थ्य पूर्व-स्थिति को तो प्राप्त नहीं हुआ है।

### प्रदक्षिणी

दरमियान पिछले सप्ताह की कुछ बातें कह जाऊँ। जिस प्रदक्षिणी के लिए गांधी जी ठेठ नंदीदुर्ग से ही बहुत आग्रह करते थे, जिसे वे अपने कार्यक्रम के शुभारंभ के बतौर समझते थे, और अपनी बीमारी के नहीं, बल्कि जिस प्रदक्षिणी के प्रभाव के ही लोगों पर पड़ने की वे इच्छा रखते थे, वह हो गई। और यह कहा जा सकता है कि यह परिणाम बहुत जबरदस्त था। रोज बारिश होती थी। पर फिर भी लगभग १०,००० मनुष्य प्रतिदिन उसे देखने के लिए जाते थे। लगभग १०,०००) की खादी भी बिक गई। परन्तु प्रदक्षिणी के अंक तो मैं स्वतंत्र लेख में देना चाहता हूँ। प्रदक्षिणी खोलते समय गांधी जी का लिखा हुआ भाषण पढ़ा गया। तब वे बोले :

“इस प्रदक्षिणी की व्यवस्था ऐसी ही की गई है कि उनके लिए वह एक अध्ययन करने की चीज साबित हो जो यह समझना चाहते हैं कि खादी का दावा क्या है और उस दावे को उसने किस हद तक सबा कर के दिखा दिया है। यह कोई तमाशा नहीं, जो देखा और भूल गये। न यह सीनेमा ही है। यह तो एक प्रयोग-संस्था है, जहाँ मानवजाति का चाहनेवाला, अपने देश को चाहनेवाला जा कर अनेक वस्तुओं के विषय में अपना विश्वास कर ले। जिनके दिल में खादी के विषय में कुछ शंका है, उन्हें मैं प्रदक्षिणी देखने के लिए निमन्त्रित करता हूँ। मेरी उनसे सिफारिश है कि वे वहाँ कुछ मिनट नहीं, बल्कि कुछ घंटे जा कर देखें। उन्हें यह न मालूम होगा कि हमारा समय व्यर्थ गया और साथ ही उनकी शंका भी रफ हो जायगी। मैं निस्पृह टीकाकारों से भी वहाँ जाने की सिफारिश करूँगा। उन्हें वहाँ खामियां दिखाई देंगी। कोष्ठक, नक्षे, कच्चे या अधूरे मालूम होंगे। परन्तु एक भी वाज में उन्हें हृदय की न्यूनता नहीं दिखाई देगी।”

यह कहा जा सकता है कि वहाँ अध्ययन कर्ता, टीकाकार और शंकाशील तीनों प्रकार के लोग गये थे। यही नहीं, बल्कि वे प्रत्येक कमरे में गहरा निरीक्षण कर के काम की बातें नोट करते जाते थे, आपस में या प्रदक्षिणी के चालकों से चर्चा करते थे, और साहित्य भी खरीदते थे। प्रदक्षिणी के साथ साथ जो व्याख्यान-माला रखी गई थी, उसमें प्रतिदिन खादी ही पर भाषण सुनने के लिए हजारों लोग आते, और घंटे घंटे दो दो घंटे तक शांतिपूर्वक ध्यान के साथ उस सब भाषणों और निबन्धों को सुनते, जो वहाँ पढ़े जाते। इतनी शान्ति और ध्यान की तो मैसूर की संस्कारी जनता से ही आशा की जा सकती है। अध्ययनकर्ताओं, शंकाशीलों तथा टीकाकारों ने प्रदक्षिणी से क्या क्या लाभ उठाये होंगे तो खुद वे ही बता सकते हैं। उस अंधी कातनेवाली और कातने की कला में चमत्-कवि विभक्तनेवाली, प्रदक्षिणी की राणी के समान वीरम्मा को देख कर, उसके सरस और पीजन की ध्वनि उनकी समझ में आई की नहीं, यह भी मैं और बंगलोर ही कह सकता हूँ। परन्तु बंगलोर का

वायुमण्डल तो आज यह कह रहा है। लोग अभी तक प्रदक्षिणी की ही बातें कर रहे हैं। कितने ही लोग खादी की दीक्षा ले लेकर के गये हैं। प्रदक्षिणी में इतनी खादी बिकने पर भी, शहर के खादी भंडार में नियमित रूपसे प्रतिदिन २००-३००) की खादी बिकती ही रहती है। जैसा कि श्री गंगाधर राव देशपांडे जी ने कहा “अगर बंगलोर खादी के मंत्र को ग्रहण न करेगा तो फिर कौन कर सकता है ?

### आदि कर्नाटक वालकों के बीच

“आदि कर्नाटक,” “आदि आंध्र,” “आदि द्रविड” ये सुंदर नाम इस भाग के अङ्गुलियों के हैं। मैसूर सरकार तो अपने ‘अङ्गुलियों’ का वर्णन इसी सुंदर नाम से करती है, और उनके लिए वह सब कुछ करती है, जितना राज्य से हो सकता है। यह सत्य है कि इसका परिणाम ब्राह्मण-वर्ग पर अभी बहुत नहीं हुआ है। पर होगा धीरे धीरे। उनके लिए अनेकों शिक्षा-संस्थाएँ बनाई गई हैं। बच्चों को शिष्य-वृत्ति दी जाती है, मुफ्त कपड़े मिलते हैं, मुफ्त मकान मिलता है — सभी पाठशालाएँ उनके लिए खुली हैं। ६०५ खास शालाएँ हैं। ‘इन वर्गों’ के लिए खास सहकारी संस्थाएँ खोली गई हैं, जिनकी संख्या १२५ से भी अधिक है। अलावा इसके जमीन खरीदने, मकान बनाने तथा खेती के औजार खरीदने के लिए खास सुविधाएँ कर दी गई हैं। और केवल हिन्दू राज्य ही नहीं, बल्कि दोबान स्वयं मुसलमान होने पर भी इन आदि कर्नाटकों को शुद्ध, पवित्र हिन्दू बनाने के लिए अपना शक्ति भर कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने धारासभा में भाषण देते हुए कहा था। “हमारा उद्देश्य यही होना चाहिए कि इनको हिन्दुओं के संस्कार ही दिखे जायें। क्योंकि वे हिन्दू जाति के ही हैं। हिन्दू समाज के प्रत्येक मित्र, और मैसूर के हर एक हितैषी, को चाहिए कि वह इस काम में सरकार से सहयोग करें।

इस काम के वालकों के लिए स्थान स्थान पर छात्रालय हैं, जहाँ पर विद्यार्थियों के रहने, खाने-पीने, पुस्तक, फी, कपड़े आदि सब प्रकार की सुविधाएँ मुफ्त रखी गई हैं। सरकार प्रत्येक बालक पर लगभग २००) प्रतिवर्ष खर्च करती है। इस तरह के एक छात्रालय के बालक पिछले सप्ताह गांधीजी से मिलने के लिए आये थे। बहुतसों के मस्तक पर भस्म की रेखाएँ थीं। सभी तेजसी मालूम होते थे। सब में स्फूर्ति थी। यों महज देख कर उन्हें कोई अछूत नहीं कह सकता था। कुछेक ने संस्कृत श्लोक सुनाये। कितनों ही ने कन्नडा, तामिल, तेलुगु और हिन्दी के भजन सुनाये। इनके शुद्ध संस्कारी उच्चार और मधुर कंठ सुन कर हमें उन लोगों के दुर्भाग्य पर दया आई, जो उन्हें अछूत समझते हैं। श्री रामानुज ने इनके लिए साधुओं के प्रबंधों को एकत्र कर तामिल वेद की रचना की है। वह इस वर्ग में खूब पड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त एक ब्राह्मण, जो छुआछूत के रोग से बचा हुआ है, इनके बीच रह कर, इन्हें हिंदू धर्म के तमाम संस्कारों का ज्ञान देता है। इतने प्रेम से जहाँ बच्चों का पालन हो रहा हो, वहाँ यदि उनमें स्वाधीन वृत्ति अधिक बढ जाय तो कौन आश्चर्य की बात है ? फलतः कई बार ये स्वतंत्र बालक अपने माता-पिता से भी लड़ पड़ते हैं। “इन्हें जो २००) वार्षिक खर्च दिया जाता है उसमें से १) प्रतिमास हाथ-खर्च का होता है। यदि उसे कम कर-दिया जाय, तो डेढ़ सौ बालकों से डेढ़ सौ रुपये बच जायें। और हम अन्य सात आठ बालकों को ले सकें। पर इन्हें यह मंजूर नहीं कि, इनका हाथ-खर्च कम कर दिया जाय। सब इस बात का विरोध कर रहे हैं।” इस तरह कमिटी के अध्यक्ष ने गांधीजी से कह दिया। श्रीव ही गांधीजी को इन बालकों से कुछ कहने का मौका सो मिला गया। उनके संस्कृत उच्चार, प्रत्येक प्र



१ जुलाई, १९२७

१९२७

एक प्रदर्शनी  
शहर के खाली  
वादी विक्की  
नी ने क्यू  
कर कौन कर

ये सुंदर नाम  
ने 'अच्छा'  
लिए वह सब  
सत्य है कि  
है। पर  
ए वनाई गई  
मिलते हैं  
ए खुली हैं।  
कारी संस्थाएं  
अलावा इसके  
खरीदने के

नद राज्य ही  
गादि कर्नाटकी  
क्रोशिश का  
गा। 'हमारा  
कार ही दिने  
न के प्रत्येक  
के वह इ  
छात्रालय है  
कपडे और  
त्येक बालक  
रह के एक  
लिए आवे  
परी तेजवी  
र उन्हें कोई  
क सुनावे।  
न सुनावे।  
उन लोगों  
रामानुज ने  
की रचना  
तिरिक एक  
व रह कर  
ने प्रेम से  
धीन वृत्ति  
कई बार  
"इन्हें जो  
हाथ-खर्च  
तो बालकों  
बालकों को  
कर दिव  
कमिटी के  
बालकों के  
प्रत्येक प्र

गये बुद्धिपूर्ण जवाब, इत्यादि के लिए धन्यवाद तो गांधीजी से दिये, और सब से पहले तो उन्हें उनके जीवन के विषय

कहा:—  
बालको, क्या यह अनर्थ न होगा, अगर तुम अपनी सादगी को बर्बाद कर दो, और तुम्हारे अपने ही भाइयों के लिए हाथ-खर्च का एक रुपया छोड़ने से इन्कार कर दो। मैं तुम्हें दिलाता हूँ कि मेरे पिता मुझे कभी हाथ-खर्च के लिए नहीं दिलाते। भारत के दूसरे किसी भी भाग में लंचे वर्ण के बालकों को तुम्हारे जितनी स्वाधीनता और सुविधाएँ नहीं हैं। राज्य तुम्हें शिक्षा देता है, खिलाता, पिलाता है, सो इसलिए नहीं कि तुम ही बन जाओ, और घर पर जा कर अपनी मा बहनों से ज़िंदा करो। तुम्हें सब अपना काम खुद करना सीख जाना पड़ेगा। कपडे धोना, खाना पकाना, वर्तन मलना इत्यादि कोई काम नौकरों से नहीं लेना चाहिए। यदि यह करोगे तो एक नहीं अधिक त्याग कर के तुम कितने ही अधिक बालकों को जैसी सुविधाएँ दिला सकोगे। पर तुम्हें देख कर के मेरे में यह सवाल खड़ा होता है कि ये विदेशी लोग कहां से पैसे ? क्या तुम इसका कारण जानते हो ?

एक चंचल बालक ने कहा "जी हां, इसलिए कि हम विदेशी कपडे पहने हुए हैं।"

"बिल्कुल ठीक। तो, बताओ तुम विदेशी कपडे क्यों पहनते हो ? इसलिए कि तुम्हारी कमिटी के लोग और शिक्षक भी विदेशी कपडे पहनते हैं ? तुम्हारी इन टोपियों की चौथाई कीमत में मैं तुम्हें उजली टोपियाँ दे सकता हूँ। और तुम यह तो नहीं न करो कि बड़े जो कुछ करें, वह सब तुम्हें भी करना चाहिए ? तुम्हारे पिता या तुम्हारे जाति के लोग शराब पीवें, मरी-मांस खाएं गो-मक्षण करें, तो तुम तो यह नहीं न करोगे ? ( उसी बालक ने कहा कि विद्यार्थियों ने इन सब चीजों का त्याग कर दिया है। ) ठीक, तब तो यह बात तुम्हारे लिए बुरा नहीं होनी चाहिए। तुम्हें अपने सुपरिडेन्डेन्ट से कहना चाहिए कि हमें खादी के कपडे दो। खादी में अधिक खर्च न पड़े, तो हमें थोड़े कपडे दीजिए। पर मिल के या विदेशी कपडे तो हम नहीं पहनेंगे। क्या तुम जानते हो कि देश में ऐसे कितने बालक हैं, कि जिन्हें तुम्हारे जितना खाने पीने या पहनने की चीजें नहीं मिलती ? यही नहीं बल्कि जिन्हें तुम्हारे हाथखर्च के पैसे भी खाने के लिए नहीं मिलते ? उनके लिए तुम खादी पहनने लग जाओ, कातने लग जाओ। खादी प्रदर्शनी में जाना खादी पहनने का अभ्यास करना।

### मिशनरी मित्रों के साथ

उधर प्रदर्शनी जारी थी, और उधर मिलने जुलने वाले आते जाते थे। इस बार एक मिशनरी दम्पती आई। दोनों पति पत्नी सहृदय थे। डेन्मार्क के रहनेवाले हैं, और यहां कॉलेज में काम करते हैं। आते ही मि. व्यूरम् ने गांधीजी के सफरी चरखे को देखा। "ऐसा चरखा तो हमने प्रदर्शनी में भी नहीं देखा। वह तो कोई नई किस्म का चरखा ज्ञात होता है।" गांधीजी ने कहा "हां यह सफरी चरखा है, घड़ी कर लेने पर यह डॉक्टरों की की संयुक्त के समान हो जाता है, और गरीबों के लिए तो यही की संयुक्त है न ?" मि. व्यूरम् बड़े खुश हो गये उन्होंने प्रदर्शनी में अपने विचार कहे, और उसके विषय में आनंद प्रकट किया। फिर अपने विद्यार्थियों की बातें कहने लगे "हमारे विद्यार्थी जंगली हो गये हैं। सब को यूरोपीय रहनसहन का ही शौक

लगा हुआ है।" गांधीजी बाले "ईसाई होने के मानी यदि जंगली होना हो, मद्यमांस खाना-पीना शुरू कर देना हो, तब तो ईसाई धर्म का अनर्थ ही हुआ न ?"

मिसेस व्यूरम् ने इसे कबूल किया और बोली "इस प्रवाह को अब रोकना चाहिए। ईसाई लोग अब इस बात को समझने लग गये हैं। क्या आपको उनमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता ?"

गांधीजी बोले— "विचार में तो परिवर्तन हो गया है, परन्तु आचार में मैं अभी जरा भी परिवर्तन नहीं देख पाया हूँ।" यह कह कर उन्होंने अपना कलकत्ता के ईसाई युवकों का अनुभव कह सुनाया।

इस पर से मि. व्यूरम् को एक अच्छा सा प्रश्न सूझ गया। "गांधीजी, क्या आप इस विषय में अपने विचार बतावेगे कि यदि मिशनरियों को इस देश में रहना हो तो उन्हें यहां किस तरह का कार्य करना चाहिए ?"

"जरूर, प्रसन्नता के साथ। उन्हें अपनी दृष्टि और वृत्ति को ही बदल देनी चाहिए। आज तो वे बाइबल ले कर के लोगों के पास जाते हैं, और कहते हैं कि बाइबल के सिवाय तुम्हारा उद्धार असंभव है। ईसाई हो जाओ तब मुक्ति होगी। वे दूसरे धर्मों की निन्दा भी करते हैं। और ईसाई धर्म को सब धर्मों से श्रेष्ठ बता कर पेश करते हैं। इस वृत्ति को बदल देना चाहिए। वे जैसे हैं वैसे ही लोगों से पेश आवें। वे यह देखने का प्रयत्न करें कि हिन्दू अधिक अच्छे हिन्दू और मुसलमान अधिक अच्छे मुसलमान हों। हिन्दू यदि अपने संस्कारों को छोड़ कर भ्रष्ट हों तो उन्हें दुख होना चाहिए। ठेठ देहात में जा कर के उन्हें काम करना चाहिए। ऐसी एक भी बात को लोगों के सामने उन्हें पेश नहीं करना चाहिए जो लोगों के उत्तमोत्तम संस्कारों और उनके जीवन की उत्तमोत्तम वस्तुओं की विरोधिनी हो। उन्हें इन लोगों के सामने केवल अपने स्वच्छ जीवन का ही उदाहरण पेश करना चाहिए। यदि यह होगा तो मिशनरियों का काम शोभा देने लगेगा। फिर लोग उनके कवनों को शंका और विरोधी वृत्ति से नहीं सुनेंगे। यदि संक्षेप में कहूं तो लोगों का उद्धार करने नहीं, बल्कि उनकी सेवा करने—उनके बीच रह कर काम करने के लिए ईसाइयों को उनके पास जाना चाहिए।"

"मैं आपका बहुत उपकृत हूँ। हम अगले वर्ष डेन्मार्क जा रहे हैं। आप कुछ संदेश दीजिएगा ?"

"संदेश तो मैं दे चुका।"

"उसे तो हम जरूर ही वहां पहुंचा देंगे। पर हमारे देश के लिए आप कुछ न कहेंगे ?"

"ठीक, यदि आप लोगों को भारत की सेवा करनी है और आप का भारत पर प्रेम है तो इस प्रेम को स्पष्ट रूप दीजिए। आप लोग दुग्धालय के काम में बड़े निपुण हैं। मैं चाहता हूँ कि आप हमारे देश को यह सिखावें कि उत्तम दुग्धालय कैसे चलाये जाते हैं—और गो-पालन कैसे किया जाता है।"

मिसेस व्यूरम् भी सावधान चित्त से सुन रही थीं। उन्होंने सूत कातना सीखने के लिए बड़ी आतुरता जाहिर की। गांधीजी ने दोनों को साग्रह निमन्त्रित किया कि वे डेन्मार्क जाने से पहले एक बार आश्रम पर आ कर रह जावें। दोनों ने निमन्त्रण स्वीकार करते हुए एहसानमन्दी जाहिर की।



## नये रूप में कबीर

इस सप्ताह का आरम्भ एक नाटक से हुआ, जिसे देखने के लिए गांधीजी गये थे। खेल था 'कबीर'। पंडित तारानाथ की अमेरियोर ड्रैमैटिक एसोसिएशन ने उसे खेला था। कल्पना भी सुंदर थी और उस पर अमल भी सुंदर रीति से किया गया था। अपने खेल का तपन खादी को देने की यह कल्पना बड़ी ही भली थी। खेल का चुनाव पंडित तारानाथ के औचित्य तथा सुगुण के कोमल भावों को व्यक्त करता है। खेल का हिन्दी में खेला जाना सिद्ध करता है कि पण्डित तारानाथ हिन्दी और खादी के कितने अच्छे प्रचारक हैं। फिर आश्चर्य नहीं यदि इस त्रिवेणी संगम ने गांधीजी को सुगम कर दिया हो। इधर गांधीजी ने वरसों में यह पहला ही नाटक देखा जिसमें वे शुरू से अखिर तक बैठे रहे। हां आलोचक के लिए भी इस में कुछ बातें मिल सकती थीं। पर वह सारा प्रयत्न तीनों हिन्दी और खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए ही था। इसलिए गांधीजी ने तीन शब्दों में इस नाटक पर अपनी टीका सुना दी— 'नये रूप में कबीर'। सब की यथायोग्य तारीफ करने पर उन्होंने, 'दरिद्रनारायण के आत्मनिर्वाचित 'प्रतिनिधि' को एक थैली देने (जिस की कीमत नहीं हो सकती), दक्षिण भारत में सुन्दर हिन्दी सुनाने, और खेल में खादी की पोशाक पहनने इस तरह त्रिविध आनन्द के लिए नाट्य समाज को धन्यवाद दिया।

“जब मैं किसी देश भाई को, फिर वह राजा हो, रंक हो, बकील हो, डाक्टर हो, व्यापारी हो, समाज की उंची से उंची श्रेणी का हो, या नीचे से नीचे के दर्जे का हो, खादी पहने हुए नहीं देखता हूँ तब मुझे असीम दुख होता है। मालूम होता है इस नाटक को खेलनेवालों ने मेरे इस दुख को अनुभव कर लिया है। मैं उस दिन की आशा कर रहा हूँ जब सभी हमारी इस मातृभूमि के धर्म को पालन करेंगे। मैं यह भी आशा करता हूँ कि यहां जो खेल में दिखाया गया है, वही नाटक खेलने वालों तथा हमारे जीवन का स्थायी हिस्सा हो जायगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस नाटक की स्मृति उन अन्य आनन्द दायक स्मृतियों में से होगी जिन्हें ले कर मैं कर्नाटक को छोड़ूंगा।—यदि परमात्मा की आज्ञा हो कि मैं कर्नाटक से जीवित अवस्था में लौट जाऊँ।”

यह प्रसंगोचित ही था कि मैसूर एक्झ्यूकेटिव कौन्सिल के पहले मेम्बर को ही इस खेल की आमदनी—(५००) गांधीजी को भेंट करने के लिए चुना गया।

(नवजीवन)

## महादेव हरिभाई देशाई

## चीन में अ-प्रतिकार

पॉल जोन्स-शान्दंग के रहने वाले एक अमेरिकन-नीचे लिखी घटना का वर्णन करते हैं।

“शान्दंग प्रान्त की राजधानी टिप्पान् फू में हड़ताली विद्यार्थी कहीं जपानी सिपाहियों को मिल गये। सिपाहियों को हुक्म था ता. १२-६ १९१९ की दोपहर को सबको पर जितने विद्यार्थी मिलें सब को गिरफ्तार कर लिया जाय। फौज खुद सवारों की थी, जिसका नेता एक अफसर था। ज्यों ही वह तलवार निकाल कर के आगे बढ़ा लड़ के सबको पर घुटने टेक कर खड़े हो गये। कितनों की आंखों से आंसू भी बहने लगे और वे बोले “यह तो अंतरात्मा का प्रश्न है” सिपाहियों ने इस दृश्य को देखते ही अपने अफसरों का हुक्म मानने से इन्कार कर दिया। विद्यार्थी सुरक्षित रहे। (जेम्स ऑफ नॉन व्हायोलेंट कोर्शन पृ. २४५-५६-४२)

(बं० ६०)

वा० दे०

## उदेपुर में खादी

कुछ अर्सा हुआ जब दैनिक पत्रों में यह खबर छपी थी कि विजोलिया के खादी कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये हैं, और वहां के खादी संगठन के व्यवस्थापक से इस बात का वचन मांगा गया है कि वह अधिकारियों को उन तमाम लोगों की खबर देता रहे जो उसके पास जाएं। इस खबर के मिलते ही श्रीयुक्त जमनालालजी सच्ची परिस्थिति को देखने के लिए उदेपुर पहुँचे। उदेपुर में अधिकारियों से मिलकर विजोलिया होते हुए जमनालालजी चरखा संघ की कौन्सिल की बैठक में शामिल होने तथा दक्षिण भारतीय खादी प्रदर्शनी के समय उपस्थित रहने के लिए बंगलौर आये, और अपने इस बंगलौर के दौरे में उन्होंने मुझे कहा कि सचमुच विजोलिया में दो खादी-कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये थे। पर वे खादी का काम करने के लिए नहीं, बल्कि राजकीय राजनीति में हस्तक्षेप करने के संदेह पर गिरफ्तार किये गये थे। अधिकारियों ने जमनालालजी को विश्वास दिलाया कि खादी के काम में कोई विघ्न करना नहीं चाहते। बल्कि वे उल्टा खादी को चाहते हैं और कुछ निश्चित शर्तोंपर खादी के काम की खासी सहायता भी करने के लिए तैयार हैं। तब जमनालालजी विजोलिया के स्थाय अधिकारियों से भी मिले। और अब यह तय हो गया है कि खादी के कार्यकर्ताओं से कोई वचन न लिया जाय क्योंकि स्थानीय अधिकारियों और जमनालालजी के बीच यह तय हो गया है कि खादी कार्यकर्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी तरह राज्य की राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, बल्कि अपने खादी उत्पादन और बिक्री के लिए ही लोगों को संगठित करते रहेंगे। जमनालालजी को यह वचन देने में स्पष्ट ही कोई आपत्ति ही नहीं हो सकती थी। क्योंकि यह तो चरखासंघ की निश्चित और अपरिवर्तनीय रीति चली आई है कि देशी राज्यों में वह अपने आपको खादी के काम में ही सीमित रखे।

(यं. इं.)

मो० क० गांधी

## फुटकर खादी बिक्री की दूकानें

## उत्कल

बरहमपुर

कटक, कैप्रेस खादी मंडार,

पुरी कैप्रेस खादी मंडार,

बालासोर कैप्रेस खादी मंडार,

विशेष—उत्पत्ति केन्द्र भी, खास कर बिक्री का कुछ काम करते हैं।

## खानगी

कटक पुरी अकाल सहायता मंडार

पुरी अकाल सहायता खादी मंडार

साखीगोपाल ” ” ”

चम्पापुर हाट, सेवाश्रम,

बंबई

अल इन्डिया खादी मंडार,

वर्मा

कैप्रेस खादी मंडार,

स्वराज्याश्रम

नयी सड़क, चांदनी

चौक, कटक

लायन्स रोड, पुरी

स्वराज्य मन्दिर, बालासोर

कोडाला खादी मन्दिर

नयी सड़क, कटक

स्वराज्याश्रम, पुरी

साखीगोपाल

चम्पापुर हाट, बैरी

(जिला कटक)

प्रिन्सेस स्ट्रीट, बंबई

२८, मार्चेंट्स स्ट्रीट

रंगून



वार्षिक मूल्य ४ )  
छः मास का „ २ )  
एक प्रति का „ -)।

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ५० ]

मुद्रक-प्रकाशक  
स्वामी आनंद

अहमदाबाद, श्रावण सुदी ७ संवत् १९८४  
गुरुवार, ४ अगस्त १९२७ ई०

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,  
सारंगपुर सरकीगरा की वाड़ी

## मुसीबतजदा गुजरात

गुजरात—हिन्दुस्तान का हरा भरा चमन गुजरात — आज उजड़ गया है । चार पांच दिनों की ५० से ८० इंच तक की मूसलधार बारिश ने गुजरात और पूर्व काठियावाड़ के अधिकांश हिस्सों को ऐसी मुसीबत में डाल दिया है जो पहले कभी न पड़ी थी । पूरे एक हफ्ते तक हम लोग सारे हिन्दुस्तान से बिलकुल अलग पड़े हुए थे । सारा देश समुद्र बना हुआ था । अकेले अहमदाबाद शहर में ही छह हजार घर बैठ गये हैं, और गरीबों की गिरी हुई झोपड़ियों की तो कोई गिनती ही नहीं है ।

गांवों की हालत बयान के बाहिर है । गांव के गांव बिलकुल बह गये हैं । स्कान, झोपड़ियां, खेत की हरी हरी फसल, ढोर, जानवर, चारा, बड़े से छोटे सभी तरह के सामान बिलकुल बह गये हैं और गांव स्मशान बन रहे हैं ।

परमात्मा की कृपा से, बरोदे को छोड़ कर और सभी जगह बहुत कम आदमी मरे हैं । लोगों ने अपने देशबन्धुओं को एकमन से बचाया है । सब के लिए इस एक मुसीबत के आगे जाति और समाज के भेद और अलूतपने तक का अभिशाप बिलकुल भूल गया है । बरोदे में और उसके आसपास के गांवों में बहुत लोग मरे हैं — भयङ्कर प्राणनाश हुआ है ।

रोज रोज खबरें आती हैं कि लोगों ने असाधारण, गैरमामूली हिम्मत, बहादूरी दिखायी है । असहयोग आन्दोलन ने लोगों को जो तालीम दी थी, इसका असर इन विपत्ति के दिनों से अधिक और कभी देखने में नहीं आया था । आफत जितनी ही अधिक बढ़ती गयी, लोगों ने अपनी हिम्मत भी उतनी ही बढ़ायी और सभी कहीं उन्होंने अपना काम खूबी से सँभाला ।

अब जब सारे सूबे की—आफत के मारे सभी हिस्सों की—पूरी खबर मिल गयी है, और इस विपत्ति का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है, मैं सारे भारतवर्ष से यह प्रार्थना करता हूँ । जब कभी दूसरे प्रान्तों में लोगों की तकलीफ दूर करने का मौका आया है, गुजरात ने हमेशा हाथ बँटाया है और खुदा के रहम से, परमात्मा की परम कृपा से उसे पहले कभी हाथ फैलाना नहीं पड़ा है । मगर इस बार यह आफत इतनी बड़ी है कि दुःखी, मुसीबतजदा गुजरात की ओर से सारे भारतवर्ष की सहायता मुझे मांगनी ही पड़ती है ।

गुजरात सूबा काँग्रेस कमिटी [ प्रान्तिक सभा ] की ओर से पिछले छह दिनों से सेवा कार्य चल रहा है । सहायभूति और स्वयंसेवकदलों की सहायता के तार नासिक, कर्णाटक, अन्धेरी और दूसरी जगहों से मेरे पास आये हैं । मैं इसके लिए उनका शुक्रगुजार हूँ, आभार मानता हूँ । यहां के स्थानीय कार्यकर्ता और स्वयंसेवक जो पीड़ित जगहों की पूरी वाकफियत रखते हैं, काफी तायदाद में मिल गये हैं और हमें आदमियों की जरूरत नहीं पड़ेगी । धन की बड़ी या छोटी, सभी प्रकार की सहायता हमारी समिति कृतज्ञता के साथ स्वीकार करेगी और 'यंग इन्डिया' में उसका प्राप्ति-स्वीकार छपेगा ।

वल्लभ भाई पटेल

सभापति गुजरात प्रान्तिक काँग्रेस कमिटी



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय ११

## अँगरेजों से गाढा परिचय

यह प्रकरण लिखते समय, ऐसा प्रसंग आया है कि मुझे पाठकों को जना देना चाहिए कि यह कथा किस प्रकार लिखी जाती है।

जब कथा लिखनी आरंभ की, उस समय मेरे पास कोई योजना तैयार न थी। अपने पास में कोई पुस्तक, रोजनामचा या दूसरे कोई कागज रख कर मैं ये प्रकरण नहीं लिखता हूँ। यों कहा जा सकता है कि लिखने के दिन अन्तर्यामी की जैसी प्रेरणा होती है, वैसी मैं लिखता हूँ। यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं जानता कि मुझमें जो क्रिया चलती है वह अन्तर्यामी की कही जायगी वा नहीं। पर बहुत वर्षों से यह कहना मुझे अघटित नहीं लगा है कि, बड़े से बड़े या छोटे से छोटे कहे जाने लायक मैंने जो कुछ काम किये हैं, उनकी परीक्षा करने पर वे अन्तर्यामी के प्रेरित लगे हैं।

अन्तर्यामी को मैंने देखा नहीं है, जाना नहीं है। जगत की भ्रष्टा मैंने अपना ली है। यह भ्रष्टारूपी पहचान छोड़ कर मैं उसे अनुभव रूप में ही पहचानता हूँ। उसे अनुभव रूप में पहचानना भी सत्य पर एक प्रकार का प्रहार है, इस लिए यही कहना शायद अधिक उचित होगा कि मेरे पास उनका परिचय देने वाले शब्द नहीं हैं।

मेरी मान्यता है कि उस अन्तर्यामी के वश हो कर मैं यह कथा लिख रहा हूँ।

पिछला प्रकरण शुरू करते समय मैंने उसका शीर्षक दिया था, 'अँगरेजों के परिचय।' पर प्रकरण लिखते समय मैंने देखा कि उसे लिखने के पहिले, जो पुण्य स्मरण मैं लिख गया हूँ, उन्हें लिखना जरूरी था। यों वह प्रकरण लिखा गया और लिखने के बाद शीर्षक बदलना पड़ा।

अब यह प्रकरण लिखते समय भी, नया धर्म-संकट पैदा हुआ है। यह महत्व का प्रश्न हो पड़ा है कि अँगरेजों का परिचय देते हुए क्या लिखूँ, और क्या छोड़ दूँ। जो कुछ प्रस्तुत हो, उसे न कहने से सत्य को धक्का पहुँचता है, परन्तु यह कथा लिखनी ही प्रस्तुत नहीं है। इस लिए प्रस्तुत अप्रस्तुत के झगड़े का तुरत फैसला करना मुश्किल हो पड़ता है।

आत्मकथा मात्र की इतिहास के रूप में अपूर्णता और उसकी कठिनाइयों के विषय में मैंने जो पहले पढा था, उसका अर्थ आज अधिक समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि सत्य के प्रयोगों की जितनी मुझे याद है, आत्मकथा में वह सब नहीं देता। इसका पता कैसे हो कि सत्य को दिखलाने के लिए मुझे कितना देना चाहिए? अथवा एक तर्फी अधूरे सबूतों की न्यायमन्दिर में क्या कीमत लगायी जायगी? लिखे हुए प्रकरणों की जांच करने कोई बैठाला चले तो इन प्रकरणों पर कितना अधिक प्रकाश डाले? और जो वह टीकाकार की दृष्टि से काम लेवे तो कितने 'पोल' निकाल कर जगत को हँसावे और आप फूल उठे?

यों विचारते हुए घड़ी भर ऐसा ही हो आता है कि प्रकरण लिखना बन्द कर देना ही क्या अधिक योग्य न होगा? पर इस न्याय से कि शुरू किया हुआ काम जहां तक अनीतिमय नहीं दिखलायी पड़े, उसे छोड़ना नहीं चाहिए, जहां तक अन्तर्यामी रोकता नहीं है, वहां तक इसे जारी रखने का ही निश्चय किया है। आलोचकों को संतोष देने के लिए यह कथा नहीं लिखी जाती है। सत्य के प्रयोगों में यह भी एक प्रयोग ही है। किन्तु यह दृष्टि तो है ही

कि उसमें से साथियों को कुछ आश्वासन मिले। इसका आरंभ ही उनके सन्तोष की खातिर हुआ है। स्वामी आनंद और जैरामदास मेरे पीछे नहीं लगते तो शायद यह आरंभ होती ही नहीं। इससे अगर इसे लिखने में कोई दोष होता हो तो वे भागीदार हैं।

अब शीर्षक को पकड़ना चाहिए। जिस प्रकार मैंने हिन्दुस्तानी मुंशियों और दूसरों को घर में बतौर कुटुम्बी के रखवा, उसी प्रकार अँगरेजों को भी रखने लगा। मेरा यह ढंग मेरे साथ रहने वालों में सभी को अनुकूल न था। पर मैंने रहन-रहाना पूर्वक रखवा था। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सबको रखने में अहमदी ही थी। कितने सम्बन्धों से कड़वे अनुभव हुए। पर वे अनुभव देशी, परदेशी सब के साथ हुए। कड़वे अनुभवों के लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं हुआ है। कड़वे अनुभव होने पर भी, और यह जानते हुए भी कि मित्रों को अनुविधा होती है, सहनी पड़ती है, मैंने अपनी टेव नहीं बदली और मित्रों ने उसे उदारता पूर्वक सहन किया है। नये नये आदमियों के साथ का सम्बन्ध जब मित्रों को दुःखद निकला है, तब मैं उनके दोष काटने में हिचका नहीं हूँ। मेरी ऐसी मान्यता है कि आस्तिक पुरुष को जो सब किसीमें अपने भीतर समाये हुए परमेश्वर को देखते हैं, सबके साथ अलिस भाव से रहने की शक्ति होनी चाहिए। और जब जब बेखोजे अवसर आवें, उनसे दूर न भाग कर, सिर्फ नये नये सम्बन्धों में पड़ कर और तौभी रागद्वेष रहित रह कर ही वह शक्ति पैदा की जा सकती है।

इस लिए जब जोअर युद्ध शुरू हुआ, मेरा घर भरा हुआ होने पर भी मैंने जोहान्सवर्ग में आये हुए दो अँगरेजों को रख लिया। दोनों धियातोफिस्ट थे। एक का नाम किचन था। इनका प्रसंग फिर आवेगा। इन मित्रों के सहवास ने भी धर्मपत्नी को स्लया ही था। उसके नसीब में मेरे कारण रोने के प्रसंग तो अनेक आये हैं। इतने निकट सम्बन्ध में बिना पदों के अँगरेजों को रखने का तो यह मेरा पहला ही अनुभव था। इंग्लैण्ड में मैं उनके घर में रहा हुआ हूँ सही, मगर वहां तो उनके रहन सहन के वश हो कर और वह रहना भी होटल में रहने जैसा था। यहां उससे उलटी बात थी। ये मित्र कुटुम्बी जन हुए। उन्होंने बहुत कुछ हिन्दुस्तानी तरीके के रहन सहन का अनुसरण किया। जो कि घर में बाहर का ठाट वाट तो अँगरेजी ढब का था, मगर अंदर का रहन सहन और खराक बगैरह तो खास कर हिन्दुस्तानी ही थी। उन्हें रखने में कितनी कठिनाइयों का उठ खड़ा होना मुझे याद है परन्तु तौभी यह अवश्य कह सकता हूँ कि दोनों जने घर के दूसरे लोगों से हिल मिल गये थे। डरबन की बनिस्वत जोहान्सवर्ग में यह सम्बन्ध कहीं आगे बढ़ा।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

## क्षमा प्रार्थना

गत सप्ताह यहां पर अतिवृष्टि होने के कारण, हमारे कई कार्यकर्ता बड़ी मुसीबत में पड़ गये और गांधी जी का भी कोई लेख, रेल और तार बन्द होने से, नहीं आ सका। लाचार प्रेस एक हफ्ते बंद रहा और 'हिन्दी नवजीवन' न निकल सका। आशा है पाठक इसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

## व्यवस्थापक

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत =) पोस्टेज -); बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की बी. पी. नहीं भेजी जायगी। बी. पी. मैगानेवालों को आधा दाम पेशगी भेजना चाहिए।



४ अगस्त, १९२७

## श्रद्धा और अंधविश्वास

काली चौदस की रात को, ठीक ठीक आधी रात के समय किसीने अपनी नाक काटी हो तो दूसरे दिन उसके रोंने की उमंगती है। लोगों की यह कहावत है। भगवद्गीता में कहा कि कल्याणकारी पुरुष की दुर्गति नहीं होती। सामान्य लोगों को दोनों ही पर एक सा अंधविश्वास होता है क्योंकि दोनों बातों का प्रत्यक्ष अनुभव किसीको नहीं होता। अब इनके वचाव में भोलेभाले लोग कहते हैं, 'नाक न जमी तो इसमें भूल अपनी है।' ज्यों-ज्यों अनुसार काली चौदस की रात का ही ठीक निश्चय न हुआ होगा या मधरात का क्षण ही हाथ न आया होगा। इसीसे रोंने की नाक न उगी। पूर्वजों के वचन झूठे हो ही नहीं सकते। कोई न कोई अपनी ही भूल होनी चाहिए।' श्रद्धालु आदमी कहेंगे, 'कल्याणकारी धर्मराज पर भले ही आफत आ पड़ी। मगर वह तो सभी आफत ही न थी। बाहरी हानि लाभ की कीमत ही क्या? शाश्वत भगवान् का सहवास मिलने से भी बड़ कर दूसरी कोई सद्गति होगी? कष्ट उठाना पड़े तो उसे तो कायर ही आफत में गिनते हैं। यह तो भगवान् का वचन है कि कल्याणकारी की दुर्गति हो ही नहीं सकती।'

प्राकृत आदमी तो इन दोनों वचावों से असन्तुष्ट रहता है। इनकी दृष्टि में दोनों ही वचनों पर विश्वास करना अंधविश्वास की ही निशानी है। दंभ का पर्दा फाड़ फेंके, औपचारिक धर्मनिष्ठा से बाज आवे तो आज इन प्राकृतिक लोगों की ही संख्या अधिक मिलेगी।

मगर तौमी ऊपर के कहे हुए दो वचन और उन पर श्रद्धा क्या एक समान ही गिनी जायगी? पहला वचन भौतिक जगत के विषय में गलत नियम बनाता है तो दूसरा, आध्यात्मिक वचन का प्रतिपादन करता है। पहले की जांच करने को जो कसौटी चाहिए, दूसरे को उसकी जरूरत ही नहीं। आदमी को नयी नाक चाहिए ही किस लिए? काली चौदस के साथ इसका क्या लेना देना? मधरात में ऐसा कौनसा जादू भरा असर है? ज्योतिष से काली चौदस का निश्चय करना और मधरात का हिसाब रखना सुदिकल भले ही होवे, मगर अशक्य तो नहीं है। प्रत्यक्ष अनुभव के बिना ऐसी बात सच्ची मानी ही नहीं जा सकती, और ऐसे विचित्र अनुभव करने के पहले यह देखना चाहिए कि इसमें कुछ बुद्धि का प्रयोग या सतलब्ध है या नहीं। ऐसी बात सुनी नहीं कि तुरत अमल कर देखा, ऐसा बेवकूफ तो सारी सृष्टि में कोई मिलेगा ही नहीं।

दूसरा वचन आध्यात्मिक है। दूसरा आदमी उपकार करे या न करे, अथवा अपकार ही करे, तौमी इसका विचार किये बिना समीके साथ जो सज्जनता का व्यवहार करता है, ऐसे कल्याणकारी आर्य पुरुष को आन्तरिक समाधान मिलता है। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव की बात है। बाहरी आपत्तियां चाहे जितनी आ पड़ें, परन्तु अपने हृदय की महत्ता ही इन्हें अटूट आनन्द देती है। इससे वे अस्वस्थ नहीं होते। समाज भी जानता है कि ऐसे आदमी आपत्ति में भी चमक उठते हैं। इनके चरित्र का असर अधिकाधिक होता जाता है। इनकी बुद्धि प्रसन्न रहती है। और इससे इनकी दुर्गति नहीं होती। ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव न भी हुआ तौमी क्या? दुराचरण क्या आर्य हृदय को पसन्द पड़ेगा? यही समाधान इन्हें भारी शान्ति देता है कि बड़े से बड़े प्रलोभन में भी वे दुराचरण की ओर नहीं झुके। बदला लेने की भी खातिर आदमी जब नीच कृत्य करता है, वह अपनी आत्म प्रतिष्ठा का हनन करता है। समाज उन्हें भले ही बखाने, पर इस सामाजिक प्रतिष्ठा का, हृदय की नापसन्दगी के आगे कुछ भी कीमत नहीं है। आत्मप्रतिष्ठा खो कर आदमी

जब सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करता है तो वह उसे फवती ही नहीं। आदमी चाहे जितने आवेश से अपना वचाव करे, पर वह उसे अपने आप ही पोला लगता है। इसीसे हृदय कबूल करता है कि यह स्वयंसिद्ध बात है कि कल्याणकारी की दुर्गति नहीं होती। इस वचन का भावार्थ हृदय धर्म के साथ इतना अधिक समरस है कि इस वचन को कसौटी पर चढ़ाना हृदय ही नहीं चाहता।

धार्मिक श्रद्धा के और वहम के वचनों के बीच जमीन आसमान का अंतर होता है। आज का प्राकृत जमाना कितनी बार धार्मिक श्रद्धा के नाम धर्म के साथ चलते हुए तमाम वहमों को बनाये रखना चाहता है। और इसका कड़वा फल अनुभव कर के ध्वराये हुए लोग हिलते हुए झूले को एक धक्का लगा कर वहमों के साथ धार्मिक श्रद्धा को भी उड़ा देना चाहते हैं।

हाथ की कुहनी से दो बलिष्ठ जमीन खोदने से पाताल दिखलायी पड़ता है। इस बात की और इस वचन की कि ब्रह्मचारी संपूर्ण नीरोगी और प्रसन्नप्रज्ञ होता है, प्रकृत लोग एक समान ही कद्र करते हैं। मगर इससे ये दो वचन कहीं समान कोटि के नहीं हो सकते। कायिक के साथ मानसिक ब्रह्मचर्य का अनुभव करने वाले आज इतने कम आदमी हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय का विधान बहुत लोगों को अतिशयोक्ति से भरा लगे तो इसमें नयापन नहीं है। पर जिन लोगों ने इस दिशा में कुछ संगीन और लंबा अनुभव किया है, वे अपने अनुभव पर से अनुमान बांध कर इस वचन को संपूर्णता से स्वीकार करने को तैयार होते हैं। वे कहेंगे कि घर्षण बिना (frictionless) यंत्र तैयार करना जिस प्रकार सुदिकल है, मगर कम से कम रगड़ या घर्षण की कलें, अधिक से अधिक सफलता से तैयार की जा सकती हैं, वैसे ही संपूर्ण ब्रह्मचर्य की कोटि को पहुँचे हुए देहधारी का मिलना दुर्लभ है, तौमी उससे इसके विषय में कहे गये वचन को आंच आने वाली नहीं है। गणित में अनंत श्रेणी के सिद्धान्त ज्यों निर्विवाद सत्य होते हैं, वैसे ही सरल कोटि के आध्यात्मिक सिद्धान्त भी सत्य होते ही हैं।

वहम और श्रद्धा के बीच का साम्य और विरोध ध्यान में रख कर, हमें धर्म संस्करण में प्रवृत्त होना चाहिए। ज्यों मंद अग्नि के ऊपर राख जमती है और वह आग को दवा मारती है, उसी प्रकार धर्म में दाखिल हो गये अनेक वहम धर्म का गला घोट देते हैं। वहम अज्ञान में से उत्पन्न होते हैं। ज्ञान के विषय में, सत्य के बारे में, प्रखर जिज्ञासा के अभाव में ये टिकते हैं। वहम तो खरी नास्तिकता ही है। लापवा वैद्य, जो हो सो ही दवा, जिस किसी रोगी को बेवकूफी या लापवाई से देता है, वैसे जिन्हें सत्य की, सच्ची धार्मिकता की लगन लगी नहीं होती है, ऐसे मूढ़ लोग ही, वहमों को चलन देते हैं, और झूठे आश्वासन से शान्ति मांगनेवाले दुर्बल हृदय के आदमी, ऐसे वहमों का संग्रह करते हैं। जिन्हें जंगा होना है, वे अपनी तबीअत के साथ दवा की भी पूरी पूरी चिकित्सा करते हैं, वैसे ही जिनको धार्मिकता पैदा करनी है, जो सत्य रूपी आरोग्य चाहते हैं, वे हर एक विश्वास को बुद्धि और अनुभव को कसौटी पर कसे बिना रह नहीं सकते।

धर्म के विषय में हमारा समाज इतना लापवा हो गया है कि लोगों को सनातन श्रद्धा पैदा करने को और समाज की ज्ञानशक्ति तथा प्राणशक्ति को कुतर खानेवाले असंख्य वहमों को भी खोद निकालने की भी नहीं पड़ी है। समाज में, और खास कर निष्पाप तथा मिहन्ती आमर्षण में अगर अकर्म्मण्यता, निराशा, और बुढ़ापा आ गये हैं तो इसका जितना बड़ा कारण भूलमरी है, उतना ही बड़ा, अश्रद्धा और वहम हैं। इन्हें दूर कर के जहां तक संस्करण नहीं किया, वहां तक समाज का संजीवन ही नहीं होने का। इन भूलमरी



दूर करेंगे तभी लोग हमारी बातें सुनेंगे भी, पर जब तक वे उसे सुनने को तैयार हों, तब तक वहाँ का नाश करनेवाली और शत्रु उत्पन्न करनेवाली वेदवाणी उन्हें सुनाने के लिए स्वयंसेवकों को तैयार रहना चाहिए। अंधा अंधे को रास्ता नहीं दिखा सकता।

(नवजीवन)

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, श्रावण सुदी-७ संवत् १९८४

### हिन्दुस्तान की जहाजरानी

श्रीयुक्त विठ्ठलभाई पटेल ने सिन्धिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी के नये जहाज 'जलबल' का नाम संस्कार किया था। इस संस्कार की याद से कुछ राष्ट्रीय स्वामिमान या आनन्द का उद्रेक नहीं होता। यह तो हमारी पतित दशा की केवल याद दिलाता है। हमारे अत्यन्त छोटे, नगण्य परमाणु के समान छोटे बड़े में एक और छोटे से जहाज की बढती से होना क्या है? इसकी याद इस बात से और भी अधिक दुःखद हो जाती है कि हमारे तिजारती बड़े को हमारी ही स्वतंत्रता के विरुद्ध या उन देशों के बरखिलाफ काम में लाया जा सकता है जिनसे हिन्दुस्तान का कोई झगडा न होवे बल्कि उनकी आकांक्षाओं से पूरी सहायभूति भी होवे, जैसे कि चीन है। चीन को स्वतंत्रता के लिए लड़ने का साहस दिखलाने का दंड देने के लिए, स्वदेशी कम्पनियों के जहाजों को चीन भेजने से सरकार को रोकने का कोई साधन नहीं है। तब इसमें कोई ताज्जुब नहीं कि विठ्ठलभाई पटेल ने जो बड़े लाट की सभा के सदस्य होते हुए भी सच्चे कौमी-सेवक ही बने रहेंगे, हिन्दुस्तान के तिजारती जहाजों को गिन गिन कर मारने के इतिहास की याद दिलायी। उन्होंने श्रोताओं को बतलाया कि, "एक जमाने में हिन्दुस्तानी लोग अब्बल दर्जे के अपने जहाज आप बना कर, अपने प्रबन्ध में आप चलाते थे और हिन्दुस्तान के माल देशावर को ले जाते थे। परिस्थिति के एक ऐसे संयोग ने," जिसका जिक्र करना सदर साहेब ने जरूरी नहीं समझा, "हिन्दुस्तानियों के लिए उसे जारी रखना अत्यन्त कठिन कर दिया, इस व्यवसाय को बिल्कुल मार डाला, और यों हिन्दुस्तानियों के लिए अपना भूत गौरव फिर जिलाना, बेइन्तिहा मुश्किल कर दिया।" श्रीयुक्त विठ्ठलभाई ने और आगे कहा, "फिर यह भी जानना रोचक होगा कि पिछले पचास वर्षों में हिन्दुस्तानी जहाजी कम्पनियां बनीं, मगर वे सब, दरों की लड़ाई और दूसरी तरकीबों से नष्ट कर दी गयीं। इन तरकीबों के बारे में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है।" मगर जैसे किसी रोगी को अगर जरा सी भी उमेद, थोड़ी सी ताकत होने से आराम मिलता है और जरा भी ताकत पैदा हो तो घरवाले उसके साथ खुशी मनाते हैं, उसी प्रकार, विठ्ठलभाई ने सिन्धिया स्टीम नैविगेशन कम्पनी के इस काम पर खुशी और उमेद हासिल की है। आइए, हम आशा करें कि यह जलबल कई नये जहाजों का अग्रगामी होगा और निकट भविष्य में ही, हिन्दुस्तान के पुराने नौ-निर्माण व्यवसाय को जिला उठाना संभव होगा, और कोई देशभक्त, किसी ऐसे जहाज का नाम संस्कार कर सकेगा, जो हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों द्वारा बना होवे, और जिसके बारे में यह डर न होवे कि वह हमारे खिलाफ हमारे ही या किसी दूसरी कौम के साथ लड़ने के काम में लाया जायगा या दूसरे देशों को लड़ने का लोभ उसे होगा।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

(नवजीवन)

### बुद्ध की गोरक्षा

बुद्ध के समय में गवालम्भ की दुष्ट रीति प्रचलित थी और मालूम होता है कि गाय को अभी अभयवचन नहीं मिला था। सुत्तनिपात ( बुलवर्ग, ब्राह्मण धम्मिक सुत्त ) में यह प्रसंग आता है कि कोशल देश के कितने वयोवृद्ध और धनवान् ब्राह्मण बुद्ध के पास गये और उनसे पूछा, 'आज के ब्राह्मणों में क्या सनातन धर्म का पालन होता दिखलायी पड़ता है?'

बुद्ध : 'नहीं।'

ब्राह्मण : 'हमें बतलाइए कि पुरातन ब्राह्मण रहन कसा था।'

बुद्ध : 'हे ब्राह्मणो, सुनो।'

न पसू ब्राह्मणानां न हिरञ्जं न धानियम्।

सज्जायधनधञ्ज्यासुं ब्रह्म निधिमपालयुम्॥

पुराने जमाने के ब्राह्मण, गोरु, सोना, अनाज, कुछ भी नहीं रखते थे। उनका धन धान्य जो कुछ कहो स्वाध्याय ही था। और वे ब्रह्मरूप भंडार की रक्षा करते थे।

अट्टचत्तरीसं वस्सानि कोमारप्रज्ञचरियं चरिस्सुते।

विज्ञाचरणपरिचिट्ठि अचरं ब्राह्मणा पुरे॥

वे ब्राह्मण अडतालीस वर्ष तक कुमार ब्रह्मचर्य का पालन करते और विद्या तथा सदाचार की खोज चलाते थे।

यो नेसं परमो आसी ब्रह्मा दग्धपरक्कमो।

स वापि भेयुनं धम्मं सुपिन्नेन नागमा॥

उनमें जो हठ पराकमी और श्रेष्ठ ब्राह्मण होते थे, उन्हें स्वप्न में भी विकार न होता था।

वे चावल, घी, तेल आदि मांग लाते और उनका होम करते थे।

यथा माता पिता भ्राता अज्जे वापि च जातका।

गावो नो परमा मित्ता यासु जायन्ति ओसथा॥

जिस प्रकार मा, बाप, भाई और दूसरे सगे अपने मित्र हैं, उसी प्रकार गाय हमारी परममित्र है, जिससे मृत संजीवनी औषधियां भी निकलती हैं।

अन्नदा वलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।

एतमत्थवसं जत्वा नास्सु गावो हनिस्सुते॥

गाय हमें अन्न, बल, कान्ति, तथा सुख देनेवाली हैं, यों जानकर ये ब्राह्मण गाय को नहीं मारते थे।

सुखमाला महाकाथा वण्णवन्तो यसस्सिन्धो।

ब्राह्मणा सेहि धम्महि किञ्चकिञ्चेषु उस्सुका।

याव लोके अवत्तिस्सु सुखमेधित्थस्यं पजा॥

वे ब्राह्मण सुकुमार, प्रचंड शरीर, कान्तिवाले, यशस्वी तथा स्वधर्म परायण थे। जब तक वे इस जगत में थे, प्रजा सुखी थी।

पर पीछे दिन पलटे। राजा को उलटा उपदेश मिला। इससे बकरी जैसी गरीब गाय लात से वा सींग से किसीको मारती नहीं, घडा भर भर कर दूध देती है तो भी गोमध चालू हुआ।

न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केनचि।

गावो एल्लकसमाना सोरता कुंभदूहना।

ता विसाणे गहेत्वाण राजा सत्थेन घातयि॥

पीछे देव, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस सभी गाय की विपत्ति देख कर बोल उठे कि 'यह तो महा अधर्म है'।

ततो च देवा पितरो इन्द्रो असुरक्खसा।

अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं निपत्ति गवे॥

पहले तीन ही रोग थे, इच्छा, भूख तथा बुढ़ापा, पर पशु को मारना शुरू किया इस लिए अज्ञानवश रोग हो गये।

तयो रोगा पुरे आरुं इच्छा अनसं जरा।

पसूनां च समारम्भा अट्टानवुत्तिमागमुम्॥

(नवजीवन)

वालजी गोविन्दजी देसाई



## दक्षिण भारत खादी प्रदर्शन

प्रदर्शन का उद्देश्य मैं पिछले पत्र में कर चुका हूँ। राष्ट्रीय कला के मकान में सब सामान रखना पड़ा क्योंकि वरसात के कारण कुछ भी बाहर नहीं रखा जा सकता था। शाला के बालकों छुट्टी तो मिली परन्तु उन्होंने छह दिनों तक काम खूब दिया।

प्रदर्शन के पाँच स्वाभाविक विभाग कहे जा सकते हैं: (१) योग विभाग (२) प्रचार विभाग (३) खास वस्तुओं का प्रदर्शन (४) दृक्कान और (५) प्रतियोगिताएँ।

सारे प्रदर्शन का हेतु खादी के प्रचार और विक्री की वनिस्वत, शिक्षण ही अधिक था। और इसका उद्देश्य शिक्षण था इस लिए दक्षिण ने दूसरे सूतों की भी मदद ली थी। सावरमती चर्खा के शिक्षण विभाग से कितनी महत्व की चीजें ले कर श्री मंगललाल गांधी आये थे। उनकी कोठरी ही एक छोटा सा प्रदर्शन बनी हुई थी। आश्रम के अच्छे से अच्छे कातने और धुननेवाले आये थे। प्रदर्शन के बाहर जो भाषण होते थे, उनमें खास भाषण, प्रान्त के बाहरवालों में, सालवीय जी, जमनालाल जी और जेन्द्रबाबू जैसे नेताओं के थे। कपड़ों में बंवाई राष्ट्रीय स्त्री सभा की बहिन, जमना बहिन और रतन बहिन अपने वर्गों की कारीगरी कितने नमूने ले आयी थीं। अब हर एक विभाग का अलग अलग वर्णन देखें।

**१. प्रयोग विभाग**—यह तो मानों सारे प्रदर्शन का कवचिन्दु — सरकज था और इसमें भी, कर्णाटक, तामिलनाडु और आंध्र की कातने वाली बहिनें मध्य थीं। उनमें भी सबका आकर्षण दो बहिनें करती थीं। इनमें एक तो बेलगांव की अंधी बहिन थी। आँखें न होने से दिन भर बैठी काता ही करती थी और इसकी एकाग्रता और उत्साह ही मानों सारे प्रदर्शन की आँखें बनी हुई थीं। इनकी पड़ोसिन बहिन कीरम्मा आंध्र की थीं। इनके धुनने का ढंग, अपने ही जैसा इनका ऊँचा, परन्तु कई साल से काम देते रहने के कारण ढीला ढाला और तौभी सोने जैसा काम करनेवाला चर्खा, और उसमें से सूत निकालने का इनका ललित ढंग देख कर सभी इस कला-रानी के पास घड़ी भर खड़े हो जाते। काम समझने वाले तो उनकी कला में से कुछ सीखने की कोशिश करते और न जाननेवाले उनके हाथ के जादू को ही देख कर चकित हो रहते थे। दूसरी तीन कातनेवालियाँ, दक्षिण के आदि क्षेत्रों से खास इसी लिए बुलवायी गयी थीं कि जिसमें सब कोई देख लें कि सिर्फ चर्खे से कैसे गुजरान चल सकता है।

एक कोने में, छोटी सी कोठरी थी। उसके ऊपर सणि बहिन पटेल के नाम का पटरा सभी को आकर्षित करता था। श्री केशवमई पटेल की लड़की और विद्यापीठ की स्नातिका को पढ़ना सिखना छोड़ कर धुनने की कला दिखलाने के लिए यहाँ आयी देख कर कितनी ही शिक्षित बहिनों को आश्चर्य हुआ होगा। इनके सामने की ओर मद्रास के किसी कॉलेज का विद्यार्थी महादेवन तकली चलाता हुआ खड़ा था। जो कोई आता उसे वे तकली चला कर दिखलाते, तकली बनाना दिखलाते और मोटे सूत का फीता बुन कर दिखलाते थे। केशव गांधी चर्खासंघ की कोठरी में अपने हाथ के बनाये हुए आकर्षक चर्खे पर सूत कात कर सब का ध्यान खींचता था। कर्णाटक के जुलाहे भी आये थे और ६ घण्टे में ५० इंच लम्बा ८ गज लम्बा कपड़ा बुन कर सभी बुननेवालों को आश्चर्यचकित करते थे। तौभी बुनने का हुनर तो जीता है और किसी के लिए न था। कातने की ही मृतप्रायः कला को सार्वजनिक करनेवालों के लिए ही सबका ध्यान खींच रहे थे।

**२. प्रचारकार्य**—प्रचारकार्य के दो विभाग होते हैं: (१)

नकशा और आंकड़े (२) निबन्ध और भाषण।

(१) ये नकशे यों चमक रहे थे मानों चर्खा ही अकेला घर घर का घरेलू धंधा है, इस बात को साबित करने के लिए एक के बाद दूसरी दलील की लड़ने लगे थे। हिन्दुस्तान के उद्योगों में लगे हुए लोगों की संख्या के आंकड़े देखने पर २२ करोड़ ४० लाख आदमी खेती में लगे हुए मिलते हैं। आगे देखिए तो पता चलेगा कि कपड़े और जूट की मिलों को ले कर भी और सब कारखाने १४ लाख से अधिक आदमियों को रोजी नहीं दे पाते हैं। हाथ करके पर २० लाख आदमी निर्वाह करते हैं मगर बाकी २२ करोड़ों का क्या होगा? इन २२ करोड़ों को पूरा काम नहीं मिलता है। साल में कम से कम चार महीने तो उनके नाकाम जाते ही हैं। सरकारी कारखानों से ही यह दिखलाने वाला भी नकशा टँगा था। आगे चलने पर और देशों के हिसाब से अपने इस गरीब देश की रोजाना औसत आमदनी की हुई थी: अमेरिका की रोजाना आमदनी ३) रु; आस्ट्रेलिया २-४-०; कॅनेडा १-१२-० और हिन्दुस्तान का ७ पैसे रोज। इतना देख लेने बाद भी अगर किसी अर्थशास्त्री को मकदूर होवे तो वह बतलावे कि चर्खे के सिवा वह दूसरा कौनसा धंधा है जिससे हर किसान को, उसकी खेती छुड़ाये बिना, घर बैठे सहज ही और कुछ नहीं तो कम से कम इसके आठवें हिस्से तक की रोजाना कमाई तो हो सके?

यहाँ से चल कर पाँच कातनेवाले गांवों का नाम तथा वहाँ की आमदनी के आंकड़े दिये गये थे। यह दिखलाया था कि औसतन सभी गांवों को कातने के कारण खेती की आमदनी में सैकड़े २०) रु. की वृद्धि हुई है। यह बतलानेवाला भी एक नकशा था कि सारे देश की २४ लाख की खादी में १३ लाख की तो दक्षिण भारत में पैदा होती है। और दूसरा एक नकशा सब की आँखें खोलने वाला ऐसा था, जिस में टिश्चेनगोड आश्रम से रुई ले जा कर ११० गांव की कातनेवालों का हिसाब दिया था। हर गांव के नाम के सामने गोला चिह्न बना कर कातनेवाली बहिनों की संख्या दी गयी थी। नकशे की छोर पर लिखा था कि कातनेवालों को ५०,५१२) कोई साठ पचास हजार रुपये और बुननेवालों को ४०,९५८) कोई एकतालीस हजार रुपये दिये गये थे और इससे १,६९,२४७) कोई पौने दो लाख रुपये की खादी तैयार हुई थी। खादी की दर बढ़ने की शिकायत करनेवाले भाइयों के लिए एक नकशे में दिखलाया था कि १९२० से १९२७ तक एक गज खादी का दाम ११ आने से ६ आने तक पर घट आया है। रुपये की दो बड़ी बड़ी तसवीरें बना कर लिखा था:

एक रुपया दे कर खादी खरीदने पर

- ६ आने रुईवाले किसान को मिलते हैं
- ४ " लोढ़ कर धुननेवाले को मिलते हैं
- ५ " बुननेवाले के घर जायेंगे
- १ आने व्यवस्था खर्च

एक रुपया दे कर मिल का कपड़ा लेने पर

- ५३ आने रुईवाले किसान के पास
- ४ " मिल मजदूरों को मिले
- ५ " व्याज, नुकसान, कमीशन वगैरह
- १३ " तानी की मांडी में जाते हैं

यह बतलाने के लिए, कि एक रुपया दे कर विलायती कपड़ा लेने से वह कहां जाता है, अरब सागर में, रुपयों से लदे हुए विलायत जानेवाले जहाज की तसवीर खींची हुई थी।

(२) श्री वरदाचारी, श्री निवासराज, और श्री सन्तानम ने अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर तीन निबन्ध तैयार कर के



पडे थे। सालवीय जी ने खादी की उपयोगिता पर, जमनालाल जी ने इसके व्यापारी विभाग पर और श्री राजेन्द्र बाबू ने इसके अर्थशास्त्र पर सुन्दर भाषण किये थे।

३. खास वस्तुओं का प्रदर्शन—(क) कपड़ा—इसमें तो भूतकाल की कुछ बची हुई निशानियों और इसी समय में पुराने जमाने को ला बैठाने की कोशिश के नमूने रखे हुए थे। ३०० वर्ष पुराने ढाँके के मलसल का एक थान और नाना साहेब फडनवीस की देह का अँगरखा सबका ध्यान खींचते थे। इसके साथ स्वर्गीय योगेश्वर चटर्जी के ८० और २०० नम्बर के अपने हाथ के कते सूत के आप बुने हुए कपडे को देख कर किसका मन मुग्ध नहीं होता था? श्री गंगाधर राव जब जेल गये थे तब वेंकन्नाचार्य नाम के पुलिस कान्स्टेबल ने नौकरी छोड़ी थी। उनके ८० नम्बर के उत्तम सूत का कपड़ा मानो पुलिस विभाग के पापों का प्रायश्चित्त स्वरूप बना हुआ था। मातृभक्ति और पत्नी प्रेम के नमूने भी वहाँ थे। भाई वरदाचारी ने खादी पर निबन्ध लिख कर इनाम लिया। इतना ही भर नहीं पर उन्होंने अपनी माता के लिए ६० नम्बर का सूत कात कर उसकी सारी बुनवायी। यह सारी भी वहाँ पर थी। भाई लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आप मोटी धोती पहिन्ते हैं मगर अपनी पत्नी के लिए महीन सूत कात कर उन्होंने सारियाँ बुनवायी हैं। उन सारियों में से भी एक वहाँ पर थी। इनके अलावा गांधी जी और कस्तूरबा के लिए बेलगास के अन्त्यजों की कात कर बुनी हुई खादी, अनेक बकीलों की कात कर बनायी हुई खादी और वहिन सीताबाई पडवित्री की अपने सूत से तैयार करायी गयी महीन सारियाँ भी थीं। बिजगापेट्रम का एक युवक १२० नम्बर का सूत खुद कात कर उसीसे अपना निर्वाह चलाता है। उसके सूत की भी धोती और चादर वहाँ पर थी। और असाधारण वेग और उद्यम के नमूने के रूप में सत्याग्रह सप्ताह के अन्तिम दिन लगातार २३ घण्टे तक ६४० गज फी घंटे की चाल से केशव गांधी के काते सूत का भी छोटा सा कपड़ा वहाँ पर था। खादी कितनी टिकती है, यह दिखलाने के लिए अपने काते हुए सूत के कपडे को दो साल तक नियमित रूप से पहन कर धो धा कर साफ रखने वाली कुछ वहिनों ने रोज के उपयोग की सारी और चोली भेजी थी। ये दो वर्ष तक काम देने के बाद भी अभी ठीक चलने लायक हैं और इनमें चीर या जोड़ जाड़ का तो नाम ही निशान न था।

(ख) कपडे पर से अब सूत के नमूने पर आये। चर्खा संघ के प्रदर्शन विभाग के सूत के अनेक नमूने थे। बंगलोर के एक डाक्टर ने ६ अंक से ले कर ६० अंक तक के अपने सूत की कई आँटियाँ भेजी थीं।

(ग) कपास की भी कई जातियाँ थीं। मैसूर राज्य के संग्रहालय से संसार के ससी देशों की सूई के नमूने आये थे। चर्खा-संघ ने सूई के लम्बे, छोटे रेशे दिखलाने के लिए भी एक पेटी रखी थी।

(घ) यंत्र—चर्खे का इतिहास जाननेवाले के लिए पुराने से पुराने चर्खे के जिस प्रान्त के जो नमूने मिल सके, ला रखे गये थे। मैसूर राज्य के, और बारडोली तथा आश्रम के भी चर्खों के नमूने मौजूद थे। तकली चर्खे, पिंजन और दूसरे कई औजार भी थे। सूत की परीक्षा करने के यंत्र तो जो कोई सूत लावे उसके सूत की जाँच करने के लिए चालू थे ही।

४. दुकानें—मुंजूर, सेलम, पुडुपालयम, वागलकोट बंगरह अनेक स्थानों से खादी आयी थी। इसके अलावा फैशन प्रेमियों के आकर्षण के लिए राष्ट्रीय स्त्री सभा की दुकान थी। गरीब तबंगर

सबने खादी ली और सादी तथा फैशनवाली, सभी प्रकार की खादी की इज्जत हुई। १०,०००) दश हजार रुपयों की खादी बिकी, जिसमें २,०००) की राष्ट्रीय स्त्री सभा की थी।

५. प्रतियोगिता—धुनने की और कातने की अलग अलग बाजियाँ रखी गयी थीं। सीखने वाले को इनमें से सीखने की कितनी एक बातें मिलतीं।

धुनाई की बाजी—आठ प्रतियोगी थे। धुनियों का ढंग, तौल, सफाई, और फी एक तोल सूई की धुनियों की संख्या, सभी कुछ देख कर नतीजा निकाला गया था। सबका छह छह औंस सूई की गयी थी। घण्टे भर में इतना ही हो जाय तो बहुत है। यही सबकी धारणा थी। पर भाई कांति पारेख ने एक औंस और अधिक ली और उसे भी पूरा कर लिया। उसने अधिक से अधिक अधिक सूई धुनी और सोने का अक्वल तमगा पाया। मणि वहिन ने चाँदी का दूसरा तमगा लिया। उनकी पूनी सब से अच्छी थी, मगर उन्होंने कम सूई धुनी थी।

चर्खा-दंगल—दो दंगल थे, एक अधिक से अधिक ऊँचे अंक का सूत कातने का, और दूसरा अधिक से अधिक वेग से कातने के लिए। वेग, अंक, मजबूती, समानता, और सफाई देखी गयी थी। यों कैसे तो १५ आदमी थे मगर श्रीमती वीरम्मा और केशव गांधी में ही असल बाजी थी। यों तो सभी जानते थे कि वीरम्मा को महीन सूत कातने में कोई नहीं पा सकता और वेग से कातने में केशव सबसे बढ जायगा। ऐसे ही नतीजे की सब को आशा भी थी। पर केशव ने पहले दंगल में खूब जल्दी कर सूत बिगाड़ा और यहाँ तक कि वीरम्मा की चाल कम होने पर भी सफाई और अंक के कारण, उन्होंने पहला इनाम लिया। इससे निरुत्साह न हो कर केशव ने, वीरम्मा खास अपने क्षेत्र में यानी महीन सूत कातने में, उन्हें हराने का बीड़ा उठाया। पहले दिन जिस केशव ने ११ अंक का ही सूत काता था, उसीने दूसरे दिन ५० अंक का सुन्दर सूत निकाल कर ऊँचे अंक की बाजी में वीरम्मा को हराया। फल देखने लायक है:

#### उत्तम गति

घंटे में गज	अंक	मजबूती	समानता	सफाई
		(१००)	(१००)	(१५)
१ वीरम्मा	३९६॥	४०	१००	८५
२ केशव गांधी	६५३	११॥	८०	७४

घण्टे में ६५३ गज की गति असाधारण है मगर सैकडे सौ की सौ मजबूती वाला ४० अंक का ४०० गज सूत भी फी घण्टा असाधारण है। सफाई में तो वीरम्मा को कोई पा ही नहीं सकता था।

#### उत्तम अंक

दो घण्टे का गज	अंक	मजबूती	समानता	सफाई
१ केशव गांधी	७०९	४९	१००	८०
२ वीरम्मा	५१५	६०	१०९	७५

इस दंगल में लगभग वीरम्मा जैसा ही सूत कात कर, अपने वेग से केशव ने वीरम्मा को हराया और यों दोनों को ही एक एक सोने और एक एक चाँदी के तमगे मिले।

खास दंगल—इनके अलावा कई एक खास बाजियाँ भी थीं। कर्णाटक के भाइयों के लिए, कर्णाटक की वहिनों के लिए और स्वयं सेवकों के लिए खास बाजियाँ थीं। उत्तम गति में श्री गंगाधर राव के गांव की, कात कर रोजी पैदा करने वाली एक वहिन पहली आयी। उसने १९ अंक का ४८८ गज सूत काता था। उत्तम अंक की बाजी भी अच्छी रही। श्री पाई नाम के युवक को दो तमगे



ले थे ही और पीछे से इसमें ४४ अंक का २६० गज कात उन्होंने सोने का तमगा भी लिया। एक भाई ने ८० अंक का गज सूत काता था।

**तकली बाजी**—इसमें मद्रास के ब्राह्मण वीर आये थे। जो से ही जनेऊ के लिए तकली पर सूत कातते आये हैं, ये वेद-शास्त्र सम्पन्न ब्राह्मण अपने हाथों पर ही बनायी पूनियों से की तकली पर सूत कात कात कर सभी को हैरत में डालते मेरे जैसे कितने लोग इस बाजी में शामिल तो थे, मगर तुरत ही निकल गये और असल बाजी तो इन्हीं में रही। परिणाम में सबका गुण इतना पास पास आया परीक्षकों ने दो को पदक और दो को भोतियां इनाम में देने सिफारिश की। तकली पर से भी सच्चा कातने वाला कैसा निकालता है, यह जानने के लिए नीचे देखिए :

घन्टे में गज अंक मजबूती समानता

राजगोपाल शास्त्री	१४८	४६	९१	८७
शेफय्या	१२०	५१	८२	८४
अध्यासासी शास्त्री	१३२	४६	८७	८७
सर्वय्या शास्त्री	१४८	३९	८३	६२

ये लोग चाहें तो अपना कपडा आप तकली में से उत्पन्न कर लेते हैं क्योंकि पांच आदमियों के परिवार में हर एक आदमी १५० गज कात कर कुटुम्ब कर के लिए आवश्यक ८० गज कपडा तैयार कर सकते हैं। पर ये लोग तो विलायती कपडा पहनते हैं और तकली के उत्तम सूत का जनेऊ बना वेंचते हैं। चर्खे में सोने का चांद वारडोली के गुजरात खादी कार्यालय में मिला। ४ रुपये का ऐसा मजबूत और हर तरह से अच्छा चर्खा मिला। एक भी न था। दूकानों में सोने का चांद वहिन मीठु पेण्टि ले गयीं—व्यवस्थित रीति से दूकान सजाने में उनसे कौन कर सकता था ? गंगाधर राव के तुननेवाले को भी सोने का पदक मिला और उस अंधी कातने वाली को भी चांदी का पदक मिला।

इस प्रकार यह प्रदर्शन शिक्षाप्रद था। भविष्य में प्रदर्शन करनेवाले, इससे भी अधिक सफल प्रदर्शन करने की कोशिश और अभ्यास कर के ही कुछ करें।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई

### बंगलोर का पत्र

यह तो वाचकों ने भी देखा होगा कि गांधी जी का कार्यक्रम पिछले हफ्ते शुरू हो गया। उसके बाद तो शायद ही कोई दिन ऐसा बीता होगा जब कोई सभा न हो, या कोई दूसरा सार्वजनिक काम न पडा होवे। ८ तारीख को पंडित तारानाथ ने खास खादी के लिए एक हिन्दी नाटक का खेल रक्खा था। उसमें गांधी जी गये थे। पंडित तारानाथ का परिचय देना जरूरी है। ऊपर ऊपर से तो वे 'सर्व बंदर के वैपारी' जैसे लगते हैं मगर इनके अनेक काम विचारपूर्वक चल रहे हैं। तेलुगु होते हुए भी आप तमिल और हिन्दी खूब अच्छी तरह जानते हैं। नखशिख खाद-पारी हैं और खादी की प्रवृत्ति में इन्हें रस आता है। इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा का एक आरोग्य भवन खोल रक्खा है और अपने मित्रों में से एक अव्यवसायी नाटक मंडली बना खडी की है। इस मंडली के द्वारा ये अपना हिन्दी प्रचार चलाते हैं। इस बार गांधी जी के वहां पर रहने का मौका देख कर इन्होंने एक साथ तीन काम साथे। 'कवीर' जैसे विषय पर नाटक लिख कर इन्होंने गांधी जी को बुलाने का निश्चय किया। यह भी व्यवस्था की कि नाटक हिन्दी में होवे और सभी पात्र खादीधारी ही होवें। पहले

ही से ये अपना छोटा सा नाटक गांधी जी को दिखला गये थे। गांधी जी जाने को राजी हुए और इतना ही नहीं, बल्कि वहां जा कर उनका मन ऐसा लगा कि वे पूरे दो घन्टे, जब तक नाटक होता रहा, बैठे रहे और खुशी जाहिर की। इस नाटक में कोई दोष न हों, ऐसी भी बात न थी। नाटक की आलोचना करने की दृष्टि से कितनी ही छोटी छोटी भूलें तो थीं ही, परन्तु जिस दृष्टि से विचार किया गया, वह बहुत स्तुत्य थी। गांधी जी ने तो इसे 'आधुनिक कवीर' कह कर ही अपनी टीका समाप्त की। फिर दरिद्रनारायण को सुन्दर भेट दे कर, दक्षिण भारत में जहां पर हिन्दी बोलना नयी बात सी मालूम पड़ती है, हिन्दी का शुद्ध उच्चारण सुना कर और सभी अभिनेताओं की पोशाक खादी की रख कर तिगुना आनंद देने के लिए गांधी जी ने पंडित तारानाथ और श्रोताओं का आभार माना और छोटा सा भाषण किया, जिसका कुछ अंश नीचे देता हूँ:

'नट नटियों को खादी की पोशाक दे कर आपने मेरे दिल का ददं वृद्ध किया है। मालूम होता है कि आपने समझ लिया है कि किसी देशवन्धु, राजा या रंक, वकील या डाक्टर या व्यापारी, या किसी देशभगिनी रानी, या मजदूर, किसी को खादी न पहने हुए देख कर मुझे दुःख लगता है। आपने आजका राष्ट्रधर्म स्वीकार किया है, वह सब स्वीकार करें—उसी दिन की मित्रता मैं करता हूँ। और आज आपने जिसका नाटक कर दिखलाया है, वह वस्तु आपके और हम सब के जीवन में ओतप्रोत हो जाय। यही मेरी प्रार्थना है। अगर मैं कर्णाटक से जीता जागता लौटा तो यहां के कई मीठे संस्मरणों में यह भी एक रहेगा।'

५००) रु. की आमदनी हुई थी। इसकी थैली मैसूर की कार्यवाही समिति के एक सभ्य के हाथों दिलायी गयी।

### हिन्दी परिषद्

यों हिन्दी प्रचार का कुछ कुछ काम चल रहा था। तब तक हिन्दी प्रचारक पहुँच गये। पाठक जानते होंगे कि ७ साल पहले गांधी जी ने भाई देवदास को मद्रास में हिन्दी प्रचार के लिए भेजा था। उनका लगाया हुआ यह पौधा आज बढ कर वृक्ष हो गया है, और इसमें फलफूल लगने लगे हैं। आज इस हिन्दी प्रचार के कारण यहां हजारों आदमी हिन्दी जान गये हैं। सन १९२२ से १९२७ तक ४५६८ आदमियों ने हिन्दी की भिन्न २ परीक्षाएँ पास की हैं। इनमें ४७१ तो वहिन हैं। बाकी लोगों में बहुत से वकील, डाक्टर और विद्यार्थी थे। प्रचार कार्य की मद्रास, आंध्र और कर्णाटक में शाखाएँ हैं। इन तीनों प्रान्तों में प्रचारक फिर रहे हैं। पहले प्रचारकों को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तैयार करता था, परन्तु चन्दे की सारी व्यवस्था गांधी जी ने जमनालाल जी और उनके अग्रवाल मित्रों के जरिये की थी। यों एक लाख रुपये मिले। पंडित हरिहर शर्मा ने, जो इस कार्य के प्राणस्वरूप हैं, अब दक्षिण भारत से भी धन इकट्ठा करना शुरू किया है और ४० हजार तक वे जमा कर भी सके हैं। प्रचार कार्यालय के एक छापाखाना भी है और कोई तीस किताबें भी प्रकाशित हुई हैं। इन किताबों का प्रचार भी खूब है कितने स्कूलों और विद्यालयों में हिन्दी पढ़ना जरूरी है और आंध्र विश्वविद्यालय ने तो दो एक परीक्षाओं में हिन्दी को भी ऐच्छिक विषय बना दिया है। अखीरी दिन गांधी जी ने हिन्दी का ज्ञान खूब बढा कर, उत्तर और दक्षिण भारत के बीच का विन्ध्याचल तोड़ने की विनती की थी और एक लिपि का प्रश्न हाथ में ले कर उत्तर के लोगों को दक्षिण के साथ अधिक गांढा सम्बन्ध स्थापित करने की प्रार्थना की थी 'एक भाषा से आप उत्तर के लोगों से हृदय की एकता पैदा कर सकते हो। एक लिपि के जरिये,



आज उत्तर के लोगों की आप से आ मिलने में जो मुश्किल आ पड़ी है, उसका उपाय आप कर सकते हो।'

### विद्यार्थियों के मंडल में

यहां के विद्यार्थियों के उत्साह का तो पार ही न था। यह तो कभी का मैं लिख चुका हूँ कि शालाओं और विद्यालयों में जानेवाले विद्यार्थियों ने स्वयंसेवक मंडल बनाये हैं। अब तक सौ विद्यार्थी तक गांधी जी की सेवा कर चुके हैं और अभी करते ही जाते हैं। विद्यार्थियों की सभा के दिन दो तीन हजार विद्यार्थी हाजिर थे। कन्नड भाषा का, पर देवनागरी लिपि में लिखा हुआ मान पत्र, एक छोटे से विद्यार्थी ने पढ़ सुनाया। गांधी जी ने सारे मंडल से पूछा, 'तुममें कितने जने हिन्दी जानते हो?' भाष्य से ही दो चार हाथ उठे होंगे। अंगरेजी जाननेवाले तो बहुत से थे, परन्तु उनमें जरा मरा जाननेवाले लड़कों ने भी हाथ ऊँचे किये। आखिर गांधी जी ने हिन्दी का पाठ देने की खातिर हिन्दी में ही भाषण किया और गंगाधरराव जी एक एक वाक्य का कन्नड में अनुवाद करते गये। यह भाषण 'हिन्दी-नवजीवन' के विद्यार्थी पाठकों के लिए नया नहीं है। खादी, हिन्दी का अभ्यास और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर विचारपूर्वक विवेचन किया। विद्यार्थियों ने १९००) रु. की थैली भेंट की। विद्यार्थियों की ओर से बड़ी से से बड़ी थैली यही कहो जायगी। दूसरे ही दिन, यहाँ की विख्यात विज्ञानशाला देखने गांधी जी गये। बंगलोर में यह एक देखने लायक स्थान बन गया है। संस्था के डिरेक्टर ने गांधी जी को सभी विभाग घुमा फिरा कर दिखलाये। गांधी जी ने देखा तो सभी कुछ मगर कल की माफिक। उनका मन तो न जाने किस विचार में पड़ा हुआ था। अखीर में यहाँ के विद्यार्थी थैली देने को ले गये। विद्यार्थियों की संख्या ६० है और उन्होंने ३२५) रु. की थैली भेंट की। गांधी जी का कुछ बोलने का मन न था। मन में तो होता था कि धन्यवाद दे कर ही लौट चले मगर यहाँ तो मानो अनिच्छा से ही भाषण शुरू हो गया।

"इन सब बड़े २ स्थानों में भेरा क्या स्थान है? यही विचार मैं कर रहा हूँ।" इतना कह कर गांधी जी जरा रुके। फिर बोलना शुरू किया, "मेरे जैसा सँवार तो यहाँ आकर चकित हो कर सबका मुँह ही देखता रह जायगा। मैं तुमसे क्या बात कहूँ? यहाँ जो बड़ी भारी प्रयोग-शाला और विजली की कलें देखते हो, वे किसके प्रताप से चल रही हैं? करोड़ों के बेगार के बल पर वे चलती हैं। ताता के ३० लाख कहीं दूसरी जगह से नहीं आये हैं। मैसूर के महाराज जो पानी सा रुपया खर्च रहे हैं, वह भी तो मैसूर की प्रजा का ही है। मैंने 'बेगार' शब्द जान बूझ कर कहा है क्योंकि जो लोग कर दे कर यह संस्था चला रहे हैं, उनसे क्या कभी पूछा जाता है कि, 'क्या ऐसी संस्था बनाने में तुम्हारा धन लगाया जाय जिससे हाल में तो तुम्हें कुछ भी लाभ न होगा, मगर तुम्हारे वंशजों को लाभ हो सकता है?' तब क्या वे तुम्हारी हामी भरेंगे? कभी नहीं। इस लिए उनकी यह मजदूरा दंड है, बेगार है। पर क्या इन लोगों की राय पूछने की दरकार हमें कभी हुई है? हम यह पाठ पढ़ते हैं कि राय देने के अधिकार बिना कर लग ही नहीं सकता और उन पर इसे आप लागू नहीं करते। जो तुम अपनी जवाबदारी समझो, तुम्हें ऐसा लगे कि इन लोगों को भी कुछ हिसाब देना है तो, तुमको मालूम होगा कि इन आलीशान मकानों के अलावा भी कहीं कुछ सोचने को बाका रह जाता है। तब गरीब के लिए तुम अपने दिल में छोटा सा नहीं बल्कि बड़ा सा कोना रखोगे। और उसे स्वच्छ रखोगे, जिसमें जिन गरीबों की मिहनत पर यह बेइन्तिहा खर्च होता है, उनके लाभ के लिए तुम अपने ज्ञान का उपयोग करोगे। तुमने जो धन दिया है उसका उपयोग दरिद्रनारायण

के लिए होगा। सच्चे दरिद्रनारायण का दर्शन तो मैंने भी नहीं किया है, केवल कल्पना से ही उन्हें देख सकता हूँ। इस धन से जो कतवैये लाभ उठावेंगे वे भी सच्चे दरिद्रनारायण नहीं हैं। दरिद्रनारायण तो दूर दूर के गांवों में रहते हैं, जिनमें हमारा अभी तो प्रवेश ही नहीं हुआ है। उनकी खोज भला कौन करे? तुम्हारे अध्यापक संग्रहालय में मुझे एक वस्तु दिखला कर कहते थे कि इसके गुणों का पता तो कई साल के प्रयोगों के बाद ही लग सकेगा। तब मैं तुमसे पूछता हूँ कि इन गांवों का शोध कौन करेगा? तुम्हारी प्रयोगशाला में कितने प्रयोग चौबीसों घंटे चलते रहते हैं। उसी प्रकार तुम अपने दिलों के अन्दर की भरी में करोड़ों गरीबों के लिए प्रेम की अग्नि चौबीसों घंटे प्रज्वलित रखना।

"साधारण, बेपड़े सँवार की बनिश्चत तो तुमसे कहीं अधिक की मैं आशा रखता हूँ। तुमने जो दिया है उसी पर सन्तोष न मान बैठना और 'अब तो हमें कुछ करना है नहीं, चलो टेनिस या विलियर्ड खेलें।' पर विलियर्ड खेलते, या टेनिस खेलते हुए, तुम्हारे हिसाब में उधार पैसा बराबर बढ़ता ही जाता है।

"पर कोई दान की बछिया के दांत नहीं गिनता। इतने आभार के साथ तुम्हारे दिये धन को स्वीकार करता हूँ। मैंने जो प्रार्थना की है उसे अंतर में रखना और उस पर असल करने की कोशिश करना। गरीब स्त्रियों की बनायी खादी पहनने से डरना नहीं। खादी पहनने से मालिक निकाल देगा -- इसका भी डर न रखना। मालिक को कहना कि मेरी पोशाक न देख कर आप मेरा काम देखें और आपको पसन्द न पड़े तो मैं जाता हूँ मगर आपको मेरे जैसा बफादार या ईमानदार आदमी नहीं मिलेगा। मैं चाहता हूँ कि अपने सिद्धान्त पर डटे रह कर तुम संसार के सामने सीधे खड़े होवो। धन की खोज में गरीबों की सेवा के वेग को ढीला न पड़ने देना। तुम जो बेतार की तार बकीं देखते हो, उसकी अपेक्षा हजार गुनी बड़ी बेतार की तार बकीं तुम अपने हृदयों में बनाओ जिससे करोड़ों के साथ तुम्हारा सम्बन्ध अपने आप ही जुटे। जैसा कि राजगोपालाचारी जी सजाक में कहते थे मगर बात तो विलकुल सच्ची है कि अगर तुम्हारा सााा करोवार गरीबों के ही लिए न होवे तो यह शैतान का कारखाना है। बस मैं बहुत बोल चुका और अगर तुम विचारशील हो और हर एक शोधक विद्यार्थी को विचारशील होना ही चाहिए, तो तुम्हारे लिए इतना ही बस है।"

### महिला समाज

यहां की बहनों के संगीत के विषय में तो मैं कितनी बार लिख गया हूँ। मालूम पड़ता है कि ज्यों आसाम में उस लड़की का विवाह नहीं हो सकता जो बुनना न जानती हो, वैसे ही यहां भी मानों जिस लड़की को संगीत न आता हो, उसे वही जोखिम उठानी पड़ती है। महिला समाज ने गांधी जी को एक दिन बुलाया था। अनेक बहनों ने कई प्रकार के राग वाजों के साथ गा सुनाये। इसके बाद २२५) रु. की थैली भेंट की। मगर गांधी जी ने तो यह कह कर कि, 'इतने से ही दरिद्रनारायण का पेट नहीं भर सकता,' उनके गहने भी मांगे। मानों भिक्षा मांगने का ही रास्ता देख रही हों, इस प्रकार एक के बाद दूसरी बहनों, उठ उठ कर आने लगीं, रोकड़ रुपया ५०) और मिले और गांधी जी के आगे २०, २५ वालाओं और २५, ३० अंगुठियों का ढेर लग गया। १३ वीं जुलाई की सांझ को बंगलोर में १९२१ के, स्त्रियों के, जलसों का सुन्दर दृश्य आ खड़ा हुआ।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई



# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचंद गांधी

[ अंक ५१ ]

वर्ष ६ ]

मुद्रक-प्रकाशक

स्वामी आनंद

अहमदाबाद, श्रावण सुदि १३ संवत् १९८४

गुरुवार, ११ अगस्त १९२७ ई०

मुद्रणस्थान-नवजीवन मुद्रणालय,

सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

## मदद करो

गर्वी गुजरात आज धूल में मिल गया है। अब तक जो सिर्फ देना ही जानता था, वह आज खुद भिखारी का खप्पर लिये हुए है। अब तक अखबारी खबरों के सिवाय मुझे दूसरे जरियों से कोई सूचना नहीं मिली है। वल्लभभाई अगर्चे कि अपने निजी तारों के द्वारा, मुझे बुरी से बुरी खबर तक के लिए तैयार कर रहे थे मगर वे पूरे व्योरे अब तक नहीं भेज सके थे। हसन से लौटने बाद उनका तार मुझे अभी मिला है। वह यह है:

“नरदा और काठियावाड के उत्तर में गुजरात का अधिकतर हिस्सा उजड़ गया है। आदमी बेघर हो गये हैं। डोर और मालमता बह गये। कुल नुकसान का अंदाजा तो करोड़ों के हिसाब से लगाया जायगा। बरोदे के सिवा और सब कहीं प्राण-हानि कम हुई है। १०० इंच वर्षा होने से खेदे की सबसे बुरी हालत है। बोरसद से अभी कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सका है। गुजरात और काठियावाड के सभी हिस्सों से मदद की दर्दनाक माँग आ रही है। २ री अगरत को सार्वजनिक सभा हुई थी और अकाल निवारण समिति बनायी गयी थी। ३ लाख रु. अहमदाबाद जिले में अन्न बाँटने के लिए और १० लाख रु. घर बनाने का कर्ज देने के लिए इकट्ठे करने हैं। प्रान्तिक समिति के अधीन प्रान्तीय मदद का अलग काम हो रहा है। श्रीयुत अमृतलाल ठाकर, लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम, और नरहरि पारीख के अधीन क्रमशः आनंद, नडियाद और अहमदाबाद में सहायता केन्द्र खोले गये हैं। मगनलाल गांधी बोरसद पहुँचेंगे और वहाँ से संबंध कायम करेंगे। दूसरे स्थानों में भी आदमी भेज कर सहायता के केन्द्र खोले जा रहे हैं। अमृतलाल शेठ काठियावाड के उन स्थानों में सहायता पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं, जहाँ पर किसीका पहुँचना मुश्किल हो रहा है। तात्कालिक—हाल का—सवाल तो प्राण-रक्षा करने और खाद्य पदार्थ पहुँचाने का है। यहाँ पर खाद्य पदार्थ काफी नहीं हैं। आप फौरन ही सारे हिन्दुस्तान के नाम सहायता के लिए अपील निकालिए।”

नडियाद से खेडा के संबंध में मि० फूलचंद शाह ने व्यौरों के साथ तार भेजा है। भरूच के डाक्टर चन्दूलाल मुझ पर विगड कर तार भेजते हैं कि गुजरात के लिए मैं क्या करूँगा? अखबारी खबरों का देख कर मैं चकित हो गया हूँ। जिन्होंने दक्षिण की बाटों को देखा हैं, वे कुछ कल्पना कर सकते हैं कि गुजरात की क्या हालत हुई होगी। खेडा की उन्नति उसके मिहनती और जुगती किसानों की वायस है। अपनी सारी फसल को वह जाते, और खेतों में अपने सुन्दर मजबूत ढोरों की लाशों को सड़ते देखना उनके लिए कोई हँसी खेल नहीं है। मैं जानता हूँ कि करोड़ों रुपयों के गल्ले, पशु, धनमाल और खेतों में के खाद के वह जाने की घटी को कोई आदमी पूरा नहीं कर सकता। मगर जिनका सर्वस्व जाता रहा है, उनके मनः कष्ट को सहायता से बहुत कम किया जा सकता है। मैं आशा करता हूँ कि जिस किसीकी आंखों से यह अपील गुजरेगी, वह अगर देने योग्य होगा तो अपनी सहायता तुरत भेजेगा।

श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पुराने सिपाही हैं और सेवा के सिवा उनका दूसरा काम भी नहीं है। उनके अधीन योग्य कार्यकर्त्ताओं का दल है। इस लिए दाताओं को धन के बेकार खर्च किये या चुराये जाने का डर नहीं होना चाहिए। वाजिव तौर से जाँचा गया हिसाब छापा जायगा और हर रकम का प्राप्ति-स्वीकार ‘यंग इण्डिया’ में और जरूरत पडने पर ‘नवजीवन’ में भी छापा जायगा। दूसरी जो कोई सहायक समितियाँ होंगी, उनके सहकार से सहायता का काम किया जायगा। असल बात तो मदद पहुँचाने की है। इस लिए दाता, अपनी सबसे अधिक विश्वासी समिति को ही दान दें, मगर यह जरूर निश्चय करें कि छोटा से छोटा नहीं बल्कि हम भर सक बड़ा से बड़ा दान भेजेंगे।

(यंग इण्डिया)

मोहनदास करमचंद गांधी



## दुःख में सुख ?

निकषप्राप्ता तु तेषां विपत्\* ।

गुजरात की कसौटी हुई है। पांच दिनों की मूसलधार वर्षा और जलप्रलय ने गुजरात की हरी भरी भूमि को उजाड़ बना दिया है। उसने धनी, गरीब का ख्याल नहीं किया, इस्लामी, आर्यसमाजी का भेद न किया, ब्राह्मण और अन्यज का विवेक न माना। ज्ञानी मानी सबको एक सी निर्दयता से परमात्मा की याद करायी। यह दिखला कर ईश्वर की लाल आंखों के आगे विज्ञान कितना पंगु है, मनुष्य को उसकी अल्पता का अनुभव कराया है।

गांव के गांव डूब गये हैं। घर वार, मालमता, ढोर हांखर, खेती बारी,—सारी जिंदगी की मिहनत मजदूरी और करकसर का बचाव,—छोड़ कर आदमियों ने जान बचायी; ऊपर आकाश और नीचे पानी के बीच किसीने पेड़ पर चढ़ कर, किसीने धर्मशाला का आश्रय लेकर, किसीने पड़ोसी के घर में समाकर और उसका भी घर गिरा तो दोनों ने ही तीसरे का आश्रय लेकर प्राण रक्षा की है। अब तक कितने एक गांव पानी में ही हैं। नलकांठा में बहुत प्राणनाश की खबर सुनायी पड़ती है। बरोदे की जन-हानि तो सारे गुजरात की हानि को भुला देती है।

गुजरात ने खूब किया। जनसाधारण ने अपनी दश वर्ष की शिक्षा को चमकाया है गुजरात के गांवगांव में, शहर शहर में आज जो स्वाश्रय, जो वीरता, जो व्यवस्थाशक्ति और जो दयाधर्म प्रकट हो उठा है, उसे देख कर हमारी छाती गज भर चौड़ी हो जाती है। आफत की इस घड़ी में, मानों कुदरत को भी हराने का बीड़ा उठाया हो, इस प्रकार एकमात्र प्रेरणा के अधीन हो कर, ऊँच नीच का, अमीर मुफलिस का, ब्राह्मण अत्यज का भ्रम भूल कर,—अराह-ारी, सहकारी, सरकारी का भेद न मानते हुए, केवल प्राणरक्षा करने में प्रजा ने कमाल किया है और कुदरत का जवाब आस्तिकता से दिया है। शुरू से ही अब तक गुजरात की सखी-दल और दयाधर्म मुग्ध प्रजा मुसीबतजदों की मदद को अपना मंडार खोले खड़ी है और उसे खुले हाथों लुटाया है।

स्वावलम्बन का तो कहना ही क्या ? प्रजा न तो बावरी बनी, न दिग्भ्रम; सरकार, दरबार के पास न दौड़ी, बल्लभभाई की मदद या सावरमती आश्रम से सूचना की राह न देखी; कुदरत की आंखें फिरी देखते ही, हिम्मत बांध कर अपनी और अपने गांव की रक्षा करने में जुट गयी, और अपनी हिफाजत करने से जो ही कुछ शक्ति बची, उसकी मदद पड़ोसी गांव को दी। जाति विरादरी के भेद भुलाये, ऊँची कौमों ने अछूतों को अपनाया, ब्राह्मणों, वनियों, पाटीदारों, महाजनों ने गांव में अपने अपने महल्लों में अपने मकान खोल दिये, ठेठ भंगियों को रक्खा, उन्हें ढँका और रोज रोज खिचड़ी खिलायी। नडियाद के स्टेशन पर किसीने न जाना कि रोज रोज किसके पास से पूरियों की टोकरियाँ और शाक की हांडियाँ आती रहीं। बड़ोदे की विपत्ति सुन कर गोधरा ने नावें भेजीं।

जब नर्वदा से झींझवाडा तक और ठासरा से नलकांठा तक एक ही बादल टूट पड़ा, जब बाहर की दुनिया और गुजरात के बीच जल का अनुल्लेख्य पर्दा पड़ गया, जब दौड़ती हुई रेलगाडियां पानी में डूबने लगीं; जब तार के खंभे, अकेले टिकने की ताकत न होने से पड़ोस के पेड़ों पर झुक पड़े और विज्ञान पर निर्भर रहना छोड़ दिया, और जब इस सरकार के प्रतिनिधि अफसर लोग असहाय बन कर किकर्तव्य-विमूढ़ बन गये, उस समय इन आधुनिक साधनों से चकाचौंध में पड़ी हुई परन्तु उनमें मूल से ही अविश्वास रखने वाली प्रजा उठ बैठी और स्वावलम्बन के बल से गांव गांव में आदमियों की रक्षा करने और भूखों को अन्न देने निकल पड़ी। जब जिले के और

\*विपत्ति उनको कसौटी है।

सूबे के हाकिमों के सरकारी तंत्र टूट गये, उनका व्यवहार रुक गया और आठ आठ दिनों तक अमुक तालुका के अमुक गांव की हालत से वे बिल्कुल नावाकफि रहे, तब अहमदाबाद के मस्कती मार्केट के वीर व्यापारियों और दूसरे दरियादिल धनिकों के ही आदमी उन गांवों में भूखों को अन्न देने और मरतों को बचाने पहुँच गये थे और वहाँ पर घूम रहे थे। जब मि. टेलर जैसे कलेक्टर ने खेडा जिले की हालत सुनी तो उन्होंने बिना किसी संकोच के बल्लभभाई की मदद मांगी और ली और बल्लभभाई के तुरत ही के खडे किये हुए व्यवस्थातंत्र का उपयोग किया। पांचकुवां महाजन जैसे मंडल तो कबसे गांवों में सस्ते अनाज की दुकान खोल कर सस्ते दाम पर और न हो तो मुफ्त ही अनाज बांटने बैठ गये थे! यह विचार भी हमारी आंखों में आनन्द के आंसू लाता है कि जब गांधी जी ये सब बातें सुनेंगे, पूरे ज्योरे उनके पास पहुँचेंगे तब उनके रोगी शरीर पर एक मुट्ठी मांस चढ़ जायगा।

गुजरात के बाहर भी बंबई जैसी नगरी, गुजरात की आफत की खबर पहुँचते ही डौंवा डोल हो उठी। बंबई के रहनेवाले वीर व्यापारियों ने रेलवे लाइन टूटने से निराश न हो कर हमारे सौराष्ट्र वीर अमृतलाल की सरदारी में अन्न वस्त्र और सेवकों से लदे जहाज खोल दिये और समुद्र के रास्ते काठियावाड पहुँचने की कोशिश में जंगवार के सागर में खेनेवालों ने अपने पूर्वजों की परम्परा फिर एक बार सजीवन की। बंबई की साधारण प्रजा ने, नेताओं ने संकटनिवारण कोष खोल दिया है, कमिटियां चुनी हैं, और उसके सपूत आज विपदग्रस्त गुजरात की मदद को निकल पड़े हैं। नासिक कर्णाटक, जैसे दूसरे कितनी अपनी सेवा स्वीकार कराने की अजियां भेज रहे हैं।

अहमदाबाद जिले के लिए और सारे गुजरात के लिए संकट निवारण समितियां बन गयीं हैं। एक लाख रुपये का नाज वॉटने को निकाला गया है। जिलों में और तालुकों में ठौर ठौर पर केन्द्र खुले हैं और पिछले आठ दिनों से निराधारों को अन्न-वस्त्र की सहायता देने का काम चल रहा है। अहमदाबाद के सुखी शहराती, सत्याग्रहाश्रम के लगभग सभी मुख्य कार्यकर्त्ता और दूसरे छोटे बड़े सेवक, गुजरात महाविद्यालय के आचार्य कृपलानी और उनके विद्यार्थी, दूसरी शालाओं, कॉलेजों और अखाडों के विद्यार्थी और अध्यापक, सभी कोई संकटनिवारण के काम में लग गये हैं। गुजरात महाविद्यालय पंद्रह दिनों के लिए बंद रक्खा गया है। कितने मिल मालिकों ने उधार कपडे दिये हैं। स्वयंसेवक मंडल भी किसी से पीछे नहीं हैं। मस्कती बजार के व्यापारियों ने इसे व्यापार करने का नहीं बल्कि लुटाने का अवसर मान लिया है। शहर के हजारों विद्यार्थी और मजूरमंडल के स्वयं सेवक बराबर लगे ही हुए हैं।

स्वयंसेवकों के दल खेडा, अहमदाबाद जिलों के तालुकों में अभी घुटने भर, कमर भर पानी में और कमर में तुमड़े बांध कर नदी-नाला पार करते हुए गांव गांव बस्ती बस्ती मदद करने को घूम रहे हैं।

अभी की तो यही स्थिति है। मगर आगे क्या होगा ? लोगों के पास न घर रहा, और न रहे हल बैल, न बीज, न खाने का अन्न और न जीवन रक्षा के कोई दूसरे ही साधन। ऐसी स्थिति में फिर किस प्रकार सारा सूबे का सूबा बसाया जायगा, फिर से जिलाया जायगा ? यह किसी ऐसी वैसी संस्था के किये न होगा। सरकार के पास इस समय तक कोई ढाई करोड़ रुपये अकाल-निवारण कोष के जमा हैं। ये रुपये उन्हीं गरीबों से ले ले कर जमा किये गये हैं, जिनकी सहायता के लिए वे माँगे जा रहे हैं। देखना है कि सरकार किसानों का ही धन किसानों के इस गाढ़े अवसर पर देती है या कोई कानूनी बहाना कर के रख लेती है।

( नवजीवन )

स्वामी आनंद



## सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा

भाग ४

### अध्याय १२

#### अंगरेजों के परिचय (चाल)

जोहान्सबर्ग में एक बार मेरे पास चार हिन्दुस्तानी मुन्शी हो गये थे। उन्हें मुंशी मानूँ या लडका ? इससे मेरा काम न चला। टाइपिंग बिना तो चलता ही नहीं और टाइपिंग का कुछ ज्ञान था, तो सिर्फ एक मुन्शी को। इन चार जवानों में से दो को टाइपिंग सिखलाया मगर अंगरेजी कच्ची होने के कारण उनका टाइपिंग कभी अच्छा न हो सका। इसके अलावा, इन्हींमें से मुझे हिसाब रखनेवाला भी तैयार करना था। अपने मन मुआफिक किसी आदमी को नेटाल से बुला नहीं सकता था क्योंकि परवाना बिना कोई हिन्दुस्तानी दाखिल नहीं हो सकता। और अपने सुभीते के लिए मैं अफसरों की मिहरबानी की दरखास्त करने को तैयार न था।

मैं फेर में पड़ा। चाहे लाख मिहनत करूँ, मगर मेरी वकालत और सार्वजनिक सेवा के कामों को पूरा करना असंभव हो गया।

यह न था कि अंगरेज पुरुष या स्त्री मुंशी मिले तो मैं न खर्ख मगर काले आदमी की नौकरी कहीं शोरा करे ? मुझे इसीका डर था। पर मैंने कोशिश करने का निश्चय किया। टाइपराइटिंग एजेंट को मैं कुछ कुछ जानता था। उसके पास पहुँचा और कहा कि, 'अगर कोई अंगरेज बाई या भाई मिले जिसे काले आदमी की नौकरी करने में अडचन न होवे तो मेरे पास भेज देना।' द० अफ्रिका में टाइपराइटिंग और शॉर्ट हैंड लिखने का काम ज्यादातर औरतें ही करती हैं। इस एजेंट ने मुझे वैसा आदमी ढूँढ देने की मिहनत करने का वचन दिया। मिस डिक नाम की स्कौच कुमारी उसके हाथ लगी। यह बाई अभी अभी स्कौटलैंड से आयी थी। इसे हिन्दुस्तानी की नौकरी करने में कोई बाधा न थी। उसे तो तुरत काम में लग जाना था। उस एजेंट ने इसे मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी आँखें उस पर ठहरी।

मैंने उससे पूछा, 'तुम्हें हिन्दुस्तानी के नीचे काम करने में उन्न नहीं है ?'

उसने दृढतापूर्वक जवाब दिया, 'विलकुल नहीं।'

'तुम्हें मुसाहरा क्या चाहिए ?'

'साढे सतरह पाउंड आप अधिक तो नहीं गिनेंगे ?'

'तुमसे मैं जो आशा रखता हूँ वह काम कर सको तो विलकुल अधिक नहीं मानता। तुम कबसे काम शुरू करोगी ?'

'जो आप चाहें तो अभी से।'

मैं बहुत खुश हुआ और उसे सामने बैठा कर कागज लिखवाना शुरू किया।

इसने कुछ मुंशी का नहीं, मगर सहज ही सगी लडकी या बहिन का पद ले लिया। उसे कभी ऊँची नीची मुझे नहीं सुनानी पड़ी। उसके काम में भूल तो शायद ही निकालनी पड़ी हो। एक समय हजारों पाउंड का लेन देन भी उसके हाथों था और हिसाब की बही भी वह रखने लगी थी। उसने मेरा विश्वास पूरा पूरा हासिल कर लिया था मगर मेरे मन की बड़ी बात तो यह थी कि मैं उसके अन्दरूनी खयालातों को भी जानने का विश्वास पैदा कर सका था। अपना साथी पसन्द करने में भी उसने मेरी सलाह ली। कन्यादान करने का सौभाग्य भी मुझे ही मिला। मिस डिक जब मिसेज (श्रीमती) मैकडोनेल्ड हुई, तब

तो उन्हें मुझसे अलग होना ही चाहिए अगलें कि विवाह के बाद भी भीड़ पड़ने पर भी जब कभी मैं उनसे काम लेता था।

पर ऑफिस में एक शॉर्टहैंड राइटर की जरूरत तो थी ही। वह भी मिल गयी। इस बाई का नाम मिस इंग्लिशिन है। उसे मेरे पास मि० कैलनवैक लाये थे। इनका परिचय अभी आगे मिलेगा। यह बाई आज ट्रान्सवाल में किसी कन्या पाठशाला की प्रमुख है। मेरे पास आने के समय वह सतरह साल की थी। उसकी कितनी विचित्रताओं से मैं और मि० कैलन वैक घबरा उठते। वह कुछ नौकरी करने नहीं आयी थी। उसे अनुभव चाहिए थे। उसकी नसों में कहीं रंगद्वेष था ही नहीं। उसे किसीकी पर्वा भी नहीं थी। चाहे जिस किसी का अपमान करते वह न डरती और न मन में जिसके विषय में जो विचार होते उन्हें कहते संकोच करती। इस स्वभाव से वह कितनी बार मुझे मुश्किलों में डाल देती परन्तु उसका अंगरेजी ज्ञान मैंने अपने से हमेशे अच्छा ही माना था और उसकी वफादारी पर पूरा यकीन होने के कारण उसके टाइप किये हुए कितने कागज दुहराये बिना ही मैं सही कर देता था।

उसकी त्यागवृत्ति का पार न था।

उसने मेरे पास बहुत दिनों तक छह पाउंड ही लिया और अन्त में दश पाउंड से अधिक लेने से विलकुल इनकार कर दिया। मैं जो अधिक लेने को कहता तो मुझे धमकाती, 'मैं कुछ मुसाहरा लेने को नहीं आयी हूँ। मुझे तो आप के साथ रह कर काम करना रुचता है और आपके आदर्श पसन्द पड़ते हैं, इसी लिए हूँ।'

मुझसे उसने ४० पाउंड लिये मगर कर्ज कह कर और दूसरे साल सारा लौटा दिया।

जैसी तीव्र उसकी त्यागवृत्ति थी, वैसी ही हिम्मत भी। स्फटिक मणि जैसी पवित्रतावाली और क्षत्रिय को शरमाने लायक वीरतावाली स्त्रियों से मिलने का सद्भाग्य मुझे मिला है। उन्हींमें से एक इस लडकी को मैं मानता हूँ। आज तो वह बड़ी, प्रौढ़ कुमारी है। उसकी आज की मानसिक स्थिति से मैं पूरा पूरा वाकिफ नहीं हूँ मगर मेरे अनुभवों में इस लडकी का अनुभव मेरे लिए सदा पुण्यस्मरण रहेगा और इस लिए मैं जो जानता हूँ, उसे न लिखूँ तो सत्य का द्रोही बनूँगा।

उसने काम करने में न दिन जाना न रात। वह अधरात मधरात जहाँ कहीं जाना होवे अकेली चली जाती और अगर मैं किसीको उसके साथ भेजना चाहूँ तो मुझ पर लाल पीली होती। हजारों दाढ़ीवाले हिन्दुस्तानी उसे सम्मान की नजर से देखते और उसकी बातें मानते थे। जब हम सभी जेल में थे, जिम्मेवर पुरुष शायद ही कोई बाहर रहा होवे, तब वह अकेली सारी लडत सँभाले हुए थी। लाखों का हिसाब उसके हाथ में, सारी खत किताबत उसी के हाथ में, और 'इंडियन ओपीनियन' भी उसीके हाथों — ऐसी स्थिति थी। मगर उसे थकावट न लगी।

मिस इंग्लिशिन के बारे में लिखता हुआ मैं थक नहीं सकता। पर गोखले का प्रमाणपत्र देकर मैं यह प्रकरण पूरा करता हूँ। गोखले ने मेरे सभी साथियों से परिचय किया था। परिचय करके उन्हें कितनों के विषय में बहुत सन्तोष हुआ था। उन्हें सबके चरित्र का अंदाजा लगाने का शौक था। सभी हिन्दुस्तानी और यूरोपियन साथियों में उन्होंने मिस इंग्लिशिन को प्रधानपद दिया था, 'इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता, मैंने कम ही लोगों में देखी है। मेरी नजर में तो तुम्हारे सभी साथियों में मिस इंग्लिशिन का पद प्रधान है।'

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी



# हिन्दी-नवजीवन

गुस्वार, श्रावण सुदि १३ संवत् १९८४

## विद्यार्थी की दुबिधा

एक सरल चित्त विद्यार्थी लिखता है,

“मेरे पत्र में खादी सेवक बनने के विषय में आपने जो लिखा है, वह मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। सेवा करने की धारणा तो है ही। परन्तु मुझे यह अभी विचार ही करना है कि खादी सेवक बनूँगा या किसी दूसरी तरह से सेवा करूँगा। यह अभी तक मेरे दिल में नहीं पैठा है कि खादी उद्धार में ही आत्मोन्नति घुसी हुई है। आज तो हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति के सुधार और उसके स्वतंत्र होने के लिए कातना आवश्यक समझ कर समाज के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करने भर के लिए ही कातता हूँ। पीछे तो मेरे लिए जो सेवा उत्तम बनी होगी, उसी अनुसार बनेगा। आज तो यही ध्येय है कि जितना ज्ञान मिल सके, उसीको ले कर सेवा करने को तैयार हो जाऊँ।

“ब्रह्मचर्य के पालन के विषय में मुझे लिखने का ही क्या होवे। ईश्वर से तो इतनी ही प्रार्थना है कि ब्रह्मचर्यपालन करने की महत्वा-कांक्षा पूर्ण करने की वह शक्ति देवे।

“मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि आप एक ही साथ, विद्यालयों में ज्ञान और उद्योग को एक सा स्थान कैसे देते हैं। मुझे यों लगा ही करता है कि हम दो काम एक साथ करने जा कर एक भी ठीक ठीक न कर सकेंगे।

“हमें उद्योग सीखना तो है ही। मगर क्या यह अच्छा नहीं कि पढ़ना खत्म कर के हम उद्योग सीखें? कातने को तो मैं उद्योग में गिनता ही नहीं। कातना तो समाज के प्रति हर एक आदमी का धर्म है, और इस लिए सबको कातना ही चाहिए। परन्तु दूसरे उद्योगों के लिए क्या? मुझे लगता है कि बुनाई, खेती और उसके संबंधी काम जैसे बड़ईगरी, वगैरह उद्योग, पढ़ना समाप्त करने के बाद ही शुरू किये जा सकते हैं। ये हर एक काम भी स्वतंत्र विषय हैं। इनके लिए एकाध वर्ष दे दिया होवे तो ठीक होता है।

“आज मैं अपनी स्थिति विचारने बैठूँ तो दोनों वस्तुएँ बिगड़ती हुई सी लगती हैं। तीन घण्टे कारीगरी का काम कर के, बाहर के समय में कातना, किसी बाहरी विद्यालय में सिखाये जाने वाले विषयों जितने विषय पढ़ना, स्वाध्याय करना और आवश्यक कामों में भाग लेना—यह तो सचमुच में मुश्किल मालूम पड़ता है।

“लड़कों की पढ़ाई तो घटायी जा ही नहीं सकती। उन्हें तो सभी विषय सीखना जरूरी है ही। तब इतने विषय पढ़ते हुए, स्वाध्याय करते हुए भी, उन पर अधिक बोझ क्यों डाले? दिया गया पाठ बालक तैयार कर ही नहीं सकते, फिर आप से अलग स्वाध्याय कहां से कर सकते हैं। मैं देखता हूँ कि ज्यों ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों स्वाध्याय बढ़ाना, जरूरी होता जाता है। और उतना समय निकल सकता नहीं।

“ये विचार मैंने शिक्षकों से भी कहे, इस पर चर्चा भी हुई है। मगर इससे मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ है। मुझे लगता है कि वे हमारी कठिनाइयों को समझ नहीं सके हैं। आप इस विषय में विचार कर के मुझे सन्तुष्ट करें।”

इस पत्र में दो विषय बड़े महत्व के हैं। पाठक तो यह समझ ही गये होंगे कि यह पत्र मेरे पत्र के जवाब में आया था। उसका खानगी जवाब देने के बदले, इस आशा में कि यह कई विद्यार्थियों को मददगार होगा, ‘नवजीवन’ द्वारा जवाब देने का निश्चय कर मैं तीन महीने तक पत्र को रक्खे रहा।

आत्मोन्नति और समाज सेवा में जो भेद इस पत्र में बताया गया है, वह भेद बहुत लोग करते हैं। मुझे इस भेद में विचारदोष दिखायी पड़ता है। मैं यह मानता हूँ, और मेरा यह अनुभव भी है कि जो काम आत्मोन्नति का विरोधी है, वह समाज-सेवा का भी विरोधी है। सेवा-कार्य के जरिये ही आत्मोन्नति हो सकती है। जो सेवा आत्मोन्नति को रोके वह त्याज्य है।

यह कहने वालों का भी पंथ है कि ‘झूठ बोल कर सेवा हो सकती है।’ पर यह तो सभी कबूल करेंगे कि झूठ बोलने से आत्मा की अवनति होती है। इसलिए झूठ बोल कर की जानेवाली सेवा त्याज्य है। सच तो यह है कि यह मान्यता केवल ऊपरी आभारा मात्र है कि झूठ बोल कर सेवा की जा सकती है। इससे भले ही समाज का तात्कालिक लाभ मालूम पड़े मगर यह बतलाया जा सकता है कि इससे हानि ही होती है।

इसके उल्टे चर्खे से समाज का लाभ होता है, जगत का लाभ होता है और उससे आत्मा का लाभ होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि हर एक कतवैया आत्मोन्नति का साधन करता ही है। जो दो पैसा पैदा करने के लिए कातता है, उसे उतना ही फल मिलता है। जो आत्मा को पहचानने के लिए कातता है, वह इसी जरिये मोक्ष भी पा सकता है। जो दंभ से या द्रव्य के लिए चौबीसों घण्टे गायत्री जपता है, उनमें पहले की तो अधोगति होती है और दूसरा पैसा की प्राप्ति भर का ही फल पा कर रुक जाता है। मोक्ष तो वहीं है जहां सर्वोत्तम कार्य है और उसका सर्वोत्तम उद्देश्य है।

दर असल यही जानने के लिए कि सर्वोत्तम कार्य कौन सा है और सर्वोत्तम उद्देश्य क्या है, ब्रह्मज्ञान की जरूरत पड़ती है। आत्मोन्नति की दृष्टि से खादी सेवा की लियाकत पैदा करनी कुछ छोटी बात नहीं है। आत्मार्थी खादी सेवक रागद्वेष विहीन होना चाहिए। इसमें सब कुछ आ गया। निःस्वार्थ भाव से, केवल आजीविका भर का ही पाकर सन्तुष्ट रह कर, रेलवे से दूर छोटे से गांव में प्रतिकूल वातावरण के होते हुए, अडग श्रद्धापूर्वक, आसन मार कर बैठने वाला एक भी खादी-सेवक अब तक तो हमें नहीं मिला है। ऐसा खादी-सेवक संस्कृत जानता हो, संगीत का जानने वाला हो। वह जितनी कलाएँ जानता हो, वहां पर सब का उपयोग कर सकेगा। चर्खाशास्त्र के बाद कुछ भी न जानता हो तो भी सन्तुष्ट रह कर सेवा कर सकता है।

दीर्घ काल का आलस्य, दीर्घकाल का अन्धविश्वास, वहम, दीर्घ काल की भूखमरी, दीर्घ काल का अविश्वास, इन सब अंधकारों को दूर करने के लिए तो मोक्ष के पास पहुँचे हुए तपस्वियों की आवश्यकता है। इस धर्म का थोड़ा पालन भी महा भयों में से उद्धार करने वाला है। इससे वह सहज है। परन्तु उसका सम्पूर्ण पालन तो मोक्षार्थी की तपस्या जितना ही कठिन है।

इस कथन का यह आशय नहीं है कि कोई विद्याभ्यास छोड़ कर अभी सेवा कार्य में लग जाय। पर इसका यह अर्थ जरूर है कि जिस विद्यार्थी में हिम्मत, बल होवे वह आज से संकल्प कर लेवे कि विद्याभ्यास समाप्त करने पर उसे खादी-सेवक बनना है। यों करे तो वह आज से ही खादी-सेवा कर रहा है क्योंकि पढ़ने के सभी विषयों का चुनाव वह इस सेवा की लियाकत पैदा करने की दृष्टि से ही करेगा।



अब दूसरी कठिनाई देखें, मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि आप एक ही साथ विद्यालयों में ज्ञान और उद्योग को एकसा स्थान कैसे देते हैं ? ”

जब से मैं देश में आया हूँ, यह प्रश्न सुनता आया हूँ और जवाब भी मैंने एक ही दिया है। वह यह कि दोनों को समान स्थान मिलना ही चाहिए। पहले ऐसा होता था। विद्यार्थी समित्याणि हो कर गुरु के घर जाता। इससे उसकी नम्रता और सेवाभाव का परिचय मिलता था। और वह सेवा, गुरु के लिए लकड़ी पानी इत्यादि जंगल में से लाने की होती थी। यानी विद्यार्थी गुरु के घर पर खेती का, गोपालन का और शास्त्र का ज्ञान पाता था।

आज ऐसा नहीं होता है। इसीसे जगत में भूखमरी और अनीति बढी है। अक्षर-ज्ञान और उद्योग अलग अलग चीजें नहीं हैं। उन्हें अलग करने से, उनका सम्बन्ध तोड़ने से ही, ज्ञान का व्यभिचार हो रहा है। पति की छोड़ी हुई पत्नी के जैसा हाल उद्योग का हो रहा है। और ज्ञानरूपी पति उद्योग को छोड़ कर स्वेच्छाचारी बना है और अनेक स्थानों पर अपनी बुरी नजर डालते हुए भी, अपनी कामनाओं की तृप्ति पा ही नहीं सकता, इससे अन्त में स्वच्छन्द चल कर थकता है और पिछड़ता है।

दो में से किसी का पहला स्थान अगर होवे तो उद्योग का है। बालक जन्म से ही तर्क को काम में नहीं लाता पर शरीर का इस्तेमाल करता है। पीछे चार पांच वर्ष में समझ का ज्ञान पाता जाता है। समझ पैदा होते ही वह शरीर को भूल जाय तो समझ और शरीर दोनों में किसीका ठिकाना न लगे। शरीर के बिना समझ हो ही नहीं सकती। इसलिए समझ का उपयोग शरीर उद्यम में करने का है। आज तो देह को तन्दुरुस्त रखने लायक कसरत भर का ही शरीर उद्यम रहता है जब कि पहले उपयोगी कामों में से ही कसरत मिल जाती थी। ऐसा कहने का यह अर्थ नहीं है कि लडके खेलें ही कूदें नहीं। इस खेलकूद का स्थान बहुत नीचा है, और यह शरीर और मन का एक तरह का आराम है। शुद्ध शिक्षण में आलस्य को स्थान नहीं है। उद्योग हो या अक्षरज्ञान हो, दोनों ही रुचिकर होना चाहिए। उद्योग हो या अक्षरज्ञान, बालक अगर किसीसे ऊबे तो यह शिक्षण का, शिक्षक का दोष है।

यह चिन्ती रखने के बाद, मेरे हाथों में एक किताब आयी। उसमें मैंने देखा कि हाल में इंग्लैण्ड में उद्योग के साथ अक्षर की शिक्षा देने के केन्द्र बनाने के लिए जो संस्था खड़ी हुई है, उसमें इंग्लैण्ड के सभी बड़े आदमियों के नाम हैं। उनका उद्देश यह है कि आज जो शिक्षा दी जाती है, उसका रुख बदल दिया जाय, बालकों को अक्षरज्ञान और उद्योग की शिक्षा साथ देने के लिए उन्हें विशाल मैदानों में रक्खा जाय, जहां वे धंधा सीखें, उससे कुछ कमावें भी, और अक्षरज्ञान भी पावें। वे यह भी कहते हैं कि इसमें लाभ है, हानि नहीं क्योंकि इस दरम्यान विद्यार्थी कमाता जाता है और ज्यों ज्यों ज्ञान मिलता जाता है, उसे पचाता जाता है।

मैं यों मानता हूँ कि दक्षिण अफ्रिका में मैंने जो प्रयोग किये, वे इस वस्तु का समर्थन करते हैं। जितना मुझे करना आया और मैं कर सका, उतना वे सकल हुए थे।

जहां शिक्षण की पद्धति अच्छी है, वहां पर स्ववाचन के लिए नहीं जितना ही समय चाहिए। विद्यार्थी के मन में आवे तो कुछ पढ़ने, करने या आलसी रहना चाहे तो आलसी रहने के लिए थोड़ा समय तो चाहिए। मैंने अभी जाना है कि योगविद्या में इसका नाम 'शशासन' है। मरे हुए के जैसे लंबे पड़ जाना, शरीर मन वगैरह को ढीला छोड़ कर, इरादे के साथ जब जैसा हो पड़ना शशासन है। उसमें सांस के साथ तो रामनाम

चाल ही होवे, परन्तु वह आराम में कुछ खलल न पहुँचावे। ब्रह्मचारी के लिए तो उसका आस ही रामनाम होवे।

पर मेरा कहना अगर सच होवे तो यह विद्यार्थी और इसके साथी जो बुरे नहीं हैं, ठेठे नहीं हैं, इसका अनुभव क्यों नहीं करते ?

हमारी दयावनी स्थिति यह है कि हम सब शिक्षक अक्षरज्ञान के युग में पड़े हैं। तौभी कितने आदमी अपनी अपूर्णता देख सके हैं। यह झट मालूम न हुआ कि सुधार किस प्रकार करें। अब भी नहीं मालूम पड़ता है। जितनी बातें समझ में आयी भी हैं, उनका पालन करने की शक्ति नहीं। रघुवंश रामायण या शेक्सपियर पढ़ानेवाले बड़ईगिरी सिखलाने को समर्थ नहीं हैं। वे जितना अपना रघुवंश पढ़ाना जानते हैं, उतनी बुनाई नहीं जानते। जानते भी होंगे तो रघुवंश जितनी उसमें उनकी रुचि नहीं होगी। ऐसे अपूर्ण साधनों में से संपूर्ण उद्योग और ज्ञान-प्राप्त चारित्रवान् विद्यार्थी तैयार करना छोटा काम नहीं है। इससे इस संधिकाल में अधकचरे शिक्षकों और प्रयत्नशील विद्यार्थियों को धैर्य और श्रद्धा रखनी ही रही। श्रद्धा से ही समुद्र लँघा जा सकता है और बड़े बड़े किले फतह किये जा सकते हैं।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी]

## पिंजरापोलों का सुधार

बीमारी के बाद बंगलोर में मैं वहां की सरकारी गोशाला में नियमित रूप से जाया करता था। उसके आचार्य मि० विलियम स्मिथ ने और उनके सहकारियों ने मुझे सभी विभाग बड़े प्रेम से दिखलाये। मैंने उनसे कई बार चर्चा करने बाद, गांवों में ढोर के सुधार पर अपने विचार लिख देने को कहा। उनका पहला लेख नीचे देता हूँ।

“मौजूदा पिंजरा पोलों में कुछ का इन्तिजाम, जिन्हें कमी बेश नियमित और निश्चित आमदनी है, साधारणतः अच्छी तरह होता है और वे बूढ़े जानवरों के लिए जिनसे कुछ कमाई नहीं हो सकती, शरण बन जाते हैं। इनमें प्रायः ही देखा जाता है कि जब व्यापार मंदा होवे और चंदा पूरा न मिलता हो, उन दिनों जानवरों को अधभूखे रहना पड़ता है जिससे वे मर जाया करते हैं। ऐसी हालतों में गोरक्षा करने के बदले ये गोशालाएँ, गोवध करने लगती हैं और वह भी भूखों मार मार कर। कम से कम छह बार तो मैंने गोशालाओं में गायों को भूखों मरते देखा ही है। इस लिए पिंजरा पोलों के लिए सबसे पहली बात तो यह है कि वे उससे अधिक जानवर भुल कर भी न लें, जितने को खिला पिला कर आराम से तब तक रख सकें, जब तक वे कुदरती मौत से न मरें।

“सभी बड़े पिंजरा पोलों को जिन्हें कोई निश्चित आमदनी और पूँजी है, मेरी समझ में तीन विभागों में बांटना चाहिए और सब का प्रबंध किसी गोविज्ञान में शिक्षित प्रबंधक के हाथ रहना चाहिए।

१. पहले विभाग में भैंस को छोड़ कर, वे गोरु, जिनसे कमाई नहीं की जा सकती, कुदरती मौत के आने तक सुख से खिला पिला कर रखे जायँ।

२. दूसरा दुग्धालय विभाग जिसमें वे सब गायें जो कसाई खाने से बचा कर लायी गयीं और दूध देने लायक हों, और दूसरी और सब गायें भी जो दूध देने लायक हों, सुख से रखी जायँ और व्यापारी दुग्धालय की गायों जैसे उनके दूध का हिसाब रक्खा जाय, और सभी बछड़ों का सावधानी से पालन किया जाय। जो बछड़े सांड बनाने लायक अच्छे न हों, उन्हें बेल बनाया जाय, और जो सांड बनाने लायक हों, उन्हें सांड विभाग में रक्खा जाय, या गांववालों को उनके सांड के काम के लिए दे दिया जाय। सभी बछड़ियों का पालन दूध देने



वाली और अच्छे बछड़े पैदा करनेवाली गायों के रूप में होवे। जब इन घर के बछड़ों की संख्या, पिंजरापोल के लिए बहुत अधिक बढ़ जाय तब उन्हें विश्वासी हिन्दुओं को इस शर्त पर बेचा जा सकता है कि दूध या काम न देने लायक बूढ़े हो जाने पर वे गोशाला को जरूर लौटा दिये जायें।

३. तीसरे सांड विभाग में अच्छे से अच्छे सांड जिलेवालों के काम के लिए रखे जायें। गोशाला के प्रबंधक के जाँचे हुए सभी गायों के लिए सांड का उपयोग मुफ्त में दिया जा सकता है, और हर एक संयोग का लेखा रक्खा जाना चाहिए। यह विभाग जिले के सभी बेकार सांडों को मुफ्त में बेल बना देने का भी काम ले सकता है।

भैंसों की नस्ल सुधारने के लिए कोई खास काम करना जरूरी नहीं है। हिन्दुस्तान आज कोई ऐसा ढोर नहीं रख सकता जो दोनों काम न देवे—गायें दूध और बेल काम न देवें। साधारणतः भैंसा तो न खेत के और न गाड़ी खींचने के ही काम आता है और इसलिए सांड के काम के लिए रख कर बाकी पांडे वचपन में ही मार डाले जाते हैं और देश के माथे पे भार स्वरूप बने रहते हैं। हिन्दुस्तान में अधिकतर लोग कोई जानवर मारने के खिलाफ हैं और यह भी कोई अकर्मवी नहीं कि जानवरों को पाल पोस कर स्याना होने पर मांस के लिए मारा जाय जब कि हिन्दुस्तान में इस मांस के दामसे खर्च अधिक पड़ता है।

हिन्दुस्तान में भैंस इसलिए हैं और बढ़ती है कि गाय को बहुत कम दूध होता है और इसलिए गोरक्षा प्रचार का यह उद्देश्य होना चाहिए कि सभी प्रकार के गायों का दूध इतना बढ़ाया जाय कि वे मजबूत तन्दुस्त बछड़े का पालन करने के अलावा, अपना खर्च, अपने दूध से ही चला सकें। जब हम इस स्थिति में पहुँच जायेंगे तब भैंसों की कुछ जरूरत ही नहीं रहेगी और वह अपने आप यों ही, आर्थिक कारणों से नष्ट हो जायगा। आज तो हालत यह है कि किसान को बेल के लिए दो तीन गायें हैं और दूध और घी के लिए दो तीन भैंसें अलग ही रखनी पड़ती हैं। यह बहुत ही अधिक खर्च है और इसकी कोई वजह नहीं कि जो गायें बछड़ों के लिए रखी जाती हैं, वे ही घर के लिए सभी जरूरी घी और दूध भी न देवें। हमारे जानवरों के मांस की कुछ कीमत नहीं है और हम बेल के लिए गाय और दूध के लिए भैंस नहीं रख सकते। गाय अकेले ही दोनों काम कर सकती है, और उसे करना होगा। इसलिए पिंजरापोलों को गाय की उत्तति पर ही ध्यान देना चाहिए। हिन्दुस्तान में गाय की कीमत बेल पैदा करने के लिए है, भैंस की यह हालत नहीं है और गाय के दूध पर लोगों की तन्दुस्ती बनायी रखी जा सकती है, और उसका सुधार भी हो सकता है। एक प्रकार से भैंस तो गाय के कम दूध होने के कारण ही बीच में आ पड़ी है।

अगर सभी पिंजरापोल, ऊपर बताये रास्ते पर, पिंजरापोलों का प्रवन्ध करने के सचमुच में योग्य आदमियों को रखें तो वे हिन्दुस्तान के लिए दर असल कुछ काम करेंगे।”

पाठक देखेंगे कि मि० स्मिथ ने मौजूदा पिंजरापोलों के ज्ञान के आधार पर यह लेख लिखा है। उन्होंने मुझे कहा था कि मैंने कितनी एक गोशालाएँ देखी हैं। उनकी राय में पिंजरापोलों को सिर्फ बूढ़े और लाचार जानवरों का रक्षण भर ही नहीं करना चाहिए बल्कि गोरक्षा का और लोगों को गोरक्षा की शिक्षा देने का भी काम करना चाहिए। इसके लिए उन्हें अच्छा सा दुग्धालय और सांड विभाग होना चाहिए। इसमें मैं चम्पारण्य को भी जोड़ देता हूँ। चम्पारण्य जोड़ने के विषय में मैंने मि० स्मिथ से बात की थी। यह विचार उन्हें पसन्द तो पड़ा मगर एक विषय के विशेषज्ञ होने

के कारण, उन्होंने उसके बाहर देखल देना उचित नहीं समझा। मि० स्मिथ के भैंस के विषय में सावधान विचार पर ध्यान देना चाहिए। हमारे ही जैसा उनमें जानवरों को मारने के खिलाफ न तो भाव है, न होने ही चाहिए, मगर वे यह समझते हैं कि हिन्दुस्तान में जानवरों को मारने की कोई योजना वैसे ही बेमौके होगी जैसे कि बूढ़े मावापों को मार डालने की किसी देश में। इसलिए उन्होंने हिन्दू संस्कारों को समझने की कोशिश की है और हिन्दू भावों के अनुसार ही इलाज सुझाया है। मैं आशा करता हूँ कि पिंजरापोलों के प्रबंधक मि० स्मिथ की सूचनाओं को पढ़ेंगे और अपने यहां जरूरी हेरफेर करेंगे, जो कि मैं समझता हूँ कि शुरू में बहुत कम खर्च पर किये किये जा सकते हैं और अखीर में बहुत लाभ देंगे।

(यं. इ. में से)

मोहनदास करमचंद गांधी

## मैसूर का पत्र

इस हफ्ते का कार्यक्रम यह रहा :

ता. १४ वीं—तुमकुर २२५०) रु. + २५०) रु. विद्यार्थियों और शिक्षकों से + २००) रु. प्राणीदया संघ की ओर से गोरक्षा के लिए।

ता. १५ वीं—मड़ीगिरि १,०००) रु. + १०० रु. कोरेटे गिरि + ३०) रास्ते पर के किसी गांव से।

ता. १६ वीं—बंगलोर

ता. १९—२३ वीं—मैसूर ४९००) थैली + ७९१-९-७ विद्यार्थियों के + ६०५-११-० और गहने भी, स्त्रियों की सभा में + १००) रेलवे नौकरों के + ६२२) येदतारे + २२६-१-० सिरंग-पट्टम + ५१) क्षय चिकित्सालय के रोगी, कुल ७,२१६-५-६।

## सामान्य

मुसाफरी शुरू हो गयी है। मोटर की मुसाफरी कुछ मुश्किल तो पड़ती है, मगर हर जगह दो एक दिन ठहर जाना पड़ता है, इस लिए कहा जा सकता है कि कोई कष्ट नहीं होता। तौभी लोगों के लोभ का तो पार ही नहीं है। गांधी जी को अपने यहां दो दिनों तक पाया नहीं कि एक के बदले तीन तीन सभाएँ रखलीं, अगर्चे कि हर सभा में एक ही श्रोता आते हैं। इसमें जहां तक हो सके कमी ही करनी चाहिए।

मैसूर राज्य में तुमकुर जिला है। यहां दो स्थानों पर, तुमकुर और मड़ीगिरि में खादी देखने में आयी मगर ऐसा मालूम होता था कि लोगों ने जैसे खादी नयी ही नयी पहनी हो। उन्होंने भी सचवाई से कबूल कर लिया कि इसी मौके पर खादी पहनी है। तौभी कुछ न कुछ पक्के खादी-प्रेमी तो सभी जगह मिलते ही हैं।

बंगलोर तो राज्य में मुख्य स्थान है। वहां पर विद्यार्थियों की, स्त्रियों की, गुजरातियों की और मजदूरों की सभाएँ, सार्वजनिक सभा के अलावा हुईं। मैसूर में भी यही हाल रहा। दोनों जगह स्त्रियों ने ही रंग रक्खा। मैसूर में तो कल्याण-मंडप, जहां पर धारा-सभा बैठती है, पूरा भर गया था। स्त्रियों की इतनी बड़ी सभा तो १९२१ में भी शायद ही हुई होगी। अंगूठियां, वाले, वगैरह गहने भी खूब आये। विद्यार्थियों ने भी ऐसी ही किया। उनकी तो तुमकुर में भी अलग थैली थी। मैसूर में उन्होंने ७०० रु. जमा किये थे। मुझे लगता है कि मैसूर के विद्यार्थियों जैसा जवाब और कहीं के विद्यार्थियों ने नहीं दिया।

## स्थानिक संस्थाएँ

स्थानिक संस्थाओं के मानपत्रों के जवाब में गांधीजी ने सभी जगह ऐसे भाषण किये जो करदाताओं और म्युनिसिपैलिटी के काउन्सिलरों को उपयोगी होंगे। उन्होंने बतलाया कि, “पानी



के कल का, बिजली की रौशनी का प्रबन्ध करना अच्छा है मगर उससे भी पहले यह जरूरी है कि इन सबसे लाभ उठानेवालों की जिन्दगी सही सलामत रहे। इसलिए सबसे पहले यह देखना होगा कि प्रजा को स्वच्छ दूध सस्ते दामों मिल पाता है या नहीं, उन्हें आरोग्य और स्वास्थ्य रक्षा के नियम मालूम हैं या नहीं और उनका कितना पालन किया जाता है। धनिक वर्ग के सुख की बातें बुनायी पड़ती हैं, मगर क्या गरीबों की हस्ती ही मिट गयी है या वे पूर्ण सुखी हैं? उन्हें साफ घर और स्वास्थ्यकर भोजन मिलता है? बाजार में क्या शुद्ध घी वगैरह चीजें मिलती हैं? शाक भाजी खानेवाले गांववालों से निकट संबंध जोड़ने का प्रयत्न किया जाता है क्या? अगर ये बातें की जाती हैं तो ठीक नहीं तो इन पर विचार करना चाहिए।”

### मैसूर शहर में

मैसूर शहर को देख कर कालिदास के अलका वर्णन की याद हो आती है। यहां का सब शाही ठाट बाट देख कर गांधीजी घबराये तो उसमें क्या नयी बात है? नागरिकों के मानपत्र के जवाब में उन्होंने कहा, “आपने खादी पर जो जकात बंद की है, इसके लिए धन्यवाद देता हूँ। यहां खादी और चर्खों की स्तुति सुन कर आप फूल न जायें। स्तुतियुग में से निकल कर अभी हमने व्यवहार युग में प्रवेश नहीं किया है। मैं आपके सुन्दर राज महलों, वागवगीचों, एक से एक सड़कों का ख्याल करता हूँ और दूसरी ओर खेतों में खटते हुए किसानों का ख्याल करता हूँ तो घबरा जाता हूँ। मैं तो उसी दिन की मनोती मान रहा हूँ जब सारे हिन्दुस्तान में राजों, महाराजों और गरीबों में ऐक्य स्थापित होवे। मुझे राजमहलों और करोड़पतियों के मकानों से विद्वेष नहीं है मगर मैं चाहता हूँ कि उनका संबंध फूस के झोंपड़ों से भी होवे। मैं इनका नाश नहीं सुधार करना चाहता हूँ। यह संबंध कच्चे धागे से ही बँधेगा। इसी लिए यह सुनकर मैं बहुत आनन्दित हुआ कि महाराजा साहेब खुद सूत काता करते हैं।”

### विद्यार्थियों के बीच

मैसूर के विद्यार्थियों—स्त्री और पुरुष—की सभा बड़ी जवर्दस्त थी। ७००) रु. की थैली देने बाद, सभा में ही १००) और मिले। हिन्दी जाननेवाले शायद ही सों में पांच विद्यार्थी होंगे, मगर तौभी एक भी विद्यार्थी—सभा में गांधी जी से अंगरेजी में बोलने को नहीं कहा गया। यहां भी सबने सावधानी से गंगाधर राव जी का कन्नड उल्था सुना। गांधी जी ने अपने भाषण में विद्यार्थियों को अंगरेजी का आग्रह न करने के लिए धन्यवाद दिया और हिन्दी सीखने के लिए कहा। विद्यार्थियों में दिन दिन बढ़ती हुई नास्तिकता पर दुःख प्रकट किया और बतलाया कि ईश्वर से सुख करने वाली विद्या किसी काम की नहीं होती।

### मजदूर और पूँजीपति

मजदूर तो जहाँ चाहिए वहीं गांधी जी को ढूँढ निकालते हैं। महाराज मिल के मजदूरों ने हडताल की थी। उस समय उन्होंने गांधी जी की सलाह लेनी चाही, मगर उस समय गांधीजी तबीयत ठीक न होने से श्री राजगोपालाचार्य भेजे गये थे। यह हडताल तो खत्म हो गई। बाद में मजदूरों ने २५०) रु. इकट्ठे कर के गांधी जी को बुलाया।

### अस्पृश्यों में

यह पहले लिखा जा चुका है कि अछूतों की स्थिति सुधारने के सरकार क्या कर रही है। इस प्रवास के दम्यान तुमकुर और मैन आदिकर्णाटक वालकों की दो संस्थाएँ देखीं। पहले में ८५

और दूसरे में १२५ विद्यार्थी हैं। इस संस्था में सिर्फ अक्षरज्ञान ही नहीं दिया जाता बल्कि, बढईगरी, लुहारी, बुनाई, चमड़े की कमाई, सिलाई वगैरह हुनर भी सिखलाये जाते हैं। इन सबमें से एक उद्योग हर विद्यार्थी के लिए सीखना लाजिम है पर संचालकों से पूछने पर पता चला कि पास हुए विद्यार्थियों में से बहुत से शिक्षक बने हैं और एक ने भी उद्योग सीख कर लाभ नहीं उठाया है। यों मुफ्त तालीम और खाना पीना मिलने का भी बुरा असर कितने विद्यार्थियों पर मालूम हुआ। वे अपने पूर्व जीवन की सादगी, शारीरिक मिहनत, वगैरह सभी बातें भूल जाते हैं और अपनी जाति के सेवक नहीं रहते। ऐसे ही प्रसंगों में दान और सहायता का तात्त्विक भेद देखने में आता है। जिस दान के साथ जवाबदारी नहीं है, ज्ञान नहीं है, वह दान अपात्र के हाथ गया। समझिए; दान अंगंग बनाता है और सहायता मनुष्य को अपने पैरों पर खड़े होना सिखलाती है।

मैसूर में इस जाति के लोगों को घर बनाने के लिए खास सुविधाएँ दी जाती हैं। एक दिन गांधीजी को इस गली में ले गये। सभा की शान्ति और व्यवस्था तो स्पष्ट यानी ऊँची जातिवालों को शर्मने वाली थी। वहाँ की शान्ति का गांधीजी पर बड़ा अच्छा असर पड़ा। उन्होंने कहा:

“तुम्हारे यहां आते हुए मुझे जितना आनंद होता है, दुःख भी उतना ही होता है। आनंद इस लिए कि तुम्हारे पास आकर मैं थोड़ा पावन बन जाता हूँ और अपने कर्तव्य का कुछ ज्ञान पाता हूँ मगर दुःख इस बात का होता है कि तुम्हारी हालत ठीक ठीक जानते हुए भी, मैं स्वास्थ्य के कारण या दूसरे कारणों से महलों में रहना स्वीकार कर लेता हूँ। अगर मैं सत्य का, परमात्मा का पुजारी हूँ तो मेरा सच्चा स्थान तो महलों में नहीं, तुम्हारे ही जैसे घरों में है। शास्त्र में इसे क्षणिक वैराग्य कहा है। मगर संभव है कि वह शुभ दिन भी आवे जब मैं जो बात कहूँ, उसे पूरा कर सकूँ, आज तो इतना ही भर कहने आया हूँ कि मैं जो प्रयत्न कर रहा हूँ, वही और कई लोग भी कर रहे हैं। और यह सुन कर मुझे खुशी हुई है कि एक ब्राह्मण विधवा बहिन ने तुम्हारी सेवा में जीवन अर्पण किया है। मेरा संपूर्ण विश्वास है, और वह दिनों दिन बढ़ता जाता है कि हिन्दू धर्म के ऊपर जो यह दूषण है, वह थोड़े ही दिनों में दूर हो जायगा।”

इसके बाद आदिकर्णाटक भाइयों को गोमांस, मुरदार मांस, शराब वगैरह का त्याग करने का आग्रह किया और उन्हें बतलाया कि हिन्दू होने के लिए उसकी विशेष संज्ञा गोरक्षा को समझना होगा और धर्म के सामने चाहे गोमांस कितना ही सस्ता क्यों न हो उसे छोड़ना ही होगा और दूसरी कुप्रथाओं में जैसे कि मदिरापान, व्यभिचार आदि को छोड़ना पड़ेगा क्योंकि इसके बिना उन्नति संभव नहीं है।

### हिंदी प्रचार

उस दिन मैं हिंदी प्रचार की बातें कर गया हूँ। मैसूर में भी हिंदी खूब प्रगति कर रही है। गांधी जी के वहाँ रहने के दम्यान ही, पदवी दान समारंभ रक्खा था। भला ये लोग ‘पदवी दान समारंभ’ जैसा अपचित शब्द कैसे समझें? इस लिए कोन्वोकेशन का नाम दिया था। इनाम लेने वालों में ५० वर्ष की स्त्रियाँ कई एक अडेड थीं। छोटी छोटी लड़कियाँ भी थीं। दश वर्ष की एक लड़की ने बहुत शुद्ध उच्चारण से हिंदी में मान पत्र पढ़ा। यह कोई छोटी सी बात नहीं कही जायगी कि ११ महीनों में प्रचारकों को ७०० विद्यार्थी मिले हैं। गांधी जी ने सब को खूब धन्यवाद दिया और इच्छा जनाई कि हिंदी का इतना



सार्वत्रिक प्रचार होवे कि 'कोन्वोकेशन', 'ग्रैन्ड ओल्ड मैन' और 'सर्टिफिकेट' जैसे अंगरेजी शब्द जो आज परिचित हैं, वे अपरिचित बन जायें और उनके बदले 'पदवीदान समारंभ', 'पितामह', 'प्रमाणपत्र' जैसे शब्द, अपने संपूर्ण अर्थ के साथ सबको परिचित हो पड़ें।

(नवजीवन)

महादेव हरिभाई देशाई

## चांडाल कौन ?

एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती नगरी में जेतवन के विषय में घूम रहे थे। एक दिन वे भिक्षा के लिए नगर में गये।

उस समय भारद्वाज ब्राह्मण के घर में अग्नि प्रकट हो चुकी थी। आहुति तैयार की गयी थी। वहां भगवान् घूमते फिरते आ पहुँचे। दूर से भगवान् को देख कर भारद्वाज बोला 'हे मुंडा, इधर न आना। अरे चांडाल, वहीं ठहर जाना।

भगवान् ने पूछा, 'हे ब्राह्मण, तू क्या जानता है कि चांडाल कौन है, और उसके क्या गुण धर्म हैं ?'

भारद्वाज ने जवाब दिया, 'नहीं। आप मुझे सिखलाइए।'

भगवान् बोले, 'तो हे ब्राह्मण, ध्यान से सुन। मैं तुझे बतलाया हूँ,

कोधनो उपनाही च पापमक्खी च यो नरो।

विपन्नदिट्ठि मायावी तं जज्जा वसलो इति ॥

जो आदमी क्रोधी, द्वेषी, पापी दंभी, कपटी, तथा कुमति है, उसीको चांडाल जानना।

एकजं वा द्विजं वापि योऽध पाणानि हिसति।

यस्य पाणे दया नत्थि तं० ॥

जो आदमी प्राणियों की हिंसा करता है, जिसे प्राणी के ऊपर दया न हो, उसे ही चांडाल जानो।

यो अत्तहेतु परहेतु धनहेतु च यो नरो।

सखिखपुटो मुसा व्रूति तं० ॥

जो आदमी अपने लिए, दूसरे के लिए और धन के लिए झूठ बोले, उसीको चांडाल जानना।

यो वातीनं सखानं वा दारेसु पतिदिस्सति।

सहसा संपियेन वा तं० ॥

जो आदमी पर स्त्री पर कुदृष्टि करे, वही चांडाल है।

यो मातरं वा पितरं वा जिण्णकं गतयोच्चनम्।

पहु संतो न मृति तं० ॥

जो बूढ़े मातापिता को पालने की शक्ति होते भी उनका पालन नहीं करता वही चांडाल होता है।

यो चत्तानं समुक्कंसे परं च मवजानति।

निहीनो सेन मानेन तं० ॥

जो अपनी बड़ाई और दूसरे की अवज्ञा करता है, मिथ्याभिमान से भरा है, उसीको चांडाल समझना।

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।

कम्मणा वसलो होति कम्मणा होति ब्राह्मणो ॥

जाति से, जन्म से न तो कोई चांडाल होता है, न ब्राह्मण। कर्म के अनुसार वह चांडाल बनता है या ब्राह्मण।

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतम्।

संयतं तीहि ठानेहि तमहं वूमि ब्राह्मणम् ॥

मन वचन और काया से जो निष्पाप और संयमी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

वीतइरं विसंयुत्तं तमहं० ॥

जो निर्भय और आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।

जिसमें सत्य और धर्म है वही प्रवित्र है और वही ब्राह्मण है।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं वूमि ब्राह्मणम्।

जो निष्किञ्चन और निर्लोभ है, वही ब्राह्मण है।

अक्कोसं वधवन्धं च अटुटो यो तितित्थति।

खन्तीवलं बलानीकं तमहं वूमि ब्राह्मणम् ॥

अपराधी न होने पर भी जो तिरस्कार, मार, वंघन सहता है, क्षमा ही जिसकी शक्ति है और यही शक्ति जिसका सैन्य है, वही ब्राह्मण है।

न हयेतमत्थं महती पि सेना सराजिका युज्जमाना लभेध।

यं खन्तिमां सप्पुरिसो लभेध खन्तीवलस्सोपसमन्ति वेरा ॥

जा० १७-२

क्षमाशील सत्पुरुष जो विजय पाता है, वह प्रचंड से प्रचंड राजसेना भी नहीं पाती। क्षमा ही जिसका बल है, उसका वैर शान्त होता है।

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।

धी ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धी यस्स मुञ्चति ॥

ब्राह्मण को कोई मारे नहीं; और मारे भी तो ब्राह्मण उल्टी चोट न करे। ब्राह्मण को मारनेवाले को धिक्कार है। मगर उसके बदले में मारनेवाले ब्राह्मण को और भी अधिक धिक्कार है।

वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गेरिव सासपो।

यो न लिम्पति कामेसु तमहं वूमि ब्राह्मणम् ॥

कमलपत्र पर पानी और सुई की नोक पर सरसों जैसे नहीं ठहरता वैसे ही जो विषय-वासना मुक्त है, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।

यो न हन्ति न घातेति तमहं० ॥

जो जीवों को न मारे, न सखावे, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूँ। अविद्वं विद्वेसु अत्तदण्डेसु निव्वुत्तम्।

सादानेसु अनादानं तमहं० ॥

विरुद्ध का भी जो विरोध न करे, धोका देनेवाले के साथ भी जो शान्त भाव रखे, लोभियों के बीच भी जो निर्लोभ रहे, उसी को मैं ब्राह्मण मानता हूँ।

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।

सासपोरिव आरग्गा तमहं० ॥

ब्राह्मण वही है जो रागद्वेषमानदंभ से रहित होवे।

अक्कवक्कं विज्जापनि गिरं सच्चं उदीरये।

याय नाभिसजे किञ्चि तमहं० ॥

और जो सबी, कोमल, बोधक, अमार्मिक वाणी बोले, मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूँ।

[सुत्तनिपात १-७, धम्मपद १६]

(नवजीवन)

देसाई वालजी गोविन्दजी

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छपा गया; कीमत =) पोस्टेज -); बिना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की बी. पी. नहीं भेजी जायगी। बी. पी. मँगानेवालों को आधा दाम पेशगी भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक, हिन्दी-नवजीवन



शाबास

वार्षिक मूल्य ४ )

छः मास का ,, २ )

एक प्रति का ,, - )

# हिन्दी नवजीवन

संपादक—मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ ]

[ अंक ५२

मुद्रक-प्रकाशक

अहमदाबाद, भाद्रपद वदि ६ संवत् १९८४

मुद्रणस्थान—नवजीवन मुद्रणालय,

स्वामी आनंद

सुरवार, १८ अगस्त १९२७ ई०

सारंगपुर सरकीगरा की वाडी

## सत्य के प्रयोग तथा आत्मकथा

भाग ४

अध्याय १३

‘इंडियन ओपीनियन’

अभी दूसरे यूरोपियनों के गाँव परिचय देने को हैं, मगर उससे पहले दो तीन महत्व की बातों को लिखना जरूरी है।

एक परिचय तो अभी दे लेता हूँ। सिर्फ एक मिस डिक को ही दाखिल कर लेने से मेरा काम पूरा होने को था नहीं। मि. रिच के विषय में मैं पहले लिख चुका हूँ। उनके साथ तो मेरा अच्छा परिचय था ही। वे व्यापारी पेढी में संचालक थे। वहाँ से छोड़ कर मेरे यहाँ आर्टिकल लेने को मैंने कहा। यह बात उन्हें रुची और वे मेरे दफ्तर में आये। मेरा बोझ कुछ हलका हुआ।

इसी अंश में श्री मदनजीत ने ‘इंडियन ओपीनियन’ अखबार निकालने का विचार किया। मेरी सलाह ज़ोर मद्ध सोंगी। छापाखाना तो वे पहले से चलाते ही थे। अखबार निकालने के विचार से मैं सहमत हुआ। मनसुखलाल नाजर अधिपति बने। परन्तु अधिपतिपना का सच्चा बोझ तो मेरे ही ऊपर पड़ा। इस अखबार का जन्म १९०४ में हुआ। मेरे नसीब में हमेशा से दूर से ही अखबार का संपादकत्व करना आया है।

मनसुखलाल सम्पादन न कर सकें, ऐसी कोई बात न थी। उन्होंने तो देश में बहुत से अखबारों के लिए लेख लिखे थे। पर द० अफ्रिका के अटपटे प्रश्नों पर, मेरी हाजिरी में, उन्होंने आप कुछ लिखने की हिम्मत ही न की। मेरी विवेकशक्ति पर उनका अतिशय विश्वास था। इस लिए जिन जिन विषयों पर लिखना होवे, उनपर लिख भेजने का बोझा मेरे ही ऊपर डालते।

यह अखबार हफ्तेवारी था, जैसा कि आज भी है। पहले तो वह गुजराती, हिन्दी, तामिल और अँगरेजी में निकलता था। पर मैंने देखा कि तामिल और हिन्दी विभाग नाम के ही थे। उनसे कौम की सेवा होती मैंने न देखी। उन विभागों को रखने में मुझे झट का आभास लगा, इससे उन्हें बंद किये और मैंने शांति पायी।

मुझे ऐसी कल्पना न थी कि इस अखबार के लिए मुझे धन देना पड़ेगा। पर थोड़ी ही मुहूर्त में मैंने देखा कि अगर मैं पैसा न दूँ तो अखबार चले ही नहीं। हिन्दुस्तानी और गोरे, दोनों जान गये थे कि पत्र का अधिपति न होते हुए भी लेखों के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। अखबार न निकला होता तो अखबार न होती,

मगर मुझे लगा कि निकल चुकने बाद बंद होने से कौम की बदनामी होगी, और उसे नुकसान पहुँचेगा।

मैं उसमें धन फेंकता गया और अंत में तो यह भी कहा जायगा कि जो कुछ वचता सो उसी में जाता था। ऐसे समय भी मुझे याद हैं, जब हर महीने ७५ पाउन्ड ( कोई सवाग्यारह सौ रुपये ) भेजने पड़ते। पर इतने वर्षों बाद मुझे लगता है कि इस अखबार ने कौम की सेवा की है। उसमें से पैसा पैदा करने का इरादा तो किसीको शुरू से ही न था।

जब वह मेरे हाथों में था, तब के किये फेरफार, मेरी जिंदगी के फेरफार बतलानेवाले थे। जैसे अब ‘यंग इंडिया’ और ‘नवजीवन’ मेरे जीवन के कई अंशों के निचोड़ हैं, वैसे ही ‘इंडियन ओपीनियन’ था। उसमें मैं हर हफ्ते अपनी आत्मा ढालता और जिसको मैं सत्याग्रह जानता था, उसे समझाने का प्रयत्न करता। जेल के समयों को बाद करते हुए, दश साल तक यानी १९१४ तक शायद ही ‘इंडियन ओपीनियन’ का कोई अंक होवे, जिसमें मैंने कुछ न लिखा हो। मुझे ऐसा याद नहीं है कि इसमें एक भी शब्द मैंने बगैर तौले, बगैर विचार के लिख दिया हो, या किसी को सिर्फ खुश करने के लिए ही कुछ लिखा हो, या जानबूझ कर अतिशयोक्ति की हो मेरे लिए यह पत्र संयस की तालीम हो पड़ा था और मेरे मित्रों के लिए मेरे विचार जानने का साधन और आलोचकों को उसमें से आलोचना करने के लिए बहुत कम बातें मिलती थीं। मैं जानता हूँ कि उसके लेख, आलोचक को अपने कलम पर अंकुश रखना फर्ज कर देते थे। इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़त नहीं चल सकती थी। वाचक वर्ग इसको अपना ही समझ कर इसमें से लड़त की और द० अफ्रिका के हिन्दुस्तानियों की हालत की सच्ची तसवीर पाते।

इस अखबार के जरिये, रंग विरंगी मनुष्य स्वभाव को जानने के मुझे बहुत अवसर मिले। संपादक और ग्राहक के बीच निकट ज़ोर स्वच्छ संबंध बांधने की ही धारणा होने के कारण, मेरे पास हृदय हिलानेवाले पत्रों के ढेर आया करते थे। उनमें तीखे, कड़वे, मीठे, भांति भांति के लेख मेरे पास आते। उन्हें पढ़ना, विचारना, उनके विचारों को ठीक ठीक समझ कर जवाब देना—यह मेरे लिए उत्तम शिक्षण बन गये। मुझे ऐसा लगा कि इस जरिये, मानों मैं कौम में चलती हुई बातों और विचारों को सुनता होऊँ। संपादक की जिम्मेदारी मैं अच्छी तरह समझ गया और कौम के आदमियों पर



मुझे जो काबू मिला, उससे भविष्य में होनेवाली लड़ाई शक्य बनी, शोभी और उसे जोर मिला।

यह तो मैं 'इंडियन ओपीनियन' के पहले ही महीने के काम से देख गया कि वर्तमान पत्र सेवाभाव से ही चलने चाहिए। वर्तमान पत्र तो भारी शक्ति हैं। पर ज्यों निरंकुश पानी का प्रवाह गांव के गांव डुबाता है और फसल का नाश करता है, वैसे ही निरंकुश कलम का प्रवाह नाश करता है। यह अंकुश अगर बाहर से आवे तो वह निरंकुशता से भी अधिक जहरीला निकलता है। अंदर का ही अंकुश लाभदायी हो सकता है। यह विचारसरणी सबी होवे तो दुनिया के कै अखबार निभ सकते हैं? पर निकम्मों को बंद कौन करे? कौन किसे निकम्मा गिने? कामदार और निकम्मे साथ साथ चलने ही वाले हैं। उनमें से मनुष्य को आप अपनी पसंदगी करनी रही।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### विविधता में एकता

पोलैंड के किसी अध्यापक ने कई महीने हुए मुझसे कुछ प्रश्न पूछे थे। मेरे उत्तर पढ़ कर, अब उन्होंने ये सवाल और भेजे हैं:

१. सभी मनुष्य समान नहीं हैं। क्या आप मानते हैं कि राष्ट्रों में भी अत्यन्त असमानता होती है?

२. अगर यह सच है तो क्या आप समझते हैं कि यूरोप की धारासभाएँ (पार्लियामेंटें), जिन्होंने यूरोप में पिछला महायुद्ध मचा दिया था, हिन्दुस्तान के लिए उपयुक्त हैं?

३. क्या आपके मत में हिन्दुस्तान भी फ्रांस या इटाली जैसा एक राष्ट्र बन सकता है?

४. क्या यह मानना ठीक है कि एशिया का भविष्य हिन्दुस्तान के ऐक्य पर निर्भर है, यानी सिर्फ हिन्दुस्तान ही जापान और चीन की भौतिक प्रवृत्ति को काबू में ला सकता है।

५. क्या यह एशिया के लिए आवश्यक नहीं कि या तो वह जापान के जैसा ऊपर ऊपर से यूरोपियन रंगडंग अख्तियार कर लेवे या पुरातन आर्य परंपरा पर लौट जाय?

६. क्या इस आर्य संस्कृति के पुनर्जीवन का यूरोप के लिए भी कुछ महत्व है?

७. क्या आप यूरोपियन सभ्यता में, उसके सभी दोषों के रहते हुए भी एक नयी शक्ति नहीं देखते जो कि हिन्दुओं के अनुभव के परे है?

८. क्या सारे हिन्दुस्तान में ऐसा एक भी छोटा सा शहर है जहां पर सभी कोई अपने मतानुसार चलने को पूरे स्वतंत्र हों, सभी कोई खुशहाल हों, साधारणतः सभी कोई ऊंचे दर्जे तक शिक्षित और मिलनसार स्वभाव के हों और दो विरोधी आवांवाले भी परस्पर सहनशीलता से मित्र जैसे मिलते हों? मैं ऐसे शहर इंग्लैंड और फ्रान्स में जानता हूँ। पता नहीं हिन्दुस्तान में ऐसे शहर हैं या नहीं।

प्रश्नकर्ता ने यह कहते हुए कि 'सभी कोई समान नहीं होते' आधा ही सत्य कहा है। बाकी आधा सत्य है कि 'सभी आदमी समान हैं।' क्योंकि अगवें कि सब कोई एक उम्र, एक उंचाई, एक रंग, एक समान बुद्धि के नहीं हैं, मगर ये विषमताएँ अस्थायी और ऊपरी हैं। इस मिट्टी की देह के भीतर जो आत्मा छिपी हुई है, वह तो सब देश के सभी पुरुष स्त्रियों में एक ही है। इसलिए, शायद यह कहना अधिक उचित होगा कि हमारे चारों ओर जितना भेद, अंतर देखने में आता है, उन सबके भीतर सबी और हर असल एकता है। 'असमानता' शब्द में घुरी वृ बसी हुई है। इसीने पश्चिमीय और पूर्वीय देशों में

भांति भांति की निर्दयताएँ, अमानुषिकताएँ करायी हैं। जो बात आदमियों पर लागू है, वही राष्ट्रों पर भी जो कि आदमियों के समूह हैं। असमानता के इसी छूटे और न बदलनेवाले सिद्धान्त के ही कारण एशिया और अफ्रिका के देशों को शेखी से लुटा गया है। कौन जानता है कि आज पश्चिम जो पूर्व के देशों को लुट रहा है, उसीका अर्थ है उसका वटपन और पूर्व का छुटपन? मैं जानता हूँ कि पूर्व नम्रता से और बहुत जल्द इस बुरे सिद्धान्त के सामने सिर झुका लेता है और पीछे से पश्चिम की नकल उतारने की बेकार कोशिश करता है। आखिर, इस वचन में भी सत्य का बहुत अंश है कि 'वस्तुएँ वैसे ही नहीं होती, जैसी वे दिखती हैं।'

दूसरा सवाल पहले से निकलता सा नहीं दिखलायी देता। और यह देखते हुए कि लेखक ने जिस अर्थ में असमानता के सिद्धान्त का उपयोग किया है, मैं उसे नहीं मानता,—मैं लोकनियुक्त प्रतिनिधिक संस्थाओं को हिन्दुस्तान के लिए दर असल वैसे के या अनुपयुक्त नहीं कह सकता। मगर अपनी किताब 'हिन्द स्वराज्य' में मैंने जो बातें बतलायी हैं, और जिन्हें बदलने की मुझे पिछले बीस वर्षों में जरूरत नहीं पड़ी है, उनके कारण मुझे यह देख कर अत्यन्त खेद होगा कि हिन्दुस्तान यूरोप की पूरी पूरी नकल उतार रहा है। यूरोपियनों के यहां आने के पहले भी हिन्दुस्तान को लोकनियुक्त प्रतिनिधिक संघों का पता था। मगर जहां तक मैं देख सकता हूँ 'प्रतिनिधित्व' और 'लोकनियुक्त' शब्दों के अर्थ यूरोपियन अर्थों से बहुत भिन्न थे।

मेरी राय में, जैसे कि फ्रान्स और इटाली भी हैं, हिन्दुस्तान आज एक राष्ट्र है। और मैं इस मत पर इस दुःखद बात को जानते हुए भी कायम हूँ कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे का गला काट रहे हैं। ब्राह्मण, अब्राह्मण वैसे ही लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं, ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों ही उस श्रेणी को अपने हिसाब में गिनते ही नहीं, जिसे दवाने में दोनों ने ही कुछ उठा नहीं रखा है। मगर इसीतरह के झगडे मैंने कुट्टम्बों में और दूसरी कौमों में देखे हैं। मुझे यह प्रायः ही लगा है कि झगडे की अच्छी जड़ मिलने के लिए पारिवारिक सम्बंध आवश्यक है। मगर इसका समर्थन करने में मुझे बड़ी खुशी होती है कि एशिया का भविष्य हिन्दुस्तान के सबे और दृश्य ऐक्य पर निर्भर है।

खैर तौभी मैं यह नहीं मानता कि या तो हिन्दुस्तान ऊपर ऊपर से यूरोपियन रहन सहन अख्तियार कर लेवे या उसे प्राचीन आर्य परंपरा पर ही लौटने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। मैं उस महान विचारक, न्यायभूति रानडे के साथ सहमत हूँ कि अगर यह इष्ट भी होवे तौभी, प्राचीन परंपरा पर पूरे तौर से ठीक ठीक लौट जाना असंभव है। पहले तो यही कोई निश्चित और प्रामाणिक रूप से नहीं जानता कि आर्य-परंपरा क्या थी या क्या है। स्वर्णयुग की तारीख ठीक ठीक मुकर्रर करना और फिर उसका ठीक वर्णन करना कठिन है। और मुझमें यह मानने की नम्रता है कि पश्चिम से भी हम बहुत सी लाभदायक बातें सीख सकते हैं। बुद्धिमानों का इजारा किसी खास देश या राष्ट्र को नहीं मिला है। मैं तो इस आधार पर पश्चिमीय सभ्यता का विरोध करता हूँ कि उसको अंधाधुंध नकल बेविचारे की जाती है और वह इस बात से कि एशियाइयों को केवल पश्चिम की नकल उतारने भर के लिए ही योग्य माना जाता है। मैं विश्वास करता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान को कष्ट की आग में तपने और उसकी सभ्यता पर जो अपूर्ण है सही, मगर अवतक समय की चोटें सहती आयी है, आक्रमणों का



विरोध करने की शक्ति होवे तो वह संसार का शान्ति और ठोस उन्नति में स्थायी मदद दे सकता है।

मैं खुशी से कबूल करता हूँ कि पश्चिम में, एक मंगल कारिणी शक्ति धीरे धीरे, मगर उदय जरूर हो रही है। यह हिन्दुओं के सभी अनुभवों से आगे जायगी या नहीं — मैं नहीं कह सकता। मगर, चाहे कहीं से आवे, सन्तुष्टजाति की उन्नति के लिए की गयी हर एक बात का मैं स्वागत करूँगा।

अखीर मैं मैं, उन फ्रान्सीसी और अंगरेजी शहरों के बारे में कुछ कहने में असमर्थ हूँ, जिनकी ये विद्वान् अध्यापक इतनी तारीफ करते हैं इंग्लैण्ड के शहरों के विषय में मैं बहुत कम जानता हूँ और फ्रांस के बारे में तो और भी कम। मैं मानता हूँ कि मुझे शक्यता भी है। मगर मैं जानता हूँ कि अगर ये अध्यापक महोदय, हिन्दुस्तानी गांवों के ऊपरी विरोधी आवरण तक को बरदाश्त कर लें तो मैं उन्हें ऐसे गांवों में ले जाने का जिम्मा दूँगा जहाँ पर वे ऊँचे दर्जे की संस्कृति पावेंगे, शिक्षा की चमक दमक न मिलेगी सही, परन्तु मनुष्य हृदय और मानुषिकता वे जरूर देखेंगे, और अगर वे हिन्दुस्तानियों के खानपान के लुआटत तक को सह सकें तो विरोधी खयालातों का वे आश्चर्यजनक रूप से बरदाश्त किया जाना देखेंगे, बुद्धि और आत्मा का परस्पर सम्मेलन पावेंगे। मैं अध्यापक महोदय को यह भी याद दिला दूँ कि इंग्लैण्ड और फ्रांस की समृद्धि और उस समृद्धि से प्राप्त शान्ति का आधार है, दूसरे देशों को लटका जिस बात को अगर मैं छोड़ सकता तो खुशी से छोड़ देता।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

## दुखियों के सहारा

सारे गुजरात और काठियावाड़ के संकटग्रस्त गांवों में अनाज और कपड़े की तात्कालिक मदद पहुँचाने की व्यवस्था पूरी हो गयी है। नलकांठा के थोड़े से गांवों को छोड़ कर, सभी तालुकों और गांवों से व्यवहार जारी हो गया है। हर एक जगह पर केन्द्र खोल कर जिम्मेवर कार्यकर्त्ता रखे गये हैं। उनके नीचे स्वयंसेवकों के दल गांव गांव में घूम कर मदद पहुँचा रहे हैं और लोगों को आश्वासन दे रहे हैं।

नलकांठा के कुछ गांवों की कुछ चिन्ता अभी लगी ही हुई है। हमारे कार्यकर्त्ताओं और सरकारी रिपोर्टों से मालूम पड़ता है कि धोलका तालुके में नलकांठा के इन गांवों में अभी कोई जा नहीं सकता। अगर वह प्रदेश पानी से घिरा होता तो किसी न किसी प्रकार कोई जाता भी मगर यह प्रदेश तो सूखे समुद्र का तल है। इस लिए दलदल से भरा पड़ा है और जहाँ दलदल न हो, वहाँ उसे भी मात करनेवाली कीचड़ है। उसमें पैर डालते ही आदमी कमर भर या कभी कभी पूरा पूरा डूब जाता है और निकल नहीं सकता। कीचड़ बबूल के टूटे सड़े हुए कांटों और पेड़ों से भरी पड़ी है। मच्छर और डाँस तो ऐसे हैं कि जो खून निकाल कर ही रस लेते हैं। सांझ होते ही आदमी को इन वीरों के साथ जीवन-संग्राम में जुट जाना पड़ता है।

इन गांवों की बस्ती घिर गयी है। यह भी भय है कि उनके पास खाने का अन्न घट गया होगा। स्वयंसेवकों की दो टुकड़ियाँ भेजी गयी हैं कि वे हर हालत में वहाँ पहुँचने की कोशिश करें। मगर वे पहुँच सकेंगी कि नहीं इसमें अन्देश है। इस लिए सरकारी अफसरों से मसलहत कर के, भरसक हवाई जहाज से ऊपर ही ऊपर वहाँ की हालत देख आने, और ऊपर से ही अनाज के बोरे फिकवाने का प्रबंध कराया जा रहा है।

नलकांठा के अनाज की खेती प्रदेश के सिवा बाक़ी के प्रांतों की अब जान में जान आती है। हर जगह पानी घटा है। जैसे बने, जल्दी से जल्दी, किसानों ने खेत बोने की उतावली है। उन्हें इस समय सबसे अधिक जरूरत ही बीज मिल जाने की है। गांव गांव से इस एक चीज के बीज पुकार मची है। अगर इसका तुरत ही प्रबंध न हो जायगा, और कुछ दिनों में ही अगर खेत बो न दिये जायेंगे तो किसानों को कुछ भर हाथ पर हाथ धरे बैठे ही रहना पड़ेगा। इस हालत को देख कर अहमदाबाद जिला संकटनिवारण समिति ने अपना कार्यक्षेत्र बड़ा कर, किसानों को बीज की तात्कालिक मदद देने का निश्चय किया है। वारेजा, धोलका और दक्षिण दसकोई में १५,०००) रु. और साणंद में १०,०००) रु. की घटी सहकर किसानों को बीज देने का निश्चय किया है। नलकांठा के आसपास के गांवों में खेती नहीं हो सकती, इस लिए फी आदमी ३०) रु. के हिसाब से बावला केन्द्र से बांटने के लिए ३५,०००) रु. मंजूर किये गये हैं। इसके अलावा ईंट, चूना, पतहर, वगैरह मकान बनाने की चीजों का दाम व्यापारियों के बड़ा देने की वजह से उनकी बाजार दर काबू में रखने के लिए एक पूरी गाड़ी माल भेजने की तजवीज की गयी। परंतु से कुछ घटी सहकर, अन्न, कपड़ा और उसी प्रकार बीज बँचने की दुकानें कई केन्द्रों में खुल चुकी हैं। सरकारी अफसरों ने हमारी समितियों और कार्यकर्त्ताओं से मिल कर काम करने की इच्छा जनायी है और कर भी रहे हैं। जिन किसानों ने तकावी के लिए दरखास्त दी है और जिन्हें तकावी नामंजूर हुई है, उन किसानों को समिति की ओर से मदद देने के लिए १५,०००) रु. अलग निकाले गये हैं। यों एक ओर निराधार किसान को अन्नबख्त पहुँचाने और दूसरी ओर उसकी खेती शुरू कराने के लिए भी काम चल रहा है।

काठियावाड़ का काम भी तेजी से चल रहा है। वहाँ के लिए बंबई से डेढ़ लाख रुपयों की मदद मिली है। गुजरात प्रान्तिक समिति की ओर से भी ८,०००) रु. की तात्कालिक मदद और ५,०००) रु. घर बनाने की मदद के लिए मंजूर हुए हैं।

वडोदा प्रदेश में भी स्थानिक प्रयत्नों के अलावा, गुजरात प्रान्तिक समिति की ओर से ढाढर और विश्वामित्री के प्रदेश में, और अहमदाबाद जिला संकट निवारण समिति की ओर से कडी, देहगाम, कलोल, मेहसाना वगैरह भागों में मदद का काम चल रहा है। इनके सिवाय, मस्कती मार्केट के महाजन, सराफ महाजन, पाँच कुवा महाजन, काटपीटिया महाजन, वगैरह मंडल भी समिति के साथ मिल कर स्वतन्त्र और संयुक्त साधनों से अहमदाबाद जिले के चारों ओर काम कर रहे हैं।

इस प्रकार गुजरात काठियावाड़ के बड़े छोटे, एक एक कार्यकर्त्ता अपना काम अलग रख कर सारे गुजरात और काठियावाड़ में दुःखियों की सेवा में लगे हुए हैं। लगभग दो सौ केन्द्रों में सहायता कार्य चल रहा है। सैकड़ों विद्यार्थी दुःखियों की सेवा करके जीवन के सच्चे शिक्षण की तालीम ले रहे हैं। राष्ट्रीय, सरकारी, नीम सरकारी, सभी स्कूलों, कॉलेजों के विद्यार्थी, अध्यापक, शिक्षक, सभी के सभी, दुःख निवारण के काम में थोड़े बहुत लगे हुए हैं। श्रीमती विद्यावहिन का संघ अहमदाबाद शहर में से कोई डेढ़ लाख कपड़ा जमा कर सका है, जिनमें नये कपड़े भी हैं। इन कपड़ों को धो कर, साफ कर, बाँटने का काम चल रहा है। सरकारी खेतीवारी विभाग के गुजराती नौकरों को इस समय की मदद के काम के लिए छुट्टी देकर, सहायता केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को मदद देने को कहा गया है। बंबई के मदद-विभाग के मुखिया सर पुष्पोत्तम दास ठाकुरदास, गुजरात संकटनिवारण के लिए प्रजा और सरकार



दोनों ओर से मदद लेने की भरपूर कोशिश कुशाहरे की बचत विठ्ठलभाई पटेल, असेम्बली के सभापति किया है।  
१०,०००) रु. देकर शिमले में चंदा  
(नवजीवन)

स्वामी आनंद

## हिन्दी-नवजीवन

गुरुवार, भाद्रपद वदि ६ संवत् १९८४

### शाबास

संकट-निवारण-समितियों के काम के अहवाल और 'नवजीवन' में स्वा. आनंद का लेख देख कर लोगों की बहादुरी, एकता, दयालुता आदि के उदाहरणों में विश्वास करते हुए मैं हिचकता हूँ क्योंकि झूठी प्रशंसा, अतिशयोक्ति और आत्म-प्रवचना का ही आज देश में बोल वाला है। मगर इनमें अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। 'नवजीवन' में असत्य का दृढ़तापूर्वक त्याग किया जाता है और स्वामी को यह वस्तु भी मालूम है। बल्कि यही एक कारण है कि स्वामी 'नवजीवन' से अपना संबंध बनाये हुए हैं।

इस लिए, जब तक इसे गलत मानने का कोई कारण न होवे, मैं 'नवजीवन' को सही मानकर गुजरात को बधाई देता हूँ। क्षण भर के लिए तो लोगों के अपनी खूबियाँ दिखलाने का मौका देने के लिए इन आफतों का स्वागत करने की इच्छा हो आती है।

आफतें, मुसीबतें आती ही जाती रहती हैं। आज हम धनी हैं, कलह मुफलिस बन जा सकते हैं। हमारे बाग बगीचे, सुन्दर सुन्दर मकान नष्ट हो जाते हैं। हम उन्हें फिर बना ले सकते हैं। यह मुसीबत तो भूल जायगी।

मगर गुजरात ने आज जो अपने में शक्ति पायी है, अगर वह उसे भी भूल जाय तो? हर जगह हम क्षणिक वीरता और स्वार्थ-त्याग के उदाहरण पाते हैं। अगर गुजरात की वीरता केवल क्षणिक ही साबित होवे तो बाढ़ की शिक्षा बेकार ही गयी कही जायगी। गुजराती स्त्री पुरुष चेत जायें।

हमें जिस साहस, धैर्य और दयालुता की आज झलक भर मिली है, उसे हम हमेशा को अपना लें। हिन्दू मुसलमान भाई जैसे गले गले मिले। ऊँची जातियाँ लोने सगे भाइयों जैसे अछूतों को बचाया और घरों में रक्खा। अब अगर हम इन नये रिश्तों को केवल आपद्धर्म ही समझ कर फिर भूल जायें तो इस आफत के जमाने से भी हमारी पिछली हालत बुरी होगी। यह आफत तो नये भावों के उदय की प्रसव-पीड़ा है। और जबतक हमारा ऐसे भावों में पुनर्जन्म नहीं होता, ये विपत्तियाँ आती ही रहेंगी।

गुजरात ने आज जो किया है उसीको मैं शुद्ध स्वराज गिनता हूँ। आज जो गुण प्रकट हुए हैं, वे अगर रोजमर्रा की सामूली बातें बन जायें तो गुजरात ने स्वराज को योग्यता पा ली है। उसे उसका गौरव भी मिल चुका है।

प्रलय का जुलूम कहीं देखने लायक था! उसके सामने तो शायरशाही किस खेती की मूली है! शायरशाही में हजार बारह सौ धायल हुए, प्रलय में कितने हूबे, कितने की मिलकियत गयी, उसका हिसाब ही कौन कर सकता है? पर प्रलय को हमने गालियाँ न दीं, उसके साथ सत्याग्रह किया, आत्म-शुद्धि की, रचनात्मक कार्य किया, हिन्दू मुसलमान ऐक्य साधा, अस्पृश्यता को दूर भगाया, स्वाश्रयी बने, अपने भाई बहनों के लिए अपना धन छुड़ाया, किसीके नेतृत्व

की बाट न जोही, प्रलय को पीठ न दिखलते हुए हमने उसका सामना छाती खोल कर किया, और मानों कुछ भी न हुआ हो, यों अपने काम में आ जुटे। अगर हम बाढ़ को गालियाँ देते रहते, उससे हिसाब्युद्ध करते, तो हमारी तकलीफें बढ़ती ही।

इस गर्वी गुजरात को हजारों नमस्कार।

पर 'तू' कहाँ?

यों स्तुति करने, गुजरात को धन्यवाद देने का अधिकार दूर बैठे हुए किसी गुजराती को होगा क्या?

मेरे पास तीन तार और एक पत्र मुझे गुजरात में संकट-निवारण का नेतृत्व करने के लिए बुलाने को आये। पत्र तो स्वामी आनंद का था, और तार थे सरोजिनी देवी, भाई चन्द्रलाल, जिन्हें मैंने भूल से डाक्टर चन्द्रलाल मान लिया था, और श्री देवचन्द पारेख के।

मैं निश्चित रहा। गुजरात की स्वावलम्बन शक्ति पर मेरा पूरा विश्वास था और आर्थिक मदद के बारे में तो मुझे जरा भी शंका न थी। वल्लभभाई पर मुझे पूरा भरोसा था उनके साथ तार व्यवहार चल ही रहा था। मैंने अपनी हालत का उन्हें तार किया और पूछा कि क्या मेरा आना जरूरी है। उन्होंने तुरत ही तार से जवाब दिया, "गोकि लोगों का दुःख बयान के बाहिर है, मगर आपकी जैसी हालत है, आपके यहाँ आने की मैं सलाह नहीं दे सकता। आपने गुजरात को अपने पैरों खड़े होने की जो तालीम दी है, और जो संस्थाएँ बनायी हैं, आपके यहाँ आने से जो कुछ होगा, उससे कहीं अधिक काम उनके जरिये हो रहा है। आपके यहाँ न आने का उलटा मुलटा अर्थ लगाया जायगा जरूर, मगर उसका कोई इलाज नहीं है। आपको निश्चित मन से आराम लेना चाहिए।"

यह इतिहास दे कर मैं अपना बचाव नहीं करता। सेवक को तो बचाव करने का होता ही नहीं। मैं अपनी तबीअत ऐसी नाजुक भी नहीं मानता कि वहाँ आ ही न सकूँ। तबीअत नाजुक जरूर है। खेडा में जो काम लिया था, आज उसका दशवाँ हिस्सा भी मेरा शरीर नहीं दे सकता। मगज तो निकम्मा ही हो गया है। घड़ी घड़ी में थक जाता है। अभी बिस्तर में ही पड़े रहना पड़ता है। पर जहाँ आग लगी हो, वहाँ पर तो मरीज को भी, जान जोखिम में डाल कर जाना चाहिए और अगर पानी ढो सके तो पानी डालना चाहिए और अगर वह बैठा बैठा हुकूम ही दे सकता हो तो उसे डोली में चढ़ कर जाना और हुकूम देने को हाजिर होना चाहिए। पर मुझे साथियों को इस उदाहरण से सचेत करना है और एक पाठ देना है। गुजरात में हमने आज एक ब्रेलखे नियम का पालन किया है कि जब कोई काम किसी कार्यकर्ता के जिम्मे दे दिया जाय, तब, जबतक वह बुलावे या आज्ञा न देवे, दूसरे उसमें टोंग न अड़ावें और उस कार्यकर्ता पर पूरा विश्वास रक्खा जाय तथा, विश्वास के जाते ही उसे निर्भयतापूर्वक हटा देना चाहिए। गुजरात के हमारे सरदार वल्लभभाई हैं। मैं मले ही सुरद्वियों में गिना जाऊँ, पर गुजरात के काम के बारे में मुझे वल्लभभाई के नीचे ही बुलना चाहिए। इसी नियम को मानने से गुजरात में हम जो कुछ कर पायें हैं, कर सके हैं। यों हमने शक्ति का संयोज किया है, संयोज का पालन किया है, और योग्य कार्य-विभाग किया है।

पर वल्लभभाई के पत्र के अलावा भी मेरा खयाल था कि गुजरात में मेरी हाजिरी की जरूरत नहीं है। वल्लभभाई की सेवा-शक्ति पर मेरा अवल विश्वास है। खेडा युद्ध के बाद से उन्होंने बराबर मेरा साथ दिया है। उनके त्याग से किसी का त्याग बड़ा नहीं है।



१८ अगस्त, १९२७

हिन्दी-नवजीवन

अगर मैं अभी दौड़ आऊँ और यह वह सभी कामों में हाथ लगाने लूँ तो, इस काम में नये नये पहुँचने के कारण, सिर्फ अपने अज्ञान और अभिमान को दिखलाने के सिवा और क्या कर सकूँगा ?

और यहां मैं बेकार भी तो नहीं बैठूँ। मेरी अल्पमति में इस पाँच दिन के प्रलय से भी जो बलवान् व्याधि सिर्फ गुजरात ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान को लगी हुई है, उसे दूर करने में लगा हुआ हूँ। इस काम को छोड़ कर, लुभातेवाले दूसरे काम में जाकर लग जाना मेरे लिए सिर्फ बुरा ही नहीं, बल्कि अधर्म गिना जायगा। हम पर दोष लगाया जाता है कि आफत की घड़ी में हम दिग्भ्रम वन जाते हैं। इसमें जहाँ तक तथ्य होवे, हमें उससे मुक्त होना पड़ेगा।

हम में से कोई मनुष्य, खास कर कोई नेता बाहरी दबाव के सामने अपने जन्तर्नाद का अनादर कर के न चले। ऐसा करनेवाला नेता तो नेतृत्व का अपना अधिकार ही खो बैठता है। इस गुजराती कहावत में बहुत तथ्य है कि 'सालिक को तो घड़े में भी अपना धन सूझता है और दूसरे आँखों में भी नहीं देख पाते।' इस प्रसंग पर गुजरात दौड़ जाने का धर्म मैंने अभी नहीं देखा है।

ये तार, पत्र वगैरह मोह दिखलाते हैं। इसे तो छोड़ना ही पड़ेगा। मेरी शक्ति कुछ नहीं है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। सच्ची शक्ति तो सत्य की, प्रेम की—अहिंसा की है। ये जहाँ होते हैं, वहाँ अन्त में सभी कुछ असुकूल बन जाता है। इस सिद्धान्त का कोई अपवाद नहीं है। गुजरात और भारतवर्ष मेरे भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें तो उनकी हानि है। वे तो सत्य और प्रेम की जोड़ी को पूजें, उन्हींका भरोसा करें और मेरे जैसे सेवक जब तक सीधे रास्ते चलें, उनसे काम लें और जब टेढ़े चलें तो उन्हें दंड दें। मैं वहाँ अगर आ जाता तो गुजरात ने जो खूबी दिखलायी है, वह शायद नहीं दिखलाता।

अशक्त बने हुए सरदारों को सेवाकार्य और सक्रिय सरदारों का लोभ छोड़ना चाहिए। इन संकट निवारण के कामों में रोगी मनुष्य के लिए कोई जगह नहीं है। वहाँ तो वैसे ही आदमी चाहिए जो जगह जगह दौड़ सके, भूख प्यास, सर्दी गर्मी बरदाश्त कर सके। जो इसके योग्य नहीं है, वे तो तेजी से कूच करनेवाली सेना के लिए विघ्न रूप ही भर वन बैठेंगे।

अन्त में किसी सेवक को अपने वारे में गैरसमझ होने से न तो डरना, न बुरा मानना ही सोहता है। जो सेवा करता है, जो सरदारी करता है, उसके साथ गैरसमझ तो दुनिया के आरंभ से ही होती चली आ रही है। यह अनिवार्य वस्तु है। उसे सहन करना और अपने निश्चय पर अडग रहना, सेवा का कही या सरदारी का लक्षण है। मैंने तो जब से सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, तभी से यह अनुभव करता आया हूँ और इसलिए मेरी देह में घड़े पड़ गये हैं।

सारांश यह कि गुजरात ने आज स्वाश्रयी बन कर अपने को प्रशंसित किया है। वह ऐसा ही किया करे और मेरे जैसे आदमी तो आते ही जाते रहेंगे।

### साथियों को

साथियों को दो चार शब्द कह कर लेख समाप्त करूँगा।

१. मैं मान लेता हूँ कि कोई कार्यकर्ता अपने अभिमान से दूसरे किसीकी सहायता लेने या उसे देने में उज्र न करेंगे।

२. कोई अगर नाम के लिए काम करता है तो वह पाप ही बेटोरता है।

३. जुदी जुदी संस्थाओं में पूरा सहकार होना चाहिए।

४. सरकार जहाँ हमारी शक्तों पर मदद देवे, वहाँ उसे लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। उसमें तात्त्विक दृष्टि से असहयोग

का भंग भी नहीं होता। मगर जहाँ लोगों की सेवा प्रधान वस्तु होवे वहाँ 'वाल की खाल निकालने' की दलीलों को कोई जगह नहीं। सरकार के पास सदुपयोग के लिए अगर धन हो तो उसे मांगने या लेने में संकोच नहीं करना चाहिए।

५. यह न भूलना चाहिए कि सभी संस्थाएँ लोक-सेवा के लिए हैं, और लोक, संस्था की सेवा के लिए नहीं।

६. मैं देखता हूँ कि तीन जुदी जुदी संस्थाएँ सेवा कर रही हैं—१. वल्लभभाई के अधीन प्रान्तिक समिति, २. श्री अमृतलाल सेठ के नीचे सौराष्ट्र सेवा समिति और ३. श्रीयुत देवधर की सरदारी में सर्वेन्ट ऑफ इन्डिया सोसाइटी। शायद दूसरी और संस्थाएँ भी हों मगर इनका क्षेत्र एक दूसरे के क्षेत्र पर न पड़े, ये परस्पर एकदूसरे की मदद करें, निकट संबंध में रहें। जो अवतक काम में जुट न गये हों, वे तुरत अपने नजदीक की समिति में या जो उन्हें पसन्द पड़े, उसीमें शरीक हो जायें और काम मांगें। कोई अगर बेमिलनसार स्वभाव या, अभिमान के कारण इससे दूर रहेंगे, वे अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारेंगे। वे अपनी कीमत आप घटावेंगे और प्रजा को अपनी सेवा से वंचित रखेंगे।

७. चालू संस्थाओं का अनादर करके नयी संस्था खड़ी करने की कोशिश तो सबसुख भयंकर गिनी जायगी। बीता हुआ वक्त तो पीछे लौटता नहीं, इसलिए जहाँ कहीं जो काम में लग सकें, अविलम्ब लग जायें।

(नवजीवन)

मोहनदास करमचंद गांधी

### सूत की जाँच से लाभ

जबसे चर्खासंध ने चंदे की सूत की परीक्षा शुरू कर दी है, तब से सूत में बराबर ही उन्नति होती जा रही है। नीचे कुछ चोंकाने वाले परिणाम दिये जाते हैं।

नाम	अंक	मजबूती	समानता
श्रीयुत विश्वनाथ, केरल			
जाँच के पहले	२६	३१	२३
जाँच के बाद	३२	९५	८१
श्रीमती पद्मावतीबाई, शिमोगा			
जाँच के पहले	१६	२०	९१
जाँच के बाद	२६	८०	८९
डाक्टर एम. वेंकटराव, गाडगा			
जाँच के पहले	२१	४०	९२
जाँच के बाद	१९	७९	८८
श्रीयुत मोतीलाल राय, चन्द्रनगर			
जाँच के पहले	३९	४७	९२
जाँच के बाद	३३	७८	९५
श्रीयुत दयालभाई शिवजी, गुजरात			
जाँच के पहले	१४	२३	७१
जाँच के बाद	२०	७४	९३

नीचे कुछ ऐसे नाम दिये जाते हैं, जिनका सूत हमेशा ही एकसा अच्छा पाया राया। इनके सूत मिल के सूत से किसी हालत में बुरे नहीं कहे जा सकते।

नाम	अंक	मजबूती	समानता
श्रीमती गंगाबाई कुमटे, बंबई	३०	९८	९३
श्रीयुत ईश्वरलाल पटेल, ,,	१५	९२	९३
डाक्टर ए. पी. कोठारी, ,,	२२	९६	८६
श्रीयुत योगेन्द्र चटर्जी, सोदेपुर	३०	९६	९२
श्रीमती लक्ष्मीबाई गोखले	३३	९५	८४
श्रीयुत गोविंदभाई पटेल (वालक)	१५	८७	९३
विठ्ठल लीलाधर (,,)	११	८०	८८

(सं. इ.)

मो० क० गांधी



## बंगलोर का पत्र

## मैसूर का पत्र

पिछले पत्र में मैं बता गया हूँ कि मैसूर ने कुल मिला कर रु. ७२९६-५-७ की धैली दी थी। यह धैली देने के लिए सभा रखी गयी थी। इस सभा में गांधीजी ने अपने ऊपर मैसूर की पड़ी हुई छाप का वर्णन किया। अनेक संस्थाएँ तो देख ही आये थे, पिछले दिन जाकर कावेरी नदी पर का कृष्णराज सागर भी देख आये। कावेरी नदी कुर्ग में से निकल कर, सारे मैसूर को चीरती हुई, बंगाल की खाड़ी में गिरती है। श्रीरंगपट्टन से दश मील दूर और मैसूर से छह मील ऊपर, कावेरी का पानी लेकर यह सागर बनाया गया है। इस सागर का पानी १०९ फीट गहरा और ४४ वर्ग मील तक फैला हुआ है। इससे सैकड़ों मील तक के खेतों को पानी मिलता है। शिवसमुद्र के प्रवाह के आगे जहाँ पर राज्य ने बिजली का कारखाना खड़ा किया है, गर्मी में पानी काफी होता है। ऐसा जबर्दस्त बांध सारे संसार में सिर्फ एक मिसर देश में ही है। यह तो दोयम नंबर का कहा जाता है। महाराजा से भी बंगलोर में मिल ही चुके थे। उनकी बातों की जो छाप पड़ी थी और लोगों के मुँह से उनके विषय में जो सुना था, उसकी भी भनक भावण में सुनायी पड़ी:

“आपके यहां चतुर, नामी इंजीनियर, संगीतशास्त्री, कला कोविद और दूसरे प्रसिद्ध पुरुष हैं। अब मैं चाहता हूँ कि आप चतुर चर्खा-शास्त्री पैदा करें। आप के यहां खादी की तीन दुकानें हैं मगर आपके शरीर पर खादी न देख कर मात्तम पड़ता है कि आपको उनकी जरूरत नहीं है। आपके यहां कई संस्थाओं में कटाई का प्रवेश हुआ है, मगर मैं जानता हूँ कि उसमें संगठन की जरूरत है। खराब सूत की उतनी ही कीमत होती है जितनी घुरे संगीत की और आप जान जायें कि जो लोग दरिद्रनारायण की सेवा के लिए चर्खा चलाते हैं उन्हें चर्खे में संगीत, कला, अर्थशास्त्र और आनंद मिलेगा। मैंने आपके क्षयरोगाश्रम, अंधे और गूंगे लड़कों की पाठशाला और अनाथालय देखे हैं। ये महाराजा साहब की दयालुता के सबूत हैं, मगर आपको अपनी दया का क्षेत्र बढ़ाना पड़ेगा। परमात्मा की कृपा से आपके अंधे अपाहिज भूखों नहीं मरते हैं, मगर वैसे तो करोड़ों आदमी पड़े हुए हैं जिनका गुजर दो एक कट्टे जमीन पर ही होता है। वे भूखों मरते हैं। इसके लिए हमी जवाबदार हैं। इस दया-भूमि मैसूर में मैं आपसे उन परिश्रमी भुक्खड़ों के लिए भी कुछ करने को कहूँगा। आपको दोनों सुविधाएँ मिली हुई हैं। आपके यहां अत्यन्त सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, स्वास्थ्यकर आवांहरवा मिली है, और आपके महाराजा साहेब को सभी कोई प्रजा-हित-चिन्तक कहा करते हैं। ऐसी रियासत में तो एक भी भिखमैगा, एक भी भूखा, दरिद्र आदमी न होना चाहिए। आपके प्रेम के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे उस प्रेम के योग्य बनावे।

## कला-विशारद वेकटप्पा

हम सर विश्वेश्वरय्या और सर ब्रजेन्द्रनाथ शील से पहले ही परिचय कर चुके हैं। अब दूसरों से भी परिचय करेंगे।

चित्रकार वेकटप्पा का नाम, मैसूर के बाहर शायद ही किसीने सुना हो। लडकपन से ही वे चित्रकारी के पीछे लग गये। तबसे अपने काम में ही लगे हुए हैं। इन मस्तराम को बाहरी दीन दुनिया की कोई पर्वा नहीं है। इन्होंने चित्रकारी, शिल्पकला, और वीणावादन तीनों की साधना की है। पूरे आठ साल तक तो संगीत के प्रसिद्ध आचार्य शेफणा के पास इन्होंने केवल वीणा का ही अभ्यास किया था। एक दिन गांधीजी के पास ये अपने

चित्र ले कर आये थे। इनके चित्र तो ऐसे थे जो अनजान आदमी को भी मुग्ध कर लेवें, कला जानने वालों की तो बात ही क्या! फिर भी इनकी नम्रता देखने लायक थी। इन्होंने कहा, ‘मेरे इस काम से देश की कितनी सेवा होती है, यह मैं नहीं जानता। मैंने तो चित्रकला के लिए अपने को अर्पण कर दिया है। मैंने इसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया है। मैंने बड़ी मिहनत से कुछ धन कमाया है। मैं उसे यहां पर एक कलाशाला खोलने में लगा देना चाहता हूँ जहां पर विद्यार्थियों को मुफ्त में कला की शिक्षा दी जायगी। अपने चित्र मैं बेचता नहीं। वे तो राष्ट्र की सम्पत्ति होंगे।’ गांधीजी ने चलते समय कहा, ‘आपको देख कर मुझे आनंद हुआ है। एक बात कहूँ? गांधी में जाइए और वहां के जीवन को देखिए। उनके जीवन में चर्खे का स्थान बतलाने वाले चित्र खींचिए। पर यह तो तभी होगा जब आप पर चर्खे का असर पड़े। नहीं तो नहीं। इसके लिए मैं आपकी चित्रकला को दोष न दूँगा।’

## डाक्टर शामा शास्त्री

राज्य के पुरातत्व विभाग में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है। उसमें ११,००० हस्तलिखित पुस्तकें हैं और पुरातत्व का अजायब घर भी है। आजकल इस विभाग के अध्यक्ष डाक्टर शामा शास्त्री हैं। इन्होंने प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ ‘कौटिल्य अर्थशास्त्र’ का संपादन और अंगरेजी अनुवाद किया था। संस्कृत के पूर्ण पंडित होने के बाद ही आपने अंगरेजी का अध्ययन बड़ी उम्र में शुरू किया था। आपने कहा।

‘महात्माजी, प्राचीन काल के हिन्दुओं का सिद्धान्त था आत्मत्याग और अगर संस्कृति के रक्षक मठ सभी ओर हो जायें तो हमारा सारा दुःख मिट जाय। देखिए न, पहले के सभी राज्य आप जैसे साधुओं की ही सलाह से चला करते थे! अशोक के यहां उपगुप्त थे, पुष्यमित्र को पतंजलि, कुमारपाल को हेमचन्द्र, विजयनगर के राजाओं को विद्यारण्य जैसे संजी और गुरु मिले थे। हमारे यहां भी अगर स्वार्थ त्यागी, शिक्षित, संस्कृत, पुरुषों का एक दल तैयार हो जाय जो जहां जायें वहीं स्वार्थत्याग का पाठ पढ़ावे तो फिर शान्ति और समृद्धि ही नजर आवे।’

गांधीजी ने हँसते हुए कहा, ‘मगर यह करे कौन?’

‘कौन करे? आप करें, साहब, आप! आप वे दिन क्यों नहीं ला सकते? अगर बुद्ध के ५,००० मठ थे, तो वे आज भी क्यों नहीं बन सकते?’

‘मेरे लिए यह गैर सुमकिन है। अपने सिद्धान्तों की सत्यता में मुझे संदेह नहीं है, मगर इसके लिए मेरी तपस्या बहुत कम है। और यह जमाना भी उस युग से कितना अलग है! तब जीवन सहज था। उस समय की प्रजा बलवान् और संयमी थी। आज जैसे, तब के लोग असंयमी और विषयी मातापिता की संतान नहीं होते थे। अब तो हमारा शरीर दुर्बल है, मन तो उससे भी गया बीता। हम तो इस दृष्टे फूटे टुकड़े से ही कुछ करना चाहते हैं।’

मगर डाक्टर शास्त्री कब के छोड़ने वाले? उन्होंने फिर कहा, ‘आप ही कर सकते हैं?’

‘मेरे आश्रम को देखिए। उसे आप मठ जैसा कुछ मान ले सकते हैं। समुचित पुरुष और स्त्री हूँड लाना महाविकट काम होता है। शुरू का आदर्श कम करते करते भी, सबको एक साथ रखना अत्यंत कठिन हो पड़ता है। फीनिक्स के १९०६ वाले आश्रम का भी यही हाल था। लोग तो तुरत ही ३ पाउन्ड का टैक्स हटाने जैसा ही आदर्श लेकर आते थे। वे अदृश्य आदर्श का पालन नहीं करते, देखिए इसमें कठिनाई कितनी है।’



१८ अगस्त, १९२७

हिन्दी-नवजीवन

078081 ७१५

पर डाक्टर तो उस से मसन हुए। वे मठों का मधुर स्वप्न छोड़ना नहीं चाहते थे।

अंधे गवैये

मैसूर में अच्छे से अच्छा गाना तो सुना। मगर अंधों की पाठशाला की उस अंधी लड़की के जैसा गाना कहीं नहीं सुना। उसके जैसा सुरीला कंठ साधारणतः सुनने में नहीं आता। उसका हँसमुख चेहरा तो बतलाता था मानों वह दुनिया के अस्तित्व को ही भूल गयी होवे। उसके गाने के साथ साथ अंधे लड़के वीणा बजाते जाते थे।

गांधीजी ने कहा, “आपने भाग्य के सारे हुओं को इकट्ठा किया है। पर परमात्मा की कृपा से वे भूखों मरते किसानों से अधिक सुखी हैं। इन्हें अपने से भी अधिक अभागे लोगों के लिए प्रेम होना चाहिए। मैं मानता हूँ कि आपके यहाँ चर्खे की जगह नहीं है, मगर आप उन्हें खादी पहिना तो सकते हैं। हर ईसाई स्कूल की एक वर्दी होती है। आपके लड़कों के लिए भी खादी का एक समान कपड़ा बनवाया जा सकता है। यज्ञ के रूप में आप भी चर्खा चलवा सकते हैं मगर उसके लिए इन बेचारों को अपने अंधापे के बाहर नजर फेरनी पड़ेगी। वह तभी हो सकेगा जब आप सभी शिक्षक नियमित सूत काता करें और अंधे गूंगों में भी यज्ञ-भावना का उद्घ कर सकें।”

लड़कियों को सन्देश

मैसूर से यहाँ आने पर गांधीजी ने स्त्रियों की एक दूसरी समा में भाषण किया और दो कन्या पाठशालाएँ देखीं। दोनों की ही संचालिकाएँ ईसाई हैं। लंडन मिशन की शाला की लड़कियों ने मानपत्र दिया और खादी के लिए छोटी सी थैली दी और मधुर संगीत सुनाया। एक दूसरी शाला में बातों बातों गांधीजी ने बहुत कुछ सुनाया। उन्होंने कहा,

“तुम्हें मुफ्त में जो तालीम मिलती है, उसका लाभ क्या तुम देश को दोगी? या पढ़ना खत्म करते ही विवाह करके घर गृहस्थी के प्रपंच में पड़ जाओगी। मैं तुम्हें अविवाहित रहने को नहीं कहता। पर विवाह करो या नहीं मगर किसी के गुलाम बन कर न रहो। तुम तो दया की मूर्ति बन कर देश का दारिद्र्य नष्ट कर सकती हो। अनेक वीरांगनाएँ पवित्रता का कवच पहन कर समाज में जूझ पड़ी हैं, और उन्होंने समाज का कल्याण ही किया है। आज यूरोप में तो ऐसी कितनी वीरांगनाएँ हैं। तुम भी वैसी बनोगी?”

एक छोटी सी कन्याशाला की अध्यक्षा गांधीजी को अपने यहाँ ले गयी, स्वयं विद्वान होकर वह खादी पहनती और सूत कातती हैं। गांधीजी को उसने भरोसा दिलाया कि उनके बंगलोर छोड़ते छोड़ते तक उसके यहाँ की सभी लड़कियाँ नियमित रूप से कातने लगेंगी।

(नवजीवन और यं. इ.)

महादेव देशाई

आश्रम भजनावलि का नवीन और संशोधित संस्करण छप गया; कीमत २) पोस्टेज -); विना जवाबी कार्ड या टिकट के जवाब नहीं दिया जायगा। दस से कम प्रतियों की वी. पी. नहीं भेजी जायगी। वी. पी. मँगानेवालों को आधा दाम पेशगी भेजना चाहिए।

व्यवस्थापक,

हिन्दी-नवजीवन

गांवों में ढोर सुधार

[ इस सप्ताह मैं मि० विलियम स्मिथ का, सहकार से गांवों में ढोर सुधार वाला लेख देता हूँ। पिछले अंक में दी गयी पिंजरापोलों के संबंध की योजना तो तुरंत ही काम में लायी जा सकती है, मगर वी बनानेवाले क्षेत्र के बाहर, शहर से दूर दीहात में इस योजना को अमल में लाना, उससे जरा मुश्किल होगा। मगर सच्चा सुधार तो इन गांवों से ही होना चाहिए, जो आर्थिक कठिनाइयों और लोगों के पशु-पालन के अज्ञान के कारण, बरबस कसाईखानों को जानवर जुटाया करते हैं। हिन्दुस्तान के कसाईखानों के ढोरों का इतिहास कोई ध्यान से देखे तो मालूम पड़ेगा कि टका-धर्मी लोग, कसाईखानों के लिए इन्हीं दूर के गांवों से जानवर ले जाते हैं। ‘गोसेवक’ बनना सहज नहीं है। सिर्फ चाहने से ही तो कोई बन ही नहीं सकता। उसे तो वकीलों, डाक्टरों और इन्जीनियरों के जैसा सीखना पड़ता है, उनसे भी अधिक मिहनत उठानी पड़ती है। इस लिए जो हिन्दुस्तान की और उसके गांवों की बहवूदी चाहते हों, उन्हें, चुनिंदा गांवों में, इसे अमल में लाने के खयाल से मि० स्मिथ की योजना गौर से पढ़नी चाहिए। इसमें खुशामद की कोई बात नहीं है। जो पशु-पालन या सहकार-योजना को मुतलक नहीं जानते, उनके लिए यह आदर्श होगा। सरकारी सहयोग विभाग के नाम से असहयोगी भी न भड़के। अभी तो राष्ट्रीय असहयोग ही नहीं है। जब वह था, तब भी सभी सहकारी विभागों पर लागू न था। तब भी ऐसे असहयोगी थे जो सहकार-समितियों का त्याग न करते थे और अब भी कितने असहयोगी हैं जो सहकारी-समितियों के कार्यकर्ता होते हुए भी अपने को असहयोगी कहते हैं। मगर जो सरकारी समिति की सहायता लेना नहीं चाहता, वह गोसेवक भी इस योजना से लाभ उठा सकता है। सच पूछो तो मैं नहीं कह सकता कि सरकारी-समितियों से दूर रहने में लाभ नहीं है। वह गो-सेवक सहकार-समितियों की सलाह से लाभ उठा सकता है, अगर समितियाँ उसे खुशी से देखें और उनसे सांड अगर मिलें तो उनका भी उपयोग कर सकता है। मुख्य बात तो किसानों को पशु-पालन की शिक्षा देने की शुरुआत करने की है। प्रस्तावित योजना इसमें सहायता देगी। अगर मि० स्मिथ की योजना का ठीक ठीक अमल होवे तो उनके मतानुसार दूध में और पशु की कीमत में दुहरी बढ़ती होगी।

मो० क० गांधी ]

रेलवे स्टेशन से दूर ५०० के करीब को आबादी वाले गांव में पशु-सुधार की योजना।

इतने बड़े, ऐसे गांव में, बछड़ों को पिलाने से बचा हुआ सारा का सारा दूध गांववालों को कुछ समय तक आप खर्च कर लेना चाहिए।

प्रान्तीय सरकारी सहकार-विभाग के अधीन गांव के सभी ढोरवालों को ढोरसुधार सहकार-समिति खोल कर, उसमें शामिल हो जाना चाहिए। हर शरद अपने फी जानवर चार आने या किसी ऐसे ही हिसाब से हिस्सा खरीदे। इस समिति का प्रबंध, ६ या ८ आदमियों की कार्यसमिति करे जिसे हिस्सेदार चुनें और हर सदस्य को एक मत देने का अधिकार रहे। अब यह कार्य-समिति, सभापति, मंत्री, और खजांची चुने। सभापति तो जरूर कार्य-समिति का सदस्य होना ही चाहिए, मगर मंत्री और खजांची कोई हो सकते हैं।

ऐसी समिति तो बेकार ही होगी, अगर खास कर शुरू में ही आमद खर्च, हिसाब किताब, बही खाते, पशु-पालन, और पशु-चिकित्सा इत्यादि के संबंध में उसे योग्य सलाह न मिले।



इस लिए संगठन, हिसाब किताब, हिसाब की जांच वगैरह के बारे में इसे स्थानिक सहकार-विभाग के अधीन रहना चाहिए और स्थानिक कृषि और पशु-विभाग उसे सलाह देते रहें। इसके सभी वही खाते, जिले की भाषा में रखे जाने चाहिए। जरूरत के हिसाब से यह समिति क्रमशः ये काम करेगी:

१. गांव के बछड़े से बूढ़े तक सभी डोरों की गिनती उनके इतिहास के साथ तैयार करना।

२. हर डोर के कान पर गोदने गोदना या उस पर ठप्पा मारना जिससे उसके मालिक की पहिचान होवे।

३. स्थानीय कृषि विभाग को सहायता से, हर ५० गायों पर एक अच्छे सांड के रखने, खिलाने और देख रख रखने का प्रबंध करना और हर सांड के हर एक संयोग का सावधानी से लेखा रखना।

४. स्थानीय कृषि विभाग के जरिये या उसकी परसंदगी से अच्छे सांड मैंगने का प्रबंध करना और सार्वजनिक सूचना देना कि समिति के सदस्यों को उनका उपयोग मुफ्त में करने दिया जायगा और अगर मुनासिब समझा जाय तो दूसरों को भी फीस देने पर।

५. स्थानीय पशु विभाग के साथ ऐसा प्रबंध कर लेना कि गांव की हर पचास बछड़ियों और गायों पर, एक चुनिंदा बछड़े को सांड बनाने के लिए छोड़ कर बाकी सभी बछड़ों को बेल बनाया जाय। इन बछड़ों को समिति उनके मालिकों से खरीद ले और दूसरे सांडों के साथ खिला पिला कर रखे।

६. स्थानीय कृषि विभाग की सलाह से, सहकार के सिद्धान्त-नुसार, सदस्यों के सभी डोरों के काम लायक काफी चारा पैदा करने इकट्ठा करने और बचा रखने की योजना तैयार करनी।

७. दूधखाता खोलना, जिससे गांव की अच्छी गायों और भैंसों के दूध का सचा हिसाब रहे। इसके लिए अच्छी गायें और भैंसें चुन ली जायें और विश्वासी कार्यकर्ता हफ्ते में एक दिन जाकर गाय का दूध तौल लिया करें और उसे ७ से गुना कर लें। जबतक गाय दूध देती रहेगी, तब तक के सारे दूध का बहुत कुछ सही अंदाजा था लगाया जा सकता है।

पूँजी का हिसाब जोड़ने में यह बात मान ली गयी है कि स्थानीय सरकार आधे दाम पर सांड देगी जैसा कि पंजाब में होता है या दूसरी सरकारें करती हैं। स्थानीय कृषि और पशु विभाग की सहायता से यह समिति सहज ही चुन सकेगी कि किन किन सांडों के बछड़ों को सांड बनाना चाहिए और किनको बेल।

गांव में भैंस की उन्नति के लिए कुछ खास काम करने की जरूरत नहीं है। हिन्दुस्तान कोई ऐसा डोर नहीं रख सकता जो दोनों काम यानी गायें दूध और बेल हल गाड़ी का काम न दें। साधारणतः भैंसे खेत में या गाड़ी में काम नहीं देते और इसलिए पैदा होते ही, सिवाय उनके जिन्हें सांड बनाना हो, मार नहीं डाले जाते तो वे देश के कंधे पर बोझा होते हैं। हिन्दुस्तान में अधिकांश लोग कोई जानवर मारने के खिलाफ हैं और इसमें कोई लाम नहीं कि पालपोस कर ये भैंसे मांस के लिए मारे जायें जब कि कीमत के हिसाब से मांस का परता ही नहीं पड़ता। गांव के भैंसवालों को सहकार-समिति में शामिल होने का और धीरे धीरे भैंस को हटा हटा कर गाय रखने का उत्तेजन देना चाहिए क्योंकि सावधानी से पालन करने पर गाय का दूध बढ़ गया होगा। पीछे जब समिति को उसके सदस्यों का उबरता दूध खपाने का भार उठाना पड़े तब उसे गाय और भैंस दोनों का दूध खपाना चाहिए।

### शुरू का (पूँजी का) खर्च

	रु.
दो सांड, १७५) (आधे दाम) की दर से	३५०)
गोदना की कलें	९०)
सांड बनाने के लिए एक बछड़ा	६०)
दूध तौलने की कल	१५०)
दफ्तर का सामान	५०)

७५०

### सालाना खर्च

	रु.
३ सांडों का खुराक खर्च	३७०)
१ नौकर का मुसाहरा	१५०)
सांडों के लिए झोंपड़ी का किराया	६०)
दफ्तर का किराया	५०)
सुतफरकात	५०)
जानवरों का मरना वगैरह आकस्मिक घटनाएँ	१००)
दवाएँ	२०)
पूँजी पर सूद	५०)

८५०)

### आमदनी का हिसाब

	रु.
खाद की बिक्री	४०)
बाहरवालों से सांड की फीस	१०)
	५०)
सालाना खर्च	८००)

पूँजी इकट्ठा करना कुछ मुश्किल नहीं होना चाहिए। कार्य-समिति के सदस्यों की जामिन पर भरसक शायद सहकारी बैंक कर्ज दे देगा।

सालाना चालू खर्च के लिए यह समिति सरकार से ४००) की सहायता मांग सकती है, और बाकी ४००) के लिए दानी सज्जनों से चंदा मांग सकती है और हर सदस्य से कोई दो आने की ढोर फी महीने चंदा मांग सकती है। गांव में अगर गिने गिनाये ३०० ढोर होवें तो इस हिसाब से बाकी ४००) सहज ही वसूल हो जायेंगे।

अगर कोई सहकार-समिति इस तरीके पर ठिकाने से चली जाय तो मैं समझता हूँ कि तीन पुस्त में यानी कोई दश साल के अंदर अंदर डोर का और उसके दूध का दाम दुगुना हो जाय।

(यंग इंडिया)

मोहनदास करमचंद गांधी

### कातने में थकावट

खादी प्रतिष्ठान के सतीश बाबू लिखते हैं:

“यहां एक कतवैये को बहुत देर तक कातने को उत्साहित किया गया। एक बार वह दिन भर धुनता और पूनियां बनाता रहा। रात को पूनियां तैयार हो गयीं। अब रात को वह ९ बजे से दूसरे दिन सबेरे ७ बजे तक कातता रहा। उसने तीन घंटे आराम किया। दो घंटे सोने, और एक घंटा खाने पीने में गया। ३ घंटे के आराम के साथ, १९ घंटे काम करके उसने १८ नंबर का १०,५०० गज सूत काता है। भविष्य में वह इससे अच्छा काम दिखा सकेगा।”

लगातार २२ घंटों में से १९ घंटों के काम के इस इतने अधिक सूत की मजबूती और समानता की जांच का फल तो मनोरंजक होना चाहिए।

(यंग इंडिया)

मो० क० गांधी



१९२७

। कार्य-  
हकारी बंक

४००) की  
ानी सज्जनों  
ने की डोर  
नानाये ३००  
हो जायेंगे।  
से चलायी  
श साल के  
जाय।

ह गांधी

उत्साहित  
यां बनाता  
को वह  
। उसने  
घंटा खाने  
काम करके  
भविष्य में

इस इतने  
फल तो

गांधी



















